Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय

R
८०
प्र.८६स
भा०१३

विषय संख्या
पुस्तक संख्या
आगत पंजिका संख्या

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें।

३२२

112916

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

322 D

इसे पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

322

सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका

भाग १३

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः
पुस्तक सं० सर०
भाग सं० १३(१-१२)
तिथि०
गुरुकुल ग्रन्थालय काँगड़ी.

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः
पुस्तक सं० सर०
भाग सं० १३(१-१२)
तिथि०
गुरुकुल ग्रन्थालय काँगड़ी.

सम्पादक

महावीरप्रसाद द्विवेदी ।

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी
CHECKED 1973

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

१९१२

112916

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूची ।

१९१२

१—आख्यायिकायें ।

☞ जिन लेखों के नामों के पहले * ऐसा चिह्न है वे सचित्र हैं ।

नम्बर	नाम	लेखक
१	नवाब-नन्दिनी	... पण्डित रूपनारायण पाण्डेय ...
२	निशा-काल	... पण्डित विश्वम्भरनाथ शर्म्मा ...
३	राजा और रानी	... श्रीयुत विनयकृष्ण मुखोपाध्याय ...
४	स्वामि-भक्त जयन्त ...	... चतुर्वेदी ... ...
५	हीरा और लाल की कहानी ...	... बाबू रामजीदास धैर्य ...

२—आध्यात्मिक विषय ।

१	आत्मा	... श्रीयुत पञ्चमसिंह ...
२	आत्मा और अन्तःकरण ...	... डाक्टर रामनारायण शर्म्मा, एल० एम० एस०
३	क्या पुनर्जन्म सम्भव है ? ...	... ,, ,, ,, ...
४	पुनर्जन्म के प्रतिवादियों से प्रार्थना	... पण्डित चन्द्रशेखर शर्म्मा ...

३—ऐतिहासिक विषय ।

१	ऐतिहासिक बातें ...	... मुंशी देवीप्रसाद ... ...
२	कालिदास का समय-निरूपण ...	... सम्पादक ... ...
३	तुर्कों का उत्थान और पतन ...	... ,, ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112916

	नाम	लेखक	पृष्ठ
	*देवास का परमार-राजवंश (ज्येष्ठ शाखा) ...	श्रीयुत शङ्करराव कोठारी ...	... ५४५
	पुराणों की प्राचीनता	सम्पादक	... ४२६
	पुराना जाता है; नया आता है	पण्डित जनार्दन भट्ट ...	... ५००
	रघु का दिग्विजय	पण्डित जनार्दन भट्ट	... २०६
	*वाटरलू की संग्राम-भूमि	पण्डित प्यारेलाल मिश्र, बैरिस्टर-एट-ला	... २७३

४—कला-कौशल, व्यापार और व्यवसाय-विषयक।

	* अमेरिका के लुइस्टन नगर का फ़लोपवन ...	श्रीयुत पाण्डुरङ्ग खानखोजे, बी० एस० सी० एम० डी० सी०	२७७
२	चुक़न्दर की चीनी	सम्पादक	... ६४२
३	* जर्मनी में सुनारी का काम	श्रीयुत गुरदयालसिंह ...	... १०७
३	* पिट्सबर्ग और उसके कल-कारख़ाने, विद्यालय आदि ...	श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना ...	... ४३४
५	पिट्सबर्ग के कारख़ाने	,, ,, ,, ...	... ४६८
६	भारत-वर्ष का चलन-बाज़ारू सिक्का ...	पण्डित श्रीकण्ठ पाठक, एम० ए०	... ६०६
७	* भारत में कांच के कारख़ाने	सम्पादक	... १६२
८	मारकोनी का माहात्म्य	श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना ...	... १०४
९	* संयुक्त-प्रान्तों की पत्थर की कारीगरी ...	कुँवर योगेन्द्रपालसिंह, बी० ए० ...	... ४८१

५—कवितायें।

१	अतीत भारत की सभ्यता और आदर्श-पुरुष ...	बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...	... ६१४
२	अतीत भारत के वीरों की वीरता और शासकों की महत्ता	,, ,, ,, ...	... ६२६
३	अन्योक्तिपुष्पावली	,, ,, ,, ...	... ४६७
४	अभिलाषा	पण्डित रूपनारायण पाण्डेय ...	... ५३९
५	अलौकिक क्षमा	,, ,, ,, ...	... २०२
६	आनन्दोद्गार	पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्म्मा ...	... १९२
७	आर्त्त-वाणी	पण्डित रूपनारायण पाण्डेय ...	... ८८
८	उपदेश-सार	श्रीयुत रामदयालु ...	... १४७
९	उपासना-पञ्चक	पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्म्मा ...	... ३७४
१०	एक भावना	पण्डित गिरिधर शर्म्मा ...	... ४८
११	औरङ्गज़ेब का पत्र—पुत्र के नाम ...	बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...	... १८२
१२	कृष्ण-कीर्तन	पण्डित अक्षयवट मिश्र ...	... ५४४
१३	क्रन्दन	बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...	... ४६
१४	काल की कुटिलता	पण्डित मुकुटधर शर्म्मा, विद्यार्थी ...	... ४८६
१५	केदार-गौरी	पण्डित लोचनप्रसाद पाण्डेय ...	... २५६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
१६	केशिनी	पण्डित कामताप्रसाद गुरु	४१६
१७	खिला हुआ फूल	पण्डित रूपनारायण पाण्डेय	६४१
१८	गृह-स्मरण	पण्डित लोचनप्रसाद पाण्डेय	५५१
१९	ग्रन्थ	श्रीयुत गोपालशरणसिंह	६५०
२०	ग्राम-गौरव	पण्डित लोचनप्रसाद पाण्डेय	३७०
२१	*चाँद बीबी	पण्डित कामताप्रसाद गुरु	५६१
२२	छात्रों से नम्र निवेदन	पण्डित रूपनारायण पाण्डेय	२७६
२३	जलद-आवाहन	बाबू जयशङ्करप्रसाद	३३४
२४	जीवन-साफल्य	पण्डित मुकुटधर शर्म्मा	६५
२५	टाइटानिक की सिन्धु-समाधि	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	३८८
२६	डाकिया	सत्कविदास	२२१
२७	तपोबल	पण्डित रूपनारायण पाण्डेय	५७६
२८	तमिस्रा	"मधुर"	५८७
२९	* दरबार-दर्शन	राय देवीप्रसाद, बी०, ए०, बी० एल० ...	४१
३०	दासता	पण्डित रामचरित उपाध्याय	६६६
३१	पूर्व-स्मृति	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	२९६
३२	प्रातश्चिन्ता	पण्डित रूपनारायण पाण्डेय	३०
३३	प्रेम	"मधुप"	४८८
३४	बाल-काल	पण्डित लोचनप्रसाद पाण्डेय	४१०
३५	भक्त की भावना	पण्डित रूपनारायण पाण्डेय	४८०
३६	भारतवर्ष की महत्ता	श्रीयुत विन्ध्येश्वरीप्रसाद गुप्त	१९१
३७	मथुरा-पञ्चदशी	पण्डित दुर्गाप्रसाद द्विवेदी	४३७
३८	*मदन-दहन	सम्पादक	३०४
३९	मयूरी	"मधुप"	३५५
४०	मलय-मारुत	,, ...	४०५
४१	* महाराज-पृथ्वीराज का पत्र	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	१२७
४२	महाराज शिवि	पण्डित रूपनारायण पाण्डेय	१४५
४३	महाराना राजसिंह का पत्र	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	६७
४४	मौन-महिमा	सत्कविदास	८५
४५	याच्ञा	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	५१९
४६	यमुना-तट पर विरहिणी राधिका ...	"मधुप"	२४१
४७	राका	पण्डित रूप-नारायण पाण्डेय	३६३
४८	* विरहिणी सीता	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	३२२
४९	विश्वेश—वन्दना	सत्कविदास	६
५०	* श्रीराघव-विलाप	बाबू सियारामशरण गुप्त	४३३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूची।

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
५१	सपूत और कपूत	पण्डित रामचरित उपाध्याय	४६४
५२	सफल जन्म	पण्डित रामरत्न चौबे	६३४
५३	सरस्वती-समाराधन	सत्कविदास	१४०
५४	सांत्वना	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	४२६
५५	स्वार्थ-सप्तक	सत्कविदास	३१३
५६	हिन्दुओं की हीनता	पण्डित रामनरेश त्रिपाठी	१११

६—जीवन-चरित।

१	* कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर	सम्पादक	१२५
२	कुमारी नाइटिंगेल—क्राइमिया के युद्ध में ...	श्रीयुत लक्ष्मणराव काटोलकर	४४३
३	* गुह-बन्धु	श्रीयुत पाण्डुरङ्ग खानखोजे, बी० एस-सी०, एम डी-सी०	३१४
४	* गोण्डाल का राज-परिवार	सेंट निहालसिंह	१२
५	* जापान-नरेश मुत्सो हीटो	सम्पादक	४५७
६	* जोधपुर-नरेश महाराज बख्तसिंह ...	लफ्टिनेंट अमरसिंह	६५
७	* नर्त्तकाचार्य्य पण्डित गिरिधारीलाल तिवारी ...	पण्डित गणेशराम मिश्र	६५
८	* पण्डित विशन-नारायण दर, बैरिस्टर-एट-ला ...	सम्पादक	५
९	बहरामजी एम० मलाबारी	श्रीयुत रमणभाई रेवतीराम	४७७
१०	* बाबू नगेन्द्रनाथ वसु, प्राच्यविद्या-महार्णव ...	पण्डित गोपालप्रसाद शर्म्मा	३८०
११	महाकवि फिरदौसी	बाबू भगवानदास गुप्त	५५४
१२	* महाराज हर्षवर्द्धन	श्रीयुत हरिश्चन्द्र	४२६
१३	* मिस्टर स्टेड	पण्डित लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेय	३३१
१४	* मुक्ति-फ़ौज के अधिष्ठाता जनरल बूथ ...	सम्पादक	५२७
१५	* राम-दासानुदास श्रीधर विष्णु परांजपे ...	पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी	१७७
१६	* रावबहादुर माननीय रङ्गनाथ नारायण मुधोलकर, बी० ए०, एल० एल०, बी० ...	सम्पादक	६२७
१७	लाइकरगस	श्रीयुत गणेशशङ्कर विद्यार्थी	२३६
१८	* सर रूफ़स आइज़क्स	पण्डित प्यारेलाल मिश्र, बैरिस्टर-एट-ला ...	९८
	* स्वामी बालराम उदासीन	पण्डित अक्षयवट मिश्र	३२८
	* हिन्दी-हितैषी स्वर्गीय भूदेव मुखोपाध्याय, सी० आई० ई० ...	पण्डित रूपनारायण पाण्डेय	४१८
	हीरविजय सूरि	सम्पादक	~~२८६~~

७—फुटकर विषय।

	अमेरिका की चर्चा	श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना ...	... ८६
	आख्यायिका	कुमारी राजवती सेठ	... २१९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूची।

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
३	आचरण की सभ्यता	श्रीयुत पूर्णसिंह, एफ० सी० एस०	१०१ और १४१
४	एकान्त-वास	पण्डित बदरीदत्त पाण्डेय ...	... ६३६
५	कृतज्ञता-ज्ञापन	सम्पादक	... ४५६
६	* कौड़ियों के प्रति हमारा कर्तव्य ...	"मागध"	... ४८७
७	* चित्र-परिचय ... ... ,, ...	पण्डित रामजीलाल शर्म्मा ...	... ६४
		सम्पादक १२०, १७५, २३२, २८८, ३४४, ४००, ४५६, ५१२, ५६८, ६२४ और ६८८	
८	जन-संख्या की बाढ़ से भारत की अवनति ...	पण्डित जनार्दन भट्ट ...	... ४०६
९	जन-संख्या की निःसीम वृद्धि से हानि और उससे बचने के उपाय	,, ,, ...	... २८३
१०	जन-संख्या की वृद्धि से भारत की हानि ...	,, ,, ...	... ३७३
११	जापान पर बौद्ध-धर्म्म का प्रभाव ...	श्रीयुत मुकुन्दीलाल ...	... ५४८
१२	जुगनू	पण्डित रूपनारायण पाण्डेय ...	... ५०३
१३	* देहली-दरबार	एक दर्शक	... ७
१४	धर्म्माग्नि	पण्डित रामजीलाल शर्म्मा ...	... ६८०
१५	* नर्त्तकाचार्य्यजी के विषय में विज्ञप्ति ...	पण्डित गणेशराम मिश्र ...	... ५८७
१६	नल का दुस्तर दूत-कार्य्य	सम्पादक	१९२ और २४७
१७	नीर-नारी	श्रीयुत आर० ए० अग्रवाल ...	... ३३०
१८	* पुरुषों के बराबर अधिकार माँगनेवाली स्त्रियाँ ...	श्रीयुत सुन्दरराज ...	... ५६९
१९	पूर्व का पुराना विमान और पश्चिम का नया आकाश-यान	विद्यार्थी मांगीलाल शर्म्मा ...	... ५३९
२०	बड़ोदा का राजकीय पुस्तकालय... ...	सम्पादक	... २८०
२१	* बीकानेर में महोत्सव	,, ...	... ६२५
२२	भरत	श्रीयुत बालाप्रसाद ...	... ८९
२३	मज़दूरी और प्रेम	श्रीयुत पूर्णसिंह, एफ० सी० एस०	... ४६८
२४	महाराज पञ्चम जार्ज की दिनचर्य्या ...	पण्डित प्यारेलाल मिश्र, बैरिस्टर-एट-ला	... १८४
२५	मीठे रीठे	श्रीयुत केसरसिंह मुलतानी ...	... ३९१
२६	युद्धसम्बन्धी अन्तर्जातीय नियम ...	सम्पादक	... ५८२
२७	विज्ञानवेत्ता हक्सले के अनमोल बोल ...	डाक्टर रामनारायण शर्म्मा, एल० एम० एस०	... ३९२
२८	विलायत में उपाधियों का क्रय-विक्रय ...	सम्पादक	... ३
२९	* विविधविषय	† सम्पादक ५७, ११६, १६६, २२९, २८६, ३४०, ३९२, ४४९, ५०५, ५५९, ६१७ और ६	
३०	राका वैदिक उपदेश	पण्डित लल्लीप्रसाद पाण्डेय ...	...
३८	* विरहिर		
३९	विश्वेश—वन्द		
४०	* श्रीराघव		

* विविध विषय के अन्तर्गत कितने ही नोट्स सचित्र हैं। कुछ नोट्स औरों के भी लिखे हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
३१	व्योम-यान द्वारा मुसाफ़िरी	सम्पादक	... ५३१
३२	व्योम-यानों से गोलों की वर्षा	,, ...	... ११४
३३	शान्ति का सार्व-भौमिक राज्य	श्रीयुत गणेशशङ्कर विद्यार्थी ...	... ४०६
३४	श्रीरामानुज-सम्प्रदाय	पण्डित रूपनारायण पाण्डेय ...	... ३७५
३५	संसार का भावी महा-साम्राज्य	पण्डित जनार्दन भट्ट ...	... १११
३६	सम्राट् के पीयूषपूर्ण वचन और दया दर्शक कार्य्य...	सम्पादक	... ८
३७	सूचना	सम्पादक	६८८

८—वैज्ञानिक विषय।

१	एक वैज्ञानिक का स्वप्न	"कुञ्ज"	... ४३६
२	कृत्रिम-प्राण-सञ्चार की चेष्टा	सम्पादक	... ५८८
३	ज्योतिर्विद्या—गोलाध्याय	प्रोफ़ेसर रामावतार शर्म्मा, एम० ए०	२० और ७८
४	डारविन का सिद्धान्त	पण्डित गिरिजादत्त वाजपेयी, एम० ए०	... ४४
५	पदार्थ-विज्ञान का अभ्युदय	पण्डित सरयूनारायण त्रिपाठी, एम० ए०	... १७
६	पृथ्वी की प्राचीनता	सम्पादक ...	... ५८०
७	* प्रकाश	बाबू कृष्णचन्द्र गुप्त ...	... ४३६
८	भूगर्भ-विद्या	प्रोफ़ेसर रामावतार शर्म्मा एम० ए०	५९२ और ६५८
९	भूगोल-विद्या	,, ,, ...	२९७ और ३५६
१०	मनुष्य क्या चीज़ है ?	डाक्टर रामनारायण शर्म्मा, एल० एम० एस०	... २०१
११	* मानव-चरित्र का वैज्ञानिक विचार ...	श्रीनारायणचन्द्र चट्टोपाध्याय ...	... ५३४
१२	* वायु-पम्प	पण्डित विश्वम्भरनाथ शर्म्मा ...	... ३६६
१३	विश्व-विज्ञान	श्रीयुत भगवानदत्त रूपलाल ...	... १८७

९—शिक्षा-विषय।

१	अमेरिका के छात्रों का सम्मेलन ...	श्रीयुत पाण्डुरङ्ग खानखोजे, बी० एस-सी०	... १६४
२	अमेरिका में भारतीय विद्यार्थियों के आश्रम ...	एस० खेमचन्द्र ...	... २२२
३	* चीन में स्त्री-शिक्षा	सेंट निहालसिंह ...	... ५१३
४	जर्मनी के आधुनिक विद्यार्थियों का जीवन ...	"वर्म्मा" ...	... ३३५
५	जर्मनी में शिशु-शिक्षा ...	श्रीयुत गुरदयालसिंह ...	... २६८
६	* जापान में स्त्री-शिक्षा ...	सेंट निहालसिंह	... २४२
७	भाषा-शिक्षा	अध्यापक विनयकुमार सरकार, एम० ए०, पी० आर० एस०	५२०, ६०० और ६७५
८	वर्तमान काल में शिक्षा का महत्त्व ...	पण्डित रामनारायण मिश्र, बी० ए०, ...	... ८६
९	संयुक्त प्रान्त में स्त्री-शिक्षा की अवस्था ...	,, ,, ...	... २१९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०—साहित्य-विषय।

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
१	आदर्श समालोचक	श्रीयुत हरिकृष्ण अग्रवाल	१५५
२	कालिदास के विषय में जैन पण्डितों की एक निर्मूल कल्पना ...	सम्पादक	५७२
३	काव्य-प्रभाकर	बाबू मैथिलीशरण गुप्त ... २२३ और	२५६
४	काव्य-स्वतन्त्रता पर सम्मति	,, ,, ...	३६१
५	कुछ धातुओं और शब्दों का इतिहास ...	बाबू जगन्मोहन वर्म्मा	४६५
६	कुछ शब्दों का इतिहास	,, ,, ,, ...	२००
७	खड़ी बोली की काव्य-स्वतन्त्रता ...	पण्डित कामताप्रसाद गुरु	३१८
८	टाल्सटाय और शेक्सपिअर	पण्डित बदरीनाथ भट्ट, बी० ए०	६५१
९	तुलसीदास की अद्भुत उपमायें	पण्डित अक्षयवट मिश्र ... २७१, ३२३, और	३८३
१०	तुलसीदास की शृङ्गार तथा हास्य-रस की कविता ...	,, ,, ...	६३५
११	धातुओं का इतिहास	बाबू जगन्मोहन वर्म्मा	५६७
१२	पुस्तक-परीक्षा...	सम्पादक ६१, ११६, १७१, २३२, २८८, ३४३, ३६८, ४५३, ५१०, ५६५, ६२१ और	६८६
१३	* बड़े लाट लार्ड आकलेंड को हिन्दी में पत्र ...	श्रीयुत रामकुमार गोयनका	४१७
१४	मराठी-साहित्य की वर्तमान दशा ...	पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी	६६७
१५	महाकवि क्षेमेन्द्र और अवदानकल्पलता ...	पण्डित अक्षयवट मिश्र	६०४
१६	मिश्र-भ्राताओं के नव-रत्न	ठाकुर रतनसिंह, बी० ए०	१२६
१७	*योरप के विद्वानों के संस्कृत-लेख और देव-नागरी-लिपि ...	सम्पादक	४०१
१८	रवि-वर्म्मा के प्रसिद्ध चित्र	पण्डित अक्षयवट मिश्र	१६७
१९	रामचन्द्र के चरित्र-चित्र का धुँधला अंश ...	श्रीयुत प्यारेलाल वृष्णी	४१४
२०	रामायण	सम्पादक	२२६
२१	रामायण का प्रभाव	,, ...	३६४
२२	शुद्ध हिन्दी	पण्डित कामताप्रसाद गुरु	४११
२३	सतीमोह	पण्डित रूपनारायण शर्म्मा	३०६
२४	साहित्य में संरक्षण-नीति का अवलम्बन ...	प्रोफ़ेसर विनयकुमार सरकार, एम० ए० ...	२७
२५	संस्कृत और हिन्दी-कविता का बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव	पण्डित पद्मसिंह शर्म्मा	६१३
२६	संस्कृत राम-चरितमानस	पण्डित खड्गजीत मिश्र, एम० ए०, एल० एल० बी०	६७२
२७	स्वामी दयानन्द सरस्वती का वेद-भाष्य और अध्यापक मैक्समूलर	सम्पादक	५५२
२८	हिन्दी की वर्तमान दशा	कुँवर योगेन्द्रपालसिंह, बी० ए०	३०६
२९	हिन्दी-नवरत्न	सम्पादक ... ... ३० और	६९
३०	हिन्दी-साहित्य और समाज	पण्डित कामताप्रसाद गुरु	२१२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११—स्थल-नगर-देशादि-वर्णन।

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
१	अमरकण्टक	पण्डित प्यारेलाल मिश्र, बैरिस्टर-एट-ला ...	६६१
२	पटना	सम्पादक	१८६
३	बटेश्वर का मेला	डाक्टर जी० पी० मिश्र	६०७
४	* ब्रिटिश गायना में भारतवासी ...	डाक्टर रामनारायण शर्म्मा, एल० एम० एस० ...	२०८
५	* मेरी यात्रा...	श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाला बी० ए०, बैरिस्टर-एट-ला ... १, १२१, २३३, और ३४५	
६	* लखनऊ का मेडिकल कालेज... ...	सम्पादक	२१०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-संख्या।

नम्बर	विषय	संख्या
१	आख्यायिकायें	५
२	आध्यात्मिक विषय	४
३	ऐतिहासिक विषय	८
४	कला-कौशल, व्यापार और व्यवसाय-विषयक	६
५	कवितायें	५६
६	जीवन-चरित	२१
७	फुटकर विषय	३७
८	वैज्ञानिक विषय	१३
९	शिक्षा-विषय	६
१०	साहित्य-विषय	३०
११	स्थल-नगर-देशादि-वर्णन	६
	कुल लेख-संख्या	१९८

चित्र-संख्या।

महीना	हाफ़टोन	रङ्गीन	नाम
जनवरी	२९	२	दान्ते का स्वप्न और भयभीत शिकारी
फ़रवरी	११	२	मायामृग, और वृद्ध शिशिर और बालक वसन्त
मार्च	१९	२	शकुन्तला-पत्र-लेखन और राधा-जन्म
एप्रिल	१३	१	दमयन्ती और हंस
मे	१४	१	सन्ध्या
जून	८	१	विरहिणी सीता
जूलाई	१२	१	अहल्या
आगस्ट	१८	१	कृष्णाष्टमी
सेप्टेम्बर	१४	१	मन्दोदरी
आक्टोबर	१३	१	शाहेजहाँ का महल
नवंबर	९	१	कैकेयी और मन्थरा
दिसम्बर	९	१	यौवनगर्वा
कुल	१६९	१५	

Printed by Apurva Krishna Bose at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः
पुस्तक सं०.....
आगत सं० 12 (1)
गुरुकुल ग्रन्थालय कांगड़ी.

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग १३] १ जनवरी, १९१२—पौष शुक्ल १२, १९६८। [संख्या १

मेरी यात्रा।

(क) हंगरी से तुर्क देश।

(ले० श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल, बी० ए० (आक्सफ़र्ड) बैरिस्टर-एट-ला।)

गत वर्ष, स्वदेश आते समय, वैशाख-जेष्ठ के महीने में, मैं हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट और तुर्क देश की राजधानी कान्स्टैंटिनोपल होता हुआ आया। तुर्क देश की यात्रा, बुडापेस्ट से चल कर की—अर्थात् स्थल-मार्ग से। यह यात्रा जल-मार्ग से फ़्रान्स या इटली के किसी पत्तन से जहाज़ में सवार होकर भी हो सकती है। पर आमोद-यात्रा में एकही मार्ग से जाना और लौटना अच्छा नहीं लगता। दूसरे, पूर्व-देशों के लोग अभ्यासतः स्थल-मार्ग से रास्ता काटना जल-मार्ग से अधिक पसन्द करते हैं। कान्स्टैंटिनोपल का वृत्तान्त लिखने के पहले इस लेखांश में हंगरी का हाल लिखा जाता है।

हंगरी देश योरप में एक पूर्वी, एशियाई जाति का राज्य है। योरप और एशिया में ऊपराचढ़ी बहुत दिनों से चली आती है; इसे योरप वाले सहज सा मानते हैं। पुराने पारस ने पारसी और हिन्दू सिपाही लेकर ग्रीस पर चढ़ाई की; ग्रीस ने सिकन्दर के नायकत्व में पारस और भारत पर आक्रमण किया। बाइज़नटाइन-सम्राटों ने कान्स्टैंटिनोपल से एशिया के पश्चिमी भाग पर राज्य किया। एशियाई हूणों और तातारों ने योरप के साम्राज्यों पर बार बार हमला करके उन्हें बाँट लिया—इत्यादि घटनाचक्र चलाही आ रहा है। हंगरी उसी घटनाचक्र की एक अमिट लीक है—एशियाई प्रयत्न-प्रकाण्डत्व और पराक्रम का योरप में एक ध्वजस्तम्भ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई साढ़े दस सौ वर्ष हुए कि हूण जाति ने आर्पाद के नायकत्व में इस प्रदेश को, जो अब हंगरी कहलाता है, स्लाव जाति से जीत लिया*। इस के बाद कोई सौ वर्ष तक इन्होंने योरप में कोई ऐसा कोना बाक़ी न रक्खा जहाँ इनकी तलवार न चमकी हो। पर, अन्त में, ये हंगरी में ही बस रहे और इन्होंने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया। ईसवी १४४२—४३ में इस जाति का वीर जान हूनयादी योरप के ईसाइयों का, अपने भाई-बन्धु चढ़ते हुए तुर्कों के विरुद्ध, नायक था। ईसवी बारहवीं शताब्दी के आदि में इन्होंने अपनी परिषद् या पार्लिमेंट क़ायम की। ईसवी सोलहवीं शताब्दी में तुर्कों से आत्मरक्षा के लिए इन्होंने अपने पड़ोसी आस्ट्रिया के हापस्बुर्ग-राजवंश से अपना नाता जोड़ा; वहाँ के राजा को अपना राजा चुना। तब से हापस्बुर्ग-वंश से, जो अब भी आस्ट्रिया के साम्राज्य-पद पर प्रतिष्ठित है, और इन से आपस में झगड़ा होता रहा और लड़ाई लगी रही। हापस्बुर्ग इन्हें विजित सा समझ अपनी जर्मन जाति की मातहती में रखना चाहता था। पर ये कहते थे कि नहीं, तुम चुने हुए राजा हो; तुम अपनी जाति की भाषा और प्रभुत्व हम पर नहीं चला सकते। कई बलवे हुए। सब से बड़ा बलवा कोशथ नामक राष्ट्रपक्षी के नायकत्व में, कोई ६० वर्ष हुए, हुआ। उसी कोशथ का लड़का आज कल हंगरी में मंत्रियों में से है। अन्त में, ई० १८६६ में, यह निश्चय हुआ कि आस्ट्रिया के सम्राट् हूणों के राजा कहलायें और हूण-राजधानी बुडापेस्ट में आकर पुराना लोहे का राज-मुकुट, जिसे हंगरी के स्वजातीय राजा दिया करते थे, ग्रहण करें; उनसे उनकी भाषा में बातचीत करें; हंगरी की पार्लिमेंट अलग रहे; उनके सिक्के अलग हों; आस्ट्रिया-हंगरी के नोटों पर एक तरफ़ हंगरी की भाषा और दूसरी ओर जर्मन भाषा छापी जाय। यह सब प्रबन्ध अब भी जारी है। इस तरह आपस का झगड़ा तै हो गया। इस समय आस्ट्रिया का जो सम्राट् है उसी के समय में राष्ट्रीय विद्रोह और यह फ़ैसला हुआ है। सम्राट् फ़्रांसिस जोज़ेफ़ हंगरी के राजा और आस्ट्रिया के सम्राट् कहलाते हैं। आस्ट्रिया की राजधानी वीअन (Vienna) है। बुडापेस्ट और वीअन की पार्लिमेंट मिल कर मन्त्रि-परिषद् चुनती हैं। चुनते समय कोई बोलता नहीं; सब गूँगे की तरह इशारों से काम निकालते हैं। क्योंकि हंगरी वाले अपनी भाषा छोड़ आस्ट्रिया वालों की भाषा, जो जर्मन है, न बोलेंगे और आस्ट्रिया वाले अपनी भाषा छोड़ हंगरी वालों की भाषा न बोलेंगे।

जब विअन से रवाना हूजिए तब बुडापेस्ट का रेलवे-तन्त्र अलग पाइएगा। उनकी गाडियों पर उनकी भाषा, टिकटों पर उनकी भाषा, रेल में टिकट जाँच करने वाले उनकी जाति के और जर्मन जानते हुए भी अपनी ही भाषा बोलनेवाले—यह सब अजीब दृश्य देखने में आता है। हंगरी वाले अब अपने को मगयार और अपनी भाषा को मगयार-भाषा कहते हैं। उनकी भाषा चीनी-जापानी के समान मंगोल-भाषा-वंश की है; पर चीनी भाषा से एक दम विलक्षण है। अपनी भाषा वे रोमन अक्षरों में लिखते हैं। रेल-गाड़ियों की लिपि से, नमूने के तौर पर, एक नक़ल ली थी; पर वह खो गई। तथापि दूसरे उदाहरण दिये जा सकते हैं। "वर"=वह पीटता है; "वरिंत"=वह ज़रा ज़रा पीटता है; "वरहत"=वह पीट सकता है। नेकेम वन्नक केन्यीं= 'मुझे हैं पुस्तकें' अर्थात् पुस्तकें मेरी हैं। केन एम्बर=दो आदमी, अर्थात् "दो"। तोल्लम्=मेरा क़लम; तोल्लियम=मेरे क़लम; तोल्लद=तेरा क़लम; तोल्लुंक= हमारा क़लम; तोल्लाइंक=हमारे क़लम। ओलमोशी कारोली तनार उर=श्रीयुत प्रोफ़ेसर चार्ल्स (कारोली) ओलमोशी। ज़ावोर ओरवस् एस् बकातोर=डाक्टर ज़ावोर और उसका नौकर। इतना नमूना बस होगा। मेरी भाषा-विषयक हिम्मत इस भाषा को देख जाती

* स्लाव जाति इस समय अधिकतर रूस-साम्राज्य में संगठित है। इसकी भाषा योरप में सब भाषाओं से अधिकतम संस्कृत से मिलती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह
स्ट्रिया
विद्रोह
नोज़ेफ़
हलाते
nna)
ल कर
बोलता
ते हैं।
स्ट्रिया
स्ट्रिया
भाषा

ट का
ों पर
टिकट
जानते
अजीब
अपने
-भाषा
समान
ी एक
रों में
के तौर
तथापि
=वह
ता है;
न्वीं=
र=दो
कलम;
ल्लुंक=
लमोशी
रोली)
जावेार
। मेरी
जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

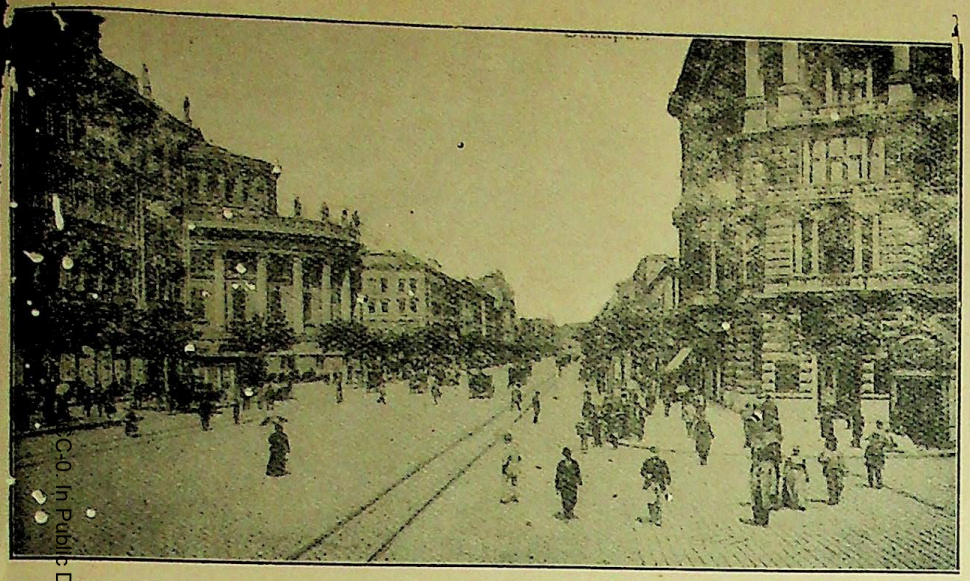

बुडापेस्ट की चौड़ी सड़कों का दृश्य।

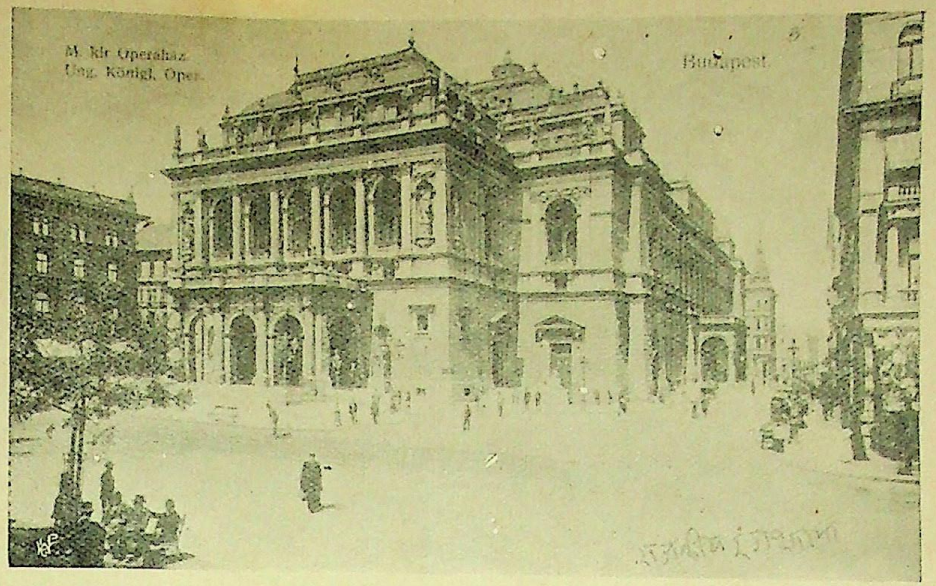

बुडापेस्ट की राजकीय रङ्ग-शाला।

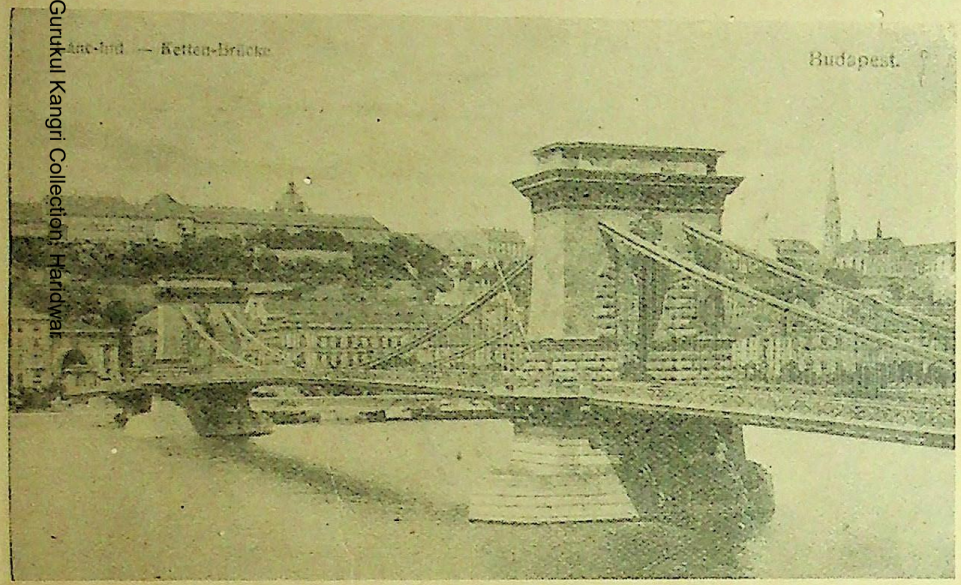

बुडापेस्ट का झूलना पुल—दुनिया के इस तरह के सब पुलों से बड़ा।

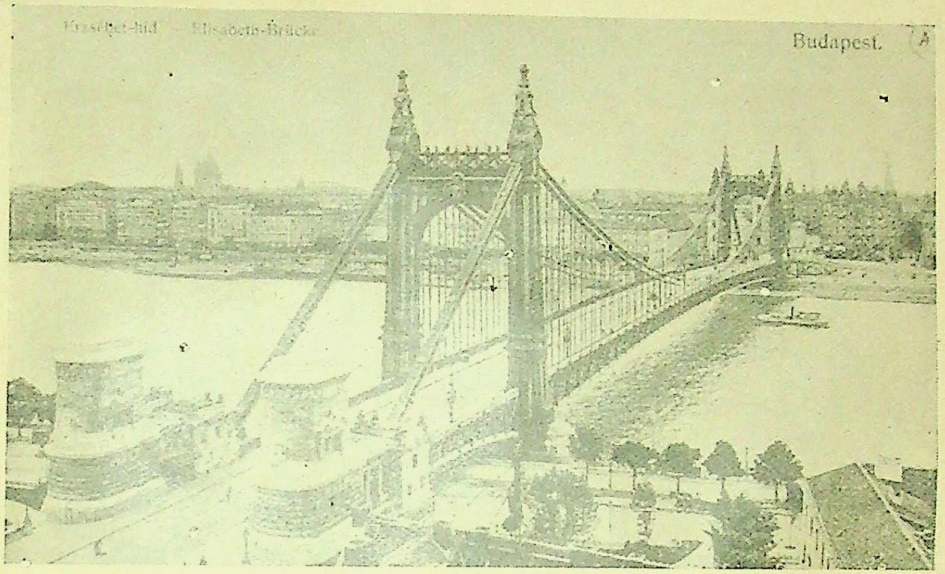

बुडापेस्ट के लंबे लंबे घाट।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

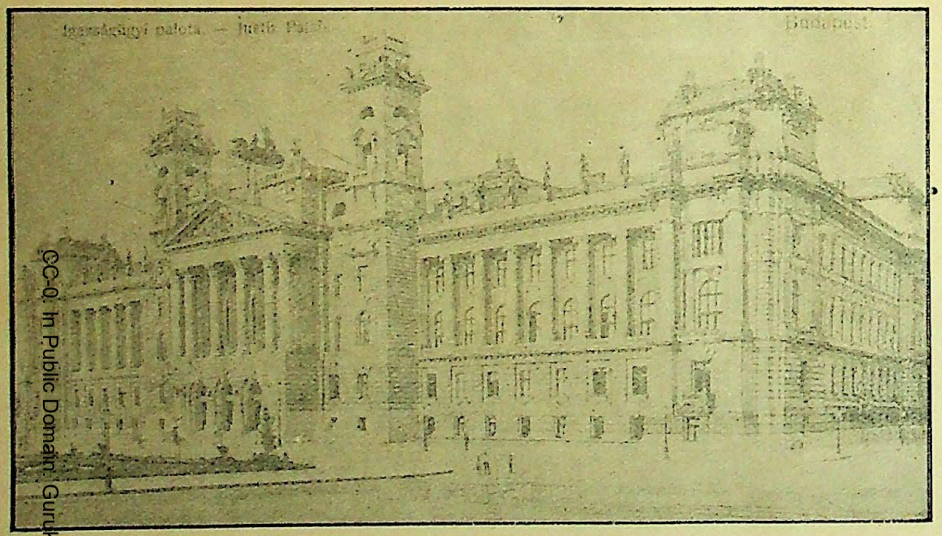

बुडापेस्ट का न्यायालय ।

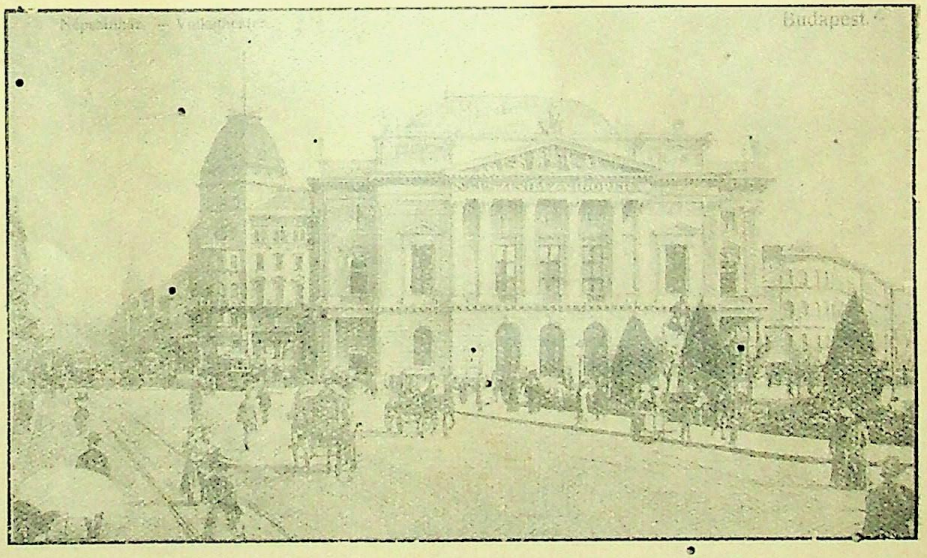

बुडापेस्ट की राष्ट्रीय रङ्गशाला ।

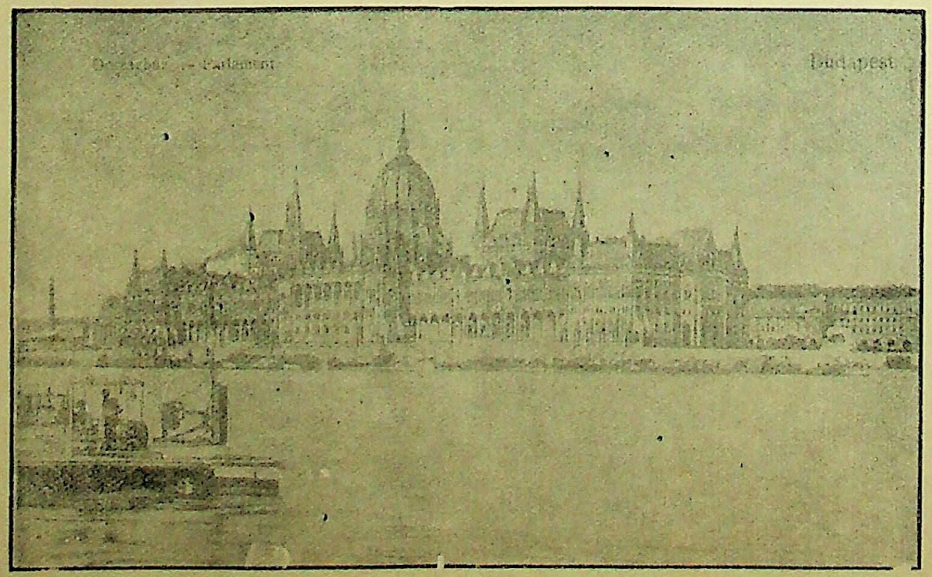

बुडापेस्ट का पारलिमेंट हौस ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

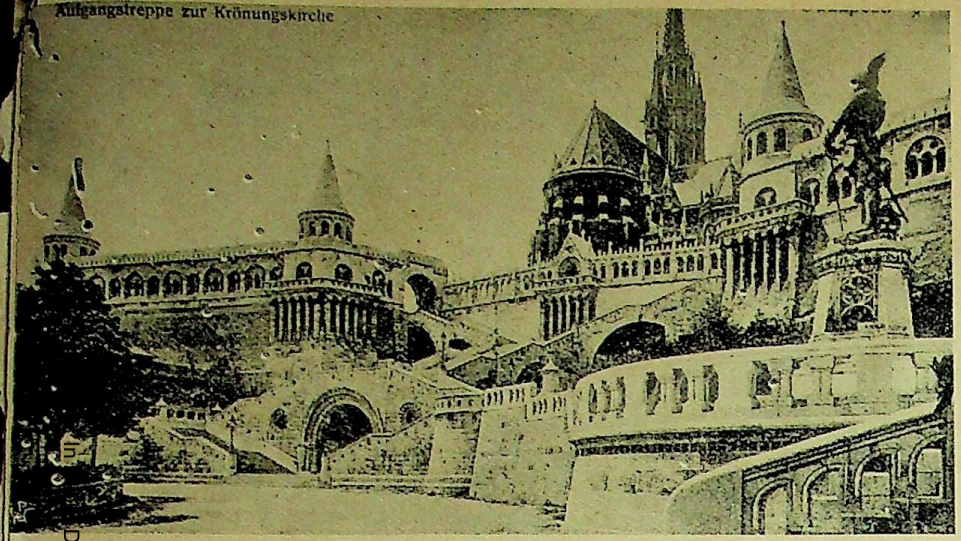

बुडापेस्ट का पुराना महल ।

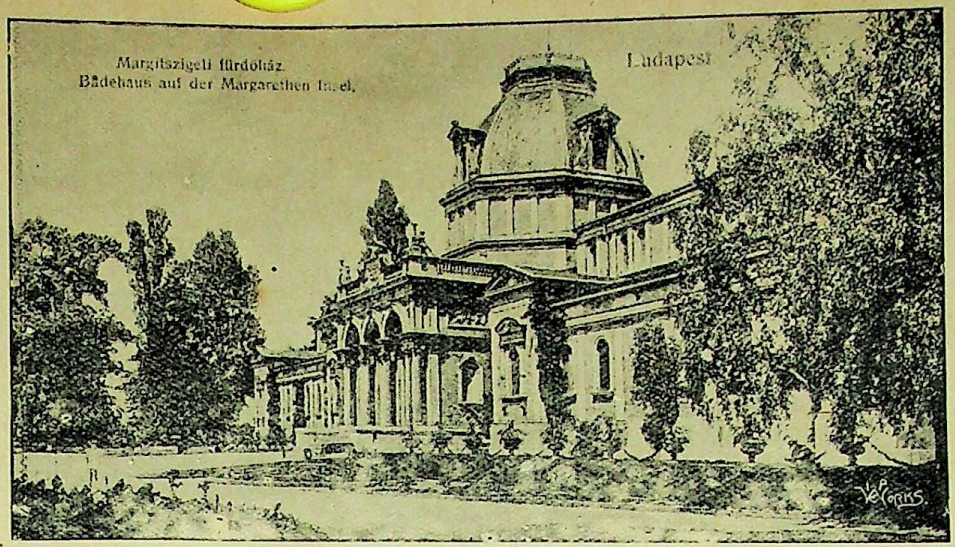

बुडापेस्ट का उष्ण जलाशय ।

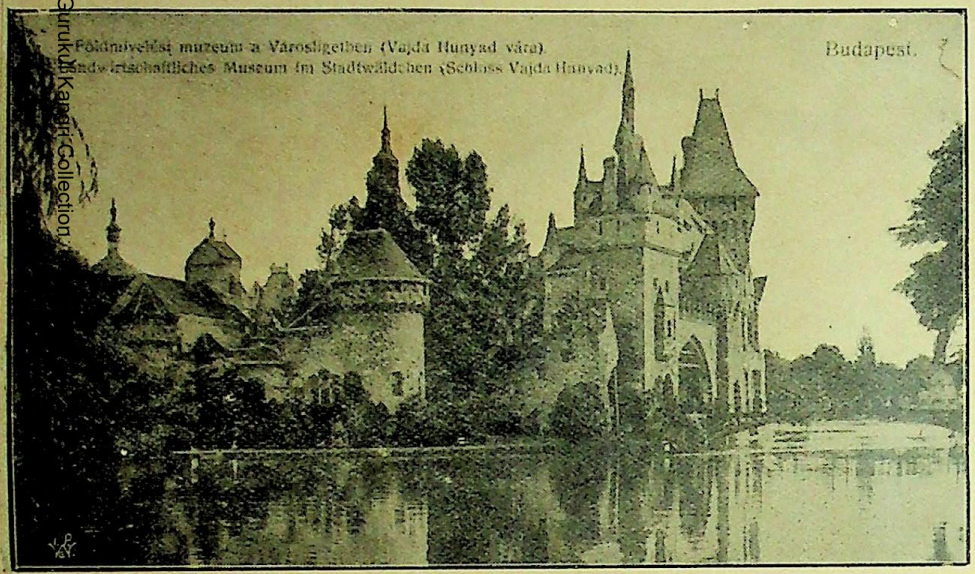

बुडापेस्ट का पुराना गढ़ ।

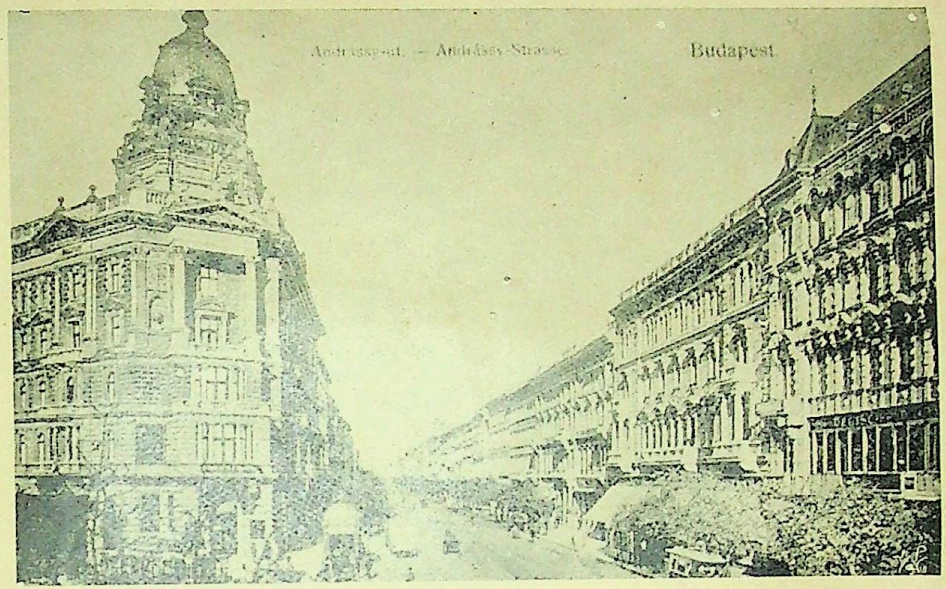

बुडापेस्ट के ऊँचे मकान ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही। पर भाषा कैसी ही हो, हर एक को अपनी ही भाषा प्यारी है; और मगयार जाति से बढ़ कर किसी को अपनी भाषा का नाज़ नहीं हो सकता। उसके लिए उन्होंने लड़ाइयाँ लड़ी हैं; वे बलिदान होगये हैं; उन्होंने अपने राजा पर चढ़ाई की है। वे बोलेंगे तो अपनी ही भाषा बोलेंगे, नहीं तो परिषद् में गूँगे बने रहेंगे। अपने राजा और आस्ट्रिया के बादशाह से अपनी भाषा बलात् बुलवाते हैं। इससे बढ़ कर भाषा-ममत्व का प्रमाण और क्या हो सकता है?

वीअन से बुडापेस्ट १६७ मील पूरब-दक्षिण को झुकता हुआ है। रेल में सोच रहा था कि देखें साधारण हंगेरियन कैसे होते हैं। इतिहास में इनकी वीरता का अलौकिक वर्णन पढ़ा था; इनकी जाति की पूर्वी उत्पत्ति और हूण लोगों का विकराल वर्णन जो कुछ किताबों में देखने में आया था, देखें उनके चिह्न अब कहाँ तक देख पड़ते हैं। इसी विचार में चित्त कुतूहलाक्रान्त था। इसके पहले सिर्फ़ एक हंगेरियन आक्सफ़र्ड में देखा था। वह हंगरी के पुराने राजवंश के अवशिष्ट प्रिन्स स्त्रेहाज़ी के पुत्रों में था। यह कौंट स्त्रेहाज़ी दुबला पतला फ़रासीसी रंगत का था। इटालियन या फ़रासीसी मालूम होता था। पूर्वीपन की कोई विशेषता उसमें न थी। न हूणों की रूप-विकरालता ही का चिह्न कुछ उसमें पाया गया। असल हूणों के जबड़े ऊपर को उठे, कपोल चुचके, बाल खुले, क़द ठिँगना और रंग पीला था। वे घोड़े और गधों पर सवार, हाथ में तीर-कमान और कुल्हाड़ा लिये, योरप में आये थे। उस वेश-भूषा की अब अपेक्षा तो की ही नहीं जा सकती थी, पर रूप में कुछ विशेषता देखने का कौतूहल अवश्य था। सम्भव था कि राजवंश के घरों में परिवर्त्तन हो गया हो; पर साधारण लोगों में शायद एशिआई चिह्न बाक़ी हों। सोच ही रहा था कि एक आदमी रेल की गली में, जो गाड़ियों की एक ओर योरप में होती है और जिसके द्वारा सारी ट्रेन में एक से दूसरे सिरे तक आदमी हो आ सकता है, आकर बग़ल में खड़ा हो गया। यह जर्मनों का सा लम्बा था। रंग कुछ फीका था। आँख के नीचे की हड्डियाँ कुछ उभड़ी हुई थीं। यह फ़्रेंच भाषा में बातें करने लगा। मालूम हुआ, हंगेरियन था। उसके देश की बातें मैं पूछने लगा। जर्मन अथवा आस्ट्रियन लोगों और हंगरी वालों में बहुत अनबन अब भी है। हंगरी वालों का यह विचार है कि वर्त्तमान सम्राट् फ़्रांसिस जोज़ेफ़ के मरने पर राजवंश का कोई कुमार लेकर आस्ट्रिया से एक दम अलग हो जाना चाहिए—इत्यादि। इतने में एक रमणी उधर से गुज़री। हंगेरियन सज्जन ने घमंड से कहा—देखिए, यह हमारी जाति की रमणी है। मध्यकाय, बाल ऐसे कि उत्तर (नारवे, इँगलैंड आदि) की रमणियों के केश से भी हलके रंग के और उनसे भी बारीक, आँखें कुछ स्याह, चेहरे पर अँगरेज़ या जर्मन स्त्रियों की सी शुभ्रता नहीं, कुछ पीली रंगत, पर सुर्ख़ी उन्हीं की सी। यह केश और मुख की ललाई की विशेषता हंगरी की स्त्री-जाति में साधारणतः देखने में आई। स्त्रियों में किसी किसी की आँखों में चीनी-जापानी आँखों की कोणता—जैसे सरपत से आँख के कोने फाड़ दिये गये हों—आँखों की इस अप्रिय काट के चिह्न किसी किसी स्त्री में देखने में आये। पर मरदों में इसका पूर्णतया अभाव है। इससे जान पड़ता है कि विजेता हूण का विजित योरपियन आर्यों के साथ बहुत रक्त-सम्मेलन हुआ है।

बुडा=पेस्ट डान्यु नदी के दोनों तीरों पर बसा हुआ है। ऐसा सुन्दर राज-नगर मेरे देखने में योरप भर में दूसरा नहीं है। यही राय मेरे एक मित्र की भी है, जो भूमिगोलक की परिक्रमा कर आये हैं। नदी के इस पार (बाँयें किनारे पर) पेस्ट है और उस पार बुडा। नगर-युगल अपने नाम के समान पुलों के 'हाइहन' से एक कर दिया गया है। नदी पर ६ पुल हैं, जिनमें २ बहुत सुन्दर लोहे के झूलन पुल हैं। इनमें से लांक नामक दुनिया के बृहत्तम सस्पेन्शन पुलों में गिना जाता है। नदी के कूल पर, पेस्ट में, लंबे लंबे घाट बँधे हुए हैं, जिन पर लोग टहला करते हैं, चाय वग़ैरह की दूकानें हैं, पेड़ों की

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क़तारें लगी हुई हैं। दोनों तटों पर आलीशान इमारतें हैं। पारलिमेंट-हौस या परिषद्-गृह ऐसा सुन्दर है कि योरप के सब पारलिमेंट हौसों को मात करता है। वह उन्नीस वर्ष में बन कर पूरा हुआ था। ऐसी राजनैतिक इमारत मेरे देखने में और कहीं नहीं आई। इमारतों में यह पुरुष (नर) मालूम होता है; ऊँचा, विशालकाय, गंभीर भाव से खड़ा हुआ, देखने वाले के मन पर अपना रोब जमा देता है। नदी की लहरें इसके पैर धोती हैं। उस पार बुडा में पहाड़ पर पुराना गढ़ है और शाही महल भी हैं। ये भी नदी में पानी से लग रहे हैं।

नगर का वर्गफल ७८ मील है। सड़क के दोनों ओर मकान ऊँचे ऊँचे ऐसे और इस बहुतायत से हैं कि पैरिस और विअन को सर झुकाना पड़ता है। सड़कें इतनी चौड़ी कि और कहीं देखने में न आयेंगी। थियेटर (रंग-शालायें) कोई छः हैं, जिनमें दो सरकारी और एक म्युनिसिपैलिटी की ओर से है। न्यायसदन भी बड़ा श्रीमान् भवन है। गर्म पानी का चश्मा स्वास्थ्याकांक्षी लोगों के स्नान के लिए एक मनोरम निर्माण में क़ैद किया गया है। सड़क की दोनों पटरियों पर पैरिस के 'बूलेवार' के ढाँचे पर वृक्ष रोपे हुए हैं।

हंगरी का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय यहाँ है, जिसमें कोई ५००० छात्र पढ़ते हैं। स्टाटिस्टिक्स अर्थात् सम्पत्तिशास्त्र का वह विभाग, जो हिसाब करके सब बातें साबित करता है, उसके एक बहुत नामी पण्डित, Dr. Joseph de Körösy इसी विश्वविद्यालय में हैं। यह विश्वविद्यालय मगयार-भाषा के द्वारा सारी शिक्षा देता है। मगयार-भाषा का साहित्य बहुत आधुनिक है। रूसी-साहित्य के समान कोई ५०-६० वर्ष का इसका वयस् है। इतने ही समय में यह साहित्य सर्वसम्पन्न हो गया है।

इसी तरह वर्त्तमान बुडापेस्ट भी बहुत आधुनिक है। क़िले और महल को छोड़, सारी इमारतें कोई ४० वर्ष के अन्दर की हैं। यही कारण है कि यह नगर इतना अच्छा है। दूसरी राजधानियों से पीछे इसकी मार्जना हुई है। म्युनिस्पैलिटी ने बहुत ऋण कर रक्खा है। यह मगयार जाति का पूर्वीपन ज़ाहिर करता है। कज़ चाहे हो जाय, पर मकान अच्छा भड़कीला हो। बात यह कि वस्तुतः इनकी बड़ी बड़ी इमारतों की हंगरी ऐसे अल्पधनवान् देश को ज़रूरत नहीं। बड़ी बड़ी दूकानें या बड़े बड़े व्यापारियों की कोठियाँ यहाँ नहीं। बड़ी इमारतों के नीचे 'कफ़े' अर्थात् चाय पीने की दूकानें, बैठ कर जी बहलाने के साधन हैं। लोग धीरे धीरे चलते हैं। कृषि मुख्य और प्रायः एक एव आजीविका है। ग़रीब और ठाकुर दोही प्रकार के लोग हैं। पेशेवालों आदि का मध्य कोटि का जनसमुदाय, जैसा योरप के दूसरों हिस्सों में है, यहाँ नहीं है। व्यापार प्रायः कुछ भी नहीं। व्यापार की गति वह है जिसे चाणक्य 'एकमुख' कहता है—अर्थात् सरकार के हाथ में। कारख़ाने प्रायः सब राज्य के हैं। इसका कारण यह है कि मगयार जाति को ११०० वर्ष से लड़ने से फ़ुरसत ही न मिली। यह लड़ाई १८६६ में समाप्त हुई, जब वर्तमान सम्राट् फ़्रांसिस जोज़ेफ़ ने हंगरी को अलग पार्लिमेंट देना, लाचार होकर, अंगीकृत किया और स्वयं बुडापेस्ट का हूण-जाति का प्राचीन लोह-मुकुट अपने सर पर रक्खा। सम्पत्तिशास्त्रवाले कहते हैं कि यह जाति व्यापार में भी अब आगे बढ़ रही है। पर यों देखने में अभी कुछ विशेषता नहीं मालूम होती। इन्हीं की सी व्यापारिक दशा इनके भाई बन्धु* तुर्कों की भी है। उन्हें देखते भारतवर्ष, व्यापारदृष्टि से, बहुत आगे है। नगर की जन-संख्या तेज़ी से बढ़ रही है, ऐसी कि योरप में और किसी राजधानी की ऐसी बढ़ती नहीं है।

* इस समय जो तुर्की और इटली में युद्ध हो रहा है उस पर हंगरी के समाचारपत्रों ने लिखा है कि ख़ून के नाते तुर्की हंगरी का सहानुभूतिभाजन है। इटली और हंगरी दोनों एक धर्म मानने वाले हैं। और वह धर्म इसलाम-द्रोही है। ख़ून का नाता धर्म के नाते से भी यहाँ बलिष्ठ साबित हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुत ऋण
न ज़ाहिर
न अच्छा
बड़ी बड़ी
देश को
ड़े व्यापा-
ं के नीचे
कर जी
लते हैं।
ई। ग़रीब
लों आदि
के दूसरों
कुछ भी
चाणक्य
हाथ में।
ारण यह
लड़ने से
में समाप्त
ने हंगरी
अंगीकृत
ाति का
सम्पत्ति-
भी अब
छ विशे-
यापारिक
न्हें देखते
नगर की
योरप में
नहीं है।

हो रहा है
के नाते
और हंगरी
इसलाम-
हाँ बलिष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित बिशन नारायण दर, बारिस्टर-एट-ला।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुद्र पास न होने से व्यापार की वृद्धि देर में होगी। पश्चिमी योरप की सजीवता यहाँ अभी नहीं है। इसके अभाव पर मन उदास हुआ। आगे बढ़ा।

पण्डित बिशन नारायण दर, बैरिस्टर-एट-ला।

इस वर्ष की कांग्रेस के सभापति पण्डित बिशन नारायण दर थे। आपका जन्म बाराबङ्की ज़िले में, १८६४ ईसवी में, हुआ था। बालावस्था में आपको उर्दू और फ़ारसी पढ़ाई गई। कुछ दिनों बाद अँगरेज़ी भी आरम्भ करा दी गई। छोटेपन से ही आपकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। आप बात को बहुत जल्द समझ लेते थे। आप अध्ययनशील भी बड़े थे। जब आप अँगरेज़ी के मिडिल और इंट्रन्स क्लासों में थे तभी से आप अँगरेज़ी के धुरन्धर लेखकों की बनाई हुई पुस्तकें पढ़ने लगे थे। इंट्रन्स पास कर के आप लखनऊ के केनिंग कालेज में पढ़ने गये। वहाँ आपने कालेज के पुस्तकालय की अधिकांश पुस्तकें पढ़ डालीं। पढ़ते तो आप एफ़० ए० ही में थे, परन्तु आपकी योग्यता यहाँ तक बढ़ी चढ़ी थी कि उस समय भी आप मिल, हर्बर्ट स्पेन्सर, ह्यम, कारलाइल इत्यादि विख्यात अँगरेज़-विद्वानों और पण्डितों की बनाई पुस्तकों का अध्ययन और मनन किया करते थे। आप देश-गति से भी अनभिज्ञ न थे। उन्हीं दिनों आप काश्मीरी क्लब के सभासद हो गये थे। उक्त क्लब की राजकीय, सामाजिक और नैतिक बातों में आप भी योग देते थे। आपका कथन है कि काश्मीरी क्लब के कारण आपकी बहुत कुछ मानसिक उन्नति हुई।

आपके हृदय में विलायत जाने की प्रबल इच्छा बहुत दिनों से थी। यह वह समय था जब लोग विदेश जाना बहुत बड़ा पाप समझते थे। समाज-दण्ड के भय से कोई विलायत जाने का नाम न लेता था। उस समय तक काश्मीरी समाज में से, जिस के आप एक रत्न हैं, किसी ने भी देश से बाहर पैर रखने का साहस न किया था। काश्मीरी क्लब में सम्मिलित होने पर आपकी विदेश-यात्रा की इच्छा और भी प्रबल हो गई। इसी बीच में, आप गणित में कमज़ोर होने के कारण, एफ़० ए० की परीक्षा में फ़ेल हो गये। फ़ेल होने पर आपकी विलायत जाने की इच्छा और भी प्रबल हो गई। एक दिन विना किसी से कुछ कहे सुने आप बम्बई चले गये और वहाँ से जहाज़ पर बैठ इँगलैंड पहुँचे।

विलायत में आप तीन वर्ष तक रहे। वहाँ आप बैरिस्टरी का व्यवसाय सीखते रहे। साथ ही आप इतिहास, राजनीति, तत्त्व-शास्त्र इत्यादि का भी अध्ययन करते रहे। अनेक अँगरेज़-विद्वानों के ग्रन्थों को आपने वहाँ बड़े ही अभिनिवेश से पढ़ा। विलायत ही में आपकी भेंट माननीय मिस्टर चन्दावरकर और स्वर्ग-वासी मिस्टर लालमोहन घोष से हुई। इस भेंट का फल यह हुआ कि आप राजनीति की ओर बहुत झुक गये। बैरिस्टरी पास करके आप भारत लौटे।

आपको क़ानून में विशेष रुचि न थी। बैरिस्टरी आपने केवल जीविका उपार्जन के लिए ही पास कर ली थी। देश में आकर आप राजनैतिक विषयों की ओर झुके। देश के राजनैतिक आन्दोलनों में भी आप शरीक होने लगे। १८८७ ईसवी में कांग्रेस का तीसरा अधिवेशन मदरास में हुआ। कांग्रेस से सम्बन्ध जोड़ने का आपने वहीं से श्रीगणेश किया। इस अधिवेशन में आपकी विद्वत्ता-पूर्ण और ओजस्विनी वक्तृता सुन कर कांग्रेस के प्रधान स्तम्भ, मिस्टर ह्यम, आपके ऊपर बड़े प्रसन्न हुए। इसके बाद १९०३ की कांग्रेस में आपने आफ़ीशियल सीक्रेट बिल का अच्छा प्रतिवाद किया। १९०८ में लखनऊ की प्रान्तीय कान्फ़्रेंस में आपने सरकारी कौन्सलों की त्रुटियाँ योग्यता-पूर्वक बतलाईं। गत वर्ष आप प्रान्तीय कानफ़्रेंस के सभा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पति थे। आपका उस समय का भाषण बड़ा सार-गर्भित था। १८९३ में आज़मगढ़ में हिन्दू मुसल-मानों में गो-हत्या पर बहुत रक्तपात हुआ था। इस झगड़े में अपराधियों के साथ कितने ही निर-पराधी मनुष्य भी पकड़े गये। किसी भी वकील या बैरिस्टर को निर्दोष मनुष्यों के पक्ष में खड़े होने का साहस न होता था। ऐसे समय में आप आज़मगढ़ पहुँचे और वहाँ का सब हाल देख सुन कर आपने एक छोटी सी पुस्तक प्रकाशित की। आपकी कृपा और परिश्रम से कितने ही निर्दोष मनुष्य दण्डित होने से बच गये। इस काम से आपका बड़ा यश हुआ।

आप बहुत अच्छी अँगरेज़ी लिखते हैं। आपके लेखों से आपकी योग्यता का अच्छा परिचय मिलता है। बड़े बड़े अँगरेज़-विद्वानों ने आपके लेखन-कौशल की प्रशंसा की है।

आप उर्दू और फ़ारसी भी अच्छी जानते हैं। आपने फ़ारसी-कवियों के ग्रन्थों का विशेष परि-शीलन किया है। उर्दू के आप अच्छे कवि हैं। आपका मत है कि जातीय उन्नति के लिए देशी भाषाओं का जानना परमावश्यक है। आपमें एक और बड़ा भारी गुण यह है कि आप अपनी प्रसिद्धि के इच्छुक नहीं।

इधर कुछ वर्षों से आप राज-यक्ष्मा रोग से पीड़ित थे। दिन रात रोग-शय्या पर पड़े रहते थे। मिहनत करने अथवा चलने फिरने की शक्ति न थी। तो भी आप सदा प्रसन्न-चित्त रहते थे और देश की सामाजिक और राजनैतिक दशा पर बात चीत करके समय व्यतीत करते थे। ख़ुशी की बात है, अब आप पहले से बहुत अच्छे हैं।

विश्वेश-वन्दना।

(१)

वन्दना, विश्वेश ! होती है तुम्हारी नित्य;
नित्य सारी सृष्टि होती कर इसे कृतकृत्य।
मूक-वत् इसमें यदपि रहता मनुज-पाण्डित्य,
जड़-जगत्-कृत वन्दनामय है घना साहित्य॥

(२)

यह धरा, जिसको धरा है शेष ने निश्शेष,
मान कर आदेश तव निज शीश पर विश्वेश !
वृत्तपत्र-असंख्य-रसना-राशि से अनिमेष
वन्दना करती तुम्हारी ही सदा सविशेष॥

(३)

वारिनिधि की वीचियों के बीच वृत्तालाप;
स्रोत-सरिता-कृत-मधुर-सङ्गीत-कीर्ति-कलाप।
शान्त होता है जिन्हें सुन चित्त का परिताप,
प्रध्वनित करते तुम्हारा ही सदैव प्रताप॥

(४)

रवि-उदय से नित्य होना दीप्त भू-आकाश;
दामिनी के मिष प्रकृति-कृत हाव-भाव-विकाश।
अग्नि से तम का तथा शीतादि का भी नाश;
हैं तुम्हारा ही, प्रभो ! करते प्रशस्ति-प्रकाश॥

(५)

स्वच्छ, शीतल, मन्द, सुरभित वायु का सञ्चार;
वेग आंधी का प्रबल, घनघोर धूआंधार।
पंच-वायु-प्रसार है जो प्राण का आधार,
नित्य करते हैं तुम्हारा ही यशोविस्तार॥

(६)

व्योम जो है जगमगाता रात में अत्यन्त,
है न ऐसा और कोई विश्व में द्युतिमन्त।
चित्र हैं सुविचित्र जिसमें, दिव्यवर्ण अनन्त,
वह तुम्हारे स्तोत्र का ही पत्र है भगवन्त !

(७)

विश्व के आरम्भ का है ज्ञात किस को काल ?
पर तुम्हारी वन्दना का नित यही है हाल।
अल्प नर-जीवन; तुम्हारे स्तव विराट विशाल;
फिर करेगा क्षुद्र नर क्या, हो यदपि वाचाल ?

(८)

सुर, असुर, नर, यक्ष, किन्नर, मीन, खग, मृग, नाग,
सब चराचर विश्व के विधि ! भुक्ति-मुक्ति-प्रयाग !
देश में सीखें सभी जन स्वार्थ-सेवा-त्याग;
और हो सब में अचल तव पद-कमल-अनुराग !

तथास्तु।

सत्कविदास।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देहली-दरबार।

जिस देहली-दरबार के लिए महीनों से तैयारियाँ हो रही थीं वह अच्छी तरह समाप्त हो गया। पाठकों ने उसका विस्तृत वर्णन समाचारपत्रों में पढ़ा ही होगा। उसके दुहराने की यहाँ आवश्यकता नहीं। अतएव इस संक्षिप्त विवरण में मैं कुछ ही विशेष बातों का उल्लेख करूँगा। देहली के पश्चिम कोई चार मील के फ़ासले पर राजा-महाराजाओं की छोलदारियों की क़तारें एक विस्तीर्ण मैदान में पहले ही से लग गई थीं। इन की शोभा का वर्णन जितना किया जाय थोड़ा है। राजाओं ने अपने अपने ख़ेमों को शक्ति भर सजाने में ज़रा भी कोताही न की थी। जिनके पास जो जो चीज़ें अमूल्य और दर्शनीय थीं दरबार की शोभा बढ़ाने के लिए उन्होंने उन सबको देहली में उपस्थित कर दिया था। सड़कों की सफ़ाई और बिजली की रोशनी का प्रबन्ध बहुत ही अच्छा था। हज़ारों गाड़ियों और लाखों मनुष्यों के चलने पर भी धूल का कहीं नामोनिशान तक भी नज़र न आता था। राजाओं के कैम्प के पास ही महाराज पञ्चम जार्ज का कैम्प सजाया गया था। इसी कैम्प के निकट सरकार के अतिथियों के कैम्प थे। कुछ दूर पर फ़ौजों के कैम्प थे। सुन्दर सुन्दर बाज़ार और सजी हुई दुकानें भी पास ही थीं। सायङ्काल जिधर निगाह डालिए कोसों तक बिजली की रोशनी जगमगाती नज़र आती थी। "God bless the King Emperor—Long live the Emperor and the Empress" अर्थात् परमेश्वर महाराज और महारानी की रक्षा करें—महाराज और महारानी चिरजीवी हों—इत्यादि वाक्य हर तरफ़ फाटकों पर दिखलाई पड़ते थे। बैंड, नौबत और सङ्गीत की ध्वनि चारों ओर गूँजा करती थी। इन्द्रप्रस्थ इन्द्रपुरी सा बन गया था।

सातवीं दिसम्बर को प्रातःकाल ही से लोग महाराज जार्ज का नगर-प्रवेश देखने के लिए उन मार्गों पर जा डटे थे जिन में महाराज की सवारी निकलने को थी। लाखों रुपये देहली की म्यूनिसपेलिटी ने मचानों की बैठकों के द्वारा वसूल कर लिये होंगे। जिन नगर-निवासियों के कोठे अथवा मकान राजमार्ग पर थे उनके मिज़ाज का तो कहीं ठिकाना ही न था। महाराज की सवारी क़िले से निकल कर जुमा-मसजिद और चाँदनी-चौक होती हुई महाराज के निवासस्थान पर पहुँची। इन सड़कों पर जिधर देखिए मनुष्य-राशि ही दिखाई देती थी। फ़ौजी सिपाहियों की क़तारें, सवारी के रास्ते पर प्रातःकाल ही डट गई थीं। ठीक दस बजे महाराज की रेलगाड़ी देहली पहुँची। पहुँचते ही १०१ तोपों की सलामी हुई। राजाओं ने महाराज का स्वागत स्टेशन ही पर किया। तदनन्तर क़िले में महाराज और महारानी के सम्मान और आधिपत्य की सूचक रस्में अदा की गईं। जुलूस में आगे कुछ सेना और बैंड था। उसके बाद महाराज के शरीररक्षक थे। फिर स्वयं महाराज, महारानी, वाइसराय और भारत-सचिव लार्ड क्रू थे। इन के पीछे इम्पीरियल केडट कोरट की टोली थी। तदनन्तर मर्य्यादा और पदानुक्रम से भारत के रजवाड़े थे। राजाओं की सवारी के साथ, अथवा उनकी बग़ल में, उपस्थित पोलिटिकल रेज़िडेन्टों को देख कर ब्रिटिश साम्राज्य और महाराज पञ्चम जार्ज का सर्वोपरि आधिपत्य दर्शकों के नेत्रों के सामने स्पष्टरूप से आ जाता था। भारतवर्ष के सभी प्रान्तों के राजा और सरदार तरह तरह की पोशाकें पहने हुए महाराज की सवारी की शोभा बढ़ा रहे थे। महाराज अपने वाइसराय और भारतसचिव के साथ घोड़े पर थे, और महारानी गाड़ी पर। अधिकांश दर्शक महाराज को पहचान ही न सके। इस कारण उनको बड़ा रंज हुआ। पत्रों ने इस पर टीका भी की। परन्तु दो ही एक दिन बाद से, जब महाराज अनेकानेक कार्यों के लिए बाहर आने जाने लगे तब, दिल्ली में उपस्थित प्रजामात्र उनके दर्शन कर के प्रमुदित हो गई। जैसे ही लोग महाराज को प्रणाम करते वे तुरन्त ही टोपी उतार कर अथवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सलाम करके उन्हें उत्तर देते थे। राजाओं की सवारी में भोपाल की बेगम साहबा की सवारी भी थी। बेगम साहबा के साथ बग़ल में पोलिटिकल एजन्ट को बैठा हुआ देख दर्शकों को दुःख हुआ। यदि पोलिटिकल एजंट का उनके साथ गाड़ी में बैठना आवश्यक ही था तो उनके सामने वाली बैठक पर बैठना था। बेगम साहिबा की सवारी लार्ड कर्ज़न वाले दरबार के समय की भाँति हाथी पर निकलती तो और भी शोभा होती।

राजाओं के कैम्प में साधारण लोगों का प्रवेश न हो सकता था। अतः लोग बाहर ही से कैम्पों की शोभा देख कर सन्तोष करते थे। राजाओं के दर्शन भी साधारण लोगों को न हो सकते थे। हाँ, महाराज चरखारी और बिजावर के कैम्पों में यह बात न थी। यही कारण है कि देहली में इन राजाओं की कीर्ति साधारण जनों में और राजाओं की अपेक्षा अधिक फैली हुई थी। क्या ही उत्तम होता यदि इन भारतवर्षीय राजाओं के दर्शन लोगों को दुष्प्राप्य न होते।

दूसरे दिन महाराज जार्ज ने देहली में अपने कर-कमलों से अपने पूज्यपाद पिता के स्मारक, एडवर्ड मेमोरियल, की नीव रक्खी। तीसरे दिन पोलो का खेल देखने के लिए पधारे। पुलीस और फ़ौज का निरीक्षण भी किया। रविवार को वे गिर्जे गये। फ़ौजों को नये झंडे देने तथा अन्यान्य रस्मों में भी वे उपस्थित हुए।

दरबार, १२ तारीख़ दिसम्बर की, मध्याह्न में, आरम्भ हुआ। एम्फ़ीथियेटर, अर्थात् वह स्थान जहाँ दरबार लगा था, चन्द्राकार था और बहुत ही सुन्दर बनाया गया था। उसके सामने फ़ौजें थीं और फ़ौजों के आगे दर्शकों के लिए ऊँचे स्थान बनाये गये थे। इस एम्फ़ी-थियेटर के चारों ओर तोपें लगी हुई थीं। एम्फ़ी-थियेटर के भीतर और बाहर चारों ओर नर-समूह का वारापार न था।

एम्फ़ी-थियेटर के बीच में उच्च मञ्च पर सुनहले राजसिंहासन इस तरह रक्खे थे कि लोगों को महाराज के दर्शन सहज में हो जायँ। दरबार के लिए आने जाने के समय भी महाराज की सवारी इस ढँग से निकाली गई थी कि प्रजामात्र को महाराज के दर्शन हो जायँ। एम्फ़ी-थियेटर में भारतवर्ष के राजाओं और सरदारों ने महाराज और महारानी का आधिपत्य स्वीकार करने की रस्म अदा की और यहीं महाराज ने अपने मधुर स्वर से प्रजावत्सलतासूचक मनोहर वक्तृता भी दी।

बादशाही मेले में महाराज ने क़िले के झरोखे में बैठ कर मुग़ल-बादशाहों की तरह प्रजा को दर्शन दिया। देहली को भारत की राजधानी बनाने की नीव भी अपने ही हाथ से डाली। कोई पचास हज़ार फ़ौजों की क़वायद भी देखी। और भी कई एक कार्य्य आपने किये।

१६ दिसम्बर को महाराज देहली से विदा हो कर नैपाल को पधारे और ३० दिसम्बर को कलकत्ते में उपस्थित हुए। कलकत्ते से महारानी सहित आप इँगलैंड लौट जायँगे। पर अपने प्रजावात्सल्य के चिह्न सदा के लिए भारत में छोड़ जायँगे।

एक दर्शक।

सम्राट् के पीयूषपूर्ण वचन और दयादर्शक कार्य्य।

राजा का सबसे बड़ा गुण प्रजारञ्जन है। जो राजा प्रजावत्सल है—जो अपनी प्रजा को प्रसन्न रखने की चेष्टा करता है—वही सच्चा राजा है। महाराज पञ्चम जार्ज में ये गुण हैं। उस साल प्रिन्स आव् वेल्स की हैसियत से जब आप भारत आये थे तब यहाँ से प्रस्थान करते समय आपने बाबू शिशिरकुमार घोष से कहा था—"मैं भारत को न भूलूँगा; मैं उसे भूल भी नहीं सकता। भारतवासियों को मैं सदा याद रक्खूँगा। मैं अपने पिता से कहूँगा कि भारतवासियों को विशेष सहानुभूति की बड़ी आवश्यकता है"। अपने इन पीयूषपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

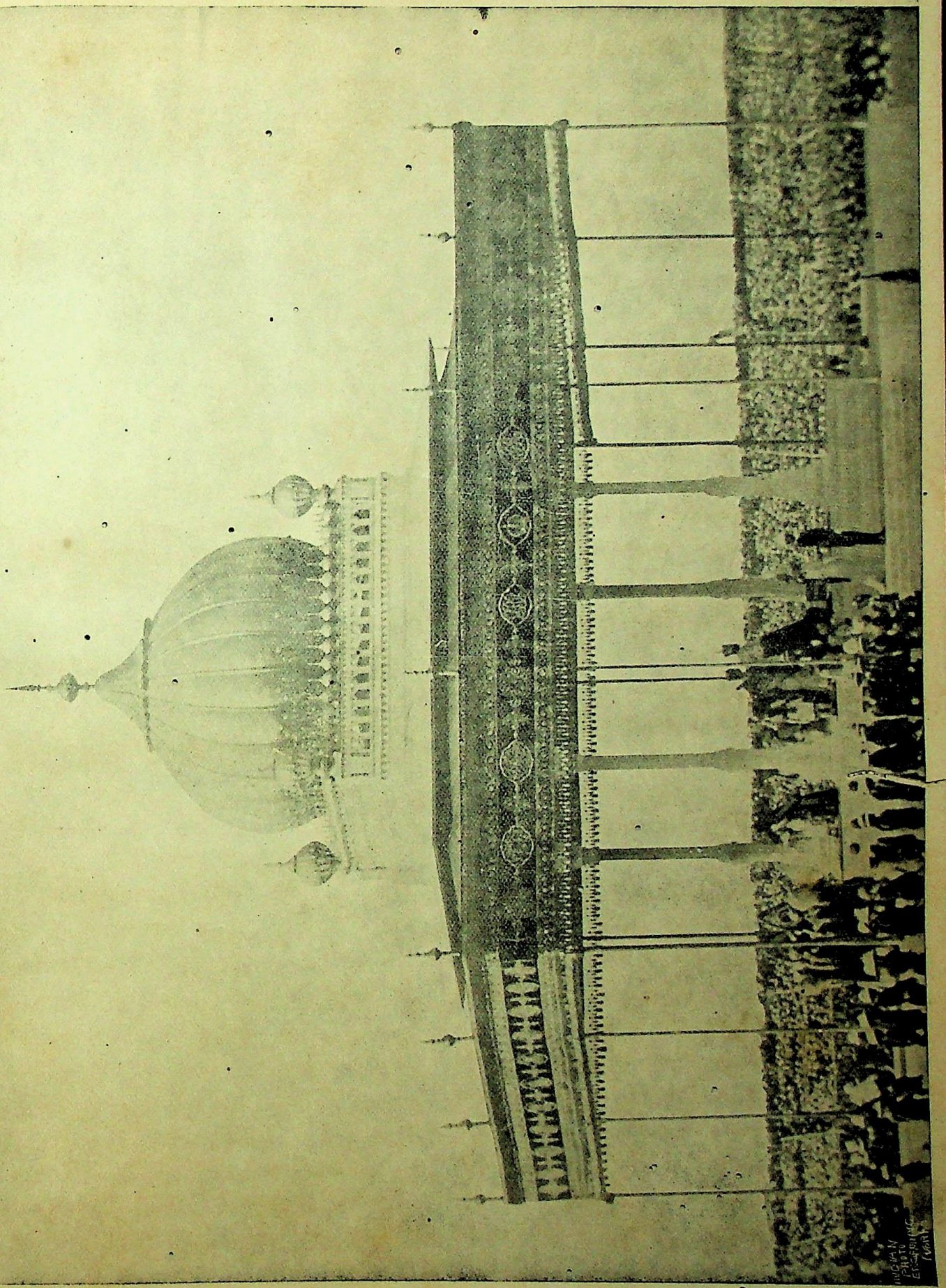

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

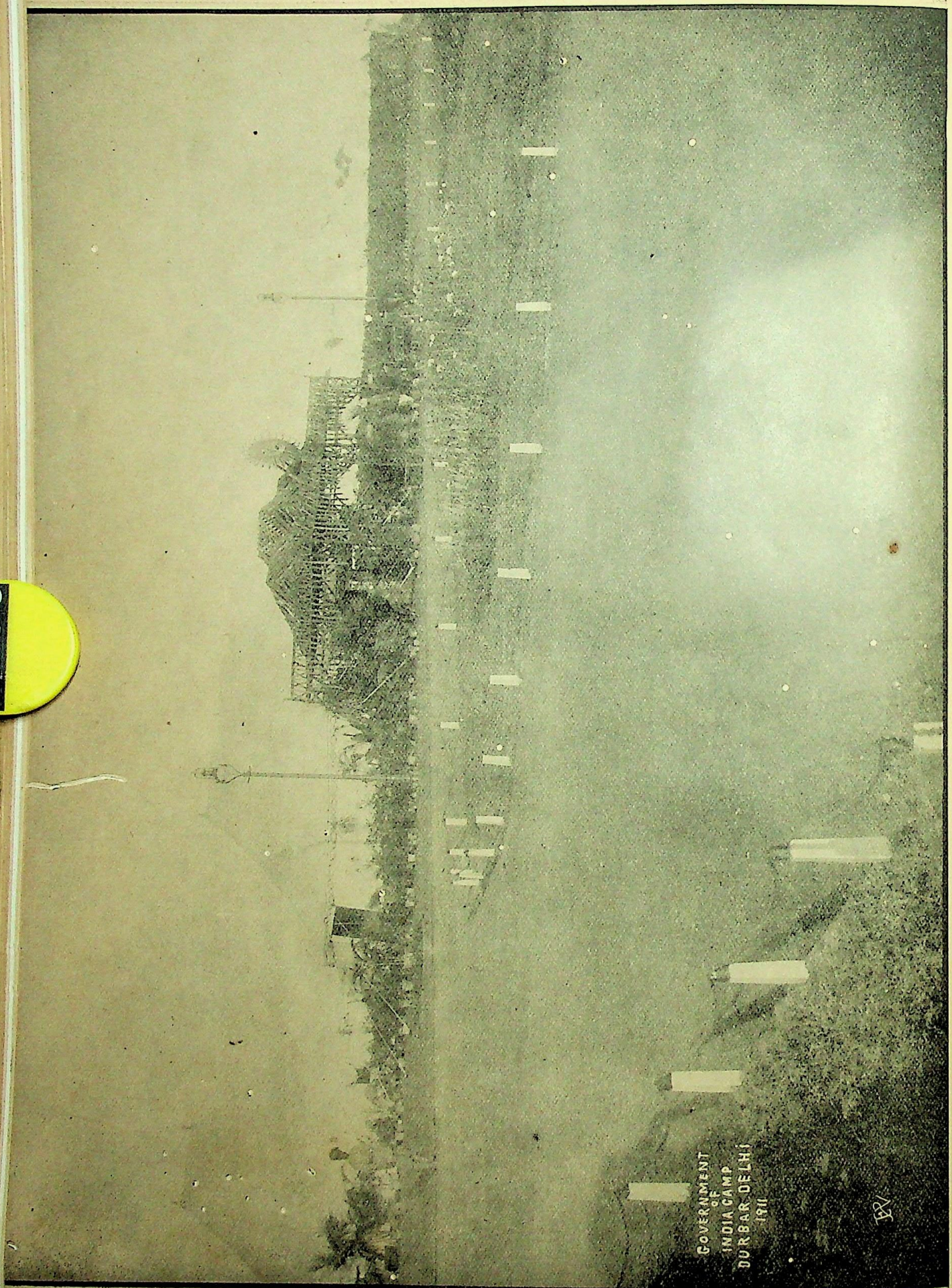

गवर्नमेंट आव् इंडिया का कैंप—देहली-दरबार ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गवर्नमेंट आव् इंडिया का कैम्प—देहली-दरबार ।

महाराज पञ्चम जार्ज फौज को नये झंडे दे रहे हैं । (देहली-दरबार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

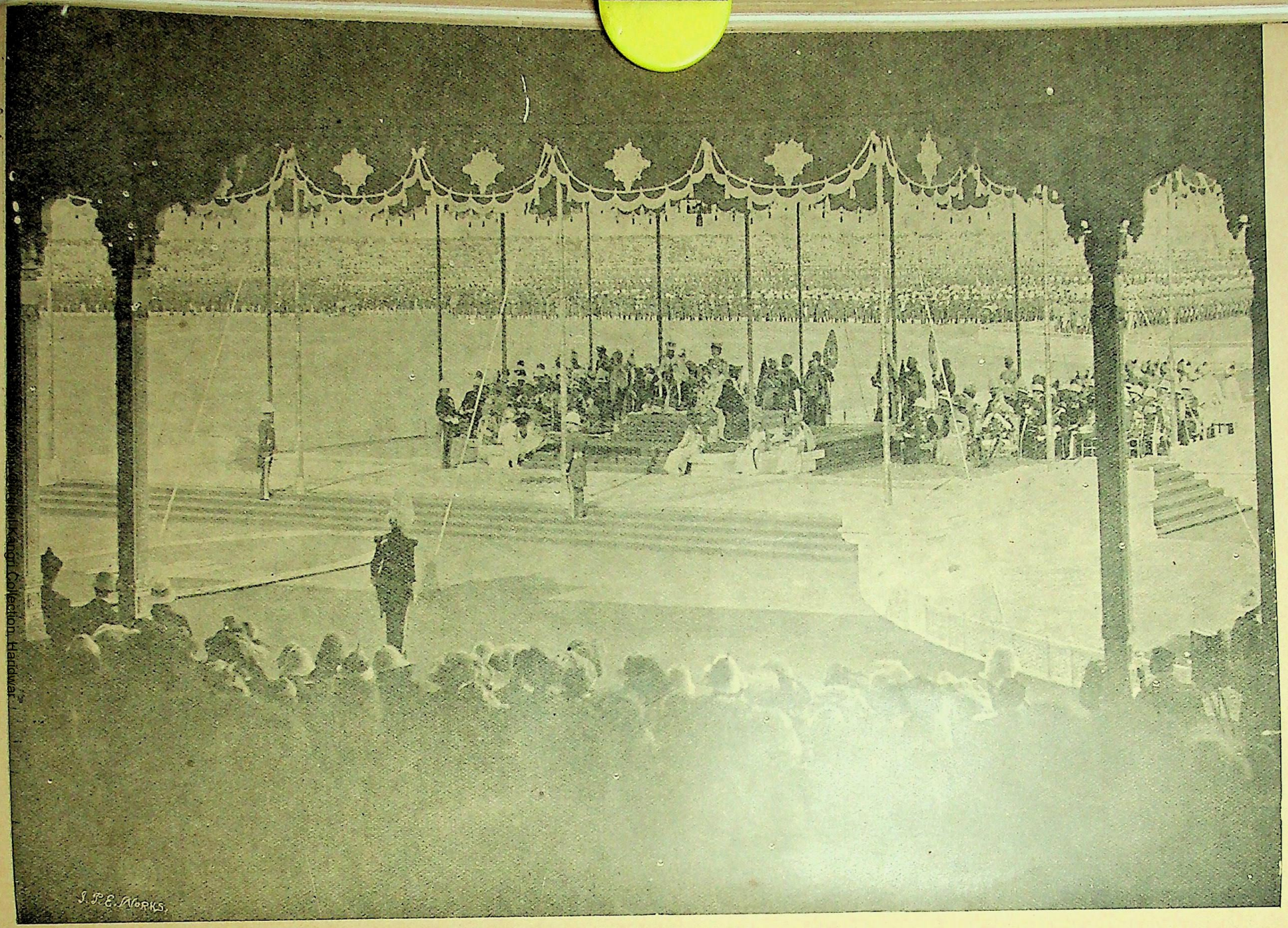

भारतीय नरेश महाराज पञ्चम जार्ज का आधिपत्य स्वीकार कर रहे हैं। (देहली-दरबार)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय नरेश महाराज पञ्चम जार्ज का आधिपत्य स्वीकार कर रहे हैं। (देहली-दरबार)

महाराज पञ्चम जार्ज देहली में राजधानी की नींव रख रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

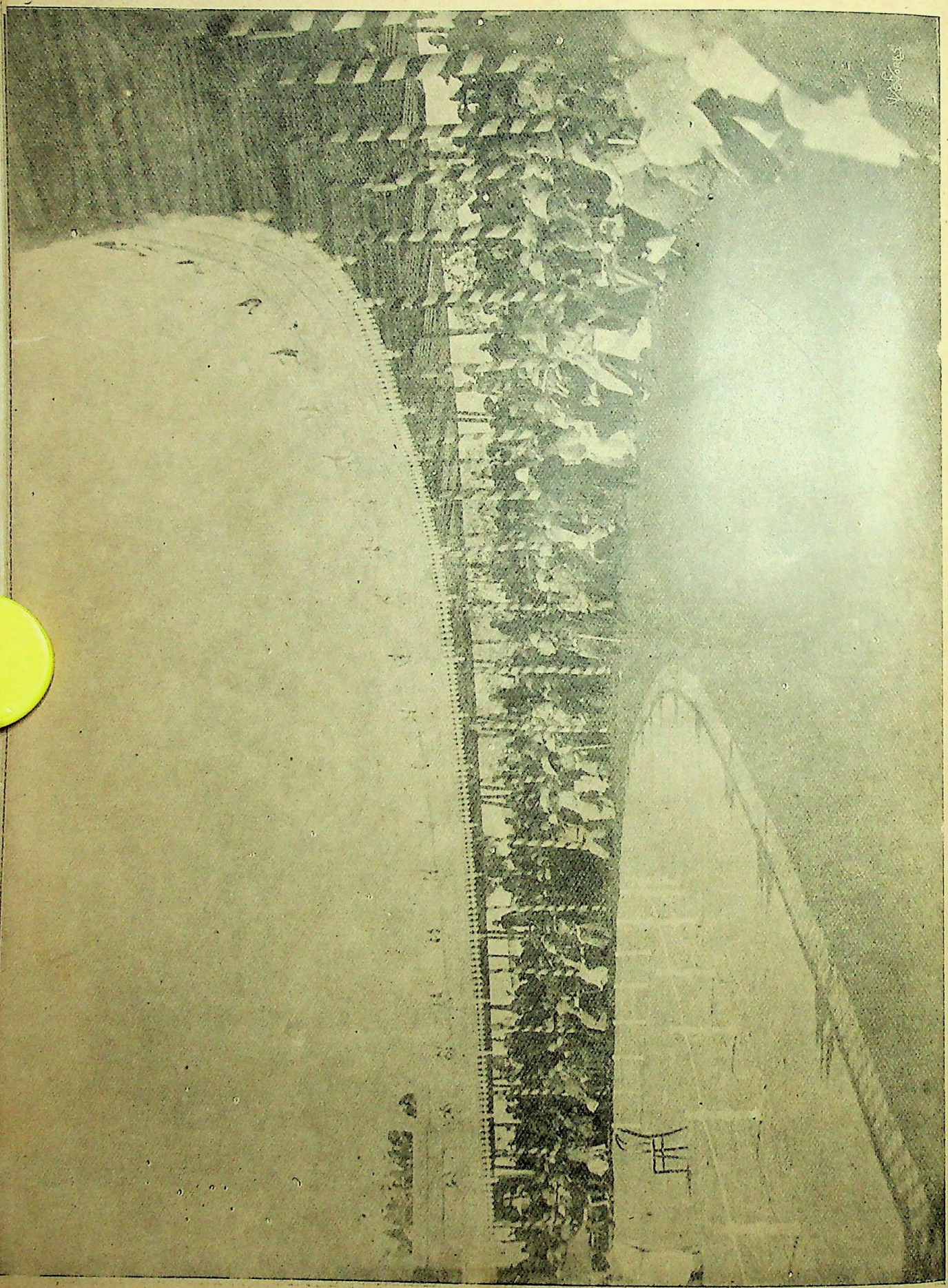

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देहली-दरबार का उच्च मञ्च-स्थल ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

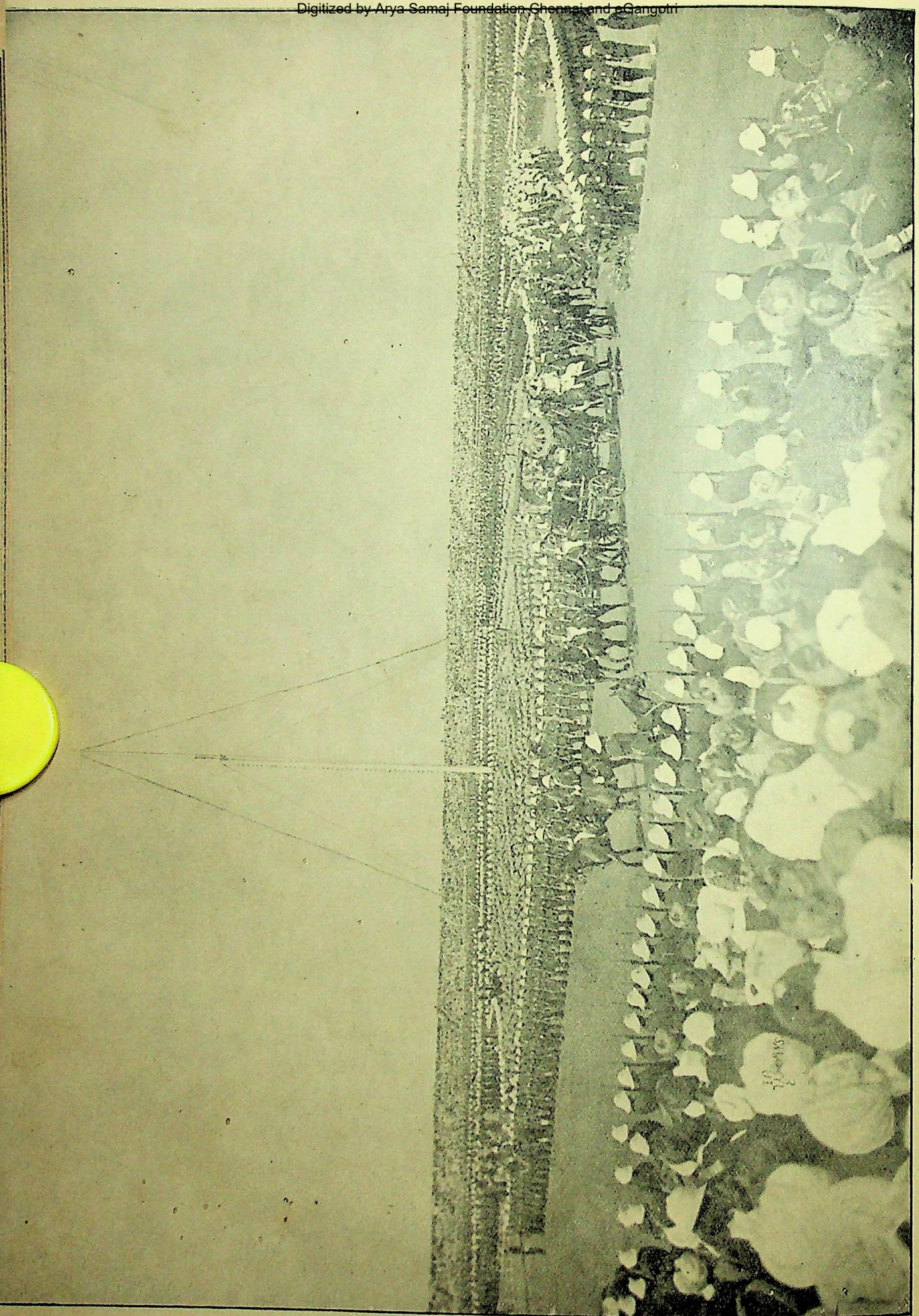

देहली-दरबार का एम्फीथियेटर—महाराज पञ्चम जार्ज का आगमन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल्ली-दरबार का एम्फीथियेटर—महाराज पञ्चम जार्ज का आगमन ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

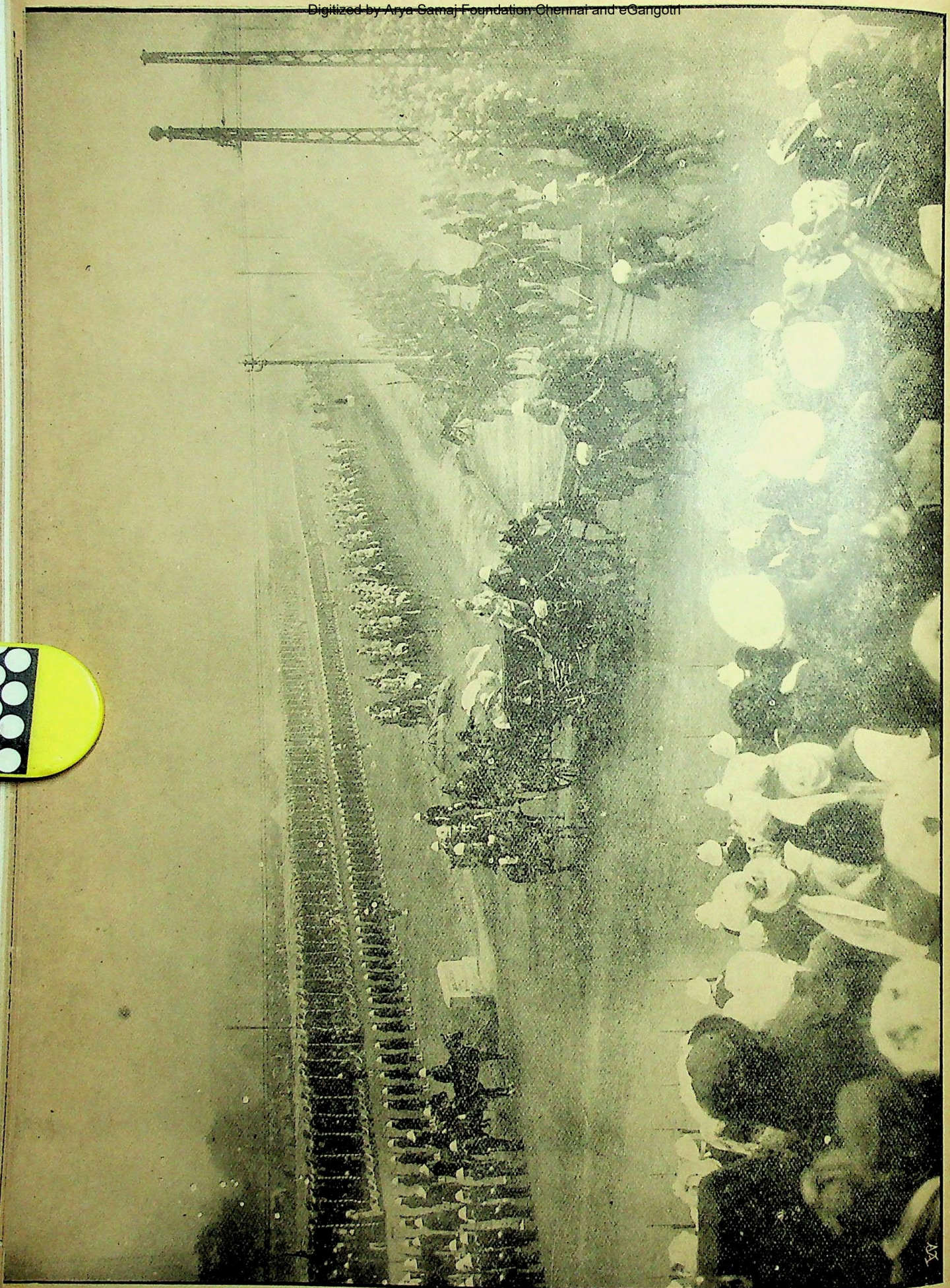

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

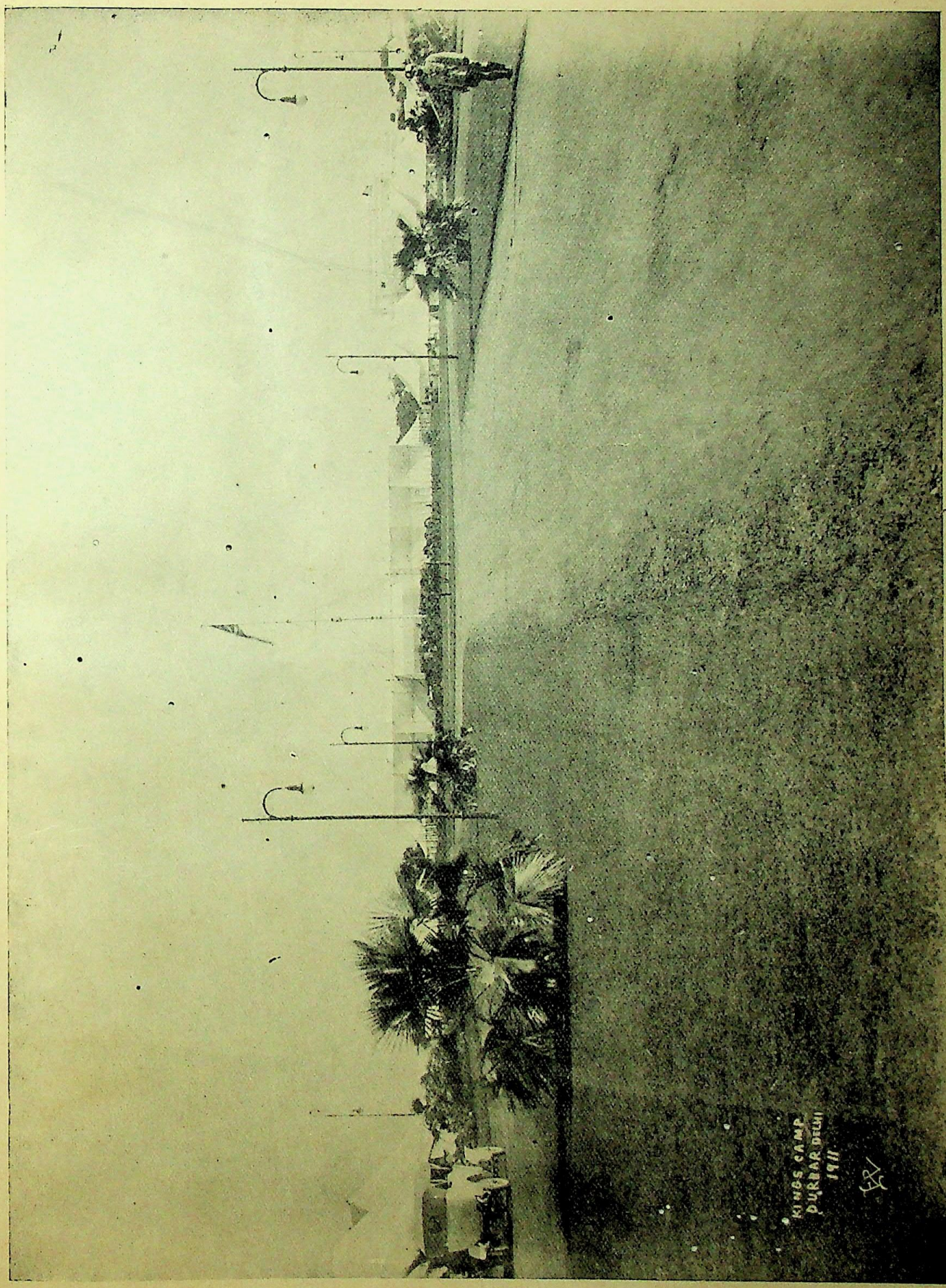

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

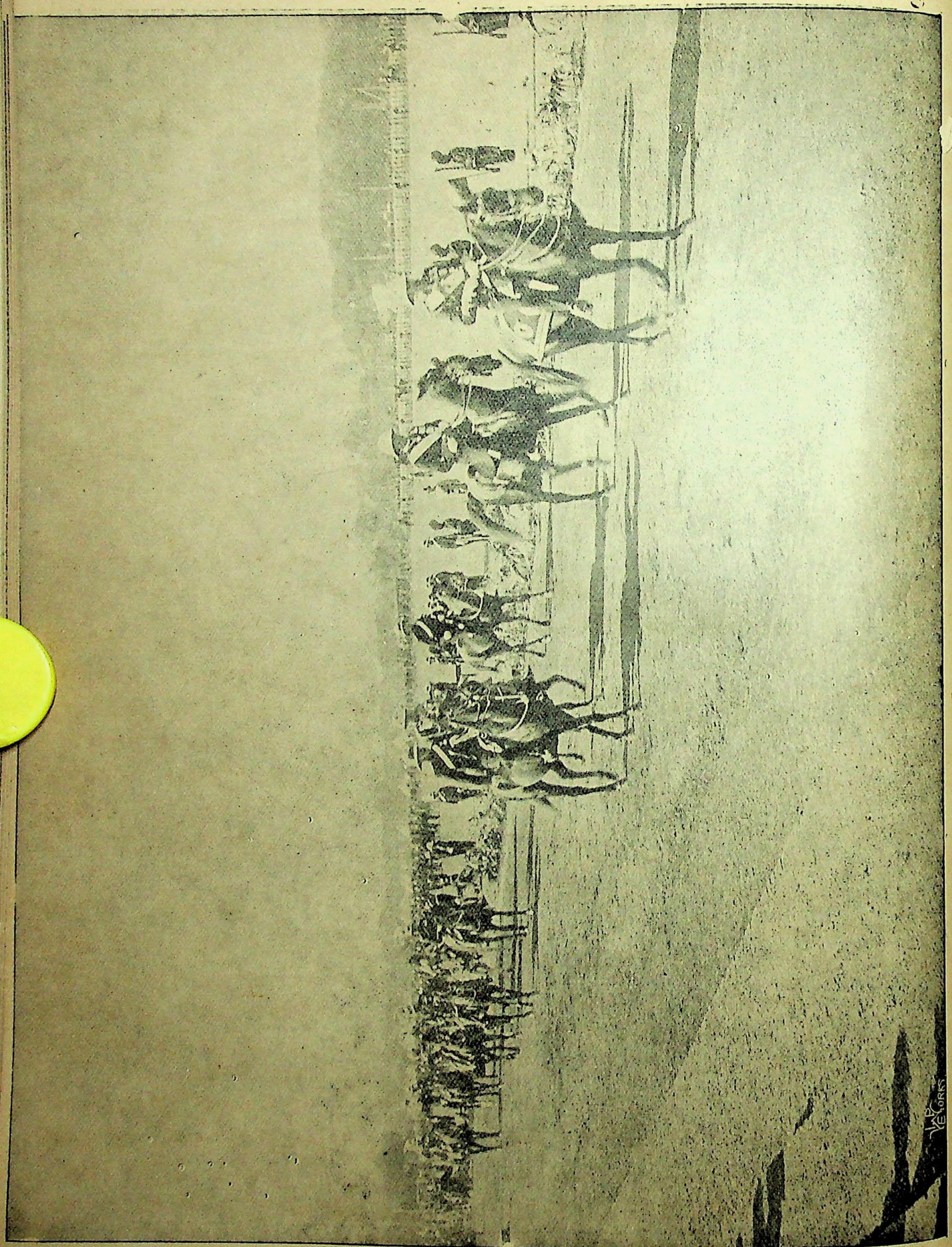

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वचनों का उन्होंने दृढ़ता से परिपालन किया। उन्होंने भारतवासियों का सन्देश तो पिता से कहा ही होगा। उन्होंने इँगलैंड लौटने पर एक बड़ी भारी सभा तक में शिशिरकुमार बाबू की प्रार्थना पूरी की। उन्होंने साफ़ शब्दों में कह दिया कि यदि भारतवासियों के साथ कुछ अधिक हमदर्दी का व्यवहार किया जाय तो भारत के शासन-कार्य्य की कठिनता बहुत कम हो जाय।

२ दिसम्बर १९११ को, बंबई पहुँचने पर, वहाँ की म्यूनिसिपैलटी की तरफ़ से दिये गये और सर फ़िरोज़शाह मेहता के द्वारा पढ़े गये अभिनन्दनपत्र के उत्तर में भी आपने अनेक औदार्य्यदर्शक और प्रजावात्सल्यसूचक बातें कहीं। अपने उत्तर के अन्त में आपने कहा—"परमेश्वर से हमारी यही प्रार्थना है कि वह हमारे भारतीय साम्राज्य पर कृपापूर्ण दृष्टि रक्खे और उसके निवासियों को शान्ति तथा समृद्धि के सुखोपभोग सदा प्रस्तुत किये रहे"। इस बार भी, पहले की तरह, बंबई और देहली में जब और जो कुछ आपने कहा इस ढँग से और इस स्वर में कहा जिससे यह स्पष्ट सूचित होता था कि आपके अभिवचन हृदय के भीतरी भाग से निकल रहे हैं। आपकी वक्तृताओं में कहीं बनावट का नाम नहीं। आपके मुख से हर बात हमदर्दी से भरी हुई निकली।

७ दिसम्बर को, देहली में, नगर-प्रवेश के बाद, भारतवासी प्रजामात्र की तरफ़ से एक अभिनन्दन पत्र सम्राट् को दिया गया। उसका आपने जो संक्षिप्त उत्तर दिया उसमें आपने कहा—"इस अभिनन्दनपत्र के शब्दों ने हम पर बड़ा भारी असर किया है × × × × विश्वास कीजिए, हमारी सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि भारत का साम्राज्य शान्ति, सन्तोष और समृद्धि के मार्ग की तरफ़ धीरे धीरे बढ़ता जाय"।

देहली की म्यूनिसपैलिटी के द्वारा दिये गये अभिनन्दनपत्र के उत्तर के भी अन्त में आपने कहाः—"मेरी यही प्रार्थना है कि जिस साम्राज्य की राजधानी अब देहली है वह सदा शान्ति, समुन्नति, समृद्धि और न्याय का सुखोपभोग करे"। देहली में नई राजधानी की नीव रखते समय भी आपने फिर अपने हृदय की एक मात्र पूर्वकथित कामना को इस प्रकार व्यक्त किया—"कलकत्ते से देहली में राजधानी उठा लाने से, ईश्वर करे, भारत को विशेष लाभ पहुँचे; उसकी सुख-समृद्धि की वृद्धि हो; और उसका शासन पहले से और भी अधिक अच्छी तरह किया जा सके"।

मदरास के अभिनन्दनपत्र के उत्तर में तो सम्राट् ने हद ही कर दी। मानो अपना हृदय निकाल कर उन्होंने दिखा दिया। उन्होंने कहा—"आप लोगों को मैं दृढ़तापूर्वक विश्वास दिलाता हूँ कि मेरी दादी और मेरे माता-पिता भारत को जिस कृपादृष्टि से देखते रहे हैं और उसकी सुख-समृद्धि से वे जितने प्रसन्न होते रहे हैं वह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। मुझे आप इस विषय में उनसे कम न समझें। मैं अपनी भारतीय प्रजा के अभ्युदय का हृदय से अभिलाषी हूँ"।

इस देश में पदार्पण करने के दिन से ही आपने अपने प्रजा-जनों को सुखी, शान्तिभोगी और समृद्धिशाली करने के लिए परमेश्वर से प्रार्थनायें करना आरम्भ कर दिया। उन्हें समुन्नत दशा में लाने के इरादे से की गई अपनी चेष्टाओं का उल्लेख ही कर के आप चुप नहीं रहे। देश-दशा और समय का ख़याल रखते हुए उन्हें आपने कार्य्य में परिणत भी कर दिखाया। जो कार्य्य आपने किये सहर्ष किये। जो वचन आपने मुख से निकाले सहानुभूति-पूर्ण और सदयान्तःकरण के दर्शक निकाले। बात बात पर आपने धन्यवाद दिया। बात बात पर आपने कृतज्ञता प्रकट की। समाचारपत्रों के संवाददाताओं तक को आप नहीं भूले। उनको भी साधुवाद और प्रशंसासूचक वचनों से आप्यायित किया।

१२ दिसम्बर के आपके अभिषेक-सम्बन्धी घोषणापत्र का अनुवाद करने की आवश्यकता नहीं। देवनागरी अक्षरों में उसका जो अनुवाद गवर्नमेंट ने प्रकाशित किया है वही हम नीचे अविकल उद्धृत करते हैं:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराजाधिराज-राजराजेश्वर की तरफ़ से।

शाही इश्तिहार

श्रीमान् महाराजाधिराज-राजराजेश्वर के राज्य में श्रीमान् के राजतिलक की रस्म के हो जाने की सूचना देने के लिये।

श्रीमान् जार्ज पंचम महाराजाधिराज राजराजेश्वर।

जो कि हमने अपने राज्य के पहिले वर्ष में सन् उन्नीस सौ दस ई० की उन्नीसवीं जुलाई और सातवीं नवम्बर के अपने शाही इश्तिहारों के ज़रिये से अपने इस शाही इरादः को ज़ाहिर और प्रकाशित किया था कि सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की कृपा और दया से हम अपने राजतिलक की रस्म सन् उन्नीस सौ ग्यारह ई० की बाईसवीं जून को करेंगे;

और जो कि सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की कृपा और दया से हमने पिछली बाईसवीं जून बृहस्पतिवार को वह रस्म करली है;

और जो कि हमने अपने राज्य के पहले वर्ष में अपने शाही इश्तिहार के ज़रिये से, जो सन् उन्नीस सौ ग्यारह ई० की बाईसवीं मार्च को जारी हुआ था, यह ज़ाहिर किया था कि हमारी यह इच्छा और मरज़ी है कि हम ख़ुद अपनी उन सब प्रेमी-प्रजा पर जो हमारे हिन्दुस्तान के राज्य में हैं यह ज़ाहिर करें कि वह रस्म कर ली गई, और अपने गवर्नरों और लफ्टिनेन्ट-गवर्नरों और अपने दूसरे ओहदादारों को, और उन हिन्दुस्तानी रियासतों के वालियान और रईसों और अमीरों को जो हमारी रक्षा में हैं, और अपने हिन्दुस्तान के राज्य के सब सूबों के मुख्य मुख्य लोगों को अपने हुज़ूर में बुलायें;

इस लिए अब हम, अपने इस शाही इश्तिहार के ज़रिये से, यह ज़ाहिर करते हैं कि हमारे राजतिलक की रस्म हो गई, और हम अपनी महाराजाधिराज और राजराजेश्वर की हैसियत से अपने सब ओहदादारों का और सब वालियान-मुल्क और रईसों का और सब क़ौमों का जो इस वक्त दिल्ली में जमा हैं स्वागत करते हैं, और उन सब को इसका यक़ीन दिलाते हैं कि हम को अपने हिन्दुस्तान के राज्य से गहरा प्रेम है, और हम हर वक्त उसकी भलाई और ख़ुशहाली चाहते रहते हैं और ऐसे ही सदा चाहते रहेंगे॥

यह इश्तिहार हमारे राज्य के दूसरे वर्ष में बारहवीं दिसम्बर सन् उन्नीस सौ ग्यारह ई० को हमारी राज-सभा, मुक़ाम दिल्ली, से जारी हुआ।

परमात्मा महाराजाधिराज—राजराजेश्वर को सलामत रक्खे।

यही घोषणापत्र देहली ही में क्यों, सारे भारत में, सुनाया गया था। इसके पढ़े जाने के पहले, देहली दरबार में, कोई अस्सी हज़ार दर्शकों के सामने, महाराज ने श्रीमुख से जो कुछ कहा था उसका सारांश नीचे दिया जाता है:—

"इस अवसर पर यहां उपस्थित होने में मुझे बड़ा ही सन्तोष हुआ है। जिस परमेश्वर की कृपा से यह घड़ी आज आई है उसे मैं धन्यवाद देता हूँ। इस साल मुझे और मेरी महारानी को अनेक बड़े बड़े रस्मों के कारण बहुत कुछ परिश्रम पड़ा है। तथापि यह परिश्रम सर्वथा सुखदायक था। जिस भारतभूमि को प्यार करने का सबक छः वर्ष पहले हमने सीखा था उसका स्मरण हमें पूर्ववत् बना हुआ है। हम उन बातों को अब भी कृतज्ञतापूर्वक याद कर रहे हैं। बहुत समय बीत जाने और बहुत दूर होने के कारण उसमें अन्तर नहीं पड़ा। यही कारण है जो हम आज फिर आपके यहां उपस्थित हुए हैं। उस साल जितने दिन हम यहां रहे, बड़े सुख से रहे। हमें उस समय यही जान पड़ता था कि हम अपने ही घर में हैं। हमारे साथ हमारी भारतीय प्रजा ने जो बरताव किया वह सर्वथा कृपापूर्ण था। अतएव अनेक बड़ी बड़ी आशाओं और अभिलाषाओं को हृदय में धारण किये हुए हमने इस देश के पुनर्वार दर्शन करने के लिए प्रस्थान किया। २२ जून १९११ को वेस्ट मिन्स्टर एबी में, अपने राज्याभिषेक-संस्कार के समय, स्वयमेव इस देश में उपस्थित हो कर अपनी राज्यासन-प्राप्ति की घोषणा करने के लिए हमने जो विचार प्रकट किया था उसकी आज पूर्ति हो गई।

अपनी महारानी सहित यहां उपस्थित होकर अपनी उपस्थिति से मैं पूर्वोक्त प्रतिज्ञापूर्ति के सिवा यह भी दिखलाना चाहता हूँ कि अपने राजभक्त भारतीय राजाओं तथा साधारण प्रजाजनों को मैं कितना प्यार करता हूँ और भारतीय साम्राज्य को सुखसमृद्धिपूर्ण देखने को मेरा हृदय कितना उत्सुक है। मेरी यह भी इच्छा थी कि लन्दन में जो लोग मेरे राज्याभिषेक-सम्बन्धी उत्सव में शरीक नहीं हो सके वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ देहली में शरीक हो सकें। इस इतने बड़े जनसमूह को देख कर मुझे और महारानी को भी बड़ा ही आनन्द और सन्तोष हुआ है। मेरे गवर्नर, मेरे बड़े बड़े कर्म्मचारी, मेरी फ़ौज के बड़े बड़े अफ़सर, देशी राजे-महाराजे और प्रजा के प्रतिनिधि यहां पर मेरा आधिपत्य स्वीकार करके अपनी राज-भक्ति का जो मुझे प्रत्यक्ष परिचय देनेवाले हैं, वह भी मेरे लिए बड़े सन्तोष और सुख की बात है। इस बात ने मेरे हृदय पर बड़ा भारी असर किया है कि राजा और प्रजा सभी ने, इस अवसर पर, अपनी सच्ची सहानुभूति और हार्दिक प्रेम दिखला कर, मेरी मनोवाञ्छा पूर्ण की है। उनके इस सद्भाव से प्रसन्न होकर, अपने राज्याभिषेक की यादगार के तौर पर, मैंने कुछ विशेष कृपासूचक काम करने का निश्चय किया है। मेरे गवर्नर जनरल आजही उनकी सूचना सब उपस्थित जनों के सामने करेंगे।

अन्त में इस अवसर पर प्रत्यक्ष उपस्थित होकर उन प्रतिज्ञाओं को फिर से नई करने में मुझे परमानन्द होता है जो प्रतिज्ञायें मेरे पूज्य पूर्वज आपके स्वत्वों और आपकी क्षमताओं को सुरक्षित रखने के विषय में आपसे कर चुके हैं। इसके सिवा आपकी शान्ति, सन्तुष्टि और मङ्गलाकांक्षा के विषय में मैंने जो कुछ आज तक सच्चे दिल से कहा है उसे भी दुहराने में मुझे इस समय सविशेष आनन्द होता है। परमेश्वर सदैव मेरी प्रजा को कृपादृष्टि से देखता रहे और उसकी सुखसमृद्धि के लिए मैं जो अपनी पूरी शक्ति भर चेष्टा कर रहा हूँ उसे सफल करने में मेरी सहायता करे। राजा-प्रजा सभी लोग जो यहाँ उपस्थित हैं उनका मैं स्नेहपूर्व्वक अभिवादन करता हूँ"।

इसके अनन्तर लार्ड हारडिंग ने सम्राट् की उन दया-दाक्षिण्य-दर्शक आज्ञाओं को पढ़ सुनाया जिनका उल्लेख सम्राट् ने अपनी वक्तृता में किया था। उनमें से मुख्य मुख्य का सारांश नीचे दिया जाता है :—

(१) सर्वसाधारण में शिक्षा-विस्तार के लिए तुरन्त ही पचास लाख रुपये दिये जायँगे। इसके सिवा भविष्यत् में और भी अधिक उदारता-पूर्व्वक इस काम के लिए रुपया ख़र्च किया जायगा।

(२) जिनकी तनख़्वाह पचास रुपया से अधिक नहीं ऐसे जितने लोग फ़ौज में हैं सबको पन्द्रह दिन की तनख़्वाह पुरस्कार दी जायगी।

(३) शूरतासूचक विक्टोरिया-पदक देशी फ़ौज के अफसरों और सिपाहियों को भी मिला करेगा।

(४) प्रतिष्ठापूर्वक बहुत दिन तक काम करनेवाले देशी फ़ौज के अफ़सरों को या तो जागीरें दी जाया करेंगी या उनकी ज़मीन की मालगुज़ारी माफ़ कर दी जायगी।

(५) गवर्नमेंट के उन मुल्की कर्मचारियों को भी पन्द्रह दिन की तनख़्वाह पुरस्कार दी जायगी जिनकी तनख़्वाह पचास से अधिक नहीं।

(६) जितने महामहोपाध्याय और शम्स-उल्-उलमा इस समय हैं, अथवा जितने आगे होंगे, उनको कुछ पेन्शन मिला करेगी।

(७) भारतीय राजाओं को राजासन पर बैठने पर गवर्नमेंट को जो नज़राना देना पड़ता है वह न देना पड़ेगा।

यह विज्ञापना जब समाप्त हो गई तब, अपनी गाड़ी पर सवार होकर दरबार का स्थान छोड़ने के पहले, सम्राट् ने अपने ही मुख से नीचे लिखे प्रजा-हितकर कार्य्यों की सूचना दी। आपने कहा :—

(१) अब से भारत की राजधानी देहली होगी।

(२) दोनों बंगाल एक कर दिये जायँगे और उनका शासन एक गवर्नर के हाथ में रहेगा।

(३) आसाम के लिए एक अलग कमिश्नर नियत किया जायगा।

(४) विहार, छोटा नागपुर और उडीसा मिला कर एक नया सूबा बनाया जायगा। उसका शासन एक लफ़्टिनेंट गवर्नर के अधीन होगा।

अन्त में सम्राट् ने यह कामना की कि "मैं हृदय से चाहता हूँ कि इन परिवर्तनों के कारण भारत का शासन करने में विशेष सुभीता हो और मेरी प्यारी प्रजा के सुख और समृद्धि की वृद्धि हो"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सो जिस समय से सम्राट् इस देश में पधारे उस समय से ही बराबर अपनी प्रजा की सुख-समृद्धि की वृद्धि ही की कामना करते रहे, और, पूर्ण आशा है, यही कामना करते करते वे इस देश से प्रस्थान भी करेंगे। जिस राजा को अपनी प्रजा के सुख और सुभीते का इतना ख़याल है वही प्रकृत राजा है। सम्भव है सम्राट् का कोई कोई दाक्षिण्य-दर्शक कार्य्य कुछ लोगों के असन्तोष का कारण हुआ हो, अथवा कुछ लोग यह समझें कि सम्राट् से उन्हें जितनी आशा थी उतनी की प्राप्ति नहीं हुई। परन्तु संसार में सबको सम्पूर्ण प्रसन्न करना प्रायः असम्भव है। राजाओं और राजनीति-विचक्षणों के लिए तो सबको प्रसन्न रखना और भी अधिक असम्भव है। अस्तु। इन बातों पर विचार करना सरस्वती का काम नहीं। वह सम्राट् पञ्चम जार्ज के प्रजा-वात्सल्य और प्रजारञ्जक कार्य्यों का हृदय से अभिनन्दन करती है और उनके आदर-सत्कार में प्रजा से यदि कोई त्रुटि हुई हो तो उसके लिए क्षमा चाहती है।

"किसी फल की प्राप्ति के लिए जान तोड़ कर की गई कोशिशें भी यदि बहुधा व्यर्थ होती देख पड़ें—उनसे मनुष्य की यदि कुछ भी भलाई और उन्नति न हो—यह बात सौ में निन्नानवे बार तर्क भी हो सकती है; तो भी सौवीं बार फल ऐसा महत् और आश्चर्यकारी होगा जिसका हमें कभी स्वप्न में भी ख़याल न हुआ होगा और यदि कोई मनुष्य उसकी सत्यता पर भविष्यद्वाणी कर देता, तो हम उसको दुरुस्त दिमाग़ वालों की सीमा के बाहर ही समझते।"

—जान स्टुअर्ट मिल।

"संसार में सफल-मनोरथ होना अपनी शक्ति, अपने पराक्रम, अपने मानसिक बल ही पर अवलम्बित है।"

—अज्ञात लेखक।

अनुवादक, बालकृष्ण शर्मा।

गोण्डाल का राज-परिवार।

(विशेषतः सरस्वती के लिए लिखित)

सूर्य्यास्त हो गया था; परन्तु अभी तक आकाश का एक कोना लोहित-वर्ण था। गोधूलि के कारण पास के पदार्थ तो स्पष्ट दिखाई देते थे, पर दूर के पदार्थ अदृश्य हो गये थे। ऐसी ही सन्धि के समय जब कि भगवान् मरीचिमाली तारागण को अपना अपना प्रकाश भूगोल के एक भाग पर प्रकट करने का अवसर देने के लिए भूगोल के दूसरे भाग की ओर प्रयाण कर रहे थे—हम लोग अपनी गाड़ी को तेज़ दौड़ाते हुए काठियावाड़ के अन्तर्गत और गोण्डाल-राज्य की राजधानी गोण्डाल नगर से चार मील के फ़ासले पर बने हुए एक शिवालय के पास पहुँचे। गोण्डाल-राज्य के अधिपति गाड़ी से नीचे उतरे। गाड़ी इतनी बड़ी थी कि उस पर आठ दस आदमी अच्छी तरह बैठ सकते थे। राजा ने रानी को गाड़ी से नीचे उतारा। फिर वे उनका हाथ पकड़ कर मन्दिर की सीढ़ियों पर चढ़ने लगे। यहाँ उन्होंने अपने जूते उतार दिये और नङ्गे पैर रानी का हाथ पकड़े हुए आगे बढ़े। नान्दी के पास से होकर दोनों महादेव जी की मूर्ति के निकट गये। वहाँ भी रानी का हाथ राजा के हाथ में था। दोनों ने बैठ कर विधिवत् नम्रतापूर्वक शङ्कर को प्रणाम किया। फिर उन्होंने कुछ रुपये चढ़ाये और स्तोत्र पढ़े। तत्पश्चात् गाड़ी पर हम लोगों के साथ बैठ कर वहाँ से चल दिये।

काठियावाड़ के इस राज्य में यह घटना रोज़ होती है। प्रति दिन, सूर्य्यास्त के समय, गोण्डाल-नरेश श्रीमान् ठाकुर साहब श्री भगवत्सिंहजी, जी० सी० एस० आई०, एम० डी०, एफ० आर० सी० पी० ई०, एल० एल० डी०, डी० सी० एल०, एफ०, आर० एस० ई०, एफ० बी० डब्ल्यू० के राज-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

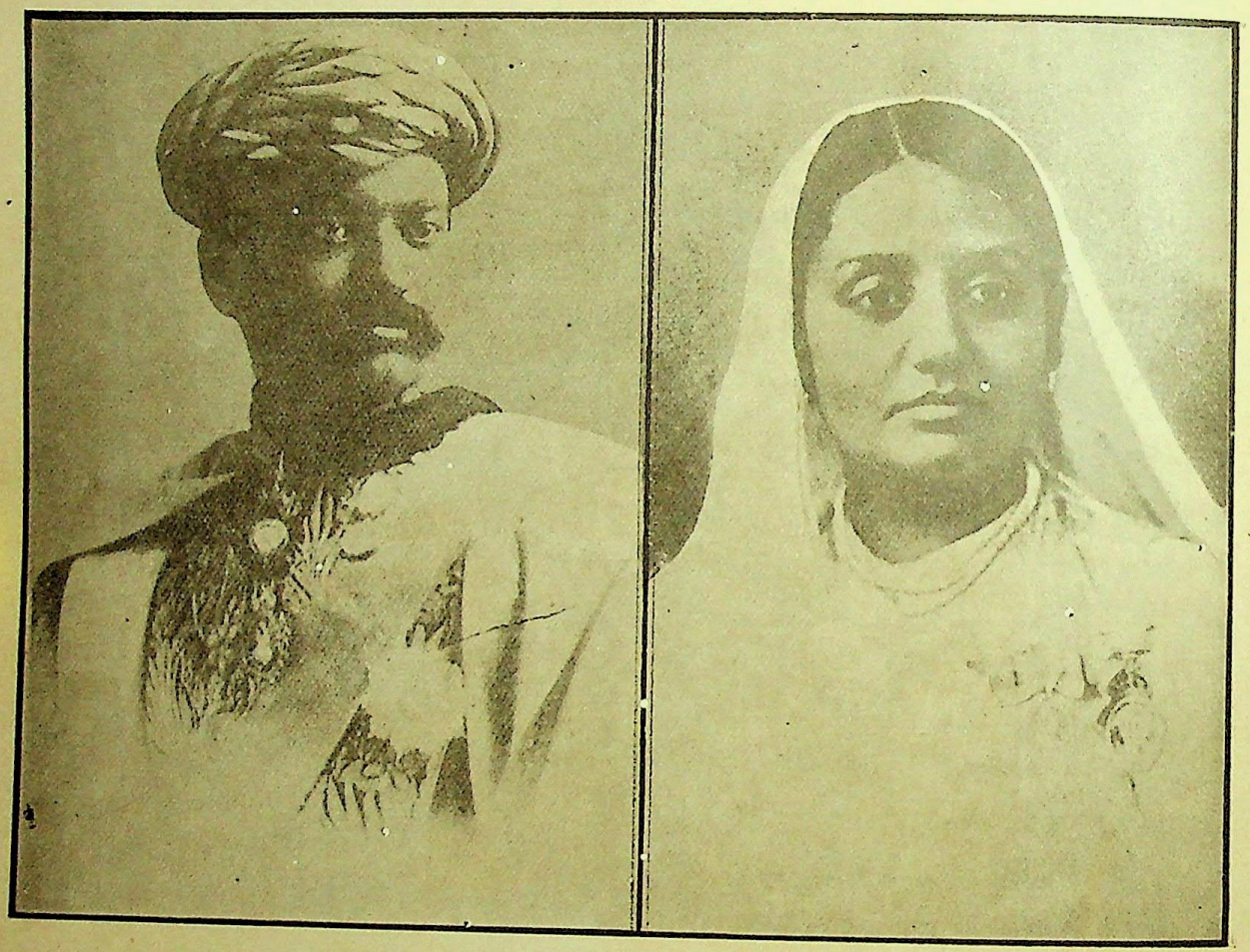

गोंडाल के ठाकुर साहिब श्रीभगवानसिंहजी, जी० सी० आई० ई० इत्यादि ।

गोंडाल की रानी श्रीमती नन्दकुवेरबा ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सरस्वती

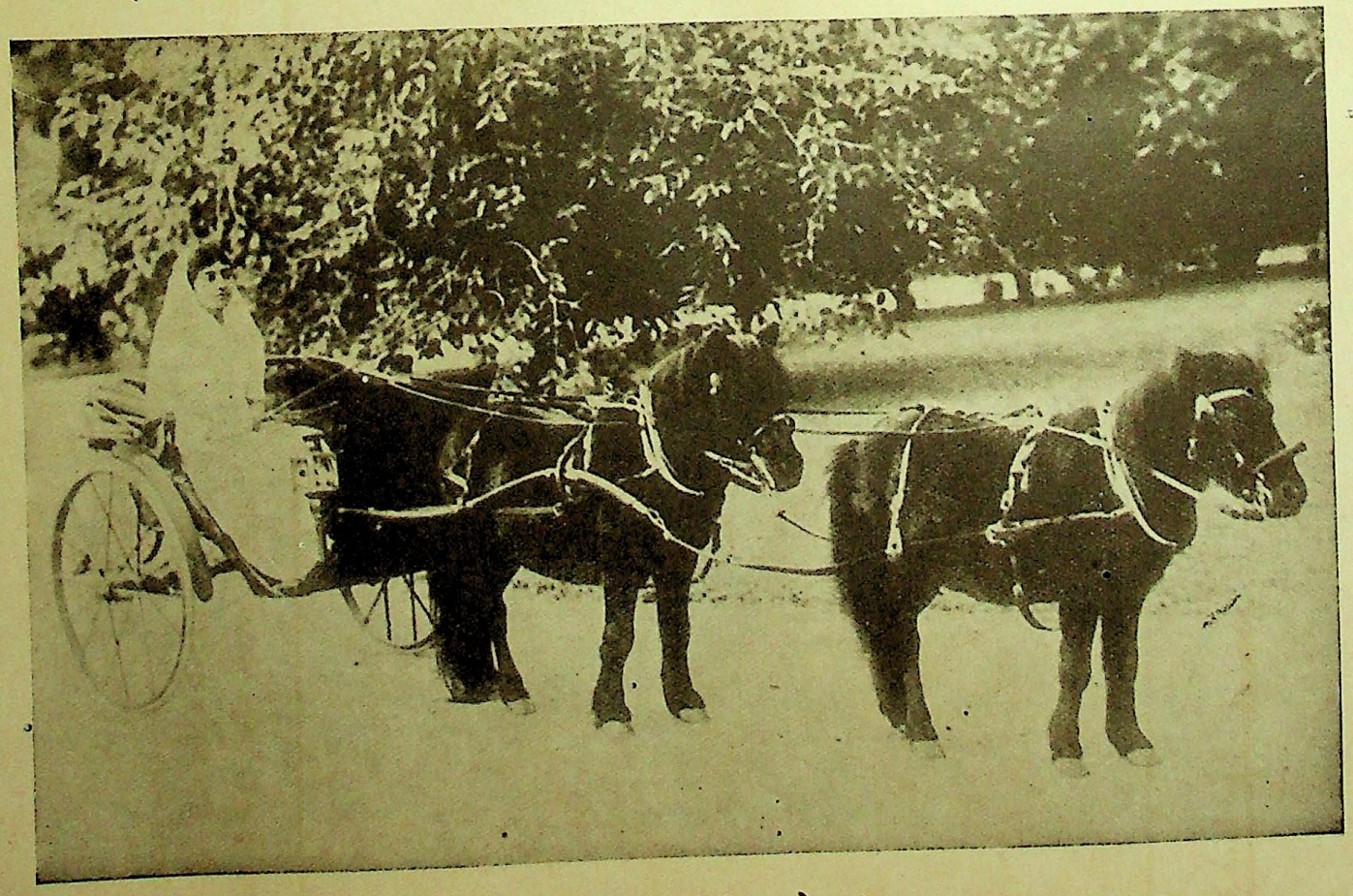

गोंडाल की राजकुमारी बाकुवेरबा ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

गोंडाल की राजकुमारी लीलाबा ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

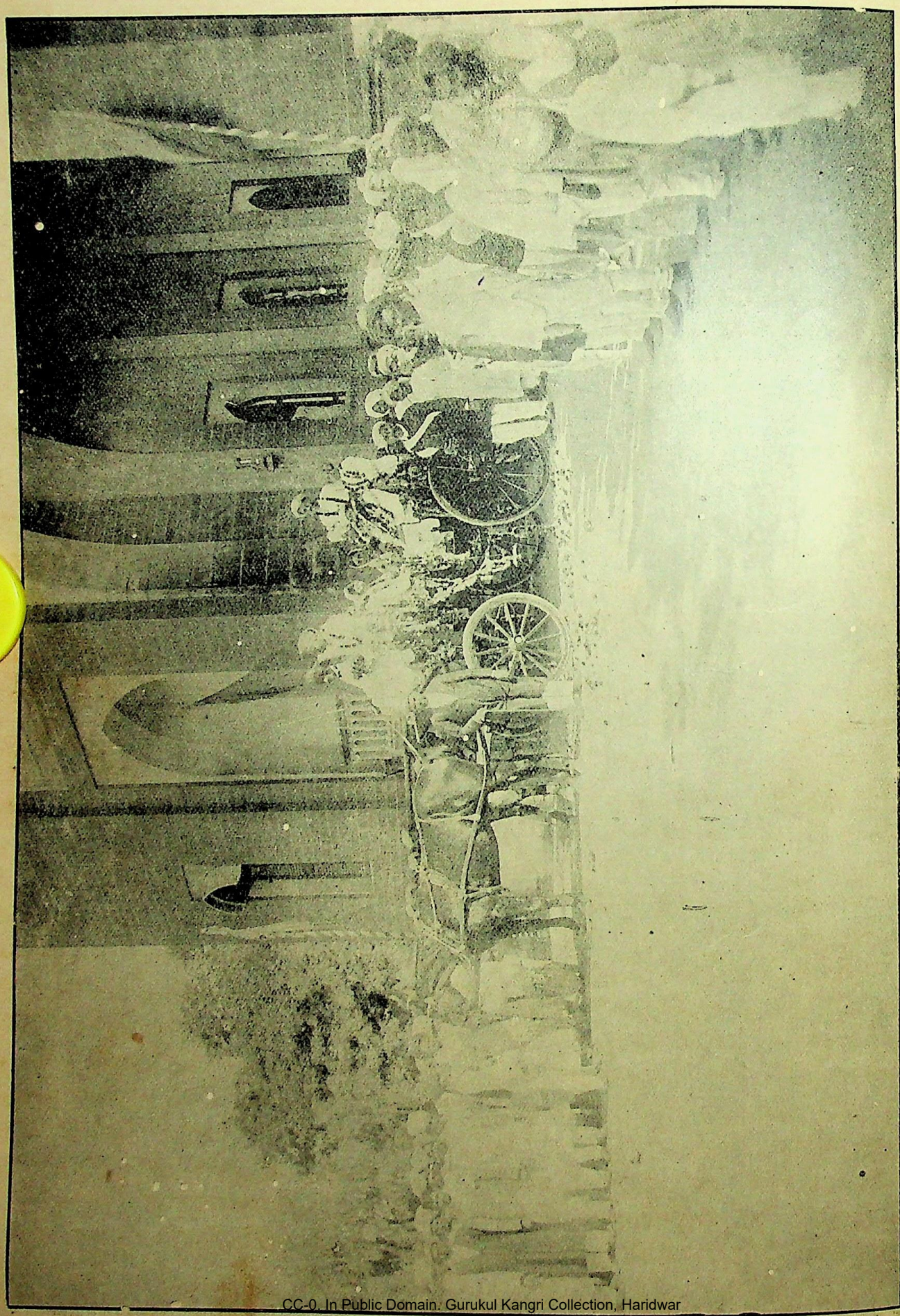

उनकी राष्ट्र-कुबिल के उत्सव के उपलक्ष्य में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महल की ड्योढ़ी पर राज-परिवार की सवारी गाड़ी लाई जाती है। राजमहल में पच्चीकारी का काम अच्छा बना हुआ है; परन्तु अपनी बाहरी सादगी के कारण वह केवल "हुज़र बँगला" के नाम से प्रसिद्ध है। गाड़ी में राजा, रानी, राजकुमारियाँ और निमन्त्रित अतिथि बैठते हैं। पहले औरों को बिठा कर तब ठाकुर साहब स्वयं बैठते हैं। गाड़ी में काठियवाड़ी घोड़े जुते रहते हैं। जब जी चाहता है तब ठाकुर साहब घोड़ों की रास स्वयं हाथ में लेते हैं, परन्तु प्रायः वे ऐसा नहीं करते; क्योंकि वायु-सेवन के समय वे अपने परिवार वालों और मित्रों के साथ बातचीत करना अधिक पसन्द करते हैं। वैसे तो राज्य भर की सड़कें बहुत अच्छी दशा में हैं; तथापि राजधानी के चारों ओर की पक्की सड़कें बहुत ही साफ़ सुथरी हैं।

वायु-सेवन करके नौ बजे रात तक, भोजन के समय पर, वे राजमहल को लौट आते हैं। सब परिवार वाले और निमन्त्रित अतिथि एक गोल मेज़ के चारों ओर, बिना वय और पद का लिहाज़ किये, सब लोग जी चाहे वहाँ बैठ जाते हैं। जब किसी विदेशी को निमन्त्रण दिया जाता है तब भोजन अँगरेज़ी ढँग का होता है। साधारणतः हिन्दुस्तानी रीति के अनुसार भोजन बनाया जाता है। भोजन बनानेवाले रसोइये काठियावाड़-निवासी ही होते हैं। भोजन-शाला के पास ही मुलाक़ात करने का कमरा है। उसमें सब कोई, एक ही कुटुम्ब के लोगों की तरह, स्वतन्त्रतापूर्वक क़हवा पीने के लिए एकत्र होते हैं। गोण्डाल में सर्दी बहुत नहीं पड़ती। इस लिए कमरे को गरम करने की ज़रूरत भी नहीं पड़ती। ग्रीष्म ऋतु में गरमी भी विशेष नहीं होती; थरमामीटर का पारा अधिक से अधिक १०२ डिगरी तक ही चढ़ता है। इस कारण उन दिनों सन्ध्या का समय बहुत सुहावना होता है। जिस रात को गरमी अधिक होती है—और विशेषतः चाँदनी रात में—परिवार वाले, भोजनोपरान्त, गाड़ी पर बैठ कर एक दो घंटे हवा खाने के लिए निकल जाते हैं, या मुलाक़ात वाले कमरे के सामने गेंद खेलने के मैदान में जा बैठते हैं। ठाकुर साहब अतिथि-सत्कार के लिए बड़े प्रसिद्ध हैं। महल की सड़क के उस पार अतिथि-शाला बनी हुई है। उसी में अतिथि ठहराये जाते हैं। जब अतिथियों को सन्ध्या समय निमन्त्रण दिया जाता है तब श्रीमती रानी साहबा, राजकुमारों और राजकुमारियों सहित श्रीमान् ठाकुर साहब, अतिथियों के साथ सामयिक साहित्य, शिल्प, यन्त्रा-कला और समाज-सम्बन्धी विषयों पर आधी रात तक बातचीत किया करते हैं। ठाकुर साहब के परिवार के सब लोगों में एक गुण बड़ा भारी है। उन सबको अपना अपना ज्ञान बढ़ाने की धुन सदा लगी रहती है। उनको ज्ञान-वृद्धि की इतनी चिन्ता रहती है कि जब कभी किसी रात को उनको कोई काम नहीं होता तब वे सब बिजली के प्रकाश में अपनी अपनी रुचि के अनुसार पुस्तकें पढ़ने लगते हैं और कभी कभी इतनी देर तक पढ़ते रहते हैं कि उषःकाल हो जाता है।

गोण्डाल के ठाकुर साहब को आडम्बर पसन्द नहीं। अन्य भारतीय राजा-महाराजाओं की सेवा में कितने ही शरीररक्षक और भड़कीले वस्त्रों से सुसज्जित चोबदार सदा उपस्थित रहते हैं। ठाकुर साहब इन बातों को अनावश्यक समझते हैं। उनके पास एक सेक्रेटरी या लेखक रहता है, परन्तु उससे वे अपना खास काम बहुत ही कम लेते हैं। या तो वे अपना काम स्वयं कर लेते हैं या अपनी बड़ी राजकुमारी बाकुवेरबा से करा लेते हैं। ठाकुर साहब को राजकुमारी बाकुवेरबा से हर काम में बड़ी सहायता मिलती है। राजकुमारी कभी उन्हें मोटर गाड़ी पर बिठा कर घुमाने ले जाती हैं; कभी उनको उनके दफ़्तर के कामों में सहायता देती हैं; कभी वे बाग़ की निगरानी करती हैं; कभी कुछ करती हैं, कभी कुछ। पिता के न मालूम कितने काम वे करती हैं। ठाकुर साहब के पास नौकर चाकर बहुत ही कम रहते हैं। भारत में ऐसे बहुत से राजा हैं जिनकी आमदनी ठाकुर साहब की आमदनी से बहुत कम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु वे सदा मुफ़्ख़ोर ख़ुशामदियों से घिरे रहते हैं; और उनका आडम्बर देखते ही बनता है। ठाकुर साहब के यहाँ इन बातों का पूरा अभाव है। उनके परिवार वालों के कपड़े साफ़ और सुथरे तो होते हैं; परन्तु बेश-क़ीमती नहीं। ठाकुर साहब मलमल की कमीज़ और सूती पाजामा पहनते हैं। घर में वे नङ्गे पैर ही रहते हैं। स्त्रियाँ बहु-मूल्य आभूषणों को पसन्द नहीं करतीं। हाँ, साड़ियाँ वे अच्छी अच्छी पहनती हैं। घर में वे भी मोज़ा और जूता नहीं पहनतीं। बहुत हुआ तो चट्टी (सिलीपर) पहन लेती हैं। उन सबका अन्तःकरण बड़ा शुद्ध है। उनका व्यय बहुत परिमित है। बहुत सी वस्तुओं को, जिन्हें अन्य राजा और रानी अपने लिए परमावश्यक समझते हैं, ठाकुर साहब और उनके परिवार के लोगों ने इस लिए छोड़ रक्खा है जिससे राज्य की प्रजा पर उनके ख़र्च का अनुचित बोझ न पड़े। इस सुखी हिन्दू-राज-परिवार की सादगी प्रशंसनीय है।

ठाकुर साहब के परिवार के लोग जिस सादगी से गोण्डाल में रहते हैं उसी सादगी से वे राज्य के बाहर भी रहते हैं। ठाकुर साहब जब बम्बई जाते हैं तब वे वहाँ एक साधारण जन की तरह रानी और राजकुमारियों के साथ बाहर निकलते हैं। साथ में कोई नौकर नहीं रहता। भीड़ में उन्हें कोई नहीं पहचान सकता कि ये राजा हैं। सादे ही वेश में वे बाज़ार जाते और चीज़ें ख़रीदते हैं। दुकानदारों का यह क़ायदा होता है कि वे अपने ग्राहक को राजा-महाराजा जान कर अपनी चीज़ों के दाम बढ़ा कर कहते हैं। परन्तु ठाकुर साहब के साथ उन्हें ऐसा करने का अवसर प्राप्त नहीं होता।

जिस प्रकार सन्ध्या-समय मनोरञ्जन में व्यतीत होता है उसी प्रकार दिन काम करने में व्यतीत होता है। ठाकुर साहब और परिवार के अन्य लोग प्रातः-काल आठ बजे तक नित्यकर्म्म से निवृत्त हो चुकते हैं। रात को देर तक जागते रहने के कारण प्रातः-काल उठने में कुछ विलम्ब हो जाता है। जलपान के बाद वे अपनी अपनी चिट्ठियाँ और समाचारपत्र खोलते और पढ़ते हैं। दस बजे भोजन कर के सब लोग अपने अपने काम में लग जाते हैं। ठाकुर साहब का दफ़्तर उनके पुस्तकालय में है। वे वैद्यविद्या के बड़े प्रेमी हैं। आप एडिनबरा विश्व-विद्यालय के एम० डी० हैं। इस कारण आपके पुस्तकालय में अन्य विषयों की पुस्तकें तो हैं ही, वैद्यक-सम्बन्धिनी पुस्तकें भी बहुत हैं। दफ़्तर में उनके सेक्रेटरी उप-स्थित रहते हैं। वे उच्च-राज-कर्मचारी भी वहाँ रहते हैं जिन्हें कोई काम होता है। ठाकुर साहब सब कामों को नियमपूर्वक करते हैं। हर एक विभाग के काम के लिए अलग अलग दिन नियत हैं। नियत दिन में वे नियत विभागों ही का काम देखते हैं। कोई बड़ा ही आवश्यक काम आ जाने से उसे बीच में भी देख लेते हैं, अन्यथा नहीं। राजधानी और राज्य के देहातों में भी टेलीफ़ोन लगा हुआ है। टेलीफ़ोन ही से वे कह दिया करते हैं कि किससे किस समय मिलेंगे और क्या काम करेंगे। भगवत्सिंहजी पाँच छः बजे सन्ध्या तक काम करते रहते हैं। बीच में विश्राम नहीं लेते। तीसरे पहर, तीन बजे के समय, एक प्याला चाय का पी लेते हैं।

दफ़्तर के वक़्त उनके राज्य का ग़रीब से ग़रीब आदमी उन से मुलाकात कर के अपना दुख-दर्द कह सकता है। ठाकुर साहब सबकी शिकायतों को ध्यान से सुनते हैं। इसी से बुरे लोग उन से घृणा करते और डरते हैं और सच्चे उन्हें प्यार करते हैं। वे अपने नौकरों पर सख़्त निगाह रखते हैं। कोई नौकर किसी से किसी प्रकार की "बख़शीश" नहीं ले सकता। यदि कोई उनसे मिलना चाहे और नौकर इस बात की ख़बर न दे, या देर से दे, तो वह फ़ौरन ही बर्ख़ास्त कर दिया जाता है। ठाकुर साहब सचमुच ही अपनी प्रजा के पिता हैं। जो उन्हें देखता है उसी के हृदय में यह विचार उत्पन्न होता है कि यदि भारत-वर्ष में कुछ और राजा भी ऐसे ही होते तो बहुत अच्छा होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठाकुर साहब स्वयं राज्य के सब महकमों का काम देखते हैं। वे स्वयं सब काग़ज़ों को बड़े ध्यान से जाँचते हैं। रुपये पैसे से सम्बन्ध रखने वाला कोई काम ऐसा नहीं जो वे स्वयं न करते हों। माल, अस्पताल और तामीर के महकमों के काम मुख्यतः वे स्वयं ही देखते हैं। नक़शों वग़ैरह में जहाँ ज़रूरत होती है वे घटाते बढ़ाते हैं और यथा-शक्ति सब विषयों में सुधार के उपाय भी बताते हैं। हाँ, अदालत के महकमे का काम वे बिलकुल नहीं देखते। यहाँ पर यह कह देना चाहिए कि किसी महकमे का काम न देखने से यह नतीजा नहीं निकालना चाहिए कि उसके कर्मचारी अपना काम अच्छी तरह न करते होंगे। नहीं, ठाकुर साहब इतनी असावधानता कभी नहीं करते। ऐसे महकमों पर भी उनकी नज़र रहती है।

किसी किसी दिन ठाकुर साहब अपने दफ़्तर में काम नहीं करते। उस दिन वे राज्य के दफ़्तरों को देखते फिरते हैं कि उनका काम ठीक ठीक होता जा रहा है या नहीं—किसी प्रकार की गड़बड़ तो नहीं। यथार्थ बात जान लेने में वे बड़े कुशल हैं। वे अपने अफ़सरों से राजकीय कार्य्यों के विषय में ऐसे ऐसे प्रश्न करते हैं कि उन्हें काम की यथार्थ अवस्था का पता शीघ्र ही लग जाता है। वे अस्पताल के कामों को विशेष अनुराग से देखते हैं। वे रोज़ अस्पताल जाते हैं। प्रायः वे अपने सामने ही चीड़ फाड़ का काम कराते हैं जिससे वे देख सकें कि रोगी की चिकित्सा में कुछ कसर तो नहीं रही। स्वयं तो वे चीड़-फाड़ नहीं करते; परन्तु प्रायः सर्जन लोग ऐसे अवसर पर उनसे सलाह अवश्य ले लिया करते हैं जब उन्हें शल्य-चिकित्सा की किसी कठिन समस्या का सामना करना पड़ता है। ठाकुर साहब ने रोगियों के रहने के स्थानों और कमरों की खिड़कियों और झरोखों में कुछ ऐसे कील काँटे लगा रक्खे हैं जिनका खोलना और बन्द करना डाक्टरों और दाइयों ही के हाथ में है, रोगियों के नहीं। ठाकुर साहब देहात में मोटरकार, घोड़े, गाड़ी और रेल द्वारा दौरा किया करते हैं। इससे उन्हें अपनी प्रजा का सच्चा सच्चा हाल मालूम हो जाता है। दुर्भिक्ष के समय दुर्भिक्ष-पीड़ित स्थानों में जा जाकर वे स्वयं प्रजा की सहायता करते हैं।

ठाकुर साहब तो इस प्रकार अपने समय का सद्व्यय करते हैं; रानी साहबा भी अपने समय को अच्छे अच्छे कामों में लगाती हैं। श्रीमती रानी श्रीनन्दकुवेरबा अपनी विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध हैं। भारतीय रानियों में उन्हीं ने सबसे पहले संसार भर की यात्रा की। उन्होंने अपनी इस यात्रा पर एक पुस्तक लिखी है। थोड़े ही दिन हुए, राजकोट में गुजराती साहित्य-परिषद् का अधिवेशन हुआ था। उसमें उन्होंने एक वक्तृता दी थी। उस वक्तृता की धूम देश भर में हुई। उनको अपनी मातृ-भाषा गुजराती, और अँगरेज़ी से बड़ा प्रेम है। वे दिन भर में बहुत कुछ पढ़ डालती हैं। उन्हें सीने-पिरोने और घर के और कामों से भी बड़ा प्रेम है। वे राजकर्मचारियों और प्रजा-वर्ग की स्त्रियों के कष्ट दूर करने और उनको सुख पहुँचाने के लिए सदा यत्नवती रहती हैं। उन्हें वे अपने महल में बुलाती हैं और कभी कभी उनके यहाँ ख़ुद ही जाने में सङ्कोच नहीं करतीं। राज्य की सारी प्रजा उन्हें बहुत चाहती है। वे दयावती और धर्म-निष्ठ हैं। वे समाज-सुधार और स्त्री-शिक्षा के प्रचार के लिए सदा यत्न करती रहती हैं। उन्होंने एक अनाथालय स्थापित किया है। उसका नाम है—"भगवत्-सिंह जी अनाथालय"। वे उसका सारा ख़र्च अपने पास से देती हैं। उसमें राज्य के ८ वर्ष से कम उम्र के सब जातियों के अनाथ लड़के और लड़कियाँ रक्खी जाती हैं। १९०० में घोर दुर्भिक्ष पड़ा था। रानी साहिबा ने उस समय बड़ा काम किया। उन्होंने स्वयं नाना कष्ट सह कर भूखों मरती हुई प्रजा का कष्ट कम किया। उनकी बुद्धिमत्ता और उदारता पर मुग्ध हो कर महारानी विक्टोरिया ने उन्हें, १८९२ में, एक ऊँची पदवी से विभूषित किया।

अब ठाकुर साहब की सन्तति का हाल सुनिए। राजकुमारी ताराबा फ़्रान्स में पढ़ रही हैं। कुमार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूपतिसिंहजी ट्रिनिटी कालेज, केम्ब्रिज, में हैं। कुमार कीर्तिसिंहजी हरो (इँगलैंड) में हैं। और कुमार नटवरसिंहजी जरसी के विक्टोरिया-कालेज में हैं। ज्येष्ठ राजकुमार, युवराज श्रीभोजराजजी, राजकुमारी बाकुवेरबा और राजकुमारी लीलाबा घर पर हैं। युवराज ने इटन और आक्सफ़ोर्ड में शिक्षा पाई थी। दोनों राजकुमारियाँ शिक्षित और कार्य्यकुशल हैं। वे बड़ी नम्र और सुशील हैं। राजकुमारी बाकुवेरबा ने एडिनबरा में शिक्षा पाई थी। गोण्डाल लौट कर उन्होंने बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आव् आर्टस् की सारी परीक्षायें पास कीं। बरौच, इलाहाबाद और नौसारी की नुमायशों में उनके अङ्कित चित्रों और निर्म्मित मूर्तियों की बड़ी प्रशंसा हुई और उन्हें अच्छे अच्छे पदक मिले। बरौच की प्रदर्शिनी में उन्हें अपने ढाँचे के काम के लिए एक अच्छा प्रशंसा-पत्र मिला। उनके इस काम की प्रशंसा बम्बई की आर्ट-सोसायटी की प्रदर्शिनी में भी की गई। वे फ़ोटोग्राफ़ी भी बहुत अच्छी जानती हैं। उन्होंने फोटोग्राफ़ी की भी कितनी ही बाज़ियाँ जीती हैं। वे आजकल अपने पूज्य पिता का एक चित्र (Bust) तैयार कर रहीं हैं। वे एक ऐसा ही चित्र अपनी माता का बना चुकी हैं। ये दोनों चित्र साथ रक्खे जायँगे। वे बड़ी परिश्रमी हैं। उन्हें अपने पिता का दाहना हाथ कहना चाहिए। रात हो या दिन, किसी समय कहीं भी ठाकुर साहब हों, राजकुमारी सदा उनके साथ रहती हैं और उनको हर तरह की सहायता देती हैं। वे प्रायः दो, तीन, या चार छोटे छोटे शेटलेण्ड के टट्टुओं की एक ख़ास टमटम पर बैठ कर कुछ दूर एक छोटे से बाग़ तक जाती हैं; यही उनके मनोरञ्जन का साधन है। राजकुमारी लीलाबा ने गोण्डाल में ही शिक्षा पाई है। वे अपने माता-पिता के साथ इँगलैंड, स्काटलैंड और फ्रान्स घूम आई हैं। इस भ्रमण से उनकी विशेष ज्ञानवृद्धि हुई है। उन्होंने भी वे सब परीक्षायें पास की हैं जो उनकी बड़ी बहन राजकुमारी बाकुवेरबा ने की हैं। उनको भी कितने ही पदक और प्रशंसा-पत्र अपनी चित्रकारी आदि पर मिले हैं। बड़ौच की स्त्रियों की बनाई हुई चीज़ों की प्रदर्शिनी में उन्हें एक पदक और प्रथम श्रेणी का प्रशंसा-पत्र मिला था और बम्बई की आर्टस् सोसायटी की प्रदर्शिनी में भी उन्हें उनके एक तैल-चित्र पर पदक दिया गया था। राजमहल के अहाते में राजकुमारियों के लिए एक छोटा सा पाठालय और चित्रणागार है। विशेषतः वहीं पर वे अपना काम करती हैं। युवराज का विवाह माइसोर की महारानी की छोटी बहन से हुआ है। उनके चार कन्यायें हैं।

जिनको गोण्डाल के राजपरिवार से परिचित होने का अवसर प्राप्त हुआ है उन्हें यह बात स्वीकार करनी पड़ती है कि ठाकुर साहब उसी प्रकार के आदर्श राजा हैं जिनका वर्णन हमारे प्राचीन संस्कृत-साहित्य में है।

सेंट निहालसिंह।

"यदि संसार में हम कोई भी करने योग्य काम करना चाहते हैं तो शीत और भय का विचार कर हमें किनारे पर खड़े काँपते रहना ही न चाहिए; किन्तु कर्तव्य-नदी में कूद कर पूर्ण उद्योग से पार पहुँचना चाहिए।"

—लब्बक।

"हमारी शंकायें ही विश्वास-घातक हैं। वही हमको यत्न करते देख, डरा कर, बहुधा हमारी भलाई का अपहरण करती हैं।"

—शेक्सपियर।

"अत्यधिक की आशा मत करो। थोड़े की आशा करना और उसे ही बहुत मानना सफलता की कुंजी है।"

—गेटे।

अनुवादक, बालकृष्ण शर्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थ-विज्ञान का अभ्युदय।

प्राचीन काल में, जहाँ तक पता चलता है, पदार्थों के विषय में जिस रीति से ज्ञान प्राप्त किया जाता था वह रीति आज कल ठीक नहीं समझी जाती। आज कल पदार्थों के सूक्ष्म निरीक्षण और उनके कार्यों के अवलोकन से यह ज्ञान प्राप्त किया जाता है। प्राचीन काल में यह बात न थी। उस ज़माने में आन्तरिक दृष्टि और अनुमान द्वारा विज्ञान की उपलब्धि होती थी। आज कल उपपादन और प्रयोग के द्वारा यह बात होती है।

विज्ञान के किसी किसी विभाग में यूनानियों ने अद्भुत चमत्कार दिखाया था। यद्यपि वे भी अधिकतर पुरानी ही रीति के अनुयायी थे तथापि उनका पदार्थ-विषयक ज्ञान सर्वथा दूषित न था। पाइथागोरस, अरस्तू, आर्कीमीडीज़, टालेमी इत्यादि यूनानी वैज्ञानिक पुरुषों में सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। इनमें से तीसरे महाशय को तो यदि हम भौतिक विज्ञान का पिता कहें तो अनुचित न होगा।

प्राचीन और आधुनिक विज्ञान के युग में एक समय ऐसा हो गया है जो विज्ञान की रात्रि कहा जा सकता है। १०० ईसवी से १२४० ईसवी तक कोई प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता नहीं उत्पन्न हुआ। अरब में कुछ कुछ विज्ञान का प्रकाश था, परन्तु वह मिथ्या बातों के तिमिर से ऐसा आच्छादित था कि उसका होना न होने के बराबर था।

तेरहवीं शताब्दी में योरप में एक ऐसे पुरुष की उत्पत्ति हुई जो विज्ञान के अभ्युदय का कर्त्ता माना गया। ये पुरुष-रत्न राजर बेकन नाम के विद्वान् थे। इन्हों ने पदार्थों के विषय में ज्ञान प्राप्त करने की आधुनिक प्रथा निकाली। जिस समय ये उत्पन्न हुए उस समय लोगों ने इनकी कुछ भी क़दर न की; वे इनकी योग्यता को जानते ही न थे। अतः इनसे किसी की सहानुभूति न थी। इनकी विद्याही इनका काल हो गई। उसी के कारण ये कारागार में डाले गये थे। विज्ञान का अभ्युदय ठीक इनके २०० वर्ष बाद हुआ।

लार्ड बेकन के २०० वर्ष बाद पुस्तकों के छापने की रीति खोज निकाली गई। इसी समय कलम्बस को अमेरिका का पता लगा। बस यही सोलहवीं शताब्दी का मध्य विज्ञान का अभ्युदय-काल था। इसी समय प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता कोपरनिकस का प्रादुर्भाव हुआ।

अभ्युदय चाहे जिसका हो, सहज में नहीं होता। सूर्य को रात्रि का तिमिर दूर करके निकलने में थोड़ा कष्ट और परिश्रम नहीं उठाना पड़ता। विज्ञान के अभ्युदय-काल में भी बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था।

साधारण मनुष्य इस समय किसी तरह अपना जीवन व्यतीत करते हैं। वे उन अद्भुत दृश्यों के रहस्य से अनभिज्ञ रहते हैं, यद्यपि जीवन-पर्य्यन्त प्रति दिन वे उन्हें देखा करते हैं। वे उनके जानने की परवा ही नहीं करते। नित्य वे सूर्य को उदित और अस्त होते देखते हैं, पदार्थों को ऊपर से नीचे गिरते देखते हैं, और आग जलते देखते हैं; परन्तु उनके मन में यह प्रश्न कभी उत्पन्न ही नहीं होता कि इन सब घटनाओं का कारण क्या है। उनको अपनी इस अज्ञानावस्था ही में आनन्द आता है। जब इस बीसवीं शताब्दी में साधारण जनों का यह हाल है तब प्राचीन काल के मनुष्यों की अज्ञानता का अन्दाज़ा पाठक स्वयं कर सकते हैं।

किसी भी विद्या या विज्ञान के उद्भव के लिए शान्ति की अत्यन्त आवश्यकता होती है। विज्ञान की उत्पत्ति और वृद्धि शान्त स्थानों और शान्त समयों ही में हुई है। अतः हमें ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए कि हम लोगों को इस समय शान्ति प्राप्त हुई है। इस समय चूकने से हम कहीं के नहीं हो सकते।

यद्यपि साधारण मनुष्य अपने जीवन के अद्भुत दृश्यों को समझने की इच्छा नहीं करते, और जब तक उनके जान-माल पर नहीं आजाती तब तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी विशेष बात की कुछ भी परवा नहीं करते; तथापि समय समय पर ऐसे महापुरुष उत्पन्न भी होते रहते हैं जिनकी प्रकृति असाधारण होती है और जो संसार को और ही दृष्टि से देखते हैं। वे संसार को क्रय-विक्रय का एक बाज़ार नहीं समझते, न उसको ऊपर नीचे जाने की एक सीढ़ी ही समझते हैं। वे संसार को एक अद्भुत भावगर्भित वस्तु समझते हैं। उस पर विचार करना और उसके अभिप्राय को समझना वे अपना परम कर्तव्य समझते हैं। साधारण मनुष्य उन पर हँसते हैं; उनको चिढ़ाते हैं; उनको समझाते हैं। हिन्दी-साहित्य के इस अभ्युदय-काल में भी ऐसा हो तो आश्चर्य्य ही क्या? "जानिबो गरो परो"—यद्यपि कवि ने इस वाक्य का और ही मौक़े पर प्रयोग किया है; परन्तु हम इसको अपने नागरी-नायकों के विषय में पूर्णतया चरितार्थ होता पाते हैं। जानने के लिए सताये जाने की मिसाल आप यहीं पावेंगे।

जिन महानुभावों ने विज्ञान का अभ्युदय किया उनकी नामावली में कोपरनिकस का नाम पहला है। सन् १४७३ ई० में ये प्रशिया में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने मनुष्यों के विचारों में जो परिवर्तन कर दिया उसका अन्दाज़ा इस समय लगाना बड़ा कठिन है। इन्होंने यह सिद्ध कर दिया—कि पृथ्वी भी और ग्रहों की तरह ग्रह है, और सूर्य की परिक्रमा किया करती है। इस सिद्धान्त के पूर्व यूरप-वालों का यह विश्वास था कि आकाशस्थित पिण्डों का केन्द्र पृथ्वी है और सारे पिण्ड इसकी परिक्रमा करते हैं। मिश्र, यूनान आदि देशों में तरह तरह के मत इस सम्बन्ध में प्रचलित थे। ऐसी दशा में आप समझ सकते हैं कि इस नवीन सिद्धान्त का कैसा स्वागत हुआ होगा। इतनी बड़ी पृथ्वी अपने समुद्र, पहाड़ और पेड़ों सहित लट्टू की तरह घूमती हुई सूर्य की परिक्रमा करे! यह कैसी बात! यह कदापि सम्भव नहीं!

इस सिद्धान्त के मानने में केवल भौतिक आपत्ति ही नहीं थी; किन्तु धार्मिक आपत्ति भी थी। जब धर्म के संरक्षकों को मालूम हुआ कि यह सिद्धान्त उनके धार्मिक सिद्धान्तों के विरुद्ध है तो उन्होंने उसका विरोध आरम्भ कर दिया। परन्तु यह विरोध कोपरनिकस के जीवन-काल में नहीं हुआ। कारण यह था कि यह सिद्धान्त एक बड़ी मोटी और क्लिष्ट पुस्तक में दबा पड़ा था। दूसरे इसके वेत्ता स्वयं एक धार्मिक पुरुष थे। वे बहुत विचारपूर्वक काम करते थे और अपने विचारों को एकदम नहीं प्रकट कर देते थे। कोपरनिकस अपने इन विचारों को शनैः शनैः वार्तालाप में बरस बर बीस वर्ष तक प्रकाशित करते रहे। इस पर भी जब उन्होंने इनको पुस्तकाकार छपवाया तब पुस्तक को पोप महाराज को (जो ईसाई धर्म के मुख्य संरक्षक समझे जाते थे) समर्पण किया। इस प्रकार धर्म के संरक्षकों ही ने एक ऐसे सिद्धान्त की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया जिसके विरुद्ध दूसरी शताब्दी में उन्हें ही घोर संग्राम करना पड़ा। जिस समय यह पुस्तक छप रही थी, कोपरनिकस को पक्षाघात हुआ और थोड़े ही काल में वे मृत्यु को प्राप्त हो गये। परन्तु सन्तोष की बात इतनी ही है कि मरते समय उनके हाथ में इस पुस्तक की एक छपी हुई प्रति लाकर रक्खी गई, जिसमें वे उसे टटोल कर देख लें और शान्ति-लाभ करें।

कोपरनिकस के बाद केपलर आये। कोपरनिकस ने तो हम लोगों को यह बताया था कि पृथ्वी और सूर्य में परस्पर क्या सम्बन्ध है, तथा इनका अन्य ग्रहों के साथ भी किस तरह का सम्बन्ध है। केपलर ने यह खोजना शुरू किया कि ग्रह कितने हैं, सूर्य से उन ग्रहों की दूरी कितनी है और ये कितने काल में कितनी दफ़े सूर्य की परिक्रमा करते हैं। इन तीनों बातों में कोई पारस्परिक सम्बन्ध है या नहीं? घोर परिश्रम के पश्चात् उन्होंने यह सिद्ध किया कि (१) ग्रह सूर्य के चारों ओर एक दीर्घवृत्त में घूमते हैं और सूर्य उस दीर्घवृत्त की नाभि होता है। (२) जो रेखा सूर्य और ग्रह को मिलाती है वह तुल्यकाल में तुल्यही आकाशीय अन्तराल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Square) में घूम जाती है। (३) प्रत्येक ग्रह की परिक्रमा के समय (वर्ष) का मार्ग (Square) सूर्य से उसके मध्यमान्तर (Mean Distance) के घन (Cube) से एक विशेष सम्बन्ध रखता है।

केपलर का जीवन अधिकतर दरिद्रता और दुःख में व्यतीत हुआ। ये शरीर से बहुत कृश थे।

गेलीलिओ तीसरे प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता थे। इनका जन्म १५६४ ई० में हुआ था। १७ वर्ष की उम्र में ये पीज़ा (Pisa) के विश्वविद्यालय में वैद्यक सीखने भेजे गये। परन्तु इनको गणित से अधिक प्रीति थी। एक दिन ये ईश्वराधना के लिए गिरजाघर गये हुए थे। वहाँ एक नौकर आया और लटकते हुए लैम्प को जलाकर उसे वैसाही झूमता हुआ छोड़ गया। गेलीलिओ ने उसके झोंकों के समय का परिमाण जानना चाहा। पर जानते कैसे? घड़ी उस समय थी ही नहीं। अतएव इन्होंने अपनी नाड़ी की चाल से झोंकों के समय का परिमाण अनुमित किया। उन्होंने यह देखा कि यद्यपि झोंके छोटे होते जाते हैं तथापि उनके समय में अन्तर नहीं पड़ता। कई प्रयोगों से इन्होंने, अन्त को, लंगर (Pendulum) के समगति-रेखात्व (Isochronism) को खोज निकाला। उसी के आधार पर धर्मघड़ियाँ बननी शुरू हो गईं। इससे संसार को बड़ा लाभ पहुँचा। अब सब काम छोड़ कर ये गणित के पीछे पड़ गये और थोड़े ही दिनों में इन्होंने गणित-सम्बन्धी एक दूसरी बात खोज निकाली। वह यह थी कि सब पदार्थ, चाहे वे गुरु हों या लघु, एक ही वेग से, और एक ही समय में, पृथ्वी पर गिरेंगे—हाँ, यदि हम वायु की रुकावट का विचार न करें। पदार्थों को जो हम एकही साथ पृथ्वी पर गिरते नहीं देखते उसका कारण वायु है। यदि वायुरहित स्थान में हम ऊँचे से दो पदार्थों को, जिनके गुरुत्व में अन्तर हो, नीचे डालें तो दोनों एक ही साथ नीचे आवेंगे। स्कूलों और कालेजों के लड़के, जो विज्ञान पढ़ते हैं, इसको अच्छी तरह जानते हैं। गेलीलिओ ने क्रम क्रम से उष्णतामापक यंत्र, दूरदर्शक यंत्र और सूक्ष्मदर्शक यंत्र भी बनाये। उनके द्वारा आकाशीय पदार्थों को वे भली भाँति देख सकने लगे। संसार का जो उपकार इन यंत्रों से हुआ है वह छिपा नहीं है। कितने ही नये नये तारे इन्होंने खोज निकाले। बृहस्पति के उपग्रहों को भी इन्होंने देखा। चन्द्रमा में पहाड़ देखे और उनकी उँचाई का अन्दाज़ा भी लगाया। ज्योतिष-सम्बन्धी ऐसी ही बहुत सी बातें इन्होंने खोज निकालीं।

बस, इस समय से विज्ञानवेत्ताओं पर अत्याचार होना आरम्भ हो गया। हम ऊपर लिख आये हैं कि कोपरनिकस ने सूर्य और पृथ्वी-सम्बन्धी अपने विचारों से संसार में एक विचित्र परिवर्तन कर दिया था। यद्यपि वे, उन कारणों से जिनका उल्लेख भी हम ऊपर कर आये हैं, अपने सिद्धान्तों के लिए सताये जाने से बच गये थे, तथापि दो सौ ही वर्ष बाद लोग इन्हीं सिद्धान्तों के लिए पीड़ित किये जाने लगे। ब्रूनो नाम के एक विद्वान्, इसी कारण से, रोम के कारागार में ६ वर्ष तक रक्खे गये। इस पर भी जब वे सिद्धान्तों का परित्याग करने पर राज़ी न हुए तब आग में जला कर मार डाले गये। गेलीलिओ भी रोम में अपने सिद्धान्तों के कारण बुलाये गये और क़ैद किये गये थे। अन्त में इन्होंने, १६३३ ईसवी में, अपने सिद्धान्तों को छोड़ देने का वचन दिया। तब ये बचे। १६३७ में ये दृष्टिहीन हो गये। यह एक अद्भुत संयोग की बात है कि मिल्टन, जो विलायत के बड़े प्रसिद्ध कवि हो गये हैं और भविष्यत् में स्वयं दृष्टिहीन हो जाने वाले थे, इस समय इनसे मिलने आये थे।

गेलिलिओ १६४२ ई० में मृत्यु को प्राप्त हुए, और न्यूटन का इसी साल विलायत में जन्म हुआ। विज्ञानरूपी आकाश के ये एक प्रसिद्ध तारे होने वाले थे। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक प्रिन्सीपिया, जिसमें इनके विज्ञानसम्बन्धी सिद्धान्त भरे पड़े हैं, १६८७ ईसवी में प्रकाशित हुई थी। विज्ञानसम्बन्धी यह एक विचित्र पुस्तक है। इस समय भी इसका बड़ा मान है। इस पुस्तक के प्रकाशित होते ही न्यूटन पर सम्मान-दान की बौछार होने लगी। सन्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७०३ ई० में ये रायल सोसायटी (Royal Society) के सभापति नियत किये गये और १७०५ में इनको 'सर' की पदवी मिली। १७२७ में इनकी मृत्यु हुई और विज्ञान-सम्बन्धी नाटक के एक दृश्य पर परदा गिर गया।

सरयूनारायण त्रिपाठी।

"बुद्धिमान् कभी बैठ कर अपना दुखड़ा नहीं रोते; किन्तु अपने कष्टों के निवारणार्थ प्रसन्नता से उद्योग करते हैं।"

—शेक्सपियर।

"कठिनाइयों को जीतने, वासनाओं को दमन करने और दुःखों को सहन करने से चरित्र उच्च, सुदृढ़ और निर्मल होता है।"

—लब्बक।

"नया प्रभात हो रहा है। नई नई आशाओं का तुम में सञ्चार हो रहा है। नये नये कर्तव्य तुम्हें सम्बोधन कर रहे हैं। सोनेवालो, जागो! जागनेवालो, खड़े हो जाओ। खड़े होनेवालो, अपना कर्तव्य करने लग जाओ! श्रेष्ठ मातृ-भूमि अपने प्रत्येक पुत्र से भेंट चाहती है।"

—एक जापानी देशभक्त।

"हमें अपने आलस्य को अलग कर, गर्म बिछौने को छोड़, मनुष्य-जीवन को सार्थक करनेवाले कर्तव्यों पर, अन्य जातियों की तरह, जुट जाना चाहिए।"

—एक अज्ञात लेखक।

"हमीं किस लिए चुप खड़े रहें? समस्त भूमण्डल घूम रहा है; ईश्वर की कुल सृष्टि, नक्षत्रादि सभी, अपने अपने कर्तव्य कर रहे हैं। सब चैतन्य हैं। फिर हमीं क्यों बेकार रहें? संसार में मनुष्यों के सिवा और कोई आलसी नहीं। फिर हमारी मनुष्यों में क्यों गणना हो?"

—डीफ़ो।

अनुवादक, बालकृष्ण शर्म्मा।

ज्योतिर्विद्या।

[गोलाध्याय]

(लेखक—साहित्याचार्य पाण्डेय रामावतार शर्म्मा, एम० ए०)

आज से कम से कम पांच चार हज़ार वर्ष पहले भारत के आर्यों में और स्त्रिग्रिव और उत्पथा के दोआब में रहने वाले असुरों में ज्योतिर्विद्या का आविर्भाव हुआ। ज्योतिष-वेदाङ्ग आदि प्राचीन ग्रन्थों से मालूम पड़ता है कि पहले पहल कुछ तो दिक् और काल के निर्णय के लिए लोग तारा-ग्रह आदिकों का निरीक्षण करते थे और कुछ स्वाभाविक कौतुक के कारण भी आकाश में चलने वाली इन दिव्य वस्तुओं की ओर दृष्टि रखते थे। प्राचीनों में बिना घड़ी के समय का निश्चय ताराओं ही के द्वारा होता था। समय का निश्चय न होने से अर्थात् वर्ष, अयन, ऋतु, मास तिथि आदि न जानने से जोतना, बोना आदि सब कामों में गड़बड़ हो सकती थी। रात को समुद्र में या वन में दिङ्-निर्णय, बिना ताराओं की स्थिति के ज्ञान के, नहीं हो सकता था। इन कारणों से चीन, भारत, अजपुत्र आदि प्रदेशों में ज्योतिर्विद्या का विस्तार होने लगा। चीन में शकाब्द से २३७८ वर्ष पहले यव नाम के सम्राट् के आज्ञा-पत्रों से जाना जाता है कि यव से कई हज़ार वर्ष पहले से लोग विषुव का निर्णय कर सकते थे। शक संवत् से २२१४ वर्ष पूर्व चीन वालों ने सूर्यग्रहण का निरीक्षण किया था। शक वर्ष से प्रायः ११०० वर्ष पहले चीन लोगों ने जल-घड़ी आदि कई यन्त्र बनाये थे। १२०२ में कुबलाई खां के राज्य होने के समय के बने हुए लग्न-निर्णय आदि के कई यन्त्र उन्नीसवीं शताब्दी तक वर्तमान थे। अजपुत्रों में पहले लोग ताराओं को पूजते थे। फिर उनका वैज्ञानिक निरीक्षण करने लगे। असुरों में १८ वर्ष ११ दिन वाली गणना के अनुसार पहले ही से ग्रहण-निर्णय की विद्या थी। षड्गुण सम्राट् के लेखों से जान पड़ता है कि उसके राज्य के बहुत पहले से (३८७८ वर्ष शक संवत् के पहले से) असुर लोग ताराओं की निरीक्षा कर रहे थे। क्रम से इन्हीं लोगों में राशियों की कल्पना हुई। 'बृहस्पतिः प्रथमं जाय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानस्त्विष्यन्नक्षत्रमभिसंबभूव' । इत्यादि ब्राह्मण-ग्रन्थों के लेखों से जान पड़ता है कि इन्हीं प्राचीन समयों में नक्षत्र आदि की कल्पना भारत के आर्यों में भी हुई। भारतीयों और असुरों में किन की कल्पना अधिक प्राचीन है, यह निश्चय करना आज अत्यन्त कठिन है। ग्रहों की फिर अपनी पुरानी स्थिति में आ जाने के समय का निश्चय असुरों को हो चुका था—अर्थात् इन्हें यह विदित था कि शुक्र प्रायः ८ वर्ष में, बुध ४६ वर्ष में, शनि २९ वर्ष में, मङ्गल ६९ वर्ष में और बृहस्पति ८३ वर्ष में फिर अपनी पुरानी स्थिति में आ जाते हैं। असुरों के बाद यवनों में ज्योतिर्विद्या गई। स्थलीश, पृथुगौर आदि यवनों ने बाहर से इस विद्या का अभ्यास कर अपने देश में विस्तार किया। अरिष्टार्काचार्य ने शकाब्द से ३५८ वर्ष पूर्व पहले पहल सूर्य-केन्द्रक ज्योतिष का प्रचार करना चाहा; पर अवस्था की प्रतिकूलता से किसीने इस ओर ध्यान नहीं दिया। वेदों में पृथ्वी के गो, ग्मा, ज्मा, क्ष्मा, आदि नामों से यह स्पष्ट विदित होता है कि वैदिक लोग पृथ्वी में नक्षत्रों की सी ही स्थिरता नहीं समझते थे। परन्तु इसकी गति ग्रहों की सी समझते थे। अरिष्टार्क के पहले ऊर्ध्वाच ने शकाब्द से ४८६ वर्ष पूर्व जो भूकेन्द्रक ज्योतिष चलाया था वही कुपर्णिक के समय तक पाश्चात्यों में और आर्य-भट-कृत सूर्य-केन्द्रक ज्योतिष के उपपादन के बाद आज भी भारतीयों में चल रहा है। शक संवत् से ३९६ वर्ष पहले पाटलिपुत्र में आर्य-भट हुए। इनकी स्वतन्त्र सूर्य-केन्द्रक ज्योतिष की कल्पना भी समय की प्रतिकूलता से किसी को स्वीकृत नहीं हुई। यवनों का ज्योतिष अलिकचन्द्रीया पुरी में खूब बढ़ा। अरिष्टार्काचार्य इसी अलिकचन्द्रीया पुरी में बेध आदि करते थे। अष्टमी के दिन सूर्य और चन्द्र के केन्द्रों के कोण के नापने से उनका अन्तर निकालने की विधि इनके ग्रन्थ में दी है। अन्ततः शिफार्क और तुरमय आचार्यों ने वर्ष, मास, ग्रहगति, चन्द्रगति आदि का निश्चय कर पञ्चाङ्ग ठीक किया। भारत में भी आचार्य आर्य-भट के समय तक सूर्य-सिद्धान्त आदि के प्रणेताओं ने पञ्चाङ्ग ठीक किया। तुरमय की प्रणाली सत्तरहवीं शताब्दी में कुपर्णिक तक प्रायः एक आकार की रही। बीच बीच में पाश्चात्य लोग विजयशाली अरब लोगों से ज्योतिष में सहायता पाते रहे। जब तब एक आध नई बातें भी विद्वान् लोगों के द्वारा निकल आती थीं। सोलहवीं शताब्दी में इष्टालय देश में ज्योतिष में तुरमय आदि और दर्शन आदि शास्त्रों में अरिष्टोत्तर आदि की प्रतिष्ठा तोड़ने का प्रबन्ध हो चला था। प्राचीनों के ऋषि गौरव से देखने की बात अब उठ चली थी। प्रत्येक नवीन और प्राचीन बात की परीक्षा होने लगी। इसका फल यह हुआ कि सत्रहवीं शताब्दी में आचार्य कुपर्णिक ने अपनी उपपत्तियों से समूचे प्राचीन ज्योतिष को उलट दिया। सूर्य-केन्द्रक गणित का उपपत्ति-पूर्ण आविर्भाव हुआ। केवल कक्षाओं को दीर्घ-वृत्त न समझ कर उन्हें शुद्ध वृत्त मानने के कारण कुछ अशुद्धियां कुपर्णिक के गणित में रह गई थीं, जिनकी शुद्धि नवतनु आदि आचार्यों के द्वारा हुई। कुपर्णिक के बाद तर्कवराह आदि बेधदर्शक यन्त्रों के निर्माण आदि में, तथा गणित-विषयों में भी, नई उन्नति करते गये। कपिलार्य ने तर्कवराह के निरीक्षित और परीक्षित विषयों को अपनी बुद्धि के महा-यन्त्र में डाल कर ज्योतिर्विद्या के अनेक नियमों को निकाला। ग्रह-कक्षाओं की दीर्घ-वृत्तता का ज्ञान पहले पहल इन्हें हुआ। इन्होंने इस बात का निश्चय किया कि सूर्य-ग्रह कक्षा-वृत्त का केन्द्र नहीं है; किन्तु ग्रह-कक्षारूपी दीर्घ-वृत्तों के दो केन्द्रों में से एक है।

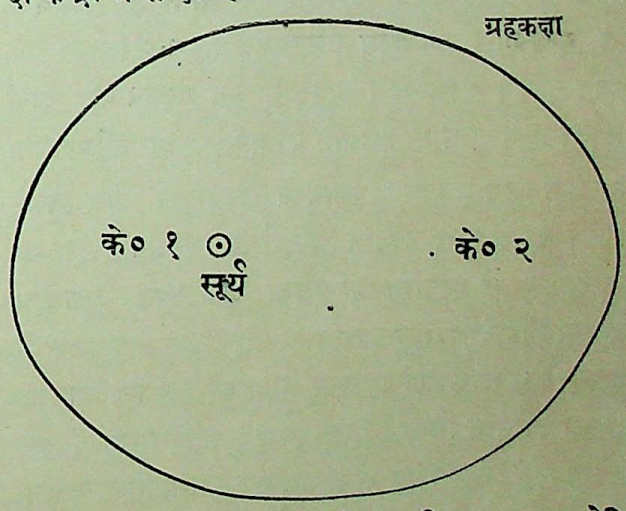

कपिलार्य-निर्णीत ग्रह-गति के तीन नियम आज ज्योतिर्विद्या वालों में सुप्रसिद्ध हैं। इस आचार्य की सारणियाँ आज तक भी काम में लाई जाती हैं। केतुओं को शीघ्र नश्वर समझ कर इसने केतु-कक्षाओं के विषय में अन्वेषण नहीं किया। पाश्चात्यों में इस प्रकार ज्योतिर्विद्या दिन दूनी रात चौगुनी हो रही थी कि इधर भारत में आर्य-भट के बाद से क्रम से इसकी जो अवनति होने लगी सो लल्ल, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, भास्कर आदि के अपूर्व परिश्रम से भी न रुक सकी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भास्कर के साथ ही ज्योतिः प्रभा भी अस्त हो ही गई। उधर पाश्चात्यों में कुपर्णिक के पहले जो कुछ फलित और तन्त्र आदि में श्रद्धा हो रही थी सो अनर्थ से घृणा रखने वाले आचार्यों के परिश्रम से दबने लगी। इसलिए वहाँ असली ज्योतिर्विद्या और रस-शास्त्र आदि की उन्नति कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। इधर भारत में अनर्थ को पूजने वाले, कुकल्पना के उपासक महात्माओं की कृपा से फलित, तन्त्र, योग, सामुद्रिक, स्वरोदय आदि की कुछ ऐसी प्रथा धीरे धीरे आकाश को ठेक रही थी कि प्रश्नकर्ता के कहे हुए फूल के नाम से नष्ट-जातक बनाने वालों के, नामाक्षरों से या हस्त-रेखाओं से कन्या-वर का मिलान करने वालों के, और योगबल से या तन्त्र-बल से जब चाहे सूर्य-ग्रहण आदि घर की कोठरियों में दिखाने वालों के हाथ से सरस्वती माता के ज्योतिष आदि अङ्गों का उच्छेद हुआ तो कौन बड़ी बात है। पाश्चात्यों में कुपर्णिक और कपिलार्य ने ज्योतिर्विद्या की बड़ी उन्नति की। पर कपिलार्य तक यह ख़याल न था कि बिना किसी चलाने वाली शक्ति के द्रव्य चल सकता है। इसलिए इनकी ज्योतिर्विद्या कई अंशों में दुर्बल रह गई। कपिलार्य के समय में गुरुत्व के द्वारा यन्त्र-शास्त्र की बहुत उन्नति हुई। यन्त्र-शक्ति का ठीक स्वभाव गुरुत्व ने समझा। कपिलार्य और गुरुत्व यदि दोनों मिल कर कार्य करते तो ग्रहगति का वास्तव तत्त्व निश्चित होना दुस्तर नहीं था। गुरुत्व के समय में दूरवीक्षण यन्त्र बिकने लगे थे। इनके द्वारा खगोल की निरीक्षा इसने ख़ूब की और खगोल के ज्ञाताओं में इसका दर्जा बहुत ऊँचा है। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चलती है, इस बात का जनों में प्रचार करने के लिए पोप महाशय की कचहरी से इसे आमरण कारावास का दण्ड मिला। इधर दशक्रतु आदि गम्भीर विचार वाले विद्वानों के परिश्रम से बीजगणित, रेखागणित, कलनगणित आदि में ऐसी उन्नति होती गई कि अब तो ज्योतिर्गणित के महाविकास होने में बड़ी सुविधा हो चली। इसी बीच अपूर्व प्रतिभाशाली नवतनु का आविर्भाव हुआ। इसकी परीक्षाओं से आकर्षण-शक्ति का निश्चय हुआ जिससे तारा, ग्रह, केतु आदि की गति का ठीकठीक तत्त्व विद्वानों को विदित हो गया। अब योगबल से सब तारा, ग्रह आदि को चलाने वाले 'यन्ता' की आवश्यकता न रही। नवतनु के बाद ज्योतिर्गणित में बड़े बड़े पाश्चात्य गणितज्ञ उन्नति करते गये। अन्ततः हरिशील, लवकर आदि विद्वानों के परिश्रम से पाश्चात्यों में ज्योतिर्विद्या उस उन्नति पर पहुँची जिसमें यह आज वर्त्तमान है। आज भारत में प्रायः 'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमनात्' पतञ्जलि की इस उक्ति का यह अर्थ समझ कर कि अँधेरी कोठरी में सूर्य-बिम्ब का ध्यान करने से समस्त संसार का ज्ञान हो जाता है—बापूदेव, सुधाकर आदि को छोड़ करोड़ों भारतीय सूर्योदय के बाद भी सोते हुए सूर्य-बिम्ब का स्वप्न देखते जाते हैं; या ग्रह-ग्रहण आदि कृत उपद्रवों की शान्ति के लिए पूजा-पाठ आदि कर रहे हैं; और मान-मन्दिर आदि टूटी फूटी वेधशालायें उजाड़ हो रही हैं। तब तक पाश्चात्य देशों में नवजीव भूमि से हरित भूमि तक सभी स्थानों में सैकड़ों हज़ारों वेधालयों में अनेकानेक बड़े बड़े गणितज्ञ रात्रिंदिव सूर्य, तारा, ग्रह, उपग्रह, केतु आदि का कोणमान, दूरवीक्षण, तैजसरेखादर्शक, चित्रग्राह आदि यन्त्रों के द्वारा निरीक्षण कर असली भुवनज्ञान करके शब्द-ब्रह्म का असली सेवन कर रहे हैं। हाल में भारत के दो बड़े ज्योतिर्विद् (बापूदेव और सुधाकर) सर्वात्मा में लीन हुए। इस समय पाश्चात्यों में लवकर और नवकाम बहुत बड़े ज्योतिर्विद् हैं, जिन के ग्रन्थों से आज समस्त जगत् कृतार्थ हो रहा है।

हम लोगों के चारों ओर, और सिर पर, जो आकाश देख पड़ता है उसका अन्त नहीं है। इस आकाश में अनेक संसार हैं। जैसे समुद्र में अनेक टापू होते हैं वैसे ही इस आकाश में अनेक संसार वर्तमान हैं। उनमें से एक संसार, जिसमें करोड़ों तारायें आदि हैं, हम लोगों को देख पड़ता है। गणित के द्वारा इस संसार का आकार कुछ लोगों ने निश्चित किया है। पर इस संक्षिप्त लेख में इस बात का विचार उपयुक्त नहीं होगा। जैसे आकाश में बिना आधार के तारायें देख पड़ती हैं वैसे ही बिना आधार के पृथ्वी भी आकाश में स्थित है। अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध हुआ है कि पृथ्वी का आकार प्रायः गोला सा है। इसका एक सीधा सा प्रमाण यह है कि समुद्र के किनारे पर से देखने वाले को दूर से समुद्र में आते हुए जहाज़ के केवल मस्तूल का सिरा पहले देख पड़ता है। धीरे धीरे समूचा मस्तूल और जहाज़ के तख़्ते तक देख पड़ने लगते हैं। यदि पृथ्वी चिपटी होती तो जहाँ से सब जहाज़ दृश्य होता है वहाँ से उसके नीचे से ऊपर तक के सब अंश देख पड़ते। भास्कराचार्य ने लिखा है कि इस गोली पृथ्वी के चारों ओर कदम के केसर के सदृश पहाड़,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृक्ष, पशु, मनुष्य आदि वर्तमान हैं। खड़े होने पर सभी के पैर सीधे पृथ्वी के केन्द्र की ओर हैं और सभी का सिर आकाश की ओर रहता है। अब प्रायः पृथ्वी के एक आधे में रहनेवाले पूछते हैं या मन में शङ्का करते हैं कि दूसरे आधे वाले पृथ्वी से गिर क्यों नहीं जाते। पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति से पृथ्वी पर की और आस पास की वस्तु पृथ्वी के केन्द्र की ओर खींची जाती है। यदि कोई अवलम्ब न हो और पृथ्वी में गढ़ा करते जायँ तो सभी केन्द्र में जाकर सट जायँगे। इस आकर्षण-शक्ति को भास्कराचार्य जानते थे और इसका वर्णन उनके सिद्धान्तशिरोमणि में है। जैसे हम लोग पृथ्वी से उड़ कर आकाश में नहीं जाते वैसे ही दूसरे गोलार्ध, अर्थात् अमेरिका आदि, के लोग भी, पृथ्वी पर चिपके रहते हैं। उनके गिरने की शङ्का क्या है कि वे उड़ कर आकाश में क्यों नहीं चले जाते, यह प्रश्न करना है। यह तो सब को विदित है कि भारत, अमेरिका आदि के योगी अँधेरी कोठरी में रबर के तुम्बे के आकार में या दीवार की अलक्ष्य खूँटी के अवलम्ब पर थियेटरों में भले ही उड़ें पर असल में मनुष्य आदि बेपक्ष के जन्तुओं में उड़ने की शक्ति नहीं है। ये तो जैसे ही कूदते हैं वैसे ही पृथ्वी के आकर्षण से धम नीचे आ पड़ते हैं। बात ठीक ही है। यदि एक वस्तु समान आयाम में दूसरी वस्तु अर्थात् जल, वायु आदि से हलकी न हो तो उस वस्तु पर नहीं तैर सकती है। मनुष्य अपने आयाम के वायु से कहीं भारी है। फिर यह हज़ार प्राणायाम करने पर भी कैसे उड़ सकता है।

यदि किसी स्वच्छ रात्रि में अर्थात् जब मेघ, कुहरा आदि का आवरण न रहे तब हम लोग आकाश को देखें तो इसमें पहले तो तीन वर्ग की वस्तु देख पड़ती हैं। सबसे अपूर्व और बड़ी तो एक वह वस्तु देख पड़ती है जिसे लोग चन्द्रमा कहते हैं। अपने वर्ग में यह एक अकेली ही चीज़ है। सन्ध्या-समय चन्द्रमा कभी पूरब में देख पड़ता है, कभी आकाश के बीच और कभी पच्छिम में। बिना यन्त्र की सहायता आँख से देखने वालों को इस वर्ग की और कोई दूसरी वस्तु नहीं देख पड़ती। चन्द्रमा के अतिरिक्त छोटे छोटे हज़ारों उज्ज्वल बिन्दु आकाश में देख पड़ते हैं, जिन्हें लोग तारायें कहते हैं। इस गोलप्राय पृथ्वी पर जहां से देखिए एक आधे की ओर का आकाश और उसकी हज़ारों तारायें आदि देख पड़ती हैं। असल में कितनी तारायें इस संसार में हैं, इसका निश्चय करना कठिन है। पर बिना दूरवीक्षण आदि यन्त्रों के आकाश भर में प्रायः छः हज़ार ताराओं का दर्शन हो सकता है। एक समय आधाही आकाश दृश्य होता है, इस लिए एक स्थान का पुरुष एक बार तीन हज़ार तारायें देख सकता है। आकाश के बीच में चन्द्रमा और ताराओं के अतिरिक्त एक तीसरे ढँग की वस्तु देख पड़ती है, जो प्रायः दक्षिण से उत्तर की ओर जाती हुई सड़क सी है। इसे प्राचीन ग्रन्थों में लोगों ने छाया-पथ कहा है। आजकल इसे आकाश-गङ्गा, रामजी की सड़क आदि अनेक नाम मिले हैं। यह उज्ज्वल कुहरा के सदृश देखने में आता है। मेघों से तारायें छिप जाती हैं; पर इसके नीचे अनेक तारायें देख पड़ती हैं। इससे जान पड़ता है कि यह ताराओं के नीचे कोई मेघ सी वस्तु नहीं है; किन्तु ताराओं के ऊपर कोई और ही वस्तु है। इस प्रकार चन्द्रमा, तारायें और छाया-पथ—यह तीन वर्ग की वस्तु तो आकाश में रात को साफ़ साफ़ देख पड़ती हैं। कभी कभी एक और भी अपूर्व वस्तु हम लोगों की आंखों की पाहुन सी आ जाती है। प्रायः झाड़ू के सदृश मूर्खों को भय देनेवाले केतु, बढ़नी आदि अनेक नामों से प्रसिद्ध बड़े बड़े खेचर बहुतेरों को देख पड़े होंगे। ये रोज़ के देखने की चीज़ों में से नहीं हैं। इन्हें केतु नाम से कहने में ही सुभीता होगा। इस प्रकार अभी तक चार वर्ग के खेचर हमें मिले। पर यदि थोड़ा विचार किया जाय तो स्पष्ट मालूम हो जायगा कि जिन्हें साधारण लोग तारायें कहते हैं उनमें कुछ ऐसी चीज़ें हैं जो ताराओं के वर्ग की नहीं हैं। तारायें तो सूर्य के सदृश प्रति दिन प्रायः अपने ही स्थान पर देख पड़ती हैं और पूरब से पश्चिम की ओर बढ़ती हुई देख पड़ती हैं। पर ताराओं के सदृश उज्ज्वल बिन्दुओं में से कितने ऐसे हैं जो प्रायः अपने स्थान को छोड़ कर इधर उधर होते रहते हैं। जैसे शुक्र, जिसे कितने ही लोग सुकवा भी कहते हैं, कभी सन्ध्या-समय पश्चिम में उगता है और कभी प्रातःकाल पूरब में उगता है। इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि शुक्र आदि कितने ही उज्ज्वल बिन्दु ऐसे भी हैं जो ताराओं के वर्ग के नहीं हैं। पृथ्वी के हिसाब से ताराओं का स्थान प्रायः नियत है। पर शुक्र आदि का स्थान नियत नहीं है। अनियत स्थानवाले इन बिन्दुओं को प्राचीन आर्यों ने ग्रह के नाम से प्रसिद्ध किया है। तारा-वर्गों को प्राचीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों ने वैदिक समयों ही से नक्षत्र कह रक्खा है। नक्षत्र उसे कहते हैं जो अपने स्थान को न छोड़े। ग्रह और नक्षत्रों का भेद समझना बड़े विद्वान् का काम है। इस भेद के समझने से प्राचीन आर्यों की बुद्धि और विद्या की बड़ी प्रशंसा है। आज तो दो चार जोतिषियों के अतिरिक्त बड़े बड़े अँगरेज़ी और संस्कृत जाननेवाले और महा—महा—विद्वान् होने की शेख़ी मारनेवाले भी भारतीय जन इस भेद को प्रायः नहीं जानते। इस प्रकार वस्तुतः हमें पांच प्रकार की वस्तु आकाश में मिलती हैं (१) छायापथ, (२) तारा, (३) ग्रह, (४) केतु और (५) उपग्रह अर्थात् चन्द्र। दिन को हमें सूर्य देख पड़ता है और देखने में अपने ढँग की अकेली चीज़ मालूम पड़ती है। पर आगे दिखाया जायगा कि यह भी एक तारा है। इसलिए इसे ताराओं ही के वर्ग में रखना उचित है। (पृथ्वी के ऊपर कुछ दूर तक वायु-मण्डल है, जो पृथ्वी ही की एक पतली सी बाहरी तह है। इसमें मेघ आदि तैरते रहते हैं। ज्योतिर्विद्या से इनका मुख्य सम्बन्ध नहीं है। पृथ्वी और अन्तरिक्ष के सम्बन्ध में इनका वर्णन किसी और अवसर पर किया जायगा।) आगे की बातों को देखने से जान पड़ेगा कि इन पांचों को इसी क्रम से रखने में सुभीता है। इनके अतिरिक्त उल्का आदि और भी कुछ वस्तु हैं; जिनके विषय में यहां कुछ सामान्य रीति से कहा जायगा।

दूरवीक्षण यन्त्र से देखने से छायापथ में दो अंश मालूम पड़ते हैं। कितनी जगहों में तो पृथ्वी से अत्यन्त दूर होने के कारण ऐसी छोटी छोटी तारायें घनी मिली हुई देख पड़ती हैं जिन्हें सादी आँखों से हम लोग कुहरा के सदृश समझते हैं। पर छाया-पथ के कितने ही खण्ड असल में ऐसे हैं जो स्वप्रकाश तेजोमय द्रव्य के चट्टे हैं। इनमें तेज के कण बड़े वेग से घूम रहे हैं। इस कारण यह द्रव्य सूर्य के समान गरम हो रहा है। कान्त आदि दार्शनिकों और गणितज्ञों की कल्पना है कि ऐसे ही किसी छायापथ के एक खण्ड से सूर्य अपने ग्रह आदि के साथ निकला है। इन लोगों का कहना है कि किसी छाया-पथ का कोई एक खण्ड अपने अंशों के बड़े वेग से भ्रमण के कारण किसी समय टुकड़े टुकड़े हो गया। इसके परिधि यानी बाहरी छाल के टुकड़े तो ग्रहरूप से अलग अलग पिण्डे बँध कर आज भी घूम रहे हैं। जिस प्रकार छाया-पथ से इस सूर्य की सृष्टि हुई, अर्थात् वह निकला, उसी प्रकार छाया-पथ के और और खण्डों से और और तारायें भी निकलीं इन ताराओं के भी अपने अपने ग्रह आदि होंगे। छायापथ उस रूप को ब्रह्माण्ड या सौराण्ड कहते हैं, जो सूर्य और ग्र आदि के निकलने के पूर्व काल में वर्त्तमान था। उसी तेजो सौराण्ड का बच्चा यह सूर्य ब्रह्मा हुआ, जिसे हिरण्यगर्भ अर्थ सोने के अण्डे का गर्भ और मार्तण्ड अर्थात् मरे अण्डे बच्चा भी कहते हैं। सूर्य या तारा असल में ऐसी स्वप्रका वस्तु को कहते हैं जिसकी गति किसी दूसरे सूर्य या तारा अधीन न हो। ग्रहों को सूर्य से प्रकाश मिलता है और इन गति सूर्य के अधीन है। अर्थात् ये सूर्य के चारों ओर पश्चि से पूरब को घूमते हैं। पर ताराओं का प्रकाश अपना ही किसी दूसरी वस्तु से उन्हें प्रकाश मँगनी नहीं लेना पड़ता इन तारा नामक सूर्यों में से सबसे समीप वह वस्तु है दिन को भी देख पड़ती है और जो लोक में सूर्य के नाम प्रसिद्ध है। पृथ्वी से सूर्य एकही दूरी पर बराबर नहीं रहता आगे दिखाया जायगा कि पृथ्वी भी एक ग्रह है। यह और ग्रहों के सदृश सूर्य के चारों ओर चलती रहती है। ग्रह की गति प्रायः कूर्म-पृष्ठ में होती है। दीर्घ वृत्त के दो केन्द्र होते हैं। ग्रहों की कक्षा का, अर्थात् गति-वृत्त का, एक केन्द्र सूर्य है। जब ग्रह इस केन्द्र के समीप आ जाता है तब उस सूर्य की दूरी कम पड़ती है। जब ग्रह दूसरे केन्द्र के समी चला जाता है तब उसकी दूरी अधिक पड़ती है। इसलि प्रायः अन्तर देने के समय ज्योतिषी लोग मध्यम अन्तर के लेते हैं। पृथ्वी से सूर्य का मध्य अन्तर प्रायः एक करोड़ सवा सोलह लाख योजन है। प्रकाश एक विकला अर्थात् एक सेकिण्ड में सवा तेईस हज़ार योजन चलता है। प्रायः पां कला अर्थात् पांच मिनट में प्रकाश सूर्य से पृथ्वी पर आत है। सूर्य के बाद सबसे समीप जो तारा है उसकी दूरी दो शङ्ख योजन (२,००,००,००,००,००,०००) से अधिक है— अर्थात् सूर्य की दूरी से कई लाख गुना अधिक है। पृथ्वी से अत्यन्त दूरस्थ ताराओं का अन्तर तो इतना अधिक है कि उसकी गिनती के लिए अंकों की संज्ञा ही नहीं बनी है। अति दूरस्थ ताराओं का अन्तर इसी से मालूम हो सकता है कि उनसे पृथ्वी तक आने में प्रकाश को पचास हज़ार बरस लग जाते हैं। अब देखिए, सूर्य से तो प्रकाश पांच ही कला में पृथ्वी पर आता है और अति दूरस्थ ताराओं से पचास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हज़ार बरस में—तो सूर्य की दूरी से उन ताराओं की दूरी कितनी अधिक हुई। ताराओं की अपेक्षा सूर्य पृथ्वी से बहुत ही समीप है। समीप क्यों न हो, पृथ्वी तो और ग्रहों के सदृश सूर्य ही का एक बाहरी अङ्ग है। इसीलिए सूर्य से प्रकाश और ताप दोनों पृथ्वी पर आते हैं। इसीलिए सूर्य बहुत बड़ा भी मालूम होता है। असल में इसका आयाम पृथ्वी से साढ़े बारह लाख गुना है। कितनी ही तारायें इसके बराबर और इससे भी बड़ी हैं; तथापि अत्यन्त दूर होने के कारण हम लोगों को ये केवल प्रकाश-बिन्दु सी मालूम पड़ती हैं। दूरी के कारण उनसे पृथ्वी तक केवल प्रकाश ही पहुँचता है। सो भी सूर्य के प्रकाश से जब तक हम लोगों की आँखें चक चकाई रहती हैं तब तक नहीं अनुभव में आता। ताराओं की दूरी से यहाँ ताप का अनुभव होना तो असम्भव ही है।

सुविधा-पूर्वक ताराओं के परिचय के लिए बहुत ही प्राचीन समय से, अर्थात् ऋग्वेद के समय से, या उससे भी पहले से, अनेक वर्गों में ताराओं का विभाग किया गया था। उत्तर ध्रुव के समीप सप्तर्षि नामक एक तारा-वर्ग है, जिसे प्रायः बहुतेरे गँवार भी जानते हैं। इसमें सात बड़ी बड़ी तारायें हैं। आस पास कुछ छोटी छोटी भी हैं, जो प्रायः आसानी से नहीं देख पड़तीं। ऋग्वेद के संग्रह के पहले ही से लोगों ने इसका नाम ऋक्ष रक्खा था। वस्तुतः ऋक्ष भालू को कहते हैं। सप्तर्षि की पश्चिमी चार तारायें भालू के चार पैर कीसी और पूरब की तीन तारायें पूँछ कीसी ऋग्वेद के कवियों के पूर्व-पुरुषों को देख पड़ती थीं। इसी लिए तो अपने समय की जन-प्रसिद्धि के अनुसार ऋग्वेद के कवियों ने इस तारा-वर्ग को ऋक्ष ही कहना पसन्द किया। अजीगर्त के लड़के शुनःशेप ने कहा है—"अमी ये ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह-चिद्दिवेयुः। अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकसच्चन्द्रमा नक्तमेति"। जिस समय ऋग्वेद वालों के पूर्व-पुरुष भारत आदि में पहुँचने के बहुत पहले ध्रुव-प्रदेश में रहते थे और जब तक ध्रुव-प्रदेश में प्रालेय-प्रलय की बाधा नहीं पहुँची थी उस समय उन्हें ठीक ऊपर—सिर पर—ध्रुव और सप्तर्षि देख पड़ते थे। उन्हीं समयों की बातें ऋग्वेद के अत्यन्त पुराने अंशों में जहाँ तहाँ पाई जाती हैं। ऐसे ही प्राचीन अंशों में से यह शुनःशेप की उक्ति भी मालूम पड़ती है। आज कल संस्कृत में ऋक्ष भालू को और सामान्यतः सब नक्षत्रों को कहते हैं; परन्तु वैदिक समयों में ऋक्ष भालू को और केवल सप्तर्षि को कहते थे। सप्तर्षि की सातों ताराओं के नाम भी पीछे ब्राह्मण-ग्रन्थों में मिलते हैं। मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि आदि इनके नाम दिये हुए हैं। शाखा-भेद से नामों में जहाँ तहाँ भेद भी पड़ता है। आकाश में सूर्य जिस रास्ते से चलता हुआ देख पड़ता है उस मार्ग का नाम राशि-चक्र है। इसके बारह टुकड़े किये गये हैं। इन बारह टुकड़ों में बारह तारा-वर्ग हैं। सप्तर्षियों ही के सदृश इनके कल्पित आकारों के अनुसार असुर, यवन और भारतीय आदि ज्योतिषियों ने इन के नाम मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनुर्धर, मकर, कुम्भ, मीन रक्खे हैं। प्राचीन आर्यों ने वैदिक समय से, या उससे भी पहले से, प्रत्यक्ष सौरकक्षा का सत्ताईस नक्षत्रों में विभाग किया था, जैसा कि 'तिष्यं नक्षत्रमभिसंबभूव' इत्यादि उक्तियों से स्पष्ट विदित होता है। अलिकचन्द्र के आने के बाद यवनों से इस कक्षा का बारह राशियों में विभाग भारतीयों को मिला, ऐसा संभव है। यवनों को यह विभाग असुरों से मिला था, ऐसा असुरों की शल्यलिपि की प्रशस्तियों से अनुमान किया जा सकता है। छठी शताब्दी में गणित-विद्या खूब जानने पर भी भारत के दौर्भाग्य से यवनों की फलित-विद्या भारत में लानेवाले वराह-मिहिर ने सत्ताईस और बारह का समलघुतमापवर्त्य निकाल कर एक एक नक्षत्र के चार चार चरण बना कर नौ नौ चरण की एक एक राशि स्थिर की। सूर्य का हेलि नाम भी यवनाचार्यों से लिया। क्रियताबुरि, जितुम आदि राशियों के नाम भी उन्हीं से लेकर अपने नष्टजातक आदि प्रपञ्चों से मनुष्य की बुद्धि नष्ट करने वाले बृहज्जातक को पवित्र किया। इनके बाद इन्हीं के अनुयायी नीलकण्ठ आदि फलित वालों ने फ़ारसी से भी फलित के शब्द मँगनी लेकर अपने ग्रन्थों की शोभा बढ़ाई। इस राशिचक्र से आकाश के दो टुकड़े हो जाते हैं। एक उत्तर खगोलार्ध और एक दक्षिण खगोलार्ध। उत्तर खगोलार्ध के बीच में सुमेरु अर्थात् उत्तर मेरु पड़ता है; और दक्षिण खगोलार्ध के बीच में कुमेरु अर्थात् दक्षिण मेरु पड़ता है। ऊपर कहा गया है कि वस्तुतः सूर्य पृथ्वी के चारों ओर नहीं चलता; पृथ्वी ही और ग्रहों के सदृश सूर्य के चारों ओर चलती है। जैसे लट्टू नाचता हुआ किसी वस्तु के चारों ओर घूमे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैसे ही सब ग्रह नाचते हुए सूर्य के चारों ओर चलते हैं। किसी वस्तु के चारों ओर नाचते नाचते चलनेवाले लट्टू की दो गतियां होती हैं। एक तो अपनी अक्षयष्टि पर घूम जाना है और दूसरी किसी वस्तु के चारों ओर घूमना है। ऐसे ही पृथ्वी तथा और भी सब ग्रह अपनी अक्षयष्टि पर नाचते हुए सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। सूर्य के चारों ओर घूमती हुई पृथ्वी के सिर से केन्द्र को बेध कर नीचे जाती हुई रेखा को अक्षयष्टि या अक्ष कहते हैं। अक्ष के चारों ओर एक बार घूम जाने को परिवृत्ति कहते हैं। और, सूर्य के चारों ओर घूम जाने को परिभ्रमण कहते हैं। इसी अक्षयष्टि के ऊपर के अन्त को सुमेरु कहते हैं, जिसके प्रायः ठीक सामने आकाश में ध्रुव की तारा है। अक्षयष्टि के नीचे का अन्त कुमेरु है। यहीं पर तारा-वर्गों के दो चित्र दिये गये हैं। एक में सुमेरु गोलार्ध के तारा-वर्ग हैं और दूसरे में कुमेरु गोलार्ध के। सुविधा के लिए दोनों मेरुओं के चारों ओर तीन मण्डलों में तारावर्ग दिये गये हैं। चौथे मण्डल में राशिचक्र रक्खा गया है।

क्रम से तारा-वर्गों की सूची—

सुमेरु गोलार्द्ध				कुमेरु गोलार्द्ध		
१ला मण्डल	२रा मण्डल	३रा मण्डल	४था मण्डल	३रा मण्डल	२रा मण्डल	१ला मण्डल
तक्षक	वीणा	गरुड	मेष	महिष	वृत्त	सरट
शिशुमार	जानुग	नरेन्द्र	वृष	वृक	त्र्यस्र	ह्रदाहि
शिफा	मुकुट	भुजङ्ग	मिथुन	वेदि	मयूर	घटिका
	श्वयुग	करिमुण्ड	कर्क	दूरेक्षण	चतुरस्र	सुवर्ण-यष्टि
	सप्तर्षि	सिंहशावक	सिंह	कोटीर	श्येनिका	कपोत
	वनौतु	सूत	कन्या	सिन्धु	सरित्	पोत
	चित्रक्रमेल	पशु	तुला	सूक्ष्मेक्षण	शश	शलाका
	कश्यप	त्रिकोण	वृश्चिक	सारस	शुनक	अष्टास्र
	गोधा	दोला	धनुर्धर	शकुल	त्रिशङ्कु	
	हंस	वाजी	मकर	टङ्क	मुष्क	
	शिवा	अश्वतर	कुम्भ	तिमिङ्गिल	सुपर्ण	
		तिमि	मीन	व्याध		
		बाण		शृङ्गी		
				श्वशिशु		
				शेष		
				चमस		
				काक		

सादी आँखों से देखने में सब तारायें प्रायः एक वर्ण की जान पड़ती हैं। केवल कुछ बहुत बड़ी मालूम पड़ती हैं और कुछ क्रम से छोटी मालूम पड़ती हैं। जो तारायें छोटी मालूम पड़ती हैं उन्हें वस्तुतः छोटी नहीं समझना चाहिए। सम्भव है कि अतिदूरता के कारण वे छोटी जान पड़ती हों। वर्ण भी सब ताराओं का एकसा नहीं है। प्रचण्ड शक्ति के दूरवीक्षण यन्त्रों से देखने पर नीली, पीली, हरी, सफ़ेद आदि अनेक वर्ण की तारायें देख पड़ती हैं। देखने में जैसा परिमाण ताराओं का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालूम पड़ता है उसके हिसाब से लोगों ने ताराओं की श्रेणियाँ बनाई हैं। सबसे बड़ी ताराओं को प्रथम श्रेणी की तारायें कहते हैं। इसी क्रम से द्वितीय, तृतीय आदि श्रेणी की तारायें हैं। श्रीश नामक एक प्रथम वर्ग की तारा मृगशिरा नक्षत्र के पास देख पड़ती है। दूरवीक्षण यन्त्र से देखने से यह भी पता लगता है कि कोई कोई तारा दो या दो से अधिक सदा साथ साथ चलती हैं। सहचारिणी ताराओं में एक प्रकाशमय और उसका साथी प्रायः काला सा होता है। सम्भव है कि काला साथी प्रकाशमय तारा सूर्य का ग्रह हो। पर ताराओं की अप्रमेय दूरी के कारण इस बात का ठीक ठीक पता लगाना बहुत कठिन है।

ताराओं में पृथ्वी से अत्यन्त समीप वह वस्तु है जिसे हम लोग सूर्य कहते हैं। ज्योतिर्विद्या में प्रसिद्ध सूर्य को सूर्य कहने में और तारा-सूर्यों को तारायें कहने में सुविधा होगी। तारा-सूर्य और प्रसिद्ध सूर्य भी वस्तुतः बड़े वेग से आकाश में जा रहे हैं। पर पृथ्वी की अपेक्षा इन्हें स्थिर ही समझना चाहिए; क्योंकि दूरी के कारण साधारणतः इनकी गति का ठिकाना नहीं लगता। जिस सूर्य के चारों ओर पृथ्वी चलती है और जिससे हम लोगों को इतना ताप, वृष्टि आदि मिल रही है और जो पृथ्वीवासियों का जीवनरूप है—यहाँ तक कि जिसकी शक्ति का ध्यान वैदिक ब्राह्मण लोग अपनी गायत्री में किया करते हैं—उस सूर्य के आकार आदि के विषय में आगे कुछ कहना है।

असमाप्त।

साहित्य में संरक्षण-नीति का अवलम्बन।

(गत वर्ष मैमनसिंह के वङ्ग-साहित्य-सम्मेलन में किया गया एक प्रस्ताव)

अँगरेज़ी शिक्षा के प्रसाद से हम लोगों को जो कई एक लाभ पहुँचे हैं उनमें से एक लाभ यह भी है कि हम लोगों की भाषा और हम लोगों के साहित्य की बहुत कुछ उन्नति हुई है। पश्चिम के सभ्य देशों ने अनेक प्रकार की उन्नतियों के जो दृश्य हमारे नेत्रों के सम्मुख उपस्थित किये हैं उनके प्रभाव से हमारा जातीय जीवनही पुष्ट नहीं हुआ, किन्तु जातीय भाषा और जातीय साहित्य को भी एक अद्भुत सौन्दर्य्य प्राप्त हुआ है।

पहले पहल, जब इस देश में अँगरेज़ी शिक्षा का आरम्भ हुआ तब, हमारी मातृ-भाषा ऐसी दशा में न थी कि शिक्षा-पद्धति के सब से ऊँचे आसन पर आसीन होने योग्य समझी जाती। उस समय अँगरेज़ी भाषा और अँगरेज़ी साहित्य की बराबरी करने योग्य केवल थी हमारी संस्कृत-भाषा और उसका साहित्य। परन्तु बँगला भाषा दिन पर दिन उन्नति करते करते अब इस दशा को पहुँच गई है कि बी० ए० की परीक्षा के लिए जो विषय निर्दिष्ट किये गये हैं उनमें इसे भी स्थान देने में विश्वविद्यालय के गौरव की हानि नहीं समझी गई। तथापि अब तक हमारी भाषा की साहित्य-सम्पत्ति इतनी श्रीसम्पन्न और उन्नत नहीं है कि किसी बड़े विश्वविद्यालय की ऊँची क्लासों में परीक्षा-सम्बन्धी सारे विषय केवल बँगला भाषा ही की सहायता से सिखलाये जा सकें। यहाँ पर इस बात के विचार की आवश्यकता नहीं है कि बंग भाषा ही को हमारी प्रधान भाषा समझ कर विश्वविद्यालय हम लोगों को, सभी अवस्थाओं में, उसी भाषा में सारे शिक्षणीय विषय सिखा कर बँगला को हमारी मुख्य भाषा बनने का गौरव देगा या नहीं। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि वर्तमान अवस्था में, इच्छा करने पर भी, बङ्ग भाषा और बङ्ग-साहित्य को हम लोग अपनी सब श्रेणियों की सारी शिक्षाओं के योग्य नहीं ग्रहण कर सकते। इसका एक मात्र कारण हमारे साहित्य का दारिद्र्य और उसकी अयोग्यता ही है। इसी से हमारी भाषा सब तरह की उच्च शिक्षा देने का साधन नहीं हो सकती। यही इस काम में सबसे बड़ा विघ्न है।

बँगला-साहित्य का कोई भी सेवक इस बात को अस्वीकार नहीं कर सकता। परन्तु प्रकृति की सहायता से हम लोगों ने जितना गौरव पाया है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रकृति ही की बदौलत हम लोगों के लिए इस समय जो साधन प्राप्त हैं उनसे हमें अपने कार्य्य-साधन में सहायता लेनी चाहिए। काम करने की हम में जो शक्तियाँ हैं उन्हें उनकी सहायता से बढ़ाना चाहिए। जितनी सामग्रियाँ हमें इस समय प्राप्त हैं उन्हें भी उन्नत करना चाहिए। इन्हीं शक्तियों और सामग्रियों की बढ़ती और विस्तार से अपने दरिद्र और संकीर्ण साहित्य को हमें प्रशस्त और विकसित करना चाहिए। हमें, धीरे धीरे, ऊँचे ऊँचे विचारों और भावों को प्रकट करना और उन्हें यथाविधि लिख कर पुस्तकों में परिणत करना चाहिए। भिन्न भिन्न साहित्य-सेवी, समयानुसार, अपने अपने उद्योग इस विषय में पृथक् पृथक् कही रहे हैं। परन्तु इस काम को उन्हीं पर छोड़ कर हमें चुप बैठ रहना उचित नहीं। इस समय हमें राज-नीति-कुशल पण्डितों का अनुसरण करना उचित है। आवश्यकता होने पर जिस तरह वे रक्षण-नीति का अवलम्बन कर के मूर्खों को पण्डित और निर्धनों को धनी बनाने का यत्न करते हैं, उसी तरह हम लोगों को भी रक्षण-नीति की सहायता से साहित्य-सेवियों के उद्योग को प्रवर्द्धित करके अपने प्राकृतिक कार्य में शीघ्र सफलता प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। हमें यह सोचना चाहिए कि किस उपाय के अवलम्बन से कितने दिनों में हमारा साहित्य विश्वविद्यालय की सब से ऊँची श्रेणियों में स्थान पाने योग्य हो सकेगा। अर्थात् विज्ञान, दर्शन, इतिहास इत्यादि गम्भीर शास्त्रों के गहन ग्रन्थ जैसे फ्राँस, जर्मनी और इँगलैंड आदि की भाषाओं के साहित्य में हैं वैसे ही हमारे साहित्य में भी किस उपाय से कितने दिनों में उत्पन्न हो सकेंगे। इस बात के विचार की इस समय इसलिए ज़रूरत है, जिसमें हम लोगों की साहित्य-सेवा, उसी उद्देश्य को अपने उद्योगों का केन्द्र समझ कर, उसकी सिद्धि के लिए दत्त-चित्त हो कर चेष्टा करे। जितने साहित्य-सेवी हैं सबको उसी साधना में अपनी कल्पनाओं और चेष्टाओं को जी जान से लगा देना चाहिए।

इस उद्देश की सिद्धि के लिए पहली ज़रूरत इस बात की है कि वङ्गीय-साहित्य-परिषद् को कुछ धन विशेष दिया जाय जिसका सूद उसे मिला करे। कुछ ज़मीन भी उसके लिए अलग कर दी जाय। इस सम्पत्ति के द्वारा अनन्यकर्म्मा विद्वान् साहित्य-सेवियों को उपयुक्त मासिक धन-सहायता देने की व्यवस्था करनी चाहिए। इन उपायों के प्रयोग से हम विद्वान् लेखकों के साहित्य-साधन-कार्य को सुगम और निष्कण्टक कर सकेंगे। इससे वङ्ग-साहित्य की बहुत ही शीघ्र उन्नति हो सकेगी। सर्व-विद्या-विशारद श्रीयुत ब्रजेन्द्रनाथ सील, दार्शनिकशिरोमणि श्रीयुत हीरेन्द्रनाथ दत्त, इतिहास-वेत्ता श्रीयुत यदुनाथ सरकार और वैज्ञानिकवर प्रोफ़ेसर जगदीशचन्द्र वसु, प्रफुल्ल चन्द्र राय तथा रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी आदि वङ्ग-साहित्य के रत्न हैं। सौभाग्यवश यदि वङ्ग-साहित्य इनके तथा इनके समकक्ष अन्य विद्वानों के सारे विचारों और सारे शक्ति-समूह को आकर्षित कर सके तो क्या ही अच्छी बात हो। इन लोगों की निगरानी में यदि कई एक उच्च शिक्षा पाये हुए साहित्यानुरागी युवक निश्चिन्त हो कर सम्मिलित भाव से साहित्य-सेवा करने में संलग्न हो जायँ तो दस ही वर्ष में संसार के कितने ही अमूल्य ग्रन्थ-रत्न हमारे जातीय साहित्य में परिणत हो सकते हैं—अर्थात् प्लेटो, हरबर्ट स्पेन्सर, गीज़ो, हेगल आदि पण्डितों के उच्च भावों को हम लोग अपनी जातीय भाषा के द्वारा जानने में समर्थ हो सकते हैं। ऐसा होने से थोड़े ही समय में बङ्गाल की शिक्षा-प्रणाली सचमुच ही स्वाधीन और एक बिलकुल ही निराले ढँग की हो सकती है।

शिक्षा-सम्बन्धिनी संस्थाओं के प्रभाव और उनके सञ्चालकों के परिचालन-कार्य्य से साहित्य बहुधा अपनी स्वतन्त्रता खो कर बनावटी हो जाता है। किन्तु हम लोग जिस रक्षण-नीति का अवलम्ब करना चाहते हैं उसका अनुसरण करने से इस प्रकार का डर नहीं। किसी गिरे हुए समाज या राजकीय विभाग को उन्नत करने के लिए जिस तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी कभी बहुत सा धन ख़र्च करके एक कमीशन, अर्थात् एक अनुसन्धान-समिति, संगठित की जाती है उसी तरह हमारे साहित्य को उन्नत करने के लिए भी जो द्रव्य की आवश्यकता है उससे एक कमीशन प्रतिष्ठित किया जा सकता है। ऐसा करने से कितने ही उपयुक्त साहित्य-सेवी, जो इस समय और कामों में लगे हुए हैं, अपनी सम्पूर्ण शक्ति और अपना सम्पूर्ण समय बङ्ग-भाषा के साहित्य की वृद्धि करने में लगा सकेंगे।

पदार्थ-विज्ञान, समालोचना, दर्शन, इतिहास, राष्ट्र-विज्ञान, धन-विज्ञान इत्यादि विषयों पर जो कई एक ऊँची कक्षा के ग्रन्थ इस समय बङ्ग-भाषा के साहित्य में विद्यमान हैं उनकी संख्या अधिक नहीं है। किसी देश का शिक्षा-कार्य्य केवल उसी देश के पण्डितों की कल्पना के बल पर नहीं चल सकता। संसार में जितनी प्रतिष्ठित भाषायें हैं सबके साहित्य में उत्तमोत्तम पुस्तकें पाई जाती हैं। उन सब में से उपादेय विषयों का संग्रह करके विद्यालयों के पाठ्य विषय निश्चित किये गये हैं। अतएव यदि ऐसी पुस्तकों को काट छाँट कर या उनका अनुवाद अथवा सङ्कलन करके हम पुस्तक रचने का काम आरम्भ करदें तो हमारा साहित्य बहुत शीघ्र अन्यान्य देशों के साहित्य की बराबरी करने योग्य हो सकता है। इस अनुवाद और सङ्कलन-कार्य से बँगला-साहित्य की श्रीवृद्धि तो होगी ही, किन्तु उससे यह भी लाभ होगा कि उसकी बदौलत हमारा मासिक साहित्य और समालोचना-विज्ञान भी थोड़ा बहुत अवश्य उन्नत हो जायगा। हमारे देश के नेता महाशय बहुत दूर तक भविष्यत् की ओर दृष्टि रख कर भी, वर्तमानकालिक अति अल्प आरम्भ-कार्य्य ही में, बहुत सा धन ख़र्च कर रहे हैं। वे समझते हैं कि वे अपने ऐश्वर्य्य की इस प्रकार सार्थकता कर रहे हैं। इस दशा में हम आशा करते हैं कि हमारे ऐश्वर्यशालियों की सहायता पाने से जिस अनुसन्धान-समिति का उल्लेख इस लेख में किया गया है उसकी स्थापना और रक्षण-नीति के अवलम्बन से हमारा साहित्य बहुत ही थोड़े समय में विशेष उन्नत और गौरवयोग्य हो सकेगा। उसके लिए हमारे धनी और भूमि-स्वामी, भूमि और स्थायी सम्पत्ति देने में सङ्कोच न करेंगे; प्रत्युत उत्साहपूर्वक इस जातीय कार्य्य को सब प्रकार सहायता पहुँचावेंगे।

हमारे देश में अध्यापक लोग साधारणतः डेढ़ सौ रुपया मासिक वेतन पर काम आरम्भ करते हैं। इस प्रकार के पाँच अध्यापक, दस वर्ष के लिए, अथवा दस अध्यापक पाँच वर्ष के लिए यदि नियत किये जायँ और उनकी सहायता के लिए कुछ कर्मचारी भी रक्खे जायँ तो उनकी समस्त शक्ति और समय के प्रयोग से बहुत कुछ काम हो जाय। प्रत्येक अध्यापक एक वर्ष में दो पुस्तकें लिख सकेगा। इस तरह रची गई पुस्तकों को छपवाने और उनमें उपयुक्त विद्वानों द्वारा संशोधन कराने में भी धन ख़र्च होगा। अतएव अपने साहित्य की रक्षा के लिए यदि दस लाख रुपये मूल्य की ज़मींदारी बँगला-साहित्य-परिषद् को दी जाय और इस सम्पत्ति से दस वर्ष तक जो आमदनी हो वह सारी इस काम में ख़र्च की जाय तो हम लोगों का उद्देश सिद्ध हो सकता है। इस काम के लिए आगामी दस वर्ष में कोई साढ़े तीन लाख रुपया नक़द ख़र्च होगा। इसके बाद रक्षण-नीति का अवलम्बन न करना होगा। इस दस वर्ष के परिश्रम से ही जो शक्ति उत्पन्न होगी उसी की प्रेरणा से हमारा साहित्य अपने आप ही अपनी रक्षा करके स्वाधीनता-पूर्वक अपने आसन पर आसीन रहेगा।

यदि दुर्भाग्य से इस प्रकार की भूमि-सम्पदा पाने की आशा दुराशा मात्र हो, अथवा एकमुश्त साढ़े तीन लाख रुपया मिलना भी असम्भव हो, तो भी सामान्य रीति से साहित्य-रक्षा का काम आरम्भ हो सकता है। यदि प्रत्येक पुस्तक लिखने, छपवाने और उसका संशोधन कराने के लिए डेढ़ दो हज़ार रुपये अलग कर दिये जायँ तो बहुत नहीं, छः ही महीने के भीतर इस काम का फलाफल आँखों के सामने आ सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु, सच तो यह है कि रक्षण-नीति के अवलम्बन से बहुत बड़े लाभ की आशा है। थोड़े ही समय में अधिक रुपया ख़र्च करके यदि वह नीति कार्य्य में परिणत की जाय तो बहुत शीघ्र उद्देश्य-सिद्धि हो सकती है। अतएव इस विषय में सामर्थ्यवान् सज्जनों को अवश्य उत्साह दिखाना चाहिए। जातीय जीवन में साहित्य का स्थान बहुत ऊँचा है। इस बात को हृदयङ्गम करके हमारा धनिक-समाज क्या एक बार इस प्रस्ताव को अपने कृपा-कटाक्ष से देखेगा?

(अनुवादित)
श्रीविनयकुमार सरकार।

प्रातश्चिन्ता।

सुहावना यह समय सबेरे का शान्त मन को बना रहा है।
प्रसन्न अन्तःकरण भी प्रभु पर प्रतीति पूरी दिला रहा है॥ १॥
अनन्त आकाश में सिँहासन उसी का शोभायमान मानो।
ये सूर्यमण्डल सुवर्ण-सुन्दर उसी का वैभव दिखा रहा है॥ २॥
प्रभातकालीन मन्द मारुत सुगन्ध फूलों की साथ लेकर।
ये देखिए पूर्व से उसीकी उपासना करता आ रहा है॥ ३॥
रसाल की डाल पर ये कोकिल उसी का प्रिय पाठ पढ़ रही है।
हरेक भौंरा जगह जगह पर उसी के गुन गुनगुना रहा है॥ ४॥
ये फूल फूले नहीं समाते उसीके अनुभव में मस्त होकर।
उसी की धुन में हरेक पत्ती उमङ्ग से चहचहा रहा है॥ ५॥
बढ़ी हुई यह उमड़ चली है उसी से मिलने को देवसरिता।
हरेक इसका तरङ्ग उठ कर अदम्य उद्यम दिखा रहा है॥ ६॥
वह सर्वव्यापी परम प्रतापी जगन्नियन्ता छिपा नहीं है।
हरेक पत्ता उसी की गति से सचेत हो सिर हिला रहा है॥ ७॥
उसी का आभास यह प्रकृति भी प्रकाश प्रत्यक्ष पारही है।
हरेक परमाणु योगबल से पता उसी का बता रहा है॥ ८॥

रूपनारायण पाण्डेय—
(कमलाकर)

हिन्दी-नवरत्न।

(समालोचना)

इलाहाबाद में नागरी-प्रवर्द्धिनी नाम की एक सभा है। उसके अन्तर्गत एक और छोटी सी सभा है, जिसका नाम हिन्दी-ग्रन्थ-प्रसारक मण्डली है। यह मण्डली अच्छे अच्छे नवीन ग्रन्थ और अन्य भाषाओं के अच्छे अच्छे ग्रन्थों के अनुवाद प्रकाशित करने के उद्देश से स्थापित हुई है। कोई भी इसका सभासद हो सकता है। सभासदी का सालाना चन्दा चार रुपया है। सभासदों को इस मण्डली की प्रकाशित पुस्तकें मुफ़्त मिलती हैं। उद्देश इसका प्रशंसनीय है। हिन्दी-प्रेमियों को इसका सभासद होना चाहिए। साल में चार रुपये इसे दे डालना बड़ी बात नहीं। सभासद होने की इच्छा रखनेवालों को इस मण्डली के मन्त्री से पत्र-व्यवहार करना चाहिए। हिन्दी-नवरत्न इस मण्डली की प्रकाशित की हुई पहली पुस्तक है। कई और उपयोगी पुस्तकें भी यह मण्डली शीघ्रही प्रकाशित करनेवाली है। हिन्दी-नवरत्न इसके सभासदों को बेदाम मिलता है। औरों को ढाई रुपये देने पड़ते हैं। बाबू माणिक्यचन्द्र जैनी, बी० ए०, एल० एल०, बी० इस मण्डली के मन्त्री हैं। उन्होंने इसकी एक कापी हमारे पास समालोचना के लिए भेजी है।

पुस्तक-सम्बन्धिनी साधारण बातें।

इस पुस्तक को तीन भाइयों ने मिल कर लिखा है। उनके नाम हैं:—(१) पण्डित गणेशविहारी मिश्र, (२) पण्डित श्यामविहारी मिश्र, एम० ए० और (३) पण्डित शुकदेवविहारी मिश्र, बी० ए०। इनमें से अन्त के दो महाशयों से हिन्दी-प्रेमी बहुत समय से परिचित हैं। पहले महाशय का नाम अभी कुछ ही दिनों से सर्व-साधारण के सामने आने लगा है। इस पुस्तक में इन तीनों महाशयों के हाफ़टोन चित्र हैं। पुस्तक महाराजा छत्रपुर को समर्पित हुई है। उनका भी एक चित्र पुस्तक के आरम्भ में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पुस्तक अच्छे चिकने काग़ज़ पर, अच्छे—न बहुत बड़े, न बहुत छोटे—टाइप में, छपी है। बड़ी ही सुन्दर जिल्द बँधी हुई है। छपाई का काम प्रयाग के इंडियन प्रेस का है। पुस्तक के पुट्ठे पर पुस्तक का, लेखकों का और प्रकाशक मण्डली का नाम सुनहले अक्षरों में हैं। पुस्तक का बाह्य, आभ्यन्तर, दोनों हीं रूप बहुत लुभावने हैं।

पुस्तक में सब मिलाकर कुछ कम साढ़े चार सौ पृष्ठ हैं। मूल विषय नौ अंशों में विभक्त है। प्रत्येक अंश में एक एक कवि पर निबन्ध है। इन कवियों के नाम और निबन्धों की पृष्ठ-संख्या इस प्रकार है:—

तुलसीदास	...	१४०	भूषण	...	१९
सूरदास	...	३२	केशवदास	...	४१
देव	...	४६	मतिराम	...	७
विहारी	...	२८	चन्द	...	३१
			हरिश्चन्द्र	...	४२

इसके सिवा ३१ पृष्ठ की एक भूमिका है। प्रकाशकों का निवेदन, सूचीपत्र, परिशिष्ट और अशुद्धि-संशोधन आदि कोई १८ पृष्ठों में हैं। समय की कमी के कारण सूरदास, भूषण, केशवदास और चन्द वरदायी पर लिखे गये निबन्ध, जिनकी पृष्ठ-संख्या केवल १२३ है, हम नहीं पढ़ सके। अतएव इस लेख में विशेषतः अवशिष्टांशही की समालोचना होगी।

लेखकों का विचार-स्वातन्त्र्य।

अँगरेज़ी भाषा की उच्च शिक्षा पाये हुए पण्डितों में हिन्दी-प्रेम का होना ही बहुत बड़ी बात है। इस बात का इन प्रान्तों में प्रायः अभाव सा है। फिर, ऐसे पण्डितों का हिन्दी के अच्छे अच्छे कवियों के प्रकाशित और अप्रकाशित ग्रंथ ढूँढ़ ढूँढ़ कर उनका अध्ययन करना और उन पर निबन्ध लिखना और भी बहुत बड़ी बात है। ऐसे कवियों की कविता की समालोचना करना और निर्भय होकर उनके गुण-दोषों को दिखलाना और भी प्रशंसा की बात है। अतएव, ऐसी पुस्तक का प्रकाशित होना हिन्दी के सौभाग्योदय का सूचक है। और देशों के नहीं, तो भारत के कवियों में कालिदास का आसन अवश्य ही सबसे ऊँचा है। इस ऐसे महाकवि को भी महाराज की पदवी नहीं प्राप्त हुई। कोई उसे कालिदास महाराज—नहीं कहता। परन्तु श्रीरामचन्द्रजी के परम भक्त और महात्मा होने के कारण तुलसीदास को—'गुसाईं जी महाराज'—कहते हमने सैकड़ों आदमियों को अपने कानों सुना है। जिस महात्मा के सम्बन्ध में लोगों का यह विश्वास है कि वह मुर्दों को ज़िन्दा कर देता था—विधवाओं को सधवा कर देता था—और पापियों को पुण्यात्मा बना देता था उसी की परम पुनीत मानी गई रामायण के गुणों का वर्णन करके उसके दोषों का भी निःसङ्कोच होकर उद्घाटन करना लेखकों की न्यायशीलता, मानसिक दृढ़ता और सत्यपरता का परमोज्ज्वल उदाहरण है। जो मनुष्य समाज के भय की परवा न करके अपने मन की बात कह डालने से नहीं हिचकता उसके मानसिक बल और वीरत्व की जितनी प्रशंसा की जाय कम है। जिस समाज में विचार-स्वातन्त्र्य नहीं वह चिरकाल तक जीवित नहीं रह सकता। और, जिस साहित्य में स्वतन्त्र-विचार-पूर्ण पुस्तकें नहीं वह कभी उन्नत नहीं हो सकता। हिन्दी के सौभाग्य से इस पुस्तक के लेखकों में विचार-स्वातन्त्र्य है। यह लेखकों के लिए कम गौरव की बात नहीं।

लेखकों ने तुलसीदास की कविता में जिन दोषों की उद्भावना की है उनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है:—

(१) कवितावली के कुछ कवित्तों में छन्दोभङ्ग है—पृष्ठ २२।

(२) सुन्दर-काण्ड में हनूमान् ने कई काम बड़ीही बहादुरी के किये। परन्तु, यह कह कर कि— 'उमा न कछु कपि की अधिकाई—प्रभु प्रताप जो कालहि खाई'— तुलसीदास उनके सारे यश के गाहक बन बैठे। पृष्ठ ५७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) सुन्दर-काण्ड में मन्दोदरी के सामने रावण का सीता से यह कहना अनुचित हुआ कि यदि-'तू एक बार मेरी ओर देख ले तो मन्दोदरी आदि रानी (रानियाँ ?) तेरी अनुचरी करें' (हो जायँ ?) पृष्ठ ५८।

(४) 'अंगद-पैज में राज-सभा की (के ?) गाम्भीर्य्य का ध्यान नहीं रक्खा गया है'। पृष्ठ ५८।

(५) उत्तर-काण्ड में—'ज्ञान दीपक के परम परिश्रम से जलाये जाने और परम सुगमता से बुझ जाने का कथन कुछ उपहासास्पद होगया है। पृष्ठ ६४।

(६) 'कलिमल ग्रसेउ'—इत्यादि दोहा लिखकर गोस्वामी जी ने नानक, कबीर और दादू आदि के ग्रन्थों की निन्दा की है। पृष्ठ ६४।

(७) बाल-काण्ड के अन्तर्गत आकाश-वाणी में 'मनु सत्यरूपा के स्थान पर कश्यप अदिति का नाम भ्रमवश आगया है'। पृष्ठ ७४।

(८) विभीषण राजविद्रोही और विश्वासघाती थे। तुलसीदास ने रामायण में उनके चरित का जो वर्णन किया है—रावण से बिगड़ कर रामचन्द्रजी के पास चला जाना और हनूमान् को सीता का पता बतलाना आदि—उससे विभीषण का चरित बड़ाही निन्द्य होगया है। पृष्ठ ८८।

(९)—'दशरथ वृद्धावस्था तक कामी बने रहे'। पृष्ठ ९२

(१०)—'गोस्वामीजी से राम भक्ति के मारे इसका (कैकेयी का) शील गुण ठीक न उतारते बना और देवी सी कह कर इसे उन्होंने अन्त में पूरी पिशाची कर डाला और महा अनुचित बातें इसके मुँह से कहा डालीं'। पृष्ठ ९४

(११)—'ऐसे महात्मा और महाकवि को बिना सोचे (स्त्रियों की) इतनी प्रचण्ड निन्दा करना अनुचित था'। पृष्ठ ११०

(१२) परशुराम और लक्ष्मण के विवाद का—'वर्णन गोस्वामीजी के सहज गाम्भीर्य के बिलकुल ही अयोग्य है'। पृष्ठ ११६

(१३)—रामचन्द्र के विषय में परशुराम के मुँ से—'संभु सरासन तोरि सठ करसि हमार प्रबो कहला कर तुलसीदास ने—'परशुराम की पू नीचता देखा दी है'; और फिर—'मैं तुम्हार अनु मुनिराया' आदि लक्ष्मण से कहला कर मानों पर राम को मूर्ख बनाया है। पृष्ठ ११७

(१४)—'रामचन्द्र की महिमा बढ़ाने गोस्वामीजी ने अन्य देवताओं की प्रायः निन्दा क दी है। सती-मोह इस कथन का पूर्ण प्रमाण है' रामचन्द्र का सती को अपना प्रभाव दिखाना 'बहु ही अनुचित हुआ'। 'सती से झूठ बोलाना अनुचित हुआ'। मरते समय सती का—'हरि से मँगवाना भी बेजा है'। पृष्ठ ११४

(१५)—रामचन्द्र के विवाह की शोभा बढ़ाने लिए तुलसीदास ने महादेव के विवाह की शोभ बिगाड़ दी। पृष्ठ ११५

(१६)—महादेव से यह न कहलाना चाहिए थ कि—'अनुज जानकी सहित निरन्तर। बसहु राम प्रभु मम उर अन्तर'—'क्या महादेवजी लक्ष्मण क भी ध्यान धरते थे ? परन्तु गोस्वामी ने उस (उससे ?) भालु कीशों को निकाल दिया यही उनकी बड़ी (?) अनुग्रह हुई'। पृष्ठ ११५

(१७)—उत्तरकाण्ड में तुलसीदास ने नारद शिव, विरिञ्चि, सनकादि को भी लोभ, मोह, काम का शिकार बना डाला। पृष्ठ ११५

(१८)'जो सम्पति सिव रावणहिं दीन्हि दिए दस माथ।
सो सम्पदा बिभीषनहिँ सकुचि दीन्हि रघुनाथ'-

इस दोहे से तुलसीदास की—'निन्दा की वृत्ति पूरी तरह प्रकट होती है'। पृष्ठ ११५

(१९)—गोस्वामीजी ने—'ब्राह्मणों को मांसाहारी लिखा है और यह भी लिखा है कि वे क्षत्रियों का परोसा खाते थे' पृष्ठ ४२

लेखकों के दिखलाये हुए गोस्वामीजी के इन तथा अन्य दोषों से कोई सहमत हो या न हो, यह तो बात ही दूसरी है। कहने का मतलब सिर्फ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना ही है कि जो बात लेखकों की समझ में जैसी जान पड़ी है उसे उन्होंने निर्भयतापूर्वक कह डाला है। समालोचक में इस गुण का होना बहुत ही अभिनन्दनीय है। लेखकों ने तुलसीदास की रामायण तथा इतर ग्रन्थों में ये और अन्य अनेक दोष जो दिखलाये हैं उनमें से कितने ही दोषों को काव्यदृष्टि से हम दोष नहीं समझते। उनके सम्बन्ध में हम लेखकों से सहमत नहीं। परन्तु, खेद है, इस लेख में हम उन पर, विस्तारभय से, कुछ नहीं लिख सकते। शूर्पणखा का नासाकर्ण-हीन किया जाना एक महत्त्वपूर्ण घटना है। परन्तु लेखकों ने इस विषय में अपनी कोई राय नहीं दी। उन्हें इस पर यह ज़रूर लिखना था कि वे इसे उचित समझते हैं या अनुचित। बालि-वध पर भी उन्होंने अपनी स्वतन्त्र सम्मति नहीं प्रकाशित की। उन्होंने जो यह लिखा कि शत्रु को छल से मारने में तुलसीदास ने कोई दोष नहीं समझा, सो तो तुलसीदास की बात हुई। यदि लेखक महोदय भी यह लिख देते कि वे इस घटना को कैसी समझते हैं, तो उनकी भी राय मालूम हो जाती।

इससे यह न समझना चाहिए कि लेखकों ने इस पुस्तक में तुलसीदास के विशेष करके दोष ही अधिक बतलाये हैं। नहीं, उन्होंने गोसाईं जी के अनेक गुणों के भी उल्लेख यथामति किये हैं। परन्तु, यहाँ पर, उनके निर्देश की विशेष आवश्यकता नहीं; क्योंकि पुराने कवियों के गुणों का उल्लेख करना कोई नई बात नहीं और न वैसा करने के लिए मानसिक बल ही की अपेक्षा है।

पुस्तक की उपादेयता।

लेखकों ने तुलसीदास के ग्रन्थों का बड़े परिश्रम से पाठ करके उनकी कविता की, उसमें वर्णन की गई घटनाओं की, और उनमें उल्लिखित पात्रों के स्वभाव आदि की आलोचना की है। अन्य कवियों के ग्रन्थों आदि की समालोचनायें यद्यपि उन्होंने उतनी बारीकी से नहीं कीं, तथापि उनके अवलोकन से भी साधारण पाठकों को उन कवियों के सम्बन्ध की अनेक बातें मालूम हो सकती हैं। उनके जीवन-चरित, उनके ग्रन्थों के नाम और विषय, उनके निर्म्माण का काल, और, लेखकों के विचारानुसार, उनकी कविताओं के गुण-दोष आदि जानने का हिन्दी-नवरत्न अच्छा साधन है।

काल्पनिक चित्र।

एक को छोड़ कर अवशिष्ट जितने चित्र इस पुस्तक में हैं सब काल्पनिक हैं। लेखकों का कथन है कि वे देश, काल, सामाजिक अवस्था और अपनी अपनी कविता की वर्ण्य-वस्तु-स्थिति के आधार पर बनाये गये हैं। परन्तु इस तरह बनाये गये चित्र कहाँ तक ठीक हो सकते हैं, यह बात विचारणीय है। इस पुस्तक के तीनों लेखक सहोदर भाई हैं। पर सब के वस्त्र-परिच्छदों का ढंग जुदा जुदा है; उनके चित्र इस बात के प्रमाण हैं। एक ही समय के, एक ही नगर के, एकही घर के मनुष्यों में जब इतना भेद-भाव है तब जिन्हें हुए सैकड़ों वर्ष बीत गये ऐसे कवियों के कल्पनाप्रसूत चित्र किस तरह उनके यथार्थ रूप-रङ्ग और कपड़े-लत्ते के व्यञ्जक हो सकते हैं? देवी-देवताओं और कथा-कहानियों के कल्पित पात्रों की बात जुदी है। ऐतिहासिक पुस्तकों में ऐतिहासिक पुरुषों के कल्पित चित्र देने से उनका महत्त्व अवश्य कम हो जाता है। इसके सिवा, इस पुस्तक में दिये गये कल्पित चित्रों में यों भी कितने ही दोष हैं। देव, भूषण, विहारी और केशव के सिर पर प्रायः एकही तरह की पगड़ियाँ हैं, जो मध्य-प्रदेश और महाराष्ट्र-देश के निवासियों की पगड़ियों से ही विशेष मेल खाती हैं। जूते सबको उठी हुई नोक के पहनाये गये हैं—वैसे जूते जैसे आज कल पञ्जाब में बनते हैं। मतिराम और उनके शिष्यों के चपकन तो बिलकुल ही मराठी-फ़ैशन के हैं। उनके और उनके एक शिष्य ने जिस ढँग से दुपट्टा डाला है वह ढँग भी आज कल के महाराष्ट्रों ही का है। क्या मतिराम के समय में इसी तरह दुपट्टा लिया जाता था?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिहारी और देव के समय में भी क्या गले में इसी तरह दुपट्टा डाला जाता था? पुराने ज़माने के जामे और पटके का प्रचार कब और कहाँ था? देव जी लम्बा चपकन पहने, पगड़ी रक्खे, दुपट्टा डाले—सजे बजे—बैठे हुए कविता लिख रहे हैं। क्या कवि पूरी पोशाक पहन कर ही कविता करने बैठते हैं? बिहारी के चित्र में जो दृश्य दिखाया गया है उसके वर्णन में, नीचे, यह दोहा है :—

मोछ मिरोरत रसिक मनि लखहु बिहारी लाल।
नर नारिन को न्हान हैं तकत खरे ढिग ताल॥

लेखकों ने जिसे महाकवि की उपाधि दी है उसे इस तरह तालाब के किनारे मोछ मरोड़ते हुए खड़ा करना और यह कहना कि नरों और नारियों, दोनों को, स्नान करते समय, देखने हीं के लिए ये यहाँ आये हैं, बहुत ही अनुचित जान पड़ता है।

कवियों का श्रेणी-विभाग।

जिन कवियों के चरित और जिनकी पुस्तकों की आलोचनायें हिन्दी-नवरत्न में हैं उन्हें लेखकों ने रत्न-श्रेणी ('Reserved Class') में रक्खा है। परन्तु इस श्रेणी का लक्षण क्या है, यह उन्होंने नहीं बताया। यह कवि साधारण श्रेणी का है, वह नीच श्रेणी का; इसकी कविता उससे उत्तम है, उसकी उससे; यह अमुक की श्रेणी का है, वह अमुक की। यह तो लेखकों का कथन मात्र हुआ; यह कोई लक्षण नहीं। वे अपनी रुचि के अनुसार जिसको जैसा चाहें समझ सकते हैं। यदि किसी को रामायण से आल्हा अच्छा जँचे तो वह उसे ही रत्न समझ सकता है। पर यदि वह यह चाहता हो कि और लोग भी उससे इस विषय में सहमत हों तो उसे अपने मत की पुष्टि में कुछ कहना भी चाहिए। ऐसा करने हीं से और लोग उसके मत की सारता या असारता की परीक्षा कर सकेंगे। लेखकों ने पहले तो तुलसीदास आदि नौ कवियों को रत्न-श्रेणी में रक्खा है। फिर इस श्रेणी के भी तीन टुकड़े किये हैं—बृहत्त्रयी, मध्यत्रयी और लघुत्रयी। पहली त्रयी में तुलसी, सूर और देव को उन्होंने रक्खा है; दूसरी में बिहारी, भूषण और केशव को; और तीसरी में मतिराम, चन्द और हरिश्चन्द्र को। पहली त्रयी के तीनों कवियों की योग्यता उन्होंने एक सी ठहराई है; किसी को किसी से रत्ती भर भी न्यूनाधिक नहीं समझा। दूसरी और तीसरी त्रयी के कवियों की योग्यता या महत्ता उसी क्रम से उन्होंने न्यूनाधिक निश्चित की है जिस क्रम से उनके नाम उन्होंने दिये हैं। इस श्रेणी और त्रयी-विभाग ने इस विषय को और भी अधिक जटिल कर दिया है। अब, यदि, कोई और विद्वान देव की पुस्तकों को विचारपूर्वक पढ़ कर यह निश्चय करे कि उनका दरजा बाबू हरिश्चन्द्र से भी नीचे है तो उसके और प्रस्तुत लेखकों के निश्चय की जाँच किस तरह की जाय और दोनों पक्षों में से ठीक किस की मानी जाय?

हिन्दी-नवरत्न के लेखकों को चाहिए था कि पहले वे रत्नश्रेणी के कवियों का लक्षण लिखते। वे दिखलाते कि कौन कौन बातें होने से किसी कवि की गणना रत्न-कवियों में हो सकती है। फिर, कवि-रत्नों की कविता-दीप्ति की भिन्न भिन्न प्रभाओं की मात्रा निर्दिष्ट करते; जिससे यह जाना जा सकता कि कितनी प्रभा होने से बृहत्, मध्य और लघु-त्रयी में उन कवियों को स्थान दिया जा सकता है। यदि वे ऐसा करते तो उनके बतलाये हुए लक्षणों की जाँच करने में सुभीता होता—तो लोग इस बात की परीक्षा कर सकते कि जिन गुणों के होने से लेखकों ने कवि को कविरत्न की पदवी के योग्य समझा वे गुण वैसे ही हैं या नहीं; और वे प्रस्तुत कवियों में पाये भी जाते हैं या नहीं। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। अतएव जो लोग उनके इस श्रेणी और त्रयी-विभाग को बिना परीक्षा के ही, आँख बन्द करके मान लेना चाहेंगे वही मान सकेंगे।

लेखकों ने आचार्य और महाकवि की पदवियों का भी स्पष्टीकरण नहीं किया। उन्होंने अपनी इस पुस्तक में इन पदवियों को बड़ी ही उदारता से बाँटा है। अतएव इस विषय में भी वही एतराज़ कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा सकता है जो श्रेणी-विभाग के विषय में ऊपर किया गया है। अलङ्कारशास्त्र में महाकाव्य के जो लक्षण संस्कृत में निर्दिष्ट हुए हैं उन लक्षणों से अन्वित काव्य लिखने वालों को लेखक भी यदि महाकवि समझते हों तो वे लक्षण उनके सभी नवरत्न-कवियों के काव्यों में नहीं घटित होते।

होमर और वर्जिल, शेक्सपियर और मिल्टन, व्यास और वाल्मीकि, कालिदास और भवभूति का अपने अपने साहित्य में जो स्थान है सूर और तुलसी का प्रायः वही स्थान हिन्दी में है। अथवा यह कहना चाहिए कि सूर और तुलसी हिन्दी में प्रायः उसी आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं जिस दृष्टि से कि ये उल्लिखित कवि संस्कृत और अँगरेज़ी आदि भाषाओं में देखे जाते हैं। जिन सूर और तुलसी के ग्रन्थों की पूजा झोपड़ियों से लेकर राज-प्रसादों तक में होती है; जिनके कविता-कुसुमों को, छोटे से लेकर बड़े तक, सादर अपने सिर पर धारण करते हैं; जिनकी उच्च-भाव-पूर्ण उक्तियाँ पापियों को पुण्यात्मा और अधार्म्मिकों को धार्म्मिक बनाने का सामर्थ्य रखती हैं; जिनके सदुपदेश और सरस पद्य सुन कर दुराचारी भी सदाचारी हो जाते हैं और पाषाण-हृदयों के भी हृदय पिघल उठते हैं; उन्हीं से देव कवि को रत्ती भर भी कम न समझना कदापि युक्तिसङ्गत नहीं माना जा सकता। जिसने उच्च भावों का उद्बोधन नहीं किया; जिसने समाज, देश या धर्म्म को अपनी कविता द्वारा विशेष लाभ नहीं पहुँचाया; जिसने मानव-चरित्र को उन्नत करने योग्य सामग्री से अपने काव्यों को अलङ्कृत नहीं किया—वह भी यदि महाकवि या कविरत्न माना जा सकेगा तो प्रत्येक देश क्या, प्रत्येक प्रान्त में भी, सैकड़ों महाकवि और कविरत्न निकल आवेंगे।

लखनऊ-निवासी पण्डित व्रजनारायण चकबस्त उर्दू के अच्छे कवि हैं। कुछ समय हुआ उन्होंने "हिन्दुस्तान-रिव्यू" के दो अङ्कों में उर्दू-कवियों पर एक निबन्ध लिख कर प्रकाशित किया था। उसमें उन्होंने कुछ कवियों की अत्यधिक प्रशंसा की थी। एच० एल० सी० नामक एक महाशय ने उन कवियों को उस प्रशंसा का पात्र नहीं समझा। अतएव उन्होंने चकबस्तजी के लेख पर एक आक्षेपपूर्ण छोटा सा लेख, "हिन्दुस्तान-रिव्यू" की आक्टोबर-नवम्बर १९११ की सम्मिलित संख्या में, प्रकाशित किया है। एच० एल० सी० जी के लेख का कुछ अंश हम नीचे उद्धृत करते हैं। चकबस्तजी के प्रशंसित कवियों के विषय में वे लिखते हैं :—

"Do they grapple with any of the problems of life, for the solution of which every individual hungers as soon as the dream and romance of youth are shattered by the cruel realities of the world? Do they deal with the abiding questions, the answer to which is strenuously sought by every thinking being when the remorseless tide of actual facts sweeps away the hallowed citadel of every hope and illusion? * * * The far-fetched ideas of union with the divine through constant doting on the lady's pencilled eye-lids, or on the quaint dimple in the cheek, or on the recalcitrant curl about the brow rather induce the risible tendency than awaken any sacred associations leading the mind Godward. * * * Some of their *Ghazals* are a store-house of jewelled thoughts, but judged in the mass how puerile achievement—how inadequate and profitless their performance? The charge of ignorance is a very commonplace charge, easy to make, but hard to refute. The present writer cannot read Homer, Sophocles, Virgil, Dante, Goethe, and Victor Hugo in the original, yet he has been able to appreciate their great art, their splendid eloquence, their steady outlook upon life, their clear vision of things divine, their noble enfranchising power. The Hindustani

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

poets referred to by Mr. Chackbust have failed to make a mark because

They fed not on the advancing hours
Their hearts held cravings for the buried day."

हमारी समझ में एच० एल० सी० महाशय का कहना बहुत ठीक है। उनका कथन लेखकों के महाकवि मतिराम आदि के विषय में भी पूरे तौर पर घटित हो सकता है। उन्होंने मनुष्य-समाज को उन्नत करने, अलौकिक आनन्द देनेवाले दृश्य दिखाने और प्राकृतिक नियमों का उद्घाटन आदि करने के विषय में भी कुछ किया? नहीं, तो फिर वे महाकवि, कविरत्न और परमोत्तम कवि होने के कैसे अधिकारी माने जा सकते हैं?

हिन्दी में यदि कोई कविरत्न कहे जाने योग्य कवि या महाकवि हुए हैं तो वे सूर और तुलसी ही हैं। रस, भाव, अलङ्कार, छन्दःशास्त्र और नायिका-भेद के परिज्ञान से मनुष्य-जाति का बहुत ही कम उपकार हो सकता है। इन विषयों पर दो एक छोटी मोटी पुस्तकें लिखने वाले मतिराम जैसे कवि भी यदि रत्न-श्रेणी में परिगणित हो सकेंगे तो यही कहना पड़ेगा कि 'रत्न' शब्द अपने ठीक अर्थ में नहीं व्यवहृत हुआ। कहीं उससे हीरे का अर्थ लिया गया, कहीं केवल काँच का। मतिराम, देव और भूषण चाहे जितने अच्छे कवि रहे हों, पर क्या उनके ग्रन्थ उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितने कि सूर और तुलसी के? फिर, वे सूर और तुलसी की श्रेणी की सीमा के भीतर किस तरह आ सकते हैं? सूर और तुलसी के ग्रन्थों में कुछ विशेषता अवश्य है, जिसके कारण उनका इतना अधिक प्रचार और इतना अधिक आदर है। और, देव तथा मतिराम आदि के ग्रन्थों में तदपेक्षा कुछ हीनता अवश्य है, जिससे उनका इतना प्रचार और आदर नहीं। अतएव ये सब, एक श्रेणी के कवि नहीं। सूर और तुलसी में अवश्य समता है। मतिराम, भूषण, देव, केशव और विहारी में समता है, पर विशेष नहीं। चन्द अपने ढँग के एक ही हैं। और, बाबू हरिश्चन्द्र तो सबसे निराले हैं। लेखकों ने अपने नवरत्न-कवियों के जो तीन त्रयी-भेद किये वे स्वयं ही इस बात के प्रमाण हैं कि ये सब एक कक्षा के कवि नहीं। आरम्भ में लेखकों ने हिन्दी नवरत्न का जो अर्थ लिखा है—"साहित्य के नौ सर्वोत्तम कवि" उसके भी 'नव' और 'सर्व' शब्द परस्पर विरोधी हैं।

तुलसीदास।

जितने शब्द हैं, चाहे वे जिस भाषा के हों, सब अर्थों की सीमा निर्दिष्ट है। प्रत्येक शब्द ने अर्थ विशेष पर अपना अधिकार सा कर लिया है। उस उतना ही अर्थ निकलता है; न कम न अधिक। इस पर ध्यान न देकर शब्दों का अनिर्बन्धता-पूर्वक प्रयोग करने से प्रबन्ध में विशृङ्खलता आ जाती है। यों कोई कहे कि अमुक कवि का अमुक काव्य सर्वोत्तम है। और, फिर, कुछ दूर आगे चल कर, वही उस कवि के किसी और काव्य के विषय में भी कहे लगे कि वह भी सर्वोत्तम है, या उसकी बराबरी का काव्य किसी भाषा में है ही नहीं, तो उसकी कौन सी बात मानी जाय—पहली या दूसरी? अथवा केवल दो चार भाषाओं का जाननेवाला कोई विद्वान यदि यह कहे कि अमुक ग्रन्थकार के अमुक ग्रन्थ की समता इस दुनिया की किसी भाषा का कोई ग्रन्थ नहीं कर सकता तो उसकी इस उक्ति या सम्मति को कोई किस तरह विश्वसनीय या मान्य समझेगा। इस तरह की बातें किसी इतिहासकार के ग्रन्थ में यदि पाई जायँ तो उसके इतिहास का महत्त्व कम हुए बिना नहीं रह सकता। इतिहास लेखक की भाषा तुली हुई होनी चाहिए। उसे बे-तुकी बातें न हाँकनी चाहिएँ। अतिशयोक्तियाँ लिखना इतिहासकार का काम नहीं। उसे चाहिए कि वह प्रत्येक शब्द, वाक्य और वाक्यांश के अर्थ को अच्छी तरह समझ कर उसका प्रयोग करे। यह भी परमोत्तम, वह भी परमोत्तम, वह भी सर्वोत्तम—इस तरह की भाषा उसे न लिखनी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खेद की बात है, इस पुस्तक के लेखकों ने अनेक स्थलों में शब्दार्थ का ठीक विचार नहीं किया। वे हिन्दी का इतिहास लिख रहे हैं और हिन्दी-नवरत्न का इतिहास से घनिष्ठ सम्बन्ध बतलाते हैं। अतएव उनकी भाषा में ऐसे दोषों का होना दुःख की बात है।

जब किसी वस्तु के सर्व्वांश का ज्ञान हो जाता है—जब उसके प्रत्येक अवयव तक के पूर्ण ज्ञान से हृदय लबालब भर जाता है और वह ज्ञान स्पष्टतापूर्वक एक निश्चित रूप में अनुभूत होने लगता है—तभी वह शब्दों द्वारा स्पष्टतापूर्वक औरों पर प्रकट भी किया जा सकता है। ज्ञान का आभास जितनाही धुँधला होगा शब्दचित्र भी उसका उतनाही धुँधला और अस्पष्ट होगा। ठप्पा जितनाही अच्छा होता है, नक़शा भी उसका उतनाही अच्छा होता है। जब दस पाँच वस्तुओं की पारस्परिक तुलना करने—प्रत्येक के गुण-दोष की जाँच करके, गुणानुसार, उनकी पारस्परिक उच्चता या अनुच्चता निश्चित करने—की आवश्यकता होती है तब तो उन वस्तुओं के सर्व्वांश का और भी अधिक स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। ऐसा ज्ञान न प्राप्त करने से उसका प्रकटीकरण कभी स्पष्ट नहीं होता। यह भी उत्तम, वह भी उत्तम और सभी उत्तम—ऐसीही दशा में क़लम से निकलता है।

लेखकों ने इस पुस्तक में 'उत्तम' शब्द का बेहद व्यय किया है—व्यय क्या अप-व्यय कहना चाहिए। किसी किसी पृष्ठ पर तो वह तीन तीन चार चार दफ़े आगया है। उदाहरण के लिए भूमिकाही के उनतीसवें पृष्ठ पर उसका प्रयोग पाँच दफ़े हुआ है। उत्तम, उत्तमतर, परमोत्तम, सर्वोत्तम, उत्तमोत्तम, अति-उत्तम इत्यादि अनेक रूपों में वह इस पुस्तक में प्रयुक्त हुआ है। इस कारण इस शब्द की अर्थ-मर्य्यादा अनेक स्थलों में नष्ट होगई है। लेखकों की राय में—'नेवाज, हरिकेश और लाल परमोत्तम कवि थे'। आलम, शेख़, गञ्जन आदि भी 'परमोत्तम कवि' थे। दत्त, सदल, बेनी आदि भी 'बहुत उत्तम कवि' थे। तिस पर भी—'भाषा बहुत ही उत्तम' लिखने और 'उत्तम कवित्त और सवैया बनाने' के कारण मतिराम को लेखकों ने महाकवि बनाकर उन्हें नवरत्न की पदवी देदी और नेवाज आदि के 'परमोत्तम कवि' होने पर भी उन्हें नवरत्न में रखने लायक़ न समझा। अतएव लेखकों के 'परम' 'उत्तम' और 'उत्तमोत्तम' आदि शब्द अनेक स्थलों में अपने प्राकृतिक अर्थ के बोधक नहीं। उनका प्रयोग-बाहुल्य निरर्थक है। कृपाराम 'कवि-शिरोमणि' होकर भी और 'परम मनोहर दोहे' लिख कर भी बिहारी की बराबरी के न समझे गये। मलिक महम्मद जायसी ने 'परमोत्तम प्रेम-ग्रंथ' लिखा, और नरसैया तथा हरिदास ने 'महात्मा' होने के सिवा 'परमोत्तम कविता' भी की। तिस पर भी वे केशवदास के पास आसन पाने के अधिकारी न समझे गये। इस दशा में लेखकों के 'शिरोमणि' 'महात्मा' और 'परमोत्तम' शब्द उस अर्थ के बोधक नहीं माने जा सकते जो अर्थ उनसे निकलना चाहिए। भूमिका के छब्बीसवें पृष्ठ पर लेखक-महाशयों ने लिखा है—'उत्तम कवि भी बहुत हुए पर बहुत ही अच्छे कवियों का एक प्रकार से अभाव सा रहा"। इससे ठीक ठीक कोई यह नहीं कह सकता कि उनके 'उत्तम' और 'बहुत ही अच्छे' में परस्पर कितना भेद है और कौन विशेषण कितनी अच्छाई और उत्तमता का सूचक है। उनके लिखने के ढँग से तो यही जान पड़ता है कि बिना विशेष सोच-विचार के उन्होंने उस पुस्तक में छोटे-बड़े, कवि, महाकवि, महात्मा और तदितर—सभी के लिए मनमाने 'उत्तम', 'परमोत्तम' और 'उत्तमोत्तम' विशेषणों का प्रयोग किया है। अतएव कवियों की उत्तमता या अनुत्तमता से सम्बन्ध रखनेवाली उनकी सम्मतियाँ मानने योग्य नहीं। उनके जो जी में आया है लिख दिया है। आपटे ने 'उत्तम' शब्द का अर्थ—Best, Excellent, Foremost, Highest, Greatest—किया है; और 'परम' का अर्थ भी प्रायः वही, अर्थात्—Highest, Best, Most excellent, Greatest किया है। परन्तु लेखकों के उल्लिखित कितने ही काव्यकर्त्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Double excellent कवि होकर भी रत्न-पदवी पाने के योग्य नहीं समझे गये। इस कारण इस बात की और भी अधिक आवश्यकता थी कि रत्न-श्रेणी के कवियों का लक्षण साफ़ शब्दों में अच्छी तरह लिख दिया जाता। उसके न लिखे जाने और लेखकों के द्वारा 'उत्तम' और 'परमोत्तम' आदि विशेषणों के बेहद और बे-हिसाब प्रयुक्त होने से लेखकों की अनेक बातों में बेतरह शैथिल्य और असंयत भाव में आगया है।

लेखकों ने जब होमर और शेक्सपियर आदि के ग्रंथ अँगरेज़ी में पढ़े हैं तब, बहुत सम्भव है, उन्होंने जॉनसन के कविचरित और गिबन तथा ल्यकी के इतिहास भी पढ़े होंगे। अतएव यदि वे इन ग्रन्थकारों की रचना और शब्दप्रयोग की तुलना अपनी इस पुस्तक की रचना और शब्दप्रयोग से करेंगे तो उन्हें तत्कालही मालूम हो जायगा कि दोनों में कितना अन्तर है। इतिहास-लेखक ने जिसके लिए जो बात कहदी वह यदि, बिना उसकी इच्छाही के, औरों के विषय में भी घटित होगई तो वह इतिहास-लेखक अच्छे लेखकों में नहीं गिना जा सकता।

लेखकों ने रामचरितमानस को 'संसार-साहित्य का मुकुट' (पृष्ठ ३८ में) माना है और अयोध्या-काण्ड के एक एक अक्षर को असाधारण (पृष्ठ ५१ में) समझा है। आप लोगों की राय में इस काण्ड की 'रचना संसार के समस्त-साहित्यों की रत्न है'। 'ऐसी मन-मोहनी (?) कविता' आप साहबों ने 'किसी भाषा में नहीं देखी'। तुलसीदास की कविता के विषय में आपकी राय है कि उसके—'शब्द शब्द में अद्वितीय चमत्कार देख पड़ता है'। अयोध्या-काण्ड में राम-चन्द्र और भरत की बात चीत के समान—'सर्वाङ्ग सुन्दर वार्त्तालाप कराने में किसी भाषा का कोई भी कवि समर्थ नहीं हुआ है'। लेखकों की—'जानिब-कारी (?) में तुलसीदास से बढ़ कर कभी किसी भी भाषा में कोई कवि संसार भर में कहीं नहीं हुआ' रामचरितमानस की नीचे दी हुई चौपाइयाँ देखिए:—

जो पुर गाँउँ बसहिँ मग माहीं। तिनहिँ नागसुर नगर सिहा
केहि सुकृती केहि घरी बसाये। धन्य पुन्य मय परम सुहा
जहँ जहँ राम चरन चलि जाहीं। तेहि समान अमरावति नाह
परसि राम पद पदुम परागा। मानति भूरि भूमि निज भा

इनके विषय में अब लेखकों की राय सुनिए:
"नम्बर तीन पर जो चार चौपाई (चौपाइयाँ) उद्धृत की हुई हैं उनमें जितना साहित्य का सा कूट कूट कर भरा है उतना शायद संसार-सागर के (की?) किसी भाषा के किसी पद्य में कहीं न पाया जायगा। जहाँ तक हम लोगों ने कवि देखी या सुनी है हमने इन पंक्तियों का सा क्या अँग्रेज़ी क्या फ़ारसी क्या हिन्दी क्या उर्दू संस्कृत, किसी भी भाषा में कहीं नहीं पाया"।

इन सम्मतियों के सम्बन्ध में हमें इतना कहना है कि किसी इतिहासकार या प्रतिष्ठित लेख को ऐसी अर्गलारहित बातें लिखना और ऐ अत्युक्तियाँ अपनी लेखनी से निकालना शोभा न देता। संसार अनन्त, काल अनन्त, भाषायें अनन्त मनुष्य की उम्र थोड़ी। इस दशा में सं संसार की सारी भाषाओं के सारे साहित्य कितना ज्ञान मनुष्य को हो सकता है, यह पाठ ही समझ देखें। किसी एक भाषा के साहित्य ही सर्वाङ्गीण परिचय होना दुःसाध्य है; फिर सा भाषाओं का! लेखक क्या इस बात का दावा सकते हैं कि अँगरेज़ी, फ़ारसी और संस्कृत-भाषा के ही सारे काव्य उन्होंने देख डाले हैं? यदि नहीं तो उनको ऐसी भुवनव्यापिनी अत्युक्ति न कह चाहिए। उन्होंने अपनी दो एक पूर्वोक्त उक्तियों सीमा को—'शायद', 'जानकारी' और 'जहाँ तक ह लोगों ने कविता देखी या सुनी है'—से परिमित दिया है। यह सच है, परन्तु मनुष्य की अल्पज्ञ के ख़याल से उन्हें दुनिया भर की भाषाओं की बा कदापि न कहनी चाहिए थी। रामायण को संसा साहित्य का मुकुट बताने और रामचन्द्र-भरत बात-चीत के सदृश संवाद लिखने में किसी भाषा के किसी भी कवि को असमर्थ ठहराने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप लोगों ने 'शायद' और 'जानकारी' के प्रयोग की भी आवश्यकता नहीं समझी। अतएव, दुःख से कहना पड़ता है कि आपकी इस तरह की उक्तियों का समझदार आदमी कभी आदर नहीं कर सकते। आपके कथन से यह भाव ध्वनित होता है कि आप की राय में व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, होमर, शेक्सपियर आदि किसी के भी ग्रन्थ साहित्य का मुकुट होने की योग्यता नहीं रखते। रखता है केवल रामचरित मानस, जिसके प्रत्येक शब्द में आप लोगों को 'अद्वितीय चमत्कार' देख पड़ा है।

लेखकों की राय में—समस्त 'बालकाण्ड उत्तमोत्तम बन पड़ा है' और अयोध्याकाण्ड की—'रचना अन्य काण्डों से इतनी उत्तमतर है कि इसकी प्रशंसा करने के लिए कोष में शब्द नहीं'। अन्त में, ६४ पृष्ठ पर, आप लोगों ने अयोध्या-काण्ड को पहला और बाल-काण्ड को दूसरा नम्बर दिया है। सो यहाँ पर आपका 'उत्तमतर' शब्द 'उत्तमोत्तम' से भी बढ़ गया! 'उत्तमोत्तम' शब्द सर्वोत्तम का बोधक हो कर भी उसे 'उत्तमतर' से हार माननी पड़ी!

विनयपत्रिका के विषय में लेखक महोदयों की राय है—"विनय-सम्बन्धी ऐसा अद्भुत और भाव-पूर्ण ग्रन्थ हमने अब तक किसी भी भाषा में नहीं देखा"। मालूम नहीं, आपने किन किन भाषाओं के कौन कौन विनय-सम्बन्धी ग्रन्थ देखे हैं। संस्कृत में स्तुतिकुसुमाञ्जलि नाम का एक ग्रन्थ है। उसके विषय में भी यदि कोई संस्कृतज्ञ विद्वान् अपनी सम्मति प्रकट करता तो बहुत अच्छा होता।

कृष्णगीतावली को आप लोगों ने 'बड़ा ही विशद' ग्रन्थ बतलाया है। पर किस आधार या प्रमाण पर आपने इसे तुलसीदास-कृत निश्चित किया, यह नहीं लिखा। तुलसीदास ने तो प्रायः रामचरित ही का गान किया है। अतएव कुछ प्रमाण देना था कि यह तुलसीदास ही की रचना है और किसी दूसरे की नहीं; और इसकी कविता तुलसीदास की अन्यान्य कविता से कहाँ तक मिलती है।

आप कहते हैं—"रामचन्द्रजी ने अयोध्या लौटते समय पहले प्रयाग और अयोध्या का दर्शन करके तब त्रिवेणीजी में स्नान किया। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि विमान ऊँचा उठने के कारण प्रयाग से अयोध्या देख पड़ना असम्भव नहीं"। इस पर हमारा निवेदन है कि उस ज़माने में गीधों तक की दृष्टि 'अपार' थी। सैकड़ों योजन दूर की चीज़ें वे देख सकते थे। रामचन्द्रजी ने प्रयाग से ९८ मील दूर फ़ैज़ाबाद देख लिया तो सचमुच ही क्या आश्चर्य्य? विज्ञानवेत्ताओं को कुछ आश्चर्य्य हो तो हो सकता है, औरों को नहीं। कवि और कवि-कर्म्म के ज्ञाता ऐसी बातों पर आश्चर्य्य नहीं करते। मालूम नहीं, लेखकों ने इस बात पर क्यों ज़ोर दिया। हनूमान्जी एक पर्व्वत-शिखर उखाड़ कर लङ्का को उड़ गये; भरतजी उस शिखर समेत उन्हें अपने बाण पर बिठला कर लङ्का भेज देने को तैयार हुए; दशरथ के द्वार पर ऐसी ऐसी भीड़ें हुईं कि पहाड़ भी यदि वहाँ पड़ता तो पिस कर 'रज' हो जाता। यह भी तो सब तुलसीदासजी ने लिखा है। कवियों की सृष्टि में भी क्या सर्वत्र सम्भवनीयता ढूँढ़ी जाती है?

लेखकों ने तुलसीदास के जन्म-समय के विषय में लिखा है कि उनका—'जन्म.....संवत् १५८९ में हुआ था'। बस, जैसे उन्हें गोस्वामीजी का जन्मपत्र मिल गया हो। प्रमाण-स्वरूप इस विषय में कुछ तो लिखना था। डाक्टर ग्रियर्सन आदि ने भी यदि तुलसीदास का जन्म-संवत् यही माना तो मानने दीजिए। वे इतिहासकार होने का दावा नहीं करते। परन्तु नवरत्न के कर्त्ताओं ने इस पुस्तक का इतिहास से घनिष्ठ सम्बन्ध बतलाया है। अतएव उन्हें तो अपने इस मत के पुष्टीकरण में कुछ ज़रूर ही कहना था।

इसी तरह आप लोगों ने भूपति कवि के विषय में लिखा है कि उन्होंने संवत् १३४४ में भागवत के दशम स्कन्ध का अनुवाद हिन्दी में किया। परन्तु मुंशी देवीप्रसादजी ने, गत अगस्त की सरस्वती में,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बात को निर्मूल सिद्ध कर दिखाया है। उन्होंने भूपति के ग्रन्थ से ही यह प्रमाणित कर दिया है कि उसकी रचना संवत् १७४४ में हुई थी, १३४४ में नहीं।

चालुक्य-वंशीय कुमारपाल, सन् ११४३ ईसवी के लगभग, अणहिलवाड़ का राजा था। उसका एक चरित जिनमण्डन गणि ने लिखा है; दूसरा जयसिंह सूरि ने; तीसरा चारित्रसुन्दर गणि ने; और चौथा, प्राकृत में, हेमचन्द्र ने। इनमें से कोई अप्राप्य नहीं सुना गया। परन्तु नवरत्न के लेखक कहते हैं—"संवत् १३०० के लगभग कुमारपाल चरित्र नामक एक ग्रन्थ किसी कवि ने बनाया पर यह ग्रन्थ अब अप्राप्य है"। किस कुमारपालचरित से आपका मतलब है, नहीं मालूम। क्या किसी हिन्दी के भी कुमारपालचरित का आपको पता मिला है? यदि हाँ, तो उसके विषय में आपको अपने मन की बात साफ़ साफ़ लिखनी थी। इतिहास के लिखनेवालों को समझ बूझ कर और ख़ूब छान बीन करके अपने विचार प्रकट करने चाहिए।

लेखकों का कथन है कि विद्वानों की सम्मति में तुलसीदास 'संस्कृत के अच्छे ज्ञाता न थे और यह बात विशेषणों के अधिक प्रयोग एवं एक स्थान पर व्याकरण की एक अशुद्धि आ जाने से ठीक प्रतीत होती है'। परन्तु आपने उस एक अशुद्धि को नहीं बतलाया। आपकी ऐसी ऐसी त्रुटियों को देख कर दुःख होता है। उस एक अशुद्धि को बतला देने में कौन बड़ा परिश्रम था। लोगों को मालूम तो हो जाता कि वह कौन सी अशुद्धि है जिसे विद्वान् अशुद्धि मानते हैं और जो उनकी राय में तुलसीदास के अच्छे संस्कृतज्ञ न होने का प्रमाण है। विशेषणों का अधिक प्रयोग भी यदि अच्छी संस्कृत न जानने का प्रमाण हो सकेगा तो बाण कवि को संस्कृत से बिलकुल ही अनभिज्ञ मानना पड़ेगा, क्योंकि इस कवि की कादम्बरी में विशेषणों का अत्यधिक बाहुल्य है। लेखकों की सम्मति के अनुसार तुलसीदास ने संस्कृत-व्याकरण-सम्बन्धिनी एक भूल है। परन्तु नागरी-प्रचारिणी सभा के सभ्यों रामचरितमानस में सात आठ अशुद्धियों का उल्ले है। यथाः—(१) 'विज्ञानधामावुभौ', (२) 'सद्ध वर्म्मौ', (३) 'केकीकण्ठाभनीलं', (४) 'पाणौ ना चचापं', (५) 'मनभृङ्गसङ्गिनौ', (६) 'कुन्दइन्दु गौरसुन्दरं', (७) 'कारुणीककलकञ्जलोचनं'। सबको रामायण के सम्पादकों ने—"संस्कृत-व्या रण से अशुद्ध" बतलाया है। 'नमामीशमीशा निर्वाणरूपं' आदि स्तुति को तो उन्होंने—"संस्कृ व्याकरणानुसार बहुत ही अशुद्ध" कहा है। वे स्थल अशुद्ध हैं या नहीं, इसका विचार संस्कृत अच्छे वैयाकरण ही कर सकते हैं। परन्तु, कुछ हो, नागरी-प्रचारिणी सभा के सदस्यों ने स्पष्ट पूर्वक कह तो दिया कि उनकी समझ में ये ये स्थ अशुद्ध हैं। नवरत्न के लेखकों को विद्वानों की सम त्यनुसार एक ही अशुद्धि मिली; और उसका उन्होंने उल्लेख न किया। प्रश्न यहाँ पर यह है कि क्या संस्कृत के अच्छे ज्ञाताओं से भी यदा कदा व्याकरणसम्बन्धिनी भूलें नहीं हो जातीं?

तुलसीदास ने रामचरितमानस में, जैसा कि उन्होंने बाल-काण्ड के आरम्भ में कह भी दिया है संस्कृत के अनेक ग्रन्थों के भावों का सन्निवेश किय है यह बात उनके अच्छे संस्कृतज्ञ होने का प्रमा है। कहीं कहीं पर इन भावों को उन्होंने ऐसी ख़ू से घटा बढ़ा कर रक्खा है कि उनकी सुन्दरता मू से भी विशेष बढ़ गई है। खेद है, इस पुस्तक लेखकों ने भावों के ऐसे बिम्ब-प्रतिबिम्बवाले चार स्थलों के भी उदाहरण नहीं दिये। संस्कृत अँगरेज़ी, उर्दू और फ़ारसी के साहित्य का मन्थन करके भी क्यों उन्होंने ऐसा नहीं किया, कुछ समझ में नहीं आता। जिन भाषाओं के जानने की सूचना उन्होंने इस पुस्तक में दी है उनमें संस्कृत भी है। तो क्या संस्कृत के किसी ग्रन्थ में उन्हें कोई भाव ऐसा नहीं मिला जिसका गुम्फन गुसाईं जी ने राम चरितमानस में किया हो। यदि ऐसा हुआ हो तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम यही कहेंगे कि उन्होंने उन ग्रन्थों को अच्छी तरह देखा ही नहीं। बिना देखे ही उन्होंने लिख दिया कि रामायण संसार के साहित्य का मुकुट है। उनकी इस पुस्तक का तुलसीदास विषयक-निबन्ध पढ़ते समय हम जैसे अल्पज्ञ को भी संस्कृत की ऐसी अनेक सूक्तियाँ स्मरण हो आईं जिनका भावार्थ गोसाईंजी की उस कविता में, किसी न किसी रूप में, वर्त्तमान है जिसे लेखकों ने उद्धृत किया है, या जिसका उन्होंने हवाला दिया है। उदाहरण के लिए पुस्तक का १३६ वाँ पृष्ठ देखिए। वहाँ लिखा है :—

"अंगद का राज्य छिन गया था इस कारण उनको यह जान पड़ा कि ब्रह्मा ने चन्द्रमा का सार भाग हर लिया अतः उसकी छाती में छेद हो गया",—

इसे पढ़ते ही हमें नैषधचरित का यह श्लोक याद आ गया :—

हृतसारमिवेन्दुमण्डलं दमयन्तीवदनाय वेधसा।
कृतमध्यबिलं विलोक्यते धृतगम्भीरखनीखनीलिम॥

ऊपर उद्धृत किये गये हिन्दी-नवरत्न के वाक्य में वाक्य-विच्छेदक एक भी चिह्न का न होना भी बहुत खटकने वाली बात है।

रामचरितमानस पर एक बहुत ही उपादेय और मनोरञ्जक पुस्तक लिखी जा सकती है। तुलसीदास की कविता की विशेषतायें; तुलसीदास की उपमायें; तुलसीदास का चरित्र-चित्रण; तुलसीदास के प्राकृतिक दृश्य; तुलसीदास की राजनीति; तुलसीदास की साधारण नीति; तुलसीदास की वर्णित देशभक्ति, पितृभक्ति, भ्रातृभक्ति, मातृभक्ति और पतिभक्ति—आदि पर लिखने के लिए बहुत सामग्री है। खेद की बात है, हिन्दी-नवरत्न के विद्वान् लेखकों ने इस सामग्री का यथेष्ट उपयोग नहीं किया। जहाँ कहीं इन विषयों पर उन्होंने कुछ लिखा भी है वहाँ मार्मिकता से नहीं लिखा।

अवशिष्ट आगे।

दरबार-दर्शन।

(प्रथम भाग)

१—देख कर दिल्ली का दरबार हृदय में उदय हुआ उत्साह
करें कुछ वर्णन उस के अङ्ग, करे जो सरस्वती निर्वाह।
असम्भव मुझसे निस्सन्देह कुम्भ में भरना सिन्धु अपार
रसिक जन करें बानगी-रूप ग्रहण यह एक-बिन्दु उपहार॥

२—ईसवी ग्यारह की थी सात दिसम्बर और बृहस्पतिवार
रही थी चार घड़ी जब रात खलभली मची भली दिश चार।
नगर दिल्ली के वासी और प्रवासी आगत वृन्द विराट
परस्पर कहते थे "झट चलो, आज आते हैं श्रीसम्राट—

३—"सात अरु आठ बजे के बीच मार्ग सब हो जावेंगे बन्द
पहन लो जल्दी जल्दी वस्त्र ठिकाने जा बैठो स्वच्छन्द।
बजा वह सुनो बैन्ड, अब फ़ौज सघन दल पैदल और सवार
सवारी-पथ के दोनों ओर खड़ी होवेगी बाँध क़तार॥

४—सभी विध हो जाओ निश्चिन्त छोड़ दो घर बाहर के काज
राज-दर्शन का लाभ विचार करो दिन सारा अर्पण आज।
जहाँ था जिसका नियत प्रबन्ध वहाँ वह जा बैठा कर मोद
राह, मैदान, छतों में भीड़ हो गई भारी भरी विनोद॥

५—कहीं थोड़ा भी गड़ बड़ देख सिपाही करते थे उद्योगः—
"करो मत भड़ भड़, सब दब जाव, ठिकाने खड़े रहो सब लोग।
बड़ों के घोड़े कड़ बड़ चाल फ़िटन अरु मोटर ताबड़ तोड़
चले आते हैं धावे साथ, बचो, है यह अति अड़ बड़ मोड़"॥

६—क़िले की सड़क, चांदनी चौक, आदि का था अनूप शृङ्गार
चारु थे चित्र वसन रङ्गीन, पताके खम्भे बन्दनवार।
एक थी सब में बात विशेष भूपवर श्रीरानी के चित्र
वस्त्र पर छपे हुए अभिराम धाम प्रति देखे विपुल पवित्र॥

७—भक्तिवश मानो दिल्ली-भूमि राज-दर्शन में जान विलम्ब
हृदय के आश्वासन के हेतु लिया इन चित्रों का अवलम्ब।
तेल से सींची तैसे धूलि करै थी मानो यही बखान—
"लोग सब देखें यह प्रत्यक्ष "भूप" से "भू" का स्नेह महान"॥

८—गैलरी-गण की श्रेणी तुङ्ग छटा की थी इक अद्भुत अङ्ग,
प्रचुर नागर-सागर में चारु उठी रह गई विशाल तरङ्ग।
ताकते थे सब नृप की राह क्षण प्रति था उन्नत उत्साह
दर्शकों के दृग हुए चकोर, भूप तारों के शाहनशाह॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९—समय जब नौ का हुआ समीप हुए अभिलाषी अधिक अधीरः—
"अजी क्या अब भी शाही ट्रेन*न पहुँची होगी यमुना तीर"।
इसी विध की चर्चा के बीच धमाका हुआ तोप का एक
"सलामी दग़ी, सलामी! वाह"! बोल यों उठे मनुष्य अनेक॥

१०—सलामी दग़ी एक सौ एक तीन भागों में† सहित हिसाब
बार दो, अन्तर में, मार्गस्थ तुपक वालों का हुआ जवाब‡।
बैण्ड बाजे का गूँजा शब्द भूप-आगम की छाई धूम
उठ गईं बांहें आपी आप निगाहें गईं कोट-दिश घूम॥

११—सवारी वाला पहला भाग दृष्टि में आया शोभागारः—
फ़ौज के बड़े बड़े सरदार, सिपाही, लिये हुए हथयार।
बैन्ड की "सम" पर रखते पैर देख, समता भाई सुखसार
मिला दिल्ली के संग तरंग-सहित जंगम-बल पारावार॥

१२—सवारी का फिर भाग द्वितीयः—सर्वतः अद्वितीय कमनीय,
स्वयं थे जिस में भारत-राज स्वस्थ-अश्वस्थ, प्रजानमनीय।
लार्ड क्रू और लार्ड हार्डिंग आदि थे संग तुरंग-सवार
सुशोभित राज-यान में पूज्य राज-रानी थीं सुख की सार॥

१३—पर्व्व पर चन्द्र-सूर्य को देख उमँडता है ज्यों सिन्धु अथाह
राज-दम्पति-दर्शन से भक्त प्रजा का था अपार उत्साह।
शोर § "हुर्रे" का हुआ अनन्त मची करताल-ध्वनि की धूम
सलामी मानौ जन-समुदाय दे रहा निज कर से बिन धूम॥

१४—राज-दम्पति के वदन-सरोज प्रफुल्लित थे विनोद के धाम
गये सुख देते हुए सप्रेम प्रजा का लेते हुए सलाम।
अनेकों को न हुई पहचान, न पूरा हुआ उग्र उत्साह
पूंछते रहे परस्पर दीन "आप ने देखे शाहन्शाह?"॥

१५—सवारी का फिर भाग तृतीय बड़ा था दर्शनीय सुविचित्र
पधारे विपुल सुदेश-नरेश ब्रिटिश-शासन के सच्चे मित्र।
संग थे बड़े बड़े सामान, राजयानों में घोड़े चार,
सुभूषण, गाजे-बाजे, छत्र, ध्वजा, चामर, सैनिक, सरदार॥

१६—उन्हें भी सभ्य प्रजा-समुदाय कर-ध्वनि से देकर सन्मान
एक बजते बजते कृतकृत्य हुआ, अवलोकन कर वह शान।
किन्तु जो जो सड़कें थीं दूर वहां के दर्शक आशालीन
गमन कर सके न घर की ओर बजे जब तलक न दो वा तीन।

(दूसरा भाग)

१—नगर से कई मील था दूर बसा भारी दरबारी कैम्प
निशा में देते थे वां चारु छटा बिजली के अगणित लैम्प।
महाराजाओं के छविवन्त रावटी, तम्बू और वितान
सजे थे थोड़ी थोड़ी दूर, धन्य वह दिल्ली का मैदान!

२—जहाँ था किसी समय सुनसान, वहां है बस्ती शोभा-धाम
दिया जलता था जहां न एक वहां से तम हट गया तमाम।
जहां पर रहते थे न किसान वहां हैं भूपों के रनवास
बिहंगम बोले जहां कुशब्द, रसायन गायन हैं सुखरास॥

३—गवरनर जनरल आदिक उच्चकर्मचारी कमान्डरिन् चीफ़,
बड़े आदर के रूलिंग चीफ़ महाराजा, नौबाब, शरीफ़।
धनी हिन्दुस्तानी अँगरेज़, बिलूचिस्तानी, बर्मी लोग,
सिकिम-भूटान-चीन-जापान-निवासी-गण का था संयोग॥

४—वस्त्र ही की बसती में भूप जार्ज पञ्चम* का था सुखवास,
सहित श्री मेरी* हृदय उदार राज-रानी श्री-शील-निवास।
न होगी कुछ भी अनुचित उक्ति कहूं जो मैं कर के कुछ गर्व
जगत के धन-बल-यश-सौन्दर्य्य पधारे हुए वहां थे सर्व॥

५—प्रात से अर्धरात पर्य्यन्त लगा रहता था तांतातोर
फ़िटन, टांगे अरु मोटर कार—"टनन्" "घों" "चलो बचो" का शोर
तीर्थ में पर्व्व-समय जन-वृन्द यथा जुड़ते हैं संख्यातीत
हुई त्यों भारत-प्रजा-प्रजेन्द्र-सन्धि-संक्रान्ति अनूप प्रतीत॥

६—डाकघर, रेल, तार, नलनीर, सभी का था पूरा आराम,
सकल दिन घूम घाम कर लोग रात को जाते थे निज धाम।
सभी भूले थे सारे काज यही कहते थे "भाई! आज
गये थक करते करते सैर पुनः अब देखेंगे कल साज"॥

७—भूप-एडवर्ड-मिमोरियल-कृत्य, खेल 'पोलो' 'हाकी' 'फुटबाल
"फ़ौज को रंगों का उपहार," चर्च में "सर्विस" आदि विशाल।
हुए जो अवसर उनमें भूप हमारे आये गये सहर्ष
प्रजा ने पाये बार अनेक राज-दम्पति-दर्शन-उत्कर्ष॥

८—"बादशाही मेले" का दृश्य प्रजा-दल-रञ्जन था भर पूर,
सभी ने देखे हो कर पास राज-दम्पति हुजूर पुरनूर।
सात से ले सोलह-पर्य्यन्त रहे दिल्ली में भारत-भूप
जयन्ती रही महा-मुद-पात्र यथा अवसर नवरात्र अनूप॥

---

* Train † ३४, ३३, ३४ ‡ प्रत्येक अन्तर में, उस सैनिक-श्रेणी ने, जो सवारी के मार्ग पर दिल्ली से कैम्प तक खड़ी था, बन्दूकों की पड़ा पड़ी, इस छोर से उस छोर तक, उस छोर से इस छोर तक, की। इसको Feu de joie कहते हैं।

§ Hurrah.

* George and Mary.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तीसरा भाग)

१—कहाँ तक हो वर्णन-विस्तार, करें अब थोड़े में निस्तार
उपक्रम हुआ सवारी-दृश्य, बने दरबारी-उपसंहार।
आज है मङ्गल मङ्गलवार दिसम्बर की बारह सुखसार
मुकुट-धारण-विज्ञापन हेतु सजेगा बहुत बड़ा दरबार॥

२—अभी तक बजे नहीं हैं आठ किन्तु मार्गों पर जन-समुदाय
चले आते हैं मण्डप ओर ठान कर उत्सव का व्यवसाय।
दूर का टीला चन्द्राकार मनुष्यों से भर गया विशाल
भरा दस बजते बजते "ऐम्फ़ि *थियेटर" वाला भी सब हाल॥

३—खड़ी थीं सेनायें उद्दण्ड जमाये परा निकट अरु दूर
पधारे ग्यारा के उपरान्त गवरनर-जनरल हिन्द हुज़ूर।
सलामी हुई, हुए सब लोग खड़े अरु दिये † "चियर्स" प्रचण्ड
साथ में थे लेडी हार्डिंग मुसाहब, था आतङ्क अखण्ड॥

४—गगन के शिरोबिन्दु पर चारु सजावट सूर्य्य-मुकुट की देख
मुकुट-धारण का सूचक चिह्न शकुन शुभ मानो मान विशेष।
मुकुटधारी श्री पञ्चम जार्ज राज-रानी मेरी के साथ
पधारे बारा पर दरबार हुआ सब भारतवर्ष सनाथ॥

५—सलामी हुई विधान समेत खड़े हो दरबारी समुदाय
देर तक देते रहे चियर्स, सहित हुर्रे, सङ्कोच विहाय।
विराजे राजासन-आसीन राज-मण्डप में दोनों व्यक्ति
इन्द्र-इन्द्राणी से, विख्यात पराक्रमधारी अतुला शक्ति॥

६—हुआ दरबार-कृत्य-आरम्भ, महानृप की सुन सुन के स्पीच‡
हुआ श्रोताओं को सन्तोष, कर-ध्वनि हुई बीच ही बीच।
उच्चतर अफ़सर और नरेश बहुत से प्रतिनिधि-गण प्रान्तीय
नृपाधिप-सम्मुख पहुँच प्रणाम किया दिखलाई भक्ति-स्वकीय॥

७—दूसरे मण्डप में फिर भूप गये जो था थोड़ी ही दूर
वहाँ "प्रोक्लेमेशन §" का पाठ हुआ ऊँचे स्वर से भरपूर।
पुनः पहले मण्डप में भूप आगये निज महिषी के सङ्ग
सुनाये प्रजा-सुखद वरदान बढ़ी जन-दल में अमित उमङ्ग॥

८—राजधानी हो दिल्ली और एक शासन में हों बङ्गाल,
और कर दिये जायँ आज़ाद क़ैद दीवानी से कङ्गाल।
प्रथम शिक्षा का है अधिकार देश आगम के ऊपर ख़ास,
दिये जाते हैं उसके हेतु इसी दम मुद्रा लाख पचास॥

९—और भी आगे शिक्षा हेतु मिलेंगे यों ही दान महान,
मुक्त हों नृप-क्षमा के पात्र बहुत अपराधी अवगुणवान—
आदि ये सुन सुन कर वरदान हुआ अतिशय आनन्द प्रकाश
हर्ष के शब्दों से परिपूर्ण घड़ी भर गूँज गया आकाश॥

१०—हुआ दो पर समाप्त दरबार पधारे डेरे भारत-राज,
यही करते थे चर्चा लोग "देश के सिद्ध हुए गुरु काज।
आज का मङ्गल दिन शुभवन्त प्रजा के हेतु महा सुखरास
हिन्द को देने वाला मान सदा ही मानेगा इतिहास"॥

११—आज दिन सारा भारतवर्ष सुखी है राजभक्ति में लीन
छके हैं पाकर भोजन-वस्त्र जन्म के कँगले दुखिये दीन।
सुशिक्षित जन को है यह तोष, "नराधिप का है हम पर ध्यान,
हृदय से है निश्चय यह पूर्ण मिलेंगे आगे भी वरदान"॥

१२—जान भूपा-धिप को अनुकूल उक्ति कवियों की हुई अनूप
शिखर जो हैं सीधे अरु तुङ्ग देवलों पर तर्जनी-स्वरूप।
हिन्द कहता है, "वह कर्त्तार, एक, सब ऊपर विश्व दयाल
करेगा तुम्हें सुखी, हे जार्ज, किया जो तुम ने हमें निहाल॥

१३—एक हैं हम अरु इँगलिस्तान, यहाँ अरु वहाँ एक है राज,
तुम्हारे दुनिया भर के देश बनें मिल एक-कुटुम्ब-समाज।
नहीं वास्तव में कुछ भी भेद, रङ्ग अनुरागी एक रसाल
गवाही देता है भरपूर, मैप* में हिस्से देखो लाल॥

१४—बड़ाई पावे इँगलिस्तान हिन्द से, उससे हिन्दुस्तान,
हुआ जब दोनों का सम्बन्ध, बढ़े जग में दोनों का मान।
हमारा आर्य्य देश है, आर्य्य! पराये नहीं आप हे जार्ज!
पूर्व्व सम्बन्ध बिना, सम्राट! न मिलता तुम्हें यहाँ का चार्ज†

१५—‡"क्रास" गिरजा-शिखरों पर आज सुनाता है ईसा-संवाद
"जार्ज! ईसाई-मत-सिरताज! तुम्हारे हित है आशिर्वाद।
जहां फहराय "यूनियन जैक §" वहाँ हो "लव"‖ का झण्डा साथ
हुए हम तुमसे परम प्रसन्न किया जो आर्य्यावर्त सनाथ"॥

१६—मसजिदें भी दो-दो-मीनार-स्वरूपी ऊँचे कर के हाथ
दुआ करने में मन्दिर-चर्च-भाइयों का देती हैं साथ।
पाक परवरदिगार ग़फ़्फ़ार ख़ुदाया, ख़ालिक़ या अल्लाह!
अबद तक रहें सलामत शाह मेहरबां आदिल जहांपनाह"।

१७—देश भर में है सुख की धूम, हुए हैं जगह जगह दरबार
छुटी है आतशबाज़ी ख़ूब जयध्वनि गूँजी बारंबार।

---

* Amphitheatre. † Cheers.
‡ Speech. § Proclamation.

* Map = नक़शा। † Charge. ‡ Cross.
§ Union Jack. ‖ Love = प्रेम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजा ने पाकर भूप-सहाय दिया माने दुख को ललकार
जला कर उसको दिया निकाल चला कर अग्निगर्भ हथयार ॥
१८—जले हैं आज करोड़ों दीप, हुआ है दिन के सदृश प्रकाश
उधर है तारों का सामान, भूमि सम है जगमग आकाश।
सुपावन भरतखण्ड का आज हुआ दुनिया में रोशन नाम,
करे सब पूर्ण सच्चिदानन्द प्रजावत्सल भूपति के काम ॥

राय देवीप्रसाद (पूर्ण)

डारविन का सिद्धान्त।

डारविन, जिनका पूरा नाम चार्ल्स राबट डारविन था, बड़े विख्यात प्राणिविद्या-विशारद हो गये हैं। उनका जन्म १८०९ ईसवी में और उनकी मृत्यु १८८२ ईसवी में हुई। उनके पिता ने उनके लिए पादड़ियों का पेशा चुना था, परन्तु लड़कपन ही से उनकी रुचि जीवधारियों की व्युत्पत्ति के विषय के अध्ययन की ओर इतनी थी कि उन्होंने अपना सारा जीवन इसी विषय की खोज में लगाने का इरादा कर लिया। वे बीगल नामक जहाज़ पर लगभग ७ वर्ष तक दुनिया के अनेक भागों में घूमते और जानवरों की ख़ूब देख भाल करते रहे। उनका सिद्धान्त इसी जाँच का परिणाम है।

डारविन ने पहले अपनी सैर का हाल पुस्तकाकार प्रकाशित किया। फिर, १८५९ ईसवी में, "आरिजिन आव् स्पिशीज़" (Origin of Species) नामक ग्रन्थ में जीवधारियों के विषय का अपना प्रसिद्ध सिद्धान्त संसार के सामने रक्खा। इस पुस्तक में इस बात का निरूपण है कि सारे जीवधारी, कुछ प्राकृतिक-नियमानुसार, एक ही प्रकार के जीवतत्त्व से उत्पन्न हुए हैं। उनमें विभिन्नता क्रम क्रम से हुई है। भिन्न भिन्न जाति के प्राणियों को ईश्वर ने, ख़ास तौर पर अलग अलग नहीं बनाया। इसके कुछ दिनों बाद, १८७१ में, उन्होंने अपना तीसरा ग्रन्थ "डिसेंट आव् मैन" (Descent of Man) प्रकाशित किया। इसमें उन्होंने उसी पूर्वोक्त सिद्धान्त की पुष्टि की और लिखा कि मनुष्य भी इन्हीं नियमों के अनुसार पैदा हुआ है और बदलते बदलते अपनी वर्तमान अवस्था को पहुँचा है। १८३७ से १८८२ ईसवी तक उन्होंने अपनी सारी ज़िन्दगी इन्हीं सिद्धान्तों की खोज, पुष्टि और प्रचार में व्यतीत की।

वे एक गाँव में सादी चाल से रहते और केवल विद्या का व्यसन रखते थे। पहले पहल, १८५९ ईसवी में, जब उनका इस विषय का पहला ग्रन्थ निकला तब सारे योरप में हाहाकार मच गया। उनको हज़ारों गालियाँ मिलीं और लोगों ने उनको पागल समझा। परन्तु, उनके जीवन-काल ही में योरप के प्रायः सारे विज्ञानवेत्ता और बहुत से ईसाई धर्म के नेता भी उनके इस सिद्धान्त को मानने लगे।

डारविन का मूल सिद्धान्त यह है कि संसार में जितने जीवधारी हैं सभी—तुच्छ से तुच्छ वनस्पति से लेकर मनुष्य तक—कुछ प्राकृतिक नियमों के अनुसार एक दूसरे से स्वयं उत्पन्न हुए हैं और उनका उन सूरतों में कोई ख़ास बनानेवाला नहीं। डारविन नास्तिक न थे, परन्तु उनका मत था कि ईश्वर ने सजीव और निर्जीव सबके लिए नियम-विशेष बना दिये हैं। उन्हीं के अनुसार सारा सांसारिक काम चल रहा है। ईश्वर कुम्हारों की तरह गढ़ने नहीं बैठता। जीव-विद्या में पूर्वोक्त सिद्धान्त वही स्थान रखता है जो योरप के विद्वानों की राय में ज्योतिष में न्यूटन का आकर्षण-शक्ति-वाला सिद्धान्त। न्यूटन से पहले योरप के विद्वानों का बहुधा यह मत था कि ईश्वर स्वयं ही सारे आकाशीय पिण्डों को अपने अपने स्थान पर रखता और घुमाता है। न्यूटन ने, यद्यपि वह ईसाई धर्म में पूर्ण विश्वास रखता था, यह निश्चय किया कि संसार के सारे पदार्थ अपने अपने स्थान पर आकर्षण-शक्ति के प्रभाव से स्थिर हैं और साधारणतः इसमें ईश्वर का कोई दख़ल नहीं। इसी प्रकार डारविन के मतानुसार प्राणिमात्र किसी प्राकृतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम से पैदा होते और मरते हैं; ईश्वर उसमें हस्तक्षेप नहीं करता। यह विषय इतना बड़ा है कि कई किताबों में भी पूरे तौर पर इसका लिखा जाना असम्भव है। इससे यहाँ पर हम और जीवों का वर्णन या उनकी उत्पत्ति की भिन्न भिन्न श्रेणियों और तद्विषयक नियमों का वृत्तान्त नहीं लिखते। हम केवल उन प्रमाणों को संक्षेप में लिखते हैं जिनसे यह अनुमान किया जाता है कि मनुष्य भी और जीवों की तरह ही उत्पन्न हुआ है।

बन्दर सबसे उच्च श्रेणी का जानवर है। उसी के रूप का, क्रम क्रम से रूपान्तर होकर, मनुष्य का विकास हुआ है। इस बात के प्रमाण :—

(१) अब तक कई प्रकार के ऐसे बन्दर मौजूद हैं जिनके पूछ नहीं है और जो बहुधा दो ही पैरों के बल चलते हैं।

(२) इनमें से एक प्रकार के बन्दर सूय डूबने से पहले पेड़ों के नीचे टहनियाँ जमा करते हैं और उन पर घास बिछा कर सोते हैं। जाड़ों में वे अपने बदन को पत्तियों से ढक लेते हैं।

(३) किसी किसी जाति के बन्दर पेड़ों पर छोटे छोटे झोपड़े से बनाते हैं और उन्हीं में अपने बच्चे रखते हैं।

(४) ऐसी उन्नत बुद्धिवाले बन्दरों के शिकार को जब कोई जाता है तब वे पेड़ों की डालियाँ तोड़ तोड़ कर उस पर फेंकते हैं। शिकारी से लड़ते समय वे गोल की बँदरियों और बच्चों को अपने साथ नहीं रखते।

(५) आठ या दस वर्ष की उम्र तक बच्चे माँ के साथ ही रहते हैं, और बारह तेरह वर्ष की उम्र तक जवान नहीं होते।

(६) एक मनुष्य ने तो यह भी देखा है कि माँ अपने छोटे बच्चे को गोद में लेकर एक नदी के किनारे गई। वहाँ उसने उसका मुँह धोया। यद्यपि बच्चा चिल्लाता रहा, तथापि उसने उसके रोने की परवा न की।

(७) कई बन्दरों को विशेष शिक्षा भी दी गई है। एक तो पाँच तक गिनती गिन सकता था, छुरी काँटे से खाता था और बिना बाँधे हुए सावधानी से कुरसी पर बैठा रहता था।

एक साहब वर्णन करते हैं कि उनके पास एक ऐसाही पालतू बन्दर था। वह बड़ा चञ्चल था। चीज़ें इधर की उधर किया करता था। परन्तु डाँटने पर चुप बैठ जाता था। एक बार वे सिर झुकाये लिख रहे थे कि उन्होंने उस को साबुन उठाकर लेजाते देखा। थोड़ी देर तक तो साहब कनखियों से उसे देखते रहे; फिर उन्होंने ज़रा खाँस दिया। इस पर बन्दर ठिठक कर लौट पड़ा और बट्टी को जहाँ की तहाँ फिर उसने रख दिया।

यह न समझना चाहिए कि जिन जानवरों की ये बातें हैं वे शायद बन्दर न हों, कदाचित् वे बनमानुस हों। नहीं, वे बन्दर ही हैं। उनके बदन पर बड़े बड़े रोयें होते हैं। वे दरख़्तों पर उछलते कूदते हैं और बहुधा हाथ पैर दोनों ही के बल चलते भी हैं।

ये तो मोटी मोटी बातें हैं जो डारविन के मत को पुष्ट कहती हैं। इनके अतिरिक्त और अनेक सूक्ष्म बातें भी हैं। उनमें से भी दो एक सुनिए:—

(१) मनुष्य की ठठरी में अब तक दुम की जड़ पाई जाती है और अच्छी तरह जाँच करने से प्रकट होता है कि अभी तक हम लोगों के पैरों की हालत ऐसी नहीं है कि सीधे खड़े रहना बिलकुल प्राकृतिक कहा जा सके।

(२) भलीभाँति परीक्षा करने से मालूम होता है कि सब से उच्च प्रकार के बन्दरों में और सब से अधिक जङ्गली आदमियों में उतना भी अन्तर नहीं जितना कि इन जङ्गली आदमियों और सभ्य मनुष्यों में है।

(३) बीस पच्चीस हज़ार वर्ष पहले के मनुष्यों की ठठरियाँ बन्दरों की ठठरियों से अधिक मिलती जुलती हैं। उस समय मनुष्य के सिर और हाथ अधिक लम्बे, और ठुड्ढी और कपाल बहुत छोटे होते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अफ़रीक़ा के हबशी और योरप के सभ्य मनुष्यों में अबतक यह भेद कुछ कुछ बाक़ी है।

यह विषय बड़ा गूढ़ और गम्भीर है। इसकी सब बातें जानने के लिए डारविन के ग्रन्थ पढ़ने चाहिए। हक्सले नाम के विद्वान् ने भी इस विषय पर एक ग्रन्थ लिखा है। उसका नाम है—"Man's Place in Nature"। ये ग्रन्थ बड़े बड़े हैं; तथापि सब लोगों के सुभीते के लिए विलायत के ग्रंथ-प्रकाशकों ने इनके पाँच पाँच आने तक के संस्करण निकाले हैं। डारविन के सिद्धान्तों पर हमारे अनेक देशवासी हँसते हैं। परन्तु हँसने या दिल्लगी करने से किसी सिद्धान्त का खण्डन थोड़े ही हो सकता है। युक्तिपूर्ण प्रमाण देने चाहिए।

गिरजादत्त वाजपेयी।

क्रन्दन।

(१)

ऐसा नहीं कि एक हमीं को आज अनोखा ध्यान हुआ,
बिना दुःख के पड़े दयामय! किसे तुम्हारा ज्ञान हुआ?
त्यागा गया पिता से ध्रुव जब शरण तभी वह आन हुआ
पर क्या उसे तुम्हारे द्वारे प्राप्त न पुण्य-स्थान हुआ?
सोचो तो किस समय तुम्हारा गणिकाकृत गुण-गान हुआ,
पर क्या उसको भी न तुम्हारा दिव्य-दया का दान हुआ?
जब गज पड़ा ग्राह के मुख में शिथिलित मृतक समान हुआ,
तब क्या नहीं नाम लेते ही तत्क्षण उसका त्राण हुआ?
चिन्ता नहीं नाथ! जो सुख का नष्ट सभी सामान हुआ,
मन को तुम तक पहुँचाने को दुखही हमें विमान हुआ॥

(२)

आपदा जब जब हम पर आती,
तब तब करुणानिधे! तुम्हारी करुणा हमें बचाती।
होता विदित मान-मर्यादा अब जाती अब जाती;
पर जाती आती न कहीं वह चिन्ता ही अधिकाती।
जब कि अन्त में तुम्हें हमारी रक्षा करनी भाती;
नहीं जानते फिर क्यों पहले बाधा हमें सताती।
जो हो, सब सङ्कट सहने को प्रस्तुत है यह छाती;
किन्तु अन्त में दृष्टि तुम्हारी रहे दया दिखलाती॥

(३)

धरें हम और किसका ध्यान?
अशरण-शरण! है पतित-पावन कौन आप-समान?
फल प्राप्त हो अथवा न हो पर सोचिए भगवान!
सेवे, अमर-तरु त्याग, सेंमल कौन यों अज्ञान?

(४)

हुई हाँ, बस अब बहुत हरे!
'देह धरे के दण्ड' न जानें हैं कै कोटि भरे।
भ्रान्ति-पूर्ण इस भव-सागर में सौ सौ बार तरे;
पार न पाया एक बार भी हम झखमार मरे।
अब कब कृपा करोगे बोलो सोचो विरुद अरे!
बिना तुम्हारे और कौन जो बेड़ा पार करे?

(५)

सर्वज्ञ हो, कैसे कहें तुमने न पहचाना हमें;
हैं हम तुम्हारे, पर न तुमने आज तक जाना हमें।
यह भेद कैसा है दयामय देव! समझा दो तुम्हीं;
तुमने सदा जन जानकर भी क्यों नहीं माना हमें।
जो कुछ करो स्वीकार है, वश ही हमारा क्या रहा!
भाता तुम्हें तो है हरे! दिनरात तड़पाना हमें।
देकर सु-दुर्लभ देह क्या था कुछ नहीं देना अहो?
पाकर कहो नर- जन्म क्या था कुछ नहीं पाना हमें?
है ध्यान कर्मों का हमें, तुम निज विरुद भूलो नहीं;
देखें तुम्हें फिर तुम हमारे दोष दिखलाना हमें।
है कामना केवल यही कुछ तो कृपा की कोर हो;
अब तुम जहां प्रत्यक्ष हो है बस वहीं आना हमें।
सब जानते हो आप तुम अपनी दशा हम क्या कहें?
रोते रहें जब तक कहो, आता नहीं गाना हमें॥

मैथिलीशरण गुप्त।

क्या पुनर्जन्म सम्भव है?

सरस्वती की सितम्बर मास की संख्या में आगरे के पण्डित लीलाधर चौबे की चिट्ठी पढ़ कर मैं यह लेख लिखने पर उद्यत हुआ हूँ। मैं यह नहीं कह सकता कि चौबेजी को जो कथा सुनाई गई है वह सत्य नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। क्योंकि चौबेजी जैसे सत्पुरुषों को असत्य भाषण का अपराधी बनाना महा पाप है।

आज कल के वैज्ञानिक ज्ञान के अनुसार पुनर्जन्म सिद्ध नहीं किया जा सकता। इसी बात को दिखाने के लिए यह लेख मैं आपकी सेवा में भेजता हूँ। यदि आप उचित समझें तो इसको अपनी पत्रिका में स्थान दे दें।

डारविन, स्पेन्सर, हक्सले, हैक्कल इत्यादि वैज्ञानिक तत्त्ववेत्ताओं का मत है कि "जीव" (Life) भी मिष्टता, कटुता, कठिनता, प्रकाश, रङ्ग इत्यादि गुणों की तरह जीवित पदार्थ-प्रोटोप्लाज्म-(Protoplasm) का एक गुण है। जिस तरह बिना शक्कर के मिठास नहीं आविर्भूत हो सकता और बिना किसी आधार के कठिनता नहीं भासित होती, वैसे ही बिना प्रोटोप्लाज्म के जीवन का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। हवा, पानी, ईंधन इत्यादि वस्तुओं में जीव की स्थिति बिना प्रोटोप्लाज्म के असम्भव है। प्रत्येक गुण तभी अनुभूत होता है जब उसे धारण करने वाले परमाणु एक विशेष संयोग में उपस्थित हों। शक्कर में मिठास उसकी सुफ़ेदी से उत्पन्न नहीं; किन्तु कारबन, आक्सीजन और हाईड्रोजन—इन तीन तत्त्वों का विशेष अंशों में विशेष प्रकार से रासायनिक मिश्रण होने से हुआ है। इन तीन तत्त्वों के योग से बने हुए संसार में और भी कई मिश्रित पदार्थ हैं; किन्तु उनका संगठन उस रूप से नहीं हुआ जिस रूप से कि शक्कर का हुआ है। इसी से यद्यपि मदिरा (Alcohol) और शक्कर में भी यही तीनों पदार्थ हैं; किन्तु मिश्रण की भिन्नता से गुण की भिन्नता हो गई है। मदिरा और शक्कर में कितना भेद है, यह सब पर प्रकट ही है। रसायनशास्त्रवेत्ता इस बात से पूर्णतया परिचित हैं कि बिना परमाणुओं के विशेष संगठन के विशेष-गुण की उत्पत्ति या स्थिति नहीं हो सकती।

प्रोटोप्लाज्म (Protoplasm) जिसका नाम हम, आसानी के लिए, जीवाधार पदार्थ रखते हैं, कार्बन, नाइट्रोजन, आक्सीजन, सल्फर और आइरन इत्यादि तत्त्वों का एक मिश्रण है। इस संगठन में पूर्वोक्त तत्त्व विशेष अंशों में विशेष प्रकार से विद्यमान हैं। इसी संगठन का गुण जीवन है। यदि इन तत्त्वों में एक भी अनुपस्थित हो तो जीवन का विकाश असम्भव हो जाय। न केवल इन सब तत्त्वों की उपस्थिति ही जीवन के लिए आवश्यक है, किन्तु इनका विशेष प्रकार से विशेष भागों में होना भी अत्यावश्यक है। केवल जीवन ही नहीं, किन्तु स्पर्श-ज्ञान, दृष्टिज्ञान, विचार-शक्ति इत्यादि उच्च गुण, जो मनुष्य तथा अन्य उच्च श्रेणी के जीवों में पाये जाते हैं, वे सब के सब कुछ पदार्थों के गुण हैं। बिना ज्ञानतन्तुओं के स्पर्शज्ञान, तथा दृष्टिज्ञान का अनुभव होना असम्भव है। बिना मस्तिष्क के विचार-शक्ति का होना असम्भव है। प्रकाश, ध्वनि, उष्णता इत्यादि गुण भी, जिनको साधारण लोग बिना आधार का समझते हैं, बिना आधार के आविर्भूत और परिणत नहीं हो सकते हैं। तो फिर जीवन, जो पदार्थ विशेष का गुण मात्र है, किस तरह बिना आधार-भूत पदार्थ के अनुभूत हो सकता है।

यहाँ पर हम दो चार शब्द जीव की उत्पत्ति के विषय में कह कर पुनर्जन्म पर आधुनिक वैज्ञानिकों का मत प्रकाशित करेंगे।

जीव की उत्पत्ति के विषय में उन्नीसवीं शताब्दी के विद्वानों में बहुत कुछ मत-भेद रहा। कुछ विद्वान् कहते थे कि पृथ्वी पर जीव का आवाहन चन्द्र-मण्डल से हुआ है। किन्तु जब उनसे पूछा गया कि चन्द्रमा में जीवोत्पत्ति कैसे हुई, तब वे निरुत्तर हो गये। अन्य वैज्ञानिकों का मत था कि जीव की उत्पत्ति निर्जीव पदार्थों की तरह नहीं; किन्तु किसी अज्ञात तथा अज्ञेय प्रकार से हुई है। आधुनिक वैज्ञानिक अब इस विषय में एक-मत हैं। हैक्कल इत्यादि विद्वान् अब एक-ध्वनि से कहते हैं कि जिस प्रकार देशकाल के प्रभाव से संसार के अनेक खनिज पदार्थ शनैः शनैः परिणत हुए, तथा उनमें उनके गुणों का विकाश होता गया, उसी तरह जीवाधार वस्तु भी समयानुसार उत्पन्न हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी सब सामग्री कार्बन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, आक्सीजन और सल्फर— संसार में विद्यमान थी। केवल उनका संगठन हो कर यह पदार्थ उत्पन्न हुआ; तथा उसका गुण, जिसको जीव कहते हैं, उसके साथ ही परिणत हुआ।

उक्त सिद्धान्त की पुष्टि में हज़ारों प्रमाण दिये जा सकते हैं। कई सूक्ष्म जन्तु (Bacteria) जिनमें से नाइट्रोजीनस बैकटिरिया एक दृष्टान्त हैं—जीवधारी हो कर भी निर्जीव पदार्थों पर अपना बसर करते हैं। इसी तरह वृक्ष भी जीवधारी हैं; किन्तु निर्जीव खनिज पदार्थों से पेट पालते हैं; तथा कार्बन, नाइ-ट्रोजन इत्यादि तत्त्वों से मनुष्य के खाद्य पदार्थ— शक्कर, खटाई, फल इत्यादि—उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार वैज्ञानिकों ने सर्व-सम्मति से पता लगाया है कि जीव पदार्थ का गुण मात्र है। अन्य गुणों की तरह इसका भी आविर्भाव आधारभूत पदार्थ के साथ हुआ है।

अब हम पुनर्जीवन पर विचार करें तो पूर्वोक्त वैज्ञानिक तत्त्व के अनुसार उस पर विश्वास करना भूल है। मृत्यु के पश्चात् जीव, जो पदार्थ का एक गुण मात्र है, लोप हो जाता है। पदार्थ की स्थिति बिना गुण की स्थिति के असम्भव है। तो फिर किस प्रकार हम विश्वास कर सकते हैं कि जीव वायु में उड़ता फिरता है या आसमान में चक्कर लगाता रहता है। ये सब बातें विज्ञान-शास्त्र के विचार-पूर्वक अध्ययन करने से ठीक समझ में आ जाती हैं। भूत-प्रेतादि का विचार और पुनर्जन्म पर विश्वास सब एक ही कक्षा में गिने जाने चाहिए।

हम नहीं कह सकते, पण्डित लीलाधर चौबेजी की बात को हम क्या समझें। एक तरफ़ संसार के वैज्ञानिकों का मत है। दूसरी तरफ़ एक कहानी मात्र है, जिसकी सत्यता के केवल दो तीन प्राणी साक्षी हैं। हम सरस्वती की किसी अगली संख्या में—जीव क्या है, इसकी मीमांसा करेंगे।

जार्ज टाउन,
ब्रिटिश गायना,
साउथ अमेरिका।

रामनारायण शर्म्मा,
एल० एम० एस०

एक भावना।

१—"प्यारे पण्डित राज! क्यों बदन में फूले समाते नहीं?
क्यों सौन्दर्य अपूर्व दिव्य मुख पै छाया हुआ है महा?
आंखें क्यों विकसी हुई रसभरी देतीं दिखाई कहो?
क्यों मन्द-स्मित-व्याज से अधर से माधुर्य जाता बहा?
२—वाणी क्यों बरसा रही अमृत की धारा मनोहारिणी?
क्यों शोभा तन की बनी रुचिर है—उत्साह क्यों छा रहा?
क्यों सारे हिय में प्रमोद लहरें लेने लगा देव! त्यों?
क्यों आनन्द अपार आज उमड़ा आता बड़े प्रेम से?
३—क्या श्रीभारत में स्वराज्य-सुख से संतोष है छा गया?
या गोवंश अकाल-मृत्यु-भय से संत्राण ही पागया?
या पाके वर बुद्धि मन्दमति हैं सन्मार्ग पै आगये?
या वंशी बजने लगी सब कहीं संसार में चैन की?
४—या अन्तर्पट हट गया, मिट दुई, चैतन्य-झांकी हुई?
या सारे जग बीच प्रेम-मत का साम्राज्य ही होगया?"
नाना मित्र अनेक प्रश्न मुझसे यों पूछने जो लगे
तो मैं भी कुछ ज़ोर से हँस पड़ा, पीछे कहा यों, सुनोः—
५—"प्यारे! हो सब जानते फिर भला क्या पूछते हो कहे
बातें ये न असाध्य हैं समय की सत्ता बली के लिए।
होता है हरि के प्रसाद-लव से क्या से न क्या विश्व में
श्रीलीलामय की विचित्र विभुता क्या देखते हो नहीं?
६—कैसा आज हुआ प्रभात यह है कैसी घड़ी जो हुए—
मेरी, पञ्चम जार्ज, आकर यहाँ सिंहासनारूढ़ हैं।
जोड़ा है निज धर्म ज्ञान नृप ने टूटे हुए वङ्ग को;
"होगा आदर श्रेष्ठ लोकमत का"—यों घोषणा दी मनो॥
७—दे शिक्षार्थ पचास लाख रुपया की सूचना है यही—
"शिक्षा है अनमोल रत्न इसकी सीमा बढ़ाओ सदा"।
विज्ञों की कर वृत्ति सीख यह दी—"विद्वान् सभी मान्य हैं"
वीरों को वह 'क्रास' दे कह दिया "सारी प्रजा तुल्य है"॥
८—मैं श्रीभारतवर्ष में प्रियवरो! जो चाहता देखना,
है आनन्द अपार आज उसका आरम्भ है हो गया।
होंगे सिद्ध प्रजामनोरथ सभी, उद्योग छोड़ो नहीं;
विश्वाधीश-कृपा-कटाक्ष-कण से राजा चिरञ्जीव हो।

श्रीगिरिधर शर्म्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचरित-मानस में संस्कृत की नीति-धर्म-विषयक सूक्तियाँ।

प्रस्तावना।

"रामचरितमानस" हिन्दी-साहित्य-भाण्डार का एक अनुपम रत्न है। महात्मा तुलसीदास ने इस ग्रन्थ में नाना प्रकार का उपयुक्त ज्ञान, अत्यन्त चतुरता के साथ, एकत्र कर दिया है। यह ग्रन्थ केवल हिन्दी-भाषा-भाषियों ही को मान्य नहीं है; किन्तु अन्य अनेक देशी विदेशी भाषाओं के आचार्य तक इस ग्रन्थ का आदर करते हैं। यह बात हम निराधार नहीं कहते। देखिए, इसके विषय में विदेशी विद्वान् ग्रज़ साहब अपने "रामचरित-मानस" के अँगरेज़ी अनुवाद की भूमिका में क्या कहते हैं:—

"The Râmâyan is not only their (Hindus') national epic, but has also this further merit, that as it depicts the faith and character of their countrymen in the most truthful and at the same time the most engaging light, so that a knowledge of it cannot but correct many false European prejudices on the subject, and conduce to a greater sympathy between the two races."

ग्रियर्सन साहब भी तुलसीदासजी की प्रशंसा करते हुए कहते हैं:—

"The importance of Tulsî-dâs in the history of India cannot be overrated. Putting the literary merits of his Râmâyan out of question, the facts of its universal acceptance by all classes from Bhagalpur to the Panjab, and from the Himalaya to the Narmada is surely worthy of note. The book is in every one's hand from the court to the cottage, and is read or heard, and appreciated alike by every class of the Hindu community, whether high or low, rich or poor, young or old. It has been interwoven into the life, character, and speech of the Hindu population for more than three hundred years, and is not only loved and admired by them for its poetic beauty, but is reverenced by them as their scriptures.

The religion he preached was a simple and sublime one, a perfect faith in the name of God.

Tulsî was the great preacher of one's duty towards one's neighbour. Vâlmîki praised Bharat's sense of duty, Lakshman's brotherly affection, and Sîtâ's wifely devotion, but Tulsî taught them as an example."

ग्रियर्सन साहब रामचरितमानस के प्रचार की मर्यादा, भागलपुर से पञ्जाब और हिमालय से नर्मदा तक ही बतलाते हैं; पर वास्तव में ऐसा नहीं है। अब तो इसका प्रचार ब्रह्मा से लेकर पञ्जाब और बिलूचिस्तान तक, तथा हिमालय से लेकर कन्याकुमारी और लङ्का तक है। ब्रह्मा, बिलूचिस्तान और लङ्का में भी अनेक हिन्दुस्तानी रहते हैं, जो सदा इसका पाठ करते हैं। इसके सिवा, दक्षिण अफ़्रीक़ा, अमेरिका और यूरप में भी इसका कुछ न कुछ प्रचार है। रामचरित विश्व-व्यापी हो रहा है।

ऊपर जो अँगरेज़ी के अवतरण दिये गये हैं उन से पाठकों को मालूम होजायगा कि तुलसीदासजी की इस कृति का विदेशी भी कितना मान करते हैं। हिन्दुस्तान में भी हिन्दी-भाषा बोलनेवाले प्रान्तों के सिवा बङ्गाल, गुजरात और महाराष्ट्र में तुलसीदासजी का बड़ा मान है। महाराष्ट्र की केन्द्रभूमि पूने में तो महात्मा तुलसीदास की स्वर्गारोहण-तिथि पर प्रतिवर्ष अच्छा उत्सव होता है। वहाँ "रामचरित-मानस" का अध्ययन करनेवाली एक महाराष्ट्र-मण्डली है। उसमें नियम से रामचरितमानस पर नित्य चर्चा होती है। तुलसीदासजी के विषय में महाराष्ट्रों का यह उत्साह देख कर हम हिन्दी बोलने वालों को लज्जा आनी चाहिए, क्योंकि हम लोग उनके विषय में बहुत ही उदासीन हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मराठी, गुजराती और बँगला भाषाओं की उत्तमोत्तम पुस्तकों में रामचरित-मानस के अवतरण हमने स्वयं देखे हैं। इन भाषाओं के बड़े बड़े लेखकों ने, अपने सिद्धान्त स्थिर करने के लिए "रामचरित-मानस" के प्रमाण दिये हैं। अब, प्रश्न यह है कि महात्मा तुलसीदासजी की इस कृति ने इतना मान क्यों पाया है। इसका मुख्य कारण यही है कि तुलसीदासजी ने मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र का आदर्श चरित लिखने में अपनी लेखनी का अनुपम चातुर्य दिखलाया है। उन्होंने इस ग्रन्थ में संस्कृत के अनेक नैतिक और धार्मिक सर्वमान्य सिद्धान्तों का समावेश करके हमारे समान अज्ञान लोगों का चरित्र सुधारने के लिए बहुतसी सामग्री एक जगह एकत्र कर दी है।

जनवरी १९१० की सरस्वती में हमने "रामचरित-मानस में भगवद्गीता" के कुछ उदाहरण दिखलाये थे। हर्ष की बात है कि उसे सरस्वती के पाठकों ने बहुत पसन्द किया। उसे पढ़ कर एक संस्कृत के विद्वान् "शास्त्री" का ध्यान भी इस ओर आकर्षित हुआ और सरस्वती की अक्टूबर १९१० की संख्या में "श्रीमद्भागवत और रामचरित-मानस" नामक एक लेख में श्रीयुत कृष्णशास्त्री तैलंग ने उसी प्रकार के कुछ उदाहरण दिखलाये, पर वे उदाहरण बहुत थोड़े हैं। भागवत के और भी अनेक श्लोकों का भाव और अनुवाद रामचरित-मानस में पाया जाता है। उन्हें ढूँढ़ निकालना शास्त्री लोगों ही का काम है। पर उन्हें इतनी फ़ुरसत कहाँ जो वे इस उपयोगी विषय की ओर ध्यान दें।

"रामचरित-मानस" को ध्यान से देखने पर मालूम होता है कि तुलसीदासजी ने इस ग्रन्थ की रचना करने के पहले ही वेद, उपनिषत्, भगवद्गीता, महाभारत और भागवत आदि को अच्छी तरह देखा था। इनके सिवा अनेक नैतिक और धार्मिक ग्रन्थ तथा रामचरित-सम्बन्धी काव्य भी उन्होंने देख डाले थे। देख ही नहीं डाले थे; किन्तु उक्त सब ग्रन्थों के सिद्धान्त उन्होंने हृदयङ्गम कर लिये थे और उनका अधिकांश उन्हें कण्ठाग्र था। इसी लिए उनके इस अपूर्व ग्रन्थ में, जगह जगह, संस्कृत-साहित्य का आभास पाया जाता है। अब हम फिर इसके कुछ उदाहरण सरस्वती के पाठकों के सम्मुख रखते हैं। इन उदाहरणों में किसी किसी संस्कृत-पद्य का पूर्णभाव रामचरित-मानस के पद्य में आ गया है, किसी किसी का कुछ न्यूनाधिक हो गया है और किसी किसी की सिर्फ़ छाया मात्र आगई है।

सज्जन और सत्सङ्गति।

(१)

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः॥

इस श्लोक के आधार पर तुलसीदासजी ने रामचरित-मानस के आरम्भ ही में एक रूपक बाँधा है। उसकी दो चौपाइयाँ इस प्रकार हैं :—

मुद-मंगल-मय संत-समाजू।
ज्यों जग जंगम तीरथ-राजू॥
अकथ अलौकिक तीरथ-राऊ।
देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥

(२)

सुजनो न याति वैरं परहितकार्ये विनाशकालेऽपि।
छेदेऽपि चन्दनतरुः सुरभयति मुखं कुठारस्य॥

इसका भाव तुलसीदासजी ने इस प्रकार दिखलाया है :—

संत असंतन कै असि करनी।
जिमि कुठार-चन्दन-आचरनी॥
काटइ परसु मलय सुनु भाई।
निज गुन देइ सुगंध बसाई॥

(३)

नीरसान्यपि रोचन्ते कार्पासस्य फलानि मे।
येषां गुणमयं जन्म परेषां गुह्यगुप्तये॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पद्य की उपमा तुलसीदासजी ने साधु-चरित के लिए बहुत ही उत्तम रीति से घटित की है। देखिए :—

साधु-चरित सुभ सरिस कपासू।
निरस बिसद गुन-मय फल जासू॥
जो सहि दुख पर-छिद्र दुरावा।
बंदनीय जेहि जग जस पावा॥

(४)

सत्सङ्गाद् भवति हि साधुता खलानां,
साधूनां न हि खलसङ्गमात्खलत्वम्।
आमोदं कुसुमभवं मृदेव धत्ते,
मृद्गन्धं न हि कुसुमानि धारयन्ति॥

इस पद्य के प्रथम दो चरणों का भाव गोसाईं जी ने लिया है; पर उपमायें दूसरी ही दी हैं। गोसाईं जी के पद्य ये हैं :—

सठ सुधरहिँ सत-संगति पाई।
पारस परसि कुधातु सोहाई॥
बिधि-बस सुजन कुसंगति परहीं।
फनि-मनि-सम निज-गुन अनुसरहीं॥

(५)

अञ्जलिस्थानि पुष्पाणि वासयन्ति करद्वयम्।
अहो सुमनसां प्रीतिर्वामदक्षिणयोः समा॥

तुलसीदास-कृत इसका प्रतिबिम्ब :—

बन्दउँ संत समान चित हित-अनहित नहिँ कोउ।
अंजुलि-गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोउ॥

(६)

कान्तारभूमिरुहमौलिनिवासशीलाः,
प्रायः पलायनपरा जनवीक्षणेन।
कूजन्ति तेऽपि हि शुकाः खलु रामनाम,
सङ्गः स्वभावविपरीतविधौ निदानम्॥

इस श्लोक की छाया नीचे लिखी हुई चौपाई में पाई जाती है :—

साधु-असाधु-सदन सुक सारी।
सुमिरिहिँ राम देहिँ गनि गारी॥

(७)

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा,
यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव।
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण,
कङ्कोलनिम्बकुटजा अपि चन्दनाः स्युः॥

इस पद्य के अन्तिम दो चरणों का प्रतिबिम्ब निम्न-लिखित दोहे की दूसरी पंक्ति में आ गया है :—

प्रिय लागिहि अति सबहि मम भनिति राम-जस-संग।
दारु बिचारु कि करइ कोउ बंदिय मलय-प्रसंग॥

(८)

पुण्यैरेव हि लभ्यते सुकृतिभिः सत्संगतिर्दुर्लभा।

नीचे लिखी हुई चौपाई इसी आशय की है :—

पुन्य-पुंज-बिनु मिलहिँ न संता।
सतसंगति संसृति कर अंता॥

(९)

१—महाजनस्य सम्पर्कः कस्य नोन्नतिकारकः।
पद्मपत्रस्थितं तोयं धत्ते मुक्ताफलश्रियम्॥
२—गुणवज्जनसंसर्गाद्याति सर्वोऽपि गौरवम्।
पुष्पमालाप्रसङ्गेन सूत्रं शिरसि धार्यते॥

इन श्लोकों की प्रथम पंक्तियों का आशय इस चौपाई की दूसरी पंक्ति में है :—

सोइ भरोस मोरे मन आवा।
केहि न सुसंग बड़प्पन पावा॥

दुर्जन और दुस्सङ्गति।

(१)

१—खलः सत्क्रियमाणोऽपि ददाति कलहं सताम्।
दुग्धधौतोऽपि किं याति वायसः कलहंसताम्॥
२—अकरुणत्वमकारणविग्रहः परधने परयोषिति च स्पृहा।
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम्॥
३—यस्मिन्वंशे समुत्पन्नस्तमेव निजचेष्टितैः।
दूषयत्यचिरेणैव घुणकीटइवाधमः॥

उपर्युक्त श्लोकों की छाया, न्यूनाधिक रूप से, क्रमशः, नीचे के पद्यों में पाई जाती है :—

बयर अकारण सब काहू सों।
जो कर हित अनहित ताहू सों॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परद्रोही पर-दार-रत पर-धन पर-अपबाद।
ते नर पावँर पाप-मय देह धरे मनुजाद॥
स्वारथ-रत परिवार-बिरोधी।
लंपट काम लोभ अति क्रोधी॥

(२)

त्यक्त्वापि निजप्राणान् परहितविघ्नं खलः करोत्येव।
कवले पतिता सद्यो वमयति मक्षिकान्नभोक्तारम्॥
पर-अकाजु-लगि तनु परिहरहीँ।
जिमि हिम उपल कृषीदल गरहीँ॥

इन पद्यों का दृष्टान्त नहीं मिलता; पर भाव मिलता है।

(३)

उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।
पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्द्धनम्॥
अधम जाति मैं बिद्या पाये।
भयउँ जथा अहि दूध पियाये॥

(४)

कृतमपि महोपकारं पय इव पीत्वा निरातङ्कम्।
प्रत्युत हन्तुं यतते काकोदरसोदरः खलो जगति॥
जेहि तेँ नीच बड़ाई पावा।
सो प्रथमहिँ हठि ताहि नसावा॥

भाव दोनों का एक ही है।

(५)

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैस्सह।
न मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि॥
बरु भल बास नरक कर ताता।
दुष्ट-संग जनि देइ बिधाता॥

दोनों का भाव परिवर्त्तित रूप से मिलता है।

(६)

मैत्री न मङ्गलकरी कलहो न योग्यो-
न श्रेयसेऽनुचरता प्रभुता न वृद्धयै।
दूरातिदूरतरदूरतरातिदूरा-
दौदास्यमेव सुखदं खलु दुर्जनानाम्॥
कबि कोबिद गावहिँ असि नीती।
खल सन कलह न भल नहिँ प्रीती॥
उदासीन नित रहिय गोसाईं।
खल परिहरिय स्वान की नाईँ॥

इस पद्य में तुलसीदासजी ने श्वान की उपमा देकर मूल के भाव को और भी सुन्दर बना दिया है।

परोपकर्त्ता और परोपकार।

(१)

परोपकरणं येषां जागर्त्ति हृदये सताम्।
नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदः स्युः पदे पदे॥
परहित बस जिन्ह के मन माहीँ।
तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीँ॥

(२)

संक्षेपात्कथ्यते धर्मो जनाः किं विस्तरेण वः।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥
पर-हित-सरिस धर्म नहिँ भाई।
पर-पीडा सम नहिँ अधमाई॥

(३)

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै-
र्नवाम्बुभिर्भूरिविलम्बिनो घनाः॥
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्॥
फल भरि नम्र बिटप सब रहे भूमि नियराइ।
पर-उपकारी पुरुष जिमि नवहिँ सुसम्पति पाइ॥

सुमित्र और कुमित्र।

(१)

पापान्निवारयति योजयते हिताय
गुह्यानि गूहति गुणान्प्रकटीकरोति।
आपद्गतं न च जहाति ददाति काले
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा।
गुन प्रगटइ अवगुनहि दुरावा॥
देत लेत मन संक न धरई।
बल-अनुमान सदा हित करई॥
बिपति-काल कर सतगुन नेहा।
स्रुति कह संत मित्र-गुन एहा॥

(२)

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे कह मृदु बचन बनाई।
पाछे अनहित मन-कुटिलाई॥
जाकर चित अहि-गति-सम भाई।
अस कुमित्र परिहरेहि भलाई॥

युगधर्म।

(१)

१—निर्वीर्या पृथिवी निरोषधिरसा नीचा महत्त्वं गता-
भूपाला निजकर्मधर्मरहिता विप्राः कुमार्गे रताः।
भार्या भर्तृविरोधिनी पररता पुत्राः पितुर्द्वेषिणो-
हा कष्टं खलु वर्तते कलियुगे धन्या नराः सज्जनाः॥

२—न देवे देवत्वं कपटपटवस्तापसजना
जनो मिथ्यावादी विरलतनुवृष्टिर्जलधरः।
प्रसङ्गो नीचानामवनिपतयो दुष्टमनसो-
जना भ्रष्टा नष्टा अहह कलिकालः प्रभवति॥

इन श्लोकों की छाया न्यूनाधिक और परिवर्त्तित रूप से निम्न-लिखित पद्यों में पाई जाती है :—

द्विज स्रुति-वंचक भूप प्रजासन।
कोउ नहिँ मान निगम-अनुसासन॥
मिथ्यारंभ दंभ-रत जोई।
ता कहँ संत कहहिँ सब कोई॥

जे अपकारी-चार, तिन्ह कर गौरव मान बहु।
मन क्रम वचन लबार, ते बकता कलिकाल महँ॥

गुन-मन्दिर सुन्दर पति त्यागी।
भजहिँ नारि पर-पुरुष अभागी॥
सुत मानहिँ मातु पिता तब लौं।
अबला नहिँ डीठ परी जब लौं॥
नृप पाप-परायन धर्म नहीं।
करि दण्ड बिडंब प्रजा नितहीं॥

तामस धर्म करहिँ सब जप तप मख व्रत दान।
देव न बरषहिँ धरनि पर बये न जामहिँ धान॥

(२)

विप्राः शूद्रसमाचाराः सन्ध्यावन्दनवर्जिताः।
शूद्रान्नभोजिनः क्रूरा वृषलीरतिकामुकाः॥

इसका भाव नीचे की चौपाई में पाया जाता है :—

विप्र निरच्छर लोलुप कामी।
निराचार सठ वृषली-स्वामी॥

(३)

ब्राह्मण्यचिह्नमेतावत् केवलं सूत्रधारणम्।

धनवंत कुलीन मलीन अपी।
द्विज-चिह्न जनेउ उघार तपी॥

(४)

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महागुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत्॥

१—सुनु व्यालारि कराल कलि मल-अवगुन-आगार।
गुन बड़ यह कलिकाल कर बिनु प्रयास निस्तार॥
२—कलियुग-सम युग आन नहिँ जो नर कर बिस्वास।
गाइ राम-गुन-गन बिमल भव तर बिनहिँ प्रयास॥

(५)

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥

(६)

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

इस श्लोक की महिमा रामचरितमानस में कई जगह गाई गई है :—

१—कृतयुग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि-नाम तें पावहिँ लोग॥

२—कृतयुग सब जोगी विज्ञानी।
करि हरि-ध्यान तरहिँ भव प्रानी॥
त्रेता बिबिध जज्ञ नर करहीं।
प्रभुहिँ समर्पि कर्म भव तरहीं॥
द्वापर करि रघु-पति-पद-पूजा।
नर भव तरहिँ उपाव न दूजा॥
कलियुग केवल हरि-गुन-गाहा।
गावत नर पावहिँ भव थाहा॥

३—ध्यान प्रथम जुग मख-बिधि दूजे।
द्वापर परितोषन प्रभु पूजे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम काम-तरु काल कराला।
सुमिरत समन सकल जग-जाला॥

नरतनु।

(१)

महता पुण्यपुण्येन क्रीतेयं कायनौस्त्वया।
पारं दुःखोदधेर्गन्तुं तर यावन्न भिद्यते॥

इस श्लोक का प्रतिबिम्ब नीचे की चौपाई में परिवर्तित हुआ सा जान पड़ता है :—

बड़े भाग मानुष-तनु पावा।
सुर-दुर्लभ सब ग्रन्थनि गावा॥

(२)

जन्मेदं व्यर्थतां नीतं भवभोगोपलिप्सया।
काचमूल्येन विक्रीतो हंत चिन्तामणिर्मया॥

सो तनु धरि हरि भजहिँ न जे नर।
होहिँ विषय-रत मंद मंद तर॥
काँच किरचि बदले जिमि लेहीं।
कर तें डारि परस-मनि देहीं॥

सामान्य नीति-धर्म।

(१)

दधि मधुरं मधु मधुरं द्राक्षा मधुरा सितापि मधुरैव।
तस्य तदेव हि मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नम्॥

इस श्लोक का भावार्थ नीचे के दोहे की दूसरी पंक्ति में पाया जाता है :—

महादेव अवगुन-भवन बिष्णु सकल गुन-धाम।
जेहि कर मन रम जाहि सन तेहि तेही सन काम॥

(२)

विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्।
नहि वन्ध्या विजानाति गुर्वीं प्रसववेदनाम्॥

इस श्लोक के दूसरे चरण का भाव इस चौपाई के दूसरे चरण से मिलता है:—

पर-घर-घालक लाज न भीरा।
बाँझ कि जान प्रसव की पीरा॥

(३)

१—बालस्यापि रवेः पादाः पतंत्युपरि भूभृताम्।
तेजसा सह जातानां वयः कुत्रोपयुज्यते॥

२—प्रकृतिरियं सत्ववतां न खलु वयस्तेजसो हेतुः।

बोली चतुर सखी मृदुबानी।
तेजवन्त लघु गनिय न रानी॥
रबि-मण्डल देखत लघु लागा।
उदय तासु त्रिभुवन तम भागा॥

(४)

सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः।
अर्धेन कुरुते कार्यं सर्वनाशो हि दुस्तरः॥

इस श्लोक की प्रथम पंक्ति का अर्थ नीचे की चौपाई की दूसरी पंक्ति से बिलकुल मिलता है :—

सकुचउँ तात कहत एक बाता।
अरध तजइँ बुध सरबसु जाता॥

(५)

सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।

१—आगम निगम प्रसिद्ध पुराना।
सेवा-धरम कठिन जग जाना॥
२—सिर भर जाउँ उचित अस मोरा।
सब तें सेवक-धरम कठोरा॥
३—जौं हठ करउँ तो परम कुकरमू।
हर-गिरि तें गुरु सेवक-धरमू॥

(६)

शास्त्रं सुचिन्तितमपि प्रतिचिन्तनीयं
स्वाराधितोऽपि नृपतिः परिशङ्कनीयः।
अङ्के स्थिताऽपि युवतिः परिरक्षणीया
शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुतो वशित्वम्॥

इस श्लोक का याथातथ्य अनुवाद इन पद्यों में है :—

सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिय।
भूप सुसेवित बस नहिँ लेखिय॥
राखिय नारि जदपि उर माहीँ।
जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीँ॥

(७)

दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः॥

सेवक सठ नृप कृपिन कुनारी।
कपटी मित्र सूल-सम चारी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाव, क़रीब क़रीब, दोनों का एकही है।

(८)

पृष्ठतः सेवयेदर्कं जठरेण हुताशनम्।
स्वामिनं सर्वभावेन परलोकममायया॥

भानु पीठि सेइय उर आगी।
स्वामिहि सर्व भाव छल त्यागी॥
तजि माया सेइय परलोका।
मिटहि सकल भव-संभव सोका॥

यह उपर्युक्त श्लोक का प्रायः पूरा अनुवाद है।

(९)

परोपदेशे पांण्डत्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्।
धर्मे स्वीयमनुष्ठानं कस्यचित्सुमहात्मनः॥

पर उपदेस-कुसल बहुतेरे।
जे आचरहिँ ते नर न घनेरे॥

भाव पूरा पूरा मिलता है।

(१०)

१—दैवं हि दैवमिति कापुरुषा वदन्ति।
२—कातरा इति जल्पन्ति यद् भाव्यं तद् भविष्यति॥

कादर-मन कर एक अधारा।
दैव दैव आलसी पुकारा॥

(११)

बुभुक्षितः किं न करोति पापम्।
आरत काह न करइ कुकरमू।

(१२)

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यतिः सङ्गात्सुतो लालना-
द्विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात्।
ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रया-
न्मैत्री चाप्रणयात्समृद्धिरनयात्स्यागात्प्रमादाद्धनम्॥

राज नीति-बिनु धन बिनु-धर्मा।
हरिहि समर्पे-बिनु सत कर्मा॥
विद्या बिनु-बिबेक उपजाये।
श्रम फल पढ़े किये अरु पाये॥
संग तें जती कुमंत्र तें राजा।
मान तें ज्ञान पान तें लाजा॥
प्रीति प्रनय-बिनु मद तें गुनी।
नासहिं बेगि नीति असि सुनी॥

(१३)

ऋणशेषोऽरिशेषश्च व्याधिशेषस्तथैव च।
वर्धन्ते च पुनर्यस्मात्तस्माच्छेषं न धारयेत्॥

इस श्लोक का भावार्थ नीचे के सोरठे में मिलता है :—

रिपु रुज पावक पाप, प्रभु अहि गनिय न छोट करि।
अस कहि बिबिध बिलाप, करि लागी रोदन करन॥

(१४)

जीवन्तोऽपि मृताः पञ्च श्रूयन्ते किल भारते।
दरिद्रो व्याधितो मूर्खः प्रवासी नित्यसेवकः॥

कौल काम-बस कृपिन बिमूढा।
अति दरिद्र अजसी अति बूढा॥
सदा रोगबस संतत क्रोधी।
बिष्णु-बिमुख स्रुति-संत-बिरोधी॥
तनु-पोषक निंदक अघखानी।
जीवित शव सम चौदह प्रानी॥

मूल में पाँच ही जीते हुए मृत-सम बतलाये गये हैं; पर तुलसीदासजी ने स्वतंत्र रीति से और भी बढ़ा घटा लिये हैं।

(१५)

ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति।

इसी के भावार्थ पर तुलसीदासजी ने, दृष्टान्त देकर, यह सोरठा लिखा होगा :—

फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरसहिँ जलद।
मूरख हृदय न चेत जौं गुरु मिलहिँ बिरंचि सम॥

(१६)

यत्सारभूतं तदुपासनीयं हंसो यथा क्षीरमिहाम्बुमध्यात्।

इसी श्लोकार्ध के आधार पर रचा गया यह दोहा जान पड़ता है :—

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिँ पय, परिहरि बारि बिकार॥

(१७)

नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वनस्थलीम्।
छिद्यन्ते सरलास्तत्र कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः॥

इसका भावार्थ नीचे लिखे हुए पद्यों से मिलता है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुनहु लषन कर हम पर रोषू।
कतहुँ सुधाइहु तेँ बड़ दोषू॥
टेढ़ जानि शंका सब काहू।
वक्र चन्द्रमहि ग्रसइ न राहू॥

(१८)

गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यमादौ
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते-
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः॥

अनुचित उचित काज कछु होऊ।
समुझि करिय भल कह सब कोऊ॥
सहसा करि पाछे पछिताहीँ।
कहहिँ बेद बुध ते बुध नाहीँ॥

श्लोक का पूरा पूरा भाव, स्वतंत्र रीति से, इन चौपाइयों में उतर आया है।

(१९)

आतुरे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रुसङ्कटे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः।

नीचे लिखी हुई पंक्तियाँ लिखते समय उपर्युक्त श्लोक की याद महात्मा तुलसीदासजी को अवश्य आई होगी।

होहिँ कुठाय सुबन्धु सहाये।
ओडियहि हाथ असनि के घाये॥

(२०).

१—आपत्सु मित्रं जानीयाद्युद्धे शूरं धने शुचिम्।
भार्यां क्षीणेषु वित्तेषु व्यसनेषु च बान्धवान्॥
२—जानीयात्प्रेषणे भृत्यान्बान्धवान्व्यसनागमे।
मित्रं चापत्तिकालेषु भार्यां च विभवक्षये॥
३—त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले।

आपद काल परखियहि चारी।
धीरज धरमु मित्र अरु नारी॥

(२१)

सुखस्य दुःखस्य न कोपि दाता
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमानः
स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः॥

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता।
निजकृत करम भोग सब भ्राता॥

श्लोक के प्रथम और चतुर्थ पाद का अनुवाद चौपाई में आ गया है।

(२२)

द्रव्यलुब्धस्य नो सत्यं स्त्रैणस्य न पवित्रता।

लोभी लोलुप कीरति चहई।
अकलंकता कि कामी लहई॥

भाव दोनों का एक ही है।

(२३)

आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च
द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च।
अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये
धर्मोहि जानाति नरस्य वृत्तम्॥

नीचे लिखे हुए पद्य लिखते समय इस श्लोक का भाव तुलसीदासजी के मन में अवश्य आ गया होगा :—

जौं मन बच क्रम मम उर माहीं।
तजि रघुबीर आन गति नाहीं॥
तौ कृसानु सब कै गति जाना।
मो कह होउ श्रिखंड समाना॥

(२४)

मंत्री च प्रियवक्ता च केवलं स रिपुः स्मृतः।

सचिव बैद गुरु तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तिनि कर होइ बेगि ही नास॥

(२५)

ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं कुलम्।
तयोर्मैत्री विरोधश्च न तु पुष्टविपुष्टयोः॥

प्रीति बिरोध समान सन करिय नीति असि आहि।
जौं मृगपति बध मेडुकहि भलकि कहइ कोउ ताहि॥

दोहे की पहली पंक्ति का भाव श्लोक से मिलता है।

लक्ष्मीधर वाजपेयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध विषय ।

१—बँगला-साहित्य की उन्नति का एक उत्तम उपाय ।

ङ्ग-भाषा का साहित्य बहुत उन्नत है; तो भी उसे और भी उन्नत करने के लिए बङ्गाल के साहित्यानुरागी सज्जन प्रयत्न कर रहे हैं। गत वर्ष वङ्गीय साहित्य-सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन मैमनसिंह में हुआ था। उसमें, वङ्ग-साहित्य की उन्नति के कितने ही उपाय सोचे गये थे। प्रोफ़ेसर विनयकुमार सरकार ने इसी विषय में वहां एक प्रस्ताव किया था, जो सरस्वती की इसी संख्या में अन्यत्र प्रकाशित किया जाता है। क़ासिमबाज़ार के महाराज मणीन्द्रचन्द्र नन्दी बहादुर ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन और उपस्थित सभासदों ने समर्थन किया था। सरकार महाशय का प्रस्ताव यह था कि दस लाख रुपये मूल्य की ज़मींदारी बँगला-साहित्य-परिषद् को दी जाय। इस ज़मींदारी की दस वर्ष की आमदनी, जो लग भग साढ़े तीन लाख रुपया होगी, वङ्ग-साहित्य की उन्नति के लिए ख़र्च की जाय। विद्वानों को उपयुक्त मासिक वेतन पर रख कर अन्य उन्नत भाषाओं के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का अनुवाद या उनके संग्रहणीय विषयों का सङ्कलन बँगला में कराया जाय। अब मालूम हुआ है कि उक्त प्रस्ताव कार्यरूप में परिणत हो चला है। वङ्गीय साहित्य-परिषद् को इस निमित्त धन-सहायता का मिलना आरम्भ हो गया है। स्वयं प्रोफ़ेसर सरकार ने पाँच हज़ार रुपया दिया है। यह रुपया बँगला में दो ग्रन्थ लिखाने के लिए ख़र्च किया जायगा। एक तो "योरप के दर्शनों का इतिहास," जो वेबर, शेगलर आदि दार्शनिकों की पुस्तकों के आधार पर लिखा जायगा। दूसरा फ्रांस के प्रोफ़ेसर गीज़ो-कृत "योरप की सभ्यता का इतिहास"। इस दूसरी पुस्तक का अनुवाद किया जायगा। बंगाल में एक "कवि-संवर्द्धिनी समिति" है। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की इक्कावनवीं वर्ष-गाँठ की ख़ुशी मनाने के लिए इसकी प्रतिष्ठा हुई है। इस समिति ने भी निश्चय किया है कि जो रुपया चन्दे में उसे प्राप्त होगा उसे वह सरकार महाशय के प्रस्ताव को कार्य्य में परिणत करने के लिए दे देगी। फिर भला क्यों न वङ्ग-भाषा की उन्नति होगी ?

गत वर्ष के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में सम्मेलन के अधिकारियों की आज्ञा से इस नोट के लेखक ने एक लेख लिख कर पढ़ा था। उसमें हिन्दी की वर्त्तमान दशा का वर्णन था। वह सरस्वती में प्रकाशित भी हो चुका है। उसके अन्त में लेखक ने सूचना दी थी कि यदि कुछ हिन्दी-प्रेमी एक एक उपयोगी पुस्तक लिखने का काम अपने ऊपर ले लें और वर्षान्त में, अगले सम्मेलन के समय, उसे उपस्थित करके अपने हिन्दी-प्रेम का मूर्तिमान् उदाहरण दिखलावें तो धीरे धीरे बहुत से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ तैयार हो जायँ। परन्तु उसका कुछ भी फल नहीं हुआ।

२—इलाहाबाद का गैज़ेटियर और हिन्दी-पत्र ।

हाल ही में इलाहाबाद ज़िले का गैज़ेटियर प्रकाशित हुआ है। उसके संग्रह-कर्ता हैं मिस्टर एच० आर० नेवील। उसमें ज़िले के हिन्दी-पत्रों की जो आलोचना की गई उसका कुछ अंश नीचे दिया जाता है :—

"पत्र बहुत से निकलते हैं; परन्तु थोड़े ही दिन चलते हैं। जो चलते हैं उनमें बहुत ही थोड़े ऐसे हैं जो कुछ भी प्रभावशाली हैं। "प्रयाग-समाचार" सब से पुराना पत्र है और सप्ताह में एक बार निकलता है। "सरस्वती" उच्च श्रेणी की साहित्य-सम्बन्धिनी पत्रिका है। वह साप्ताहिक है। "श्री-राघवेन्द्र" सामाजिक और धार्मिक मासिक पत्र है। "कवीन्द्र-वाटिका" नामक मासिक पत्रिका १९०५ ईसवी से निकलती है। "कलवार-मित्र" जाति विशेष का पत्र है"। ऊपर जिन पत्र-पत्रिकाओं का नाम लिया गया है उनमें से कई बहुत दिन से बन्द हैं। "सरस्वती" साप्ताहिक नहीं, किन्तु मासिक है। नहीं मालूम ऐसी मोटी मोटी भूलें क्यों हुईं ?

३—जैनशासन का दिवाली का अङ्क ।

काशी की जैन-यशोविजय पाठशाला से पाठक अवश्य ही परिचित हैं। उसके प्रतिष्ठाता का जीवनचरित भी सरस्वती में निकल चुका है। उसकी प्रकाशित कई पुस्तकों की समालोचना भी हो चुकी है। इस पाठशाला के अधिकारियों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब अपना एक प्रेस भी खोल दिया है। उससे जैन-शासन नाम का एक समाचार पत्र गुजराती भाषा में निकलता है। दिवाली पर इसका एक विशेष अङ्क प्रकाशित किया गया है। इस अङ्क में १३८ पृष्ठ हैं। तीन लेख अँगरेज़ी में हैं; पाँच हिन्दी में; एक पाली में; एक प्राकृत में; शेष गुजराती में। कई लेख इसमें अच्छे अच्छे विद्वानों के लिखे हुए हैं। खेद है, आज्ञा आने पर भी इस अङ्क के लिए हम कोई लेख हिन्दी में न लिख सके। सब मिला कर कोई बीस हाफटोन चित्र भी इसमें हैं; उनमें से आठ चित्र योरप के उन विद्वानों के भी हैं जो जैनों के साहित्य से प्रेम रखते हैं। इस अङ्क के गद्यपद्यात्मक लेखों में कई लेख ऐसे भी हैं जिनको पढ़ कर जैनेतर लोग भी लाभ उठा सकते हैं। "श्वेताम्बर प्राचीन के दिगम्बर"? इस नाम का एक लेख गुजराती भाषा में है; और "हीरविजय सूरि" नाम का अँगरेज़ी भाषा में। ये दोनों लेख बड़ी योग्यता से लिखे गये हैं। हीरसौभाग्य नामक काव्य पढ़े हमें बहुत समय हुआ। अँगरेज़ी भाषावाले इस दूसरे लेख ने उस विस्मृतप्राय हीरसौभाग्य का हमें फिर स्मरण करा दिया। इस काव्य में अकबर के समय की बहुत सी जैनसम्बन्धिनी ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन है। हो सका तो उस पर, अथवा हीरविजयसूरि ही पर, सरस्वती में एक छोटा सा लेख प्रकाशित करने का विचार है। जैन पण्डितों ने संस्कृत में अनन्त ग्रन्थ-रचना की है। आशा है, यशोविजय-पाठशाला और जैन-शासन की बदौलत उनका क्रम क्रम से उद्धार होता जायगा। इस दिवाली के अङ्क में अँगरेज़ी, हिन्दी, गुजराती इन सभी भाषाओं के जाननेवालों के पढ़ने योग्य लेख हैं। इसकी गुजराती कविता में कई स्थल हमें खटके हैं। उदाहरणार्थ ४३ वें पृष्ठ पर पहली उपजाति का तीसरा चरण—"रहो अनुकूलज नित्यमेवा"। इस अङ्क में एक चित्र-सूची भी होती तो अच्छा था।

४—गवर्नमेंट से सहायता पाये हुए पत्र।

कुछ दिनों से कलकत्ते से बँगला में "सुलभ-समाचार" नामक एक समाचार-पत्र निकलने लगा है। बंगाल की गवर्नमेंट ने उसकी आर्थिक सहायता की, इसलिए लोगों ने इस बात का बड़ा विरोध किया। परन्तु हिन्दुस्तान-रिव्यू के एक लेखक के अनुसार यह पहला ही अवसर नहीं कि सरकार की ओर से किसी समाचार-पत्र को आर्थिक सहायता मिली हो। ऐसा भी कई बार ऐसा हो चुका है। १८१६ ईसवी में एक बंगाली महाशय ने "बंगाल-गैज़ट" नामक पत्र सरकार की सहायता ही से निकाला था। १८१८ में जे० सी० मार्शमेन साहब ने "समाचार-दर्पण" नामक पत्र श्रीरामपुर से निकाला था। वह २२ वर्ष तक चलता रहा। उस पर सरकार की सदा कृपा-दृष्टि रही। मारकुइस आव हेस्टिंग्ज़ उसके संरक्षक थे। उनकी आज्ञा से उसे डाकख़ाने के महसूल का केवल एक चौथाई अंश देना पड़ता था। लार्ड एमहर्स्ट उसकी बहुत सी कापियाँ सरकारी दफ़्तरों में बाँटने के लिए ख़रीदते थे। सरकार से उत्साहित किये जाने पर पत्र के प्रकाशकों ने उसका एक फ़ारसी-संस्करण भी निकालना आरम्भ कर दिया था। १८२० ईसवी में बंगाल से "एजूकेशनल-गैज़ट" नामक एक साप्ताहिक पत्र निकला। पत्र के सम्पादक पादड़ी डब्लू स्मिथ और बाबू रङ्गलाल बैनरजी थे। मालिक उसकी सरकार थी। पहले ६००, फिर १०००, और अन्त में ३६०० रुपये वार्षिक उसके लिए सरकार ख़र्च करती थी। अन्त में कुप्रबन्ध के कारण सरकार ने इस पत्र को बाबू भूदेव मुकरजी को दे डाला। "ऐजूकेशनल-गज़ट" की तरह एक पत्र युक्तप्रदेश से भी हिन्दी और उर्दू में निकलता था। वह भी सरकार से सहायता पाता था। पण्डित लक्ष्मीशङ्कर मिश्र की काशीपत्रिका तो अभी उस दिन तक सरकार की कृपा-पात्र बनी रही। सरकार की सहायता पानेवाले कई पत्र मदरास से भी, कोई ५० वर्ष पहले, निकलते थे। परन्तु, कुछ दिन से गवर्नमेंट ने पत्रों को सहायता देना और अपनाना बन्द कर दिया था। इसीसे "सुलभ-समाचार" आदि दो एक पत्रों का इस समय सरकार से सहायता पाना सबको खटका। सुनते हैं, सरकार अब इन पत्रों को सहायता देना बन्द करने वाली है।

५—नई तरह का टेलीफोन।

मीलों दूर बैठ कर जिस यन्त्र की सहायता से दो मनुष्य परस्पर बातचीत कर सकते हैं उसका नाम टेलीफोन है। इसका अब इस देश में भी बहुत प्रचार है। इसके लिए भी तार दरकार होता है। बिना तार के यह काम नहीं देता। परन्तु बेतार की तारबर्क़ी के समान अब इससे भी बिना तार के ही काम निकालने की प्रक्रिया एक विद्वान् ने निकाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। आपका नाम है—थ्रिन्डेल मैथ्यूज़। उन्होंने अपने नवाविष्कृत यन्त्र का नाम एइरोफोन रक्खा है। तार की इसमें ज़रूरत नहीं पड़ती। ज़रूरत सिर्फ़ इस बात की होती है कि यन्त्र ज़मीन को छूता रहे। पांच मील तक की दूरी पर बैठ कर दो आदमी इस यन्त्र की सहायता से अच्छी तरह बातचीत कर सकते हैं। इस यन्त्र में एक और विशेषता यह है कि यह बहुत छोटा है। इसे मनुष्य जेब में रख कर जहाँ चाहे ले जा सकता है। इसकी क़ीमत कोई तीन सौ रुपया है। आविष्कारक महोदय ने इन यन्त्रों को बनाने के लिए एक कम्पनी खोली है। अतएव, आशा है कि ये यन्त्र शीघ्रही सर्वत्र बिकने लगेंगे और धीरे धीरे इनका मूल्य भी घट जायगा।

६—निकिल की पुस्तकें।

संसार की परमोपयोगिनी वस्तुओं में काग़ज़ भी है। हज़ारों वर्ष से वह काम आ रहा है। प्राचीन समय में यहाँ काग़ज़ का काम ताल-पत्रों से लिया जाता था। परन्तु चीन वाले ईसा के दो शताब्दी पहले ही से काग़ज़ का व्यवहार करने लगे थे। उसके कुछ कालोपरान्त भारत में भी इसका प्रचार हुआ। इँगलैंड में इसका प्रचार रानी एलीज़बेथ के समय में हुआ। इस समय तो काग़ज़ सारे संसार में फैल गया है। कोई स्थान ऐसा नहीं जहाँ काग़ज़ से काम न लिया जाता हो। परन्तु, जान पड़ता है, अब काग़ज़ को संसार से बिदा हो जाना पड़ेगा। अमेरीका के अपूर्व आविष्कारक एडीसन साहब अपनी विज्ञान-पटुता के लिए संसार भर में प्रसिद्ध हैं। आपने कितने ही आविष्कार किये हैं और सदा किसी न किसी नये आविष्कार की धुन में रहते हैं। हाल ही में आपने काग़ज़ के विषय में एक अश्रुतपूर्व बात कह डाली है। आपका कथन है कि भविष्यत् में, किसी समय, पुस्तकों का काग़ज़ पर छपना बन्द हो जायगा। वे फ़ौलाद, ताँबे, अथवा निकिल के पत्रों पर छपने लगेंगी। अधिक-तर निकिल ही काग़ज़ का काम देगा। आपने बिजली द्वारा निकिल के पत्र बनाये हैं जो काग़ज़ से भी पतले हैं; पर हैं उससे कहीं अधिक मज़बूत और चिकने। ये पत्र स्याही भी अच्छी तरह ग्रहण कर लेते हैं। इकट्ठे बहुत से बनाये जाने पर काग़ज़ से ये सस्ते भी पड़ेंगे। इन पत्रों पर छपी हुई बायबिल आकार में दिया-सलाई के बक्स से बड़ी न होगी। एक इञ्च मोटी पुस्तक में साधारण काग़ज़ के ३५० पृष्ठ होते हैं और इंडिया पेपर नाम के काग़ज़ के १५००। परन्तु निकिल के बने हुए काग़ज़ के २००० पत्र होंगे। प्राचीन समय में रोम वाले संग-मर्मर, लकड़ी, और धातुओं के पत्रों पर लिखा करते थे; और यूनान वाले हाथीदांत, सीसा, पत्थर, कांसा, पीतल इत्यादि पर। सो अब फिर धातुओं के पत्रों पर लिखने का समय आना चाहता है। निकिल वही धातु है जिसकी इकन्नी बनती है।

७—रुबाइयात उम्र-ख़ैय्याम का सचित्र संस्करण।

फ़ारिस में उम्र ख़ैय्याम नाम के एक अच्छे कवि हो गये हैं। उनकी बनाई हुई रुबाइयाँ भक्ति और ज्ञान के रस से भरी हुई हैं। फ़ारसी के साहित्य में तो उन रुबाइयों का बड़ा आदर है ही; परन्तु अन्य भाषा वाले भी उनकी क़दर करने लगे हैं। योरप की लगभग सब भाषाओं में उनका अनुवाद हो गया है। अँगरेज़ी में उनके कितने ही अनुवाद निकल चुके हैं। उनमें फ़िट्ज़-जीरल्ड साहब का किया हुआ सबसे अच्छा है। इंडियन प्रेस, प्रयाग, के "अदीब" नामक मासिक पत्र के अक्टूबर के अङ्क में इस अनुवाद के विषय में एक नोट निकला है। उसका संक्षिप्त भावार्थ हम नीचे देते हैं:—

"और लोगों ने भी उम्र-ख़ैय्याम की रुबाइयों का अनुवाद अँगरेज़ी में किया है; परन्तु फ़िट्ज़ जीरल्ड का अनुवाद सब से बढ़ कर है। उसके एक संस्करण के बाद दूसरा संस्करण नये रंग में निकला और हाथोंहाथ बिक गया। अब उसका एक सचित्र संस्करण निकला है। पुस्तकों में विषयानुकूल चित्र देने की प्रथा भारत-वासियों ही की चलाई हुई है। महाराज विक्रमादित्य के पूर्वजों ने रामायण और महाभारत-सम्बन्धी चित्र बनवाये थे। पञ्च-तंत्र की वह प्रति जो फ़ारिस पहुँची थी, सचित्र थी। वैताल-पचीसी के चित्र बाबा हरिकर्णजी ने सबसे पहले बनाये। बंगाल के एक चित्रकार ने कालिदास के मेघ-दूत, शकुन्तला और दूसरे नाटकों के भिन्न भिन्न स्थलों के चित्र ऐसे समय में बनाये थे जब किसी को इस बात का ख़याल भी न था कि चित्रों से पुस्तक की शोभा ही नहीं बढ़ती, किन्तु उसकी उपयोगिता भी बढ़ जाती है। उस समय के चित्र देखने में चाहे कैसे ही क्यों न हों, परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें सन्देह नहीं कि उनसे उस समय के रहन-सहन का बहुत कुछ पता लगता है। योरप-निवासियों ने भी चित्रों की उपयोगिता को स्वीकार कर लिया है। बाइबल के सचित्र संस्करण वे लोग निकालने लगे हैं।

उम्र-ख़ैय्याम की रुबाइयाँ वैसे ही बहुत अच्छी हैं। अब उनका सचित्र संस्करण निकलने से वे और भी मनोहारिणी हो गई हैं। इस सचित्र पुस्तक में चुनी हुई ७५ रुबाइयों का संग्रह है। चित्र कलकत्ते के प्रसिद्ध चित्रकार बाबू अवनीन्द्र-नाथ ठाकुर के बनाये हुए हैं। उनकी संख्या बारह है। वे कार्ड साइज़ के हैं। प्रत्येक चित्र के ऊपर एक बारीक काग़ज़ लगा दिया गया है। उस पर लाल रँग में वह रुबाई छाप दी गई है जिसके विषय से उस चित्र का सम्बन्ध है"।

क्या हम आशा कर सकते हैं कि हमारे कालिदास, भारवि, क्षेमेन्द्र, श्रीहर्ष आदि के ग्रन्थों के भी ऐसे ही सचित्र संस्करण कभी निकलेंगे?

८—एक नये द्वीप का आविर्भाव।

दक्षिणी अमेरिका के उत्तर में वेस्ट इंडीज़ नाम का एक द्वीप-समूह है। इस समूह का एक द्वीप ट्रिनिडाड नामक है। इस ट्रिनिडाड और दक्षिणी अमेरीका के वेनीज़ूला नामक प्रदेश के बीच में "सर्प-मुख" नाम का एक अन्तरीप या जल-संयोजक है। हाल ही में इस जल-संयोजक पतले समुद्र-भाग में एक द्वीप अकस्मात् ऊपर उठ आया है, जो ३५ मील लम्बा और १० मील चौड़ा है। कुछ दिन हुए एक छोटा सा द्वीप जापान के पास भी इसी प्रकार समुद्र में प्रकट हुआ था।

हमारी पृथ्वी बड़ी बड़ी विचित्रताओं का आकर है। कभी तो वह थल के बड़े बड़े टुकड़ों को अपने पेट में पानी के भीतर रख लेती है और कभी उन्हें टापुओं के रूप में बाहर निकाल देती है।

९—काले हबशी की उच्च-पद-प्राप्ति।

काले और भूरे चमड़ेवालों के साथ गोरे चमड़े के परम सभ्य और सुशिक्षित लोग जैसा सलूक अफ़रीक़ा में कर रहे हैं, वह किसी से छिपा नहीं। अमरीका वाले भी उनके साथ सभ्यजनोचित व्यवहार नहीं करते। परन्तु वहाँ के आला अफ़सर वैसा नहीं करते। वहाँ के भूतपूर्व प्रेज़िडेंट रूज़वेल्ट साहब ने तो बुकर टी० वाशिङ्गटन नामक एक नामी हबशी के साथ बैठ कर खाना तक खाया था। अब वहाँ एम लिविस नाम के एक हबशी को एक बहुत ऊँचा पद मि है। वह अमेरिका की संयुक्त रियासतों का असिस्टंट अटार जनरल नियत किया गया है। वहाँ की गवर्नमेंट के इस क से अनुदार गौरकायों के दिलों की क्या दशा हुई होगी सो भ वान ही जाने। अफ़रीक़ा को "Whiteman's country" (गोरों का देश) बनाने के ठेकेदारों की भी आबरू में शाक इस काम से बट्टा लगा हो।

१०—एक वेदान्तशास्त्रज्ञ महिला।

मदरास-प्रान्त के मायावरम नगर में कामाक्षी अ नाम की एक भद्र महिला रहती हैं। संस्कृत की ये पू पण्डिता हैं। संस्कृत धाराप्रवाह बोल भी सकती हैं और लि भी सकती हैं। इन्होंने अद्वैतदीपिका नामक एक पुस्तक संस्कृ में लिखी है। वह अभी हालही में प्रकाशित हुई है। टी० एस० नरेश शास्त्री ने उसका अनुवाद भी अँगरेज़ी में कि है। पुस्तक छोटी है; पर है बड़े महत्त्व की। वेदान्त के तत्त्व उसमें बड़ी ख़ूबी के साथ, सरल संस्कृत में, समझाये गये हैं कामाक्षी महाशया विधवा हैं। कावेरी नदी के तट पर माया वरम में रहती हैं। अच्छे घर की हैं। अपना प्रायः सारा समय पुस्तकावलोकन और वेदान्त-विचार में ही आप ख़र्च करती हैं

११—"ज़माना" और हिन्दी।

उर्दू के मासिक पत्र "ज़माना" के गत आगस्ट और सेप्टम्बर के सम्मिलित अङ्क में मुसल्मानों के उर्दू-प्रेम और हिन्दी-द्वेष के सम्बन्ध में एक नोट निकला है। उसका कुछ अंश नीचे दिया जाता है:—

"उसूलन् हिन्दी-उर्दू में कोई फ़र्क़ नहीं, मगर जिसको आज कल उर्दू कहते हैं वह निन्नानवे फ़ी सदी हिन्दुओं की मादरी ज़बान नहीं है। हिन्दोस्तान में सिर्फ़ काश्मीरी हिन्दुओं की मादरी ज़बान उर्दू कही जा सकती है। बाक़ी किसी ज़ात या फ़िरक़े की मादरी ज़बान उर्दू नहीं है। हाँ, क़दीम ताल्लुक़ात और सरकारी ज़बान होने की हैसियत से हिन्दुओं की कसीर तादाद को उर्दू लिखने, पढ़ने और समझने में महारत कामिल है। बाज़ ज़ातों के लिए उर्दू "पिदरी ज़बान" होने का दावा कर सकती है। अभी हाल में हमारे "कामरेड" ने एक मुदल्लल आर्टिकिल में बयान किया था कि मुसल्मानों की उर्दू ज़बान और उसके मौजूदा रस्मुलख़त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को नहीं छोड़ सकते। हमने इन वजूह पर ग़ौर किया तो मालूम हुआ कि बजिन्सहू यही वजूह हिन्दुओं को हिन्दी से किसी तालुक़ करने नहीं देते। हिन्दुओं का बहुत बड़ा सरमाया हिन्दी में मौजूद है। हिन्दू-घरों में मस्तूरात हिन्दी पढ़ने-लिखने की तरफ़ राग़िब हैं; और करोड़ों घरों में सिर्फ़ देव-नागरी में बाप-बेटी, भाई-बहन और मियाँ-बीबी से ख़त किताबत होती है। हिन्दी ही के शौक़ से संस्कृत की तहसील का शौक़ पैदा हो सकता है। गोया संस्कृत की तालीम का, जिसमें हिन्दुओं की आस्मानी सहायफ़ और तमाम मुक़द्दस कुतब मौजूद हैं, पहला ज़ीना हिन्दी है"।

"ज़माना" की इस सम्मति का हम हृदय से अनुमोदन करते हैं।

१२—चित्रमय-जगत् ।

पूने के चित्रशाला-प्रेस से हिन्दी में चित्रमय-जगत् नाम का एक मासिक पत्र निकलता है। इसके दस बारह अङ्क इस समय तक निकल चुके हैं। हर अङ्क में बड़े आकार के १६ पृष्ठ रहते हैं। यह दो तरह के काग़ज पर छपता है। चिकने काग़ज के संस्करण का मूल्य ५॥) और मामूली काग़ज़ के संस्करण का ३।) रुपये हैं। इस पत्र में सुन्दर सुन्दर अनेक चित्र निकलते हैं। 'चित्रशाला' के पत्र में चित्रों की अधिकता होनी ही चाहिए। जब से पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी इस पत्र का सम्पादन करने लगे हैं तब से इसकी भाषा और विषय-निर्वाचन में बहुत उन्नति हुई है। इसके लेख अब विशेष मनोरञ्जक और उपयोगी होने लगे हैं। कवितायें भी इसमें अच्छी निकलने लगी हैं; चित्रों का क्या कहना है। चित्रशाला प्रेस तो चित्रों की खानही है। यह प्रेस रङ्गीन चित्रों का भी व्यवसाय करता है और सवा रुपये में १०० रंगीन चित्र बेचता है—अर्थात् एक पैसे से भी कम में एक चित्र! इस प्रेस के रंगीन चित्र मासिक पुस्तकों में भी लगाये जा सकते हैं।

हम इस चित्रमय-जगत् का अभ्युदय हृदय से चाहते हैं।

१३—माननीय कृष्णस्वामी आइयर का देहावसान ।

उस साल इलाहाबाद की कांग्रेस के मण्डप में जिन कृष्णस्वामी आइयर की एक-लिपि-विस्तार-विषयक वक्तृता श्रवण करके श्रोताजन मुग्ध हुए थे और जिनका चित्र और संक्षिप्त चरित सरस्वती में एक वर्ष पहले प्रकाशित हो चुका है वे अब इस संसार में नहीं हैं। गत दिसम्बर के अन्त में उनका शरीरान्त होगया। ये बड़ेही धार्म्मिक और उदार थे। इनके औदार्य्यपूर्ण दान गुप्त हुआ करते थे। संस्कृत के ये अच्छे विद्वान् थे। अभी उस दिन मदरास विश्वविद्यालय के वार्षिक जलसे के अवसर पर इन्होंने जो वक्तृता दी थी वह पाठकों को न भूली होगी। मदरास हाईकोर्ट के जज माननीय नेयर महोदय ने भावी हिन्दू-विश्वविद्यालय पर जो कठोर दोषारोपण किया था वह आइयर महाशय को असह्य प्रतीत हुआ। अतएव आपने अपनी वक्तृता में, परोक्षरीति से, उसका खण्डन बड़ी ही योग्यता और विद्वत्ता-पूर्ण भाषा में किया। ये देवनागरी लिपि के व्यापक प्रचार के पक्षपाती थे और हिन्दी के भी हितचिन्तक थे। देवनागरी वर्णमाला को निर्दोष बनाने की इच्छा से इन्होंने कुछ नये वर्णों की ईजाद के लिए एक विज्ञापन दिया था और सब से अच्छी वर्ण-कल्पना करनेवाले को पुरस्कार भी देना चाहा था। पहले आप मदरास-हाईकोर्ट के जज थे। आपकी योग्यता को देख कर मदरास के गवर्नर ने आपको अपनी कार्य्यकारिणी समिति का सभासद बनाया था। इस देहली-दरबार में आपको सी० एस० आई० की पदवी मिली थी। ऐसी उन्नत और लोक-हितरत आत्मा के उठ जाने का किसे खेद न होगा?

पुस्तक-परीक्षा ।

१—**हिन्दी जैन**। यह साप्ताहिक पत्र बम्बई से निकलने लगा है। १६ आक्तोबर ११ तक इसके १० अङ्क निकल चुके हैं। वार्षिक मूल्य इसका ३ रुपये है। जैन धर्म्म से सम्बन्ध रखनेवाली बातें इसमें अधिक रहती हैं; और, तद्-पेक्षा कम। हाथी बिल्डिंग्, कालबादेवी रोड, बम्बई के पते से मैनेजर को लिखने से यह पत्र मिलता है।

❋

२—**विरह-सरोवर**। श्रीगोविन्ददत्त-त्रिपाठी-कृत। पृष्ठ-संख्या ६६। बिना मूल्य! प्राप्ति-स्थान अज्ञात। इसमें भैरवजी के विषय में भजन, दादरा, खेमटा, होली, प्रभाती और ग़ज़लें आदि हैं। कविता भक्तिभावपूर्ण है। भैरवजी के भक्तों के लिए विशेषतः विलोकनीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—प्रेम-महाविद्यालय की रिपोर्ट। वृन्दावन में इस नाम का एक विद्यालय है। यह उसकी गत वर्ष की रिपोर्ट है। रिपोर्ट से मालूम होता है कि इस विद्यालय के उद्देश बड़े ही उच्च हैं। इसमें अँगरेज़ी और देशी भाषाओं में साधारण शिक्षा के सिवा कला-कौशल, व्यापार-वाणिज्य और अन्य अनेक औद्योगिक विषयों की शिक्षा दी जाती है। ऐसी शिक्षा की बड़ी आवश्यकता है। अनेक सम्मान्य पुरुष इस विद्यालय के सहायक हैं। अध्यापक भी योग्य और शिक्षित हैं। इस समय इस विद्यालय में कोई २०० छात्र हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि इसमें छात्रों को मुफ़्त शिक्षा दी जाती है। द्रव्यद्वारा इसकी सहायता करना हम लोगों का कर्तव्य है। आनरेरी सेक्रेटरी, प्रेम-महाविद्यालय, वृन्दावन को लिखने से इस विद्यालय-सम्बन्धिनी सब बातें मालूम हो सकती हैं।

४—यूनान-रूम-युद्ध। महाराज रीवाँ ने हिन्दी-साहित्य को श्रीसम्पन्न करने का उपक्रम कर दिया, यह उसके लिए बड़े सौभाग्य की बात है। आपने रणरत्नमाला नामक पुस्तकावली निकालना आरम्भ किया है। यह पुस्तक उसी माला की पहली लड़ी है। इसकी रचना बाबू जीतनसिंह ने विशेषतः सर आशमीड बार्टलेट साहब की लिखी हुई एक अँगरेज़ी पुस्तक के आधार पर हिन्दी में की है और स्वयं महाराजा रीवाँ ने इसे अपनी 'सेना के वीर योद्धागण' को समर्पण किया है। पुस्तक मोटे काग़ज़ पर बड़े टाइप में छपी है। अच्छी जिल्द बँधी हुई है। कोई ४०० पृष्ठों में समाप्त हुई है। कई युद्ध-स्थलों के नक़शों से इसकी उपयोगिता बढ़ाई गई है। टर्की का भी एक बड़ा नक़शा पुस्तक में है। महाराजा रीवाँ और टर्की के सेनापति के भी चित्र हैं। १८९७ ईसवी में ग्रीस और टर्की का जो युद्ध हुआ था उसीका इसमें वर्णन है। इसके सिवा यूनान का प्राचीन इतिहास और टर्की की वर्त्तमान अवस्था का—१९१० ईसवी तक का—विवेचन भी है। ऐसी पुस्तकों की हिन्दी में बड़ी ज़रूरत है। आशा है महाराजा रीवाँ इस क्रम को जारी रक्खेंगे और अन्यान्य आधुनिक युद्धों पर भी पुस्तकें लिखाकर इस माला की पूर्त्ति करेंगे। पुस्तक का मूल्य ढाई रुपये है। बाबू जीतनसिंह, दरबार हाई स्कूल, रीवाँ—अथवा सेक्रेटरी, दरबार रीवाँ से यह मिल सकती है।

५—होनहार बालक, प्रथम भाग। यह ७४ पृ की छोटी सी पुस्तक है। मूल्य ३ आने है। जोधपुरनिवासी मुंशी देवीप्रसादजी मुंसिफ़ की लिखी हुई है। हमारे पास इसकी जो कापी आई है उसके पन्ने कटे हुए न थे। काटने में पाँच मिनट गये। काटते समय जी में यही होता था कि यह न आती तो अच्छा था। पर, पढ़ने पर चित्त की वृत्ति बदल गई। जी में आया कि पाँच क्या पच्चीस मिनट तक भी इसकी प्राप्ति के लिए परिश्रम करना पड़ता तो बहुत न था। इसमें मुंशीजी ने सिद्धराज सोलंकी, राना सांगा, वीरबल, नौशेरवाँ, हातमताई, सिकन्दर आदि २१ प्रसिद्ध पुरुषों के लड़कपन की बड़ी ही मनोरञ्जक घटनाओं का संक्षेप में वर्णन किया है। उनसे यह सूचित होता है कि भाग्यशालियों के भावी भाग्योदय के चिह्न बाल्य काल से ही दिखाई देने लगते हैं।

६—परिहारों का संक्षिप्त इतिहास। यह पुस्तक भी पूर्वोक्त मुंशी जी की सङ्कलित की हुई है। इसका मूल्य ४ आने है। इसमें मुंशीजी ने अनेक ऐतिहासिक पुस्तकों के आधार पर परिहारों की वंशावली और उनका उपलब्ध इतिहास, थोड़े में, लिखा है।

७—हिन्दी-ट्रैन्सलेटिंग् कम्पनी की चार पुस्तकें। कलकत्ते के ९६--९७, लोअर चितपुर रोड में इस नाम की एक कम्पनी है। पुस्तकें प्रकाशित करने और बेचने का यह कारोबार करती है। उसके मैनेजर ने कृपा करके चार पुस्तकें हमारे पास भेजी हैं। पहली पुस्तक कोई दो सौ पृष्ठ की, गद्यमाला नामक है। हिन्दी के नामी लेखक श्रीपण्डित जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी के फुटकर लेखों का इसमें संग्रह है। समाज, साहित्य, व्यापार, हँसी-मज़ाक़ आदि कई विषयों पर चतुर्वेदीजी ने समय समय पर जो लेख लिखे थे वे सब इसमें हैं। इसके कई लेख विशेष मनोरञ्जक हैं। चतुर्वेदीजी के लेखनकौशल से तो कोई भी ख़ाली नहीं। मूल्य इसका दस आने है। दूसरी पुस्तक—भारत की वर्त्तमान दशा-नामक है। यह एक अँगरेज़ी पुस्तक का अनुवाद है। अनुवादक पूर्वोक्त पण्डित जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी हैं। पुस्तक का विषय नाम ही से व्यक्त है। पुस्तक छोटी, केवल ६६ पृष्ठ की,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है; पर इसमें भारत की वर्त्तमान दशा थोड़े में बड़ी योग्यता से दिखाई गई है। पुस्तक पढ़ने लायक़ है। मूल्य पुस्तक पर लिखा नहीं। यह चार पाँच वर्ष पहले की छपी हुई है। तीसरी पुस्तक—हिन्दी-व्याकरणसार है। पण्डित रामावतार शर्म्मा, साहित्याचार्य्य, एम० ए०, ने इसकी रचना की है। ६३ पृष्ठ की इस पुस्तक का मूल्य आठ आना है। संक्षिप्त होकर भी हिन्दी का यह व्याकरण नये ढँग का है। इसमें कई बातें विचारणीय हैं। चौथी पुस्तक—कमलाकान्त का इज़हार है। बंकिम बाबू के बँगला भाषा के एक लेखांश का यह हिन्दी अनुवाद है। इसमें केवल १६ पृष्ठ हैं। मूल २ आने है। अनुवादक बाबू ब्रजनन्दनसहाय हैं। पढ़िए, तबीयत ख़ुश होगी।

❋

८—**सुवर्णमाला**। बम्बई (भायखला) की पुरुषोत्तम एंड कम्पनी अपने लक्ष्मी आर्ट प्रेस से सुवर्णमाला नाम की एक पुस्तिका कोई दो वर्ष से निकाल रही है। साल में इसके कोई ६ अङ्क निकलते हैं। चित्रकार धुरन्धर-अङ्कित इसमें प्राचीन काव्यों, नाटकों और पुराणादि की प्रसिद्ध प्रसिद्ध घटनाओं के मनोहर चित्र रहते हैं। प्रत्येक अङ्क में एक दो नहीं, दस बारह चित्र आर्ट पेपर पर प्रकाशित होते हैं। अन्त में उनका संक्षिप्त विवरण भी अँगरेज़ी, मराठी, गुजराती और हिन्दी में रहता है। इसके दिवाली के अङ्क में मृच्छकटिक नाटक सम्बन्धी १३ चित्र हैं। वसन्तसेना-मदनिका, वर्षा-उपालम्भ, पुष्पस्वागत, वधस्तम्भ आदि चित्र बहुत अच्छे और भावपूर्ण निकले हैं। यथासम्भव प्रत्येक चित्र के नीचे उससे सम्बन्ध रखने वाली यदि संस्कृत-कविता भी प्रकाशित कर दी जाया करे तो और भी अच्छा हो। वार्षिक मूल्य इस माला का दो रुपये है। आकार इसका छोटा है। टाइटिल पेज हर अङ्क में नया लगाया जाता है।

❋

९—**तृतीय वैद्यक-सम्मेलन**। गत वर्ष, आक्टोबर में, प्रयाग में जो वैद्यक-सम्मेलन हुआ था उसी की यह रिपोर्ट है। यह इस तरह का तीसरा सम्मेलन था। पहला नासिक में और दूसरा पनवेल में हुआ था। इस रिपोर्ट में सभापति महोदय की वक्तृता को छोड़ कर उक्त सम्मेलन-सम्बधिनी और सभी बातें हैं। सभापति की वक्तृता अलग प्रकाशित होने वाली है। रिपोर्ट में वैद्यविद्या-विषयक अनेक निबन्ध हैं, जो सम्मेलन में पढ़े गये थे। उनमें कही गई कितनी हीं बातें बड़े महत्त्व की हैं। उन्हें पढ़ कर सर्वसाधारण जन भी लाभ उठा सकते हैं। पुस्तक का मूल्य बारह आना है।

मिलने का पता:—आयुर्वेद-महामण्डल, प्रयाग।

❋

१०—**कबीर साहब का बीजक**। कबीरदास के बीजक के आज तक जितने संस्करण निकले हैं यह संस्करण उन सब में अच्छा और प्रामाण्य है। बड़े चिकने काग़ज़ पर बड़े सुन्दर टाइप में, बड़ी शुद्धता से छापा गया है। इसके सम्पादक संयुक्त-प्रान्त के ज़िला हमीरपुर में रहने वाले पादड़ी अहमदशाह हैं। उन्हीं को लिखने से शायद यह मिलता है। दाम पुस्तक पर नहीं लिखा। अनेक छपी और हस्तलिखित पुस्तकों का मुक़ाबला करके यह पुस्तक तैयार की गई है। फ़ारसी और अरबी आदि भाषाओं के क्लिष्ट शब्दों के यथार्थरूप नीचे, फुट-नोट में फ़ारसी अक्षरों में दे दिये गये हैं। यह पूरा बीजक है। कोई अंश छूटने नहीं पाया। पुस्तक का सम्पादन बड़ी योग्यता और सावधानी से किया गया है। पदों के पदच्छेद में कहीं कहीं दृष्टिदोष से भूलें रह गई हैं। परन्तु इससे पुस्तक का महत्त्व रत्ती भर भी कम नहीं हुआ।

❋

११—**शीलाभरण**। प्रतापगढ़ (मालवा) के श्रीयुत क्रोड़ीमल मालू ने इसकी रचना की है। यह १०४ पृष्ठ की, छोटे आकार की, एक पद्यात्मक पुस्तक है। इसमें विशेष कर गीत हैं। उनमें महेश्वरी लोगों को सदुपदेश दिया गया है। इन लोगों में जो कुरीतियाँ हैं उनका परिणाम भी दिखाया गया है। कुछ कवितायें मारवाड़ी भाषा में हैं, कुछ बोल चाल की हिन्दी में। कविता के विषय सब अच्छे हैं। कविता भी बुरी नहीं। महेश्वरी-मण्डल की प्रेरणा से यह पुस्तक लिखी और प्रकाशित की गई है। पुस्तकारम्भ में एक समर्पण संस्कृत में है। उसमें व्याकरण की कई एक भूले हैं। उदाहरणार्थ:—

भवद्यशकीर्तने न च मे न श्रद्धा कल्पभृत्येषु।

छन्दोभङ्ग भी कई जगह है। अगले संस्करण में इन त्रुटियों का संशोधन हो जाना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२—**नृपसूर्य्यास्त**। लेखक, बाबू दामोदरसहायसिंह, स्कूल सब-इन्स्पेकृर, आरा। दाम एक आना। पुस्तक पद्यात्मक है। महाराज सातवें एडवर्ड का जीवन-चरित और उनकी मृत्यु पर शोक-प्रकाशन इस कविता का विषय है। पुस्तक अच्छी है।

चित्र-परिचय।

सरस्वती की गत संख्या में वार्षिक विचार शीर्षक लेख में यह उल्लेख किया गया था कि अगले वर्ष, सरस्वती की किसी किसी संख्या में, दो दो रङ्गीन चित्र भी दिये जाने का उद्योग किया जायगा। हर्ष की बात है कि सरस्वती के उत्साही सञ्चालकों ने इस वर्ष की सरस्वती के पहले ही अङ्क में दो रङ्गीन चित्र देकर अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना आरम्भ कर दिया। यदि सरस्वती के प्रेमी पाठक महाशय भी अपने कर्तव्य का पालन करते रहे तो, आशा है, सरस्वती की आगामिनी अनेक संख्याओं में भी एकाधिक रंगीन चित्रों की अनुपम शोभा उन्हें देखने को मिलती रहेगी। इस संख्या के चित्रों का परिचय सुनिए:—

(१)

दान्ते का स्वप्न।

इस संख्या में पहला रंगीन चित्र विदेशी है। चित्रकार भी विदेशी; चित्र के पात्र भी विदेशी; भाव भी विदेशी; और जिस कवि की कल्पना के आधार पर यह चित्र चित्रित किया गया है वह भी विदेशी। यह चित्र इटली देश के रसेटी नामक प्रसिद्ध चित्रकार का चित्रित किया हुआ है। इस चित्र को बने कोई १५० वर्ष हुए। यह चित्र पहले पहल सन् १८६८ ईसवी की इटली की प्रदर्शिनी में प्रदर्शित किया गया था। उस समय यह चित्र पूरी तरह से तैयार नहीं हुआ था; तो भी, अर्धपरिष्कृत अवस्था में ही, वहाँ इसकी बड़ी प्रशंसा हुई। इटली में दान्ते नामक एक प्रसिद्ध कवि होगया है। उसने अपने एक काव्य में अपने ही एक कल्पित स्वप्न का वर्णन किया है। उसी के आधार पर चित्रकार रसेटी ने दान्ते के उस कल्पित स्वप्न को चित्रित करके प्रत्यक्ष कर दिखाया है। कवि दान्ते बड़ा रसिक था। उसने अपनी एक चिराराध्या सुन्दरी को अपना मन समर्पण कर दिया था। दान्ते खड़ा हुआ, अर्धजाग्रतावस्था में, स्वप्न देख रहा है कि उसकी प्रेमिका के जीवनका का अन्तिम पर्दा गिर गया! दो सखियाँ कफ़न लिये खड़ी हैं। उस सुन्दरी का सौन्दर्य यहाँ तक बढ़ा चढ़ा था कि प्राण हो जाने पर भी दान्ते का मन, मनोज का रूप धा कर के, उसके प्रेमामृत का पान करने लगा। इस घटना कवि और चित्रकार दोनों ने उस सुन्दरी के सौन्दर्य पराकाष्ठा दिखा दी। देखिए, दान्ते की आकृति पर चित्रक ने नैराश्य भाव को कैसी अच्छी तरह झलकाया है। सुनते यह चित्र रसेटी के कई वर्ष के परिश्रम का फल है।

(२)

भयभीत शिकारी।

यह दूसरा रंगीन चित्र स्वदेशी है। गवर्नमेंट-आर्ट-स्कू कलकत्ता, में शिक्षा पाये हुए हकीम मुहम्मदखां ने इस चित्र अङ्कित किया है। एक शौकीन शिकारी तीर-कमान ले शिकार खेलने गया। जंगल में जाकर उसने एक हिरन के पी अपना घोड़ा छोड़ दिया। जिस समय उसने तान कर हिरन शरीर में तीर मारा उसी समय सिंह ने भी उस पर आक्रम किया। तीर का लगना और सिंह की झपट—ये दोनों क्रियां ठीक एकही समय हुईं। घोड़े पर चढ़े हुए शिकारी को आ देख, सिंह ने भयङ्कर गर्जना कर के उसकी ओर बड़ी क्रो दृष्टि से देखा। सिंह की घोर गर्जना को सुन और भयङ्क मूर्त्ति को देख कर शिकारी के देवता विदा होने लगे। उस भयभीत होकर घोड़े को तुरन्त वहीं रोक दिया। देखिए, स समय का भावभरा दृश्य इस चित्र में कैसी उत्तमता से दिखा गया है।

(३)

दिल्ली-दरबार के चित्र।

इस संख्या में दिल्ली-दरबार के कितने ही चित्र प्रकाशि किये गये हैं। पाठक उन को देखें और दरबार-दर्शन-नाम कविता को पढ़ें, तो मालूम होगा कि दरबार के दिनों दिल्ली के दृश्य देख कर दर्शकों के चित्त कितने चकित आनन्दित हुए थे।

रामजीलाल शर्मा।

Printed and Published by Panch Kory Mittra at the Indian Press, Allahabad.
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दान्ते का स्वप्न ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भयभीत शिकारी ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

सरस्वती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवानी प्रसाद

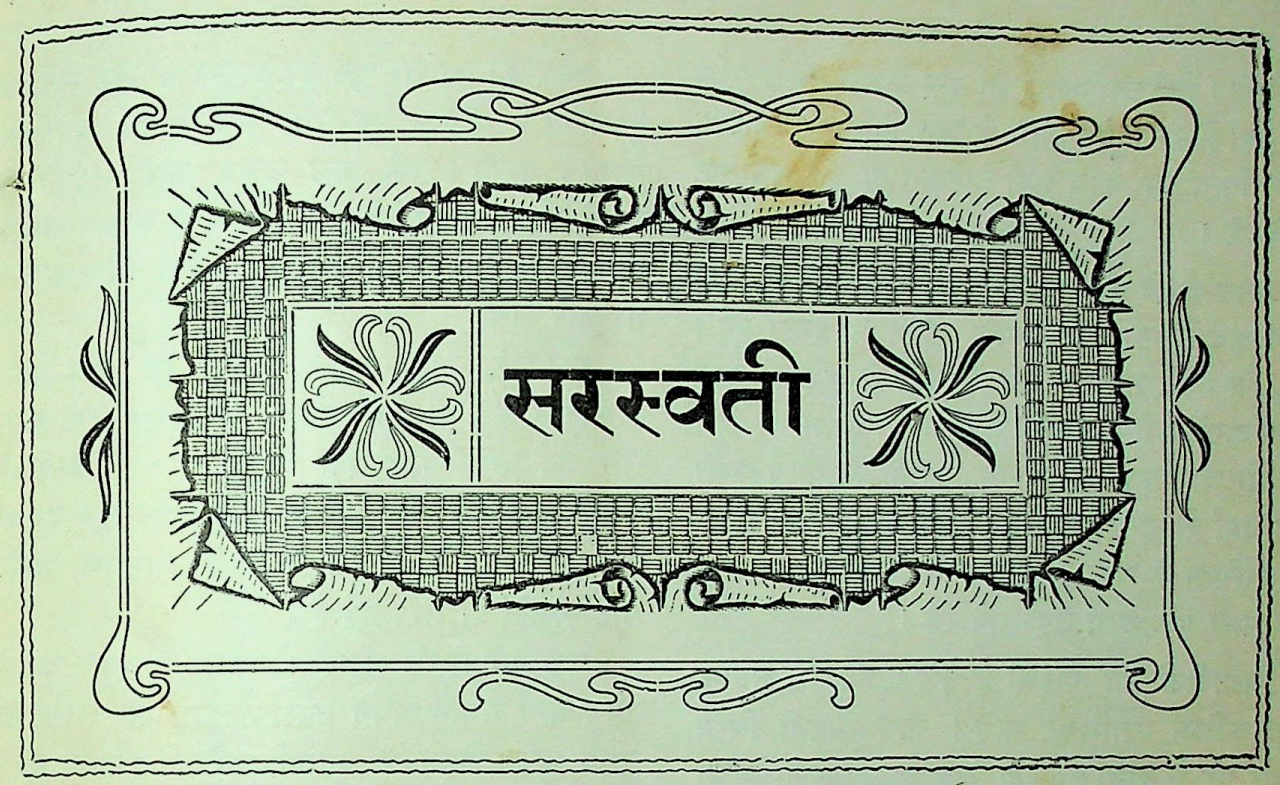

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग १३] १ फरवरी, १९१२—माघ शुक्ल १३, १९६८। [संख्या २

नर्त्तकाचार्य्य पण्डित गिरिधारीलाल तिवारी।

हम भारतवर्षवासियों के लिए त्योहार बड़े ही आनन्ददायक हैं। त्योहारों में हमारे यहाँ बहुधा गीत-वाद्य आदि होते हैं।

गत कृष्णाष्टमी के समय यहाँ जबलपुर में भी बड़ी धूम-धाम रही। सुनते हैं, यहाँ सेठ ख़ूबचन्दजी अपने मन्दिर में बड़ी भक्ति से जलसा कराया करते थे। उनको गाना सुनने का बड़ा शौक़ था। इस कारण वे दूर दूर के गवैयों को बहुधा बुलाया करते थे। आज कल उनके उत्तराधिकारी सेठ नारायणदासजी हैं। आपको भी इन बातों से विशेष प्रेम है। आप भी प्रत्येक त्योहार में, आगे की प्रथा के अनुसार, उत्सव करते और गवैयों को बुलाते हैं। इस वर्ष आपने लखनऊ के एक प्रसिद्ध नर्त्तक को बुलाया था। उन्होंने कोई एक महीने तक अनेक प्रकार के नृत्यों से सबको ख़ुश किया।

नर्त्तकाचार्य्य का नाम है पण्डित गिरिधारीलाल तिवारी। आप कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। आपका प्रथम निवास-स्थान लखनऊ है। फर्रुख़ाबाद में आप की ससुराल है। कुछ समय से आप फर्रुख़ाबाद में ही रहते हैं। आपके ११ वर्ष का एक लड़का है, जो अभी हिन्दी पढ़ता है। आठ नौ वर्ष की एक कन्या भी है। आपके गुरु थे आप ही के पिता, पण्डित प्रकाशजी तिवारी। आपने पिता के ही पास नौ वर्ष की उम्र से यह विद्या सीखना आरम्भ किया था। कोई १८ वर्ष में इन्होंने इसे समाप्त कर पाया।

आपके पिता नैपाल-नरेश के यहाँ १००) मासिक वेतन पर इसी विद्या की शिक्षा देने का कार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते थे। गिरिधारीलाल भी उस समय उनके साथ थे। वहाँ पिता के देह-त्याग के बाद गिरिधारीलालजी अपने पिता का कार्य बड़ी योग्यता से कई वर्ष तक करते रहे।

आप कहते हैं कि वहाँ से आपका दिल कुछ साल बाद उचटा और भ्रमण करने की इच्छा हुई। बस, सौ रुपये माहवार की नौकरी छोड़ कर आप भ्रमण करने लगे। घूमते घूमते आप दतिया पहुँचे। वहाँ भी आप कुछ समय तक नर्त्तक का कार्य करते रहे। वहाँ से आप ग्वालियर चले गये। वहाँ महाराज सेंधिया के यहाँ आपका चित्त रम गया। इससे कुछ साल तक आप वहीं बने रहे।

तिवारीजी का कहना है कि एक बार जयपुर के दो कथिक ग्वालियर आये। वहाँ अपनी विद्या के बल पर वे दोनों ६०) मासिक वेतन पर नौकर हो गये। पर उन्हें पण्डितजी के वेतन, ख्याति, मान आदि का पता लगने पर वे उनसे डाह करने लगे। उन्होंने महाराज से अर्ज़ तक कर दी कि हमारा मुक़ाबला दूसरे नर्त्तक से होना चाहिए।

इस पर, एक रोज़, आम दरबार में, दोनों पक्षों का सामना हुआ। कई प्रकार के हाव-भाव-पूर्ण नृत्य का जवाब वे लोग भी देते गये। पर, अन्त में, पण्डितजी ने हौज़ में भरे हुए पानी की सतह पर कोई ५ मिनट तक नृत्य किया! तब तो उन लोगों के होश उड़ गये और पण्डितजी की बड़ी प्रशंसा हुई।

हार जाने के कारण वे कथिक पण्डितजी के पूरे दुश्मन बन बैठे और हमेशा इनको वहाँ से हटा देने का प्रयत्न करने लगे। पण्डितजी को ज्योंहीं इनका षड्यन्त्र मालूम हुआ त्योंही आप वहाँ से चल दिये।

घूमते फिरते आप आगरे पहुँचे। वहाँ आप नर्त्तक का स्वतन्त्र पेशा करने लगे। वहाँ भी आपकी बड़ी ख्याति हुई। वहाँ पर आपने अनेक रईसों और आफ़िसरों को ख़ुश करके अच्छे अच्छे सर्टिफ़ीकट प्राप्त किये। कोई दो ढाई साल आप वहाँ रहे।

आप की प्रशंसा सुन कर मथुरा के सेठ लक्ष्मी दास जी ने आपको बुलाया और अपने यहाँ रख लिया। परन्तु उसके कुछ समय बाद सेठजी के लड़के की मृत्यु हो गई। इस शोक के कारण सेठ का कारोबार ढीला हो गया। यह देख आप वहाँ से भी चल दिये।

इस दफ़े आपने सङ्कल्प किया कि अब कभी नौकरी न करूँगा। अतएव आप अपने प्रण के अनुसार अब स्वतन्त्रतापूर्वक रहा करते हैं। आप की ख्याति दिन दिन बढ़ रही है। आपको दूर दूर से निमंत्रण आया करते हैं। आपकी नोटबुक अनेक सर्टिफ़िकटों से भरी हुई है।

एक बार किसी जलसे में आप जौनपुर बुलाये गये। वहाँ आपने अपने कला-कौशल से लोगों को इतना प्रसन्न किया कि आपकी बड़ी ही प्रशंसा हुई। आपके कई फोटो निकाले तथा विलायत भेजे गये। सात आठ सौ रुपया आपको बतौर इनाम के मिला।

वास्तव में पण्डितजी अपने फ़न में अद्वितीय हैं। यहाँ के बूढ़े से बूढ़े यही कहते हैं कि उन्होंने ऐसा नाचने वाला कहीं नहीं देखा। आपके नाचने में जो विलक्षणतायें हैं उनमें से कुछ का उल्लेख किया जाता है। वैसे तो फ़र्श पर सभी नर्त्तक नाचते हैं पर आपके नाच में बहुत विशेषता है। नाचते समय नर्त्तक पैरों में घुँघुरू बाँधते हैं। आप ऐसा नहीं करते। आप मुँह से ऐसी विचित्र ध्वनि निकालते हैं जो घुँघुरू की ध्वनि को भी मात करती है। जिसे यह बात मालूम न हो, अथवा जिसकी दृष्टि पण्डितजी के धीरे धीरे चलते हुए ओंठों पर और न पड़े, वह यह नहीं जान सकता कि घुँघुरू बज रही है या कोई और चीज़ है। जहाँ जैसी तान टूटती है वहाँ वैसी ही आवाज़ भी आती है। उस समय यही जान पड़ता है कि घुँघुरू बज रही है।

तलवारों पर, आरों की धारों पर, पहिये पर लगी हुई कीलों की नोकों पर भी आप सुगमता-पूर्वक नाचते हैं। फ़र्श पर और इन धारदार चीज़ों के ऊपर नाचते समय आपका पैर बराबर एकसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नर्त्तकाचार्य्य पण्डित गिरिधारीलाल तिवारी।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठता और
सकते हैं। आ
प्रफुल्लित रहत

आप अप
फ़र्श पर शक
हैं। उन पर
पर क्या मजा

कभी कभ
उठी हुई दीवा
भी उस समय
थालियाँ सर
उनका पानी
कुछ रुकावट
खड़े हो जाते
थाली की गति
नीचे की दो
दूसरे की
इच्छानुसार
मुँह से करते
नाचते हैं।

सरकसों
शरण लेकर
को छाते वाले
बिना छाते य
सुगमतापूर्वक
आप घुँघरू

इस तर
मनो-रञ्जन
हैं। दूध और
बहुत थोड़ा
कि आप यह
खाना छोड़ा
सात्विकी है।
शरीर बेहद
बोझ से बता
में तो पण्डि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठता और गिरता है। आप आसानी से घूम भी सकते हैं। आपके मुँह की चेष्टा नाचते समय सदा प्रफुल्लित रहती है।

आप अपने शरीर का हलकापन दिखाने के लिए फ़र्श पर शकर के बताशे बिछवा कर उन पर नाचते हैं। उन पर आप ख़ूब घूमते हैं—ख़ूब चलते हैं—पर क्या मजाल जो एक भी बताशा फूट जाय।

कभी कभी लहर में आकर आप थालियों की उठी हुई दीवारों पर भी नाचते हैं। थालियों में पानी भी उस समय आप भर लेते हैं। नाचते समय थालियाँ सरकती और घूमती भी हैं; पर न तो उनका पानी ही छलकता है और न उनके घूमने में कुछ रुकावट ही होती है। दो तीन थालियों पर आप खड़े हो जाते हैं। इच्छा करने ही से आप किसी भी थाली की गति बदल सकते हैं। यदि एक पैर के नीचे की दो थालियाँ एक तरफ़ को घूमतों हैं तो दूसरे की एक दूसरी तरफ़ को। दायें बायें इच्छानुसार उन्हें घुमा घुमा कर, घुँघरू की आवाज़ मुँह से करते हुए, बड़े कौतूहल के साथ आप नाचते हैं।

सरकसों में तार पर नाचने वाले लोग छाते की शरण लेकर अपने प्रयोग करते हैं। पर पण्डितजी को छाते वाते की आवश्यकता नहीं रहती। आप बिना छाते या किसी अन्य चीज़ की सहायता के सुगमतापूर्वक तार पर भी नाचते हैं। साथ ही आप घुँघरू की मनोहर ध्वनि भी करते रहते हैं।

इस तरह आप नाना प्रकार से लोगों का मनो-रञ्जन करते हैं। आप सदैव फलाहार ही करते हैं। दूध और फलफूल ही आपका खाना है। आप बहुत थोड़ा खाते हैं। पूँछने पर मालूम हुआ कि आप यह भी नहीं जानते कि आपने कब से अन्न खाना छोड़ा है। आपकी वृत्ति बड़ी शान्त और सात्विकी है। सम्भव है, फलाहार करते करते आपका शरीर बेहद हलका हो गया हो और इसी से उसके बोझ से बताशे भी न फूटते हों। जो हो, मेरी समझ में तो पण्डितजी वास्तव में एक विचित्र पुरुष हैं। अन्य नाचने गाने वालों में जो कितने ही दोष होते हैं वे पण्डितजी में नहीं। आपको शृंगार और ठाट बाट पसन्द नहीं। आप सादा अचकन पहन कर नाचते हैं। सादी पोशाक ही में आप हमेशा रहते हैं।

यदि पण्डितजी एक बड़ा सा तम्बू लगा कर और लम्बे चौड़े विज्ञापन देकर अपने प्रयोग दिखाते तो शायद आपकी ख्याति नवीन शिक्षित समाज में भी हो जाती। पर आपको ख्याति की बिलकुल ही परवा नहीं है। आडम्बर आपको पसन्द नहीं। आप की उम्र कोई ५० वर्ष की है। आप अपनी नृत्य-कला अपने एकलौते पुत्र को सिखाना चाहते हैं।

पण्डितजी का एक चित्र (स्केच-बस्ट) भी मैंने बनाया है। सरस्वती-सम्पादक उचित समझें तो उसे भी प्रकाशित कर दें।

गणेशराम मिश्र।

महाराना राजसिंह का पत्र।

[औरंगज़ेब के नाम]

(मन्दाक्रान्ता)

(१)

विश्वात्मा ही निखिल नुति * के योग्य है एक मात्र,
हैं पृथ्वी में प्रवर-पद से आप भी स्तोत्र-पात्र।
रक्खे चाहे सतत मुझको आप से दूर दैव;
क्षेमाकाङ्क्षी तदपि मन से आप का हूँ सदैव॥

(२)

मैं जो सेवा जब कर सकूँ दीजिएगा निदेश,
मेरी इच्छा सतत यह है हों सुखी सर्व देश।
हूँ जैसे मैं श्रम कर रहा हिन्द के मङ्गलार्थ—
औरों के भी हित अटल हूँ जानिएगा यथार्थ॥

(३)

भद्राकाङ्क्षी यह कुल रहा आप का आदि ही से,
उत्साही हूँ कुछ विनय को आज मैं भी इसी से।
ऐसा मौक़ा यदपि मुझ को ताप ही के लिए है,
होगा जैसा सुफल इस से आप ही के लिए है॥

---

* निखिल [illegible] नुति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४)

मेरे पीछे नियत कर के दीर्घ सेना सरोष—
ख़ाली हैं जो अब तक किये आप ने द्रव्य-कोष।
तत्पूर्त्यर्थ प्रचुर कर जो हैं प्रजा-प्राण-हारी—
ऐसी हूँ मैं ख़बर सुनता, हैं किये हाल जारी॥

(५)

पूछूँ क्या मैं, ग्रहण करते आप ने यों कुरीति—
सोची है क्या प्रथम अपने पूर्वजों की सुनीति?
थे क्या ऐसा कर न सकते वे महा शक्तिशाली?
किंवा थी क्या अविदित उन्हें राज-सत्ता-प्रणाली?

(६)

श्रीमान् सम्राट् अकबर जिन्हें है मिली कीर्ति-कान्ति,
रक्खे थे वे किस तरह से राज्य में पूर्ण शान्ति।
हिन्दू है या यवन, उन को था न यों भेद कोई,
थे वे ऐसे प्रभु सब प्रजा नित्य निश्चिन्त सोई॥

(७)

उत्साही थे सतत जिन के कार्य्य में आर्य्य-वीर—
थे ऐसे ही सुहृदय सुधी श्रीजहांगीर धीर।
है वैसे ही विदित सब को नीति शाहेजहाँ की,
बातें हैं ये, स्मरण रखिए, आप ही के यहाँ की॥

(८)

था औदार्य्य प्रकट कितना आपके पूर्वजों में,
हैं अद्यापि प्रथित उन के नाम धर्म्मध्वजों में।
जाते थे वे नर-वर जहाँ थे वहीं सिद्धि पाते,
क्या हिन्दू क्या यवन उन के हैं सभी गीत गाते॥

(९)

सर्व-प्रेमी बन कर न वे पा सके कौन सिद्धि?
हिन्दू-द्वेषी बन कर हुई आप की कौन वृद्धि?
कोई देखे कि अब तब से वृद्धि क्या, ह्रास ही है,
हाँ, जो कोई अब बढ़ रहा तो प्रजा-त्रास ही है!

(१०)

होता जाता दिन दिन न क्या आप का तेज धीमा?
धीरे धीरे कट-छँट रही आप की राज्य-सीमा!
जो ऐसी ही हलचल रही और आगे विशेष,
तो जावेंगे निकल कर से दूसरे भी प्रदेश॥

(११)

सोचें, श्रीमन् इस समय है राज्य की क्या अवस्था,
देखें, कैसी गड़बड़ हुई न्याय-संस्था-व्यवस्था।
उत्पातों में पड़ कर प्रजा हो रही दीन-हीन,
राज्यक्रान्ति प्रचलित हुई, होगई शान्ति लीन!

(१२)

हिन्दू, जो हैं हतविधि, हुए मृत्युकालावसन्न,
देखे जाते यवन-जन भी चित्त में अप्रसन्न!
व्यापारी हैं विवश लुटते, रो रही है रिआया,
कोई भी है कुछ न सुनता घोर अन्धेर छाया॥

(१३)

दैन्यावस्था अति बढ़ रही हो रहा देश नष्ट,
सेना को है विरत करता वेतनाभाव-कष्ट।
हैं यों ख़ाली अब जब पड़े आप के ही ख़जानें—
होगी कैसी पर-जन-दशा, सो भला कौन जानें!

(१४)

खाने को है कुछ न जिन के रात को, लोग ऐसे—
मारे मारे सब भटकते वायु में मेघ जैसे।
ऐसे दीनों पर कर कड़े ठीक है जो लगाना—
तो पृथ्वी में अब कठिन है न्याय का नाम पाना।

(१५)

होके एकस्वर कह रहा देश का देश ऐसे—
आर्य्य-द्वेषी अतिशय हुए आप, हों शत्रु जैसे।
भूले सारी स्वकुल-गरिमा; साधुओं को सताते;
लेने जाके वह कर कड़ा हैं महत्ता बताते!

(१६)

हैं विश्वासी उस पर कि जो ज्ञान है ईश्वरीय—
तो मानेंगे परम पति को आप भी अद्वितीय।
हिन्दू हों या यवन सब हैं तद्दया-दृष्टि-पात्र
सर्वव्यापी जनक सब का है वही एक मात्र॥

(१७)

विश्वात्मा के निकट सब हैं एक से, भेद क्या है?
है सो स्वामी विदित सब का, क्या किसी एक का है
नामों से है कुछ न उस में भिन्नता-भेद-भाव,
न्यारी न्यारी प्रकृति-रचना है उसी का प्रभाव॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१८)

गाते मुल्ला सुगुण उस के मसजिदों में तुम्हारे ;
पूजा जाता प्रभुवर वही मन्दिरों में हमारे ।
हैं दोनों ही विविध विधि से हैं उसी को रिझाते ;
हैं अज्ञानी नर बस वही जो उसे भूल जाते ॥

(१९)

जो हो, आगे अब बस यही आप को है जताना—
है स्रष्टा को कुपित करना दूसरों को सताना ।
तोड़ें पौधे यदि हम किसी बाग़ के भिन्न भिन्न—
तो क्या माली हम पर न हो क्रोध के साथ खिन्न ?

(२०)

है ऐसा ही कथन मुझ को अन्त में बार बार—
है आर्यों के हित यह कर क्रूर-पापानुसार ।
हो जावेगा गलित इस से शेष भी शान्ति-लेश,
हैं अन्यायी अधम नृप के योग्य ऐसे निदेश ॥

(२१)

हाँ, जो ऐसे कलुष-कर से आप खींचे न हाथ—
तो ले देखें प्रथम उन से, हैं न आँबेर-नाथ ।
मांगें पीछे मुझ प्रणयि से स्वस्थ हो एक बार,
है शूरों को समुचित नहीं मक्खियों का शिकार !

मैथिलीशरण गुप्त ।

हिन्दी-नवरत्न ।

(२)

मतिराम ।

मतिराम की बनाई हुई रसराज नामक एक पुस्तक है । उसके विषय में नवरत्न के लेखकों की राय है कि उसमें मतिराम ने 'कुल नायका (?)-भेद कह के अन्त में कह दिया है कि भाव भेद में यह आलम्बन विभाग में आता है' । मतिराम की दूसरी पुस्तक ललितललाम है । उसमें अलङ्कार-वर्णन है । सब मिला कर ४४४ पद्य उसमें हैं । उनकी तीसरी पुस्तक छन्दसार पिङ्गल है, जिसके आरम्भ के केवल दोही चार पृष्ठ लेखकों के देखने में आये हैं । मतिराम की एक और भी पुस्तक का अभी हाल में पता लगा है ; पर लेखकों के द्वारा मतिराम पर निबन्ध लिखे जाने के बाद । अतएव पूर्वोक्त दो पूरी पुस्तकों और तीसरी पुस्तक के कुछ ही पृष्ठों में अभिव्यक्त हुए कविकर्त्तव्य की बदौलत मतिराम महाकवि ही नहीं माने गये, किन्तु हिन्दी-कवियों में रत्न की उपाधि-योग्य भी वे समझे गये । लेखकों की राय में—'रसराज मतिराम का बहुत उत्तम ग्रन्थ है । नायका (?) भेद के ग्रन्थों में इसका बहुत ऊँचा पद है' । जान पड़ता है, मतिराम के इसी ग्रन्थ-पारिजात पर मुग्ध हो कर लेखक-मधुकरों ने मतिराम को कविरत्न बनाया है । यदि यही बात है तो कृष्णगीतावली की आलोचना करते समय, पृष्ठ ३२ पर, आप लोगों ने तुलसीदास के विषय में यह क्यों कहा कि—'इन्होंने नायक नायकाओं के घृणित प्रेम को छोड़ कर ऊँचे दर्जे के प्रेम का वर्णन किया है' । यदि नायक-नायिकाओं का प्रेम घृणित प्रेम है तो मतिराम के—'केलि कै राति अघाने नहीं दिनहूँ में लला पुनि घात लगाई'—इत्यादि पद्य भी घृणित प्रेम-पूर्ण हैं या नहीं ? यदि हैं तो फिर ये कैसे महाकवि और कैसे कविरत्न !

मतिराम की 'बहुत अच्छी' उपमाओं का लेखकों ने एक यह नमूना दिया है :—

पिय आयो नव बाल तन बाढ़्यो हरष बिलास ।
प्रथम बारि बूँदन उठै ज्यों बसुमती सुबास ॥

परन्तु हमारी प्रार्थना है कि यह उपमा मतिराम की उपज नहीं । रघुवंश के तृतीय सर्ग के तृतीय श्लोक :—

तदाननं मृत्सुरभि क्षितीश्वरो रहस्युपाघ्राय न तृप्तिमाययौ ।
करीव सिक्तं पृषतैः पयोमुचां शुचिव्यपाये वनराजिपल्वलम् ॥

में कही गई उपमा का रूपान्तर मात्र है । रघुवंश का हिन्दी अनुवाद करते समय इस श्लोक पर शायद आप की नज़र गई भी हो ।

मतिराम और बिहारी ने संस्कृत के अनेक सुश्लोकों का भाव अपनी अपनी कविता में रख दिया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विहारी की ऐसी कविता के कई एक उदाहरण सरस्वती में प्रकाशित भी किये जा चुके हैं।

मतिराम के महाकवि या कविरत्न होने की योग्यता या अयोग्यता के विषय में विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं।

देव।

इस कवि के रसविलास-नामक ग्रन्थ के विषय में लेखक-महाशयों की सम्मति है—"इस ग्रन्थ से उत्तम ग्रन्थ भाषा-साहित्य में मिलना कठिन है। केवल इतना ही खेद है कि इसका विषय नायका भेद है"। आपको इसका खेद है; हमें इसका खेद है, और बहुत खेद है, कि आप नायिका-भेद को बार बार 'नायका भेद' लिखते हैं। यही नहीं, आप 'नायका' और 'भेद' को अलग अलग भी कर देते हैं, एकत्र नहीं लिखते। सैकड़ों जगह आपने यह अशुद्धि की है। इससे इसे कोई दृष्टिदोष नहीं मान सकता। अच्छा यह तो आपने कहा ही नहीं कि इस ग्रन्थ में नायिका-भेद होने से इसका महत्त्व कम हो गया; केवल खेद आपने प्रदर्शित किया। अतएव आपकी यह सम्मति कि इस ग्रन्थ से उत्तमतर ग्रन्थ हिन्दी में मिलना कठिन है, पूर्ववत् रही। तो क्या रामायण और सूरसागर भी इससे बढ़ कर नहीं? और, यदि, इस पुस्तक में नायिका-भेद होने से इसका महत्त्व कम हो गया तो मतिराम के रसराज का क्यों न हुआ? यदि रसराज महत्त्वहीन पुस्तक मानी जाय तो अलङ्कारविषयक ललितललाम और एक पिङ्गल लिखने ही से मतिराम किस प्रकार महा कवि और कविरत्न हो सकेंगे?

पुस्तक के २०७ वें पृष्ठ पर लेखक-महोदय देव के विषय में लिखते हैं:—"ऐसे उत्तम छन्द किसी अन्य कविता में स्वप्न में भी नहीं देखे जाते। इनके उत्तम छन्दों के बराबर किसी विद्या में कोई छन्द पाना कठिन है"। इसी उक्ति का पिष्टपेषण २११ वें पृष्ठ पर इस प्रकार आप लोग करते हैं:—"जितने उत्तमोत्तम छन्द देवजी की कविता में हैं उतने किसी की कविता में नहीं पाये जाते। यदि छन्दों की उ मता के हिसाब से विचार करें तो देवजी ही स त्तम कवि ठहरेंगे"। इसी कथन को आगे चल कर भी कई दफ़े आपने दुहराया तिहराया है। आ क्षमा करें, हमें भी स्वप्न में भी कभी यह ख़याल था कि आप ऐसी ऐसी बेतुकी बातें लिखेंगे। आप इस 'उत्तम' शब्द ने आपकी इस पुस्तक के गौर को बे तरह घटा दिया है। किसी 'विद्या' का क अर्थ? 'विद्या' भी क्या कोई भाषा है? और 'छन्द से आपका क्या मतलब? दोहा, चौपाई, घनाक्षरी सवैया आदि से यदि आपका मतलब है तो छन्दों में और लोगों ने भी कविता की है। देव ने कौन से लोकोत्तर या उत्तमतर छन्द निकाल लाये यदि छन्द से मतलब आपका पद्य से है तो जि पद्यों पर आप मुग्ध हों उनके गुणों—अर्थ, र भाव, अलङ्कार, सरसता, रोचकता, लालित्य, लक्षण व्यञ्जना आदि—के विषय में जो कुछ कहना थ कहते। छन्द की क्या तारीफ़! यदि देव के जै छन्द किसी भाषा के किसी कवि की कविता में न तो फिर तुलसीदास की कविता की जो आप इत तारीफ़ कर आये और उनके रामचरितमानस को संसार-साहित्य का मुकुट ठहरा आये सो क्यों?

जिस पृष्ठ पर देव के छन्दों की लेखकों ने इत तारीफ़ की है उसी पृष्ठ पर, लगे हाथ ही, आ उनके विषय में लिखते हैं:—

"इनके मध्या और प्रौढ़ा के भेद उतने बढ़ि नहीं आते जितने मुग्धा के।.....इन कविता में औरों से चोरी बहुत कम मिलती है अधिक निर्लज्जता देवजी में कम पाई जाती है"।

मुग्धा की बात ही और है; मध्या और प्रौढ़ उसकी बराबरी भी तो नहीं कर सकतीं। आ की राय में देव अधिक नहीं, थोड़े निर्लज्ज ज़रूर हैं और चोरी भी करते हैं, पर औरों की इतनी नहीं अच्छा तो, फिर, जिसके काव्य में ऐसे ऐसे दोष हों व महाकवि कैसे माना जा सकेगा? जिसे आप कवि रत्न की पदवी दे रहे हैं उसका कुछ तो आदर कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। उसके विषय में चोरी और निर्लज्जता आदि कठोर शब्दों का प्रयोग आपको करना उचित नहीं। स्त्रियों की जाति; नायिकाओं के भेद; प्रेम, राग, रस, भाव, शब्द और काव्य की व्याख्या; और राजा-रईसों के विलासग्रन्थ लिखने वाले देव के किस अद्भुत गुण पर मोहित हो कर आपने उन्हें तुलसी और सूर के ठीक बराबर समझ लिया, इसका आपको युक्तिपूर्ण समर्थन करना चाहिए था। आप की उड़ती हुई सम्मतियों मात्र से ही यह बात सिद्ध नहीं मानी जा सकती।

देव के सुखसागरतरङ्ग नामक ग्रन्थ के विषय में लेखकों की राय है:—"भाषा-साहित्य में तुलसी-कृत रामायण, सतसई और सूरसागर को छोड़ कर ऐसा उत्तम कोई भी ग्रन्थ नहीं है"। अच्छा, इस ग्रन्थ में है क्या? "मोटी रीति से इसे नायका भेद का ग्रन्थ कह सकते हैं। भाषा में नायका-भेद का इतना सांगोपांग और सर्वांग सुन्दर ग्रन्थ कोई नहीं है"।* सो चन्द का रासो, केशव की रामचन्द्रिका और हरिश्चन्द्र के नाटकों से भी यह बढ़ कर ठहरा! यहाँ, इस ग्रन्थ में घृणित नायिका-भेद होने से भी इसकी महत्ता कम न हुई! देव-विषयक आपकी कुछ उक्तियाँ सुनिए:—

देवजीने—"ऐसी अनूठी उपमायें लिखी हैं जो केवल यही लिखते हैं दूसरा नहीं लिखता। इनकी सभी बातें अनूठी हैं" (पृष्ठ २१४)।

"देव जी की कविता में जो गुण हैं वह अद्वितीय हैं। ऐसी उत्तम कविता किसी कवि के ग्रन्थ में एक स्थान में नहीं पाई जाती" (पृष्ठ २१६)।

अब तक सुनते चले आते थे कि उपमा-अलङ्कार में कालिदास ही अद्वितीय हैं। पर अब उनका आसन नवरत्न के कर्त्ताओं ने देव को दे डाला। किसी किसी की राय में अन्य हिन्दी-कवियों की उपमाओं की अपेक्षा तुलसीदास की उपमायें सब से अच्छी हैं। परन्तु वह राय भी लेखकों को मान्य नहीं। न सही, परन्तु देव की 'अनूठी उपमाओं' और 'अनूठी बातों' के यदि दो चार भी उदाहरण देकर आप यह दिखलाने की चेष्टा करते कि उनमें आप को कौन सा ऐसा अनूठा-पन देख पड़ा जो किसी और कवि की कविता में नहीं तो आप की बात पर विचार करने का मौक़ा तो मिलता। परन्तु आपने ऐसा करने की ज़रूरत न समझी। फिर कहिए, आपकी बात को कोई कैसे मान सकता है। यदि देव में 'अद्वितीय गुण' है तो इनको आपने सूर और तुलसी से भी ऊँचे दरजे का कवि क्यों न माना? क्या समझ कर आपने भूमिका में यह लिख दिया कि—'तीनों कवियों में न्यूनाधिक कोई भी नहीं समझ पड़ा'। इधर आप सूर, तुलसी और देव में से किसी को न्यूनाधिक भी नहीं समझते; उधर देव में अद्वितीय गुणों का होना और उनकी सी उत्तम कविता का किसी अन्य कवि के ग्रन्थ में एक स्थान में न पाया जाना भी लिखते हैं; और, फिर, एक ही पृष्ठ आगे, (पृष्ठ २१८ पर), इन्हीं तीनों कवियों में '९९ और १०० का अंतर' भी आप बतलाते हैं—इस तरह की पूर्वापरविरुद्ध और असम्बद्ध बातें आपकी पुस्तक के महत्त्व को बढ़ाने वाली नहीं, किन्तु घटाने वाली हैं। आपके अनुसार जिस देव का 'चाल चलन बहुत ठीक न था,' और जिसने 'पूर्ण रसिक' होने के कारण 'प्रत्येक जाति और प्रत्येक देश की स्त्रियों का बड़ा ही सच्चा वर्णन किया है' उसकी और विषयों की कविता में भी उसके रसियापन का कहाँ तक प्रभाव पड़ा होगा, इसका अन्दाज़ा सहज ही में हो सकता है। ऐसे कामुक कवि की भी कविता सूर और तुलसी की पवित्र, उच्च और मङ्गलकारिणी कविता की बराबरी कर सकती है या नहीं, इसके विचार का भार हम सत्कविता के ज्ञाताओं ही पर छोड़ते हैं।

लेखक महोदयों ने देव के १४ ग्रन्थ देखे हैं। उन्हीं, की सरसरी तौर पर, उन्होंने इस पुस्तक में समालोचना भी की है। इस समालोचना में लेखकों ने

* यह तथा और जितने अवतरण हिन्दी-नवरत्न से इस लेख में दिये गये हैं सब मूल पुस्तक के अनुसार यथावत् नक़ल किये गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देव की शुद्ध और सुहावनी व्रजभाषा की प्रशंसा की है; अनुप्रासों और यमकों की बहुलता की प्रशंसा की है; नायिकाभेद-वर्णन की प्रशंसा की है; रूपक-रचना की भी प्रशंसा की है। 'उत्तम कलेजा निकाल कर रख देने वाले छन्दों की भी प्रशंसा की है; पर उदाहरण नहीं दिये; केवल पद्यों के संख्यासूचक अङ्क भर दे दिये हैं। देवजी के चौज़ के दो उदाहरण आप लोगों ने दिये हैं, जिनमें से एक यह है:—'जोगहू ते कठिन संयोग पर नारी को'। देवजी की अनूठी उपमाओं के भी केवल दो उदाहरण आपने दिये हैं। उनमें से एक है:—'उर में उरोज जैसे उम-गत पाग है'। इसी अनूठेपन के कारण इस कवि को उपमा-अलङ्कार में आप ने सब से बढ़ गया बताया है। यह सब तो हुआ। देवजी अच्छे कवि थे, इसमें भी कोई सन्देह नहीं। परन्तु जो कुछ लेखकों ने इस पुस्तक में देवजी के विषय में लिखा है उससे उनका तुलसीदास और सूर के सदृश होना नहीं साबित होता। उससे तो देव का उनसे सर्वथा हीन होना ही साबित होता है। लेखकों ने पृष्ठ २१७ पर लिखा है:—

> "जो गुण सूरदास तथा तुलसीदास की कविता में हैं वे गुण देवजी भी नहीं ला सके हैं। यदि देवजी किसी भारी कथा प्रसङ्ग का काव्य करते तो नहीं मालूम कि उनका वर्णन कैसा होता। सम्भव है कि ये भी वैसा काव्य कर सकते जैसा कि उन महात्माओं ने किया है परन्तु जब तक कोई वैसा साहित्य रच कर दिखा न दे तब तक यह कहा नहीं जा सकता कि वह अवश्य ऐसा कर सकता है, चाहे जितना बड़ा कवि वह क्यों न हो"

बहुत अच्छा। आप की यह सम्मति सर्वथा मान्य है। देव ने कोई वैसा काव्य नहीं रचा। अत-एव वे तुलसी और सूर की बराबरी के नहीं। इन ऊपर के वाक्यों के आगे पीछे, देव की कविता के विषय में, आपने जो बड़ी बड़ी और पूर्वापर-विरोधिनी बातें लिखी हैं उन्हें हम निरर्थक समझ कर आप की इस युक्ति-सङ्गत सम्मति को माने लेते हैं।

विहारीलाल।

विहारी को इस पुस्तक के लेखक—'बहुत उत्तम कवि' समझते हैं और —'तुलसीदास, सूरदास और देव को छोड़ कर' उन्हें 'सर्वोत्कृष्ट कवि' मान हैं। उनकी राय है कि विहारी 'बड़े ही शृङ्गारी' और 'उनके चित्त में ६० वर्ष की अवस्था के लगभ पहुँचे बिना शान्त रस का प्रादुर्भाव न हुआ होगा' विहारी बड़े नामी कवि हो गये, इसमें सन्देह नहीं उनकी कविता बड़ी सरस, भावभरी और पूर्ण है। परन्तु विचार इस बात का करना है एक मात्र सात सौ दोहे की सतसई लिखने के कार विहारी को महाकवि और कविरत्न की पदवी दी सकती है या नहीं। यदि पुस्तककार महाकवि और कविरत्न की परिभाषा लिख देते तो इस बात विचार करने में बहुत सुभीता होता। नहीं मालू किन गुणों के कारण कवियों को महाकवि और कवि रत्न की पदवी के वे योग्य समझते हैं। विहारी को उन्होंने महाकवि लिखा है। रत्न तो वे हैं ही, क्यों 'नवरत्न' में उन्हें स्थान मिला है।

'रत्न' नई उपाधि है। अतएव उसका लक्ष संस्कृत के ग्रन्थों में नहीं मिलता। परन्तु महाका का लक्षण मिलता है। दण्डी ने काव्यादर्श में 'स बन्धो महाकाव्यमुच्यते'—लिखा है। 'इतिहासकथो द्भूतं; चतुर्वर्गफलोपेतं; चतुरोदात्तनायकं; असंक्षि लोकरञ्जकं'—आदि महाकाव्य के और भी कितने विशेषणों का उन्होंने उल्लेख किया है। यदि ऐसे मह काव्य के कर्त्ता ही को लेखक-महोदय महाकवि सम और दण्डी के वचनों को मानें तो उनके विहारी, दे और मतिराम आदि तुरन्त ही महाकवि के आस से खिसक पड़ें। परन्तु यदि इस लक्षण को वे अस ङ्गत समझें तो हिन्दी का जो बृहदितिहास वे लि रहे हैं उस में कृपा कर के 'नवरत्न' और 'महाकवि' की परिभाषा ज़रूर लिख दें। इससे लोगों को मालू हो जायगा कि किन गुणों के होने से कवि को म कवि की और महाकवि को कविरत्न या नवरत्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदवी मिल सकती है। स्त्री को सबसे अधिक चित्ताकर्षक समझना, साठ वर्ष की उम्र तक उसी की 'रसरीति' में निमग्न रहना और उसी के हाव-भाव आदि का नाना भाव-भङ्गियों से वर्णन करना भी यदि महाकवि के लक्षणान्तर्गत हो तो विहारी अवश्य ही महाकवि थे।

नवरत्न के २२२ वें पृष्ठ पर लेखकों ने लिखा है—"महाराजा जयसिंह एक छोटी सी लड़की के प्रेम में उन्मत्त हो गये थे"—लड़की, सो भी छोटी सी! यह बात समझ में नहीं आती। क्या वह अज्ञात-यौवना नायिका की उम्र की भी न थी? लड़की किसकी? क्या वह जयसिंह की रानी न थी? न थी तो इसका प्रमाण? किसी की लड़की के प्रेम में उन्मत्त होना महाराजा जयसिंह की कीर्ति का वर्द्धक नहीं।

लेखक-महोदयों का अनुमान है कि सतसई के एक एक दोहे पर विहारी का एक एक अशरफ़ी पाना सच नहीं। क्योंकि—'बिहारी को कलि के दानियों से सदा शिकायत रही। इससे जान पड़ता है कि इनका पूरा सन्मान कभी नहीं हुआ। यदि प्रति दोहा एक मोहर मिलती तो ये हज़ारों दोहे बना डालते'। परन्तु यह एक अनुमान मात्र है। कलि के दानियों से उनका मतलब यदि महाराजा जयसिंह को छोड़ कर और दानियों से रहा हो तो? और, विहारी ७०० अशर्फ़ियों के दान को कुछ न समझते रहे हों तो? आप सात सौ को शायद बहुत समझते हैं; पर विहारी भी ऐसा ही समझते थे, इसका क्या प्रमाण? और, सारी सतसई बन चुकने पर जयसिंह ने दोहों की संख्या के अनुसार विहारी को अशर्फ़ियाँ दी हों; अतएव उनकी शिकायत इसके पहले की हो तो? जैसे लेखकों का वह अनुमान है, वैसा ही यह भी है। परम्परा से सुनी गई जनश्रुति के खण्डन में सबल प्रमाण आवश्यक होते हैं। हिन्दी के इतिहास में, आशा है, लेखक वैसे प्रमाण देने की चेष्टा करेंगे।

नवरत्न के कर्ता-महाशयों का कथन है:—"इन्होंने संवत् १७१९ में सतसई समाप्त की और उसके पीछे कोई ग्रंथ या छन्द नहीं बनाया"। आप लोगों की यह निश्चयवाचक उक्ति खटकने वाली है। इसका क्या प्रमाण कि यदि कोई ग्रन्थ नहीं बनाया तो एक आध छन्द भी नहीं बनाया? सतसई के बाद की उनकी कोई रचना नहीं देखी गई; इसी से आप ऐसा कहते हैं न? परन्तु किसी वस्तु की अप्राप्ति उसके अभाव या अनस्तित्व की सूचक कैसे मानी जा सकती है।

विहारी ने—'एक आध स्थानों पर औरों के भी कुछ भाव लिये हैं'—यह लिखकर लेखक-महोदयों ने कुछ उदाहरण ऐसे दिये हैं जिनमें विहारी के भाव देव, रहीम, सीतल, केशव आदि के भावों से लड़ गये हैं। इस पर हमारा निवेदन है कि विहारी की कविता में एक आध नहीं, अनेकों जगह, संस्कृत के प्राचीन कवियों के भाव पाये जाते हैं। उनमें से कितनोंही का निदर्शन सरस्वती में हो चुका है। सम्भव है, अभी आगे भी हो।

इस पुस्तक में पिष्टपेषण बहुत है। देव के विषय में लिखते समय, ऊपर, एक जगह, इसका संप्रमाण उदाहरण हम दे आये हैं। विहारी पर जो कुछ लेखकों ने लिखा है उसमें भी यह दोष है। पुस्तक के २२१ पृष्ठ पर है:—"विहारी का जन्म स्थान बसुआ गोबिन्दपुर नामक एक ग्राम जो ग्वालियर के निकट है कहा जाता है"। इसके अगलेही पृष्ठ पर यह बात फिर दुहराई गई है:—"इनका जन्म ग्वालियर के समीप बसुआगोबिन्दपुर में हुआ था।" इस पुनरुक्ति में इतनी विशेषता है कि गाँव के नाम के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दोनों अंश मिलाकर एकही जगह रख दिये गये हैं; बीच में स्पेस नहीं छोड़ा गया। जो अच्छे लेखक हैं वे व्यर्थ पिष्टपेषण नहीं करते।

हरिश्चन्द्र।

लेखकों ने हिन्दी-नवरत्न की भूमिका में लिखा है:—"हम इन महाशयों को इनके किसी ख़ास समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में उत्पन्न होने के कारण तो नवरत्न में रखते नहीं हैं बरन् इनकी उत्तमताही इनके इस मान का कारण है। तब इसी उत्तमता के अनुसार पूर्वापर क्रम न रख कर काल क्रम का सहारा लेना हमें युक्तिसङ्गत नहीं समझ पड़ा"। आपके इन 'उत्तम' और 'उत्तमता' आदि शब्दों की माया कुछ भी समझ में नहीं आती। अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोषों से रहित इन का जबतक आप तर्कशास्त्र-सम्मत लक्षण नहीं बतलाते तबतक कौन आपकी इस बात को मानेगा कि आपके उल्लिखित सभी लेखक या कवि रत्न थे। हरिश्चन्द्र के विषय में आप लोग कहते हैं:— "हम भाषा के नौ प्रसिद्ध और सर्वोत्तम कवियों में इनको भी समझते हैं"। समझिए। पर समझना एक बात है, समझाना दूसरी बात। यदि आपकी यह इच्छा हो कि आपकी बात और भी कोई मान ले तो हिन्दी के इतिहास में आप इस बात को युक्ति और तर्क द्वारा सिद्ध कीजिए कि कैसी और कितनी उत्तमता के कारण आपने मतिराम को भी रत्न समझा और हरिश्चन्द्र को भी। जिन हरिश्चन्द्र ने भिन्न भिन्न विषयों के कितनेही गद्यपद्यात्मक काव्य, नाटक और इतिहास आदि लिखे और जिनकी बदौलत हिन्दी भाषा ने एक नया रूप पाया वे भी रत्न! और, पुराने पन्थ के पथिक, नायिका-भेद आदि पर बहुत ही कम उपयोगी ग्रन्थ लिखनेवाले मतिराम और देव भी रत्न! रत्न शब्द की इससे अधिक अवहेलना और क्या हो सकती है? लेखकों के अनुसार 'प्रतिनिधि' कवि होकर भी बेचारे हरिश्चन्द्र नवरत्न की लघुत्रयी ही में नहीं पटके गये; किन्तु मतिराम महाराज के आसन से भी नीचे उतार दिये गये!!! मध्यत्रयी और लघुत्रयी में लेखकों ने कवियों को उनकी योग्यता के अनुसार ही आगे पीछे रक्खा है; और लघुत्रयी में हरिश्चन्द्र ने सब के अन्त में स्थान पाया है। अर्थात् वे नवरत्न के निकृष्ट रत्न हैं। इस स्थान-दान में निर्दिष्ट कवियों को लेखकों ने दृढ़तापूर्वक उत्तमता में एक दूसरे के आगे पीछे पाया है। उत्तमता और योग्यता का ऐसा ज्ञान किस प्रकार की परीक्षा लेखकों के हृदय में दृढ़ हुआ यह वही जानते हों।

चन्द को हुए कोई आठ सौ वर्ष हुए; मतिरा को हुए कोई ढाई सौ वर्ष; और हरिश्चन्द्र तो अ कल हुए हैं। चन्द के समय का कवि-रत्न मतिरा के समय में कविरत्न नहीं माना जा सकता औ मतिराम के समय का हरिश्चन्द्र के समय में नहीं समय के अनुसार भाषाओं में परिवर्त्तन होता और समय के अनुसार ही मनुष्यों की रुचि बदलती है। एक समय था जब रासो के सदृ ग्रन्थ लिखने वालों को बड़ी बड़ी जागीरें मिल थीं। एक समय ऐसा भी आया जब नायिका-भे के सदृश विषयों पर लिखे गये ग्रन्थों के लिए कवि को खिलतें मिलने लगीं। अब वह समय भी न रहा। अतएव भिन्न भिन्न समयों में होनेवाले, भा उपयोग तथा उच्च विचारों की दृष्टि से न्यूनाधि महत्त्व के ग्रन्थ लिखनेवाले कविकुञ्जर एकही मा में नहीं गूँथे जा सकते। ऐतिहासिक काव्य लिख वाले चन्द आदि पुराने कवियों को अलग रखिए; दे मतिराम और बिहारी आदि को अलग और हरिश्च आदि आधुनिक हिन्दी के लेखकों को अलग। त प्रत्येक क्लास में कवि, महाकवि और रत्न ढूँढ़िए। स और तुलसी आदि के काव्यों के समान सर्वोपकार उच्चविचारपूर्ण और चिरकाल तक पुराने न हो वाले ग्रन्थों के प्रणेता कवियों ही की आप, सम का खयाल न करके, कोई एक श्रेणी नियत क सकते हैं; औरों की नहीं।

हरिश्चन्द्र के विषय में लेखक कहते हैं—"ह मुक्तकण्ठ (?) कहेंगे कि ऐसा उत्तम अनुवाद भाषा कवियों में कोई भी नहीं है"। आप लोगों की यह भी राय है कि हरिश्चन्द्र के—"नाटकों की गणना संस्कृत के उत्तम नाटकों के साथ होगी शेक्सपियर के सब नाटक इनकी बराबरी नहीं क सकते"। इस पर हमारी प्रार्थना है कि आपकी राय, सम्भव है, बहुत ठीक हो। परन्तु आप इ तरह की बातें इस ढङ्ग से न कहा कीजिए। क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके आप अपने इतिहास में हरिश्चन्द्र के अनुवादों के कुछ अंशों को मूलसहित उद्धृत करके तब अपनी राय ज़ाहिर कीजिएगा। ऐसा करने से पढ़नेवालों पर आपकी राय का अधिक असर पड़ेगा। इसी तरह संस्कृत के और शेक्सपियर के नाटकों का मुक़ाबला हरिश्चन्द्र के नाटकों से करके तब अपनी सम्मति दीजिएगा। अन्यथा आपकी बात के न माने जाने का डर है। यदि कोई यह कहे कि सारे संसार की भाषाओं में आज तक जितने ग्रन्थकार हुए हैं उनमें हिन्दी का अमुक ग्रन्थकार सबसे बढ़ कर है तो उसकी बात तर्कशास्त्र की दृष्टि में उतनी ही आदरणीय होगी जितनी कि आपकी हरिश्चन्द्र-सम्बन्धिनी ये बातें हैं। मैजिष्ट्रेट जब किसी मुक़द्दमे का फ़ैसिला लिखता है तब वह केवल अपनी आज्ञा ही सुनाकर नहीं चुप हो जाता। पहले वह दोनों पक्षों के प्रमाण-प्रमेयादि का उल्लेख करता है। फिर उनको युक्ति और तर्क की कसौटी पर कसता है। इसके अनन्तर वह अपना सिद्धान्त स्थिर करता है। तब, तदनुकूल, वह आज्ञा सुनाता है। अच्छे लेखकों को भी दो या तदधिक विषयों की तुलना करते समय उनमें से किसी एक को ऊँचा या नीचा बतलाने के पहले इसी प्रणाली का अवलम्बन करना चाहिए।

भाषा-दोष।

इस लेख में हिन्दी-नवरत्न से जो अनेक अवतरण अब तक दिये जा चुके हैं वही इस बात का अन्दाज़ा करने के लिए काफ़ी हैं कि इस पुस्तक की भाषा कैसी होगी। जिन कवियों पर लेखकों ने निबन्ध लिखे हैं उनकी कविता में शिथिलता के होने या न होने का उन्होंने अनेक बार उल्लेख किया है। मालूम नहीं इस शिथिलता से उनका क्या मतलब है। पर, यदि इससे उनका यह मतलब है कि रचना तुली हुई नहीं है—उसमें असंयत-भाव है—तो यह दोष इस पुस्तक में भी है और बहुत अधिक है। इसके कारण इस पुस्तक का महत्त्व नष्ट सा हो गया है। जो जिस दोष को जानता है, वही यदि उसे करे तो बड़े आश्चर्य की बात है। सावधानतापूर्वक लिखने से ऐसे दोष दूर हो सकते हैं। भाषा इसकी परिमार्जित नहीं। विचारों की व्यर्थ पुनरावृत्तियाँ भी इस पुस्तक में बहुत हैं। इस बात के दो एक उदाहरण भी ऊपर दिये जा चुके हैं। अनेक स्थलों की रचना व्याकरण-च्युत भी है। सम्भव है, तीन आदमियों की शिरकत इसकी भाषा के अधिकांश दोषों का कारण हो। अच्छे लेखकों की भाषा जैसी होनी चाहिए वैसी भाषा इस पुस्तक की नहीं। दो चार उदाहरण लीजिए :—

(१)—"हिन्दी कविता के समान संसार में किसी भाषा की रचना ऐसी सौष्ठव और श्रुति-मधुर नहीं है"। भूमिका—पृष्ठ ३०।

किसी भाषा की रचना ऐसी सौष्ठव..... नहीं है—यह बिलकुल ही अशुद्ध है। 'सौष्ठव' की जगह 'सुष्ठु' चाहिए। इसके सिवा, सारे संसार की भाषाओं के विषय में वही मनुष्य कुछ कह सकता है जो उन सबको जानता हो। क्या लेखक उन सबको जानने का दावा कर सकते हैं?

(२)—"ये क्षेपक गोस्वामी जी की रामायण में ऐसे लग गये हैं कि प्रायः रामलीलाओं में वे भी खेली जाती हैं"। पृष्ठ १५

इस पर टीका करना व्यर्थ है।

(३)—"इसके वर्णनों में किसी स्थान को उत्तम और किसी को साधारण कहना गोस्वामी जी से घोर अन्याय करना है"। पृष्ठ ५१

किसी 'पर' अन्याय किया जाता है, किसी 'से' नहीं।

(४)—"कहते हैं कि गोस्वामी जी ने पहले सीयस्वयंवर और अयोध्या-कांड की कथा बनाई थी और इतना बन जाने पर उन्हें समग्र रामायण बनाने की लालसा हुई और तब उन्होंने शेष ग्रन्थ भी बनाया"। पृष्ठ ५०।

इसमें पिछले दो 'और' आजाने से बेतरह शिथिलता आगई। उन्हें निकाल कर उनकी जगह एक एक पाई (फुल स्टाप) रख देने से यह दोष दूर हो जाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५)—हमने उनका वर्णन थोड़े में स्थालीपुलाक न्याय दिखा दिया है"। पृष्ठ २१५।

दूषित भाषा का यह बहुत ही बुरा उदाहरण है। इस विषय के अधिक उदाहरण देकर हम लेख नहीं बढ़ाना चाहते। इतने ही उदाहरण देख कर स्थाली-पुलाकन्याय से पाठक समझ सकेंगे कि इसकी भाषा सदोष है या निर्दोष और सदोष है तो कितनी।

वाक्य और वाक्यांश-दोष।

जान पड़ता है कि न तो इस पुस्तक को प्रेस में देने के पहले ही किसी ने ध्यान से पढ़ कर देखा, और न पीछे से प्रूफ़ों का ही सावधानी से संशोधन किया। तीन तीन विद्वान् जिस पुस्तक के कर्त्ता हों उसकी ऐसी दशा हुई देख दुःख होता है। मामूली मुहावरों तक को लेखकों ने कहीं कहीं पर बिगाड़ दिया है। इस पुस्तक में सैकड़ों अशुद्धियाँ ऐसी हैं जो थोड़ी ही सावधानता रखने से दूर हो सकती थीं। दस पाँच उदाहरण लीजिए :—

(१) 'राज-सभा की गाम्भीर्य्य' (पृष्ठ ५८)

(२) 'शिखनखों की 'बाहुल्य' (पृष्ठ ६०)

(३) 'रुद्राष्टक बनाई है' (पृष्ठ ६९)

(४) 'मनुष्यों के उपयोगी बातें' (पृष्ठ ६८)

(५) 'बड़े ही उत्तम रीति से वर्णित किये गये हैं' (पृष्ठ १३२)

(६) 'इनकी चातुर्य्य' (पृष्ठ २३७)

लेखकों ने 'गाम्भीर्य्य,' 'बाहुल्य,' 'चातुर्य्य' और 'काव्य' आदि शब्दों को, न मालूम किस आधार पर, स्त्री-लिङ्ग माना है।

(७) 'जन्म पर्य्यन्त में सात सै दोहे बना कर रख दिये' (पृष्ठ २२५)

(८) 'तब तक भला उन बूँदों भेंट कहाँ हो सकती है' (पृष्ठ २२५)

(९) 'मरण आदि की अनुमानैं अवलम्बित हैं' (पृष्ठ २१९)

(१०) 'दोनों कथानक एकही व्यक्ति की रचना नहीं हो सकतीं' (पृष्ठ २०)

(११) 'बदचलन स्त्रियों के नाक काटने रीति' (पृष्ठ ५४)

(१२) 'कृष्णानन्द की सच्ची भक्ति..... अधिकता से नहीं रही' (भूमिका, पृष्ठ २१)

'कृष्ण की भक्ति' का अर्थ तो सभी सम सकते हैं' 'कृष्णानन्द की भक्ति'—का अर्थ कि लेखकों की व्याख्या के शायद ही कोई समझ सके

शब्द-दोष।

'अनुमति' शब्द का अर्थ, आपटे के अनुसा आज्ञा और स्वीकृति है। वह अँगरेज़ी—शब्द Pe mission, Consent और Approval के अर्थ विशेष करके व्यवहृत होता है। परन्तु लेखकों ने इस प्रयोग सम्मति और सलाह के अर्थ में किया है देखिए :—

(१) 'उनकी अनुमति थी कि जिस कविता बुध आदर न करें वह वृथा है, (पृष्ठ ४०)

(२) 'हम उसे.....ललितललाम पढ़ने अनुमति देंगे (पृष्ठ ३०९)।

लेखक-महोदयों ने इस शब्द का कई जग इन्हीं अर्थों में व्यवहार किया है। किस कोश आज्ञा से, मालूम नहीं।

हिन्दी-नवरत्न के लेखक पार्वती को 'पारवती (पृष्ठ ३९), अवतार को 'औतार' (पृष्ठ ८१) औ औषधि या औषध को 'औषधि' (पृष्ठ ८६) लिखते हैं

पुस्तक के २९२ पृष्ठ पर लेखकों ने कथाप्रस वर्णन करने की दो प्रणालियाँ बतलाई हैं—"एक गोसाईंजी की भाँति दोहा चौपायों वाली औ दूसरी केशवदास की भाँति विविध छन्दोंवाली" केशवदास को आप लोगों ने इस पिछली प्रथा प्रचारक माना है। परन्तु, यदि सूरदास की तर पदों में कोई कथा कहे तो क्या उसकी गिनती किसी भी प्रणाली में न हो? अथवा रामकलेव लिखने वाले रामनाथ प्रधान की तरह यदि कोई विविध छन्द ही लिखे और न तुलसीदास की भाँ दोहे-चौपाई ही, तो आप उसकी कविता को कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रणाली के अन्तर्गत समझें। क्या किसी के अन्तर्गत नहीं? रामनाथ ने जिस छन्द में रामकलेवा लिखा है वह तुलसीदास की चौपाई तो है नहीं। ख़ैर, यह तो एक अवान्तर बात हुई। उस अवतरण में जो 'विविध' शब्द है वह सर्वथा शुद्ध है। पर शुद्धि-पत्र में वह अशुद्ध उल्लिखित हुआ है। उसकी जगह 'विविधि' को दी गई है! जो अशुद्ध नहीं उसकी शुद्धता के लिए तो इतना प्रयास, परन्तु इसी 'विविध' के ऊपर पाँच ही छः शब्द पहले चौपाइयों की जगह जो 'चौपायें' छप गया है उस पर आप लोगों का ध्यान ही नहीं गया!

पुस्तक के पृष्ठ ८९ पर आप लोगों ने लिखा है:—

(१) 'राजनैतिज्ञता कूट कूट कर भरी थी' (२) 'राजनैतिज्ञता तो यहाँ तक बढ़ी चढ़ी थी' (३) 'राजनैतिज्ञता के मामले में .....विचार नहीं करता था'।

'नैतिज्ञता' और 'राजनैतिज्ञता' के और भी ऐसे ही अनेक प्रयोग आप लोगों ने किये हैं। मालूम नहीं, हिन्दी के पारदर्शी पण्डित इन प्रयोगों को कैसा समझेंगे। हम तो केवल इतना हीं कहना चाहते हैं कि ये प्रयोग हिन्दी में बिलकुल ही नये हैं। 'नेचर-निरीक्षण' भी एक नया सामासिक शब्द लेखकों ने इस पुस्तक में कई जगह लिखा है। आप लोगों के प्रयुक्त 'पद-निर्म्मायक' और 'निःप्रयोजनीय' शब्द भी नूतनता से ख़ाली नहीं। नायिका को तो आपने सैकड़ों जगह 'नायका' लिख डाला है।

'सूक्ष्म' शब्द का प्रधान अर्थ बारीक है। वह अल्पार्थक भी है; पर इस पिछले अर्थ में वह बहुत कम प्रयुक्त होता है। लेखक-महोदयों ने इस पुस्तक में उसे विशेषतः अल्पार्थक ही माना है:—

(१) आश्रयदाताओं के विषय इतना लिख कर अब हम साहित्य इतिहास का सूक्ष्मतया कुछ वर्णन करते हैं'। भूमिका पृष्ठ १३

(२) 'इसी स्थान पर साहित्य का यह सूक्ष्म इतिहास समाप्त होता है'। भूमिका पृष्ठ ३०

(३) 'या तो ये महाराज [सूरदासजी] बहुत सूक्ष्म वर्णन करते हैं या पूर्ण विस्तार के साथ'। पृष्ठ १६०

(४) हम विस्तारपूर्वक विहारी के कुलादि के विषय न लिख कर सूक्ष्मतया अपना मत प्रकाशित करते हैं'। पृष्ठ २२१

इस 'सूक्ष्म और सूक्ष्मतया' के ऐसे ही प्रयोग इस पुस्तक में, जगह जगह पर, पाये जाते हैं।

दूसरी बहुत बड़ी विलक्षणता इस पुस्तक में यह है कि 'विषय' शब्द के आगे 'में' प्रायः इसमें रक्खा ही नहीं गया। ऊपर नं० [१] और [४] के उदाहरणों में तो इस विलक्षणता के दर्शन आपको होही गये। दो चार औरों के दर्शन नीचे कीजिए:—

(१) 'बड़े बड़े कवियों के कुल गोत्रादि के विषय भी सन्देह बना रहता है'। पृष्ठ २१९

(२) 'वैसा ही सन्देह इस महाकवि के विषय भी उपस्थित है'। पृष्ठ २१९

(३) 'अपने विषय भी इन्होंने केवल एक दोहा लिख कर सन्तोष किया है'। पृष्ठ २१९

(४) 'इनके विषय एक तीसरा दोहा भी प्रसिद्ध है'। पृष्ठ २१९।

ये चारों उदाहरण एक ही पृष्ठ से लिये गये हैं। इन प्रयोगों की इस पुस्तक में बे तरह भरमार है। एक ही शब्द और एक ही मुहावरे को बार बार लिखते लोग सङ्कोच करते हैं। ऐसा करना वे बुरा भी समझते हैं। परन्तु लेखक-महोदयों ने इसकी कुछ परवा नहीं की। वे शायद ऐसा ही प्रयोग सही समझते हों। पर यदि यह बात है तो कई जगह उन्होंने 'विषय' के आगे 'में' क्यों लिखा? यथा:—

'रामायणों के विषय में भी क्षेपक होने का पूरा सन्देह है'—पृष्ठ १९

जान पड़ता है यह दशा या दुर्दशा भी लेखक-महाशयों की शिरकत काही नतीजा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'काल' और 'समय' शब्द के साथ 'में' के प्रयोग-विषय में भी आप लोगों ने मनमानी की है। कहीं 'में' लिख दिया है, कहीं नहीं लिखा :—

(१) 'मुबारक भी इस काल में अच्छे कवि हो गये हैं'। भू० पृष्ठ २२

(२) 'अकबर बादशाह भी इसी काल में हुए हैं'। भू० पृष्ठ २२

(३) 'गंजन आदि परमोत्तम कवि इसी समय में हो गये हैं'। भू० पृष्ठ २४

(४) 'केशवदास ने इसी समय में रसिकप्रिया ग्रन्थ बनाया'। भू० पृष्ठ २१

(५) 'इसी काल कुतबन और जायसी का नाम आता है'। भू० पृष्ठ २०

(६) 'इसी समय मतिराम ने भी रचना की'। भू० पृष्ठ २३

फुटकर दोष।

लिङ्ग और वचन-सम्बन्धी भूलों का इस पुस्तक में बहुत ही आधिक्य है। एकही शब्द दो तरह लिखा गया है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

१ { शूर्पनखा के नाक कान—पृष्ठ ८९
  { सूर्पनखा से झूँठ ही यह बात कहला दी—पृष्ठ १३५

२ { कैकेयी पहले राम का बड़ा प्यार करती थी—पृष्ठ ९३
  { केकयी-मन्थरा...दशरथ-केकयी—पृष्ठ १२३

३ { कुम्भकरण रावण का छोटा भाई था—पृष्ठ ९१
  { कुम्भकर्ण कपि सेना पराजित कर लङ्का जा रहा था—पृष्ठ ६०

४ { ऐसी उत्तम काव्य—पृष्ठ १२७
  { इनके काव्य—पृष्ठ १२८

५ { ...झूलना रामायण तथा रोला रामायण हमारे देखने में नहीं आये—पृष्ठ ३०
  { थोड़ी भी रामायण पढ़ने से—पृष्ठ १२—६२७

६ { ये उनकी वन-यात्रा माङ्गलिक समझते थे—पृष्ठ ४३
  { परन्तु वह नहीं बोले—पृष्ठ ७३
  { वे.....बनाने लगे थे—पृष्ठ १४४

७ { बिहारी सतसई अपनी टीका समेत [illegible] थी—पृष्ठ २२०
  { ललित ललाम का टीका गुलाब कवि द्वा[illegible] बनवाया—पृष्ठ ३०८

८ { दोहाओं द्वारा बात चीत होना कहा गया है—पृष्ठ ३
  { दोहों में क्रमबद्ध रामायण कही गई है—पृष्ठ १९

९ { सवैया कहे हैं—पृष्ठ ३१२
  { सवैयाओं से देव जी का स्मर्ण आता है—पृष्ठ ३१३

कहीं 'काव्य' शब्द स्त्रीलिङ्ग, कहीं पुँलिङ्ग, कहीं 'दोहा' और 'सवैया' पुँलिङ्ग, कहीं स्त्रीलिङ्ग; कहीं 'यह' और 'वह' एकवचन, कहीं बहुवचन। इस प्रकार के न मालूम कितने उदाहरण इस पुस्तक में विद्यमान हैं।

सामासिक शब्द कहीं मिला कर लिखे गये हैं कहीं अलग अलग। किसी एक नियम की पाबन्दी नहीं की गई। 'कविता काल,' 'हिन्दी रचना,' 'भक्ति विचार,' 'चिर विमर्दित' और 'हिन्दू राज्य' आदि सैकड़ों सामासिक शब्दों के बीच में स्पेस छोड़ दिया गया है।

'ब' और 'व' की तो बड़ी ही दुर्दशा हुई है। 'व्रजभाषा', 'वल्लभाचार्य्य,' 'विरह,' 'विषय,' 'वध' और 'वियोग' आदि हज़ारों शब्द इसमें ऐसे हैं जिनमें 'व' के बदले 'ब' का प्रयोग हुआ है। लेखक-महोदयों ने स्वयं अपने नामों के 'विहारी' शब्द में भी 'ब' ही का प्रयोग किया है। हाँ, जिल्द के ऊपर जो नाम छपे हैं उनमें 'व' अवश्य है। पर वह शायद प्रेसवालों की कृपा का फल है।

प्रूफ़ भी पुस्तक के अच्छी तरह नहीं देखे गये। छापे की कितनी ही अशुद्धियाँ रह गई हैं। लेखक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाशयों ने विराम-चिह्नों के यथास्थान प्रयोग में भी बड़ी अवहेलना की है। विषयांश के अनुसार अपने कथन को समुचित पैराग्राफ़ों में विभक्त तक नहीं किया। भूमिका के तीसरे पृष्ठ से जो एक पैरा चला है तो दसवें पृष्ठ पर समाप्त हुआ है!

उपसंहार।

इस पुस्तक के गुणों का उल्लेख समष्टिरूप से लेखारम्भ में हम कर आये हैं। यहाँ पर हम फिर भी कहते हैं कि यह पुस्तक उपादेय है। इसे लिख कर लेखक-महोदयों ने हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की है तदर्थ वे प्रशंसा के पात्र हैं। गुणों की अपेक्षा दोषों को विशेष विस्तार से दिखाने का कारण यह है कि—"अपनी रचना की त्रुटियाँ किसी को जान ही नहीं पड़तीं"। यह इस पुस्तक के लेखकों ही की राय है। उनकी यह राय सरस्वती के पहले भाग के पृष्ठ ४२१ पर मिलेगी। हिन्दी-काव्य की आलोचना में उन्होंने उसकी त्रुटियों को दूर करने के इरादे से दोषों हीं का विशेष उल्लेख किया है। अतएव हमने भी उन्हीं के दिखाये हुए मार्ग पर चलना उचित समझा। इसका एक कारण और भी है। लेखक-महोदयों का एक पत्र, अभी कुछ ही समय हुआ, कितने हीं समाचारपत्रों में निकला है। उससे विदित हुआ कि आप लोग पाँच वर्ष से हिन्दी-साहित्य का एक बहुत बड़ा—कोई एक हज़ार पृष्ठ का—इतिहास लिख रहे हैं। यह इतिहास समाप्त-प्राय है। इसमें केवल कुछ आधुनिक कवियों और लेखकों पर निबन्ध लिखना बाक़ी है। इसी से, अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार, हमने, संक्षेप में, नवरत्न की त्रुटियाँ दिखाने का साहस किया है। लेखकों ने यदि हिन्दी का इतिहास लिख कर प्रकाशित करने की सूचना न दी होती तो हम इतनी लंबी समालोचना लिखने की आवश्यकता भी न समझते। अब यदि इस लेख में कुछ भी सार हो तो उसे ग्रहण करके लेखक-महोदय हिन्दी-साहित्य के इतिहास को निर्दोष बनाने की चेष्टा करें। और, यदि, न हो तो जाने दें।

ज्योतिर्विद्या।

[गोलाध्याय]

(२)

(लेखक—साहित्याचार्य्य प्रोफ़ेसर रामावतार शर्म्मा, एम० ए०)

सूर्य की गरमी घर्म-मापक के (जिसे लोग तापमान भी कहते हैं) अनुसार जितनी गरमी पर अङ्गार पानी सा होकर खौलने लगता है उससे दो हज़ार शतांश ऊँची रहती है। इसलिए उसमें केवल तरल पदार्थ रह सकते हैं। द्रव या घन पदार्थों का रहना सम्भव नहीं। सूर्य के बीच के गोले को सूर्य-बिम्ब कहते हैं। इसके चारों ओर वर्ण-मण्डल है। बिम्ब साधारण बाष्प से विलक्षण द्रव्य है। तैजस-रेखा-दर्शक में इसकी कोई रेखा नहीं पड़ती। वर्ण-मण्डल की चमकीली रेखा तैजस-रेखा-दर्शक में देख पड़ती है। वर्ण-मण्डल बाष्प-मय है। बिम्ब प्रायः ठीक गोला है। वर्ण-मण्डल भी गोला है। पर जहाँ तहाँ जब तब इससे उच्छ्राय (उछाल) निकलते हैं। वर्ण-मण्डल के चारों ओर अत्यन्त विस्तृत परिवेश-मण्डल है जिसका बाहरी आकार अनियत है और जिसका प्रकाश बिम्ब से बाहर बाहर धीरे धीरे घटता जाता है। परिवेश अत्यन्त सूक्ष्म बाष्पीय द्रव्यों का बना है जिसमें सम्भव है कि जहाँ तहाँ द्रव और घन-बिन्दु भी हों। परिवेश के चारों ओर और भी बड़ा ज्योति-र्मण्डल है जिसकी बनावट का पता कुछ भी नहीं चलता। जब कभी चित्र आदि में बिम्ब की तसवीर ली जाती है तब यह दानेदार सा बिखरे हुए पाले के रवे के सदृश मालूम पड़ता है। बिम्ब में जहाँ तहाँ बड़े बड़े दाग़ भी देख पड़ते हैं। यह दाग़ क्या वस्तु है, इस पर बहुत विचार हुआ है; पर कुछ ठीक पता नहीं लगता। सौराण्ड के विभाग के समय से क्रम से प्रकाश निकलते निकलते सूर्य के प्रकाश का जब अन्त हो जायगा उस क्षण तक के काल को महा-कल्प कहते हैं। कितने वर्ष का महा-कल्प होता है इसकी गणना ठीक नहीं हो सकती। पर इसमें सन्देह नहीं कि महाकल्प कई करोड़ वर्षों का होता है। तैजस-रेखा-दर्शक के द्वारा सूर्य में चालीस या पैंतालीस तत्त्व—लोहा, चाँदी, ताँबा, सीसा, वज्र आदि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखे गये हैं। [पृथ्वी से सूर्य का मध्य अन्तर ११६०३७५० योजन है। सूर्य का व्यास—१०८००० योजन है। (पैरेलैक्स (लम्बन) ८.८०६ है]।

सूर्य के चारों ओर चलने वाले आठ बड़े ग्रह हैं और हज़ारों छोटे छोटे ग्रह हैं। सूर्य से अत्यन्त समीप बुध है। बुध के बाद क्रम से, शुक्र, पृथ्वी, मङ्गल, बृहस्पति, शनि, उरण और वरुण ग्रह हैं। छोटे ग्रहों के नाम रम्भा, शची आदि दिये गये हैं। इनमें से केवल रति नाम का एक ग्रह पृथ्वी और मङ्गल के बीच में है और शेष सब मङ्गल और बृहस्पति के बीच में हैं। बड़े ग्रहों की गति आदि की सूची यहाँ दी जाती है।

ग्रहसारणी.

ग्रह	मध्यान्तर	परिवर्त्तन-काल	व्यास	कक्षागति का वेग
	योजनों में	दिनों में	योजनों में	योजनों में—प्रति विकला
बुध	४५,००,०००	८७.९९९२५६	३७२	३.७२
शुक्र	८४,०८,६२५	२२४.७००७९८	९५३.६२५	२.७२१२५
पृथ्वी	१,१६,२४,७५०	३६५.२५६३६०	९८९.६२५	२.३१५
मङ्गल	१,७७,१२,८७५	६८६.९७९७०२	५३९ ५	१.८७५
बृहस्पति	६,०४,८१,६२५	४३३२.५८७९	१०७८२.३७५	१.०१५
शनि	११,०८,८७,२५०	१०७५९.२०१०	९०९६.५	.७५
उरण	२२,३०,९१,५००	३०५८६.२९	४१०९.८७५	.५३
वरुण	३४,९५,६६,०००	६०१८७.६५	३७२८.३७५	.४२५

बुध—बड़े ग्रहों में बुध सब से छोटा है और सूर्य के अत्यन्त समीप है। इसका चिह्न यह ☿ है। पौराणिक झगड़ा है कि बुध बृहस्पति का ♃ बेटा है या चन्द्रमा का। एक इसी प्रकार का झगड़ा ज्योतिष में भी है। वह झगड़ा यह है कि बुध चन्द्रमा के सदृश एक परिभ्रमण में एक बार परिवर्त्तन करता है या और ग्रहों के सदृश इसका परिवर्त्तन-काल परिभ्रमण-काल से भिन्न है। सम्भव है कि पौराणिक झगड़ा इसी ज्योतिष के झगड़े की अतिशयोक्ति हो। क्योंकि अत्यन्त जङ्गलियों के पुराण प्रायः निर्मूल होते हैं; पर सभ्यों के पुराण प्रायः अतिशयोक्ति-मूलक होते हैं। अभी यह झगड़ा तै नहीं हुआ है और बुध के परिवर्त्तन के काल का ठिकाना नहीं है। पर इसके परिभ्रमण का काल प्रायः ८८ दिन है। बुध सूर्य से इतना समीप रहता है कि प्रायः सूर्यास्त के थोड़ी ही देर के बाद दिङ्मण्डल के नीचे चला जाता है इसलिए इसका दर्शन होना कठिन है। जब देख पड़ता है तब श्वेत उज्ज्वल प्रथम श्रेणी की तारा के सदृश मालूम पड़ता है। कभी कभी बुध की गति में ऐसे विक्षेप होते हैं जिनका कारण नहीं जान पड़ता। इसलिए कितनेही लोगों की कल्पना है कि बुध और सूर्य के बीच में भी कुछ ग्रह हैं जिनके कारण ये विक्षेप होते हैं।

शुक्र—बुध के बाद शुक्र ग्रह है। इसका चिह्न बाईं ओर ♀ देखिए। कभी कभी शुक्र जब सूर्यबिम्ब को पार करता है तब इस अद्भुत दृश्य को देखने के लिए जगह जगह बड़े बड़े ज्योतिषी इकट्ठे होते हैं। कहा गया है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रहों में अपना प्रकाश नहीं है। चन्द्रमा के सदृश ग्रह भी सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित हैं। इसलिए जितने अंश में सूर्य का प्रकाश पड़ता है उतनाही अंश एक बार प्रकाशित रहता है; सब अंश सदा प्रकाशित नहीं रहता। अर्थात् चन्द्रमा के सदृश ग्रहों की भी कला घटती बढ़ती है। कलाओं के घटने बढ़ने का दृश्य सादी आंखों से देख नहीं पड़ता। दूरवीक्षण से शुक्र की कला-वृद्धि और कला-ह्रास का दृश्य बहुत उत्तम देख पड़ता है। कदाचित् कला-ह्रास ही के कारण इसे मझले पौराणिक लोग काना देवता समझते हैं। भारत में पहले पहल ख़ूब स्पष्ट यह पश्चिम में दृश्य हुआ होगा। या इसका विशेष वर्णन भारतीयों को असुर, यवन, आदि से मिला होगा। प्रायः इसीलिए इसे लोग असुरों का गुरु कहते हैं। देवताओं के गुरु अर्थात् सब से बड़े बृहस्पति का वर्णन आगे किया जायगा।

पृथ्वी—पृथ्वी सूर्य का तृतीय ग्रह है। इसका चिह्न ⊕ है। बहुत लोगों ने प्रयत्न किया है कि इस बात का पता लगे कि सौराण्ड से अलग हुए पृथ्वी को कितने दिन हुए। इसका ठीक पता नहीं लगता है। पर इस बात को हुए कई लाख बरस हुए, इसमें कोई सन्देह नहीं है। कई धार्मिक लोग पृथ्वी की अवस्था चार हज़ार वर्ष की समझते थे। वे यही समझते थे कि जैसे कुम्भकार मिट्टी के लोन्दे गोन्दे बनाया करता है वैसे ही किसी ने पृथ्वी आदि प्राकृत पदार्थ भी बनाये हैं। ज्योतिर्विद्या, भूगर्भ-विद्या आदि से अब ऐसी गप्पों का आदर केवल थोड़े से दिव्य बुद्धिवाले भगत लोग करते हैं। अक्ष के चारों ओर परिवर्तन होने के समय जो भूगोलार्ध सूर्य के सामने रहता है वहाँ दिन रहता है और जो गोलार्ध सूर्य से पराङ्मुख रहता है वहाँ रात होती है। सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण के समय जिन अंशों पर सूर्य की किरण जितनी सीधी पड़ती है उतनी ही गरमी अधिक होती है। और, जहाँ किरण जितनी ही टेढ़ी पड़ती है वहाँ उतनी ही सर्दी अधिक पड़ती है। गरमी के दिनों में समुद्र आदि का जल सूर्य की किरणों से सूख कर कुछ दूर ऊपर वायु-मण्डल में भरते भरते मेघ सा हो जाता है और बरसात में धारासार से संसार को कृतार्थ करता है। संक्षेप यह है कि परिवर्तन-गति दिन-रात का कारण है और परिभ्रमण-गति ऋतु, अयन, वर्ष, ग्रहण आदि का कारण है। जब तक पृथ्वी सूर्य के उत्तर की ओर नाचती रहती है तब तक दक्षिणायन और जब तक सूर्य के दक्षिण की ओर नाचती है तब तक उत्तरायण होता है। दोनों मेरुओं के ठीक बीच में पृथ्वी की मध्य-रेखा है। इसे विषुव रेखा या विषुवत् रेखा भी कहते हैं। इस रेखा पर सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं। इसलिए इसके आस पास के देशों में बड़ी गरमी पड़ती है। और, गरमी के मारे वहाँ के रहनेवाले बड़े काले होते हैं। विषुव रेखा पर दिन और रात सदा बराबर होता है। दोनों ध्रुवों के पास छः महीने का दिन और छः महीने की रात होती है। बरस, सब जगह, दो अयनों का होता है। दिन चाहे उसमें तीन सौ पैंसठ हों या एक हो। ध्रुवीय वर्ष जो एक दिन-रात के बराबर होता है उसी को लोग दिव्य वर्ष कहते हैं। कितने लोग मनुष्य के वर्ष का तीन सौ पैंसठ गुना करके देवता का वर्ष समझते हैं। यह बड़ी भारी भूल है।

सौराण्ड से पृथक् होने पर प्रति दिन बाष्प निकलते निकलते पृथ्वी के ऊपर किस प्रकार मेघ जमे, और मूसलधार चिरकालिक वर्षा से कैसे पृथ्वी एकार्णव हो गई, और फिर समुद्र के प्रवाहों से जहाँ तहाँ गढ़े हो गये और जहाँ तहाँ पङ्क जमते जमते पथरीली ऊँची भूमि हुई; जहाँ तहाँ पृथ्वी के गर्भ से ज्वाला के उद्भेद हुए, जिससे काले पत्थरों के पहाड़ निकल आये और फिर काल पाकर सूक्ष्मवीक्षण से देखने योग्य कीड़ों से लेकर मछली, कछुवा, सुअर आदि क्रम से बन्दर, निरस्त्र, शिलास्त्र, आयसास्त्र, सभ्य से सभ्य जातियों तक किस प्रकार जीव का विकास हुआ इत्यादि विषय भूगर्भशास्त्र और विकास-विद्या में दिये जायँगे।

मङ्गल—मङ्गल सूर्य का चौथा ग्रह है। इसका चिह्न यह है। ♂ सादी आँखों से शुक्र और बृहस्पति ख़ूब सफ़ेद मालूम पड़ते हैं और मङ्गल लाल देख पड़ता है। कभी कभी यह श्रीश तारा से भी अधिक भास्वर देख पड़ता है। पृथ्वी पर से जैसी इसकी निरीक्षा हो सकती है वैसी और किसी ग्रह की नहीं। प्रायः छः सौ बत्तासी दिनों में यह सूर्य के चारों ओर घूम आता है। चौबीस घंटे (घण्टा), सैंतीस कला और साढ़े बाईस विकला से कुछ अधिक समय में यह अपने अक्ष पर घूम जाता है। मङ्गल के वायु की घनता पृथ्वी के वायु के चतुर्थांश से भी कम है। जब तब मेघ के सदृश कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तु इसके तल पर देख पड़ती है। ये मेघ हैं या पहाड़ हैं, कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता। अनुमान किया जाता है कि गरमी सरदी जैसी यहां ऊँचे से ऊँचे पहाड़ों पर है प्रायः वैसीही वहां भी है। बरन सर्दी पहाड़ों की चोटियों पर से कुछ अधिक ही है। इस ग्रह के कुछ अंश चमकीले और कुछ काले मालूम पड़ते हैं। चमकीले अंश भूमि के हो सकते हैं और काले अंश पानी के। मङ्गल के दोनों मेरु-प्रदेशों पर एक सफ़ेद टोप सा मालूम पड़ता है। सूर्य की गरमी पड़ते पड़ते यह नष्ट भी हो जाता है। इससे सम्भव है कि यह मेरुओं के ऊपर का बरफ़ होगा जो सूर्य की गरमी से पिघल जाता है। कितने ही लोग समझते हैं कि काले चिह्न पानी के नहीं हैं किन्तु घास-पात के हैं। मङ्गल में बहुत ऊँचे पहाड़ नहीं हैं, जैसे यहां हैं। यदि काले चिह्न समुद्र समझे जायँ तो उनके बीच बीच में एक दूसरे से सम्बन्ध जोड़नेवाली पानी की धारा भी है। ये अकृत्रिम नहरें बहुत लम्बी लम्बी हैं और उनकी संख्या भी बहुत बड़ी है। प्रायः छः सौ ऐसी नहरें अभी ज्ञात हैं। इनकी जालियों से समूचा ग्रह भरा हुआ है। एक ज्योतिर्विद् की कल्पना है कि ये नहरें कृत्रिम हैं और मेरु के पिघले हुए बरफ़ के पानी से खेती करने के लिए वहाँ के लोगों ने इन्हें बनाया है। मङ्गल के साथ दो चन्द्रमा हैं। एक मङ्गल के अत्यन्त समीप है और रात में दो बार मङ्गल के चारों ओर घूम आता है। इस चन्द्रमा के बाहर से घूमने वाला एक दूसरा चन्द्रमा है जिसको मङ्गल के चारों ओर घूमने में दो रात-दिन लगते हैं। इन चन्द्रों का व्यास प्रायः सवा योजन होगा।

बृहस्पति—बृहस्पति सूर्य का पञ्चम ग्रह है। इसका चिह्न यह है ♃ यह बड़े से बड़ा और भारी से भारी ग्रह है। इसीसे इसे बृहस्पति अर्थात् बृहत् ग्रहों का पति और गुरु अर्थात् ग्रहों में भारी कहते हैं। सब ग्रह एक में मिला दिये जायँ तो भी उनसे यह ढाई गुना बड़ा है। सूर्य से इसका मध्य अन्तर ६०३७५००० योजन है अर्थात् यह पृथ्वी से ४८७५०००० योजन पर है। ग्यारह बरस, तीन सौ चौदह दिन, इक्कीस होरा, छत्तीस कला में यह सूर्य के चारों ओर घूम आता है। इसका ध्रुवीय व्यास १०५७१.२५ योजन है और विषुवीय व्यास ११२७३.७५ योजन है। इसका आयाम पृथ्वी से तेरह सौ नब्बे गुना है और इसका परिमाण पृथ्वी से तीन सौ गुना है। प्रायः नौ होरा, छप्पन कला में यह ग्रह अपने अक्ष पर घूम जाता है। बृहस्पति का वायु समुद्र-वायु से छः गुना अधिक घना है; पर इतनी दूर तक नहीं गया जितनी दूर तक कि पृथ्वी का वायु। बृहस्पति में बहुत सी पट्टियां देख पड़ती हैं और जहां तहां अण्डे से दाग़ भी नज़र आते हैं। ग्रह का घनत्व प्रायः सूर्य से मिलता है इसलिए पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य से इस ग्रह का अधिक सादृश्य है। घनत्व में यद्यपि यह ग्रह सूर्य से मिलता है तथापि यह स्वयंप्रकाश नहीं है। एक दाग़ इसमें बड़ा लाल है और पट्टियां भी कुछ लाल सी मालूम पड़ती हैं। इससे इनके ज्वाला-मुख उद्भेद होने का सम्भव है। अभी तक पाँच चन्द्रमा बृहस्पति के ज्ञात हैं। इसके चार चन्द्रमा पहले पहल गुरुत्व को ज्ञात हुए। प्रायः चौदह बरस पहले तक चार से अधिक चन्द्रमा बृहस्पति के लोगों को नहीं विदित थे। शक १८१४ में वरनारद ने लिक्ष-वेधालय से पांचवां चन्द्रमा देखा, जो बारह घण्टे से कम में ग्रह के चारों ओर घूम आता है। १८२६ शकाब्द में उसी वेधालय से दो और चन्द्रमा देखे गये। १८३० में मेलोष्ट ने जीर्णबीचि वेधालय से एक आठवां चन्द्रमा देखा, जो बृहस्पति से बहुत दूर और बड़ी लम्बी कक्षा में चलता है। इन सब के ग्रहण और वेध, अर्थात् बृहस्पति-मण्डल को आरपार करने का दृश्य बड़े कौतुक का होता है।

शनि—शनि सूर्य का छठा ग्रह है। इसका चिह्न बाईं तरफ़ देखिए। शक १७०३ में उरण ने ज्ञात होने के पहले सूर्य से सब से अधिक दूरी पर यही ग्रह ज्ञात था। तीस वर्ष में यह सूर्य के चारों ओर घूम आता है। इसकी गठन कुछ बृहस्पति की सी मालूम पड़ती है। घनता इसकी सब ग्रहों से कम है। पृथ्वी के दशांश से भी कम, अर्थात् पानी से भी कम, इसकी घनता है। प्रायः साढ़े दस होरा में यह अपने अक्ष पर घूम जाता है। इसका दृश्य तल मङ्गल के सदृश घन द्रव्य का नहीं है। तरल, अर्थात् मेघ सदृश बाष्पीय द्रव्य का, है। इसकी पगड़ी और इसके चन्द्रमा अपूर्व देख पड़ते हैं। केवल प्रचण्ड शक्ति के दूरवीक्षण से इसकी पगड़ी और इसके चन्द्रमा देख पड़ते हैं। शनि के दश चन्द्रमा अभी तक ज्ञात हैं। सबसे समीप का चन्द्रमा तेईस होरा में शनि के चारों ओर घूम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आता है और सब से दूर का ५४६ दिन १२ होरा में। एक चन्द्रमा बृहस्पति का और एक चन्द्रमा शनि का ग्रह से उलटी चाल में चलता है। अर्थात् ग्रह पश्चिम से पूरब को जाता है और ये पूरब से पश्चिम को। वरुण में जो एकही चन्द्रमा है वह भी उलटा ही चलता है। पगड़ी के सबसे बाहर के तह का व्यास २०८६५ योजन है। पगड़ी के दो लपेट के भीतर एक काली सी और लपेट है जिस के भीतर दो चमकीली लपेटें हैं। सब लपेटें मिल कर ४६६६.२५ योजन होता है।

उरण—उरण सूर्य का सातवां ग्रह है। इसका चिह्न भी दिया जाता है। बड़े हरिशैल को १७०३ में पहले पहल इसका दर्शन हुआ। बड़ी प्रचण्ड शक्ति के दूरवीक्षण में इसका मलिन समुद्री रङ्ग का बिम्ब देख पड़ता है। इसकी स्थिति यदि मालूम हो, और आकाश में यह जहां हो ठीक वहीं देखा जाय, तो सादी आंखों को भी यह कुछ दृश्य होता है। इसके चार चन्द्रमा हैं। ढाई दिन, चार दिन, नौ दिन, और साढ़े तेरह दिन में क्रम से ये ग्रह के चारों ओर घूम आते हैं।

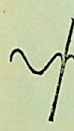

वरुण—वरुण सूर्य का आठवां ग्रह है। इसका चिह्न भी दिया जाता है। सूर्य से पृथ्वी की दूरी से तीस गुनी दूरी इसकी सूर्य से है। अर्थात् सूर्य से इसका मध्यान्तर ३४,९५,००,००० योजन है। १६५ सवर में यह सूर्य के चारों ओर घूम आता है। इसकी कक्षा प्रायः गोली है। ऐसी गोली कक्षा शुक्र को छोड़ और किसी ग्रह की नहीं है। प्रचण्ड दूरवीक्षण में इसका रङ्ग मन्द नीला सा मालूम पड़ता है। उरण और वरुण की परिवृत्ति का समय नहीं जाना गया है। क्योंकि इनके बिम्ब पर कोई दाग़ नहीं नज़र आते, जिनके हटने बढ़ने से इसका निश्चय किया जाय। इसका वायु-मण्डल उदजनक से पूर्ण, बड़ा गहरा, जान पड़ता है। एक ही चन्द्रमा इसका देखा गया है। १७६८ में बड़े परिश्रम के बाद लवार्य ने इस ग्रह की स्थिति, गति आदि का निश्चय किया था।

ऊपर कह आये हैं कि रति को छोड़ कर और सब छोटे ग्रह मङ्गल और बृहस्पति के बीच से सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। छः सात सौ से ऊपर ये छोटे ग्रह आज तक जाने गये हैं। इनमें से कितनेही तो इतने छोटे हैं कि तौल में केवल कई सेर होंगे। कितनों ही का मत है कि कोई एकही बड़ा ग्रह किसी धक्के से चूर चूर होकर आज इन छोटे ग्रहों के रूप में घूम रहा है।

सूर्य, उसके आठ बड़े ग्रह, बड़े ग्रहों के चन्द्रमा, छोटे ग्रह, और कई केतु मिल कर सौर जगत् स्थित है। सब बड़े ग्रह पश्चिम से पूरब, यानी सूर्य की प्रकट गति से उलटी गति में, चलते हैं। इनकी कक्षा एक दूसरे से बहुत दबी नहीं है। सब छोटे ग्रह भी एक ही मुँह, अर्थात् पश्चिम से पूरब को, जाते हैं। पर एक दूसरे की अपेक्षा कक्षाओं का दबाव और उनकी दीर्घता में बहुत भेद है। सब चन्द्रमा प्रायः पश्चिम ही से पूरब जाते हैं। केवल उरण के चन्द्रमा उरण की कक्षा के प्रायः ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर, घूमते रहते हैं। वरुण का चन्द्रमा, शनि का एक चन्द्रमा, तथा बृहस्पति का एक चन्द्रमा उलटी चाल से चलते हैं। अर्थात् पूरब से पश्चिम जाते हैं। सब मिल कर छब्बीस उपग्रह अथवा चन्द्र अभी तक ज्ञात हुए हैं। उनमें पृथ्वी का जो एक चन्द्रमा है वही चन्द्र नाम से लोगों में प्रसिद्ध है। मास या महीने का नाम चन्द्रमा से होता है। इसीलिए इसे मास भी कहते हैं। पृथ्वी से सूर्य की दूरी, पृथ्वी से चन्द्रमा की दूरी की अपेक्षा, प्रायः चार सौ गुनी अधिक है। पृथ्वी जब सूर्य के चारों ओर घूमती रहती है तब चन्द्रमा बराबर पृथ्वी के चारों ओर घूमता है और उसे लिये दिये पृथ्वी चलती है। सूर्य का प्रकाश चन्द्रमा के जितने अंश पर पड़ता है उतना अंश प्रकाशित रहता है। एक एक अंश करके पन्द्रह दिन में समूचा चन्द्र-बिम्ब प्रकाश से भर जाता है और फिर पन्द्रह दिन में क्रम से एक एक अंश घटता है। चन्द्रोदय और चन्द्रास्त चन्द्रमा के भ्रमण के कारण प्रतिदिन प्रायः अड़तालीस कला देर से होता है। चन्द्रमा का प्रायः एक ही मुँह पृथ्वी के सामने रहता है। इससे यह स्पष्ट है कि उसका परिवर्तन और परिभ्रमण एक ही समय में होता है। चन्द्रमा में प्रायः सभी काले और चमकीले दो अंश देख पड़ते हैं। कभी कभी बाल चन्द्रमा का भी पूर्ण बिम्ब काला सा मालूम पड़ता है। सूर्य की प्रभा पृथ्वी पर आकर यहां से उलट कर चन्द्रमा पर पड़ती है। इसी से यह काला बिम्ब नज़र आता है। चन्द्रमा में खड़ा होकर यदि कोई पृथ्वी को देखता तो उसे पृथ्वी दस चन्द्रमा के बराबर एक बिम्ब सी देख पड़ती। चन्द्रमा में जो काले काले दाग़ हैं उन्हें पहले लोग समुद्र समझते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर दूरवीक्षण की तरक़्क़ी के साथ साथ यह निश्चय होने लगा कि चन्द्रमा का तल खड्डा और पहाड़ों से भरा हुआ है। चन्द्र-गोलक के वर्णन पर कई पुस्तकें पाश्चात्यों ने लिखी हैं। अब चित्रग्राह की सहायता से बहुत अच्छी तरह बिम्ब के चित्र लिये गये हैं। चन्द्रबिम्ब में सबसे अद्भुत यह बात है कि जहाँ तहाँ मरे हुए अग्नि-पर्वतों के मुख अभी तक देख पड़ते हैं। चन्द्र-पर्वतों की उँचाई नापने में बड़ी कठिनाई है, क्योंकि कोई समुद्र तो वहाँ है नहीं जिसकी पीठ से उँचाई का ठिकाना लगे। पर समीप के किसी गढ़े से उँचाई नापी जा सकती है। तीन हज़ार से चौबीस हज़ार फुट ऊँचे पहाड़ इस पर हैं। चन्द्र-बिम्ब पर जल या वायु के होने का कोई प्रमाण अभी तक नहीं मिला है। इसलिए वृष्टि का होना जाना इत्यादि चन्द्रबिम्ब पर नहीं हो सकता। सूर्य की किरणों के पड़ने से सरदी गरमी का भेद मात्र वहाँ है। वायु-मण्डल न होने से सर्दी भी पड़ती है तो ख़ूब और गरमी भी पड़ती है तो ख़ूब ही। जल-वायु न होने से वहाँ जीव का सम्भव नहीं है। जब तब बाल-चन्द्रमा के काले पेट में कुछ चमकीले दाग़ देख पड़ते हैं। कितने ही लोग इन्हें जीते अग्नि-पर्वतों के उद्भेद समझते हैं। पूर्ण-चन्द्रमा के प्रकाश से पाँच लाख गुना सूर्य का प्रकाश है—अर्थात् पूर्ण चन्द्रमा के प्रकाश की घनता की अपेक्षा सूर्य के प्रकाश की घनता पाँच लाख गुना अधिक है। चन्द्र की कक्षा भी कूर्म-पृष्ठ है। पृथ्वी इस कूर्म-पृष्ठ के दो केन्द्रों में से एक है। पूर्णिमा को बीच में पृथ्वी और दोनों ओर सूर्य-चन्द्रमा पड़ते हैं और पृथ्वी की छाया चन्द्रमा के जितने अंश को काला कर देती है उतने अंश का चन्द्र-ग्रहण होता है। अमावास्या को पृथ्वी और सूर्य के बीच में चन्द्रमा रहता है और सूर्य का जितना अंश चन्द्रमा से ठीक व्यवहित होता है उतने अंश का सूर्यग्रहण होता है।

सौर जगत् में पूँछ वाले ग्रह, जिन्हें केतु कहते हैं, कभी कभी देख पड़ते हैं। केतु बड़ी लम्बी कक्षा में चलते हैं। सौ बरस में बीस या तीस सादी आँखों से देख पड़ते हैं। पर हर साल सात आठ दूरवीक्षण से देखे जाते हैं। केतु में एक तारा के सदृश पिठर होता है जिसके चारों ओर एक पतली प्रभा रहती है। इस प्रभा से निकली हुई एक पूँछ होती है जो सूर्य से उलटी दिशा में देख पड़ती है। कितने केतु नियत समय से बड़े लम्बे कूर्म-पृष्ठ में चलते हैं। पर बहुत से केतु समान्तरच्छेद आदि दीर्घ-वृत्तों में चलते हैं। इसलिए उन का लौट अ असम्भव है। केतु-गति के चाप की निरीक्षा से, या चाप परीक्षा से, या उसके फिर लौट आने से जाना जा सकता है उसकी गति तिर्यक्च्छेद में है, या समान्तरच्छेद में, या उभ च्छेद में है। जो केतु तिर्यक्च्छेद में चलते हैं, अर्थात् ह आते हैं, वे सौर जगत् के हैं। दस वर्ष से लेकर हज़ारों वर्ष लौटने वाले तक सौर केतु हैं। जो समान्तरच्छेद या उभय च्छेद में चलते हैं वे नहीं लौटते और प्रायः किसी दूसरे तार सूर्य से सम्बन्ध रखते हैं। सूर्य से इतनी दूरी पर रह भी केतुओं को श्वेत दीप्ति कहाँ से मिलती है, यह एक बड़ प्रश्न है। केतुओं के भीतर कुछ वैद्युत परिणाम हो रहा है जि से उन्हें यह दीप्ति मिलती है, ऐसा मालूम पड़ता है। केतु का पिठर दूरवीक्षण में अपारदर्शी पुञ्ज सा मालूम पड़ता है पूँछ पारदर्शी है, इसलिए उसके पार की भी तारायें आदि देख पड़ती हैं। उल्कापात से और केतुओं से प्रायः बहुत सम्बन्ध है। प्रायः जिस रास्ते से कोई केतु गया होता है उस रास्ते वह बहुत सा उल्काजनक द्रव्य छोड़ता जाता है। इसलि इन्हीं स्थानों पर प्रायः उल्कापात हुआ करता है। केतु क पुच्छ सूर्य-किरणों से क्यों सदा भागता है, इस प्रश्न का उत्त अभी ठीक ठीक नहीं जाना गया है। सम्भव है कि सूर्य की किरण स्वयं पूँछ को हटाती हो या किसी वैद्युत प्रेरणा से वह हटता हो। सम्भव है कि दोनों कारण साथ ही साथ काम करते हों। सादी आँखों से केतु का पुच्छ जैसा मालूम पड़ता है उससे कुछ विलक्षण ही दृश्य चित्रग्राह में चित्र लेने पर देख पड़ता है। चित्र में इसका पिठर एक गोला सा मालूम पड़ता है और पुच्छ गिरहदार मकई का डण्डा सा। केतु में दो प्रकार की प्रभा पाई जाती है। एक तो पूँछ के बाष्पों की श्वेत प्रभा और दूसरी पिठर पर प्रतिबिम्बित सूर्य की प्रभा। सूर्य समूचे सौर जगत् को लिये हुए एक विकला में सवा योजन के हिसाब से आकाश में चला जा रहा है। यदि कोई जाता हुआ केतु उसकी अपेक्षा स्थिर रहता तो सूर्य के समीप आने से केतु में उभयतश्छेद की गति देख पड़ती। पर केतु की गति में समान्तरच्छेद से इतना भेद नहीं पड़ता है जिस से जाने हुए केतुओं को सौर जगत् का न समझें। इस से प्रायः बहुतेरे केतु सौर ही जगत् के हैं। कदाचित् ही कोई आगन्तुक हों। लौट आने वाले केतु आज तक इतने विदित हैं :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१	हली	७५. ६ वर्ष में।
२	बल	६.६७ वर्ष में।
३	अङ्क	३.२६ वर्ष में।
४	तूतल	१३.७८ वर्ष में।
५	पण	७२.२८ वर्ष में।
६	उर्वर	७३.३२ वर्ष में।
७	बर्णक	५.६७ वर्ष में।
८	स्फ्य	७.५० वर्ष में।
९	भिक्षु	५.६६ वर्ष में।
१०	बरोटन	५.५२ वर्ष में।
११	अरिष्ट	६.५६ वर्ष में।
१२	ताम्रफल	५.८४ वर्ष में।
१३	सुविस्फुट	५.५१ वर्ष में।
१४	तिमिपाल	५.२८ वर्ष में।
१५	वृक	६.८० वर्ष में।
१६	फणिलय	६.६४ वर्ष में।
१७	वरोत्त	७.२० वर्ष में।
१८	हर्म्य	६.८९ वर्ष में।

बहुत से उल्का-पाषाण आकाश में जहाँ तहाँ पड़े हैं। साफ़ चाँदनी रात में घण्टे में आठ दस उल्कायें गिरती हैं। प्रातःकाल घंटे में बीस तक उल्का-पात होते हैं। गणित से ठीक किया गया है कि प्रायः बीस लाख उल्का-पाषाण रोज़ वायु-मण्डल में आते हैं। यदि सूर्य का प्रकाश, चन्द्रमा की प्रभा और मेघ न हों तो ये सब सादी आँखों से देख पड़ेंगे। पर बहुत से उल्का-पाषाण दूरवीक्षण मात्र से दृश्य हैं। इन्हें यदि मिला लिया जाय तो कहा जाता है कि प्रति दिन चार करोड़ उल्का-पाषाण वायु-मण्डल में आते हैं। ग्रहादिक के सदृश ये भी सूर्य के चारों ओर तिर्यक्च्छेद में घूमते हैं। एक शताब्दी में प्रायः तीन बार बड़ी भारी उल्का-वृष्टि पृथ्वी पर होती है। अनुमान किया जाता है कि तीस वर्ष चार महीने में सूर्य के चारों ओर घूम आनेवाला कोई बड़ा भारी उल्का-प्रवाह चल रहा है और कहीं पर उसकी कक्षा पृथ्वी की कक्षा को काटती है। जब पृथ्वी इस छेदबिन्दु पर पहुँचती है तभी प्रायः भारी उल्का-वृष्टि होती है। एक विकला में ३.२५ योजन चलती हुई उल्का विकला में २.२८१२५ योजन चलनेवाली पृथ्वी से, सामने आकर, भिड़ती है। इसी लिए विकला में उसकी गति ५·५ योजन की मालूम होती है। कार्तिक मास के आस पास एक देखने लायक़ उल्का-वृष्टि होती है। सावन भादों के आस पास भी एक अच्छी उल्का-वृष्टि होती है। चमकीली उल्काओं में से प्रायः जलते हुए मङ्गेश कीसी श्वेत नील प्रभा आती है। उल्का-पाषाण जलते हुए और शब्द करते हुए कभी कभी पृथ्वी पर गिरते हैं। यदि समूचा पाषाण वायु-घर्षण से जल कर ख़ाक न हो गया तो पृथ्वी पर मिलता है। प्रायः वेग से आने के कारण उल्का-पाषाण कई फुट ज़मीन के भीतर घुस जाते हैं। जब गवाँर लोग कभी उल्का-पाषाण पाते हैं तब उसे देवता, देवी या देवताओं की मा-बहिन कह कर पूजते हैं। उल्का-पाषाण प्रायः कोण के आकार के होते हैं। यूनान में पहले बहुतेरे स्थानों में इनकी पूजा होती थी। कितने आङ्गल वैज्ञानिकों का मत है कि मक्का का काला पत्थर भी एक उल्का-पाषाण ही है। आज कल अजुबतालयों में ऐसे सैकड़ों हज़ारों पत्थर स्थापित हैं। हरित-भूमि के पश्चिम से सुमेरुदर्शी प्रियारि महाशय के लाये हुए उल्का-पाषाणों में से सबसे बड़ा साढ़े छत्तीस तूण का है। मक्षिका-राज्य में बकवृत्त में एक बड़ा उल्का-पाषाण पाया गया था जो तेरह फुट लम्बा, छः फुट चौड़ा और पाँच फुट मोटा है। यह पचास तूण से कम नहीं होगा। उल्का-पाषाण लहराते हुए बड़े वेग से ऊपर के सूक्ष्म वायु में चलते हैं; पर पृथ्वी के समीप के घन वायु में आते आते उनकी गति कम होती जाती है। इसलिए गरमी भी बहुत कम रह जाती है। कभी कभी बहुतेरे पत्थर साथ ही साथ एक दो योजन की लम्बाई में गिरते हैं। पृथ्वी के छिलके में जितने तत्त्व पाये जाते हैं उनमें से एक तृतीयांश उल्का-पाषाणों में भी पाये जाते हैं। कोई नया तत्त्व इनमें अभी तक नहीं पाया गया है। अभी तक किसी उल्का-पाषाण में कोई शारीरक द्रव्य नहीं पाया गया है। पृथ्वी के बाहर जीवों के होने का कोई प्रमाण अभी उल्का-पाषाणों से नहीं मिला है।

मौन-महिमा।

(१)

हे मौनिते! मङ्गलकारिणी तू; शीलेश्वरी, शान्तिविहारिणी तू।
विरोध-विद्वेष-निवारिणी तू; विषाक्त-वाणी-विष-हारिणी तू॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

योगी, यती, साधु समाधिमान की योग्यता तू सब से प्रधान।
तेरे बिना शीघ्र पलायमान होते स्वयं हैं सब ज्ञान-ध्यान॥

(३)

है अज्ञ की तू जड़ता छिपाती; तू विज्ञ को भी ममता दिखाती।
संवाद होता उनका जहां है, मध्यस्थ होती झट तू वहां है॥

(४)

कथा-कलापी सब से प्रलापी, होते नहीं जो चुप हैं कदापि।
शोकार्त्ति से वे जब क्षुब्ध होते, हैं पास तेरे निज दुःख रोते॥

(५)

आश्चर्य्य से विस्मित हो बड़े जो; आतङ्क से स्तम्भित हो, खड़े जो।
आराधते हैं तुझ को स-मान, रक्षा उन्हें तू करती प्रदान॥

(६)

तूही कभी प्रीति-कथा सुनाती; तूही कभी सम्मति भी दिलाती।
तूही दया की अतिरिक्त आली; तूही हया की प्रिय सङ्गवाली॥

(७)

नहीं कभी तू रसना हिलाती; तथापि सद्भाव सभी बताती।
स्वदृष्टि-द्वारा स्वविचार सारे, चित्तस्थ है तू करती, हमारे॥

(८)

विनाशिनी तू अपवाद की है; विच्छेदिनी वाद-विवाद की है।
कृतज्ञ तेरे सविशेष भारी, संसार में, हैं नर और नारी॥

(९)

पैशुन्य से जो नर चित्तदाही बातें बनाते रहते सदाही।
निःशब्द जो तू उनको बनावे, तो लोक आनन्द अनल्प पावे॥

(१०)

जो काम का नाम कभी न लेते, हैं किन्तु उन्मादक सीख देते।
हों भक्त तेरे यदि वे अभागे, तो भाग्य जागे, परिताप भागे॥

(११)

हैं धर्म्म का मर्म्म न जानते जो, तथापि धर्म्मार्थ बखानते जो।
तेरा धरें ध्यान सदैव जो वे, तो लोक-कल्याण अवश्य होवे॥

(१२)

जो शक्ति तेरी सब जानते हैं; जो सिद्धि तेरी शुभ मानते हैं।
तेरा नहीं वे जप छोड़ते हैं; तेरा नहीं वे व्रत तोड़ते हैं॥

(१३)

जननी तुल्य तू मेरी; मैं कुपुत्र-समान हूँ।
तो इति स्तुति है तेरी; धरता तव ध्यान हूँ॥

सत्कविदास।

वर्तमान काल में शिक्षा का महत्त्व

पाश्चात्य देशों में जिस प्रकार शिक्षा का प्रचार बढ़ रहा है उसका यथार्थ अनुभव उन भारतवासियों को हो सकता है जो स्वयं उन देशों में गये हैं। प्रत्येक सभ्य देश दूसरे देश से विद्योन्नति में बढ़ने का प्रयत्न कर रहा है। एक देश के विद्या-रसिक दूसरे देश में भ्रमण करने जाते हैं, वहाँ की शिक्षा प्रणाली की परताल करते हैं और उपयुक्त बातों को अपने देश में जारी करने की चेष्टा करते हैं। संसार का कोई सभ्य देश ऐसा नहीं है जहाँ की पाठशालाओं की प्रणाली पर अँगरेज़ी भाषा में पुस्तकें न मिलती हों। प्रति दिन ऐसे अध्यापकों की संख्या बढ़ती जाती है जो अपनी छुट्टी का समय विदेश जाकर व्यतीत करते हैं और अपने अनुभव को शृंखलाबद्ध व्याख्यान-रूप में लिख कर अपने स्वदेशी अध्यापकों और विद्यार्थियों को सुनाते हैं।

ऐसे सभ्य देशों में प्रति दिन नई नई पाठशालायें खुलती हैं; विद्यार्थियों की संख्या बढ़ती जाती है; और हज़ारों रुपये शिक्षा-प्रचार में व्यय होते हैं।

ऐसी दशा देख कर स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि आख़िर इस उन्नति का कारण क्या है। क्यों पूर्वोक्त सभ्य देशों की काया पलट रही है? वह कौन सा भाव है जो उन देशों में सहस्रों स्त्री-पुरुषों को विद्या-प्रचारार्थ अपना जीवन अर्पण कर देने के लिए उद्युक्त करता है?

यह सिद्धान्त है कि जिस प्रकार प्रत्येक मनुष्य को अपने शरीर की रक्षा के लिए भोजन और वस्त्र की आवश्यकता होती है उसी प्रकार ज्ञानोन्नति के लिए इस बात की भी आवश्यकता होती है कि मनुष्य अपनी भाषा में लिख पढ़ ले और हिसाब रख सके। इसी को प्रारम्भिक शिक्षा कहते हैं। उस मनुष्य का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म लेना वृथा है जो अपनी भाषा में लिख पढ़ नहीं सकता। जिस बालक को उसके माता-पिता शिक्षा न दे सकें उसकी शिक्षा का भार शासक और समाज पर है। यह सिद्धान्त बड़ा ही हृदय-ग्राही है। देश पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ता है। हमारे देश में अब तक सहस्रों मनुष्य यही मानते हैं कि समाज का एक विशेष दल ही विद्या प्राप्त करने का अधिकारी है; और कोई दल अधिकारी नहीं। पर उन देशों में हर स्त्री-पुरुष अपने स्वत्व—अपने अधिकार—को समझता है। वह जानता है कि शिक्षा प्राप्त करने का उसे पूर्ण अधिकार है—चाहे वह पादरी के घर पैदा हुआ हो, चाहे सुअर चराने वाले के। म्युनिसिपैलिटी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड जो कर लेते हैं उसका अधिकांश अपनी हद में स्कूल खोलने में लगाते हैं। देश के बच्चों को वहाँ वाले समाज की पूँजी समझते हैं। देश का प्रत्येक बच्चा, चाहे वह ग़रीब के घर पैदा हुआ हो चाहे अमीर के, सारी जाति का वह एक अङ्ग है। जिस प्रकार का बर्त्ताव हम उससे करेंगे उसी प्रकार की जाति भविष्यत् में हो जायगी। क्योंकि जो आज बच्चे हैं वही कल बड़े होंगे। अनेक माता-पिता अपना सारा धन अपने बच्चों की शिक्षा में व्यय कर देते हैं। आप थोड़ा खाकर, सादे कपड़े पहन कर, निर्वाह करते हैं; पर अपने बच्चों की शिक्षा में कसर नहीं पड़ने देते।

जैसे अनेक पुरुष निःसन्तान होते हैं वैसे ही अनेक बच्चे भी मातृ-पितृ-हीन अर्थात् अनाथ और निराश्रय होते हैं। सभ्य देशों में निःसन्तान पुरुष अनाथ बच्चों के लिए लाखों रुपये देकर पाठशालायें खुलवा देते हैं, यहाँ तक कि यदि किसी अविवाहिता या विधवा स्त्री के बच्चा उत्पन्न हो जाय तो ऐसे बच्चों के पालन-पोषण और शिक्षण का भी प्रबन्ध करने के लिए संस्थायें मौजूद हैं।

विद्या के महत्त्व से सम्बन्ध रखनेवाले ये दो सिद्धान्त बड़े ही व्यापक हैं। पहला यह कि थोड़ी बहुत शिक्षा पाने का हर स्त्री-पुरुष को, चाहे उसकी सामाजिक अवस्था कैसी ही हो, जन्म से ही स्वत्व प्राप्त है। दूसरा यह कि देश के बालक और बालिकायें जाति का धन हैं। उनकी रक्षा करना—उनके पालन-पोषण और शिक्षण का प्रबन्ध करना—माता-पिता, शासनकर्त्ता और समाज का धर्म है।

गाँवों में स्कूल, अधम श्रेणी के लोगों के लिए स्कूल, अछूत जातियों के बच्चों के लिए स्कूल, छोटी अवस्था के क़ैदियों के लिए स्कूल—इस प्रकार के स्कूलों का निर्माण वर्तमान काल की सभ्यता की विशेषता है।

प्रारम्भिक शिक्षा के प्रचार के लिए क़ानून बनाये जाते हैं। कई सभ्य देशों में कोई बालक छः सात वर्ष के अनन्तर घर पर बिना पढ़े नहीं रह सकता। यदि रहे तो उसके पिता को दण्ड मिलता है और समाज उसका तिरस्कार करता है। सन्ध्या-समय और रात को उन लोगों के पढ़ने का प्रबन्ध किया जाता है जो दिन को मज़दूरी करते हैं। अन्धे, बहरे और गूँगे लड़कों के लिए स्कूल खोले जाते हैं। अन्धों के पढ़ने की किताबों के अक्षर मोटे और उभड़े हुए होते हैं। हाथों से टटोल कर अन्धे विद्यार्थी उनको पढ़ कर विलक्षण उन्नति करते हैं। गूँगे इशारों से पढ़ाये जाते हैं। इन्हीं अन्धे और गूँगे विद्यार्थियों में अनेक प्रतिभाशाली मनुष्य उत्पन्न हुए हैं।

यह तो हुई प्रारम्भिक शिक्षा की अवस्था। मनुष्य को जब अपनी मातृभाषा में लिखना-पढ़ना, हिसाब रखना आ गया तब यह विचार आवश्यक होता है कि उसे किस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है। यदि वह धनवान् है और गूढ शास्त्रों का अवलोकन करना चाहता है तो उसके लिए विश्वविद्यालय खुले हैं। यदि वह अपने निर्वाह के लिए रुपया कमाना चाहता है तो जिस रोज़गार में उसका मन लगे उसकी शिक्षा के लिए प्रबन्ध करना चाहिए। क्षिप्रलेखन-प्रणाली, टाइप से लिखने की प्रणाली, बढ़ई का काम, लोहार का काम—यह सब स्कूलों में सिखलाया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि प्रारम्भिक शिक्षा किसी मनुष्य को अच्छी तरह मिल जाती है तो उसका विद्यानुराग सदैव बढ़ता जाता है। वह निरर्थक और निर्मूल बातों को नहीं मानता। संसार की जितनी घटनायें हैं उनका कारण जाने बिना उसको शान्ति नहीं हो सकती। विचार करने की शक्ति उसमें बढ़ती जाती है। हमारे देश में यदि किसी प्राकृतिक घटना का कारण किसी गँवार को न मालूम हो तो उसको यह समझा दिया जाता है कि यह भूत-प्रेतादि की करतूत है अथवा परमेश्वर का चमत्कार है। पर उन देशों में उच्च शिक्षा पाये हुए पुरुष अपना कर्तव्य समझते हैं कि मज़दूरों, गाँव के लोगों, और सर्व-साधारण को विज्ञान-शास्त्र के गूढ़ तत्त्वों को सरल करके समझावें। इसका प्रबन्ध वहाँ विश्वविद्यालय करते हैं। बड़े बड़े विद्वान् मैजिक लालटेन की सहायता से अपने व्याख्यानों को रोचक बना कर सर्व-साधारण को बड़ी बड़ी गूढ़ बातें देश-भाषा में समझाते हैं। ऐसे व्याख्यानों के विषय "कोयला" "खरिया", "ग्रहण", "हाथ", "आखें" इत्यादि होते हैं। इन व्याख्यानों का फल देश पर बड़ाही अद्भुत होता है। वहाँ के लोगों को भूत-प्रेत की कथा कह कर फुसलाना असम्भव है। ऐसे व्याख्यानों को सुनने के लिए कभी कभी बड़े बड़े विद्वान् भी आते हैं। मान लीजिए कि एक पुरुष दर्शनशास्त्र का पण्डित है। परन्तु विज्ञान-शास्त्र के ग्रन्थों को पढ़ने का उसे मौक़ा नहीं मिला। ऐसे लोग उन व्याख्यानों में आकर विज्ञान-शास्त्र के तत्त्वों को समझते हैं। वर्त्तमान काल की शिक्षा का यह भी एक सिद्धान्त है कि हर विद्वान् को एक विषय का तो पूर्ण ज्ञान होना चाहिए; पर थोड़ा ज्ञान अन्य विषयों का भी होना आवश्यक है। एक शास्त्र का सम्बन्ध दूसरे शास्त्र से है। केवल व्याकरण जानने वाला, हमारे देश की तरह, वहाँ विद्वान् नहीं समझा जाता। व्याकरण बिना साहित्य के, इतिहास बिना भूगोल के, और साहित्य बिना इतिहास के अधूरा समझा जाता है।

वर्त्तमान काल की शिक्षा में एक और विशे है। आज कल स्कूलों में पढ़नेवाले विद्यार्थियों जातीयता के भाव उत्पन्न हो जाते हैं। वे अपने दे की दशा पर विचार करने लगते हैं और देश सुधार की चेष्टा करते हैं। इसके कई कारण इतिहास, भूगोल और विज्ञान का पढ़ना उ विचारों के क्षितिज को विस्तृत कर देता है; उ षणा करने की शक्ति उनमें उत्पन्न कर देता है। म लीजिए कि किसी देश में कोई बुरी रस्म है, अथ किसी प्रकार का मिथ्या विश्वास फैला हुआ है आज कल के विद्वान् अन्य देशों की अवस्था मिलान करके, अथवा उसी देश के प्राचीन इतिह की खोज करके, तुरन्त जान लेते हैं कि ऐसे र अथवा विश्वास बुरे हैं। शिक्षा की इस विलक्षण का प्रभाव समाज, राजनीति, उद्योग-धन्धा सब प पड़ता है। और, यह इसी शिक्षा का फल है कि चीन अफ़ीम की पिनिक से उठ रहा है; जापान संसार अग्रगण्य देशों में माना जाता है; और भारत में जाग्रति के लक्षण दिखाई देते हैं।

रामनारायण मिश्र

आर्त्त-वाणी।

हे पतितपावन प्रभो! हूँ मैं कुकर्मों से मढ़ा;
अति अधम उद्धत अधर्मी कुछ अजामिल से बढ़ा।
पातकी मुझ-सा कहीं विश्वेश मिलने का नहीं;
भार दोषों का सहज में नाथ! हिलने का नहीं॥ १॥

क्रूर-कुत्सित-कुलकलङ्क-उपाधियां काफ़ी नहीं;
न्याय से मुझको दयामय! मिल सके माफ़ी नहीं।
सच तो यों है—जन्म ही मेरा वृथा जग में भया;
गर्भ से गिर कर न क्यों मैं हाय ईश्वर! मर गया॥ २॥

सब तरफ़ निन्दा-घृणा, उपहास की बौछार है;
सिर उठाना है कठिन; दुख का न वारापार है।
शान्ति का तो लेश भी स्वामी! नहीं है रह गया;
खोजने से भी, कहीं पर, मैं नहीं पाता दया॥ ३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब गुज़रती चैन से थी—मान था; अभिमान था;
तब नहीं मुझको कभी आया तुम्हारा ध्यान था।
अब भला मैं कौन मुँह लेकर पुकारूँ आपको;
शूँख तो उठती नहीं कैसे निहारूँ आपको ॥ ४ ॥
भक्तवत्सल ! दीनबन्धो ! आप ही अपनाइए;
मुझ पतित को प्रणतपालक विश्व बीच निबाहिए।
पाहि अशरण-शरण ! मुझको द्वार से न निकालिए;
मुझे अपने ही चरण में शरण अब दे डालिए ॥ ५ ॥

रूपनारायण पाण्डेय (कमलाकर)

भरत ।

रामायण-काव्य का लाञ्छनारहित आदर्श-चरित्र ।

(वङ्गदर्शन में प्रकाशित बाबू दीनेशचन्द्र सेन के लेख का अनुवाद)

भरत का उल्लेख करते हुए राजा दशरथ ने कैकेयी से कहा था:—"रामादपि हि तं मन्ये धर्मतो बलवत्तरम्"। भरत के चरित उनको अच्छी तरह विदित थे; तथापि राम के वन-गमन करने से भरत को उन्होंने त्याज्य पुत्र समझा और अपने और्द्ध्वदैहिक कार्य्य के अयोग्य निर्देश किया। ऐसे निर्दोष,—ख़ाली निर्दोष ही नहीं—रामायण-काव्य के आदर्श-चरित्र भरत के भाग्य में जो जो विडम्बनायें उपस्थित हुईं उनकी आलोचना करने से मन महा दुःखित होता है। पिता ने भरत को अन्यायभाव से त्याज्य समझा। इतना हीं नहीं—किन्तु अयोध्या से जो दूत उन्हें लेने के लिए केकय-राज्य को भेजे गये थे उन्होंने भी अयोध्या के कुशलसम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर कुछ कुछ क्रूर और व्यंग्य-मिश्रित शब्दों में दिया—"कुशलास्ते महाबाहो येषां कुशलमिच्छसि"—अर्थात् आप जिन लोगों की कुशल चाहते हैं वे कुशलपूर्वक हैं। इस तरह उन्होंने उत्तर दिया मानों दशरथ, रामचन्द्र, लक्ष्मण आदि की कुशल भरत चाहते ही नहीं; वे केवल कैकेयी और मन्थरा की ही कुशल चाहते हैं। राम के वन-वास-सम्बन्ध में अयोध्या के राज-भवन में जो वाग्वितण्डा हुई उसमें भी इस निर्दोष राजकुमार के प्रति दो एक बार अन्याययुक्त कटाक्षपात हुए। भरत जैसे साधु पुरुष पर अपने आत्मीय जनों के द्वारा भी अन्याय-युक्त लाञ्छना लगाई गई। रामचन्द्र भरत से इतना स्नेह करते थे कि उन्होंने "मम प्राणैः प्रियतरः" कह कर भरत का बारंबार ज़िक्र किया है। रामचन्द्र ने कौशल्या से कहा है—"धर्मप्राण भरत की बातों का स्मरण करके तुमको अयोध्या में छोड़ जाते हुए मुझे कुछ भी चिन्ता नहीं है"। तथापि ऐसा नहीं कि रामचन्द्र ने भी भरत पर दो एक सन्देह-बाणों का प्रहार न किया हो। उन्होंने सीता से कहा है—"तुम भरत के पास मेरी प्रशंसा मत करना, क्योंकि समृद्धिशाली पुरुष दूसरों की प्रशंसा सुन कर प्रसन्न नहीं होते"। इस सन्देह की मार्जना नहीं है। पिता दशरथ ने रामाभिषेक के उद्योग के समय भरत को सन्देह की दृष्टि से देखा था। उन्होंने राम को बुला कर कहा था—"भरत के मातुलालय में रहते ही तुम्हारा अभिषेक सम्पन्न हो जाय—यही मेरी इच्छा है; क्योंकि यद्यपि भरत धार्मिक और तुम्हारा अनुगत है तो भी भरत का मन विचलित होते कितनी देर लगेगी!" इक्ष्वाकु-वंश की चिरागत प्रथा के अनुसार राज-सिंहासन जेठे भाई को ही मिलता है। अतएव धार्मिकों में अग्रगण्य भरत पर ऐसा सन्देह करना मार्जना-योग्य नहीं। भरत के चरित्र-माहात्म्य को रामचन्द्र ख़ूब जानते थे। तो भी, वनवास के अन्त में, भरद्वाज के आश्रम में पहुँच कर, उन्होंने हनूमान् को भरत के पास यह कह कर भेजा कि—"तुम इस बात को अच्छी तरह देखना कि मेरा प्रत्यागमन-संवाद सुन कर भरत के चेहरे पर कोई विकृति होती है या नहीं।" यह सन्देह भी अमार्ज्जनीय है। जगत् में निरपराधियों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक बार दण्ड मिला है; परन्तु भरत जैसे आदर्श धार्मिक को ऐसे दण्ड मिलने के दृष्टान्त बहुत कम होंगे। लक्ष्मण ने बारंबार "भरतस्य वधे दोषं नाहं पश्यामि राघव"—कह कर भारी भूल की है। विरुद्ध इसके उसी महामना भरत ने अश्रुरुद्धकण्ठ से लक्ष्मण की कथा इस प्रकार कही है:—

"सिद्धार्थः खलु सौमित्रिर्यश्चन्द्रविमलोपमम्।
मुखं पश्यति रामस्य राजीवाक्षं महाद्युतिम्" ॥

हाँ, सब लोग एक दम से जो भरत का इतना विरोध करने लगे, इसका कुछ कारण अवश्य हो सकता है। लोगों ने मन ही मन कहा होगा कि इस इतने बड़े षड्यन्त्र में भरत की सम्मति नहीं, इसका क्या प्रमाण? अथवा मामा युधाजित की सलाह से दूर बैठे ही बैठे भरत ने इस षड्यन्त्र का सूत्रधार कैकेयी को नहीं बनाया, इसका क्या प्रमाण? इसी सन्देह के कारण भरत ने संज्ञाहीन अवस्था में कैकेयी से कहा था कि—"जिस समय अयोध्या-वासी मुझे रुद्धकण्ठ और सजलनेत्र होकर देखेंगे उस समय उस दृश्य को कैसे सह सकूँगा।" कौशल्या ने भरत को बुलाकर जो कटु वाक्य कहे उनसे भरत को उतना ही कष्ट हुआ जितना कि व्रण में सुई चुभोने से होता है। कुचक्र में पड़ कर देवतातुल्य भरत सारे संसार में सन्देहभाजन हो कर लाञ्छित हुए। जब वे रामचन्द्र को लौटा लाने के लिए विपुल वाहिनी ले कर जा रहे थे तब निषादाधिपति गुह, राम की अनिष्ट-कामना से उन्हें आता हुआ जान, मार्ग में लगुड़-धारण करके खड़ा हो गया। और तो क्या, भरद्वाज ऋषि ने भी उनको भय की दृष्टि से देख कर पूछा—"आप उस निष्पाप राजकुमार के पास पापाभिप्राय से तो नहीं जाते"? प्रत्येक से अपनी दशा वर्णन करते करते भरत के प्राण ओष्ठा-गत होते थे। भरत ने कैकेयी को—"मातृरूपे मम-मित्रे" कह कर सम्बोधन किया है। वास्तव में वह माता के रूप में भरत की महा-शत्रु थी। भरत पर जो सन्देहरूपी विष-बाणों की वर्षा हुई उसका मूल कारण कैकेयी ही थी। किन्तु घटनावली कितना ही जटिल भाव क्यों न धारण करे, भरत के अपूर्व भ्रा स्नेह ने सारी जटिलता को छिन्न भिन्न कर दिया है

राम को हमने नाना अवस्थाओं में सुखी दे है। चित्रकूट की अद्भुत शोभा को देख कर रामचन्द्र सीता से कहते हैं "ऐसे स्थान में मैं तुम्ह साथ विचरण कर के अयोध्या के राजपद अकिञ्चित्कर समझता हूँ"—तब दम्पती का आनन्द मय निर्मल चित्र हमारी दृष्टि में बड़ा ही सुन्दर और तृप्तिप्रद ज्ञात होता है। रामचन्द्र का आकाश कभी मेघाच्छन्न, कभी प्रसन्न; परन्तु भरत का चिरविषण्ण चित्र मर्मान्तक करुणोत्पादक है। चित्रकूट में राम चन्द्र के पास भरत के पहुँचने पर उनकी जटि कृश और विवर्ण मूर्ति देख कर रामचन्द्र चकित हो गये। वे उन्हें कठिनता से पहचान सके।

भरत का चित्र दिखाने के अभिप्राय से आदि कवि ने जब सब से प्रथम यवनिका उठाई तब देख तो उनकी मूर्ति विषण्णता-पूर्ण! केवल एक दुःस्व देख कर भरत एक दिन प्रातःकाल उठे। नर्त्तकिय उन्हें मुदित करने के लिए सामने नृत्य कर रही हैं सखाजन व्यग्रभाव से कुशल-जिज्ञासा कर रहे हैं परन्तु भरत का चित्त भाराक्रान्त और मुख श्रीहीन है। जान पड़ता है मानों अयोध्या की विषम विपत्ति के पूर्वाभास ने उनके मन पर अधिकार कर लिया है। अतएव वह किसी तरह स्वस्थ नहीं हो सकता। इसी समय उन्हें ले जाने के लिए अयोध्या से दूत आ पहुँचे। व्यग्रकण्ठ से भरत ने दूतों से प्रत्येक की कुशल पूछी। परन्तु दूतों ने व्यंग्यपूर्ण उत्त दिया—"कुशलास्ते महाबाहो येषां कुशलमिच्छसि। गत रात्रि के स्वप्न और दूतों के इस उत्तर ने भरत के सामने एक कठिन समस्या उपस्थित कर दी। वे इन दोनों घटनाओं को दुश्चिन्ता के सूत्र में बाँध कर अत्यन्त व्यग्र हो उठे—

बभूव ह्यस्य हृदये चिन्ता सुमहती तदा।
त्वरया चापि दूतानां स्वप्नस्यापि च दर्शनात्॥

बहुत से देश, नदी, नद और कान्तार पा करके भरत ने दूर से अयोध्या की श्यामल तरुराजि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखी और आनङ्क-निगृहीत कण्ठ से सारथी से पूछा "यह अयोध्या ऐसी क्यों दिखाई देती है ? नगर में चिरश्रुत तुमुल शब्द क्यों नहीं सुनाई देता ? वेद-पाठ-रत ब्राह्मणों की कण्ठ-ध्वनि और कार्य्यस्रोत में प्रवाहित नर-नारियों का विपुल रव बिलकुल ही क्यों बन्द है ? जिन प्रमोदोद्यानों में स्त्री-पुरुष एकत्र विचरण करते थे वे आज शून्य हैं। राजमार्ग चन्दन-मिश्रित जल से सिञ्चित नहीं। रथ, अश्व और हस्ती राजपथ पर देख नहीं पड़ते। राजपुरी सर्व्वथा श्रीहीन है। यह अयोध्या नहीं; यह तो अयोध्या का अरण्य सा है।"

अयोध्या की श्री विलुप्त होगई है। त्रिलोक-विश्रुत महाराज दशरथ ने पुत्र-शोक से विकल होकर प्राण-त्याग किया है। अभिषेक-मञ्च पर बैठने को तैयार ज्येष्ठ राजकुमार ने विधिवशात् वनवासी के वेश में वन-गमन किया है। वलय, कङ्कण, केयूर और सखियों को छोड़ कर अयोध्या की राजवधू ने भी वनवासिनी का वेश बना कर स्वामी का अनुगमन किया है। सुवर्णच्छवि लक्ष्मण ने भी भ्राता और भ्रातृ-वधू के साथ अयोध्या से प्रस्थान कर दिया है। अयोध्या के घर घर में इन्हीं तीन देवताओं के लिए करुणक्रन्दन हो रहा है। सुमन्त ने सच ही कहा था कि मानों सारी अयोध्या नगरी पुत्रहीन कौशल्या की दशा को प्राप्त हुई है।

भरत को इन बातों का कुछ भी पता न था। मौनधारिणी दिशाओं का प्रणाम-ग्रहण करके वे उत्कण्ठित चित्त से पिता-भवन में गये। वहाँ पर पिता को न पाकर सोचने लगे "राजा भवति भूयिष्ठ-मिहाम्बाया निवेशने।" राजा कैकेयी के भवन में अधिक रहा करते हैं—यह सोच कर वे पिता का दर्शन करने के लिए माता के भवन में गये।

सद्योविधवा कैकेयी आनन्द से प्रफुल्लित होरही थी। पुत्र के भावी अभिषेक-कार्य्य के आनन्दरूपी चित्र को मन में अङ्कित करके वह पतिघातिनी प्रसन्न होरही थी। भरत को पाकर वह बहुत ही प्रमुदित हुई। भरत ने पिता की बात पूछी तो वह बोली—"या गतिः सर्वभूतानां तां गतिं ते पिता गतः।"—इस संवाद से परशुच्छिन्न वन-वृक्ष की तरह भरत ज़मीन पर गिर गये। "क्व स पाणिः सुखस्पर्शस्ता-तस्याक्लिष्टकर्म्मणः"—अक्लिष्टकर्मा पिता के हाथ का वह सुख-स्पर्श कहाँ! कह कर भरत रोने लगे। राज-हीन राजशय्या चन्द्रहीन आकाश की तरह बोध होने लगी। भरत ने कैकेयी से पूछा—"राम कहाँ हैं? पिता के अभाव में वही हमारे पिता—वही हमारे बन्धु हैं। मैं उन्हीं का दास हूँ। उन्हीं को देखने के लिए मेरे प्राण व्याकुल होरहे हैं।" राम, लक्ष्मण और सीता का वनगमन सुन कर कुछ क्षण तक भरत स्तम्भित हो गये। भाई के चरित्र-सम्बन्ध में आशङ्का करके वे बोले—"राम ने क्या किसी ब्राह्मण का धन अपहरण किया था? क्या उन्होंने किसी दरिद्र को सताया था? किंवा क्या किसी की दारा पर वे आसक्त होगये थे? यह निर्वासन का दण्ड क्यों?" कैकेयी बोली—"रामचन्द्र ने यह कुछ भी नहीं किया।" शेषोक्त प्रश्न के उत्तर में उसने कहा—"न रामः परदारान् स चक्षुर्भ्यामपि पश्यति।" अन्त में भरत की उन्नति और राज्य-प्राप्ति की कामना से कैकेयी ने जो सारा काण्ड किया था उसका वर्णन करके पुत्र में प्रीति उत्पादन की प्रतीक्षा के लिए वह भरत के मुख की ओर देखने लगी। दुःखातिरेक से भरत का हृदय, उस समय, इस तरह आच्छादित हो गया जैसे निबिड़-मेघ-मण्डल से आकाश आच्छादित हो जाता है। धर्मप्राण और विश्वस्त भरत इस दुस्सह संवाद को एक क्षण भर भी नहीं सहन कर सके। उन्होंने उस समय माता की जो भर्त्सना की वह सम्पूर्ण रूप से उचित मालूम होती है। "तुम धार्मिक अश्वपति की कन्या नहीं; उनके वंश में तुम राक्षसी हो; तुमने हमारे धर्म-वत्सल पिता को विनष्ट कर दिया; तुमने हमारे भाइयों को पथ का भिखारी बना दिया; तुम नरक में पड़ो!" जब कातर-कण्ठ से भरत इस तरह कह रहे थे तब कौशल्या ने अपने घर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुमित्रा से कहा—"भरत का कण्ठ-स्वर सुनाई देता है; वे आगये हैं; उनको बुला लाओ।" भरत को कृशाङ्गी सुमित्रा बुला लाई। कौशल्या ने भरत से कहा—"तुम्हारी माता तुम को लेकर निष्कण्टक राज्य करना चाहती है; तुम मुझे भी राम के पास भेज दो।" इस कटूक्ति से मर्म-विद्ध होकर भरत ने कौशल्या के सामने अनेक शपथें कीं। वे इस व्यापार का बिन्दुविसर्ग भी नहीं जानते थे। इस विषाक्त व्यापार का मर्म जानने की चेष्टा करते करते, निदारुण शोक और लज्जा से अभिभूत होकर, भरत अजस्र अभिसम्पात-वृष्टि करने लगे। रोते रोते शोक से मूर्छित होकर वे अचेत हो गये। करुणामय अम्बा कौशल्या धर्मभीरु राजकुमार के मन की दशा जान कर उसे गोद में लेकर रोने लगी।

भरत का शोक और औदासीन्य क्रम से बढ़ता ही गया। श्मशान में मृत पिता के कण्ठ से लिपट कर वे रोते रोते बोले—"हे पिता, अपने दोनों प्रिय पुत्रों को वन भेज कर तुम कहाँ गये?" वशिष्ठ ने अश्रुपूर्ण कातर-दृष्टि राजकुमार को समझा कर पिता के और्द्धदैहिक कार्य्य कराने में प्रवृत्त किया। शोक से विह्वल भरत फिर भी एक बार चेष्टाशून्य होकर भूमि पर गिर गये।

प्रातःकाल बन्दीजनों ने भरत का स्तुति-गान आरम्भ किया। भरत ने पागल की तरह दौड़ कर उनको निषेध किया—"इक्ष्वाकुवंश की प्रथा के अनुसार ज्येष्ठ राजकुमार को ही सिंहासन मिलना चाहिए। तुम किसके वन्दनागीत गाते हो?" राजा की मृत्यु के चौदह दिन बाद गुरु वशिष्ठ और सचिववृन्द ने राज्यभार ग्रहण करने के लिए भरत से अनुरोध किया। भरत ने उत्तर दिया—"रामचन्द्र ही राजा होंगे। अयोध्या की समस्त प्रजा को लेकर मैं उन्हें मना कर लाने जाऊँगा। यदि वे न लौटेंगे तो मैं भी चौदह वर्ष के लिए वनवासी हो जाऊँगा।"

शत्रुघ्न मन्थरा को मारने और कैकेयी को ताड़ना देने लगे। परन्तु क्षमा के अवतार भरत ने उन्हें वैसा करने से रोक दिया।

समस्त अयोध्यावासी राम को लौटा लाने के लिए भरत के साथ गये। शृङ्गवेर-पुर में गुह के साथ भरत का साक्षात्कार हुआ। भरत पर गुह को पहले तो सन्देह हुआ; परन्तु उनका मुँह देखने से उनके हृदय का भाव समझने में उसे विलम्ब न लगा। इङ्गुदीवृक्ष के नीचे रामचन्द्र ने तृण-शय्या पर ख़ाली जलपान करके रात्रि यापन की। इस तृण-शय्या के तृण रामचन्द्र के विशाल बाहुओं से निष्पेषित हुए; सीता के उत्तरीय वस्त्र से गिरे हुए स्वर्ण-बिन्दु तृणों के ऊपर पड़े दिखाई दिये। यह दृश्य देख कर भरत अवाक् खड़े रह गये। गुह बात करता रहा; परन्तु भरत उसकी एक भी बात न सुन सके। भरत को संज्ञाशून्य देख कर शत्रुघ्न उनका आलिङ्गन करके रोने लगे। रानियों और सचिवों का भी दुःख उच्छ्वसित हो उठा। बहुत यत्न करने पर भरत होश में आये। भरत ने साश्रु-नेत्र हो कर कहा—"क्या यही राम की शय्या है! जो आकाश-स्पर्शी राजप्रसादों में वास करने के अभ्यस्त थे; जिनका भवन चित्र, चन्दन, पुष्पमाल्य से सदा रञ्जित रहता था; जिनका गृह-शिखर नृत्यशील शुकों और मयूरों की विहार-भूमि था; जिनका निवासस्थान गीतवाद्य से नित्य ध्वनित रहता था और जिसकी काञ्चनमयी दीवारें कारु-कार्य की आदर्श थीं—ऐसे भवन के स्वामी धूल में लोटते हुए इङ्गुदी के नीचे पड़े रहे! यह कथा स्वप्नवत् जान पड़ती है; यह अविश्वसनीय है। मैं किस मुँह से राजपरिच्छद परिधान करूँ। भोगविलास के द्रव्य मेरे काम के नहीं। मैं भी आज से जटा-वल्कल धारण करके भूतल पर शयन करूँगा और फल-मूलादि आहार करके जीवन व्यतीत करूँगा।"

शोक-विह्वल राजकुमार जटा-वल्कल धारण करके रामचन्द्र को ढूँढते हुए भरद्वाज के आश्रम में गये। इस सर्वज्ञ ऋषि ने भी भरत पर सन्देह करके पहले उन्हें पीड़ा पहुँचाई। भरद्वाज के आश्रम में एक रात रह कर राजकुमार प्रातःकाल मुनि की आज्ञा से चित्रकूट को रवाना हुए। भरद्वाज ने भरत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के शिविर में जाकर रानियों से भेंट करना चाहा। उस समय भरत ने इस तरह माताओं का परिचय दिया—भगवन्, यह जो शोक और अनशन से क्षीण-देहा सौम्य मूर्ति दिखाई देती है वही हमारे अग्रज रामचन्द्र की माता है। इसके वाम बाहु का आश्रय लेकर जो वन के शुष्क-पुष्प वाले कर्णिकार तरु की तरह खड़ी है वही लक्ष्मण और शत्रुघ्न की जननी सुमित्रा है। और जो उसके पार्श्व में खड़ी हुई है; जो अयोध्या की राजश्री को विदा कर के आई है; जो पतिघातिनी, समस्त अनर्थ की मूल, वृथा प्रज्ञा-मानिनी और राज्यकामुका है वही मुझ अभागी की माता है।"—यह कहते कहते भरत के दोनों चक्षु अश्रुपूर्ण हो आये। क्रुद्ध सर्प की तरह एक बार फिर उन्होंने अपनी माता की ओर दृष्टिपात किया।

चित्रकूट के पास आने पर रथ से उतर कर माताओं और सचिवों के आगे आगे भरत पैदल चलने लगे। उस समय रमणीय चित्रकूट में अर्क और केतकी के फूल फूल रहे थे। आम और लोध के पत्ते पक पक कर शाखाग्रभाग में लटक रहे थे। कहीं कहीं बहुरंगरंजित प्रस्तर-राजियाँ शोभायमान हो रही थीं। पर्वत के नीचे की भूमि पुष्प-सम्भार से प्रमोदोद्यान बन रही थी। पर्वत के ऊपर शैल-शृङ्ग ऊँचा उठ कर आकाश का चुम्बन कर रहा था। थोड़ी ही दूर पर मन्दाकिनी बह रही थी। उसके जल की पुलिनशालिनी क्षीण धारा कहीं कहीं नील-वृक्षावली में जाकर छुप गई थी। सुन्दरी के परित्यक्त वस्त्रों की तरह तरङ्गराजि कहीं कहीं मेघ-वायु से आन्दोलित हो रही थी। कहीं कहीं पर्वत की पुष्प-राशि स्रोतोवेग में भासमान होती हुई चली जा रही थी। यह दृश्य देखते देखते रामचन्द्र ने सीता से कहा—जिस समय मैं इस पर्वत की दृश्यावली का निर्म्मल आनन्द अनिमेष-भाव से लूटता हूँ उस समय राज-त्याग और सुहृद्-विरह मुझे कुछ भी क्लेशकर नहीं जान पड़ते।

यह कहते ही सहसा विपुल शब्द से नभोमण्डल आकुल हो उठा। सैन्य-पद-रज से दिशायें आच्छादित होगईं। तुमुल शब्द सुन कर पशु-पक्षी चारों ओर भागने लगे। रामचन्द्र ने संत्रस्त होकर लक्ष्मण से कहा—"देखो तो, क्या कोई राजा या राजपुत्र मृगया के लिए इस अरण्य में आता है? किंवा किसी भीषण जन्तु के आने से इस सौम्य निकेतन के शान्ति-भाव में विघ्न हुआ है?" लक्ष्मण ने दीर्घ पुष्पित शाल-वृक्ष के अग्र-भाग पर चढ़ कर और इधर उधर दृष्टि-निःक्षेप करके पूर्व दिशा से सैन्य-श्रेणी आती हुई देखी। वे बोले—"अग्निनिर्वाण कीजिए; सीता को गुहा में पहुँचाइए; अस्त्र-शस्त्रादि लेकर तैयार होजाइए।" इस पर रामचन्द्र ने पूछा—किसकी सेना है? कुछ मालूम हुआ? इस प्रश्न के उत्तर में लक्ष्मण ने कहा—"थोड़ी दूर पर वह जो विशाल विटपी है उसके पत्तों के बीच में भरत की कोविदारचिह्नित रथध्वजा दिखाई देती है। राज्य पाकर भरत पूर्ण-मनोरथ नहीं हुए; निष्कण्टक राजश्री प्राप्त करने के लिए वे हमारे वधार्थ आरहे हैं। आज मैं इस समस्त अनर्थ के मूल भरत को अवश्य मारूँगा।"

रामचन्द्र ने कहा—"भरत हमें घर लौटा ले जाने के लिए आरहे हैं। सब बातें मालूम होजाने पर चिर-स्नेह-परायण और मेरे प्राणों से भी अधिक प्यारे भरत स्नेहाक्रान्त हृदय से प्रजा को प्रसन्न करने के लिए हमारे पास आ रहे हैं। तुम उन पर अन्याय-पूर्ण सन्देह क्यों करते हो? भरत किसी तरह भी हमारा कोई अप्रिय कार्य नहीं करेंगे। तुम उनके विषय में क्रूर-वाक्यों का क्यों प्रयोग करते हो? यदि राज्य के लोभ से तुम भरत के विषय में ऐसा कहते तो मैं भरत से कह कर तुम्हें निश्चय ही राज्य दिला दूँगा।" धर्मशील भ्राता की ऐसी बातें सुन कर लक्ष्मण मारे लज्जा के ज़मीन में गड़ से गये।

कुछ देर में भरत आ गये। अनशन से कृश, शोक-मूर्ति, देवोपम भरत रामचन्द्र को पर्णशाला के सामने बैठे देख कर बालक की तरह उच्च-स्वर से रोने लगे। "जिस मस्तक के ऊपर हेमच्छत्र शोभा पाता था उसी राजश्री से उज्ज्वल मस्तक पर आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जटा-भार क्यों ? मेरे जिस बड़े भाई की देह चन्दन और अगर से मार्ज्जित होती थी वही आज अङ्गराग-रहित होकर धूल से धूसरित है। जो समस्त विश्व के प्रकृति-पुञ्ज की आराधना की वस्तु है वह वन वन भिखारी के वेश में फिर रहा है। मेरे लिए ही तुम्हें ये सब कष्ट सहने पड़े हैं। अतएव मेरे इस लोक-गर्हित नृशंस जीवन को धिक्कार है"! इस तरह कह कर रोते हुए भरत रामचन्द्र के चरणों पर लोट गये। इन दो त्यागी महापुरुषों की भेंट का दृश्य बड़ा ही करुण है। रामचन्द्र ने कृश और विवर्ण भरत को बड़ी कठिनता से पहचाना। बड़े आदर से हाथ पकड़ कर उन्होंने भरत को उठाया। उनके मस्तक को गोद में रख कर राम ने कहा—"वत्स, तुम्हारा ऐसा वेश क्यों ? तुम इस वेश से वन में आने योग्य नहीं।" भरत बड़े भाई के चरणों पर फिर गिर कर बोले—"मेरी माता महाघोर नरक में पड़ेगी; आप उसकी रक्षा कीजिए। मैं आपका भाई हूँ; मैं आपका शिष्य हूँ; मैं आपका दासानुदास हूँ। मेरे ऊपर कृपा कर के, अपने राज्य में चल कर अभिषिक्त हूजिए।" बहुत सी बातें और बहुत कुछ वितण्डा हो चुकने पर भरत ने कहा—"मैं चौदह वर्ष वनवासी बनूँगा—अपनी इस प्रतिज्ञा का पालन करना मेरा धर्म है"। किसी भी तरह रामचन्द्र को न लौटा सकने पर भरत अनशन-व्रत धारण कर के कुटी के द्वार पर लोट रहे। तब रामचन्द्र ने धर्म्म-संकट में पड़ कर उन्हें अपनी पादुका दीं। जटा-भार को शोभित करने के लिए भातृ-पद-रज से विभूषित पादुका उसका मुकुट हो गईं। सैकड़ों आभूषणों से जितनी शोभा नहीं होती उतनी इन पादुकाओं से भरत की हुई। भरत ने विदा होते समय कहा—"राज्य-भार इन पादुकाओं को सौंप कर चौदह वर्ष आपकी प्रतीक्षा करूँगा। तदन्त में यदि आप न आवेंगे तो अग्नि में अपना जीवन विसर्जन कर दूँगा।"—अयोध्या के निकट आकर भरत ने कहा—"यह अयोध्या अब वह अयोध्या नहीं है। मैं इस सिंहहीन गुहा में प्रवेश नहीं कर सकता।" नन्दिग्राम में राजधानी स्थापित हुई। वैसी राजधानी नहीं—किन्तु ऋषियों का सा आश्रम। सचिव-वृन्द जटा-वल्कल पहन कर फलमूलाहारी हुए। राजा के पास किस तरह अमूल्य परिच्छद पहन कर वे रह सकते ? इस कारण सभी काषाय-वस्त्र पहनने लगे। उसी काषाय-वस्त्रधारी सचिव-समूह से परिवृत, व्रत और अनशन से कृशाङ्ग त्यागी राजकुमार ने पादुकाओं के ऊपर छत्र धारण करा कर चौदह वर्ष तक राज्यपालन किया।

भरत की यह विषण्ण मूर्ति रामचन्द्र के चित्त में शेल की भाँति विद्ध हो गई। सीता के हरे जाने पर पम्पा को देख कर उन्मत्त की तरह वे बोले—"पम्पातीर की यह रमणीय दृश्यावली सीता के विरह और भरत के दुःख की स्मृति से रमणीय नहीं मालूम होती।" एक दिन रामचन्द्र ने सुग्रीव से भी कहा—"भरत के सदृश भाई जगत् में नहीं मिल सकता?"

रामचन्द्र जब अयोध्या लौट आये तब भरत स्वयं उन्हीं दोनों पादुकाओं को उन्हें पहनाकर कृतार्थ हुए। रामचन्द्र के चरणों को प्रणाम कर के उन्होंने कहा—"देव, आपने जिस राज्य-भार को मेरे अयोग्य करों में दिया था उसे ग्रहण कीजिए। मैंने आपके राज्य की यत्नपूर्वक रक्षा की है। राजकोश में जो अर्थ सञ्चित था उसको चौदह वर्ष में मैंने दस गुना कर दिया है।"

रामायण का यदि कोई चरित्र आदर्श कहा जा सकता है तो वह एक मात्र भरत का चरित्र है। सीता और लक्ष्मण ने जो कटूक्तियाँ कही हैं वे क्षम्य नहीं हैं। रामचन्द्र का भी बालि-वध इत्यादि कार्य समर्थन-योग्य नहीं। और लक्ष्मण की बातें तो अनेक बार अति रूक्ष और दुर्विनीत हुई हैं। कौशल्या ने भी दशरथ से कहा था—"कोई कोई जलजन्तु जिस तरह अपनी सन्तान खा जाया करते हैं तुम भी उसी तरह करते हो।" परन्तु भरत के चरित पर कोई धब्बा नहीं। पादुकाओं के ऊपर हेमच्छत्र धारण किये हुए इस जटा-वल्कलधारी राजर्षि का चित्र रामायण में एक अद्वितीय सौन्दर्य्य रखता है। दशरथ ने सच ही कहा था:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"रामादपि हि तं मन्ये धर्मतो बलवत्तरम्।"

कैकेयी के हम सहस्र दोष क्षमार्ह समझते हैं, क्योंकि वह ऐसे सुपुत्र की माता हुई। निषादपति गुह ने क्याही मनोहर सत्य वचन कहा थाः—

"धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगती-तले।
अयत्नादागतं राज्यं यतस्त्वं त्यक्तुमिच्छसि॥

आपही आप आये हुए राज्य को भी तुम त्यागने की इच्छा करते हो। अतएव तुम धन्य हो। जगत् में तुमसा और कोई नहीं दिखाई देता।

बालाप्रसाद।

जीवन-साफल्य।

(१)

अपने को यह अपना जीवन जिस प्रकार अति प्यारा है;
अन्य प्राणियों का भी जीवन उससे स्वल्प न न्यारा है।
ऐसा सोच अहिंसा ही को परम धर्म जिसने जाना;
सफल किया, बस, उसी एक ने इस जग में अपना आना॥

(२)

अन्तर्हित हो वही अकेला सदा सब जगह रहता है;
दया-स्रोत उसका हम सब पर अविश्रान्त नित बहता है।
मन, वच और कर्म्म से जिसने ऐसे प्रभु को अनुमाना;
सफल किया, बस, उसी एक ने इस जग में अपना आना॥

(३)

सदाचार, सद्गुण से जिसने सब प्रकार नाता जोड़ा;
दुराचार, दुर्गुण, दुरितों से जिसने अपना मुँह मोड़ा।
उचित छोड़ जिसने अनुचित को किया नहीं है मनमाना;
सफल किया, बस, उसी एक ने इस जग में अपना आना॥

(४)

काम, क्रोध, मद, लोभ न जिसके पास फटकने पाते हैं;
दया, धर्म, एकता, शान्ति, शुचि शील जिसे अति भाते हैं।
पुण्य-प्रेम क्या वस्तु—तत्त्व इसका यथार्थ जिसने जाना;
सफल किया, बस, उसी एक ने इस जग में अपना आना॥

(५)

न्यायान्याय बिसार, स्वार्थ से अन्ध न जो बन बैठा है;
विद्या, बल, पौरुष पा कर भी जो न गर्व से ऐंठा है।
पर-उपकार-धर्म को जिसने स्वच्छ हृदय से पहचाना;
सफल किया, बस, उसी एक ने इस जग में अपना आना॥

(६)

जननी, जन्म-भूमि पर जिसने तन, मन अपना वारा है;
उसके दुख, दरिद्र हरने का अति पवित्र व्रत धारा है।
जिसने सतत लोक-सेवा का ग्रहण किया है वर-बाना;
सफल किया, बस, उसी एक ने इस जग में अपना आना॥

(७)

देख दुःख पर का पल भर भी जिससे रहा न जाता है;
अन्धे, बहरे, लँगड़े की जो बिनती पर चित लाता है।
जो अनाथ असहाय जनों का जाता है आश्रय माना;
सफल किया, बस, उसी एक ने इस जग में अपना आना॥

(८)

साधु महात्माओं की सङ्गति जिसको है अतिशय प्यारी;
सुनता जो उपदेश-वचन नित सादर उनके सुखकारी।
बुरे सङ्ग में जिसे न आता व्यर्थ वाद में उलझाना;
सफल किया, बस, उसी एक ने इस जग में अपना आना॥

(९)

भूले-भटके, लघु-गुरु सब का जो सम आदर करता है;
विनय-वचन-युत सब लोगों का यथा-शक्ति मन हरता है।
दिखला कर पर-दोष न भाता जिसको अपने गुण गाना;
सफल किया, बस, उसी एक ने इस जग में अपना आना॥

(१०)

मरने पर, जिसके वियोग में, रिपु भी अश्रु बहाते हैं;
शत्रु-मित्र सब एक-स्वर से जिसके गुण-गण गाते हैं।
भाग्यवान वह, जिसे सदा को था अजरामर-पद पाना;
सफल किया, बस, उसी एक ने इस जग में अपना आना॥

पाण्डेय मुकुटधर शर्मा (विद्यार्थी)

जोधपुर-नरेश महाराज बख्तसिंह।

जोधपुर के महाराज अजितसिंह बड़े पराक्रमी थे। दिल्ली की बादशाही बिगड़ते समय मुसलमानी सूबेदार से अजमेर छीन कर उन्होंने उस पर अपना अधिकार जमा लिया था। भरतपुर-राज्य के प्रतिष्ठाता पूरणमल जाट के पुत्र मुहकमसिंह पर जब बादशाह मह-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म्मदशाह का कोप हुआ, तब उन्होंने महाराज अजितसिंह की शरण ली। बादशाह ने अजितसिंह से मुहकमसिंह को माँगा; परन्तु उन्होंने देने से इनकार कर दिया। अतएव बादशाह ने बहुत सी सेना लेकर अजमेर को घेर लिया। यह घेरा चार महीने तक रहा। पीछे, जयपुर के महाराज सवाई जयसिंह ने मध्यस्थ होकर सन्धि करा दी। इस सन्धि के अनुसार महाराज अजितसिंह ने अजमेर का सूबा मुग़लों को लौटा दिया।

महाराज अजितसिंह के दो पुत्र थे—एक अभयसिंह, दूसरे बख़्तसिंह। बादशाह महम्मदशाह ने अभयसिंह को अपने दरबार में बुला भेजा। जब वे वहाँ गये तब बादशाह के मन्त्रियों ने उनसे कहा कि यदि आप मारवाड़ का राज्य अपने घरानेवालों के हाथ में रखना चाहते हैं तो अपने पिता को मार कर आप स्वयं राजा बन जाइए। इस कपट-जाल में पड़ कर महाराज सवाई जयसिंह की सम्मति से अभयसिंह ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उन्होंने अपने छोटे भाई बख़्तसिंह को लिखा—"यदि मारवाड़ का राज्य स्थापित रखना चाहो तो अपने पिता को मार डालो। ऐसा करने पर तुम स्वाधीन राजा बना दिये जाओगे"।

इस प्रलोभन में पड़ कर, संवत् १७८० की आषाढ़-शुक्ला द्वादशी को, महाराजकुमार बख़्तसिंह अपने सोये हुए पिता को मार कर पितृहन्ता बने। यह बात प्रकट होते ही लोग इन्हें दण्ड देने दौड़े। उस समय इन्होंने अपने भाई की चिट्ठी दिखा कर अपनी जान बचाई। इस समय इनकी उम्र उन्तीस वर्ष की थी। पीछे ये दिल्ली गये। वहाँ इन्होंने बादशाह के वज़ीर से मिलना चाहा। किन्तु वज़ीर ने मुलाक़ात न की। उसने कहला भेजा कि मैं पितृघातक पापी का मुँह नहीं देखना चाहता। इस अपमानसूचक वाक्य से ये बहुत लज्जित हुए और असह्य आन्तरिक व्यथा से व्याकुल होकर वहाँ से चल दिये। रास्ते में रेवाड़ी के पास किसी ने इन्हें पहचाना। उस समय ये बावले से हो रहे थे। इनके माथे पर पगड़ी तक न थी। इनकी यह दशा देख लोग इन्हें पास ही एक महात्मा के पास ले गये। उन्होंने इनको बहुत समझाया। वे बोले "इस प्रकार व्यग्र होने से कुछ भी लाभ न होगा। इस पाप का प्रायश्चित्त किये बिना ही आपकी मृत्यु हुई तो और भी बुरा होगा। उचित यह है कि आप धैर्य्य-धारणपूर्वक राज्य का काम सँभालें और यह प्रण करें कि आज से आप कभी स्वप्न में भी कोई अन्यायपूर्ण काम न करेंगे। यही आपके पाप का प्रायश्चित्त होगा।" उस महात्मा के इस उपदेश से बख़्तसिंह को प्रबोध हुआ। इन्होंने उसी समय दृढ़ प्रतिज्ञा की कि मैं आमरण सदैव न्याय करूँगा।

महाराज अजितसिंह के मरने की ख़बर पाते ही बादशाह ने दिल्ली में ही अभयसिंह का राज्याभिषेक कर दिया और उसी समय बख़्तसिंह को नागोर हो जाने का फ़रमान लिख दिया गया। दिल्ली से लौट कर, संवत् १७८१ में, महाराज अभयसिंह ने अपने छोटे भाई बख़्तसिंह को नागोर का राजा बनाया।

बख़्तसिंह बड़े ही उद्योगी और साहसी थे। वे अपने भाई महाराज अभयसिंह को प्रायः सदा ही सहायता दिया करते थे। संवत् १७८७ की विजयदशमी को महाराज अभयसिंह ने सूबेदार सरबुलन्दख़ाँ को परास्त करके अहमदाबाद पर अपना अधिकार कर लिया। इस युद्ध में प्रधान सेनापति महाराज बख़्तसिंह ही थे। इन्हीं के युद्ध-कौशल से जीत हुई थी। इनकी इस कारपरदाज़ी से प्रसन्न होकर महाराज अभयसिंह ने इन्हें जालोर का परगना देकर इनका सम्मान बढ़ाया।

संवत् १७९६ में महाराज अभयसिंह ने बीकानेर के महाराज ज़ोरावरसिंह पर चढ़ाई की। बहुत दिनों तक युद्ध होता रहा, किन्तु बीकानेर का क़िला न टूटा। महाराज बख़्तसिंह से इस युद्ध में सहायता नहीं ली गई थी। इस कारण महाराज बख़्तसिंह के मन में शङ्का हुई कि ऐसा न हो जो बीकानेर पर अधिकार कर लेने के बाद महाराज अभयसिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोधपुर- नरेश महाराज बख़्तसिंह ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागोर पर भी चढ़ाई करें। अतएव उन्होंने बीकानेर के वकील को अपने पास बुलवा कर समझाया कि तुम अपने महाराज को जयपुर के महाराज जयसिंह से सहायता माँगने की राय दो। वे जयपुर को यह लिखें कि जोधपुर वालों ने जो आमेर का परगना ले लिया था उसका बदला लेने का अच्छा अवसर है। बीकानेर के महाराज ने यह सलाह पसन्द की और अपना एक दूत जयपुर भेजा।

उन दिनों महाराज जयसिंह नशा अधिक करने लग गये थे। नशे में आकर उन्होंने कई ऐसे काम कर डाले जिनसे उन्हें हानि पहुँची। इस कारण उन्होंने आज्ञा दे रक्खी थी कि जब मैं नशे में होऊँ तब कोई भी राज्य का काम मेरे सामने न लाया जाय। बीकानेर के दूत की जयपुर के प्रधान मन्त्री से मित्रता थी। उन्हीं की राय से नशे की हालत में ही बीकानेर का पत्र जयसिंह के सामने पेश किया गया। महाराज ने आवेश में आकर अपने मन्त्री की राय से महाराज अभयसिंह को लिख भेजा—"बीकानेर और आपका घर एक ही है। अतएव आप बीकानेर के महाराज को क्षमा करके घेरा उठा लीजिए; नहीं तो स्मरण रहे, मेरा नाम जयसिंह है।" इसके उत्तर में अभयसिंह ने लिखा—"मेरे और मेरे सेवकों के बीच में पड़ने का आपको कोई अधिकार नहीं है। आपका नाम जयसिंह है तो मेरा नाम भी अभयसिंह है।" नशा उतरने पर महाराज सवाई जयसिंहजी को अपने किये पर बहुत पश्चात्ताप हुआ। पर अब हो क्या सकता था? लाचार, दो लाख सेना लेकर उन्होंने जोधपुर को जा घेरा और महाराज बख़्तसिंह को लिखा कि आप अपनी सेना लेकर आइए; मैं आपको जोधपुर का महाराज बनाऊँगा। उन्होंने वैसा ही किया। इधर उदयपुर के महाराज भी अस्सी हज़ार सेना लेकर जयपुर वालों की सहायता करने आये। यह हाल सुन कर महाराज अभयसिंह बहुत घबराये। उन्होंने बीकानेर से घेरा उठा लिया और वेश बदल कर जोधपुर पहुँचे और किसी प्रकार से काम निकलने की आशा न देख कर, महाराज अभयसिंह ने जयपुरवालों को बाईस लाख रुपये फ़ौजख़र्च के देकर सन्धि करली। महाराज बख़्तसिंह निराश होकर नागोर लौट गये।

महाराज बख़्तसिंह ने लज्जित होकर अपने भाई से इस अपराध की क्षमा माँगी और उलटा जयपुर पर ख़ुद चढ़ाई करने के विषय में सलाह पूछी। अभयसिंह ने उन्हें क्षमा कर दिया और यह भी राय दी कि जयपुर पर चढ़ाई करना मुनासिब है। संवत १७२८ में बख़्तसिंह ने जयपुर पर चढ़ाई की। इस पर एक बहुत बड़ी सेना लेकर महाराज अभयसिंह अपने भाई बख़्तसिंह को सहायता देने के लिए रवाना हुए। किन्तु उन्होंने अपने सरदारों से पहले ही से कह रक्खा था कि इस चढ़ाई से मेरा अभिप्राय बख़्तसिंह को सिर्फ़ दण्ड दिलाने का है; जयपुर के साथ लड़ने का नहीं। मेड़ते में दोनों भाइयों की भेंट हुई। वहाँ चंपावत कुशलसिंह नामक एक ठाकुर ने कुछ व्यंग वाक्य कहे। उन्हें सुन कर बख़्तसिंह बहुत लज्जित हुए। पीछे, क्रोध में आकर उन्होंने जयपुर की सेना से अकेले ही युद्ध करने का प्रण किया।

उधर महाराज जयसिंह भी राठोरों की चढ़ाई का समाचार सुन कर अपनी दो लाख सेना के साथ मारवाड़ की सीमा पर आ पहुँचे। बख़्तसिंह ने केवल पाँच हज़ार सेना लेकर उन पर हमला किया और अपनी वीरता का परिचय देते हुए सेना को पार कर गये। किन्तु सेना के पार पहुँचने पर उनके केवल साठ वीर जीते बचे। यह देख कर भी महाराज बख़्तसिंह हताश नहीं हुए। उन्होंने जयपुर की सेना पर दुबारा छापा मारा और फिर उसके आर पार निकल गये। उनकी इच्छा फिर भी धावा करने की थी किन्तु उनके बचे हुए साथियों ने उन्हें ऐसा करने से रोका। बख़्तसिंह को पूर्ण विश्वास था कि मेरे भाई अभयसिंह मेरी सहायता करेंगे। उन्हें मुँह मोड़ते देख इन्हें बड़ा दुःख हुआ। पीछे दोनों भाइयों की मुलाक़ात हुई तो महाराज अभयसिंह ने कहा कि मैं विजय की कीर्त्ति का सेहरा अकेले तुम्हारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही सिर बाँधना चाहता था। इसीसे मैंने तुम्हारी सहायता नहीं की। उदयपुर के महाराना के मध्यस्थ होने पर यह युद्ध शान्त हुआ।

संवत् १८०६ में महाराज अभयसिंह का देहान्त हुआ। मरने के समय उन्होंने अपने सरदारों से अपने पुत्र रामसिंह का पक्ष ग्रहण करने की प्रतिज्ञा करा ली। किन्तु रामसिंह समझदार आदमी न थे। उनकी सङ्गति भी अच्छी न थी। बुरे आदमियों की कुमन्त्रणा में पड़ कर वे बहुधा अपने सरदारों का अपमान कर बैठते थे। आवश्यक कार्य्यों की उपेक्षा भी उनसे हो जाया करती थी। इससे उनके सरदार बहुत असन्तुष्ट थे। तो भी उन लोगों ने बहुत दिनों तक अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया।

महाराज रामसिंह के राज्याभिषेक के समय महाराज बख़्तसिंह स्वयं न आ सके थे। उन्होंने, जैसा कि दस्तूर था, राजतिलक का सामान अपनी धाय के हाथ भेजा था। यह बात महाराज रामसिंह को बहुत बुरी लगी। उन्होंने उसी समय नागौर पर चढ़ाई करने की तैयारी कर दी। उनके सरदारों ने उन्हें बहुत समझाया; पर उन्होंने एक की भी न सुनी। अतएव कुछ के सिवा बाक़ी सब सरदार महाराज बख़्तसिंह के पक्ष में हो गये। फिर भी रामसिंह ने नागौर पर चढ़ाई कर ही दी। लूणावास के निकट मेड़ते के मैदान में यह लड़ाई हुई। कई दिनों के घोर युद्ध के बाद महाराज रामसिंह परास्त होकर जयपुर चले गये। इधर महाराज बख़्तसिंह का जोधपुर में राज्याभिषेक हुआ।

महाराज बख़्तसिंह का यश और प्रताप दिन दिन बढ़ने लगा। उन्होंने फिर अजमेर पर अधिकार कर लिया। उन्होंने सुना कि महादाजी सेंधिया रामसिंह का पक्ष लेकर युद्ध करना चाहते हैं। यह सुनते ही दो लाख सेना लेकर ये जोधपुर की सीमा पर पहुँचे। इनका इतना बल-प्रताप देख कर सेंधिया बिना युद्ध किये ही लौट गये।

महादाजी सेंधिया से लड़ने की तैयारी करते समय बख़्तसिंह ने जयपुर के महाराज ईश्वरीसिंह से सहायता माँगी और यह लिखा कि यदि आ मेरी सहायता न करेंगे तो मैं आपको अपना श समझूँगा। महाराज ईश्वरीसिंह ने प्रत्यक्ष में मित्रता प्रकट की; किन्तु अपने छोटे भाई माधवसि की स्त्री को—जो महाराज बख़्तसिंह की भतीज थी—बख़्तसिंह से भेंट करने भेजा, और उसी के हा एक विषाक्त फूल भी भेजा। उसे सूँघते ही महारा बख़्तसिंह की तबीयत बिगड़ गई और हज़ार यत्न करने पर भी उनके प्राण न बच सके। इन्होंने माल पुरा से एक मंज़िल पर, भोपोलाव नामक तालाब के किनारे, जो जयपुर, जोधपुर, और उदयपुर की सीमा पर है, शरीर-त्याग किया।

महाराज बख़्तसिंह बड़े ही धीर, वीर और बुद्धि मान् थे। प्रसन्नता और उदारता इनके चेहरे से झलकती थी। इनका शरीर बहुत सुडौल और बलिष्ठ था। इन्होंने देश तथा लोक के उपकार के लिए कितने ही कार्य्य किये। सदैव न्याय करने का प्रण भी इन्होंने ख़ूब निबाहा। इनके न्याय की कितनी ही कहानियाँ मारवाड़ देश में प्रचलित हैं। इनके सम्बन्ध में करनल टाड ने लिखा है:—भगवान यदि कुछ दिनों तक बख़्तसिंह को जीवित रखता तो ये दिल्ली की टूटती बादशाहत को मरहटों के हाथ न जाने देते और भारतवर्ष में फिर भी राजपूतों का डङ्का बजाते।

यदि इनके सिर पितृघात का कलङ्क न होता तो निस्सन्देह ये आदर्श राजा कहे जाते। इनका यह दोष गुलाब में काँटे की तरह खटकनेवाला है।

अमरसिंह

सर रूफस आइज़क्स।

Sir Rufus Isaacs.

सर रूफस आइज़क्स विलायत के एक नामी बैरिस्टर हैं। इनके मुक़ाबले के दूसरे बैरिस्टर सर एडवर्ड कारसन हैं। सर रूफस की प्रसिद्धि विलायत में उसी भाँति है जैसी मिस्टर सिंह की इस देश में। सर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

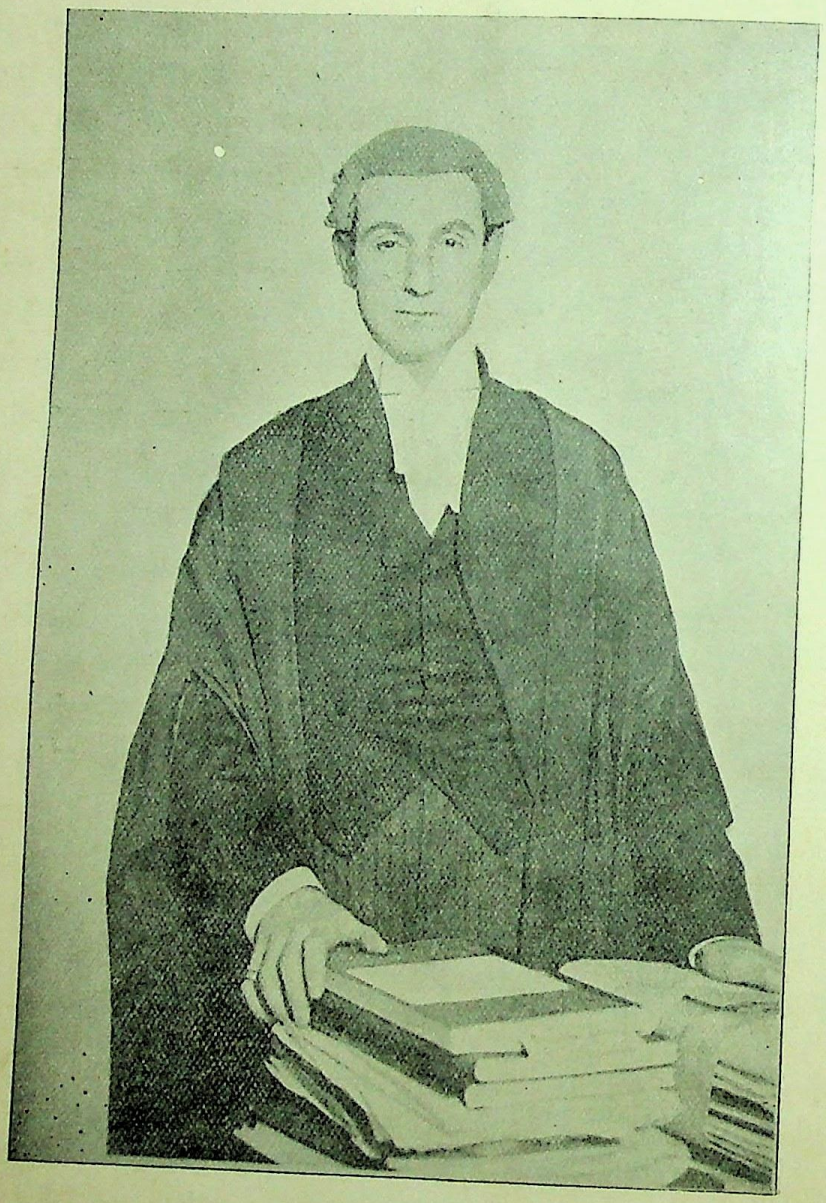

सर रूफस आइज़क्स ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूफस यहूदी हैं, अँगरेज़ नहीं। यहूदियों का लन्दन में अलग महल्ला है। किसी समय यह क़ौम विलायत में बहुत पददलित थी। उसकी दुर्दशा इतिहास जानने वाले अच्छी तरह जानते होंगे। तेरहवीं सदी के शुरू से उनकी स्थिति सुधरने लगी; और, आज, वे अँगरेज़ों से भी धन, विद्या, वाणिज्य इत्यादि में बढ़े चढ़े हैं। विलायत के प्रधान मंत्री बेंजमन डिज़रैली, अर्थात् लार्ड बीकन्सफील्ड, को कौन नहीं जानता है? इनकी गूढ़ नीति, और विशाल बुद्धि के सामने सबको सिर झुकाना पड़ता था। Emperor of India, अर्थात् "भारत के महाराज" का ख़िताब निकालनेवाले डिज़रैली ही थे। इनकी भव्य मूर्ति पार्लीमेंट के सामने वाले मैदान में रक्खी है। इसके देखने ही से लोगों को इनके प्रताप का कुछ कुछ पता लग सकता है। प्रति वर्ष, अप्रेल में, इनकी मूर्ति पर प्रिमरोज़ (Primrose) नामक एक प्रकार के पीले गुलाब का हार चढ़ाया जाता है। उस दिन, याने ता० १२ अप्रेल को, लोग प्रिमरोज़ फूल को अपने कोट में लगाते हैं इत्यादि। व्यापार में यहूदियों का परिचय कराना व्यर्थ है। वे विलायत के मारवाड़ी कहे जाते हैं। धन में वे कुबेर हैं। राथ्सचाइल्ड घराने को घर घर लोग विलायत में जानते हैं। पारसाल इसी जाति का एक विद्यार्थी सीनियर रेङ्गलर था। बस वह यही प्रसिद्ध क़ौम है जिसके एक रत्न का हम आज परिचय कराते हैं।

जन्म इत्यादि

सर रूफस का जन्म अक्तूबर सन् १८६० ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम मिस्टर जोज़फ आइज़क्स था। आप व्यापारी थे। इनका देहान्त हाल ही में हुआ है। इनके काका, सर हेनरी आइज़क्स, सन् १८९० ई० में, लन्दन के लार्ड मेयर, अर्थात् म्युनिसीपल प्रेसीडेंट थे। इतने ही से जान लेना चाहिए कि सर रूफस ने एक उच्च घराने में जन्म लिया है। सर रूफस ने कोई यूनीवर्सिटी डिग्री नहीं प्राप्त की; न वे बड़े वक्ता ही हैं। आपने प्राथमिक शिक्षा लन्दन में पाई। इसके बाद ब्रसल्स और हैनोवर गये। वहाँ कुछ दिन पढ़ कर फिर लन्दन लौट आये। अँगरेज़ी तो आपकी मातृ-भाषा सी है; पर इसके सिवा फ्रेंच और जर्मन भाषायें भी आप अच्छी तरह जानते हैं। मामूली विद्या प्राप्त कर के आप अपने पिता का काम देखने लगे। इसके लिए उन्हें लन्दन छोड़ कर बाहर अन्य देशों में भी रहना पड़ा। इस प्रवास का परिणाम यह हुआ कि आप को बहुत सा सांसारिक अनुभव हो गया। फिर लन्दन आकर स्टाक एक्सचेन्ज (Stock Exchange) में दलाली करने लगे। पर इस कार्य में विशेष सफलता न देख दूसरे धन्धे की ओर ध्यान दिया। यह धन्धा बैरिस्टरी है। इसमें जो सफलता इन्होंने प्राप्त की है उसके बतलाने की आवश्यकता नहीं। आप मिडिल टैम्पिल के बैरिस्टर हैं। सन् १९०५ में आप इस टैम्पिल के बेंचर चुने गये। यह पद बहुत महत्त्व का है। वह केवल ख़ास ख़ास लोगों को दिया जाता है। बेंचर होने के बाद आप को के० सी० (K. C.) अर्थात् किंग्स कौंसल की क़ानूनी पदवी मिली। यह उपाधि भी आसानी से नहीं मिलती। जो क़ानून में प्रवीण होते हैं उन्हीं को यह उपाधि दी जाती है। बैरिस्टरी में सफलता प्राप्त करके आपने पार्लिमेन्ट के मेम्बर होने का प्रयत्न किया। सन् १९०० में आपने नार्थ केन्सिङ्गटन (North Kensington) की मेम्बरी की कोशिश की। पर सफल न हुए। नार्थ केन्सिङ्गटन लन्दन का एक प्रसिद्ध महल्ला है। वह टोरी दल का केन्द्र स्थल है। वहाँ लिबरल की कहाँ चल सकती थी। पर सर रूफस इस हार से पीछे नहीं हटे; और, अब, सन् १९०४ से आज तक, बराबर रैडिंग (Reading) नगर के प्रतिनिधि हैं। रैडिंग रेल द्वारा लन्दन से घंटे डेढ़ घंटे का रास्ता है। केम्ब्रिज इसके निकट है। यहाँ कृषि-कालेज है। रैडिंग में बिसकिट बनाने के कारख़ाने हैं। बिसकिट के डब्बों पर जो बीच में "Reading" शब्द लिखा रहता है वह यही स्थान है। बहुत लोग इस शब्द को रीडिंग अर्थात् पढ़ने का अर्थ लगाते हैं। सटन्स सीड (Sutton's Seed)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् सटन साहब के बीज का हेड क्वार्टर भी यही नगर है। लगातार कई खेतों में कई प्रकार के फूलों की सुन्दर कियारियाँ रेल पर से दिखाई देती हैं। रैडिंग एक छोटा सा, साफ़, ख़ूबसूरत शहर है।

बैरिस्टरी

और बैरिस्टरों की भाँति सर रूफस का आफिस भी टैम्पिल (Temple) में है। आप कोई प्रसिद्ध वक्ता नहीं। पर जिस ढँग से आप जज, जूरी और गवाहों को क़ाबू में लाते हैं वह बहुत विचित्र है। वे बहुत शान्त हैं। उनके स्वभाव में क्रोध लेश मात्र नहीं। वे सदैव प्रसन्न-चित्त रहते हैं। उनका कोई भी दुश्मन नहीं। मित्रों में जब वे बैठते हैं तब ख़ूब मनोरञ्जक बातचीत करते हैं। गवाही लेते समय वे किसी प्रकार साक्षी को दबाते, धमकाते नहीं। वे इस युक्ति से प्रश्न करते हैं कि गवाह आप ही आप उनके मन के उत्तर देता जाता है। जब गवाह अदालत छोड़ता और अपनी बातों को कुछ सोचता है तब उसकी आँख खुलती है कि वह अच्छे जाल में फँस गया। एक बार एक डाक्टर की गवाही हुई। रूफस ने उससे बड़ी नम्रता से प्रश्न किये। डाक्टर जवाब देता गया। घर पहुँचने पर डाक्टर को होश आया कि मैं क्या कर आया। रात भर उसे नींद नहीं आई। सबेरे सर रूफस से उसने कहा, आपने मुझे अच्छा फँसाया। सर रूफस हँसने लगे।

एक बार एक आदमी ने एक समाचार-पत्र पर मानहानि की नालिश की। सर रूफस समाचार-पत्र की ओर से बैरिस्टर हुए। मुद्दई के बैरिस्टर ने ख़ूब हल्ला मचाया; गवाहों को डाँटा; जूरी पर भी दबाव डालना चाहा। सर रूफस चुपचाप बैठे सुनते रहे। एक शब्द तक न बोले। सीधे जज की ओर देखते रहे। मुद्दालेह सर रूफस के इस मौनावलम्बन पर तअज्जुब करने लगे। उन्होंने मन में सोचा कि व्यर्थ इतना रुपया खोया। जूरी ने फैसिला सुनाया। अपराधियों पर सिर्फ़ एक पैसा (One Farthing) दण्ड किया। जज ने भी यही दण्ड क़ायम रक्खा। मुक़द्दमा पूरा होने पर सर रूफस के मुवक्किलों ने पूछा, आप बिलकुल चुप बैठे रहे, कुछ नहीं कहा। सर रूफस ने हँस कर कहा कि जज साहब सीधे आदमी हैं और सीधी बातें पसन्द करते हैं। तुम्हारा मुक़द्दमा टेढ़ा था। यदि हम कुछ कहते तो सब सत्यानाश हो जाता। सिवा इसके, हम जज साहब के रुख़ को देख रहे थे। यदि हम गड़बड़ करते तो न जाने तुमको कितना दण्ड देना पड़ता।

हमने कई बार सर रूफस को अदालत में देखा। पर कभी किसी पर नाराज़ होते नहीं पाया। जज यदि उनसे कुछ कह भी देता है तो वे उसका मीठा उत्तर दे कर उसे प्रसन्न कर लेते हैं। कहते हैं काबडन (Cobden) भी प्रसन्न-मुख थे। इसी की बदौलत वे कट्टर से कट्टर टोरी को वश में रखते थे। हाउस आफ कामन्स में वोट, देने के समय, कई मेम्बर, जिनसे कभी आशा न की जाती थी, काबडन के पक्ष में वोट देते थे। सर रूफस व्यापार-सम्बन्धी मुक़द्दमों में बहुत प्रवीण हैं। उनकी वार्षिक आमदनी अनुमान तीस हज़ार पौंड अर्थात् साढ़े चार लाख रुपये समझी जाती है। आज कल वे अटर्नी जनरल भी हैं। इस ओहदे की सालाना तनख़्वाह सात हज़ार पौंड है। सर रूफस का सितारा दिन ब दिन चमक रहा है। लोगों का अनुमान है कि एक दिन वे इँगलेंड के लार्ड चान्सलर होंगे।

सर रूफस, एम० पी०

हम ऊपर कह चुके हैं कि सर रूफस रैडिङ्ग की ओर से पार्लिमेन्ट के मेम्बर हैं। आप क़रीब चार बजे तक कचहरियों में रहते हैं, बाद उसके पार्लिमेन्ट जाते हैं। वहाँ घंटे दो घंटे या कम बढ़ ठहर कर घर चले जाते हैं। पार्लीमेन्ट में आप बहुत कम बोलते हैं। और, जो बोलते हैं उसका अधिक प्रभाव नहीं पड़ता। आज कल हाउस आफ कामन्स में कुछ कम आधा या एक तिहाई हिस्सा बैरिस्टरों का है। इनमें बहस करने वाले थोड़े हैं। जो हैं वे अच्छे बैरिस्टर नहीं कहे जाते। मि० एसक्लिथ एक नामी बैरिस्टर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। पर बोलने में वे भी कुछ ज़ोरदार नहीं। सर रूफस के मुक़ाबले के बैरिस्टर सर एडवर्ड कारसन हैं। ये भी एम० पी० (M P.) हैं। पर हाउस में उनकी भी बहुत कम स्पीचें होती हैं और जो होती हैं वे बहुत हलके दरजे की। चित्र से मालूम होगा कि सर रूफस ख़ासे ऊँचे पूरे हैं; पर शरीर में कुछ दुर्बल हैं। आप मूँछ मुड़ाते हैं। आपका स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। अभी तक एक भी बाल सफेद नहीं हुआ। देखने में ३०, ३५ साल के दीखते हैं। रङ्ग, सूरत, शकल, बोल चाल सब अँगरेज़ी है। आँख काली और चेहरा कुछ लम्बा है। सिर पर जो सफ़ेद टोपी सी पहने हैं वह विग (Wig) है। यह घूँघटदार है। बहुत क़ीमती होती है। सौ रुपये से अधिक में मिलती है। विलायत में सब बैरिस्टर, अदना-आला, सब तरह की अदालतों में बिना विग और गाउन के खड़े नहीं होते। गाउन (Gown) एक काले आलपाके की चोग़ानुमा ढीली ढाली पोशाक है, जैसी कि सर रूफस पहने दिखाई देते हैं। गाउन भी कम क़ीमती नहीं होती। ५० रुपये में मामूली गाउन आती है। इतना अधिक काम रहने पर भी सर रूफस क्लब जाने और नाटक इत्यादि देखने को समय निकाल लेते हैं। सच कहा है, कायर को समय की सदैव कोताही रहती है; पर विद्वान् इस बात की बहुत ही कम शिकायत करते हैं।

प्यारेलाल मिश्र।

आचरण की सभ्यता।

विद्या, कला, कविता, साहित्य, धन और राजत्व से भी आचरण की सभ्यता अधिक ज्योतिष्मती है। आचरण की सभ्यता को प्राप्त कर के एक कङ्गाल आदमी राजाओं के दिलों पर भी अपना प्रभुत्व जमा सकता है। इस सभ्यता के दर्शन से कला, साहित्य और सङ्गीत को अद्भुत सिद्धि प्राप्त होती है। राग अधिक मृदु हो जाता है; विद्या का तीसरा शिव-नेत्र खुल जाता है; चित्र-कला का मौन राग अलापने लग जाता है; वक्ता चुप हो जाता है; लेखक की लेखनी थम जाती है; मूर्ति बनाने वाले के सामने नये कपोल, नये नयन और नई छवि का दृश्य उपस्थित हो जाता है।

आचरण की सभ्यतामय भाषा सदा मौन रहती है। इस भाषा का निघण्टु शुद्ध श्वेत पत्रों वाला है। इस में नाम मात्र के लिए भी शब्द नहीं। यह सभ्याचरण नाद करता हुआ भी मौन है; व्याख्यान देता हुआ भी व्याख्यान के पीछे छिपा है, राग गाता हुआ भी राग के सुर के भीतर पड़ा है। मृदु वचनों की मिठास में आचरण की सभ्यता मौन रूप से खुली हुई है। नम्रता, दया, प्रेम और उदारता सब के सब सभ्याचरण की भाषा के मौन व्याख्यान हैं। मनुष्य के जीवन पर मौन व्याख्यान का प्रभाव चिरस्थायी होता है और उसकी आत्मा का एक अङ्ग हो जाता है।

न काला, न नीला, न पीला, न सुफेद, न पूर्वी, न पश्चिमी, न उत्तरी, न दक्षिणी, बे नाम, बे निशान, बे मकान— विशाल आत्मा के आचरण से मौनरूपिणी सुगन्धि सदा प्रसरित हुआ करती है। इसके मौन से प्रसूत प्रेम और पवित्रता-धर्म्म सारे जगत् का कल्याण कर के विस्तृत होते हैं। इसकी उपस्थिति से मन और हृदय के ऋतु बदल जाते हैं। तीक्ष्ण गरमी से जले भुने व्यक्ति आचरण के काले बादलों की बूँदाबाँदी से शीतल हो जाते हैं। मानसोत्पन्न शरदृतु से क्लेशातुर हुए पुरुष इसकी सुगन्ध-मय अटल वसन्त ऋतु के आनन्द का पान करते हैं। आचरण के नेत्र के एक अश्रु से जगत् भर के नेत्र भीग जाते हैं। आचरण के आनन्द-नृत्य से उन्मादिष्णु होकर वृक्षों और पर्वतों तक के हृदय नृत्य करने लगते हैं। आचरण के मौन व्याख्यान से मनुष्य को एक नया जीवन प्राप्त होता है। नये नये विचार स्वयं ही प्रकट होने लगते हैं। सूखे काष्ठ सचमुच ही हरे हो जाते हैं। सूखे कूपों में जल भर आता है। नये नेत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलते हैं। कुल पदार्थों के साथ एक नया मैत्रीभाव फूट पड़ता है। सूर्य्य, जल, वायु, पुष्प, पत्थर, घास, पात, नर, नारी और बालक तक में एक अश्रुतपूर्व सुन्दर मूर्ति के दर्शन होने लगते हैं।

मौनरूपी-व्याख्यान की महत्ता इतनी बलवती, इतनी अर्थवती और इतनी प्रभावती होती है कि उसके सामने क्या मातृ-भाषा, क्या साहित्य-भाषा और क्या अन्य देश की भाषा—सब की सब तुच्छ प्रतीत होती हैं। अन्य कोई भाषा दिव्य नहीं; केवल आचरण की मौनभाषा ही ईश्वरी है। विचार कर के देखो, मौन-व्याख्यान किस तरह आपके हृदय की नाड़ी नाड़ी में सुन्दरता को पिरो देता है। वह व्याख्यान ही क्या, जिसने हृदय की धुन को—मन के लक्ष्य को—ही न बदल दिया। चन्द्रमा की मन्द मन्द हँसी का—तारागण के कटाक्ष-पूर्ण प्राकृतिक मौन व्याख्यान का—प्रभाव किसी कवि के दिल में घुस कर देखो। सूर्य्यास्त होने के प्रश्चात्, श्रीकेशवचन्द्र सेन और महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने सारी रात, एक क्षण की तरह, गुज़ार दी; यह तो कल की बात है। कमल और नरगिस में नयन देखने वाले नेत्रों से पूँछो कि मौन-व्याख्यान की प्रभुता कितनी दिव्य है।

प्रेम की भाषा शब्द-रहित है। नेत्रों की, कपोलों की, मस्तक की भाषा भी शब्द-रहित है। जीवन का तत्त्व भी शब्द से परे है। सच्चा आचरण—प्रभाव, शील, अचल स्थिति संयुक्त आचरण—न तो साहित्य के लम्बे व्याख्यानों से गठा जा सकता है; न वेद की श्रुतियों के मीठे उपदेश से; न अंजील से; न कुरान से; न धर्मचर्चा से; न केवल सत्सङ्ग से। जीवन के अरण्य में घुसे हुए पुरुष के हृदय पर, प्रकृति और मनुष्य के जीवन के मौन-व्याख्यानों के यत्न से, सुनार के छोटे हथोड़े की मन्द मन्द चोटों की तरह, आचरण का रूप प्रत्यक्ष होता है।

बर्फ़ का दुपट्टा बाँधे हुए हिमालय इस समय तो अति सुन्दर, अति ऊँचा और अति गौरवान्वित मालूम होता है; परन्तु प्रकृति ने अगणित शताब्दियों के परिश्रम से रेत का एक एक परमाणु समुद्र के जल में डुबो डुबो कर और उनको अपने विशे हथोड़ों से सुडौल कर कर के इस हिमालय के दर्श कराये हैं। आचरण भी हिमालय की तरह एक ऊँ कलश वाला मन्दिर है। यह वह आम का पेड़ नं जिसको मदारी एक क्षण में, तुम्हारी आँखों में मिट्ट डाल कर, अपनी हथेली पर जमा दे। इसे बनने अनन्त काल लगा है। पृथ्वी बन गई; सूर्य्य बन गय तारागण आकाश में दौड़ने लगे; परन्तु अभी त आचरण के सुन्दर रूप के पूर्ण दर्शन नहीं हुए। कहीं कहीं उसकी अत्यल्प छटा अवश्य दिखाई देती है।

पुस्तकों में लिखे हुए नुसख़ों से तो और भी अधिक बदहज़मी हो जाती है। सारे वेद और शास्त्र भी यदि घोल कर पी लिये जायँ तो भी आदर्श आचरण की प्राप्ति नहीं होती। आचरण-प्राप्ति की इच्छा रखने वाले को तर्क-वितर्क से कुछ भी सहायता नहीं मिलती। शब्द और वाणी तो साधारण जीवन के चोचले हैं। ये आचरण की गुप्त गुहा में नहीं प्रवेश कर सकते। वहाँ इनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। वेद इस देश के रहने वालों के विश्वासानुसार ब्रह्म-वाणी हैं। परन्तु इतना काल व्यतीत हो जाने पर भी आज तक वे कुल जगत् की भिन्न भिन्न जातियों को संस्कृत भाषा न बुला सके—न समझा सके—न सिखा सके। यह बात हो कैसे? ईश्वर तो सदा मौन है। ईश्वरी मौन शब्द और भाषा का विषय नहीं। वह केवल आचरण के कान में गुरु-मन्त्र फूँक सकता है। वह केवल ऋषि के दिल में वेद का ज्ञानोदय कर सकता है।

किसी का आचरण वायु के झोंके से हिल जाय तो हिल जाय; परन्तु साहित्य और शब्द की गोलन्दाज़ी और आँधी से उसके सिर के एक बाल तक का बाँका न होना एक साधारण बात है। पुष्प की कोमल पँखड़ी के स्पर्श से किसी को रोमाञ्च हो जाय; जल की शीतलता से क्रोध और विषय-वासना शान्त हो जायँ; बर्फ़ के दर्शन से पवित्रता आ जाय; सूर्य्य की ज्योति से नेत्र खुल जायँ—परन्तु अँगरेज़ी भाषा का व्याख्यान—चाहे वह कारलायल ही का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखा हुआ क्यों न हो—बनारस के पण्डितों के लिए राम रोला ही है। इसी तरह न्याय और व्याकरण की बारीकियों के विषय में पण्डितों के द्वारा की गई चर्चायें और शास्त्रार्थ संस्कृत-ज्ञान-हीन पुरुषों के लिए स्टीम इंजिन के फप् फप् शब्द से अधिक अर्थ नहीं रखते। यदि आप कहें कि व्याख्यानों द्वारा, उपदेशों द्वारा, धर्म-चर्चा द्वारा कितने ही पुरुषों और नारियों के दिल पर जीवन-व्यापी प्रभाव पड़ा है, तो उत्तर यह है कि प्रभाव शब्द का नहीं पड़ता—प्रभाव तो सदा सदाचरण का पड़ता है। साधारण उपदेश तो हर गिरजे, हर मन्दिर और हर मसजिद में होते हैं, परन्तु उनका प्रभाव तभी हम पर पड़ता है जब गिरजे का पादड़ी स्वयं ईसा होता है—मन्दिर का पुजारी स्वयं ब्रह्मर्षि होता है—मसजिद का मुल्ला स्वयं पैग़म्बर और रसूल होता है।

यदि एक ब्राह्मण किसी डूबती कन्या की रक्षा के लिए—चाहे वह कन्या जिस जाति की हो; जिस किसी मनुष्य की हो; जिस किसी देश की हो—अपने आप को गंगा में फेंक दे—चाहे फिर उसके प्राण यह काम करने में रहें चाहे जायँ—तो इस कार्य्य के प्रेरक आचरण की मौनमयी भाषा किस देश में, किस जाति में, और किस काल में, कौन नहीं समझ सकता? प्रेम का आचरण, उदारता का आचरण, दया का आचरण—क्या पशु और क्या मनुष्य—जगत् के सभी चराचर आपही आप समझ लेते हैं। जगत् भर के बच्चों की भाषा इस भाष्यहीन भाषा का चिह्न है। बालकों के इस शुद्ध मौन का नाद और हास्य भी सब देशों में एकही सा पाया जाता है।

एक दफ़े एक राजा जङ्गल में शिकार खेलते खेलते रास्ता भूल गया। उसके साथी पीछे रह गये। घोड़ा उसका मर गया। बन्दूक़ हाथ में रह गई। रात का समय आ पहुँचा। देश बर्फ़ानी; रास्ते पहाड़ी। पानी बरस रहा है। रात अँधेरी है। ओले पड़ रहे हैं। ठंडी हवा उसकी हड्डियों तक को हिला रही है। प्रकृति ने, इस घड़ी, इस राजा को अनाथ बालक से भी अधिक बे-सरो-सामान कर दिया। इतने में दूर एक पहाड़ी की चोटी के नीचे टिमटिमाती हुई बत्ती की लौ दिखाई दी। कई मील तक पहाड़ के ऊँचे नीचे उतार-चढ़ाव को पार करने से थका हुआ, भूखा और सर्दी से ठिठरा हुआ राजा उस बत्ती के पास पहुँचा। यह एक ग़रीब पहाड़ी किसान की कुटी थी। इसमें किसान, उसकी स्त्री और उनके दो तीन बच्चे रहते थे। किसान शिकारी को अपनी झोंपड़ी में ले गया। आग जलाई। उसके वस्त्र सुखाये। दो मोटी मोटी रोटियाँ और साग उसके आगे रक्खा। उसने ख़ुद भी खाया और शिकारी को भी खिलाया। ऊन और रीछ के चमड़े के नरम और गरम बिछौने पर उसने शिकारी को सुलाया। आप बे-बिछौने की भूमि पर सो रहा। धन्य है तू, ऐ मनुष्य! तू ईश्वर से क्या कम है! तू भी तो पवित्र और निष्काम रक्षा का कर्ता है। तू भी तो आपन्न जनों का आपत्ति से उद्धार करने वाला है।

शिकारी कई रूसों का ज़ार ही क्यों न हो, इस समय तो एक रोटी और गरम बिस्तर—अग्नि की एक चिनगारी और एक टूटी छत पर—उसकी सारी राजधानियाँ बिक गईं। अब यदि वह अपना सारा राज्य उस किसान को, उसकी अमूल्य रक्षा के मोल में, देना चाहे तो भी वह तुच्छ है; यदि वह अपना दिल ही देना चाहे तो भी वह तुच्छ है। अब उस निर्धन और निरक्षर पहाड़ी किसान की दया और उदारता के कर्म के मौन व्याख्यान को देखो। चाहे शिकारी को पता लगे, चाहे न लगे; परन्तु राजा के अन्तर के मौन-जीवन में उसने ईश्वरी औदार्य्य की क़लम गाड़ दी! शिकार में अचानक रास्ता भूल जाने के कारण जब इस राजा को ज्ञान का एक परमाणु मिल गया तब कौन कह सकता है कि शिकारी का जीवन अच्छा नहीं। क्या जङ्गल के ऐसे जीवन में, इसी प्रकार के व्याख्यानों से, मनुष्य का जीवन, शनैः शनैः, नया रूप धारण नहीं करता? जिसने शिकारी के जीवन के दुःखों को नहीं सहन किया उसको क्या पता कि ऐसे जीवन की तह में किस प्रकार और किस मिठास के आचरण का विकाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। इसी तरह क्या एक मनुष्य के जीवन में और क्या एक जाति के जीवन में—पवित्रता और अपवित्रता भी जीवन के आचरण को भली भाँति गढ़ती है—और उस पर भली भाँति कुन्दन करती है। जगई और मधई यदि पक्के लुटेरे न होते तो महाप्रभु चैतन्य के आचरण-सम्बन्धी मौन व्याख्यान को ऐसी दृढ़ता से कैसे ग्रहण करते। नग्न नारी को स्नान करते देख सूरदास जी यदि कृष्णार्पण किये गये अपने हृदय को एक बार फिर उस नारी की सुन्दरता निरखने में न लगाते और उस समय फिर एक बार अपवित्र न होते तो सूरसागर में प्रेम का वह मौन व्याख्यान—आचरण का वह उत्तम आदर्श—कैसे दिखाई देता। कौन कह सकता है कि जीवन की पवित्रता और अपवित्रता के प्रतिद्वन्द्वी भाव से संसार के आचरणों में एक अद्भुत पवित्रता का विकाश नहीं होता। यदि मेरी मेगडालेन वेश्या न होती तो कौन उसे ईसा के पास ले जाता और ईसा के मौन व्याख्यान के प्रभाव से किस तरह आज वह हमारी पूजनीया माता बनती? कौन कह सकता है कि ध्रुव की सौतेली माता अपनी कठोरता से ही ध्रुव को अटल बनाने में वैसीही सहायक नहीं हुई जैसी कि स्वयं ध्रुव की माता।

मनुष्य का जीवन इतना विशाल है कि उसके आचरण को रूप देने के लिए नाना प्रकार के ऊँच-नीच और भले-बुरे विचार, अमीरी और ग़रीबी, उन्नति और अवनति इत्यादि सहायता पहुँचाते हैं। पवित्र अपवित्रता उतनी ही बलवती है, जितनी कि पवित्र पवित्रता। जो कुछ जगत् में हो रहा है वह केवल आचरण के विकाश के अर्थ हो रहा है। अन्तरात्मा वही काम करता है जो बाह्य पदार्थों के संयोग का प्रतिबिम्ब होता है। जिनको हम पवित्रात्मा कहते हैं, क्या पता है, किन किन कूपों से निकल कर वे अब उदय को प्राप्त हुए हैं? जिनको हम धर्मात्मा कहते हैं, क्या पता है, किन किन अधर्मों को करके वे धर्म-ज्ञान को पासके हैं? जिनको हम सभ्य कहते हैं और जो अपने जीवन में पवित्रता को ही सब कुछ समझते हैं, क्या पता है, वे कुछ काल पूर्व बुरी से अधर्म अपवित्रता में लिप्त रहे हों? अपने जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों से भरी हुई अन्धकार-मय कोठरी से निकल कर ज्योति और स्वच्छ वायु से परिपूर्ण हुए देश में जब तक अपना आचरण अपने नेत्र खोल चुका हो तब तक धर्म्म के गूढ़ तत्त्व कैसे समझ में आ सकते हैं। नेत्र-रहित को सूर्य्य से क्या लाभ? हृदयरहित को प्रेम से क्या लाभ? कवि को राग से क्या लाभ? कविता, साहित्य, पैग़म्बर, गुरु, आचार्य्य, ऋषि आदि के उपदेशों से लाभ उठाने का यदि आत्मा में बल नहीं तो उनसे क्या लाभ? जब तक जीवन का बीज पृथ्वी के मल मूत्र के ढेर में पड़ा है, अथवा जब तक वह खाद की गरमी से अङ्कुरित नहीं हुआ और प्रस्फुटित हो कर उससे दो नये पत्ते ऊपर नहीं निकल आये, तब तक ज्योति और वायु उसके किस काम के?

[असमाप्त]

पूर्णसिंह

मारकोनी का माहात्म्य।

आज मैं सरस्वती के पाठकों को इटली देश के बोलोग्ना नगर में ले चलता हूँ। देखिए, इस सुन्दर वाटिका में यह इक्कीस वर्ष का युवक क्या कर रहा है। इसके सामने अनेक औज़ार पड़े हुए हैं। पाठक, आप जानते हैं, यह युवा कौन है और क्या कर रहा है? सुनिए इसका हाल मैं आप से बतलाता हूँ:—

इस युवा का नाम मारकोनी है। यह अपने पिता के इस बाग़ में उस आविष्कार का अनुसन्धान कर रहा है जो थोड़े ही समय बाद संसार को चकित करेगा। बिजली-सम्बन्धी औज़ारों को सामने रक्खे हुए यह इस बात का उद्योग कर रहा है कि किसी प्रकार उस झण्डे की चोटी पर रक्खी हुई धातु की चद्दर और ज़मीन में गाड़े हुए धातु के टुकड़े में चिनगारी निकले। उसके सब मित्र उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीवाना समझते थे और कहते थे कि इस युवक का यह सारा उद्योग वृथा जायगा। कौन जानता था कि यही दीवाना उत्साही युवक इसी अनुसन्धान से एक ऐसी शक्ति पैदा करेगा जो मनुष्य मात्र के लिए परम लाभदायक होगी; जो आकाश में अदृश्य होकर और छुये बिना ही बीच समुद्र में डूबते हुए जहाज़ों के उद्धार के लिए मदद लावेगी; जो जहाज़ में सवार भागते हुए हत्यारे का पता बतायेगी; जो शत्रु का हाल गुप्त रूप से एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचायेगी; और जो जहाज़ पर सवार यात्रियों को देश-देशान्तरों का हाल सुनायेगी। मारकोनी तू धन्य है! तूने अपने नाम को अमर कर दिया।

जब मैं जहाज़ पर विलायत से अमेरिका को आ रहा था, जरमनी और फ्रान्स के बीच, मराको के विषय में, झगड़ा हो रहा था और चीन में वर्तमान राज्यप्रणाली के विरुद्ध बलवा आरम्भ हो गया था। इन समाचारों को जहाज़ पर कौन पहुँचा सकता था? यह इसी शक्ति का काम था जिसे मारकोनी ने पैदा किया है। भोजन-गृह में यात्रियों की वे तरह भीड़ है। क्यों? वे तार के उन तारों को पढ़ने के लिए जो न्यूयार्क और लन्दन से आकर जरमनी, फ्रान्स और चीन के समाचार सुनाते थे।

और सुनिए। लन्दन से कनाड़ा जानेवाले "मोन्ट्रोस" (Montrose) नामक जहाज़ की एक कोठरी में एक छोटा सा यन्त्र लगा हुआ था। एकाएक वह अद्भुत यन्त्र "टप टप" की आवाज़ करने लगा। उत्तर में उस कोठरी में बैठे हुए मनुष्य ने भी वैसाही "टप टप" किया। आप जानते हैं, यह क्या है? इस मनुष्य ने सौ मील की दूरी पर आयरलैंड के किनारे बेतार के तारघर को ख़बर दी है कि हम लोग आनन्द से हैं; कहो क्या चाहते हो? इतना कहने में कुछ भी समय नहीं लगा; मानो एक कमरे से दूसरे का दरवाज़ा खोल कर बस बात कर ली। जवाब आया, देखो, तुम्हारे जहाज़ पर हत्यारे डाक्टर क्रिपेन और मिस-लिनेवी तो नहीं भागे जा रहे हैं। इधर से उत्तर दिया गया—मुझे सन्देह है कि जहाज़ पर ये लोग हैं। फिर क्या था। चारों ओर से तार आने जाने लगे। इँगलैंड से भी और कनाड़ा से भी। मज़ा यह कि इस समय डाक्टर साहब स्वयं इस तार के विचित्र यंत्र के पास बैठे हुए कप्तान से बातचीत कर रहे थे। उस विचित्र यंत्र को देख कर आप जहाज़ के कप्तान से कहने लगे—"वाह, यह बड़ा ही अद्भुत पदार्थ है"! बेचारा क्या जानता था कि यही उसका शत्रु बनेगा।

इटली और टर्की के युद्ध में इटली क्यों अधिक सफलता प्राप्त कर रहा है? इसी कारण कि वह आधुनिक यंत्रादि से अच्छी तरह सुसज्जित है। और टर्की के पास क्या है? टूटे फूटे जहाज़; पुरानी चाल की तोपें; और ज़ंग लगे हुए हथियार। उसके वीर और कट्टर योद्धा किस काम के यदि उनके पास शीघ्र चलने वाली तोपें और अन्यान्य आधुनिक शस्त्र नहीं। यदि उनके पास इटली के जैसे बड़े बड़े जहाज़ नहीं हैं; यदि उनके पास हवाई नावें नहीं हैं; और, यदि उनके पास ख़बर देने वाले बेतार के विचित्र यंत्र नहीं हैं तो वे इटली का कैसे मुक़ाबला कर सकते हैं?

अमेरिका के प्रसिद्ध राजनैतिक नेता मिस्टर ब्रायन को अनेक भारतवासी जानते होंगे। इन्हीं ने भारत की कहानी छापी थी। उस दिन आप दक्षिण की ओर सैर करने के इरादे से जहाज़ पर अपने कुटुम्ब के साथ जा रहे थे। बहामा द्वीप के निकट एकाएक जहाज़ पृथ्वी से लग गया। अब क्या हो! इस महा निर्जन स्थान में यात्री कहाँ जायँ? जहाज़ टक्कर खाकर ज़ख्मी हो गया। पर हताश होने की कोई बात नहीं। मारकोनी का भला हो! जहाज़ पर बेतार का तार लगा हुआ था। बस कप्तान ने सब तरफ़ ख़बर देना शुरू किया। थोड़ी ही देर बाद कई जहाज़ों ने, जो पास ही थे, उत्तर दिया—"घबराओ मत; हम आते हैं।" फ़िर क्या था, कुछ ही घंटों में कई जहाज़ आ गये और मिस्टर ब्रायन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहित सब यात्रियों को लेकर उसी ओर को चल दिये जिधर वह ज़ख्मी जहाज़ जानेवाला था। इस तार ने ऐसे अनेकों की जान बचाई है जिनका, इसके बिना, कभी पता भी न लगता कि कहाँ गये।

इस विचित्र तार में कौन सी ऐसी विचित्रता है जिससे उसमें ऐसी अद्भुत शक्ति उत्पन्न हो गई है? युक्ति बिलकुल ही सीधी है। हाँ, देखने में वह बहुत ही टेढ़ी जान पड़ती है। विचित्रता इसमें बस इतनी ही है जितनी कि नेत्रद्वारा सूर्य का प्रकाश देखने में है। करोड़ों मील की दूरी से सूर्य आकाश द्वारा हमारे नेत्रों की ओर प्रकाश की लहरें फेंकता है और नेत्र उन लहरों को पकड़ लेते हैं। इसी तरह बेतार के तार का एक यंत्र तरङ्ग-विशेष को आकाश में पैदा करता है और दूसरा यंत्र उनको पकड़ लेता है। १८८७ ईसवी में जरमनी के वैज्ञानिक विद्वान् प्रोफ़ेसर हर ने यह दिखलाया था कि बिजली की चिनगारियाँ इस प्रकार की लहरों को आकाश में पैदा करती हैं। परन्तु इस आविष्कार को काम में लाना मारकोनी ही का काम था। अन्यथा हर महाशय का यह ज्ञानानुभव निष्क्रिय रूप में पड़ा ही रह जाता। इस विषय का संक्षिप्त वर्णन मैं दूसरे लेख में करने का प्रयत्न करूँगा; क्योंकि यह विषय बहुत ही मनोरञ्जक है। आज मैं इस विचित्र मनुष्य का ही कुछ हाल कहूँगा।

मिस्टर मारकोनी की माता आइरिश थीं और पिता इटैलियन। जब मारकोनी सिर्फ़ २१ वर्ष के थे तभी से ये यह प्रयत्न करने लगे कि बिजली की लहरों को तार के काम में कैसे लायें। पहले इन्होंने एक कमरे से दूसरे कमरे में ख़बर पहुँचाने का प्रयत्न किया। फिर अपने पिता के बाग़ के एक सिरे से दूसरे सिरे तक ख़बर पहुँचाने का प्रयत्न करने लगे। अनेक उद्योगों के बाद, आख़िर में, ये फलीभूत हुए। मारकोनी ने सबसे बढ़ कर काम उस समय किया जब वे उन यंत्रों को बना सके जो बिजली की लहरों को पकड़ सकें। बस तारीफ़ इसी में थी।

मारकोनी केवल वैज्ञानिक ही नहीं, जैसा कि बहुधा विज्ञानवेत्ता हुआ करते हैं, वे पक्के व्यापारी भी हैं। १८९६ ई० में आप इँगलैंड पहुँचे। वहाँ आपने कई एक अनुसन्धान किये। उनमें इन्हें ऐसी सफलता हुई कि दूसरी जून को इन्होंने लन्दन में बेतार के तार का पेटेन्ट पाने के लिए अर्ज़ी दाख़िल कर दी।

इस युवा पुरुष का उद्योग, प्रकृति के इस गुप्त रहस्य को जान लेने में, बड़ा ही रोचक और शिक्षाप्रद है। उसे विश्वास था कि जिस बड़ी ही गूढ़ बात की खोज में वह है उसे वह अवश्य ही ढूँढ़ निकालेगा। इसी उद्योग में उसने बरसों रात-दिन श्रम किया।

१८९७ के मार्च में मारकोनी ने चार मील की दूरी तक का बेतार का पहला तार, लन्दन के सलिस्बरी नामक मैदान में, भेजा। इस सफलता से सब लोगों को मालूम हो गया कि अवश्य ही यह एक नवीन और अद्भुत आविष्कार है। १९०२ में मारकोनी ने यूरोप और अमेरिका के बीच तार भेजे।

गत दस वर्षों में इस आविष्कार के लाभ लोगों को भली भाँति ज्ञात होने लगे हैं। आज कल प्रायः सभी नये जहाज़ इस तार के यन्त्र लगाते हैं। बिना इनके जहाज़ दो कौड़ी का समझा जाता है। जहाज़ के दो मस्तूलों में ऊपर दो तार लगे होते हैं। उनसे जुड़े हुए दो तार, नीचे, एक कोठरी में आते हैं। उसी में वह यन्त्र लगा रहता है जो तार भेजता और तार लेता है। यह यन्त्र मामूली तार के यन्त्र की शकल का होता है।

इस तार ने न मालूम कितने लोगों की जान बचाई है। इसका अनुमान वही कर सकते हैं जो अनेक देशों के समाचार-पत्र पढ़ा करते हैं। इसकी बदौलत करोड़ों रुपये का माल-असबाब भी समुद्र में डूबने से बच गया है। अनन्त मनुष्यों और अपरिमित माल को बचाने वाला यह आविष्कारक जादूगर कोई विचित्र मनुष्य नहीं। आप यदि पहले पहल मारकोनी से मिलें तो समझेंगे कि यह कोई साधारण पुरुष है। परन्तु, नहीं, यद्यपि उसके वस्त्र साधारण हैं, उसकी चाल साधारण है—तथापि उसकी विद्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधारण नहीं है। इस विज्ञानी को सदैव आप विचारों में लीन पाइएगा। मालूम होता है कि किसी और गहरे आविष्कार के पीछे यह लगा हुआ है।

जगन्नाथ खन्ना—(अमेरिका)

जरमनी में सुनारी का काम।

दुनिया में आज कल सुनारी के काम में जरमनी का नम्बर बढ़ चढ़ कर है। फोर्त्सायम, हनऊ-आन-मेन और श्वाब-मेमिंड नाम की तीन बस्तियाँ सुनारों ही से आबाद हैं। साढ़े बाईस करोड़ रुपये साल का ज़ेवर इन तीनों जगह बनता है। अकेला फोर्त्सायम तेरह करोड़ रुपये साल का ज़ेवर बनाता है। इसलिए इस मुख्य स्थान का कुछ हाल लिखना, सम्भव है, देश को लाभदायक हो।

जरमनी-राज्य के अन्तर्गत उसके दक्षिण-पश्चिम भाग में बाडन नाम की एक छोटी सी रियासत* है। इसी रियासत की राजधानी कार्लसरूह के दक्षिण-पूर्व, उन्नीस मील पर, फोर्त्सायम नगर बसा हुआ है। इसकी आबादी ६० हज़ार है, तो भी सुनारी के कारण दुनिया में यह प्रसिद्ध है। १८८० ई० में यहाँ केवल १८०० सुनार थे; १९०० में १६००० हुए और १९१० में इनकी संख्या ३० हज़ार पर पहुँची।

सुनारी के कारख़ानों से सम्बन्ध रखने वाले यन्त्रादि बनाने के अनेक कारख़ाने यहाँ हैं, जिनमें १५००० मनुष्य काम करते हैं। कारख़ानों के सिवा घर पर जुड़ाई-झलाई आदि काम करने वाली स्त्रियाँ भी ५००० से कम न होंगी। अस्तु, ऐसा कहना अनुचित न होगा कि फोर्त्सायम में प्रति दिन ५०००० मनुष्य सुनारी आदि का काम करते हैं।

तीस वर्ष के भीतर इस नगर ने सुनारी में इतनी तरक्क़ी कर ली है कि अब सारा योरप, और अनेक अन्य देश भी, इसका मुँह ताकते हैं। ऐसा कोई दिन ख़ाली नहीं जाता कि यहाँ बाहर से बीस-पच्चीस बड़े बड़े व्यापारी ज़ेवर ख़रीदने न आते हों। इस लिए पूर्वोक्त तीन में से अन्तिम दो स्थानों के सुनारों का भी बहुत सा माल फोर्त्सायम में ही आकर बिकता है। इन तीनों बस्तियों के बने हुए ज़ेवर में से तीन हिस्से माल की रफ़्तनी अन्य देशों को होती है। बाक़ी एक हिस्सा जरमनी में खपता है।

ज़ेवर सोने-चाँदी का बनता है। आज कल हर आदमी सोने का ज़ेवर पसन्द करता है। इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए कुछ साल पहले तक लोग पीतल आदि धातुओं पर सोने का मुलम्मा कर देते थे। मुलम्मा थोड़े ही दिन ठहरता था। इस त्रुटि को दूर करने के लिए जरमनी वालों ने "डुप्लें" का ज़ेवर बनाना ईजाद किया। एक ख़ास क़िस्म की पीतल पर सोने का पत्तर चढ़ा कर उसका तार या पत्तर तैयार करते हैं। उसी को "डुप्लें" कहते हैं। ऐसी अच्छी हिकमत से वे पीतल पर सोना चढ़ाते हैं कि "डुप्लें" का बना हुआ ज़ेवर वर्षों तक सोने ही का सा रंग देता है। "डुप्लें" के बने हुए ज़ेवरों की इतनी बड़ी खपत दुनिया में हो गई है कि जरमनी में बहुत ही कम सोने चाँदी का ज़ेवर बनता है। सोने के समान झलकती हुई घड़ी की भड़कदार ज़ंजीरें, ऐनक की कमानियाँ, बाज़बन्द, कङ्गन, अँगूठियाँ आदि जो हमारे देश से लाखों रुपया हर साल यहाँ आती हैं वे सब "डुप्लें" ही की बनी हुई हैं।

फोर्त्सायम में सुनारों के लिए सोने, चाँदी, डुप्लें के तार, पत्तर, ठप्पे आदि अनेक ज़ेवरों के पुरज़े तैयार करने के वास्ते दो बहुत बड़े और नामी कारख़ाने हैं। इन कारख़ानों की मशीनें और इमारतों की लागत दस दस लाख रुपये की है। पुराना कारख़ाना G. RAU का है; नया FR. KAMMERER का। इस पिछले साहब ने थोड़े ही दिनों के भीतर अपने कारख़ाने को

*हिन्दुस्तान की अनेक रियासतों की तरह, जरमनी में भी पहले २६ रियासतें थीं। पर १६ अप्रैल १८७१ ई० को ये सब रियासतें आपस में मिल गईं और अपनी ओर से प्रशिया के नरेश को जरमन-साम्राज्य का सम्राट् बनाया। तभी से जरमनी की कला बढ़ने लगी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत बड़ा और बहुत प्रसिद्ध कर दिया है। इन दोनों कारख़ानों में हज़ार आदमी से अधिक काम करते हैं। इन दो कुबेरालयों के सिवा कुछ और कारख़ाने भी हैं, जहाँ दो ढाई सौ आदमी सुनारों के लिए ज़ेवरों के पुरज़े बनाते हैं। अब इन कारख़ानों का कुछ हाल सुनिए:—

फोर्त्सायम का हर सुनार ख़ास ख़ास क़िस्म का ज़ेवर बनाने की निपुणता और प्रसिद्धि प्राप्त करने का यत्न करता है। इस कारण उसे अपने यहाँ पत्तर, तार, ठप्पे, पालिश, आदि की मशीनें रखनी पड़ती हैं; पर इन मशीनों से उसका काम नहीं चलता। उसे पूर्वोक्त कारख़ानों से व्यवहार करना ही पड़ता है। सच तो यह है कि ये कारख़ाने फोर्त्सायम के सुनारों की जान हैं।

कारख़ाने तिमंज़ले, चौमंज़ले और पचमंज़ले तक हैं। सब से नीचे गास और बिजली की आँच से गलाई का काम होता है। पीतल के सिवा सोने-चाँदी की गलाई और ढलाई देख कर आँखें खुल जाती हैं। तार खींचने के लिए चौकोर सरियाँ और पत्तर बेलने के लिए पटियाँ ढाली जाती हैं। ढलने के बाद वे मली जाती हैं। तार बनाना है, तो सरिया दो बेलनों के बीच से निकाली जाती है। बेलन में छः पहलू घाट बने हैं। पत्तर बेलने के लिए सादे बेलन बरते जाते हैं। जब तार यथेष्ट पतला हो जाता है तब उसे गोल करने के लिए एक ज़ंजीर पर लगी हुई गरारी पर लपेट देते हैं। दोनों सिरे ढाउतार पतले कर दिये जाते हैं। जन्ती के छेद से तार संसी से निकाल कर दूसरी गरारी पर कस देते हैं। तब मशीन चालू करने से एक मिनिट में २० फीट लम्बा तार गोल होकर गरारी पर लिपट जाता है। यह साधारण क़िस्म की मशीन का हाल हुआ। एक ख़ास क़िस्म की मशीन है, जिसमें तार कई जन्तियों के छेदों से निकल कर दूसरी तरफ़ बहुत बारीक होकर गरारी पर लिपट जाता है। तार तपाने की विलक्षण भट्टियाँ मनमानी आँच देने के लिए हैं। सोने-चाँदी के पत्तर, चाही हुई मुटाई तक, बेलने जाकर अख़ीर में पालिशिंग् बेलनों से निकलते हैं। उस समय उन पर इतनी चमक आ जाती है कि नज़र नहीं ठहरती।

अब "डुल्ले" का हाल सुनिए। एक ख़ास तरह की पीतल की पटिया और सोने की पटिया या पत्तर को कारीगर पहले ख़ूब साफ़ कर लेते हैं। इसके बाद बहुत भारी प्रेस में दाब कर उन्हें बेलते हैं। तपाने आदि में बड़ी होशियारी रक्खी जाती है। तार

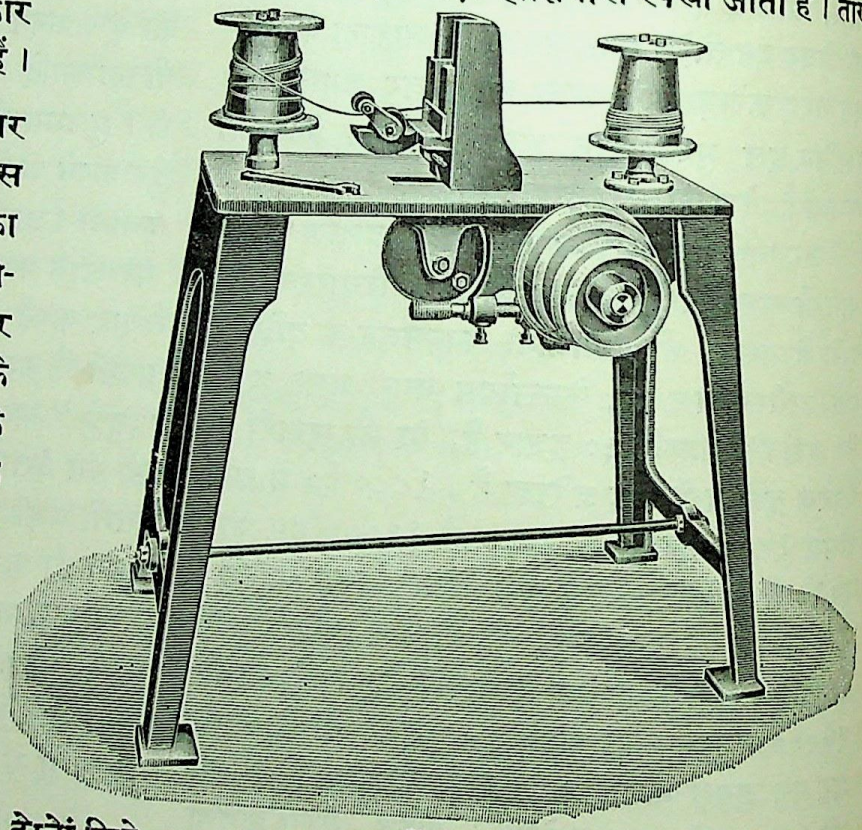

तार खींचने की मशीन।

के लिए एक ख़ास मशीन है जिसे समझाने के लिए इतना ही कहा जा सकता है कि पहले सोने की पोली नली बनाई जाती है। फिर उसके भीतर प्रेस द्वारा पीतल की छड़ इस तरह दबाई जाती है कि वह एकदिल हो जाय। यह हो चुकने पर उसे बेलनों के बीच से निकाल कर और जन्ती से खींच कर गोल कर लेते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टाँकेदार तार भी क़रीब क़रीब इसी तरह बनाया जाता है। ऐसे तार की ज़ंजीर आदि बनाने में ऊपर से टाँका रखने की ज़रूरत नहीं पड़ती। फ़क़त तपा देने से ज़ंजीर जुड़ जाती है।

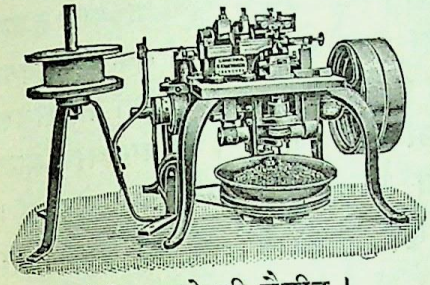

ज़ंजीर बनाने की मैशीन।

पोली जोड़दार तथा बेजोड़ की भी नलियाँ मशीनों द्वारा बनती हैं। ठप्पों की संख्या दस हज़ार से अधिक है। बटन, तावीज़, कङ्गन, कर्णफूल, अँगूठी आदि के सैकड़ों नमूने ठप्पों से बनाये जाते हैं। छातों और छड़ियों की मूँठें भी ठप्पों से तैयार होती हैं। बिना जोड़ की वैवाहिक अँगूठी (Wedding Ring) एक ख़ास तरह की मशीन से बनती है। कहाँ तक कहा जाय, सुनारी काम से सम्बन्ध रखनेवाले सभी सामान वहाँ बनाये जाते हैं। G. Rau साहब के कारख़ाने में घड़ी के केस, ख़ास तौर पर, बनाये जाते हैं।

इन कारख़ानों के सिवा कहीं बेजोड़ का घुँघरू, कहीं घड़ी की ज़ंजीरें, कहीं हार, कहीं कर्णफूल, कहीं अँगूठियाँ, कहीं घड़ी लटकाने के छल्ले, कहीं ऐनकों की कमानियाँ, कहीं पेटियाँ, कहीं सिगरट रखने के बक्स, कहीं कालर की पीनें, कहीं फूल लगाने की पीनें, कहीं चुरुट सुलगाने के जेबी लैम्प, कहीं बटुये, कहीं पात, कहीं कङ्गन आदि आदि बनाने के कारख़ाने भी दिन भर चला करते हैं। बड़े कारख़ाने तो स्टीम एनजिन से चलते हैं; पर छोटे कारख़ाने बिजली के ज़ोर से काम करते हैं। टरकी, फ़्रांस, इँगलैंड और अमेरिका के लिए बहुत माल यहाँ बनाया जाता है।

जहाँ सोने-चाँदी का ज़ेवर बनता है वहाँ नगों की भी ज़रूरत होती है। जरमनी के रैनलैंड प्रदेश में एक बस्ती ईडार है। वहाँ सङ्गतराश ही रहते हैं। वहाँ से पत्थर के नग फोर्त्सायम को आते हैं। तो भी फोर्त्सायम में कई कारख़ाने हीरे आदि के नग बनाने वालों के हैं। हीरे के सिवा बिल्लौर आदि पत्थरों के नग बनाने के भी कारख़ाने हैं।

योरप में पीतल का ज़ेवर भी एक सुन्दर बक्स में रक्खा जाता है। फोर्त्सायम अपने यहाँ के बने हुए ज़ेवरों के लिए ही बक्स नहीं बनाता, किन्तु वह अपने यहाँ के मख़मल लगे हुए काग़ज़ी बक्सों को अमेरिका, फ़्रांस आदि देशों को भी भेजता है।

फोर्त्सायम में सुनारी से सम्बन्ध रखने वाले लोहे लंगड़, मशीन, ठप्पे आदि आदि बनाने के भी अनेक कारख़ाने हैं। मशीन बनाने वालों में सब से बढ़ा चढ़ा नम्बर Carl Bühler Jr. का है। तार और पत्तर बेलने के लिए इनकी मशीनें बहुत ही अच्छी होती हैं। इनसे उतर कर Carl Wezel का कारख़ाना है। Michael Schmidt और Wilhelm Feiler नाम के दो तजरबेकार पुराने कारीगर हैं। ये लोग साधारण प्रेस वग़ैरह के सिवा अपने आप काम करने वाली मशीनें भी बनाते हैं। ज़ंजीर बनाने की मशीन बनाने वाले कई कारीगर हैं। पर मद्दी और सादी मशीन Kunzmann & Stierle बनाते हैं। घड़ी की ज़ंजीर आदि बनाने का एक बहुत बड़ा कारख़ाना है, जिसमें २५०० आदमी काम करते हैं, Kollmar & Jourdan साहब का है। अपने काम के लिए इन्होंने अपनी ही ख़ास मशीनें बनाई हैं। छोटे छोटे औज़ारों और ईसपाती ठप्पों के बनाने के लिए अनेक कारख़ाने फोर्त्सायम में हैं।

हमारे देश की तरह यहाँ स्त्रियाँ सिर्फ़ घर ही का काम नहीं करतीं। वे पुरुषों को अपने करने योग्य काम से सहायता देती हैं। फोर्त्सायम में सुनारी के काम में चौथाई हिस्सा औरतों का समझना चाहिए। हाथ या पैर से चलने वाले प्रेसों द्वारा घुँघरू बनाना, बेल-बूटा काटना, पालिश करना, ज़ेवर पर मीनाकारी करना, झलाई या जुड़ाई करना, ज़ेवर तोल कर बक्स या कार्ड पर सजाना, काग़ज़ी बक्सों पर मख़मल चढ़ा कर तैयार करना आदि अनेक हलके काम स्त्रियों ही के हिस्से में हैं। काम के मुताबिक़ स्त्रियाँ दो रुपये से ६ रुपये तक रोज़ पैदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती हैं। ऐसा कहना अनुचित न होगा कि स्त्रियाँ यहाँ पुरुषों की बराबर रुपया पैदा करती हैं।

यह न समझना चाहिए कि फोर्त्सायम में सारे ज़ेवर मशीन ही द्वारा बनते हैं। ज़ेवर के पुरज़े ज़रूर मशीन से बनते हैं; पर उनका सजाना, झालना, जड़ना आदि सब काम हाथ ही से किया जाता है। कारीगर यहाँ ३ रुपये से १० रुपये रोज़ तक पैदा करते हैं। ऐसे महँगे देश की बनी हुई चीज़ें क्योंकर हिन्दुस्तान ऐसे निर्धन देश में खपती हैं? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए यहाँ के कारीगरों के काम से अपने देश के सुनारों के काम का मुक़ाबला करना होगा :—

चाहे पानी पड़ता हो, चाहे बर्फ़ कटती हो—सबेरे सवा छः बजे से पौने सात बजे तक, पाँच पाँच मिनट पर, फोर्त्सायम में पाँच ओर से कारीगरों से भरी हुई ट्रेनें आती हैं। रेलवे प्लेटफ़ार्म और उसके बाहर आदमी ही आदमी और औरतें ही औरतें देख पड़ती हैं। इतनी भीड़ होने पर भी जूतों की आवाज़ के सिवा शोरो-गुल का नाम नहीं। सब तितर बितर हो कर सात बजे से पहले अपने अपने कारख़ानों में पहुँच जाते हैं। साफ़ कपड़े उतार और काम करने के कपड़े पहन सब अपने अपने ठीहों पर डट जाते हैं। सात बजते ही कारख़ाने में काम शुरू हुआ। सब लोग तन मन से काम में चिपट गये। जैसे हमारे देश के सुनारों को चोरी न करना हराम है; वैसे ही यहाँ कारीगरों को कारख़ाने में तम्बाकू पीना, बात चीत करना और हँसना हराम है। भूत की तरह दो घंटे काम करने के बाद नौ बजे घंटी बजी; बिजली का सञ्चरण थम गया; मशीनों का घर्राटा बन्द हुआ। सब लोग अपने अपने ठीहों पर बैठ साथ लाई हुई रोटी और पेय-पदार्थ १५ मिनट में खा पी कर ताज़े हो गये। पौने तीन घंटे काम करने के बाद दोपहर की छुट्टी हुई। कोई पैरगाड़ी पर सवार हो कर अपने घर जाता है; कोई पास ही के भोजनालय (Restaurant) का आश्रय लेता है; और कोई अपने घर से लाई हुई रोटी ही पर क़नात करता है।

अजूबा बात यह है कि चौरस्तों पर कहीं कहीं चार, कहीं छः लड़कियाँ हाथ-गाड़ी पर लादे दैनिक अख़बार लिये हुए खड़ी रहती हैं। एक के भीतर इनके सब अख़बार बिक जाते हैं। जैसे हिन्दुस्तान के अमीरों को बिना चूर्ण के अन्न हज़म नहीं होता वैसे ही यहाँ के मज़दूरों तक को बिना अख़बार पढ़े अन्न हज़म नहीं होता। यहाँ का सड़क साफ़ करने वाला भी एक पैसे का अख़बार मोल लेकर संसार का सारा हाल नित्य जान लेता है। पर अफ़सोस! हमें अपने घर का ही हाल नहीं मालूम!! हमारे देश के हज़ारपतियों तक को एक हिन्दी अख़बार मोल लेना हिमालय पहाड़ का बोझ सिर पर लेना है। तब ग़रीबों का क्या कहना!!!

दोपहर के समय इन कारीगरों के आने जाने का दृश्य बड़ा ही अपूर्व होता है। डेढ़ बजे कारख़ाने फिर चालू हुए। पाँच बजे छुट्टी की घंटी बजी। गलियाँ, सड़कें और स्टेशन फिर ठसाठस आदमियों से भर गये। एक घंटे की चर्र-मर्र और खट-पट आवाज़ के बाद गलियों और सड़कों ने रात का सन्नाटा खींचा। शहर रोशनी से जगमगाने लगा। थोड़ी ही देर बाद कहीं से पिआनों का स्वर, कहीं से गान की मधुर तान, सुनाई देने लगी। अहा, जो शहर दिन को खटाखट कर रहा था, रात को कुछ और का और देख पड़ने लगा।

बताइए, इन नमकहलाल कारीगरों के मुक़ाबले में हमारे देश के कामचोर, काहिल, तम्बाकूबाज़, अपढ़ सुनार—बाबा आदम के वक़्त के औज़ारों से काम कर के—कैसे ठहर सकते हैं?

हमारे देश में साधारण मशीनों का प्रचार किया जाय—सुनारों को शिक्षा दी जाय, उन्हें "सुवर्णकार" के उच्च आदेश का उपदेश दिया जाय—नमकहलाली का सबक़ पढ़ाया जाय, तभी सुनारी के काम का कल्याण है। नहीं तो कुछ वर्षों बाद कोई अचरज नहीं कि जिस तरह जुलाहों का काम छिन गया है उसी तरह देश के सुनारों की सुनारी भी चली जाय। समय बदल रहा है। सोफ़ियानी चीज़ों पर सब लट्टू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। अस्तु, हमारे देश के पढ़े-लिखे और समिझाई वाले मनुष्यों का फ़र्ज है कि वे मशीनों का प्रचार कर के सरकारी टाँकी न लगने वाले "स्त्रोधन", अर्थात् आभूषणों, को सुनारों के टाँकों से बचावें।

गुरदयालसिंह।

हिन्दुओं की हीनता।

१—धैर्य्यधारी वीर भारतवर्ष सूना कर गये।
कर सफल जीवन सकल संसार-सागर तर गये।
शुचि, सुभग सत्कीर्ति ग्रन्थों में धरा पर धर गये।
वंशजों के सर्व आगामी अड़ंगे हर गये।
शोक है, उस शान्ति-सुख में हो गई है क्षीणता।
देख लो मित्रो! अभागे हिन्दुओं की हीनता॥

२—देश जो यह सत्य विद्या का बड़ा आधार था।
प्रकृति-देवी का अनोखा रम्य लीलागार था।
लोक में विख्यात जिसकी श्रेष्ठता का सार था।
सभ्यता की सीख जिससे सीखता संसार था।
हाय, वह भारत कहाँ है? क्या हुई प्राचीनता?
देख लो मित्रो! अभागे हिन्दुओं की हीनता॥

३—पूर्व-पुरुषों की बुराई पातकी करने लगे।
लण्ठ लोभी शौच शुद्धाचार से डरने लगे।
धर्म का गौरव, निराले ढोंग रच, हरने लगे।
पोच पाखण्डी बहाने से उदर भरने लगे।
यों अविद्या छा गई, पैदा हुई अकुलीनता।
देख लो मित्रो! अभागे हिन्दुओं की हीनता॥

४—ग्रन्थ गप्पों के बने कुल पाप के पलने लगे।
मूढ़ मतवादी अनेकों पन्थ से चलने लगे।
जो सुधारक थे वही सब ओर से छलने लगे।
मन्दभागी दुर्दशा की ढाल पै ढलने लगे।
बुद्धि विद्या को दबा बैठी जड़त्व-मलीनता।
देख लो मित्रो! अभागे हिन्दुओं की हीनता॥

५—क्षत्रियों से शूरता तेजस्विता न्यारी हुई।
भीरुता के भोगने की कामना भारी हुई।
एकता के प्राण लेने की प्रथा प्यारी हुई।
आज रेचक, पूर्व की रोचक कथा सारी हुई।
वीर्य्य, वर-वैभव सभी पर व्याप्त आज मलीनता।
देख लो मित्रो! अभागे हिन्दुओं की हीनता॥

६—शिल्प-कौशल सो गया, उद्यम अचल हो मर गया।
ज्ञान-गौरव जाति को तज कर पराये घर गया।
रुष्ट होकर द्रव्य सारा देश सूना कर गया।
जीविका का द्वार दुख की भावना से भर गया।
राक्षसी सी आ घुसी घर घर निगोड़ी दीनता।
देख लो मित्रो! अभागे हिन्दुओं की हीनता॥

७—दम्भ, आलस, द्वेष, दुर्गुण में फँसे दुख पा रहे।
फूट के पीछे महा आपत्ति में अरुझा रहे।
कर्म-त्यागी, ज्ञान के कोरे गपोड़े गा रहे।
हाय! सब इतिहास ही में नाम पाने जा रहे।
खो गई है शक्ति, शिक्षा, शीलता, शालीनता।
देख लो मित्रो! अभागे हिन्दुओं की हीनता॥

८—कर्मवीर "नरेश" अब अज्ञानता को छोड़ दो।
देश-भक्तो, देश के उद्धार में जी जोड़ दो।
अन्य देशों को चलो निस्सार बन्धन तोड़ दो।
सर्व-सुखमय साधनों की ओर मन को मोड़ दो।
सीख लो विज्ञान की अनुकूल अर्वाचीनता।
देख लो मित्रो! अभागे हिन्दुओं की हीनता।

रामनरेश त्रिपाठी।

संसार का भावी महासाम्राज्य।

सार के किसी समय का, तथा किसी देश का भी, इतिहास देखने से पता लगता है कि मनुष्य-जाति का जीवन राजनीति से सना हुआ है। मनुष्य के जीवन से राजनीति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। राजनीति मानो मनुष्य का जीवनधारण करनेवाली शक्ति है, जिसके बिना मनुष्य जीही नहीं सकता। संसार के हर देश तथा हर समय के मनुष्य किसी न किसी स्वरूप में, राज्य-शासन करते चले आये हैं। किसी देश के मनुष्य अपने में से एक बलवान् मनुष्य को चुन कर उसके हाथ में शासन-भार सौंप देते हैं; किसी देश के मनुष्य शासन-भार अपने हाथ में लेकर स्वयं देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का शासन करते हैं; किसी देश के मनुष्य चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा शासित होते हैं। सारांश यह कि जैसे मनुष्य-जीवन के लिए भोजन अत्यन्त आवश्यक है उसी तरह राजनीति भी अत्यन्त आवश्यक है। मनुष्य के इसी स्वभाव को लक्ष्य करके ग्रीस के विख्यात तत्त्ववेत्ता और राजनीतिज्ञ अरस्तू ने बहुत पहले कहा था:—"Man is by nature a political animal" अर्थात् स्वभाव ही से मनुष्य एक प्रकार का राजनैतिक प्राणी है।" किसी और कारण से नहीं, किन्तु सब मनुष्यों में साधारण रीति पर पाये जानेवाले एक समान-स्वभाव ही के कारण मनुष्यों को राष्ट्र, राजनीति, तथा राजा-प्रजा के सम्बन्ध की ज़रूरत पड़ती है। संसार के भिन्न भिन्न राष्ट्रों को देखने से पता लगता है कि कुछ बातें ऐसी हैं जो हर राष्ट्र में समान रीति पर देखी जाती हैं। यथा आत्मरक्षा के लिए सेना; राष्ट्र का कारोबार चलाने के लिए कर लगाना; अपराधों को दबाने के लिए दण्ड-विधान इत्यादि। इसी प्रकार हर जाति के मनुष्यों में कुछ ऐसे गुण भी पाये जाते हैं जो साधारणतः सब मनुष्यों में विद्यमान हैं। मनुष्यमात्र में पाये जाने वाले वही गुण घट बढ़ कर हर जाति के जातीय गुण हो जाते हैं। इन समानताओं का होना इस बात का सबूत है कि मनुष्य का उद्देश अलग अलग छोटे बड़े राष्ट्र बनाना ही नहीं है; किन्तु, अन्त में, सबको एकता के सूत्र में बाँध कर एक ऐसा भावी महाराष्ट्र बनाना है, जिसके भीतर संसार के समस्त राष्ट्र आजायँगे और जिसमें संसार के सब मनुष्यों का समान अधिकार रहेगा।

मनुष्य अपनी प्राथमिक दशा में, जिसे अँगरेज़ी में "Stone Age" अर्थात् प्रस्तर-युग कहते हैं, जङ्गलों में घूमा करते थे। आजकल के कोल, भील तथा अफरीक़ा और आस्ट्रेलिया की जङ्गली जातियाँ उसी अवस्था की सूचक हैं। धीरे धीरे सभ्यता आने पर कुछ थोड़े से परिवार अलग रहने लगे। यही परिवार बढ़ते बढ़ते छोटी छोटी जातियाँ बन गये। जाति से बढ़ते बढ़ते आजकल के बड़े राष्ट्र बने। किन्तु यहीं पर मनुष्य-जाति की उन्नति का अन्त नहीं। इसके आगे भी उन्नति का एक दर्जा है। वह दरजा "Universal Empire" अर्थात् संसार का महासाम्राज्य है। मनुष्य-समाज अब तक इस तरह के साम्राज्य स्थापित करने में सफल नहीं हुआ। न जाने कितनी शताब्दियाँ गुज़रें तब कहीं यह साम्राज्य स्थापित होगा। किन्तु संसार में इस तरह के साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न संसार के इतिहास में कई बार हुआ है जिससे मालूम पड़ता है कि इस तरह का साम्राज्य स्थापित करने का विचार, जिसमें संसार के सब देश के मनुष्य भाई भाई समझे जायँ और जिसमें सब मनुष्यों का समान अधिकार रहे, मनुष्य के हृदय में बहुत दिन से बद्धमूल हैं। ये प्रयत्न भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न समयों में हुए हैं। पहले हम अपने ही देश से इसका प्रारम्भ करते हैं।

महाराज कृष्णचन्द्र की बातों से साफ़ मालूम होता है कि उनकी यह बड़ी भारी इच्छा थी कि अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, मगध, अयोध्या, मिथिला आदि छोटे छोटे राज्यों को तोड़ कर तथा राजाओं के अभिमान को चूर करके एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया जाय। महाभारत-युद्ध में भिन्न भिन्न देशों से जो योद्धा रणभूमि में लड़ने के लिए आये थे उससे पता लगता है कि भगवान् कृष्णचन्द्र का उद्देश सिर्फ़ भारत का ही साम्राज्य बनाना न था, किन्तु ऐसा साम्राज्य निर्माण करने का था जिसमें प्रायः एशिया महाप्रदेश की सभी जातियाँ शरीक हों।* बिना महाभारत-युद्ध के सबका गर्व खर्व करना और सबको एक करना असम्भव जान कर

* यवनाश्चीनकाम्बोजा दारुणा म्लेच्छजातयः।
.....हूणाः पारसिकैः सह ॥ भीष्म-पर्व ॥
भगदत्तो महीपालः सेनामक्षौहिणीं ददौ।
तस्य चीनैः किरातैश्च काञ्चनैरिव संवृतम् ॥
बभौ बलमनाधृष्यं कर्णिकारवनं यथा ॥ उद्योग-पर्व ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् कृष्णचन्द्र ने महाभारत-युद्ध ही साम्राज्य-निर्माण का एक मात्र उपाय समझा था। बड़े बड़े वीर योद्धा युद्ध में काम आये। सबका गर्व चूर हो गया। सब शक्तियाँ क्षीण हो गईं। समय आ गया था कि इस महासाम्राज्य का कोई महाराज नियुक्त होता। परन्तु "अपने मन कुछ और है कर्त्ता के कुछ और"—भगवान् कृष्णचन्द्र का अचानक स्वर्गवास हो गया और उनका उद्देश "महाभारत" साम्राज्य पोथी ही में शेष रहा।

दूसरा प्रयत्न सिकन्दर का था। वह एशिया माइनर, फ़िनीशिया, फारिस, मिस्र आदि देशों को विजय करता हुआ ईसा के ३२७ वर्ष पहले पञ्जाब तक आया था। उसका उद्देश एक ऐसे विशाल साम्राज्य का बनाना था जिसमें पूर्व और पश्चिम—एशिया और योरप—के देशों की जातियाँ भेदभाव को छोड़ कर एकही झंडे के नीचे आकर आपस में भाई भाई के समान हाथ मिलातीं। इसी उद्देश से वह पश्चिमी मनुष्यों को अपनी फौज में भरती करता था और अपने ग्रीक सिपाहियों को एशिया की स्त्रियों के साथ शादी करने के लिए उत्साहित करता था। इस तरह पूर्व और पश्चिम को मिला कर उसका उद्देश एक इस तरह के मनुष्य-समाज को उत्पन्न करना था जो उसके उद्दिष्ट "संसार के साम्राज्य" को ग्रहण करने के योग्य हो। किन्तु यह दूसरा प्रयत्न भी सिकन्दर की आकस्मिक मृत्यु से निष्फल हो गया। इस प्रयत्न के निष्फल होने का कारण सिर्फ़ सिकन्दर की असामयिक मृत्यु ही न था। एक बड़ा भारी कारण यह भी था कि वह एक दूसरे से अत्यन्त भिन्न जातियों को एक में मिलाना चाहता था। यह अस्वाभाविक था कि योरप और एशिया, जो आपस में एक दूसरे से प्रायः सभी बातों में भिन्न हैं, विवाह-बन्धन द्वारा एक में मिला दिये जायँ।

प्राचीन समय में एक और बहुत बड़ा प्रयत्न रोमन लोगों ने इस तरह का साम्राज्य-स्थापित करने के लिए किया था। रोमन लोगों का साम्राज्य-स्थापन-यत्न सिकन्दर से अधिक सफल हुआ तथा अधिक दिन तक क़ायम रहा। रोमन-साम्राज्य सिकन्दर के साम्राज्य से कहीं अधिक विस्तृत था। प्रायः समस्त योरप तथा अफ़रीका और एशिया का बहुत सा भाग रोमन-साम्राज्य के झंडे के नीचे था। उस समय रोमन लोग यह समझने लगे थे कि वे समस्त पृथ्वी पर राज्य करने के लिए उत्पन्न हुए हैं। रोमन लोगों की शक्ति का जिस देश ने मुक़ाबिला किया वह कुचल डाला गया और साम्राज्य में मिला लिया गया। सिकन्दर के समान रोमन लोगों में सीज़र नाम का बादशाह इस रोमन-साम्राज्य का मुख्य जन्मदाता था। परन्तु अन्त में यह प्रयत्न भी निष्फल हुआ। सिकन्दर के साम्राज्य का अन्त इसलिए हुआ कि वह एक दूसरे से अत्यन्त भिन्न जातियों की खिचड़ी करना चाहता था। परन्तु रोमन-साम्राज्य के पतन का कारण यह था कि रोमन लोग समस्त विजित जातियों की सभ्यता को नाश करके अपनी सभ्यता फैलाना चाहते थे। अथवा यों कहिए कि वे सब को रोमन बना डालना चाहते थे। यह यत्न ऐसा ही था जैसे कि अँगरेज़ चाहें कि वे हिन्दुओं की सभ्यता को नष्ट कर अँगरेज़ी सभ्यता सारे हिन्दुस्तान में फैला दें। रोमन लोगों के प्रयत्न में यही बड़ा भारी दोष था। संसार में किसी जाति को अधिकार नहीं है कि वह दूसरी जाति की सभ्यता का नाश कर दे। अन्त में रोमन-साम्राज्य जर्मन लोगों के कठिन विरोध से नाश को प्राप्त हो गया।

हाल में संसार के एक बड़े महापुरुष ने, जिसका नाम ही मुरदादिलों में भी जोश और उत्साह पैदा करने के लिए काफ़ी है—जो अपने ज़माने में संसार का कँपाने वाला (Thunderer of the World) कहलाता था—एक विशाल साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया था। वह महापुरुष नेपोलियन बोनापार्ट था। वह योरप में एक ऐसा साम्राज्य स्थापित करना चाहता था जिसमें योरप के सब देश शामिल हो कर उस साम्राज्य के अङ्ग समझे जाते। फ़्रांस उस साम्राज्य का प्रधान अङ्ग होता। नेपोलियन एक ही पीढ़ी में उस साम्राज्य को स्थापित करना चाहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, जिसके बनाने में रोमन लोगों को सैकड़ों वर्ष लगे थे। नेपोलियन का प्रयत्न भी निष्फल हुआ। जर्मन लोगों ने तो विवश हो कर, खेदपूर्वक, अपने को नेपोलियन के अधीन कर दिया। पर जर्मनी की दो बड़ी रियासतें—प्रशिया और आस्ट्रिया—बहुत दिनों तक नेपोलियन से युद्ध करती रहीं। अन्त में वे भी फ़्रांस के झण्डे के नीचे आगईं। योरप की सब जातियों को नेपोलियन अपने साम्राज्य के भीतर कर लेने में समर्थ हुआ। स्वतन्त्रता देवी के सच्चे उपासक एक अँगरेज़ ही ऐसे थे जो नेपोलियन का हमेशा मुक़ाबिला करते रहे और अन्त में वही नेपोलियन के अधःपतन के प्रधान कारण हुए। जब योरप की संयुक्त जातियाँ ने एकत्र हो कर नेपोलियन का विरोध किया तब फ़्रांस उस विरोध को न सह सका और नेपोलियन का राजमुकुट, जिसको उसने न जाने कितना ख़ून बहा कर पाया था, मिट्टी में मिल गया। इस तरह नेपोलियन का एक बृहत् साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न रोमन साम्राज्य के समान निष्फल हो गया। रोमन साम्राज्य के नाश के जो कारण थे वही कारण नेपोलियन के साम्राज्य के अधःपतन के भी हुए—अर्थात् रोमन लोगों के समान नेपोलियन भी संसार की जातियों को शतरंज की गोटें समझता था और साम्राज्य को अपने ऐश्वर्य और गौरव बढ़ाने का द्वार मात्र ख़याल करता था। अस्तु।

यद्यपि अब तक संसार भर का साम्राज्य स्थापित करने के जितने प्रयत्न हुए हैं सब निष्फल गये हैं तथापि इस एक बात से ही कि, संसार में भिन्न भिन्न समयों में इस तरह के प्रयत्न हुए हैं, यह सिद्ध होता है कि इस तरह के साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा मनुष्य के हृदय में छिपी हुई विद्यमान है, जो मौक़ा पाकर कभी न कभी अवश्य उभड़ेगी। वही समय जो जाड़े की ठण्डी हवा के झकोरों से ठिठरी हुई पखुड़ियों में वसन्त के प्रातः समीरण से नव-जीवन सञ्चार करता है, जो योरप की जङ्गली जातियों को सभ्यता के उच्च शिखर पर लाता है, जो छोटे से रोम को संसार का साम्राज्य देता है—वह समय—एक न एक दिन अवश्य इस संसार में ऐसा महासाम्राज्य स्थापित करेगा जिसमें संसार के हर एक देश के प्रतिनिधि—काले और गोरे—एक साथ बैठ कर संसार के सुख और समृद्धि के लिए उपाय सोचेंगे। इसी भावी महासाम्राज्य का चित्र अँगरेज़ी के महाकवि टेनिसन ने इन शब्दों में खींचा है:—

"For I dipt into the future far as human eye could see,
Saw the vision of the World, and all the wonder that would be;
Saw the heavens fill with commerce, argosies of magic sails,
Pilots of the purple twilight, dropping down with costly bales;
* * * * * *
Till the war-drum throbbed no longer, and the battle-flags were furled,
In the Parliament of Man, the Federation of the World.
There the commonsense of most shall hold a fretful realm in awe,
And the kindly earth shall slumber, lapt in universal law.

जनार्दन भट्ट।

व्योम-यानों से गोलों की वर्षा।

संसार में एक ओर तो शक्ति-शाली देश परस्पर प्रेम बढ़ाने और जगत् में शान्ति-स्थापन करने की चेष्टा कर रहे हैं, दूसरी ओर वैज्ञानिक-मण्डली ऐसी ऐसी चीज़ों का आविष्कार करती जाती है जो भविष्यत् में बड़े भयङ्कर युद्ध होने की सूचना देती है, पर जिनका स्वीकार संसार का सैनिक समाज हर्ष-पूर्वक कर रहा है। उन्नीसवीं शताब्दी आविष्कारों की माता है। इस शताब्दी में कितने ही अद्भुत अद्भुत आविष्कार हुए:—गुब्बारा उड़ा; तार और टेलीफोन निकले; बे तार का तार, मोटर, मोटर-सायकिल और व्योम-यान की सृष्टि हुई; और भी कितने ही प्रकार के यन्त्र बनाये गये। इन सब आविष्कारों को और लोगों ने चाहे जिस दृष्टि से देखा हो; परन्तु सैनिक-समाज इन्हें अपनी शक्ति बढ़ाने ही के लिए काम में लाया। जहाँ किसी चीज़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

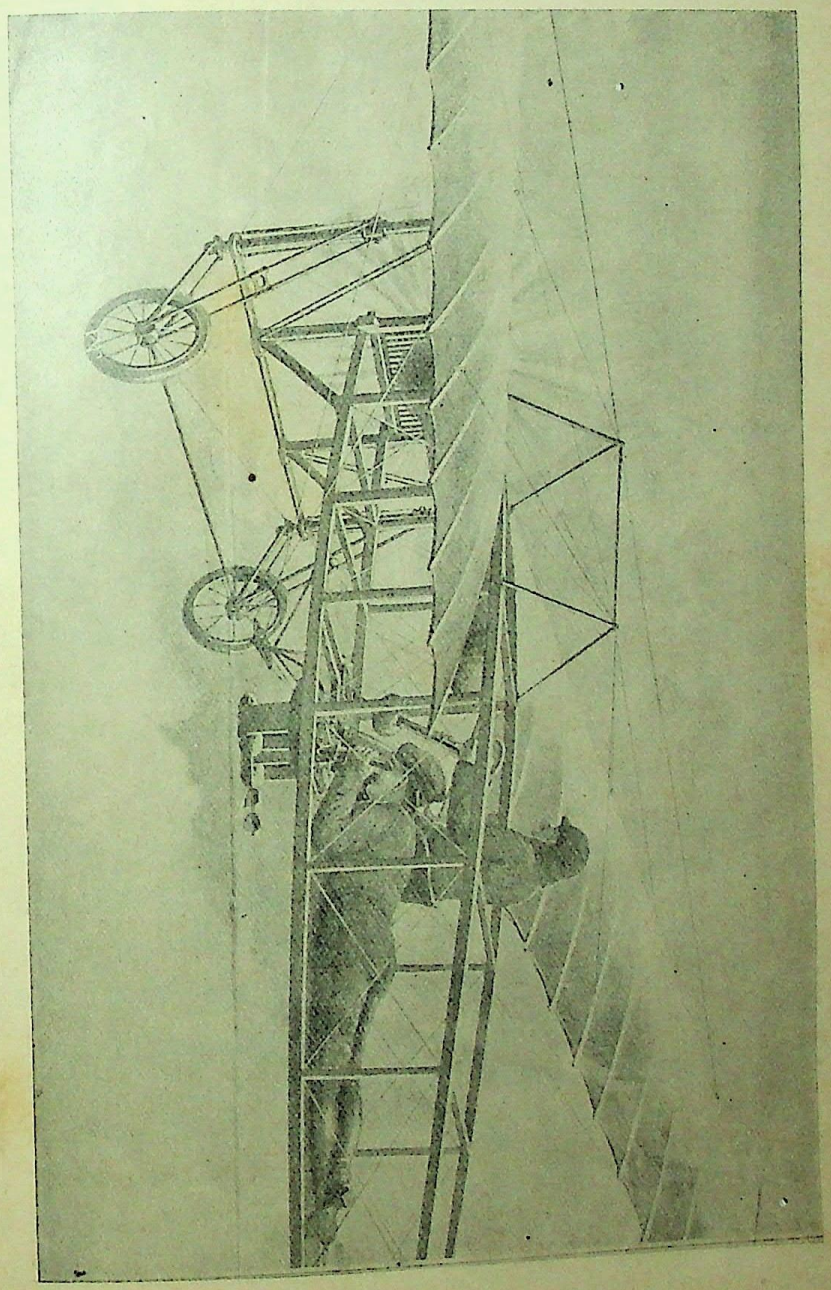

व्योमयान से गोलों की वर्षा।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

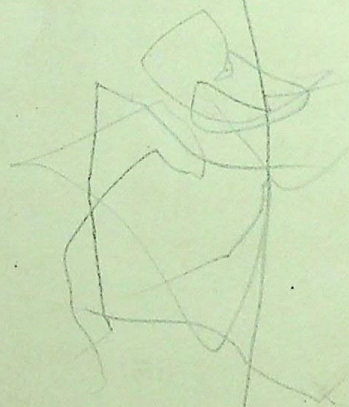

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का आविष्कार हुआ—सैनिकों के हृदय में यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि क्या इस नवीन आविष्कार-द्वारा सैनिक शक्ति बढ़ाई जा सकती है? किसी एक ही देश का यह हाल नहीं है, सारे संसार का यही हाल है। इस दशा में यह आशा कैसे की जा सकती है कि शान्ति की चेष्टा सफल होगी?

आज कल व्योम-यान में तरह तरह की उन्नतियाँ की जा रही हैं। अभी तक इसी बात पर विशेष ध्यान था कि व्योम-यान के निर्माण में क्या क्या उन्नतियाँ करनी चाहिएँ, जिससे वह अधिक तेज़ और दूर तक उड़ा करे, अथवा जिधर और जितनी देर चाहें उसे उड़ाते रहें। पर अब सैनिक लोग इस बात की परीक्षा में लगे हैं कि वह युद्ध में कितना काम दे सकता है। गत तीन वर्षों से व्योम-यान द्वारा शत्रु-सेना की संख्या और उसकी गति-विधि जानने का काम लिया जाता है। इस काम में आशातीत सफलता हुई है। अब, हाल में, उड़ते हुए व्योम-यानों से अग्न्यस्त्र बरसाने की चेष्टा हो रही है। अभी इस बात की परीक्षा तीन सौ फ़ीट ऊपर से ही की गई है। परन्तु, बहुत सम्भव है, कुछ कालोपरान्त बहुत ऊपर से भी निशाना मारने का अच्छा उपाय मालूम हो जायगा*।

आकाश में उड़ते हुए व्योम-यान से बम् का गोला फेंक कर शत्रु-सेना को बहुत हानि पहुँचाई जा सकती है। युद्ध के समय सेना का कुछ भाग आगे रहता है; शेष सेना पीछे रहती है, जिससे वह शत्रु की मार से सुरक्षित रहे। सेना का यह पिछला भाग एक स्थान पर सिमट कर खड़ा होता है। इससे वह बिना विलम्ब अपने सेनापति की आज्ञाओं का पालन कर सकता है और जहाँ आवश्यकता होती है वहाँ तुरन्त जा सकता है। सेना के कुछ पीछे तोपख़ाना, रसद की गाड़ियाँ, ख़ीमे आदि होते हैं। व्योम-यानों से एक ऐसा बम् का गोला, जिसमें सैकड़ों गोलियाँ भरी हों, सेना के पिछले भाग और दूर तक फैले हुए उसके ख़ीमे, तोपख़ाने और रसद की गाड़ियों आदि पर आसानी से फेंका जा सकता है। इस बम् के फेंकने से सेना की जो दशा होगी और सैनिकों में जो हाहाकार मचेगा उसका अनुमान सहज ही में हो सकता है।

बड़े बड़े नगर भी इसी तरह मिट्टी में मिलाये जा सकते हैं। एक प्रकार के छोटे छोटे बम् के गोले ऐसे होते हैं जिनमें ज्वालाग्राही पदार्थ भरे रहते हैं। ऐसे गोले यदि व्योम-यान से फेंके जायँ तो नगर भर में आग लग सकती है। यदि लोग उसके बुझाने का प्रयत्न करें तो उन पर गोलियों से भरे हुए बम् छोड़े जा सकते हैं।

क़िलों को भी बहुत हानि पहुँचाई जा सकती है। आधुनिक रण-नीति के अनुसार तोपें क़िले की फसीलों पर इस तरह रक्खी जाती हैं जिससे वे चाहे जिधर घुमाई जा सकें। उनका मुँह ऊपर आकाश की ओर या तो तिरछा होता है या सीधा। दोनों अवस्थाओं में वे फसीलों ही पर इस तरह रक्खी जाती हैं जिसमें बाहर का दृश्य देखने और लक्ष्य साधने में सुभीता हो। लीडाइट नाम का एक बड़ा ही ज्वाला-ग्राही पदार्थ है। उसको, या किसी अन्य भयङ्कर ज्वालाग्राही पदार्थ को, फौलाद के पात्र में भर कर व्योम-यान से क़िले की फसील के उस भाग पर फेंक देने से जहाँ तोपें रक्खी हों, तोपें अपने अपने स्थान से हट कर दूर जा पड़ेंगी और जब तक बड़े परिश्रम से उठा कर अपने पूर्व स्थान में न लगाई जायँगी कुछ काम न दे सकेंगी। क़िले की बारकें, कमसरियट के गोदाम, बारूदघर और सिलहख़ाने वायुयानों से उड़ाये जा सकते हैं।

* इस लेख के लिखे जाने के बाद व्योम-यानों से युद्धक्षेत्र में बम् के गोले फेंकने का एक नया समाचार मिला। गत १ नवम्बर १९११ को इटली के एक जंगी व्योम-यान ने ट्रिपली-युद्ध-क्षेत्र में पड़ी हुई तुर्की सेना पर चार बम् के गोले एक हज़ार फ़ीट ऊपर से फेंके। बम् फेंकने वालों का कथन है कि हज़ार फ़ीट ऊपर से नीचे का दृश्य तो भली भाँति दिखाई पड़ता है परन्तु बम् फेंकने से नीचे वालों को कितनी हानि पहुँचती है, यह वहां से कुछ नहीं मालूम पड़ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाँ, जङ्गी जहाज़ों को व्योम-यान से कम हानि पहुँच सकती है। इसका कारण यह है कि व्योम-यान आकाश में बहुत ऊँचे उड़ते हैं। वहाँ से जङ्गी जहाज़ बहुत ही छोटे दिखाई देते हैं। इसके सिवा वे चलते भी रहते हैं। इस कारण उन पर व्योम-यान से अच्छी तरह निशाना नहीं लगाया जा सकता। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जल-युद्ध में व्योम-यान द्वारा शत्रु बहुत तंग किया जा सकता है। वैसे भी, रात के समय, जब जहाज़ धीरे चलते हैं, अथवा ऐसे समय जब उन्होंने लङ्गर डाल दिया हो—उन पर व्योम-यान-द्वारा आक्रमण किया जा सकता है। यदि एक बड़ा गोला, जिसमें कोई दो मन ज्वलाग्राही पदार्थ भरा हो, किसी जहाज़ पर फेंका जाय तो चाहे जहाज़ न टूटे, उसे कुछ न कुछ हानि अवश्य पहुँचेगी। व्योम-यानों की बनावट में दिन पर दिन उन्नति हो रही है। वह समय दूर नहीं है जब दस दस बीस बीस मन बोझ उठा कर वे एक मील की उँचाई पर घण्टों स्थिर रहेंगे। उस समय व्योम-यानों से बड़े बड़े गोले सहज ही में छोड़े जा सकेंगे।

आफ़तें आने पर उनसे बचने के भी उपाय निकाले जाते हैं; पर इन व्योमयान-विषयक आपदाओं से बचने के उपाय अभी तक किसी को नहीं सूझे। तलवार, बन्दूक़ और पिस्तौल की तो बात ही नहीं, बड़ी बड़ी तोपें तक व्योम-यानों को बहुत ही कम हानि पहुँचा सकती हैं। क़िले की फसीलों पर रक्खी हुई तोपें अपनी भयङ्कर अग्निवर्षा द्वारा बड़े बड़े जङ्गी जहाज़ों का तहस नहस इस कारण कर देती हैं कि जहाज़ों की गति एक ही ओर को होती है और जल्दी नहीं बदली जा सकती। परन्तु नीचे, ऊँचे, जिधर चाहें उधर तुरन्त चले जाने वाले व्योम-यानों को तोपें अपना लक्ष्य नहीं बना सकतीं। यदि तोपें उन की तरफ़ गोला चला भी दें तो उसका फल बड़ा ही भयङ्कर हो सकता है। क्योंकि चाहे गोला व्योम-यान पर लगे या न लगे, लौट कर वह तोप के आसही पास कहीं ज़रूर गिरेगा। इस दशा में जहाँ वह गिरेगा वहाँ जो कुछ होगा उसका सत्यानाश किये बिना वह न रहेगा। व्योम-यान पर गोला लग न सकेगा। पहले तो लक्ष्य ही न सधेगा, और यों व्योम-यान वालों को यह मालूम हो गया कि उनके ऊपर गोला चलाया जाने वाला है तो वे तुरन्त धुआँधार बम् के गोले छोड़ कर गोलन्दाज़ों की दृष्टि को लोप हो जायँगे।

मालूम पड़ता है कि संसार के भावी युद्धों में व्योम-यान वर्तमान समय के ड्रेडनाटों से भी भयङ्कर रूप धारण करेगा।

विविध विषय।

१—शालिवाहन का विक्रम-विजयी होने में सन्देह।

आज ५ जनवरी सन् १९१२ को विक्रम सं० १९६८ है, और शालिवाहन शाके १८३३। इससे जान पड़ता है कि शालिवाहन, विक्रमादित्य के १३५ वर्ष बाद हुए। इन दोनों के राजत्वकाल में १३५ वर्ष का अन्तर है। विक्रमादित्य का राजत्वकाल ईसा से ५७ वर्ष पहले है। इस बात को कई विद्वानों ने सप्रमाण सिद्ध कर दिया है। परन्तु अनन्त पञ्चाङ्ग-निर्माता ज्योतिषी अपने पञ्चाङ्ग की भूमिका में लिखते हैं—"अथ नृपतिविक्रमादित्यराज्यातीताब्दः १९६८—तद्विजयिनः शालिवाहनस्य राज्यातीताब्दः १८३३"।

अब, यहां, सन्देह उत्पन्न होता है कि यदि शालिवाहन के १३५ वर्ष पहले विक्रम हुए तो शालिवाहन ने उन्हें कैसे और कब जीता। विक्रम ने "शक" लोगों के महायुद्ध में विजय पाकर अपना संवत् चलाया। शालिवाहन ने भी किसी प्रधान घटना के कारण ही अपना शक चलाया होगा। परन्तु निश्चयपूर्वक इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। "वाचस्पत्य-बृहदभिधान" नामक महाकोश के निर्माता पण्डित तारानाथ तर्कवाचस्पति ने भी "विक्रम" शब्द की व्याख्या में "विक्रमः सम्राट्—तस्य विजेता शालिवाहनः" लिखा है। परन्तु शालिवाहन द्वारा विक्रम के पराजय का कोई प्रमाण नहीं दिया।

कलियुग में मनुष्यों की आयु १२० वर्ष से अधिक नहीं होती। यदि विक्रम की आयु १३५ वर्ष कोई मान भी ले तो भी शालिवाहन का विजेता होना सर्वथा असम्भव है। क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म लेते ही शालिवाहन ने विजय के लिए यात्रा न की होगी। यदि कोई विद्वान् इसका सन्तोषप्रद उत्तर देगा तो मैं अपने को अनुगृहीत समझूँगा।

जिज्ञासु—अक्षयवट मिश्र।

२—उत्तरी ध्रुव में एक अज्ञात गौरकाय मानव-जाति।

अमेरिका की एक वैज्ञानिक सभा ने १९०८ ईसवी में कुछ विज्ञानवेत्ताओं को उत्तरी ध्रुव के आस पास वाले प्रदेश में वैज्ञानिक जांच के लिए भेजा था। तब से वे लोग अब तक वहीं घूम रहे हैं। कुछ मर गये, कुछ जीते हैं। जो जीते हैं उन्होंने चमड़े के बने हुए अपने मोटे मोटे कोट चाब कर अपने प्राण बचाये हैं। इनमें से स्टीफैनसन नाम के भी एक साहब हैं। आपने एक आश्चर्य्यजनक समाचार भेजा है। उत्तरी ध्रुव-प्रान्त में केवल एस्किमो जाति के ही लोग रहते हैं—रहते क्या, वही वहां रह सकते हैं। अब इन साहब बहादुर ने अपनी निज की एक गौरकाय जाति वहां ढूँढ़ निकाली है। इस जाति के लोग शकल-सूरत में स्कैंडनेविया के निवासियों से मिलते हैं। इनकी संख्या थोड़ी ही है। छोटे छोटे कई टापुओं में इनका वास है। कोई चार सौ वर्ष हुए ग्रीनलैंड टापू से तीन हज़ार गौरकाय स्कैंडनेवियन एकदम ग़ायब होगये थे। लोगों का अनुमान है कि शायद ये नवाविष्कृत गोरे उन्हीं की सन्तति हैं। सर जान फ्रैंकलिन नामधारी एक साहब ने भी एक बार उत्तरी ध्रुव पर चढ़ाई की थी। उनके भी बहुत से आदमी लापता हो गये थे। किसी किसी का ख़याल है कि ये नये गोरे स्कैंडनेवियन नहीं, किन्तु फ्रैंकलिन साहब के साथियों के वंशज हैं।

३—बालों का विलक्षण उपयोग।

शरीर में यदि कहीं बहुत बड़ा घाव हो जाता है तो उसे शीघ्र अच्छा करने के लिए मनुष्य का ही चमड़ा उस पर लगाना पड़ता है। यह चमड़ा या तो रोगी के ही शरीर से तराश कर निकाला जाता है, या यदि और कोई उदारता या ममता के कारण राज़ी होगया तो उसके शरीर से लिया जाता है। इस तरह शस्त्रद्वारा छील कर चमड़ा निकालने में बड़ा कष्ट होता है और कठिनता से मतलब भर के लिए चमड़ा मिलता है। पेरिस के पी० कार्नट नामक एक डाक्टर ने इस कठिनता को हल कर दिया है। सजीव चमड़े के बदले वे अब बालों की जड़ें काम में लाने लगे हैं। रोगी या और किसी आदमी की दाढ़ी या सिर के बाल वे चीमटे से एक एक करके उखाड़ लेते हैं। फिर उनकी जड़ों को बहुत बारीक काट कर घाव पर बिछा लेते हैं। बालों की जड़ें चमड़े और मांस के भीतर धँसी रहती हैं। उखाड़ने से थोड़ा बहुत मांस और चमड़ा ज़रूर उनकी जड़ों में लिपटा रह जाता है। उसमें वही गुण होते हैं जो सजीव चमड़े में होते हैं। घाव पर उसकी बुकनी फैला देने से वह चमड़े के रूप में परिवर्तित हो जाता है और घाव शीघ्र ही अच्छा हो जाता है।

४—बाबू बङ्किमचन्द्र चैटरजी का जीवनचरित।

वङ्ग-साहित्य के प्रेमी तो बङ्किम बाबू के नाम से अच्छी तरह परिचित हैं ही, हिन्दी के प्रेमी भी उनको जान गये हैं। बङ्गाल के उपन्यास-लेखकों में बङ्किम बाबू का आसन बहुत ऊँचा है। बङ्गाली उन्हें अपने साहित्य का सर वाल्टर स्काट समझते हैं। हाल में बङ्किम बाबू के भतीजे बाबू शचीशचन्द्र चैटरजी ने उनका जीवनचरित बँगला में लिख कर प्रकाशित किया है। भतीजे होने के कारण शचीश बाबू यह पुस्तक लिखने के उपयुक्त पात्र कहे जा सकते हैं। चरितनायक के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली घटनाओं का हाल तो इस पुस्तक से मालूम ही होता है, इससे वङ्ग-साहित्य के इतिहास का भी पता लगता है। बँगला जाननेवालों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और माईकेल मधुसूदन दत्त के जीवन-चरितों की तरह यह चरित भी विस्तारपूर्वक लिखा गया है। अतएव सर्व्वथा उपादेय है।

५—संयुक्त प्रान्तों के स्कूलों में फीस-विषयक नये नियम।

गत वर्ष मार्च में संयुक्त-प्रदेश के स्कूलों की फीस के विषय में विचार करने के लिए एक समिति स्थापित हुई थी। उसके प्रस्तावों को गवर्नमेंट ने स्वीकार कर लिया है। इन स्वीकृत प्रस्तावों का सारांश नीचे दिया जाता है :—

(१) सरकार से सहायता पाने वाले स्कूलों में सरकारी स्कूलों की तीन चौथाई के बराबर फीस लेनी पड़ती थी। ऐसा न करने से वे विश्व-विद्यालय से सम्मिलित न समझे जा सकते थे और सरकार से उन्हें सहायता भी न मिल सकती थी। अब यह नियम रद समझा जायगा। ऐसे स्कूल अब तीन चौथाई से कम भी फीस ले सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) सरकारी स्कूलों में फीस बढ़ाई जायगी। इसका कारण यह बताया गया है कि उनमें पढ़ाई अच्छी होती है और ख़र्च बहुत बैठता है। जो अधिक फीस न दे सकें वे अपने बच्चों को सरकारी सहायता पानेवाले स्कूलों में पढ़ावें।

(३) अभी तक बिना फीस या आधी फीस पर जो विद्यार्थी भरती किये जाते थे उनकी संख्या क्लास के छात्रों की संख्या के अनुसार कमोबेश होती थी। अब उनकी संख्या का परिमाण स्कूल भर के छात्रों की संख्या के अनुसार होगा। हर सरकारी हाई स्कूल में छः छात्र-वृत्तियाँ और बढ़ा दी गई हैं। उनमें से दो सब से तेज़ उन दो लड़कों को दी जायँगी जो बाहर से स्कूल में भरती होंगे। इन छात्र-वृत्तियों के कारण बिना फीस भरती होने वाले लड़कों की संख्या सरकारी स्कूलों में नहीं बढ़ाई गई। परन्तु सरकारी सहायता पाने वाले स्कूलों में उनकी संख्या दुगुनी कर दी जायगी। आधी फीस पर भरती होने वाले लड़कों की संख्या फ़ी सदी दस के हिसाब से होगी। पचास रुपये से कम वेतन पाने वाले अध्यापक अपने लड़कों और अपने आश्रितों को आधी फीस पर स्कूल में भरती करा सकेंगे। अभी तक यह नियम था कि तीन या तीन से अधिक भाई एक ही स्कूल में पढ़ते हों तो बड़े भाई की पूरी फीस ली जाती थी और शेष की आधी आधी। अब ऐसी ही रियायत, परिवार के संरक्षक की आमदनी कम होने पर, परिवार भर के लड़कों के साथ की जायगी। उस लड़के की फीस माफ़ या आधी की जाती थीं जिसका पिता या संरक्षक उसी ज़िले में रहता हो जहाँ स्कूल हो। अब यह नियम मंसूख़ कर दिया जायगा। जो छात्र परीक्षा में अनुत्तीर्ण होगा वह दूसरे वर्ष दुगुनी फीस देकर पढ़ सकेगा।

इन परिवर्तित नियमों के कारण शिक्षा प्राप्त करने में अब कुछ अधिक सुभीता होगा।

६—ऐतिहासिक पत्रावली।

"सरस्वती" की इस संख्या में महाराना राजसिंह का एक पत्र प्रकाशित किया जाता है जिसे उन्होंने, "जज़िया" कर के विषय में, औरङ्गज़ेब को लिखा था। किसी किसी की राय है कि यह पत्र जोधपुर के महाराज यशवन्तसिंह ने लिखा था। कोई कोई इसे छत्रपति शिवाजी महाराज का लिखा हुआ बतलाते हैं। पर टॉड साहब को इसका दृढ़ प्रमाण मिला है कि यह पत्र महाराना राजसिंह ने ही औरङ्गज़ेब को लिखा था। वे कहते हैं "हमारे उदयपुर के मुंशी ने [illegible] असल पत्र की लिपि को पाया था जिस के आरम्भ में [illegible] लिखा था कि महाराना राजसिंह के पास से औरंगज़ेब [illegible] समीप यह पत्र भेजा गया।" टॉड साहब कहते हैं कि जि[illegible] कर का उल्लेख इस पत्र में है वह यशवन्तसिंह के जीते [illegible] प्रचलित ही नहीं हुआ था। अतएव, यदि यह सच है, तो यह पत्र उनका लिखा हुआ नहीं हो सकता।

जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि यह पत्र है बड़े महत्त्व का। कैसी प्रजा-वत्सलता, नीतिपरायणता और निर्भीकता इससे प्रकट होती है। टॉड साहब की राय है कि इस विशाल संसार में कभी किसी की लेखनी से ऐसा पत्र निकला होगा या नहीं, इसमें सन्देह ही है।

बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त की इच्छा है कि इस तरह के पत्रों को पद्य में परिणत करके ऐतिहासिक पत्रावली नाम की एक पुस्तक प्रकाशित की जाय। कुछ महत्त्व के पत्र मिले भी हैं; जैसे—औरङ्गज़ेब का पत्र उसके पुत्र के नाम, पृथ्वीराज का पत्र महाराना प्रतापसिंह के नाम, स्वामी रामदास और तुकाराम के पत्र छत्रपति शिवाजी के नाम, रूपनगर की राजकुमारी रूपवती का पत्र महाराना राजसिंह के नाम—इत्यादि। यदि कोई महाशय ऐसे और ऐतिहासिक पत्र बतलाने की कृपा करेंगे तो उनको भी कृतज्ञतापूर्वक इस पुस्तक में स्थान मिलेगा। पर पत्रों में कुछ विशेषता होनी चाहिए।

७—श्रोत्रिय शङ्करलाल का देहावसान।

सुन कर दुःख हुआ कि बिजनौर-निवासी श्रोत्रिय शङ्करलाल का देहान्त हो गया। विधवा-विवाह के ये बड़े भारी पक्षपाती थे। इस कारण इन्होंने इन प्रान्तों में बहुत प्रसिद्धि पाई। समाज-संशोधन का पाठ सुधारक लोग प्रायः ज़बानी ही पढ़ाया करते हैं; तदनुकूल स्वयं व्यवहार करनेवाले कम पाये जाते हैं। पर श्रोत्रियजी ऐसे न थे। विधवा-विवाह के पक्ष में मौखिक उपदेश देकर ही ये चुप नहीं रहे। स्वयं विधवा-विवाह करके इन्होंने अपनी निर्भीकता और कर्म्मवीरता प्रकट कर दी। जिस विधवा लड़की के साथ इन्होंने, आठ दस वर्ष पहले, विवाह किया था उसके पिता, विवाह के समय, मुरादाबाद में थे। इस नोट का लेखक, उन्हीं दिनों, एक मित्र से मिलने मुरादाबाद गया था। शाम को वह अपने मित्र के साथ टहलने निकला। मार्ग में एक भजन-मण्डली भजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

परलोकवासी श्रोत्रिय शङ्करलाल ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गवासी नेपाल-नरेश।

Indian Press, Allahabad.
CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गा रही थी। बहुत लोग एकत्र थे। "बिजनौर से आई बरात सोती शङ्कर की"—गाया जा रहा था। इसके समाप्त होने पर एक ऐसा भजन गाया गया जिसमें बाल-विधवाओं की दुर्गति का सजीव चित्र था। उसे सुन कर लेखक के मित्र विकल और विह्वल होकर ज़ोर से रोने लगे। भजन ने उनके कोमल हृदय पर इतना असर किया कि यदि वे वहां से हटा न दिये जाते तो शायद बेहोश होकर गिर जाते।

८—नेपाल-नरेश का परलोकवास।

नेपाल-नरेश महाराजाधिराज पृथ्वी-वीर-विक्रम शमशेर जङ्ग बहादुर शाह का दिसम्बर महीने में शरीरान्त होगया। आपकी उम्र अभी सिर्फ़ ३५-३६ वर्ष की थी। १७ मई १८८१ ई० को आप सिंहासनारूढ़ हुए थे। बहुत दिन से आप रुग्ण थे। चिकित्सा के लिए एक नामी डाक्टर इँगलैण्ड से आपने बुलाया था। उसकी चिकित्सा से आपको लाभ भी हुआ। अतएव कोई एक लाख रुपये के क़रीब उसे पुरस्कार देकर आपने उसे विलायत वापस भेज दिया। उधर डाक्टर साहब गये, इधर महाराजाधिराज की तबीयत फिर बिगड़ी और रोग ने अन्त को आपके प्राण ही लेकर छोड़ा। आपके एकमात्र राजकुमार आपकी गद्दी पर बैठे हैं। परलोकवासी महाराज गोरखाली राजवंश के छठे राजा थे।

नेपाल-राज्य की पूर्व-पश्चिम लम्बाई ५२५ मील और उत्तर-दक्षिण चौड़ाई ९० से १४० मील तक है। क्षेत्रफल ५४ हज़ार वर्गमील है। आबादी का हाल ठीक ठीक मालूम नहीं। कोई कहता है २० लाख है, कोई कहता है ५२ लाख। सेना की संख्या ४२ हज़ार है। राज्य की आमदनी कुछ कम एक करोड़ रुपया वार्षिक है। नेपाल यद्यपि स्वाधीन राज्य है, तथापि चीन का आधिपत्य उसे मानना पड़ता है और कुछ वार्षिक कर भी देना पड़ता है। इधर ब्रिटिश-राज्य से भी नेपाल का सम्बन्ध है। इसी से एक अँगरेज़ी रेज़िडेंट नेपाल की राजधानी काठमांडू में रहता है। पर यह नेपाल के राज्य-प्रबन्ध में हस्तक्षेप नहीं करता। नेपाल-नरेश को २१ तोपों की सलामी है

९—पालिप्रकाश।

मित्रगोष्ठी नाम की एक मासिक पुस्तक कई वर्ष तक बनारस से संस्कृत में प्रकाशित होती रही थी। पण्डित विधुशेखर शास्त्री उसके सम्पादक थे। इस पत्रिका के बन्द होने पर शास्त्री जी कलकत्ते चले गये। वहां, कलकत्ते के पास, बोलपुर में, कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शान्ति-निकेतन-ब्रह्मचर्य्याश्रम में आप अध्यापक हो गये। रवि बाबू की सलाह से वहीं आपने पाली और अन्य प्राकृत भाषाओं का अध्ययन किया। पालि-प्रकाश नामक बँगला-ग्रन्थ आपके इसी अध्ययन का अनमोल फल है। यह ग्रन्थ चार पांच सौ पृष्ठ का है। सुन्दर जिल्द से मण्डित है। तीन रुपये में इंडियन पबलिशिंग हाउस, २२, कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ते से मिलता है। इसमें पाली भाषा का व्याकरण है। पाली भाषा की पाठावली भी इसमें है। बौद्धों के कई एक जातक भी इसमें हैं। इसके सिवा और भी बहुत सी महत्त्वपूर्ण बातें हैं। जैनों और बौद्धों के अनेक ग्रन्थ पाली भाषा ही में हैं। इस भाषा के ज्ञान बिना पूर्वोक्त धर्म्मों के मूल ग्रन्थों का आशय समझ में नहीं आ सकता। शास्त्रीजी ने इस व्याकरण की रचना करके पाली भाषा के ग्रन्थों के अध्ययन के मार्ग को बहुत कुछ प्रशस्त कर दिया। पाली के और भी कई एक व्याकरण हैं; पर वे सर्वसुलभ नहीं। शास्त्रीजी ने इस व्याकरण के आरम्भ में १०६ पृष्ठ का प्रवेशक नामक जो निबन्ध लिखा है वह बहुत ही विद्वत्तापूर्ण है। उसमें आपने दृढ़ प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि लौकिक संस्कृत अर्थात् रामायण, महाभारत और रघुवंश आदि की संस्कृत-भाषा—कभी बोल चाल की भाषा न थी। आर्य्यों की आदिम भाषा वैदिक संस्कृत थी। व्याकरण द्वारा उसी के नियमन से लौकिक संस्कृत, अर्थात् संस्कार की गई भाषा, की उत्पत्ति हुई है। वैदिक संस्कृत बोल चाल की भाषा थी। उसीसे प्राकृत भाषायें निकली हैं। ऐसी भाषाओं में पाली-प्राकृत ही सबसे पुरानी है। उसी का दूसरा नाम बौद्ध मागधी है। जो लोग बँगला पढ़ सकते हैं उन्हें पालिप्रकाश के प्रवेशक को अवश्य पढ़ना चाहिए। पुरानी तथा नई प्राकृत भाषाओं के सम्बन्ध की अनेक नई नई बातें उससे मालूम हो सकती हैं। कृतज्ञताज्ञापन-पूर्वक हम पालिप्रकाश की पहुँच स्वीकार करते हैं और प्रेषक महाशय को धन्यवाद देते हैं।

पुस्तक-परीक्षा।

१—कवि-कर्त्तव्य। "कुछ समय हुआ, सरस्वती में एक लेख निकला था। उसका नाम था—"कवि बनने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सापेक्ष साधन"। वह इस पुस्तक के सङ्कलनकर्त्ता की राय में—"विस्तृत तथा सुस्पष्ट न होने के कारण कविताचिकीर्षुओं के लिए पर्याप्त नहीं था"। सङ्कलनकार श्रीजगन्नाथदास विशारद महाशय ने इसी "त्रुटि को पूर्ण करने के लिए इस पुस्तक को सहृदय प्रेमी पाठकों के कर-कमलों में रोलम्बायित" किया है। विशेषतः क्षेमेन्द्र के उसी कविकण्ठाभरण के आधार पर छोटे आकार की ६० पृष्ठ की यह पुस्तक तैयार की गई है। कविता करने, पढ़ने या सुनने का जिन्हें शौक हो वे इसे "साधु-कार्य्यालय बड़ौदा" से चार आने में मँगा लें।

२—**सनत्-सुजात-गीता**—महाभारत के उद्योग-पर्वान्तर्गत सनत्-सुजात-गीता नामक प्रकरण धृतराष्ट्र और सनत्-सुजात का मोक्ष-विषयक जो संवाद है उसी का यह गद्यात्मक अनुवाद है। साथ ही मूल संस्कृत श्लोक भी दे दिये गये हैं। रायबहादुर लाला बैजनाथ जी ने यह अनुवाद किया है। चार आने में, वैश्य-हितकारी दफ़्तर मेरठ से मिल सकता है।

चित्रपरिचय।

माया-मृग

(१)

इस संख्या में भी दो रंगीन चित्र प्रकाशित किये जाते हैं। इस संख्या का पहला रंगीन चित्र माया-मृग है। यह चित्र वाल्मीकिरामायण की एक प्रसिद्ध घटना के आधार पर तैयार कराया गया है। वनवासी रामचन्द्रजी अपनी सहधर्मिणी और छोटे भाई के साथ पञ्चवटी पर निवास कर रहे हैं। लक्ष्मणजी की बनाई हुई पर्णकुटी के आगे चबूतरे पर मृगछाला बिछाये रामचन्द्रजी बैठे हैं। पास ही सीताजी बैठी हैं और लक्ष्मणजी कुछ दूर नीचे आसन पर बैठे हैं। इतने ही में रावण का भेजा हुआ माया-मृग पञ्चवटी-आश्रम में आकर सीताजी के चित्त को हरने लगा। उसको देखते ही सीताजी का चित्त मोहित होगया। वे उँगली के इशारे से उस मृग को दिखलाती हुईं अपने स्वामी से कहने लगीं :—

"सुनहु देव रघुवीर कृपाला।
यहि मृग कर अति सुन्दर छाला॥
सत्यसन्ध प्रभु वध कर एही।
आनहु चर्म कहा बैदेही॥"

देखिए, इस भावपूर्ण चित्र में यह दृश्य कैसी उत्तम दिखाया गया है।

(२)

वृद्ध शिशिर और बालक वसन्त।

जराजीर्ण, खल्वाट, यष्टिधारी शिशिर का बहिष्कार हुए बालक वसन्त ने वन, बाग़ और उपवन ही में नहीं; अन्यत्र भी अपने आगमन की सूचना दे दी। देखिए, गुच्छ को हाथ में लेकर शिशिर से वह कह रहा है—आप यहां से पधारिए। फूलों के सुषमानाशक का राज बहुत दिन तक नहीं रह सकता। आपके अब जाने का समय और मेरे आने का। इस संख्या के दूसरे रङ्गीन चित्र में दृश्य दरसाया गया है।

(३)

पोलो खेलती हुईं हिन्दू-स्त्रियाँ।

पहले, किसी समय, हिन्दू-स्त्रियां भी, भारतवर्ष में, कहीं घोड़े पर सवार होकर पोलो का खेल खेलती थीं। कोई तीन चार सौ वर्ष के एक पुराने चित्र से प्रकट होता है। यह असल चित्र विलायत में है। इसकी एक नक़ल अन्यत्र, इसी संख्या में दी जाती है।

(४)

लाहौर डी० ए० वी० कालेज के प्रधानाध्यक्ष लाला हंसराज जी, बी० ए० का सचित्र चरित सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है। २५ वर्ष तक डी० ए० वी० कालेज की अनवरत सेवा करके अभी हाल में आपने, अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार, कालेज के काम से इस्तेफ़ा दे दिया है। आपकी देशभक्ति और विद्याभिरुचि सर्वथा प्रशंसनीय है। अपनी योग्यता और अध्यवसायशीलता से डी० ए० वी० कालेज को यथेष्ट उन्नत करके आप उससे अलग हुए हैं। आपका चित्र अन्यत्र प्रकाशित है।

(५)

शिशु कृष्ण।

यह चित्र एक बङ्गाली चित्रकार का अङ्कित किया हुआ है। इस चित्रकार ने इस तरह के कई चित्र बनाये हैं। चित्रकला के ज्ञाताओं ने इनकी बड़ी प्रशंसा की है। माता यशोदा की गोद में कृष्ण का बालरूप बहुत ही मनोमोहक है।

Printed and Published by Panch Kory Mittra at the Indian Press, Allahabad.
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माया-मृग

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

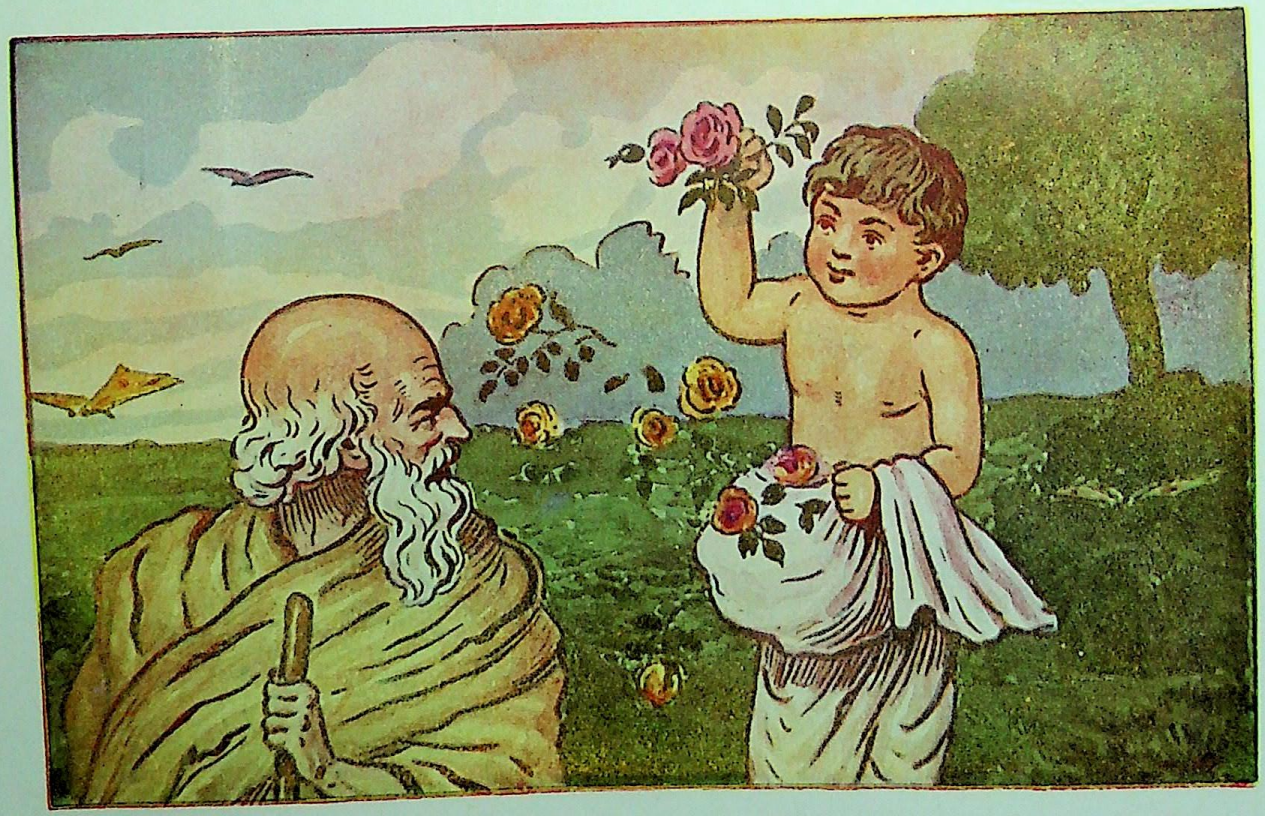

वृद्ध शिशिर और बालक वसन्त ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

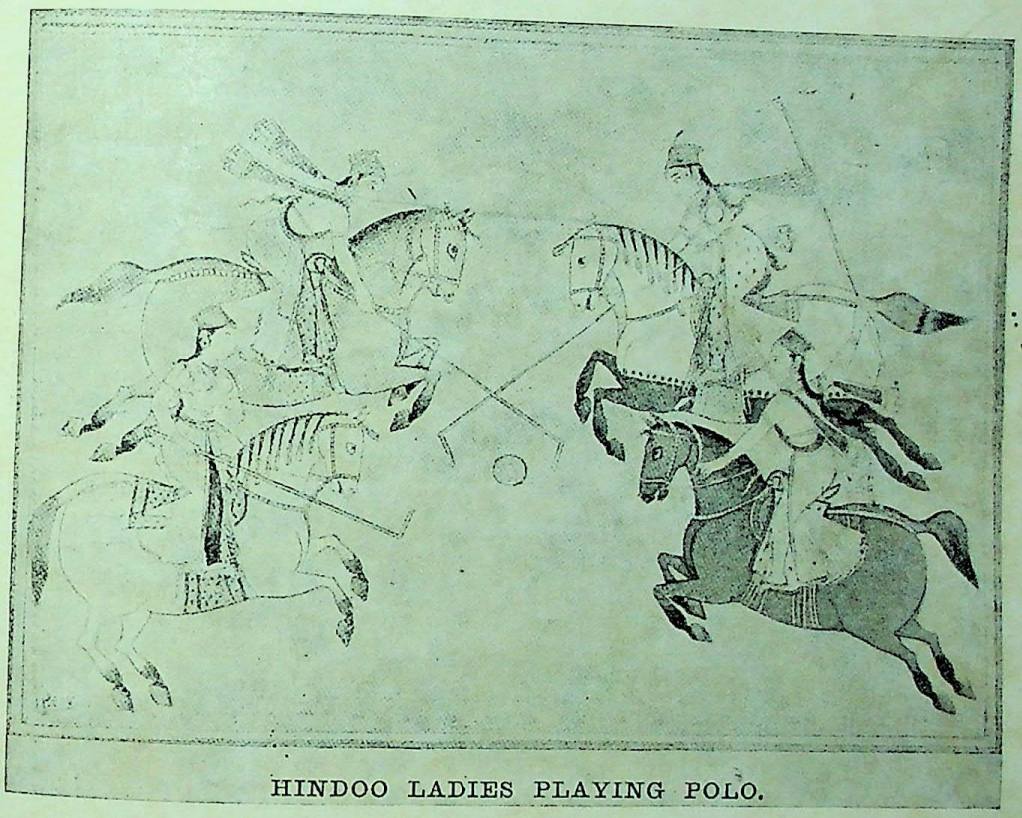

HINDOO LADIES PLAYING POLO.

१६ वीं सदी में पोलो खेलती हुईं हिन्दू-स्त्रियाँ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

लाला हंसराज, बी० ए०, आनरेरी प्रिंसिपाल, डी० ए० वी० कालेज, लाहोर।

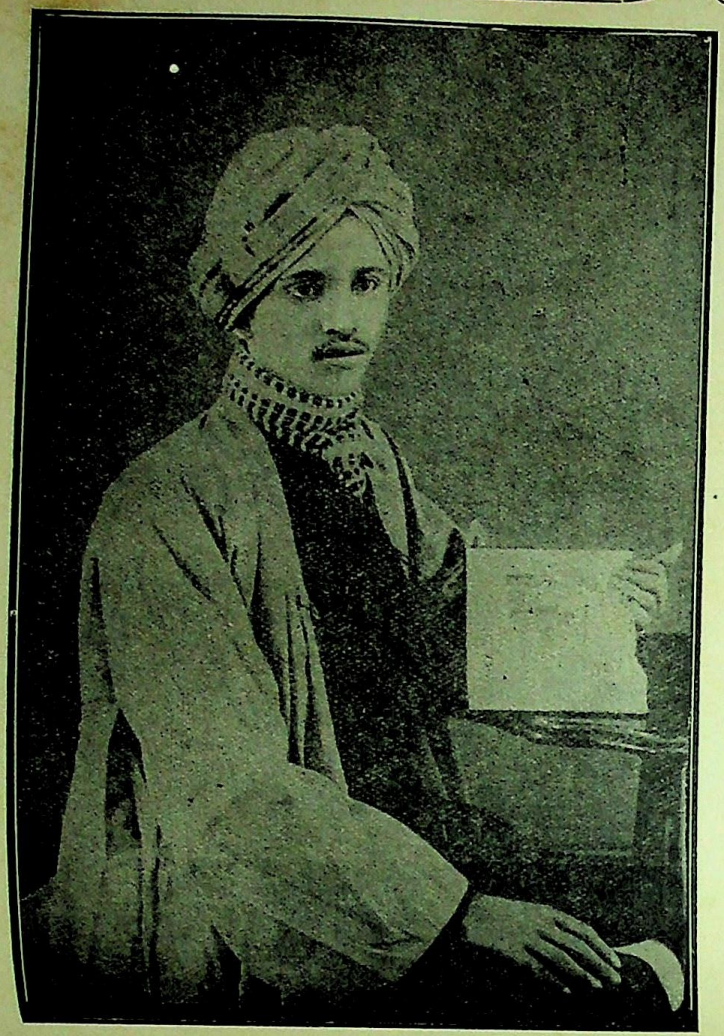

१८८६

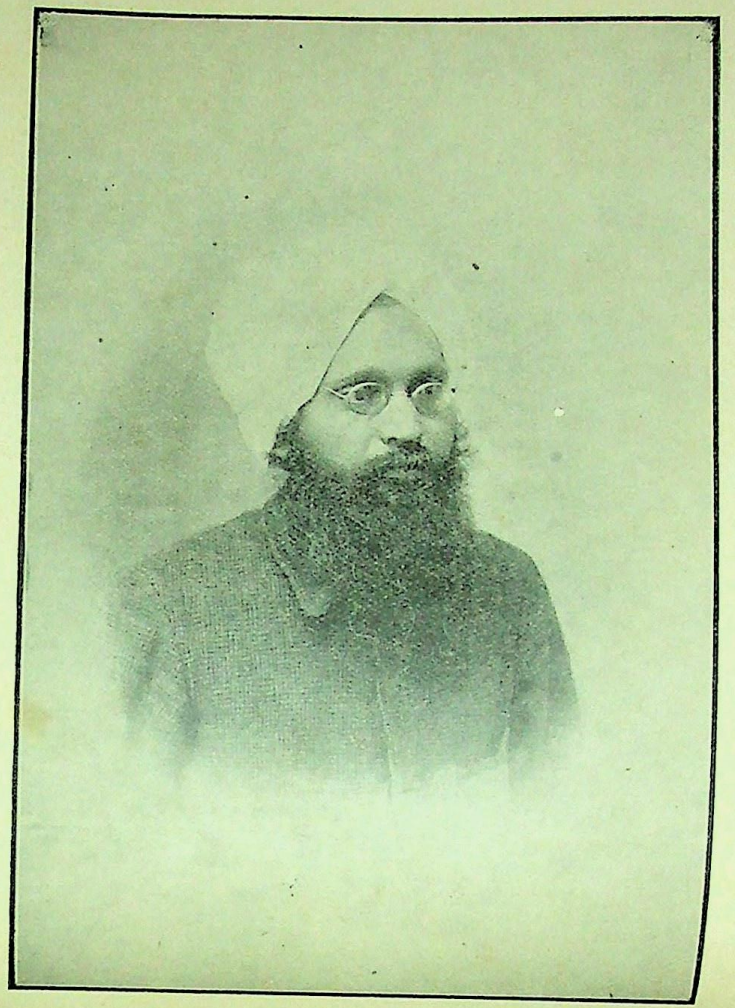

१९११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँ यशोदा की गोद में बाल-कृष्ण ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

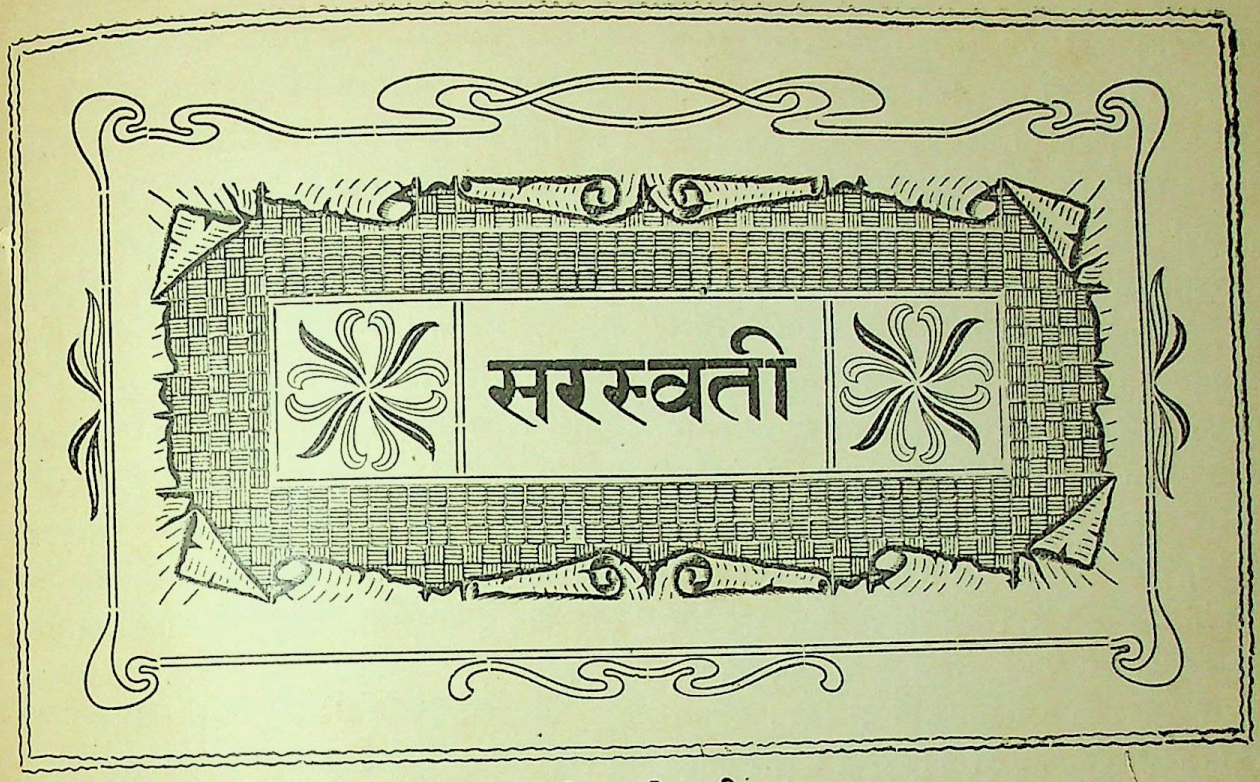

सचित्र मासिक पत्रिका ।

भाग १३] १ मार्च, १९१२—फाल्गुन शुक्ल १३, १९६८। [संख्या ३

मेरी यात्रा ।

(२)

(ख) हंगरी से तुर्कदेश ।

[ले० श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल, बी० ए० (आक्सफ़र्ड) बैरिस्टर–ऐट–ला]

रास्ता और बालकन-राज्य ।

बुडापेस्ट से रवाना होते ही दुनिया बदल जाती है । न रास्ते में जर्मनी के संरक्षित जङ्गलों की वह हरियाली है, न रेल का वह प्रबन्ध है, न रेल की वे गाडियाँ हैं, न रूखे पर साफ़ सुथरे और शिष्टाचार में बेबनावटी वे योरोपियन मुसाफ़िर हैं, न स्टेशनों पर योरप की चीज़ें हैं, न वे बेचनेवाले हैं और न वे स्टेशन ही हैं। रास्ता निचाट, रेल धीरे धीरे चलनेवाली, गाड़ियों पर तुर्क-साम्राज्य का राजचिह्न स-तारक अर्धचन्द्र । ओरिअंटल रेलवे कम्पनी नामक एक फरासीसी कम्पनी की ये गाड़ियाँ थीं । इसी कम्पनी के हाथ में तुर्की रेलें हैं । मुसाफ़िर अधिकतर सर्विया और बलगेरिया के रहनेवाले थे । कई तुर्क और सिरिया या शाम के थे । अरबी बोलनेवाले क्रिस्तान और मुसलमान भी थे । सब योरपीयन लिबास में थे । जो तुर्क थे उन्होंने योरपीयन टोपी बक्स में बन्द की और सुर्ख़ फ़ेज़, जिसे यहाँ तुर्की टोपी और मिस्र तथा ट्यूनिस-अलजिरिआ में तरबूज कहते हैं, सर पर रक्खी । मैं जो इधर उधर घूमा और एक कमरे में जगह ख़ाली देख घुसने लगा, तो दूसरे मुसाफ़िरों ने चट लग लगा कर मेरा असबाब रखा लिया और मुझसे बैठने को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा। साथियों में एक जर्मन और दूसरा फ्रेंच बोलता था। बाक़ी दो सिर्फ़ अपनी मातृ-भाषा बलगर बोल सकते थे। जर्मन बोलने वाला कोई बीस बाईस वर्ष का युवक था; लम्बे लम्बे बाल रक्खे था; टोपी और गुलूबन्द फ्रांस के कला-कौशल सीखनेवाले छात्रों के ढँग पर लगाये था; बहुत सुशील था। यह आष्ट्रिया की राजधानी वीअन से (जिसे अँगरेज़ विअना कहते हैं) सङ्गीत-विद्या का अध्ययन करने आया था और सर्विया का निवासी था। घर लौट रहा था। फ्रेंच बोलनेवाला डाक्टर था; फ्रांस के दक्षिण-प्रान्त में किसी विश्वविद्यालय का पढ़ा हुआ था; अपने देश बलगेरिया को लौट रहा था। कॉलर के ऊपर जो 'टाई' बाँधी जाती है वह उन तीनों बलगरों की बहुत अच्छी बँधी हुई थी; पर कपड़े मैले और लापरवाही जताने वाले थे। रहस्य यह था कि सब ऐसे आलसी थे कि बँधी बँधाई 'टाई' लगाये हुए थे। इनमें से दो के बाल जवानी ही में, अर्थात् ४० वर्ष के भीतरही, पक गये थे। चार वर्ष के बाद, यह पहलाही मौक़ा था जब मैंने बुढ़ापे के पहले ही पलित हुए बाल देखे। यद्यपि स्वदेश में यह बात बहुत देखने में आई थी; पर योरप में मैंने यह घटना पहले न देखी थी। इन लोगों के अर्धपलित सरों की ओर देखने को जी न चाहता था। इनके सर के बाल हम लोगों के से काले थे। इसलिए योरप में इन्हें काला कहा जाता है; वहाँ काला-गोरा केवल केश-रङ्ग से बिलगाया जाता है। इन साथियों के चेहरे का रङ्ग अपने यहाँ के गोरे आदमियों का सा था। रेल में बातें बराबर होती रहीं। जर्मनी आदि देशों में यदि होते तो हर एक को पुस्तक पढ़ते पाते। कोई किसी से कुछ न बोलता। हम लोगों ने एक दूसरे से अपना अपना देश पूछा; पेशा भी पूछा। योरप के देशों के तुलनामूलक तारतम्य, वहाँ के सौन्दर्य, रीति-रवाज और तिजारत आदि की अनेक बातें होती रहीं। वे इस तरह की थीं:—हिन्दुस्तान में लोहे आदि की कितनी मिलें हैं; सूत आदि की कितनी हैं; वहाँ स्त्रियाँ कैसी होती हैं। धर्म कौन सा है; सम्प्रदाय कौन और कितने पुरोहितों का दबाव कितना है—इत्यादि। मेरे दो साथी, जिनसे मैं बातें कर सकता था, एक ऐसे सम्प्रदाय के अनुयायी थे जिन्हें सत्यमार्गी कह सकते हैं। मनुष्य को अपने आपका कर्त्ता, किसी देवी-देवता की कृपा या क्रोध के वशीभूत न रहने वाला, मानते थे। मनुष्य-जाति का उपकार करना ही इनके मत में धर्म था और राष्ट्रभाव ही को ये मनुष्य की जाति उपासना समझते थे। यह मत इनका योरपीय होने पर शरीर और स्वभाव इनका हम लोगों का सा, अर्थात् पूरबवालों का सा, था। जैसे, अगर, इन्हें कोई फल ख़रीदा तो बिना अपने साथी को खिलाये और ज़ोर देकर बिना खिलाये ये स्वयं न खायँगे।

रेल की सड़क प्रायः डान्यु नदी के साथ साथ जाती है। बुडापेस्ट से कोई चार घंटे चले होंगे कि पहले बार योरप में भैंस देखने में आई। फिर, पानी उलीचने का यंत्र, जिसे अपने यहाँ ढेंकी कहते हैं, देख पड़ा। अतएव समझना चाहिए कि उस समय हम अब महाद्वीप एशिया में थे। हंगरी से पूर्व सारी भूमि एशिया की जीती हुई है। तुर्क-जाति के अधिकार में वह अभी हम लोगों के देखते देखते थी। सर्विया, बलगेरिया आदि राज्य अभी उस दिन टर्की से अलग होकर स्वतंत्र हुए हैं। पूर्वी भलमनसाहत और राजनैतिक अदूरदर्शिता के कारण हमारे तुर्की भाइयों ने इन देशों में स्वराज्यतंत्र बना रहने दिया था। इसी से अवसर पाकर आसानी से ये स्वतंत्र होगये। एशिया अपने साथ योरप में बहुत सी अपने यहाँ की चीज़ें ले आया था। उनके चिह्न अब तक कहीं कहीं देख पड़ते हैं। बेचारी ढेंकी का महत्त्व अब पानी की कल के आगे कुछ नहीं रहा। पर जब वह पहले पहल योरप में लाई गई थी तब बड़ी हिकमत की चीज़ समझी गई होगी।

विन्ध्य के पहाड़ों के समान निचाट शैलों के पास एक स्टेशन पर रेल खड़ी हुई। सङ्गीत छात्र उछल कर कहा:— "महाशय, यह मेरी मातृभूमि है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी मातृभूमि है।" यह एक जंगली स्टेशन था। कोई चीज़ नहीं मिल सकती थी; कोई दूकान न थी; पर साथी के देश का यह पहला चिह्न था; उसके आनन्द की तुरङ्ग के लिए इसने बत्ती का काम किया। बहुत देर का दबा हुआ भाव उमड़ पड़ा। वह बहुत देर से कारीडार (गली) की खिड़की पर इसी स्टेशन की प्रतीक्षा में खड़ा था। स्टेशन पर एक औरत थी, जिस के सर पर रूमाल बँधा था और बदन पर रँगदार घाँघरा था। मालूम हुआ कि असली पहनावा वहाँ का वही था। साया ब्लाउज़ इत्यादि अब औरतें पश्चिमी योरप से सीख रही हैं। यहाँ लोग स्टेशन पर नङ्गे पैर भी देख पड़े। यहाँ से

सर्विया

का राज्य शुरू हुआ। हम लोगों के "पासपोर्ट" देखे गये। पासपोर्ट एक प्रकार की सनद है जिसमें राज्य की ओर से लिखा रहता है कि अमुक मनुष्य हमारे राज्य की प्रजा है; उसे दूसरे राज्यवाले अपने यहाँ जाने दें और उसकी सहायता और रक्षा करें। मेरे पास सर एडवर्ड ग्रे का (जो अब भी इँगलैंड में देशान्तर-विभाग के मंत्री हैं) हस्ताक्षरित पत्र था। यह पाँच वर्ष के लिए दिया जाता है। अन्य देशों में इँगलैंड की प्रजा को इँगलैंड का राजदूत इसे दे सकता है। पासपोर्ट की प्रथा इतनी पुरानी है कि चाणक्य के अर्थशास्त्र तक में इसका हवाला है। योरप में जहाँ आपस का सन्देह और निर्बलता है वहीं अब इसकी आवश्यकता है। सर्विया, बलगेरिया इत्यादि राज्य छोटे हैं और पड़ोसी आष्ट्रिया, टर्की जैसे साम्राज्यों से चौकन्ने रहते हैं। इसी से यह प्रथा यहाँ जारी है। पश्चिमी योरप, फ़्रांस, इँगलैंड आदि में पासपोर्ट नहीं माँगा जाता। इँगलैंड जाते समय सिर्फ़ यही पूछ लेते हैं कि घर के हो या बाहर के; क्योंकि बाहरवालों की जेब में १५) से कम न होना चाहिए। यह नाममात्र का क़ानून है। जर्मनी और आष्ट्रिया में भी यात्रा के लिए पासपोर्ट की ज़रूरत नहीं पड़ती।

आगे बढ़े कि छोटी छोटी पहाड़ियाँ सामने आने लगीं। ये बालकन-पर्वत का सूत्रपात बताती थीं। इसी पर्वत के कारण सर्विया आदि को बालकन-राज्य कहते हैं। इन पहाड़ों के कारण इन देशों का जीतना सहज नहीं है; तिस पर भी पूरबवालों से मुक़ाबला करते समय इनका ईश्वरदत्त सहायक बालकन भी इनकी सहायता न कर सका था। इन्हीं पहाड़ों में दस-दस पाँच-पाँच की टोली बाँध कर बलगेरिया वाले तुर्की सिपाहियों को हैरान करते हैं। हैरान इसलिए करते हैं जिसमें यूनान का शेष वह भाग भी, जो तुर्की के अधीन रह गया है, उनसे छुड़ा लें। धर्म्मान्धता भी इसका कारण है। इसके उत्तर में तुर्क लोग भी दस दस पाँच पाँच की टोली बाँधते हैं, क्योंकि बड़े दल या फ़ौज का यहाँ काम नहीं। तुर्क इन लोगों को दबाने के लिए पिस्तौल और कभी कभी हलकी मैशीन गन भी काम में लाते हैं। इस कारण कट्टर क्रिस्तान और उनके पादड़ी पश्चिमी योरप में बहुत शोर मचाते हैं। इस प्रथा को वे बालकन-अत्याचार (Balkan Atrocities) कहते हैं।

बालकन-राज्य के वासी, रूस की तरह, ग्रीक-चर्च या युनानी-शाखा के क्रिस्तान हैं। पुराने कांस्टैंटिनोपल के साम्राज्य को, जिसे बाइज़न्टाइन साम्राज्य कहते हैं, ये लोग फिर से जगाने का स्वप्न देखते हैं और तुर्क लोगों को डाह तथा द्रोह की निगाह से देखते हैं। तुर्की के सुलतानों के समय की निर्बलता तथा अपनी राष्ट्रोयता के प्रताप से ये राज्य अब तुर्की से बिलकुल स्वतन्त्र हो गये हैं। बलगेरिया को स्वतन्त्र हुए भी कई वर्ष हुए। सर्विया कोई २० वर्ष पहले स्वतन्त्र हुआ था। इन राज्यों में पार्लिमेंट भी है; राष्ट्रीय सेना भी है। ग़रीब और छोटे होने के कारण ये बहुत फौज नहीं रख सकते। इससे यहाँ वह प्रथा जारी है जो अपने यहाँ नेपाल में है और योरप के कितने ही अन्य देशों में भी है। अर्थात् २। ३ वर्ष हर आदमी को सेना में रहना पड़ता है। इससे सारी प्रजा पलटन का काम दे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकती है। ये राज्य योरप के ढँग पर चलने की कोशिश करते हैं। पहले ये रूस की तरफ़ झुकते थे, पर रूस के पेट में लुप्त हो जाने के डर से अब दूर रहते हैं। रूस, आस्ट्रिया, तुर्की तीनों से ये डरा करते हैं। ये ग्रीक अक्षर काम में लाते हैं। इनकी भाषा रूसी भाषा से मिलती जुलती है। यहाँ तक कि मैंने धन्यवाद देने में एक बार अपने साथी बलगरों से जो

ब्लगा दाच्यु, गेसपदिन्

कहा, तो वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने समझा कि उन्हीं की भाषा में बोलने का यह प्रयत्न मैंने किया। यह रूसी भाषा का वाक्य था, जिसे संयोगवश मैं जानता था। पहले दो शब्दों का अर्थ है—'आपका धन्यवाद,' और गेसपदिन 'महाशय' का वाचक है।

सर्विया कृषिप्रधान, निर्धन और ग्राम्य देश है। हिन्दुस्तान अपनी वर्त्तमान दशा में भी उससे कई गुना अच्छा है। बड़ा शहर वहाँ सिर्फ़ एक बेलग्राड है। वही राजधानी है। बाक़ी सब गाँव या क़सबे हैं। बेलग्राड रेल से देख पड़ता है। छोटे छोटे मकान हैं; उन पर चूने का प्लास्तर है। यह प्रथा पूरब से वहाँ पहुँची है। हिन्दुस्तान के तीसरे दर्जे के शहरों से भी बेलग्राड फीका है। स्टेशन इतना छोटा है कि ईस्ट इंडियन रेलवे की मेलट्रेन, अगर बेलग्राड वहाँ होता तो, उस पर न ठहरती। चेरसनी को इँगलैंड में चेरी कहते हैं और अपने यहाँ, हिमालय पर, पदुम के फल। बस इसे छोड़ कर और कोई चीज़ वहाँ न बिकती थी। बेचने वाले छत्तीसगढ़ के स्टेशनों के फल बेचने वालों के सदृश थे। मकान दो तल्ले के ऊपर नहीं बनते। ढँग उनका पूर्वी है। ऊपर खपरैल होती है, जिसके खपड़े हमारे यहाँ अन्तर्वेद के से होते हैं। अब कोई कोई मकान योरपीय ढँग के बने हैं। इनकी जनसंख्या ७० हज़ार है। शहर में ट्रैम चलती है। छोटे छोटे बाग़, जैसे बनारस-मिर्ज़ापुर में हैं, बहुत से हैं। इनमें नीबू के वृक्ष अधिक हैं। युनिवर्सिटी में सिर्फ़ तीन फैकल्टीज़ हैं। सैनिक आदि छोटे स्कूल कई एक हैं। ये सब १८९० ई० के बाद लगे हैं। बड़े बड़े मील या कारख़ाने देश में एक नहीं। बेलग्राड बहुत ही छोटा शहर है; पर एक स्वतन्त्र-राज्य की राजधानी होने का घमं है। सर्विया के राजा यहीं रहते हैं।

बलगेरिया।

बेलग्राड से रेल दक्खिन-पूरब को चलती और डैन्यु नदी का साथ छूट जाता है। सर्वि और बलगेरिया में कोई स्वाभाविक सीमा-विभा नहीं है। इससे किसी न किसी समय दोनों रा का एक हो जाना सम्भव है। यहाँ से बालक पहाड़ अधिक दीर्घकाय होता जाता है। इसक राजधानी भी छोटी पर बेलग्राड से बड़ी है। रा धानी का नाम सोफ़िया है। इसकी जनसंख्या ८ हज़ार है। सन् १८८० ईसवी के बाद से सोफ़िय को योरपीय नगर बनाने की कोशिश हो र है। गलियों की जगह सीधी सड़कें निकालना, ऊँचे ऊँचे ईंट के मकान बनाना; चूने का सफ़े पलास्तर काम में लाना—योरपीय नगर बनाने की सामग्री है। यहाँ सबसे बड़ी इमारत तुर्क जामिया मसजिद है। उस पर धातु के नौ गुम्बद हैं। अब इसमें एक छोटा सा म्युज़िअम है। चेरना जामिय मसजिद अब गिरजाघर का काम देती है। गरम पानी का एक हम्माम भी शहर में है। राजकीय रङ्गशाला भी है। बेलग्राड से २०६ और कान्स्टैंटि नोपल से ३०० मील पर राजधानी स्थित है।

कारख़ाने इस देश में भी नहीं। बलगेरिया सर्विया से बड़ा राज्य है। शहर भी इसमें दो तीन हैं। फिलिप्पो पोलीस सोफ़िया के बाद बड़ा नगर है। अब भी देहात में यहाँ लोग तुर्की टोपी लगाते हैं। यहाँ के लोग अधिकतर पहाड़ी हैं। बलगेरिया के डाकू प्रसिद्ध हैं। स्टेशनों पर बे-मालिक के कुत्ते पहली बार योरप में देखने में आये। कुत्ते ठीक वैसे ही होते हैं जैसे अपने यहाँ शहरों में देख पड़ते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। कहते हैं कि पूर्वी विजेताओं के साथ, तुर्क पलटनों के साथ, हमारे ये पूर्वी जीव एशिया से योरप चले आये हैं। इन्हें देख कर योरपियन बहुत चकित होते हैं और कांस्टैंटिनोपल के वर्णन में इनका वर्णन अवश्य करते हैं। किसी किसी स्टेशन पर सुराही में पानी भर कर पैसे के लिए पानी पिलाने वाले भी खड़े देख पड़े। मालूम होता था अब घर के पास आ गये। पर स्थान की उदासी और जंगलीपन कहे देता था कि अपना देश अभी दूर है।

साथियों से बैठा मन बहलाता रहा; पर साथ छूटने के पहले ज़रा खिँचाखिँची हो गई। कारण यह हुआ कि बलगेरिया की स्वतंत्र-घोषणा पर मेरे हर्ष प्रकट करने पर, एक डाकृर ने हिन्दुस्तान के विषय में कुछ कहा, जिसे सुन रोष पैदा हुआ और बलगरों का नवाभ्युदयोन्माद और डाकृर के स्वभाव में पददलित जातियों की तुच्छता का प्रमाण मिला। फिर हम लोग न बोले। फिलिप्पो पोलिस में मेरे साथी उतर गये। दो रात और दो दिन चलने के बाद, अब रात भर की राह और बाक़ी रही। उसे तै करके रूम की राजधानी कुस्तुंतुनिया पहुँचे।

नीतिवचनावली।

(१) अभद्रं भद्रं वा विधिलिखितमुन्मूलयति कः ?

बुरा या भला जो कुछ ब्रह्मा ने लिख दिया है उसे कौन टाल सकता है ?

(२) अव्यवस्थितचित्तानां प्रसादोऽपि भयङ्करः।

जिन लोगों का चित्त अव्यवस्थित है उनकी कृपा भी किसी काम की नहीं। उनका प्रसाद भी बड़ी ही भयङ्कर वस्तु है।

(३) अभिमानविहीनानां किं धनेन किमायुषा ?

मानहीन पुरुषों का धन और आयु दोनों व्यर्थ हैं।

(४) अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थञ्च चिन्तयेत्।

अपने को अजर और अमर समझ कर मनुष्य को विद्या और अर्थ की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

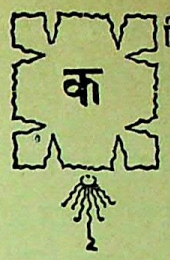

कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर बङ्गाल के प्रसिद्ध पुरुषों में से हैं। वे वङ्ग-साहित्य के देदीप्यमान रत्न हैं। बङ्गाल में ऐसा कोई घर नहीं जिसमें उनके काव्य और निबन्ध, उनके उपन्यास और नाटक, उनकी आख्यायिकायें और गान न पढ़े जाते हों। उन्होंने अपनी लेखनी के बल से शिक्षित बङ्गालियों के विचारों में बहुत बड़ा परिवर्तन कर डाला है। इसी लिए वे इस समय वङ्ग-भाषा के अद्वितीय लेखक समझे जाते हैं। उनकी आयु का पचासवाँ वर्ष व्यतीत हो चुका। इसी से गत २८ जनवरी को उनकी वर्ष-गाँठ के उपलक्ष्य में आनन्द मनाने और उनका सम्मान करने के लिए वङ्गीय साहित्य-परिषद् की ओर से कलकत्ते के टाउन-हाल में एक बड़ी भारी सभा हुई थी। उसमें केवल साहित्य-सेवी लोग ही एकत्र न हुए थे, किन्तु बङ्गाल के बड़े बड़े राजा, महाराजा, धनाढ्य, धर्मनिष्ठ, विद्वान्, विज्ञानवेत्ता, दार्शनिक, कवि, पण्डित, चित्रकार, शिल्पकार, अध्यापक, विद्यार्थी, बाल, वृद्ध, वनिता और युवा सब श्रेणी के आदमी रवीन्द्र बाबू के सम्मानार्थ उपस्थित हुए थे।

रवीन्द्र बाबू का जन्म सन् १८६० ईसवी में हुआ था। वे बाबू द्वारकानाथ ठाकुर के पौत्र और सुप्रसिद्ध महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के पुत्र हैं। उनका वंश अपनी विद्वत्ता के लिए चिरकाल से प्रसिद्ध है। इसी वंश में कितने ही धार्मिक, दार्शनिक, साहित्य-सेवी और शिल्पकार पुरुषों ने जन्म ले कर वङ्ग-देश का मुख उज्ज्वल किया है।

रवीन्द्र बाबू मातृ-स्नेह से वञ्चित रहे। शैशव काल ही में उनकी माता का देहान्त हो गया था। पिता, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, ही ने उनका पालन-पोषण किया। रवीन्द्र बाबू ने किसी कालेज में शिक्षा नहीं पाई। स्कूल की साधारण शिक्षा प्राप्त कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेने पर उन्होंने आगे पढ़ना बन्द कर दिया। घर पर इनको जो शिक्षा मिली और इनके पिता ने इनके हृदय-क्षेत्र पर जिस बुद्धि-विकाशक बीज का वपन किया उसी की बदौलत रवीन्द्र बाबू धीरे धीरे कुछ के कुछ हो चले।

लड़कपन ही से रवीन्द्र बाबू ने अपनी कुशाग्र-बुद्धि का परिचय देना आरम्भ कर दिया। जब वे पूरे सोलह वर्ष के भी न थे तभी से वे गद्य और पद्य दोनों ही बहुत अच्छी तरह लिखने लगे। उन्हें गाने का भी शौक़ लड़कपन ही से हुआ। पिता को वे बहुधा पारमार्थिक गीत गाकर सुनाते थे। पिता ने उनके गाने से प्रसन्न होकर उन्हें—"वङ्ग-देश की बुलबुल"—की उपाधि दी थी।

ज्यों ज्यों उनकी वयो-वृद्धि होती गई त्यों त्यों उनके विशेष गुणों का भी परिचय मिलता गया। बँगला-साहित्य के जिस विभाग में उन्होंने हाथ डाला उसीमें उन्हें सफलता प्राप्त हुई। रवीन्द्र बाबू मानव-जाति के भिन्न भिन्न भावों को शब्द-चित्र द्वारा खींचने में बड़े ही कुशल हैं। उनके लिखने की शैली में कुछ ऐसा जादू है कि वे जिस ओर चाहें अपने पाठक की रुचि फेर दें। उनके लेखों में आध्यात्मिकता भी रहती है। उनकी बदौलत बङ्गाल के आध्यात्मिक जीवन में बड़ा उलट फेर हो गया है। छोटी छोटी शिक्षा-प्रद आख्यायिकायें लिखने में वे अपना सानी नहीं रखते। भारती, बालक, साधना और वङ्ग-दर्शन नामक बँगला की चार मासिक पुस्तकों का सम्पादन भी उन्होंने बहुत काल तक किया है।

रवीन्द्र बाबू केवल लेखक ही नहीं हैं। वे बड़े भारी अभिनेता भी हैं। उनका सुर बहुत मीठा तो नहीं, पर सङ्गीत-विद्या के वे पूरे ज्ञाता हैं। उन्होंने अनेक गीत बनाये हैं। उन गीतों को गाने में वे नये नये सुरों का प्रयोग करते हैं। वे, कभी कभी, त्योहारों या ब्रह्मसमाज के उत्सवों पर सर्व-साधारण के सामने भी गाते हैं।

वे वक्ता भी अच्छे हैं। उनकी वक्तृता बड़ीही हृदयहारिणी होती है। उसे वे प्रायः लिख कर सुनाते हैं। उनके पढ़ने का ढँग ऐसा अच्छा है लोग तन्मनस्क हो जाते हैं। जब कभी उ वक्तृता अथवा गान सर्वसाधारण में होता है बेहद भीड़ होती है।

रवीन्द्र बाबू बड़े स्वदेश-भक्त हैं। उन्होंने स्व भक्ति पर कितनी ही कवितायें लिखी हैं। मात के वे पक्के आराधक हैं और स्वदेश-प्रेम उनका हृदय परिपूर्ण है। परन्तु उनकी इस भक्ति में सङ्कीर्णता और विदेश तथा विदेशियों प्रति द्वेष नाम को भी नहीं। वे राजनीतिज्ञ भी परन्तु उनकी राजनीतिज्ञता वाग्वितण्डा ही में समाप्त हो जाती। चरित्र-निर्माण से उनकी रा नीति का बड़ा सम्बन्ध है।

रवीन्द्र बाबू न बी० ए० हैं और न एम० ए० उन्होंने ने किसी विश्वविद्यालय से कोई उपाधि नहीं पाई। परन्तु वे इतने अध्ययन-शील हैं कि प्रसि प्रसिद्ध भाषाओं की नामी नामी पुस्तकों में शाय ही कोई ऐसी हो जिससे वे परिचित न हों। केव ज्ञान-वृद्धि के लिए उन्होंने भारत ही में भ्रमण नहीं किया, किन्तु योरप में भी घूम आये हैं। लन्दन उन्होंने कुछ काल तक अँगरेज़ी-साहित्य की शि भी प्राप्त की है। कलकत्ते के पास बोलपुर में रवी बाबू का एक "शान्तिनिकेतन" है। उसमें उन्हों एक ब्रह्मचर्य्याश्रम खोल रक्खा है। वहाँ विद्यार्थ अपने शिक्षकों के साथ रह कर, ब्रह्मचर्य-पा करते हुए, उपयोगी शिक्षा प्राप्त करते हैं।

साहित्यसेवियों में बहुधा पारस्परिक प्रीति का अभाव देखा जाता है। इसे बहुत लोग अच्छा नहीं समझते। इस अभाव को दूर करने की चेष्टा भी कभी कभी, सभा-समिति-सम्मेलन करके, की जाती है। इस विषय में, रवीन्द्र बाबू ने अपने एक लेख में अपनी सम्मति इस प्रकार दी है :—

"इसमें सन्देह नहीं कि साधारणतः मनुष्यों में पारस्परिक प्रीति का होना कल्याणकारी है। साहित्य-सेवियों में भी यदि प्रीति-बन्धन घनिष्ठ हो तो अच्छी बात है। परन्तु साहित्य-सेवियों में प्रीति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विस्तार से किसी विशेष फल की प्राप्ति हो सकती है, यह मानने के लिए मैं तैयार नहीं। अर्थात् यह नहीं कहा जा सकता कि लेखक लोग यदि एक दूसरे को प्यार करें तो इससे उनके रचना-कार्य्य में विशेष सुभीता हो अथवा लेखकों का इससे कोई विशेष उपकार हो। व्यवसाय की दृष्टि से प्रत्येक साहित्य-सेवी स्वतन्त्र है। वे लोग परस्पर परामर्श करके, सम्मिलित भाव से, अपना अपना काम नहीं करते (क्योंकि वे किसी जाइंट स्टाक कम्पनी के मेम्बर नहीं)। प्रत्येक लेखक अपनी निज की प्रणाली का अनुसरण करके अपनी अपनी विद्या-बुद्धि के अनुसार सरस्वती की सेवा करता है। जो लोग दस आदमियों के दिखाये पथ पर चल कर, निश्चित नियमों के अनुसार, काम करना चाहते हैं, सरस्वती कभी उनको अमृत-फल देने की कृपा नहीं करती। साहित्य में साम्प्रदायिकता इष्टकर नहीं"।

"जो साहित्य-सेवी इस प्रकार एकाधिपत्य द्वारा परिवेष्टित हैं उनमें कभी कभी पारस्परिक परिचय और प्रीति नहीं देखी जाती; कभी कभी तो उनमें ईर्ष्या और कलह की सम्भावना तक हो जाया करती है। एक पेशेवालों में चढ़ा-ऊपरी का भाव दूर करना दुःसाध्य है। मनुष्य-स्वभाव में बहुत कुछ सङ्कीर्णता और विरूपता है। उसका संशोधन करना प्रत्येक मनुष्य की अपनी आन्तरिक चेष्टा का काम है; किसी कृत्रिम प्रणाली से उसका प्रतीकार नहीं हो सकता। यदि इस तरह का प्रतीकार सम्भव होता तो, इस समय, इस विषय में, जो उद्योग हम लोग कर रहे हैं उसके बहुत पहले ही सत्ययुग का आविर्भाव हो गया होता"।

रवीन्द्र बाबू ने गद्य-पद्यात्मक सैकड़ों पुस्तकें बँगला में लिखी हैं। अँगरेज़ी लिखने की योग्यता रखने पर भी वे उस भाषा में अपने विचार नहीं प्रकट करते। यहाँ तक कि जो लोग अपने देश-भाइयों और आत्मीय जनों के साथ अँगरेज़ी में पत्र-व्यवहार करते हैं उनके इस काम को रवि बाबू लज्जाजनक और गर्हित समझते हैं।

रवीन्द्र बाबू एक महान् पुरुष हैं। सरस्वती ही की आराधना करके वे महान् हुए हैं। गत जनवरी में बङ्गाल ने जो सम्मान रवीन्द्र बाबू का किया और हाथीदाँत के पत्र पर खचित अभिनन्दन-पत्र, रजत-अर्घ्य-पात्र, सोने का एक कमल और एक माला आदि चीज़ें जो उन्हें भेंट कीं वह सम्मान और वह भेंट यथार्थ में रवीन्द्र बाबू की न थी, किन्तु देवी सरस्वती की थी। धन्य है वह देश और वह जाति जो अपने साहित्य-सेवियों का आदर करके भगवती सरस्वती की उपासना करे और धन्य है वह महान्-पुरुष जो सरस्वती-मन्दिर का पुजारी होने के कारण अपने देश और जातिवालों से सम्मानित हो।

नीतिवचनावली।

(५) गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।

गुणवानों के गुणही पूजे जाते हैं। वे पुरुष हैं या स्त्री, बाल हैं या वृद्ध—इन बातों पर विचार नहीं किया जाता।

महाराज पृथ्वीराज का पत्र।

[महाराना प्रतापसिंह के नाम]

स्रग्धरा।

(१)

स्वस्ति-श्री स्वाभिमानी कुल-कमल तथा हिन्दुआसूर्य्य सिद्ध,
शूरों में सिंह सु-श्री शुचिरुचि-सुकृती श्रीप्रताप प्रसिद्ध।
लज्जाधारी हमारे कुशलयुत रहें आप सद्धर्म्म-धाम;
श्रीपृथ्वीराज का हो विदित विनय से प्रेम-पूर्ण प्रणाम॥

(२)

हा! कैसा हो रहा हूँ इस अवसर में घोर-आश्चर्य्य-लीन;
देखा है आज मैंने अचल चल हुआ; सिन्धु संस्था-विहीन!
देखा है, क्या कहूँ मैं, निपतित नभ से इन्द्र का आज छत्र!
देखा है और भी, हाँ, अकबर-कर में आप का सन्धि-पत्र!!!

(३)

आशा की दृष्टि से वे पितर-गण किसे स्वर्ग से देखते हैं?
सच्ची वंश-प्रतिष्ठा क्षिति पर अपनी वे कहाँ लेखते हैं?
मर्य्यादा पूर्वजों की अब तक हम में दृष्टि आती कहाँ है?
होती है व्योम-वाणी वह गुण-गरिमा आप ही में यहाँ है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४)

खोके स्वाधीनता को अब हम सब हैं नाम के ही नरेश;
ऊँचा है आप से ही इस समय अहो ! देश का शीर्ष-देश।
जाते हैं क्या झुकाने अब उस सिर को आप भी हो हताश !
सारी राष्ट्रीयता का शिव! शिव! फिर तो हो चुका सर्वनाश !!!

(५)

हाँ, निस्सन्देह देगा अकबर हम से आपको मान-दान;
खोते हैं आप हा ! हा ! उस पर अपना आत्म-धर्म्माभिमान !
छोड़ो स्वच्छन्दता को मृगपति ! वन में दुःख होता बड़ा है;
लोहे के पींजड़े में तुम मत रहना, स्वर्ण का पींजड़ा है !

(६)

क्या हैं ये नेत्र मेरे कुछ विकृत, कि हैं ठीक ये पत्र-वर्ण,
देखूँ, है क्या सुनाता वह विधि मुझ को, व्यग्र हैं हाय ! कर्ण।
रोगी हों नेत्र मेरे, वह लिपि न रहे आप के लेख जैसी;
हो जाऊँ दैव चाहे बधिर पर सुनूँ बात कोई न वैसी॥

(७)

बाधायें आपको हैं बहु विध वन में, मैं इसे मानता हूँ;
शाही सेना सदा ही अनुपद रहती सो सभी जानता हूँ।
तो भी स्वाधीनता ही विदित कर रही आपको कीर्तिशाली;
हो चाहे वित्तवाली पर उचित नहीं दीनता चित्तवाली॥

(८)

आये थे, याद है क्या, जिस समय वहाँ "मान" सम्मान पा के,
खाने को थे न बैठे मिस कर उन के साथ में आप आ के।
वे ही ऐसी दशा में, हँस कर, कहिए, आपसे क्या कहेंगे ?
अच्छी हैं ये व्यथायें; पर वह हँसना आप कैसे सहेंगे ?

(९)

है जो आपत्ति आगे वह अटल नहीं; शीघ्र ही नष्ट होगी;
कीर्ति-श्री आपकी यों प्रलय तक सदा और सुस्पष्ट होगी।
घेरे क्या व्योम में है अविरत रहती सोम को मेघमाला ?
होता है अन्त में क्या प्रकट वह नहीं और भी कान्तिवाला ?

(१०)

है सच्ची धीरता का समय बस यही हे महाधैर्य्यशाली !
क्या विद्युद्वह्नि का भी कुछ कर सकती वृष्टि-धारा-प्रणाली ?
हों भी तो आपदायें, अधिक अशुभ हैं क्या पराधीनता से ?
वृक्षों जैसा झुकेगा अनिल-निकट क्या शैल भी दीनता से ?

(११)

ऊँचे हैं और हिन्दू; अकबर-तम की है महा राजधानी;
देखी है आप में ही सहज सजगता हे स्वधर्म्माभिमानी !
सोता है देश सारा यवन-नृपति का ओढ़ के एक वस्त्र;
ऐसे में दे रहे हैं जग कर पहरा आप ही सिद्धशस्त्र !

(१२)

डूबे हैं वीर सारे, अकबर-बल का सिन्धु ऐसा गँभीर;
रक्खे हैं नीर नीचे कमल-सम वहाँ आप ही एक धीर।
फूलों सा चूस डाला अकबर-अलि ने देश को ठौर ठौर;
चम्पा सी लाज रक्खी अविकृत अपनी धन्य मेवाड़-भौर !

(१३)

सारे राजा झुके हैं जब अकबर के तेज आगे सभीत;
ऊँची ग्रीवा किये हैं सतत तब वहाँ आप ही हे विनीत !
आर्यों का मान रक्खा, दुख सह कर भी, है प्रतिज्ञा न टाल
पाया है आपने ही विदित भुवन में नाम आर्य्यांशुमाली।

(१४)

गाते हैं आपका ही सुयश कवि-कृती छोड़ के और गाना;
वीरों की वीरता को सु-वर मिल गया चेतकारूढ़ राना।
माँ ! है जैसा प्रताप प्रिय सुत जन तू तो तुझे धन्य मानें,
सोता भी चौंकता है अकबर जिस से सांप हो ज्यों सिरानें

(१५)

"राना ऐसा लिखेंगे, यह अघटित है; की किसी ने हँसी है;
मानी हैं एक ही वे; बस, नस नस में धीरता ही धँसी है
यों ही मैंने सभा में कुछ अकबर की वृत्ति है आज फेरी;
रक्खो चाहे न रक्खो अब सब विध है आपको लाज मेरी

(१६)

हो लक्ष्य-भ्रष्ट चाहे कुछ पर अब भी तीर है हाथ ही में;
होगा हे वीर ! पीछे विफल सँभलना, सोचिए आप जी में।
आत्मा से पूछ लीजे कि इस विषय में आपका धर्म्म क्या है
होने से मर्म्म-पीड़ा समझ न पड़ता कर्म्म-दुष्कर्म्म क्या है॥

(१७)

क्या पश्चात्ताप पीछे न इस विषय में आप ही आप होगा ?
मेरी तो धारणा है कि इस समय भी आप को ताप होगा।
क्या मेरी धारणा को कह निज मुख से आप सच्चा करेंगे ?
या पक्के स्वर्ण को भी सच मुच अब से ताप कच्चा करेंगे !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजधानी;
म्मौभिमानी!
एक वस्त्र;
द्धशस्त्र!

ा गँभीर;
एक धीर।
ा ठौर ठौर;
मेवाड़-भौर!

सभीत;
हे विनीत!
प्रतिज्ञा न टा
ार्य्यांशुमाली।

के और गाना;
रूढ़ राना।
के धन्य मानें;
हो ज्यों सिरानें

सी ने हँसी है;
ा ही धँसी है
ई आज फेरी;
को लाज मेरी

हाथ ही में;
चिए आप जी में
का धर्म्म क्या है
कर्म्म क्या है॥

ा आप होगा?
को ताप होगा।
सच्चा करेंगे?
कच्चा करेंगे!

सरस्वती

महाराणा प्रताप।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१८)

जो हो, ऐसा न हो जो हँस कर मन में 'मान' आनन्द पावें ;
जीना है क्या सदा को, फिर अपयश की ओर क्यों आप जावें ?
पृथ्वी में हो रहा है सिर पर सब के मृत्यु का नित्य नृत्य;
क्या जाने ताल टूटे किस पर उस की, कीजिए कीर्ति-कृत्य ॥

(१९)

हे राजन् ! आपको क्या यह विदित नहीं, आप हैं कौन व्यक्ति ?
होने दीजे न हा ! हा ! शुचितर अपने चित्त में यों विरक्ति।
आर्यों को प्राप्त होगी, स्मरण कर सदा आपका, आत्मशक्ति;
रक्खेंगे आपमें वे सतत हृदय से देव की भाँति भक्ति ॥

(२०)

शूरों के आप स्वामी; यदि अकबर की वश्यता मान लेंगे—
तो दाता दान देना तज कर उलटा आप ही दान लेंगे।
सोवेंगे आप भी क्या इस अशुभमयी घोर काली निशा में !
हा ! हा ! क्या सूर्य्य होगा समुदित अब से अस्त वाली दिशा में !!!

(२१)

दो बातें पूछता हूँ, अब अधिक नहीं, हे प्रतापी प्रताप !
आज्ञा हो, क्या कहेंगे अब अकबर को, तुर्क या शाह, आप ?
आज्ञा दीजे मुझे जो उचित समझिए, प्रार्थना है प्रकाश—
मूँछे ऊँची करूँ या सिर पर पटकूँ हाथ हो के हताश ॥

मैथिलीशरण गुप्त।

मिश्र-भ्राताओं के "नव-रत्न"।

यह पुस्तक हाल ही में हिन्दी-ग्रन्थ-प्रसारक मण्डली की ओर से प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक के रचयिता पण्डित गणेशविहारी मिश्र, पण्डित श्यामविहारी मिश्र, एम० ए० और पण्डित शुकदेवविहारी मिश्र, बी० ए० हैं। इसमें नव कवियों का जीवन-वृत्तान्त तथा उनकी कविता की समालोचना है। उन नव कवियों के नाम ये हैं :—(१) गोस्वामी तुलसीदासजी (२) सूरदासजी (३) देवजी (४) विहारीलालजी (५) भूषणजी (६) केशवदासजी (७) मतिरामजी (८) चन्दवरदाई और (९) हरिश्चन्द्रजी।

कदाचित् यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य की वृद्धि के निमित्त बहुत परिश्रम से तैयार की गई है; और, अँगरेज़ी कवियों की कविता की समालोचना की प्रणाली पर लिखी जाने के कारण, हिन्दी भाषा में अपने ढँग की एकही पुस्तक हुई है। इस पुस्तक के सम्बन्ध में मुझे दो बातें कहनी हैं। एक तो यह कि पुस्तक में जो नव रत्नों का संग्रह किया गया है वह ठीक नहीं है। दूसरी यह कि इन कवियों के ग्रन्थों की, विशेष कर महात्मा तुलसीदासजी की रामायण की, जो समालोचना की गई है वह यथार्थ नहीं है। पहली बात विशेष महत्त्व की नहीं है। अतएव, जिससे लेख न बढ़े, मैं उस पर इतनाही कहना उचित समझता हूँ कि गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, केशवदास, चन्दवरदाई आदि प्राचीन कवियों के बराबर बैठने में बाबू हरिश्चन्द्रजी शोभा नहीं पाते। जिस महत्त्व की दृष्टि से तुलसीदास आदि प्राचीन कवियों की कविता देखी जाती है वह महत्त्व बाबू साहब की कविता को अभी प्राप्त नहीं हुआ ; और सम्भव है, वह महत्त्व प्राप्त करने के लिए उनकी कविता को बहुत समय लगे।

नवरत्न-कवियों की कविता की जो समालोचना इस पुस्तक में की गई है वह यथार्थ नहीं। अतएव पाठकों का ध्यान इस ओर विशेष रूप से आकर्षित कराना आवश्यक जान पड़ता है। नवरत्न के सब कवियों की समालोचना पर मैं अपने विचार नहीं प्रकट करना चाहता ; क्योंकि ऐसा करने से नवरत्न से भी बड़ी एक पुस्तक तैयार हो जायगी। अतएव जिन गोस्वामीजी से प्रायः सब लोग परिचित हैं उन्हीं की कविता पर की गई समालोचना से मैं यहाँ पर थोड़े से दृष्टान्त दूँगा और उन पर अपना मन्तव्य भी प्रकट करूँगा। परन्तु इसके पहले यह बतलाने की आवश्यकता है कि किसी कवि की कविता पर तभी यथार्थ समालोचना की जा सकती है जब समालोचक कवि के असली भाव को यदि धारण नहीं तो ग्रहण अवश्य कर ले। तुलसीदासजी ने रामायण में जो कविता की है वह दूसरे भाव से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की है, पर समालोचक महाशयों ने उस पर जो समालोचना की है वह उससे बिलकुलही भिन्न भाव से की है। कवि ने इस ग्रन्थ की रचना रामचन्द्रजी को अपना इष्ट-देव मान कर भक्ति-भाव से की है; परन्तु समालोचक महाशयों ने अपनी समालोचना इस तरह की है जैसे रामचन्द्रजी रामायण के साधारण नायक हों और रामायण कोई ऐतिहासिक ग्रन्थ हो। परिणाम इसका यह हुआ है कि लेखकों की समालोचना, अनेक स्थलों में, उथली और उपहासास्पद हो गई है।

इस सम्बन्ध में एक बात और भी कह देना आवश्यक जान पड़ता है। किसी एक देश के कवि के काव्य की समालोचना करते समय किसी दूसरे देश की दृष्टि का उपयोग न करना चाहिए। नवरत्न में की गई समालोचना ठीक वैसी ही समालोचना है जैसी अँगरेज़ी समालोचकों के द्वारा की गई शेक्सपियर, मिल्टन और इतर अँगरेज़ी कवियों के काव्यों की समालोचना है। कहीं कहीं पर तो ऐसा जान पड़ता है जैसे नवरत्न के समालोचकों ने इँगलिस्तान के समालोचकों के विचार अँगरेज़ी से हिन्दी में परिवर्तित कर के रख दिये हों। मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि होमर की कविता समालोचक महाशयों ने नहीं पढ़ी। तिस पर भी उन्होंने तुलसीदासजी को होमर की कसौटी पर कस ही दिया है।

फिर, यह भी तो सोचना चाहिए कि तुलसीकृत रामायण किस प्रकार का ग्रन्थ है। कुछ तुलसीदासजी ने उसे इस अभिप्राय से तो बनाया ही नहीं कि लोग उसे उपन्यास की तरह पढ़ कर अपना मनोरञ्जन करें। संस्कृत-भाषा के वेत्ताओं की संख्या दिन पर दिन कम हो जाने से धर्म तथा भक्ति का मार्ग, सर्वसाधारण की दृष्टि से, छिपता जाता था। इसी से तुलसीदासजी ने इस ग्रन्थ की रचना करके उस मार्ग को लोप हो जाने से बचाने की चेष्टा की है। इसी से नाना पुराण तथा निगमागम के तत्त्वों का सन्निवेश उन्होंने रामचरितमानस में किया है। तुलसीदासजी की जो श्रद्धा इस ग्रन्थ पर थी वह नीचे दोहा-चौपाइयों से अच्छी तरह विदित होती है:—

जो यह कथा सनेह समेता;
कहि हैं सुनि हैं समुझि सचेता।
होइ हैं रामचरण-अनुरागी;
कलिमल-रहित सुमंगल भागी।

सपनेहु साँचेहु मोहि पर जो हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होइ जो कहहुँ सब भाषा-भणित प्रभाउ।

तुलसीदासजी की ऐसी अद्भुत श्रद्धा तथा भक्ति धन्य है। उनका यह वाक्य ध्यान देने योग्य है कि—"तौ फुर होइ जो कहहुँ सब"—तुलसीकृत रामायण ने आज कल वेद, पुराण, शास्त्र, उपनिषद् आदि सभी को अलग बिठा दिया है। लोगों से धर्म कहो तो तुलसीकृत रामायण है; कर्म कहो तो तुलसीकृत रामायण है; जप-तप कहो तो तुलसीकृत रामायण है; इच्छित फल की देनेवाली भी तुलसीकृत रामायण ही है। कहाँ तक कहा जाय, ज्योतिष-शास्त्र का स्थान भी तुलसीकृत रामायणही ग्रहण कर जाती है; शकुन, अशकुन तथा प्रश्न का विचार भी अब तुलसीकृत रामायणही के सहारे होता है। यह ग्रन्थ घर घर विद्यमान है। प्रतिमाओं के साथ उसका भी पूजन होता है। सारांश यह कि जैसा मान और गौरव तुलसीकृत रामायण को मिला है वैसा मान और गौरव शायद ही किसी अन्य ग्रन्थ को मिला हो। इससे स्पष्ट है कि यह एक अलौकिक ग्रन्थ है। फिर इसकी तुलना कुमारसम्भव या होमर की इलियड आदि से करना कैसे युक्तिसङ्गत माना जा सकता है। सुनते हैं कि जब वीरबल ने केशवदास से पूछा कि भाषा का सबसे उत्तम कवि कौन है तब केशवदासजी ने उत्तर दिया "मैं"। इस पर वीरबल ने कहा—और सूरदास तथा तुलसीदास? तब केशवदास ने कहा "ये महात्मा कवि नहीं ये तो मंत्र-कर्त्ता हैं"। यह कथा मिथ्या ही क्यों न हो, परन्तु इसका आशय जो है वह सर्वथा मान्य है। तुलसीदासजी की गणना कवियों में नहीं है; और न बिना शास्त्रीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाणों के उनके ग्रन्थों की समालोचनाही, साधारण युक्ति द्वारा, हो सकती है। सच तो यह है कि उनके काव्य की समालोचना करने का वही पुरुष अधिकारी माना जा सकता है जो, यदि, उनकी जैसी स्थिति में न हो, तो कम से कम उनके भक्ति-मार्ग का ज्ञाता तो अवश्य हो।

अब मैं मिश्र-महाशयों की समालोचना के कुछ उदाहरण देकर उनपर विचार करना चाहता हूँ।

पृष्ठ ३९—समालोचक महाशयों का मत है कि तुलसीदासजी ने याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद, शिव-पार्वती-संवाद और काग-भुशुंडि-गरुड़-संवाद केवल "तुकान्त रखने और छन्दों के खाली भावों के भरने"—के सुभीते के लिए लिखे हैं। इससे यदि लेखकों का यह मतलब हो कि इन संवादों से तुलसीदास का और कोई अभिप्राय ही नहीं तो मैं उनसे सहमत नहीं। विचार करने की बात है कि भला तुलसीदास ऐसे महात्मा ज़रा से सुभीते के लिए अपनी निज की गढ़न्त को दूसरे की कही हुई बतलावेंगे? कागभुशुण्डि और गरुड़ की कथा योगवाशिष्ठ में है। उमा-महेश्वर-संवाद अध्यात्म-रामायण में है। नरहरिदासजी तुलसीदासजी के गुरु थे ही। उन्हीं से गोसाईंजी ने यह कथा सुनी थी। भरद्वाज-याज्ञवल्क्य-संवाद, तुलसीदासजी ने अपने गुरु से सुन कर और उस पर विश्वास करके अपनी रामायण में लिखा है और उन्होंने स्पष्ट कह भी दिया है कि मैं इन्हीं तीनों के आधार पर अपनी रचना करता हूँ। यह बात कभी किसी के ध्यान में भी न आवेगी कि तुलसीदास ऐसे महाकवि को तुकबन्दी में कठिनता मालूम हुई होगी। इसी से उन्होंने ये संवाद बलवत् रामायण में प्रविष्ट कर दिये हैं।

पृष्ठ ४१—समालोचक महाशयों का मत है कि गोस्वामीजी ने सरयू नदी का उद्गम स्थान देखा था; क्योंकि उन्होंने उसे मानसनन्दिनी लिखा है। आप लोगों ने यह भी लिखा है कि "सरयू जी पहले कौड़ियाली नाम से मानस से निकलती हैं"। अच्छा तो सरयू को मानसनन्दिनी लिखने से यदि गोस्वामीजी का मानसरोवर देखना सिद्ध हो सकता है तो समालोचक महाशयों का यह लिखना कि सरयूजी पहले कौड़ियाली नाम से मानस से निकलती हैं—उन की मानसरोवर-परिक्रमा भी सिद्ध कर सकता है!

पृष्ठ ४२—"बैरी पुनि छत्री पुनि राजा—छल बल कीन्ह चहै निज काजा"—इस चौपाई से समालोचक महाशयों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि गोस्वामीजी "क्षत्री और राजाओं को कुटिल और अविश्वासपात्र समझते थे"। परन्तु मेरी समझ में समालोचक महाशयों ने मुर्ग़ी की एकही टाँग देखी है। तुलसीदासजी राजाओं और क्षत्रियों को जिस दृष्टि से देखते थे उसका अनुमान निम्न-लिखित कविता से भली भाँति हो सकता है:—

साधु सुजान सुशील नृपाला,
ईश-अंश-भव परम कृपाला।
बैरी पुनि क्षत्री पुनि राजा,
छल बल कीन्ह चहै निज काजा।
रण चढ़ि करिय कपट चतुराई,
रिपु पर कृपा परम कदराई।
शास्त्र सुचिन्तित पुनि पुनि देखिय,
भूप सुसेवित वश नहिँ लेखिय।
राखिय नारि यदपि उर माहीँ,
युवती, शास्त्र, नृपति बश नाहीँ।
उरग, तुरग, नारी, नृपति, नर नीचो, हथियार।
निशि दिन परखत रहहु इन इनहिँ न पलटत वार॥

मेरी समझ में तो यहाँ पर तुलसीदासजी ने राजनीति कही है, और, लोगों को समझाया है कि राजा को कठपुतली समझ कर उसे अपनी मुट्ठी में नहीं समझ लेना चाहिए। इसी प्रकार की राजनीति मनु आदि पुरातन ग्रन्थकारों ने भी कही है; और, जो राजा इस नीति का अनुसरण नहीं करता वह नष्ट भी हो जाता है। अतएव ऐसी नैतिक चतुरता कुटिलता से पूर्ण कदापि नहीं कही जा सकती।

पृष्ठ ४३—इस पृष्ठ पर की गई समालोचना में कहा गया है कि तुलसीदासजी ने रावण और बाणा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुर को धनुषयज्ञ में इस कारण उपस्थित नहीं कराया जिसमें उन्हें परशुराम द्वारा भयभीत न होना पड़े। परन्तु मैं समझता हूँ कि रावण और बाणासुर को परशुरामजी से भयभीत होने का कोई कारण ही न था। परशुरामजी तो केवल क्षत्रियों के शत्रु थे, न कि सारे संसार के। इस बात का कहीं प्रमाण नहीं है कि परशुरामजी ने किसी दैत्य, दानव या ब्राह्मण को सताया हो। रावण यथार्थ में ब्राह्मण था और बाणासुर राजा बलि का पुत्र था। फिर ये लोग परशुरामजी से क्यों भय खाते? यथार्थ बात तो यह है कि धनुष-यज्ञ में धनुष तोड़ते समय रावण और बाणासुर का उपस्थित रहना न वाल्मीकीय रामायण ही में पाया जाता है और न अध्यात्म-रामायण ही में। जान पड़ता है, गोस्वामीजी ने अपने गुरु से भी वैसी ही कथा सुनी थी जैसी कि उन्होंने लिखी है।

एक बात मैं यहाँ पर आम तौर से कह देना आवश्यक समझता हूँ। वह यह कि समालोचक महाशयों ने अपनी समालोचना में, अँगरेज़ी समालोचकों की देखा देखी, स्थान स्थान पर, यह लिखा है कि गोस्वामीजी ने अमुक व्यक्ति से यह कराया; अमुक से यह कहाया; अमुक बात उन्होंने अपने मस्तिष्क से गढ़न्त करके लिख दी; यहाँ तक कि जटायु-द्वारा सीताजी की ख़बर पाने पर भी, रामचन्द्र-द्वारा हनूमान् आदि का उनकी खोज में भेजे जाने का अपराध भी समालोचक महाशयों ने तुलसीदास ही के माथे मढ़ दिया है। परन्तु मेरी समझ में तुलसी-दासजी ने न किसी से कुछ कहाया, न कराया, और न कोई बात अपने मस्तिष्क ही से गढ़ी। जिस बात का उन्हें प्रमाण मिला उसी को उन्होंने रामायण में लिख दिया। उसका प्रमाण खोज निकालना पाठकों का काम है। कुछ भी हो, उन्हें तुलसीदासजी पर सहसा मिथ्या दोषारोपण न करना चाहिए। समालोचक महाशय पाठकों को भोंड़ी अक्ल का नहीं मानते; परन्तु, फिर भी, तुलसीदासजी के बार बार इस बात पर ज़ोर देने पर भी कि "हरि अनन्त हरि-कथा अनन्ता"-आप लोग यह कहने से नहीं चूकते कि वास्तव में ऐसी घटना या ऐसी बात नहीं हुई थी; तुलसीदास ही ने उसे गढ़ कर लिख दी है।

पृष्ठ ४५—इस पृष्ठ पर समालोचक महाशयों ने सूरदास के श्रीकृष्ण और तुलसीदास के रामचन्द्र सम्बन्धी ईश्वर-वर्णन पर बड़ा भारी मसख़रापन किया है। इसी तरह पृष्ठ ७४ पर भी यह लिख कर कि-"जान पड़ता है कि बदचलन स्त्रियों के नाक कान काटने की रीति रामचन्द्र ही की चलाई है"-इन महाशयों ने अपने मसख़रे मिज़ाज का परिचय दिया है। आप शायद समझते होंगे कि आपकी यह मसख़री पाठक बड़ी रुचि से पढ़ेंगे। सम्भव है ऐसे भी कुछ लोग निकलें जिन्हें इस तरह की मसख़री पसन्द हो, परन्तु साधारण नियम तो यह है कि हँसी की बात तभी अच्छी लग सकती है जब वह निर्दोष हो। यदि हँसी में निन्दा की बू आने लगी तो वह अवश्य खेदोत्पादक हो जाती है। यदि समालोचक महाशयों को दिल्लगी इतनी प्रिय है, तो फिर लक्ष्मण और परशुराम तथा रावण और अङ्गद के संवाद से उन्हें कैसे घृणा उत्पन्न हुई है? वहाँ तो मारे क्रोध के उन्हें लक्ष्मणजी को लखनती लौंडे की उपमा देने में भी सङ्कोच न हुआ। यह तो वही मसल हुई कि—"ख़ुदरा फ़ज़ीहत-दीगरा नसीहत"।

पृष्ठ ४६—समालोचक महाशयों ने लिखा है कि धनुषयज्ञ के समय—"जनकपुरी में कुछ रामचन्द्रजी ही प्रधान न थे" अर्थात् रामचन्द्र के सदृश वहाँ सैकड़ों राजा और राजकुमार मौजूद थे। यदि क्षण भर के लिए यह बात मान भी लो जाय कि रामचन्द्रजी ईश्वर न थे, तो भी यह मानना ही पड़ेगा कि रामचन्द्रजी वहाँ सारे उपस्थित लोगों में विशेष प्रतिष्ठा के पात्र थे, क्योंकि उस समय इक्ष्वाकु-वंश सब से बढ़ा चढ़ा था। इसके अतिरिक्त राम-चन्द्र ने विश्वामित्र के साथ रह कर जो पराक्रम प्रकट किया था वह उस समय के किसी भी इतर राजा में न था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी समझ में नहीं आता कि धनुषयज्ञ की समालोचना में यह बात क्यों लिखी गई कि—"तुलसीदासजी से यह न लिखा गया कि जनकपुर कैसा था और उसके निवासी कैसे थे"। हाँ, इस विषय में, इतना अलबत्ते कहा जा सकता है कि तुलसीदास जी ने यह वर्णन, जहाँ पर समालोचक महाशयों की राय है वहाँ पर, नहीं किया। यह वर्णन उन्होंने वहाँ पर किया जहाँ पर कि रामचन्द्रजी का विश्वामित्र के साथ जनकपुर पहुँचने का वर्णन है; और यह वर्णन ऐसा साङ्गोपाङ्ग है कि अयोध्यापुरी के वर्णन से भी बढ़ कर कहा जा सकता है।

पृष्ठ ५०—इस बात का कोई प्रामाणिक आधार नहीं कि गोस्वामीजी ने अयोध्याकाण्ड की रचना सबसे पहले की; और, पीछे से, शेष काण्ड जोड़ कर ग्रन्थ पूरा कर दिया। आदि में जो उन्होंने वन्दना लिखी है उससे तो यही जान पड़ता है कि तुलसीदास ने सातों काण्ड यथाक्रम बनाये हैं। गोस्वामीजी से इतने पाखण्ड की आशा नहीं की जा सकती कि पहले वे आधी रामायण बना कर रख लेते, और बाद में वन्दना का दम्भ दिखाते। फिर, यह भी तो सोचना चाहिए कि किसी भी काण्ड का पहले या पीछे बनाना क्या कोई बुराई की बात है? गोस्वामीजी ने ग्रन्थ-रचना आरम्भ करने का स्थान, संवत्, तिथि, दिन सभी दे दिया है। यदि उन्होंने अयोध्याकाण्ड पहले ही से बना लिया होता तो वैसा वे ज़रूर ही लिख देते। ऐसा करने में बाधक क्या था?

अब रही भाषा तथा कवित्व-रचना की बात। सो यह तो अपनी अपनी रुचि और मौके पर अवलम्बित रहती है। अयोध्याकाण्ड विशेष कर कुटुम्बियों और आपस के लोगों ही का संवाद है। इस कारण तुलसीदासजी ने इस काण्ड में बहुधा घरू भाषा का ही प्रयोग किया है। इसी से लोगों को अयोध्याकाण्ड की भाषा अधिक पसन्द है। परन्तु, वास्तव में, भाषा की प्रगल्भता और शिथिलता जैसी इतर काण्डों में है वैसी ही अयोध्याकाण्ड में भी है। क्षेपक प्रायः वहीं मिलाये गये हैं जहाँ पर कथा कुछ अपूर्ण सी समझी गई है। अयोध्या और अरण्य-काण्ड में ऐसे स्थल बहुत कम हैं।

पृष्ठ ५७—इस पृष्ठ पर समालोचक महाशयों ने बड़े ज़ोर शोर से लिखा है कि—"गोस्वामीजी ख़ास हनुमानजी के भक्त न थे नहीं तो उनके समुद्र लाँघने पर यह लिख कर कि—

'उमा न कछु कपि की अधिकाई
प्रभु प्रताप जो कालहि खाई'—

उनके समस्त यश के गाहक क्यों बन बैठते"। इस विषय में मैं गीता का एक श्लोक नीचे देता हूँ—

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥

पाठक महाशय गीता के इस श्लोक को देखें और गोस्वामीजी के—उमा न कछु कपि की अधिकाई—प्रभु-प्रताप जो कालहि खाई—इस पद्य पर विचार करें। यदि तुलसीदासजी अधिकाई के बदले 'प्रभुताई' रख देते, तो भी गीता के अनुसार उनका कहना उचित ही समझा जाता। जब श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है कि जितने ऐश्वर्यवान् प्राणी हैं वे सब मेरे ही अंशयुक्त हैं, तब यदि तुलसीदासजी ने यथार्थ तत्त्व-ज्ञान का बोध कराने के निमित्त हनूमान्जी के ऐश्वर्य को रामचन्द्र ही का प्रताप बतलाया तो अनुचित ही क्या किया? तथापि तुलसीदासजी ने जो कुछ लिखा है उसका अर्थ तो मुझे यही जान पड़ता है कि हनूमान्जी के लिए वैसा करना कोई बड़ी बात न थी; क्योंकि रामचन्द्र का प्रताप ही ऐसा है कि वह काल को भी भक्षण कर सकता है। यह सच है कि तुलसीदास हनूमान्जी के विशेष भक्त न थे; तथापि वे उनके शत्रु भी न थे जो ईर्ष्यावश उनके यश के गाहक बन बैठते। सीताजी तथा रामचन्द्रजी ने हनूमान्जी की जो प्रशंसा की है वह भी तो तुलसीदास ही की लेखनी से निकली है। इस पर विचार न करके और, 'अधिकाई' शब्द का अनर्थ करके समालोचक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाशयों ने व्यर्थ तुलसीदास पर हनूमान्‌जी के यश का गाहक बन बैठने का कलङ्क लगा दिया। अफ़सोस !!!

पृष्ठ ५८—रावण का मन्दोदरी के सम्मुख सीताजी से यह कहना कि—"मन्दोदरी आदि रानी तेरी अनुचरी करें"—समालोचक-महाशयों को 'अनुचित' जान पड़ता है। यदि इस विषय में तुलसीदासजी को दोष दिया जा सकता है तो वाल्मीकीय और अध्यात्म-रामायण के कर्ताओं को भी दिया जा सकता है, क्योंकि उनमें भी यह घटना इसी तरह वर्णित है। आश्चर्य्य की बात तो तब होती जब कामार्त और उन्मत्त रावण उस दशा में अच्छा बर्ताव करता। रावण, रात के समय, मदिरा पान किये और अपनी स्त्रियों को साथ लिये हुए सीताजी के पास गया था। उस समय वह होश में न था। ऐसी अवस्था में उसे उचित और अनुचित का विचार नहीं हो सकता—"बातुल भूत-विवश मतवारे। जे नहिँ बोलहिँ वचन विचारे"। फिर, यदि तुलसी-कृत रामायण में या अन्यत्र मन्दोदरी के सम्मुख रावण बुरा बर्ताव करे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

अङ्गद की पाद-प्रतिज्ञा में राज-सभा की गम्भीरता रहा न सकती थी। जब दो विपक्षियों में एक का पक्ष निर्बल होता है तब निर्बल पक्षवाला सबल पक्षवाले की गम्भीरता को बहुधा हँसी में ही उड़ाना चाहता है। रावण को जब उचित उपदेश दिया जाता था तब वह सदैव उसे हँसी ही में उड़ा देता था:—

भूमि पराकर गहत अकासा।
लघु तापस कर बाक-बिलासा॥
सिरहु गिरे सन्तत शुभ जाही।
मुकुट गिरे कस असगुन ताही॥
जानेउँ प्रिया तोरि चतुराई।
इहि मिस कहेउ मोरि प्रभुताई॥

अङ्गद ने जब गम्भीर-भाव से रावण को शिक्षा दी तब रावण ने उसके उत्तर में केवल मज़ाक किया। अतएव उत्तर-प्रत्युत्तर में सभा की गम्भीरता नष्ट हो गई। मेरी समझ में तुलसीदासजी ने उस स्थल में ऐसे अवसर का एक आदर्श चित्र खींचा है। कौरवों—शिशुपाल आदि—की सभाओं में यही हाल हुआ था।

पृष्ठ ६४—में समालोचक महाशयों ने कलियुग-वर्णन के सम्बन्ध में बाबू हरिश्चन्द्र के वर्णन से तुलसीदासजी के वर्णन को सदृश बताया है। यह समालोचक महाशय बाबू साहब की अमलबेद नृ तथा शराबवाली कविता के नमूने देने के बदले इस कलियुग-सम्बन्धिनी कविता का उदाहरण नवरत्न दे देते तो पाठकों को दोनों कवियों की एक-विषय कविता का मिलान करने में बहुत सुभीता होता।

पृष्ठ ७५—सीताजी और जयन्त से सम्बन्ध रखनेवाली कथा में तुलसीकृत-रामायण-सदृश भक्ति ग्रन्थ में अश्लील बात लिखने की कोई आवश्यकता न थी। तुलसीदास ने बड़ी बुद्धिमानी की जो इस कथा में चरण का उल्लेख किया। अध्यात्म-रामायण में भी यह घटना इसी तरह लिखी गई है। कालिदास ने इस कथा को दूसरे प्रकार से लिखा है। इसीसे वे निरङ्कुश कहलाये।

पृष्ठ १०८—११० स्त्रियों के चरित पर तुलसीदासजी ने कहीं कहीं पर जो आक्षेप किये हैं वे पाश्चात्य-विद्या-विशारदों के विचारों के प्रतिकूल हैं जान पड़ता है, इसीसे समालोचक महाशयों को तुलसीदासजी की उक्तियाँ बुरी लगी हैं। उन्होंने यहाँ तक लिख मारा है कि तुलसीदासजी अपनी स्त्री से अप्रसन्न थे और उच्च श्रेणी की स्त्रियाँ उन्होंने कभी देखी भी न थीं। इसी से उनके विचार ऐसे अनुदार हो गये थे। मैं इस विषय में अधिक न लिख कर मनु आदि के दो चार श्लोक नीचे देता हूँ, और समालोचक-महाशयों से प्रार्थना करता हूँ कि श्रीमद्भागवत, महाभारत, विदुरनीति आदि देखने का परिश्रम वे स्वयं उठाने की कृपा करें:—

स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम्।
अतोऽर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः॥ मनु० २।२१३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसंगेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः।
द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः॥ मनु० ६।५।
नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः।
सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते॥ मनु० ६।१४।
शय्यासनमलङ्कारं कामं क्रोधमनार्जवम्।
द्रोह-भावं कुचर्यांञ्च स्त्रीभ्यो मनुरकल्पयत्॥ मनु० ६।१७।
स्वातन्त्र्यं न क्षणमपि ह्यावासोऽन्यगृहे तथा।
भर्त्रा पित्राथवा राज्ञा पुत्रश्वशुरबान्धवैः॥ शुक्र० ३।१६।
अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता।
अशौचत्वं निर्दयत्वं स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः॥ चाणक्य २।१।

अनसूया ने सीताजी से जो पातिव्रतधर्म कहा है वह भी समालोचक महाशयों को बड़ी कड़ी कसौटी जान पड़ी है। कड़ी इसलिए कि उसमें स्त्री के लिए पर-पुरुष के साथ भ्रमण तथा नृत्य का निषेध है। क्योंकि "उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं"। पर, महाराज, इस विषय में यदि तुलसीदास पर दोष लगाया जा सकेगा तो आपके शास्त्र, पुराण, नीति और स्मृति आदि के कर्त्ता भी इस दोष से न बच सकेंगे।

पृष्ठ ११३—"कुपथ माँगु रुज-व्याकुल रोगी—
वैद्य न देइ सुनहु मुनि जोगी"—समालोचक महाशयों का मत है कि इस चौपाई से विष्णु की कुटिलता प्रकट होती है। परन्तु मैं समझता हूँ कि इससे उनकी कुटिलता कदापि नहीं प्रकट होती; जो कुछ करने की उनकी इच्छा थी वह अवश्य इससे स्पष्ट समझ में आ जाता है। यदि विष्णु भगवान् केवल इतना ही कह कर रह जाते कि :—

जिहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृखा हमार॥

तो अलबत्तह उनके शब्द सन्दिग्ध रह जाते। परन्तु पीछे से पूर्वोक्त चौपाई कह कर विष्णु भगवान् ने नारद को यह स्पष्ट सूचित कर दिया कि तुम मोह-ग्रस्त हो रहे हो। ऐसे स्पष्ट वचन भी माया की प्रबलता के कारण नारद की समझ में न आये। माया की ऐसी प्रबलता के अनेक उदाहरण पुराणों में मिलते हैं।

पृष्ठ ११४—समालोचक महाशयों का मत है कि गोस्वामीजी ने रामचन्द्र की महिमा बढ़ाने के लिए इतर देवताओं की निन्दा की है। परन्तु मैं इस बात में भी समालोचक महाशयों से सहमत नहीं। तुलसीदासजी ने यदि निन्दा की है तो एक विशेष प्रकार के देवताओं हीं की की है। ऐसों की निन्दा श्रीमद्भागवत और महाभारत आदि में भी की गई है। शिव, ब्रह्मा, सरस्वती, गणेश आदि की निन्दा तुलसी-कृत रामायण में कहीं नहीं है। हाँ, उत्तर-काण्ड के कागभुशुण्डि गरुड़-संवाद में माया की प्रबलता का वर्णन करते समय अलबत्ते कहा गया है कि—

तुम निज मोह कहा खग साईं—
सो नहिँ कछु आश्चर्य गुसाईं।
नारद, शिव, विरंचि, सनकादी—
जे मुनि-नायक आतमबादी।
मोह न अन्ध कीन्ह केहि केही—
को जग काम नचाव न जेही।

यहाँ पर तुलसीदासजी की इन उक्तियों पर दो तरह से विचार करना चाहिए। एक तो पुराणों के आधार पर; दूसरा वेदान्त के आधार पर। पुराणों में जो ब्रह्मा और शिव आदि के काम-वश होने की कथायें हैं उनसे तुलसीदासजी का कहना सिद्ध ही है। वेदान्त के अनुसार भी वही बात सिद्ध होती है। क्योंकि शिव, ब्रह्मा आदि सगुण ईश्वर की शक्तियाँ हैं; और सगुण ईश्वर माया-संयुत है। अतएव शिव, ब्रह्मा आदि माया की उपाधि से ग्रसित हैं। इससे माया की प्रबलता उन पर भी व्यापक है। इस दशा में यदि तुलसीदासजी ने, माया की प्रबलता का प्रतिपादन करते समय, शिव, विरञ्चि आदि के उदाहरण दिये तो इससे उनकी निन्दा नहीं समझी जा सकती।

समालोचक महाशय सती-मोह को इस निन्दा का 'पूर्ण प्रमाण' बतलाते हैं। परन्तु इस 'पूर्ण प्रमाण' का मण्डन उन्होंने जिस प्रकार किया है उस से निन्दा का अभिप्राय कदापि सिद्ध नहीं होता। सतीमोह की कथा जब तक तुलसीदास की निज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की गढ़न्त न सिद्ध की जाय तब तक उनके ऊपर यह दोषारोपण हो ही नहीं सकता। रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता में तुलसीदासजी ने भिन्नता नहीं मानी है। भिन्नता केवल अंशों की मानी है। जब स्वयम्भू मनु और सतरूपा को रामचन्द्रजी ने वरदान दिया था तभी उन्होंने कह दिया था कि "परम शक्ति समेत अवतरिहौं"—और "अंशन-सहित मनुज अवतारा —लेहौं....." इससे प्रत्यक्ष है कि सीताजी और लक्ष्मण केवल सांसारिक व्यवहार के लिए रामचन्द्रजी से पृथक् थे; यथार्थ में वे उनसे भिन्न न थे। रामचन्द्रजी के यश, प्रताप, कर्तव्य और प्रभाव का सम्बन्ध सीता और लक्ष्मण से, छाया और पुरुष के सम्बन्ध के सदृश है। इस कारण वह कभी बिलगाया नहीं जा सकता। लक्ष्मणजी के विषय में गोस्वामीजी ने कह भी दिया है—"रघुपति-कीरति विमल पताका—दण्ड समान भयहु जस जाका"। और, यही कारण है कि शिवजी तथा ऋषि-मुनियों ने सीता-लक्ष्मण-सहित रामचन्द्रजी के ध्यान की याचना की है। इसमें बड़ाई और छुटाई की कोई बात नहीं। भाव ही छुटाई और बड़ाई का कारण है। अतएव सती को रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण के जो दूसरे रूप नहीं देख पड़े सो उनका न देख पड़ना ही उचित और स्वाभाविक था।

इस विषय में "मरे पर सौ दुर्रे" की मसल भी नहीं घटती। वह तभी घटित हो सकेगी जब निम्न-लिखित दोहे-चौपाइयों का ठीक अर्थ न किया जायगा, तथा उनके शब्दों पर यथार्थ विचार न करके उनमें से एक का दूसरे के साथ मिलान न किया जायगा :—

लक्ष्मण दीख उमा-कृत वेषा। चकित-हृदय भ्रम भयउ विशेषा।
कहि न सकत कछु अति गंभीरा। प्रभु-प्रभाव जानत मति धीरा।
सती-कपट जानेउ सुर-स्वामी। समदरसी सब अन्तरजामी।

राम-वचन मृदु गूढ़ सुनि उपजा अति संकोच।
सती सभीत महेश पँह चली हृदय बड़ सोच।

मैं शंकर कर कहा न माना। निज अज्ञान राम पँह आना।
जाय उतर अब देहौं काहा। उर उपजा अति दारुण दाहा।
जाना राम सती दुख पावा। निज प्रभाव कछु प्रकट दि
पुनि पुनि नाइ राम-पद शीशा। चली तहाँ जहँ रहे शि
सती समुझि रघुवीर-प्रभाऊ। भय-वश शिव सन कीन्ह दु

यहाँ पर "राम पहँ आना" का अर्थ राम डाला नहीं है। 'पहँ' का अर्थ—पास का है 'आना' का लाया है।

समालोचक महाशयों को सती का मरते ह हरि से वर माँगना भी अनुचित जान पड़ता परन्तु हरि से वर माँगना क्यों अनुचित स गया, यह मेरी समझ में नहीं आया। यदि सती हरि से वर न माँगतीं तो किससे माँगतीं? वर माँगने के कारण रामचन्द्र ने, शिवजी के स प्रकट होकर, उनसे पार्वतीजी के विवाहने का अ रोध किया। इस पर शिवजी ने उत्तर दिया यद्यपि यह बात उचित नहीं तथापि—"नाथ-व पुनि मेंटि न जाहीं"। इस विषय में मैं यह क का साहस कर सकता हूँ कि तुलसीदासजी ग्रन्थ कुछ ताज़ीरात हिन्द तो है नहीं, कि उस प्रत्येक शब्द की परिभाषा दे दी गई हो, और श का अर्थ परिभाषाही के अनुसार किया जाय। उस ग्रन्थ तो—"स्वान्तः सुखाय" तथा भगवद्भक्तों उपकारार्थ है। अतएव रामायण के शब्दों का जहाँ जैसा घटित हो वहाँ वैसा लेना चाहिए तुलसीदासजी सगुण उपासक थे। विष्णु भगवा को ही वे परमात्मा मानते थे। रामचन्द्रजी को विष्णु ही का अवतार समझते थे। परन्तु उन उपासना में अन्तर है। वे शंख-चक्र-गदा-पद्म-धारी विष्णु के उपासक न थे। शङ्कर और कागभुशुण्डि की तरह वे भी विष्णु भगवान् के रामावतार उपासक थे। जो जिस रूप का उपासक होता वही रूप उसके लिए सर्वोपरि होता है। यही कार है कि जब विष्णु भगवान् शंख, चक्र, गदा, प धारण किये हुए, देवताओं के साथ, शिवजी के पा गये तब उन्होंने कहा—"कहहु अमर आयहु के हेतू"। और, जब राम-रूप से वे गये तब शिव उन्हें अपना स्वामी माना। तात्पर्य यह कि 'हरि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्द से विष्णु और रामचन्द्र दोनों का अर्थ निकलता है। रामचरितमानस में कहीं कहीं पर लोगों को जो भ्रम हो जाता है उसका कारण प्रायः यही इष्टदेव-सम्बन्धी भक्ति-भेद है। तुलसीदासजी ने स्वयं भी कहा है :—"जाकर मन रम जाहि सन ताहि ताहि सन काम"।

समालोचक महाशयों की तर्कना-प्रणाली में पद पद पर "*Petitio Principii.*" मिलती है। मन-माना सिद्धान्त निश्चिन्त करके उन्होंने मनमाना परिणाम निकाला है। भला इस बात को कौन स्वीकार करेगा कि गोस्वामीजी ने रामचन्द्रजी के विवाह की शोभा बढ़ाने के लिए ही शिवजी का विवाह बिगाड़ दिया? जिस ढंग से तुलसीदास ने शिवविवाह का वर्णन किया है उससे तुलसीदासजी का उनसे द्वेष कदापि नहीं प्रकट होता; उलटा शिवजी पर उनकी अनन्त श्रद्धा ही झलकती है। समालोचक महाशय स्वयं ही अङ्गीकार करते हैं कि तुलसीदासजी जिस समय उमङ्ग में आते थे उस समय वे लम्बे छन्दों का प्रयोग करते थे। शिव-विवाह ऐसे छन्दों से भरा पड़ा है। तो क्या इससे यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि उस समय तुलसी-दासजी शिव-द्वेष की उमङ्ग में थे? मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि तुलसीदासजी ने आनन्द की उमङ्ग में दूलह के रूप-गुणानुसार ही बारात की कल्पना की है। जैसी सरस और मनोहर कविता रामचन्द्रजी के विवाह-वर्णन की है वैसी ही शिवजी के विवाह-वर्णन की भी है। एक हिसाब से तो लोगों को जैसा रोचक शिवजी का विवाह-वर्णन जान पड़ता है वैसा रामचन्द्रजी का नहीं जान पड़ता।

जो सम्पति सिव रावणहिँ दीन्हि दिये दस माथ।
सो सम्पदा विभीषनहिँ सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥

समालोचक महाशय कहते हैं कि इस दोहे से तुलसीदास की शिवसम्बन्धिनी—"निन्दा की वृत्ति पूरी तरह प्रकट होती है" तुलसीदास ऐसे महात्मा पर ऐसा गुरुतर और निन्द्य आरोप होते देख किस समझदार का हृदय सन्ताप से सन्तप्त न हो उठेगा? तुलसीदासजी ने इस दोहे में एक घटना का उल्लेख मात्र किया है। इसमें निन्दा की तो बू-तक नहीं। निन्दा उसी समय मुँह से निकलती है जब चित्त में द्वेष की वृत्ति जागृत होती है। अच्छा अब नीचे की कविता पढ़िए :—

सेवक स्वामि सखा सिय-पिय के—
हित निरुपधि सब विधि तुलसी के।
तब मज्जन करि रघुकुलनाथा—
पूजि पार्थिव नायउ माथा।
लिङ्ग थापि विधिवत करि पूजा—
शिव समान प्रिय मोहिँ न दूजा।
शिव-द्रोही मम भक्त कहावै—
सो नर सपनेहु मोहिँ न भावै।
शङ्कर-विमुख भक्ति चह मोरी—
सो नर मूढ़ मन्द मति थोरी।
शङ्कर-प्रिय मम द्रोही मम द्रोही शिव-दास।
ते नर करहिँ कल्प भरि घोर नरक महँ वास॥

कहिए पाठक, क्या तुलसीदासजी का अभिप्राय शिवजी की निन्दा करने का था? जैसी प्रशंसा तुलसीदास ने शिवजी की की है वैसी क्या शिव-निन्दक के क़लम से निकल सकती है? इत्तिफ़ाक़ की बात है कि तुलसीदास जी ने हनुमन्नाटक के इस श्लोक का अनुवाद करके पूर्वोक्त दोहे में रख दिया :—

या विभूतिर्दशग्रीवे शिरच्छेदेऽपि शङ्करात्।
दर्शनाद्रामदेवस्य सा विभूतिर्विभीषणे।

पृष्ठ ११५-११६—"ब्रह्म-गिरा भई गगन गँभीरा" और "माँगु माँगु वर भइ नभ-बानी"—समालोचक महाशयों के अनुसार, इन पंक्तियों में "भइ" के स्थान में "किय" होना चाहिए। इस अशुद्धि-संशोधन पर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। बोल-चाल की भाषा में तो यही कहा जाता है कि—आकाशवाणी हुई; या आकाश में गम्भीर ब्रह्मवाणी हुई; या—वर माँग,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर माँग—ऐसी आकाश-वाणी हुई। मेरी समझ में "भइ" तो आर्ष-प्रयोग नहीं; परन्तु यदि उसके स्थान में "किय" रख दिया जाय तो वह निस्सन्देह फार्स (Farce) प्रयोग हो जायगा।

पृष्ठ १२१—समालोचक महाशयों की राय है कि नीचे की चौपाइयों में जिन बातों का वर्णन है वे वेद में नहीं हैं:—

(१) त्रिबिध समीर सुसीतल छाया,
सिव बिसराम बिटप श्रुति गाया।
(२) अवधपुरी रघुकुल-मणिराऊ,
वेद-विदित तेहि दसरथ नाऊँ।
(३) उपरोहित जेवनार बनाई,
छ रस चारि बिधि जसि स्रुति गाई।
(४) तात तुम्हार विमल जस गाई,
पाइहि लोकहु वेद बड़ाई।

मैंने मूल वेद नहीं पढ़े। इस कारण मैं निश्चय-पूर्वक नहीं कह सकता कि तुलसीदासजी ने वेदों का प्रमाण ठीक ठीक दिया है या नहीं। परन्तु (१) और (२) चौपाइयों के विषय में मैं समझता हूँ कि उनमें कही गई बातों का प्रमाण ऋग्वेद में अवश्य है। श्रीयुत बाल गङ्गाधर तिलक ने जो—The Arctic Home of the Aryans in the Vedas—नामक ग्रन्थ बनाया है उसमें उन्होंने लिखा है कि शिवजी और दशरथ का नाम ऋग्वेद में है। यदि ऐसे विषयों पर तिलक महाशय का कथन प्रामाणिक समझा जाय तो उनका यह ग्रन्थ देख कर समालोचक अपना सन्देह निवारण कर लें। तीसरी चौपाई के विषय में मैं समालोचकों से पूछता हूँ कि कौन कौन से वेदों का अध्ययन करके उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि इस चौपाई का विषय वेदों में नहीं? रही चौथी चौपाई, सो उसमें गोस्वामीजी ने यह कदापि नहीं कहा कि भरतजी का यश वेद में वर्णित है। उनके कथन का तात्पर्य्य केवल इतनाही है कि यदि वेद भी भरतजी की बड़ाई करेगा, तो वह भी प्रशंसा का पात्र होगा। यह केवल अत्युक्ति-अलङ्कार का उदाहरण है।

पृष्ठ १२६—"निज जननी के एकु कुमारा"—इस चौपाई पर बहुधा लोग शङ्कायें किया करते हैं। इसका अर्थ भी बड़ी खैंचातानी से करते हैं। परन्तु वास्तव में तुलसीदासजी ने रामायण में यह कहीं नहीं कहा कि लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों एकही माता के उदर से थे। जब लोग कहते हैं कि लक्ष्मण और शत्रुघ्न एकही माता से थे तब इस बात को वे या तो वाल्मीकि-रामायण के आधार पर कहते हैं या अध्यात्म-रामायण के। परन्तु फिर भी वे यह समझते हैं कि हम तुलसीदासजी के आधार पर कह रहे हैं। ध्यान के साथ तुलसीकृत रामायण पढ़ने से यह बात स्पष्ट विदित हो जाती है कि सुमित्रा के अकेले लक्ष्मण ही थे; और कैकेयी से भरत और शत्रुघ्न का जन्म था। यहाँ पर यह प्रश्न नहीं है कि सच बात क्या है। निर्णय केवल इस बात का करना है कि तुलसीदासजी का कहना क्या है। जिस प्रकार कई इतर स्थलों में तुलसीदासजी की कही हुई कथा वाल्मीकि आदि से नहीं मिलती उसी प्रकार यहाँ पर भी नहीं मिलती। लक्ष्मणजी अपनी माता के एक मात्र पुत्र थे। इस विषय में मैं, यहाँ पर तुलसीकृत रामायण की कुछ चौपाइयाँ उद्धृत करता हूँ:—

(१) अर्द्ध भाग कौशल्यहि दीन्हा,
उभय भाग आधे करि लीन्हा।
कैकेयी कँह सो नृप दयऊ,
रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ।
कौशल्या केकयी हाथ धरि,
दीन्ह सुमित्रहिँ मन प्रसन्न करि।
(२) केकय-सुता सुमित्रा दीऊ,
सुन्दर सुत जन्मत भइँ सोऊ।
(३) जो आनन्द-सिन्धु सुखरासी,
सीकर ते त्रैलोक्य सुपासी।
सो सुखधाम राम अस नामा,
अखिल लोक दायक बिस्रामा।
विश्व-भरन-पोषन कर जोई;
ताकर नाम भरत अस होई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाके सुमिरन तें रिपु-नासा,
नाम सत्रुहन वेद-प्रकासा।
लच्छन-धाम राम-प्रिय सकल-जगत-आधार।
गुरु बसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार॥
(४) बारेहि तें निज हित पति जानी,
लछिमन राम-चरन-रति मानी।
भरत सत्रुहन दूनउ भाई,
प्रभु-सेवक जस प्रीति बढ़ाई।
(५) निज जननी के एक कुमारा,
तासु तात तुम प्रान-अधारा।

पहली तीन चौपाइयों का प्रत्येक शब्द अध्यात्म-रामायण से अनुवादित किया गया है। अध्यात्म-रामायण के श्लोकों तथा तुलसीदासजी की इन चौपाइयों से यदि कुछ अर्थ निकलता है तो यही निकलता है कि हविष्यान्न का जो चौथाई हिस्सा बच गया था उसे राजा दशरथ ने दो हिस्सों में विभक्त कर के एक हिस्सा कौशल्या के हाथ पर रख दिया और दूसरा कैकेयी के हाथ पर। फिर उन दोनों से उन्होंने कहा कि इन हिस्सों को सुमित्रा को दे दो। परन्तु राजा दशरथ का सुमित्रा के साथ ऐसा व्यवहार मुझे सन्देहयुक्त तथा अनुचित जान पड़ता है। अतएव ये चौपाइयाँ भ्रमोत्पादक हैं। वाल्मीकिजी से भी यह बात ठीक ठीक नहीं ज्ञात होती कि कौन कौन कितने कितने भाग से उत्पन्न हुए थे। कुछ भी हो, वाल्मीकीय तथा अध्यात्मरामायण से यह प्रमाणित है कि लक्ष्मण और शत्रुघ्न सुमित्रा ही के पुत्र थे। तुलसीदासजी ने भाग-व्यवस्था तो अध्यात्म-रामायण के आधार पर की है; परन्तु किसने किसके उदर से जन्म लिया यह बात लक्ष्मण और शत्रुघ्न के विषय में स्पष्टतापूर्वक उन्होंने नहीं लिखी। हाँ लङ्का-काण्ड में पहुँच कर उन्होंने लक्ष्मणजी के विषय में स्पष्ट लिखा है कि वे अपनी माता के अकेले थे। ऊपर की नं० ३ चौपाइयों में जब वशिष्ठजी नाम-करण करने गये तब पहले उन्होंने रामचन्द्रजी ही का नाम-करण किया। तत्पश्चात् भरतजी का। इसके उपरान्त शत्रुघ्नजी का, और अन्त में लक्ष्मणजी का। यह बात तो निर्विवाद है ही कि लक्ष्मणजी शत्रुघ्न से जेठे थे। इससे उनका नाम-करण शत्रघ्नजी से पहले होना ही चाहिए था। परन्तु ऊपर की चौपाइयों के अनुसार उनका नाम-करण पीछे हुआ है। इसका कारण यही जान पड़ता है कि वशिष्ठजी पहले सबसे जेठे पुत्र रामचन्द्रजी का नाम-करण करने के लिए कौशल्या के मन्दिर में गये। तदनन्तर रामचन्द्रजी से छोटे भरतजी का नामकरण करने को कैकेयी के महलों में पधारे; वहाँ शत्रुघ्नजी भी थे। इस कारण भरतजी के पश्चात् वहीं के वहीं उनका भी नाम-करण हो गया। और, अन्त में, सुमित्रा के महल में लक्ष्मणजी का नामकरण किया गया। इन सब बातों पर विचार करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि गोस्वामीजी के अनुसार लक्ष्मणजी अपनी जननी के एक मात्र कुमार थे। फिर, अपनी ननसाल से लौटने पर शत्रुघ्नजी का सुमित्रा से कुछ भी वार्तालाप न करना, तथा वन-गमन के समय सुमित्रा का शत्रुघ्न के विषय में कुछ न कहना भी इसी बात को सिद्ध करता है।

आज, राम-सेवक जस लेऊँ।
भरतहिं समर-सिखावन देऊँ॥
राम-निरादर कर फल पाई।
सोवहु समर-सेज दोउ भाई॥

इन चौपाइयों से भी भरत और शत्रुघ्न का एक ही माता के पुत्र होना सिद्ध होता है।

"सौंपेउ मोंहि तुमहिं गहि पानी"—इसमें समालोचक महाशयों ने भूल बतलाई है। परन्तु नहीं जान पड़ता कि इसमें भूल कहाँ पर है। सुमित्राजी ने स्पष्ट कहा था कि—"तात तुम्हा मातु वैदेही-पिता राम सब भाँति सनेही"—फि यह सौंपना नहीं था तो क्या था?

"मिलइ न जगत सहोदर भ्राता"—यहाँ प यथार्थ में "सहोदर" शब्द के ऊपर कुछ आक्षे किया जा सकता है। परन्तु मेरी समझ में य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्द कुछ विशेष प्रयोजनीय नहीं है। इसके सिवा एक हिसाब से चारों भाई सहोदर ही थे, क्योंकि किसी का जन्म गर्भ से तो था ही नहीं; सब अग्नि के चरु से प्रकट हुए थे। फिर, इसका भी तो विचार करना चाहिए कि भीषण युद्ध-स्थल में लक्ष्मण धराशायी हुए थे। यदि रामचन्द्रजी, उस समय, सारी सेना के सामने, उन्हें सहोदर कह कर न पुकारते तो क्या सौतेला कह कर पुकारते? यथार्थ में, समग्र सेना के समक्ष लक्ष्मणजी को सहोदर कह कर रामचन्द्रजी ने उन पर अपनी अखण्डनीय प्रीति होने का परिचय दिया है। और, पाठक महाशयों से एक प्रश्न मैं यह भी करता हूँ कि क्या इस पद का अर्थ यह नहीं हो सकता कि—हे भाई तुम्हारे सदृश-सहोदर भाई भी जगत् में नहीं मिल सकते?

यह लेख बहुत बढ़ गया है। इससे मैं इसे यहीं समाप्त करता हूँ। लेखकों की तुलसीदास-सम्बन्धिनी ही सब आक्षेप-पूर्ण बातों का उत्तर देने से एक बहुत बड़ा ग्रन्थ बन जायगा। नवरत्न के रचयिताओं ने जितनी शक्ति और विद्वत्ता नवरत्न के बनाने में ख़र्च की है उतनी ही शक्ति और विद्वत्ता यदि वे महाशय किसी कला-कौशल की पुस्तक बनाने में ख़र्च करते तो लोगों का अधिक उपकार होता और हिन्दी-साहित्य की वृद्धि करने का जो उनका अभिप्राय है वह भी अधिक सिद्ध होता। नवरत्न सदृश ग्रन्थ ऐसे हैं कि आज बने और कल विस्मृति के गर्भ में लुप्त हो गये।

राजकुमार-कालेज, रायपुर। ठाकुर रतनसिंह, बी० ए०।

सरस्वती-समाराधन।

मातः सरस्वति! कहाँ वह शक्ति मेरी
जो मैं भला कर सकूँ स्तुति पूर्ण तेरी?
मैं मन्द, मूक, जड़, कुण्ठित बुद्धिवाला,
तेरी महा महिमता विशदा, विशाला॥ १॥

तेरी प्रशस्ति रच के तुझको सुनाना
है दीप से रवि-विभा रवि को दिखाना।
माँ को ममत्व सुत का अथवा सिखाना;
या तोय जह्नुतनया-तन पै चढ़ाना॥ २॥
माता न क्या पय स्वयं शिशु को पिलाती
जौ लौं उसे स्वजननी-स्तुति आ न जाती?
अत्यल्प भी क्षुधित हो जब वत्स रोता;
माँ का हिया तुरत ही करुणार्द्र होता॥ ३॥
होता सदैव जब यों दिन रात ही है;
वात्सल्य का गुण मुझे जब ज्ञात ही है।
तो मैं तुझे तुरत ही सिर क्यों न नाऊँ?
विज्ञप्ति केवल न क्यों अपनी सुनाऊँ॥ ४॥
जो शान्त चित्त रहना शुभ मानते हैं;
जो शान्ति-साधन-क्रिया सब जानते हैं।
वाग्देवि! वे कलह-वर्ज्जन-योग्य होवें;
संस्कार-शास्त्र-गुरुवर्य्य मनोज्ञ होवें॥ ५॥
बातें विषाक्त कर जो यह सोचते हैं—
"सारा समाज-दुख तो हम मोचते हैं"।
सारा मुखस्थ उनका विष दे निकाल
जाते सु-निर्विष किये जिस भाँति व्याल॥ ६॥

जो देख के प्रकृति की सुषमा अपार
होते विमुग्ध विधि की कृति को विचार।
दे तू उन्हें छवि-निदर्शन-शक्ति ऐसी
हैं चाहते हृदय से छविकार जैसी॥ ७॥
जो दास हो कुरुचि के सब को सिखाते
खोटी तथा प्रकृति के विपरीत बातें।
तू दोष-पूरित महा उनके विचार—
माता! मदीय विनती सुन दे सुधार॥ ८॥

जो भक्ति के भजन में श्रम भूलता है;
निर्वाहता नियम की अनुकूलता है।
तेरा सदैव उसके मुख में निवास
होवे; वहाँ नित करे निज तू विलास॥ ९॥
जो अल्प-बुद्धि नर अल्पवयस्क होके
स्वेच्छानुसार बकता,—रसना न रोके।
तू दे उसे सुमति और विवेक देवि!
होवे सभक्ति जिससे वह लोक-सेवी॥ १०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे तू हमें स्वपदभक्ति प्रमादहारी
सारी सुषुप्ति विनसे जिससे हमारी।
है तू सुबुद्धि-वरदा सब जान जावें;
तेरी महान महिमा इस भांति गावें॥ ११॥
गुणीश-गण-वन्दिता; विबुध-वृन्द-सम्पूजिता;
सु-वर्ण-समलङ्कृता; विशद-विश्वविद्या-स्मृता;
जड़त्व-तम-नाशिनी; विमल-चन्द्र-संकाशिनी;
सदा सदुपदेशदा; जय सरस्वती सर्व्वदा!

सत्कविदास।

आचरण की सभ्यता।

[२]

जगत् के अनेक सम्प्रदाय अनदेखी और अनजानी वस्तुओं का वर्णन करते हैं; पर अपने नेत्र तो अभी माया के पटल से बन्द हैं—और धर्मानुभव के लिए माया-जाल में उनका बन्द होना आवश्यक भी है। इस कारण मैं उनके अर्थ कैसे जान सकता हूँ? वे भाव—वे आचरण—जो उन आचार्यों के हृदय में थे और जो उनके शब्दों के अन्तर्गत मौनावस्था में पड़े हुए हैं, उनके साथ मेरा सम्बन्ध, जब तक मेरा भी आचरण उसी प्रकार का न हो जाय तब तक, हो ही कैसे सकता है? ऋषि को तो मौन पदार्थ भी उपदेश दे सकते हैं; टूटे फूटे शब्द भी अपना अर्थ भासित कर सकते हैं; तुच्छ से भी तुच्छ वस्तु उसकी आँखों में उसी महात्मा का चिह्न है जिसका चिह्न उत्तम से उत्तम पदार्थ है। राजा में फ़क़ीर छिपा है और फ़क़ीर में राजा। बड़े से बड़े पण्डित में मूर्ख छिपा है और बड़े से बड़े मूर्ख में पण्डित। वीर में कायर और कायर में वीर सोता है। पापी में महात्मा और महात्मा में पापी डूबा हुआ है।

वह आचरण, जो धर्म-सम्प्रदायों के अनुच्चारित शब्दों को सुनता है, हम में कहाँ? जब वही नहीं तब फिर क्यों न ये सम्प्रदाय हमारे मानसिक महाभारतों के कुरुक्षेत्र बनें? क्यों न अप्रेम, अपवित्रता, हत्या और अत्याचार इन सम्प्रदायों के नाम से हमारा ख़ून करें? कोई भी धर्म-सम्प्रदाय आचरण-रहित पुरुषों के लिए कल्याणकारक नहीं हो सकता और आचरण वाले पुरुषों के लिए सभी धर्म-सम्प्रदाय कल्याण-कारक हैं। सच्चा साधु धर्म को गौरव देता है; धर्म किसी को गौरवान्वित नहीं करता।

आचरण का विकाश जीवन का परमोद्देश है। आचरण के विकाश के लिए नाना प्रकार की सामग्रियों का, जो संसार-सम्भूत शारीरिक, प्राकृतिक, मानसिक और आध्यात्मिक जीवन में वर्त्तमान हैं, उन सब की सबका—क्या एक पुरुष और क्या एक जाति के आचरण के विकाश के साधनों के सम्बन्ध में विचार करना होगा। आचरण के विकाश के लिए जितने कर्म हैं उन सबको आचरण के संगठन-कर्त्ता धर्म के अङ्ग मानना पड़ेगा। चाहे कोई जितना बड़ा महात्मा क्यों न हो वह निश्चय-पूर्वक यह नहीं कह सकता कि यों ही करो, और किसी तरह नहीं। आचरण की सभ्यता की प्राप्ति के लिए वह सबको एक पथ नहीं बता सकता। आचरण-शील महात्मा स्वयं भी किसी अन्य की बनाई हुई सड़क से नहीं आया; उसने अपनी सड़क स्वयं ही बनाई थी। इसी से उसके बनाये हुए रास्ते पर चल कर हम भी अपने आचरण को आदर्श के ढाँचे में नहीं ढाल सकते। हमें अपना रास्ता अपने ही जीवन की कुदाली की एक एक चोट से रात दिन बनाना पड़ेगा और उसी पर चलना भी पड़ेगा। हर किसी को अपने देश-कालानुसार राम-प्राप्ति के लिए अपनी नैया आप ही बनानी पड़ेगी और आप ही चलानी भी पड़ेगी।

यदि मुझे ईश्वर का ज्ञान नहीं तो ऐसे ज्ञान ही से क्या प्रयोजन? जब तक मैं अपना हथौड़ा ठीक ठीक चलाता हूँ और रूपहीन लोहे को तलवार के रूप में गढ़ देता हूँ तब तक यदि मुझे ईश्वर का ज्ञान नहीं तो न होने दो। उस ज्ञान से मुझे प्रयोजन ही क्या? जब तक मैं अपना उद्धार ठीक और शुद्ध रीति से किये जाता हूँ तब तक यदि मुझे आध्यात्मिक पवित्रता का भान नहीं तो न होने दो। उससे सिद्धि ही क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो सकती है? जब तक किसी जहाज़ के कप्तान के हृदय में इतनी वीरता भरी हुई है कि वह महा-भयानक समय में भी अपने जहाज़ को नहीं छोड़ता तब तक यदि वह मेरी और तेरी दृष्टि में शराबी और स्त्रैण है तो उसे वैसा होने दो। उसकी बुरी बातों से हमारा प्रयोजन ही क्या? आँधी हो—बरफ हो—बिजली की कड़क हो—समुद्र का तूफान हो—वह दिन रात आँख खोले अपने जहाज़ की रक्षा के लिए जहाज़ के पुल पर घूमता हुआ अपने धर्म का पालन करता है। वह अपने जहाज़ के साथ समुद्र में डूब जाता है; परन्तु अपना जीवन बचाने के लिए कोई उपाय नहीं करता। क्या उसके आचरण का यह अंश मेरे-तेरे बिस्तर और आसन पर बैठे बिठाये कहे हुए निरर्थक शब्दों के भाव से कम महत्त्व का है?

न मैं किसी गिरजे में जाता हूँ और न किसी मन्दिर में; न मैं नमाज़ पढ़ता हूँ और न रोज़ा ही रखता हूँ; न सन्ध्या ही करता हूँ और न कोई देव-पूजा ही करता हूँ; न किसी आचार्य्य के नाम का मुझे पता है और न किसी के आगे मैं ने सिर ही झुकाया है। तो इससे प्रयोजन ही क्या और इससे हानि भी क्या? मैं तो अपनी खेती करता हूँ; अपने हल और बैलों को प्रातःकाल उठ कर प्रणाम करता हूँ; मेरा जीवन जङ्गल के पेड़ों और पक्षियों की सङ्गति में गुज़रता है; आकाश के बादलों को देखते देखते मेरा दिन निकल जाता है। मैं किसी को धोखा नहीं देता; हाँ, यदि, मुझे कोई धोखा दे तो उससे मेरी कोई हानि नहीं। मेरे खेत में अन्न उग रहा है; मेरा घर अन्न से भरा है; बिस्तर के लिए मुझे एक कमली काफ़ी है; कमर के लिए एक लँगोटी और सिर के लिए एक टोपी बस है। हाथ-पाँव मेरे बलवान् हैं; शरीर मेरा आरोग्य है; भूख ख़ूब लगती है; बाजरा और मकई, छाछ और दही, दूध और मक्खन मुझे और मेरे बच्चों को खाने के लिए मिल जाता है। क्या इस किसान की सादगी और सचाई में वह मिठास नहीं जिसकी प्राप्ति के लिए भिन्न भिन्न धर्म-सम्प्रदाय लम्बी-चौड़ी और चिकनी-चुपड़ी बातों द्वारा दीक्षा दिया करते हैं?

जब साहित्य, सङ्गीत और कला की [illegible] रोम को घोड़े से उतार कर मख़मल के गद्दों [illegible] लिटा दिया—जब आलस्य और विषय-विकार [illegible] लम्पटता ने जङ्गल और पहाड़ की साफ़ हवा [illegible] असभ्य और उद्दण्ड जीवन से रोमवालों का [illegible] मोड़ दिया तब रोम नरम तकियों और बिस्तरों [illegible] ऐसा सोया कि अब तक न आप जागा और न [illegible] उसे जगा ही सका। ऐंग्लो-सैक्सन जाति ने [illegible] उच्च पद प्राप्त किया वह उसने अपने समुद्र, जङ्गल [illegible] और पर्वत से सम्बन्ध रखनेवाले जीवन से ही प्राप्त [illegible] किया। इस जाति की उन्नति लड़ने-भिड़ने, मार [illegible] मारने, लूटने और लूटे जाने, शिकार करने और [illegible] शिकार होनेवाले जीवन का ही परिणाम है। लोग [illegible] कहते हैं—"Righteousness exalteth a nation" अर्थात् केवल धर्म ही जाति को उन्नत [illegible] करता है। यह ठीक है, परन्तु वह धर्म्माङ्कुर, जो [illegible] जाति को उन्नत करता है, इस असभ्य, कर्मीने और [illegible] पाप-मय जीवन की गन्दी राख के ढेर के ऊपर [illegible] नहीं उगता है। मन्दिरों और गिरजों की मन्द मन्द [illegible] टिमटिमाती हुई मोमबत्तियों की रोशनी से योरप [illegible] इस उच्चावस्था को नहीं पहुँचा। वह कठोर जीवन, [illegible] जिसको देश-देशान्तरों को ढूँढते फिरते रहने के [illegible] बिना शान्ति नहीं मिलती; जिसकी अन्तर-ज्वाला [illegible] दूसरी जातियों को जीतने, लूटने, मारने और उन पर [illegible] राज करने के बिना मन्द नहीं पड़ती—केवल वही [illegible] विशाल जीवन समुद्र की छाती पर मूँग दल कर [illegible] और पहाड़ों को फाँद कर उनको उस महानता की [illegible] ओर ले गया और ले जा रहा है। राबिन हुड (Robin Hood) की प्रशंसा में इँगलैंड के जो कवि [illegible] अपनी सारी शक्ति ख़र्च कर देते हैं उन्हें तत्त्व-दर्शी कहना चाहिए; क्योंकि राबिन हुड जैसे भौतिक [illegible] पदार्थों से ही नेलसन और वेलिंगटन जैसे अँगरेज़ [illegible] वीरों की हड्डियाँ तैयार हुई थीं। लड़ाई के आजकल [illegible] के सामान—गोले, बारूद, जंगी जहाज़ और तिज़ा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ती बेड़ों आदि को देख कर कहना पड़ता है कि इनसे वर्तमान सभ्यता से भी कहीं अधिक उच्च सभ्यता का जन्म होगा।

यदि योरप के समुद्रों में जंगी जहाज़ मक्खियों की तरह न फैल जाते और योरप का घर घर सोने और हीरे से न भर जाता तो वहाँ पदार्थ-विद्या के सच्चे आचार्य्य और ऋषि कभी न उत्पन्न होते। पश्चीय ज्ञान से मनुष्य मात्र को लाभ हुआ है। ज्ञान का वह सहरा-बाहरी सभ्यता की अन्तर्वर्तिनी आध्यात्मिक सभ्यता का वह मुकुट—जो आज मनुष्य-जाति ने पहन रक्खा है योरप को कदापि न प्राप्त होता यदि धन और तेज को एकत्र करने के लिए योरपनिवासी इतने कमीने न बनते। यदि सारे पूर्वी जगत् ने इस महत्ता के लिए अपनी शक्ति से अधिक भी चन्दा देकर सहायता की तो बिगड़ क्या गया? एक तरफ़ जहाँ योरप के जीवन का एक अंश असभ्य प्रतीत होता है—कमीना और कायरता से भरा हुआ मालूम होता है—वहीं दूसरी ओर योरप के जीवन का वह भाग, जिसमें विद्या और ज्ञान के ऋषियों का सूर्य्य चमक रहा है इतना महान् है कि थोड़े ही समय में पहले अंश को मनुष्य अवश्यही भूल जायँगे।

धर्म और आध्यात्मिक विद्या के पौधे को ऐसी आरोग्यवर्धक भूमि देने के लिए, जिससे वह प्रकाश और वायु में सदा खिलता रहे, सदा फूलता रहे, सदा फलता रहे यह आवश्यक है कि बहुत से हाथ एक अनन्त प्रकृति के ढेर को एकत्र करते रहें। धर्म की रक्षा के लिए क्षत्रियों को सदा ही कमर बाँधे हुए सिपाही बने रहने का भी तो यही अर्थ है। यदि कुल समुद्र का जल उड़ा दो तो रेडियम धातु का एक कण कहीं हाथ लगेगा। आचरण का रेडियम—क्या एक पुरुष का, और क्या जाति का, और क्या एक जगत् का—सारी प्रकृति को खाद बनाये बिना—सारी प्रकृति को हवा में उड़ाये बिना भला कब मिलने का है? प्रकृति को मिथ्या करके नहीं उड़ाना; उसे उड़ा कर मिथ्या करना है। समुद्रों में डोरा डाल कर अमृत निकालना है। सो भी कितना? ज़रासा! संसार की खाक़ छान कर आचरण का स्वर्ण हाथ आता है। क्या बैठे बिठाये भी वह मिल सकता है?

हिन्दुओं का सम्बन्ध यदि किसी प्राचीन असभ्य जाति के साथ रहा होता तो उनके वर्तमान वंश में अधिक बलवान् श्रेणी के मनुष्य होते—तो उनमें भी ऋषि, पराक्रमी, जनरल और धीरवीर पुरुष उत्पन्न होते। आजकल तो वे उपनिषदों के ऋषियों के पवित्रता-मय प्रेम के जीवन को देख देख कर अहङ्कार में मग्न हो रहे हैं और दिन पर दिन अधोगति की ओर जा रहे हैं। यदि वे किसी जंगली जाति की सन्तान होते तो उनमें भी ऋषि और बलवान् योद्धा होते। ऋषियों को पैदा करने के योग्य असभ्य पृथ्वी का बन जाना तो आसान है; परन्तु ऋषियों को अपनी उन्नति के लिए राख और पृथ्वी बनाना कठिन है; क्योंकि ऋषि तो केवल अनन्त प्रकृति पर सजते हैं; हमारी जैसी पुष्प-शय्या पर मुरझा जाते हैं। माना कि प्राचीन काल में, योरप में, सभी असभ्य थे; परन्तु आजकल तो हम असभ्य हैं। उनकी असभ्यता के ऊपर ऋषि-जीवन की उच्च सभ्यता फूल रही है और हमारे ऋषियों के जीवन के फूल की शय्या पर आजकल असभ्यता का रँग चढ़ा हुआ है। सदा ऋषि पैदा करते रहना, अर्थात् अपनी ऊँची चोटी के ऊपर इन फूलों को सदा धारण करते रहना—ही जीवन के नियमों का पालन करना है।

तारागणों को देखते देखते भारत-वर्ष अब समुद्र में गिरा कि गिरा! एक क़दम और, और धम नीचे! कारण इसका केवल यही है कि यह अपने अटूट स्वप्न में देखता रहा है और निश्चय करता रहा है कि मैं रोटी के बिना जी सकता हूँ; हवा में पद्मासन जमा सकता हूँ; पृथ्वी से अपना आसन उठा सकता हूँ; योगसिद्धि द्वारा सूर्य्य और ताराओं के गूढ़ भेदों को जान सकता हूँ; समुद्र की लहरों पर बे खटके सो सकता हूँ। यह इसी प्रकार के स्वप्न देखता रहा; परन्तु अब तक न संसारही की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न राम ही की दृष्टि में इसका एक भी वचन सत्य सिद्ध हुआ। यदि अब भी इसकी निद्रा न खुली तो बे धड़क शंख फूंक दो! कूच का घड़ियाल बजा दो! कह दो, भारत-निवासियों का इस असार संसार से कूच हुआ!

लेखक का तात्पर्य्य केवल यह है कि आचरण केवल मन के स्वप्नों से कभी नहीं बना करता। उसका सिर तो शिलाओं के ऊपर घिस घिस कर बनता है; उसके फूल तो सूर्य्य की गरमी और समुद्र के नमकीन पानी से बारम्बार भीग कर और सूख कर अपनी लाली पकड़ते हैं।

हज़ारों साल से धर्म-पुस्तकें खुली हुई हैं। अभी तक उनसे तुम्हें कुछ विशेष लाभ नहीं हुआ। तो फिर अपनी हठ में पड़े क्यों मर रहे हो? अपनी अपनी स्थिति को क्यों नहीं देखते? अपनी अपनी कुदाली हाथ में लेकर क्यों आगे नहीं बढ़ते? पीछे मुड़ मुड़ कर देखने से क्या लाभ? अब तो खुले जगत् में अपने अश्वमेध-यज्ञ का घोड़ा छोड़ दो। तुम में से हर एक को अपना अपना अश्वमेध करना है। चलो तो सही। अपने आप की परीक्षा करो।

धर्म के आचरण की प्राप्ति यदि ऊपरी आडम्बरों से होती तो आज कल भारत-निवासी सूर्य्य के समान शुद्ध आचरण वाले हो जाते। भाई! माला से तो जप नहीं होता। गङ्गा नहाने से तो तप नहीं होता। पहाड़ों पर चढ़ने से प्राणायाम हुआ करता है; समुद्र में तैरने से नेती धुलती है; आँधी, पानी और साधारण जीवन के ऊँच-नीच, गरमी-सरदी, ग़रीबी-अमीरी को झेलने से तप हुआ करता है। आध्यात्मिक धर्म के स्वप्नों की शोभा भी तभी भली लगती है जब आदमी अपने जीवन का धर्म पालन करे। खुले समुद्र में अपने जहाज़ पर बैठ कर ही समुद्र की आध्यात्मिक शोभा का विचार होता है। भूखे को तो चन्द्र और सूर्य्य भी केवल आटे की बड़ी बड़ी दो रोटियाँ से प्रतीत होते हैं। कुटिया में बैठ कर ही धूप, आँधी और बर्फ की दिव्य शोभा का आनन्द आ सकता है। प्राकृतिक सभ्यता के आने ही पर मानसिक सभ्यता आती है और तभी स्थिर [illegible] सकती है। मानसिक सभ्यता के होने पर ही [illegible] सभ्यता की प्राप्ति सम्भव है, और तभी [illegible] भी हो सकती है। जब तक निर्धन पुरुष [illegible] अपना पेट भरता है तब तक धनवान् पुरु [illegible] शुद्धाचरण की पूरी परीक्षा नहीं। इसी प्रकार [illegible] तक अज्ञानी का आचरण अशुद्ध है, तब तक [illegible] वान् के आचरण की पूरी परीक्षा नहीं—तब [illegible] जगत् में, आचरण की सभ्यता का राज्य नहीं।

आचरण की सभ्यता का देश ही निराल [illegible] उसमें न शारीरिक झगड़े हैं, न मानसिक, न [illegible] त्मिक। न उसमें विद्रोह है; न जंग ही का [illegible] निशान है; और न वहाँ कोई ऊँचा है, न [illegible] न कोई वहाँ धनवान् है और न कोई वहाँ नि [illegible] वहाँ प्रकृति का नाम नहीं; वहाँ तो प्रेम और [illegible] का अखण्ड राज्य रहता है।

जिस समय बुद्ध-देव ने स्वयं अपने हा [illegible] हाफ़िज़ शीराज़ी का सीना उलट कर उसे [illegible] आचरण का दर्शन कराया उस समय फ़ारि [illegible] सारे बौद्धों को निर्वाण के दर्शन हुए और [illegible] सब आचरण की सभ्यता के देश को प्राप्त हो [illegible]

जब पैग़म्बर मुहम्मद ने ब्राह्मण को चीरा [illegible] उसके मौन-आचरण को नङ्गा किया तब सारे मु [illegible] मानों को आश्चर्य्य हुआ कि काफ़िर में मोमिन [illegible] प्रकार गुप्त था? जब शिव ने अपने हाथ से ई [illegible] शब्दों को परे फेंक कर उसकी आत्मा के नङ्गे [illegible] कराये तो हिन्दू चकित हो गये कि वह नग्न [illegible] अथवा नग्न होने वाला उनका कौन सा शिव [illegible] हम तो एक दूसरे में छिपे हुए हैं। हर एक प [illegible] को परमाणुओं में परिणत कर के उसके प्रत्येक [illegible] माणु में अपने आपको ढूँढना—अपने आपको [illegible] करना—अपने आचरण को प्राप्त करना है। आच [illegible] की प्राप्ति एकता की दशा की प्राप्ति है। चाहे [illegible] की शय्या हो चाहे काँटों की; चाहे निर्धन हो [illegible] धनवान्; चाहे राजा हो चाहे किसान; चाहे [illegible] हो चाहे नीरोग—हृदय इतना विशाल हो जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि उसमें सारा संसार बिस्तर लगा कर आनन्द से आराम कर सकता है; जीवन आकाशवत् हो जाता है और नाना रूप और रङ्ग अपनी अपनी शोभा में बेखटके निर्भय हो कर स्थित रह सकते हैं। आचरण वाले नयनों का मौन-व्याख्यान केवल यह है—"सब कुछ अच्छा है; सब कुछ भला है"। जिस समय आचरण की सभ्यता संसार में आती है उस समय नीले आकाश से मनुष्य को वेद-ध्वनि सुनाई देती है; नर-नारी पुष्पवत् खिल जाते हैं; प्रभात हो जाता है; प्रभात का गजर बज जाता है; नारद की वीणा अलापने लगती है, ध्रुव का शंख गूँज उठता है; प्रह्लाद का नृत्य होता है; शिव का डमरू बजता है; कृष्ण की बाँसुरी की धुन प्रारम्भ हो जाती है। जहाँ ऐसे शब्द होते हैं, जहाँ ऐसे पुरुष रहते हैं, जहाँ ऐसी ज्योति होती है, वही आचरण की सभ्यता का सुनहरा देश है। वही देश मनुष्य का स्वदेश है। जब तक घर न पहुँच जाय, सोना अच्छा नहीं। चाहे वेदों में, चाहे इंजील में, चाहे कुरान में, चाहे त्रिपीठक में, चाहे इस स्थान में चाहे उस स्थान में—कहीं भी सोना अच्छा नहीं। आलस्य मृत्यु है। लेख तो पेड़ों के चित्र सदृश होते हैं; पेड़ तो होते ही नहीं जो फल लावें। लेखक ने यह चित्र इस लिए भेजा है कि सरस्वती में इस चित्र को देख कर शायद कोई असली पेड़ को जा कर देखने का यत्न करे।

पूर्णसिंह।

महाराज शिवि।

भूमि भारत की सदा से सद्गुणों की खान है।
धर्म-रक्षा धर्मनिष्ठा ही यहाँ की बान है॥
दीन-दुखियों पर दया करना यहाँ की शान है।
बस इसीसे आज तक सर्वत्र इसका मान है॥ १॥
और के सुख के लिए अपना सभी सुख छोड़ना।
और के हित के लिए सर्वस्व से मुख मोड़ना॥
जो शरण आवे उसे बढ़ कर बचाना भीति से।
लोक-रञ्जन प्रीति से करना सनातन नीति से॥ २॥
है यही सिद्धान्त सच्चा आर्य हिन्दू जाति का।
उच्च यह संस्कार है अनिवार्य हिन्दूजाति का॥
आज भी इसके निदर्शन हैं नहीं दुर्लभ यहाँ।
नर दयासागर गुणाकर हैं नहीं दुर्लभ यहाँ॥ ३॥
आज भी लाखों अनाथों को मिले आश्रय यहाँ।
आज भी करुणा, कृपा, औदार्य की है जय यहाँ॥
किन्तु ये सद्भाव वैसे ही प्रबल हैं अब नहीं।
किस तरह हों बुद्धि, विद्या, बाहु-बल ही जब नहीं॥ ४॥
पूर्व-युग के लोग थे नीरोग अब रोगी हुए।
उस समय थे शक्तिशाली, अब निबल हैं अधमुए॥
धर्ममय कर्तव्य का तब ध्यान था हर एक को।
हो चले अब स्वार्थपर नर तज विचार-विवेक को॥ ५॥
इस लिए प्राचीन चर्चा का चलाना श्रेय है।
पूर्व-पुरुषों के गुणों की गेय गाथा ज्ञेय है॥
कीर्ति उनकी श्रवण कर श्रद्धा बढ़ेगी, भक्ति भी।
भक्ति से कर्तव्य में उत्साह होगा, शक्ति भी॥ ६॥
कथा एक मनोज्ञ इससे मैं सुनाता हूँ तुम्हें।
पूर्व की अतिशय अमल आभा दिखाता हूँ तुम्हें॥
चन्द्रवंशी वंशभूषण भूप शिवि की यह कथा।
श्रेष्ठ क्षत्रिय-धर्म का सारांश समझो सर्वथा॥ ७॥
जो शरण आवे उसे देना अभय-औदार्य है।
क्षत्रियोचित सज्जनोचित आर्यकुल का कार्य है॥
प्रण यही पालन किया आजन्म नृप शिवि ने भले।
प्राण से प्रण को अधिक जाना, नहीं उससे टले॥ ८॥
एक दिन उनकी सभा में एक पारावत डरा—
आ गिरा कहता हुआ—"मुझको बचाओ, मैं मरा"॥
दीनता से देख कर फिर उस कबूतर ने कहा।
"देव, रक्षा कीजिए, है श्येन पीछे आरहा॥ ९॥
भूप ने उठ कर शरण में उस कबूतर को लिया।
हाथ उस पर फेर कर आश्वस्त शरणागत किया॥
बाज़ भी पहुँचा वहाँ पर काल सा तत्काल ही।
और उसने यों कहा—"क्या धर्म है राजन्, यही॥ १०॥
एक का तो छीन लो आहार, वह भूखों मरे।
दूसरा होकर सुरक्षित चैन से मौजें करे॥
न्याय के दरबार में अन्याय है प्रत्यक्ष क्यों?
आप राजा हैं सभी के, फिर किसी का पक्ष क्यों॥ ११॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म मृगया का न राजन् यों दुलखना चाहिए।
यह पराया खाद्य है; इसको न रखना चाहिए॥
जीव ही है जीव का जीवन जगत में जान लो।
दो मुझे आहार मेरा; प्रार्थना यह मान लो" ॥ १२ ॥
श्येन की यह उक्ति सुन कर भूप ने उत्तर दिया:—
"देख, मैंने जन्म क्षत्रियवंश उज्ज्वल में लिया॥
जो शरण आवे उसे आश्वास देना धर्म है।
निर्बलों का त्राण करना क्षत्रियों का कर्म है॥ १३ ॥
पक्ष लेना दुर्बलों का कुछ नहीं अन्याय है।
सर्वथा नृप के लिए तो यह प्रशंसित न्याय है॥
क्रूर तुझ से, शक्ति पाकर, हैं सताते हीन को।
किन्तु सज्जन शक्ति पाकर हैं बचाते दीन को॥ १४ ॥
मैं न मृगयारत न उसका धर्म्म ही मैं मानता।
सब जगह सब में उसी जगदीश को हूँ जानता॥
जीव जीवन जीव का जो शास्त्रमत से सिद्ध है।
तो अहिंसावाद भी श्रुति में प्रशस्त प्रसिद्ध है॥ १५ ॥
और जो है तू बुभुक्षित, तो बहुत आहार है।
तू मरे भूखों, मुझे यह भी नहीं स्वीकार है॥
मांस दूँगा मैं तुझे, तू श्येन जितना खा सके।
पर कबूतर का न पर भी हाथ तेरे आसके" ॥ १६ ॥
उक्ति-युक्ति नरेश की सुन कर कहा फिर बाज़ ने।
"है न वह स्वीकार मुझको जो कहा महराज ने॥
हूँ शिकारी, मांस मुर्दे का न मैं भोजन करूँ।
आप ही आखेट कर आहार-आयोजन करूँ॥ १७ ॥
हाँ, कबूतर के बराबर मांस अपने अङ्ग का।
काट कर दें आप जो आहार मेरे ढङ्ग का॥
तो मुझे स्वीकार होगी सुव्यवस्था आप की।
पर नहीं इस योग्य है नृप यह अवस्था आप की॥ १८ ॥
रम्य रूप, अनूप वैभव-भोग, सुख, आशा सभी।
क्या कबूतर के लिए नृप छोड़ सकते हो अभी" ॥
भूप ने हँस कर कहा "यह भी मुझे स्वीकार है।
प्राण से प्रण पालना प्राचीन शिष्टाचार है॥ १९ ॥
है नहीं तन का भरोसा, किस घड़ी छुट जायगा।
एक दिन इस रूप का बाज़ार भी लुट जायगा॥
इन्द्रियाँ होंगी शिथिल तब भोग विष बन जायँगे।
मौत मांगेंगे, न पावेंगे, पड़े पछतायँगे॥ २० ॥
और यह ऐश्वर्य भी अस्थिर अनिश्चित पोच है।
छोड़ने में फिर इसे क्या सोच या सङ्कोच है॥
दुःखमय देखे सभी सुख, व्यर्थ उनकी चाह है।
और को सुख दे, यही बस सत्य सुख की राह है॥ २१
जन्म लेने का प्रयोजन आज हल हो जायगा।
धन्य हूँ मैं, जन्म मेरा यह सफल हो जायगा॥
मांस अपने अङ्ग का मैं काट देता हूँ अभी।
आर्य लोगों का किया प्रण टल नहीं सकता कभी" ॥
इस तरह कह कर नृपति ने एक अनुचर को बुला।
मांस अपना तोलने को शीघ्र मँगवाई तुला॥
एक पल्ले पर कबूतर को बिठाया गोद से।
दूसरे पर मांस भी अपना चढ़ाया मोद से॥ २३ ॥
मांस भूपति का कबूतर के वज़न से कम हुआ।
और भी रक्खा, मगर वह भी न उसके सम हुआ॥
इस तरह नृप के बदन का मांस सारा कट गया।
किन्तु विस्मय है, कि, वह भी तौलने पर घट गया॥ २
उस समय उत्साह से उठ कर स्वयं नृप चढ़ गये।
यज्ञ-पूर्णाहुति हुई तब देवगण भी खुश हुए॥
अग्नि-सुरपति, जो कि अब तक भक्ष्य-भक्षक थे बने।
हो प्रकट तत्काल बोले यों नृपति के सामने॥ २५ ॥
"साधु राजन्! हो चुकी बस अब परीक्षा आप की।
धन्य आत्मत्याग में है दिव्य दीक्षा आप की॥
आपके इस धैर्य से हमको बड़ा सन्तोष है।
आपका सुचरित्र अनुकरणीय है, निर्दोष है॥ २६ ॥
तुम प्रतापी प्रिय प्रजा के शान्त शिक्षित शिष्ट हो।
छोड़ कर सङ्कोच हमसे मांग लो जो इष्ट हो॥"
भूप यह सुन कर बहुतही मुदित, पुलकित, नत हुए।
वेदना जाती रही, व्रण अङ्ग से अपगत हुए॥ २७ ॥
दे यथेप्सित वर नृपति को देव अन्तर्हित हुए।
भूप भी उपरागमुक्त मयङ्क से शोभित हुए॥
पाठको, हम क्या बतावें इस कथा के मर्म को।
आप सब शिक्षित स्वयं पहचानते हैं धर्म को॥ २८ ॥

रूपनारायण पाण्डेय (कमलाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपदेश-सार।

(१)

नीति-निधान, निरीह, निरन्तक, मुद-मय, मङ्गल-मूल,
रे पामर ! ऐसे स्वामी को पल भर भी मत भूल।
है तू महा उजड्ड अनाड़ी मूरख निपट अजान,
अपने हित की बातें सब तू सुनले दे कर ध्यान॥

(२)

आठों याम निरन्तर रह तू दुराचार से दूर;
झगड़ा झंझट तज दे सारा हो मत इन में चूर।
माया, मत्सर, मद—इनको तू आने दे मत पास;
कलह, विवाद, विरोध, व्यसन का मत बन जा तू दास॥

(३)

ऐसा काम किया कर जिस से होवे तेरा नाम;
औरों के हित अर्पण कर दे तू तन, मन, धन, धाम।
सङ्कट करना दूर दीन का है नित तेरा काम;
उनके हित के लिए सदा तू कर प्रयत्न अविराम॥

(४)

अपने तिमिराच्छन्न हृदय में करले ज्ञान-प्रकाश;
लण्ठ, लबार, लफंगों पर तू भूल न कर विश्वास।
दीन दुखी अबलाओं को तू भूल न देना त्रास;
होकर तू निर्लोभ छोड़ दे सारी मिथ्या आस॥

(५)

करना धर्म-प्रचार जगत में, रख अपना उद्देश;
कभी न होने दे तू अपने मन में द्वेष-प्रवेश।
भूल भलाई मत औरों की; होजा तू निःस्वार्थ;
पीछे पद मत कभी हटाना करने में परमार्थ॥

(६)

कभी न निज कर्त्तव्य कर्म से मुख अपना तू मोड़;
बान्धव-बन्धु-जनों से चाहे निज नाता दे तोड़।
साधु-सङ्ग, जगदीश-भजन भी दया, दीन-उपकार;
चतुर्वेद, षट्-शास्त्र सभी का सुन ले है यह सार॥

(७)

सुख में तू सम्पत्ति देख कर मत जाया कर फूल;
अथवा दुख में दुःखित होना—है यह तेरी भूल।
सुख, दुख, पाप, पुण्य का जग में है अति अद्भुत मेल;
है यह दुनिया सचमुच सारी इन्द्रजाल का खेल॥

(८)

"तन, मन, धन जो मेरा आवे काम किसी के अर्थ;
तभी सफल क्षण-भङ्गुर जीवन, हुआ नहीं तो व्यर्थ"।
मन में तेरे ऐसे सुन्दर जब आवें सुविचार,
तबही तेरा भव-सागर से होगा बेड़ा पार॥

(९)

है तू कौन ? कहाँ से आया ? क्या है सब में सार ?
इन बातों पर सब से पहले करले खूब विचार।
पर-नारी का सपने में भी आने दे मत ध्यान;
सत्य मान तू—निश्चय होगा तब तेरा कल्याण॥

(१०)

छोड़ कपट के काम सभी तू करता रह उपकार;
दयावान, विद्वान, गुणागर, सरल, सुशील, उदार।
सच्चे श्रम के फल से करदे औरों को खुश-हाल;
पर अधर्म से द्रव्य कमाकर मत हो मालामाल॥

(११)

दुर्जन, दुष्ट, हठी लोगों का त्याग सर्वथा सङ्ग;
सत्यवान, सज्जन पुरुषों के सीख सभी तू ढङ्ग।
द्वेषभाव दे छोड़, सभी से मीठी बोली बोल;
चाहे जो हो—मत खोला कर तू औरों की पोल॥

(१२)

सच को अपनी जिह्वा से तू होने दे मत दूर;
भूल कभी अपशब्द न कहना हो भी यदि मजबूर।
थोड़े में भी सदा किया कर मन में तू सन्तोष।
सुन कर भी कटुवचन कभी तू ला मत मन में रोष॥

(१३)

सङ्कट देख सामने अपने कभी न कहना 'हाय';
धीरज धर के उसे झेलना साहस उर में लाय।
भग्न-मनोरथ होकर भी तू श्रम करना मत छोड़;
सारी विषय-वासनाओं से अपना मुख ले मोड़॥

(१४)

अगर याचना करने तुझसे आवें भिक्षुक पास;
यथा-शक्ति तू जाने मत दे उनको कभी निराश।
कोई अतिथि अगर आजावे सहसा तेरे द्वार,
जैसा तुझ से बने यथोचित कर उसका सत्कार॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१५)

यहाँ वहाँ से उत्तम उत्तम मँगवा कर अख़बार ;
अच्छे अच्छे लेख लिखाकर हफ़्ते में दो चार।
लिख लिख शिक्षा-पूर्ण पुस्तकें पूरा कर साहित्य ;
सरस्वती के सुखद भवन में क्रीड़ा कर तू नित्य ॥

(१६)

कुछ भी तूने अगर दिया है इन बातों पर ध्यान ;
अल्प काल में होजावेगा तो सुजान सज्ञान।
रे जड़मति के कोश ! नहीं तो इस दुनिया के बीच—
तन अपना अनमोल गँवाया रहा नीच का नीच ॥

रामदयालु।

स्वामिभक्त जयन्त।

(१)

स्याम देश का राजा बहुत दिनों से रोगी था। जब उसको अपनी मृत्यु अत्यन्त निकट आई हुई जान पड़ी तब उसने अपने स्वामिभक्त सेवक जयन्त को अपने पास बुलाया और कहा :—यह तो तुम्हें भली भाँति विदित है ही कि मेरे जीवन का अन्त समय आ पहुँचा है। अतएव तुम्हें उचित है कि इस समय मेरी दो इच्छाओं के पूर्ण करने की शपथ करो, जिससे मैं सुखपूर्वक प्राण छोड़ूँ और मृत्यु के पश्चात् मेरी आत्मा को शान्ति मिले।

जयन्त ने हाथ जोड़ कर विनती की कि आपने मुझे बचपन से पुत्रवत् पाला है और अन्य सेवकों की अपेक्षा मुझ ही पर कृपा भी अधिक की है। अतएव आप विश्वास कीजिए कि आपकी आज्ञा का पालन आपके न रहने पर भी मैं उसी भाँति करता रहूँगा जैसा कि अभी तक आपके जीवन-काल में करता रहा हूँ।

राजा ने कहा कि मेरी एक इच्छा तो यह है कि मेरे पुत्र का साथ तुम किसी अवस्था में भी मत छोड़ना और सर्वदा उसकी रक्षा करते रहना। क्योंकि वह अभी अज्ञान बालक है। उसको संसार के भले-बुरे और सुख-दुःख का कुछ भी अनुभव नहीं है। मेरी दूसरी इच्छा यह है कि मेरे पश्चात् इस गढ़ में जितने कोठे और कोठरियां हैं वे सब उसे दिखला देना और उनके भेद भी, जो मैं तुम्हें बतला चुका हूँ, बतला देना। परन्तु इतना ध्यान रखना कि वह उस कोठरी की कुंजी न जाने पावे जिसमें चीन देश की राजकुमारी की प्रतिमा रक्खी हुई है। क्योंकि, सम्भव है, उस प्रतिमा के देखने से उसके चित्त में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हो और वह उसके कारण किसी विपत्ति में पड़ जाय।

जयन्त ने राजा से रोते हुए कहा कि आप इन बातों के कारण अपने हृदय को दुःख न दें। मैं सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं राजकुमार की उसी भाँति सेवा करता रहूँगा जिस भाँति कि अभी तक आपकी करता रहा हूँ। आप विश्वास रखिए, जो कुमार के प्राणों की रक्षा के लिए मुझे अपने प्राण भी देने की आवश्यकता होगी तो मैं दे दूँगा। निश्चय रखिए जैसी आपकी इच्छा है, सब काम तदनुकूलही होगा। मैं कुमार को वह प्रतिमा वाली कोठरी कभी न दिखलाऊँगा। राजा ने कहा, मुझे तुमसे ऐसा ही उत्तर पाने की आशा थी। अब मुझे कुछ सोच नहीं है। मैं अब सुख से प्राण त्याग कर सकूँगा।

निदान जब राजा मर गया तब देश की रीति के अनुसार राजकुमार का राज्याभिषेक हुआ और वह स्याम देश का राजा कहलाने लगा। जयन्त ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अपने नये स्वामी को गढ़ की सब कोठरियां दिखा दीं और उनके भेद भी पूर्णरूप से बतला दिये। केवल वही कोठरी नहीं दिखाई जिसमें चीन की राजकुमारी की प्रतिमा थी॥

(२)

बहुत समय व्यतीत हो गया। जयन्त के सर्वदा साथ रहने के कारण राजकुमार सब विघ्न-बाधाओं से बचा रहा। यथासमय उसे युवावस्था प्राप्त हुई और वह अपने राज्य का काम-काज स्वयं देखने लगा।

एक दिन राजकुमार घूमते फिरते अचानक गढ़ के उस भाग से जा निकला जहाँ वह प्रतिमावाली कोठरी थी। उसने जयन्त से, जो उस समय भी उसके साथ था, पूछा कि क्या कारण है जो इस कोठरी में सदैव ताला पड़ा रहता है। तुमने न कभी मुझे इसे दिखाया और न इसका कुछ भेद ही बतलाया। इसे खोलो तो। देखें, इस में क्या है।

जयन्त ने कहा, यह एक मामूली कोठरी है। इसमें ऐसी कोई चीज़ नहीं जो देखने योग्य हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकुमार ने देखा कि जयन्त बात को टाल रहा है। अतएव उसे देखने की इच्छा उसके मन में और भी प्रबल हुई। वह बोला कि जो इसमें कुछ नहीं है तो इसके खोलने में इतनी आनाकानी क्यों ?

अन्त में निरुपाय होकर जयन्त को कहना पड़ा कि आपके पिता से मैं इस कोठरी को आपको न दिखलाने के विषय में प्रण कर चुका हूँ। इस कारण इस समय मैं आपकी आज्ञा की प्रतिकूलता करने के लिए विवश हूँ। आशा है कि आप मुझे क्षमा करेंगे।

राजकुमार ने अप्रसन्न होकर कहा कि यदि तुम मुझे इसे इसलिए नहीं दिखलाते हो कि तुम मेरे पिता को वचन दे चुके हो तो तुम स्वयं मत खोलो। ताली मुझको दो; मैं आप खोल लूँगा।

जयन्त ने बड़ी नम्रता से कहा कि बड़ों की आज्ञा के विरुद्ध काम करने से सदा दुःख होता है। जो इस कोठरी को खुलवाने के लिए आप हठ करेंगे तो निश्चय आपको पछताना पड़ेगा।

राजकुमार को जयन्त की हितकर बातें बुरी लगीं। उसका क्रोध और भी बढ़ गया। उसने बड़ेही कड़े शब्दों में कहा—मैं आज्ञा देता हूँ; तुम तुरन्त इस कोठरी को खोलो; नहीं तो मेरा खड्ग तुमको अभी इसका प्रतिफल देगा।

जब बात यहाँ तक पहुँची तब जयन्त को दृढ़ विश्वास होगया कि यह आपत्ति किसी भांति नहीं टल सकती। निदान बहुत कुछ सोचने विचारने पर भी जब जयन्त को कोई उपाय न सूझा तब उसने विवश होकर ताला खोल दिया और स्वयं शीघ्रता से भीतर घुस कर उसकी इच्छा थी कि वह प्रतिमा को कहीं छिपा दे, जिससे राजकुमार की दृष्टि उस पर न पड़े; परन्तु उसकी यह चेष्टा भी निष्फल हुई, क्योंकि उसके साथ ही राजकुमार ने भी प्रवेश किया। ज्योंही राजकुमार ने उस प्रतिमा की ओर देखा त्योंही वह अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

जयन्त ने सेवकों को बुलाया। कोठरी में ताला लगा कर उनकी सहायता से वह राजकुमार को राजमन्दिर में ले गया।

(३)

बहुत यत्न करने पर जब राजकुमार को चेतनता हुई और उसमें बोलने की शक्ति आई तब वह शोक से व्याकुल होकर रोने लगा। जयन्त ने उससे बातचीत करने की बहुतेरी चेष्टा की, परन्तु वह किसी प्रकार न बोला। चुपचाप एक कोने में वह बैठा रह गया। उसकी दशा देख जयन्त को शङ्का हुई कि कहीं वह पागल न हो जाय। वह विचार कर उसने राजा को सावधान किया और कहा कि आप धैर्य रखिए। निराश होने की कोई बात नहीं। आप की जो इच्छा होगी मैं उसे यथाशक्ति पूर्ण करने का प्रयत्न करूँगा।

अन्त को बहुत कुछ समझाने बुझाने से राजकुमार को कुछ धीरज आया। उसने जयन्त से कहा कि तुम मेरे पिता के तुल्य हो। तुम्हारे अतिरिक्त मैं और किसी पर विश्वास नहीं करता। जिसकी प्रतिमा मैंने उस कोठरी में देखी है उसी के साथ यदि मेरा विवाह होगा तो मेरे प्राण बचेंगे।

जयन्त ने कहा, आप घबराइए नहीं। मैं तन, मन, धन से आपका अभीष्ट-साधन करने के लिए प्रस्तुत हूँ। जिसकी आपने प्रतिमा देखी है वह चीन-देश की राजकुमारी है। आपके पिता से और चीन के राजा से बहुत पुराना वैर था। इस लिए आपके पिता ने चीन-नरेश से सम्बन्ध करना असम्भव जान कर मुझ से प्रतिज्ञा करा ली थी कि वह कोठरी मैं आपको न दिखलाऊँ।

राजकुमार ने अत्यन्त विनीत भाव से कहा कि जो तुम उस राजकुमारी को किसी तरह यहां ले आओ और मेरा विवाह उसके साथ करवा दो तो मैं जन्म भर तुम्हारा उपकार मानूँगा।

जयन्त ने कहा, मैं किसी न किसी उपाय से उस कुमारी को यहां ज़रूर ले आऊँगा और उसके साथ आपका विवाह अवश्य करूँगा। इस प्रकार जयन्त के प्रतिज्ञा करने पर राजकुमार का चित्त ठिकाने तो आ गया, परन्तु राजकीय विषयों में उसका ज़रा भी मन न लगता था। दिन रात केवल उसी प्रतिमा का उसे ध्यान था।

(४)

जयन्त ने जासूस भेज कर चीन की सारी गुप्त बातें जानलीं। उनके द्वारा इस बात की भी उसने टोह लगा ली कि वहां की राजकुमारी किन किन बातों से प्रसन्न होती है और किन किन पदार्थों की ओर उसकी विशेष रुचि है।

जब यह सब वृत्तान्त उसे विदित होगया तब उसने चीन की यात्रा करने के लिए यथोचित प्रबन्ध करना आरम्भ किया। पहले तो उसने एक बहुत अच्छा और शीघ्रगामी जहाज़ बन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाया। फिर उसमें भांति भांति की ऐसी चीज़ें इकट्ठी कीं जैसी कि प्रायः चीनवालों को पसन्द आती थीं। इसके अनन्तर पांच मन सोना गलवा कर नाना प्रकार के सुन्दर सुन्दर खिलौने और आभूषण उसने बनवाये। उसने जान लिया था कि चीन की राजकुमारी इन चीज़ों को देख कर अवश्य प्रसन्न होगी। जब जहाज़ इन आभूषणादि तथा अन्य व्यापार-सम्बन्धी वस्तुओं से लद गया तब जयन्त ने राजकुमार और राज्य के कई प्रधान प्रधान कर्मचारियों को साथ लेकर चीन के लिए प्रस्थान किया। वायु अनुकूल होने के कारण थोड़े ही समय में जहाज़ कुशलपूर्वक चीन की राजधानी के पास, जो उस समय समुद्र के तट पर ही थी, जा पहुँचा।

जयन्त ने और सब लोगों को जहाज़ ही पर छोड़ा। आप थोड़े से रत्नजटित आभूषण और खिलौने लेकर नगर की ओर चला। घूमता फिरता वह राजमन्दिर के फाटक पर पहुँच गया। वहाँ अपने को एक बड़े व्यापारी का सेवक प्रकट कर के उसने एक द्वारपालिका दासी के द्वारा अन्तःपुर में कहला भेजा कि मेरे स्वामी के पास तरह तरह के बहुमूल्य जड़ाऊ आभूषण और खिलौने बेचने के लिए हैं। वे राजाओं हीं के मोल लेने योग्य हैं। जो आप उन्हें मोल लें तो मुझ पर और मेरे स्वामी पर बड़ा अनुग्रह हो। इस सूचना के साथ ही उसने थोड़े से आभूषणादि भी, जो अपने साथ दिखाने के लिए ले गया था, भीतर भिजवा दिये।

राजकुमारी उन खिलौनों और आभूषणों को देख कर बहुत प्रसन्न हुई। उसने स्वयं बाहर आकर कहा कि ये तुम्हारे आभूषण निस्सन्देह बहुत मनोहर हैं। इनको तो मैं मोल ले ही लूँगी। परन्तु तुम्हारे स्वामी के पास जो और भी इसी प्रकार के पदार्थ हों तो उन सबको भी मैं मोल लेना चाहती हूँ।

जयन्त ने उत्तर दिया कि इस प्रकार की, और अन्यान्य देशों की भी, असंख्य चीज़ें हमारे पास हैं। परन्तु उन सबको जहाज़ से उठा कर यहां लाना कठिन काम है। जो आप ही दया करके वहाँ चली चलें और सब वस्तुओं को ख़ुद ही देख कर अपनी इच्छानुकूल छांट लें तो बड़ी कृपा हो।

राजकुमारी ने कहा, ठीक है। यही उचित भी जान पड़ता है। मुझे वहाँ तक चलने में कुछ कष्ट न होगा। मैं अभी तुम्हारे साथ चलती हूँ। यह कह कर राजकुमारी अपने साथ अपनी दासियों और कुछ सेवकों को ले कर जयन्त के हो ली। सब लोग परस्पर बातचीत करते हुए जहाज़ की चल दिये। राजकुमार पहले ही से तट पर आकर बड़ी उत्सु से जयन्त के लौटने की प्रतीक्षा कर रहा था। जब उसने कि जिस मूर्त्ति का वह रात दिन ध्यान किया करता था धीरे धीरे उसकी ओर आ रही है, और उसके पीछे पीछे विश्वासपात्र जयन्त भी आ रहा है, तब उसकी विचित्र हुई। उसका हृदय कांपने लगा, सिर चकराने लगा चेतनता धीरे धीरे जाने लगी। जयन्त ने दूर ही से राजकु के मुख को देख कर उसके मन के भाव और उद्वेग को लिया। अतएव उसने शीघ्रता से दौड़ कर उसको सँभा और धीरे से कहा कि यह शत्रुओं का देश है। जो आप भी असावधानी करेंगे तो निश्चय सबके प्राण जायँगे। सावधान हो कर राजकुमारी की अगवानी कीजिए। आदर-सत्कार के साथ जहाज़ पर ले आइए। इस सफलता आप ही की बुद्धि पर अवलम्बित है। जो ज़रा भी भूल करेंगे तो सारा श्रम व्यर्थ जायगा। राजकुमार जयन्त की शिक्षा के अनुसार अपने मन के वेग को रोक बड़ी आवभगत से राजकुमारी से मिला और आगे बढ़ नम्रतापूर्व्वक मीठी मीठी बातें करने लगा।

राजकुमारी ने शिष्टाचार के नियमों के अनुसार अनेक से अपनी कृतज्ञता प्रकट की और राजकुमार के थोड़े ही आग्रह करने पर जहाज़ पर चलना स्वीकार कर लिया।

जयन्त ने अपनी बुद्धिमानी से राजकुमारी के सेवकों को तट ही पर छोड़ दिया। केवल दो चार दासियों और राजकुमारी की एक प्रियतमा सखी के अतिरिक्त और किसी को जहाज़ पर नहीं आने दिया। जैसे ही राजकुमार ने राजकुमारी को जहाज़ के नीचे के भाग में लेजाकर सोने के आभूषण और रत्नजटित खिलौने इत्यादि दिखाने में लगाया वैसे ही जयन्त की आज्ञा के अनुसार मांझियों ने जहाज़ का लङ्गर उठा दिया। जहाज़ हवा हो गया।

जब राजकुमारी साधारणतः सब वस्तुओं को देख चुकी और उनमें से कुछ को पसन्द करके तीर पर लौटने की उसने इच्छा प्रकट की तब राजकुमार उसे जहाज़ की छत पर ले आया। परन्तु उस समय उसके आश्चर्य्य और भय का कुछ ठिकाना न रहा जब उसने देखा कि तट का कहीं पता नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारों ओर, जहां तक दृष्टि जाती है, जल ही जल देख पड़ता है। उसने घबरा कर मांझियों को पुकारा। वह बोली :— रे दुष्टो, यह कैसा विश्वासघात है! मैं आज्ञा देती हूँ कि जहाज़ को अभी तट की ओर ले चलो, नहीं तो तुम्हारे लिए परिणाम अच्छा न होगा। परन्तु जब मांझियों ने उस बात पर कुछ भी ध्यान न दिया तब निरुपाय हो कर वह समुद्र में कूद पड़ने के लिए दौड़ी। परन्तु जयन्त ने उसका अभिप्राय जान लिया। अतएव शीघ्रता से आगे बढ़ कर उसने उसे पकड़ लिया। उसने नम्रतापूर्वक कहा कि आप व्यर्थ क्यों घबराती हैं। मेरे स्वामी यद्यपि वेशभूषा से सामान्य व्यापारी जान पड़ते हैं; किन्तु वास्तव में वे स्याम देश के राजकुमार हैं। उन्होंने आपकी प्रतिमा ही को देख कर खाना पीना सब त्याग दिया है। आप पर वे हृदय से आसक्त हैं। यह सब प्रपञ्च केवल आपको लाने के लिए रचा गया है। उनकी इच्छा आपको कष्ट पहुँचाने की नहीं, किन्तु आपको अपने हृदय का देवता बनाने की है। उन्होंने स्वयं इतना कष्ट इसी लिए सहा है कि आपको वे अपनी पटरानी बनावें। यह सुन कर राजकुमारी के चित्त को ढाढ़स हुआ। उसे यह जान कर प्रसन्नता भी हुई कि जिस सुन्दर और युवा पुरुष को एक साधारण व्यापारी समझ कर वह पहले नीच दृष्टि से देखती थी वह वास्तव में एक प्रतिष्ठित राजकुमार निकला।

फल यह हुआ कि राजकुमारी भी राजकुमार पर प्रेमासक्त हो गई।

(५)

अब यात्रा बड़े सुख से होने लगी। राजकुमार और कुमारी दोनों परस्पर प्रेम में मग्न थे और शीघ्र ही विवाह की आशा से उन्मत्त से हो रहे थे। सेवक लोग भी अपने स्वामी और स्वामिनी को प्रसन्नचित्त देख कर फूले न समाते थे। केवल जयन्त के मुँह पर शोक के कुछ चिह्न देख पड़ते थे। पर उसका स्वभाव ऐसा गम्भीर था कि किसी और पर उसके भेदों का विदित होना सर्वथा असम्भव था।

एक दिन प्रातःकाल राजकुमार और राजकुमारी जहाज़ की छत पर बैठे प्रेमालाप कर रहे थे। जयन्त निकट ही एक कोने में बैठा हुआ अपने ध्यान में लवलीन था। इतने में दैवात् तीन पक्षी कहीं से उड़ते हुए आये और जहाज़ के मस्तूल पर बैठ कर बातें करने लगे। जयन्त, जो पक्षियों की बोली समझता था, बड़े ध्यान से उनकी बातें सुनने लगा। पक्षियों में से एक बोला:—स्याम-देश का राजकुमार चीन की राजकुमारी को उड़ा तो लाया है; परन्तु उसके साथ अपना विवाह कदाचित् न कर सकेगा।

दूसरा बोला—सो क्यों? "मियाँ बीबी राज़ी तो क्या करेगा क़ाज़ी"।

तीसरा—इस विवाह में विघ्न उत्पन्न करने वाले तीन कारण हैं।

दूसरा—बतलाओ तो—वे कौन कारण हैं।

पहला—एक तो यह है कि जब जहाज़ स्याम पहुँचेगा, जो अब अत्यन्त ही निकट है, तब वहां राजकुमार के लिए उसके सेवक एक बड़ा सुन्दर घोड़ा लावेंगे। ज्यों ही राजकुमार उसके पास पहुँचेगा त्यों ही वह ऐसी लात मारेगा कि राजकुमार की तत्काल ही मृत्यु हो जायगी।

दूसरे ने कहा— अच्छा, इससे बचने का भी कोई उपाय है या नहीं?

तीसरा—राजकुमार के पास पहुँचने के पहले ही यदि घोड़ा मार डाला जाय तो वह बच सकता है, अन्यथा नहीं।

दूसरा—और यदि कोई पहले ही से राजकुमार को चैतन्य कर दे कि इस घोड़े के पास न जाना तो?

पहला—राजकुमार उसकी बात कदापि न मानेंगे और जो मनुष्य इन दैवी भेदों के खोलने की चेष्टा करेगा वह स्वयं पैरों से लेकर जांघों तक पत्थर का हो जायगा।

दूसरा—और दूसरी बाधा क्या है?

तीसरा—यदि ईश्वर की कृपा से राजकुमार इस अश्वरूपी काल से बच भी गया तो वैवाहिक वस्त्रों को पहनने पर न बचेगा। वे देखने में तो सोने के तारों से बिने हुए जान पड़ेंगे; परन्तु यथार्थ में गन्धक और कपूर के बने होंगे। जैसे ही वह उन वस्त्रों को धारण करेगा वैसे ही उनमें आग लग जायगी और राजकुमार जल कर भस्म होजायगा।

दूसरा—इन वस्त्रों से भी बचने का कोई उपाय है या नहीं?

पहला—हाँ, पहनने के पूर्व ही यदि वे वस्त्र आग में डाल दिये जायँ तो राजकुमार बच सकता है। पर इस दैवी भेद का खोलने वाला छाती तक पत्थर का हो जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा—और तीसरा विघ्न क्या होगा ?

तीसरा—विवाह हो चुकने पर जब पति-पत्नी एक स्थान पर इकट्ठे होंगे तब शय्या पर पैर रखते ही राजकुमारी अचानक अचेत होकर गिर पड़ेगी और थोड़े ही समयानन्तर उसकी मृत्यु होजायगी।

दूसरा—क्या इस अकाल मृत्यु से राजकुमारी को बचाने का भी कोई उपाय है ?

पहला—हाँ, है। जैसे ही वह अचेत होकर गिरे तैसेही यदि कोई तीक्ष्ण छुरी से उसकी बांई भुजा चीर कर पाव भर रुधिर निकाल दे तो वह बच जायगी। ऐसा करने में यदि तनिक भी विलम्ब होगा तो राजकुमारी के प्राण न बचेंगे।

तीसरा—और यह बात भी अवश्य ही होगी कि जो कोई इस दैवी रहस्य को प्रकाशित करने का साहस करेगा उसका सम्पूर्ण शरीर पत्थर का होजायगा।

पक्षी ये बातें कर ही रहे थे कि एक मांझी ने पुकार कर कहा कि अपने देश की सीमा पर जहाज़ पहुँच गया। निदान तीनों पक्षी उड़ गये और जयन्त इस विचार में निमग्न होगया कि किस प्रकार राजकुमारी और राजकुमार के प्राण इन तीनों सङ्कटों से बचाये जायँ।

(६)

जब तट के पास जहाज़ पहुँचा तब सब लोग जहाज़ से उतर कर नाव-द्वारा तीर पर आये। उन्होंने देखा कि बहुत से आदमी राजकुमार की अगवानी के लिए आये हैं। उसे बड़े समारोह के साथ ले चलने के लिए वे एक अत्यन्त सुन्दर और चपल घोड़ा भी चढ़ने के लिए लाये हैं।

राजकुमार उस घोड़े को देख कर बहुत प्रसन्न हुआ। जैसे ही वह उस पर चढ़ने के लिए आगे बढ़ा वैसे ही जयन्त ने तमंचा निकाल कर घोड़े को गोली मार दी। वह तत्काल ही मर कर गिर पड़ा। राजकुमार जयन्त के इस विचित्र व्यवहार को देख कर चुप हो रहे। परन्तु अन्य लोग, जो जयन्त के ऊपर स्वामी की असीम कृपा देख कर कुढ़ा करते थे, इस सुयोग को पाकर अत्यन्त हर्षित हुए। राजकुमार को एकान्त में पाकर वे कहने लगे कि जो आज आपके पिता जीवित होते तो जयन्त की उद्दण्डता पर उसे अवश्य प्राणदण्ड देते। देखिए, उसने कैसी ढिठाई की कि राजा के सम्मुख ही राजा के चढ़ने के अमूल्य घोड़े को निर्दयता से मार डाला।

राजकुमार ने किञ्चित् क्रोध प्रकाशित करके कहा तुम लोगों को उसके दोष दिखलाने का अधिकार नहीं वह जो कुछ करता है सोच विचार कर ही करता है। उसके हितार्थ इतने कष्ट सहे हैं कि मैं जन्म भर उससे उऋण न हो सकता।

थोड़े दिनों के उपरान्त विवाह का शुभ मुहूर्त आया राजकुमार के लिए विवाह के वस्त्रों का बहुमूल्य रत्नजटित जोड़ा लाया गया। जैसे ही राजकुमार ने उसे लेने के लिए हाथ बढ़ाया तैसे ही जयन्त ने झपट कर उन वस्त्रों को उसके चीमटे से पकड़ कर अग्निकुण्ड में फेंक दिया। आग में पड़ते ही वह जल कर भस्म हो गया। इस पर भी लोगों ने राजकुमार से कहा कि जान पड़ता है जयन्त की बुद्धि भ्रष्ट होगई। विवाह की शुभ सामग्री को अग्नि में डालनेवाले अपराध को आपके पिता कभी क्षमा न करते।

राजकुमार ने क्रुद्ध होकर कहा—उसे अपराधी ठहरानेवाले तुम कौन हो ? उसका कोई भी काम बिना कारण के नहीं होता। विवाह की रीतियों के समाप्त हो जाने पर वर-वधू के एकत्र होने का समय आया।

जयन्त ने बहुत सोच विचार के उपरान्त यही निश्चय किया कि, फल चाहे कुछ हो, उसका कर्तव्य यही है कि किसी प्रकार पक्षियों की बताई हुई भावी दुर्घटना से राजकुमारी के प्राण बचाऊँ। यह विचार कर वह पहले ही से एक तीक्ष्ण छुरी लेकर शयनागार में पहुँचा और राजकुमार के पलँग के नीचे जा छिपा।

जैसे ही रात को राजकुमार और राजकुमारी दोनों एक हुए वैसेही राजकुमारी सहसा अचेत होकर गिर पड़ी।

जयन्त इसी समय की प्रतीक्षा कर रहा था। बिजली की तरह तड़प कर पलँग के नीचे से वह निकल आया और तत्काल ही ज्ञानशून्य राजकुमारी की बाँह को चीर डाला और पाव भर खून निकाल लिया।

राजकुमार इस भयङ्कर लीला को देख कर सहम गया और कुछ न समझ सका कि सब क्यों किया गया।

रुधिर निकल जाने से राजकुमारी को होश आया। परन्तु दुर्बलता के कारण वह उठ न सकी। वह भी इस आश्चर्यजनक व्यापार को देख कर डर गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जयन्त अपना काम पूरा करके वहाँ से चलने ही को था कि राजकुमार पददलित सर्प की तरह खड्ग निकाल कर उस की ओर बढ़ा। कम्पितस्वर से चिल्ला कर उसने कहा—अरे दुष्ट, मैं तेरे कई अपराधों को क्षमा कर चुका हूँ। पर अब तेरी इस धृष्टता को कभी क्षमा न करूँगा। यदि तू इसी क्षण सब भेद न खोल देगा कि क्यों तू छुरी लेकर यहां छिपा था तो यह खड्ग अवश्य ही तेरी मृत्यु का कारण होगा।

जयन्त ने हाथ जोड़ कर विनती की कि स्वामी, मेरी पूर्व सेवा के ख़याल से मेरा अपराध क्षमा कीजिए। यदि आप हठपूर्वक मुझसे मेरे विचित्र व्यवहारों का कारण पूछेंगे तो मुझे विवश होकर सब वृत्तान्त वर्णन तो करना पड़ेगा, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अन्त को आपको अपने हठ के लिए पछताना भी पड़ेगा।

राजकुमार ने और भी अधिक उत्तेजित हो कर जयन्त का हाथ पकड़ लिया और कहा कि विश्वासघाती, दुरात्मा, तू मुझे बातों ही में फुसलाना चाहता है। मैं तेरे बहाने न सुनूँगा। जो तू सच्चा है तो तू अपने तीनों अपराधों का उचित समाधान कर। नहीं तो तेरी ख़ैर नहीं।

निदान हार कर जयन्त ने सब वृत्तान्त वर्णन करना आरम्भ किया। जब वह घोड़े का भेद कह चुका तब जाँघों तक उसका शरीर पत्थर का हो गया। इस पर उसने अत्यन्त विनीत भाव से राजकुमार से हाथ जोड़ कर कहा कि अब भी आप क्षमा कीजिए। मुझे आगे का वृत्तान्त कहने की आज्ञा न दीजिए, नहीं तो मेरा समस्त शरीर पत्थर का हो जायगा।

परन्तु राजकुमार का क्रोध अभी तक शान्त न हुआ था। वह बोला कि तू क्षमा करने योग्य कदापि नहीं। मैं सारा भेद जानना चाहता हूँ। तब जयन्त ने विवाह के वस्त्रों का रहस्य खोला जिससे वह छाती तक पत्थर का हो गया। किन्तु, फिर भी, राजकुमार के कठोर हृदय में दया न आई। अन्त को जब उसने राजकुमारी के अचेत होने आदि का भेद कहा तब उसका सारा शरीर, ऐंड़ी से चोटी तक, पत्थर का हो गया।

(७)

जब राजकुमार और राजकुमारी ने अपने स्वामिभक्त सेवक के स्थान पर अपनी अज्ञानता के कारण एक पाषाण की मूर्त्ति खड़ी देखी तब दोनों अत्यन्त विस्मित और भयभीत हुए। उनको कोई उपाय न सूझा जिससे जयन्त फिर अपनी पूर्वावस्था में आ सके। इस तरह जब बहुत दिन व्यतीत हो गये और वह पत्थर की मूर्त्ति ज्यों की त्यों उस शयनागार में खड़ी रही तब राजकुमार को निश्चय होगया कि अब वह जयन्त को फिर कभी उसकी प्रकृतावस्था में न देख सकेगा। बहुत दिनों तक पश्चात्ताप करते करते राजकुमार और राजकुमारी दोनों थक गये। धीरे धीरे वे जयन्त को भूल सा गये।

कालान्तर में राजकुमारी के, जो बहुत दिनों से रानी कहलाती थी, एक पुत्र और पुत्री हुई। यथासमय वे दोनों शिशु पांच पांच छः छः वर्ष के हुए। उन दोनों की उस पत्थर की मूर्त्ति पर बड़ी प्रीति थी। दोनों उस मूर्त्ति के कन्धों पर चढ़ने और बाँहों से लटकने ही में बहुत प्रसन्न होते थे। वे उसको बूढ़े बाबा के नाम से पुकारते थे। इन बातों को देख कर आश्चर्य्य होता था। दैवयोग से एक दिन राजकुमार, जो बहुत दिनों से राजा कहलाने के अधिकारी होचुके थे, अपनी शय्या पर लेटे हुए अपने दोनों बच्चों के खेल को देख रहे थे। उनकी रानी उस समय कहीं बाहर थी। इतने में राजपुत्र ने उस मूर्त्ति के पैर से ठोकर खाई और ऐसी असावधानी से गिरा कि उसका सिर फट गया। रुधिर का प्रवाह बह निकला। राजा ने दौड़ कर पुत्र को उठाया और हृदय से लगाकर पूछा कि चोट बहुत तो नहीं लगी। इसके पहले कि रोता हुआ बालक कुछ उत्तर देता उस मूर्त्ति के मुँह से कुछ शब्द निकलते हुए सुनाई पड़े। राजा ने बालक को तो शय्या पर लिटा दिया और आप मूर्त्ति के पास आकर बड़े ध्यान से उसकी बात सुनने लगे।

उस मूर्त्ति ने राजा से मधुर और गम्भीर वाणी से कहा कि स्वामी, मैं बहुत दिनों से कठोर दण्ड सह रहा हूँ। अब तो कृपा करके मेरा अपराध क्षमा कीजिए।

राजा ने इतना सुनते ही जयन्त की मूर्त्ति को छाती से लगा लिया और बड़ेही करुण शब्दों में कहा :—

जयन्त, मैंने निस्सन्देह तुम्हारे साथ बड़ा बुरा बर्ताव किया है। अतएव मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि किसी उपाय द्वारा तुम इस बन्धन से मुक्त हो सको तो मैं उस उपाय के करने में ज़रा भी विलम्ब न करूँगा। तुमने मेरे साथ इतने उपकार किये हैं कि मैं सदैव तुम्हारा ऋणी हूँ। इस पर फिर उस मूर्त्ति ने कहा कि इन बालकों के रुधिर ही के प्रभाव से मैं फिर मनुष्य-देह धारण कर सकता हूँ। बिना उनके रुधिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के मेरी मुक्ति नहीं हो सकती। अभी राजपुत्र का मेरे ऊपर जो थोड़ा सा रुधिर गिर पड़ा था उसी के प्रभाव से मुझे बोलने की शक्ति आ गई है। यदि आपको अपने पुत्र-पुत्री की अपेक्षा मुझसे अधिक स्नेह है तो आप अपने हृदय को कड़ा करके अपने हाथ से अपने बालकों का वध कीजिए। फिर मेरे सम्पूर्ण शरीर पर उनके रक्त का लेप कीजिए। ऐसा करने से, आशा है, मैं फिर मनुष्य-देह पाकर आपकी सेवा कर सकूँगा।

यह मर्मभेदी वचन सुन कर राजा को बड़ा दुःख हुआ। एक ओर तो अपने पुत्र-पुत्री का प्रेम उसको प्रतिज्ञा पूरी करने से रोकता था, दूसरी ओर जयन्त से सेवक का मृत्यु से उद्धार करके अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना उसे उस ओर खींचता था। अन्त को उसने दृढ़हृदय होकर जयन्त की मूर्त्ति से कहा कि मैं अवश्य तुम्हारे पुनर्जीवन के लिए अपने बच्चों का वध करूँगा। यह कह कर उसने खड्ग निकाला और अपने दोनों अबोध बालकों के सिर काट दिये। उनके रक्त का उस मूर्त्ति पर उसने लेप कर दिया। ऐसा करने से जयन्त का शरीर सजीव होकर मनुष्य का होगया। उसने दौड़ कर राजा के चरण पकड़ लिये और अश्रुधारा से उनको धोने लगा। वह बोला—स्वामी, आप कुछ चिन्ता न कीजिए। आपके दोनों बालक अभी ईश्वर की कृपा से जीवित हो जायँगे। यह कह कर उसने दोनों धड़ों को उठाकर उनकी गरदन पर दोनों कटे हुए सिरों को जोड़ दिया। फिर भूमि पर पड़े हुए रक्त में से थोड़ा सा रक्त उठा कर उन पर लेप कर दिया। दोनों बच्चे तत्काल जी उठे और फिर पूर्व की भांति इधर उधर दौड़ने और खेलने-कूदने लगे। केवल इस बात का उनको आश्चर्य्य हुआ कि बूढ़े बाबा की मूर्त्ति कहां गई, वहां पर रक्त क्यों पड़ा हुआ है, और यह अनजान मनुष्य कौन आगया जिनको छाती से लगाये हुए उनका पिता रो रहा है।

इसी समय यह सूचना मिली कि रानी आ रही हैं। राजा ने शीघ्रता से अपने पुत्र, पुत्री और जयन्त को एक कोठरी में छिपा दिया और आगे बढ़ कर रानी को लिया। राजा ने उनसे पूछा कि आज तुम कहां गई थीं। रानी ने कहा कि मैं देव-मन्दिर में ईश्वर की आराधना करने गई थी। वहां मैं आज ईश्वर से इसलिए भी प्रार्थना करने लगी कि जयन्त को फिर मनुष्य-देह देने की कृपा कीजिए। इसी से इतना विलम्ब होगया।

राजा ने कहा—मेरी भी परमेश्वर से यही विनती आज एक अद्भुत बात हुई है। आज मैंने एक आकाश सुनी है। उसका आशय यह था कि यदि जयन्त के शरीर हमारे पुत्र और पुत्री के रक्त का लेप किया जाय तो उठे। यदि तुमको यह बात स्वीकृत हो तो कदाचित् इस से जयन्त को हम फिर सदेह देख सकें।

रानी यह सुन कर अवाक् खड़ी रह गई। वह कुछ न दे सकी। राजा ने पूछा कि इस उपाय के करने में क्या सम्मति है।

रानी ने कहा—प्राणनाथ, जो जयन्त इस उपाय मनुष्य-देह धारण कर सकता है तो मुझको स्वीकार है। बालकों के रक्त का उसके शरीर पर लेप कीजिए। जयन्त हमारे साथ इतनी भलाई की है कि उसके जीवन के पुत्रवध भी कोई बड़ी बात नहीं। यह सुन कर राजा ने कर रानी का हाथ पकड़ लिया और कहा कि चलो ईश्वर कृपा से तुम्हारा और हमारा दोनों का मनोरथ पूर्ण होगा जयन्त को फिर मनुष्यदेह मिली और हमारे पुत्र-पुत्री सकुशल उस कोठरी में जयन्त के पास बैठे हैं।

निदान सम्पूर्ण नगर में यह समाचार फैल गया कि जयन्त की निर्जीव मूर्त्ति में फिर प्राण आगये और उसने फिर पूर्ववत् मनुष्य का रूप प्राप्त कर लिया।

यह सुन कर जयन्त के शत्रु भयभीत होकर नगर से भागने लगे और वे सेवक लोग, जो सदा उससे वैरभाव रखते थे, आ आकर उससे क्षमा की प्रार्थना करने लगे।

राजा और जयन्त का बहुत दिनों तक साथ रहा। दोनों ने बड़े सुख से जीवन व्यतीत किया।

चतुर्वेदी।

आदर्श समालोचक।

आजकल हिन्दी के समाचार-पत्रों में जो समालोचनायें निकलती हैं उनसे हिन्दी प्रेमी-परिचित ही हैं। कुछ समाचारपत्र तो केवल प्राप्ति स्वीकार कर लेना ही बहुत समझते हैं। कुछ इतनी और भी कृपा करते हैं कि छपाई, काग़ज़, जिल्द इत्यादि की प्रशंसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर देते हैं। जो ग्रन्थकार के ऊपर भी कुछ कृपा करते हैं, उनमें से कुछ का हाल फ़ारसी के इस मसले का सा है—मन तुरा हाजी बगोयम तू मरा हाजी बुगो—अर्थात् हम तुम्हारी स्तुति करें और तुम हमारी। कुछ लोग व्यक्तिगत द्वेष के कारण समालोचित ग्रन्थ में दोष के अतिरिक्त कोई प्रशंसनीय बात ही नहीं देखते। कुछ ऐसे भी हैं कि समालोचना करने तो बैठे हैं, परन्तु उनमें इतनी योग्यता ही नहीं कि ठीक समालोचना कर सकें। तात्पर्य यह कि हज़ार दो हज़ार में दोही चार समालोचनायें ऐसी होती हैं जिनके देखने से प्रतीत होता है कि समालोचक यथोचित योग्यता रखता है और उसने न्याययुक्त समालोचना की है।

कुछ समालोचक ऐसे भी हैं जो पूर्ण योग्यता रखते हैं, पर वे अपने पुरुषार्थ को ऐसी साधारण पुस्तकों की समालोचना में इस अधिकता से व्यय करते हैं कि उन पर मच्छर मारने के लिए गोला चलाने की कहावत चरितार्थ होती है। अतएव, ऐसी दशा में अनुचित न होगा, यदि इस बात पर विचार किया जाय कि आदर्श समालोचक कैसा होना चाहिए।

समालोचक का माहात्म्य।

सम्पत्ति-शास्त्र के जानने वाले इस सिद्धान्त को भली भाँति समझते हैं कि थोड़ा काम होने से प्रत्येक मनुष्य उसे स्वयं कर लेता है; कार्यविभाग की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु जैसे जैसे कार्य बढ़ता है वैसे वैसे कार्यविभाग की आवश्यकता बढ़ती है। मनुष्य के सब कार्य प्रायः इस नियम से होते हैं। जब पुस्तकें थोड़ी थीं तब समालोचकों की कोई विशेष आवश्यकता न थी। समालोचना का काम कुछ अंशों में टीकाकार ही कर देते थे; परन्तु जबसे छपाई का आविष्कार हुआ तबसे काग़ज़ बेतरह रँगा जाने लगा। पहले जो लोग असाधारण योग्यता रखते थे वही लेखनी को कष्ट देते थे। अब तो जिसे देखो वही लेख अथवा पुस्तकें लिखने लग गया है। इसी कारण से आवश्यक और उत्तम श्रेणी के लेखों और पुस्तकों के साथ वृथा समय नष्ट करनेवाली और हानिकारक पुस्तकें भी, अन्न के साथ घास की तरह, उत्पन्न हो गई हैं। इसलिए यह आवश्यक हुआ कि निकाई और छटाई का काम भी जारी किया जाय, जिससे घास-फूस बढ़ कर अन्न को आच्छादित न करले। अनुपयोगी और भ्रष्ट पुस्तकों के ढेर में कहीं अच्छी और आवश्यक पुस्तकें भी न दब जायँ।

किसी विषय की उन्नति के लिए दो साधन आवश्यक होते हैं—एक कर्म, दूसरा सदसद्विचार। ग्रन्थकार यदि पहले अङ्ग की पूर्ति करता है तो समालोचक दूसरे की। साहित्य के लिए समालोचक की बड़ी आवश्यकता है। यदि ग्रन्थ-कर्ता ग्रन्थ उत्पन्न करता है तो सामलोचक उसकी रक्षा करता है। साधारण मनुष्यों के ज्ञान-चक्षु इतने ज्योतिर्हीन हैं कि जब तक कोई असाधारण पैनी दृष्टि वाला उन्हें उँगली उठा कर न बतावे तब तक वे किसी चीज़ के महत्त्व को जान ही नहीं सकते। वे इतने साहसशून्य होते हैं कि जब तक कोई दूसरा उनके विचार की पुष्टि नहीं करता तब तक उन्हें भरोसा ही नहीं होता कि जिसको उनकी बुद्धि ने रत्न समझा है वास्तव में वह रत्न है, काँच नहीं। इतिहास में ऐसे अनेक दृष्टान्त पाये जाते हैं कि बड़े बड़े कवियों और लेखकों की कीर्तिरूपी अग्नि अज्ञानता की राख में दबी हुई समालोचक के हाथ की राह देखती रही।

समालोचक उत्तम ग्रन्थकारों को शीघ्र ढूँढ निकालता है और साधारण ग्रन्थकारों से उन्हें अलग रखता है। जिस तरह निकाई करने वाला अन्न के पौधे के पास से घास-फूस को उखाड़ कर फेंक देता है उसी तरह समालोचक हानिकारक ग्रन्थों के जीवन को शीघ्र ही निःशेष कर देता है। गुणों को ढूँढ़ निकालना समालोचक के मुख्य कामों में से एक काम है। जितना उत्साह गुणी को गुणज्ञ से मिलता है उतना धनी इत्यादि से नहीं मिलता। एक किंवदन्ती, जिसे आप लोगों में से बहुत महाशयों ने सुना भी होगा, फिर सुन लीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाज़ार में एक बहुरूपिया बैल का स्वाँग लाया। वह ऐसा साफ़ बैल बना कि उसमें और बैल में कुछ भी भेद न रहा। जितने दर्शक थे बहुरूपिये के अपूर्व कौशल से चकित थे। अकबर बादशाह की सवारी उसी समय वहाँ से निकली। यह विचित्र दृश्य देख कर बादशाह भी अत्यन्त प्रसन्न हुए और बहुरूपिये को एक लाख रुपया इनाम देने का हुक्म दिया। जितने लोग वहाँ थे सब मनोमुग्ध होरहे थे। केवल एक बालक कुछ मन में सोच रहा था। वह अभी तक सन्तुष्ट न हुआ था। सहसा उसने एक कंकड़ी उठा कर बैल के बदन पर मारी। इस पर नक़ली बैल ने अपने शरीर को ठीक उसी तरह हिलाया जिस तरह कि असली बैल हिलाते हैं। यह अपूर्व कौशल देख कर वह लड़का इतना मुग्ध हुआ कि उसने अपनी टोपी उतार कर बहुरूपिये को दे दी। बहुरूपिया भी इस गुण-ग्राहकता से इतना प्रसन्न हुआ कि फूला न समाया। उसने अकबर के सामने टोपी ले जाकर कहा—"ख़ुदाबन्द! गुस्ताख़ी मुआफ़! ग़ुलाम जिस क़दर इस लड़के की इस टके की टोपी से ख़ुश हुआ उतना हुज़ूर के लाख रुपये से नहीं। अगर इस वक़्त यह लड़का यहाँ न मौजूद होता तो मेरा यह हुनर आप लोगों पर ज़ाहिर न होता। यह लड़का सच्चा क़द्रदाँ है"। अकबर ने उसी वक़्त से वीरबल की (वह लड़का वास्तव में वीरबल ही था) शिक्षा अपने हाथ में ली और धीरे धीरे उन्हें अपना प्रधान मन्त्री बना कर अपनी अपूर्व गुण-ग्राहकता का परिचय दिया।

समालोचक का भी यही काम है। वह रचनाओं के गुणों का प्रकाशन करता है। उत्तम समालोचक न केवल साहित्य की रक्षा ही करता है, किन्तु वह उत्तम साहित्य की वृद्धि भी करता है। सच्चे गुणवानों का आदर करके उनमें उत्साह उत्पन्न करता है, जिससे वे और अच्छे अच्छे ग्रन्थ रचने का साहस करते हैं। वह जन-साधारण की रुचि का भी संशोधन करता है, जिससे उत्तम श्रेणी के ग्रन्थों के सम्मान का मार्ग अकण्टक हो जाता है। समाज अविवेक के कलङ्क से सुरक्षित रहता है।

समालोचक और न्यायाधीश की योग्यता कुछ एक ही प्रकार की होनी चाहिए। समालोचक की योग्यता भी न्यायाधीश की योग्यता की तरह दो प्रकार की होती है—नैतिक और मानसिक।

नैतिक योग्यता।

पक्षपात-हीनता—समालोचक को सर्वदा इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि किसी भी कारण ग्रन्थकार पर अन्याय न हो। यह गुण नैतिक और मानसिक दो प्रकार का होता है। यहाँ पर उसके केवल उस अंश से मतलब है जिसका सम्बन्ध नीति से है। यह गुण हृदय से सम्बन्ध रखता है। इस भाव से वही समालोचक पक्षपातरहित कहा जायगा जो अपनी आलोचना में लेशमात्र भी पक्षपात न आने देगा—किंवा अपनी आलोचना को पक्षपात से दूषित न होने देने का प्रयत्न करेगा चाहे वह इस प्रयत्न में कृतकार्य हो चाहे न हो।

निर्लोभता—यह गुण बड़ा दुर्लभ है। विद्वान् पुरस्कार लेकर रद्दी पुस्तकों को उत्तम बतलाते हुए देखे गये हैं। यह तो ख़ालिस रिश्वत हुई। समालोचक को और भी कई प्रकार के लोभ आ घेरते हैं। किसी प्रसिद्ध मनुष्य ने कोई साधारण सी पुस्तक लिखी तो उसकी ख़ुशामद के लिए ही बहुधा समालोचक उसकी प्रशंसा कर देते हैं। इस तरह लोभ के वश होकर अपने अन्तःकरण के विरुद्ध लिखना साहित्य की जड़ में कुठार मारना है। समालोचना केवल साहित्य-सेवा के उद्देश से होनी चाहिए। किसी अन्य उद्देश से समालोचना करना समालोचक के धर्म से च्युत होना है।

निर्भयता—यह गुण भी दुष्प्राप्य है। यदि किसी प्रसिद्ध लेखक या कवि की कोई त्रुटि ध्यान में आवे और शान्ति-पूर्वक विचार करने पर भी वह त्रुटि ही मालूम हो तो उसे प्रकाशित करने में सङ्कोच न करना चाहिए। किसी कारण से मौन रहना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेना, ऐसे मौक़े पर, कोरी कायरता है। ऐसी कायरता से साहित्य-सेवा कदापि नहीं हो सकती। मनुष्य निर्भ्रान्त नहीं है। उसकी रचनाओं में दोष होना सम्भव है। गुण और दोष दोनों ही दिखलाने से उपकार होता है। दोषों के न दिखलाने से बड़ी हानि होती है। ग्रन्थकार का महत्त्व जितना हीं अधिक होता है, दोष न दिखलाने से उसकी उतनी ही अधिक हानि भी होती है, क्योंकि उसकी प्रतिष्ठा और नाम के कारण लोग उसके गुण और दोष दोनों ही का अनुकरण करने लगते हैं। गुण-ग्रहण करना तो कठिन बात है, परन्तु दोष बड़ी आसानी से नक़ल किये जा सकते हैं। अतएव प्रसिद्ध ग्रन्थकारों के दोषों का दिखलाना उनके गुण दिखलाने से कम आवश्यक नहीं है। रचना के गुण-दोष न दिखलाने से ग्रन्थकार की योग्यता का पूरा पूरा अनुमान नहीं हो सकता। ग्रन्थकारों में किसी भाव-विशेष के अनुचित आधिक्य अथवा न्यूनत्व के कारण उनकी रचनाओं में दोष आजाते हैं। इसका परिणाम कभी कभी यह होता है कि ग्रन्थकार जितना दोषी होता है उससे अधिक दोषी उसे पाठक समझने लग जाता है। परन्तु जिस समय समालोचक उन अंशों के दूषित होने का कारण बतला देता है तब विदित होता है कि किसी व्यक्ति में किसी एक विशेष भाव की अधिकता अथवा न्यूनता का होना कोई बहुत बड़ा दूषण नहीं है। इसलिए समालोचक का काम सर्वसाधारण की रुचि को परिमार्जित करना है। यदि दोष न दिखाये जायँ तो रुचि का परिमार्जन न हो। दोनों को न छिपा कर समालोचक को चाहिए कि वह किसी प्रसिद्ध कवि या लेखक के दोष नम्रता से दिखलावे और यदि सम्भव हो तो उसकी त्रुटियों का निदर्शन शङ्काओं के रूप में करे। इस तरह उसे यह सूचित करना चाहिए कि यदि कोई विद्वान् उसकी की हुई शङ्काओं का समाधान करे तो वह बहुत प्रसन्न होगा। ऐसा करने से लोग इतना विरोध न करेंगे जितना कि उद्दण्डता प्रकाशित करने पर वे करते हैं। साथ ही साहित्य-सेवियों का बहुत सा समय वाद-विवाद में व्यय होने के बदले साहित्य-सेवा के लिए बच जायगा। इसी प्रकार यदि किसी साधारण लेखक में कोई असाधारण उत्तम बात देख पड़े, तो हँसी के डर से, उसका प्रकाशन न करना भी कायरता है। इससे भी बड़ी हानि होती है।

निरालसता—यह प्रायः देखा जाता है कि कुछ समालोचक इधर उधर के कुछ पृष्ठ उलट पुलट कर पुस्तक भर के विषय में अपना मत स्थिर कर लेते हैं और फिर वह मत चाहे अच्छा हो चाहे बुरा, वही लिख मारते हैं। जैसे न्यायाधीश का धर्म है कि बिना कुल मामले की जाँच किये किसी अपराधी को दण्ड न दे, वैसे ही चाहे कोई ग्रन्थ या लेख कैसी ही तुच्छ लेखनी से क्यों न निकला हो, बिना उसे आद्योपान्त पढ़े उसकी समालोचना करना उचित नहीं। ग्रन्थ जितना ही ऊँचे दरजे का हो समालोचक को उसकी समालोचना के लिए उतना ही श्रम भी करना चाहिए।

मानसिक योग्यता।

भाषा का परिज्ञान—समालोचक के लिए केवल यही आवश्यक नहीं कि जिस भाषा में वह समालोचना करने बैठा है उसमें साधारण रीति से लिख पढ़ सकता हो; किन्तु उसे उसका पूरा पण्डित होना चाहिए। उसका शब्द-समूह-ज्ञान बड़ा और लेखन-शैली प्रौढ़ होनी चाहिए। वह काल बीत गया है जब किसी पुस्तक को केवल उत्तम, सामान्य अथवा निकृष्ट कह देने से लोग सन्तुष्ट हो जाते थे। अब तो यह बतलाना आवश्यक होता है कि अमुक ग्रन्थ साहित्य-शिखर की किस सीढ़ी पर आसन ग्रहण करने योग्य है।

कल्पना-शक्ति—यह शक्ति थोड़ी बहुत सब में होती है; परन्तु उपन्यास और नाटक-लेखकों तथा कवियों में इसकी मात्रा विशेष पाई जाती है। समालोचक के लिए आवश्यक है कि वह लेखक के मस्तिष्क में प्रवेश कर सके, हृदय के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छिपे से छिपे कोने में अपनी बुद्धि का प्रकाश डाल सके, उसके सहवासी और समकालीन पुरुषों के प्रभाव को उसके ग्रन्थ के भिन्न भिन्न भागों में देख सके, और उन शक्तियों का अनुमान कर सके जिनसे वह भिन्न भिन्न विषयों की ओर खींचा जाता था। इन गुणों के लिए समालोचक में कल्पना की मात्रा खूब होनी चाहिए। सिवा कल्पना रूपी वायु-यान के और कौन सी ऐसी शक्ति है जो हमें ऐसे दुस्तर स्थानों में शीघ्र पहुँचा सके। कल्पना-शक्ति को तत्कालीन इतिहास से सहायता मिलती है; परन्तु ऐसा इतिहास कहाँ मिल सकता है जो ग्रन्थ-कर्ता को केन्द्र मान कर लिखा गया हो। ऐसा इतिहास मिलने पर भी बहुत कुछ न्यूनता रह जा सकती है, जो कल्पना-शक्ति की सहायता बिना और किसी तरह पूरी नहीं की जा सकती। ऐसा साँचा, जिसमें समालोचक ग्रन्थकार के भिन्न भिन्न विचारों को याथातथ्य उचित स्थानों में ठीक ठीक बिठा सके, बिना कल्पना का आश्रय लिये कभी नहीं बन सकता।

कुछ लोगों का मत है कि समालोचक को सहृदय होना चाहिए। बिना सहृदय हुए कोई व्यक्ति समालोचना नहीं कर सकता। यदि ऐसा हो तो एक समालोचक बहुत थोड़े ग्रन्थकारों की रचनाओं की समालोचना करने में समर्थ हो, क्योंकि एक मनुष्य भिन्न भिन्न ग्रन्थकारों से एक साथ ही सहृदय नहीं हो सकता। ग्रन्थकार का समहृदय समालोचक अवश्य ग्रन्थकार के गुणों का अच्छा निरूपण कर सकता है, परन्तु उसके साथ ही वह आवश्यकता से अधिक उसके गुणों का गान भी करता है और दोषों की ओर से आँखें बन्द कर लेता है या उन्हें बहुत ही कम करके दिखलाने का यत्न करता है। उसकी सहृदयता ही उसके न्याययुक्त समालोचन-कार्य्य की बाधक होती है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि समालोचक ग्रन्थकार के उद्देश को जान सके; और इसके लिए सहृदयता अनिवार्य्य नहीं। क्या शेक्सपियर जिसने चोर, डाकू, पागल आदि विलक्षण स्वभाव वाले मनु के चरित्रों का ऐसा वास्तविक चित्र खींचा है, सब से सहृदयता रखता था? बात यह थी उसकी कल्पना-शक्ति इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि अपने बहुत थोड़े से अनुभव के सहारे ही उन विचारों और भावों का हृश्य खींच सकता था।

दार्शनिक, वैज्ञानिक और इसी प्रकार के अन्य ग्रन्थों की समालोचना में, जिन का महत्त्व उ निर्दिष्ट हुई दलीलों पर अवलम्बित होता है, शक्ति की बहुत कम आवश्यकता पड़ती है। शक्ति की विशेष आवश्यकता प्राचीन कवि नाटकाचार्य्यों, धर्मोपदेशकों, उपन्यासकारों इत्या के ग्रन्थों की समालोचना के लिए होती है।

न्यायशास्त्र का ज्ञान—समालोचना में जितना का तर्क-शक्ति का पड़ता है उतना दूसरी शक्ति नहीं। इसलिए समालोचक में इस शक्ति एक अच्छी मात्रा में होना अनिवार्य्य है। यह शक्ति गणित और न्यायशास्त्र के अध्ययन से विशेष बढ़ती है। गणित-शास्त्र ही हमको विश्वास दिलाता है कि चाहे कोई कैसा ही विद्वान् और बुद्धिमान क्यों न हो, दो और दो को पाँच, या त्रिकोण की एक भुजा को बाक़ी दो भुजाओं के जोड़ के बराबर या उससे बड़ा साबित नहीं कर सकता। इसी प्रकार न्यायशास्त्र इस बात का निश्चय दिलाता है कि जब अमुक प्रतिज्ञा या पूर्ववयव होगा तब अमुक फल अवश्य होगा। अथवा अमुक अमुक फल के लिए अमुक प्रतिज्ञाओं या पूर्ववयवों का होना अनिवार्य्य है। इसी शास्त्र में निपुणता प्राप्त करने से मनुष्य में वह आत्मविश्वास उत्पन्न होता है जिसके बल पर वह बड़े बड़े विद्वानों के विचार प्रकट करने का साहस करता है। गणित का थोड़ा अध्ययन तो मनुष्य मात्र को करना चाहिए, फिर समालोचक उससे कैसे वञ्चित रह सकता है। रहा न्यायशास्त्र सो उसके बिना और लोगों का काम चाहे भले ही चल जाय, परन्तु समालोचक का कभी नहीं चल सकता। उसके लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायशास्त्र इतना ही आवश्यक है जितना इंजीनियर के लिए यन्त्र-विद्या, डाक्टर के लिए शरीर-विज्ञान और व्यापारी के लिए बही-खाते का ज्ञान।

मानस-शास्त्र का ज्ञान—समालोचक को ग्रन्थकर्त्ता के अन्तर्गत-भावों को अच्छी तरह समझने के लिए प्रायः कल्पना का सहारा लेना पड़ता है। परन्तु इसमें ग़लती होने की भी बहुत सम्भावना रहती है। मानसशास्त्र के ज्ञान से ऐसी भूलों की सम्भावना बहुत कम हो जाती है। अच्छे नाटक-कर्त्ता या उपन्यासप्रणेता अपनी अपार सहृदयता और अद्भुत कल्पना के कारण मानवी हृदय का पूरा पूरा ज्ञान रखते हैं। अतएव अपने ग्रन्थों में वे बहुधा उसकी भीतरी से भीतरी तहों को खोल कर रख देते हैं। ऐसे स्थलों की समालोचना बिना मानसशास्त्र के ज्ञान के अच्छी तरह नहीं की जा सकती। मानवी हृदय के कल-पुर्ज़ों का हाल जानने, समझने और जाँच करने के लिए समालोचक को मानसशास्त्र का सहारा अवश्य ही लेना पड़ता है। उदाहरण के लिए शेक्सपियर की इन पंक्तियों को लीजिए :—

Thou must be patient; we come crying hither.
Thou knowest, the first time that we smell the air,
We wawl and cry; I will preach to thee, mark
When we are born, we cry that we are come.
To this great stage of fools: this a good block
It were a delicate stratagem, to shoe
A troop of horse with felt: Ill put in proof,
And when I have stolen upon these sons-in-law,
Then kill, kill, kill, kill, kill, kill!

— *King Lear*, Act IV, Sc. 6, lines 152-161.

क्या कोई ऐसा मनुष्य भी इन पंक्तियों की जाँच या आलोचना कर सकता है जो मानसशास्त्र के भाव-संयोग-सम्बन्धी नियमों को न जानता हो? साधारण मनुष्य इन सतरों को पागल की बकबास के सिवा और क्या समझेगा? सरसरी तौर पर वह एक अंश का दूसरे अंश से कुछ सम्बन्ध न देख कर वैसे ही छोड़ देगा। परन्तु मानसशास्त्र में निपुण समालोचक अवश्य इनमें छिपे हुए रहस्य को बतला देगा। मानसशास्त्र की सहायता से इस पागलपन की वक्तृता में बीच की कड़ियों का तुरन्त पता चल जायगा। पागल बादशाह लीयर ग्लौसेस्टर को उसकी मुसीबत में तसल्ली देना चाहता है। उसे पादड़ियों की वक्तृता याद आती है। उनकी नक़ल करते हुए वह अपनी टोपी हाथ में ले लेता है। टोपी की फ़ेल्ट देखने से उसे लड़ाई की वह तरकीब याद आती है जिसमें घोड़ों की नाल में कील जड़ देने से सैनिक अपने दुश्मनों के पास तक चुप चाप पहुँच सकते हैं। लड़ाई के साथ ही उसे अपने दामादों को मारने की सूझती है; क्योंकि लीयर में उस क़िस्म का पागलपन है जो किसी मानसिक विकार की हद से अधिक बढ़ जाने से होता है। ऐसे पागलों की यह आदत होती है कि वे चाहे जो काम करें अन्त उसका उसी भाव के सम्बन्ध में करेंगे जिसके बढ़ जाने से वे पागल हुए हैं। ऐसे ही ऐसे भावपूर्ण पद्य लिखने के कारण शेक्सपियर "अन्तर्जगत् का राजा" कहलाता है। यह दृष्टान्त इसलिए दिया गया है जिससे यह स्पष्ट हो जाय कि बिना मानसशास्त्र के अध्ययन के मनुष्य ऐसे ग्रन्थों को भी अच्छी तरह नहीं समझ सकता जिनमें मानवी भावों का स्थूल वर्णन हो।

समाज-शास्त्र और इतिहास का ज्ञान—समाज और साहित्य का बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों का एक दूसरे पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसी से इतिहासकार भी अपने अनुमानों को पुष्ट करने के लिए साहित्य की बहुत शरण लेते हैं। जब साहित्य का समाज से इतना घना सम्बन्ध है तब साहित्य की जाँच करने वालों के लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि वे उन शक्तियों का ज्ञान प्राप्त करें जो समाज में ऐसे परिवर्तन उत्पन्न करती हैं जिनका प्रभाव साहित्य पर पड़ता है। ग्रन्थकार के आत्मगत गुण-दोषों का—ममता, अप्रीति, उदारता, सङ्कीर्ण-हृदयता आदि का—पूरा पूरा अनुमान तब तक नहीं हो सकता जब तक समकालीन समाज के गुण-दोषों से वे पृथक् न किये जायँ। इसलिए समालोचक के लिए समाज-शास्त्र की दृष्टि से इतिहास का अध्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यन करना परमावश्यक है। इतिहास का अध्ययन इस तरह न करना चाहिए कि अमुक लड़ाई में इतने घोड़े, इतने हाथी, इतने पैदल इत्यादि एक ओर और इतने दूसरी ओर थे। विचार इस बात का करना चाहिए कि अमुक लड़ाई का समाज पर क्या प्रभाव पड़ा। अमुक काल के समाज की क्या दशा थी। उस समय शासन-प्रणाली किस तरह की थी। लोगों के धार्मिक विचार क्या थे। उनका रहन-सहन कैसा था। सामाजिक गठन किस प्रकार का था। भाषा क्या थी। शिक्षा का क्या हाल था। क्या क्या परिवर्तन हुए और उनके कारण क्या थे। इस तरह जो इतिहास का अध्ययन करेगा वह यह भी अच्छी तरह जान सकेगा कि अमुक ग्रन्थ का अमुक समय में मनुष्यों पर क्या प्रभाव पड़ा। किसी किसी ग्रन्थ में ऐसी भी बातें रहती हैं जो ग्रन्थकार की योग्यता पर ध्यान देने से बिलकुल बे मेल मालूम होती हैं। उनकी समालोचना करते समय यह भाव उत्पन्न होता है कि ग्रन्थकार ने उन्हें कैसे लिख दिया। लोग ऐसी बातों के मनमाने अर्थ करते हैं। ऐसे अवसर पर ग्रन्थकार के कथन की जाँच, उसके समकालीन मनुष्यों के विचारों इत्यादि को दृष्टि में रख कर, करने से पूर्वोक्त सब कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं।

ग्रन्थकार भी और लोगों की तरह समाज ही में जन्म लेता, शिक्षा प्राप्त करता और अपने मतों को निश्चित और आदर्शों को निर्मित करता है। ग्रन्थकार का स्वभाव समकालीन विचारों और आदर्शों के जितना अनुकूल या प्रतिकूल होता है उतना ही वह अपने सामर्थ्य के अनुसार उनकी पुष्टि अथवा उनमें परिवर्तन करता है। जिस प्रकार ऊँची से ऊँची उड़ने वाली पतङ्ग का एक सिरा पृथ्वी से लगा ही रहता है उसी प्रकार स्वतन्त्र से स्वतन्त्र ग्रन्थकार अपने समय के प्रभाव से बिलकुल ही मुक्त नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए गोस्वामी तुलसीदासजी की इस चौपाई की नीति पर ध्यान दीजिए:

शूद्र, गँवार, ढोल, पशु, नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी॥

साहित्य-सेवी समाज में सदा उच्च आसन ग्रहण करते आये हैं और करते रहेंगे। समाज सदा उच्चश्रेणी के मनुष्यों ही के पीछे चलता है। इस कारण यदि साहित्य का प्रभाव समाज पर न पड़े तो कोई आश्चर्य नहीं। परन्तु कभी कभी किसी ग्रन्थ का बेहद प्रचार हो जाता है और उसका बहुत अधिक प्रभाव समाज पर पड़ता है। उदाहरण के लिए तुलसी-कृत रामायण, चन्द्रकान्ता और आनन्दमठ के प्रचार पर ध्यान दीजिए।

इन तीनों का एक साथ नाम लेने से मेरा मतलब इन तीनों की तुलना करने का नहीं, और इनका प्रचार एक सा बताने ही का है। मेरा मतलब सिर्फ़ इतना ही है कि इनके असाधारण प्रचार का यह कारण है कि इनमें वे तत्त्व मौजूद थे जिनकी तत्कालीन समाज में माँग थी।

रामायण के प्रचार का कारण यह है कि वह समकालीन समाज की आवश्यकताओं पर पूर्ण दृष्टि रख कर लिखी गई थी। स्मरण रहे कि गोस्वामीजी कवि होने पर भी रामचन्द्रजी की भक्ति के पहले प्रचारक हैं; उसके उपरान्त कवि या और कुछ हैं। उन्होंने अपने काव्य की रचना संसार के महाकवियों से टक्कर लेने की कामना से नहीं की। उनका अभिप्राय रामचन्द्र की अनन्यभक्ति प्रचार करना था। यदि उनको विश्वास होता कि गद्य की रचना करने से उनका प्रयोजन अधिक सफल होगा तो वे पद्य न लिख कर गद्य ही में अपने विचार लिख कर प्रकट करते। अब हम, नीचे, तुलसीदास की रामायण के गुण और तत्कालीन समाज की आवश्यकताओं को दिखलाते हैं:—

रामायण के गुण।

(१) ग्रन्थ का हिन्दी भाषा में रचा जाना

समाज की आवश्यकतायें।

(१) संस्कृत जानने वालों की कमी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) ग्रन्थ में धार्मिक बातों का ग्रथित किया जाना

(३) कथा के रूप में रामायण का रचा जाना।

(४) तुलसीदासजी की काव्य-नायक अर्थात् रामचन्द्र पर असीम भक्ति

(५) ग्रन्थ में भिन्न भिन्न श्रेणी के मनुष्यों को सन्तुष्ट करने की सामग्री

(६) सर्वोपरि सरलता। रामायण को सरसरी तौर भी पढ़ने से यह तुरन्त पता चल जाता है कि गोस्वामीजी ने ग्रन्थ को सरल बनाने में कोई बात उठा नहीं रक्खी। गूढ़ से गूढ़ विषय उन्होंने ऐसे सरल शब्दों में वर्णन किये हैं कि आज तक उनकी बराबरी कोई नहीं कर सका। उनकी भाषा ही सरल नहीं, उनके प्रयुक्त छन्द—दोहे और चौपाई—भी सरल हैं।

(२) संस्कृतज्ञों की कमी के कारण देश-भाषा में लिखे गये धर्मग्रन्थों की माँग।

(३) सर्व-साधारण जनों को कथा विशेष रोचक होती है। यही सोच कर पुरातन ऋषियों ने अपने ग्रन्थों को विशेष करके कथा ही के रूप में लिखा है। तिस पर भी श्रीरामचन्द्रजी की कथा। उससे तो हिन्दू मात्र को प्रेम है और सदा रहेगा। यह वह कथा है कि यदि कोई साधारण पुरुष भी कहने बैठे तो श्रोताओं को मोहित कर सकता है।

(४) सूखे तर्क की अपेक्षा भावात्मक कथाओं से साधारण जन अधिक प्रसन्न होते हैं।

(५) समाज में एक ही तरह के मनुष्य तो होते नहीं, भिन्न भिन्न रुचि के होते हैं। इस गुण के बिना कोई ग्रन्थकार बहुत बड़े पाठक-वृन्द पर अपना सिक्का नहीं जमा सकता।

(६) सर्व-साधारण-प्रिय होने के लिए ग्रन्थ की भाषा ऐसी होनी चाहिए जो सब समझ सकें, क्योंकि सभी पण्डित नहीं होते। अतएव सर्व-प्रिय होने के लिए सरलता अनिवार्य्य है।

किसी ग्रन्थ का विशेष प्रचार केवल उसकी उत्तमता पर ही अवलम्बित नहीं रहता। उत्तमता का होना उन गुणों में से एक गुण अवश्य है जिसके बिना कोई ग्रन्थ अमर नहीं हो सकता। परन्तु ग्रन्थ का विशेष प्रचार उन कारणों से होता है जिनका उल्लेख इस लेख में अभी किया जा चुका है। जिनको इस विषय में सन्देह हो वे उदाहरण के लिए गोस्वामीजी के रामचरितमानस से सूरदासजी के सूरसागर की तुलना कर देखें। सूरदास ने भी तुलसीदास ही की तरह हिन्दी-भाषा में रचना की है। जैसे गोस्वामीजी की रामचन्द्र पर प्रगाढ़ भक्ति थी वैसे ही सूरदासजी की कृष्ण पर थी। दोनों ही के काव्य उत्तम और अपने ढँग के अद्वितीय हैं। फिर भी दोनों के प्रचार-क्षेत्रों के विस्तार में बड़ा अन्तर है। यद्यपि सूरसागर भी अमर है, पर उसे रामचरित-मानस की तरह हर श्रेणी के मनुष्यों के हाथ में नहीं देखते।

चन्द्रकान्ता—नामक उपन्यास का प्रचार तो बहुत हुआ; परन्तु वास्तविक गुण उसमें ढूँढ़िए तो बहुत कम मिलेंगे। इसके प्रचार का कारण यही है कि पन्द्रह वर्ष पहले ऐसी ही पुस्तकों की आवश्यकता थी। इसने हिन्दी के प्रचार में बड़ी सहायता की है।

आनन्द-मठ—बङ्गाल के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक बङ्किमचन्द्र का एक उपन्यास है। वह जिस समय प्रका-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शित हुआ उस समय इसका इतना प्रचार नहीं हुआ जितना होना चाहिए था। उसका कारण यह था कि समाज उसके लिए उस समय तैयार न था। बङ्किम बाबू अपने समय से बहुत आगे बढ़ गये थे। इसी लिए ग्रन्थ को थोड़े दिनों तक ठहरना पड़ा। १९०५ ईसवी की जागृति ने समाज की दशा में परिवर्त्तन कर दिया। इसीसे इसका विशेष प्रचार हो गया।

विशेष तैयारी।

इस लेख में उन्हीं गुणों और विषयों का उल्लेख किया गया है जो समालोचकमात्र के लिए अनिवार्य्य हैं। जैसे एक मनुष्य हर विषय का लेखक नहीं हो सकता वैसे ही एक मनुष्य हर विषय का समालोचक भी नहीं हो सकता। किसी विशेष विषय पर पूर्ण अधिकार करने के लिए उसे भिन्न भिन्न रीति से तैयारी करनी चाहिए।

विवेक—समालोचक के लिए विवेक की भी बड़ी आवश्यकता होती है। उसे विवेक को कभी हाथ से न जाने देना चाहिए। बिना विवेक उसका काम क्षण भर भी नहीं चल सकता। विवेक न होने से मनुष्य धर्म्म और कर्तव्य से च्युत हो जाता है। समालोचक शिक्षित संसार का प्रतिनिधि है। उसका धर्म भी वही है जो प्रतिनिधि का होना चाहिए। समालोचक भी एक प्रकार का जज है। जज समाज और राजा का प्रतिनिधि होता है। वह यदि न्याय नहीं करता तो अपने धर्म को पूरा नहीं करता; वह अवश्य पाप करता है। इसी तरह जो समालोचक ग्रन्थ के गुण और दोष को याथातथ्य प्रकट नहीं करता वह पाप-भागी होता है। समालोचक और न्यायाधीश का धर्म एक ही है। दोनों ही प्रतिनिधि हैं। दोनों ही को अपने उत्तर-दायित्व को सर्वदा ध्यान में रखना चाहिए। दोनों ही के धर्म-पालन न करने से समाज के मर्मस्थलों में आघात पहुँचता है। दोनों ही रक्षक हैं। एक समाज का और दूसरा साहित्य का। यदि न्यायाधीश न हो तो देश में अराजकता फैल जाय और यदि समालोचक न हो तो साहित्य का विवेक नष्ट हो जाय। दोनों को अपने धर्म से च्युत करने के लिए बड़े बड़े लो दिखाये जाते हैं। अतएव दोनों ही को अपनी दृ को हर प्रकार के भ्रम पैदा करनेवाले विचारों दूर रखने की आवश्यकता है। सारांश यह दोनों ही का धर्म कृपाण की धार है।

हरिकृष्ण अग्रवा

भारत में काँच के कारख़ाने।

भारत में काँच की चीज़ों का ख़र्च हर पर दिन बढ़ रहा है। १२०६— में चूड़ियाँ, झूठे मोती, शीशि बोतलें, लम्प, आईने इत्यादि मिला कर कोई डेढ़ करोड़ रुपये का काँच का मा विदेश से इस देश में आया था। परन्तु चार वर्ष बाद, १९१०—११ में, इन चीज़ों की आमद बढ़ कर डेढ़ करोड़ से भी अधिक हो गई। अके अस्ट्रिया-हङ्गरी से लगभग पचास लाख रुपये माल आया। जरमनी ने कोई पच्चीस लाख और बेलजियम तथा इँगलैंड ने कोई उन्नीस उन्नी लाख का माल भेजा। आये हुए माल का एक तृती यांश केवल चूड़ियाँ थीं, जो विशेष कर अस्ट्रि हङ्गरी से आईं।

पहले यहाँ विदेश से काँच का इतना मा आता था। १८९९—१९०० में केवल ७६ लाख रुपये का माल आया था। गत दसही वर्षों में काँच के माल की आमदनी दुगनी हो गई इसका फल यह हो रहा है कि देश की काँच की कारीगरी पट् पड़ती जा रही है। एक समय था जब रोम के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ प्लिनी ने रोम के बाज़ारों में काँच की चीज़ों को देख कर कहा था कि काँच की चीज़ें बनाने में भारत अद्वितीय है। समय ने पलटा खाया। योरपवालों ने विज्ञान की सहायता से अपनी औद्योगिक शक्ति को ख़ू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अम्बाले में बनी हुई कांच की चीज़ें—(१)

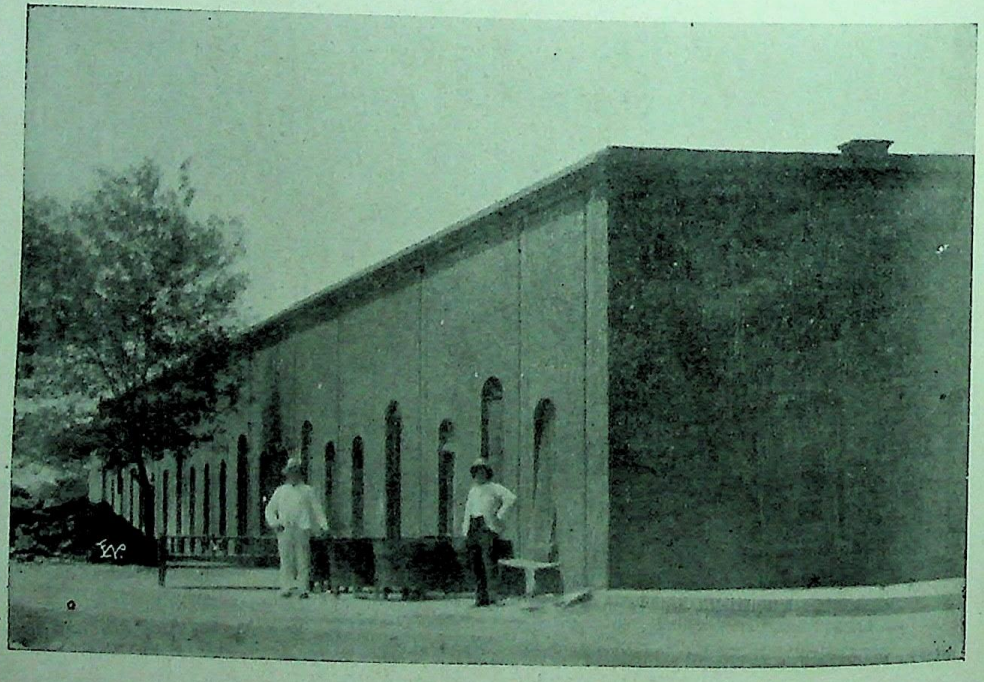

काँच का कारख़ाना—अम्बाला।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

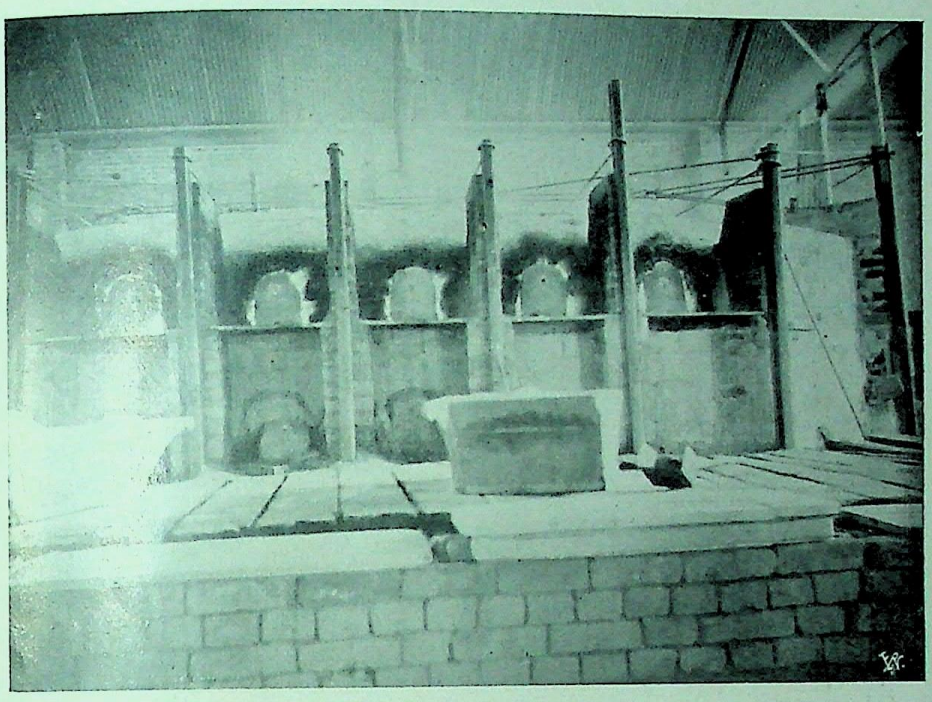

काँच गलाने की भट्टी—(अम्बाला)।

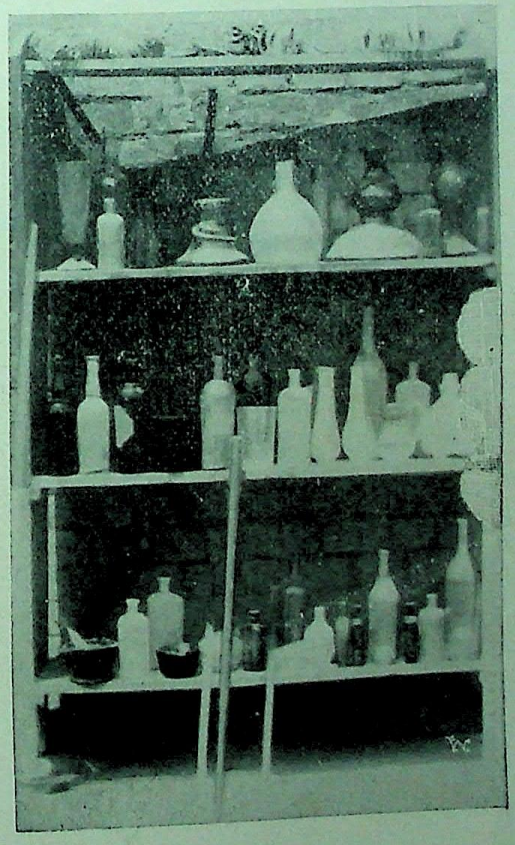

अम्बाले में बनी हुई काँच की चीज़ें—(२)

The Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ाया—काँच के कारोबार को उन्होंने बेहद उन्नत कर दिया। कलों की सहायता से एक से एक बढ़ कर चमक दमक वाली काँच की चीज़ें वे बनाने लगे। इधर भारतवासी अपने स्थान से एक क़दम भी आगे न बढ़े। वही अपनी छोटी छोटी भट्टियों से कच्चा-पक्का बुरे रंग का माल निकालते रहे। फल यह हुआ कि काँच का बाज़ार योरपवालों के हाथ में चला गया।

काँच बनाने के लिए मुख्यतः तीन चीज़ों की आवश्यकता होती है:—रेत, चूना और खार। भारत में रेत की कमी नहीं है। यद्यपि गङ्गा और यमुना की रेत अच्छी नहीं समझी जाती और उससे अच्छा माल भी नहीं तैयार होता; तो भी यहाँ ऐसे स्थानों की कमी नहीं है जहाँ की रेत और देशों की सर्वोत्तम रेत से घटिया हो। चूना भी यहाँ बहुत होता है। खार के स्थान में यहाँ रेह का प्रयोग होता है। इसमें सन्देह नहीं कि रेह में प्रायः ऐसे तत्त्व भी पाये जाते हैं जिनके कारण काँच साफ़ और उज्ज्वल नहीं बनता। परन्तु इसमें केवल रेह ही का दोष नहीं। इसके और भी कारण हैं। सफ़ाई और उज्ज्वलता बहुत कुछ बनाने के तरीक़े पर भी अवलम्बित है। वैज्ञानिक रीति से रेह की जाँच करने पर मालूम होता है कि रेह से शुद्ध खार निकाला जा सकता है। सम्भव है, प्राचीन समय में भारतवासी रेह से शुद्ध खार प्राप्त करने का साधन जानते रहे हों। लन्दन की ब्रिटिश-म्यूज़ियम में गुप्त-वंश के समय में भारत के बने हुए काँच के कुछ दाने रक्खे हैं। ये दाने बड़े ही सुन्दर हैं। इनमें काले, सफ़ेद, और भूरे रङ्ग की धारियाँ हैं। इन दानों को देखने से मानना पड़ता है कि प्राचीन समय में भारतवासी अवश्य स्वच्छ और उज्ज्वल काँच बनाने की रीति जानते थे। अस्तु। यहाँ काँच बनाने की सामग्री की कमी नहीं।

दुःख इस बात का है कि हम लोग अपने पुराने मार्ग को छोड़ कर नवीन उन्नत पथ को स्वीकार नहीं करते। आज से ३०० वर्ष पहले—मुग़ल बादशाहों के समय में—जिस प्रकार रेह, मिट्टी और रेत मिला कर कुछ हरी और कुछ सफ़ेद चूड़ियाँ बनाई जाती थीं, आज भी हमारे भारतीय कारीगर उसी तरह चूड़ियाँ बनाते हैं। छोटी छोटी भट्टियों ही से काम लिया जाता है। सस्ते और देर तक गरमी बनाये रखने वाले कोयले के स्थान में अभी तक घास-फूस ही जलाया जाता है। काँच में रङ्ग देने का तरीक़ा भी वही पुराना है। कहीं कहीं कुछ परिवर्तन हुआ है; पर वह यथेष्ट नहीं। फीरोज़ाबाद में काँच का बहुत काम होता है। वहाँ वालों ने अपनी भट्टियों का आकार बढ़ा दिया है और कुछ नये सिद्धान्तों को भी ग्रहण किया है। उनकी बनाई हुई चूड़ियाँ अस्ट्रिया की चूड़ियों की बराबरी कर सकती हैं।

देश में पुरानी रीति के अनुसार काँच का काम यहाँ बहुत जगह होता है। नजीबाबाद, बनारस और नगीना में दवाइयाँ, अर्क़, गङ्गाजल, अचार इत्यादि रखने के लिए कच्ची-पक्की छोटी-बड़ी नाना प्रकार की शीशियाँ बनती हैं। पानीपत और बनारस में आरसी, टिकली आईने इत्यादि का काम होता है। करेहरा, जसवन्तनगर, कालाकाँकर आदि में भी काँच का काम होता है।

ख़ुशी की बात है, इधर २५—३० वर्ष से, देश में उन्नत प्रणाली पर काम करने वाले काँच के कुछ कारख़ाने खुलने लगे हैं। सबसे पहले बङ्गाल में दो कारख़ाने खुले थे। परन्तु वे थोड़े ही दिन चल कर रह गये। उनका सब सामान ग्वालियर के काँच के कारख़ानेवालों ने ख़रीद लिया। इसके बाद अम्बाला और हैदराबाद में दो कारख़ाने खुले। ये दोनों कारख़ाने भी थोड़े ही दिन चल सके। देहरादून में एक कारख़ाना खुला। वह लगभग ४ वर्ष तक चला। १९०८ में कुप्रबन्ध के कारण वह भी बन्द हो गया। उसे अब लाहोर और देहरादून के कुछ सज्जनों ने ख़रीद लिया है। वे उसे अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये सिरे से चलाना चाहते हैं। मदरास, मुरार (ग्वालियर) और पूने के पास तलेगाँव में भी काँच का एक एक कारख़ाना है।

अम्बाले में जो कारख़ाना खुल कर बन्द हो गया था उसे अम्बाले के रईस लाला पन्नालाल ने, १९०३ में, ख़रीद लिया। उसे वे अब नये सिरे से चला रहे हैं। यह कारख़ाना अच्छा काम कर रहा है। इसका नाम "अपर इंडिया ग्लास वर्क्स" (Upper India Glass Works) है। इस समय इसमें दो बड़ी बड़ी भट्टियाँ काम करती हैं। कलों से इसमें काम होता है। हैदराबाद का कारख़ाना, जो बन्द पड़ा था, उसे भी लाला पन्नालाल ने १९०७ में ख़रीद लिया। उसका भी सब सामान उन्होंने अम्बाले के कारख़ाने में लगा दिया। इस प्रकार यह कारख़ाना और भी बड़ा हो गया। इसके मंत्री, श्रीयुत अलखधारी महाशय ने, अपने कारख़ाने के सम्बन्ध के जो काग़ज़-पत्र और बनी हुई काँच की शीशियों के जो नमूने भेजे हैं उन्हें देखने से मालूम होता है कि यह कारख़ाना अच्छा काम कर रहा है। पहले इसमें जितनी चीज़ें बनती थीं उनसे अब बहुत अधिक बनने लगी हैं। चूड़ी, चिमनी, लैम्प, ग्लोब, दावात, ग्लास, बोतल आदि के सिवा अनेक रङ्ग, रूप और आकार की शीशियाँ यहाँ बनती हैं। ये सब ऐसी चीज़ें हैं जिनका यहाँ बेहद खप है। हर शहर में अब दवाख़ाने हो गये हैं। उनमें लाखों शीशियाँ, छोटी-बड़ी, ख़र्च होती हैं। ये सब अब इस कारख़ाने में मिलती हैं।

सेक्रेटरी महाशय कहते हैं कि जिस भाव आज कल विदेश की बनी हुई चीज़ें यहाँ बिकती हैं उससे कम ही दामों पर उनके कारख़ाने से वे मिल सकती हैं। इस दशा में कोई कारण नहीं कि हम लोग इस कारख़ाने की चीज़ें काम में न लावें। इसे आज तक कई पदक मिल चुके हैं। पञ्जाब के लफ्टिनेंट-गवर्नर सर लुई डेन तक ने इसे देख कर इसकी चीज़ों और इसके मालिक तथा कार्य्यकर्त्ताओं की प्रशंसा की है। इसमें जो चीज़ें बनती हैं उनकी नामावली और उनके मूल्य आदि का विवरण टरी को लिखने से मिल सकता है।

अमेरिका के छात्रों का सम्मेलन।

अमेरिका के विश्वविद्यालय तथा महा-विद्य अपनी व्यावहारिक और शास्त्रीय शिक्ष लिए संसार में प्रसिद्ध हैं। संयुक्त रा प्रत्येक प्रान्त में सरकारी कालेज हैं जि मुफ़्त शिक्षा दी जाती है। सरकारी कालेजों के अ सर्व-साधारण के कालेजों की भी कमी नहीं है। प्राय सब कालेजों से Young Men's Chris Association नामक एक ईसाई-धर्म्म-सम्बन्धिनी का सम्बन्ध होता है। यह सभा निराश्रित विद्यार्थि आश्रय देने, स्वावलम्बन-समर्थ छात्रों को काम दिलाने, इ का परोपकारी काम मुफ़्त करती है। अमेरिका की स इस सभा को कोई मदद नहीं देती। तो भी इसका दानी और पुरुषार्थी पुरुषों के बल पर अच्छी तरह से च है। इस देश के विद्यालयों के अध्यापक और छात्र विशे जड़-वादी (Materialist) हैं। इस कारण कुछ वर्ष वे इस ईसाई सभा से दूर रहते थे। परन्तु अब इस के पकारव्रत और औदार्य्य को देख कर वे भी इससे सहानु रखने लगे हैं। यह सभा कहने को तो ईसाइयों की परन्तु इसके सभा-सद किसी भी देश, धर्म, जाति और व लोग हो सकते हैं। जो उसके सभा-सद नहीं हैं वे भी इ लाभ उठा सकते हैं।

अमेरिकावालों ने औद्योगिक और साम्पत्तिक विषयों अच्छी उन्नति की है। परन्तु अन्य किसी किसी विष उन्होंने विशेष उन्नति नहीं की। दुराचरण दिन पर दि बढ़ता जा रहा है। समाज में अनेक निष्प्रयोजनीय और घृ रस्में बढ़ती जा रही हैं। सार्वजनिक नाच, स्वेच्छाच अनुचित शृङ्गाररसपूर्ण नाटकों का खेल, अश्लील त इत्यादिक बातें उनके चरित्र को दिन पर दिन बिगाड़ हैं। ये बुराइयाँ निम्न श्रेणी के आदमियों ही में नहीं शिक्षित छात्रों में भी पाई जाती हैं। छात्रों में इस प्रकार बातें फैलती हुई देख कर दूरदर्शी अमेरिकावासी भयभीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। यदि ये छात्र, जो विद्यालयों से निकल कर भारत, चीन, जापान आदि में धर्म-प्रचारार्थ अथवा व्यापार आदि करने जायँगे, चरित्र-हीन हो जायँगे तो क्या उन देशों के निवासी अमेरिका-निवासियों पर न हँसेगें और क्या अमेरिका को छात्रों की चरित्र-हीनता के कारण क्षति न उठानी पड़ेगी? यही सोच कर अमेरिकावालों ने छात्रों को नैतिक और धार्म्मिक शिक्षा देना आरम्भ कर दिया है। इसी से यहां प्रतिवर्ष छात्रों के कितने ही बड़े बड़े सम्मेलन होते हैं।

संयुक्त-राज्य के पश्चिमोत्तर में आरेगन, वाशिङ्गटन, आयडाहो और माटाना नामक प्रान्त हैं। इन प्रान्तों के छात्रों का हाल में एक सम्मेलन हुआ था। सम्मेलन में विचार यह उपस्थित किया गया था कि सदाचार का प्रचार किस प्रकार किया जाय। उक्त प्रान्तों के प्रत्येक कालेज से प्रतिनिधि आये थे। कनाड़ा, चीन, जापान, फिलीपाइन इत्यादि से भी लोग गये थे। भारतवर्ष से भी बम्बई प्रान्त के पादड़ी डाक्टर ह्यूम इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए थे। सौभाग्य-वश मैं भी इस सम्मेलन में पहुँच गया था।

यह सम्मेलन आरेगन प्रान्त के उस स्थान पर हुआ था जहां कोलम्बिया नदी समुद्र से मिलती है। इस स्थान का नाम है कोलम्बिया बीच। यह अत्यन्त रमणीय स्थान है।

एक ओर विस्तीर्ण समुद्र की प्रचण्ड लहरें किनारे पर टकरा कर अपूर्व कलरव उत्पन्न करती थीं। दूसरी ओर कोलम्बिया नदी की छोटी बड़ी बाष्प-नौकाओं का समूह एक विचित्र ही दृश्य नेत्रों के सामने लाता था। बड़े बड़े वृक्षों से ढकी हुई चट्टानों पर गम्भीर भाव से खड़ा हुआ विद्युद्दीप रात को अपनी तीव्र दीप्ति से पास के जहाज़ों का भय निवारण करता था। इन सब दृश्यों से घिरा हुआ सम्मेलन का वर्तुलाकार मण्डप बहुतही शोभा देता था। यह स्थान एकान्त में है; तो भी यह बिजली की रोशनी, टेलीफोन, जलकल, अच्छे रास्ते इत्यादि आराम देनेवाले साधनों से परिपूर्ण है।

सम्मेलन के सब काम नियत समय पर होते थे। कार्य्यारम्भ की सूचना घंटी द्वारा दी जाती थी। प्रातःकाल उठने की घंटी पौने छः बजे होती थी। छः से लेकर साढ़े छः बजे तक प्रातर्विधि से निवृत्त होने पर ईश्वर-प्रार्थना होती थी। पौने सात पर भोजन की घंटी होती थी। घंटी बजते ही सब लोग अपने अपने विद्यालय के समूह में मिल कर एक लाइन में खड़े हो जाते थे। उस समय एक महाशय सब प्रतिनिधियों को आरोग्यदान देने के लिए ईश्वर-प्रार्थना करता था। तदनन्तर संसार के सभी मनुष्यों के लिए भी वैसीही प्रार्थना करके वह उस दिन का कार्य्य निर्विघ्नता-पूर्वक समाप्त हो जाने के निमित्त ईश्वर से सहायता पाने का प्रार्थी होता था। प्रार्थना समाप्त होते ही सब लोग अपनी अपनी कुरसी पर जा बैठते थे और भोजन करते समय खूब हँसी-मज़ाक़ होता था। भोजन करते समय, बीच बीच में, छात्र लोग अपने अपने विद्यालय का नाम लेकर जय-घोष करते थे। एक विद्यालय का जय-घोष सुन कर दूसरे विद्यालय वाले भी अपने अपने विद्यालयों के जय-घोष से कानों के परदे फाड़ने लगते थे। यह गर्जना सुनते ही सारा समूह हर्षित होकर बड़े ज़ोर से ताली बजाता था।

भोजनोत्तर कुछ विश्राम करके सब छात्र अपनी अपनी क्लास में जाते थे। वहां धर्म, नीति, समाज, और सार्वजनिक कामों की बारह बजे तक चर्चा होती थी। तदनन्तर मध्याह्न का भोजन पूर्वोक्त रीति पर बड़े आनन्द से होता था। एक से दो बजे तक सब प्रतिनिधि फिर एकत्र होते थे। उस समय अनेक उपयोगी विषयों पर वक्तृतायें होतीं थी। दो बजे से ढाई बजे तक केवल धार्मिक विषयों पर चर्चा होती थी। ढाई बजे से छः बजे तक खेल-कूद, पहाड़ पर चढ़ना, समुद्र में जल-क्रीड़ा करना इत्यादि आनन्ददायिनी बातों से चित्त प्रसन्न किया जाता था। छः से सात बजे तक फिर भोजन होता था। सात से पौने आठ तक भिन्न भिन्न महाविद्यालयों के छात्र अपने अपने तम्बू में दूसरे महाविद्यालयों के मुखियों को निमन्त्रित करके अपने विद्यालय के दुराचारी और कुमार्गी व्यक्तियों के सुधार के विषय में वार्त्तालाप करते थे। फिर दस बजे तक दूसरे दिन के कार्य्यक्रम का विचार होता था। दस बजे सोने के लिए घंटी बजते ही सब लोग ईश्वर-प्रार्थना करके सो जाते थे। इस कार्य्य-क्रम में विशेषता यह थी कि बिना ईश्वर-प्रार्थना के किसी भी काम का आरम्भ न किया जाता था।

अमेरिका-निवासियों में धर्म का प्रचार करना और उनको सच्चरित्र बनाना ही इस प्रकार के सम्मेलनों का उद्देश है।

श्रुति, स्मृति, पुराण इत्यादि ग्रन्थ जैसे भारतीय धर्म के आधार-स्तम्भ हैं वैसेही ईसाई धर्म का आधार-स्तम्भ है बायबिल। सम्मेलन में बायबिल के महत्त्व पर बहुत कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा सुना गया। छात्रों को बतलाया गया कि प्रत्येक ईसाई का बायबिल पढ़ना तो कर्तव्य है ही; परन्तु जो ईसाई नहीं उन्हें भी बायबिल पढ़ना चाहिए; क्योंकि बायबिल नीति का कोश और प्राचीन इतिहास का उत्कृष्ट ग्रन्थ है। बहुत से छात्रों ने इस बात की शपथ खाई कि हम बायबिल पढ़ने वालों की संख्या-वृद्धि करने में यथा-शक्ति यत्न करेंगे।

दूसरा विषय आचरण-सम्बन्धी था। हमारे सदाचार की कल्पना से अमेरिका-निवासियों के सदाचार की कल्पना में ज़मीन आसमान का अन्तर है। अमेरिका-निवासी सच्चे ईसाई के आचरण को बड़ी बारीकी से देखते हैं। केवल बप्तिस्मा लेकर सदा गिर्जा-घर की हाज़िरी देने से कोई प्रकृत ईसाई नहीं हो सकता। यदि उसका व्यावहारिक आचरण गिरा हुआ है तो यहाँ वाले उसको कभी सच्चा ईसाई न कहेंगे। इस प्रकार का विचार अमेरिका-निवासियों में दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। सम्मेलन के प्रत्येक प्रतिनिधि से अपना अपना व्यावहारिक आचरण शुद्ध रखने के लिए प्रतिज्ञा ली गई और प्रतिज्ञा-भङ्ग करने वाले के लिए दण्ड-विधान भी किया गया। छात्रों का नैतिक चरित्र कैसे सुधारा जाय, इस विषय पर भी बहुत विचार किया गया और बहुत से उपाय भी बतलाये गये।

परोपकार, धर्मार्थ-द्रव्योपार्जन, धार्मिक व्यवहार इत्यादि विषयों पर भी चर्चा हुई। छात्रों में होनेवाले घृणित रोगों पर प्रसिद्ध प्रसिद्ध डाक्टरों के व्याख्यान हुए। जिन्होंने छिप कर बुरे काम किये थे उन्होंने उनको स्वीकार किया और भविष्यत् में सच्चरित्र बनने की प्रतिज्ञा भी की।

ईसाई लोग अपने दोषों को दूर करने और अपने धर्म के प्रचारार्थ नये नये उपाय ढूँढ़ने का यत्न करते रहते हैं। वे आज कल अपने धर्म्मान्तर्गत भिन्न भिन्न पन्थों को तोड़ कर एक करने की बड़ी आवश्यकता समझ रहे हैं। सम्मेलन में लोगों ने इस तुच्छ भेद-भाव के विचार को त्याग देने का निश्चय किया। जहाँ पर ईसाई धर्म का प्रचार नहीं है वहाँ इस भेद-भाव को भूल कर काम करने का निश्चय हुआ। हम लोग अन्य धर्म की पुस्तकों का अध्ययन नहीं करते। परन्तु ईसाई दूसरे धर्म की पुस्तकें बड़ी उत्सुकता से पढ़ते हैं और अपने धर्म की तुलना पर-धर्म से करते हैं। हमारे यहाँ अन्य धर्म की पुस्तकें यदि देखी भी जाती हैं तो केवल खण्डन-मण्डन के इरादे से; परन्तु यहाँ वाले अन्य मतों की पुस्तकें सत्यांश जानने के इरादे से पढ़ते हैं।

भारत की नीच जातियों को ईसाई बनाने के विषय में इस सम्मेलन ने एक प्रस्ताव पास किया। भारत के नीच को ईसाई बनाने के बाद उनकी साम्पत्तिक स्थिति सुधारने लिए उनको चमड़ा कमाना, जूतों और बूटों के कारख़ाने खोल चमड़े के कमरबन्द, हड्डियों के बटन, और लकड़ी के इत्यादि बनाने तथा सरेस का काम करने आदि की शिक्षा निश्चित हुआ। उच्च हिन्दू इन कामों को करेंगे ही नहीं नीच जातियां बिना सङ्कोच के करेंगी। ईसाई होकर कामों को करने के बाद थोड़ेही समय में पैसे वाले हो और स्वयं ईसाई धर्म के प्रचार का काम करने लगेंगे।

इस सम्मेलन के कार्य्य-कलाप से भारतवासी बहुत शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

पाण्डुरङ्ग खानखोजे—(अमेरिका)

विविध विषय।

१—आधुनिक कविता।

आर्थर डैवीसन फिके नामक एक साहब का एक लेख आधुनिक कविता पर अमेरिका के एक मासिक पत्र में निकला है। कवि के लक्षणों पर विचार करते हुए साहब कहते हैं कि कवि को देश और काल की अवस्था का पूरा ज्ञान होना चाहिए। वह मनोविज्ञान का वेत्ता हो और मनुष्य के चरित्र का उसने अच्छी तरह अध्ययन भी किया हो। सबसे अच्छी कविता वह है जिसमें जीवन की सार्थकता के उपाय और उसके उद्देश मनोहारिणी भाषा में बतलाये जाते हैं, मनुष्य को अच्छी शिक्षा दी जाती है, उसे उन्नति का मार्ग दिखाया जाता है और उसके हृदय को उदार और सहानुभूति-पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया जाता है। अच्छी कविता में उन्हीं विषयों का वर्णन होता है जो मनुष्य के जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं और जो उसकी आत्मा और आध्यात्मिकता पर गहरा असर डाल सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप आगे चल कर कहते हैं कि बुद्धिमान् लोग उसी कविता की क़दर करते हैं जो उच्च विचारों को प्रकट करती हो, हृदय और बुद्धि के ऊपर अच्छा प्रभाव डालती हो और समयोपयोगी आवश्यक उपदेशों को ऐसे ढँग से देती हो जिससे मनुष्य बहुत जल्द उन्हें ग्रहण कर सके।

२—दुर्लभ संस्कृत-ग्रन्थ।

गवर्नमेंट के प्रबन्ध से संस्कृत के हस्त-लिखित ग्रन्थों की जो खोज होती है उसकी रिपोर्टें देखने से संस्कृत के अनेक दुष्प्राप्य ग्रन्थों का पता लगता है। कलकत्ते के महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्री, एम० ए० के द्वारा खोजे गये ग्रन्थों पर एक रिपोर्ट है। उसमें काठमाण्डू के राजकीय पुस्तकालय की अनेक पुस्तकों के नाम आदि हैं। इस पुस्तकालय में एक स्कन्दपुराण है, जो ६५७ ईसवी में लिखा गया था। सम्मुखकल्प नाम का एक ग्रन्थ है, जिसमें चोरी करने की विद्या का विस्तारपूर्वक वर्णन है। हरिहयचतुरङ्ग नाम का एक ग्रन्थ धनुर्वेद-विषयक है। कश्यपसंहिता नामक एक बहुत ही प्राचीन ग्रन्थ आयुर्वेद-सम्बन्धी है। नाचने पर हस्तमुक्तावली; सङ्गीत पर ज्ञानालोकन; भवननिर्म्माण पर प्रतिष्ठातत्त्व; कामशास्त्र पर कामकला, रागरहस्य और नागरकसर्व्वस्व आदि भी इस पुस्तकालय में हैं। नैपाल-नरेश ने अपने यहाँ के जो हज़ारों ग्रन्थ विलायत भेज दिये हैं उनके साथ, मालूम नहीं, ये भी सब चले गये या रह गये हैं। डाक्टर कीलहार्न की एक रिपोर्ट में कालिदास-कृत चण्डिकादण्डक-स्तोत्र का और सूत्रधार मण्डन-कृत वास्तुशास्त्र का नाम है। नहीं कह सकते, ये चण्डिकादण्डकवाले कालिदास कौन हैं। बंबई के ए० बी० काथवटे महाशय की एक रिपोर्ट में कविकर्पटी नाम के एक ग्रन्थ का उल्लेख है। यह कविराज शङ्कधर का बनाया हुआ है। इसमें शीघ्र कविता करने की विधि बतलाई गई है। इस रिपोर्ट में एक ग्रन्थ का नाम द्विजवदनचपेटा लिखा है। उसमें द्विजों के दोषों का वर्णन है।

३—दक्षिणी ध्रुव का आविष्कार।

पाश्चात्य देशवालों का साहस और उद्योग प्रशंसनीय है। जिस काम को वे अपने हाथ में लेते हैं उसे कर ही के छोड़ते हैं। बहुत समय से उन्हें पृथ्वी के दोनों ध्रुवों तक पहुँचने की धुन समाई थी। इस निमित्त उन्होंने करोड़ों रुपये ख़र्च कर डाले और सैकड़ों आदमी भूखों मर गये। परन्तु उन्होंने अपनी धुन को न छोड़ा। उत्तरी ध्रुव का पता तो २ वर्ष पहले ही लगा लिया था। अब हालही में नारवे देश के कप्तान एमंडसन नाम के एक साहब दक्षिणी ध्रुव की भी यात्रा करके सकुशल लौट आये हैं। वे अपने आठ साथियों सहित दक्षिणी ध्रुव की ओर चले थे। रास्ते में सरदी बहुत बढ़ जाने से उन्हें विवश होकर कुछ दूर पीछे लौट आना पड़ा। २० आक्टोबर को वे अपने कुछ साथियों सहित फिर उसी ओर चले। लगभग बीस मील प्रति दिन चल कर वे १४ दिसम्बर को ध्रुव पर पहुँच गये। रास्ते में उन्हें नाना प्रकार के कष्ट उठाने पड़े। सोलह सोलह हज़ार फ़ीट तक की उँचाई के पहाड़, बर्फ़ से ढके हुए अपने श्वेत शिखरों को ऊँचा किये, उनका मार्ग रोकने को खड़े हुए। बर्फ़ की बड़ी बड़ी चट्टानों पर से चढ़ कर उन्हें गुज़रना पड़ा। पर वे रुके नहीं। ३० नवम्बर को उन्हें बर्फ़ की एक ऐसी चट्टान से मुक़ाबला करना पड़ा जिसमें पग पग पर बड़े बड़े छेद और दरारें थीं। ज़रा पैर चूका और नीचे गये। इस साहसी दल ने उसे भी तीन दिन में पार कर डाला। ध्रुव पर पहुँच कर उन्होंने वहाँ अपने देश का झण्डा गाड़ दिया और तीन दिन तक ध्रुव-भूमि का विविध यन्त्रों द्वारा निरीक्षण करते और वहाँ के दृश्यों का फोटो लेते रहे। तत्पश्चात् वे लौट पड़े। वे अपने साथ खाने पीने का सामान तो बहुत सा ले गये थे, परन्तु उसके चुक जाने के कारण उन्हें साथ ले जाये गये कुत्तों को मार कर खा जाना पड़ा। ५२ कुत्तों में से केवल १७ ही लौट कर आये।

एमंडसन साहब का कथन है कि ध्रुव एक विस्तृत पृष्ठभूमि (Plateau) पर स्थित है। वह समुद्र-तल से साढ़े दस हज़ार फ़ीट ऊँची है। ऋतु शान्त थी। मालूम होता था कि न वहाँ तूफ़ान आता होगा और न पानी बरसता होगा।

४—महाराज कनिष्क की मूर्ति।

सन ईसवी की पहली शताब्दी के लगभग महाराज कनिष्क उत्तरी भारत के सम्राट थे। क़ाबुल, कन्धार, खुतन और तिब्बत के उत्तर में फैले हुए कितने ही अन्य छोटे बड़े प्रदेश भी उनके अधीन थे। वे बौद्ध-धर्मावलम्बी थे। अपनी राजधानी पेशावर के पास उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बड़ा भारी बौद्ध-स्तूप बनवाया था, जो लगभग सवा सौ गज़ ऊँचा था और जिसमें तेरह खण्ड थे। गत १९०९ में पेशावर के पास के एक टीले के खोदे जाने पर उक्त स्तूप के बहुत से चिह्न प्राप्त हुए थे। उनमें एक डिब्बा भी था जिसमें भगवान् बुद्ध का एक दाँत रक्खा था। उसके ऊपर अङ्कित अन्य चित्रों के साथ महाराज कनिष्क का भी एक चित्र था। हाल ही में मथुरा ज़िले के अन्तर्गत भाट नामक स्थान में महाराज कनिष्क की एक बड़ी भारी मूर्ति मिली है। मूर्ति का सिर टूट गया है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वह कनिष्क ही की मूर्ति है, क्योंकि उसमें प्राचीन संस्कृत-लिपि में कनिष्क का पूरा पूरा नाम स्पष्ट खुदा हुआ है। इस मूर्ति की आकृति और पेशाक ठीक वैसी ही है जैसी कि पेशावर में पाये गये डिब्बे पर अङ्कित महाराज कनिष्क के चित्र में दिखाई गई है। अन्तर केवल इतना ही है कि मूर्ति में सब बातें चित्र से अधिक साफ़ मालूम होती हैं। अँगरखा घुटनों के नीचे तक लटका हुआ है। पैरों में उसी प्रकार के भारी भारी जूते मालूम होते हैं जैसे आज कल के गिलगिट-बूट (Gilgit Boot) होते हैं। दाहने हाथ में गदा है और बायें में एक लम्बी, परन्तु सीधी तलवार की मूठ।

भारत में किसी प्राचीन ऐतिहासिक पुरुष की मूर्ति अभी तक न निकली थी। यह मूर्ति अपने ढँग की सब से पहली है। बुद्ध भगवान् की कितनी ही मूर्तियाँ कितने ही बार और कितने ही स्थानों पर प्राप्त हुई हैं; परन्तु उनकी आकृति में एक दूसरे से कुछ न कुछ अन्तर है। साथ ही इसके उनकी कोई भी मूर्ति ऐसी नहीं मिली है जो उनके जीवनकाल ही में बनी हो और जिसके विषय में यह कहा जा सके कि वह बुद्ध भगवान् की आकृति के अनुसार ही बनाई गई होगी। परन्तु महाराज कनिष्क की मूर्ति के विषय में ऐसी कोई शङ्का नहीं की जा सकती। सम्भव है, आस पास खोदने से इस मूर्ति का टूटा हुआ सिर भी मिल जाय।

५—धातुओं में रोग।

जड़ माने गये धातु भी रोगों से पीड़ित हुआ करते हैं। टीन सब से अधिक नाज़ुक-मिज़ाज धातु है। वह बहुत जल्द बीमार पड़ जाता है। ज़रा सी सरदी लगी कि उसका रङ्ग फीका पड़ा। अधिक सरदी से तो वह गल कर भूरे रङ्ग का चूर्ण हो जाता है। प्रायः देखा जाता है कि अधिक सरदी पड़ने पर टीन के बटन और टीन की बनी हुई अन्य चीज़ें नष्ट हो हैं। बीमार टीन स्वयं तो नष्ट हो ही जाता है; किन्तु दशा में उसका टीन के जितने नीरोग टुकड़ों से संसर्ग है उन्हें भी वह रोगी कर देता है। टीन के रोग की भी हो सकती है। सरदी लगने से बीमार हुए टीन की वस्था तक में परिवर्तन हो सकता है। दवा से वह फिर असली रङ्ग-रूप को प्राप्त कर लेता है। विशुद्ध टीन ही रोग होता है। यदि उसमें कुछ मिला दिया जाय तो उसे नहीं सताता। टीन में सीसा मिला देना उसके स्वास्थ्य लिए बहुत हितकर है।

टीन के सिवा और धातुओं को भी रोग हो जाया क है। दूसरी धातुओं का मेल होने से पारा दूषित हो जाता यही उसका रोग है। बिजली के प्रभाव से कांच बीमार जाता है। उससे कुछ विशेष प्रकार की किरणों का निक बन्द हो जाता है। पर थोड़े दिनों में वह आपही आप ठ हो जाता है। गलाई जाने के बाद ठंडी होने पर चाँदी बीमार पड़ने का भय रहता है। बीमारी की दशा में उस रङ्ग उतना उज्ज्वल नहीं रहता। और भी कितनी ही धा बीमार पड़ती हैं। बीमारी की हालत में धातुयें काम की रहतीं। बहुत सी धातुयें आपही आप नीरोग हो जाती हैं रासायनिक प्रयोगों से भी वे नीरोग की जा सकती हैं।

६—जैन-साहित्य का कल्पित कथा-भाग।

संस्कृत में क़िस्से-कहानियों की पुस्तकों की बहुत है। पहले चाहे यह दशा न रही हो, पर इस समय पुस्तकें दोही चार उपलब्ध हैं। कादम्बरी, दश-कुमारच वासवदत्ता, कथासरित्सागर और पञ्चतन्त्र की गणना ऐसी पुस्तकों में है। खुशी की बात है, जैन-साहित्य के प्रेमि ने ऐसी और भी कितनी ही पुस्तकों का पता लगाया है। सब जैन पण्डितों की बनाई हुई हैं। हेमविजय-कृत क रत्नाकर, पूर्णभद्रकृत पञ्चाख्यान, मेघविजय-कृत पञ्चाख्यानोप और मलयसुन्दरी-कथा आदि पुस्तकें जैनों ही के साहित्य अन्तर्गत हैं। साधारण संस्कृतज्ञों को अभी तक इन पुस्तकों का नाम तक न मालूम था। जर्मनी के अध्यापक जोन्सहर्टल, पी० एच० डी० जैन-कथा-साहित्य पर एक विस्त ग्रन्थ लिख रहे हैं। उसमें वे इन पुस्तकों के सिवा और अनेक कथा-पुस्तकों का इतिहास लिखने को हैं। अपने ग्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में वे इस बात का भी विचार करेंगे कि जैनों के इस साहित्य की किस किस पुस्तक का अनुवाद किस किस अन्य-भाषा में हुआ है। उसका किस प्रकार रूपान्तर होता गया है, और, इस समय, योरप की भाषाओं में वह किस रूप में पाया जाता है। अध्यापक महाशय की राय है कि पञ्चतन्त्र का आदि-कर्त्ता कोई जैन पण्डित ही था। इसको वे अपने ग्रन्थ में सप्रमाण सिद्ध करने की चेष्टा करेंगे। संस्कृत में एक पुस्तक शुकसप्तति नाम की है। हिन्दी में उसे शुकबहत्तरी कहते हैं। संस्कृत और हिन्दी की इस प्रचलित पुस्तक की कहानियाँ अधिकांश अच्छी नहीं—वे उपदेश पूर्ण नहीं। किसी किसी में तो शृङ्गार-रस की अनुचित अधिकता है। पर इस पुस्तक के जो अनुवाद फ़ारसी और तुर्की भाषाओं में विद्यमान हैं उनमें ये दोष नाम मात्र को भी नहीं पाये जाते। अध्यापक हर्टल का अनुमान है कि ये अनुवाद जैनों की बनाई हुई किसी शुकसप्तति के आधार पर किये गये हैं। इसी से इनमें अश्लीलता नहीं। उनका कथन है कि जैनों ने जितनी क़िस्से-कहानियों की किताबें लिखी हैं सब शिक्षाओं से पूर्ण हैं। चित्त को विकृत करने वाली बातें उनमें नहीं। उपमितिभव-प्रपञ्च कथा, जो अभी हाल में प्रकाशित हुई है, और जिसकी समालोचना कुछ महीने पहले सरस्वती में निकल चुकी है, इस बात की पुष्टि करती है। अध्यापक हर्टल का यह ग्रन्थ बड़े महत्त्व का होगा। आप अनेक भाषाओं के पण्डित हैं। अब भी आप नई नई भाषायें सीखते जाते हैं। इस समय आप गुजराती भाषा सीखने की धुन में हैं। इन्होंने एक पत्र बनारस की जैनयशोविजय-पाठशाला के संस्थापक को लिखा है। उसीमें आपने इन सब बातों का उल्लेख किया है और उसी से हमें इस नोट के लिए सामग्री प्राप्त हुई है।

७—समुद्रवासी बूढ़ा मनुष्य।

दक्षिणी अफ़रीक़ा में केप-टाउन नाम का एक बन्दर-गाह है। उसके पास ही समुद्र में एक अद्भुत मछली पाई गई है। उसका सिर मनुष्य के सिर की तरह है। चेहरे के नीचे के भाग में कुछ प्राकृतिक रेखायें हैं जो जबड़े की तथा अन्य हड्डियों के कारण बन गई हैं। उसकी नाक सूख कर कुछ बैठ गई है। जब वह जीवित थी तब उसका रूप आदमी के रूप से बहुत मिलता जुलता था। उसकी डाढ़ों की मज़बूती से प्रकट होता है कि वह घोंघे और अन्य हड्डीदार जल-जीवों को

समुद्रवासी बूढ़ा मनुष्य।

खाती होगी। उसके नीचे के जबड़े में दाँतों की दो पंक्तियाँ हैं। जल-जन्तु-विद्या के आचार्यों ने इस मछली का नाम—"समुद्रवासी बूढ़ा मनुष्य"—रक्खा है। इस मछली के सूखे सिर पर टोपी रख कर, मुँह में चुरुट दबा कर, और गरदन के नीचे के भाग में कोट पहना कर उन्होंने इसके आकार में बूढ़े मनुष्य के आकार का अद्भुत साम्य उत्पन्न कर दिया है।

८—हज़ार वर्ष के बाद भावी शुभ दिन।

प्रोफ़ेसर केमिली फ़्लेमेरिअन फ़्रान्स के एक विख्यात विज्ञानवेत्ता हैं। आपने कई भविष्यद्वाणियाँ कही हैं। आपका कथन है कि भावी सहस्र वर्षों में बहुत बड़े बड़े उथलपुथल और परिवर्तन संसार में होंगे। योरप की आबादी, जो आज कल ३७५००००० है, आपकी राय में, हज़ार वर्षों में बढ़ कर ७००००००० हो जायगी। एशिया की आबादी ८७००००००० से १०००००००० हो जायगी। अमेरिका की १२००००००० से १५००००००० बढ़ जायगी। आफ़्रिका की ७५००००० से २००००००० तथा आस्ट्रेलिया की ५००००० से ६००००००० बढ़ जायगी। और, संसार भर की आबादी १४५००००००० से ८३६००००००० हो जायगी। अँगरेज़ी भाषा का प्रायः समस्त संसार में प्रचार हो जायगा। युद्ध बिलकुल उठ जायगा और जातियों के आपस के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झगड़े पञ्चायत से तै होंगे। हर देश में राजाओं और रानियों के स्थान में प्रजा-सत्तात्मक राज्य स्थापित हो जायगा। संसार में एक ही सिक्के का चलन रहेगा। हर काम में बाष्प का स्थान विद्युत् ले लेगी। रेलगाड़ियों का काम व्योमयानों से लिया जायगा। सब देशों का एक दूसरे के साथ टेलिफ़ोन से सम्बन्ध रहेगा और आस्ट्रेलिया तथा न्यूज़ीलैंड के रहने वाले इटली, लन्दन और पेरिस के नाटक-घरों के गीतों को घर बैठे सुनेंगे।

प्रोफ़ेसर साहब ने भविष्यत् का बहुत ही सुन्दर चित्र खींचा है। परन्तु उनकी भविष्यद्वाणियों में बहुत सी बातें हज़ार वर्ष के पहले ही हो जानी चाहिए।

जनार्दन भट्ट।

९—केले का मन्दिर।

कानपूर में भादों के महीने में देवालयों में झाँकी बना करती है और उत्सव मनाया जाता है। लोग इन झाँकियों को देखने के लिए प्रसिद्ध मन्दिरों और शिवालयों में जाया करते हैं। मोलगंज में बाबू श्यामसिंह के गणेशगढ़ नामक स्थान में केले का एक मन्दिर बनाया जाता है और उसी में उत्सव के समय गणेशजी स्थापित किये जाते हैं। यह केले का मन्दिर बड़ा ही सुन्दर बनता है और इसकी कारीगरी देखने के लिए दर्शक विशेष रूप से एकत्र होते हैं। इसके बनाने वाले हैं बाबू गङ्गाप्रसाद स्वर्णकार। आप सोने चाँदी की कारीगरी में भी बड़े प्रसिद्ध हैं। पूर्वोक्त केले के मन्दिर आप सैकड़ों तरह के बनाते हैं। इस अङ्क में प्रकाशित चित्र उन मन्दिरों का एक नमूना है। ये मन्दिर बड़े ही सुन्दर बनते हैं। अनभिज्ञ लोगों को तो इन्हें देख कर हाथीदाँत का भ्रम हो जाता है। पूर्वोक्त मन्दिर १० फ़ीट ऊँचा और ६ फ़ीट चौड़ा है। यह केवल दो दिन में बन कर तैयार हो जाता है। चित्र के बाईं ओर गणेशगढ़ के स्वामी बाबू श्यामसिंह जी और दाहिनी ओर मन्दिर के निर्माता बाबू गङ्गाप्रसादजी विराजमान हैं।

१०—बङ्गाल के पहले गवर्नर।

जुड़े हुए दोनों बङ्गाल के पहले गवर्नर लार्ड टामस गिब्सन कारमाइकल बार्ट, जी० सी० आई० ई, के० सी० एम० जी० नियत हुए हैं। इस समय आप मदरास के गवर्नर हैं। इसके पहले आप आस्ट्रेलिया में विक्टोरिया के गवर्नर थे। विलायत में आप कई ऊँचे ऊँचे पदों पर अधिष्ठित रह चुके हैं। मदरास आये आपको थोड़ा ही समय हुआ है। परन्तु इतने ही आप सर्वजनप्रिय हो गये हैं। सम्राट् ने भारत से करते समय सबको सहानुभूति और एकता आदि का दिया था। लार्ड कारमाइकल ने वही उपदेश भारत में करते ही दिया। आपकी दोही तीन वक्तृताओं से यह होता है कि आप बड़े ही उदारायश हैं। इसी से प्रजा, आपकी नियुक्ति का संवाद सुन कर, प्रसन्नता रही है। अन्यत्र इस संख्या में आपका चित्र प्रकाशित जाता है।

११—आसाम के नये चीफ़ कमिश्नर।

आसाम पहले एक अलग सूबा था। लार्ड उसे पूर्वी बङ्गाल में मिला कर आसाम की चीफ़ तोड़ दी थी। भारत-सम्राट् ने दोनों बङ्गालों को एक आसाम को उनसे फिर अलग कर दिया। माननीय सर डेल अर्ल आसाम के चीफ़ कमिश्नर नियत हुए हैं। आये आपको कोई तीस वर्ष हुए। कई बड़े बड़े पदों पर चुके हैं। इस समय आप गवर्नमेंट आव् इंडिया के होम टरी हैं। अन्यत्र आपका भी चित्र प्रकाशित किया जाता

१२—चुम्बक का एक लाभदायक उपयोग।

चुम्बक से अनेक काम निकलते हैं। विज्ञान-वृद्धि चुम्बक ने बड़ी सहायता की है। सैकड़ों यन्त्र ऐसे हैं जि चुम्बक काम आता है। यदि वह न होता तो ख़बर भेजने तार प्रायः निरुपयोगी हो जाता। बहुत दिनों से उससे ताओं में भी काम लिया जाता है। शस्त्राघात अथवा किसी तरह शरीर में यदि चोट लग जाती है और लोहे छोटे छोटे कण घाव में रह जाते हैं तो वे चुम्बक की सहायता बड़ी आसानी से निकल आते हैं। कारख़ानों में काम वालों की आंखों में यदि लोहे का कण या उसका कोई टु पड़ जाता है तो उसे चुम्बक ही से निकालते हैं। ज़ूरिक एक डाक्टर ने, जिनका नाम हाब है, अब एक नई तरह चुम्बक बनाया है। उसका आकार गोल है। उसमें एक पत नोक रहती है। यह चुम्बक लोहे के पोले स्तम्भ के रक्खा रहता है। यदि किसी की आंख में लोहे का कण कुछ पड़ जाय और वह इस चुम्बक की नोक के ठीक सा आंख करके बैठ जाय तो वह तुरन्त ही आंख के भीतर खिँच कर चुम्बक में चिपट जाता है। इस आकर्षण-क्रिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

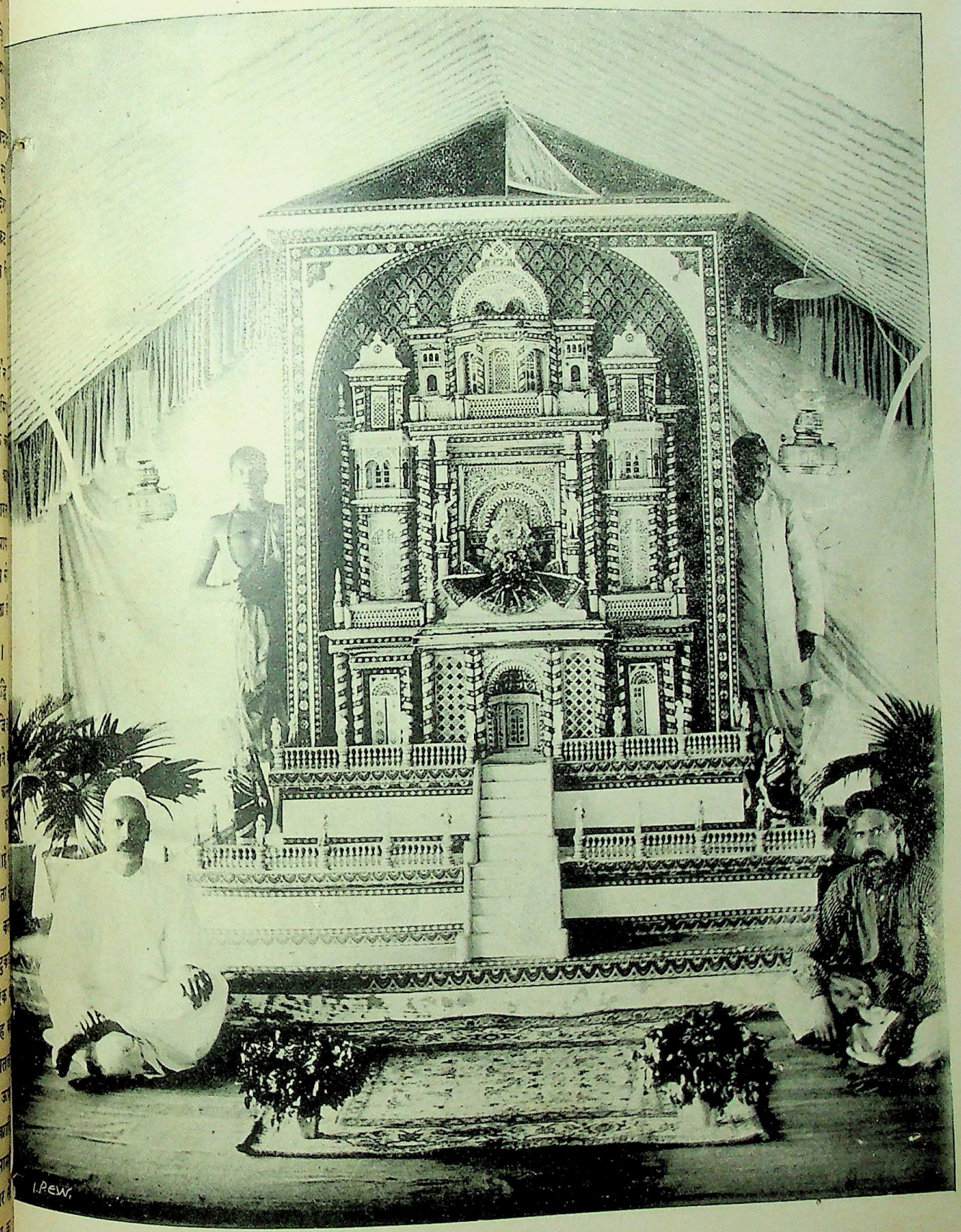

केले का मन्दिर ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लार्ड टामस गिब्सन कारमाइकल बार्ट, जी० सी० आई० ई० ।

Indian Press, Allahabad.
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माननीय सर आर्क डेल अर्ल।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुम्बक की आकर्षण-क्रिया का एक नवीन दृश्य।
(आंख में पड़े हुए लोहे के कणों का चुम्बक की सहायता से निकाला जाना)

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक चित्र यहाँ पर प्रकाशित किया जाता है। डाक्टर हाब एक आदमी की आँख से लोहे का एक छोटा सा टुकड़ा निकाल रहे हैं। यही इस चित्र में दिखाया गया है।

१३—संयुक्त-प्रान्तों में पत्रों और पुस्तकों की दशा।

इन प्रान्तों की गवर्नमेंट ने अपनी १९१०—११ की वार्षिक रिपोर्ट में जो कुछ इस विषय में लिखा है उसके कुछ अंश का आशय यह है :—इस वर्ष १३७ समाचारपत्र और सामयिक पुस्तकें निकलीं। इनमें ८२ उर्दू में, ५६ हिन्दी, में १४ अँगरेज़ी में और शेष बँगला, उर्दू-अरबी, उर्दू-अँगरेज़ी आदि दो दो भाषाओं में। परन्तु इस हिसाब में कुछ भूल जान पड़ती है, क्योंकि इन सबका टोटल १३७ से अधिक होता है। कुछ भी हो, हिन्दी की अपेक्षा उर्दू में अधिक पत्र और सामयिक पुस्तकें निकलीं। सब मिला कर २१४५ पुस्तकें इस साल प्रकाशित हुईं; इसके पहले वर्ष केवल १९८८ प्रकाशित हुई थीं। इस बढ़ती का मुख्य कारण उर्दू की पुस्तकों की अधिकता है। उनमें फ़ी सदी २५ की वृद्धि हुई। हिन्दी-पुस्तकों की संख्या जितनी १९०९—१० में थी उतनी हीं प्रायः इस वर्ष भी रही। उनमें बढ़ती नहीं हुई। हिन्दी के अभिमानियों के लिए यह बड़ी ही लज्जा की बात है। धर्म्मसम्बन्धी पुस्तकों की संख्या ४० फ़ी सदी के हिसाब से बढ़ी, पर वह भी मुसल्मान-लेखकों की लेखनी की बदौलत। इस विषय में मिस्टर जस्टिस करामतहुसैन की "अज़दीन व अलकौन" नाम की पुस्तक और नवाब सैयद अली हसन खाँ की "फ़ितरतुल इसलाम" नाम की पुस्तक बहुत अच्छी निकली। इतिहास में प्रोफ़ेसर रामदेव की पुस्तक नाम लेने योग्य है; परन्तु लेखक में समालोचन-शक्ति का बिलकुल ही अभाव होने के कारण पुस्तक का सारा महत्त्व नष्ट हो गया। अवध की तवारीख़ और मुसल्मानों के प्राचीन घरानों का इतिहास—ये दो पुस्तकें प्रशंसा के योग्य प्रकाशित हुईं। विज्ञान-विषयक एक भी नई पुस्तक न निकली। हाँ आल्हा के अनेक संस्करण अवश्य छपे। हिन्दी-कविता में लाला सीताराम का किया हुआ रघुवंश का अनुवाद उल्लेख-योग्य है। शृङ्गाररस-सम्बन्धिनी जितनी कविता-पुस्तकें निकलीं प्रायः सभी कुरुचि-दोष से दूषित निकलीं। उपन्यासों का भी यही हाल समझिए।

यह इन प्रान्तों के साहित्य की दशा है! मुसल्मान तो हाईकोर्ट के जज हो जाने पर भी उर्दू में पुस्तकें लिखने का कष्ट उठावें; पर हिन्दू बेकार बैठने ही को अपने कर्त्तव्य की चरम सीमा समझें, या यदि लिखें भी तो हिन्दी को छोड़ कर अन्य किसी भाषा में। फिर भला हिन्दी की उन्नति हो कैसे!

पुस्तक-परीक्षा।

१—काव्यकुञ्ज। इस नाम का मासिक पत्र पाँच वर्ष से निकलता है। बीच में कई महीने यह बन्द हो गया था। अब फिर यह फतेहगढ़ के पालीवाल प्रिंटिंग प्रेस से प्रकाशित होने लगा है। इस बार इसके सम्पादक पण्डित जगतनारायण मिश्र नियत हुए हैं। आप अच्छी हिन्दी लिखते हैं और कविता भी करते हैं। इसके छठे भाग के कई सम्मिलित अङ्क छप कर एकही साथ प्रकाशित हुए हैं। काव्यकुञ्ज-प्रतिनिधि सभा के मंत्री, पण्डित शिवप्रसाद जी मिश्र, वकील, फतेहगढ़ ने अब इसके यथासमय निकलने और अच्छी तरह सम्पादित किये जाने का प्रबन्ध कर लिया है। अतएव काव्यकुञ्जों को एक रुपया वार्षिक मूल्य देकर इसे जीवित रखना चाहिए।

❋

२—गायत्री-भाष्य। इसमें गायत्री-मन्त्र के कोई तीस चालीस अर्थ, पदच्छेद, अन्वय, पदार्थ और हिन्दी भाषा में भावार्थ हैं। और भी गायत्री-सबन्धिनी कितनी ही बातें हैं। आरम्भ में ध्यानानुयायी गायत्री का एक चित्र है। यह सब श्रीपण्डित जगन्नाथ मिश्र के गायत्री-प्रेम और पाण्डित्य का फल है। पुस्तक मोटे चिकने काग़ज़ पर बड़ी सुन्दरता से छपी है। गोरखाग्रन्थ-प्रचारक मण्डली ने इसे छपा कर प्रकाशित किया है। इस मण्डली को "एम० हिल पोस्ट" बंबई के पते पर पत्र लिखने से यह पुस्तक मुफ़्त मिलती है।

❋

३—सम्राट् पञ्चम जार्ज। लेखक पण्डित उदयनारायण वाजपेयी और प्रकाशक पण्डित मुरलीमनोहर शुक्ल, औरैया, इटावा। भारतेश्वर महाराज पञ्चम जार्ज का यह जीवन-चरित है। टायटिल पेज पर उनका एक सुन्दर चित्र है। पुस्तक के परिशिष्ट नम्बर १ में महारानी मेरी का भी संक्षिप्त चरित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट नम्बर २ में "राजराजेश्वर को आशीर्वाद" नामक एक संस्कृत-कविता भी है। वाजपेयी जी हिन्दी के सुलेखक हैं। उनके अनेक लेख सरस्वती में निकल चुके हैं। उन्होंने इस छोटी सी पुस्तक को बड़ी सरल, शुद्ध और रोचक भाषा में लिखा है। पुस्तक का मूल्य चार आने है और प्रकाशक से मिलती है।

❋

४—स्वागत। बड़े मन्दिर-भूलेश्वर-बम्बई के पण्डित बल-भद्र शर्म्मा काव्यरत्नाकर ने इस पद्यात्मक स्वागत की रचना की है। इसमें २० पृष्ठ और ७२ पद्य हैं। छपाई और काग़ज़ तो उत्तम है; पर कविता वैसी नहीं। इसमें राजेश्वर पञ्चम जार्ज का स्वागत है। भूमिका अँगरेज़ी में है। बिना मूल्य लिये ही काव्यरत्नाकर जी इसे देते हैं।

❋

५—स्वास्थ्यामृत-तरङ्गिणी, प्रथम खण्ड— मझौली, पो० विक्रम, ज़िला पटना के श्रीयुत लक्ष्मीनारायण मिश्र वैद्य ने इसकी रचना की है। स्वास्थ्य-रक्षा के उपाय बतलाने के लिए लेखक ने इस पुस्तक को चरक, सुश्रुत, वाग्भट आदि आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर लिखा है। ऊपर संस्कृत-ग्रन्थों के श्लोक दिये गये हैं, नीचे उनकी टीका हिन्दी में। पुस्तक में बहुत सी बातें ऐसी हैं जिनका जानना स्वास्थ्य-रक्षा के लिए लाभदायक है। परन्तु भाषा-सम्बन्धिनी कहीं कहीं अशुद्धियाँ रह गई हैं। छपाई और काग़ज़ साधारण है। इस ६० पृष्ठ की पुस्तक का दाम पाँच आना है। लेखक को लिखने से मिलती है।

❋

६—श्रीपशुपति स्तोत्रं, श्री गुह्यकालीस्तुतिश्च— ये दोनों स्तोत्र नेपाल-निवासी जोशी उपनाम श्रीपण्डित रामचन्द्र शर्म्मा के बनाये हैं। उन्हीं से उपहारवत् मिलते हैं। पहले स्तोत्र में ११३ श्लोक हैं, दूसरे में २६। दोनों स्तोत्र संस्कृत में हैं। कविता रसीली है; भक्ति-भाव से भरी हुई है। पढ़ते समय जान पड़ता है कि शङ्कराचार्य्य या जगन्नाथ राय की रसभरी कविता पढ़ रहे हैं। इन स्तोत्रों को भेज कर जोशी जी ने हम पर बड़ी कृपा की। एतदर्थ हम आपके अत्यन्त अनुगृहीत हैं।

७—बाल-नीति-विज्ञान। बाबू गिरीशचन्द्र दत्त, ए० की चारुनीतिशिक्षा नामक बँगला-पुस्तक का यह वाद है। १६५ पृष्ठ हैं। मूल्य १ रुपया है। अच्छी बँधी है। पुस्तक सात अध्यायों में विभक्त है। सदुपदेश है। बालकों ही के नहीं, सबके पढ़ने लायक़ है। अनुवा श्रीगणेशलालजी ने क्लिष्ट शब्दों का एक कोश भी अन्त दे दिया है। संस्कृत-श्लोकों का जो पद्यात्मक अनुव है वह कहीं कहीं ज़रा खटकता है। बिहार एजुकेशन ऐंड स्टोर्स, भागलपुर से यह पुस्तक मिल सकती है।

❋

८—हिन्दू-धर्म्म की विशेषता—यह भी बाबू गिरीश चन्द्र दत्त, बी० ए० की एक बँगला पुस्तक का अनुवाद इसके अनुवादक हैं श्रीमुरलीधरजी, बी० ए०। इसमें हिं धर्म्म की विशेषता, थोड़े में, बड़ी अच्छी तरह समझाई गई ३८ पृष्ठ की इस पुस्तक का मूल्य २ आने है। जहां से पूर्व बालनीति-विज्ञान नामक पुस्तक मिलती है वहीं से यह भी

❋

९—पुष्टिमार्गीय-आचार्य्य-परम्परा। लेखक इ हैं :—बड़े मन्दिर, भूलेश्वर, बम्बई के भट्ट श्रीबलभद्र शर्म काव्य-रत्नाकर। वैष्णव-सम्प्रदाय की एक पुस्तक का नाम आचार्य्य-परम्परा है। वह उक्त सम्प्रदाय के किसी आचार्य्य लिखी हुई मानी जाती है; परन्तु कुछ लोगों का यह भी है कि साम्प्रदायिक पण्डितों ने ही उसे लिखा है और आचा का नाम दे दिया है। समालोचनार्थ आई हुई इस छोटी पुस्तक में इसी झगड़े का उल्लेख है। लेखक का मत है पुस्तक के रचियता आचार्य्य ही हैं। लेखक महाशय से बिना मूल्य मिल सकती है।

❋

१०—बनौषधि-दर्पण। वङ्गभाषा बहुत उन्नत हो जा रही है। प्राचीन और अर्वाचीन पण्डितों ने उसे साहित्य-भाण्डार में अनेक अमूल्य ग्रन्थरत्न सञ्चित करके बहुगुणसम्पन्न बनाया है। अभी थोड़े दिन हुए उसमें एक विशेष उपयोगी ग्रन्थ ने जन्म पाया है। इसका नाम वनौषधि दर्पण है। इसके प्रणेता कूचविहार-संस्थान के राजवैद्य श्रीविरजानन्द गुप्त कविभूषण महाशय हैं। ग्रन्थारम्भ चिकित्सक-चूड़ामणि स्वर्गीय महामहोपाध्याय श्रीविजयरत्न कविरञ्जन महोदय-लिखित उपक्रमणिका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें आत्रेय से लेकर अब तक जितने वैद्यक-ग्रन्थकार हो गये हैं उनकी एक तालिका दी गई है। चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट, हारीत, सिद्धयोग, चक्रदत्त, वङ्गसेन और भावप्रकाशादि के प्रमाण उद्धृत करके जड़ीबूटियों की पहचान, उनके गुण और परीक्षायें विस्तारपूर्वक लिखी गई हैं। ग्रन्थकार ने उद्भिज्जों के प्राचीन और नवीन नाम तथा उनके प्रयोगादि संग्रह करके अपनी गवेषणा-बुद्धि का अच्छा परिचय दिया है। आरम्भ में "वैद्यकग्रन्थ और निघण्टु-विवरण" शीर्षक निबन्ध में लेखक ने अच्छा पाण्डित्य दिखाया है। देवनागरी में संस्कृत-ग्रन्थों के अवतरण, बँगला में सारांश और अँगरेज़ी में नव्य मत मुद्रित है। वर्तमान युग में विद्यार्थियों को प्राचीन निघण्टु-संग्रह का अध्ययन सहज बात नहीं है। पर इस ग्रन्थ के अध्ययन से उन्हें निघण्टु का बहुत कुछ भाव सहज में ही विदित हो सकेगा। प्रत्येक ओषधि के बँगला, मराठी, गुजराती, हिन्दी, कनाडी और लैटन आदि सप्त भाषाओं में नाम दिये गये हैं।

डाक्टर हार्नली ने जिस प्रणाली का अवलम्बन करके हमारे आयुर्वेदिक ग्रन्थों का कालनिर्णय किया है, लेखक महोदय ने भी उसी का अनुकरण किया है। बड़ी बड़ी दो जिल्दों में यह पुस्तक पूर्ण हुई है। देखें हमारी हिन्दी को ऐसा ग्रन्थ प्रकाशित करने का कब सौभाग्य प्राप्त होता है। हिन्दी में तो राजवैद्य और आयुर्वेद-मार्तण्ड अधिक हैं; पुस्तकें कम।

लल्लीप्रसाद पाण्डेय

❋

११—नीतिदर्शन-प्रथम खण्ड। लेखक लाला राधामोहन गोकुलजी अग्रवाल; सम्पादक, सत्य-सनातन-धर्म्म कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या २१७—मूल्य १२ आने। मैनेजर, देव-नागरी यन्त्रालय, १७ पगैयापट्टी, कलकत्ता से प्राप्य। इस पुस्तक में विशेष करके नैतिक विषयों का निरूपण है। नैतिक कार्य्य, ईश्वर का लक्षण, अन्तरात्मा का विवेक और शासन, आत्मस्नेह, मानवी सुख, प्राकृतिक धर्म्म, धर्म्म-ग्रन्थ, ईश्वरभक्ति आदि पर लेखक महोदय ने अपने विचार इस पुस्तक में प्रकट किये हैं। ब्यावर के सेठ श्रीयुत दामोदरदासजी राठी ने इस पुस्तक की एक हज़ार कापियाँ सर्वसाधारण में बाँटने के लिए लेने की प्रतिज्ञा की है। लेखक महोदय के लिए यह बड़े गौरव की बात है।

१२—नावलिस्ट। इस नामका उर्दू में एक नया मासिक पत्र लाहोर से निकलने लगा है। इसके प्रत्येक अङ्क में तीन भाग होते हैं। पहले भाग में उपन्यास; दूसरे में साधारण साहित्य; तीसरे में कविता होती है। इसके जनवरी १२ के अङ्क में "लीला" और "अनारकिस्टों की गिरफ़्तारी" नाम की दो पूरी और "ज्वाला मरहटा" नाम की एक अधूरी आख्यायिका है। आख्यायिकायें रोचक हैं। पत्र के दूसरे भाग में "लन्दन के मशहूर पत्र डेली-मेल के दफ़्तर की सैर" और बर्नियर की भारत-यात्रा-सम्बन्धिनी पुस्तक के उस भाग का अनुवाद है जिसमें दारा और औरंगज़ेब के युद्ध का वर्णन है। अन्त में कुछ कवितायें हैं। पत्र की छपाई अच्छी है। काग़ज़ भी अच्छा है। वार्षिक मूल्य ३ रुपया है। प्राप्त करने का पता:—मैनेजर-नावलिस्ट एजन्सी-लाहोर रोड, लाहोर।

❋

१३—बर्फ़ बनाने की रीति। अम्बाला छावनी के श्रीयुत अलखधारी महाशय ने कलकत्ते की गत सातवीं औद्योगिक परिषद् के लिए अँगरेज़ी में एक लेख, बर्फ़ बनाने के विषय में, लिखा था। उसी को अब आपने पुस्तकाकार प्रकाशित किया है। पुस्तक का नाम है—"Ice Manufacture In Theory and Practice"—बर्फ़ बनाने से सम्बन्ध रखने वाले व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक नियमों का बड़ी ही योग्यता से लेखक महोदय ने इस पुस्तक में निरूपण किया है। बहुत कुछ जाँच, पड़ताल और परीक्षा के अनन्तर आपने सब बातें लिखी हैं। उद्योग-धन्धा और विज्ञान—इन दोनों दृष्टियों से पुस्तक बड़े महत्त्व की है। जिन्होंने बर्फ़ बनाने के कारख़ाने खोल रक्खे हैं अथवा जिनकी इच्छा खोलने की है उन्हें इस पुस्तक को अवश्य देखना चाहिए। औरों को भी इसे पढ़ने से अनेक नई नई बातें मालूम हो सकती हैं। कितनी ही चीज़ें ऐसी हैं जो बर्फ़ में रखने से महीनों नहीं बिगड़तीं। अतएव व्यवसाय-दृष्टि से बर्फ़ का काम बड़े फ़ायदे का है। हाँ, उत्साह और उद्योग होना चाहिए। बर्फ़ केवल पीने ही के काम नहीं आता; उससे और भी बड़े बड़े काम हो सकते हैं।

❋

१४—पश्चिमी तर्क। पृष्ठ-संख्या १६६—मूल्य १ रुपया। आत्माराम ऐंड सन्स, झींद रोड, लाहोर से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्य। पुस्तक दार्शनिक है। लाहोर के दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज के प्रोफेसर श्रीयुत दीवानचन्द, एम० ए० की रचना है। पश्चिमी देशों में तत्वज्ञान-विषयक विचारों के उदय, विकाश और विस्तार का इसमें वर्णन है। कोई ढाई हज़ार वर्ष का पाश्चात्य दार्शनिक इतिहास इस पुस्तक में है। ग्रीस के तत्त्वज्ञानी थैलिस से आरम्भ करके सुक़रात, अफलातूं, अरस्तू, स्पिनोज़ा, लाक, वर्क ले, ह्यूम, कांट, शौलंग, हेगल और शोपनहार आदि का मनुष्य-जीवन और सृष्टि-रचना आदि के विषय में जो मत था उसका संक्षिप्त उल्लेख प्रोफेसर दीवानचन्द ने इस पुस्तक में किया है। मैं कौन हूँ, कहां से आया हूँ, कहां जाऊँगा, यह जगत् कैसे उत्पन्न हुआ और इसका नाश कब और किस तरह होगा? इन्हीं प्रश्नों पर ग्रीस, रोम, इँगलैंड, फ्रांस और जर्मनी आदि पश्चिमी देशों के विद्वानों ने आज तक जिन सिद्धान्तों का निश्चय किया है उनका स्थूल ज्ञान इस पुस्तक से हो सकता है। प्रोफेसर दीवानचन्दजी दर्शनशास्त्र के अच्छे ज्ञाता हैं। हिन्दी में इस दार्शनिक पुस्तक को लिख कर आपने बड़ा काम किया। आशा है, अँगरेज़ी के अन्य विद्वानों के लिए आपका यह हिन्दी-प्रेम उदाहरण का काम देगा। पुस्तक मोटे और चिकने काग़ज़ पर अच्छे टाइप में छपी है।

१५—सम्राट् पञ्चम जार्ज। यह समाट् पञ्चम जार्ज का जीवन-चरित है। काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित किया है। दाम आठ आने रक्खा है। "ख़ाँ बहादुर काजी अजीजुद्दीन अहमद लिखित" है। पुस्तक के टाइटिल पेज से यह नहीं मालूम होता कि ख़ान बहादुर ने ही इसे इस रूप में हिन्दी में लिखा है; अथवा उन्होंने उर्दू में लिखा था, उसका यह हिन्दी रूपान्तर है। पुस्तक की भाषा सरल है। राज्याभिषेक के लिए भारत आने के पहले तक सम्राट् के चरित से सम्बन्ध रखनेवाली मुख्य मुख्य सभी बातें इसमें हैं। सम्राट् के जितने चरित हिन्दी में आज तक हमने देखे हैं उन सबसे यह अच्छा है। इसमें संस्कृत के जो श्लोक उद्धृत हुए हैं उनमें अशुद्धियां रह गई हैं। पहले ही पृष्ठ के सिरे पर—आत्मा वै जायते पुत्रः—का—आत्मावै जांयते पुत्रः—छपा है।

१६—वार्षिक विवरण। कलकत्ते की नागरी-प्रचारिणी सभा का यह पहले वर्ष का विवरण है। इसके मेम्बरों की संख्या पौने दो सौ के लगभग है। उनमें से कितनेही हिन्दी-पत्रों के सम्पादक, लेखक और विद्वान् पुरुष हैं। हिन्दी वङ्गवासी के सम्पादक, श्रीयुत बाबू हरिकृष्ण जौहर भी इस सभा के मेम्बर हैं और इसकी उन्नति के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं। दिसम्बर १९१० से नवम्बर १९११ तक इस सभा की आमदनी ३२७॥=)॥। हुई और ख़र्च २५७-)। हुआ। गत वर्ष इसके २१ अधिवेशन साधारण और १७ अधिवेशन प्रबन्धकारिणी सभा के हुए। इसकी रिपोर्ट से सूचित होता है कि यह सभा कलकत्ते में दिन पर दिन बहुजनप्रिय होती जाती है। हिन्दी-पाठकों को साहाय्य प्रदान करने, परस्पर मेल बढ़ाने और हिन्दी को यथाशक्ति उन्नत बनाने को सभा अपना उद्देश समझती है। साहित्यरत्न-माला नामकी सचित्र पत्रिका भी इस सभा से, समय समय पर, निकलती है। सभा के मन्त्री बाबू दामोदरदास खत्री हैं। आपका पता है—

१७८ सूतापट्टी, कलकत्ता।

आख्यायिका।

हमारे हिन्दुस्तान में जितने मनुष्य हैं सबके सब कोई कोई धर्म ज़रूर मानते हैं। मगर अन्य देशों में जैसे विलायत या अमेरिका, वहां के लोग ज़्यादःतर नास्तिक होते हैं। अमेरिका की बात है कि वहां दो दोस्त रहते थे; एक कृश्चियन मत का था, और दूसरा नास्तिक था। दोनों बड़ी घनी दोस्ती थी। एक दिन दोनों बात चीत कर रहे उनमें से एक ने धर्मसम्बन्धी बात छेड़ी। नास्तिक ने कहा सायंस से मालूम किया गया है कि सृष्टि अपने आप बनी इसका कर्त्ता कोई नहीं है, और परमेश्वर कोई चीज़ नहीं इस बात पर दोनों में बहुत देर तक वार्तालाप होता रहा। में दोनों मित्र अपने अपने घर गये।

वह मित्र जो कि कृश्चियन था बड़ा होशियार था। अपने आप एक बहुत अच्छा ग्लोब बना कर अपने कमरे में पर रख दिया। थोड़े दिनों के बाद उसका वही पुराना फिर मिला। उसको ग्लोब देख कर बड़ा ताज्जुब हुआ उसको ग्लोब के बनाने वाले का नाम जानने की बड़ी इच्छा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने अपने मित्र से पूँछा कि इस ग्लोब का बनाने वाला कौन है। उसके मित्र ने जवाब दिया कि इस ग्लोब को किसी ने नहीं बनाया है। तब फिर उसने कहा कि फिर यह कैसे बन गया; ज़रूर इसका बनाने वाला कोई अच्छा कारीगर होगा। मित्र ने जवाब दिया कि यह आपसे आप बन गया है; इसको किसीने नहीं बनाया। लेकिन वह बार बार यही कहता रहा कि ज़रूर इसको किसी ने बनाया है; आपसे कभी नहीं बन सकता। तब उसके मित्र ने कहा कि जब तुम इतनी छोटी सी चीज़ का आप से आप बन जाना यक़ीन नहीं करते तब यह किस तरह जानते हो कि इतनी बड़ी पृथ्वी, जिसमें नाना प्रकार की अद्भुत चीज़ें हैं, आप से आप बनी और किसी ने बनाई नहीं। इस लिए ज़रूर इसका बनाने वाला कोई होशियार कारीगर है, जिसको परमेश्वर कहते हैं। उस दिन से वह बहुत शरमाया और फिर उसने कभी यह बात नहीं कही। तब से वह परमेश्वर को मानने लगा।

कुमारी राजवती सेठ।

चित्र-परिचय।

(१)

शकुन्तला-पत्रलेखन।

इस चित्र के परिचय की तादृश आवश्यकता नहीं। यह एक प्रसिद्ध चित्र है। शकुन्तला-नाटक के प्रेमी और पाठक इसकी कथा अच्छी तरह जानते होंगे। शकुन्तला अपने प्रणयी दुष्यन्त को कमलपत्र पर पद्य में पत्र लिख रही है। उसकी दोनों सखियां उसके पास बैठी हुई उसकी रचना को ध्यान से देख रही हैं। इस चित्र का प्रतिबिम्ब सरस्वती में बहुत पहले निकल चुका है। इस संख्या में इसका रङ्गीन रूप प्रकाशित किया जाता है।

(२)

राधा-जन्म।

पहले कालिन्दी-तट पर एक महारण्य था। वहाँ शकारि नामक मुनि तप किया करते थे। सुनते हैं, कालिन्दी के पावन जल में स्नान करने के लिए कभी कभी वैकुण्ठधाम से श्रीलक्ष्मीजी भी पधारा करती थीं। एक दिन किसी महापर्व के समय लक्ष्मीजी कालिन्दी-स्नान के लिए वहाँ आईं। जिस समय वे स्नान कर रही थीं उसी समय महामुनि शकारि भी स्नानार्थ वहां आ पहुँचे। यद्यपि महामुनि बड़े तपस्वी और जितेन्द्रिय थे तथापि लक्ष्मीजी के अनुपम रूप-लावण्य को देखते ही उनका व्रतभङ्ग हो गया। इस पर मुनि को बड़ा दुःख और क्रोध उत्पन्न हुआ। मुनि ने क्रुद्ध होकर लक्ष्मीजी को शाप दे दिया कि जा, तू इसी कालिन्दी में कमलरूप होकर निवास कर। शाप के देते ही नदी की बीच धारा में एक प्रस्फुटित नील-पद्म प्रकट हो गया। शाप के प्रभाव से लक्ष्मीजी उसी पद्म में रहने लगीं।

एक दिन की बात सुनिए। राजा वृषभान अपनी रानी कणका के साथ वहां स्नान के लिए आये। उस फूल की अद्भुत सुन्दरता को देख कर रानी का मन उस पर लुब्ध हो गया। रानी के आग्रह करने पर राजा उस फूल को लाने के लिए नदी में घुस गये। फूल के पास पहुँच कर राजा ने देखा तो उस खिले हुए फूल के ऊपर एक अपूर्व रूपलावण्यवती बालिका विराजमान थी। देखिए, चतुर चित्रकार ने उसी समय के दृश्य को कैसी उत्तमता से दिखाया है।

रामजीलाल शर्म्मा

(३)

रामचन्द्र के आत्मरूप का दर्शन।

चैत्र शुक्ल ९ को, जन्म लेने पर, रामचन्द्रजी ने अपनी माता कोशल्या को जो अपने प्रकृत रूप के दर्शन कराये थे उस दृश्य का दर्शक एक प्राचीन चित्र इस संख्या में दिया जाता है। पाठक तुलसीदास की इस कविता का स्मरण कीजिए:—

भये प्रकट कृपाला दीनदयाला कौशल्या-हितकारी
हरषित महतारी मुनिमनहारी अद्भुत रूप निहारी।
लोचन-अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी
भूषन वनमाला नयन विशाला शोभा-सिन्धु खरारी॥

और इस चित्र के दृश्य को देखिए।

(४)

चित्रकूट में रामचन्द्रजी का आश्रम।

गोस्वामी तुलसीदास ने रामायण के अयोध्याकाण्ड में रामचन्द्र के जिस चित्रकूटस्थ आश्रम का वर्णन किया है उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र अन्यत्र इस संख्या में प्रकाशित किया जाता है। गोस्वामीजी ने लिखा है :—

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई॥
नाथ देखियहि बिटप बिसाला। पाकरि जंबु रसाल तमाला॥
तिन्ह तरुबरन्ह मध्य बट सोहा। मंजु विशाल देखि मन मोहा॥
नील सघन पल्लव फल लाला। अबिचल छाँह सुखद सब काला॥
बट-छाया बेदिका बनाई। सिय निज-पानि-सरोज सुहाई॥

❋ ❋ ❋ ❋

भरत दीख प्रभु-आश्रम पावन। सकल-सुमंगल-सदन सुहावन॥
करत प्रबेस मिटे दुखदावा। जनु जोगी परमारथ पावा॥
देखे भरत लषन प्रभु आगे। पूछे बचन कहत अनुरागे॥
सीस जटा कटि मुनिपट बाँधे। तून कसे कर सर धनु काँधे॥
बलकल बसन जटिल तनु स्यामा। जनु मुनिबेष कीन्ह रति कामा॥

चित्रकार ने इसी दृश्य को इस चित्र में अङ्कित किया है।

(५)

भरत का चित्रकूट पहुँचना।

रामचन्द्र के चित्रकूटस्थ आश्रम के पास भरत के पहुँच जाने पर जो दृश्य हुआ वह इस चित्र में दिखलाया गया है। तुलसीदास, इस विषय में, अपनी रामायण में लिखते हैं:—

सखा-वचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत-बिलोचन-बारी॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई॥
हरषहिँ निरखि राम-पद-अङ्का। मानहु पारस पायेउ रङ्का॥
रज सिरधरि हिय नयनन्हिलावहिँ। रघुबर-मिलन-सरिस सुख पावहिँ

लसत मंजु-मुनि-मण्डली-मध्य सीय रघुनन्द।
ज्ञान-सभा जनु तनु धरे भगति सच्चिदानन्द॥

पाहि नाथ कहि पाहि गोसाँई। भूतल परे लकुट की नाईँ॥
वचन सप्रेम लषन पहिचाने। करत प्रनाम भरत जिय जाने॥
कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा॥
उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पर कहुँ निषङ्ग धनु तीरा॥

कौन ऐसा सहृदय होगा जिसका हृदय इस चित्र-गत दृश्य को देख कर और गोस्वामीजी की इस कविता को पढ़ कर करुणाभिभूत न हो उठे?

(६)

चित्रकूट में सभा।

इस चित्र के दृश्य को गोस्वामी तुलसीदास ने इस तरह वर्णन किया है:—

भरत मुनिहिँ मन भीतर भाये। सहित समाज राम पहिँ आये॥
प्रभु प्रनाम करि दीन्ह सुआसन। बैठे सब सुनि मुनि-अनुसासन॥
बोले मुनि बर बचन बिचारी। देस काल अवसर अनुहारी॥
सुनहु राम सरबज्ञ सुजाना। धरम-नीति-गुन-ज्ञान-निधाना॥

सब के उर अन्तर बसहु जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन-जननी-भरत-हित होइ सो कहिय उपाउ॥

सो इसी उपाय का विचार इस सभा में हो रहा है। इसका फल रामायण के पाठकों को विदित ही है। यह इसके पहले का चित्र, दोनों, लफ्टिनेंट अमरसिंह जी के हुए प्राचीन चित्रों के प्रतिबिम्ब हैं।

(७)

महादेव के धनुष का उठाया जाना।

रामायण में धनुष-यज्ञ के प्रसङ्ग का स्मरण कौ गोस्वामीजी ने लिखा है :—

गुरुहि प्रनाम मनहिँ मन कीन्हा। अति लाघव उठाय धनु लीन्हा॥

इस संख्या में इस विषय का जो एक प्राचीन चि शित किया जाता है उसमें रामचन्द्र के द्वारा शङ्कर-च चढ़ाये जाने के इसी दृश्य का दर्शन पाठकों को प्राप्त होग

(८)

तुलसीदास का काशी-कुटीर।

यह चित्र उस स्थान का है जहाँ पर, काशी में, गो तुलसीदासजी रहा करते थे। यह एक प्राचीन चि प्रतिबिम्ब है। लफ्टिनेंट अमरसिंहजी ही की कृपा से हमें प्राप्त हुआ है।

(९)

वासन्ती।

प्रयाग की प्रदर्शिनी में उस साल इस चित्र की प्रशंसा हुई थी। जो महाशय चित्र-विद्या की खूबि जानते हैं उन्होंने इस चित्र के निर्म्माता को बहुत ही चित्रकार समझा था। यह चित्र एक पश्चिमी देश के कार के क़लम से निकला है। वासन्तिक शोभा को सुन्दरी का रूप देकर उसने उसे फूलों से इस तरह स कि देख कर नेत्र और हृदय दोनों तृप्त होते हैं। ऐसे योरपीय देशों के चित्रकार बहुधा अङ्कित करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Printed and Published by Panch Kory Mitra at the Indian Press, Allahabad.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

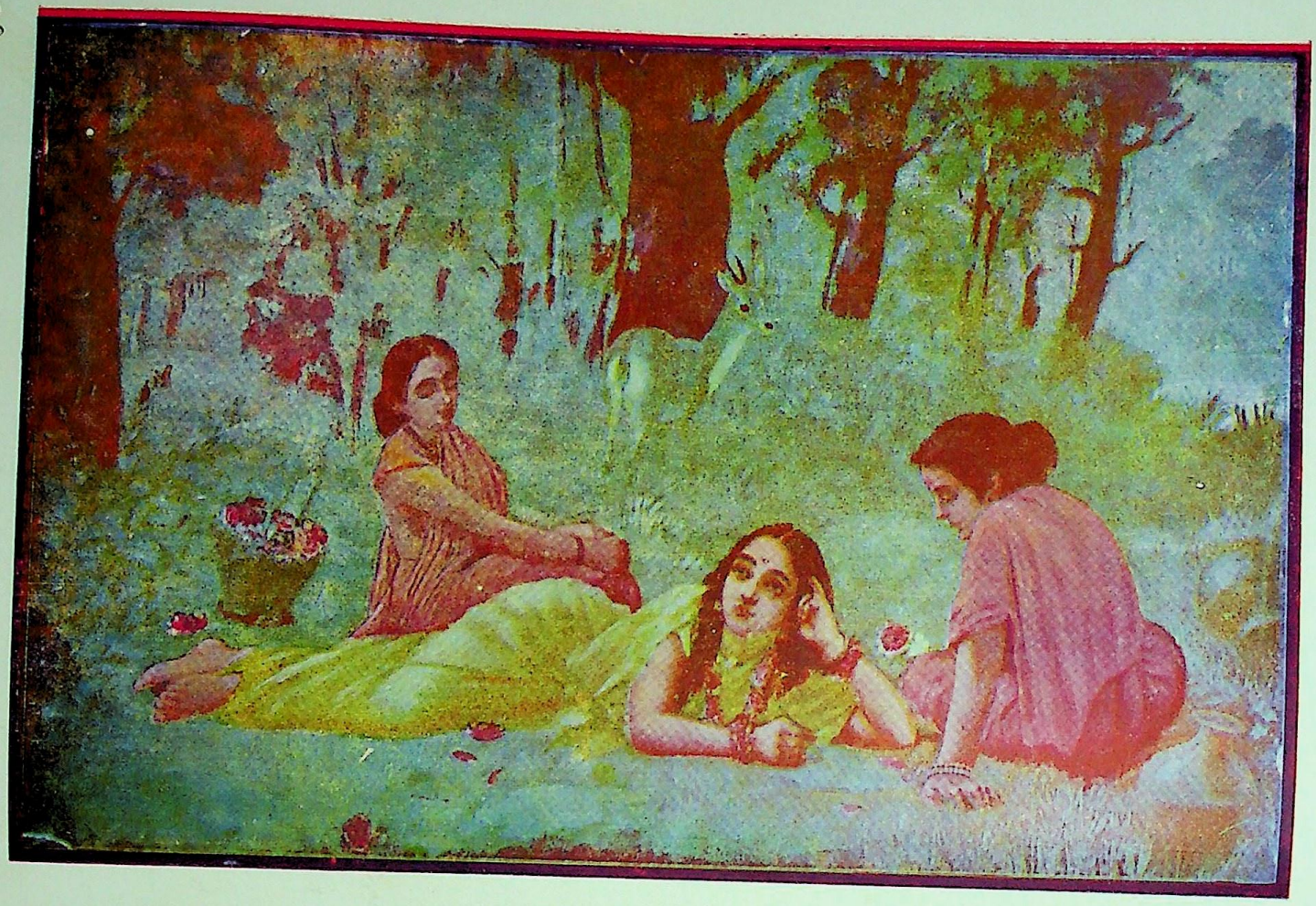

शकुन्तला-पत्र-लेखन ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

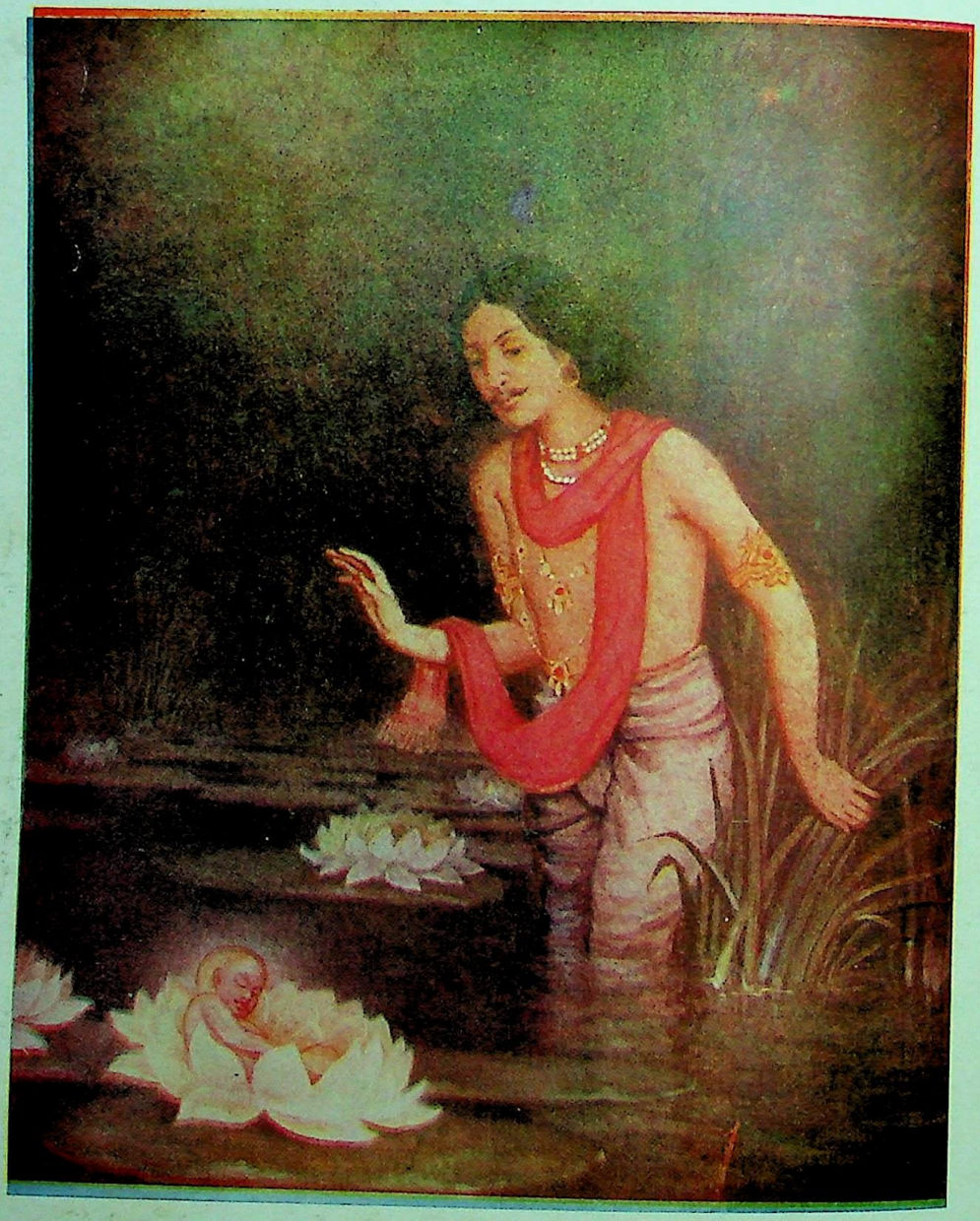

राधा-जन्म ।

(श्रीयुक्त यामिनीप्रकाश गङ्गोपाध्याय अङ्कित चित्र से)

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म-समय में माता को रामचन्द्र का आत्मरूप दिखलाना।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

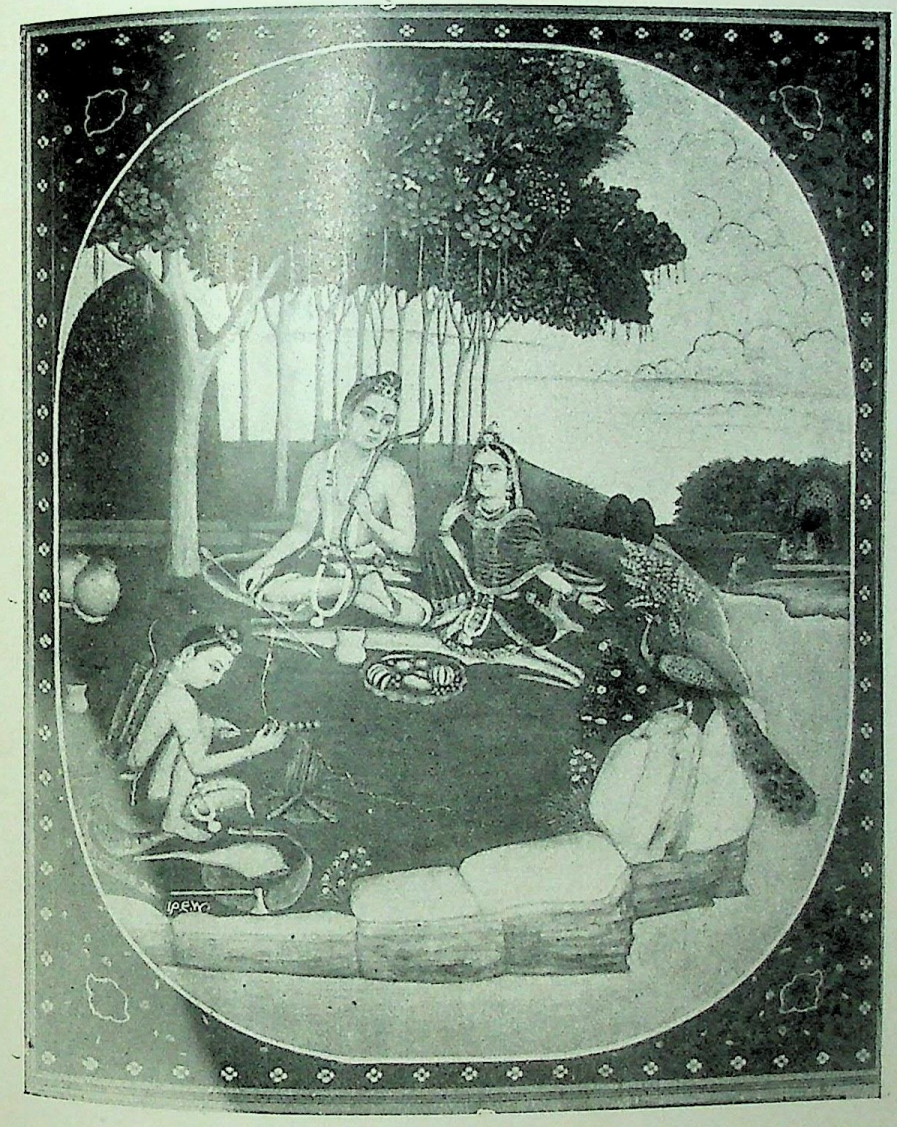

चित्रकूट में रामचन्द्रजी का आश्रम ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरतजी का चित्रकूट पहुँचना।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रकूट में सभा।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Collection, Haridwar

Indian Press, Allahabad.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धनुषयज्ञ में रामचन्द्रजी के द्वारा धनुष का चढ़ाया जाना।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Indian Press Allahabad

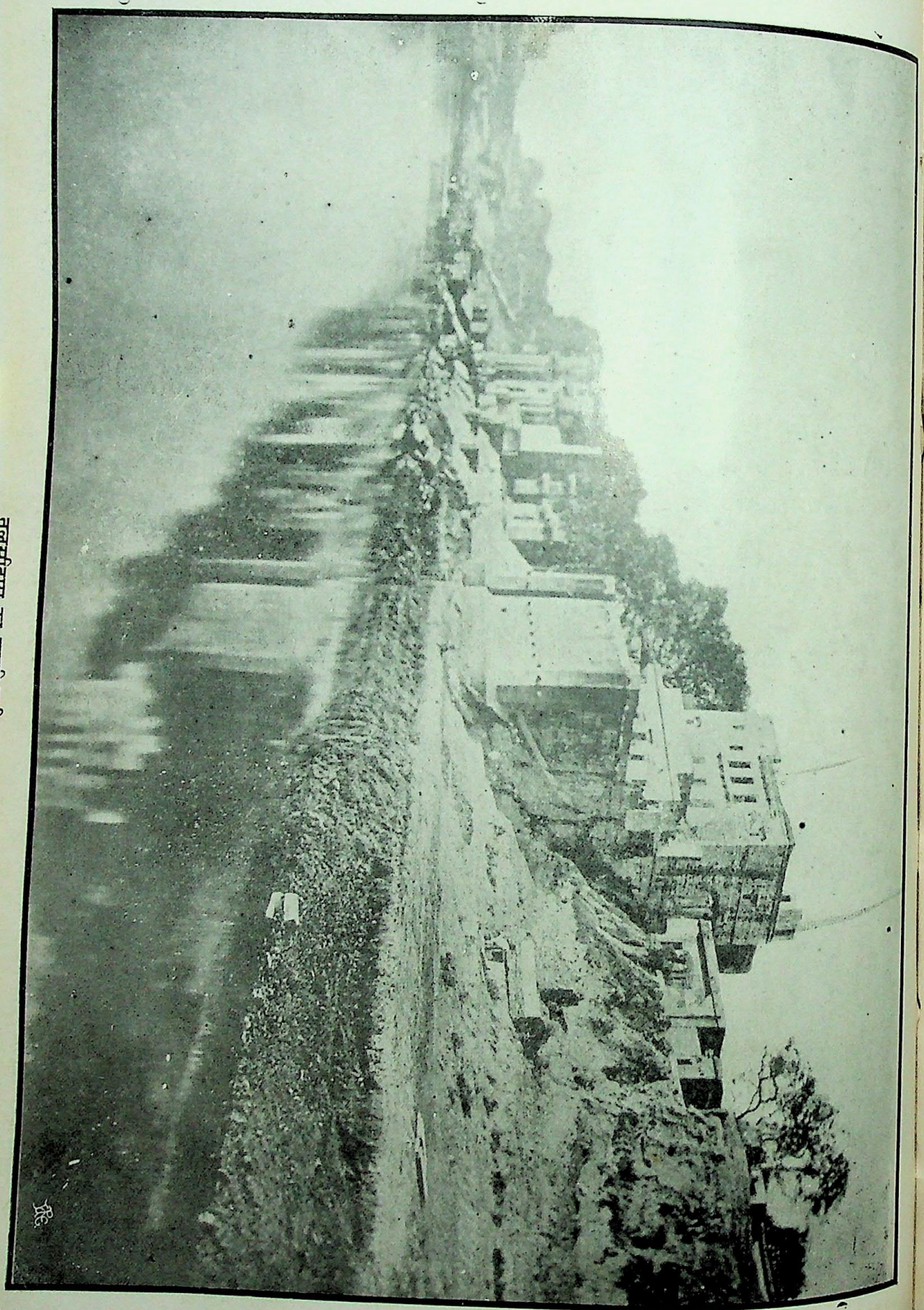

तुलसीदास का काशी-कुटीर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वासन्ती ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

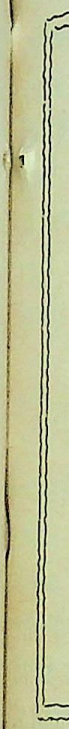

भाग

श्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

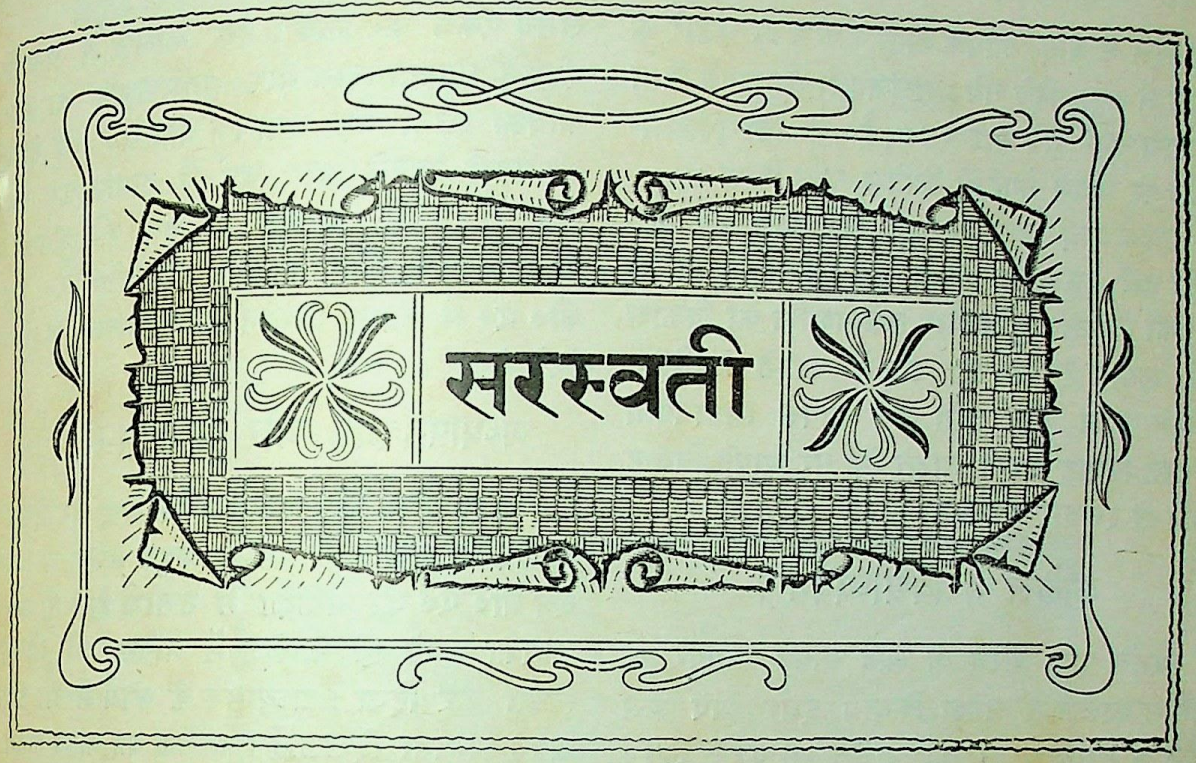

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग १३] १ अप्रैल, १९१२—चैत्र शुक्ल १५, १९६९। [संख्या ४

रामदासानुदास
श्रीधर विष्णु परांजपे, बी० ए०

जन्म और बालपन।

अगस्त सन् १८७१ ईसवी को, सन्ध्या-समय नागपुर-ज़िले की उमरेड़ तहसील में श्रीधरजी का जन्म हुआ। आप कोकणस्थ महाराष्ट्र-ब्राह्मण हैं। आपके पूज्य पिता उमरेड़ के एंग्लो-वर्नाक्युलर स्कूल के हेड मास्टर थे। वे और उनकी धर्मपत्नी अन्नपूर्णा बाई, दोनों ही सत्यशील, धार्मिक, सच्चरित्र और परोपकारी थे। शुद्ध बीज से सुन्दर रसाल फल उत्पन्न होता ही है; तथापि इस दम्पति ने अपने पुत्र को बालपन ही से धर्मात्मा बनाने का प्रयत्न किया। वे अपने पुत्र को सन्ध्या-समय रामकृष्ण के भजन गाकर सुलाया करते थे।

स्कूल में विद्याभ्यास।

परांजपेजी को छः वर्ष की उम्र में विद्यारम्भ कराया गया। मराठीभाषा की प्राथमिक शिक्षा आपने, अपने पिता के निरीक्षण में, उमरेड़ ही के स्कूल में प्राप्त की। आपके पिता उमरेड़ के पुस्तकालय के अध्यक्ष थे। इस कारण सात ही आठ वर्ष की उम्र से पुस्तकावलोकन का आपको व्यसन होगया। आठ नौ वर्ष की अवस्था में आप मराठी-भाषा की "महाभारत", "रामायण", "मन्त्रीरचित सुसमाचार" आदि पुस्तकें पढ़ने लगे। इन्हीं पुस्तकों में आपका विशेष मन लगता था।

मराठी का अध्ययन समाप्त करके, १८८१ में, आपने अँगरेज़ी-भाषा का अध्ययन आरम्भ किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ दिन के बाद आपके पिता उमरेड़ से भंडारे के स्कूल में बदल दिये गये। परांजपेजी भी अपने पिता के साथ वहीं गये और १८८५ ई० में भंडारा-ज़िला-स्कूल से आपने अँगरेज़ी मिडिल पास किया।

इसके बाद आप नागपुर चले आये और वहाँ सिटी हाई स्कूल में भरती हुए। इसी समय से आपकी विलक्षण बुद्धि और तर्कनाशक्ति का विकास होने लगा। १६ वर्ष की उम्र में आपने प्रवेशिका परीक्षा पास की। इसी वर्ष आपके माता-पिता आपका विवाह करना चाहते थे; पर आपने विवाह करने से इनकार कर दिया।

कालेज में विद्याध्ययन।

एंट्रंस पास करने के बाद आपने नागपुर के मारिस-कालेज में प्रवेश किया। इधर आप ऊँचे दरजे के मराठी-ग्रन्थों का वाचन भी करने लगे। इसी समय से आपने प्रसिद्ध मराठी-कवि मोरोपन्त ("मयूर") के काव्यों का अध्ययन आरम्भ किया। अँगरेज़ी में बाइबल को भी आप बड़े चाव से पढ़ते थे। साहित्य से तो आपका प्रेम स्वाभाविक ही था; पर गणितशास्त्र में भी आपकी बराबरी करनेवाले बहुत ही कम विद्यार्थी कालेज में थे। सन् १८८९ में आपने एफ० ए० पास किया। इस साल माता-पिता की आज्ञा मान कर आपने विवाह कर लिया।

इसके बाद आप नागपुर के हिस्लाप-कालेज में बी० ए० का अध्ययन करने लगे। यह कालेज पादरी लोगों का है। यहाँ बाइबल पर आपका बहुत प्रेम बढ़ गया। इस ग्रन्थ का आपने इतना अच्छा अभ्यास किया कि इसकी परीक्षा में आपको पहले दरजे का पारितोषिक मिला। कालेज के प्रिंसिपाल साहब आप पर अत्यन्त प्रसन्न हुए। बाइबल के वचनों का आधार लेकर आप छात्रावस्था ही में, धार्मिक विषयों पर, घंटों वाद-विवाद करते और व्याख्यान देते रहते। धार्मिक साहित्य के सैकड़ों अँगरेज़ी, मराठी और संस्कृत ग्रन्थ आपने उसी समय एकत्र कर लिये। इस कालेज में ग्रन्थों का शीलन, व्याख्यानदान और धार्मिकवाद का अभ्यास आपका इतना बढ़ गया कि बी० ए० की दो वर्ष की पढ़ाई आपने चार वर्ष में समाप्त कर पाई। सन् १८९३ में, अर्थात् २२ वर्ष की अवस्था में आप कलकत्ता-विश्वविद्यालय के बी० ए० हुए। बी० ए० में आपने विज्ञान और गणित के विषय लिये थे।

अध्यापनकार्य और साहित्य-सेवा।

बाइबल पर आपका इतना प्रेम देख कर हिस्लाप कालेज के अफ़सर आप पर बहुत प्रसन्न थे। अ एव बी० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण होते ही उन्हों आपको अपने ही कालेज में गणित का प्रोफ़ेस नियत कर दिया। अध्यापन के कार्य में भी आप अपूर्व योग्यता दिखलाई। कालेज का काम करने बाद आपको जो समय मिलता था उसे आप अप मातृभाषा मराठी की सेवा में ख़र्च करते थे। मरा में "काव्यसंग्रह" नामक एक उत्तम मासिक पुस्त अब तक निकलती रही है। उसमें मराठी के प्राचीन काव्य, संशोधन-पूर्वक और विस्तृत टीका टि णियों के साथ, प्रकाशित होते थे। श्रीयुत हरि ध व पण्डित और श्रीयुत वामन दाजी ओक के सम दन-कार्य में परांजपे महाराज सदा निरपेक्ष-भा से उनकी सहायता करते रहे।

सन् १८९४ ई० में काव्यसंग्रह-कार की सूच से आपने "मयूर" कवि के अत्यन्त गहन का "केकावली" पर विस्तृत टीका लिखनी प्रार की। यह टीका लिखने के लिए आपको देशी और विदेशी भाषाओं के अनेक धार्मिक काव्य-ग्रन्थों अध्ययन करना पड़ा। इसीसे पाठक समझ सक हैं कि यह टीकाग्रन्थ कितनी मार्मिकता के सा लिखा गया होगा। मराठीभाषा में इस ग्रन्थ बड़ा आदर है। बम्बई और मदरास के विश्वविद्या लयों में केकावली यू० एस० एफ० की परीक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

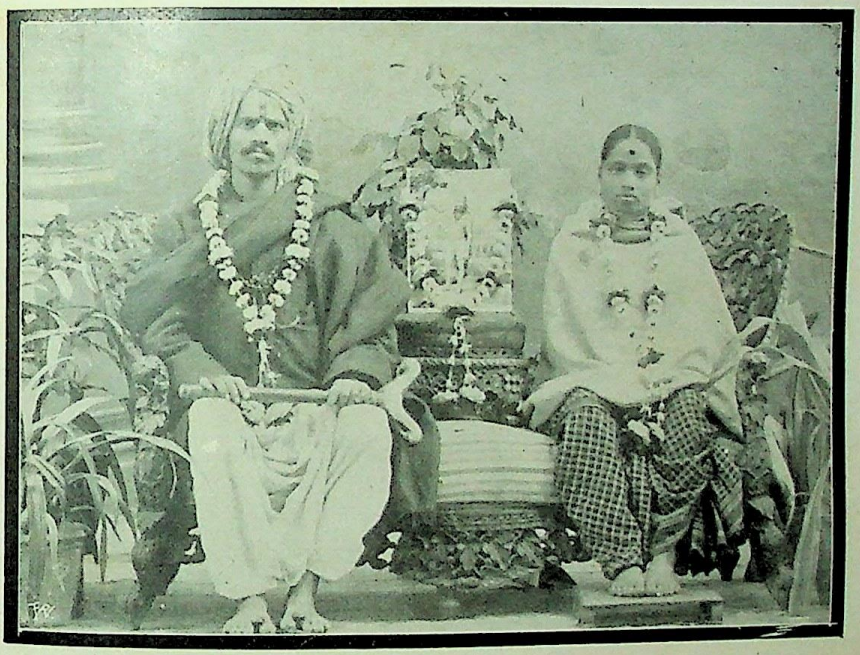

साधु-शिरोमणि श्रीरामदासानुदास, प्रो० श्रीधर विष्णु परांजपे, बी ० ए०, सपत्नीक।

The Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठ्य पुस्तक है। इस विस्तृत टीका से, केकावली का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को बड़ी मदद मिलती है। इस ग्रन्थ में परांजपेजी की बहुज्ञता स्थान स्थान पर झलक रही है। *

कोई तीन वर्ष तक आप साहित्य-सेवा करते हुए, हिस्लाप-कालेज में गणित और इतिहास के प्रोफ़ेसर का कार्य करते रहे। सन् १८९६ ईसवी में नागपुर की स्पेशल कान्फ़रेंस में व्याख्यान देते समय क्रिश्चियन धर्म के विरुद्ध आपने अनेक बातें कह डालीं। इससे हिस्लाप-कालेज के अधिकारी इन पर अप्रसन्न हुए। उन्होंने आपसे माफ़ी माँगने के लिए आग्रह किया। परन्तु आपने उनसे क्षमा न माँग कर अध्यापन-कार्य से ही सदा के लिए क्षमा मांग ली।

सामाजिक और धार्मिक विषयों का अध्ययन

नागपुर से आप एक बार सतारे की थीस्टिक कान्फ़रेंस (धार्मिक परिषद्) का जलसा देखने के लिए गये। सतारे से रामदास स्वामी का स्थान सज्जनगढ़ समीप ही है। परिषद् समाप्त होने पर आप उस स्थान का दर्शन करने चले गये। वहाँ आपके मन को अपूर्व शान्ति मिली। वहीं आपको श्रीसमर्थ रामदास स्वामी का साक्षात्कार हुआ। इस घटना से आपको अपने पूर्वजन्मों की स्मृति होगई। तभी से आप कुछ के कुछ हो गये।

सन् १९८७ ई० में आप धार्मिक और सामाजिक विषयों का अध्ययन करने के लिए स्वनामधन्य महामति माननीय जस्टिस महादेव गोविन्द रानडे महाशय के यहाँ बम्बई चले गये। वहाँ रानडे ने आपको अपना प्राइवेट लिटररी असिस्टंट (Private Literary Assistant) नियत किया। वहाँ रह कर परांजपेजी ने धर्मसमाज, प्रार्थनासमाज, आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज इत्यादि के तत्त्वों का अच्छी तरह अध्ययन किया। बौद्ध, क्रिश्चियन, महम्मदी तथा वेदान्त आदि के धर्म-ग्रन्थों का, तुलना के भाव से परिशीलन किया। जस्टिस रानडे के समान धर्मात्मा, समाज-सुधारक और साहित्य-प्रेमी के विस्तीर्ण पुस्तकालय में स्वच्छन्दतापूर्वक विहार करके परांजपे महाराज ने आर्यधर्म के गूढ़ तत्त्व अच्छी तरह समझ लिये।

उसी समय सुप्रसिद्ध मराठी-समाचारपत्र "सुधारक" के मालिक ने इन्हें उक्त पत्र का सम्पादन करने के लिए बुलाया; पर आप न गये। बड़ौदा-राज्य से भी एक बहुत ऊँचे दरजे के पद के लिए आपको बुलावा आया; पर आपने वहाँ जाना भी अस्वीकार किया। आप तो अपना जीवन दूसरे ही कार्य के लिए दे चुके थे। इन कार्य्यों को करने के लिए वे क्यों प्रस्तुत होते ?

एक वर्ष के बाद आप रानडे महाशय के यहाँ से पूना होते हुए फिर नागपुर चले आये। इस बीच में आपने सन्तसमागम करके भी बहुत लाभ उठाया। नागपुर में आप कुछ दिनों तक टेम्परेंस सोसाइटी के सेक्रेटरी और सोशल प्युरिटी के सभापति भी थे। सन् १९८८ में आप सोशल कान्फ़रेंस के प्रतिनिधि होकर मदरास गये। वहाँ आप थियासफ़िस्ट लोगों के समागम में भी पधारे।

उन्हीं दिनों पहले आपकी माता का देहान्त हुआ। फिर, दो दिन बाद, आपके पूज्य पिता भी अपनी धर्मपत्नी के अनुगामी हुए। इस घटना से आपके मन में विलक्षण विरक्ति पैदा हो गई।

आध्यात्मिक अभ्यास।

इसी वर्ष, अर्थात् सन् १८९९ में, आप तीर्थ-यात्रा और साधु-सन्तों के दर्शन करते हुए कोंकण प्रान्त (महाराष्ट्र) को गये। वहाँ आपने अनेक स्थानों में कीर्तन, भजन, पुराण-पाठ और धार्मिक व्याख्यानों के द्वारा अपने चित्त को शान्ति दी। लोगों को उपदेश भी आपने दिया।

* आपका यह टीकाग्रन्थ सचमुच ही एक अद्भुत वस्तु है। उससे हमने बहुत लाभ उठाया है। सरस्वती—सम्पादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९०० ई० में आपके छोटे भाई, श्रीयुत सदाशिव विष्णु परांजपे, बी० ए०, बी० एल० हो कर मध्य-प्रदेश के वर्धा शहर में वकालत करने लगे। इसलिए हमारे विरक्तिशील परांजपे महाराज भी वहाँ चले गये। उस समय आपका मन सांसारिक कामों में बिलकुल नहीं लगता था। आप मकान के दूसरे खण्ड पर प्रायः एकान्त में बैठ कर परमार्थ-विषयों का मनन और आध्यात्मिक चिन्तन किया करते थे। सदाशिवरावजी तथा अन्य मित्रों के बहुत आग्रह करने पर, क़ानून का कुछ अभ्यास करके आप उसी साल के नवम्बर में बी० एल० की परीक्षा देने के लिए नागपुर गये। परन्तु परीक्षा के दिन आप सुबह से ही भजन में मग्न हो गये। दो बजे भजन समाप्त होने पर आपको परीक्षा का स्मरण आया। अतएव आप परीक्षा में न शामिल होकर वर्धा लौट आये।

अगले साल भी लोगों ने आपसे क़ानून की परीक्षा में शामिल होने का आग्रह किया; पर आपने स्वीकार न किया। आप तो उस समय परमार्थ की सर्वोच्च परीक्षा में शामिल होने का प्रयत्न कर रहे थे।

तदनन्तर आप भगवन्नाम-संकीर्तन, कीर्तनरूप व्याख्यान, भजन और योगाभ्यास के द्वारा आध्यात्मिक सिद्धियों की चेष्टा में लग्न रहे। इसके बाद, सब प्राणियों में भगवान् की भावना दृढ़ करने और अहंकार छोड़ने के इरादे से प्राणिमात्र को ईश्वर समझ कर आपने साष्टांग प्रणाम करना शुरू किया। जिस प्राणी को आप आगे देखते उसी के सामने उसके पैरों पर आप ज़मीन पर लेट जाते! इस प्रकार ब्राह्मण से ले कर चाण्डाल तक और गौ से लेकर गधे तक को आप साष्टांग नमस्कार करने लगे। इससे समाज में आपकी बड़ी निन्दा होने लगी। आपके सहपाठी बी० ए०, एम० ए० मित्र जब कभी नागपुर में आपका यह तमाशा देखते तब बड़े आश्चर्य में आ जाते और कभी कभी आपका उपहास भी करने लगते; पर आप उस पर कुछ भी ध्यान न देते—आप अपनी निन्दा के उन वाग्बाणों का आदर-पूर्वक स्वागत करते; क्योंकि आपका सिद्धान्त है:—

"असम्मानात् तपोवृद्धिः सम्मानात्तु तपोक्षयः"

इसलिए जब जब आपका कुछ गौरव होने लगता तभी आप कोई ऐसा काम कर देते जिससे लोगों में आपकी स्तुति कुछ कम हो जाती।

इस प्रकार, ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए सामाजिक, धार्मिक और आध्यात्मिक साधन करके और कीर्तन, भजन, पुराण-पाठ और धार्मिक व्याख्यानों द्वारा सदुपदेश देने से आपमें अखण्ड शान्ति आगई। भिक्षा से ही उदर-पोषण करके आपने रसना को जीत लिया। सब प्राणियों में भगवान् की भावना दृढ़ करके आपने अहंकार को जीत लिया। ऊँची ऊँची नौकरियों का तिरस्कार करके आपने आर्थिक कामनाओं को जीत लिया। इस प्रकार इन शत्रुओं को जीतने से आपकी मनोवृत्ति व्याप्त हो गई। अतएव मनोलय हो जाने से आप जीवन्मुक्त साधु हो गये।

परोपकार और धर्मप्रचार

जीवन्मुक्त साधु दो प्रकार के होते हैं:—एक स्वार्थी जीवन्मुक्त, दूसरे परमार्थी। स्वार्थी जीवन्मुक्त वे हैं जिनका मन अण्खड रूप से परमात्मा में लीन रहता है। उनके द्वारा संसार का कोई उपकार नहीं होता। परमार्थी जीवन्मुक्त वे हैं जो अखण्ड रूप से अपना चित्त परमात्मा में संलग्न रखते तो हैं पर साथही जगद्रूप दृश्य परमात्मा की सेवा भी करते रहते हैं—संसार का उपकार भी करते रहते हैं। राम, कृष्ण, बुद्ध, शङ्कराचार्य, रामकृष्ण परमहंस आदि दूसरे प्रकार के जीवन्मुक्त थे। हमारे चरितनायक रामदासानुदासजी भी इसी श्रेणी के हैं।

श्रीसमर्थ रामदास स्वामी की प्रेरणा से आपने सन् १९०१ ई० से अपना सम्प्रदाय बढ़ा कर धर्म-प्रचार और परोपकार का काम शुरू किया। वर्धा में रह कर आप कीर्तन और भजन आदि के द्वारा निस्पृहता के साथ, लोगों के मन अपनी ओर आकर्षित करने लगे। पहले पहल आपकी धर्म-पत्नी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमती सौभाग्यवती लक्ष्मीबाई ने ही आपसे मन्त्र-दीक्षा ली।

कुछ दिन बाद वर्धा में आपने "श्रीगजानन संस्कृत-पाठशाला" की स्थापना की। उसके द्वारा आपने संस्कृत-भाषा का प्रचार करके विद्यार्थियों में धर्म-जागृति की। पाठशाला के साथ ही आपने एक पुस्तकालय भी खोला। उसमें आपने मराठी, अँगरेज़ी, संस्कृत, हिन्दी आदि भाषाओं के ग्रन्थ एकत्र किये।

सन् १९०३ में, जब आपने देखा कि बस्ती में रह कर उद्देश सिद्ध न होगा, तब शहर के बाहर एक पहाड़ी पर आप चले आये। वहाँ श्रीहनूमान् की एक मूर्ति स्थापित करके उसका नाम आपने "हनुमानगढ़" रक्खा। और "*श्रीरामदाससम्प्रदाय" का "श्रीसूर्यदेवमठ" स्थापित किया।

हनुमानगढ़ में महाराज और महाराज की पत्नी ने अलग अलग एकान्तवास करके बड़े बड़े कठोर व्रत, नियम और अनुष्ठान किये। इस प्रकार जितेन्द्रिय होकर और विशेष सामर्थ्य प्राप्त करके आपने अपनी पत्नी की सहायता से अपना सम्प्रदाय बढ़ाना शुरू किया।

सन् १९०३ से लेकर अब तक ग्वालियर, दिल्ली, बम्बई, नागपुर, रायपुर, अहमदनगर, जबलपुर पूना आदि अनेक स्थानों में, अपनी धर्मपत्नी के साथ भ्रमण करके, आपने अनेक पुरुषों को मन्त्रदीक्षा देकर अपने समुदाय में कर लिया है। इस समुदाय में ब्राह्मण से लेकर अन्त्यज तक और स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध सब लोग हैं। बड़े बड़े पदवीधारी नवशिक्षित पुरुष भी इसमें शामिल हैं। उनमें से कोई वकील हैं, कोई जज हैं, कोई डाक्टर हैं, कोई व्यापारी हैं। स्त्री और पुरुषों के समुदाय अलग अलग भी और एक साथ मिल कर भी, अपनी आत्मोन्नति करते हुए जगत् की उन्नति कर रहे हैं। महाराज अपनी धर्मपत्नी के साथ भ्रमण करते हैं और लोगों को आत्मोन्नति और परोपकार के मार्ग बतलाते हैं। आप किसी से एक कौड़ी भी पाने की इच्छा नहीं रखते। तथापि समुदाय की ओर से बहुत सा धन आता है और वह सब परोपकार के कार्यों में ख़र्च होता है।

सम्प्रदाय की ओर से अब तक लड़कियों और छोटी जाति के बालकों के लिए कई पाठशालायें खोली गई हैं। प्रति वर्ष हनुमानगढ़, वर्धा, में कई धर्मोत्सव होते हैं। उनमें सैकड़ों नर-नारी एकत्र होते हैं। सम्प्रदाय से एक धार्मिक पुस्तकमाला भी निकलती हैं। उसमें हिन्दी, मराठी और अँगरेज़ी की छोटी छोटी पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। कुछ उपदेशक भी तैयार हो रहे हैं जो भारतवर्ष भर में घूम घूम कर भजन, कीर्तन, व्याख्यान और लेखों के द्वारा संसार को धार्मिक, आध्यात्मिक और नैतिक उपदेश करेंगे। इस सम्प्रदाय के तत्त्व बहुत ही व्यापक हैं; किसी भी सम्प्रदाय या मत से इसका विरोध नहीं। सबका इसमें समावेश है।

स्त्रियों के समुदाय में भी कई स्त्रियाँ ऐसी हैं जो स्थान स्थान में घूम कर लोगों के घरों में धार्मिक और नैतिक उपदेश करती हैं। महाराज रामदासानुदास का मत है कि पुरुष अकेले कुछ नहीं कर सकता। पुरुषों के काम में स्त्रियों को भी योग देना चाहिए। स्त्री-पुरुष दोनों स्वयं सामर्थ्य प्राप्त करके संसार का उपकार करें। अपने इसी मत के अनुसार आप कार्य करके अन्य लोगों के लिए आदर्श बन रहे हैं।

सामाजिक सुधार में भी आप बहुत आगे हैं। आपने अपनी बहन का विवाह ऋतुमती होने पर किया है; भाई का विवाह उतर कर किया है। आप की राय है कि सामाजिक और धार्मिक उन्नति के बिना राजनैतिक उन्नति नहीं हो सकती।

आपने अपनी धर्मपत्नी के साथ भारत के प्रायः सभी मुख्य मुख्य तीर्थों की यात्रा की है और साधु-

* इस सम्प्रदाय के विषय में यदि किसी को कुछ विशेष जानने की अभिलाषा हो तो "जनरल सेक्रेटरी, श्रीसूर्यदेवमठ, हनुमानगढ़, वर्धा, सी० पी०" को पत्र लिखना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समागम भी किया है। दोनों प्राणी पूर्ण ब्रह्मचारी हैं। आप महाराष्ट्र होने पर भी हिन्दी-भाषा के बड़े प्रेमी हैं। आप हिन्दी में भी कीर्तन और भजन करना चाहते हैं। रामदासानुदास महाराज का मुख्य गुण निस्पृहता है। आप धन हाथ से भी नहीं स्पर्श करते; जो कोई जो कपड़ा पहना देता है वही पहनते हैं। भोजन के पदार्थ जो आगे आ जाते हैं उन सबको एक में मिला कर खा लेते हैं। जगदुद्धार की तीव्र इच्छा होने के कारण आपने यह सब खटराग उठाया है। आपके इन्हीं गुणों से लुब्ध हो कर कितने ही सुशिक्षित पदवीधर आपकी सेवा में रह कर अपना जन्म सफल कर रहे हैं।

आपकी धर्मपत्नी

मातृवत् पूज्य श्रीमती लक्ष्मीबाई की जहाँ तक प्रशंसा की जाय थोड़ी ही है। अपने पतिदेव अथवा गुरुदेव की आज्ञा का पालन करना इनका मुख्य गुण है। संस्कृत में भागवत आदि ग्रन्थों के श्लोक आप अन्वय और पदच्छेद सहित लगा सकती हैं। असंख्य संस्कृत और मराठी के पद्य आपको कण्ठाग्र हैं। कीर्तन करते समय आप महाराज के पीछे खड़ी रहती हैं और उन्हें बहुत मदद पहुँचाती हैं। अँगरेज़ी का भी आपको थोड़ा बहुत ज्ञान है। परोपकार के लिए "मिडवाइफ" की परीक्षा आपने पास की है। श्रेष्ठ दरजे की पारमार्थिक उन्नति करके आपने योगाभ्यास का भी बहुत अच्छा अभ्यास किया है। कहाँ तक कहें, आध्यात्मिक उन्नति में तो आप किसी किसी बात में महाराज से भी आगे हैं। महाराज रामदासानुदास ने स्वयं एक जगह "मेरी देवता के समान पूज्य और प्रिय धर्मपत्नी" लिख कर आपका गौरव किया है।

पारमार्थिक बातों में जैसी आप दक्ष हैं वैसी ही लौकिक बातों में भी आप सब पर माता के समान दया करती हैं। धर्मोत्सवों में जब सैकड़ों स्त्री-पुरुष एकत्र होते हैं तब आपही उनके आदर-सत्कार तथा भोजन आदि का प्रबन्ध करती हैं। शारीरिक परिश्रम करने में बहुत कम लोग आपकी बराबरी कर सकते हैं। आप सदा "माधुकरी भिक्षा" माँग कर भोजन करती हैं। मील मील दो दो मील जा गाँवों में आप घर घर से पका हुआ भोजन माँग लाती हैं और वही खा लेती हैं। बहुधा आप एक ही बार भोजन करती हैं। धन्य है आपके सामर्थ्य को!

उपसंहार

क्या श्रीरामदासानुदास, प्रोफ़ेसर, श्रीधर वि परांजपे, बी० ए० और उनकी साध्वी पत्नी श्रीम लक्ष्मीबाई के इस संक्षिप्त चरित से हमारे आधुनि सुशिक्षित बन्धु कुछ उपदेश ग्रहण करेंगे?

लक्ष्मीधर वाजपेयी
(उपनाम "माधवानुज रामदासी"

औरंगज़ेब का पत्र।

[पुत्र के नाम]

मालिनी

प्रिय सुत! अब मेरा आगया काल सा है;
इस समय तुम्हारी भेंट की लालसा है।
तनु शिथिल हुआ है; क्षीणता छागई है;
अति जटिल जरा की जीर्णता आगई है॥ १॥
जिस तरह अकेला था न आया वहां से—
इस समय अकेला जारहा हूँ यहां से।
अवनि पर रहा मैं अज्ञ यात्री समान;
मुझ अतिशय स्वार्थी को हुआ कुछ न ज्ञान॥ २॥
अहह! वह भविष्यत है पराधीन मेरा;
बस अब यह आगे दीखता है अँधेरा!
विधि-विहित न मैंने राज्य का भोग जाना;
अब कठिन मुझे है पूर्व का योग पाना॥ ३॥
अवनि पर किसी की की न मैंने भलाई;
अविरत मनमानी मूढ़-सत्ता चलाई।
अहित-सहित जाना पाप को भी न मैंने;
पल भर पहचाना आपको भी न मैंने॥ ४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सु-पथ पर चलाती अन्तरात्मा वही थी ;
पर मति-गति मेरी दूसरी ही रही थी।
मद-सहित किया था लोभ ने दाष्ट-रोध ;
कुछ न कर सका मैं आत्म-विज्ञान-बोध ॥ ५ ॥
वह निज कृति ज्यों ही है मुझे याद आती—
धक धक जलती है धैर्य्य को छोड़ छाती।
न समझ पड़ता है कौनसे ठौर क्या है ;
बस अब पछताना शेष है, और क्या है ? ॥ ६ ॥
यदपि अमर कोई है नहीं विश्व-बीच—
तदपि मरण से हूँ भीत मैं निन्द्य नीच।
सिर पर यम का है दीखता दीर्घ दण्ड ;
अहह ! नरक-पीड़ा पा रहा हूँ प्रचण्ड ॥ ७ ॥
प्रभुवर परमात्मा है दया-दृष्टिधारी ;
पर विदित वही है साथ ही न्यायकारी।
प्रकट जब तमाशा है किसी भाँति होती ;
झटपट उसको है पाप-चिन्ता डुबोती ॥ ८ ॥
जिस तनु-हित मैंने भोग कोई न छोड़ा ;
अब मुँह उसने भी अन्त में हाय ! मोड़ा।
यह प्रतिफल मैंने ठीक ही आज पाया ;
सब कुछ करवाती धन्य तू मोह-माया ॥ ९ ॥
धन, बल, कुछ भी मैं था नहीं साथ लाया ;
सब विभव यहीं था आप मैंने कमाया।
पर न सुकृत से था हाय ! मेरा कमाना ;
अब कलुष बिना है और क्या साथ जाना ॥ १० ॥
किस विध अब मेरा दैव ! उद्धार होगा ?
वह प्रतिफल कैसे जायगा हाय ! भोगा।
बहुत विवश हूँ मैं, क्या करूँ, आ पड़ी है ;
चपल तरणि मेरी चक्र में जा पड़ी है ॥ ११ ॥
शुभ-अशुभ यहाँ जो कार्य्य मैंने किये हैं ;
यह सच कहता हूँ वे तुम्हारे लिये हैं।
मुझ पर मत लाना दोष कोई कदापि ,
बस, तव हित ही हूँ पुण्यकारी कि पापी ॥ १२ ॥
सुध-बुध सब मेरी जी चुराने लगी है ;
कमर झुक गई है ; दृष्टि जाने लगी है।
बल-सहित सभी ने ले विदा पीठ फेरी ;
अब तुम स्वजनों से थी विदा शेष मेरी ॥ १३ ॥

रह रह उठती है चूक की आज हूक ;
यह कठिन कलेजा हो रहा टूक टूक।
समय गत हुआ है ; शेष है क्या उपाय ?
शर निकल चुका है हाथ से हाय ! हाय ! १४
अघ-घट अपने मैं फोड़ के जा रहा हूँ ;
नय-नियम यहाँ के तोड़ के जा रहा हूँ।
इस तनु तक को भी छोड़ के जा रहा हूँ ;
बस अपयश को ही जोड़ के जा रहा हूँ ॥ १५ ॥
प्रथम कुछ न आया ध्यान में हाय ! मेरे ;
बस अब फिरना है मौत के साथ फेरे !
इस समय कहाँ हूँ, कौन हूँ मैं अरे रे !
सब तरफ़ मुझे हैं शोक-सन्ताप घेरे ॥ १६ ॥
तनय ! तुम किसी को व्यर्थ पीड़ा न देना ;
फल, कुछ फलने के पूर्व ही सोच लेना।
पथ-विगलित हो के पा रहा ताप ही मैं ;
कुफल चख रहा हूँ पाप का आप ही मैं ॥ १७ ॥
फिर न मिल सकेगी, व्यर्थ वेला न खोना ;
सतत-मधुरभाषी नम्रता-युक्त होना।
सरल सरसता है वाक्य-विन्यास ही में;
गरल बरसता है वाक्य-विन्यास ही में ॥ १८ ॥
प्रथम तुम सदा ही युक्ति से काम लेना ;
मत पद पद में ही शक्ति का नाम लेना।
भर सक अपने में दोष आने न पावे ;
यह मन विषयों की ओर जाने न पावे ॥ १९ ॥
जब कि तुम किसी को व्यर्थ ही दुःख दोगे ;
ध्रुवतर तब मेरी हानि के हेतु होगे।
इस समय तुम्हीं से अन्तिमाशा लगी है ;
अब अधिक कहूँ क्या, जानता एक जी है ॥ २० ॥
पढ़ कर यह मेरा पत्र हे पुत्र प्यारे !
सतत सजगता से कीजियो काम सारे।
मत तुम यह मेरा भूल जाना कलाम ;
बस अब चलता हूँ ; आख़िरी है सलाम ॥ २१ ॥

मैथिलीशरण गुप्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज पञ्चम जार्ज की दिनचर्य्या।

(लेखक पण्डित प्यारेलाल मिश्र, बैरिस्टर—एट—ला)

महाराज पञ्चम जार्ज अपने कुल कार्य समय पर करते हैं। हमारे यहाँ के बहुत से राजों और अमीरों की तरह वे अपना समय नष्ट नहीं करते। जो काम आज हो सकता है उसे वे कल पर नहीं छोड़ते। आप सदैव आधी रात के पहले कभी नहीं सोते और इतनी देर बाद सोने पर भी सबेरे सबसे आगे उठते हैं। उठने के पश्चात् तुरन्त राजकीय काम करने में भिड़ जाते हैं। जब तक उनके आफ़िस के लोग आते हैं तब तक वे बहुत सा काम कर चुकते हैं। महाराज की इस मुस्तैदी को देख कर उनके आफ़िस वाले बहुत चकित होते हैं। इतना काम कर लेने के बाद महाराज नाश्ता करते हैं! इँगलैंड में नाश्ता सबेरे आठ और नौ के बीच किया जाता है। कोई कोई लोग इस से कुछ आगे करते हैं। इससे अनुमान कर लेना चाहिए कि महाराज कितने सबेरे उठते होंगे। महाराज के नित्य-कार्यों का विस्तारपूर्वक वर्णन करने के पूर्व हम उनके दफ़्तर का कुछ हाल सुनाना चाहते हैं।

महाराज का आफ़िस।

जिस महल में महाराज रहते हैं उसी के एक भाग में उनके दफ़्तर का कमरा भी है। इसी कमरे में महाराज सप्तम एडवर्ड काम करते थे। यह दफ़्तर महल के प्रथम खण्ड में है। इसके सामने बगीचा है। इस दफ़्तर के निकट ही वह कमरा है जिसमें महाराज के पिता का शरीरान्त हुआ था। यह कमरा बहुत साफ़ और साधारण है। सामान इसमें सादा है। इसमें ख़ूब उजेला रहता है। हवादार भी ख़ूब है। जिन टेबलों को महाराज सप्तम एडवर्ड काम में लाते थे वे अभी तक उसमें रक्खे हैं। यों तो महाराज के आफ़िस में कई बड़े अफ़सर हैं जैसे लार्ड चेम्बरलेन, लार्ड स्टुअर्ट मास्टर आफ़ हार्स इत्यादि; पर सबसे अधिक भ उठाने वाले उनके प्राइवेट सेक्रेटरी हैं। ये महारा की दाहिनी भुजा हैं। अन्य अफ़सरों की तनख़ सरकारी ख़ज़ाने से मिलती है—अर्थात् वे सरका नौकर समझे जाते हैं। प्राइवेट सेक्रेटरी महाराज निजी नौकर हैं। उनकी तनख़्वाह महाराज देते हैं महाराज के प्राइवेट सेक्रेटरी वही हैं जो हाल महाराज के साथ दिल्ली-दरबार आये थे। उन असल नाम सर आर्थर बिग है। हिन्दुस्तान में लार्ड स्टामफोर्ड्म के नाम से प्रसिद्ध थे। प्राइवे सेक्रेटरी का आफ़िस महाराज के कमरे के पा है। छोटे छोटे अफ़सरों के कमरे भी पास पास हैं।

महाराज की डाक।

महाराज की डाक का क्या ठिकाना है। सा संसार से उनके पास पत्र आते हैं। महाराज और महारानी की डाक जनरल पोस्ट आफ़िस से एक विशेष गाड़ी में उनके महल को सीधी भेजी जाती है। जिन थैलों में डाक रक्खी जाती है वे बड़ी सावधानी से मुहर लगा कर बन्द किये जाते हैं। सन्ध्या की डाक महाराज के पास क़रीब आठ बजे, अर्थात् भोजन करने के बाद ही, पहुँचती है। जिस सेक्रेटरी की उस समय नौकरी होती है वह सब डाक खोल कर महाराज के सामने रखता है। महाराज सब चिट्ठियों पर एक नज़र डाल जाते हैं। यदि बहुत ज़रूरी चिट्ठी हुई तो वे उसका तुरन्त उत्तर लिख डालते हैं, वरना सब पत्रों के उत्तर सबेरे दिये जाते हैं। कुल पत्र सन्दूक़ के भीतर ताला लगा कर बन्द कर दिये जाते हैं। सबेरे उठ कर महाराज उन्हें देखना शुरू करते हैं। इतने में नाश्ते का समय आ जाता है। नाश्ता पूरा नहीं होने पाता कि सबेरे की डाक आ पहुँचती है। सबेरे की डाक सन्ध्या की डाक से भी भारी रहती है। इस समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुधा प्राइवेट सेक्रेटरी मौजूद रहते हैं। वे सब डाक खोल कर और पत्रों का मज़मून पढ़ कर उन्हें अलग अलग टोकरियों में रखते जाते हैं—जैसे निमन्त्रणपत्र एक टोकरी में, पार्लीमेन्ट-सम्बन्धी दूसरी टोकरी में, इत्यादि। इस प्रकार सब पत्र, बहुत कम समय में, सिलसिले वार छाँट कर रख दिये जाते हैं। परन्तु ऐसे पत्र जो विदेशी राजे, महाराजे, एलची और मन्त्री लोग भेजते हैं एक ख़ास सन्दूक़ में रक्खे जाते हैं, जिसकी ताली केवल महाराज, या प्राइवेट सेक्रेटरी, या लार्ड नोलिस के पास रहती है। यह सन्दूक़ सदैव बन्द रहता है। इसके ऊपर एक छेद रहता है जिसमें से पत्र भीतर चले जाते हैं। यह सन्दूक़ महाराज अथवा उनके पूर्वोक्त दोनों कर्मचारी खोलते हैं। सबसे पहले महाराज इन्हीं पत्रों के उत्तर देते हैं। इन पत्रों में से बहुतों के उत्तर वे स्वयं लिखते हैं। शेष पत्रों के उत्तर सेक्रेटरी लोग देते हैं। महाराज हर एक पत्र का उत्तर बहुत सोच विचार कर देते हैं। इस कारण उत्तर देने में कुछ विलम्ब लग जाता है। महाराज के पिता की आदत इनसे बिलकुल विरुद्ध थी। वे सब पत्रों के उत्तर उसी समय दे डालते थे। जल्दी इतनी करते थे कि उत्तर को फिर दुबारा कभी नहीं पढ़ते थे। इन पत्रों (अर्थात् जो विदेशी राजों महाराजों को भेजे जाते हैं) के उत्तरों का सारांश एक रजिस्टर में दर्ज किया जाता है और यह रजिस्टर पूरा होने पर विन्डसर महल को भेज दिया जाता है और वहाँ सावधानी से रक्खा जाता है। महाराज की डाक में कभी कभी बड़े विचित्र पत्र आते हैं, जिन्हें पढ़ कर महाराज बहुत ख़ुश होते होंगे। जैसे कभी कभी कोई पागल लिख भेजता है कि विलायत की गद्दी का अधिकारी मैं हूँ, आप नहीं। ख़ास ख़ास पत्रों के उत्तर देने के बाद, महाराज अगले दिन होने वाली पार्लीमेन्ट-सम्बन्धी बातों पर ध्यान देते हैं। अर्थात् जिन विषयों पर पार्लिमेन्ट में कल बहस होने वाली है उनको आज ही अच्छी तरह सोच रखते हैं। यदि कोई बात समझ में नहीं आती तो उसके समझने के लिए प्रधान मन्त्री अथवा विदेशी मन्त्री को बुला भेजते हैं। इस प्रकार महाराज दोपहर के भोजन के पूर्व ही सब काम निबटा डालते हैं। पर इतना काम करने पर भी उन्हें बहुत समय रहता है। इस समय मन्त्री लोग या एलची जो मिलने आते हैं उनसे मुलाक़ात करते हैं। बाद इसके महाराज कुछ आराम लेते हैं। यह समय वे बहुधा महारानी और पुत्र-पुत्रियों से बात-चीत इत्यादि करने में बिताते हैं। यदि मौसम अच्छा हुआ तो सबको लेकर सामने बाग़ीचे में कुछ देर घूमते हैं। टहल कर लौटने के पश्चात् वे भोजन करते हैं।

दोपहर।

भोजन के अनन्तर महाराज आराम करते हैं। आराम से मतलब सोने से नहीं। दिन को महाराज शायद ही कभी सोते हों। इस आराम के समय को वे महारानी से गपशप करने अथवा पढ़ने में व्यतीत करते हैं। कभी पिकचर गैलेरी (Picture Gallery) देखने चले जाते हैं। पिकचर गैलेरी एक चित्र-भवन का नाम है, जहाँ पुराने चित्रकारों के बहुमूल्य चित्र रक्खे हुए हैं। जिस समय महाराज युवराज थे उस समय वे दोपहर और सन्ध्या को बहुधा बहस सुनने पार्लिमेन्ट जाया करते थे। पर अब गद्दीनशीन होने से रोज़ रोज़ पार्लिमेन्ट नहीं जा सकते। महाराज पाँच बजे चा भी नहीं पीते। न मध्याह्न और न सन्ध्या के बीच कुछ खाते हैं। इससे महाराज की सादगी अच्छी तरह मालूम हो सकती है। सन्ध्या का भोजन अकसर वे आठ बजे करते हैं। यदि नाटक देखने को जाने का विचार हुआ तो आधा घंटा पहले, अर्थात् साढ़े सात बजे, वे भोजन करते हैं। पर महाराज के पिता नौ बजे के पहले कभी भोजन नहीं करते थे, बरन कभी कभी आधा घंटा पीछे करते थे। महाराज तम्बाकू भी बहुत कम पीते हैं। मामूली नरम सिगरेट को छोड़ कर कड़ा चुरट या तम्बाकू आप कभी नहीं पीते। महारानी को तम्बाकू की बास से बड़ी घृणा है। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से महाराज केवल सिगरेट पीते हैं। महाराज का तम्बाकू पीने का कमरा अलाहदा है। वह छोटा है, पर ख़ूब सजा हुआ है। कभी कभी महाराज अपने सेक्रेटरियों को इस कमरे में बुला कर गपशप करते हैं। महाराज एडवर्ड भी इसी कमरे में तम्बाकू पीते थे। पर वे बहुत तम्बाकू पीते थे। वे कड़ा चुरुट पीते थे। चुरुट शायद ही उनके मुँह से कभी अलग होता था।

महाराज की दूसरी आदतें।

पाठकों को पढ़ कर आश्चर्य होगा कि महाराज घर का कुल हिसाब-किताब बड़ी सावधानी से रखते हैं। सब हिसाब वे रोज़ जाँचते हैं। फिर उसे महीने के अन्त में जाँचते हैं। कहा जाता है कि यूरोप में महाराज के मुक़ाबले का इस विषय में कोई बादशाह नहीं है। इतना ही नहीं, वरन युवराज को भी इसी प्रकार की शिक्षा दी जा रही है। अस्तबलों पर भी महाराज अच्छी निगरानी रखते हैं। महाराज को घोड़ों का बहुत शौक़ है, पर पिता की तरह घुड़दौड़ में उतनी रुचि नहीं है। घुड़सालों को महाराज स्वयं नित्य जाकर देखते हैं। परन्तु वहाँ अब उतने घोड़े नहीं रहे जितने उनके पिता के समय में थे। महाराज को मोटरों का अधिक शौक़ है। इससे अब कई प्रकार की उत्तम उत्तम मोटरें घुड़साल में दिखाई देती हैं। कई मोटरें महाराज दिल्ली-दरबार के समय भी लाये थे। महारानी को मोटरों का इतना शौक़ नहीं है। इससे वे बहुधा दो काले घोड़ों की चौपहिया गाड़ी में बैठ हवा खाने जाया करती हैं। जिस तरह महाराज मुस्तैदी से काम करते हैं उसी तरह अपने कर्म्मचारियों से भी वे काम कराना चाहते हैं। उनके पास सुस्त कर्म्मचारी की गुज़र नहीं। कोई कर्म्मचारी समय या कष्ट बचाने की नियत से कुछ काम करना चाहे तो वे उसे अच्छी डाँट बताते हैं। एक समय एक कर्म्मचारी को महाराज ने आज्ञा दी कि इस प्रकार इस पत्र का उत्तर लिख कर पेश करो। कर्म्मचारी ने कष्ट बचाने की गरज़ से उसे बहुत ही छोटा कर दिया। वह काग़ज़ पेश हुआ तो महाराज ने उसे देख कर चुपचाप फाड़ कर रद्दी काग़ज़ की टोकरी में डाल दिया और कर्म्मचारी से कहा कि आपको फिर हमारी इच्छा के अनुसार इसे तैयार करना होगा। राज्य के कामों पर महाराज पूरा ध्यान देते हैं। हर एक विभाग के मन्त्री की बातों को ध्यानपूर्वक सुनते हैं और अपने मन्तव्य प्रकट करते हैं। पर ज़िद नहीं पकड़ते। यदि मन्त्री की राय ठीक समझते हैं तो उसे तुरन्त मान लेते हैं। कैबिनेट मिनिस्टर अथवा कोई एलची जब महाराज से भेंट करने आता है तब उस बात चीत का सारांश महाराज एक काग़ज़ पर लिख लेते हैं। उसकी फिर नक़ल की जाती है और वह निजी दफ़्तर में दाख़िल की जाती है। जब कोई आवश्यकता पड़ती है तब वह फिर निकाली जाती है। यदि बातचीत का विषय साधारण हुआ तो उस समय जो मन्त्री महाराज के निकट होता है वही उस वार्तालाप के नोट ले लेता है। यूरोपियन राजनैतिक विषयों में अभी महाराज को वह अनुभव नहीं है जो उनके पिता को था। पर जब कभी यूरोप में कोई गड़बड़ होती है तब महाराज उसे अच्छी तरह समझने के लिए अपने आफ़िस में बड़े बड़े नक़शे टँगवाते हैं। मन्त्रियों के लिए महाराज की विशेष आज्ञा है कि वे महाराज को विदेशी बातें बराबर सूचित करते रहें। महाराज जर्मनी, रूस, इटली, स्पेन, नार्वे इत्यादि देशों के सम्राटों से सदैव पत्र-व्यवहार रखते हैं। हम ऊपर कह चुके हैं कि राजकीय कामों में महाराज बहुत परिश्रम करते हैं। पार्लीमेंट में जो बड़े बड़े विषय पेश होते हैं उन्हें महाराज पहले से ख़ूब समझ लेते हैं। जैसे कि मिस्टर लायड जार्ज के इनश्युरेन्स बिल (Insurance Bill) को जिस प्रकार महाराज समझे हैं शायद बहुत कम उस प्रकार समझे हों। वे बिल के एक एक शब्द का गूढ़ार्थ समझते हैं। महाराज का राज्य समूची पृथ्वी में सहस्रों कोसों की दूरी पर फैला है। पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके इतने दूर रहते भी आपको सबका सब हाल मालूम रहता है। महाराज के इन सद्गुणों का हमारे राजों महाराजों को अनुकरण करना चाहिए।

विश्व-विज्ञान।

यदि हम इस विश्व का अवलोकन विज्ञान-दृष्टि से करें तो हमको प्रतीत होगा कि इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का कारण दो चीज़ें हैं। एक तो पदार्थ (Matter) और दूसरी गति (Motion)। इस जगत् का कोई भी अंश ऐसा नहीं जो बिना इन दोनों के बना हो। परन्तु हम इन दोनों कारणों की चरमावस्था का कुछ भी ज्ञान नहीं रखते। वैज्ञानिक जिसे पदार्थ कहते हैं वह अत्यन्त सूक्ष्म और विषम परमाणुओं का समूह है।

गति दो प्रकार की है। एक विभेदक शक्ति (Energy) दूसरी आकर्षण-शक्ति (Force)। विभेदक शक्ति परमाणुओं को पृथक् कर देती है और उनको फिर मिलने नहीं देती। आकर्षण-शक्ति परमाणुओं को छोटे अथवा बड़े पिण्डों में मिला देती है और फिर उनको अलग नहीं होने देती। ये दोनों शक्तियाँ एक दूसरे के प्रतिकूल कार्य्य करती हैं।

विभेदक और आकर्षण-शक्तियाँ सदैव नियत परिमाण में रहती हैं। आकर्षण-शक्ति को हम परमाणुओं से अलग नहीं कर सकते; परन्तु विभेदक शक्ति एक परमाणु से दूसरे परमाणु में और एक पिण्ड से दूसरे पिण्ड में चली जाती है।

विज्ञानवेत्ताओं का कथन है कि पिण्डों में, और उनके परमाणुओं में भी, आकाश सदैव विद्यमान रहता है। और, जब विभेदक शक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान में जाती है तब वह आकाश के द्वारा ही गमन करती है। आकर्षण-शक्ति परमाणुओं को आकर्षण-केन्द्रों (Centres of Gravity) के चारों ओर एकत्र कर देती है। विभेदक शक्ति उनको छिन्न भिन्न करके आप आकाश में प्रवेश करती है। इसका अन्तिम परिणाम यह होगा कि समस्त विभेदक शक्ति आकाश में चली जायगी और यह वर्तमान विश्व जड़त्व-पूर्ण, अर्थात् नष्ट, हो जायगा। परन्तु आकर्षण-शक्ति, जिसका धर्म्म केवल परमाणुओं को मिलाना है, उनको अपनी ओर आकर्षित करेगी। आकर्षण से विभेदक शक्ति उत्पन्न होगी। इससे संसार फिर वर्तमान अवस्था को प्राप्त हो जायगा।

अब विचारणीय यह है कि क्या सारा विश्व केवल प्रकृति और गति के मेल से ही बन सकता है या किसी और साधन की भी आवश्यकता है? इस पर कोई कोई विद्वान् यह कहेंगे कि बिना चेतन-शक्ति के कोई पदार्थ नहीं बन सकता। परन्तु सच तो यह है कि इस संसार की सृष्टि के पूर्व क्या था और प्रलय के पश्चात् क्या होगा, इस बात को अल्पज्ञ जीव नहीं जान सकता। जो लोग विज्ञान से यह आशा रखते हैं कि वह ईश्वर के सम्बन्ध में भी कुछ आलोचना करे, वे भूलते हैं। विज्ञान का यह काम नहीं कि वह यह बतलावे कि इस संसार की रचना किसने की। उसका काम केवल संसार की रचना के क्रम-विकाश आदि का वर्णन करना मात्र है। परिवर्तन होना इस संसार का नियम है। सृष्टि की जो अवस्था आज है वह कल न थी; और जो कल होगी वह आज नहीं। कोई समय था जब यह संसार न कुछ अवस्था में था; और कोई समय अवश्य आवेगा जब यह फिर नाश को प्राप्त हो जायगा।

वर्तमान सृष्टि की उत्पत्ति के पहले प्रकृति अति सूक्ष्म और अन्धकारमय अवस्था में थी। विभेदक और आकर्षक शक्तियाँ अपना अपना कार्य्य करने में असमर्थ थीं। पर ज्योंहीं जगत् की उत्पत्ति आरम्भ होती है, तत्काल आकर्षण-शक्ति द्वारा एक परमाणु दूसरे परमाणु को अपनी ओर खींचता है। उनके मिलने से रगड़ उत्पन्न होती है। रगड़ से विभेदक शक्ति का उदय होता है। वह अपने कार्य्य को दो रूपों में करती है। एक रूप में तो वह परमाणुओं के समूहों को उनकी कक्षा के चारों ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घुमाती है। दूसरे रूप में वह परमाणुओं में कम्पन-शक्ति उत्पन्न कर देती है। यही पिछली शक्ति अन्त में उष्णता और प्रकाश में बदल जाती है।

इस प्रकार घूमते घूमते एक महा उष्ण और प्रकाशमय गोला बन जाता है। वेग के अधिक होने से गोला फटता है और उसके अनेक विभाग हो जाते हैं। इन विभागों को, जो आकर्षण-शक्ति द्वारा घूमने लगते हैं, विज्ञान-वेत्ताओं ने सौर जगत् के नाम से पुकारा है। सौर जगत् भी, इसी तरह, घूमते घूमते फटते हैं। उनके विभागों को ग्रह कहते है। ग्रहों से जो टुकड़े होजाते हैं उनको चन्द्रमा और नाना प्रकार के धूमकेतु कहते हैं।

सूर्य्य, चन्द्रमा, ग्रह, उपग्रह और पृथ्वी एक ही पदार्थ के बने हुए हैं—अर्थात् उसी आदिम गोले के वे अंश हैं। यन्त्र द्वारा विद्वानों ने ग्रहों का रासायनिक विश्लेषण किया है। यद्यपि ग्रह हम से बहुत दूर हैं, तथापि उनमें उन्होंने वही चीज़ें पाई हैं जो कि सूर्य्य में जलती हैं और पृथ्वी पर मिलती हैं।

ज्योतिष-विद्या के जाननेवाले कहते हैं कि ग्रह, उपग्रह, पृथ्वी आदि पिण्ड * सूर्य्य के चारों ओर एक ही दिशा में घूमते हैं। ये ग्रह आदि अपनी कक्षा के गिर्द भी उसी तरह घूमते हैं। इनके आकार भी एक से हैं। इससे सिद्ध है कि वे उसी आदि गोले के अंश हैं। यदि ऐसा न होता तो उनके घूमने की दिशा में अवश्य भेद होता।

वैज्ञानिक नियम है कि जो वस्तु जितनी छोटी होती है उसकी उष्णता उतनी ही शीघ्रता से बाहर निकलती है। बड़े गोले के छोटे अंश ठंडे होने लगते हैं। चन्द्रमा के छोटे होने के कारण उसकी उष्णता शीघ्रता से निकल जाती है। कुछ समय के बाद वह मनुष्य के रहने योग्य हो जाता है। अनन्त काल बीत जाने पर उसकी गरमी इतनी कम हो जाती है कि मनुष्य उस पर जीता नहीं रह सकता। यही कारण है जो आज हम दूरबीन द्वारा चन्द्रमा को एक मृतक और जड़ पदार्थ-पिण्ड पाते हैं। इसी तरह और ग्रहों की अवस्था भी जान लेनी चाहिए।

जिस पृथिवी पर हम आनन्दपूर्वक अपनी आयु व्यतीत कर रहे हैं उसकी दशा किसी समय वैसीही थी जैसी इस समय सूर्य्य की है। यह स्थूल पृथिवी उस समय एक जलता हुआ गोला थी, और इसका भ्रमण-वेग इतना था कि अनुमान में नहीं आ सकता था। घूमते घूमते इसकी गरमी निकलने लगी। ऊपर का भाग ठंढा हो गया। ठंढ से परमाणु सिकुड़ने लगे और इकट्ठी हुई विभेदक शक्ति बाहर निकलने लगी। उस समय पृथिवी का बाहरी अंश फट गया। इससे परमाणुओं के समूह द्वारा पहाड़ और घाटियाँ बन गईं। जहाँ परमाणु सिकुड़ गये वहाँ गढ़े बन गये। शीताधिक्य से जलीय वाष्प जमने लगे। फिर जल बन कर वे उन गढ़ों में गिरे। उनका नाम समुद्र हुआ।

जब धीरे धीरे सूर्य्य की किरणें पृथिवी के वायु और जल पर अपना प्रभाव डालने लगीं तब परमाणु संग्रथित होकर उनकी चट्टाने बन गईं। इसके अनन्तर वृक्ष उत्पन्न हुए। तदनन्तर जीवधारी उत्पन्न हुए। मनुष्य उनके भी पश्चात् उत्पन्न हुआ। अब पृथिवी ठंढी हो रही है। परन्तु इसके गर्भ में अभी तक अत्यन्त गरमी है। इसका प्रमाण भूकम्प और ज्वालामुखी पहाड़ हैं।

संसार की लीला बड़ी विचित्र है। इसके कार्य्यों ने हमको इतना ग्रस लिया है कि ज्ञानरूपी समुद्र में गोता लगाना तो दूर रहा, हमारे लिए उसके निकट पहुँचना भी अति दुष्कर है। यह जान कर किसका हृदय दुःख से न भर जायगा कि जिस पृथिवी पर हम बाल्यावस्था से मरणपर्य्यन्त नाना प्रकार के ऐश्वर्य्य भोगते हैं वही किसी समय उष्णता के निकल जाने से चन्द्रमा के समान मनुष्यवास के योग्य न रह जायगी!

भगवानदत्त रूपलाल।

* सूर्य्य भी अपनी कक्षा के इर्द गिर्द घूमता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पटना।

पटना या पाटलीपुत्र भारत का बहुत प्राचीन नगर है। यद्यपि यह नगर उतना पुराना नहीं जितनी देहली, तो भी यह देहली की तरह कई दफ़े उजड़ा और कई दफ़े बसा है। इसमें भी कई राजवंशों की जड़ें जमीं और जम कर उखड़ गईं, और कितने ही राज-प्रासाद ऊँचे उठ कर भूमिसम हो गये। पटना अब वह पुराना पाटलीपुत्र नहीं। तथापि अब भी पुरा-तत्त्व-वेत्ता लोग उसकी भूमि के नीचे दबे हुए प्राचीन खँडहरों में उसके प्राचीन वैभव को ढूँढ़ते फिरते हैं।

सन् ईसवी से कोई पाँच सौ वर्ष पूर्व मगधदेश के राजा अजात-शत्रु ने मिथिला-प्रान्त के तत्कालीन राजा को परास्त किया और विजितशत्रु की शक्ति पर सदा दृष्टि रखने के लिए गङ्गा के किनारे बसे हुए पाटली नाम के एक छोटे से गाँव में एक क़िला बनाया। अजात-शत्रु के पौत्र ने इसी क़िले के नीचे एक नगर बसाया जो कुसुमपुर, पुष्पपुर और पाटलीपुत्र नाम से प्रसिद्ध हुआ। यही नगर बढ़ता बढ़ता मगध-साम्राज्य की राजधानी हुआ।

सम्राट् चन्द्र-गुप्त मौर्य्य ने पाटलीपुत्र को अपने विशाल साम्राज्य की राजधानी बनाया। उसी के समय में यूनानी राजदूत मेगास्थनीज़ भारत में आया। वह कई वर्ष पाटलीपुत्र में रहा। पाटली-पुत्र के विषय में उसने जो कुछ लिखा है उससे विदित होता है कि पाटलीपुत्र उस समय सोन और गङ्गा के सङ्गम पर बसा हुआ था। वह कोई साढ़े चार कोस लम्बा और पौन कोस चौड़ा था। उसकी चहार-दीवारी लकड़ी की थी, जिसमें ६४ फाटक और ५७० बुर्जे थीं। चहारदीवारी के चारों ओर एक गहरी और चौड़ी खाई थी, जिसमें सोन नदी का जल भरा रहता था। राजमहल लकड़ी का बना हुआ था। वह अन्य देशों के राज-प्रासादों से कहीं बढ़ कर सुन्दर था। उसके स्तम्भों पर सुनहली चित्रकारी की हुई थी। राजमहल के चारों ओर बड़ा भारी बाग़ था, जिसमें नाना प्रकार के सुन्दर सुन्दर वृक्ष थे। उसमें कई जलाशय भी थे, जिनमें मछलियाँ क्रीड़ा किया करती थीं। नगर के प्रबन्ध का भार एक राज-सभा के ऊपर निहित था, जो सम्राट् की ओर से नियत थी। इस राज-सभा के तीस सदस्य थे, जिन्हें पाँच पाँच के दल में विभक्त करके छः स्वतन्त्र उपसभायें बनी थीं। यही उपसभायें नगर के भिन्न भिन्न विभागों का कार्य्य करती थीं। पहली उपसभा नगर की शिल्प-कला की रक्षा करती थी। दूसरी का यह काम था कि वह नगर में आये हुए विदेशियों को किसी प्रकार का कष्ट न होने दे। तीसरी इस बात का हिसाब रखती थी कि नगर में आज कितने आदमी मरे और कितने उत्पन्न हुए, जिससे कर वसूल करने में सुभीता रहे। चौथी नगर के व्यवसायियों से कर वसूल करती थी। पाँचवीं और छठी उपसभाओं का भी नगर के वाणिज्य-व्यवसाय ही से सम्बन्ध था। ये सभायें नगर के बाज़ारों, मन्दिरों और अन्य संस्थाओं का भी काम देखती थीं। उस समय भी भारत में कई अच्छी अच्छी सड़कें थीं। राज-धानी पाटलीपुत्र से एक सड़क आरम्भ होती थी, जो एक हज़ार मील से अधिक लम्बी थी और भारत की पश्चिमोत्तर सीमा तक जाती थी।

चन्द्रगुप्त के पौत्र सम्राट् अशोक के समय में भी पाटलीपुत्र की बड़ी उन्नति हुई। मौर्य्यवंश का अन्तिम राजा बृहद्रथ था। उसका सेनापति पुष्पमित्र उसे मार कर स्वयं राजा बन बैठा। पाटलीपुत्र पुष्पमित्र और उसके स्थापित किये हुए सुङ्ग नाम के राजवंश के दस राजाओं की राजधानी रहा। इस वंश का उत्तराधिकारी कण्व-वंश हुआ। उसकी भी राजधानी पाटलीपुत्र ही रहा। सन् ईसवी से कुछ वर्ष पूर्व ही कण्व-वंश का अन्त हो गया और साथ ही पाटलीपुत्र का वैभव भी क्षीणप्राय हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कण्व-वंश के पश्चात् दक्षिण के आन्ध्रवंश ने उन्नति पाई; परन्तु उसकी सत्ता कुछ ही समय के उपरान्त नष्ट होगई। सन् ईसवी की पहली शताब्दी के बीच से लेकर चौथी शताब्दी के आरम्भ तक भारत में अराजकता सी फैली रही। इस समय देश भर में कई छोटे छोटे राज्यों का उदय हुआ। उनमें सदा परस्पर लड़ाई झगड़ा होता रहा। विदेश से शक, हूण आदि कितनी ही यवन-जातियाँ आ आ कर यहाँ बस गईं। चौथी शताब्दी के आरम्भ में गुप्त-वंश का उदय हुआ। ३२६ ईसवी में समुद्र-गुप्त राजा हुआ। अपने बाहुबल से समुद्र-गुप्त ने एक बार फिर भारतीय साम्राज्य की नींव डाली। उसका साम्राज्य हुगली से चम्बल तक और हिमालय से नर्म्मदा तक फैला। आसाम और हिमालय की तराई तक के राजाओं ने उसकी अधीनता स्वीकार की। गुप्तवंश के इस अभ्युत्थान के साथ पाटलीपुत्र के गुप्त भाग्य ने भी पलटा खाया। उसे फिर एक बार एक विशाल साम्राज्य की राजधानी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

छठी शताब्दी के अन्त में गुप्तवंश का भी नाश हो गया। मध्य एशिया के श्वेत हूणों का वह शिकार होगया। पाटलीपुत्र का पतन भी तभी से आरम्भ हो गया। पाँचवीं शताब्दी के आरम्भ में फाहियान नाम का एक चीनी यात्री भारत में आया था। उस समय पाटलीपुत्र मगध-प्रदेश की राजधानी था। वह पाटलीपुत्र में कोई तीन वर्ष रहा। महाराज अशोक के बनवाये हुए छः सात सौ वर्ष के पुराने टूटे फूटे राजमहल को देख कर फाहियान को बड़ा दुःख हुआ। इस विषय में उसने अपने यात्रा-वृत्तान्त में लिखा है कि अशोक ने इस महल को अवश्य देवताओं से बनवाया होगा। इसकी ऊँची ऊँची दीवारें, भव्य द्वार और चौखटें बनाना मनुष्य का काम नहीं। राजमहल के पास ही दो बौद्ध संघाराम थे, जिनमें छः सात सौ साधु रहते थे। ये साधु अपनी विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध थे। दूर दूर से लोग अपनी धर्म-पिपासा की तृप्ति के लिए इनके पास आते थे। प्रसिद्ध ब्राह्मण विद्वान मञ्जुश्री भी इन्हीं दो बौद्ध संघारामों में से एक में रहा करता था। उस समय पाटलीपुत्र में कितने ही ऐसे औषधालय थे जहाँ बिना जाति अथवा जन्म-देश के विचार के सब प्रकार के रोगियों की मुफ़्त चिकित्सा होती थी। रोगियों के आराम का बड़ा ख़याल रक्खा जाता था। उनको सुपथ्य भोजन मिलने की भी उचित व्यवस्था थी।

सातवीं शताब्दी के मध्य में दूसरा चीनी यात्री ह्वेनसाँग भारत में आया। उसने पाटलीपुत्र को बड़ी बुरी दशा में पाया। केवल नगर की टूटी-फूटी चहार-दीवारी मात्र उस समय उसके भूतपूर्व महत्त्व की चिह्न-स्वरूप शेष रह गई थी। कुछ आबादी भी थी। चिरकाल तक पाटलीपुत्र को इसी अवस्था में पड़ा रहना पड़ा। लगभग एक हज़ार वर्ष के बाद, १५४० ई० में, पाटलीपुत्र के भाग्य ने फिर पलटा खाया। शेर-शाह ने बादशाह हुमायूँ को परास्त करके सूर-वंश की नींव डाली। पाटलीपुत्र, जो अब पटना कहलाता था, सूर-वंश की राजधानी बना। परन्तु वह अधिक समय तक श्रीसम्पन्न न रह सका। थोड़े ही वर्ष बाद हुमायूँ के बेटे अकबर ने सूर-वंश का उच्छेद करके पटना का राजधानित्व भी नष्ट कर दिया।

इसके बाद पटना में दो उल्लेखनीय घटनायें और हुईं। पहली घटना है, १७६३ ईसवी में, लगभग साठ अँगरेज़ों की हत्या। मीर क़ासिम उस समय बंगाले का नवाब था। उससे और ईस्ट इंडिया कम्पनी से, चुङ्गी के लेन-देन के विषय में, कुछ झगड़ा हो गया। बात यहाँ तक बढ़ी कि नवाब और कम्पनी में हाथापाई होने लगी। कम्पनी की सेना ने पटना पर अधिकार कर लिया। परन्तु नवाब ने पुनः पटना छीन लिया। अन्य नगरों की भी छीना झपटी हुई, जिससे कितने ही अँगरेज़ मीर क़ासिम के हाथ पड़ गये। ये अँगरेज़ पटना में क़ैद किये गये। इसी बीच में मार क़ासिम को कम्पनी से दो बड़े बड़े युद्धों में हारना पड़। वह इस हार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से चिढ़ गया और क्रोध में आकर उसने सब अँगरेज़ क़ैदियों के मार डालने का हुक्म दे दिया। वाल्टर रेहार्ट नाम का एक स्विटज़रलेण्ड-निवासी मीर-क़ासिम का नौकर था। इसी मनुष्य ने मीर क़ासिम की आज्ञा से बड़ी निर्दयता के साथ लगभग साठ अँगरेज़ों की हत्या की।

१८५७ में दूसरी घटना हुई। पटना-नगर से लगी हुई दानापुर की छावनी है। दानापुर में उस समय तीन देसी फ़ौजें थीं। १८५७ में सिपाही-विद्रोह हुआ। इस डर से कि कहीं दानापुर की देसी फ़ौजें विप्लव-कारियों से न मिल जायँ, अँगरेज़-अफ़सरों ने यह निश्चय किया कि उनसे हथियार ले लिये जायँ। फ़ौज से हथियार माँगने की बात चलने पर वह बिगड़ गई और अन्य विप्लव-कारियों से मिल गई। इसका परिणाम बुरा हुआ।

बहुत दिनों बाद, इस वर्ष, फिर पटना के भाग्य ने करवट बदली है। सम्राट् पञ्चम जार्ज की आज्ञा से बङ्गाले से अलग होकर बिहार एक स्वतन्त्र प्रान्त बना है और उड़ीसा तथा छोटा नागपुर भी उसी में जोड़ दिये गये हैं। पटना अब इस नये प्रान्त की राजधानी है।

वर्तमान पटना एक बड़ा लम्बा चौड़ा नगर है। बाँकीपुर के मिला देने से इसकी लम्बाई लगभग चार कोस के हो जाती है। यह नगर नील और अफ़ीम के व्यापार का बड़ा भारी केन्द्र है। यहाँ से चीन को अफ़ीम भेजी जाती है। पर अब चीनवाले अफ़ीम खाना-पीना छोड़ रहे हैं। इससे यहाँ का कारोबार अब बन्द होने पर है। यहाँ साधारण इमारतें तो कितनी ही हैं, परन्तु एक देखने लायक़ है। उसे गोला कहते हैं। १७८३ में ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी के कर्मचारियों ने अनाज भरने के लिए इसे बनवाया था। बाहर से इसकी परिधि लगभग डेढ़ सौ गज़ के है। इसका भीतरी व्यास कोई छत्तीस गज़ होगा। दीवार इसकी कोई तीस गज़ ऊँची और चार गज़ चौड़ी है। सुनते हैं, इसमें लगभग अड़तीस लाख मन अनाज भरा जा सकता है। इसके ऊपर चढ़ने के लिए बाहर से सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। जहाँ सीढ़ियाँ समाप्त होती हैं वह स्थान तीन चार गज़ लम्बा-चौड़ा है। बीच में एक पत्थर है, जिसे उठाने पर भीतर जाने को रास्ता मिलता है। भीतर ज़रा से भी खटके की इतनी प्रतिध्वनि होती है कि गोले के भीतर एक किनारे पर खड़ा हुआ मनुष्य दूसरे किनारे पर खड़े हुए मनुष्य के मन्द से मन्द शब्द को भी सुन सकता है।

भारतवर्ष की महत्ता।

नव सुशिक्षित बन्धु! कुछ है आपसे कहना मुझे;
विनय-द्वारा संशयों को आज है हरना मुझे।
सुभग शुचि शालीनता से मुँह न अपना मोड़िए;
पूर्वजों पर व्यर्थ दोषारोप करना छोड़िए॥ १॥

पूर्वजों का यदि यहाँ गुण-गान मैं करने लगूँ;
तो कणों से जलधि का अवसान मैं करने लगूँ।
कुछ पुरातन विषय-वर ही व्यक्त करना है मुझे;
पूर्वजों में बस तुम्हें अनुरक्त करना है मुझे॥ २॥

सभ्यता इस देश की प्राचीनतम है सर्वथा;
सृष्टि-गणना थी कहाँ सम्भव कहो तो अन्यथा?
विक्रमादित्यादि की है वर्ष-गणना भी यहाँ;
पूर्वजों की कीर्ति को जो कर रही है स्थिर यहाँ॥ ३॥

विमल-विद्या से सुशोभित अखिल भारतवर्ष था;
आत्म-विद्या-बल-विनोदन में सदा उद्धर्ष था।
था किया परदेशियों को विपुल शिक्षा-दान भी;
हैं इसी के सब ऋणी यूनान भी जापान भी॥ ४॥

दर्शनों का क्या नहीं दर्शन किया है आपने?
ब्राह्मणों का क्या नहीं अर्चन किया है आपने?
शास्त्र सुखदायक श्रुति-स्मृतियाँ न क्या जानी गईं?
पूर्वजों में क्यों भला फिर भ्रान्तियाँ मानी गईं? ५

ग्राम-चैत्याराम-पर्वत-युक्त भी भू गोल है;
उपमा कदम्ब-प्रसून की इसकी मिली अनमोल है।
देखने में है अचल पर चल सदाही यह इला;
पूर्वजों की उक्तियाँ ये देख तो लेते भला॥ ६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचरती आकाश में सब दिन निराधारा मही ;
खींचती सब वस्तुयें आकर्षण-द्वारा मही।
वासरिक, त्यों वात्सरिक गतियां सदा होती रहैं ;
नियत ऋतुओं की अतः स्थितियाँ सदा होती रहैं ॥ ७ ॥

पर्व में निज बिम्ब से विधु का ग्रहण करती मही ;
चन्द्र भी निज बिम्ब से रवि की दशा करता यही।
इन्दु की अतिशय अनोखी ज्योति जो यह है खिली ;
दिन-क्रम से वह उसे दिननाथ-द्वारा ही मिली ॥ ८ ॥

रविकरणों के ताप से जल-भूमि का अत्यन्त तप्त,
होकर पहुँचता व्योम में बन बाष्प का वपु वह समस्त।
फिर वही बनता शनैः सौदामिनी-युत घनघटा ;
है दिखाता अमृत-मय फिर वारि-बुन्दों की छटा ॥ ९ ॥

धर्म-भय से जलधि-यात्रा यद्यपि बहु-स्वीकृत न थी ;
किन्तु द्वीपान्तर-गमन की सुप्रथा भी मृत न थी।
पूर्वजों की कीर्ति है इस विषय में भी कम नहीं ;
बौद्ध लोगों के भ्रमण-वृत्तान्त पढ़ते क्यों नहीं ? १० ॥

भित्ति में भ्रम द्वार का त्यों द्वार में भित्ति-प्रभा—
थी जल-स्थल-साम्ययुत वह पाण्डुनन्दन की सभा।
नृप-विमोहन-कारिणी हियहारिणी थी चारुता ;
क्या कभी देखी कहीं ऐसी अनूपम कारुता ? ११ ॥

एक से दश शत, उन्हीं से फिर सहस्रों बाण हैं ;
अग्नि-जल-वर्षक इधर तो उधर कर्षक प्राण हैं।
वीर-शत-हन्ता विपुल थे सहस-हन्ता भी बली ;
थी महा आश्चर्य्यमय वह पूर्व की समर-स्थली ॥ १२ ॥

यद्यपि मुझको इस विषय में और भी वक्तव्य है ;
किन्तु मार्ग अनन्त है ; इससे न वह गन्तव्य है।
पूर्वजों की उस कृपा पर ध्यान रखना चाहिए ;
सदा उनका पुण्यमय गुणगान करना चाहिए ॥ १३ ॥

बस यहाँ इस विषय का अवसान है जाता किया ;
पूर्वजों की भक्ति का आह्वान है जाता किया।
ईश ! हममें बुद्धि हो, शुभ शक्ति हो, तव भक्ति हो ;
दीजिए ऐसी सुमति निज देश में अनुरक्ति हो ॥ १४ ॥

विन्ध्येश्वरीप्रसाद गुप्त।

आनन्दोद्गार।

ग़ज़ल (कलाधरात्मक राजगीत)

जिसमें नटराज नाचुका है
उस नाटक में नचा चुका है।
जिसके अनुसार खेल खेले
वह शैशव दूर जा चुका है ॥
उस यौवन का न खोज पाता
अपना रस जो चखा चुका है।
तन पञ्जर हो गया पुराना
मन मौज नवीन पा चुका है ॥
अब शीकर सिन्धु में मिलेगा
शुभ काल समीप आ चुका है।
शिवशङ्कर का मिलाप होगा
दिन अन्तर के बिता चुका है ॥

नाथूराम शङ्कर शर्मा

नल का दुस्तर दूत-कार्य्य।

प्राचीन समय में भारत का अधिकतर वह अंश, जिसे आज कल कुमायूँ कहते हैं, निषध-देश के नाम से प्रसिद्ध था। अलका उसकी राजधानी थी। उसमें वीरसेन का पुत्र नल नामक एक महा प्रतापी राजा राज्य करता था।

नल, एक दिन, मृगया के लिए राजधानी से बाहर निकला। आखेट करते करते वह अकेला दूर तक अरण्य में निकल गया। वहाँ उसने एक बड़ा ही मनोहर जलाशय देखा। उसके तट पर एक अलौकिक रङ्ग-रूपधारी हंस, थक जाने के कारण, आँखें बन्द किये, बैठा आराम कर रहा था। नल की दृष्टि उस पर पड़ी। चुपचाप, दबे पैरों, जाकर राजा ने उसे पकड़ लिया। हंस का विचरण-स्वातन्त्र्य जाता रहा। पराधीनता के दुःख और अपनी स्त्री तथा माता के वियोग-जन्य ताप की चिन्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

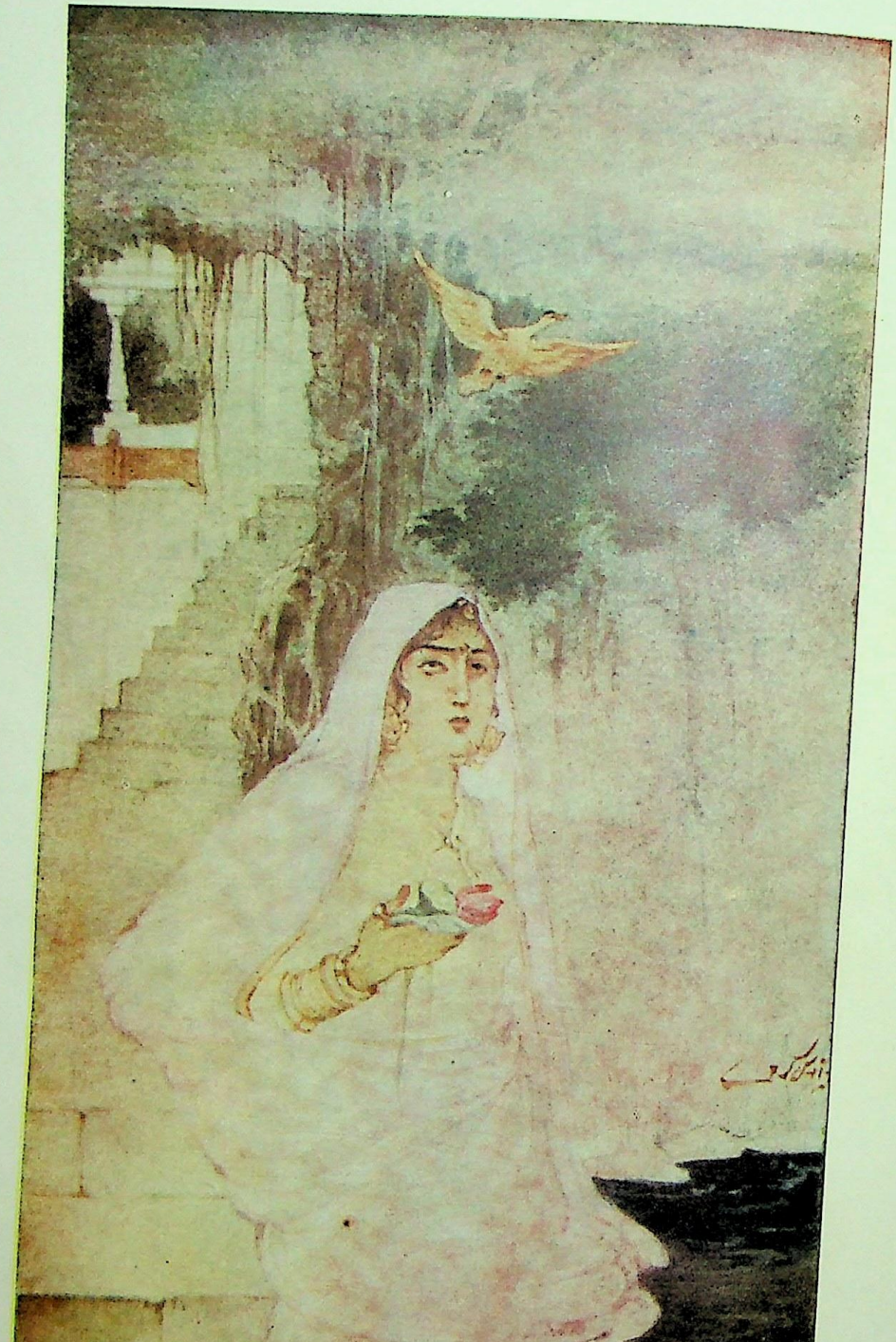

दमयन्ती और हंस।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो वह व्याकुल हो उठा। उसने बहुत विलाप किया। मुक्तिदान देने के लिए राजा से उसने प्रार्थना भी की और एक तुच्छ पक्षी पर अनुचित बल-प्रयोग करने के लिए उसकी भर्त्सना भी की। राजा को दया आई। उसने उस हंस को छोड़ दिया।

हंस इस पर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा, मैं एक असाधारण पक्षी हूँ। आपने मुझे छोड़ दिया, इसका मैं प्रत्युपकार करना चाहता हूँ। आप अभी तक अविवाहित हैं। अतएव आपही के सदृश अलौकिक रूप-लावण्यवती सुन्दरी दमयन्ती को आप पर अनुरक्त कराने की मैं चेष्टा करूँगा। आपका कल्याण हो। मैं चला। अपने उद्योग की सफलता का संवाद सुनाने के लिए शीघ्रही मैं लौट कर आपके दर्शन करूँगा।

नल से विदा होकर हंस ने विदर्भ देश—आधुनिक बरार—की राह ली। वहाँ के राजा भीम की कन्या दमयन्ती उस समय त्रिभुवन में एकही सुन्दरी थी। उसकी रूपराशि का वर्णन करके हंस ने नल को दमयन्ती पर अनुरक्त किया था। अब उसे दमयन्ती को नल पर अनुरक्त करना था। आकाश-मार्ग से हंस शीघ्रही विदर्भ-देश की राजधानी कुण्डिनपुर पहुँचा। (इस संख्या के आरम्भ में रङ्गीन चित्र देखिए) दमयन्ती उस समय अपने क्रीडास्थान में सखियों के साथ खेल रही थी। हंस मनुष्य की बोली बोलना जानता था। एकान्त में नल के सौन्दर्य्य, बल, वैभव और पराक्रम आदि का वर्णन दमयन्ती को सुना कर हंस ने उसे नल के प्रेम-पाश में फाँस लिया। यही नहीं, किन्तु उसने दमयन्ती से यह वचन तक ले लिया कि मर चाहे जाऊँ, पर नल को छोड़ कर और किसी से विवाह न करूँगी।

यह सुख-समाचार नल को सुना कर हंस अपने आवास को गया।

इधर नल की चिन्तना ने दमयन्ती को अतिशय सन्तप्त कर दिया। एक दिन विरह-व्यथा से अत्यन्त व्यथित होकर वह मूर्छित हो गई। पिता भीम उसके पास दौड़े आये। कन्या की दशा देख कर उसके सन्ताप का कारण वे ताड़ गये। उन्होंने शीघ्रही उसका विवाह कर डालना चाहा। स्वयंवर की तिथि निश्चित हुई।

स्वयंवर में शरीक होने के लिए देश देश के नरेश चले। नल ने भी अलका से कुण्डिनपुर के लिए प्रस्थान किया। उधर स्वयंवर का समाचार और भैमी का सौन्दर्य्य-वर्णन नारद से सुन कर, उसे पाने की इच्छा से, इन्द्र ने भी देवलोक से प्रस्थान किया। उसके पीछे यम, वरुण और अग्नि भी चले। मार्ग में उन चारों की भेंट नल से हुई। नल की भुवनातिव्यापिनी सुन्दरता देख कर उन देवताओं के होश उड़ गये। उन्होंने इस बात को निश्चित समझा कि नल के होते दमयन्ती कदापि उनके कण्ठ में वरमाला न पहनायेगी। अतएव कपट-कौशल की ठहरी। नल की दानशूरता आदि की प्रशंसा कर के इन्द्र महाराज नल के याचक बने। आपने नल से यह याच्ञा की कि तुम हमारे दूत बन कर दमयन्ती के पास जाव और हमारी तरफ़ से ऐसी विकालत करो जिसमें वह हमीं चारों में से किसी एक को अपना पति बनावे। इस प्रार्थना पर नल को महा दुःख हुआ। उसे क्रोध भी हो आया। उसने इन्द्रादि के इस कार्य्य की बड़ी गर्हणा की। अपना सच्चा हाल भी उसने कह सुनाया। सङ्कल्पद्वारा मुझे ही दमयन्ती अपना पति बना चुकी है, यह भी नल ने साफ़ साफ़ कह दिया। भीम भूपाल के अन्तःपुर में दूत बन कर जाने की असम्भवता का भी नल ने उल्लेख किया। पर इन्द्र ने एक न मानी। उचित-अनुचित का उस समय उसे कुछ भी ध्यान न रहा। फिर उसने नल की चाटुकारिता आरम्भ की। आजिज़ आकर नल ने इन्द्रादि देवताओं का दूत बन कर दमयन्ती के पास जाना स्वीकार कर लिया। इन्द्र ने नल को एक ऐसी विद्या सिखला दी जिसके प्रभाव से, इच्छा करने पर, वह और लोगों की दृष्टि से अदृश्य हो सके; पर वह सबको देखता रहे। नल, इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह, इधर दूत बन कर कुण्डिनपुर पहुँचा। उधर पूर्वोक्त चारों दिक्पालों ने पृथक् पृथक् अपनी दूतियाँ भी दमयन्ती के पास, उसे अपनी ओर अनुरक्त करने के लिए, भेजीं। इतने छल-कपट और प्रयत्न को काफ़ी न समझ कर उन्होंने दमयन्ती के पिता को बहुत कुछ घूस भी दी। सबने अद्भुत अद्भुत उपायन राजा भीम को भेजे।

नल ने अपना रथ, अपने अनुचर और अपना असबाब आदि कुण्डिनपुर के बाहर ही छोड़ा। दिक्पालों की स्वार्थपरता और निर्लज्जता को धिक्कारते हुए उसने नगर में प्रवेश किया। जी कड़ा करके वह राजप्रासाद के पास पहुँचा। धीरे धीरे वह उसके भीतर घुसा। इन्द्रदत्त तिरस्करिणी विद्या के प्रभाव से उसे किसी ने न देखा। घूमते घामते वह दमयन्ती के महल में दाख़िल हुआ। कहीं किसी कामिनी के शरीर का स्पर्श होने से वह झिझक उठा। कहीं किसी का कोई अनावृत अङ्ग देख कर उसने आँखें मूँद लीं। कहीं किसी को अपने स्थितिस्थान की ओर मुख किये देख वह डर उठा कि कहीं मैं देख तो नहीं लिया गया। इस प्रकार अन्तःपुर की सैर करते हुए वह दमयन्ती के सम्मुख उपस्थित हुआ। उसके रूप-माधुर्य्य की शोभा देखते वह देर तक वहाँ खड़ा रहा। उसने सबको देखा; उसे कोई न देख सका। तदनन्तर, समय अनुकूल देख, अङ्गीकृत दूतत्व-निर्वाह के इरादे से, वह प्रकट हो गया। इसके बाद वहाँ जो कुछ हुआ उसके वर्णन में श्रीहर्ष ने अपने नैषध-चरित में अपूर्व कवित्व-कौशल दिखाया है। उसी का भावार्थ, संक्षेप में, आगे, दिया जाता है।

पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि नल और दमयन्ती दोनों, पहले ही से, एक दूसरे पर, अनुरक्त थे। तिस पर भी नल ने याचक इन्द्र की याच्ञा को विफल कर देना अपने वंश के विरुद्ध-विरुद्ध समझा। अतएव उसने दूत बनना स्वीकार कर लिया। नल के चरित्रदार्ढ्य, साहस और स्वार्थत्याग का यह अद्भुत उदाहरण है। अब, इस समय, ये दोनों प्रेमी एक दूसरे के सामने हैं। नल से कोई बात छिपी नहीं; पर दमयन्ती को अत्यल्प भी ज्ञान नहीं कि यह कौन है। इससे घटना की महत्ता बहुत बढ़ गई है। इसमें एक अ वर्वचनीय रस उत्पन्न हो गया है। अस्तु।

नल के अकस्मात् प्रकट होने पर दमयन्ती उसकी सहेलियों ने उसे इस अनिमेष-भाव से मानों वे उसे दृष्टि द्वारा पी जाना चाहती हैं। को इस तरह कुछ देर तक देख चुकने पर किसी कामिनी ने लाज से सिर नीचा कर लि किसी किसी ने उसके रूप-लावण्य के समुद्र में लगाया। और, किसी किसी ने उसे प्रत्यक्ष समझ कर विस्मय की पराकाष्ठा के पार प्र किया। किसी को इस बात के पूछने का साहस हुआ कि— आप कौन हैं और कहाँ से आये हैं नल के अपूर्व रूप और आकस्मिक प्रादुर्भाव ने अप्रतिभ कर दिया। उनसे उस समय केवल बन पड़ा कि, अभ्युत्थान की वाञ्छा से, अपने आसनों से वे उठ खड़ी हुईं। नल के सन्दर्शन दमयन्ती को वैसाही परमानन्द प्राप्त हुआ जैसा वर्षाकाल आने पर, पर्वत से निकली हुई नदी मेघों के धारासार से प्राप्त होता है।

नल के प्रत्येक अङ्ग की सुन्दरता का मन ही अभिनन्दन करके दमयन्ती के हृदय में जिन भावों उदय हुआ उनका वर्णन करने में केवल महाक ही समर्थ हो सकते हैं। दमयन्ती ने देखा कि उस सारी सहेलियाँ कुण्ठित-कण्ठ हो रही हैं। उ मुख-मण्डलों पर आतङ्क छाया हुआ है। अतएव दमयन्ती की तरफ़ से उस आगन्तुक पुरुष से कु प्रश्न करने में असमर्थ हैं। लाचार नम्र-मुखी दमय स्वयं ही नल से इस प्रकार गद्गद-भाव-पूर्ण बोली:—

आचारवेत्ता महात्माओं ने यह नियम दिया है कि अतिथि आने पर यदि और कुछ न पड़े तो प्रेम-पूर्ण अक्षरों की रस-धारा ही को पर्क बनाना चाहिए। अभ्यागत की तृप्ति के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी आत्मा को भी तृणवत् समझना चाहिए। और, यदि, उस समय पाद्य और अर्घ्य के लिए जल न मिल सके तो आनन्दाश्रुओं से ही उस विधि का सम्पादन करना चाहिए। आपका दर्शन होते ही मैं अपना जो आसन छोड़ कर खड़ी हो गई वह यथार्थ में आपके बैठने योग्य नहीं; तथापि, मेरी प्रार्थना पर, बहुत नहीं तो क्षण ही भर के लिए, कृपा-पूर्वक, आप उसे अलङ्कृत करें। यदि आपकी इच्छा और कहीं जाने की हो तोभी, मेरे अनुरोध से, आप मेरी इस विनती को मान लेने की उदारता दिखावें। आपके ये पदद्वय शिरीषकलिकाओं की मृदुता का भी अभिमान चूर्ण करने वाले हैं। यह तो आप बताइए कि आपका निर्दय हृदय कब तक इन्हें इस तरह खड़े रख कर क्लेशित करना चाहता है। वसन्त बीत जाने पर जो दशा उपवनों की होती है वही दशा आपने किस देश की कर डाली? आपके मुख से उच्चारण किये जाने के कारण कृतार्थ होने वाले आपके नाम के अक्षर सुनने के लिए मैं उत्सुक हो रही हूँ। अपने दर्शनों से सारे संसार को तृप्त करने वाले आप जैसे पीयूषमयूख (चन्द्रमा) को उत्पन्न करके किस वंश ने समुद्र के साथ स्पर्द्धा करने का बीड़ा उठाया है? उस वंश का यह उद्योग सर्वथा स्तुत्य और उचित है। इस दुष्प्रवेश्य अन्तःपुर में आपके प्रवेश को मैं महासागर को पार कर जाना समझती हूँ। मेरी समझ में नहीं आता कि इतने बड़े साहस का कारण क्या है और इसका फल भी क्या हो सकता है? आपके इस सुरक्षित अन्तःपुर-प्रवेश को मैं अपने नेत्रों के कृतपुण्य का फल समझती हूँ। आपकी आकृति सर्वथा भुवन-मोहिनी है। द्वारपालों को अन्धा कर डालने की शक्ति भी आपमें बड़ी ही अद्भुत है। आपकी शरीर-कान्ति भी महा अलौकिक है। इससे जान पड़ता है कि आप कोई दिव्य पुरुष, अर्थात् देवता, हैं। मन्मथ आप नहीं हो सकते; क्योंकि वह मूर्तिहीन है। अश्विनीकुमार भी आप नहीं हो सकते; क्योंकि वे कभी अद्वितीय नहीं देखे गये। यदि आप मनुष्य हैं तो यह पृथ्वी कृतार्थ है। यदि आप देवता हैं तो देवलोक की प्रशंसा नहीं हो सकती। यदि आपने अपने जन्म से नाग-वंश को अलङ्कृत किया है तो नीचे, अर्थात् पाताल में, होने पर भी वह सब लोकों के ऊपर समझा जाने योग्य है। इस भूमण्डल में किस मनुष्य ने इतना अधिक पुण्य किया है जिसे कृतकृत्य करने के उद्देश से आप अपने पैरों को चलने का कष्ट दे रहे हैं? इस प्रकार के न मालूम कितने सन्देह मेरे चित्त में उत्पन्न हो रहे हैं। अतएव आप अधिक देर तक मुझे सन्देह-सागर में न डुबोइए। बतला दीजिए कि किस धन्य के आप अतिथि हैं। आपके सुन्दर रूप का दर्शन करके मेरी दृष्टि ने तो अपने जन्म का फल पा लिया। यदि आप अपने मुख से अब कुछ कहने की कृपा करें तो मेरे कानों को भी सुधासार के आस्वादन का आनन्द मिल जाय"।

अपनी प्रियतमा के मुख से इस तरह शहद के समान मीठी वाणी सुनने से नल का अजीब हाल हुआ। दमयन्ती के ओष्ठबन्धूकरूपी धन्वा से वाणी के बहाने निकली हुई मन्मथ की पञ्चबाणी (पाँच बाण) कानों की राह से नल के हृदय के भीतर धँस गई। प्रिया दमयन्ती के मुख से ऐसे मधुर और ऐसे प्यारे वचन सुन कर नल, सुधासमुद्र में, शरीरान्तर्वर्त्तिनी मज्जा-पर्य्यन्त निमज्जित हो गया। स्तुति ऐसी चीज़ है जो शत्रु के मुँह से भी मीठी मालूम होती है। फिर प्राणोपम प्रिया के मुँह से उसके मिठास का कहना ही क्या है।

नल ने स्वयं दमयन्ती के आसन पर बैठना तो उचित न समझा; पर, दमयन्ती की प्रार्थना पर, उसकी सखी के आसन पर वह बैठ गया। इस समय नल के हृदय धैर्य्य और मनोभव में युद्ध ठन गया। जीत धैर्य्य ही की हुई। मनोभव ने हार खाई। उसकी एक न चली। विकारों की उत्पादक प्रबल सामग्री के उपस्थित होने पर भी यदि महात्माओं का मन कलुषित हो जाय तो फिर वे महात्मा ही कैसे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दमयन्ती ने नल से जो प्रश्न किये उनमें से एक को छोड़ कर और सब प्रश्न नल हज़म कर गये। आपने अपनी कथा का आरम्भ इस प्रकार किया:—

मैं दिशाओं के अधिपतियों की सभा से तुम्हारे ही पास अतिथि हो कर आया हूँ। साथ ही अपने प्रभुओं के सन्देश, बड़े आदर के साथ, अपने हृदय में प्राणों की तरह धारण करके लाया हूँ। मेरा आतिथ्य-सत्कार हो चुका। बस, अब और अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं। बैठ क्यों नहीं जाती? आसन क्यों छोड़ दिया? दूत बन कर मैं जिस काम के लिए आया हूँ उसे यदि तुम सफल कर दोगी तो मैं उसी को अपना बहुत बड़ा आतिथ्य समझूँगा। हे कल्याणि! चित्त तो तुम्हारा प्रसन्न है? शरीर तो तुम्हारा सुखी है? विलम्ब करने का यह समय नहीं; इससे जो कुछ मैं निवेदन करने जाता हूँ उसे कृपा करके सुनो। मेरा निवेदन यह है:—

जबसे तुम्हारी कुमारावस्था का आरम्भ हुआ तभी से तुम्हारे गुणों ने इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर के हृदय पर अधिकार कर लिया है। तुम्हारे शैशव और यौवन की सन्धि से सम्बन्ध रखनेवाली बातों का विचार करके इन दिक्पालों का चित्त प्रतिदिन अधिकाधिक खिन्न हो रहा है। दो राजाओं के राज्य में जो दशा प्रजा की होती है वही दशा इस समय इन देवताओं की हो रही है। पञ्च-शायक रूपी चोर ने इन के धैर्य्य रूपी सारे धन का हरण कर लिया है।

मैं तुमसे इन्द्र का क्या हाल बयान करूँ। सूर्य्य जिस समय पूर्व दिशा में उदित होता है उस समय उसका बिम्ब वैसाही अरुण होता है जैसा कि चन्द्रमा का। तुम्हारे वियोग में महेन्द्र सूर्य्य को भी, सदृशता के कारण, चन्द्रमा समझ कर अत्यन्त क्रोध-पूर्ण दृष्टि से देखता है। किसका अपराध और किस पर क्रोध! परन्तु वह बेचारा करे क्या? वह इस समय बिलकुल ही विवेकहीन हो रहा है। केवल तीन-नेत्र-धारी ने मनोजमहोदय के साथ जो सुलूक किया था उसी को वह अब तक नहीं सँभाल सका। मेरी समझ में नहीं आता कि यदि अब सहस्रनेत्रधारी उस पर रुष्ट हुआ तो उस बेचारे की क्या दशा होगी? [illegible] सिज के तो शरीरकृत अपराधों से शचीपति [illegible] हो रहा है, कोकिल का तो वचनकृत अपराध [illegible] उसे सहन नहीं होता। इस डर से कि कहीं पिक [illegible] शब्द कान में न पड़ जाय वह अपने नन्दन-वन [illegible] जाकर बैठने का साहस भी नहीं कर सकता [illegible] और कहाँ तक कहूँ, शङ्कर के जटाजूटवाले [illegible] चन्द्रमा को अपना अपकार-कर्ता समझ कर महादे [illegible] का पूजन तक करना उसने छोड़ दिया है। तुम [illegible] वियोग में उसके धैर्य्य का समूल उन्मूलन हो गया [illegible] है। कल्पवृक्ष संसार के दरिद्र-हरण का सामर्थ्य रख [illegible] हैं। परन्तु इस समय वे स्वयंही महा-दरिद्री [illegible] रहे हैं। इन्द्र का शरीर-सन्ताप दूर करने के लिए [illegible] के पत्तों की शय्यायें बना डाली गई हैं। अतएव [illegible] सब वे पत्ते के दारिद्र्यदीन खड़े हुए हैं। तुम शायद यह शङ्का करो कि क्या अमरपुर में कोई ऐसा पण्डित नहीं जो अपने सदुपदेश से इन्द्र को धैर्य्य-प्रदान करे। शङ्का तुम्हारी निर्मूल नहीं। परन्तु उपदेश सुने कौन? रति-पति के धन्वा की अविरत टङ्कार ने सब को दोनों कानों से बहरा कर डाला है। अतएव महेन्द्र की मोह-निद्रा को दूर करने वाले सुर-गुरु बृहस्पति की धैर्य्य-विधायक वाणी सर्वथा व्यर्थ हो रही है।

अष्टमूर्ति शङ्कर का जो देदीप्यमान शरीर है [illegible] याजक जिसकी नित्य उपासना करते हैं उस अग्नि [illegible] भी बुरा हाल है। कुसुमशायक ने उसे भी तुम्हा [illegible] दास बनने की आज्ञा दे दी है। दूसरों को जला [illegible] समय अग्नि अब तक यह न जानता था कि उ [illegible] कितना ताप होता है—उन्हें कितनी जलन होती है। परन्तु तुम्हारी सहायता से अग्नि को जला कर [illegible] समय अनङ्ग उसे यहाँ तक विनीत और विनम्र [illegible] रहा है कि भविष्यत् में दूसरों को सन्ताप देने [illegible] उसे कदापि साहस न होगा। क्योंकि, अब उसे जल [illegible] का दुःख अच्छी तरह ज्ञात हो गया है। शङ्कर [illegible] तीसरे नेत्र में वास करने वाले पावक ने मनसि [illegible] को एक बार जला कर भस्म कर दिया था। इस बा [illegible] को तुमने भी पुराणों में सुना होगा। सो वह पुरा [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदला लेने के लिए इस समय मनोज ने तुम्हारे नेत्रों का सहारा लिया है। उन्हीं के भीतर सुरक्षित बैठा हुआ वह अग्नि को जला रहा है। उसका यह कठोर कार्य्य बहुत दिन से जारी है। तथापि वह यही समझ रहा है कि अभी तक उस वैरभाव का काफ़ी बदला नहीं हुआ। तुम्हारे कारण कुसुमायुध के शरों से अग्नि यहाँ तक पीड़ित हो गया है कि अपने भक्तों के द्वारा चढ़ाये गये कुसुमों से भी डर कर वह कोसों दूर भागता है।

सरोरुहों का सखा सूर्य्य जिससे पुत्रवान् है और चन्दन के सुवास से सुगन्धित दक्षिण दिशा जिसकी प्रियतमा है उस वैवस्वत यम ने भी तुम्हारे निमित्त कामाग्नि-कुण्ड में अपने धैर्य्य की आहुति दे डाली है। वह भी इस समय बड़ी ही विषमावस्था को प्राप्त है। शीतोपचार के लिए मलयाचल से लाये गये कोमल पल्लव उसके शरीरस्पर्श से यद्यपि बेतरह झुलस जाते हैं तथापि मलय इस आपत्तिकाल में भी अपने प्रभु यम की सेवा नहीं छोड़ता। कारण यह है कि वह उसी की दिशा का—उसी के राज्य का—वासी है। अतएव यम के शरीर के साथ मलयाद्रि भी अपने नवल पल्लव और चन्दनादि जलाने का सन्ताप सहन कर रहा है।

रहा वरुण, सो उसकी भी दशा अच्छी नहीं। महासागर युगानुयुग से बड़वाग्नि की ज्वाला सहन करता चला आ रहा है। वह उसे विशेष दाहकारक नहीं जान पड़ती। परन्तु अपने ही अधिपति वरुण का स्मराग्निसन्तप्त शरीर जल के भीतर धारण करने में वह इस समय असमर्थ हो रहा है!

ये चारों देवता तुम्हारे नगर के बाहर पास ही ठहरे हुए हैं। उन्हीं की आज्ञा से मैं तुम्हारी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। जो कुछ मैंने तुमसे निवेदन किया वह उन्हीं का सन्देश है। अब कृपा करके बतलाओ कि उन्हें अपनी इच्छापूर्ति के लिए कब तक ठहरना पड़ेगा। उनके जीवन संशयापन्न हैं। अतएव जहाँ तक हो सके तुम्हें शीघ्रता करनी चाहिए। तुम प्रति दिन इन देवताओं की पूजा कमल के फूलों से करती हो। परन्तु इस तरह की पूजा ये नहीं चाहते। यह इनको प्रीतिकर नहीं। तुम्हें प्रसन्न करने के लिए ये तो स्वयं ही अपना मस्तक तुम्हारे सामने झुका रहे हैं। अतएव अपने चरणकमलों से तुम इनकी पूजा करो, प्राकृतिक कमल-फूलों से नहीं। अब क्या आज्ञा है?

[अवशिष्ट आगे]

रविवर्मा के प्रसिद्ध चित्र।

प्रयाग में जैसे इंडियन प्रेस है वैसे ही पूना में एक चित्रशाला प्रेस भी है। हाल ही में "राजा रविवर्मा के-प्रसिद्ध चित्र" नामक एक पुस्तक चित्रशाला प्रेस से प्रकाशित हुई है। इसमें राजा रविवर्मा के बनाये चित्रों के ८८ प्रतिचित्र (हाफटोन) छपे हैं। इन चित्रों के नीचे हिन्दी में उनका परिचय भी लिखा गया है। यह पुस्तक पहले मराठी में छपी थी, अब हिन्दी में छपी है। हिन्दी-चित्रमयजगत् के वर्त्तमान सम्पादक, पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी ने उसकी टिप्पणियों का हिन्दी में अनुवाद किया है।

यह पुस्तक बड़ी सुन्दर छपी है। इसमें नम्बर २ लक्ष्मी, ३ सरस्वती, २९ दमयन्ती, ३३ दमयन्ती-शोक, ३९ शकुन्तला-पत्र-लेखन, ४८ गोदोहन, ४९ मृत्तिका-भक्षण, ५० कुञ्जवन में राधा, ६७ तारा, ७१ मनोरमा, ७५ बेगम की स्नान-विधि, और ८१ महाराष्ट्र-सुन्दरी नामक चित्र बड़े भावपूर्ण और मनोहर हैं। इस पुस्तक के अनेक चित्र समय समय पर सरस्वती में प्रकाशित हो चुके हैं।

इस पुस्तक के चित्रों के नीचे जो परिचय दिये गये हैं उनमें कहीं कहीं भूल है—चाहे वह लेखक के भ्रम से हुई हो चाहे अनुवादक के भ्रम से। यथा:—

"शकुन्तला और उसकी सखियाँ" नामक नं० ३४ वाले चित्र के परिचय में लिखा है—"इस चित्र में यह दृश्य दिखलाया है कि एक सखी शकुन्तला से कुछ बात चीत कर रही है और दूसरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सखी उसकी चोटी बाँध रही है"। यह ठीक नहीं। यथार्थ बात ऐसी है—तपोवन में प्रियंवदा और अनुसूया के साथ शकुन्तला पेड़ों में जल डाल रही है। उस समय शकुन्तला ने कहा—ऐ अनुसूया! प्रियंवदा ने वल्कल को बहुत कस कर मेरे कन्धे और छाती पर बाँध दिया है। मैं पीड़ित हूँ। इसे ढीला कर दे। अनुसूया ने उसे खोल कर ढीला कर दिया। प्रियंवदा ने हँस कर कहा—इस विषय में उरोजवर्द्धक अपने यौवन के आरम्भ को उलाहना दे। मुझे क्यों उलाहना देती है? जिस अभिज्ञान-शाकुन्तल नाटक के आधार पर यह चित्र राजा रविवर्मा ने बनाया है उसके वाक्य ऐसे हैं—

"शकु० हला अणसूए! अदि पिणद्धेण वक्कलेण पियम्वदाए पीडिदम्हि, ता सिढिलेहि दावणं।

अन०—शिथिलयति।

प्रियं० (सहासं) एत्थ दाव पओहर वित्थार हेतुअं अत्ताणो जोव्वणारम्भं उवालहस्स, मं किं उवालहसि"।

यह बात चित्र के देखने से भली भाँति प्रकट होती है।

नं० ३५—"शकुन्तला-पत्रलेखन" में लिखा है—"आपकी क्या अभिलाषा है?" इत्यादि। यह भी ठीक नहीं। शकुन्तला ने पत्र में यह लिखा था—"तुज्झण आणे हि अम्मं, मम उण मअणो दिवा विरं-तिंवि। णिक्किव! दाबइ बलिअं तुअ हत्थ मणोरहाए अंगाइं"। अर्थ—हे निर्दय! मैं तेरा हृदय नहीं जानती, पर बली काम दिन रात मुझे तपा रहा है। मेरा मनोरथ तेरे हाथ में है।

नं० ३७ "भरत"—इस टिप्पणी में भी बड़ी भूल हुई है। उसमें लिखा है कि—"बालपन में जब कि यह कण्व ऋषि के आश्रम में रहता था (तब?) सिंह के छौनों के साथ खेलता था।" यथार्थ बात यह है—गान्धर्व विवाह होने के बाद जब शकुन्तला को दुष्यन्त ने त्याग दिया तब शकुन्तला मरीचि ऋषि के आश्रम में रहने लगी। वहीं उसके गर्भ से भरत उत्पन्न हुआ। मरीचि ऋषि के ही आश्रम में सिंह छौनों के साथ भरत खेलता था। कण्व के आश्रम में कदापि नहीं। अभिज्ञान-शाकुन्तल का सातवाँ अङ्क देखिए।

नं० ५२ "राधा और उसकी सखी" के परिचय में लिखा है कि राधा के पति का नाम "अनया" था। क्या वह (अनया) स्त्री थी? सच तो यह है कि इस बात के लिखने से राधा के प्रेम में धब्बा लगता है। यह वाक्य यहाँ व्यर्थ लिखा गया है। इससे चित्र से कुछ सम्बन्ध नहीं।

नं० ६१ "कृष्णशिष्टाई" में यह नहीं बताया गया कि वे दोनों कौन हैं जो परस्पर नङ्गी तलवार लेकर लड़ने को तैयार हैं। लिखित टिप्पणी से इसका कुछ भी परिचय नहीं मिलता।

नं० ६७—तारा-का कुछ भी परिचय नहीं लिखा गया। "सरस्वती" और कविता-कलाप" में इस पर एक सुन्दर कविता छप चुकी है।

नं० ६९—वारिणी—इसका परिचय नहीं है।

नं० ७५—"मनोरमा"—इसका परिचय भी ठीक नहीं। "सरस्वती" और "कविताकलाप" में इसका नाम "तद्गतचित्ता" लिखा है। इसी के अनुकूल कविता भी छपी है। वस्तुतः यह "तद्गत-चित्ता" ही जान पड़ती है।

नं० ८०—भारत की सब जातियों की छवियाँ हैं। इसमें नम्बर लगा कर परिचय लिखना चाहिए था। कारण यह कि सर्वसाधारण को केवल भेष का ज्ञान होना असम्भव है।

इसी तरह इसमें और भी अनेक भूलें रह गई हैं। आशा है कि दूसरे संस्करण में भूलों का संशोधन कर दिया जायगा। हमने यह मित्रभाव से लिखा है। इसलिए सम्पादक को रुष्ट न होना चाहिए। भूलों के होते भी पुस्तक उपादेय है।

अक्षयवट मिश्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्जन्म के प्रतिवादियों से प्रार्थना।

कोई आधुनिक विद्वान् पुनर्जन्म को नहीं मानते। आत्मा को वे कतिपय रासायनिक पदार्थों का संमिश्रण मात्र समझते हैं। यदि रासायनिक पदार्थों का संमिश्रण ही आत्मा है—यदि कुछ रासायनिक पदार्थों के संयोग होने ही से चेतनता उत्पन्न हो जाती है, जिसे आत्मा कहते हैं—तो इस समय के वैज्ञानिक मानवसृष्टि क्यों नहीं करते?

जो लोग पुनर्जन्म नहीं मानते वे संस्कारों को मानने के लिए भी बाधित नहीं किये जा सकते। ऐसी अवस्था में व्यक्तिगत विलक्षणता होने का क्या कारण वे बतलावेंगे। सरस्वती की किसी संख्या में मास्टर मदन की जीवनी प्रकाशित हुई है। उस में लिखा है कि जो पुनर्जन्म नहीं मानते उन्हें मास्टर मदन के चरित्र पर विचार करना चाहिए। उन्हें सोचना चाहिए कि पाँच वर्ष के लड़कों को शुद्ध उच्चारण भी करना नहीं आता। परन्तु पाँच वर्ष की अवस्था वाला मास्टर मदन गाना गाता है—सो भी ऐसा वैसा नहीं, उसका गाना सुन कर बड़े बड़े गवैये चकित हो जाते हैं। यह अलौकिक शक्ति मास्टर मदन को कहाँ से मिली? इत्यादि। यदि रासायनिक संयोग से उत्पन्न पदार्थ-विशेष ही आत्मा है तो फिर मास्टर मदन में यह विशेषता क्यों? यदि संमिश्रण तारतम्य से यह विशेषता उत्पन्न होती है तो किसी किसी आत्मा को उत्पन्न करने के लिए रासायनिक संमिश्रण बुरे ढँग से क्यों किया जाता है? इसमें हेतु क्या है?

जो पदार्थ दो तीन पदार्थों के संयोग से उत्पन्न होते हैं उनमें उपादान के कारणीभूत पदार्थों के गुण-धर्म भी अवश्य ही पाये जाते हैं। सिर्फ़ उनके बाह्यरूप में ही परिवर्तन होता है, गुण-धर्म में नहीं। संमिश्रित पदार्थ में उन्हीं पदार्थों के गुण-धर्म पाये जाते हैं जिनके द्वारा वह संमिश्रित पदार्थ प्रस्तुत हुआ है। डाक्टर जब किसी को दवा देने लगते हैं तब इस नियम का उपयोग वे ख़ूब करते हैं। किसी रोगी को ज्वर आता है; साथ ही साथ खाँसी भी है और कब्ज़ की भी शिकायत है। ऐसे रोगी को यदि कोई डाक्टर दवा देगा तो प्रत्येक रोग की दवा एक में मिला देगा। ऐसा करने से यद्यपि उन दवाओं के रूप में परिवर्तन अवश्य हो जायगा, परन्तु गुण में नहीं। प्रत्येक दवा अपना अपना काम करेगी और जिन जिन रोगों की दवा मिश्रित की गई है वे ही रोग छूटेंगे, दूसरे नहीं। अस्तु। कहने का तात्पय यह है कि यदि रासायनिक पदार्थों का संमिश्रण ही आत्मा है तो उसमें चेतनता न आनी चाहिए, क्योंकि रासायनिक पदार्थ अचेतन हैं। अचेतन पदार्थों के संयोग से केवल उनके बाह्यरूप में परिवर्तन हो सकता है, गुण-धर्म में नहीं। अचेतन पदार्थों का संयोग चेतनता नहीं उत्पन्न कर सकता। चेतन पदार्थ उत्पन्न करने के लिए—संमिश्रित पदार्थ को चेतन बनाने के लिए—उपादान कारणों को भी चेतन अवश्य होना चाहिए। यदि सभी चेतन न हों तो उनमें से एक को तो अवश्य ही चेतन होना चाहिए। भारतवर्षीय कुछ दार्शनिकों ने भी आत्मा का चिरस्थायित्व नहीं स्वीकार किया। वे भी महाभूतों के संयोग से ही उत्पन्न आत्मा की चेतनता को मानते हैं। वे कहते हैं कि जिस प्रकार कई चीज़ें एक साथ सड़ाने से उनमें मादकता उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार पञ्च-महाभूतों के संयोग से चेतनता उत्पन्न हो जाती है। वही आत्मा है।

इस विषय में महाकवि कालिदास की उक्ति सुनने लायक़ है। उन्होंने इस बात को राजा दुष्यन्त से कहलाया है। राजा दुष्यन्त शापवश शकुन्तला को भूल गया है। उसे यह मालूम नहीं कि मेरी प्रियतमा शकुन्तला का मुझसे वियोग हुआ है। तोभी कभी कभी उसका चित्त उदास हो जाता है। राजा दुष्यन्त अपने चित्त की उदासीनता का कारण ढूँढ़ रहा है। वह कहता है:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकीभवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि।

मनोहर चीज़ों को देख कर और मीठे शब्दों को सुन कर सुखी मनुष्य भी कभी दुखी हो जाता है। इसका कारण यह है कि उसे, उस समय अपने पूर्व-जन्म के संस्कारों का स्मरण हो आता है। ऐसे संस्कार चिरस्थायी होते हैं और उनका स्मरण अबोधपूर्वक हो आता है।

उत्पत्ति-क्रम का यह नियम है कि जो पदार्थ संहत हैं, अर्थात् कुछ पदार्थों के संयोग से बने हुए हैं, वे परार्थ हैं। उनके द्वारा दूसरों की इष्टसिद्धि होती है। उनसे दूसरों की उद्देश-पूर्ति होती है। वैज्ञानिक लोग आत्मा को भी संहत पदार्थ मानते हैं। अतएव उसकी भी उत्पत्ति परार्थ ही होनी चाहिए। उस से भी दूसरों की इष्टसिद्धि होनी चाहिए। अब प्रश्न यह है कि आत्मा किन उद्देशों की पूर्ति के लिए उत्पन्न किया जाता है। स्वयं उसके तो कोई उद्देश हो ही नहीं सकते, क्योंकि वह संहत है। अतः यदि कोई पूछे कि आत्मा क्यों उत्पन्न हुआ तो जड़विज्ञानवादी इसका क्या उत्तर देंगे? एक बात और है। कतिपय पदार्थों के संयोग से जो उत्पन्न होता है वह कार्य-पदार्थ है। आत्मा भी जड़विज्ञानवादियों के मत से कतिपय पदार्थों के संयोग से उत्पन्न होता है; चाहे पञ्चभूतों के संयोग से कहिए, चाहे रासायनिक पदार्थों के संयोग से। अब जितने उत्पत्तिशील पदार्थ हैं उनकी कार्यरूप उत्पत्ति में कुछ न कुछ निमित्त अवश्य होता है; बिना निमित्त के कोई पदार्थ उत्पन्न नहीं होता। तो फिर आत्मा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी कुछ नियम बतलाने चाहिए। यदि उसकी उत्पत्ति के कोई नियम ही नहीं हैं तो फिर वह कार्य नहीं माना जा सकता। ऐसी दशा में पुनर्जन्म का अस्तित्व मानना ही पड़ेगा।

आशा है, पुनर्जन्म मानने वाले जड़विज्ञानवादी अपने सिद्धान्त को कुछ विस्तार से लिख कर समझाने की कृपा करेंगे।

ओझा चन्द्रशेखर शर्मा

कुछ शब्दों का इतिहास।

[लेखक—बाबू जगन्मोहन वर्म्मा]

प्राचीन काल की रीति-नीति और आचार-व्यवहार जानने के लिए दो साधन प्रधान हैं। एक तो पुराने खँडहरों का खोदना; दूसरे प्राचीन साहित्य-ग्रन्थों का मनन करना। भारतवर्ष या आर्य्य-जाति के प्राचीन इतिहास, आचार-व्यवहार आदि का बहुत कुछ पता वेदों के अवगाहन और पर्य्यालोचन से चल सकता है। वेदों से अधिक पुराना और कोई साहित्य-ग्रन्थ आज तक संसार में नहीं मिला है; आगे मिलेगा या नहीं, इसमें भी सन्देह है।

साहित्य-ग्रन्थों के पर्यालोचन से जैसे मनुष्य-जाति के इतिहास का पता चलता है वैसे ही शब्दों के इतिहास का भी कुछ न कुछ आभास मिलता है। हमारे यहाँ वैय्याकरणों ने शब्द को नित्य माना है। उनके मत में शब्द और अर्थ का सम्बन्ध नित्य है। पर न्याय-शास्त्र में यह सिद्ध करके दिखाया गया है कि शब्द नित्य नहीं हैं; उनका सम्बन्ध अर्थ के साथ कृत्रिम है और विवक्षक के अधीन है। हम, इस विषय पर, वाद-विवाद नहीं करना चाहते। केवल कुछ शब्दों के इतिहास की ओर विद्वानों का ध्यान दिलाने का साहस करते हैं।

संस्कृत-व्याकरणों में शब्दों के चार विभाग किये गये हैं—नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात। विशेषण और सर्वनाम को वैय्याकरणों ने नामही के अन्तर्गत माना है। ये चारों विभाग पाणिनिजी के पूर्व के हैं; और पाणिनिजी के ही व्याकरण में क्या, संस्कृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं सभी व्याकरणों में इन्हीं विभागों की कल्पना करके शब्द-शास्त्र पर विचार किया गया है।

उपसर्ग को पाणिनि ने अव्यय के अन्तर्गत और अव्यय को निपात माना है। निपात उस शब्द या नाम को कहते हैं जो धातु या प्रकृति से इस तरह बनता हो कि उसके बनने के नियम का पता वैय्याकरणों को न चला हो। वास्तव में बात यह है कि शब्दों में विकार और उनके अर्थों में विपर्य्यय सदैव किसी निर्धारित नियमानुसार ही नहीं होते, किन्तु लोगों के उच्चारण में असावधानी आदि कारणों से भी होते हैं। पर वैय्याकरण लोग पीछे से शब्दों के अवगाहन और पर्य्यालोचन से उनमें कुछ नियम देख कर उनकी व्यवस्था बाँधते हैं और जो शब्द उन नियमों के विरुद्ध मिलते हैं, अथवा जिनके नियमों को वे लोग नहीं समझ सकते, उनको वे निपात कहने लगते हैं। शाकटायन आदि के व्याकरण देखने से पता चलता है कि व्याकरण में विशेष कर के उन प्रत्ययों का विवरण है जो साधारणतः सबमें अथवा बहुतों में लगते हैं। शेष इने गिने जो शब्दों या धातुओं में लगते हैं वे पृथक् उणादि में संगृहीत कर दिये गये हैं; और जिनके प्रत्ययादि का पता नहीं चला है वे निपात माने गये हैं। इसी निपात के अन्तर्गत उपसर्ग भी हैं। पर वैय्याकरणों ने इनको इसलिए एक पृथक् विभाग में रक्खा है, क्योंकि ये धातुओं के साथ मिल कर आख्यात और नाम में शब्दों के अवयवभूत हो जाते हैं। उपसर्ग के विषय में, निरुक्त में, दो प्रधान प्राचीन आचार्यों का मत उल्लिखित है—एक तो शाकटायन का दूसरे गार्ग्य का। शाकटायन का मत तो यह है कि उपसर्ग कोई स्वतन्त्र अर्थ नहीं रखते; किन्तु नाम और आख्यात में, जिनके आगे वे लगते हैं, उनके अर्थों में कुछ विशेषता उत्पन्न कर देते हैं। गार्ग्य का मत है कि इनके अर्थ स्वयं ऊँचा, नीचा, भला, बुरा आदि हैं। ये बहुत प्राचीन काल से अव्यय से पृथक् माने गये हैं। इनके अर्थों में सदा से विवाद चला आता है। कोई इनको सार्थक और कोई निरर्थक कहता है।

इन्हीं उपसर्गों में उद्, अप, अव और उप भी हैं। अनुसन्धान से पता चलता है कि ये कभी विशेषण थे। इनके अतिशयार्थक (Comparative and Superlative) रूप भी खोजने से मिलते हैं और बहुतों का प्रयोग भी वेदों में मिलता है। इनके अतिशयार्थक रूपों में से एक रूप तो अब सर्वनाम में आता है, दूसरा विशेषण में। यह भी अनुमान होता है कि पहले 'र' और 'म' भी 'तर' और 'तम' की तरह अतिशयार्थक प्रत्यय थे और शब्दों में लगते थे। हम पहले इनके रूप नीचे लिखते हैं; फिर इनके अर्थों पर विचार करेंगे:—

साधारण (Positive)	अतिशयार्थक (Comparative)	अतिशयार्थक (Superlative)
उद्	उत्तर	उत्तम
अप	अपर	अपम
अव	अवर	अवम
उप	उपर	उपम

यही नहीं, किन्तु 'अधः' जो अव्यय है उसका भी रूप, अतिशयार्थक प्रत्यय 'र' और 'म' के लगने से, 'अधर' और 'अधम' होता है।

अब, सबसे पहले 'उद्' के रूपों का प्रयोग देखिए। उद् का अर्थ निरुक्त में है:—"न्यवेति विनिग्रहार्थीयो उदित्येतयोः प्रातिलोम्यम्"। 'नि' और 'अव' विनिग्रहार्थक हैं, और 'उद्' इनका उलटा है। अर्थात् 'नि' और 'अव' का अर्थ नीच, और 'उद्' का अर्थ 'उच्च' है। अब 'उद्', 'उत्तर' और 'उत्तम' का प्रयोग देखिए:—

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥

इस एकही मन्त्र में 'उद्', 'उत्तर' और 'उत्तम' ये तीनों पद विशेषण रूप से आये हैं और क्रमशः 'वयं' 'स्वः' और 'सूर्य्यं' के विशेष्य हैं।

इसी 'अप', 'अपर' और 'अपम' पर विचार कीजिए। 'अप' का प्रयोग वेदों में नहीं है। केवल 'अपहः' शब्द में 'अप' शत्रु के अर्थ में आता है, जिसका अर्थ 'शत्रुनाशक' है। पर 'अपर' का अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक प्रयोग होता है। गीता में लिखा है:—'अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः'। 'अपम' का प्रयोग ऋ० वेद में देखिए:—'भागोऽनाशोऽश्चिदविताऽपमस्य चित्' ऋ० १०।३९।३। यहाँ पर यह भी कह देना अनुचित न होगा कि 'प' भी विशेषण ही जान पड़ता है। उसके अतिशयार्थक रूप 'पर' और 'पम' थे; पर धीरे धीरे वैदिक काल ही में, या शायद कुछ पहले ही, 'प' का प्रयोग उठ गया था। पर अब तक 'पार' शब्द में वह विशेषणवत् देख पड़ता है। 'आर' शब्द का अर्थ 'प्रान्त भाग और दूर है' है। 'इषुधिस्तवारेऽस्मिन्निधेहि' (यजु० अ० १६।१२) और 'आरे बाधस्व दुच्छुनाम्' (यजु० अ० १९। ३८) में 'आर' शब्द का प्रयोग मिलता है। वेददीपिका में महीधराचार्य्य ने इसका अर्थ 'आरे दूरे' किया है। इसी 'आर' शब्द में 'प' और 'अव' ये दो विशेषण लग कर 'पार' और 'अवार' शब्द बनते हैं। 'प' और 'अव' के अतिशयार्थक (Comparative) रूप 'पर' और 'अवर'—'उदीरतामवर उत्परासः उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः' (ऋ० १०। १५। १) में प्रत्युक्त मिलते हैं जिनका विशेष्य 'पितरः' है। इनके दूसरे (Superlative) रूप 'पम' और 'अवम' होते हैं, जिनमें 'पम' तो वैदिक काल के पहले ही अप्रयुक्त हो गया था। उसके स्थान में 'परम'—'पर' (Comparative) का अतिशयार्थक (Superlative) रूप रह गया था। 'परम' और 'अवम' दोनों का प्रयोग—'याते ऊतिरवमा या परमा या मध्यमेन्द्र शुष्मिन्नस्ति' (ऋ० ६।२५।१) में है और अवमा और परमा दोनों का विशेष्य 'ऊतिः' पद भी उसी अर्थ्य में है। 'प' का प्रतिलोम 'अप' और 'व' का प्रतिलोम 'अव' था। 'प' और 'व' के अतिशयार्थक 'पर' और 'वर' का प्रयोग तो अब तक मिलता है; पर 'प' और 'व' तथा 'पम' और 'वम' वैदिक काल ही में अप्रयुक्त हो गये थे और 'पम' के स्थान में 'परम' उसी काल में प्रयुक्त हो चला था और अब तक होता है। इसी प्रकार 'अप' और 'अव' भी अप्रयुक्त हो चले थे; केवल उनके अतिशयार्थक 'अपर'—'अवर' और 'अपम'—'अवम' वैदिक काल में प्रयुक्त होते थे। 'अपम' का प्रयोग तो शायद पीछे ब्राह्मण-काल में जाता रहा; पर 'अवम' का प्रयोग रह गया। इसके अनुमान, ऐतरेय—ब्राह्मण में—"देवानां निधिः परमोऽग्निश्चावमः" में मिलने से होता है। 'अपर' और 'अवर' बहुत पीछे तक विशेषण रहे।

'उप' का प्रयोग—'उपोपम परामृशमामेदेषि मन्यथाः (ऋ० १।१२६। ७) में, * 'उपर' का पूर्वासः उपरासः इन्दवः' (ऋ० ९।७७।३) में और 'उपम' का 'पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि' (ऋ०५।३।३) में मिलता है।

'अधः' और उसके अतिशयार्थक 'अधर' और 'अधम' के प्रयोग वेदों में बहुत हैं।

इन शब्दों के अपने अर्थों से च्युत होने और इनके इतिहास पर पूर्ण विचार न करने से कई करणों ने साधारण (Positive) रूप को उपम और अव्यय माना है, तथा अतिशयार्थक (Comparative) को सर्वनाम में गिनाया है।

इसी प्रकार और भी बहुत से शब्द ऐसे हैं जिनके ऊपर एतद्देशीय विद्वानों को विचार करने तथा उनके इतिहास की खोज करने की आवश्यकता है।

अलौकिक क्षमा।

छप्पय।

भारत में जब हुआ महाभारत-रण पूरा।
कृष्ण-कृपा ने किया पाण्डवों का प्रण पूरा॥
भीष्म, द्रोण, गुरु, कर्ण, गये मारे कौशल से।
हुआ सर्व-संहार, बचे जो भागे दल से॥
चुने चुने इस देश के सुभट सभी स्वाहा हुए।
शौर्य, वीर्य, विक्रम, विभव, भस्म-शेष हा हा हुए॥ १॥

---

* हिन्दी भाषा के कुछ लेखक महाशय 'उपरोक्त' को अशुद्ध कह कर उसके स्थान में 'उपर्युक्त' शब्द का प्रयोग करते हैं। जब स्वयं वैदिक भाषा में 'उपर' शब्द का प्रयोग देखा जाता है तब उनका यह कथन चिन्तापेक्ष्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्दयता से हृदय फाड़ कर दुःशासन का।
पिया भीम ने रक्त, किया अपने ही मन का॥
दुर्योधन भी गिरा, चोट खा विकट गदा की।
धृतराष्ट्र सब मरे, एक भी रहा न बाक़ी॥
पूरा कौरव-कुल को मिला कृष्णा के अपमान का।
अत्याचार सदा हुआ करता गाहक जान का॥ २॥

अश्वत्थामा द्रोण-तनय ने सोचा तब यों।
"व्यर्थ बिताना समय उचित है मुझे न अब यों॥
बदला लूँगा में ज़रूर, बस छिप कर छल से।
रहने दूँगा नहीं शत्रु को कभी कुशल से॥
आप दीन दर दर फिरें अरि सुख से सोया करें।
अनुकरणीय न नीति यह मूढ़ मार्ग यह अनुसरें॥ ३॥

धर्मराज ने चाल चली, स्वर अदल-बदल कर।
पूज्य पिता के प्राण लिये कुत्सित कौशल कर॥
ऐसे ही जब वीर कर्ण था नीचे रथ के।
तब निरस्त्र पर चले बाण तीखे पारथ के॥
युद्धनीति यह कौन थी? किया शिखण्डी को खड़ा।
ओट से चोट कर पार्थ पितामह से लड़ा॥ ४॥

किया घोर अन्याय भीम ने गदा-युद्ध में।
किन्तु किसी ने कहा न कुछ उसके विरुद्ध में॥
मैं ही फिर क्यों धर्म-निरत बन रुका रहूँगा?
क्यों न क्रूर-कर्तव्य-कर्म की गैल गहूँगा?
नीति-नियम का तभी तक पथ ग्रहणीय यथार्थ में।
जब तब लोगों के नहीं बाधा पड़ती स्वार्थ में॥ ५॥

सम्मुख लड़ कर नहीं विजय * से विजय मिलेगी।
भीम भीम के गदा घात से मही हिलेगी॥
सेना भी है साथ नहीं, एकाकी हूँ मैं।
जलता इससे आज यही चालाकी हूँ मैं॥
साहस-सहित निशीथ में कर प्रवेश, सोते समय।
कृष्णा को विधवा बना, जय पाऊँ, हो अरि-क्षय"॥ ६॥

ऐसी मन में ठान काम भीषण करने को।
अश्वत्थामा चले मारने या मरने को॥
अधिक अँधेरी अर्धरात्रि का समय घोर था।
सन्नाटा संग्रामभूमि में सभी ओर था॥

* विजय = अर्जुन।

जो न सुरों से भी दबे, उनके सिर पर पैर धर।
अशिव नाद करतीं शिवा, बीच बीच में घोरतर॥ ७॥

इसी तरह चुपचाप पाप से मन में शङ्कित।
धीरे रखते पैर कूट-कौशल करि अङ्कित॥
अश्वत्थामा पहुँच गये पाण्डव-सीमा पर।
देखा भैरव-रूप एक प्रहरी प्रचण्डतर॥
फिरे सब कहीं, पर नहीं पाई राह प्रवेश की।
तब वे स्तुति करने लगे पार्थ-नियुक्त महेश * की॥ ८॥

पशुपति ने होकर प्रसन्न पथ दिया उन्हें जब।
बढ़े विप्र-वर और अधिक उत्तेजित हो तब॥
सैनिक दल से निकल गये सकुशल भीतर तक।
समर-थके थे चूर सभी सोते सुखपूर्वक॥
धृष्टद्युम्न मिला प्रथम पाण्डव-पटगृह-द्वार पर
छाती पर चढ़ कर उसे मार, चले आगे निडर

देखे भीतर पाँच वीर शय्या पर सोते।
आकृति से थे ज्ञात पाँच पाण्डव ही होते॥
क्रोध-अन्ध हो, काट कन्ध से उन सब के सिर।
अश्वत्थामा शीघ्र लौट आये बाहर फिर॥
एक हाथ में खड्ग खर खुला, अन्य में सिर लिये।
विकट-वेष जल्लाद से चले बालहत्या किये॥ १०॥

शोक-शल्य से शिथिल विवश विषधर सा क्रोधन।
भग्न-मनोरथ पड़ा जहाँ पर था दुर्योधन॥
अश्वत्थामा गये वहाँ पर खुशी मनाते।
जान मनोरथ पूर्ण, न फूले अङ्ग समाते॥
पाँचों सिर देकर कहा—"बदला मैंने ले लिया।
सोते पाण्डव मार कर कृष्णा को विधवा किया"॥ ११॥
हो प्रसन्न धृतराष्ट्र पुत्र ने करके करगत।
देखे मुख, थे पाँच पाण्डवों के बालक हत॥
विह्वल होकर कहा—"हाय! यह क्या कर डाला!
रहा न कुल में आज पिण्ड-जल देनेवाला!!

* जिस दिन यह घटना हुई उस दिन कृष्णचन्द्र पाँचों पाण्डवों को डेरे से कहीं ले गये थे। अर्जुन, जाते समय, चारों तरफ़ पाशुपत अस्त्र को रक्षकरूप से स्थापित कर गये थे। पाशुपत अस्त्र के देवता शिव हैं। इसी लिए यहाँ पर उस अस्त्र के अधिष्ठाता महेश का उल्लेख किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा भी तुमने नहीं वहाँ वार करते समय।
इनके मरने से मुझे महा कष्ट मरते समय !!" ॥ १२ ॥
द्रुपदसुता ने इधर सबेरे उठ कर देखा।
पुत्रों के पट-भवन पास थी शोणित-रेखा ॥
वह घबराई हुई गई तब भीतर उसके।
देखा दारुण दृश्य पुत्र-हत्या का घुस के ॥
हो अचेत, कुछ काल के लिए भूल कर सब व्यथा।
'हा !' कह धरती पर गिरी निरवलम्ब लतिका यथा ॥ १३ ॥
आया जब कुछ चेत, पार्थ-पत्नी तब उठ कर।
पाँच पाण्डवों सहित कृष्ण को देख वहीं पर ॥
अपहृत-मणि पन्नगी सदृश आकुल फुफकरती।
इस प्रकार विष लगी उगलने, धैर्य न धरती ॥
"कृष्ण, कृष्ण, यह क्या हुआ, कृष्ण के सुत हत हुए।
सोते में सिंही-सुअन गीदड़ से आहत हुए !! ॥ १४ ॥
यदि ये होते निहत युद्ध में, सोच न होता।
आप भेजती समर बीच, सङ्कोच न होता ॥
क्षत्रिय का कर्तव्य जान कर मैं चुप रहती।
वीर पुत्र अभिमन्यु-मृत्यु सम वह भी सहती ॥
किन्तु इस तरह पुत्रवध, प्रभो ! सहा जाता नहीं।
घातक से बदला लिये बिना रहा जाता नहीं ॥ १५ ॥
अर्जुन थे, गाण्डीव धनुष था, अस्त्र सभी थे।
भीम, नकुल, सहदेव, धर्म * के शस्त्र सभी थे ॥
आप काल के काल रहे रखवारे प्यारे।
फिर भी मेरे पुत्र गये हा ! ऐसे मारे ॥
बस, या तो उस नीच का शीश काट ला दीजिए।
या अपने हाथों अभी मेरी हत्या कीजिए" ॥ १६ ॥
पुत्रों का वध देख, हुए सागर-से विचलित।
अर्जुन ने तब कहा, क्रोध से हो उत्तेजित ॥
"भद्रे, अर्जुन नहीं मरा, गाण्डीव चाप है।
साथ कृष्ण हैं, विश्वविदित जिनका प्रताप है ॥
लोकत्रय में हो कहीं हत्याकारी इस घड़ी।
उसे बचा सकते नहीं, स्वयं ईश भी इस घड़ी ॥ १७ ॥
उसे पकड़ कर आज, अभी, मैं ले आऊँगा।
हो चाहे यमराज, अभी तत्क्षण जाऊँगा ॥

धरो धीर, यह वीर-प्रतिज्ञा विफल न होगी।
कौशल से उस नीच शत्रु की कुशल न होगी ॥"
यों कृष्णा को शान्त कर, अस्त्र-शस्त्र अपने लिये।
"चलो सखे," कह, कृष्ण को लेकर अर्जुन चल दिये ॥ १८ ॥
अश्वत्थामा उधर प्रतिज्ञा ऐसी सुन कर।
प्राण बचाने के विचार से भागे रथ पर ॥
अर्जुन ने भी किया शत्रु का पीछा ऐसे।
गज का पीछा करे केसरी भूखा जैसे ॥
किया गरुड़ ने कालिया * का पीछा, या रोष से।
या हर ने रवि † का किया पीछा, उनके दोष से ॥ १९ ॥
प्यासे रथ के अश्व थके, गिर पड़े, देख कर।
द्रोणतनय ने छोड़ दिया ब्रह्मास्त्र विजय पर ॥
अर्जुन ने भी उसे शान्त करने को सत्वर।
उसी अस्त्र का कर प्रयोग छोड़ा खरतर शर ॥
अस्त्रों का आकाश में छाया तेज असीम तब।
प्रलय समझ शङ्कित हुए लोकत्रय के लोग सब ॥ २० ॥
क्या पावक ने कोप सृष्टि पर प्रकट किया है।
अथवा हर ने नयन तीसरा खोल दिया है ॥
या यम का यह कालदण्ड है चला गगन में।
इस प्रकार सब लगे तर्क करने निज मन में ॥

* धर्मराज—युधिष्ठिर।

* नाग अपनी रक्षा के लिए पारी पारी से गरुड़ को नाग अर्पण किया करते थे। जब कालिया नाग की पारी तब वह गरुड़ का आहार बन कर समय पर उपस्थित न हुआ यही नहीं, किन्तु एक बार गरुड़ के लिए अर्पित हुए नाग वह आप ही खा गया। इस पर गरुड़ ने उसका पीछा किया और वह प्राण लेकर भागा (भागवत, दशम स्कन्ध, देखो)

† इसकी कथा यों हैं—विद्युन्माली राक्षस ने शिव प्रसन्न कर एक ऐसा विमान पाया जिसका प्रकाश सूर्य कम न था। वह राक्षस उसी विमान पर बैठ कर सूर्य के पीछे घूमने लगा। रात को भी दिन ही बना रहने लगा इस पर सूर्य ने कोप कर अपने असीम असह्य तेज से को भस्म कर दिया। राक्षस रोता हुआ शिव के पास तब शिव कुपित होकर सूर्य के पीछे दौड़े और सूर्य भागते वाराणसी में आकर एक कूप में गिर पड़े। लोलार्क नाम से विख्यात हुए (काशीखण्ड देखो)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंकर्तव्यविमूढ़ तब भक्त मित्र को देख कर।
बोले यादवकुलतिलक—"क्या चिन्ता है वीरवर ॥ २१ ॥
द्रोणतनय संहार अस्त्र का नहीं जानता।
अस्त्र चला कर, उसे खींचना नहीं जानता ॥
छोड़ा है ब्रह्मास्त्र, प्राण संकट पड़ने पर।
यही उसे अवलम्ब एक था यों भिड़ने पर ॥
अब तुम दोनों खींच लो बाण विकट ब्रह्मास्त्र के।
सब रहस्य तुमको विदित हैं अर्जुन इस शास्त्र के" ॥ २२ ॥
अर्जुन ने तत्काल अस्त्र को खींचा ऐसे।
गुणी गारुड़िक नागराज को खींचे जैसे ॥
देख व्यर्थ ब्रह्मास्त्र कृष्ण अर्जुन के आगे।
अश्वत्थामा, हो निराश जीवन से, भागे ॥
चाहे जैसा वीर हो, है कुकर्म-कलुषित अगर।
कभी ठहर सकता न वह, अवसर पर होकर निडर ॥ २३ ॥
अर्जुन ने कुछ दूर दौड़, गुरुसुत को पकड़ा।
विवश किया, निज पट्टवस्त्र से रथ में जकड़ा ॥
अपने आगे विप्र-रूप का देख निरादर।
विचलित हो ब्रह्मण्य देव ने कहा व्यङ्ग्य कर ॥
"अर्जुन, अब तुम क्यों नहीं इस ब्राह्मण को मारते।
प्रण को अपने भूल क्या धर्म-अधर्म विचारते ॥ २४ ॥
इसने सोते समय बालकों को मारा है।
यह न क्षमा के योग्य, निर्दयी हत्यारा है ॥
इसका प्रायश्चित्त इसे करना ही होगा।
यही न्याय है वीर, इसे मरना ही होगा ॥
दुष्ट, आततायी, अधम, जिसको इष्ट अधर्म्म है।
वह कोई भी क्यों न हो, उसे मारना धर्म्म है" ॥ २५ ॥
धर्म्म-परीक्षा कृष्ण ले रहे थे अर्जुन की।
किन्तु न इससे हुई बुद्धि कुछ विचलित उनकी ॥
बोले अर्जुन—"नाथ, लाख दोषी हो ब्राह्मण।
मारूँगा मैं नहीं उसे यह है मेरा प्रण ॥
मार न मैं सकता इसे है मेरा गुरु-पुत्र यह।
केवल कृष्णा के निकट ले जाऊँगा इस तरह" ॥ २६ ॥
कृष्णचन्द्र चुपचाप चले सुन इस उत्तर को।
आये पल में वायु-वेग से घोड़े घर को ॥
रथ से उतरे, साथ लिया बन्दी गुरुसुत को।
पृथा-पुत्र यों चले, किये आगे अच्युत को ॥

पहुँचे कृष्णा के निकट भीम, युधिष्ठिर थे जहां।
माद्रीसुत सात्यकि-सहित सब अवनत-सिर थे जहां ॥ २७ ॥
देख द्रौपदी दीन दुखी बन्दी ब्राह्मण को।
भूल गई निज पुत्र-शोक, दुख, दारुण प्रण को ॥
करुणा से वह भाव भयानक पलट गया यों।
हो प्रकाश से अन्धकार सब उलट गया ज्यों ॥
या सोतों से कूप की सकल शुष्कता मिट गई।
या वर्षा-ऋतु-व्योम में लगी वायु बहने नई ॥ २८ ॥
धर्मराज के योग्य धर्म-पत्नी तब बढ़ कर।
बोली वचन उदार उच्च भावों से सुन्दर ॥
"छोड़ो छोड़ो इन्हें, न हैं ये इसके लायक।
विप्रवर्य हैं पूजनीय त्रिभुवन के नायक ॥
इनकी ऐसी दुर्दशा नाथ, न करना चाहिए।
इनके कोप-कृशानु से सबको डरना चाहिए ॥ २९ ॥
स्वयं विष्णु ने इन्हें देव अपना माना है।
ब्राह्मण सबका सहज पूज्य जग ने जाना है ॥
फिर यह तो प्रत्यक्ष आपके गुरुसुत ही हैं।
जिन से सीखा धनुर्वेद, यह खड़े वही हैं ॥
गुरुकुल का अभिशाप मत अपने ऊपर लीजिए।
बन्धन खोल प्रणाम कर क्षमा-प्रार्थना कीजिए ॥ ३० ॥
इनकी माता सती कृपी अब भी जीती हैं।
यद्यपि उन पर घोर आपदायें बीती हैं ॥
उनका इनको आप जीवनाधार मानिए।
द्रोणदेव का इन्हें आप अवतार जानिए ॥
यदि मुझ सम सुत-शोक से दुखी कृपी रोई कहीं।
तो अनर्थ हो जायगा, कभी कुशल कुल की नहीं ॥ ३१ ॥
यदपि इन्होंने पुत्र हमारे मारे, तो भी।
किया कुकर्म कठोर क्रोध के मारे, तो भी ॥
इनका वध है वृथा, न उससे पुत्र मिलेंगे।
फटे हृदय के घाव न उससे नाथ सिलेंगे ॥
फिर क्यों अज्ञों की तरह ब्राह्मण का वध कीजिए।
अपनी उज्ज्वल कीर्ति को कलुष-कालिमा दीजिए ॥ ३२ ॥
क्षमा करो बस क्षमा, क्षमा क्षत्रिय-भूषण है।
क्षमा-भाव स्वर्गीय, देवगण का लक्षण है ॥
मैं करती हूँ क्षमा, क्षमा ईश्वर भी कर दे।
हरले इनके दोष, भले भावों को भर दे ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो कुछ होनी थी हुई, ऐसा ही संयोग था।
कौन टाल सकता इसे यही भाग्य का भोग था" ॥ ३३ ॥
यों कह, बन्धन खोल दिये फिर उस देवी ने।
"धन्य धन्य द्रौपदी"—कहा उस समय सभी ने।
धर्मराज भी तुष्ट हुए कृष्णा की कृति से।
होता यथा प्रसन्न जीव निज शुद्ध प्रकृति से ॥
गद्गद पुलकित कृष्ण के मुख से शब्द यही कढ़े।
"घर घर ऐसी देवियाँ हों, भारत का यश बढ़े" ॥ ३४ ॥
प्यारे पाठक ख़ूब ध्यान से इसको पढ़ लो।
यह अति उत्तम चित्र हृदय-दर्पण में मढ़ लो ॥
इष्ट, मित्र, परिवार, पड़ोसी, जिसको पाओ।
उसको, बन आदर्श, क्षमा का पाठ पढ़ाओ ॥
"अन्त भले का हो भला"—यह प्रवाद मन में धरो।
करे बदी जो आपसे उससे भी नेकी करो ॥ ३५ ॥

रूपनारायण पाण्डेय—(कमलाकर)

रघु का दिग्विजय।

किसी देश और किसी समय के मनुष्यों की सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक अवस्था और उनके आभ्यन्तरिक भावों के जानने में उस समय के ग्रन्थकारों और कवियों के ग्रन्थों और काव्यों से बहुत सहायता मिलती है। सच्चे कवि अपने समय के प्रतिनिधिस्वरूप होते हैं और उनके काव्य समाज के चित्त के चित्रपट का काम देते हैं। उनके काव्यों में सामयिक समाज आदि का प्रतिबिम्ब देख पड़ता है। कविकुलगुरु कालिदास भी अपने समय के प्रतिनिधिस्वरूप हैं। उनके काव्यों से भी उस समय की भारतवर्ष की सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक स्थिति का—मनुष्यों के परिधेयवस्त्रालङ्कार तथा विद्या-प्रचार आदि का—बहुत कुछ पता चलता है।

संस्कृतभाषा में रघुवंश एक अपूर्व काव्य है। वह कविकुलकमलदिवाकर कालिदास की मधुरिमामयी लेखनी का एक अत्यन्त मधुर फल है। कालिदास ने रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में दिनकरकुलके राजा रघु के दिग्विजय का वर्णन किया है। उस उस समय के भौगोलिक ज्ञान का पता लगता है मालूम पड़ता है, उस समय लोग भारतवर्ष सब प्रदेशों से अच्छी तरह परिचित न थे। मध्य प्रदेश का उन्हें बहुत कम ज्ञान था। यह अधोवर्णित रघुदिग्विजय से स्पष्ट विदित होती है

"गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम्"—इस नियम के अनुसार महाराज दिलीप ने वृद्ध होने पर अपने प्रियपुत्र रघु को राज्यभार सौंप का वानप्रस्थाश्रम ग्रहण किया। राजा रघु ने राज्य पाका भारतवर्ष की प्राचीन रीति के अनुसार, शरत् काल आने पर, दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया। रघु पहले उत्तर-कोशल होते हुए पूर्वसागर की तरफ़ गये। वहाँ वे तालीवनश्यामल समुद्रतट के समीप जा पहुँचे। सुह्मदेशवासियों के साथ वहाँ इनका एक बड़ा युद्ध हुआ। वर्तमान समय में गोंडा, बहराइच के ज़िले उत्तर-कोशल के अन्तर्गत हैं और पश्चिमी बङ्गाल के दीनाजपुर आदि नगर प्राचीन सुह्मदेश माने जाते हैं। इसकी राजधानी प्राचीन ताम्रलिप्ति-नगर था। आधुनिक तामलुक को प्राचीन ताम्रलिप्ति कहते हैं। प्राचीन समय में तामलुक समुद्र के किनारे एक बन्दरगाह था। आज कल वह समुद्र से दूर हटा हुआ है।

सुह्मदेश को विजय कर रघु ने वङ्गदेश के राजाओं पर चढ़ाई की। पूर्वी बङ्गाल को प्राचीन समय में वङ्गदेश कहते थेः—

"आपादपद्मप्रणताः कलमा इव ते रघुम्।
फलैः संवर्द्धयामासुरुत्खातप्रतिरोपिताः" ॥

वङ्गदेशीय नृपति युद्ध में हार कर रघु के पैरों पर आकर झुके। कलमीधान जिस तरह एक बार उखाड़ कर फिर रोपने पर ख़ूब उपजता है उसी तरह राजा लोगों ने भी एक बार राज्यच्युत होकर फिर सिंहासन पाने पर रघु को अधिकतर धन दिया। उक्त श्लोक से जान पड़ता है कि धान रोपने की यह प्रथा तब भी प्रचलित थी। वङ्गदेश को विजय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रघु ने गङ्गा के बीच के द्वीपों में जयस्तम्भ गाड़ दिया:—"निचखान जयस्तम्भान् गङ्गाश्रोतोन्तरेषु च"। सागर-सङ्गम को छोड़ कर अब और कोई द्वीप गङ्गा में नहीं। मालूम पड़ता है, पहले गङ्गा का पाट बहुत चौड़ा था। सम्भव है, उस समय छोटे छोटे द्वीप गङ्गा में रहे हों।

वङ्गदेश से राजा रघु हाथियों का पुल बना कर, कपिशा नदी को पार करके उत्कल देश को गये। आधुनिक कोसी नदी कालिदास की कपिशा नदी है और आधुनिक उड़ीसा प्राचीन उत्कलदेश है। उत्कलदेश के विषय में कालिदास ने कुछ नहीं लिखा। कालिदास के समय में यदि जगन्नाथजी वर्तमान होते तो अवश्य वे उनके विषय में कुछ लिखते। हंटर साहब लिखते हैं:— "Jagannath makes his first appearance in the year A. D. 318" अर्थात् जगन्नाथजी का पता सन् ३१८ ई० से ही चलता है।

उत्कलराज्य से रघु ने कलिङ्गदेश की ओर प्रस्थान किया। बङ्गाले की खाड़ी के किनारे महानदी और गोदावरी नदी के बीच का देश कलिङ्गदेश कहलाता था। आज कल इसको उत्तरी सरकार कहते हैं। रघु ने कलिङ्ग को विजय करके महेन्द्र-पर्वत के उच्च शिखर पर अपना प्रतापचिह्न स्थापित किया। महेन्द्रपर्वत विष्णुपुराण में कहे गये सात कुल-पर्वतों में से है:—"महेन्द्रो मलयः सह्यः शक्तिमानृक्षपर्वतः। विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः"। यह पर्वत घाटगिरि और विन्ध्याचल के बीच में है।

तदनन्तर रघु समुद्र के किनारे किनारे दक्षिण दिशा को विजय करने के लिए गये। कावेरी नदी को पार करके चतुरङ्गिणी सेना के साथ मलय-पर्वत पर उन्होंने वास किया। मलयपर्वत भी ऊपर कहे गये सात कुल-पर्वतों में से है। सम्भवतः मलयपर्वत घाटगिरि का दक्षिणी भाग है और मैसूर राज्य के पश्चिम में स्थित है। "स्तनौ इव दिशस्तस्याः शैलौ मलयदर्दुरौ"—कालिदास ने इसमें मलय और दर्दुर पर्वत को दक्षिणदिशा के दो स्तन बतलाये हैं। इससे मालूम पड़ता है कि मलय घाटगिरि के पश्चिम में और दर्दुर उसके पूर्व में है।

इसके उपरान्त पाण्ड्यदेश के राजाओं के साथ रघु का घोर युद्ध हुआ। पाण्ड्यदेश सेतुबन्ध-रामेश्वर के उत्तर में कहा जाता है। वहाँ के राजा ने युद्ध में हार कर ताम्रपर्णी नदी और महासागर में उत्पन्न मुक्ताराशि रघु को अर्पित की। आज कल ताम्रपर्णी को ताम्बरवारी कहते हैं, जो तिनवल्ली ज़िले से होकर बहती है:—

ताम्रपर्णीसमेतस्य मुक्तासारं महोदधेः।
ते निपत्य ददुस्तस्मै यशः स्वमिव सञ्चितम्॥

तदुपरान्त महाराज रघु ने सह्य पर्वत को पार कर केरल-राज्य में प्रवेश किया। सह्य पर्वत भी ऊपर कहे गये सात कुल-पर्वतों में से है। यह अब तक सह्याद्रि नाम से विख्यात है और नीलगिरि-पर्वत से मिला हुआ है। केरल आधुनिक कनारा और मालावार प्रदेश है।

इसके अनन्तर रघु ने पारस्यदेश को विजय करने के लिए स्थल-मार्ग से प्रस्थान किया—"पारसीकांस्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना" मल्लिनाथ ने "स्थलवर्त्मना" पर लिखा है:—"नतु निर्दिष्टेनापि जलपथेन समुद्रयानस्य निषिद्धत्वादिति भावः"। इससे मालूम होता है कि मल्लिनाथ की राय में कालिदास के समय समुद्रयात्रा निषिद्ध समझी जाती थी। फारिस के रहने वालों को पारसीक कहते थे और कदाचित् भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिम की सीमा में रहनेवाले यवनों की भी पारसीक ही संज्ञा थी। पारस्याधिपति को युद्ध में जीत कर रघु ने हूण-राज्य में अपनी विजयपताका गाड़ी। काश्मीर के समीप के प्रदेश उस समय हूण-राज्य में सम्मिलित थे। तदनन्तर कम्बोजदेश के राजा ने भी रघु के प्रबल पराक्रम के सामने सिर झुकाया। काम्बोजदेश सम्भवतः हिन्दूकुश-पर्वत के पास था और तिब्बत तथा लदाख़ तक फैला हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरह यवन-राज्य को भी जीत कर राजा रघु ने हिमालय-पर्वत होते हुए कामरूप की तरफ़ कूच किया। कामरूप प्राचीन समय में एक बड़ा भारी राज्य था। यह राज्य करतोया नदी से लगा कर आसाम तक फैला हुआ था। इसकी प्राचीन राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर थी, जो ब्रह्मपुत्र के किनारे बसी हुई थी। कामरूप यद्यपि बङ्गाल के बहुत निकट है, तथापि न जाने क्यों रघु जब बङ्गाल में थे तभी उस पर चढ़ाई न की? प्राग्ज्योतिष से महाराज रघु स्वदेश को लौट पड़े। दिग्विजय से लौट कर रघु ने विश्वजित् नाम का एक यज्ञ किया जिसका वर्णन रघुवंश के पाँचवें सर्ग में है।

जनार्दन भट्ट।

ब्रिटिश गायना में भारतवासी।

संसार में ऐसा एक भी स्थान नहीं जहाँ हिन्दुस्तानी न पहुँचे हों। किसी स्थान में कम, किसी में अधिक; पर वे हर जगह पाये जाते हैं। ब्रिटिश गायना में अनुमान डेढ़ लाख के हिन्दुस्तानी हैं। ब्रिटिश गायना दक्षिणी अमेरिका के पूर्वोत्तर कोण में समुद्र के किनारे है। इसकी लम्बाई-चौड़ाई इँगलैंड के बराबर है। किन्तु बस्ती केवल समुद्र के किनारे ही किनारे है। इसके अन्तरङ्ग में सघन वन है। ब्रिटिश गायना की मुख्य राजधानी जार्ज टाउन है। जार्ज टाउन के सिवा बरबीस और एँसै-क्विबो दो और छोटे छोटे शहर हैं। जार्ज टाउन साफ़ सुथरा और बड़ा शहर है। इसकी सड़कें सीधी, चौड़ी, सुन्दर और सर-सब्ज़ हैं। प्रत्येक मुख्य सड़क में दोनों ओर पत्थर के 'फुटपाथ' (Footpath) हैं। बीच में तालाब हैं, जिनमें सुन्दर कमल के फूल बड़ी ही शोभा देते हैं। राजकीय इमारतें सब बड़ी बड़ी हैं और पत्थर की हैं। शहर में टाउनहाल, बैंकघर, बाज़ार इत्यादि इमारतें बहुत बड़ी हैं। उनमें अच्छी कारीगरी की गई है। यहाँ पर दुनिया के प्रायः सब देशों के मनुष्य रहते हैं। चीनी, हबशी, अँगरेज़, हिन्दुस्तानी, पोर्तुगीज़ इत्यादि सभी यहाँ हैं। मुख्य बस्ती हिन्दुस्तानियों तथा काले आदमियों की है। हमारा सरोकार इस लेख में विशेष कर हिन्दुस्तानियों ही से है। इसलिए हम अन्य जातियों के रहन-सहन का वर्णन यहाँ पर न करेंगे। १८४५ ईसवी से यहाँ हिन्दुस्तानी लोगों का आना आरम्भ हुआ। हिन्दुस्तानी यहाँ पर प्रायः कुली बन कर आते हैं। ये लोग कलकत्ते से कुली-जहाज़ में भर कर भेजे जाते हैं। बनारस, कानपुर, लखनऊ, बस्ती, आगरा, गोंडा इत्यादि शहरों में कुछ लोग दलाल बन कर कुलियों की भरती करने का काम करते हैं। ये लोग भूले, भटके, घर से भगे हुए गँवार लोगों को समझा बुझा कर कलकत्ते लाते हैं। वहाँ पर पाँच साल का इक़रारनामा उनसे लिखवाया जाता है। फिर वे ब्रिटिश गायना (डमेरारा), ट्रिनीडाड़, जमैका, मोरेशश इत्यादि उपनिवेशों को भेजे जाते हैं। यहाँ आये हुए हिन्दुस्तानियों में विहार-प्रान्त तथा पूर्व बङ्गाल के बाशिन्दे बहुत हैं। आने वाले "कुली" को पाँच साल का इक़रार पूरा कर लेने पर स्वतन्त्रता मिल जाती है। पहले पाँच साल तक गन्ने के खेत तथा शक्कर के कारख़ानों में उसे काम करना पड़ता है। आलसी जीवों को छोड़ कर अन्य लोग ख़ुशी से अपना बन्धन-समय पूर्ण करते हैं। यदि समय से पहले ही कोई बन्धन-मुक्त होना चाहे तो उसको ४० रुपये फ़ी साल के हिसाब से दण्ड देना पड़ता है।

इन्हीं कुली लोगों में से परिश्रम और व्यवसाय के द्वारा कई एक हिन्दुस्तानी अच्छे धनी हो गये हैं। आज कल मुख्य शहर तथा गाँवों में हिन्दुस्तानियों की सैकड़ों दुकानें, ज़मीदारियाँ तथा चावल के कारख़ाने हैं। व्यवसाय दिन पर दिन बढ़ता ही जाता है। इन लोगों की पोशाक में बहुत कुछ हेर फेर हो गया है। विशेष कर ये लोग धोती और कुरता पहनते हैं। सिर पर हैट (Hat) अर्थात् अँगरेज़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

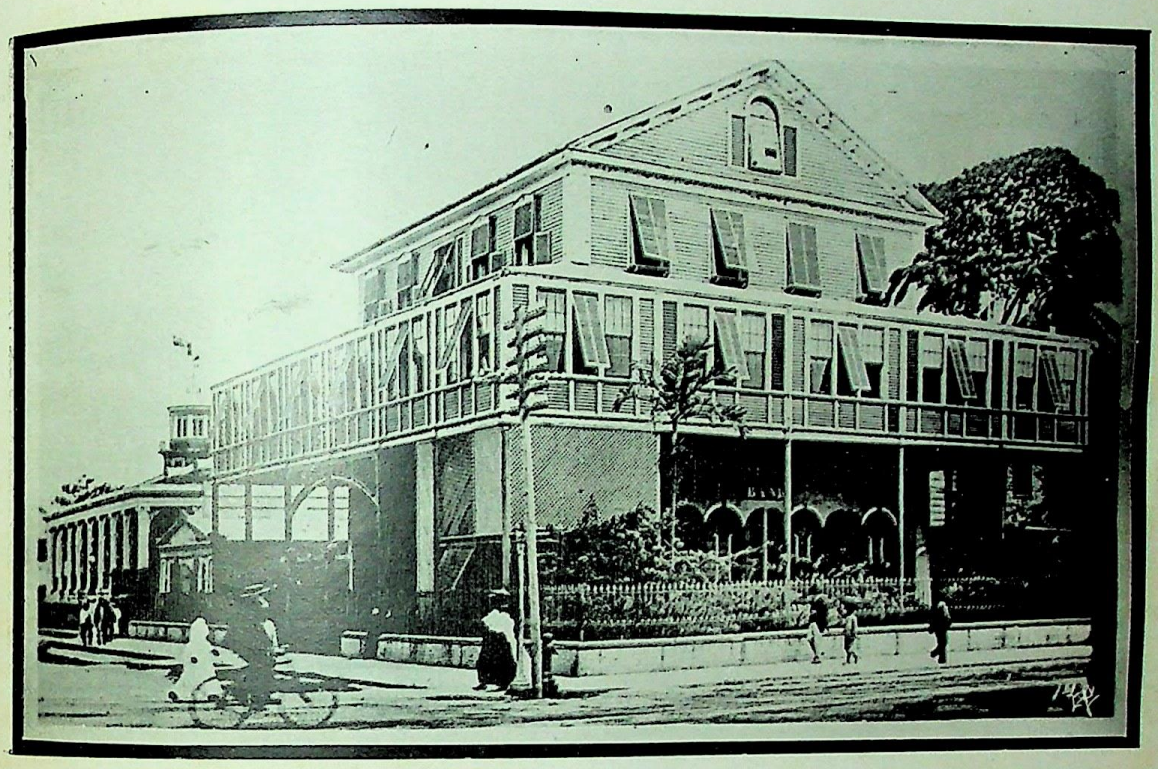

जार्ज-टाउन का ब्रिटिश-गायना-बैंक ।

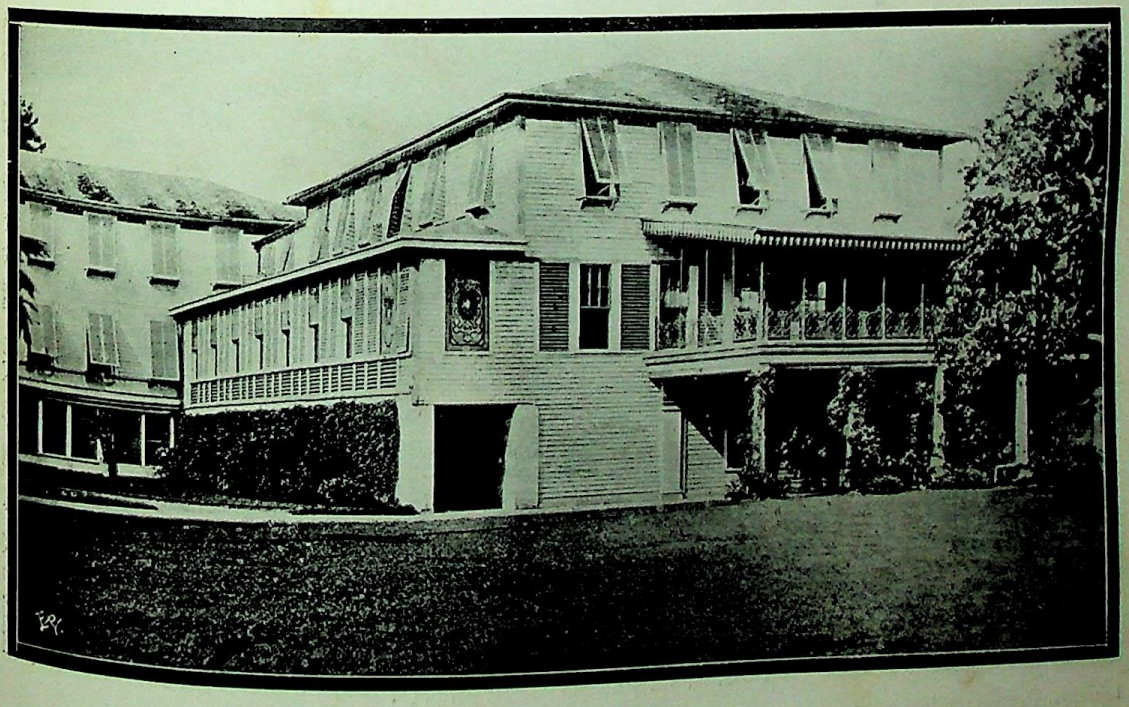

जार्ज-टाउन का गवर्नमेंट हाउस ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

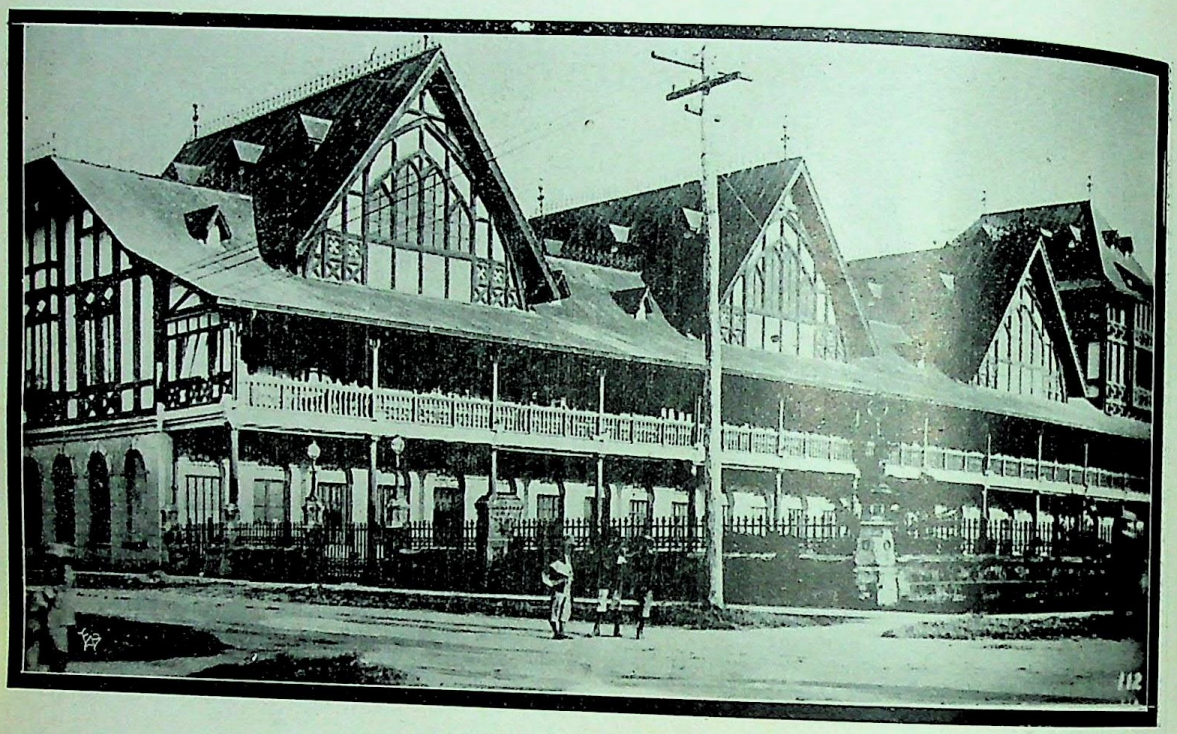

जार्ज टाउन के न्यायालय ।

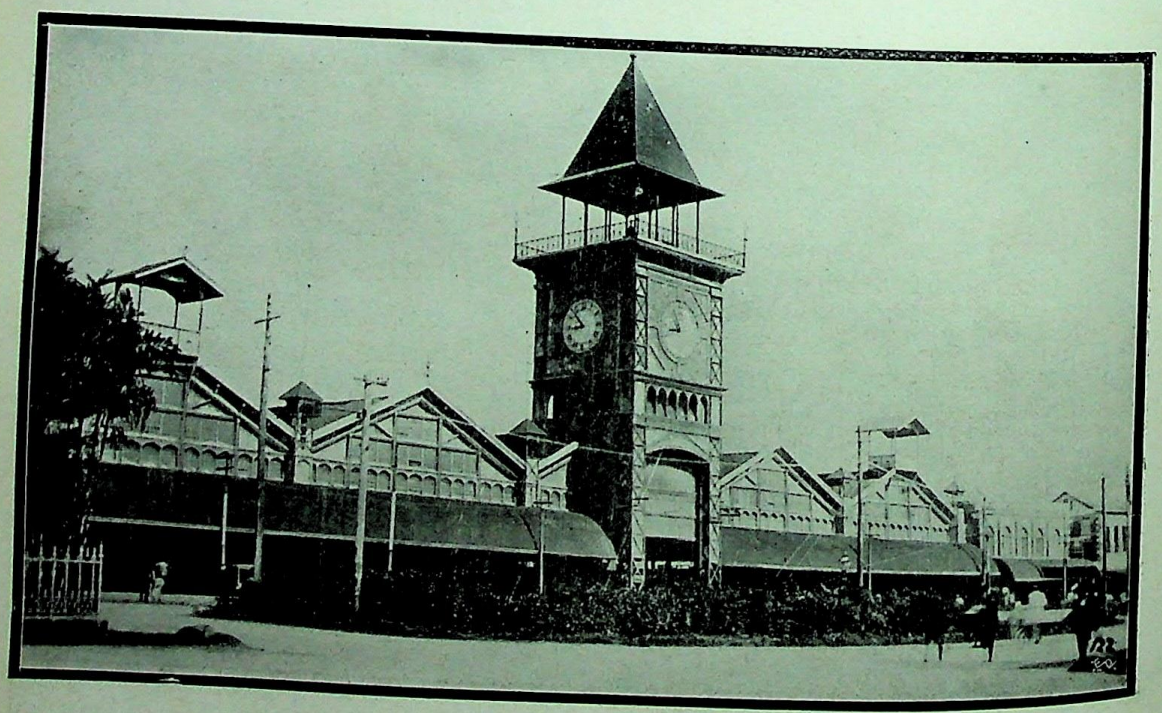

जार्ज-टाउन का स्टाब्राक नामक बाज़ार ।

Indian Press. Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

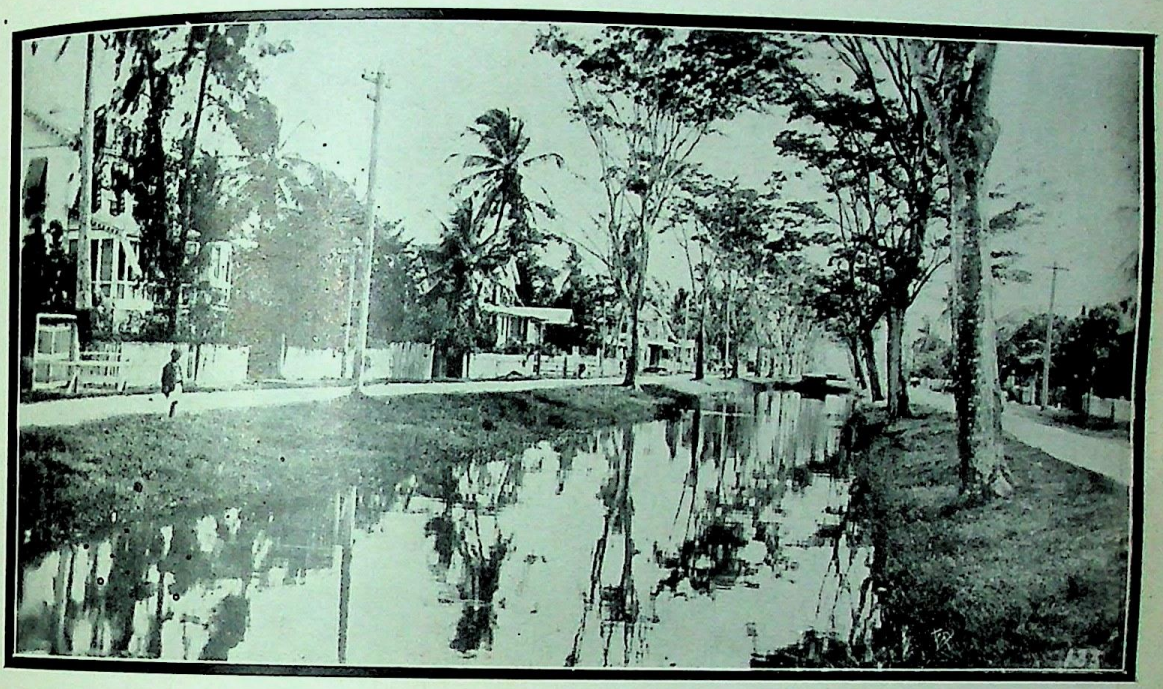

जार्ज-टाउन का ईस्ट स्ट्रीट नामक रास्ता।

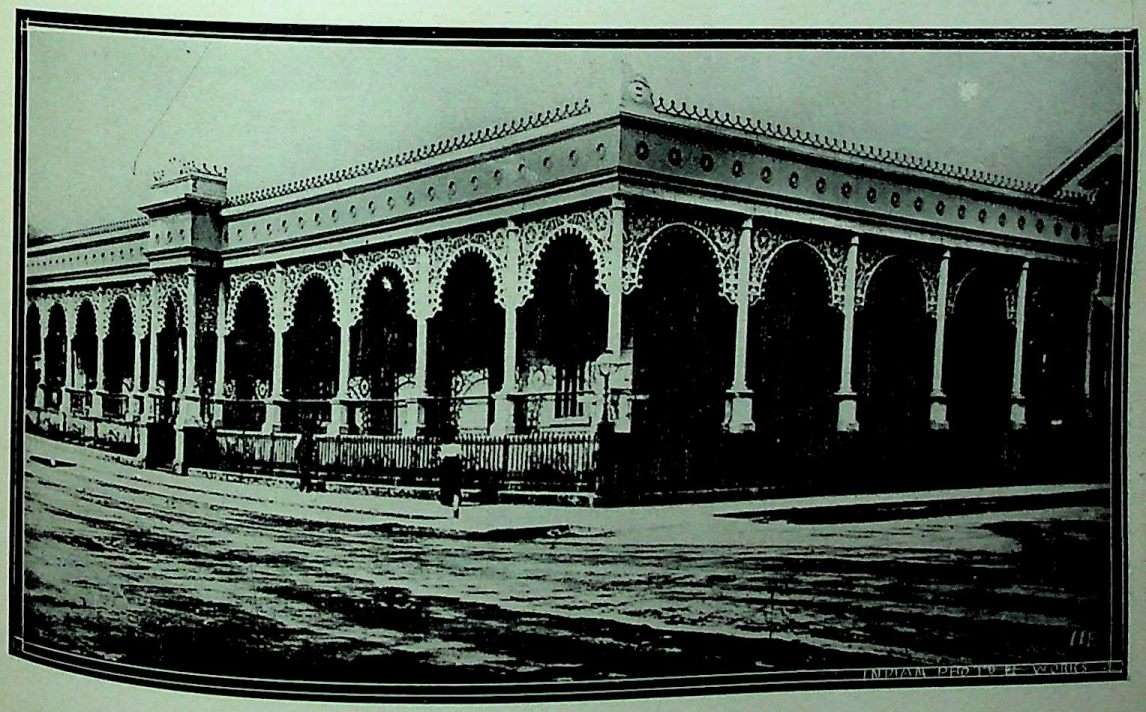

जार्ज-टाउन की हैंड-इन-हैंड नामक प्रसिद्ध इमारत।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

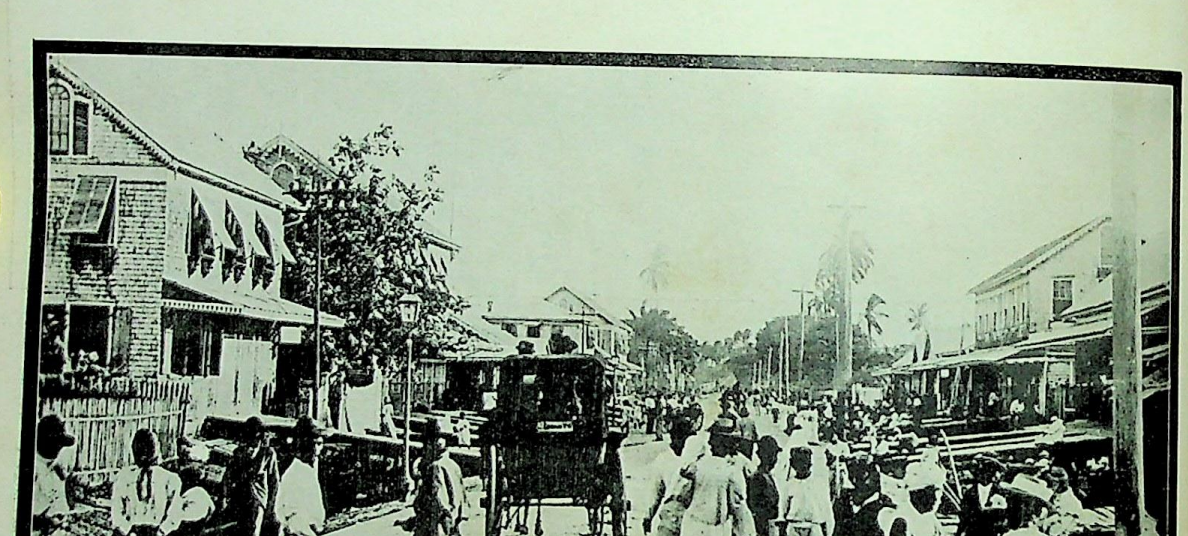

जार्ज-टाउन की ला-पेनिटंस नामक सड़क ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टोपी लगाते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, सब इसी तरह के कपड़े पहनते हैं। खान-पान में जाति-भेद का विचार बहुत कम किया जाता है। धर्म्म की चर्चा फिर भी बहुत अच्छी है। शहर में, तथा बाहर भी, भागवत तथा सत्यनारायण की कथा का बहुत प्रचार है। एक एक भागवत तथा सत्यनारायण की कथा में कभी कभी हज़ार हज़ार डेढ़ डेढ़ हज़ार रुपया ख़र्च हो जाता है। यहाँ कहीं कोई बड़ा मन्दिर नहीं है। हाँ एक आध मठिया कहीं कहीं बनी हुई है। पर मुसलमानों की एक बहुत बड़ी मसजिद शहर में है। यहाँ पर दो त्योहार बड़ी धूमधाम से मनाये जाते हैं। मुहर्रम और होली। इनमें हिन्दू, मुसलमान, हबशी सभी लोग शामिल होते हैं। विवाह भी जब तब बड़ी शान के साथ होते हैं।

यहाँ की हिन्दुस्तानी स्त्रियों की पोशाक पूर्वी भारत की स्त्रियों की सी है। चाहे पञ्जाबी हों, चाहे मारवाड़ी, चाहे और कोई; यहाँ आकर सब स्त्रियाँ एक ही तरह की पोशाक पहनती हैं। कपड़े चाहे कितने ही मैले कुचैले क्यों न हों, ज़ेवर पहनने का यहाँ भी स्त्रियों को बड़ा शौक़ है। सास, ससुर और जेठ आदि का लिहाज़ यहाँ बहुत कम है। ससुर के सामने घूँघट काढ़ना अथवा उससे बात न करना यहाँ की स्त्रियाँ व्यर्थ समझती हैं। हिन्दुस्तानी कपड़ों में अँगरेज़ी रमणियों की चालढाल का अच्छा नमूना यहाँ देखने में आता है।

यहाँ हमारे देशवासी दो प्रकार की भाषा बोलते हैं। एक बिहारी हिन्दी, दूसरी कुली इँगलिश। बिहारी हिन्दी बहुत प्रचलित है। हिन्दू, मुसलमान तथा और प्रान्तों के हिन्दुस्तानी भी इसी बोली में प्रायः बात-चीत करते हैं। इस हिन्दी में बहुत से अँगरेज़ी शब्द तोड़ मरोड़ कर हिन्दी बना लिये गये हैं:—जैसे चेयर (Chair) को चियरवा स्ट्रांग (Strong) को तड़ाङ्ग, स्टुपिड (Stupid) को चुपिड़ इत्यादि। ऐसे शब्दों का व्यवहार प्रतिदिन अनेक बार सुनने में आता है। कुली इङ्गलिश या तो क्रिओल (Creole) हिन्दुस्तानी (अर्थात् वे भारतवासी जिनका जन्म यहाँ हुआ है) बोलते हैं या पुराने कुली लोग। यों तो यह भाषा धीरे धीरे सभी को आ जाती है। एकाएक सुनने वाले को यह कुली इङ्गिश कुछ कुछ संस्कृताना जँचती है, क्योंकि इसमें धातुओं के पीछे अम जोड़ दिया जाता है—जैसे Me no takum nowtin massa ; me gee-um डेढ़ Beet—यदि शुद्ध अँगरेज़ी में इन वाक्यों को कहें तो—I did not take anything, Master ; I gave a bit-and-a half—इस प्रकार होना चाहिए। हाँ, कुछ पढ़े लिखे लोग ऐसे भी हैं जो शुद्ध अँगरेज़ी में भी बात चीत करते हैं।

यहाँ की शिक्षा-प्रणाली हिन्दुस्तानियों के लिए हानिकारक साबित हुई है। प्रत्येक स्कूल में सभी बच्चों को ईसाई धर्म की शिक्षा दी जाती है। उन्हें दिन में पाँच चार दफ़े प्रभु ईशू की स्तुति करनी पड़ती है। जो स्कूल ईसाई धर्म्म की शिक्षा नहीं देता उसको सरकार से कुछ भी मदद नहीं मिल सकती। इसी कारण से यहाँ सभी पाठशालायें ईसाई धर्म्म सिखाती हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि अनेक पढ़े लिखे लोग ईसाई हो गये हैं। जब मैं पहले पहल यहाँ पहुँचा तो मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि देखने में जितने भले आदमी मालूम होते हैं प्रायः सभी ईसाई हैं। किन्तु बाद में पता लगाने से ज्ञात हुआ कि इनकी संख्या बहुत कम है।

यहाँ पर उच्च शिक्षा पाये हुए हिन्दुस्तानी बहुत कम हैं। डेढ़ लाख आदमियों में केवल तीन डाक्टर और एक पादरी हैं। बैरिस्टर एक भी नहीं। बी० ए० या एम० ए० पास किये हिन्दुस्तानी तो देखने को भी नहीं मिलते। आज कल हिन्दुओं ने एक स्कूल जार्ज टाउन में खोला है। उसके लक्षण अच्छे दिखाई देते हैं। हम यहाँ पर इतना कहना भूल गये कि स्कूलों में ईसाई धर्म्म की शिक्षा प्रचलित करने में सरकार का कुछ भी दोष नहीं है। यह दोष केवल पादरियों का है। शिक्षा-विभाग का प्रबन्ध कुछ दिनों पादरियों के हाथ में था। उन्हीं दिनों में इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों ने मनमानी करके यहाँ की शिक्षा-प्रणाली में इस धर्म्म की शिक्षा अनिवार्य्य करदी थी। अब इसको रद करने का प्रबन्ध यहाँ के हिन्दुस्तानी कर रहे हैं।

ब्रिटिश गायना की राजनैतिक दशा और उपनिवेशों से कहीं बढ़ चढ़ कर है। यहाँ पर पोर्टगीज़, हबशी, अँगरेज़, हिन्दुस्तानी सबको बराबर का हक़ हासिल है। सब कोई राज-काज करने वाले मेम्बरों के चुनाव में राय दे सकते हैं। यह बात शायद अन्य अँगरेज़ी उपनिवेशों में नहीं है।

ब्रिटिश गायना में व्यवसाय के लिहाज़ से तीन प्रकार के आदमियों के लिए बहुत सुभीता है। प्रथम—उच्च शिक्षा पाये हुए हिन्दू डाक्टरों, हिन्दू बैरिस्टरों और हिन्दू पण्डितों के लिए। द्वितीय—धनी लोगों के लिए जो गाँव, ज़मीन या जायदाद ख़रीदना चाहते हों। यहाँ पर अच्छी ज़मीन बहुत सी व्यर्थ पड़ी है। उसमें खेती करने से हज़ारों-लाखों रुपये की आमदनी हो सकती है। रुपया ख़र्च करने से यहाँ बहुत मुनाफ़ा हो सकता है। हम ऐसे आदमियों को सदा सर्वदा के लिए यहाँ आने का निमन्त्रण देते हैं। जिसको इस विषय में कुछ पूछना हो वह हमारा नाम तथा ब्रिटिश गायना, जार्ज टाउन, लिख कर हमें पत्र भेजे। हम यथाशक्य उसको यहाँ के विषय में सब प्रकार की बातें बतलाने की कोशिश करेंगे। तृतीय—यहाँ पर उन परिश्रमी कृषकों की भी बड़ी आवश्यकता है जो ख़ूब मिहनत करके ज़मीन को जोतें और उसे खेती के लायक़ बना लें। फिर वे यहीं बस जायँ। हिन्दुस्तान के किसानों को कभी कभी बड़ी तकलीफ़ें उठानी पड़ती हैं। यदि उनका चित्त किसी कारण से देश में न लगे और वे विदेश जाना चाहें तो ब्रिटिश गायना उनका स्वागत करने को तैयार है।

हम इतना कह देना उचित समझते हैं कि सुस्त—घर से भागे हुए—काम-चोर अथवा मदरसे से हैरान युवा अथवा अपने आपको व्यर्थ में महामानी मानने वाले आलसियों का यहाँ पर गुज़र नहीं। यहाँ ऐसे मनुष्यों को उपनिवेश के अफ़सर बिना किसी ख़ास सिफ़ारिश के नहीं घुसने देते। पूर्वोक्त तीन प्रकार के सज्जनों के लिए—इस लेखक सिफ़ारिश करने को हमेशा तैयार है। उन्हें यहाँ प्रवेश करने में कोई बाधा नहीं होगी।

रामनारायण शर्म्मा—एल० एम० एस

लखनऊ का मेडीकल कालेज।

क्टरी की परीक्षायें जो भारत में होती उनमें दो मुख्य हैं। पहली हास्पिटल असिस्टंटी की और दूसरी असिस्टेंट सर्जनी की। छात्रों को इन परीक्षाओं के लिए तैयार करने के वास्ते कलकत्ता, बम्बई, लाहौर आदि स्थानों में सरकार की ओर से कालेज और स्कूल स्थापित हैं। युक्त-प्रदेश में अभी तक इस प्रकार का केवल एक स्कूल आगरे में था, जिसमें हास्पिटल असिस्टंटी की श्रेणी तक की पढ़ाई होती है। जो छात्र असिस्टेंट-सर्जन बनना चाहते उन्हें लाहौर जा कर वहाँ के मेडिकल कालेज में पढ़ना पड़ता था। वहाँ चार पाँच वर्ष तक रह कर औषधि-शास्त्र की शिक्षा प्राप्त करने में युक्तप्रदेश-निवासी छात्रों को बहुत कष्ट उठाना पड़ता था। इस लिए इस प्रान्त वाले १८६० ईसवी से ही कोशिश में थे कि यहीं कहीं डाक्टरी विद्या की शिक्षा के लिए एक कालेज खोल दिया जाय।

१९०५ में सम्राट् पञ्चम जार्ज (तत्कालीन प्रिन्स आव् वेल्स) ने भारत में प्रथम बार पदार्पण किया। उस समय युक्त-प्रवेश-निवासियों ने आपसे तत्कालीन छोटे लाट, सर जेम्स लाटूश, से प्रार्थना की कि युक्तप्रदेश में ऐसे शुभ अवसर का स्मारक स्वरूप एक मेडिकल कालेज स्थापित किया जाय। लाटूश साहब सहमत हुए और कालेज-स्थापना के लिए लोग धड़ाधड़ चन्दा देने लगे। थोड़े ही काल में एक अच्छी रक़म एकत्र हो गई और १९०५ ई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लखनऊ का लार्ज-मेडिकल कालेज।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त में सम्राट् पञ्चम जार्ज ने कालेज की नींव डाल कर उसका नाम "प्रिन्स आव् वेल्स मेडिकल कालेज" रक्खा। उसी समय से कालेज-भवन के निर्माण का काम आरम्भ कर दिया गया।

गत जनवरी की २६ वीं तारीख़ को सन्ध्या-समय इस कालेज के खुलने का उत्सव बड़ी धूम धाम से मनाया गया। उस समय युक्त-प्रदेश के बहुत से राजा, महाराजा और बड़े आदमी उत्सव-स्थल पर उपस्थित थे। युक्त-प्रदेश के छोटे लाट सर जान हिवेट ने कालेज खोलने के शुभ कार्य्य को सम्पादन किया। जिस समय सम्राट भारत में विराजमान थे उस समय उनसे कालेज खोलने की प्रार्थना की गई थी, परन्तु समय की अल्पता के कारण उन्होंने उक्त प्रार्थना को अस्वीकार किया और अपनी असमर्थता पर खेद प्रकट करते हुए वे छोटे लाट हिवेट साहब को उक्त कार्य्य करने की आज्ञा दे गये। सम्राट् ने कालेज के ऊपर और भी कृपा की। उन्होंने अपने और महारानी मेरी के नाम को कालेज के नाम से संयुक्त करने की अनुमति देकर कालेज और युक्त-प्रदेश-निवासियों को विशेष गौरवान्वित किया। कालेज का नाम अब "किंग जार्ज मेडिकल कालेज" हो गया है और कालेज का वह भाग जो स्त्रियों के लिए है—"महारानी मेरी का अस्पताल"। केवल इतना ही नहीं, कालेज में लगाने के लिए सम्राट् ने अपने और महारानी के दो फोटो भी देने की कृपा की। ये फोटो कालेज के परीक्षाघर में टाँगे गये हैं। राजा सर तसद्दुक़-रसूल ख़ाँ ने इनमें चाँदी के चौखटे जड़वा देने का वचन दिया है।

कालेज-भवन बड़ा सुन्दर बना है। चिकित्सा-शास्त्र के भिन्न भिन्न विषयों की शिक्षा के लिए पृथक् पृथक् कमरे हैं। छात्रों के रहने के लिए दो छात्रालय हैं। अध्यापकों, अफ़सरों और दाइयों के रहने के लिए भी सुव्यवस्था है। अस्पताल भी बहुत अच्छा बना है। स्त्रियों के लिए पुरुषों से अलग स्थान है। २३२ रोगियों के रहने का प्रबन्ध है। कालेज के व्यावहारिक क्रिया-भवन (Laboratories) आधुनिक और बहुमूल्य यन्त्रों से सुसज्जित हैं। कालेज-भवन के निर्माण में लगभग तीस लाख रुपये ख़र्च हुए हैं। इसमें भारत-सरकार के दिये हुए दस लाख रुपये भी शामिल हैं।

उत्सव होने के कई महीने पहले ही कालेज में पढ़ाई आरम्भ हो गई थी। इस समय उसमें तीस छात्र और मंसूरी से आई हुई दो यूरोपीय महिलायें पढ़ रहीं हैं। कालेज में वही छात्र भरती हो सकते हैं जो युक्त-प्रदेश के निवासी हों अथवा परीक्षा के दो वर्ष पहले से प्रयाग-विश्वविद्यालय की सीमा के अन्तर्गत रहने लगे हों।

कालेज में भरती होने की इच्छा रखनेवाले छात्र की अच्छी योग्यता होनी चाहिए। विश्व-विद्यालय की रसायन-शास्त्र, पदार्थविज्ञान, और जीवाणुविद्या सहित बी० एस सी० अथवा एफ० ए० परीक्षा पास किये हुए का ही यहाँ प्रवेश हो सकेगा। यह बात कालेज के प्रधान अध्यापक की इच्छा पर छोड़ी गई है कि इस योग्यता के रखनेवाले छात्रों में से भी जिसे चाहें उसी को कालेज में भरती करें। प्रविष्ट छात्रों को कालेज के छात्रनिवास में रहना पड़ता है। पाँच वर्ष में यहाँ की पढ़ाई ख़तम होती है। भरती होने की फीस १० रुपया और वार्षिक फीस ७५ रुपया है। इनके सिवा छात्रालय की फीस, क्लब की फीस तथा और और भी कई तरह की फीस देनी पड़ती है। भरती होने के सात दिन के भीतर ही छात्र से वर्ष भर की फीस वसूल कर ली जाती है। उसे कोई १५० रुपया देना पड़ता है।

इस साल भरती होने की इच्छा रखनेवालों को, २४ सितम्बर १९१२ को, अर्ज़ी लेकर, कालेज के अध्यक्ष के पास प्रत्यक्ष उपस्थित होना चाहिए। सरकार तथा अन्य उदार और विद्या-प्रेमी सज्जनों की ओर से कितनीही छात्र-वृत्तियाँ भी नियत हैं जो योग्य छात्रों को मिलती हैं।

शाह मीना और बड़े इमामबाड़े के बीच में जहाँ पर कालेज बनाया गया है वहीं पर पुराने ज़माने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक गढ़ था जो "लक्ष्मण-क़िला" के नाम से प्रसिद्ध था। मुसलमान बादशाहों के समय में वह "मच्छी-भवन" कहलाने लगा। १८७५ के ग़दर के बाद "लक्ष्मण-क़िला" तोड़ डाला गया। एक समय था जब लक्ष्मण-क़िले में रहनेवाले लोग लड़ाइयों में मनुष्यों के ख़ून से भूमि रँगना अपना कर्तव्य समझते थे। परन्तु अब वहीं पर रहनेवाले डाक्टर रोगों से अभिभूत और जीवन से निराश प्राणियों की रक्षा किया करेंगे।

हिन्दी-साहित्य और समाज।

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है। समाज किस समय कितनी सभ्यता की दशा में है, इसका पूरा पता साहित्य से मिल सकता है। जिस समाज में जितना कम या निरुपयोगी साहित्य है वह उतनी ही अधिक असभ्य समझी जाती। नाटक, उपन्यास, काव्य आदि, साहित्य के अङ्गों का, समाज के विचार और आचरण पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। इतिहास के पढ़ने से कभी कभी देश की भीतरी अवस्था का उतना पता नहीं लगता जितना साहित्य के और मुख्य अङ्गों से मिलता है। विदेशों की समाज का अनुमान बहुधा साहित्य पर से ही किया जाता है। भारत की प्राचीन सभ्यता का इतिहास भी बहुत करके संस्कृत-साहित्य के आधार पर लिखा गया है। लेखक लोग समाज की बुराइयाँ कभी कभी प्रत्यक्ष लिख कर दिखाते हैं और कभी उनकी आड़ में एक आदर्श-समाज का चित्र खींचते हैं, जो पाठकों को बिलकुल स्वाभाविक जान पड़ता है। साहित्य के कारण समाज की स्थिति में बड़े बड़े हेर-फेर उत्पन्न होते हैं। ऊँचे लेखक और ऊँचे विषय समाज को गिरी हुई दशा से उबारते हैं; पर नीच लेखक और नीच विषय उसे भ्रष्ट करते हैं। साहित्य का प्रत्येक शब्द किसी घटना या विचार का इतिहास है, और उसके प्रत्येक नये शब्द समाज की मानसिक उन्नति का पता लगता है। शब्द-संख्या की बढ़ती विचार और विद्या की वृद्धि का लेखा है।

हिन्दी-साहित्य का इतिहास अभी तक हिन्दी में नहीं लिखा गया है। जिन अँगरेज़ विद्वानों ने साहित्य की समालोचना की है उनके विचारों से जान पड़ता है कि यह अभी तक बाल्यावस्था में है, यद्यपि इसकी अवस्था एक हज़ार वर्ष हुई है। अँगरेज़ी राज्य की एक सदी में भी इसकी जैसी उन्नति होनी चाहिए थी वैसी नहीं हुई। हिन्दी का प्राचीन साहित्य आज कल के साहित्य की अपेक्षा बहुत कुछ बड़ा है, यद्यपि वह सर्वाङ्गपूर्ण नहीं है। समाज पर प्राचीन साहित्य का असर पड़ा है। आदि-हिन्दी (१२००—१५७० ई०) वीर-काव्य और धर्म-काव्यों की संख्या बहुत एक के कारण देश में स्वदेशाभिमान बढ़ा दूसरे के कारण साधारण लोगों में धर्म विद्या का प्रचार हुआ। किसी किसी धर्म-ग्रन्थ वीर-काव्य का फल भी प्राप्त हुआ। मध्य-हिन्दी (१५७०—१७५०) के समय में धर्म-सम्बन्धी अच्छे ग्रन्थों के सिवा, काव्य-कला, अलङ्कार नायिका-भेद की ख़ूब बढ़ती हुई। इस प्राचीन साहित्य का प्रभाव पीछे के साहित्य-सम्बन्धी उद्योग पर भी पड़ा। इतना होने पर भी हिन्दुस्तानी समाज को साहित्य से विशेष लाभ नहीं पहुँचा। ईश्वर भक्ति के साथ साथ जाति-प्रेम अधिक न बढ़ा और संसारी बातों में उदासीनता रही। अचरज नहीं कि विदेशी राज्य के कारण भी लोगों के विचार कुण्ठित हो गये हों। इसके पश्चात् उर्दू की उत्पत्ति हुई। हिन्दुस्तानी समाज पर इस नये साहित्य का इतना प्रभाव पड़ा कि उसका फल आज तक देखने में आता है। ईश्वर-भक्ति के बदले लोग "इश्क़" में चूर रहने लगे और मातृ-भाषा के बदले राज-भाषा में कविता करने लगे। उर्दू-फ़ारसी न जानने वाले उनके जानने वालों से नीचे ठहराये गये और इस प्रकार से फूट फैलने लगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्त्तमान हिन्दी साहित्य का आरम्भ सन् १८०० ई० से है। यह गद्य-साहित्य एक तो बहुत ही कम है और दूसरे जो कुछ है उससे न तो हिन्दुस्तानी समाज का पूरा पूरा पता लगता है और न उसका कोई प्रभाव पड़ा हुआ दीखता है। आर्य-समाजी ग्रन्थों से जितना लाभ हुआ है प्रायः उतनी ही हानि हुई है। इनके कारण भी फूट बढ़ी है। आज कल लोगों के विचारों में जो हेर फेर हुआ है उसका यश अँगरेज़ी-साहित्य को है, हिन्दी को नहीं। हिन्दुस्तान की और और भाषाओं का साहित्य पढ़ने से उन भाषाओं के बोलने वालों की रीति-भाँति, विद्या, विचार, सामाजिक गठन तथा शील का पता लग जाता है; पर हिन्दी की पुस्तकों में आदर्श समाज का बहुधा अभाव ही है। हिन्दी में ऐसे मूल ग्रन्थ बहुत कम निकलेंगे जो हिन्दुस्तानियों के विचार और आचार में परिवर्तन कर सकें। कुछ हिन्दी-पुस्तकों में समाज के जो चित्र हैं वे बहुधा ऐसे अद्भुत हैं कि उनके नमूने कभी देखने में नहीं आते। हिन्दुस्तानी लोगों को उनकी यथार्थ अवस्था बतला कर उनके सामने ऐसा समाज का चित्र रखना आवश्यक है जिससे वे लोग अपने को सुधारें और उदासीनता का त्याग करें।

वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य में जो ग्रन्थ हैं उनमें कुछ मध्य हिन्दी के नमूने हैं, कुछ संस्कृत के अनुवाद हैं, कुछ स्कूल-सम्बन्धी हैं और कुछ दूसरे प्रकार के हैं। मध्य हिन्दी के नमूनों में भक्ति और काव्य-कला की प्रधानता है। संस्कृत के अनुवादों में प्रायः उसी समाज का चित्र पाया जाता है जिसमें संस्कृत बोली जाती थी। ये अनुवाद हिन्दी की शोभा अवश्य हैं; पर उनके पात्रों के विचार और आचार आज कल के लिए आदर्श नहीं कहे जा सकते। मराठी या बँगला के जो हिन्दी-अनुवाद निकलते हैं वे भी कई अंशों में हमारी समाज के यथार्थ चित्र नहीं हैं। उपन्यासों के पढ़ने से हम लोगों की रुचि यथार्थ की अपेक्षा अद्भुत की ओर अधिक बढ़ी है। कभी कभी इन उपन्यासों में चरित्र बिगाड़ने वाली बातें भी रहती हैं। जिन थोड़े से लोगों के हाथ में आज कल साहित्य बनाने का काम है उनका काम बड़े महत्त्व का है। समाज की अवस्था और शील का बारीकी से अवलोकन करना और उस पर से आवश्यक ग्रन्थों की रचना प्रत्येक हिन्दी-लेखक का धर्म है। यद्यपि अद्भुत घटनाओं के साथ "घरू घटनाओं" को मिलाना केवल स्वाभाविक और आदर्श लेखक ही से हो सकता है तथापि लोगों की रुचि बिगाड़ना और इस तरह से समाज को भ्रष्ट करना लेखक कहलाने वाले लोगों के लिए बड़ी लज्जा की बात है। हिन्दुस्तानी समाज में शिक्षा का अभाव होने से भी उस पर कुछ समय तक आदर्श लेखकों का प्रभाव पड़ना कठिन है। धर्म-सम्बन्धी पुस्तकों की रूखी शिक्षा के अनुसार चलना पाठक तथा लेखक दोनों के लिए कठिन है। हिन्दी के दो चार ग्रन्थ ऐसे हैं जिनमें वर्त्तमान समाज के कुछ चित्र हैं; पर साधारण लोगों तक उनकी पहुँच नहीं हुई। स्त्रियों के लिए भी सामाजिक ग्रन्थों की आवश्यकता है।

समाज की रचना सभी देश और काल में विद्वानों और मुखियों के हाथ में रही है। इस समय हिन्दी बोलने वाली समाज में कई सुधारों की आवश्यकता है। क्या विद्या, क्या विचार, क्या आचार, क्या एकता—सभी बातों में यह समाज बहुत पीछे है। हम लोगों में जाति-प्रेम का इतना अभाव है कि एक को दूसरे का उत्कर्ष नहीं सुहाता। बहुत दिन की इसी एक विचार-सङ्कीर्णता को दूर करने के लिए न जाने कितने विद्वानों की, कितने मुखियों की और कितने ग्रन्थों की आवश्यकता पड़ेगी। साधारण लोगों में पुस्तकें पढ़ने की योग्यता नहीं है और न वे सभाओं ही में जाते हैं। तौभी वे आकाशी विज्ञापन पढ़ कर ग्रहण और पर्व के समय तीर्थों पर एकत्र होते हैं, और तुलसी-कृत रामायण में अनुपम श्रद्धा रखते हैं। यदि हमारे वक्ता लोग इस अवसर का उपयोग कर केवल रामायण की आदर्श समाज की विशद व्याख्या करें तो हमारे इष्ट की सिद्धि बहुत कुछ हो सकती है। हमें यहाँ इस बात के बताने की आवश्यकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है कि परमार्थ के लिए स्वार्थ की हानि सहनी पड़ती है। इसके सिवा साधारण लोगों को नाटक देखने की भी बड़ी रुचि रहती है। इसका प्रबन्ध भी हिन्दुस्तानी लोगों के द्वारा होना चाहिए। हम लोगों की अयोग्यता के कारण उर्दू-नाटकों का प्रचार अधिक है और इन नाटकों का हमारी समाज पर बड़ा बुरा असर पड़ता है। कुछ वर्षों से एक कालेज के विद्यार्थी, जो घरों में हिन्दी बोलते हैं और विद्यालय में संस्कृत पढ़ते हैं, शहर के लोगों को 'असीरे हिर्स' और 'ख़ूबसूरत बला' सदृश नाटक दिखा कर पारसी कंपनियों को मात करते हैं। यदि हमारा वर्त्तमान साहित्य प्रभावशाली होता और शिक्षित हिन्दुस्तानी लोगों ने इस विषय की ओर ध्यान दिया होता तो हम लोगों की समाज का यह भ्रष्ट उदाहरण न दिखाई देता। जब तक हिन्दुस्तानी समाज हिन्दी-साहित्य के शासन के अधीन नहीं है तब तक हमारे आचार और विचार ऊँचे होने में सन्देह है। यह हमारे साहित्य की हीनता का ही फल है कि हम लोग कभी कभी उर्दू के ऐसे नाटक देखा करते हैं जिन में शकुन्तला को रङ्गभूमि पर नाचना पड़ता है या हिन्दुओं को स्त्रियों के पैरों पर गिरना पड़ता है।

हिन्दी-उपन्यास, नाटक आदि की भाषा के विषय में बहुधा यह कहा जाता है कि इसका उपयोग पात्रों की योग्यता तथा देश और काल के अनुसार नहीं होता। विशेषकर नाटकों की भाषा के विषय में, जिन की संख्या उँगलयों पर गिनी जा सकती है, यह आक्षेप होता है कि रङ्गभूमि पर वह स्वाभाविक नहीं जान पड़ती और उस (भाषा) की ओर विशेष ध्यान देनेवाले दर्शकों पर उसका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। किसी नाटक में तो यह देखा जाता है कि बिना कारण ही अपढ़ लोगों की भाषा ऊँची और पढ़े लिखे लोगों की गँवारी रहती है। प्रायः यही दशा पात्रों के आचार और विचारों की है। न जाने किसी भावी हरिश्चन्द्र को हिन्दी बोलने वालों के विषय में यह लिखने का सौभाग्य कब होगा कि "एकहि भाषा में अहै इन की सकल समाज"!

कामताप्रसाद गुरु।

*नवाबनन्दिनी।

(१)

गुजरात के नवाब के दरबारी कवि का नाम है माधव मिश्र। नवाब की एक लड़की है; उसका नाम ज़ेबुन्निसा।

कवि रहते हैं दरबार में; और नवाबज़ादी दरबार से मिले हुए अन्दर महल में। सङ्गमरमर के जालीदार झरोखे की आड़ में बैठे बैठे नवाबज़ादी तो कवि की कविता सुनती है और कवि-महाशय आम दरबार में बैठ कर, हर एक छन्द के यति विराम पर ताल देने से होनेवाली किसी के आभूषणों की खनक सुनते हैं।

कवि ने नवाबज़ादी को कभी नहीं देखा; कवि की आँखों के आगे, पत्थर की साफ़ और महीन जाली में, कभी कभी केवल हरे दुपट्टे की आभा, किसी की मन्द मुसकान के आभास की तरह, हृदय को हरा कर देती है. और कभी लाल गिरंट के पेशवाज़ की लालिमा कवि की आँखों में मदिरा के नशे की तरह जम जाती है।

कवि के पास कविता करने की यही पूँजी है। कवि को उस अलक्षिता का इतना ही परिचय है। किन्तु कल्पनाकुशल कवि जब अपनी कविता में इसी छाया की एक मानसी मूर्ति गढ़ कर किसी अलक्षित सुन्दरी की प्रशंसा करते हैं—सुमधुर स्वर से कविता सुनाते हैं—तब उस झरोखे के भीतर किसी के बहुमूल्य-वस्त्राभरण-भूषित अङ्ग चञ्चल होकर हृदय की चञ्चलता प्रकट करते हैं। कवि और भी मगन होकर कविता रचते और पढ़ते हैं। उस अदृष्ट सुन्दरी को लक्ष्य कर के कवि जो रचना करते हैं उसमें प्रायः इस प्रकार का वर्णन होता है—"वही तो सच्ची सुन्दरी है जिसके

*इस कहानी के मूल लेखक श्रीचारुचन्द्र बैनर्जी हैं। यह "एकटि मेंहदिर पाता" नाम से बँगला के मासिक पत्र प्रवासी में प्रकाशित हुई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अङ्ग-सङ्ग से ज़री, कमख़ाब, हीरे-पन्नों के जड़ाऊ गहने धन्य होते हैं। सोने के वर्क़ में लिपटी हुई पान की गिलौड़ी की तरह जिसके भीतर केवल रस भरा हुआ है। लोगों की नज़र जिसके बाहरी वस्त्राभरणों की चमक दमक में ही फँस कर भीतर के अनुराग-रस तक नहीं पहुँच सकती। उस रूपवती युवती के रूप और रस को जिसने नहीं जाना—नहीं पहचाना—वह अवश्य ही गँवार है। हे सुन्दरी, यह मेरा स्तुतिगान तुम्हारे आभूषणों की प्रभा को और भी अधिक उज्ज्वल करे"।

नवाबज़ादी कवि की कविता सुन कर मनही मन कहती थी—"कवि ने ठीक कहा। मैं सोने के वर्क़ में लिपटी हुई गिलौड़ी हूँ। बाहर सोने के जड़ाऊ गहनों की चमक दमक है और भीतर निराशा का रक्त-रस!"।

यों सोचते सोचते नवाबज़ादी, श्वेत कमलदल पर काले भौंरे के समान, उस झरोखे की जाली में, अपने बड़े बड़े अञ्जन-रञ्जित नेत्र स्थापित कर, बाहर झाँक कर देखती थी कि सुगौर सुन्दर सुकवि आवेश के साथ कविता पढ़ रहे हैं। कवि के स्वर की मधुरता और मुखमण्डल की कोमल कान्ति, उज्ज्वलता और तेजस्विता को देख कर नवाबज़ादी का मन मचल जाता था।

नवाबज़ादी देखते देखते एक ठण्ढी साँस लेकर गुलाब के इत्र से बसाया हुआ रूमाल निकाल कर मुँह पोंछती थी; गुलाब की मनोहर महक से दर्बार भर जाता था। वह महक कवि के मन को और भी मत्त कर देती थी। युवक कवि शिथिल से हो जाते थे; स्वर धीमा पड़ा जाता था; दरबार भर 'वाह वाह, वाह वाह' कह कर तारीफ़ करने लगता था।

वह तारीफ़ कवि के कानों तक पहुँचती थी या नहीं, सो तो हम नहीं कह सकते; किन्तु इतना अवश्य कह सकते हैं कि उस प्रशंसा की घनघटा से नवाबज़ादी का मनोमयूर ज़रूर नाचने लगता था।

(२)

इसी तरह कविता के विशुद्ध आमोद में नवाब का अधिकांश समय बीतने लगा। नवाब का दरबार राजनीति और राज्यशासन के झंझट से छूट कर काव्य-रस के सागर में डूब गया। अपने ही आनन्द में मगन राज-दरबार को कुछ भी ख़बर न थी कि कहाँ किसके हृदय में निराशा और आशा का घात-प्रतिघात घोर आन्दोलन मचाये हुए है।

और कवि? भाव में भूले हुए कवि को भी यह ख़बर न थी कि वह अपने कल्पना-राज्य के सिंहासन पर जिस अलक्षिता का अभिषेक कर रहे हैं, क्रीड़ाकौतुक करने को जिस के रूप की आग में अपने कवित्व की आहुति दे रहे हैं, वह भाव के आवेश से भीतर ही भीतर जल रही है। कवि को कुछ भी ख़बर न थी कि वह एक जन को केवल उपलक्ष्य मात्र बना कर अपनी कल्पित मानसी मूर्ति के चरणों में जो काव्यकुसुमाञ्जलि अर्पण कर रहे हैं उसे और कोई अपनी ही पूजा समझ कर ग्रहण करता है।

एक दिन कविजी कुसुमकुञ्ज से घिरी हुई अपनी कुटी में बैठे हुए कुछ नई रचना कर रहे थे। कवि ने आँख उठा कर देखा तो सामने नवाबज़ादी की ख़ास बाँदी दरिया बीबी आ रही हैं। दरिया बीबी ने पास आकर हँसते हँसते निराली अदा से सलाम किया।

कवि ने कहा—"क्यों क्या है? दरिया बीबी, इस ग़रीबख़ाने पर आज कैसे तशरीफ़ लाईं?"

"ख़बर है ख़बर" कह कर दरिया ने नज़ाक़त के साथ तीन बल खाकर कवि के सामने अपने दोनों हाथ कर दिये।

उसके हाथों में एक पात्र था और उस पर एक बहुमूल्य रूमाल पड़ा था।

कवि ने रूमाल हटा कर देखा तो एक सोने की रकाबी में सोने के वर्क़ से लिपटी हुई गिलौड़ी रक्खी हुई है।

दरिया ने हँस कर कहा—"नवाबज़ादी ने कवि को यह नज़र दी है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विह्वल कवि सब समझ गये। उन्होंने केवल कल्पना के क्रीड़ा-कौतुक में पड़ कर किसी के सुख-सौभाग्य-पूर्ण घर में आग लगाई है, यह जान कर कवि को बहुत ही खेद और पश्चात्ताप हुआ।

व्यथित कवि ने अपने को सँभाल कर कहा—"देखो दरिया, मैं नवाबज़ादी का दास हूँ। मैंने उन का गुणगान किया है; रूप की प्रशंसा की है; इसी में मुझ को असीम आनन्द है। इससे अधिक और कुछ मैं नहीं चाहता। नवाबज़ादी की इस कृपा के योग्य मैं नहीं हूँ।"

दरिया बीड़ा वापस ले गई। उस दिन कविजी भी कुछ कविता नहीं कर सके।

(३)

दूसरे दिन दरबार उठने के समय कविजी कोर्निश करके खड़े रहे।

नवाब ने कहा—"क्यों कविजी! क्या चाहते हो?"

कवि ने फिर सलाम करके कहा—"जहाँपनाह मैं कुछ दिन के लिए दरबार से छुट्टी चाहता हूँ।"

नवाब ने कहा—"ऐसे समय में तुम छुट्टी के लिए अर्ज़ी क्यों दे रहे हो? वसन्त की बहार आ गई है। यह समय अपनी कविता से दरबार को ख़ुश करने का है या छुट्टी की अर्ज़ी देने का? बात क्या है?"

कवि ने हँस कर कहा—"हुज़ूर, मेरे रस की पूँजी सब उजाड़ ली हुई है। अब एक ख़ास अपने रस-भाण्डार के बिना काम नहीं चलता। मैं ब्याह करूँगा।"

नवाब का मुखमण्डल कौतुक की हँसी से उज्ज्वल हो उठा। सारे दरबार की कौतुकपूर्ण नज़रों ने नौ-जवान नम्र कवि का अभिनन्दन किया। केवल उसी सङ्गमरमर के जालीदार झरोखे से किसी ललना के व्यथित व्याकुल हृदय को चीर कर निकली हुई लम्बी साँस ने कवि के हृदय को उन्मथित कर दिया।

कवि अपने हृदय में अनुभव करते थे कि किसी के आँसूभरे बड़े बड़े काले काले नेत्र व्यथित-हृदय की वेदना लेकर मेरे ऊपर करुणकातर दृष्टि डाल रहे हैं; किसी के केसर से रँगे हुए गुलाबी रस भरे ओठ अभिमान से फूल फूल कर स्फुरित हो रहे किसी का कोमल हृदय वस्त्रावरण के कठिन गार को तोड़ कर बाहर निकला पड़ता है; के मेहँदी लगे हुए कर-पल्लव अफ़सोस से बार मले जा रहे हैं।

कवि यह सब अनुभव कर सङ्कोच से घिरा हो रहे थे; लज्जा के मारे अपने ही अङ्गों में लुके थे। नवाब ने छुट्टी मंजूर कर के दरबार बरख़ा किया। कवि को अपने छुटकारे की आशा हुई। बची। किन्तु अन्दर महल में किसी के पैरों की और गुज़री की आहट कवि के कानों में किसी कातर-क्रन्दन की तरह गूँज गई।

कवि घर में आकर यात्रा के लिए तैयारी कर थे। इसी समय नवाबज़ादी की ख़ास बाँदी, दरि बीबी, फिर आकर हाज़िर हुई। दरिया ने चुप गम्भीर-भाव से कवि को सलाम किया।

नवाबज़ादी की बाँदी को देख कर कवि का मण्डल सूख गया—हृदय काँप उठा। कविजी ने हृदय की वेदना को छिपा कर एक बूँद रहस्य-रस अपनी वाणी को मधुर करके कहा—"क्यों दरि बीबी, इस असमय में दरिद्र की कुटी में आज से आनन्द की बहिया लाई हो?"

दरिया का भाव आज बहुत ही गम्भीर उसने उदास हो कर कहा—"आनन्द की बहिया कविजी, निराशा-विदीर्ण हृदय के ताज़े ख़ून ख़बर लेकर आई हूँ।

दरिया ने अपने दोनों हाथ कवि के आगे दिये।

दरिया के हाथों में आज भी एक पात्र उसके ऊपर लाल रेशमी रूमाल पड़ा हुआ था।

आज उसे देखने के लिए कवि को उत्कण्ठा हुई; रूमाल हटाने के लिए हाथ नहीं उठा; कवि चुप चाप खड़े रहे।

दरिया ने आप ही रूमाल हटा दिया।

कवि ने देखा कि एक मिट्टी के सकोरे में सोने वर्क़ से लिपटी हुई गिलौड़ी है। गिलौड़ी मल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई है और उसके भीतर किसी के फटे हुए हृदय से रक्त की धारा की तरह लाली झलक रही है।

कवि की आँखों से आँसू बहने लगे। वे आँसू पोंछते पोंछते वहाँ से चले गये।

(४)

कविजी का ब्याह हो गया है और अब वे फिर दरबार में आ गये हैं।

उनके आने पर नवाब ने कहा—"कविजी, आज अपने नवीन पद्य और नवीन रस की कविता सुनाइए।

कवि सुनाने लगे—"वही तो रूप है, जिसको बनावट की कोई ज़रूरत नहीं है; जो स्वभाव-सुन्दर है। कमलिनी को मुक्तामण्डित कपड़े पहनाने की ज़रूरत नहीं होती; सेवार में रह कर भी वह रमणीय ही जान पड़ती है। आभूषण रूप के असली रूप को ढँक लेते हैं; आडम्बर सच्ची सुन्दरता के लिए विडम्बनामात्र है"।

इसी प्रकार नित्य कविता कहते कहते कवि के हृदय-दर्पण में एक भूषण-शून्य, अनिन्द्य-हास्य-मण्डित मूर्ति का प्रतिबिम्ब आ पड़ता था और वह भाव-भावना में तन्मय हो जाते थे। इष्टदेव की आराधना करने में भक्त को जो विमल आनन्द होता है उसी आनन्द में विह्वल कवि कविता पढ़ते पढ़ते अपने को—सारे संसार को—भूल जाते थे। अब उनकी कविता में विलास और ऐश्वर्य का आभास भी नहीं है; अलङ्कारों का नाम भी नहीं है। उनकी कविता वनवासिनी तापसकन्या के समान पवित्र, भावपूर्ण, सरल और सादी है। कवि अपने अनास्वादित नये आनन्द में मगन हो जाते थे। उनको इसकी कुछ भी ख़बर न थी कि कहाँ किसका हृदय इस नई कविता को सुन कर व्यथित होता है; अथवा किस को उनकी पुरानी कविता के आगे यह नई कविता नीरस जान पड़ती है।

और नवाबज़ादी? कवि की नये ढँग की कविता सुन सुन कर उसके आभूषण उसको लज्जित करते थे—धिक्कार देते थे। वह कवि की उस आभूषण-विहीन अपरिचित नई सुन्दरी को देखने के लिए व्याकुल हो उठती थी। जन्म से लेकर आज तक भोगविलास की गोद में पली हुई नवाबज़ादी ठीक नहीं समझ सकती थी कि बहुमूल्य सुन्दर सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से रहित सौन्दर्य कैसा होता है। वह मन ही मन कहती थी कि वह न जाने कैसा रूप है जिसकी प्रशंसा करते करते कवि तन्मय और गद्गद हो जाते हैं। न जानें वह सुन्दरी कैसी है जिसके वस्त्राभरणहीन सौन्दर्य पर कवि का हृदय लोटपोट हो रहा है। मुझ नवाबज़ादी का ऐश्वर्य जिस हृदय को जीतने के लिए जाकर, अपमानित हो, हार कर फिर आया उस हृदय को सहज में वश करने वाली ललना न जानें कैसी सुन्दरी है। मुझ पर विजय प्राप्त करने वाली वह कामिनी कैसी मायाविनी है।

एक साधारण गाँव की ग़रीब कन्या के साथ अपने सारे जवाहरात देकर भी अगर नवाबज़ादी अपना भाग्य बदल सकती तो उसे इनकार न होता।

(५)

वसन्त का समय है। नवीन ऐश्वर्य से प्रकृति के राज्य का भाण्डार भरा हुआ है। हर एक वृक्ष पुराने पत्ते झाड़ कर कोमल नव पल्लव, कुसुमकली और पक्षियों की कलोल और कलकाकली से परिपूर्ण हो रहा है। वसन्त के मनोमोहन स्पर्श से उत्पन्न होने वाले आनन्द ने जब कठोर काठ पर अपना प्रभाव डाल कर बाहर पत्र-पुष्प-रूप से अपना रूप प्रकट कर दिया तब यदि उससे मनुष्यों का हृदय प्रफुल्लित हो उठे तो आश्चर्य ही क्या है।

गुजरात में लोग वसन्त के समय हर साल वनभोजन का उत्सव करते हैं। इस वर्ष भी वनभोजन के उत्सव में देश के सब नर नारी जाने लगे। आँवले के कुञ्ज तरुण नरनारियों के आनन्द-हास्य से अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहे हैं।

प्रथमागमन के कारण यह उत्सव कविकामिनी के और भी मन भाया है। एक दिन अकस्मात् उसके पास जाफ़रान से बसा हुआ एक पत्र आया। उसमें नवाबज़ादी की मोहर लगी हुई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डरते डरते लाख की मोहर तोड़ कर कवि की स्त्री ने उस पत्र को लिफ़ाफ़े से निकाला। पत्र खोल कर देखा तो मालूम हुआ कि वह नवाबज़ादी की एक रहस्य भरी चिट्ठी है। उसमें लिखा था:—

परमसौभाग्यवती बहन,

तुम्हारे वनभोजन के उत्सव में मैं भी शरीक होना चाहती हूँ। इसलिए तुम्हारे यहाँ मेरा न्योता है।

बदनसीब ज़ेबुन्निसा।

यह क्या रहस्य है। नवाबज़ादी माँग कर निमन्त्रण लेती हैं! कवि की स्त्री हँसते हँसते लोट गईं किन्तु कविजी का मुँह सूख गया।

आँवले के बाग़ में नवाबज़ादी आज कविकामिनी का निमन्त्रण लेने आई हैं।

कवि की स्त्री कमर में कपड़ा लपेटे हुए अपने हाथ से तरह तरह के भोजन बना रही है और नवाबज़ादी दूर बैठी हुई काम में कविकामिनी की मुस्तैदी और हावभाव देख देख कर हँस रही है। नवाबज़ादी की हँसी, दिन भर वर्षा होने के बाद शाम को निकलने वाले क्षीण घाम की तरह ढीली थी, और हार्दिक उच्छ्वास और उल्लास से पूर्ण कविकामिनी की मन्द मुसकान प्रातःकाल के बाल-सूर्य की प्रभा के समान चटकीली, चमकीली और रसीली थी। नवाबज़ादी की दृष्टि एक गम्भीर वेदना भरी प्रीति के साथ कविकामिनी के हर एक काम का अभिनन्दन कर रही थी।

रसोई बनाते बनाते दिन बहुत चढ़ गया। आँवले के पत्तों के भीतर सूर्य का तेज क्रीड़ा कर रहा था। बड़े बड़े मोतियों के समान आँवले के फलों में धूप पड़ने के कारण उनसे लावण्य उछला पड़ता था।

ज़ेबुन्निसा ने कहा—"बहन, बहुत सामान बन गया। मैं एक दिन में और कितना खाऊँगी? तुम बहुत थक गई हो। तुम्हारा कमल-कोमल शरीर पसीने पसीने हो रहा है। चलो, हम तुम बावली में नहा आवें"।

इसके उत्तर में कविकामिनी ने मुख फेर नवाबज़ादी की ओर सरल दृष्टि से देख कर दिया। वह तो पहले ही नहा चुकी थी।

नवाबज़ादी ने प्रीतिपूर्ण स्वर से कहा—"रसोई से निकलो नहीं तो मैं छूलूँगी"।

कविप्रिया ने हँस कर रसोई बनाना बन्द दिया।

नवाबज़ादी कवि की मनोमोहिनी के बावली पर स्नान करने गई। लीलाललाम गति हंसों को भी लज्जित करती हुई दोनों सुन्दरी सीढ़ियाँ उतर कर नीचे पहुँचीं। कवि की स्त्री अपने कपड़े उतार कर सीढ़ी पर रख दिये। देखी नवाबज़ादी ने भी अपनी मणिमुक्तामणि पोशाक उतार कर रख दी। दोनों ने स्वल्प वस्त्र धारण किया। फिर दोनों जल में उतर हँसी दिल्लगी करती हुई नहाने लगीं।

नवाबज़ादी एकाएक जल से बाहर निकल कविकामिनी के कपड़े पहनने लगी। विस्मित होकर कवि की स्त्री ने कहा—"यह क्या बहन! मेरे क्यों पहनती हो"?

नवाबज़ादी ने फीकी हँसी हँस कर कहा—"एक दिन था, जब तुम्हारे कविजी मेरे जवाहर जड़े ज़री के कपड़ों की तारीफ़ किया करते अब दरबार में तुम्हारे इन सादे कपड़ों की सुनती हूँ। इसी से, बहन, मेरा जी चाहता है एक बार इनको भी पहन कर देखूँ कि इनमें गुण है"?

कवि की स्त्री ने लज्जित होकर कहा—"तुम तो नवाबज़ादी हो। तुम को किसी के तारीफ़ न करने से इतना दुःख क्यों?

नवाबज़ादी ने हँस कर कहा—

दरनिहाँ ख़ूनेम ज़ाहिर गर्चे रंगे नाज़कम।
रंगे मन दर मन निहाँ चूँ रंगे सुर्ख़ अन्दर हिनास्त॥

रूपनारायण पाण्डेय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयुक्त-प्रान्त में स्त्री-शिक्षा की अवस्था।

[लेखक—पण्डित रामनारायण मिश्र, बी० ए०]

हमारे देश में जागृति के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। लोगों में विद्योन्नति की लालसा क्रमशः उत्पन्न हो रही है। अनेक विद्याविषयक सभायें और अनेक नई नई पाठशालायें खुलती जाती हैं। सरकार भी लाखों रुपया शिक्षा-प्रचार के लिए व्यय कर रही है। महाजनों, ज़मींदारों और राजा-महाराजाओं की रुचि भी विद्यादान की ओर बढ़ती जाती है। पर जो कुछ हो रहा है प्रायः बालकों के लिए; बालिकाओं की सुधि लेनेवाले अभी थोड़े ही हैं। यदि भारत की जन-संख्या को हम एक ऐसा परिवार मान लें कि जिसमें सौ लड़के और सौ लड़कियाँ हैं तो लोगों को यह जान कर आश्चर्य्य होगा कि इस परिवार के केवल २५ बालक शिक्षा पाते हैं और ७५ घर पर खेलते हैं। परन्तु केवल ४ बालिकायें पाठशाला में जाती हैं और ९६ घर रहती हैं। घर में जब मिठाई बाँटी जाती है तब बालक और बालिकायें दोनों माता के हाथ की ओर देखते हैं। वह माता बड़ी ही कठोर-हृदया होगी जो लड़के और लड़कियों में से चुन कर कुछ को मिठाई दे और कुछ को न दे। उससे भी कठोर उस माता का हृदय होगा जो लड़कों में से अधिक को और लड़कियों में से कम को प्यार करे। परन्तु, हाय! हम लोग ऐसे ही हृदय-शून्य, नहीं, क्रूर-हृदय हैं। हम लोगों के ऐसे कार्य प्रकृति के नियम के विरुद्ध हैं।

संयुक्त प्रान्त की कथा सुनिए। सौ बालकों में से १४ बालकों को हम स्कूल पढ़ने भेजते हैं, परन्तु सौ बालिकाओं में से केवल एक लड़की को। इस प्रान्त में पाँच लाख बासठ हज़ार चार सौ सैंतालिस बच्चे स्कूल जाते हैं। उनमें से केवल बयालीस हज़ार पाँच सौ सड़सठ बालिकायें हैं। इन बालिकाओं में से अधिकांश हिन्दुस्तानी ईसाइयों की हैं। हिन्दुस्तान में जो अँगरेज़ बस गये हैं उनमें १९३३ बालिकायें और २४७३ बालक स्कूल जाते हैं। दोनों की संख्या में कितना बड़ा अन्तर है। गत वर्ष ७७२ हिन्दुओं ने अँगरेज़ी की प्रवेशिका परीक्षा पास की। उनमें केवल तीन लड़कियाँ थीं। १६२ मुसलमानों में से एक भी लड़की न थी। परन्तु १४ ईसाइयों में से ५ लड़कियाँ थीं। हिन्दी और उर्दू की मिडिल परीक्षा-वर्नाक्युलर फाइनल एग्ज़ामिनेशन (Vernacular Final Examination) के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें गत वर्ष ५०८० हिन्दू, ८८९ मुसलमान और ११ ईसाई पास हुए। इनमें से ६ बालिकायें हिन्दू थीं, ३ मुसलमान और ८ ईसाई। ईसाइयों में लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ अधिक थीं। जिन ईसाइयों से हम घृणा करते हैं, जिनको हम म्लेच्छ समझ कर छूना बुरा समझते हैं—उनमें शिक्षित जनों की संख्या हम लोगों से अधिक है। इसमें स्त्री, पुरुष, बालक, बालिकायें, छोटे, बड़े, प्रायः सभी थोड़ा बहुत पढ़े लिखे हैं। याद रखिए, भविष्य में वही बड़ा समझा जायगा जो चरित्र और विद्याभ्यास में श्रेष्ठ होगा।

स्त्री-शिक्षा के प्रचार के लिए अनेक उपायों का अवलम्बन किया जा रहा है। बालिकाओं के लिए पृथक पाठशालायें खोली जाती हैं। कहीं कहीं बालक और बालिकायें एक ही साथ पढ़ती हैं (इस प्रथा को अँगरेज़ी में को-एजुकेशन [Co-education] कहते हैं)। परदे के अन्दर रहनेवाली बड़ी अवस्था की स्त्रियों में शिक्षा-प्रचार के लिए अध्यापिकायें रक्खी जाती हैं जो घर पर जाकर पढ़ाती हैं और विज़िटिंग् गवर्नेस (Visiting Governess) कहलाती हैं। स्त्री-शिक्षा के प्रचार में जितने भिन्न भिन्न धर्मावलम्बी लोग योग दे रहे हैं उनमें ईसाई सबके आगे हैं। उनके प्रबन्ध से और उनके धन से इस देश में स्त्री-शिक्षा का प्रचार अधिक होता है। उनकी चलाई हुई अनेक पाठशालायें हैं और उनकी ओर से अनेक रमणियाँ विदेश से आकर लोगों के घरों पर जाकर लिखना-पढ़ना, सिलाई और गाना आदि सिखाती हैं। उनका उद्देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह अवश्य होता है कि इस देश में उनके द्वारा ईसाई धर्म का प्रचार हो; परन्तु इस उद्देश को प्रकट करने में वे कभी सङ्कोच नहीं करते। उनका उद्देश छिपा नहीं है। तिस पर भी यदि हम उनके द्वारा शिक्षा-लाभ करते हैं तो इससे हमारी संगठन-शक्ति (Organisation) की न्यूनता का परिचय मिलता है। गत वर्ष लड़कों के अपर प्राइमरी स्कूलों की संख्या ३०२३ थी। परन्तु लड़कियों के इस तरह के केवल ३९ स्कूल थे। लड़कों के लिए ३७३ मिडिल स्कूल थे। पर लड़कियों के लिए केवल ८ थे। २४०५७ लड़कों ने अपर प्राइमरी परीक्षा दी। पर लड़कियों की संख्या केवल २५४ थी। ८२९९ लड़कों ने हिन्दी और उर्दू मिडिल का इम्तहान दिया। पर लड़कियाँ केवल ४९ थीं। इनमें ईसाइयों ही की संख्या अधिक थी।

संयुक्त-प्रान्त में स्त्री-शिक्षा बहुत ही अनुन्नत दशा में है। सन् १९०७ में ७६७ प्राइमरी कन्या-पाठशालायें थीं। १९०९ में इनकी संख्या ९३८ हुई—अर्थात् दो वर्ष में १७१ पाठशालायें बढ़ीं। परन्तु १९०९ से १९११ तक उनकी संख्या में कोई विशेष उन्नति नहीं हुई; क्योंकि १९११ में केवल ९४१ पाठशालायें थीं। जहाँ पहले दो वर्षों में डेढ़ सौ से ऊपर पाठशालायें बढ़ी थीं वहाँ गत दो वर्षों में केवल ३ बढ़ीं। परन्तु इन पाठशालाओं में कन्याओं की संख्या बहुत घट गई। १९०७ में ३०,९६३ कन्यायें पढ़ती थीं। १९०९ में इनकी संख्या ३९,३१६ हुई, अर्थात् ८३४३ बढ़ीं। परन्तु १९११ में केवल ३७,३६५ रह गईं—अर्थात् १९५१ लड़कियाँ घट गईं।

अब कुछ पाठशालायें ऐसी खुलती जाती हैं जिनका प्रबन्ध स्वयं स्त्रियाँ करती हैं। कन्या-पाठशाला देहरादून में श्रीमती महादेवी और काशी की सेन्ट्रल हिन्दू पाठशाला में श्रीमती सञ्जीवराव हिन्दू-रमणियों में आदर्श हैं। इसी प्रकार आर्य-समाज द्वारा अनेक स्थलों में पाठशालायें खुलती जाती हैं। सबसे बड़ी कठिनाई, जो स्त्री-शिक्षा के प्रचार में बाधा डालती है, अध्यापिकाओं की अप्राप्ति है। गवर्नमेंट की ओर से लखनऊ के नार्मल स्कूल में अध्यापिकायें तैयार की जाती हैं। वहाँ उनको शिक्षा नवीन प्रणाली सिखलाई जाती है। इस स्कूल अद्भुत प्रभाव पड़ा है। यहाँ से कई अध्यापिकाएँ पढ़ कर आज कल देश-सेवा कर रही हैं। ऐसे स्कूलों की अन्य नगरों में भी आवश्यकता है।

परदे और बाल-विवाह के रिवाज से स्त्री-शिक्षा की वृद्धि में बहुत बाधा उपस्थित होती है। पर दोनों प्रथायें अब कम होती जाती हैं। ऐसे स्कूल खुलते जाते हैं जहाँ परदानशीन स्त्रियाँ भी लिख पढ़ना सीख सकें। अनेक स्थानों में लड़के और लड़कियाँ साथही साथ पढ़ती हैं। संयुक्त-प्रान्त में, १९ में, प्राइमरी स्कूलों में २३११ लड़कियाँ लड़कों स्कूलों में पढ़ती थीं। परन्तु १९११ में इनकी संख्या ७९३४ हो गई—अर्थात् इस वर्ष ५६२३ लड़कि बढ़ीं। मदरास और बर्मा में तो लड़कों के सा पढ़ने वाली लड़कियों की संख्या उनसे भी अधि है जो लड़कियों के स्कूलों में पढ़ती हैं। सन् १९९ संयुक्त-प्रान्त के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर ने प्रस्ताव किया कि लड़कों के स्कूलों में ८ वर्ष त की लड़कियाँ भी पढ़ाई जायँ और उनकी फी माफ़ की जाय। उन्होंने शाहजहाँपुर, बिजनौर और एटा का उदाहरण दिया, जहाँ लड़कों के साथ लड़कियाँ भी स्कूलों में पढ़ती थीं। सन् १८९६ में गवर्नमेंट ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया, और, यद्यपि, लोग इसका विरोध करते रहे, तथापि लड़कियों की संख्या बढ़ती ही गई। सन् १९०६ में सर जेम्स लाटूश ने आज्ञा दी कि पाँच लड़कियों पर आठ आना प्रति मास ख़र्च लड़कों के स्कूल में दिया जायगा। इस आज्ञा से मुदर्रिसों का उत्साह बहुत बढ़ गया और इन स्कूलों में छः हज़ार से दस हज़ार लड़कियाँ हो गईं। एक वर्ष के अनन्तर मुदर्रिसों को लड़कियों के लिए रुपया दिया जाना बन्द कर दिया गया, परन्तु अब भी अनेक ज़िलों में लड़कों के साथ लड़कियाँ पढ़ती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे स्कूल, जिनमें लड़के और लड़कियाँ एक साथ पढ़ती हैं, अमेरिका देश में बहुत हैं। ऐसे स्कूलों में जिस प्रकार की शिक्षा मिलती है वह बालिकाओं के लिए विशेष उपयोगी नहीं होती। स्त्रियों के लिए भिन्न पाठ-विधि की आवश्यकता है। उनको सिलाई सिखलाना चाहिए। उनकी पाठ्य पुस्तकों में गृहस्थ-धर्म-सम्बन्धी पाठ होने चाहिए। ये सब बातें लड़कों के स्कूल में नहीं हो सकतीं। लड़कों के व्यायाम में भी वे शरीक नहीं हो सकतीं। उनके बराबर लड़कियों को गणित सीखना साधारणतः अनावश्यक है। परन्तु हमारे देश में अध्यापिकायें नहीं मिलतीं। जो मिलती हैं उनमें यथेष्ट योग्यता नहीं। मुदर्रिस कम से कम मिडिल पास होते हैं। आठ वर्ष तक बहन-भाई एक साथ खेलते हैं, एक साथ मेले तमाशे में जाते हैं। ऐसी अवस्था में कोई आश्चर्य नहीं कि भारतवर्ष में इस समय जितनी कन्यायें शिक्षा प्राप्त कर रही हैं उनमें ४२ फ़ी सदी लड़कों के साथ स्कूलों में पढ़ती हैं।

कन्या-पाठशालाओं का निरीक्षण इन्स्पेक्ट्रस (Inspectress) द्वारा होता है। गत वर्ष इनकी संख्या ५ से ७ की गई। एक इन्स्पेक्ट्रेस के अधीन कई ज़िलों के स्कूल होते हैं। इस प्रान्त की सब इन्सपेक्ट्रेसों के ऊपर एक चीफ़ इन्सपेक्ट्रेस हैं जो लखनऊ में रहती हैं और प्रान्त भर के स्कूलों का निरीक्षण करती हैं। इन्सपेक्ट्रेस प्रायः योरोपियन हैं; परन्तु हिन्दी और उर्दू जानती हैं। इनको हिन्दी-उर्दू में परीक्षा देनी पड़ती है। हिन्दू-रमणियाँ अभी इस काम के योग्य नहीं मिलतीं। कन्या-पाठशालाओं का निरीक्षण कठिन कार्य है। एक स्कूल से दूसरे स्कूल का फ़ासिला बहुत है। कई स्कूल गाँव में रेल या सड़क से दूर हैं। उनके आस पास निरीक्षक को कहीं रात काटने के लिए स्थान नहीं मिल सकता। इसलिए कई स्कूल ऐसे हैं जहाँ इन्सपेक्ट्रेस नहीं पहुँच सकतीं।

इस प्रान्त में लड़कियों के लिए केवल एक कालेज लखनऊ में है। इसमें उनके लिए निवास-स्थान (Boarding House) भी है। हिन्दू और मुसलमानों के लिए अलग अलग छात्रालय (Hostel) बने हैं; परन्तु इनमें कोई रहता ही नहीं।

भारत गवर्नमेंट ने ५०,००० रुपया कन्या-पाठशालाओं के लिए घर बनवाने के निमित्त दिये हैं। लखीमपुर और उन्नाव के ज़िलों के निवासियों ने भी इस निमित्त धन एकत्र करने का सङ्कल्प किया है। खुरजा में बाबू जानकीप्रसादजी ने पाठशाला के लिए बहुत धन व्यय करके एक विशाल भवन बनवा दिया है।

अभी हमारे सहस्रों देशवासी स्त्री-शिक्षा के महत्त्व को नहीं समझते। लाखों लड़कियाँ मूर्खता की गोद में पाली जाती हैं। हज़ारों केवल वर्ण-माला पढ़ कर शिक्षिता होने का गौरव प्राप्त कर लेती हैं। यदि दैववश कोई पढ़ने वाली लड़की विधवा हो जाय तो बस विद्या पढ़ना मनहूस कह कर कुटुम्ब में स्त्री-शिक्षा बन्द कर दी जाती है। कई ऐसे पुरुष हैं जो अपनी लड़की को स्कूल भरती करने लाते हैं और कहते हैं कि इसको केवल पढ़ना सिखलाया जाय। लिखना बिलकुल नहीं। उसके हाथ में क़लम देते ही पढ़ना बन्द करने की धमकी देते हैं। कई सब कुछ पढ़ाते हैं, पर हिसाब नहीं। तिस पर भी उन्नति के लक्षण दिखलाई दे रहे हैं। हमारे प्रान्त में तीन ऐसी सुन्दर पत्रिकायें निकलती हैं जो स्त्रियों के लिए बहुत उपयोगी हैं। अनेक विदुषी वनितायें इन में लेख लिखती हैं। यदि शिक्षित पति अपनी स्त्री को, और भाई बहिन को स्वयं पढ़ावे तो देश में विद्या-प्रचार में बहुत वृद्धि हो। याद रखना चाहिए कि विद्या ही हर प्रकार की उन्नति का मूल है।

डाकिया।

सोरठा

पगड़ी नीली-लाल, चटकीली, सिर पर कसे।
त्यों कन्धे पर डाल डाक-बैग दृढ़ चाम का॥ १॥
आता है जब पास पत्र बाँटता डाकिया।
होते हैं सहुलास तब सब जन छोटे बड़े॥ २॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूर प्रवासी बाल विद्यारत परदेश में।
देख उसे तत्काल उसकी दिसि हैं दौड़ते ॥ ३ ॥
बाला उसे निहार बालक को हैं भेजती।
पति-प्रेम-उपहार इच्छित पत्री के लिए ॥ ४ ॥
पाकर सुत का पत्र उसको वृद्ध अशीसते,
सुख-समृद्धि एकत्र अपने में अनुमान कर ॥ ५ ॥
स्वजनपत्र, अख़बार आदि परम रुचि कर जिन्हें।
करते हैं सत्कार उसका वे मुसकान से ॥ ६ ॥
पर होते संवाद भले बुरे सब भांति के।
मिलता अतः विषाद भी उसके कर से कभी ॥ ७ ॥
तदपि नित्य निजकृत्य करता है कर्तव्यवश।
होकर निस्पृह, नित्य रहता है, वह कृत्य-रत ॥ ८ ॥
होते कभी न रुष्ट नर उसके व्यवहार से।
कहते कभी न, "दुष्ट! कुसंवाद क्यों दे गया?" ॥ ९ ॥
फिर हम भी निज कृत्य करें न क्यों कर्तव्यवश।
होकर निस्पृह, नित्य रहें न क्यों हम कृत्य-रत? ॥१०॥
क्यों कर रोष निकाम दें औरों को दोष हम।
जब वे अपना काम करते हों कर्तव्यवश? ॥ ११ ॥
है अनुचित यह बात लोगों से रहना विमन।
है यह किसे न ज्ञात "सुख-दुख मिलता कर्म्मवश"? ॥१२॥

सत्कविदास।

अमेरिका में भारतीय विद्यार्थियों के आश्रम।

अब तक वाशिङ्गटन प्रान्त के सीयटल नगर में भारतीय विद्यार्थियों के रहने के लिए कोई सुभीते का अच्छा आश्रम न था। हाल ही में श्रीयुत गुरु-दत्त-कुमारजी ने बारह हज़ार रुपये देकर इस काम के लिए एक मकान ख़रीदा है। इससे अब वह दिक़्त दूर हो गई।

यह भारताश्रम (United India House) सीयटल नगर के वाशिङ्गटन-विश्वविद्यालय के पास ही है। इस समय इस आश्रम में लगभग एक दर्जन विद्यार्थी रहते हैं जिनमें बङ्गाली, पञ्जाबी [illegible] महाराष्ट्र सभी लोग हैं। इनमें से छः विद्यार्थी वाशिङ्गटन-विश्वविद्यालय में विद्युत्, यन्त्र, रसायन आदि शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त करते हैं। शेष [illegible] स्कूलों में पढ़ते हैं। कुछ दिनों के बाद ही वे भी विश्व-विद्यालय में भरती होंगे। ये सब विद्यार्थी बड़े [illegible] उत्साही हैं; बड़े शौक़ से ये यहाँ विद्या-ध्ययन कर [illegible] हैं। जिन विद्यार्थियों के माँ-बाप कुछ धनवान् हैं [illegible] यहाँ से जर्मनी और इँगलैंड जाने का विचार रखते हैं। वे वहाँ के कारख़ानों में कुछ दिन तक अनुभव प्राप्त कर के फिर भारत को लौटेंगे।

यहाँ एक आश्रम और भी है। उसका नाम है भारताश्रम-बोर्डिंग (Bharat-Ashram Boarding)। इस आश्रम में भी हमारे देश के कितने ही विद्यार्थी रहते हैं। उनमें से दो तीन विद्यार्थी आश्रम में भोजन नहीं करते। वे अमेरिकन बोर्डिंग हाउस का तीन घंटे काम कर देते हैं, जिसके बदले में उन्हें दिन में तीन बार भोजन मिलता है। इस आश्रम में भोजन बनाने का बहुत अच्छा प्रबन्ध है। सबको एक एक काम सुपुर्द कर दिया गया है। कोई भोजन बनाता है; कोई बर्तन साफ करता है; कोई रसोई घर की सफाई करता है; किसी के ऊपर सामान आदि लाने का भार है। यदि कोई अपने काम में ग़फ़लत या लापरवाही करे तो मैनेजर को, जो उन्हीं में से एक है, अधिकार है कि वह ग़ाफ़िल या लापरवाह विद्यार्थी से ज़बरदस्ती काम ले। भोजन पाश्चात्य-रीति के अनुसार मेज़ और कुर्सी पर बैठ कर किया जाता है। हाथों से नहीं खाते। काँटों और चमचों का प्रयोग होता है।

यहाँ "हिन्दुस्तान-क्लब" नाम का भारत-वासियों के लिए एक क्लब भी है। पहले भी यहाँ कितने ही भारतीय क्लब स्थापित किये गये थे; परन्तु वे चले चलाये नहीं। इधर भारतीय छात्रों की बड़ी कोशिश से "हिन्दोस्तान क्लब" स्थापित हुआ है। अभी इसके थोड़े ही सदस्य हैं, परन्तु आशा है कि भविष्यत् में सदस्य-संख्या बढ़ जायगी और क्लब की अच्छी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्नति भी होगी। वही भारतवासी इसका सदस्य हो सकता है जो अँगरेज़ी और मातृ-भाषा को अच्छी तरह पढ़ लिख सकता हो। क्लब की मासिक फ़ीस २५ सेंट अर्थात् कोई १२ आने है। क्लब के उद्देश ये हैं:—

(१) यदि किसी भारतीय विद्यार्थी पर कुछ विपत्ति आवे और उसके पास धन न हो तो क्लब के कोष से उसे सहायता दी जाय।

(२) यदि कोई भारतीय विद्यार्थी अमेरिका आना चाहे तो क्लब का मन्त्री, पूछने पर, उसे सब बातें पत्र द्वारा लिख भेजे।

(३) पूरी पूरी सूचना मिलने पर क्लब के सदस्य भारत से आने वाले विद्यार्थी को जहाज़ पर लेने के लिए जायँ और उसके ठहरने का उचित प्रबन्ध कर दें। इस क्लब का पता है:—

The Hindusthan Club, 4514,
8th Ave N. E.,
Seattle (Wash),
United States, America.

आगामी सन् १९१५ में कैलीफोर्निया प्रान्त के सानफ्रान्सिस्को नगर में संसार भर की सबसे बड़ी प्रदर्शिनी होगी। उस समय धन कमाने का अच्छा मौक़ा है। उक्त प्रदर्शिनी में दुनिया के सब देशों वाले अपने देशों की बनी हुई चीज़ें बेंचने के लिए लावेंगे। भारतवासी भी यदि ऐसा ही करें तो बहुत लाभ होना सम्भव है।

इस देश में पंजाब के सिख लोग, हज़ारों की संख्या में, पहुँच गये हैं। उन्हें मज़दूरी के सिवा दूसरा काम नहीं मिलता; परन्तु इसी से वे अच्छा धन कमाते हैं। हाल ही में यहाँ वालों ने हमारे देश के मज़दूरों का आना रोक दिया है; परन्तु विद्यार्थी और व्यापारी लोगों के लिए कोई रुकावट नहीं है। हाँ, यह आवश्यक समझा जाता है कि चाहे व्यापारी हो चाहे विद्यार्थी; जहाज़ से उतरते समय उसके पास पचास डालर, अर्थात् डेढ़ सौ रुपये होना चाहिए। इसके सिवा उसका स्वास्थ्य भी अच्छा हो। चीन और जापान से तो सैकड़ों-हज़ारों विद्यार्थी प्रति वर्ष यहाँ आते हैं। परन्तु भारतीय विद्यार्थी यहाँ बहुत ही थोड़े हैं। इस बात की बड़ी ज़रूरत है कि हमारे देश के शिक्षित युवक यहाँ ख़ूब आवें और शिल्प-कला आदि को यहाँ सीख कर स्वदेश का भला करें।

एस० खेमचन्द (सिएटल-अमेरिका)।

काव्यप्रभाकर।

"तरुः प्रसूते पुष्पाणि मरुद्वहति सौरभम्"।

हिन्दी-साहित्य में एक ऐसे ग्रन्थ की बड़ी आवश्यकता है जिसमें कविता-सम्बन्धी सब विषयों का विशद रूप से वर्णन हो। यद्यपि कविता सम्बन्धी कई ग्रन्थ हैं, पर उनके लिखने की प्रणाली ऐसी है कि वे आजकल के लिए यथोचित उपयोगी नहीं। इसके सिवा क्लिष्ट होने के कारण कुछ दुर्बोधि भी हैं। इस त्रुटि को दूर करने के लिए समय समय पर जो प्रयत्न किये गये हैं, "रस-कुसुमाकर", "रस-वाटिका" और "अलङ्कार-प्रकाश" आदि ग्रन्थ उन्हीं प्रयत्नों के फल हैं। ये ग्रन्थ अपने ढँग के अच्छे हैं, पर इनमें भी सब विषयों का वर्णन नहीं आया है। ख़ुशी की बात है कि जिस ग्रन्थ के विषय में यह लेख लिखा जा रहा है वह इसी त्रुटि को दूर करने के लिए प्रकाशित किया गया है। इस "साहित्य-विषयक सर्वाङ्ग-पूर्ण और सटीक अपूर्व काव्य-ग्रन्थ" का नाम है—"काव्यप्रभाकर"। हिन्दी के हित-चिन्तकों को बाबू जगन्नाथप्रसाद जी (भानुकवि) का कृतज्ञ होना चाहिए जिन्होंने इस शुभ-उद्देश की पूर्त्ति के लिए यह प्रशंसनीय प्रयत्न किया है।

इस ग्रन्थ में द्वादश मयख हैं। विस्तृत भूमिका से पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। छपाई कल्याण के "लक्ष्मी-वेङ्कटेश्वर प्रेस" की है। सुन्दर जिल्द बँधी है। मूल्य ५) है। आरम्भ में ग्रन्थकार का एक प्रसन्न-वदन चित्र भी है। पुस्तक दर्शनीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थकार ने कवियों को कृष्ण मान कर सुदामा के चार चावलों के रूप में यह बृहद्ग्रन्थ समर्पित किया है। तद्विषयक आपकी नम्रतापूर्ण उक्ति सुनिए:—

"कोविद कवीशन को कृष्ण मान भेंट देत
अङ्गीकार कीजे चारि चाँउर सुदामा के।"

जो लोग कवि होने की योग्यता रखते हैं, आशा है, वे भानुजी की इस प्रेम-भरी भेंट को कृतज्ञता-पूर्वक स्वीकार करके कृतकृत्य होंगे, और अपने को धन्य समझेंगे। किन्तु मेरी राय तो ये कृष्ण और सुदामा दोनों ही धन्य हैं।

कवि और कविताप्रेमी दोनों के लिए यह ग्रन्थ लाभदायक है। भानुजी का उद्योग सर्वथा प्रशंसनीय है। इसमें सन्देह नहीं कि इसके सङ्ग्रह और सम्पादन करने में आपको बहुत परिश्रम हुआ होगा।

हिन्दी के पत्रों में जो समालोचनायें इस पुस्तक की निकली हैं उनमें इसकी खूब प्रशंसा की गई है। यह है भी प्रशंसनीय। परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि कहीं कहीं इसमें कुछ ऐसी त्रुटियाँ दिखाई देती हैं जो बहुत खटकनेवाली हैं। भानुजी ने लिखा है कि इस पुस्तक के विषय में जो सम्मतियाँ उन्हें दी जावेंगी उन पर, दूसरे संस्करण के समय, वे विचार करेंगे। आपकी यह उदारता स्तुत्य है। इससे यह मालूम होता है कि आप प्रशंसा के ही भूखे नहीं हैं। आप यह भी चाहते हैं कि यदि आपकी पुस्तक में कोई त्रुटि हो तो दूसरे संस्करण में वह निकाल दी जाय। पर जहाँ तक मुझे स्मरण है किसी ने इसकी तारीफ़ करने के सिवा कोई बात ऐसी नहीं कही जिससे ग्रन्थकार का यह उद्देश सफल हो।

मैं इस योग्य नहीं कि भानुजी की त्रुटियाँ दिखला सकूँ। पर उनके वचनों पर विश्वास करके अपनी मन्द बुद्धि के अनुसार कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।

इस पुस्तक की भूमिका में इसकी रचना के कारण और प्रत्येक मयूख में वर्णित विषयों के उल्लेख के सिवा और भी कितनी ही उपयोगी बातें हैं—जैसे काव्य का प्राचीन इतिहास, वर्तमान समय में काव्यावनति का कारण, काव्य से लाभ और [illegible] निर्माण के कारण इत्यादि। भानुजी ने वर्तमान [illegible] में काव्यावनति के ये कारण बतलाये हैं—

"इस काव्य की अवनति के कई प्रधान [illegible] हैं। जिनमें से प्रथम तो यह कि अब पूर्ववत् [illegible] नहीं रहा। द्वितीय वर्तमान काल के राजा महाराजा [illegible] में प्रायः तादृश रुचि का अभाव ही प्रतीत हो [illegible] है। इसी से विद्याविदग्ध सज्जनों की लेखनी [illegible] हतोत्साहित हो मौनावलम्बित हो रही है। तृतीय [illegible] कितने ही बुद्धिमान् महाशय विदेशीय भाषा के [illegible] प्रेमी ही नहीं वरन अभिमानी भी हो गये हैं। विचारी मातृभाषा हिन्दी तो उनके ध्यान में ही नहीं आती। इसके अतिरिक्त कतिपय नवशिक्षित बाबू लोग सकल-कला-सम्पन्न संस्कृत-भाषा को भी तुच्छ समझ [illegible] उस ओर ध्यान देना तो दूर रहा निहारते तक नहीं हैं। हा! कितने शोक का स्थल है कि जिन कृतविद्य और भव्य महाशयों के ऊपर हम अपने साहित्योद्धार की आशा रखते हैं उन्हीं के द्वारा इस काव्य का तिरस्कार! खेद!!! किन्तु हम उनके एतादृश विचार को निज कण्ठविभूषित चिन्तामणि को भूल मरुस्थल की बालुका में खोजने के सदृश भ्रमात्मक समझते हैं।"

यह लेख "अलङ्कार-प्रकाश" की भूमिका से लिया गया है। कहीं कहीं कुछ शब्द घटा बढ़ा दिये गये हैं। परन्तु आश्चर्य की बात है कि भानुजी ने इस विषय में अलङ्कार-प्रकाश का नामोल्लेख तक न किया। देखिए "अलङ्कारप्रकाश" की भूमिका का यही अंश इसी तरह है या नहीं:—

"एक तो इस समय के राजा महाराजाओं में प्रायः तादृश रुचि का अभाव सा हो गया है। इससे विद्वानों की लेखनी ने भी हतोत्साहित होकर मौनावलम्बन कर लिया है। द्वितीय कुछ विद्वद्वर्य विदेशीय (इंग्रेजी) भाषा के पूर्ण प्रेमी हो गये हैं। उन लोगों के यह विचारी मातृ भाषा हिन्दी कुछ दृष्टि में ही नहीं आती। इसके सिवाय वे लोग सकलकलासम्पन्न संस्कृत भाषा को भी तुच्छ समझ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के उस ओर कुछ ध्यान नहीं देते हैं। ओह! कितने शोक का स्थल है कि जिन कृतविद्य महाशयों के ऊपर हम हमारे साहित्य के उद्धार की आशा रखते हैं उन्हीं के द्वारा इसका ऐसा निरादर, किन्तु हम तो उनके एतादृश विचार को निज कण्ठ-विभूषित चिन्तामणि को भूल मरुस्थल की बालुका में उसे खोजने के सदृश भ्रमात्मक समझते हैं।"

इसी तरह और भी कई जगह "अलङ्कार-प्रकाश" और "काव्य-प्रभाकर" की भूमिका परस्पर आधाराधेय भाव धारण किये हुए है। परन्तु, जैसा ऊपर कहा गया है, भानुजी ने इस विषय में कुछ नहीं लिखा। यह तो माना ही नहीं जा सकता है कि भानुजी ने स्वयं ही ये कारण विचार कर लिखे हों। दो लेखकों के भाव कभी कभी परस्पर लड़ जाते हैं सही, पर कहीं कहीं, सब कहीं नहीं। अच्छा, थोड़ी देर के लिए यह भी मान लिया जाय कि भाव मिल जाते हैं, पर क्या इस प्रकार शब्द-रचना भी मिल जाती है? सम्भव है असावधानी के कारण भानुजी "अलङ्कारप्रकाश" का नाम लिखना भूल गये हों। एक और पुस्तक का भी नाम नहीं लिखा गया। उसकी भी इबारत आपने अपने ग्रन्थ की "रस की सामग्री" में कई जगह नक़ल की है। वह पुस्तक "रसवाटिका" है।

"काव्यकारण" नामक लेख में भानुजी ने कविता के निम्न लिखित छः अङ्ग माने हैं:—

"छन्द चरण भूषण हृदय कर मुख भावऽनु भाव।
चख थायी श्रुति संचरी काव्य सुअंग सुभाव"

इसमें 'काव्य' के स्थान में यदि स्त्रीलिङ्ग 'कविता' शब्द रक्खा जाता तो अधिक अच्छा होता। कविता की प्रायः कान्ता की उपमा दी जाती है। और यही उपमा अच्छी भी मालूम होती है। अतएव उसके अङ्ग निरूपण करते समय 'काव्य' शब्द का प्रयोग खटकता है। आपकी राय है कि किसी किसी ने कविता के दस अङ्ग माने हैं और किसी किसी ने आठ। पर भानुजी 'वेदवत्' काव्य के भी छः ही अङ्ग मानना मुनासिब समझते हैं। जान पड़ता है कि 'वेदवत्' काव्य की प्रतिष्ठा स्थापन करने के लिए ही उसके ये छः अङ्ग बताये गये हैं। बहुत अच्छी बात है। पर यह तो बताइए कि फिर गद्य काव्य की क्या दशा होगी? क्योंकि आपके पूर्वोक्त दोहे में छन्द भी कविता का एक अङ्ग माना गया है। इससे सिद्ध होता है कि छन्द के बिना कविता सर्वाङ्गपूर्ण होही नहीं सकती। तो क्या गद्य-काव्य को काव्यत्वही न प्राप्त होगा? संस्कृत में जो कादम्बरी आदि काव्य हैं वे पद्यात्मक नहीं; तो क्या उनकी गणना काव्य में नहीं? अथवा क्या वे षड्गु काव्य हैं?

पहले गद्य का कम प्रचार था। पद्य की ही अधिकता थी। अतएव उस समय किसी ने छन्द को भी कविता का एक अङ्ग कह दिया हो तो क्या आज कल भी वही बात कहते चले जाना चाहिए? आपने तो भूमिका के आरम्भ में ही लिखा है कि:— "यह ग्रन्थ प्राचीन तथा अर्वाचीन रीत्यनुसार काव्य निर्माण की रीति का पथ-दर्शक है"। फिर कविता का अङ्ग छन्द क्यों? यह कैसी पथ-दर्शकता है? पद्य के बिना कविता सर्वाङ्ग-पूर्ण होही नहीं सकती—यह कहना, मेरी राय में तो, भ्रमात्मक ज़रूर है। महापात्र विश्वनाथ के "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" वाक्य को आप कविता का बिलकुल ठीक लक्षण मानते हैं। पर इसमें भी 'वाक्य' ही का प्रयोग है, छन्द का नहीं। अतएव फिर कविता के पाँचही अङ्ग क्यों न माने जायँ? सच तो यह है:—

"सुरम्यता ही कमनीय कान्ति है,
अमूल्य आत्मा रस है मनोहरे!
शरीर तेरा सब शब्द मात्र है,
नितान्त निष्कर्ष यही यही यही॥"

इस ग्रन्थ के प्रथम मयूख में "छन्द वर्णन" है। छन्दःशास्त्र-विषयक और भी कितनी ही बातों का वर्णन इसमें किया गया है। इस विषय को भानुजी ने अपने "छन्दः प्रभाकर" से उद्धृत किया है। आपने छन्दों के उदाहरण प्रायः ऐसे दिये हैं। जिनके पढ़ने में किसी को सङ्कोच नहीं हो सकता। अर्थात् कोई अश्लील उदाहरण नहीं है। यह आपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत अच्छा किया। परन्तु, कहीं कहीं, विशेष कर गणात्मक छन्दों के उदाहरणों में, प्रसाद-गुण का अभाव पाया जाता है। दो एक उदाहरण सुनिए:—

मन्दाक्रान्ता।

"मो भा नीती तगि कहत क्यों अज्ञता रे अजाना!
सर्वव्यापी समुझि मुहिं जो आत्मज्ञानी सुजाना।
मेरी भक्ती सुलभ तिहिं को शुद्ध है बुद्धि जाकी।
मन्दाक्रान्ता करत मुहिं को धन्य है प्रीति ताकी"॥

स्रग्धरा।

"मोरे भैाने ययू यो कहहु सुत!
कहाँ ते लिये आवते हो?
भाका आनन्द आजी, तुम फिर
फिर के माथ जो नावते हो॥
बोले माता! विलोक्यो, फिरत सह
चमू बाग में स्रग्धरे ज्यों।
काटी मालाऽ रुमारे विपुल रिपु
बली अश्व लो जीति कै त्यों"॥

दुर्बोधता आदि दोषों को जाने दीजिए। इन उदाहरणों की भाषा को तो देखिए, कैसी बेढँगी है। यद्यपि कविता एक वस्तु है, छन्द दूसरी वस्तु; और भानुजी का मतलब, यहाँ पर, छन्द की गति दिखाने ही से है, परन्तु पूर्वोक्त दोष उनकी योग्यता के बाधक ज़रूर हैं।

(असमाप्त)

मैथिलीशरण गुप्त।

रामायण।

(कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के एक लेख का भावार्थ)

काव्यों के दो बड़े भाग किये जा सकते हैं। एक वह जिसमें केवल कवि ही की कथा हो और दूसरा वह जिसका सर्व-साधारण या एक बड़े सम्प्रदाय की कथा से सम्बन्ध हो। पहली श्रेणी के काव्यों से ऐसे काव्यों का मतलब नहीं जिन्हें सिवा कवि के और कोई समझ ही न सके; यदि ऐसा हो तो वे केवल एक पागल की बक मात्र समझे जायँगे। ऐसे काव्यों से उन काव्यों मतलब है जिनमें कवि ने अपनी प्रतिभा के निज के सुख-दुख, निज की कल्पना और निज के जीवन के अनुभवों द्वारा सारे मनुष्य-समुदा चिरन्तन हृदय-विकारों और हृदय के गुप्त को प्रकट किया हो। दूसरी श्रेणी के काव्य कवियों द्वारा रचे जाते हैं जो अपनी रचनाओं समग्र देश अथवा समग्र युग के भावों और भवों को प्रकट करके अपने ग्रन्थों को मानव का जीवन-धन बना जाते हैं। इसी प्रकार के को महाकवि कहना चाहिए। देश भर, जाति भर, उन्हीं के द्वारा बोलती हुई मालूम है। ऐसे महाकवियों की रचना किसी व्यक्ति की रचना के समान नहीं होती। उनकी वनके उस बृहद् वृक्ष के सदृश होती है जो जन्म-स्थान की भूमि को अपनी सुविस्तृत छाया आश्रय देता है। इसमें सन्देह नहीं कि शकु और कुमार-सम्भव में कालिदास की निपुण अच्छा परिचय मिलता है। परन्तु, भारतवर्ष लिए, रामायण और महाभारत—पुनीत जाह्नवी शिखर-राज हिमाचल के सदृश हैं। व्यास वाल्मीकि तो केवल उपलक्ष मात्र हैं।

वास्तव में व्यास और वाल्मीकि किसी विशेष के नाम नहीं। ये नाम तो केवल उद्देश से रख लिये गये हैं। इन दो बड़े ग्रन्थों इन दो महा-काव्यों के—जो भारत-वर्ष भर में मान्य हैं, रचयिताओं के नाम का कोई पता कवि अपने ही काव्यों में बिलकुल छिप से गये हैं

हमारे देश में रामायण और महाभारत प्रकार के ग्रन्थ हैं, प्राचीन ग्रीस में उसी का ग्रन्थ इलियड् था। समस्त ग्रीस में आदर और प्रवेश था। कवि होमर ने अपने और काल के कण्ठ में अपनी भाषा दान की

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके वाक्य उसके देश के एक कोने से दूसरे कोने तक गूँज उठे और चिरकाल तक गूँजते रहे।

किसी आधुनिक काव्य में इतनी व्यापकता नहीं पाई जाती। मिल्टन के "पैराडाइज़ लास्ट" नामक ग्रन्थ में भाषा का उत्कर्ष, प्रयुक्त छन्दों का गाम्भीर्य और रस की गम्भीरता की कमी नहीं। तो भी वह सारे देश का धन नहीं। वह तो केवल पुस्तकालयों के आदर की सामग्री मात्र है।

अतएव प्राचीन काव्यों को एक पृथक् श्रेणी में रखना चाहिए। प्राचीन काल में वे देवताओं और दैत्यों की तरह विशालकाय थे। परन्तु वर्तमान समय में उस श्रेणी के काव्य लुप्त हो गये हैं।

प्राचीन आर्य्य-सभ्यता की एक धारा योरप को गई; दूसरी भारत को आई। इन धाराओं से योरप और भारत—दोनों स्थानों में दो दो महाकाव्यों की उत्पत्ति हुई। इन्हीं महा-काव्यों के द्वारा उन दोनों धाराओं की सभ्यता के इतिहास और सङ्गीत की रक्षा होती रही है।

मैं विदेशी ठहरा। इसलिए ग्रीस के विषय में मैं यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि उसने अपने दोनों महाकाव्यों द्वारा अपनी सारी प्रकृति को प्रकट करने में सफलता प्राप्त की है या नहीं। परन्तु यह निश्चय है कि भारत-वर्ष ने रामायण और महाभारत में कुछ बाक़ी नहीं रक्खा।

इसी कारण शताब्दियों पर शताब्दियाँ व्यतीत हो जाने पर भी, भारतवर्ष में रामायण और महाभारत का वैसा ही प्रचार है। उनका सोता ज़रा भी शुष्क नहीं हुआ। प्रति दिन, घर घर में, गाँव गाँव में, उनका पाठ होता है। बनिये की दुकान में और राजा के महल में—सब जगह—उनका समान आदर है। धन्य हैं वे दोनों महा कवि। उनके नाम तो काल के महा-प्रशस्त विस्तार में लुप्त हो गये, किन्तु उनकी वाणी आज तक करोड़ों नर-नारियों के मनों में भक्ति और शान्ति की ऐसी प्रबल लहरों को उत्थित करती है जो हज़ारों वर्ष की उत्तमोत्तम मिट्टी लाकर आधुनिक भारत के हृदय को उर्व्वरा करती हैं।

इसलिए रामायण और महाभारत को केवल महाकाव्य ही न कहना चाहिए। वे इतिहास भी हैं। वे किसी समय अथवा घटनाविशेष का इतिहास नहीं। वे भारतवर्ष के चिरकाल का इतिहास हैं। अन्य इतिहासों में, समय समय पर, परिवर्तन होता है, परन्तु इन इतिहासों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। भारतवर्ष की सारी साधना, आराधना और कल्पना का इतिहास इन दोनों महाकाव्य-रूपी प्रासादों के चिरकालरूपी सिंहासन पर विराजमान है।

इसी लिए रामायण और महाभारत की समालोचना का आदर्श अन्य काव्यों की समालोचना के आदर्श से भिन्न होना चाहिए। राम का चरित उच्च था या नीच, और लक्ष्मण का चरित भला लगता है या नहीं—केवल इतनी ही आलोचना यथेष्ट नहीं है। समालोचक को श्रद्धापूर्वक इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि समस्त भारतवर्ष सहस्रों वर्ष से इन महाकाव्यों को किस दृष्टि से देखता आता है।

यहाँ पर हमें इस बात पर विचार करना है कि वह कौन सा सन्देश है जो रामायण द्वारा भारतवर्ष को प्राप्त होता है और वह कौन सा आदर्श है जो रामायण भारतवर्ष के आगे रखती है। साधारणतः लोगों ने समझ रक्खा है कि वीररसप्रधान काव्यों ही का नाम एपिक (Epic) है। इसका कारण यह है कि जिस देश और जिस काल में वीर-रस का गौरव प्रधान रहा हो उस देश और उस काल के महाकाव्य भी अवश्य ही वीर-रस से पूर्ण होंगे। रामायण में भी यथेष्ट मार-काट का वर्णन है। राम में भी असाधारण बल था। किन्तु तो भी रामायण में जो रस प्रधान है वह वीर रस नहीं। रामायण में शारीरिक बल का प्राधान्य प्रकट नहीं किया गया—युद्ध की घटनाओं ही का वर्णन करना उसका मुख्य विषय नहीं।

यह भी सच नहीं कि इस महाकाव्य में केवल किसी देवता की अवतार-लीलाओं का वर्णन है। कवि वाल्मीकि ने राम को अवतार नहीं माना; उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम को मनुष्य ही माना है। हम यहाँ संक्षेप में यह कह देना चाहते हैं कि यदि कवि ने रामायण में नर-चरित्र के बदले देव-चरित्र का वर्णन किया होता तो रामायण के गौरव का बहुत कुछ ह्रास हो जाता। राम-चरित्र इसी लिए महिमान्वित है कि वह मनुष्य-चरित्र से परे नहीं। रामायण में ऐसे सद्गुणों से पूर्ण पुरुषों की कथा है जिनसे विभूषित नायक की वाल्मीकि को अपने काव्य के लिए ज़रूरत थी। बालकाण्ड के प्रथम सर्ग में वाल्मीकि नारद से सारे सद्गुणों से सम्पन्न नायक का नाम पूछते हैं। उत्तर में नारद कहते हैं—"देवताओं में ऐसा कोई नहीं, मनुष्यों में राम ही सब गुणों से युक्त हैं"। इसी लिए रामायण में किसी देवता की कथा नहीं; उसमें नर-कथा ही का प्राधान्य है। किसी देवता ने मनुष्य का अवतार नहीं लिया। राम नामक मनुष्य ही अपने सद्गुणों के कारण देवता बन गया। महाकवि ने मनुष्यों के परमादर्श की स्थापना के लिए ही इस महाकाव्य को रचा था। तबसे आज पर्य्यन्त भारत-वासी बड़े आग्रह के साथ मनुष्य के इस आदर्श-चरित्र-वर्णन को पढ़ते हैं।

रामायण में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें एकही घर की कथा वृहद्रूप से वर्णन की गई है। पिता पुत्र में, भाई भाई में, पति-पत्नी में जो धर्म-बन्धन होता है—जो प्रीति और भक्ति का सम्बन्ध होता है—वह इसमें इतना ऊँचा दरसाया गया है कि सहज ही में महाकाव्य के अनुरूप कहा जा सकता है। अन्य महाकाव्यों का गौरव उनमें वर्णन किये हुए विजय, शत्रुदमन, और दो विरोधी पक्षों का आपस में रक्तपात, आदि घटनाओं के वर्णन से होता है। परन्तु रामायण की महिमा राम-रावण के युद्ध के कारण नहीं। इस युद्ध-घटना का वर्णन तो केवल राम और सीता के उज्ज्वल दाम्पत्य-प्रेम का दर्शन कराने के लिए है। रामायण में केवल यही दिखाया गया है कि पुत्र का पिता की आज्ञा का पालन, भाई का भाई के लिए आत्म-त्याग, पत्नी की पति के प्रति निष्ठा और राजा का प्रजा के प्रति कर्तव्य कहाँ तक हो सकता है। किसी देश के महाकाव्य में इस प्रकार व्यक्ति-विशेष का घरू सम्बन्ध वर्णनीय विषय नहीं समझा गया है।

पूर्वोक्त बातों से केवल कवि ही का परिचय नहीं मिलता, सारे भारत-वर्ष का परिचय मिलता है। इससे यह मालूम होता है कि भारत में और गृह-धर्म कितने महान् समझे जाते थे। महाकाव्य से यह बात स्पष्टतापूर्वक सिद्ध होती कि हमारे देश में गृहस्थाश्रम का स्थान कितना है। गृहस्थाश्रम हमारे ही सुख और सुभीते के नहीं; गृहस्थाश्रम सारे समाज का धारण वाला है। वह मनुष्य के यथार्थ भावों को दीप्त है। वह भारतवर्षीय समाज की नीव है। रामायण उसी गृहस्थाश्रम के महत्त्व को दिखानेवाला काव्य है। कष्ट और वनवास के दुःख दिखाकर रामायण इसी गृहस्थाश्रम को और भी अधिक दान करती है। कैकेयी और मन्थरा की कुमन्त्रणा ने अयोध्या के राज-गृह को विचलित कर दिया उस समय जो दुर्भेद दृढ़ता देखी गई उसे रामायण में, अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है। राजनैतिक शक्ति को नहीं, विजय की अभिलाषा को राजनैतिक महत्त्व को नहीं—किन्तु शान्ति-युक्त जीवन को ही रामायण ने करुणा के अश्रुओं स्नान कराकर वीर रस के सिंहासन पर बिठाया है।

विदेशी समालोचक कहा करते हैं कि रामायण में जिन चरित्रों का वर्णन है वे अतिप्रकृत हैं। उन यह उत्तर देना चाहिए कि यह अपने अपने पर अवलम्बित है। किसी विशेष प्रकृति लोगों को जो बात अतिप्रकृत जँचती है वही दूसरी तरह के लोगों को बिलकुल ही मालूम पड़ती है। हज़ारों वर्ष व्यतीत हो चुके, भारतवर्ष को रामायण में कोई अतिप्रकृत शयोक्ति नहीं दिखाई पड़ी। इसी रामायण की ने भारत-वर्ष के आबाल-वृद्ध-वनिता को शिक्षा ही नहीं दी, किन्तु आनन्द भी दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे केवल शिरोधार्य्य ही नहीं किया; किन्तु अपने हृदय में भी स्थान दिया। उनके लिए वह केवल धर्म-शास्त्र ही नहीं, किन्तु काव्य भी है।

राम हमारे लिए देवता हैं। पर साथ ही मनुष्य भी हैं। इसी तरह रामायण पर हमारी भक्ति भी है और साथ ही प्रीति भी है। यदि इस महा-काव्य की कविता भारतवर्ष के लिए किसी दूर बसे हुए कल्पना-प्रसूत लोक की सामग्री होती, अथवा वह हमारे समाज- संसार की सीमा के बाहर की कोई वस्तु होती तो राम और रामायण के सम्बन्ध में पूर्वोक्त बातें कभी न होतीं।

यदि कोई विदेशी समालोचक अपने देश के महाकाव्यों के आदर्श को सामने रख कर ऐसे महा-काव्य को अतिप्रकृत कहता है तो उसके देश के मुक़ाबले में भारत-वर्ष का एक और विशेषत्व प्रस्फुटित होता है। रामायण में भारतवर्ष ने जो कुछ चाहा वही पाया है। रामायण के सरल अनु-ष्टुप छन्दों द्वारा भारत-वर्ष का हृदय हज़ारों वर्ष से उछल रहा है। हमारे लिए रामायण और महा-भारत दोनों तुल्य हैं। पाठक, राम-चरित को केवल कवि का काव्य मत समझिए। भारतवर्ष की रामा-यण समझ कर उसका आदर कीजिए। ऐसा करने ही से आप भारत-वर्ष को रामायण द्वारा और रामायण को भारत-वर्ष द्वारा ठीक ठीक समझ सकेंगे। इस बात को स्मरण रखिए कि किसी गौरवभरी ऐतिहासिक कथा को भारत-वर्ष नहीं सुना चाहता था; उसे मनुष्य के आदर्श-चरित्र से परिपूर्ण कथा सुनने की इच्छा थी। इसी कथा को आज पर्य्यन्त वह बड़ी श्रद्धा और बड़े आनन्द से सुनता आ रहा है।

भारत-वर्ष परिपूर्णता को बहुत चाहता है। उसका उसने कभी अपमान और अविश्वास नहीं किया। उसको उसने सत्य समझ कर स्वीकार किया और उसी में उसे आनन्द भी ख़ूब मिला है। इसी परिपूर्णता की आकांक्षा को उद्बोधित और तृप्त करके रामायण के कवि ने भारत-वर्ष के भक्ति-पूर्ण हृदय को चिरकाल के लिए जीत लिया।

जो जाति असम्पूर्ण सत्य को प्राधान्य देती है, जो अक्लान्त श्रम से भौतिक-सत्य की खोज में रहती है, जो जाति कविता को प्रकृति का प्रतिबिम्ब सम-झती है—वह संसार में अवश्य ही अनेक कार्य्य करती है; वह विशेषरूप से सफल-मनोरथ भी होती है। मानव-जाति उसकी निःसन्देह बहुत ऋणी है। परन्तु, दूसरी तरफ़, जिन्होंने कहा है—"भूमैव सुखं भूमात्वेव विजिज्ञासितव्यः", जिन्होंने परिपूर्णत्व के परिमाण के मध्य में सब खण्डों का सुख और सब विरोधों की शान्ति प्राप्त करने के लिए साधना की है, उनका ऋण संसार किसी काल में भी नहीं चुका सकता। यदि उनका परिचय विलुप्त हो जाय और उनके उपदेश विस्मृत हो जायँ तो मानव-सभ्यता धूल और धुएँ से आच्छादित, आदमियों से भरे हुए अपने कारख़ाना-घरों में दम घुट कर मर जायगी। रामायण सदा से ऐसे ही अखण्ड अमृत-पिपासु लोगों का हमसे परिचय कराती रही है। रामायण में वर्णित भ्रातृभाव, सत्यनिष्ठा, पातिव्रत, प्रभु-भक्ति के विषय में यदि हम अपनी सरल श्रद्धा और आन्तरिक भक्ति की रक्षा कर सकें तो हमारे कारख़ाना-घरों की खिड़कियों से महासमुद्र की निर्म्मल वायु भीतर प्रवेश करती रहेगी।

विविध विषय।

१—पानी में न डूबने वाले जहाज़।

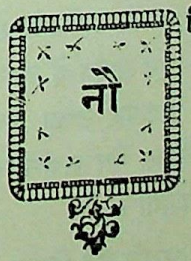

विद्या में घोर परिवर्तन होने वाला है। थोड़े ही दिनों में जहाज़ों के डूबने का कोई भय न रह जायगा। अमेरिका में विदर-स्पून साहेब एक बड़े भारी इंजीनियर हैं। आपने, अभी हाल में, एक ऐसी युक्ति सोच निकाली है जिसके अनुसार कार्य्य करने से जहाज़ कभी न डूबेंगे। आप की युक्ति सीधी और कम-ख़र्च की है। आपने इस युक्ति के अनुसार कार्य्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी किया है और उसमें आपको पूर्ण सफलता भी प्राप्त हुई है। आपने एक जहाज़ के पेंदे में एक छेद कर दिया। छेद जहाज़ के एक ऐसे कमरे में किया जिसकी दीवारें इतनी मज़बूत थीं कि कमरा बन्द कर देने पर समुद्र का पानी वहां से जहाज़ के अन्य भागों में न जा सकता था। जब वह कमरा पानी से भर गया तब एक छोटे छेद द्वारा कमरे में बारह पौंड फ़ी वर्ग-इञ्च के हिसाब से उन्होंने घनीभूत हवा पहुँचाई। केवल दस मिनट के भीतर कमरे का सब पानी बाहर निकल गया। परन्तु हवा के वज़न से जहाज़ का एक भाग कुछ टेढ़ा पड़ गया। इस त्रुटि को दूर करने के लिए उस कमरे के आस पास के कमरों में सात पौंड और अन्य कमरों में तीन पौंड फ़ी वर्ग इञ्च के हिसाब से हवा पहुँचा कर उन्होंने उन भागों का वज़न सम कर दिया। छेद रहते हुए भी, हवा के प्रयोग से, जहाज़ अपना काम तो करता ही रहा; परन्तु उसमें एक विशेषता यह भी पैदा हो गई कि चाहे उसके टुकड़े टुकड़े उड़ा दिये जायँ उसके एक कमरे में हवा भरे रहने के कारण वह समुद्र में न डूबे। यदि जहाज़ के पेंदे में अन्य किसी स्थान में छेद हो जाय और उसके द्वारा जहाज़ में इतना पानी आ जाय जिसके बोझ से जहाज़ डूबने लगे तो भी हवा की सहायता से सारा पानी जहाज़ के बाहर निकाला जा सकता है। इस प्रकार जल और वायु में लड़ाई कराकर जहाज़ को डूबने से बचाने का उक्त साहब ने उपाय निकाला है। इसमें ख़र्च भी बहुत कम पड़ेगा। एक जहाज़ में लगभग डेढ़ हज़ार रुपये के ऐसे नलों की आवश्यकता होगी जिनके द्वारा जहाज़ में हवा पहुँचाई जा सके। आज कल संसार में ऐसी बहुत सी कम्पनियाँ हैं जो जहाज़ों का बीमा किया करती हैं। बीमा किया हुआ जहाज़ डूबने पर बीमा-कम्पनी को उतना रुपया देना पड़ता है जितने का उसका बीमा होता है। इस ज़िम्मेदारी के बदले में बीमा करने वाली-कम्पनियों को जहाज़ के मालिकों से लाखों रुपये साल मिलता है। यदि विदर-स्पून साहेब के उपाय ने उन्नति की तो इन बीमा-कम्पनियों का व्यापार ठण्डा पड़ जायगा। पड़ जाय—अनन्त प्राणों के संहार और अपरिमित माल-असबाब के नाश से तो छुटकारा मिलेगा।

२—प्राणियों के अवयव काट कर लगाने की क्रिया।

अमेरिका के संयुक्त राज्यों के हार्वर्ड विश्वविद्यालय के डाक्टर केरल चीर-फाड़ में बड़े कुशल हैं। किसी जानवर का कोई शरीरावयव ख़राब जाने पर उसकी जगह दूसरे जानवर का वही अवयव काट कर वे लगा देते हैं। हाल ही में आपने अ... इस प्रकार की चीरफाड़ का फल प्रकाशित किया है। कि... कारण से एक कुत्ते की टाँग काटनी पड़ी। उसकी जगह ह... ही के मरे हुए एक कुत्ते की टांग आपने लगा दी और ... तथा धमनियों आदि को यथास्थान बिठा दिया। थोड़े ... दिनों में वह टाँग अच्छी तरह जुड़ गई और कुत्ता दौड़ने ... लगा। यह तो एक साधारण बात है। डाक्टर केरल ने ... विषय में और भी अधिक उन्नति की है। आपने एक कुत्ते ... पेट की रुधिर वाहिनी नाड़ी के स्थान पर मनुष्य की रुधिर-वाहि... नाड़ी लगाने में भी सफलता प्राप्त की है। आप एक गुर्दे ... दूसरे गुर्दे के स्थान पर भी लगा सकते हैं। एक बार ... एक बिल्ली के दोनों गुर्दे निकाल लिये। फिर बायां गुर्दा दा... ओर और दाहना बाईं ओर लगा दिया। गुर्दा एक बड़ा ... नाज़ुक अङ्ग है। उसके चारों तरफ़ नसों, धमनियों, ... स्नायुओं का जाल सा बिछा रहता है। शरीर के अन्य ... से भी उसका घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। ऐसी दशा में गु... को एक दूसरे से बदल कर पुनः उनके उचित स्थान पर ... देना बहुत बड़ा काम है। एक रोगाक्रान्त गुर्दे के निकाल ... पर भी मनुष्य जीता रह सकता है। परन्तु ऐसी दशा में ... गुर्दे को दुगना काम करना पड़ता है। इस कारण रोग के ... लौटने का डर रहता है। यदि डाक्टर केरल का अनुभव मनु... पर भी उपयोगी सिद्ध हो गया तो यह आशङ्का अब दूर हो... जायगी। इससे मानव-जाति का बहुत उपकार हो सकेगा।

३—महामहोपाध्यायों और शम्स-उल्-उलमाओं को पेन्शन।

देहली-दरबार के समय, गत १२ दिसम्बर को, ... कीय घोषणा में सम्राट् ने यह आज्ञा दी थी कि महामहो... पाध्यायों और शम्स-उल्-उलमाओं को अब कुछ पेन्शन मि... करेगी। हाल ही में इस विषय का एक मन्तव्य गैज़ट ... इंडिया में निकला है। उसमें लिखा है कि इन महाशयों को ... हर साल, १२ दिसम्बर को, पेन्शन के तौर पर सौ रुपये ... मिलेंगे। इस हिसाब से रु० ८-५-४ महीना पेन्शन हुई। ... बेहतर होता जो यह रुपया पेन्शन कह कर नहीं, किन्तु इन ... विद्वानों की विद्वत्ता के उपलक्ष्य में पुरस्कार कह कर ... दिया जाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परलोकवासी गिरीशचन्द्र घोष ।

Indian Press. Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परलोकवासी मौलवी अज़ीज़ मिर्ज़ा।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—नाट्यकलानिपुण बाबू गिरिशचन्द्र घोष का देहावसान।

बाबू गिरिशचन्द्र घोष का शरीरान्त हो गया। ये नामी अभिनेता थे। नाट्यकला में इन्होंने बड़ी निपुणता प्राप्त की थी। इन्होंने अनेक नाटक, उपन्यास, गीतिकाव्य आदि की रचना की। इतिहास, विज्ञान और दर्शनशास्त्र में भी इनकी अच्छी गति थी। बाल्यकाल ही से इनकी प्रवृत्ति नाटकों का अभिनय और रूपकों की रचना करने की ओर थी। पहले कई वर्ष तक ये विदेशी वणिकों के दफ़्तरों में सौ सौ डेढ़ डेढ़ सौ रुपये की नौकरी भी करते रहे और अभिनय तथा पुस्तक-रचना भी करते रहे। पीछे से इन्होंने नौकरी छोड़ दी। एकमात्र नाट्यकला में प्रवीणता प्राप्त करने और अच्छे अच्छे नाटकों के अभिनय से दर्शकों को मुग्ध करने ही में ये निरत रहने लगे! कलकत्ते की कई नामी नामी रङ्ग-शालाओं (थियेटरों) से इनका सम्बन्ध रहा। धीरे धीरे इनकी बड़ी ख्याति हुई। ये अपूर्व नट समझे जाने लगे। इन्होंने औरों के बनाये हुए भी नाटक खेले और अनेक नाटक स्वयं भी रच कर उनका अभिनय किया। बँगला के नाटकों को इन्होंने बहुत उन्नत कर दिया। इन्हीं की बदौलत बँगला के नाटकों की कीर्ति सारे भारत में फैली। इन्हीं की योग्यता, अध्यवसाय और नाट्यनैपुण्य ने वङ्ग-भाषा के दृश्य-काव्य को ऊँचे आसन पर जा बिठाया। इनके लिखे हुए अभिमन्युवध, रावण-वध, मलिनमाला, मायातरु, मोहिनी, सीतावनवास आदि अनेक नाटक बँगला में हैं। ये सारे बङ्गाल में बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते थे।

५—जानवरों से बात करने वाला मनुष्य।

अमेरिका में केलीफोर्निया नाम का एक प्रान्त है। चार्ल्स केलाग साहब यहीं के निवासी हैं। वे कहते हैं कि आप पन्द्रह जातियों के जानवरों की बोली बोल और समझ सकते हैं। आपने अपना सारा जीवन पहाड़ों और जङ्गलों में व्यतीत कर के जानवरों की बोलियाँ सीखी हैं। आपकी जीभ की बनावट में भी अच्छी विचित्रता है। मनुष्य की जीभ दाँतों के नीचे के भाग से एक चर्म-रश्मि द्वारा जुड़ी रहती है; परन्तु आपकी जीभ के साथ दाँतों का ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं। इसी कारण आपको जानवरों की बोली बोलने में बहुत सुभीता होता है। आपने, कुछ समय हुआ, अमेरिका के केम्ब्रिज नगर में अपनी इस विलक्षणता को प्रकट किया था। इससे आपने बड़ा नाम पाया।

६—एक अजीब अजायब-घर।

पाश्चात्य देश वालों को सदा नई और विचित्र बातें सूझा करती हैं। फ्रांस में पोज़ नाम के एक अध्यापक हैं। आप एक अजायब-घर स्थापित करने वाले हैं। इस अजायब घर में संसार के अद्भुत जीव-जन्तु और चीज़ें एकत्र न की जायँगी, किन्तु वहां पर वे सब आवाज़ें फ़ोनोग्राफ़ की तख़्तियों में भर कर रक्खी जायँगी जिनके द्वारा मनुष्य अपने सब प्रकार के मतलब प्रकट करता है। छोटे छोटे लड़के खेलते-कूदते समय जिस प्रकार का शोर मचाते हैं—बड़े बड़े वक्ता और उपदेशक वक्तृता देते समय जिस प्रकार अपने स्वर को नीचे गिराते और ऊपर उठाते हैं—वकील लोग जिरह करते समय जिस प्रकार बोलते हैं—गाते समय स्वर जैसा चढ़ाया और उतारा जाता है—यहां तक कि घर, बाहर, दुकान, बाज़ार और कचहरी—हर जगह और हर समय—हर प्रकार और हर विषय की बातों के नमूने वहां रक्खे जायँगे। गत वर्ष से पोज़ साहब हर प्रकार की आवाज़ें ग्रामोफ़ोन के लिए एकत्र करने के इरादे से सर्वत्र फिर रहे हैं। इस नये अजायबघर में ऐसे फोटो भी रक्खे जायँगे जिनसे प्रकट होगा कि हर काम करने के पहले और पीछे मनुष्य के चेहरे पर कैसे चिह्न प्रकट होते हैं।

७—मौलवी अज़ीज़ मिर्ज़ा का परलोकवास।

मुसलिम लीग के आनरेरी सेक्रेटरी, मौलवी अज़ीज़ मिर्ज़ा, बी० ए० इस असार संसार से कूच कर गये। २५ फ़रवरी १९१२ को उनका देहान्त हुआ। ये पहासू, ज़िला बुलन्दशहर, के रहने वाले थे। अलीगढ़ के महमडन कालेज में इन्होंने शिक्षा पाई। दक्षिण-हैदराबाद में निज़ाम के यहाँ इन्होंने बहुत दिनों तक नौकरी की। बड़े बड़े ओहदों पर रहे। धीरे धीरे ये होम-सेक्रेटरी के पद पर पहुँच गये। सुनते हैं, इन पर यह इलज़ाम लगाया गया था कि भूतपूर्व निज़ाम को ये गद्दी से उतार देने की किसी साज़िश में शामिल थे। पर बात ऐसी न थी। तिस पर भी ये नौकरी से अलग कर दिये गये। परन्तु निज़ाम ने इनकी पेन्शन कर दी। हैदराबाद से आने पर इन्होंने कई वर्ष तक मुसलिम लीग का काम किया। ये उर्दू के अच्छे लेखक थे। अँगरेज़ी भाषा में बहुत अच्छी योग्यता रखने पर भी, कालेज छोड़ने के बाद से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही, ये उर्दू लिखने लगे। इनके कितने ही लेख उर्दू के सामयिक पत्रों में निकले हैं। उर्दू में कई एक अच्छी अच्छी पुस्तकें भी इनकी लिखी हुई हैं। सबसे बड़ी बात इन्होंने यह की कि मुसलमान होकर भी कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक का अनुवाद उर्दू में किया। ऐसे ऐसे उदाहरणों से भी हम लोगों की आँखें नहीं खुलतीं। अन्य भाषाओं की पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद करना तो दूर रहा, ऊँची शिक्षा पाये हुए हमारे हिन्दू भाई, दो चार को छोड़ कर, छोटे मोटे लेख भी हिन्दी में लिखने की कृपा नहीं करते। अफ़सोस!

पुस्तक-परीक्षा।

१—भूगोलमीमांसा। १८ पृष्ठ की एक छोटी सी पुस्तक है। आध आना देने से मिलती है। मुरैना (ग्वालियर) के "स्याद्वादवारिधि पं० गोपालदासजी बरैया" की लिखी हुई है। प्राचीन जैन पण्डितों का आश्रय लेकर इसमें पृथ्वी का गोल होना और उसका चलना ग़लत बताया गया है। इन मतों के मानने वालों पर कुटिल कटाक्ष भी किये गये हैं। बेचारे कोपर्निकस, गैलीलिओ, न्यूटन, भास्कर आदि तक यह ख़ुशख़बरी अब किस तरह पहुँचे! जैनियों के प्रकाशित भिन्न भिन्न विषयों के सर्वोपयोगी ग्रन्थों पर लोगों की रुचि हो चली थी। सो शायद इस धर्म्म के कुछ अनुयायियों को अभीष्ट नहीं। अब किसी विज्ञानवारिधि को चाहिए कि एक नई पुस्तक लिख कर उसमें उस बात के सिद्ध करने की चेष्टा करे कि सूर्य्य शीतल हो कर प्रकाशहीन हो गया। अतएव जैन-संसार अब अन्धकार के गर्त्त में पड़ा हुआ पैरों के बदले सिर के बल चल रहा है!

चित्र-परिचय।

(१)

हिरण्यकशिपु-संहार।

श्रीमद्भागवत में लिखा है :—

सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं व्याप्तिञ्च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः।
अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन् स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम्॥

पिता के द्वारा दिक् किये जाने पर प्रह्लाद ने कहा, भगवान् कहाँ नहीं? वे सर्वत्र विद्यमान हैं। अपने भक्त की इस बात को, अर्थात् भूतमात्र में अपनी सत्ता स्पष्ट दिखा को, भगवान् उसी खम्भे को, जिससे प्रह्लाद बँधे थे, फाड़ निकल आये। उनका उस समय का नृहरि रूप बड़ा भयङ्कर था। उन्होंने—

विप्वक् स्फुरन्तं ग्रहणातुरं हरि-
र्व्यालो यथाऽऽखुं कुलिशाग्रतत्वचम्।
द्वार्यूरु आपात्य ददार लीलया
नखैर्यथाहिं गरुडो महाविषम्॥

उस दैत्यराट् हिरण्यकशिपु के हृदय को अपने नखों इस तरह सहजही में फाड़ डाला जैसे महाविषधर चूहे को, अथवा गरुड़ सर्प को, फाड़ डालता है। उसके जाने पर देवताओं ने भगवान् की घंटों स्तुति की, पर उ क्रोध शान्त न हुआ। तब प्रह्लाद और उनकी माता ने आरम्भ की। प्रह्लाद ने कहा :—

नाहं बिभेम्यजित तेऽतिभयानकस्य
जिह्वार्कनेत्रभ्रुकुटीरभसोग्रदंष्ट्रात्।
× × × ×
त्रस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोग्र-
संसारचक्रकदनाद् ग्रसतां प्रणीतः।

हे अजित! मैं आपके इस भयानक मुख, जिह्वा, नेत्र, टेढ़ी भ्रुकुटी और विकट दंष्ट्राओं से ज़रा भी डरता। दीनवत्सल! मैं इस दुःसह संसारचक्र की मार बे तरह भयभीत हो रहा हूँ। उससे आप मेरी रक्षा कीजि यह सुन कर भगवान् बोले :—

प्रह्लाद भद्र भद्रं ते प्रीतोऽहं ते सुरोत्तम।

प्रह्लाद, तेरा कल्याण हो। मैं तुझ से बहुत प्र हुआ। इसी दृश्य के व्यञ्जक कई सौ वर्ष के एक प्राचीन चित्र को, पाठक, इस सख्या में देखेंगे।

(२)

कृष्ण का गोचारण।

मुरलीधर कृष्ण गायें चरा कर सायङ्काल घर आ हैं। गोपिकायें खिड़कियों में बैठी हुई चावभरी दृष्टि से देख रही हैं। यही इस संख्या के इस चित्र का दृश्य है यह एक बहुत अच्छे और बहुत पुराने चित्र के फोटो से तै किया गया है और डाक्टर कुमारस्वामी की कृपा से प्रा हुआ है।

Printed and Published by Apurva Krishna Bose at the Indian Press, Allahabad.
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिरण्यकशिपु-संहार ।

Indian Press, Allahabad

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

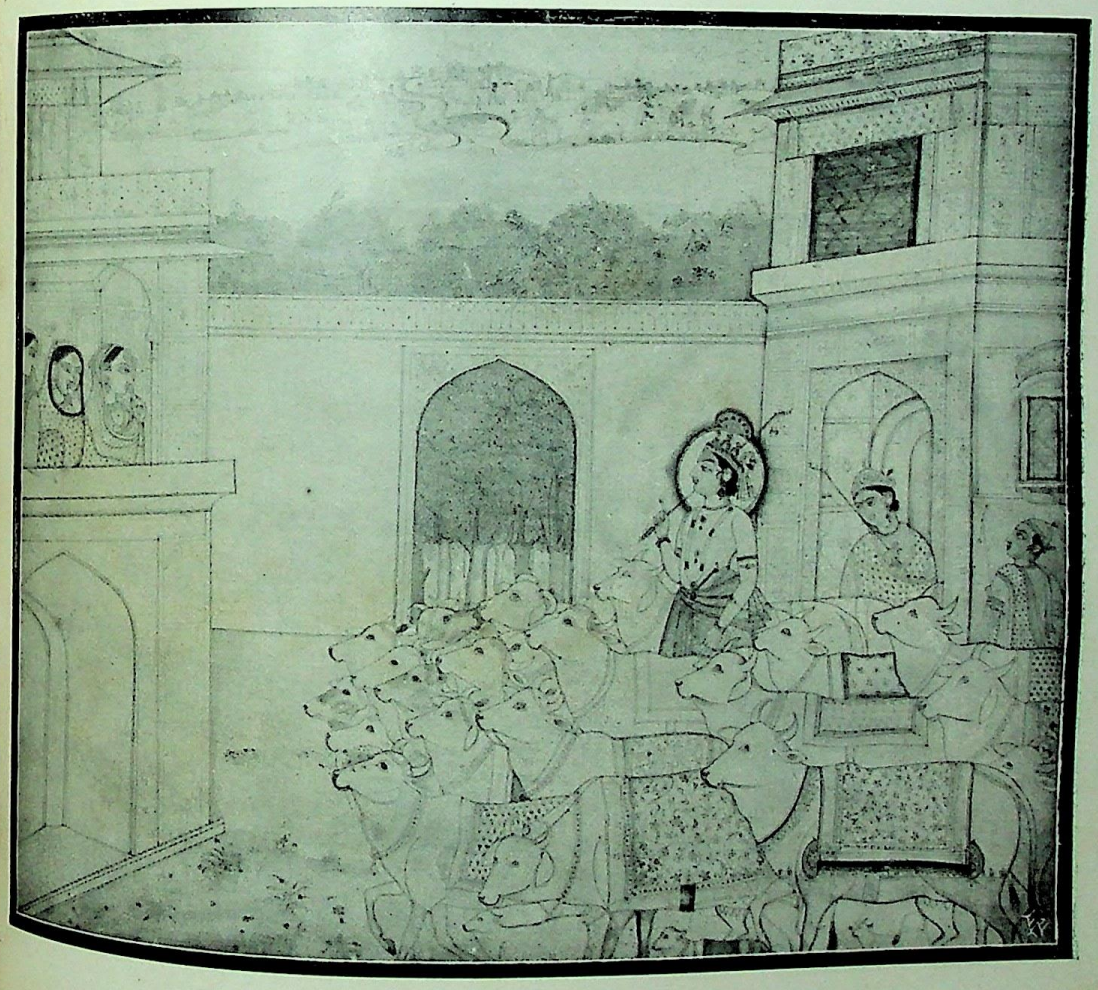

कृष्ण का गोचारण ।

Indian Press. Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

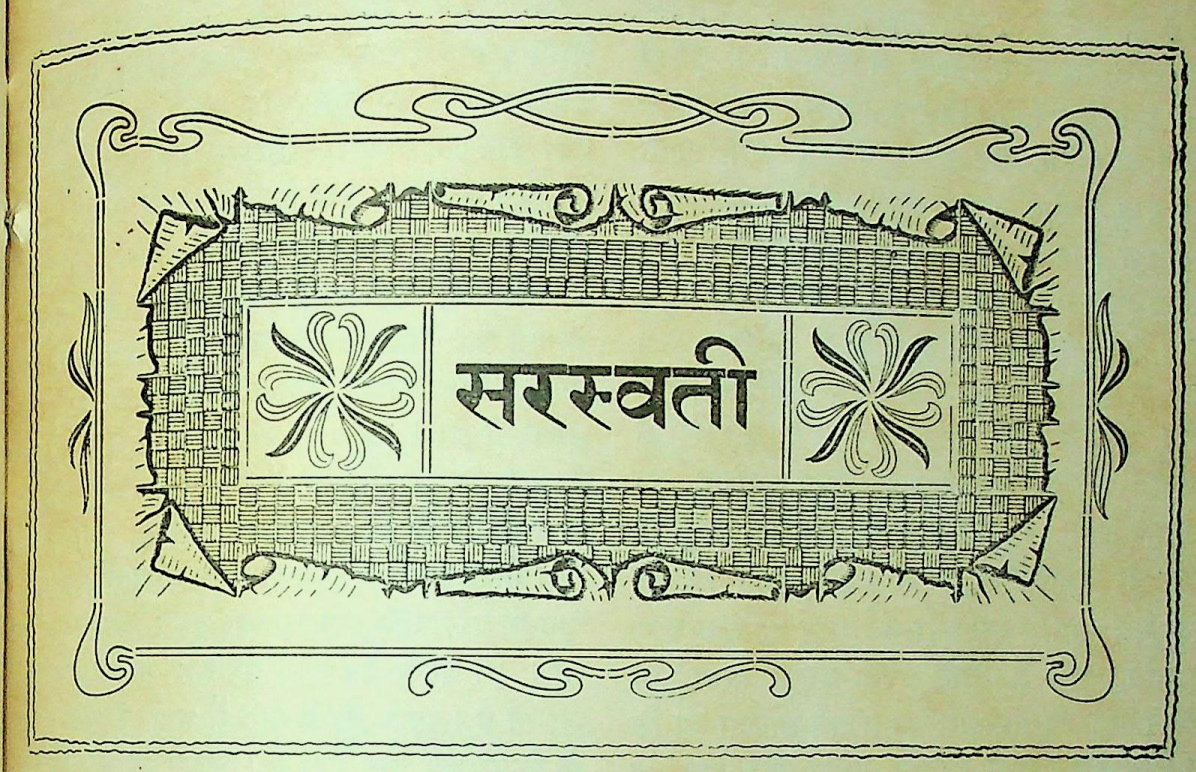

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग १३] १ मई, १९१२—वैशाख शुक्ल १५, १९६९। [संख्या ५

मेरी यात्रा।

[लेखक श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल, बी. ए. (आक्सफ़र्ड), बैरिस्टर-एट-ला]

(३)

(क) तुर्की—कुस्तुनतुनिया की राह।

रेल उलटी।

तुर्की या रूम की राजधानी पहुँचने में कोई ५ घंटे का रास्ता रह गया था कि ऐसी घटना हुई जो, मैं नहीं चाहता, फिर अनुभूत करने में आये। रात के दो बजे होंगे; कपड़े उतार कर सोने के कपड़े पहने सो रहा था। सरहाने एक मोटा बूढ़ा तुर्क बैठे बैठे सो रहा था। यह ज़बरदस्ती घुस आया था, जैसा अपने मुल्क में प्रायः देखने में आता है। सामने के बेंच पर एक यहूदी सो रहा था, जो फ़्रांस से आ रहा था। एकाएक प्रगाढ़ निद्रा से चौंक पड़ा। मालूम हुआ कि रेल पृथ्वी के गर्भ में घुस सी रही थी। जाली में रक्खी चीज़ें नीचे पड़ापड़ गिरीं। खड़े होने लगे तो दाहनी तरफ़ पड़ से जा गिरे। उठ कर दर्वाज़े की तरफ़ दौड़े तो विचल कर फिर नीचे ... ...। यह सब १। २ सेकेंड में ही होगया। लिखने पढ़ने में देर लगती है; पर गिरते, उठते, दौड़ते और फिर गिरते कुछ देर न लगी। तब अरर् करके रेल निश्चल होगई। मेरे दुबारा गिरने उठने तक दनादन कोई ४ आदमी कारीडार के पीतल के छड़ तोड़ नीचे कूद गये। मैंने दाहनी तरफ़ की खिड़की से बाहर जाना चाहा तो देखा कि खिड़की भूमि चूम रही है। सामने पानी सा नज़र पड़ा। मैंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझा कि रेल दलदल भूमि में धँस गई। दूसरी तरफ़ कारीडॉर की खिड़की तक 'आना' नहीं बल्कि चढ़ना था। कोट और जूते पहन नीचे कूदा। पानी बरस रहा है, और चारों ओर अँधेरा है। चार आदमियों में से तीन तुर्की सेना के अफ़सर थे। ये इधर उधर टहलने लगे। मैं भी इनके साथ आगे बढ़ा। देखते क्या हैं कि हमारी गाड़ी के ज़रा आगे एक नदी है और गाड़ी बे जोड़ है; इंजन का पता नहीं। नदी पैरों के नीचे देख तुर्क अफ़सरों ने "अलहम् दुलिल्हाह" कह कर अपने अल्लाह का धन्यवाद किया। मेरे हृदय में सन्नाटा छा गया; शरीर पर रोमाञ्च हो आया। हम लोगों को उस सूची-भेद्य रात में वह नदी-गर्भ मृत्यु का मुख-गह्वर सा जान पड़ा। मैं यद्यपि स्वयं उसके बाहर था तथापि यह विचार बुद्धि को दबाये डालता था कि जो लोग उस मुख में बरबस प्रवेश कर चुके थे उनसे मैं दूर न था। उलटे कई पग हट कर हम चारों आदमी पीछे लौटे। मेरी गाड़ी के बाद एक गाड़ी बिलकुल उलट पलट गई थी। कई गाड़ियाँ ऊपर को ऐसी उठ गई थीं जैसे चौपायों से लड़ने को तैयार हो गई हों। पीछे के एक तीसरे दर्जे से लालटेनें निकल कर पहाड़ी बलगेरियन मुसाफ़िर चूर हुई गाड़ियों के पास आये और घायलों को रोते कराहते बाहर निकालने लगे। ख़तरे की चीज़ें बाहर की गईं। इसमें देर लगी। तो भी रात बाक़ी थी। गाड़ी के दूसरे छोर पर कई डब्बे साबित बच रहे थे। उनमें जाकर मैं बैठ गया। वहाँ उन्हों सैनिकों को फिर पाया। मेरा कृष्णवर्ण देख उन्होंने पूछा कि क्या मैं अरब हूँ। उन्होंने देखा कि मैं तुर्की नहीं बोल सकता; इसी से उन्होंने मुझे अरब समझा। उनका पूछना आदर-पूर्ण न था। अरब तुर्कों की प्रजा हैं और बुरी प्रजा हैं। आदराभाव का कारण यही था। मैंने फ़्रेंच में अपनी राष्ट्रता बताई; पर इस बात को समझने में उन्हें देर लगी, तब मैंने सिर्फ़ "हिन्दू" कहा। वे समझ गये और मुसकुरा कर उन्होंने मेरा स्वागत किया। कोई १॥ घंटे बाद सुबह हुई। रेल से उतरा। रात को जैसे कोई युद्ध हुआ था। टूटे, सर फूटे, बेहोश औरतें बच्चे सब इधर पड़े थे। बचे हुए डब्बों के आगे एक गाड़ी का पार्श्व चूर; दूसरी अपने आगे वाली में दूरबीन घर की तरह भीतर घुस गई; उसके बाद दो को उठ कर महराब सी खड़ी हुई; उसके आगे गाड़ी सिर्फ़ दाहने बग़ल के पहियों के बल उ हुई खड़ी थी। मेरी गाड़ी के आगे सोने की एकदम करवट थी। बाईं ओर की खिड़कियाँ मान देख रहीं थीं। उसके सामने, पुल से नदी में डाक की दो शाही गाड़ियाँ पानी में थीं, पुल के उस पार इंजन खड़ा हुआ था। यह था। दो बरस हो गये, पर वह तसवीर आँखों सामने है। आज भी मैं नदी में डाक के थैले लि से लिपटे हुए देख रहा हूँ। आज भी उस बूढ़ी रियन महिला और उसके दस बरस के प्यारे बच्चे रात भर उल्टी पड़ी सोने की गाड़ी से निकलते और नंगे पैर चलते देख रहा हूँ।

नदी, जो रात के अँधेरे में बहुत बड़ी मालूम थी, वस्तुतः छोटी ही थी। दोनों बग़ल खेत रेल टूटने से पुल टूट गया था। डाक के सब पानी में ही रह गये। यद्यपि पानी बहुत न था, उनका पता न लगा। फिर, पता लगाने वाला कोई न था। जो बच रहे थे उन्हें फ़िक्र जागतों की थी। जर्मन बोलने वाले मिस्त्री पहुँचे *। नदी पाट कर पार करने का १० बजे तक किया गया। तब तक जिस पार लोग थे उस पार अद्रियानोपल से, जो बहुत और जंगी शहर है, अस्पताल की रेल आई घायलों को लेगई।

जब तक हम लोगों का असबाब ढो कर पार पास के स्टेशन पर पहुँचाया गया तब

* यह ओरिअंटल रेलतंत्र, फ़्रेंच नहीं वरन् जर्मन-आदि कम्पनी के हाथ में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों में परस्पर बातें होती रहीं। कोई ईसाई योरपियन कहता कि देखो यह टर्की है; यह नया पार्लिमेंट है; यह नई हुकूमत है; यह स्वतन्त्रता है। उधर दूर एक तुर्क खड़ा था। उसके पास मैं गया तो वह कहता है कि योरपियन कम्पनी के हाथ में रेल का प्रबन्ध देने का यह नतीजा है। उधर रेल से टूटे पटरे निकाल निकाल उन पर बैठे हुए क्रिस्तान बुगर (बलगेरियन) पहाड़ी, मैले कपड़े पहने, कमर-बन्द बाँधे, तुर्की टोपी लगाये सिगरेट पी रहे हैं। उन में से किसी किसी ने सलाम भी किया। कोई निरवच्छदप्राय भिखमँगे लड़के भी अपने यहाँ के से आये हुए थे। उनसे असबाब उठाने को इशारा किया तो वे बहुत चिढ़े। ये मैले अर्द्धनग्न भिखमँगे, और बे-जाने सलाम करनेवाले, पहलीही बार योरप में देखने में आये।

सुना कि नदी के दूसरे पार स्टेशन पर सब सामान पहुँच गया। वहाँ जलपान की जगह रेसटोराँ (Restaurant), तारघर, बस्ती आदि सब कुछ है। आये तो क्या देखते हैं कि एक मुर्ग़ी-खाने का सा झोपड़ा था, जिसमें कॉफ़ी या क़हवा और मुर्ग़ी के मल से मलीन अंडे छोड़ फल-फूल, दूध या और किसी चीज़ का नाम उस उच्चनाम रेस्टोराँ में न था। मुँह धोने को पानी तक न था; बैठने को चौकी तक न थी। घिन और ऊब के सिवा कुछ हाथ न लगा। भूक अलबत्ते बहुत देर के लिए ग़ायब हो गई। स्टेशन में तार देने गया तो मालूम हुआ कि यहाँ तार नहीं लगता। तब मेरे क्रोध का ठिकाना न रहा। मैं चाहता था कि कुस्तुनतुनिया और अन्यत्र मित्रों को तार देकर निश्चिन्त करूँ कि जीता जागता हूँ। एक मुसाफ़िर ने समझाया कि कोई शरारत नहीं। रेल की कम्पनी के ठेके के अनुसार तार सिर्फ़ रेल के कामों के लिए ही दिया जा सकता है। देश में तार साम्राज्य के तारघरों से दिया जाता है। बहुतों ने एक आदमी के हाथ तार बत्तो में भेजे। मेरे पास तुर्क साम्राज्य के रुपये न थे। पर दूसरे ही सिक्के उस भलेमानस ने ले लिये। मुझे सन्देह था कि तार और पैसे उसके जेब ही में रह जायँगे, पर ऐसा न हुआ। अब तक योरप की सचाई बाक़ी थी। हाँ, तार तुर्की-भाषा और अक्षरों में लिखा कर देने पड़े।

हम लोगों के ले जाने को अब रेल आती है, अब रेल आती है—यह प्रतीक्षा करते करते १२ बज गये। रेल आई; पर हमें नहीं, किन्तु उस पार आई हुई दूसरी रेल के यात्रियों को ले गई, क्योंकि वे एक्स-प्रेस के मुसाफ़िर थे। फिर प्रतीक्षा करनी पड़ी। इसी बीच तुर्की सलाम का पहला नमूना मिला। स्टेशन पर इस पार घायलों में से एक चला आया था। इसकी जाँच के लिए एक पुलिस अफ़सर बस्ती से स्टेशन पर आया। स्टेशन के नीचे एक पेड़ से उसने अपना घोड़ा बाँध दिया। घोड़ा रिसाले के घोड़ों की सी काठी वाला और अफ़सर सैनिक अफ़सर सा था। वस्तुतः पुलिस के महकमे में वह सैनिक अफ़सर था। इसे आते देख मेरे साथ के सैनिकों ने सलाम किया। आड़े बल अङ्गुलि को नाभि के ऊपर पेट से उठा, छाती पर फिर आड़े लगा, बाद को मथ्थे से लगाया। इसके जवाब में उसने, जो दर्जे में ऊँचा था, सिर्फ़ एक दफ़े जैसा यहाँ सलाम का दस्तूर है, सलाम किया।

खीरे का दर्शन।

रेल आने के पहले, स्टेशन पर, एक देहाती तुर्क बहुत से खीरे अपने साथ सौगात ले जाने को ले आया था। उन्हें पहली बार देख मेरा मन ललचाया। मैंने झट जेब से पैसे निकाल दिखाया कि मैं ख़रीदना चाहता हूँ। इस पर कई खीरे योंही दे कर उसने जान छुड़ाई और मुझे कुछ खाने को मिला।

रेल आई। हम लोग सवार हुए। उसकी गाड़ियों पर सलानिका लिखा हुआ था। एक बार ही इतिहास में पढ़ी, स्वप्न की सी देखी, बाइज़नटाइन साम्राज्य की सलानिका, जो अब तक कहानी की सी थी, मालूम होने लगा कि वस्तुतः संसार में थी और हम उसके कहीं पास ही थे। क्योंकि यह ट्रेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहीं से आई थी। एशिया पर चढ़ाई और अत्याचार करने वाले सिकन्दर के जन्मदेश की सलानिका, अब हमारे एशिया के नीचे, तुर्की के सार्वजनिक स्वातन्त्र्य की जननी थी। बहुतेरी इतिहास की बातें गाड़ी में बैठे बैठे इस तरह याद पड़ने लगीं कि जैसे बचपन की भूली हुई घटनायें कभी कभी याद आने लगती हैं। सोच रहा था कि अब हम उस देश में थे जहाँ एक बार रोम की बहन, कास्टैंटिनोपल राजधानी, के नीचे वह बड़ा योरोपियन साम्राज्य था जिसकी सोने की दीनारें भारतवर्ष तक चलती थीं; जिस साम्राज्य को एशिया ने सन् १४५३ की होनहार ताः २९ मई को सर्वतः छीन लिया; और यह कि उस पर अब भी पूरबी झंडा उड़ रहा है।

रेल एक बड़े स्टेशन पर खड़ी हुई। साथी अफ़सरों में से एक ने एक वाक्य फ़रासीसी में रच कर मुझसे कहा कि यहाँ खाने पीने की चीज़ें मिलेंगी। मैं इनसे बोलने की चेष्टा नहीं कर रहा था। इनसे मैं ख़ुश न था, क्योंकि रेल टूटने पर इन में से किसी ने घायलों के बचाने में मिहनत न की थी। अस्तु। उनके साथ जा कर अलौकिक पनीर, जो बिलकुल फटे हुए दूध की थी, ले आया। कुछ फल आदि खाने की चीज़ें भी यहाँ मिलीं। सब चीज़ें साफ़ सुथरी थीं, पर सफ़ाई हिन्दुस्तानी क़िते की—योरपीय ढाँचे की नहीं। चीज़ें टेबल पर सजाई हुई नहीं, यों ही भूमि पर रक्खी हुई थीं। चीज़ें बड़े बड़े क़लई के बर्तनों में थीं पकी भी उन्हीं बरतनों में थीं। योरपियनपन केवल यह था कि हलकी शराब, जिसे बियर कहते हैं, उसकी बोतलें भी बिक रही थीं। अफ़सरों ने चार पाँच बोतलें लीं; साथ ही पनीर और रोटी भी ली। रेल के डब्बे के भीतर छोटे से ग्लास में शराब भर कर पहले ग्लास उन्होंने मुझे देना चाहा। मेरे इनकार करने पर सब ने, एक दूसरे के बाद, साधारणरूप से मद्यपान किया। नशे का नाम भी उन्हें वैसा ही न हुआ जैसे योरप के भले लोगों को नहीं होता। इन सैनिकों की टोपियाँ आपस में भिन्न थीं। पूछने पर मालूम हुआ कि काली टोपी वाले रिसाले के नेता थे। मोंछें किसी के न आई थीं। रंग यहाँ के गोरे आदमियों का सा; चेहरा और बिलकुल आर्यजातीय। असली मंगोल-जाति चिह्न इनमें कुछ न थे। क़द में अपने यहाँ के काय, बरन् उससे भी कुछ उतर ही कर।

४ बजे सन्ध्या के लगभग समुद्र की झलक पड़ी। अब राजधानी कांस्टैंटिनोपल कोई एक की राह रह गई।

[वक्तव्य—आगे के लेख में कांस्टैंटिनोपल और उसके पड़ोस का वर्णन होगा। मेरा विचार कि तुर्क-जाति, उनकी रहन सहन, उनके सामाजिक राजनैतिक तन्त्र आदि का वर्णन कुछ विस्तार लिखा जाय। इसलिए कि गत पचास पचपन वर्ष में, जब से अमात्य जंगबहादुर से लगा कर और हिन्दुस्तानी योरप जाने लगे, बहुत कम तीय लोग तुर्क देश को गये हैं। हिन्दुओं में मेरे तक शायद तीन या चार ही गये होंगे। दूसरे तुर्क देश की यात्रा का विवरण हम लोगों की में अब तक प्रकाशित नहीं हुआ]

लाइकरगस।

योरप के दक्षिण में ग्रीस नामक छोटा सा देश है। प्राचीन समय में यह देश अपनी सभ्यता उन्नति के लिए सारे संसार प्रसिद्ध था। सन् ईसवी आठ नौ शताब्दी पहले ग्रीक लोगों को अपनी शारिरिक उन्नति का बड़ा ख़याल था। मानसिक उन्नति तो उन्होंने पीछे से की। उस समय ग्रीस देश कितने ही छोटे छोटे राज्यों में विभक्त था। ये राज्य बहुधा आपस में लड़ा करते थे। इन्हीं लड़ाइयों के कारण ग्रीक लोगों ने शारीरिक बल की क़दर करना सीखा। उन्होंने देश भर में, स्थान स्थान पर, अखाड़े बना दिये। प्रत्येक ग्रीस-निवासी इन अखाड़ों में कुश्ती लड़ना, दौड़ना, घूंसेबाज़ी करना इत्यादि शारीरिक व्यायाम सीखता था। प्रति चार वर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐलिस राज्य के ओलिम्पिया नगर में शारीरिक बल की परीक्षा के लिए एक सम्मेलन हुआ करता था। जो व्यक्ति सबसे अधिक बलवान् होता उसके सिर पर ज़ैतून के फूलों का मुकुट रक्खा जाता था। देश भर में इस मुकुट की प्राप्ति बड़े ही गौरव की बात समझी जाती थी।

ज्यों ज्यों ग्रीस में सभ्यता का प्रचार होता गया, त्यों त्यों वहाँ वालों का ध्यान शारीरिक उन्नति की ओर से हटता गया। अन्त में शारीरिक उन्नति का स्थान मानसिक उन्नति ने ले लिया। देश में बड़े बड़े शास्त्र-वेत्ता, लेखक, वक्ता, राजनीतिज्ञ और दार्शनिक उत्पन्न हो गये। इस कारण ग्रीसवालों की रहन-सहन में बड़ा परिवर्तन हो गया। देश में अन्यत्र तो इस प्रकार के परिवर्तन होते रहे; परन्तु स्पार्टा नामक एक छोटे से राज्य के निवासी अपनी शारीरिक उन्नति ही करते गये। यहाँ तक कि स्पार्टा की भूमि संसार में वीर-प्रसू के नाम से विख्यात हो गई। स्पार्टा-निवासी भी शारीरिक उन्नति का ख़याल छोड़ कर अन्य राज्यों की तरह कुछ समय में ज़रूर मानसिक उन्नति की ओर झुक पड़ते; परन्तु इसी समय महात्मा लाइकरगस ने उत्पन्न हो कर उन्हें अपने पूर्व व्रत पर दृढ़ रक्खा।

लाइकरगस का जन्म सन् ईसवी के पूर्व नवीं शताब्दी में हुआ था। स्पार्टा में दो राजा हुआ करते थे। इन दो में से लाइकरगस का पिता भी एक था। पिता के देहान्त के बाद लाइकरगस का भाई पालीडेक्टीज़ राजा हुआ; परन्तु वह थोड़े ही दिनों में मर गया। तब लाइकरगस राजा हुआ।

सिंहासन पर बैठते ही उसे मालूम हुआ कि उसके भाई पालीडेक्टीज़ की स्त्री गर्भवती है। यह जान कर लाइकरगस ने प्रण किया कि यदि पुत्र हुआ तो मैं सिंहासन को त्याग दूँगा और उसके बालिग़ होने तक मन्त्री के समान राज्य-कार्य्य करता रहूँगा। जब पालीडेक्टीज़ की स्त्री को लाइकरगस के प्रण का पता लगा तब उसने उसके पास गुप्त रीति से कहला भेजा कि यदि तुम मेरे साथ विवाह कर लो तो फिर तुम्हारी सिंहासन-प्राप्ति में कोई खटका न रहे। बालक के उत्पन्न होते ही मैं उसे मार डालूँगी। लाइकरगस ने जो यह अस्वाभाविक बात सुनी तो उसके होश उड़ गये। उसके हृदय में पालीडेक्टीज़ की स्त्री के प्रति बड़ी घृणा उत्पन्न हुई। परन्तु उस समय क्रोध प्रकट करने से काम बिगड़ता जान उसने ऊपरी तौर से उस स्त्री की बात स्वीकार कर ली।

अब लाइकरगस को यह चिन्ता हुई कि भावी बालक की किस प्रकार रक्षा की जाय। उसने गुप्त-चर नियुक्त किये जो पालीडेक्टीज़ की स्त्री के घर की पल पल की ख़बरें उसके पास पहुँचाने लगे। इन गुप्त-चरों ने पालीडेक्टीज़ की स्त्री के नौकरों चाकरों को रुपया देकर मिला लिया। एक दिन लाइकरगस, राज्य के बड़े बड़े कर्मचारियों के साथ बैठा, भोजन कर रहा था। उस समय उसके कुछ गुप्त-चरों ने पिता-हीन नव-जात शिशु को लाकर उसके गोद में रख दिया। शिशु को सुरक्षित देख कर उसका हृदय हर्ष से नाच उठा। उसने उसी समय उसे हाथों में उठा कर राज-कर्म-चारियों और अन्य उपस्थित जनों को उच्च स्वर से सम्बोधन करके कहा—देखो! यह शिशु तुम्हारा राजा है। स्पार्टा वालों ने अपने नये शिशु राजा का सप्रेम अभिनन्दन किया और लाइकरगस के हृदय की उदारता को ख़ूब सराहा। इस काम से लाइकरगस की कीर्ति देश भर में फैल गई; परन्तु पालीडेक्टीज़ की स्त्री और उसके सहायक उसके परम शत्रु हो गये। उन्होंने लोगों से यह कहना आरम्भ किया कि लाइकरगस का विचार था कि नवजात राजा को मार कर वह स्वयं ही राजा हो जाय। परन्तु दुर्भाग्य-वश उसे इस नीच काम में सफलता न हुई। लोग लाइकरगस की उदार प्रकृति को जानते थे। इसलिए किसी ने भी इन बातों पर विश्वास न किया। अन्त में लाइकरगस के शत्रुओं ने उसके ऊपर नाना प्रकार के अन्य दोषारोपण किये। लाइकरगस इन लोगों से बहुत तङ्ग आ चुका था। इसलिए वह स्पार्टा छोड़ कर देशाटन करने चला गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रमण करता हुआ वह क्रीट नाम के टापू में पहुँचा। उस समय क्रीट बड़ा समृद्धि-शाली था। वहाँ की शासन-पद्धति भी संसार से निराली थी। वह उस देश में कुछ काल तक रहा। वहाँ की शासन-पद्धति और वहाँ वालों के रहन-सहन को विचार-पूर्वक उसने देखा। वहाँ से वह एशिया के कितने ही देशों में भ्रमण करने गया। तत्पश्चात् वह ग्रीस देश के भिन्न भिन्न राज्यों में घूमता और वहाँ की शासन-प्रणाली देखता रहा।

लाइकरगस की अनुपस्थिति में स्पार्टा राज्य का सारा काम ढीला पड़ गया। चोर, डाकू और उचक्के बढ़ गये। क़ानून रद्दी समझे जाने लगे। प्रायः अराजकता फैल गई। इसका परिणाम यह हुआ कि राज-कर घट गया, प्रजा भूखों मरने लगी और दुराचार बहुत बढ़ गया। ऐसे समय में लोगों की दृष्टि लाइकरगस की ओर गई। स्पार्टा वालों ने लाइकरगस से लौट आने और शासन-प्रणाली सुधारने की बारम्बार प्रार्थना की। लाइकरगस स्पार्टा में आया तो; परन्तु उसने स्पार्टा वालों से यह वचन पहले ही ले लिया कि जो क़ानून वह बनावेगा उसे मानना पड़ेगा।

उस समय ग्रीस के डेल्फी नगर में अपोलो नामक देवता का मन्दिर बहुत प्रसिद्ध था। कोई काम करने के पहले सर्व-साधारण उस मन्दिर में अपोलो से अनुमति माँगने जाते थे। मन्दिर के पुजारी और पुजारिनें ही देवता के नाम पर अनुमति दिया करते थे। उनके वचनों पर ग्रीस-वालों का विश्वास था। लाइकरगस ने भी शासन-सुधार के काम को अपने हाथ में लेने के पहले अपोलो से सलाह ले लेना उचित समझा। इससे उसका यह मतलब था कि यदि वहाँ से अनुमति मिल गई तो स्पार्टा वालों को उसकी बातें न मानने का साहस न होगा। वह डेल्फी गया। उसे केवल अनुमति ही नहीं मिली, किन्तु उससे यहाँ तक कहा गया कि भविष्यत् में उसी के बनाये क़ानून के अनुसार काम करने से स्पार्टा-राज्य समृद्धि-शाली और सुखी हो सकेगा। स्पार्टा लौट कर उसने राज्य के सब [illegible] चारियों और मुख्य मुख्य लोगों की एक बड़ी भारी सभा की। इस सभा में उसने अपने बनाये हुए क़ानून को पढ़ कर सुनाया। उसका सारांश नीचे दिया जाता है:—

पूर्व-काल से स्पार्टा में दो राजा होते आये हैं। यह प्रथा वैसी ही बनी रहे। भविष्यत् में वर्तमान राजाओं की सन्तानें स्पार्टा-राज्य की राजा होती रहें। वर्तमान राजाओं की शक्ति बहुत बढ़ी हुई है। उसे कम करना परमावश्यक है। तीस आदमियों की एक सभा बनाई जाय। दोनों राजा उसके सभापति हों। शेष अट्ठाईस आदमी प्रजा में से चुने जायँ। कोई भी मनुष्य, जो साठ वर्ष से कम उम्र का हो, उक्त सभा का सभा-सद न हो सके। प्रत्येक सभासद को अपने जीवन-पर्य्यन्त सभा का काम करना पड़े। किसी सदस्य की मृत्यु से जो स्थान ख़ाली हो उस पर प्रजा द्वारा चुना हुआ आदमी ही नियत किया जाय।

इस सभा का काम क़ानून बनाना और न्याय करना होगा। जो क़ानून यह सभा बनावेगी वह सर्व-साधारण के सामने रखा जाया करेगा और उनकी अनुमति ली जायगी। दोनों राजा इस सभा के सभापति का काम तो करें हीं; परन्तु उनका यह भी काम होगा कि वे राज्य की सेना के सेनापति बनें और धार्मिक कामों में बड़े पुजारी का स्थान ग्रहण करें। राज्य के शासन का कार्य्य राजा और सभा द्वारा होगा; परन्तु, सम्भव है, दोनों मिल कर अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करें और प्रजा के ऊपर अत्याचार हो-इस लिए पाँच आदमियों की एक छोटी सभा और बनाई जाय। इस छोटी सभा को यह अधिकार प्राप्त रहे कि वह क़ानून का उल्लंघन करने वाले को—चाहे वह राजा हो चाहे प्रजा—उचित दण्ड दे।

इस समय राज्य में उन्तालीस हज़ार स्वतन्त्र परिवार निवास करते हैं। इस लिए राज्य को उन्तालीस हज़ार भागों में विभक्त करके एक एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग प्रत्येक परिवार को दे दिया जाय। प्रत्येक भाग में इतना अन्न अवश्य ही उत्पन्न होगा जितने की आवश्यकता एक परिवार को होती है। अधिक सम्पत्ति के स्वामी होने से आदमी अभिमानी और दाम्भिक हो जाता है और धनवान् ग़रीबों पर अत्याचार करने लगते हैं। पूर्वोक्त प्रबन्ध से स्पार्टा इन बुराइयों से बचा रहेगा।

परिवारों में भी अन्तर होता है। कोई परिवार बड़ा होता है, कोई छोटा। सम्भव है, कोई छोटा परिवार अपनी भूमि की पैदावार से कुछ काल में धनवान हो कर विलासी हो जाय। इस अनौचित्य से बचने के लिए स्पार्टा में लोहे का सिक्का चलाया जायगा। इस सिक्के को दूसरे देशों के सौदागर न लेंगे। फल यह होगा कि स्पार्टा वाले विलासिता की उन सब वस्तुओं से बचे रहेंगे जो हमारे देश में विदेश से आती हैं। कदाचित् कोई कंजूस स्पार्टा-निवासी इन लोहे के सिक्कों को जमा करके अपने किसी देश-भ्राता पर अत्याचार करे—इस कारण ये सिक्के ऐसे लोहे के बनाये जावेंगे जो विशेष दबाव पड़ने से टूट जायँ और कुछ दिन खे रहने पर ज़ंग इन्हें खा जाय।

सुस्वादु भोजन स्वास्थ्य और सच्चरित्रता के लिए हानिकर होता है। इस लिए प्रत्येक स्पार्टा-निवासी को सादा भोजन करना चाहिए। घर पर भोजन करने से हर मनुष्य अपने मन का ही भोजन करेगा। इससे बचने के लिए राज्य की ओर से ऐसे भोजनालय खोले जावेंगे जिनमें प्रत्येक स्पार्टा-निवासी को विधिनिर्दिष्ट भोजन करना पड़ेगा। भोजनालय का ख़र्च चलाने के लिए उसमें भोजन करने वाले भोजन-सामग्री पहुँचा दिया करेंगे। भूखे हों या न हों, राज्य के भोजनालय में भोजन के समय हर मनुष्य को पहुँचना आवश्यक होगा। भोजन के समय कोई ज़ोर से न बोल सकेगा—उस समय यदि कोई मनुष्य असभ्यता प्रकट करेगा तो वह दण्डनीय होगा। उबाला हुआ मांस, जौ की रोटी, दलिया और कुछ अंजीर—यही चीज़ें खाने को मिलेंगी। हाँ—कभी कभी मछली, और मुर्ग़ का मांस, चपातियाँ और फल भी मिला करेंगे।

विदेशियों का प्रभाव स्पार्टा-वालों पर बुरा पड़ सकता है। इस लिए शीघ्र ही सारे विदेशी इस राज्य के बाहर निकाल दिये जायँ; और, साथ ही, स्पार्टा वाले भी अब किसी दूसरे राज्य या देश में न जा सकेंगे।

सारे स्पार्टा-निवासियों का बलवान् होना परमावश्यक है—हमारे राज्य में निर्बलों का कुछ काम नहीं। जब कोई बालक उत्पन्न हो तब वह राज-कर्मचारियों के पास लाया जाय। यदि कर्मचारी उसे बलवान् समझेंगे तो उसे उन दाइयों के सुपर्द कर देवेंगे जो बच्चों को पालने और उनके शरीर को सुदृढ़ बनाने के लिए नियुक्त की जायँगी, और यदि नव-जात शिशु निर्बल होगा तो वह निर्जन वन में फिंकवा दिया जायगा।

सात वर्ष की अवस्था से बालक की शिक्षा आरम्भ होगी। बालकों की छोटी छोटी टोलियाँ बनाई जायँगी। प्रत्येक टोली का सबसे मज़बूत लड़का अपनी टोली का नायक होगा। यदि कोई लड़का कायरता प्रकट करेगा, या कोई शरारत करेगा, तो टोली के नायक को उसे दण्ड देने का अधिकार होगा। ये बालक सहिष्णुता और सादगी सीखेंगे; गुरुजनों का आदर करना सीखेंगे; परिश्रमी, योद्धा और स्वदेशभक्त बनना सीखेंगे। युवा होने पर उनसे और भी परिश्रम कराया जायगा। घोर जाड़े में उन्हें नङ्गे पैर चलना होगा और सिर्फ़ एक पतला कपड़ा पहनना होगा। साल भर में उन्हें एक ही कपड़ा मिलेगा; उसी को चाहे वे पहनें चाहे ओढ़ें। चाहे वह कपड़ा फट जाय या खो जाय, उन्हें दूसरा कपड़ा वर्ष के भीतर कदापि न मिलेगा। उन्हें नरकुल के बिछौने पर सोना पड़ेगा। उन्हें कोई भी ऐसी चीज़ खाने को न मिलेगी जिससे उनके शारीरिक बल को हानि पहुँचे। उनको रोज़ आपस में कुश्ती लड़ना पड़ेगा और जो युवक बहुत सी कुश्तियाँ जीतेगा उसको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उचित पुरस्कार दिया जायगा। उन्हें नाना प्रकार के ऐसे शारीरिक व्यायाम करने पड़ेंगे जिनसे उनके शरीर सुडौल और सुदृढ़ हो जायँ।

युवकों को चालाकी के काम भी सिखलाये जायँगे। अतएव उन्हें चोरी करने की युक्तियाँ बतलाई जायँगी। यदि चोरी करते हुए कोई युवक पकड़ा जायगा तो उसे कठिन दण्ड मिलेगा। दण्ड चोरी करने के कारण नहीं, किन्तु उसकी असावधानी के कारण दिया जायगा। जो चोरी करने पर न पकड़ा जायगा उसकी चालाकी प्रशंसनीय समझी जायगी।

शिक्षा-काल के समाप्त होने पर स्पार्टा-निवासी युवकों को सैनिक बनना पड़ेगा। देश और राष्ट्र का शुभ-चिन्तन करना ही उनके जीवन का पवित्र उद्देश होगा। देश और राष्ट्र पर अपना जीवन हथेली पर रक्खे रहना ही उनका परम-धर्म होगा। व्यक्ति-गत बातों को देश और राष्ट्र की बातों से अच्छा समझना महा पाप होगा। देश के युवकों को सदा सैनिक कामों में सम्मिलित होना पड़ेगा। शान्ति के समय वे अपना समय कुश्ती लड़ने, शिकार खेलने, दौड़ने-धूपने इत्यादि शारीरिक व्यायाम-सम्बन्धी कामों में व्यतीत करेंगे। तीस वर्ष की अवस्था तक उन्हें राजनैतिक बातों से कोई मतलब न होगा। जो युवक अपने परिवार से विशेष प्रेम प्रकट करेगा वह समाज में घृणा की दृष्टि से देखा जायगा।

बलवती माता ही बलवान् सन्तान उत्पन्न कर सकती है। अतएव स्त्रियों के भी शरीर को बलिष्ठ और पुष्ट बनाना होगा। भविष्यत् में पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी शारीरिक व्यायाम करें। उन्हें दौड़ना, कुश्ती लड़ना, भाला फेंकना और तलवार चलाना सिखाया जायगा। स्त्रियों का आदर पुरुषों की तरह किया जाय इत्यादि, इत्यादि।

लोगों ने लाइकरगस के इस क़ानून का घोर विरोध किया। परन्तु वचन-बद्ध होने और डेल्फी के मन्दिर की भविष्यद्वाणी के कारण वे कुछ न कर सके। तो भी कुछ आदमी उसके शत्रु हो ही गये; और, एक दिन, जब लाइकरगस अकेला [illegible] रहा था, अलकेन्डर नामक एक युवक ने उस [illegible] आक्रमण किया। लोगों ने, समय पर पहुँच कर, उसे बचा तो लिया, परन्तु इस धर पकड़ में उस [illegible] एक आँख फूट गई। युवक अलकेन्डर पकड़ा [illegible] कर लाइकरगस के सामने उपस्थित किया गया। पर [illegible] लाइकरगस ने उसे क्षमा कर दिया। यही नहीं [illegible] अपने मिष्ट भाषण से उसने ऐसा मुग्ध कर लि [illegible] कि वह उसके पैरों पर गिर पड़ा और पश्चात्ता [illegible] करने लगा। स्पार्टा वालों के हृदय पर इस घट [illegible] का बड़ा प्रभाव पड़ा। वे सब लाइकरगस के अन [illegible] भक्त हो गये और उसके बनाये हुए क़ानून [illegible] अनुसार कार्य्य करने लगे।

कुछ कालोपरान्त लाइकरगस ने सोचा कि सम्भव है, किसी समय स्पार्टा वाले उसके बन [illegible] हुए क़ानून की उपेक्षा करने लगें। अतएव उ [illegible] एक सभा की। उसमें उसने कहा—"मैं एक वि [illegible] पर अपोलो की अनुमति लेने डेल्फी जाना चाह [illegible] हूँ। आप लोग मुझे शपथ-पूर्वक वचन दीजिए कि जब तक मैं न लौटूँ तब तक आप मेरे क़ानून [illegible] मानते रहेंगे।" सब लोगों ने शपथें खाईं। ल [illegible] करगस डेल्फी पहुँचा। वहाँ अपोलो की भवि [illegible] द्वाणी द्वारा उसे मालूम हुआ कि यदि स्पा [illegible] वाले उसके बनाये हुए क़ानून के अनुसार क [illegible] करते रहेंगे तो स्पार्टा संसार का सबसे महा [illegible] और शक्ति तथा समृद्धि-शाली देश हो जायगा। उसने इस भविष्यद्वाणी का समाचार स्पार्टा वा [illegible] के पास कहला भेजा और ख़ुद क्रीट के टापू [illegible] चला गया। स्पार्टा को वह इसलिए न लौटा [illegible] कहीं वहाँ वाले उसके लौटने पर, अपनी शप [illegible] पूरी हो गई समझ उसके क़ानून के विरुद्ध काम [illegible] करने लगें। क्रीट में भी अधिक दिन तक जीवि [illegible] रहना उसने उचित न समझा। उसने शीघ्र [illegible] शरीर त्याग करने का दृढ़ विचार करके खा [illegible] पीना छोड़ दिया। अन्त में वह एक दिन इस असा [illegible] संसार से चल बसा। कहीं स्पार्टा-वाले उसका [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर स्पार्टा ले जाकर अपनी शपथ पूरी न कर ले, इसलिए उसके अन्तिम वाक्यों के अनुसार उसका शरीर जला दिया गया और उसकी भस्म समुद्र में फेंक दी गई।

लाइकरगस का जीवन, उसका क़ानून और उसकी मृत्यु—सभी बातें अद्भुत हैं। इस विचित्र मनुष्य की विचित्र बातों का फल भी बड़ा ही विचित्र हुआ। स्पार्टा ने सोलन, साक्रेटीज़, अरिस्टाटल, पिथागोरस, ठेलीज़, डेमाकलीज़, प्लेटो इत्यादि विद्वानों को नहीं उत्पन्न किया; परन्तु ग्रीस को फ़ारिस के बादशाहों के आक्रमणों से बचाने वाले वीर स्पार्टा ही में उत्पन्न हुए थे। लियोनीडाज़ और उसके तीन सौ वीर साथी, जिन्होंने असाधारण आत्मोत्सर्ग प्रकट कर ग्रीस को फ़ारिस की परतन्त्रता की शृंखला में बाँधे जाने से बचा लिया, स्पार्टा ही के सपूत थे। स्पार्टा ही की वे स्त्रियाँ हैं जो कहती थीं—वीरो! या तो ढाल लेकर (विजयी होकर) आना या ढाल पर लद कर (मर कर) आना—"With the shield or on the shield."

गणेश-शङ्कर विद्यार्थी

यमुना-तट पर विरहिणी राधिका।

(कविवर माइकेल मधुसूदनदत्त विरचित बँगला "व्रजाङ्गना" काव्य के एक अंश का भाव)

मृदु कलरव से क्या कहती हो यमुने! मुझसे कहो कहो।
होते हैं क्या सिन्धु-विरह से आज तुम्हारे प्राण अहो?
यदि ऐसा है तो राधा से मन की कथा कहो सारी;
नहीं जानती हो क्या वह भी है विरहानल की मारी॥ १॥
सूर्यसुते! गिरिराज-भवन में तुम्हें पालती घनावली;
जन्मी हो तुम राजवंश में यथा सुमन में सुरभि भली।
फिर राधा से लज्जा कैसी? उचित तुम्हें क्या है यह भी?
क्या यह नहीं जानती हो तुम राजनन्दिनी है वह भी॥ २॥
आओ सखि! हम तुम दोनों ही बैठें, बस, एकान्त यहां;
कहें मनोज्वाला दोनों की हम दोनों कुछ शान्त यहां।
फिरती हूँ तव तट पर सहसा मैं तव अतिथि अनाथा हूँ;
कल्लोलिनि! दृगजल से भींगी गाती प्रिय-गुण-गाथा हूँ॥३॥
फेंक दिये हैं मैंने सौ सौ रत्नाभरण मनोहारी;
बिखराई फूलों की माला मञ्जु मधुर परिमलधारी।
इन सब की अब और साध क्या रखती है रङ्क राधा?
चन्दन और भस्म-लेपन कर सहती हूँ मन की बाधा॥ ४॥
त्यागे सब शृङ्गार किन्तु जो लगा भाल में है सिन्दूर,
सधवा के विचार से मैंने नहीं किया है इसको दूर।
किन्तु आज सीमन्त-देश में ज्वाल-तुल्य यह जलता है;
अपने मन की कथा छिपाते बढ़ती विषम विकलता है॥ ५॥
हे प्रवाहिनी शशिमुखि! आओ बैठो मेरे अञ्चल में;
कमल-वासिनी कमला जैसे बसती है सहस्रदल में;
मैं अबला तव कण्ठ पकड़ कर रोऊँ क्षण भर, होऊँ शान्त;
आओ सखि! आओ! हम दोनों बैठें तनिक यहां एकान्त॥६॥
है कैसा आश्चर्य कि तुम से करती हूँ कितनी विनती;
किन्तु नहीं सुनती हो तुम कुछ है मेरी अब क्या गिनती!
हा! राधा को भाग्य-दोष से आज भोगने थे ये भोग्य!
तुम भी उसे घृणा करती क्या स्वजनि! यही क्या तुमको योग्य॥७॥
हाय! तुम्हें क्या दोष भाग्यवति! मैं भिखारनी, तुम रानी;
हर-प्रिया-सङ्गिनी तुम्हारी मन्दाकिनी सुधासानी।
अर्पण करती है सागर को वही तुम्हारा पङ्कज-पाणि;
गमन उसी के सङ्ग तुम्हारा सिन्धु-सदन में है कल्याणि॥ ८॥
मृदुहासिनी निशा जब आती सजती हो तुम सुन्दर साज;
तारे हाररूप होते हैं; तारापति बनता है ताज।
कुसुमदाम कबरी में रख कर सज धज कर यों बिना प्रयास;
द्रुतगति से विनोदिनी कामिनि! जाती हो तुम पति के पास॥९॥
किन्तु हाय! इस व्रज-मण्डल में आज कौन है राधा का?
कर सकता अनुमान कौन है उसके मन की बाधा का?
दिन डूबा, सूर्यास्त हुआ है, त्रिभुवन तम में लीन यथा
किन्तु व्यथा नलिनी को जैसी होगी वैसी किसे व्यथा॥ १०॥
हे युवती! तुम उच्च और मैं नीच, किन्तु कुछ करो विचार;
पर-दुख से जो दुखी नहीं है निन्द्य जन्म उसका निःसार;
मधु कहता है हे धनि! क्यों तुम रोती हो यों बारंबार—
होता है किसके मानस में सुखद सदयता का सञ्चार॥ ११॥

"मधुप"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापान में स्त्री-शिक्षा ।

[लेखक—सेंट निहालसिंह, लन्दन]

[एक मात्र सरस्वती के लिए लिखित]

जापान के क़स्बों की गलियाँ, प्रति दिन, प्रातःकाल और सन्ध्या के समय, लड़कियों से भर जाती हैं । उनकी पोशाकें पश्चिमीय और पूर्वीय ढँगों के संयोग का एक विचित्र नमूना हैं । उनकी चौड़ी बाँह-दार "किमोनो" के ऊपर एक चौड़ा कमरबन्द रहता है, जिसमें दो त्रिभुजाकार छेद पीठ की ओर होते हैं। उनके हाथों में काग़ज़ के छाते और पैरों में काठ के जूते होते हैं। वर्षा में वे अपने जूतों के तले दो अथवा तीन इञ्च तक मोटे रखती हैं। इन में छोटी छोटी लड़कियों से लेकर अठारह बीस वर्ष की अवस्था तक की लड़कियाँ और स्त्रियाँ होती हैं। इनमें से अधिकांश का शरीर छोटा और दुबला होता है। उनके गालों की हड्डियों का उठा होना उनका मंगोल-वंशीय होना सिद्ध करता है । उनकी चाल ढाल से उनकी प्राकृतिक तेज़ी और चुस्ती प्रकट होती है।

ये जापान की पाठशालाओं की लड़कियाँ और अध्यापिकायें हैं। साठ लाख छात्रों में से, जो आज कल जापान में विद्या-ध्ययन कर रहे हैं, लगभग आधी लड़कियाँ हैं। प्रारम्भिक शिक्षा देने का काम तो बिलकुल स्त्रियों ही के हाथ में है । उच्च-श्रेणी के विद्यालयों में भी अध्यापिकाओं का प्रवेश हो गया है; और, प्रति वर्ष, उनकी संख्या बढ़ती जाती है।

जापान ही पहला पूर्वीय देश है जिसमें लड़कों की तरह लड़कियों की भी प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य है। पूर्व के देशों में से केवल जापान ही में यह नियम है कि लड़का हो या लड़की, कोई हो और किसी का हो, छः वर्ष से लेकर चौदह वर्ष की उम्र तक, उसे घर पर, या सरकारी पाठशाला में, उचित शिक्षा प्राप्त करनी ही चाहिए। लड़कियों को छः ही वर्ष तक पढ़ना पड़ता है; परन्तु शीघ्रही यह अवधि बढ़ कर आठ वर्ष होने वाली है। यह नियम देश भर के लिए है और प्रत्येक व्यक्ति इस नियम का पालन करने के लिए बाध्य है। परन्तु जापानी माता-पिता धन्य हैं—वे केवल इस नियम ही का पालन नहीं करते, किन्तु उनमें से अधिकांश अपने बच्चों को प्रारम्भिक शिक्षा देने के पूर्व किण्डरगार्टन सिखाते हैं और कितनेही अपनी सन्तानों को प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कराकर उच्च-श्रेणियों की पाठशालाओं और महाविद्यालयों में पढ़ने भेजते हैं।

१८७१ में जापान-सम्राट् मिकाडो की एक राजाज्ञा प्रकाशित हुई थी, जिसके द्वारा उन्होंने अपनी प्रजा का चित्त स्त्री-शिक्षा और आधुनिक सभ्यता की ओर आकर्षित किया था। राजाज्ञा के शब्दों का भावार्थ सुनिए:—

"जीवन सफल करने के लिए ज्ञान प्राप्त करना परमावश्यक है। राजपुरुष, कृषक, व्यापारी, शिल्पकार, वैद्य आदि प्रत्येक श्रेणी के आदमियों को अपने अपने काम का ज्ञान शिक्षा द्वारा प्राप्त हो सकता है। परन्तु अभी तक पाठशालाओं के लिए को ठीक ठीक न समझने के कारण सर्व-साधारण में यह फैली हुई है कि कृषकों, शिल्पकारों, व्यापारियों और के लिए शिक्षा प्राप्त करना कोई विशेष आवश्यक बात नहीं उच्च श्रेणी के लोग भी ऐसी शिक्षा प्राप्त करने के बदले जिस से वे अपना कुछ भला और राष्ट्र की कुछ सेवा कर अपना समय कविता करने, क़िस्से-कहानी गढ़ने और इसी के अन्य अनुपयोगी कामों में ख़र्च करते हैं। इन्हीं बुराइयों दूर करने के लिए शिक्षा-विभाग की स्थापना की गई है शिक्षा-पद्धति में भी सुधार किया गया है। अब यह निश्चय है कि शिक्षा का ऐसा प्रचार किया जाय कि किसी गांव में परिवार और किसी परिवार में कोई आदमी अपढ़ न रह जाय

इस राजाज्ञा को जापान वाले बड़ा ही पूजनीय समझते हैं । इसी पर जापान की उन्नति और भविष्यत् में उसका वैभव अवलम्बित है। इसका उल्लेख इसलिए किया जाता है जिसमें पाठक इस बात पर विचार कर सकें कि जापान सम्राट् स्त्री-शिक्षा को कितने महत्त्व का विषय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझते हैं। केवल सम्राट् ही नहीं, जापान में जितने राजनीतिज्ञ और सार्वजनिक जीवन व्यतीत करनेवाले अन्य लोग हैं वे सभी स्त्री-शिक्षा की परमावश्यकता को जी खोल कर स्वीकार करते हैं।

इस राजाज्ञा के अनुसार देश भर में पाठशालायें खुल गईं। लड़के और लड़कियाँ किण्डरगार्टन (बालोद्यान शिक्षा) और प्रारम्भिक शिक्षा तो साथ ही साथ पाते हैं; उच्च शिक्षा के लिए उनकी पाठशालायें पृथक् पृथक् हैं।

किण्डरगार्टन की शिक्षा जापान में उसी तरह दी जाती है जिस तरह की पाश्चात्य देशों में। जर्मनी इस प्रकार की शिक्षा का उत्पत्ति-स्थान है। जापान ने उसे जर्मनी से ही सीखा और अब कुछ काट छाँट कर वह उसे अपने यहाँ काम में लाता है। जापान में यह शिक्षा उसी प्रकार दी जाती है जिस प्रकार भारत-वर्ष के कुछ प्रधान नगरों में। इस लिए उसका यहाँ विशेष वर्णन करना अनावश्यक है।

प्रारम्भिक श्रेणियों में जापानी बालिका केवल लिखना, पढ़ना और हिसाब सीखती है। हाँ, वह अपने देश के साहित्य और इतिहास तथा गृह-प्रबन्ध-शास्त्र के तत्त्वों से भी परिचित करा दी जाती है। उसे आठ बजे दिन से लेकर दो बजे दिन तक पाठ-शाला में रहना पड़ता है। हर घंटे के अन्त में उसे पन्द्रह मिनट की छुट्टी मिलती है, जिस में उसे कोई दिमाग़ी काम नहीं करना पड़ता। मैदान में वह केवल शारीरिक व्यायाम और वायु-सेवन करती है। पाठशाला के प्रबन्ध-कर्ता इस बात का बहुत ख़याल रखते हैं कि अधिक मानसिक परिश्रम करने से कहीं लड़कियों की बाढ़ न मारी जाय। इसी लिए सप्ताह में तीन घंटे शारीरिक व्यायाम करना हर लड़के और हर लड़की के लिए आवश्यक कर दिया गया है। व्यायाम-शास्त्र के पूर्ण-विज्ञ व्यायाम-शिक्षकों की निगरानी में लड़के और लड़कियाँ व्यायाम करती हैं। व्यायाम के लिए जिन जिन चीज़ों की आवश्यकता होती है वे सब हर पाठशाला में प्रस्तुत रहती हैं।

जापान में नैतिक शिक्षा का विशेष प्राधान्य है। लड़कियों को इस प्रकार की शिक्षा उसी समय से मिलने लगती है जिस समय से वे पाठशाला में प्रवेश करती हैं। जब तक वे पढ़ना नहीं छोड़ देतीं तब तक उन्हें यह शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है। माता-पिता की भक्ति और गुरुजनों की आज्ञा का पालन, प्रेम और प्रीति, परिमित व्यय और परिश्रम, सुशीलता और पातिव्रत, साहस और राष्ट्र तथा समाज के प्रति कर्तव्य आदि सद्गुणों की शिक्षा उन्हें आरम्भ ही से मिलने लगती है। सप्ताह में तीन घंटे माता-पिता की भक्ति, दो घंटे गृहस्थाश्रम के सुख, तीन घंटे प्रीति, तीन घंटे राष्ट्र के प्रति कर्तव्य, दो घंटे उद्योगी होने, दो घंटे कलह न करने, दो घंटे झूठ न बोलने, दो घंटे अपने ऐब न छिपाने, और दो घंटे दूसरों को न सताने की शिक्षा दी जाती है। इस के सिवा, उनको सफ़ाई, ईमानदारी, वक़्त की पाबन्दी, दूसरों के ऐबों की नक़ल न करना, बुरी सलाह न मानना, उदारता, दान, नौकरों पर कृपा, कृतज्ञता, द्वेष-त्याग, आत्मावलम्बन, स्वाधीनता, सार्वजनिक भलाई, दृढ़ता, करुणा, परोपकार, सहानुभूति, स्वतन्त्रता और चरित्र-गठन आदि विषयों का भी अध्ययन करना पड़ता है। इस प्रकार के पाठ इतिहास-प्रसिद्ध चरित्रवान् पुरुषों के चरित्रों और चित्रों द्वारा पढ़ाये जाते हैं। जापान का आधुनिक अध्यापक इस प्रकार की शिक्षा केवल अपने देश ही के इतिहास और अपने देश ही के महात्मा पुरुषों के जीवन-चरित्र द्वारा नहीं देता, किन्तु वह इस काम में विदेशों के इतिहास और विदेशी महात्मा-पुरुषों के जीवन-चरित्र से भी बहुत कुछ सहायता लेता है।

थोड़े ही वर्ष हुए जब लड़कियों को प्रारम्भिक शिक्षा मात्र देना बहुत समझा जाता था। उसे प्राप्त कर लेने पर वे पाठशाला छोड़ दिया करती थीं। परन्तु अब दिन ब दिन लड़कियों की संख्या उच्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेणी के विद्यालयों में बढ़ती जाती है। विद्यालयों में लड़कियों को उच्च श्रेणी के गणित, चिकित्सा-शास्त्र, शरीरशास्त्र, प्राणिशास्त्र, भूगोल, नीति, रसायन-शास्त्र और वनस्पति-शास्त्र की शिक्षा साधारणतः, और गृहप्रबन्ध-शास्त्र तथा देश की भाषा और इतिहास की शिक्षा मुख्यतः दी जाती है। गृहप्रबन्ध-शास्त्र तीन वर्ष तक पढ़ना पड़ता है। इस बीच में सीना, पिरोना, सङ्गीत, चाय बनाना, शिष्टाचार, जीवन-साफल्य, फूल सजाना, गृहप्रबन्ध, बालकों को शिक्षा देना आदि सिखाया जाता है। गणित, चिकित्सा-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, साहित्य और व्यायाम आदि बातों के सीखने का समय दो वर्ष है।

जो लड़कियाँ अध्यापिकायें बनना चाहती हैं उन्हें अपनी प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त नार्मल-स्कूल अर्थात् ट्रेनिङ्ग विद्यालय में पढ़ना पड़ता है। वहाँ की पढ़ाई कुछ अधिक उन्नत है। वही लड़कियाँ इन विद्यालयों में पढ़ सकती हैं जिन्होंने छः वर्ष तक नीचे की प्रारम्भिक पाठशाला और तीन वर्ष तक ऊँची प्रारम्भिक पाठशाला में शिक्षा पाई हो। जापान भर में सब मिला कर केवल स्त्रियों ही के लिए तेरह अध्यापिका-विद्यालय हैं। प्रारम्भिक पाठशाला के अध्यापकत्व की सनद मिलने के पहले भावी अध्यापिकाओं को कितनी ही सरकारी पाठशालाओं में पढ़ाने का काम करना पड़ता है।

जो लड़कियाँ विशेष उत्साहवती होती हैं और विद्यालयों की अध्यापिकायें बनने की इच्छा रखती हैं, वे अपने विद्यालय के शिक्षा-क्रम को समाप्त करके स्त्रियों के उच्च अध्यापिका-विद्यालय में प्रवेश करती हैं। इस विद्यालय का शिक्षा-क्रम तीन भागों में विभक्त है:—शिल्प-कला, साहित्य और विज्ञान। पहले भाग में अध्यापकत्व, अँगरेज़ी भाषा, नीति, चिकित्सा-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, गृह-प्रबन्ध, बाल-शिक्षा, सीना-पिरोना, सङ्गीत, चित्र-विद्या, नक़शा बनाना और स्वास्थ्य-रक्षा शामिल हैं। दूसरे में अध्यापकत्व, अँगरेज़ी भाषा, चीनी साहित्य, जापानी भाषा, भूगोल, इतिहास, नीति, सङ्गीत और स्वास्थ्य-रक्षा। तीसरे में अध्यापकत्व, रसायन-शास्त्र, चिकित्सा-शास्त्र, गणित, अँगरेज़ी भाषा, प्राणि-शास्त्र का इतिहास, नीति, सङ्गीत और व्यायाम आदि हैं।

जापान की गवर्नमेंट कुछ लड़कियों को अध्यापकत्व की शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेश भी भेजती है। मध्यम श्रेणी के विद्यालयों में पढ़नेवाली ख़ूब लड़कियाँ योरप और अमेरिका भेजी जाती हैं। सरकार उनका सब ख़र्च देती है। उसके बदले में वहाँ से लौटने पर छः वर्ष तक सरकारी विद्यालय में अध्यापिका का काम करना पड़ता है।

जो स्त्रियाँ ऐसी हैं कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा तो रखती हैं, परन्तु वे सरकार की सहायता से इसलिए योरप और अमेरिका नहीं जाना चाहती कि उन्हें लौट कर छः वर्ष तक अध्यापिका का काम करना पड़ेगा। वे सरकारी विद्यालयों की पढ़ाई समाप्त करके "निप्पन जोशी दाई गाकू" अर्थात् "जापानी स्त्रियों के महाविद्यालय" नामक संस्था में प्रवेश करती हैं। यह महाविद्यालय १९०१ में स्थापित हुआ था। यह बिलकुल ग़ैर सरकारी है। सरकार से किसी प्रकार की सहायता नहीं लेता। एक हज़ार से अधिक लड़कियाँ इस से ग्रेजुएट होकर निकल चुकी हैं। उनमें से कितनी ही तो चीन, स्याम और अन्य एशियाई देशों में शिक्षक हैं। कितनी ही समाचार-पत्रों के कार्य्यालयों में, कितनी ही सरकारी रेल, तार और टेलीफोन के दफ़्तरों में, और कितनी ही औद्योगिक तथा व्यापारिक संस्थाओं में काम करती हैं। उन में से कुछ ऐसी भी हैं जो देश की सामाजिक दशा पर विचार कर रही हैं कि उसमें क्या सुधार होना चाहिए। कुछ विवाह करके गृहाश्रम में प्रविष्ट होगई हैं।

इस महा-विद्यालय का शिक्षा-क्रम आठ भागों में विभक्त है। यथाः— (१) विज्ञान, (२) सङ्गीत, (३) शिल्प-कला, (४) अँगरेज़ी-साहित्य, (५) जापानी साहित्य, (६) अध्यापकत्व, (७) व्यायाम, (८) गृह-प्रबन्ध-शास्त्र। लड़कियों को रासायनिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

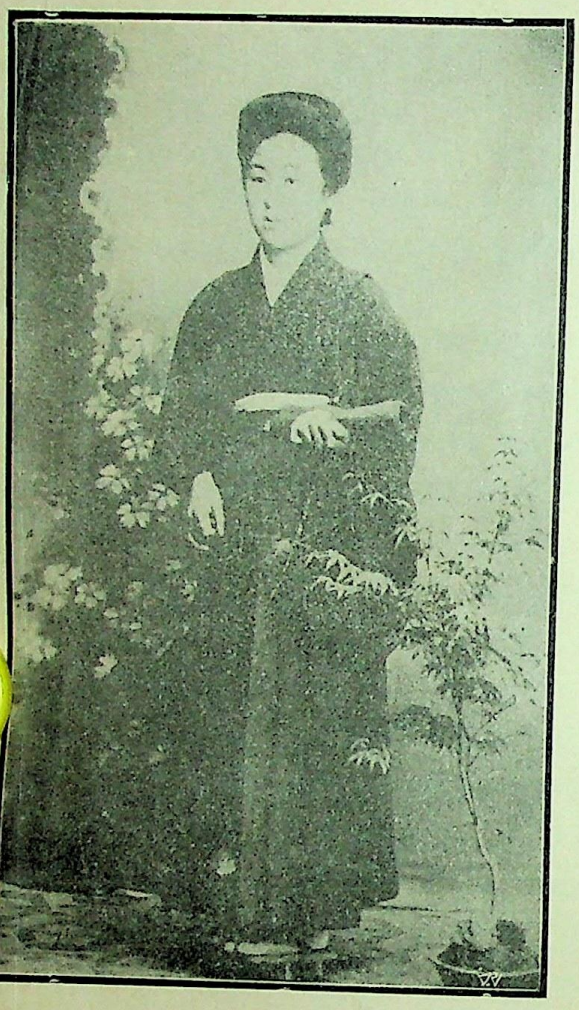

एक जापानी लड़की नियमनिर्दिष्ट पोशाक में।

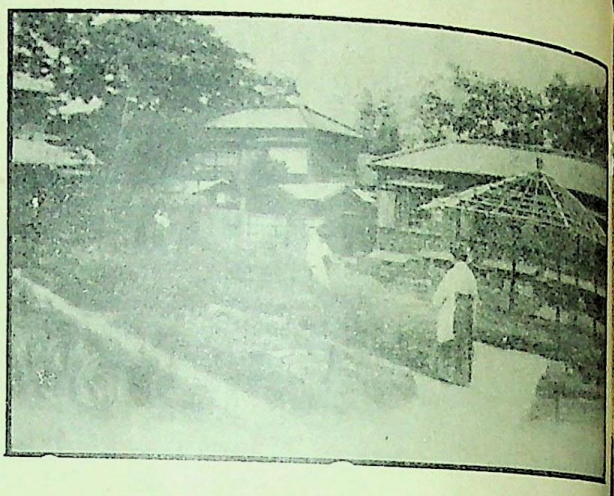

जापानी स्त्रियों के महाविद्यालय के बागीचे का एक अंश।

जापानी लड़कियाँ अपने देश के बाजे बजा रही हैं।

एक जापानी लड़की चाय बनाना और परोसना सीख रही है।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

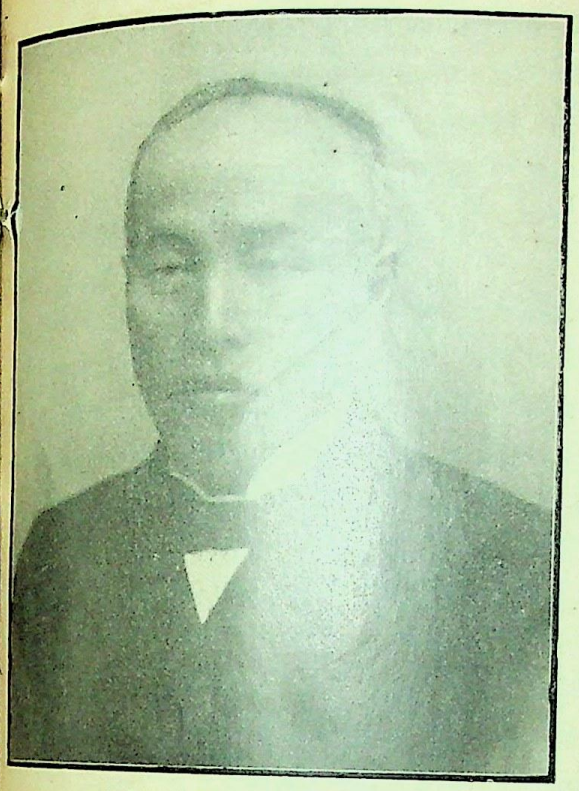

जापान में स्त्री शिक्षा के उन्नायक-कौंट ओक्यूमा।

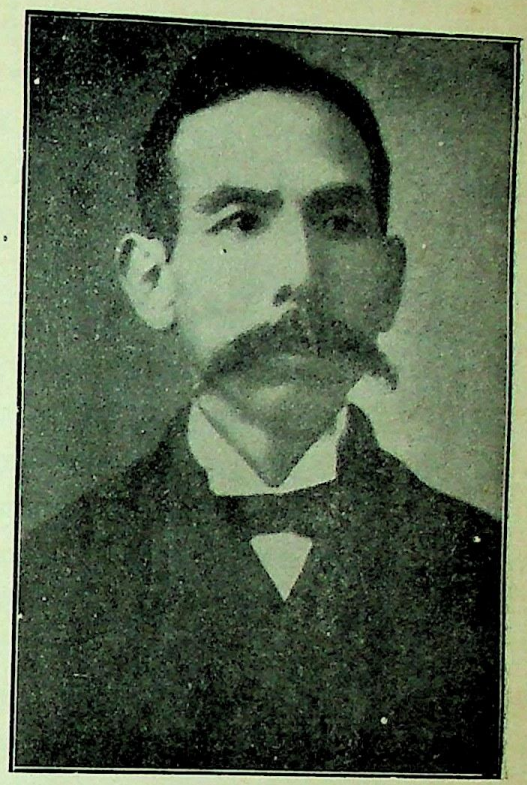

निप्पन जोशी दाई गाको-नामक विद्यालय के संस्थापक अध्यापक जिंज़ो नरूसे।

जापानी लड़कियों को कमरबन्द बाँधने की शिक्षा।

एक जापानी लड़की खाना पकाना सीख रही है।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापान के खाद्य-पदार्थों का पृथक्करण सिखाने के लिए ख़ूब भरी पूरी यन्त्र-शालायें स्थापित हैं। गैस और अन्य आधुनिक उपायों द्वारा जापानी और योरपियन ढँग से भोजन बनाना भी सिखाया जाता है। गृह-प्रबन्ध की शिक्षा छात्रालयों (Hostels) में ही अच्छी तरह मिल जाती है।

जापान में स्त्रियों के लिए व्यापारिक, औद्योगिक और अन्य प्रकार के रोज़गारों की शिक्षा प्राप्त करने का भी अच्छा सुभीता है। टोकियो में चिकित्सा-शास्त्र का एक विद्यालय है, जिसमें केवल स्त्रियाँ ही पढ़ती हैं। इसके सिवा दो कालेज और भी ऐसे हैं जिन में स्त्रियों का विभाग बिलकुल अलग है। जापान भर में इस समय लग भग १५० स्त्रियाँ चिकत्सक हैं। इस छोटे से द्वीप में लगभग तीन हज़ार शिक्षित दाइयाँ हैं, जिन में से बहुतों ने गत रूस-जापान युद्ध में रोगियों और घायल सैनिकों की बड़ी सेवा की थी। सम्राट् ने उनके इस काम से प्रसन्न होकर उन्हें पदक प्रदान किये थे। ख़ास टोकियो में स्त्रियों के लिए एक व्यापारिक और दो औद्योगिक विद्यालय स्थापित हैं। व्यापारिक विद्यालयों की तो देश भर में भरमार है। जो उत्साही लड़की उच्च-शिक्षा प्राप्त करने के लिए महाविद्यालय में प्रवेश नहीं करती वह शिल्प-कला आदि की शिक्षा प्राप्त करती है।

जापान में लड़कियों को सङ्गीत और ललितकला सीखने का भी अच्छा सुभीता है। टोकियो में स्त्रियों के लिए सङ्गीत और ललित-कला सीखने के लिए एक कालेज है। इस प्रकार के और भी कितने ही विद्यालय देश में हैं।

व्यापारिक, प्रारम्भिक और उच्च शिक्षा की ये सब पाठशालायें मध्यम और निम्न श्रेणी के आदमियों की लड़कियों के लिए हैं। इनके सिवा एक संस्था ऐसी भी है जिसे सरदारों की लड़कियों की पाठशाला (Peeresses' School) कहते हैं और जिसमें केवल बड़े आदमियों और धनवानों की लड़कियाँ शिक्षा पाती हैं। यह पाठशाला शिक्षा-विभाग के अधीन नहीं; यह राजपरिवार के संरक्षण में है। यथार्थ में यह पाठशाला जापान की महारानी ने स्थापित की है। उन्हीं के हृदय में उसकी स्थापना का विचार पहले पहल उत्पन्न हुआ था और आज बीस वर्ष से—जबसे वह स्थापित हुई है—उन्हीं की हर तरह की सहायता से वह चल रही है।

इस पाठशाला में हर उम्र की लड़कियाँ पढ़ती हैं। किण्डरगार्टन की शिक्षा पाने वाली चार पाँच वर्ष की छोटी छोटी लड़कियों से लेकर कालेज के निर्दिष्ट पाठ पढ़नेवाली अठारह अठारह बीस बीस वर्ष की युवती स्त्रियाँ तक इस पाठशाला में मौजूद हैं। जब लड़की छः वर्ष की हो जाती है तब वह किण्डरगार्टन-कक्षा से निकल कर प्रारम्भिक कक्षाओं में शिक्षा पाने लगती है। इन कक्षाओं में वह छः वर्ष तक रहती है। उसे दिन में चार पाँच घंटे पढ़ना पड़ता है। इसके बाद वह पाँच वर्ष तक मध्यम-विभाग में पढ़ती है। अब उसका वय १७ वर्ष का हो जाता है और वह आचार्य-विभाग में प्रवेश करती है। इस विभाग की पढ़ाई को वह तीन वर्ष में समाप्त करती है। यथार्थ में, इस विभाग का शिक्षा-क्रम एम० ए०, बी० ए० के शिक्षा-क्रम के तुल्य है। सौ में केवल पचास लड़कियाँ ऐसी होती हैं जो इस पाठशाला के पहले विभागों में उत्तीर्ण होकर इस विभाग तक पहुँचती हैं।

ये लड़कियाँ आगे चल कर बड़े बड़े घरों की स्वामिनियाँ होती हैं। इन्हें शिष्टाचार सीखना परमावश्यक है। इसीलिए शिष्टाचार की शिक्षा इन्हें ख़ास तौर से दी जाती है। इस पाठशाला में जिस प्रकार की शिक्षा दी जाती है उसकी कुल शक्ति लड़कियों को इस योग्य बनाने में ख़र्च की जाती है कि भविष्यत् में वे समाज में अपना उचित स्थान ग्रहण कर सकें। समुराई-वंश के एक अध्यापक, जिन से बढ़ कर जापान भर में सदाचार का ज्ञाता कोई नहीं है, इस पाठशाला में शिष्टाचार की शिक्षा देते हैं। वे लड़कियों को ख़ास तरह से झुक कर अभिवादन करना सिखाते हैं, जिसमें ऐसा करने में निर्दिष्ट से अधिक समय न लगे। वे उन्हें घुटनों के बल झुकना,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नरम और सफ़ेद चटाई पर अपने हाथ फैलाना और नज़ाकत के साथ अपनी गर्दनें इतनी झुकाना कि सर भूमि से लग जाय, आदि व्यावहारिक बातें भी सिखलाते हैं। पुरानी रीति के अनुसार चाय बनाना और पिलाना तथा फूलों को सुन्दरता के साथ सजाना भी सिखाया जाता है।

इस पाठशाला के खेल-तमाशे भी बहुत अच्छे होते हैं। रङ्गभूमि प्रशस्त और चौरस होती है और बिना कुटे हुए रेतीले कङ्कड़ों से ढकी रहती है। चारों ओर बैठकों की चार चार पाँच पाँच पंक्तियाँ रहती हैं। दर्शकों को धूप से बचाने के लिए बाँस के शामियाने तने रहते हैं। एक ओर फूल-दार वृक्षों का एक कुंज रहता है, जो अपने नव-विकसित फूलों के सुवास से पवन को सुगन्ध-मय करता है। दूसरी ओर महारानी के बैठने के लिए एक तम्बू तना रहता है। तम्बू के पीछे और बगल में भड़कदार लाल मख़मल और सफ़ेद ज़रबफ़्त के परदे पड़े रहते हैं। महारानी की कुर्सी के सामने एक मेज़ रहती है, जो बहुमूल्य कपड़े से ढकी रहती है। महारानी के साथ चार राजकुमारियाँ भी आती हैं, जो उन्हें घेर कर बैठती हैं। उनके पीछे अन्य राजकुमारियों का स्थान होता है। राज-वंश के अन्य लोग और नौकरानी नीचे भूमि पर बैठती हैं।

पाठशाला की लड़कियाँ ख़ूब सिखाई रहती हैं और अपनी कलाओं को बड़े चाव से दिखाती हैं। किसी किसी खेल में सौ सौ लड़कियाँ तक शामिल होती हैं। क़वायद करती हुई वे एक ओर जाती हैं और फिर उधर से लौटती हैं। सब कामों को वे बड़े अच्छे ढँग से करती हैं।

खेलों में बाँस पर चलने का खेल बड़ा प्रसिद्ध है। बाँस क्या, पचीस फीट लम्बी एक शहतीर होती है, जो ज़ंजीरों से बँधी हुई भूमि से एक फ़ुट ऊँचाई पर सम-रूप से लटकी रहती है। इसी शहतीर को ज़ोर ज़ोर या धीरे धीरे—जैसा चाहते हैं—झुलाते हैं और ऐसी ही अवस्था में उसके एक सिरे से दूसरे सिरे तक चलना पड़ता है। इस खेल में झूलते हुए शहतीर पर बोझ सम रखने के लि शरीर के पोर पोर पर शक्ति डालनी पड़ती शरीर-गठन के लिए यह खेल एक उत्तम व्या समझा जाता है। जापान की लड़कियाँ बिना पड़े अथवा बिना किसी अन्य कठिनता के स ही में शहतीर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाती हैं।

इस पाठशाला की लड़कियों को इस प्रकार भी शिक्षा दी जाती है जिससे वे युद्ध के स योद्धाओं की सेवा-शुश्रूषा भी कर सकें। इसी का एक खेल वे महारानी के सामने भी करती इस खेल में पट्टियाँ बाँधने और अस्पताल-सम्ब अन्य कामों में वे अपनी चतुरता दिखाती हैं। में कुछ लड़कियाँ घायल योद्धा बनती हैं और उन्हें चारपाइयों पर उठा कर अस्पताल ले जाती जहाँ पर कुछ अन्य लड़कियाँ डाक्टरी का काम योग्यता से सम्पादन करती हैं।

खेल समाप्त होने के पहले सब लड़कियाँ र खींचती हैं। उसके बाद सात सौ लड़कियाँ शिक्षक इम्पीरियल बैंड की गति के अनुसार रङ्ग में क़वायद करते हैं। जब महारानी जाने लगती तब ये नंगे सिर खड़ी हो जाती हैं और "किमिगो नाम का जातीय गीत गाती हैं।

इस पाठशाला की पढ़ी हुई कुलीन घराने कुछ लड़कियाँ विदेश-यात्रा भी करती हैं। १८७ राजाज्ञा प्रकाशित हुई थी कि देश के बड़े बड़े मियों को चाहिए कि वे अपनी स्त्रियों को भी विदे यात्रा से लाभ उठाने का अवसर दिया करें। राजाज्ञा का एक अंश इस प्रकार था:—

"यह उचित होगा कि अब जो लोग विदेश जायँ वे स्त्रियों को भी अपने साथ ले जाया करें। जो स्त्रियाँ इस विदेश जायँगी वे समझ सकेंगी कि अन्य देशों में स्त्रि की क्या हालत है। उन्हें यह बात भी मालूम हो जायगी बालकों को किस प्रकार शिक्षा दी जाती है"।

यह न समझ लेना चाहिए कि जापान में लि को शिक्षा केवल पाठशालाओं ही में दी जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं, जापानी माता सदा इस बात का बड़ा ख़याल रखती है कि उसकी लड़की स्त्रियों से सम्बन्ध रखने वाली सारी छोटी मोटी बातें सीख ले, जिससे वह व्यवहारदक्ष हो जाय और लोगों के चित्त को अपनी ओर खींच सके। उसकी यह शिक्षा उस समय से आरम्भ होती है जब वह निरी बच्ची होती है। जब तक उसका विवाह नहीं हो जाता और वह अपने घर नहीं चली जाती तब तक उसकी यह शिक्षा जारी रहती है।

बचपन में उसे नाचना भी सिखाया जाता है। नाच में पङ्खे द्वारा कितने ही हाव भाव किये जाते हैं। जापान का प्रसिद्ध बाजा माण्डोलिन या कोटो नाचने के समय बजता रहता है। उसी की गति पर धीरे धीरे थिरकना पड़ता है। नाचने वाली लड़की पङ्खे को अपने सिर के चारों तरफ़ घुमाती है; थिरकती हुई आगे बढ़ती है और पीछे हटती है; कभी नीचे झुकती है और कभी कमरे भर में उँगलियों के बल नाचती है। बीच बीच में गाती भी जाती है। कभी वह बन्द पङ्खे को अपनी हथेली पर मार कर ताल देती है, कभी उसे यकायक खोल कर फैला देती है। एक चक्कर लगा कर उसे फिर बन्द कर लेती है और ऊपर फेंक कर अपने हाथों में रोक लेती है।

कुलीन लड़की को कमरे में इस प्रकार प्रवेश करने की शिक्षा दी जाती है जिस से इतनी भी आहट न हो कि कमरे में बैठे हुए लोग उसकी ओर देखने लगें। वह पहले कमरे के दरवाज़े पर जाती है। अपने घुटनों पर अपने हाथ रख कर धीरे से थोड़ा झुक जाती है। फिर वह अपना पङ्खा खोलती है, उससे अपना मुँह ढक लेती है और कमरे के भीतर आने की अनुमति देनेवाले उपस्थित सज्जनों को धीरे से धन्यवाद देती है।

उसकी शिक्षा उस समय तक समाप्त नहीं होती जब तक वह अपने किसी अतिथि के उपलक्ष्य में कुछ कविता न रचे, अथवा उसके लिए उसके किसी किसी प्यारे फूल का चित्र न खींचे। उसे इस बात की भी शिक्षा दी जाती है कि वह अपने घर को जापानी ढँग से ख़ूब सजा सके। जापान में फूलों का सजाना भी एक बड़ा भारी हुनर है। हर जापानी लड़की को इस हुनर के सीखने में अपना बहुत कुछ समय और शक्ति ख़र्च करनी पड़ती है।

इन बातों के सिवा जापानी मातायें अपनी लड़कियों को गृह-प्रबन्ध भी सिखाती हैं। बड़े बड़े घरों की लड़कियों तक को घर के सब काम—यहाँ तक कि कपड़े धोना तक—सीखना पड़ता है।

नल का दुस्तर दूत-कार्य्य।

[२]

नल के मुख से दिक्पालों का सन्देश सुनते समय दमयन्ती की भौंहें टेढ़ी और आँखें लाल हो रही थीं। आँखों और भौंहों के विकार-विभ्रम से वह यह सूचित कर रही थी कि देवताओं से सम्बन्ध रखनेवाली अपनी अनिच्छा को साफ़ साफ़ कह कर प्रकट करने के लिए मैं उत्सुक हो रही हूँ। पाठक, यहाँ पर, यह कह सकते हैं कि नल के सन्देशवाक्य यदि भैमी को इतने अप्रिय मालूम होते थे तो उसने नल को बीच ही में क्यों न रोक दिया? क्यों उसकी सारी बातें वह अन्त तक सुनती रही? इसका कारण यह न था कि दमयन्ती उस सन्देश को कोई गौरव की चीज़ समझती थी। नहीं, वह सन्देश उसकी दृष्टि में बिलकुल ही तुच्छ था। नल को जो उसने बीचही में नहीं रोक दिया, इसका कारण यह था कि नल के सन्देश-कथन का ढँग बड़ाही अच्छा था। उसकी उक्तियाँ बड़ी ही मनोहारिणी थीं। उसकी वाणी बहुत ही रसवती थी। इसी से, उक्ति-श्रवण के लोभ में पड़ कर, अन्त तक दमयन्ती उसकी बातें सुनती रही। सुना तो उसने सब; पर उसका कुछ भी असर उस पर न हुआ। नल के कथित सन्देश को बिलकुल ही अनसुना सा करके उसने इस प्रकार कहना आरम्भ किया:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप तो बड़ेही विचित्र जीव मालूम होते हैं। मैंने आपसे आपका नाम पूछा; आपका वंश पूछा; आपका स्थान पूछा। पर मेरे इन प्रश्नों का कुछ भी उत्तर न देकर, न मालूम, आपने क्या क्या अनाप-शनाप कह डाला। मुझे अपने कई प्रश्नों का उत्तर आपसे पाना है। इस कारण, इस विषय में, आप मेरे ऋणी हैं। क्या यह आपके लिए लज्जा की बात नहीं? अपना पहला क़र्ज़ न चुका कर, किस नैतिक नियम के अनुसार, आप मुझसे उत्तर के रूप में और कुछ चाहते हैं?

जिस तरह सरस्वती नदी की धारा कहीं दृश्य और कहीं अदृश्य होती है, ठीक उसी तरह का हाल आपकी मुखस्थ सरस्वती (वाणी) का भी है। आप की बातों में स्पष्टता और अस्पष्टता दोनों का मिश्रण है। आपकी सुधासदृश बातें सुन कर मेरे श्रवण निःसन्देह कृतार्थ हो गये; तथापि आपका और आपके वंश का नाम सुनने के लिए वे अब तक उत्सुक हैं। उनकी यह उत्सुकता पूर्ववत् बनी हुई है। प्यासे की प्यास पानी से ही जा सकती है; घड़ों दूध अथवा सेरों शहद से नहीं। अतएव, तब न सही अब, उनके इस औत्सुक्य को दूर करने की उदारता दिखाइए।

नल ने कहा—मैंने जो तुम्हारे उन दोनों प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया वह इस लिए कि मैंने वैसा करना व्यर्थ समझा। उससे लाभ की कुछ भी सम्भावना नहीं। अच्छा वक्ता वही है जो मतलब की बात भी कह दे और अपने कथन को व्यर्थ बढ़ावे भी नहीं। मेरा नाम क्या है और मेरा जन्म किस वंश में हुआ है—ये ऐसी बातें हैं जिनका प्रकृत विषय से कुछ भी सम्बन्ध नहीं। हम दोनों इस समय एक दूसरे के सामने हैं। अतएव, जिस काम के लिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ उसका सम्पादन बिना मेरा नाम-धाम बतलाये भी अच्छी तरह हो सकता है। इस विषय की बातचीत में, पारस्परिक सम्बोधन के लिए, केवल 'मैं' और 'तुम' यही दो सर्वनाम काफ़ी हैं। अच्छा, कल्पना करो कि मेरा जन्म किसी बुरे वंश में हुआ है। इस दशा में उसका नामोल्लेख किस तरह उचित माना जा सकेगा? और, यदि, मेरा वंश उच्च है, तो भी उसका नाम लेना मुझे उचित नहीं। कोई ऐसे वंश में जन्म पाकर भी मेरा यहाँ दूत बन कर आना अपने वंश की बहुत बड़ी विडम्बना है। इसी से इन बातों के विषय में उदासीनता दिखा कर देवताओं का सन्देश तुमसे कह सुनाया। तुम्हें यही उचित है कि अवान्तर बातों पर व्यर्थ विवाद करके मेरे द्वारा लाये गये सन्देश ही को उत्तर के लिए तुम अपनी वाणी को प्रवृत्त करो। अच्छा जाने दो। यदि तुम्हें इतना निर्बन्ध है तो दो शब्द कह कर मैं तुम्हारी इच्छा को पूर्ण ही क्यों न कर दूँ। लो, सुन लो, मैं चन्द्रवंशी हूँ। अब तो तुम्हारा आग्रह सफल हो गया? नाम मैं अपना अपने ही मुँह से नहीं बतला सकता। भले आदमी कभी अपना नाम अपने ही मुँह से नहीं लेते। क्या तुम नहीं जानती कि महात्माओं ने नियम ही ऐसा कर दिया है? लोकनिन्दा के डर से मैं इस नियम का उल्लंघन करने का साहस नहीं कर सकता।

इस पर दमयन्ती ने कहा:—यह सुन कर मुझे बड़ी ख़ुशी हुई कि आप सुधांशुवंश के आभरण हैं। तथापि आपकी कुछ विशेष बातों के सम्बन्ध में मेरा संशय अभी तक दूर नहीं हुआ। किसी किसी विषय में तो आपने बड़ी वेदब वाग्मिता दिखाई और किसी में बिलकुल ही मौनभाव धारण कर लिया। आपकी यह नीति मेरी समझ में नहीं आई। हाँ कुछ मेरी समझ में अब तक आया वह यह है कि आप वञ्चना करने में बड़े चतुर हैं। प्रतारणा-विद्या आपकी ख़ूब पढ़ी हुई है। अच्छी बात है। यदि आप अपना नाम बतला कर मेरे कानों को पीयूष-पान न करावेंगे तो मैं भी आपके कथित सन्देश का उत्तर न दूँगी। पर-पुरुष के साथ बात करना कुल-कामिनियों को अधिकार ही कहाँ? यह तो महात्माओं ही का बनाया हुआ नियम है। आप इसे जानते हैं या नहीं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नल ने अपनी प्रियतमा दमयन्ती के इस उत्तर का हृदय से अभिनन्दन किया। मन ही मन उसने दमयन्ती के भाषण-चातुर्य्य की प्रशंसा की। दमयन्ती की कोटि-कल्पना सुन कर वह निरुत्तर हो गया। उसने मुसकरा कर सिर्फ़ यह कहा कि शहद को भी मात करने वाले ऐसे मीठे वचनों का तुम्हें, सचमुच ही, पर-पुरुष के विषय में प्रयोग करना उचित नहीं। बात ठीक थी। दमयन्ती के लिए वह पर-पुरुष थोड़े ही था।

इसके अनन्तर नल ने बहुत गिड़गिड़ा कर इस तरह भाषण आरम्भ किया:—

हाय! तुम मेरे इस इतने बड़े श्रम को विफल किये देती हो। चारों में से किसी एक दिक्पाल को अपनी कृपा का पात्र नहीं बनाती। अमृत-तुल्य रस के स्नान से पवित्र हुई अपनी ऐसी मधुरिमा-मय वाणी से तुम्हें देवताओं ही की उपासना करनी चाहिए। ऐसी रसवती वाणी से परिप्लुत उत्तर यदि तुम देवताओं के सन्देश का देतीं, तो मेरे मुँह से सुनाया जाने पर, वह देवताओं के सारे सन्ताप को एक क्षण में दूर कर देता। तुम्हारे उत्तर की उपेक्षा में मुझे यहाँ पर जितना ही अधिक विलम्ब हो रहा है, रुष्ट हुआ रतिपति उतना ही अधिक देवताओं को अपने बाणों का निशाना बना रहा होगा। मेरा एक एक क्षण यहाँ पर एक एक कल्प के समान बीत रहा है। मुझे धिक्कार है। दूत का काम करना भी मुझे न आया। यह काम बड़ी ही जल्दी का था; परन्तु, हाय! इसमें व्यर्थ विलम्ब हो रहा है।

इतना कह कर राजा नल के चुप हो जाने पर परम विदुषी दमयन्ती ने मन ही मन उन देवताओं की मूर्खता पर अफ़सोस किया जिन्होंने ऐसे सुन्दर पुरुष को स्त्री के पास दूत बना कर भेजा। उसने अपने मन में कहा कि जलों (ड़ों) के अधिपति, प्रेतों के राजा (यम), मरुत्वान् (वातग्रस्त)-इन्द्र और ऊर्ध्वमुख—अग्नि से और क्या उम्मेद की जा सकती है? जैसे वे स्वयं हैं वैसा ही दूत भी उनको मिला है। यह कह कर, और कुछ मुसकरा कर, नल को उत्तर देने के लिए वह प्रस्तुत हुई। वह बोली:—आप के साथ व्यर्थ परिहास करते बैठना मेरे लिए ढिठाई है। बार बार निषेध-वाक्यों का प्रयोग करते जाना वाणी की विडम्बना है। और, आप की बात का उत्तर न देना आपका अनादर करना है। इससे मुझे, विवश हो कर, देवताओं के सन्देश का उत्तर देना पड़ता है। सुनिए:—

मैं मनुष्यजन्म के कलङ्क से कलङ्कित हूँ। अतएव बड़ा ही आश्चर्य्य है जो देवताओं के मुँह से मेरे विषय में ऐसी बात निकली। हाँ, मैं उनकी भक्त हूँ। इसी से, सम्भव है, दिगीश्वरों ने मुझ पर कृपा की हो। क्योंकि भक्तवात्सल्य के कारण स्वामी अपने नीच सेवकों को भी कभी कभी ऊँची से ऊँची कृपा का पात्र समझ लेते हैं। सुराङ्गनाओं के सम्पर्क से सुखी महेन्द्र की यह मनोवाञ्छा कदापि उचित नहीं। सैकड़ों हंसियों ने जिस सरोवर की शोभा को बढ़ाया है वह यदि किसी अन्य तुच्छ जलचारिणी चिड़िया की आकाङ्क्षा करे तो उसकी ऐसी नीच आकाङ्क्षा उसकी विडम्बना का कारण हुए बिना नहीं रह सकती। दिगीश्वर चाहे कुछ ही क्यों न कहें; उनकी बातें सुनने के लिए मैं बहरी बन रही हूँ। मत्त गजराज के विषय में कुरङ्ग-कन्या क्या कभी अपना मन चलायमान कर सकती है? यदि करे तो उसका यह काम बहुत ही असङ्गत हो।

इतना कह कर दमयन्ती ने सिर नीचा कर लिया और चुप हो गई। उसका इशारा पाकर उसकी एक सहेली उसके पास गई। उसके कान में दमयन्ती ने कुछ कहा। तब सहेली ने नल को सम्मुखीन करके इस प्रकार उत्तर दिया:—

लज्जा और सङ्कोच के कारण मेरी सखी दमयन्ती इस विषय में और कुछ नहीं कह सकती। मेरे हृदय के भीतर घुस कर जो कुछ उसने कहा है उसे अब आप मेरे मुँह से सुन लीजिए:—

इसने अपना चित्त, बहुत दिन हुए, निषधनरेश को दे डाला है। यह उन्हीं की हो गई है। अतएव,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस बात की इच्छा आप इससे रखते हैं उसे कर दिखाना तो दूर रहा, उसकी चिन्तना तक करते इसे डर लगता है। सती स्त्रियों की स्थिति बहुत ही नाज़ुक होती है। मृणाल-तन्तु की तरह, ज़रा सा भी धक्का लगने से, वह टूट जाती है। वह यह कहती है कि स्वप्न में भी मैंने नल को छोड़ कर और किसी के पाने की कभी इच्छा नहीं की। तुम्हारे ये चारों देवता तो सर्वज्ञ हैं। फिर ये अपनी समस्त-साक्षिणी बुद्धि से ही यह बात क्यों नहीं पूछ देखते? उन्हें सब कुछ ज्ञात है। फिर ऐसा असङ्गत प्रस्ताव क्यों? ये तो सदाचार-समुद्र के कर्णधार समझे जाते हैं। अतएव, मुझे परस्त्री जान कर भी किस तरह ये मेरे पाने की इच्छा कर सकते हैं? इनके मन में तो इस प्रकार का विकार उत्पन्न ही न होना चाहिए। यह इनका केवल अनुग्रह है जो मुझ मानुषी की भी प्राप्ति के ये इच्छुक हैं। परन्तु, यदि इन्हें मुझ पर अनुग्रह ही करना है तो मुझे नलप्रदान रूपी भिक्षा देकर ही ये मुझ पर अपना अनुग्रह प्रकट करें। ये ईश्वर हैं; इनमें सब कुछ दे डालने का सामर्थ्य है। अतएव, मुझे यह भिक्षा देना इनके लिए कोई बड़ी बात नहीं। सुन लीजिए, मेरी सखी ने तो दृढ़तापूर्वक यह प्रतिज्ञा तक कर डाली है कि यदि नल ने मेरा पाणिग्रहण न किया तो या तो मैं आग में जल कर मर जाऊँगी, या फाँसी लगा कर प्राण छोड़ दूँगी, या जल में डूब कर जान दे दूँगी। मैं जीती रहने की नहीं। नल की अप्राप्ति में मैं अपने शरीर को अपना पूरा शत्रु समझ कर उसके सर्वनाश द्वारा उसके शत्रु-भाव की समाप्ति किये बिना न रहूँगी। इस प्रतिज्ञा को आप अच्छी तरह याद रखिए। आत्महत्या करना बुरा है, यह वह जानती है। परन्तु सती-धर्म की यदि रक्षा न हो सके तो, आपत्ति-काल में, निषिद्ध आचरण करना भी अनुचित नहीं। राजमार्ग के कर्दममय हो जाने पर क्या समझदार आदमी अन्य मार्ग से नहीं आते जाते? मैं स्त्री हूँ। दिक्पाल पुरुष हैं और वाग्मी भी हैं। इससे मैं उनकी बातों का समुचित उत्तर देने में समर्थ नहीं। आप [illegible] पर कृपा करें तो बात बन जाय। मैंने सूत्ररूप में [illegible] कुछ आपसे निवेदन किया है उस पर एक भाष्य [illegible] रचना करके तब आप उसे देवताओं को सुनाइएगा। देखिए, काट छाँट करके कहीं उसे और भी छोटा कर दीजिएगा।

इस पर नल की विकलता सुनिए:—ये त्रिलोक-वन्दनीय दिक्पाल तो तुम पर इतना प्रेम प्रकट [illegible] रहे हैं; पर तुम उनसे विमुख हो रही हो। [illegible] पहेली मेरी समझ में नहीं आती। मुझे तो तुम्हारी बातें बड़ी ही कौतुक-पूर्ण मालूम होती हैं। क्या [illegible] भी कहीं सुना गया है कि निधि किसी निर्धन के [illegible] में घुसने की चेष्टा करे और वह भीतर से किवाड़ बन्द करके उसे बाहर निकाल दे! तुम्हारा व्यवहार इस समय, ठीक इसी तरह का है। यह जान [illegible] कि तुम पर सुरेन्द्र का इतना अनुराग है मैं तुम्हें परम सौभाग्यवती समझता हूँ और तुम्हारा [illegible] से आदर करता हूँ। परन्तु तुम ऐसे सौभाग्यवर्द्धक व्यापार से पराङ्मुखी हो रही हो। हे चन्द्रमुखि, यह बड़े ही आश्चर्य्य की बात है। मर्त्य-जन्म [illegible] हुई मानवी स्त्री अमरत्व पाये हुए देवताओं को [illegible] चाहती, यह बिलकुल ही नई बात है, जिसे मैं [illegible] तुम्हारे मुँह से सुन रहा हूँ। यह तुम्हारा दुराग्रह मात्र है। दुःख की बात है जो सब प्रकार तुम्हारा हित चाहने वाला तुम्हारा पिता भी तुम्हारे [illegible] दुराग्रह-दोष को दूर नहीं कर देता। तुम तो स्वयं समझदार हो—विदुषी कहलाती हो। अतएव महेन्द्र को छोड़ कर नलप्राप्ति का अभिलाष [illegible] में तुम्हें क्या लज्जा भी नहीं आती? सारे सुरों [illegible] अधीश्वर के मुक़ाबले में क्यों तुम यः कश्चित् नरेन्द्र को अधिक अच्छा समझ रही हो? उसका इतना आदर क्यों? इसे भावी की प्रबलता ही कहना चाहिए। देखो न, इतना चौड़ा मुख छोड़ कर श्वासोच्छ्वास ने सङ्कीर्ण नासा की राह से आने जाने का श्रम उठाया है! यह भावी बात नहीं और क्या है! दूसरे जन्म में जिस सुरलोक [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्ति के लिए बड़े बड़े ऋषि-मुनि अपने शरीर को तपस्यारूपी अग्नि में हुत कर देते हैं, वही सुरलोक स्वयं ही तुम्हें, इसी जन्म में, अपने यहाँ ले जाने के लिए उतावला हो रहा है। परन्तु तुम उसकी एक नहीं सुनतीं। तुम्हारी मूढ़ता की सीमा नहीं।

नल के न मिलने पर मर जाने का जो तुमने प्रण किया है वह भी तुम्हारी मूर्खता ही का सूचक है। यदि तुम फाँसी लगा कर मर जावगी तो प्राणोत्क्रमण के अनन्तर तुम्हें अवश्य ही, कुछ समय तक, अन्तरिक्ष में भ्रमण करना पड़ेगा। और, अन्तरिक्ष में रहने वाले जीव-समुदाय का स्वामी, जानती हो, कौन है? वही इन्द्र उनका स्वामी है। वह तुम्हें वहाँ गया पाकर क्यों छोड़ने लगा। अतएव, इस दशा में, तुम्हें अवश्य ही उसकी होना पड़ेगा। यदि तुम आग में जल कर शरीर-त्याग करोगी तो अग्नि पर मानों तुम्हारी बड़ी ही दया होगी। चिरकाल से अनेकानेक प्रार्थनायें करने पर भी जो तुम इस समय उसके लिए दुर्लभ हो रही हो वही तुम स्वयं ही उसे प्राप्त हो जावगी। बिना नल के यदि तुम जल में डूब मरोगी तो फिर वरुण के सौभाग्य का क्या कहना है। तुम्हारे बहिर्गत प्राणों को हृदय में धारण करके वह अवश्य ही कृतकृत्य हो जायगा। इन परिणामों से बचने के इरादे से, सम्भव है, तुम और किसी उपाय का अवलम्बन करो। परन्तु वैसा करने से भी तुम्हारा परित्राण नहीं। क्योंकि मृत्यु के उपरान्त तुम्हें निःसन्देह ही धर्मराज का अतिथि होना पड़ेगा। अतएव तुम्हारे सदृश प्रियतम अतिथि को स्वयमेव अपने घर आया पाकर वह अवश्य ही अपना परम सौभाग्य समझेगा।

तुम्हारी बातें सुन कर मुझे सन्देह हो रहा है कि इन्द्रादि देवताओं के विषय में जो तुमने निषेध-सूचक वाक्य कहे हैं वे कहीं स्वीकार-सूचक तो नहीं? अपनी वक्रोक्तियों से कहीं तुम मेरे अभिलषित अर्थ ही की पुष्टि तो नहीं कर रहीं। तुम्हारे वचनों में वक्रता का होना सर्वथा स्वाभाविक भी है। क्योंकि, विदग्ध-बालाओं के मुख से यदि व्यञ्जकवृत्ति से विभूषित वक्र वचन न निकलेंगे तो निकलेंगे किसके मुख से? चतुरा स्त्रियों का मुखही तो ध्वनि-प्रधान उक्तियों का आकर है।

हे भैमि! तुम्हारे सरस्वती-रस के प्रवाह में निमग्न हुआ मैं कब तक चक्कर खाया करूँ। अपने सङ्कोच-भाव को ज़रा कम कर के साफ़ साफ़ कह क्यों नहीं देतीं कि किस सुरोत्तम को तुम कृतार्थ करना चाहती हो। मेरी राय में तो सहस्र-नेत्र सुरेन्द्र को छोड़ कर और कोई तुम्हारे योग्य वर नहीं। सम्भव है, क्षत्रिय-गोत्र में जन्म लेने के कारण अग्नि-देव पर तुम अनुरक्त हो। इस दशा में उस ओजस्वी देवता की प्राप्ति के लिए तुम्हारा मनोरथ-वती होना भी सर्वथा उचित है। मैं जानता हूँ कि तुम बड़ी ही धर्म-शीला हो। अतएव यदि तुमने धर्मराज को अपने चित्त का अतिथि बनाया हो तो उसका भी मैं अनुमोदन करता हूँ। योग्य से योग्य का सङ्गम होनाही चाहिए। शिरीषपुष्प के समान कोमलगात होने के कारण तुम यदि सारे मृदुल पदार्थों के राजा वरुण को चाहती हो तो वही क्यों न तुम्हारा पाणि-ग्रहण करे। निशा ने भी तो इसी निमित्त शीतांशु को अपना पति बनाया है। सुरपुर परित्याग करके लक्ष्मी-पति भगवान् जिस रमणीक समुद्र में दिन रात विहार किया करते हैं वहीं तुम भी वारीश्वर वरुण के साथ आनन्द से विहार कर सकती हो।

यद्यपि नल के इन वचनों में दमयन्ती के देव-सम्बन्धी अनुराग का मिथ्या आरोप था, अतएव यद्यपि वे सर्वथा विडम्बनीय थे, तथापि नल की उक्तियों को वह बड़े आदर की चीज़ समझती थी। इससे कान-सहित अपने एक कपोल को हाथ पर रक्खे हुए दमयन्ती चुपचाप बैठी रही। खुले हुए एक कान से नल की उक्तियाँ मात्र उसने सुनीं। दूसरे कान को हाथ से ढक कर देव-सम्बन्धी अपने अनुराग की बातें उसने अनसुनी करदीं।

बड़ी देर तक सिर नीचा किये हुए दमयन्ती सोचती रही। तदनन्तर लम्बी उसास ले कर उसने इस प्रकार करुणावचन बोलना आरम्भ किया:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम ने मेरे और देवताओं के सम्बन्ध में जो बातें कहीं उन्होंने मेरे लिए तेज़ नोक वाली सूइयों का काम किया। मेरे पापी कानों को उन्होंने छेद सा डाला। अथवा यह कहना चाहिए कि उन्होंने मेरे प्राण ही निकाल से लिये। कृतान्त के तो तुम दूतही ठहरे। तुमसे और क्या आशा की जा सकती है? तुमने मेरे विषय में जो मिथ्या सम्भावनायें की हैं उनके अक्षर मेरे कानों में असह्य वेदना उत्पन्न कर रहे हैं। इस कारण मैं, इस समय, और कुछ कहने में असमर्थ हूँ।

इसके अनन्तर विदर्भनन्दिनी दमयन्ती की प्रेरणा से उसकी सहेली नल के सम्मुख हुई। वह बोली:— मेरी सखी इस समय अपनी एक जिह्वा से लज्जारूपी देवी की आराधना कर रही है। अतएव उसे मौन-व्रत धारण करना पड़ा है। उसकी दूसरी जिह्वा आप मुझे समझें और मुझसे मेरी सखी का उत्तर सुनें। जो कुछ मैं कहती हूँ उसे आप मेरी सखीही के मुख से निकले हुए वचन समझें:—

कलही स्वयंवर होने वाला है। उसमें निषध-नाथ नल के कण्ठ में वरमाला पहनाने का मैंने निश्चय कर लिया है। आज का दिन मेरे इस काम में विघ्न डाल रहा है। क्योंकि मेरे प्राण, कल के पहले ही, निकल जाना चाहते हैं। उनके लिए एक दिन का विलम्ब भी दुःसह हो रहा है। इसलिए, आज आप यहीं ठहर जाइए तो मुझ पर बड़ी दया हो। आपका दर्शन कर के मैं इस एक दिन को किसी तरह व्यतीत करने की चेष्टा करूँगी। कारण यह है कि उस हंस ने अपने नखों से मेरे प्राणाधार का जो चित्र बनाया था वह तुमसे बहुत कुछ मिलता जुलता है। इसमें तुम्हारा भी फ़ायदा है। तुम्हारी आँखें तुम्हारे मुख की शोभा देखने में असमर्थ हैं। ब्रह्मा ने उन्हें उस शोभा-विलोकन से वञ्चित रक्खा है। अपना मुँह अपनी ही आँखों से नहीं देख पड़ता। यदि आप ठहर जायँगे तो कल अपनी मुख-शोभा को नल के मुखमण्डल पर देख कर आपकी भी आँखें अपना जन्म सफल कर लेंगी। मैं हाथ जोड़ती हूँ; दिगीश्वरों के लिए अब फिर याचना कर के मुझे आप तङ्ग न करें। फिर ऐसे शब्द आपके मुँह से न निकलें। देखिए, मेरी आँखें बेतरह अश्रु-पूर्ण हो आई हैं।

प्रियतमा दमयन्ती की ऐसी पीयूषपूर्ण वाणी को सुन कर नल ने अपने आपको बहुत धिक्कारा। दमयन्ती ने तो उसे कृतान्त-दूत ही बनाया था। उसने अपने आपको महानिष्ठुर कृतान्त से भी समझा। दमयन्ती की करुणोक्तियाँ सुन कर नल का हृदय यद्यपि विदीर्ण हो गया, तथापि उसने, इतने पर भी, अपने दूत-धर्म से च्युत होना उचित न समझा। भीतर ही भीतर ठंडी साँस लेकर, धीरे धीरे, उसने इस प्रकार कहना आरम्भ किया:—

सुरेश्वर इन्द्र के घरही में कल्पवृक्ष है। उस पर इन्द्रही का सर्वतोभाव से अधिकार है। यदि उससे इन्द्र यह याञ्चा करे कि तुम मेरे लिए दमयन्ती को ला दो, तो किस तरह तुम इन्द्र की जीविताशा-हीन होने से बच सकोगी? कल्पपादप से की गई याञ्चा कदापि व्यर्थ नहीं होती। अग्नि यदि तुम्हारे पाने की कामना से सार्वकामिक यज्ञ करे और अपनीही आहुति वनीयादि मूर्त्तियों में हविष्य हवन करना आरम्भ कर दे तो क्या होगा? इस तरह की वैदिक विधि मिथ्या नहीं हो सकती। तो तुम्हें अग्नि की प्राणेश्वरी होनाही पड़ेगा। दक्षिण दिशा में धर्म्मराजही का अखण्ड राज्य है। उसी के राज्य में अगस्त्य मुनि रहते हैं। यदि उनसे धर्म्मराज यह कह दे कि इस दफ़े मैं तुमसे धन-धान्य रूपी अपना षष्ठांश कर नहीं चाहता। उसके बदले में तुम मुझे दमयन्ती को ला दो तो तुम्हारी क्या दशा होगी? वरुण के आश्रम में यज्ञ के लिए सैकड़ों कामधेनु गायें बँधी रहती हैं। यदि वह उनमें से एक से भी तुमको पाने की याचना कर बैठे तो तुम उसके हस्तगत होने में कितनी देर लग सकती है? क्षण भर के लिए मानलो कि यह कुछ न होगा। यह सही। अच्छा यदि नल के साथ तुम्हारा पाणिग्रहण संस्कार होने के पहले यमराज तुम्हारे या नल के किसी कुटुम्बी का प्राणापहरण करके घर में घुसकर कर दें तो! साक्षी-करण-समय में अग्नि यदि प्रज्वलित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने से इनकार कर दे तो !! कन्यादान के समय वरुण यदि जल की धारा रोक दे तो !!! बिना इन्द्राणी के सान्निध्य के स्वयंवर निर्विघ्न नहीं समाप्त हो सकता। अतएव यदि पति की आज्ञा से शची तुम्हारे स्वयंवर में न आवे और उपस्थित राजाओं में विघ्नरूप युद्ध छिड़ जाय तो !!! दमयन्ती ! सोच समझ कर काम करो। हठ और दुराग्रह अच्छा नहीं। मूर्खता छोड़ो। मैंने जो कुछ कहा उसी में तुम्हारा परम हित है। विघ्न करने के लिए देवताओं के उतारू होने पर किसका सामर्थ्य है जो वह हाथ तक पहुँची हुई चीज़ पर भी अपना अधिकार जमा सके ?

नल की इन बातों को दमयन्ती ने अक्षर अक्षर सच समझा। उसे विश्वास हो गया कि अब नल की प्राप्ति असम्भव है। निराशा ने उसे अभिभूत कर दिया। उसके नेत्रों में सावन-भादों की जैसी घन-घटा छा गई। उसका सारा धैर्य्य जाता रहा। वह महाविकल और विह्वल हो उठी। आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। वह विलख विलख कर रोने लगी। उसे मतिभ्रम सा हो गया। कुछ होश में आने पर उसने विलाप आरम्भ किया:—

दूसरों के अभिलषित फल के खा जाने का व्रत धारण करनेवाले रे पापी दैव ! तू अब कृतार्थ हो। मेरे निष्फल प्राणों के पात के साथ ही तू भी पतित हो जा। स्त्री-हत्या का पाप अब सिर पर ले ! वियोग-वह्नि से अत्यन्त तप्त हुए हृदय ! तू किस चीज़ का बना है ? ईसपात का तो तू है नहीं। यदि होता तो इतना ताप सहने पर अवश्य ही गल जाता। वज्र भी तू नहीं; क्योंकि पञ्चशर के शरों से तू बेतरह छिदा हुआ है ; और वज्र में छेद हो नहीं सकते। अतएव, कहता क्यों नहीं, कि क्यों तू फट-कर दो टुकड़े नहीं हो जाता ? हे जीवित ! शीघ्रही तुम यहाँ से पलायन करो। मेरा हृदय ही तुम्हारा घर है और वहाँ आग लग गई है—वह जल रहा है। सुख की व्यर्थ आशा को तुम अब तक नहीं छोड़ते ! धिक्कार है तुम्हारी इस मूर्खता और तुम्हारे इस अपूर्व आलस्य को !!!

रे मन ! जिस प्रिय वस्तु को तू चाहता था उसके मिलने की जब आशा न रही तब तू मौत माँगने लगा। पर वह भी तुझे नहीं मिलती। न वह वस्तु ही मिलती है, न मौत ही मिलती है। जो कुछ तू चाहता है वही तेरे लिए अप्राप्य हो जाता है। इससे तू वियोग ही क्यों नहीं माँगता ? तुझे यह इच्छा करनी चाहिए कि प्रियतम से मेरा वियोग हो जाय। परन्तु, हाय ! अब वह भी सम्भव नहीं। इस समय एक एक क्षण मेरे लिए एक एक युग हो रहा है। कब तक मुझे ये यातनायें सहनी पड़ेंगी ? माँगने से मृत्यु भी नहीं मिलती। इधर मेरा अमिलषित कान्त मेरे हृदय को नहीं छोड़ता, उधर उसे मेरा मन नहीं छोड़ता। और, मन को भी मेरे प्राण नहीं छोड़ते। हाय हाय ! कैसी दुःख-परम्परा है।

हे देववर्ग ! जिसके एक ही कण से मेरे उग्र से उग्र सन्ताप का संहार हो सकता है वह तुम्हारा दयासागर किसने पी लिया ? क्या वह इस समय बिलकुल ही सूखा पड़ा है ? यदि तुम मन में ज़रा भी इच्छा करो तो अपनी एक ही सङ्कल्प-कणा से तुम मुझसे भी उत्तम और कोई नारी-रत्न अपने लिए प्राप्त कर सकते हो। मैं सर्वथा तुम्हारी अनुकम्पनीय हूँ। अतएव मुझ पर तुम्हें इतना ज़ुल्म न करना चाहिए। हे नैषध ! मैं जी-जान से तुम पर अनुरक्त हूँ—अनन्यवृत्ति होकर मैं तुम्हारी ही प्राप्तिकामना कर रही हूँ। तुम्हारे कारण, इस समय, मुझ पर जो बीत रही है—जो यन्त्रणा मैं भोग रही हूँ—उसकी ख़बर किस तरह मैं तुम तक पहुँचाऊँ। ब्रह्मा ने उस पक्षी को भी, न मालूम, कहाँ छिपा दिया। एक एक सरोवर उसके लिए ढूँढ़ डाला गया। पर कहीं पता न चला। यदि वह मिल जाता तो मेरी इस दुर्गति का समाचार तो तुम्हें ज्ञात हो जाता। मेरा मन एक मात्र तुम्हारे ही चरण-कमलों में लीन है। क्या इस बात को तुम नहीं जानते ? और, यदि जानते हो तो तुम्हें मुझ पर दया क्यों नहीं आती ? दयाधनों को इतनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निठुराई शोभा नहीं देती। अथवा इसमें तुम्हारा कुछ भी अपराध नहीं। दैव जो चाहे करे। वह ज्ञानियों को भी विचारान्ध कर देता है। ख़ैर। मेरी मृत्यु अब अनिवार्य्य है। मेरा प्राणान्त हो जाने पर कभी न कभी तो तुम्हारे कान में यह भनक अवश्य ही पड़ेगी कि दमयन्ती ने मेरे लिए प्राण दे दिये। अच्छा, नाथ! इस समय मुझ पर दया नहीं आई तो न सही। मेरा मृत्यु-समाचार पाने पर ही तुम मुझ पर कुछ दया दिखाने का अनुग्रह करना। मैंने सुना है कि तुम बड़े दानी हो—तुम याचकों के कल्पद्रुम हो—इससे मैं भी तुमसे एक छोटी सी याचना करती हूँ। हे प्राणाधिक! मेरा हृदय अब विदीर्ण होने ही पर है। उसके दो टुकड़े हो जाने पर, जिस रास्ते मेरे प्राण निकलेंगे उसी रास्ते, उन्हीं के साथ, कहीं तुम भी न निकल खड़े हो जाना।

पत्थर को भी पिघलाने वाला दमयन्ती का ऐसा विलाप सुन कर नल को आत्म-विस्मृति हो गई। उन्मादग्रस्त मनुष्य की जो दशा होती है वही दशा उसकी भी हो गई। इस दशा को प्राप्त होने पर वह अपने दूतभाव को बिलकुल ही भूल गया। अज्ञानावस्था में वह इस तरह की प्रलापपूर्ण बातें कहने लगा:—

प्रिये! तू किस के लिए इतना विलाप कर रही है? अपने मुख को अश्रुधारा से क्यों वृथा ही धो रही है? यह नल तो तेरे सामने ही, तुझे प्रणाम करता हुआ, खड़ा है। तिर्यक् नेत्रों के विलास से क्या तूने उसे नहीं देखा? लीला-कमल को हाथ में लेने के बदले अपने मुख को क्यों तूने उस पर रख छोड़ा है। मुख को लीला-कमल बनाने का कारण क्या? तेरे नेत्रों से बहने वाले अमङ्गल अश्रुओं को, ला मैं अपने हाथ से पोंछ दूँ। ला मैं अपने मस्तक से तेरे पद-पङ्कजों की रेणुका क्षालन करके उसके साथ ही अपने अपराधों का भी तुझ से क्षालन करा लूँ। प्रिये! यदि तू मेरा आदर-सत्कार करके मुझ पर अनुग्रह नहीं करना चाहती तो न कर। पर मैं तेरे सामने सिर झुकाये खड़ा हूँ। इससे मेरा प्रणाम तो तुझे स्वीकार ही कर लेना चाहिए। यह तो कोई बड़े परिश्रम का काम नहीं। याचकों के लिए तो तू कल्पवृक्ष हो रही है; पर मेरी तरफ़ एक बार अच्छी तरह देखती भी नहीं। मुझे दृष्टिदान तक नहीं देती! मुझसे इतनी कञ्जूसी क्यों? आँखों से आँसुओं की झड़ी बन्द कर; मुख को मुसकानरूपी कौमुदी को फैलने दे; मुख-कमल को विकसित होने दे; नेत्र-खञ्जरीटों को यथेच्छ विहार करने दे। बोल बोल! अपनी मधुमयी वाणी सुना कर मेरे मुरझाये हुए हृदय-पुष्प को फिर प्रफुल्लित कर दे। चन्द्रमा की निशानारी के समान नल को एक मात्र तू ही प्राणाधार है।

इतना कह चुकने पर नल का उन्माद अकस्मात् जाता रहा। उसे होश हो आया। यह जान कर कि जो बातें मुझे न कहनी थीं वे भी मैंने कह डालीं उसे घोर परिताप हुआ। वह बोला:—

हाय! मुझे क्या हो गया। क्यों मैंने इस तरह अपने को प्रकट कर दिया। इन्द्र मुझे अब क्या कहेगा उसके सामने तो अब मैं मुँह दिखलाने लायक़ भी न रहा। अपना नाम अपने मुँह से बतला कर मैंने दिगीश्वरों का काम मिट्टी में मिला दिया। हनूमान् आदि के उपार्जित यश से जो दूतपथ इतना प्रशस्त हो रहा था उसमें मैंने काँटे बखेर दिये। जान बूझ कर मैंने ऐसा नहीं किया। ईश्वर तू मेरा साक्षी है। हाय, मेरी छाती लज्जा से फट क्यों नहीं जाती। यदि फट जाती तो देवताओं को मेरी हृदय-शुद्धि का ज्ञान तो हो जाता। ख़ैर, देवता तो सर्वज्ञ हैं। सच क्या है सो वे जान लेंगे। पर सांसारिक जनों के मुँह पर कौन हाथ रखता फिरेगा। लोक-निन्दा से मेरी किसी तरह रक्षा नहीं!

बड़ी देर तक नल को इस तरह विलाप करते और सिर धुनते देख उस दिव्य हंस को उस पर दया आई। वह अचानक वहाँ आकर उपस्थित हो गया। उसने नल को समझा बुझा कर शान्त कर दिया। उसने कहा:—बस, बहुत हो चुका। और अधिक दमयन्ती को पीड़ित न कीजिए। निर्दय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यता छोड़िए। इसको स्वीकार कीजिए। अधिक निराश करने से यह अवश्य अपनी जान दे देगी। आपने अपने आपको जान बूझ कर प्रकाशित नहीं किया। इसमें आपका कोई अपराध नहीं। देवता आप पर कदापि अप्रसन्न न होंगे। वे आपके हृदय की शुद्धता को अच्छी तरह जानते हैं। यह कह कर वह हंस जब वहाँ से उड़ गया। तब उन चारों दिक्पाल देवताओं को प्रणाम करके दमयन्ती से नल इस प्रकार मधुर वाणी बोला:—

देवताओं में अनुराग उत्पन्न करने की व्यर्थ चेष्टा करके मैंने तुम्हारी बहुत कदर्थना की। परन्तु इसमें मेरा कुछ भी दोष नहीं। मैं सर्वथा निरपराध हूँ। मैंने निष्कपटभाव से देवताओं की दूतता की है। यही मेरा धर्म्म था। धर्म्मपथ से डिगना मैं मृत्यु से भी भयङ्कर समझता हूँ। अब वे चाहे मुझ पर इस कार्य्य के उपलक्ष्य में दया दिखावें, चाहे मुझे अपराधी समझ कर दण्ड दें। मुझे कुछ नहीं कहना। देवता तो तुम पर हृदय से अनुरक्त हैं, पर तुम मुझ को अपना दास बनाने का आग्रह कर रही हो। यह बड़े ही असमञ्जस की बात है। खैर, जो कुछ करना, बहुत सोच समझ कर करना। ऐसा न हो कि तुम्हें पीछे से पश्चात्ताप करना पड़े। मेरी इस सलाह को तुम पक्षपात-दूषित मत समझो। यह सलाह मैं देवताओं के डर से नहीं दे रहा हूँ और न इसलिए दे रहा हूँ कि तुममें मेरा अनुराग ही कम है। नहीं, बात ऐसी नहीं। मैं पक्षपातरहित होकर तुम्हारे हित की आकाङ्क्षा से ही ऐसी सलाह देने को बाध्य हुआ हूँ। मैं अपनी दशा का तुमसे क्या वर्णन करूँ। तुम्हारे हित के लिए—तुमसे उऋण होने के लिए—यदि मुझे अपने प्राण भी दे देने पड़ें तो भी मैं सुखपूर्वक प्राण-समर्पण करने को तैयार हूँ। तुमने मुझ पर जो कृपा की है उसके बदले में यदि मेरे प्राण भी तुम्हारे किसी काम आ सकें तो उनके दान से भी मैं अपने को कृतार्थ ही समझूँगा।

नल की इस पीयूषवर्षिणी वाणी को सुन कर दमयन्ती को परमानन्द हुआ। नल को परपुरुष समझ कर उसके सामने बातें करने के कारण उसके हृदय में जो घृणा और आत्मनिन्दाभाव उदित हुआ था वह सब जाता रहा। परन्तु नल के सामने तद्विषयक अपने अनुराग आदि को प्रकट करने के कारण उसे बेतरह सङ्कोच हुआ। वह लज्जा से अभिभूत हो उठी। उसके मुहँ से फिर शब्द न निकला। उसकी यह दशा देख उसकी सहेली अपना कान उसके मुहँ के पास ले गई। परन्तु इस तरह भी वह कुछ भी कहने या उत्तर देने में समर्थ न हुई। तब उसकी सहेली ने मुसकरा कर नल से कहा, सरकार, आपकी प्रियतमा पर लज्जा ने यहाँ तक अपना अधिकार जमा लिया है कि अब वह आपके सम्मुख अपने मुख से एक अक्षर तक भी निकालने में समर्थ नहीं। उसके मौन धारण का और कोई कारण नहीं; कारण केवल लज्जा है। अतएव आप उस पर अप्रसन्न न हूजिएगा। कहीं आप उस पर यह इलज़ाम लगाने की चेष्टा न कीजिएगा कि यह तो बोलती ही नहीं—इसने जो कुछ पहले कहा था सब बनावटी था। नहीं; ऐसा नहीं है। यह कह कर उसने दमयन्ती की नल-सम्बन्धी वे सब बातें कह सुनाईं जो उसने नल-प्राप्ति की कामना से, समय समय पर, कही थीं। उनसे उसने सिद्ध किया कि नल पर दमयन्ती का स्नेह कितना प्रगाढ़ है।

इस प्रकार भीमात्मजा दमयन्ती की सारी रहस्यपूर्ण बातें सुन कर, अपने सौभाग्य की प्रशंसा करते हुए, नल ने वहाँ से प्रस्थान किया। दमयन्ती के महल से चल कर नल शीघ्रही पूर्वोक्त दिक्पालों के सामने उपस्थित हुआ और उनसे अपने दूतत्व की सारी बातें यथातथ्य कह सुनाईं। सुन कर देवताओं के चेहरों का रंग फीका पड़ गया।

प्रातःकाल वे सब दमयन्ती के स्वयंवर में पहुँचे। अपने कौटिल्य का जाल बिछाने में उन्होंने वहाँ भी कसर न की। उन्होंने विषम विघ्न उपस्थित कर दिया। नल का रूप धारण कर के वे वहाँ जा बैठे। परन्तु अपने सतीव्रत के बल से उन विघ्नबाधाओं को पार करके दमयन्ती ने, अन्त में, नल के कण्ठ में वरण-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माल पहनाही दिया। अपनी भक्ति से उसने उन देवताओं को यहाँ तक प्रसन्न कर लिया कि उन्हें नल को उसकी विकालत का मिहनताना भी देना पड़ा।

केदार-गौरी।

रच नगर हेमाचल-शिखर पर नृप ललाटेश्वर बली,
थे राज्य करते न्याय से रख मुदित पुर-जन-मण्डली।
आदर्श सुन्दर नगर वह था रम्य उत्कल-देश में,
अब नाम "भुवनेश्वर" जिसे है प्राप्त देश-विदेश में ॥ १ ॥
वर 'बिन्दु' सर था बीच में नृप-सौध * चारों ओर थे,
उस सौधमाला-प्रान्त में शोभित विविध वन घोर थे।
वन-सौध-वेष्टित सोहता यों सुभग वह सर बिन्दु था—
सब ओर मेघों से घिरा ज्यों नील नभ में इन्दु था ॥ २ ॥
केदार-गौरी तरुण-तरुणी वास करते थे वहीं,
उपमा न जिनके रूप-गुण की दूसरी देखी कहीं।
थे आदि से ही अति विलक्षण नियम उनकी प्रीति के,
मानों परस्पर चित्त में बेमोल दोनों थे बिके ॥ ३ ॥
थे वे पड़ोसी यदपि, पर स्वच्छन्द मेल-मिलाप में—
प्राचीर बाधक देख कर थे पड़ रहे सन्ताप में।
बाधक अधिक प्राचीर से भी उभय के गुरुजन हुए,
पर कब शिथिल किसके किये दृढ़ प्रेम के बन्धन हुए ॥ ४ ॥
प्रेमाग्नि दोनों के हृदय में प्रबल तर जलने लगी,
चिर विरह के भय से भयङ्कर और भी ज्वाला जगी।
है प्रकृति-पथ में विघ्न-बाधा दी जहाँ जाती कभी,
फलता यही फल है वहाँ दुख टूट पड़ते हैं सभी ॥ ५ ॥
दर्शन, मिलन, सम्भाषणादिक की प्रबल वारण-क्रिया,
क्या जीत सकती है कभी सच्चे प्रणयिजन का हिया ?
प्राचीर में निर्माण-दिन से रन्ध्र एक अलक्ष था,
मध्यस्थ हो कर जो उन्हें करता सदैव समक्ष था ॥ ६ ॥
उस गुप्त रन्ध्र-समीप जाकर वे प्रणयिजन चाह से,
रोते हुए कुछ शान्ति थे पाते विरह के दाह से।

था गुप्त प्रणयोच्छ्वास बहता नित्य रन्ध्र-द्वार से,
निज कार्य्य प्रेमी सिद्ध करते हैं अनेक प्रकार से ॥ ७ ॥
सन्ध्या-समय दोनों विवश वे बैठ कर अति प्रीति से,
निज इष्ट रन्ध्र-समीप थे रोते अलक्षित रीति से।
पारस्परिक सन्तप्त शोक-श्वास के कारण अहा !
होता उभय युवती-युवक का वदन कोमल कृश महा ॥ ८ ॥
प्रेम से अति विवश वे प्राचीर से थे बोलते—
"क्यों विघ्न-विष तुम हो हमारे मिलन-रस में घोलते ?
हम दुःखितों पर क्या तुम्हें आती न करुणा स्नेह से ?
अपकीर्त्ति लेते हो विलग कर देह को क्यों देह से ॥ ९ ॥
"पारस्परिक तनु-मेल में देकर हमें बाधा कड़ी,
हे क्रूर ! तुमने व्यर्थ हमसे शत्रुता ठानी बड़ी।
अब तो द्विधा हो कर अहो ! इतनी कृपा हम पर करो—
दे सम्मिलन-सुविधा हमें सारे हमारे दुख हरो ॥ १० ॥
"तुमने हमारे अमित हित हैं सर्वदा साधन किये,
अतिशय ऋणी हैं हम तुम्हारे हृदय से इसके लिए।
हम दुःखियों की जो परस्पर श्रवण में आती कथा
बस इस अतुल उपकार के कारण तुम्हीं हो सर्वथा" ॥ ११ ॥
यों कह पुनः उस रन्ध्र का कर नित्य चुम्बन प्रेम से,
होते विदा थे दुःख पाकर युगल प्रेमी नेम से।
कुछ काल के उपरान्त फिर कर के उन्होंने मन्त्रणा,
गृह-त्याग कर चाही मिटानी शीघ्र अपनी यन्त्रणा ॥ १२ ॥
"एकान्त में रह कर करेंगे पुण्य पूजा प्रेम की,
सीमा रहेगी क्या कभी तब फिर हमारे क्षेम की"।
यों सोच युवती-युवक होते मग्न हृदयोल्लास में,
सुख की अपेक्षा सुख अधिक है नित्य सुख की आस में ॥ १३ ॥
था नगर-बाहर कुटज-वन शोभित विमल निर्झर जहाँ,
निश्चित हुआ "होगा हमारा मिलन रजनी में वहाँ"।
लाली गही रवि ने विमल गोधूलि नभ में छा गई,
पक्षी बसेरों को चले विश्राम-वेला आगई ॥ १४ ॥
उस बिन्दु-सरवर में लगी सिन्दूर-लहरी खेलने,
की एक अद्भुत छवि प्रकट दिन-रात के शुभ मेल ने।
स्वच्छन्द मन्द समीर सब के मन मुदित करने लगा,
शुचि सुमन-सौरभ से तथा तन मोद से भरने लगा ॥ १५ ॥
कुछ देर में तारे असंख्यक नील नभ में छागये,
निशि-कर्म्म-दर्शक दूत मानों ईश-प्रेषित आगये।

* राजमहल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारण किया तम-वस्त्र जग ने अब न जन-सञ्चार है,
हैं शून्य मार्गादिक तथा अवरुद्ध प्रति गृह-द्वार है ॥ ॥ १६ ॥
ऐसे समय गौरी-हृदय में धार पति के ध्यान को,
घर से निकल चलती हुई सङ्केत के सुस्थान को।
पड़ प्रेम में अबला स्त्रियाँ क्या क्या अहो ! करतीं नहीं,
वे प्रेम-नेम निबाहने में मृत्यु से डरतीं नहीं ॥ १७ ॥
बैठी कुटज के मूल पर थी वह सुकेशी कामिनी,
सर्वत्र तम का राज्य था निस्तब्ध सी थी यामिनी।
पर प्रेम-विधु था उदित उसके शुद्ध हृदयाकाश में,
प्रिय-मार्ग थी वह देखती जिसके पवित्र प्रकाश में ॥ १८ ॥
जिस हिंस्र-पशु-युत विपिन को लख काँप उठता था हिया,
मृदु-पुष्प-उपवन-सम सुखप्रद प्रेम ने उसको किया।
कुछ काल में सुन्दर सुधाकर उदित नभ में हो गया,
धारण किया आलोक से तब दृश्य अवनी ने नया ॥ १९ ॥
मृग मारने से मुख-नखादिक रुधिर में जिस के सने—
शार्दूल आया एक सहसा निकल वन से सामने।
निकटस्थ गह्वर को भगी गौरी उसे लख जिस घड़ी,
अति व्यग्रता में ओढ़नी उसकी वहीं पर गिर पड़ी ॥ २० ॥
जलपान कर जब व्याघ्र लौटा गर्जना करके बड़ी
भू पर पतित उस वसन वर पर दृष्टि तब उसकी पड़ी।
वह रक्त-रञ्जित मुख नखों से फाड़ कर उस चीर को
कुछ दूर पथ पर छोड़ कर फिर गया वन गम्भीर को ॥ २१ ॥
प्राणाधिका के मिलन की निज चित्त में आशा किये,
द्रुत-वेग से थे आरहे केदार उत्कण्ठित हिये।
तब चाँदनी में व्याघ्र के पद-चिह्न पथ में देख के,
भय से हुए हतबुद्धि वे अपशकुन भीषण लेख के ॥ २२ ॥
फिर व्यग्रता से वे गये सङ्केत निश्चित था जहाँ,
पाया नहीं पर हा ! उन्होंने प्राणप्यारी को वहाँ।
रक्ताक्त पट सङ्केत-थल में लख अहित की भ्रान्ति से,
आतुर हुए अत्यन्त ही वे भीति और अशान्ति से ॥ २३ ॥
हत-हृदय हो कर शोक से केदार तब बोले वहाँ—
"मेरे नयन की कौमुदी ! प्राणेश्वरी, तू है कहाँ ?
नहिं शीघ्रता से हो सका आगमन इस पापिष्ठ का,
कारण हुआ हा ! हा ! यही इस शोचनीय अनिष्ट का ॥ २४ ॥
"तेरा निधन-भागी हुआ मैं शठ, मुझे धिक्कार है,
प्राणाधिके ! तेरे बिना सूना मुझे संसार है।
इस हिंस्र-पशु-सङ्कुल विपिन में भेज कर तुझको प्रिये !
हा ! धिक् ! रहा मैं गेह में क्या सोच कर अपने हिये ॥ २५ ॥
मेरे निधन-हित बस विपिन में क्या नहीं शार्दूल है ?
जो शान्ति दे मम चित्त को, इस दुःख का जो मूल है।
होते हुए यह खड्ग कर में व्यर्थ है ऐसी कथा,
इस खड्ग से ही अब मिटेगी शीघ्र ही मन की व्यथा" ॥ २६ ॥
यों कह प्रिया का रक्त-रञ्जित वस्त्र ले अनुराग से—
रख निज हृदय पर—जल रहा था जो विरह की आग से।
केदार अपने तप्त मन की ज्वाल को हरने लगे,
दोनों दृगों से नीर के झरने युगल झरने लगे ॥ २७ ॥
"शुचि प्रीति-पथ में पैर रख कर मृत्यु से भय है वृथा,
है मरण ही जग में कसौटी प्रेम की" कह यह कथा।
निज उदर में असि मार उसको उदर से खींचा यदा,
हो रक्तमय, काटे हुए तरु-सम गिरे भू पर तदा ॥ २८ ॥
गौरी गुफा से निकल कर प्रिय-मिलन की आशा किये,
आगे बढ़ी पति-भिन्न-हरिणी-सम परम शङ्कित हिये।
पाकर न पर प्राणेश को वह अति विकल होने लगी,
निस्तब्ध निशि की शान्ति को कर भङ्ग यों रोने लगी ॥ २९ ॥
"प्राणेश ! तुम मुझको यहाँ पाकर न क्या भग्नाश हो,
घर फिर गये कापट्य मेरा सोचते मन में अहो !"
आवाज़ उसको सुन पड़ी तब एक करुणामय निरी,
आवाज़ क्या मानों अचानक व्योम से बिजली गिरी ॥ ३० ॥
अति व्यग्र हो वह सुन्दरी क्या देखती है सामने—
केदार पृथ्वी पर पड़े हैं हाय ! शोणित में सने !
हिम-ग्रसित निष्प्रभ कञ्ज-सम अति मलिन मुख का रङ्ग है,
प्राणान्तकारी वेदना से विद्ध उनका अङ्ग है ॥ ३१ ॥
तनु-प्राण जिनको थे दिये लख कर उन्हें इस वेश में।
जो दुख हुआ उस सुन्दरी के कञ्ज-मृदु-हृद्देश में।
उसको गिरा-द्वारा दिखाना शक्य हो सकता किसे ?
प्रिय-विरह-अनुभव-प्राप्त जन ही जान सकते हैं उसे ॥ ३२ ॥
सिर पीट कर दुर्दैव को बहु भाँति से धिक्कारती,
तत्क्षण धरातल पर गिरी गत-प्राण सी वह गुणवती।
संज्ञा-रहित पति देह को ले शीघ्र उसने गोद में,
चुम्बन किया प्राणेश का दुख-मिलित अद्भुत मोद में ॥ ३३ ॥
रोती हुई फिर करुण-गद्गद्-कण्ठ से वह सुन्दरी,
प्राणेश से करने लगी विनती अपार व्यथा भरी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

" हा ! प्राण-निधि, हृत्कमल-रवि, हा ! कान्त, प्राणाधार हा !
कैसे बचेंगे प्राण ये बिन तव चरण-आधार हा ! ॥ ३४ ॥
" कारुण्यनिधि ! इस पापिनी ने दोष क्या ऐसा किया ?
जो आज चरणों से इसे यों विलग तुमने कर दिया ?
है अन्य गति कोई न मेरी प्राणप्यारे ! तुम बिना ,
हैं रोग मुझको विश्व के सुख-भोग सारे तुम बिना ॥ ३५ ॥
" यदि निष्कपट तव चरण में मम परम शुचि अनुराग है ,
यदि पर-पुरुष की चाह से कलुषित न प्राण-पराग है ।
यदि है प्रभाव सतीत्व का, यदि प्रणय-बल बलवान है ,
तो नयन तव मुद्रित खुलें यह विनय प्रेम-निधान है" ॥३६॥

केदार सुन वाणी सुधा सी प्रिया की परिचित अहा !
निज नयन खोल अनन्त निद्रा में हुआ फिर लीन हा !
उस समय गौरी के हृदय की मर्म्मभेदी वेदना ,
सहृदय रसिक ही जान सकते कर हृदय में कल्पना ॥ ३७ ॥
फिर प्राणपति के हृदय पर अपना दुकूल विलोक के ,
मन में लगी वह सोचने निज शोक को कुछ रोक के ॥
" एकान्त में पड़ भ्रान्ति-वश हो विरह से तापित हिये ,
निज प्राण त्यागे कान्त ने मुझ पापिनी ही के लिये ! ॥ ३८ ॥
" हो आत्मघाती प्राणपति ने प्रेम का परिचय दिया ,
यम को पराजय कर अमर यश प्रकट जग में पालिया ।
है किन्तु धिक् इस वज्रहृदया पापिनी के नाम को ,
धिक् प्राणधारण को तथा धिक् प्रेम के परिणाम को ॥३९॥
"जिस नीति का अनुसरण कर प्रिय ने सकल सुख तज दिया,
निर्भय हृदय से मृत्यु का सप्रेम आलिङ्गन किया ।
उस नीति के अनुसरण में पाऊँ न क्यों दुख घोर मैं ,
त्यागन करूँगी पर नहीं वह प्रीति-रीति कठोर मैं ॥ ४० ॥
" जो देख कर भी कान्त के आदर्श उज्ज्वल प्रेम को ,
भूलूँ उन्हें तो धिक् मुझे, धिक् प्रीति के मम नेम को ।
इस प्रीति-पथ में त्याग दूँगी मरण-भय मैं सर्वथा ,
अर्पण करूँगी प्राणपति-हित देह यह जीवन तथा ॥ ४१ ॥
" जो मृत्यु ! तूने भस्म की आशा-लता मेरी हरी ,
तो शीघ्र अब करदे मुझे भी प्राणपति की सहचरी " ।
यों कह हृदय में ध्यान कर पति देव का वह प्रेयसी
निज निधन-हित प्रस्तुत हुई लेकर वही भीषण असी ॥ ४२ ॥
होता प्रबल अति प्रीति-बल है धन्य उसकी रीति को ,
है जीत सकती प्रीति ही जग में मरण की भीति को ।

हा ! कहाँ कोमल कामिनी, कण्टकित भीषण वन कहाँ !
हा ! कहाँ पवि सम असि, कमल सम मृदुल कामिनि-मन कहाँ !
वह कोमलाङ्गी, कमलनयनी, कुन्ददशना कामिनी
चन्द्राननी, बिम्बाधरी, वामोरु, गज-गति-गामिनी ।
प्रिय-वक्त्र-भेदी खड्ग से निज वृक्ष भेदन कर अहा !
पति-निकट पहुँची अमरपुर में सुयश पृथ्वी पर रहा ॥ ४३ ॥
इस मृत्यु-ज्वाला को सुमन-माला-समान विचार के,
पति हेतु बाला ने तजे सुख सकल इस संसार के ।
है धन्य इनके हृदय के स्वर्गीय शुचि अनुराग को ,
है प्रेम-पालन-हेतु इनके धन्य आत्मत्याग को ॥ ४४ ॥
नृपवर ललाटेश्वर समझ कर स्वप्न में यह सब कथा ,
पहुँचे प्रभात-समय वहाँ निज हृदय में पाकर व्यथा ।
देखा, युगल युवती-युवक हैं सर्वदा को सो रहे,
शोभित सुमुखमण्डल विमल मुकुलित कमल सम हो रहे ॥ ४५ ॥
वनदेवियाँ हो मुग्ध उन के इस अलौकिक काज से,
बरसा गईं हैं फूल मानों उडुगणों के ब्याज से ।
जिस भाँति सुरगण जानते हैं प्रेम की महिमा सभी,
उस भाँति मानवगण भला क्या जान सकते हैं कभी ॥ ४६ ॥
कर मींजते उस नगर भर के लोग सारे रहगये,
उनके गुणों को याद कर किसके न आँसू बहगये ?
अन्तिम क्रिया युग प्रेमियों की शास्त्र-विधि से की गई,
उस जगह की भी तीर्थ सम महिमा बड़ी समझी गई ॥ ४७ ॥
उन प्रेमियों के परम पावन नाम पर तब प्रीति से,—
निर्म्माण कर मन्दिर रुचिर गुण-अनुकरण की नीति से ।
"केदार-गौरी" नाम की प्रतिमा सुभग शोभामयी,
गाकर प्रणय-महिमा महा स्थापित वहाँ पर की गई ॥ ४८ ॥
कहते हुए सब "धन्य" उनके विमल गुण गाने लगे,
अति दुखित चित हो भवन निज निज लौट फिर जाने लगे ।
लिख लेखनी न हुई द्रवित इस दृश्य के सन्ताप से
अपनी कड़ाई की बड़ाई चाहती वह आप से ॥ ५० ॥

लोचनप्रसाद

---

* कविवर राय राधानाथ राय-बहादुर कृत "केदार-गौरी" नामक ओड़िया-काव्य का स्वतन्त्र अनुवाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्यप्रभाकर ।

[२]

द्वितीय मयूख में ध्वनि-वर्णन है । आरम्भ में काव्य-प्रयोजन, काव्य-कारण और काव्य-लक्षण का निरूपण कर के शब्द-निरूपण किया गया है । तदनन्तर अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना शक्तियों का वर्णन है । काव्य-प्रयोजन इस प्रकार बतलाये गये हैं :—

यश सम्पति आनन्द अति, दुरितनि डारै खोय ।
होय कवित तें चातुरी, जगत राम वश होय ॥

"भा०—यश फैलना, सम्पति मिलना, आनन्द पाना (दुरितनि अनेक दुःख) दुःखों का नाश होना, चातुरी आना, संसार और प्रभु को वश में करना । ये सब काव्य-प्रयोजन हैं ।"

परन्तु, भानुजी क्षमा करें, उनके इस दोहे से उनका यह इष्टार्थ स्पष्टतापूर्वक नहीं निकलता । यश, सम्पति, और आनन्द के आगे 'मिलै' इत्यादि न होने से उन सब का सम्बन्ध 'दुरितनि' के साथ 'खोय' से हो जाता है ! इसके सिवा 'जगत राम वश होय' भी भ्रामक है । अतएव इस दोहे में 'असमर्थता' दोष जान पड़ता है ।

दुःखनाश का उदाहरण आपने इस प्रकार दिया है—

"निज गिरा पावन करन कारन राम यश तुलसी कह्यो" ।

जान पड़ता है, उदाहरण उद्धृत करते समय, भानुजी इस बात को भूल गये कि हम कह क्या रहे हैं । गिरा पावन हो जाने ही से क्या दुःखों का नाश हो जाता है ? जिस "अलङ्कार-प्रकाश" से आपने अनेक बातें लीं हैं उसकी भूमिका में दुःख-नाशक उदाहरण भी तो है । वहीं का उदाहरण आप भी दे देते तो अच्छा होता ।

अन्य काव्य का वर्णन करते हुए उसके भेद और लिख दिये जाते तो अच्छा होता । दृश्य काव्य के वर्णन में नाटकीय परिभाषा और नाटक लिखने की रीति आदि का भी संक्षेप से वर्णन कर दिया गया है ।

इसी सम्बन्ध में सङ्गीत का भी वर्णन है । परन्तु इस मयूख के सम्बन्ध में भानु जी से मेरी एक शिकायत है । वह यह कि शब्द-शक्तियों के जो उदाहरण आपने दिये हैं वे पर्याप्त नहीं । अनेक स्थलों में उनसे तृप्ति नहीं होती । कहीं कहीं तो छोटे छोटे पद्यों के एक एक दो दो चरणों में ही उदाहरण देकर किसी तरह काम चला लिया गया है । नायिका-भेद-वर्णन में तो बड़े बड़े, पन्द्रह पन्द्रह सोलह सोलह, पद्य दिये जायँ, पर व्यङ्ग्यादि के वर्णन में एक दोहा या चौपाई, और कहीं कहीं इनके एक ही दो चरण उदाहरण के लिए अलं समझे जायँ—यह क्यों ?

यदि नायिका-भेद से इन बातों का महत्त्व अधिक नहीं तो कम भी न समझा जाना चाहिए । फिर, हिन्दी में नायिका-भेद-वर्णन की कमी नहीं है; कमी है तो इसी विषय के वर्णन की । यदि आपको विस्तार का भय था तो सङ्गीत की इतनी चर्चा आप भले ही न करते । इस मयूख में तो शब्द-रहस्य का ही विस्तृत और बोध-गम्य वर्णन होना चाहिए था । कोई कोई उदाहरण तो इसमें ऐसे हैं कि उन्हें उदाहरण ही नहीं कह सकते । देखिए, अभिधा-शक्ति का वर्णन करते हुए, जहाँ प्रसङ्ग से अर्थ लिया जाता है, आप लिखते हैं :—

"वाचक ते कहुँ जानिये, एकै अर्थ सुघाट ।
सरस्वती कहिये कहूँ वानी बैठो हाट" ॥

इसका स्पष्टीकरण भानु जी इस प्रकार करते हैं :—

"यहाँ सरस्वती के कई अर्थ हैं पर हाट के प्रसंग से वानी (बनियाँ) [ही ?] समझा गया ।"

यहाँ सरस्वती के कई अर्थ कहाँ हैं ? यहाँ तो हाट के प्रसङ्ग से उसका अर्थ 'वानी' (बनियाँ) ही हुआ । फिर 'यहाँ' शब्द का प्रयोग पहले क्यों ? मेरी जड़ताक्रान्त बुद्धि के अनुसार यदि यह वाक्य :—"सरस्वती के कई अर्थ होते हैं, पर यहाँ हाट के प्रसङ्ग से वानी (बनियाँ) ही समझा गया—"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरह लिखा जाता तो अच्छा होता। अच्छा, अब उदाहरण पर विचार कीजिए। हाट में सरस्वती बैठा है (!) ऐसा कहने से बनियाँ का बोध किस तरह होगा? इस तरह कि सरस्वती का एक नाम वाणी भी है। पहले उसे सोचिए, फिर वाणी की, 'णी' को 'नी' बना डालिए जब 'वानी' बन जाय तब हाट के प्रसङ्ग और अपने बुद्धि-बल से वानी का बनियाँ समझ लीजिए। ऐसे द्राविड़ी प्राणायाम से यदि अभीष्ट अर्थ निकालना पड़े तो अभिधा शक्ति को कोई शक्ति न कह कर सिर्फ़ एक प्रकार की पहेली कहना चाहिए। इसी सम्बन्ध में आपने दूसरा उदाहरण यह दिया है:—

"हरि हित सहित राम जब जोहे"।

इस पर आप लिखते हैं:—"यहाँ हरि शब्द के कई अर्थ हैं, परन्तु राम के प्रसङ्ग से वाजि (घोड़ा) ही जाना गया"। क्यों? राम के प्रसंग से हरि शब्द का अर्थ घोड़ा ही क्यों जाना गया? बन्दर क्यों न जाना गया? राम के प्रसङ्ग से तो हरि शब्द का अर्थ घोड़े की अपेक्षा बन्दर और भी निकट का है। मैंने माना कि कहीं राम के प्रसङ्ग से हरि शब्द का अर्थ घोड़ा भी हो सकता है, पर उस प्रसङ्ग का उल्लेख भी तो करना चाहिए। यह उदाहरण रामचरितमानस से लिया गया है। वर के वेश में जनक जी के यहाँ जाते हुए अश्वारूढ़ रामचन्द्र जी की शोभा का सब देवताओं पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इसी पर तुलसीदास ने लिखा है कि:—

हरि हित सहित राम जब जोहे
रमा समेत रमापति मोहे।

अर्थात्—जब प्रेमपूर्वक विष्णु भगवान् ने रामचन्द्र जी को देखा तब रमा समेत वे रमापति मोहित हो गये। रामचरितमानस की चार पाँच प्रसिद्ध प्रसिद्ध टीकायें इस समय मेरे सामने हैं। उन सब में हरि शब्द का अर्थ यहाँ पर विष्णु ही लिखा है, घोड़ा किसी में नहीं लिखा! यदि घोड़े के समेत रामचन्द्र जी की शोभा पर लक्ष्मीनारायण मोहित हुए तो फिर घोड़े का उपमान क्या लक्ष्मीनारायण को होना पड़ेगा?

उदाहरण यथासम्भव सरस और ऐसे होने चाहिएँ कि वे पूरे पूरे घट जायँ। इस स्थल पर प्रसिद्ध देव कवि कृत "काव्यरसायन" नामक अप्रकाशित ग्रन्थ के दो एक पद्य पाठकों की भेंट किये बिना नहीं रह सकता। सुनिए:—

उज्ज्वल अखण्ड खण्ड सांतये महल महा
मण्डल चबारो चन्द्र मण्डल की चोट हों।
भीतर हू लालन के जालनि विशाल जोति
बाहर जुन्हाई जगी जोतिन के जोट हों॥
बरनत बानी चौर ढोरत भवानी कर
जोरें रमा रानी ठाढ़ीं रमन की ओट हों।
देव दिगपालन की देवी सुखदायिनि ते
राधा ठकुरायन के पायन पलोट हों॥

'देव' के ही शब्दों में इसका स्पष्टीकरण भी सुनिए:—

"श्रीराधा श्रीकृष्ण की प्रभुताऽनन्य निकेत।
वाच्य वाचकै वचन को साक्षात संकेत॥"

लक्षक का लक्षण भानुजी इस प्रकार लिखते हैं—

"मुख्य अर्थ के बोध कों लक्षक कहत सुजान।

"भा०—जिस शब्द से मुख्यार्थ से भिन्न अन्य का बोध हो वह लक्षक है।" बहुत दुरुस्त! मगर माफ़ कीजिए, आपका यह अर्थ मूल की प्रतिकूलता करता है। मूल में तो मुख्यार्थ का बोधक अर्थ को लक्षक कहा गया है। टीका में, मुख्यार्थ से भिन्न अन्य की बात आप क्या कह रहे हैं! उचित हो तो दूसरे संस्करण के समय इस बात पर ज़रा विचार कर लीजिएगा।

तृतीय मयूख में नायिका-भेद का वर्णन है। नायिका-भेद पर आज तक न मालूम कितना लिखा गया है और अब तक लिखा जा रहा है। उससे हिन्दी साहित्य लबालब भरा हुआ है। फिर इस ग्रन्थ में इस विषय का इतना लम्बा चौड़ा वर्णन क्यों? यद्यपि इस विषय के सैकड़ों ग्रन्थ विद्यमान हैं तथापि भानुजी की शिकायत है कि उनमें से किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में तो लक्षण पद्य में दिये गये हैं और किसी में गद्य में। इस कारण उनसे यथोचित लाभ होना कठिन है। आपकी राय में यह एक बड़ी भारी त्रुटि है। समझ तो है अपनी अपनी। काव्यप्रभाकर के इस मयूख में आपने इस कसर को ख़ूब ही मिटाया है। दूसरे कवियों के उदाहरण तो आपने दिये ही हैं, कहीं कहीं अपने बनाये हुए पद्य भी आपने उदाहरणार्थ रक्खे हैं। इस मयूख की आपकी कोई कोई कविता और मयूखों की कविता से अच्छी बनी है।

इस मयूख में आपने अपने दोहों की रचना कहीं कहीं पर प्राचीन कवियों की कविता के आधार पर की है। गुप्ता के दूसरे भेद का आपने यह उदाहरण दिया है:—

"बहि जाती मैं सरित में जो न गहति हरि आन।"

पद्माकर के एक पद्य का भाव इस दोहार्द्ध के भाव से बहुत मिलता जुलता है। उस पद्य का चौथा चरण इस तरह है:—

"को कहतो यह मेरी दशा गहतो न गुबिन्द तो मैं बहि जाती"।

इसी तरह और भी अनेक स्थानों पर आपके भाव पुराने कवियों की कविता से मिलते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आपने दूसरे कवियों के "अनेक ग्रन्थों से" जो उदाहरण उद्धृत किये हैं उनको संग्रह करने में आपको बहुत परिश्रम हुआ होगा। परलोकवासी पण्डित नकछेदी तिवारी ने मनोज-मञ्जरी नाम की एक पुस्तक संग्रह करके छपाई थी। उसमें भी इस विषय का उत्तम संग्रह है।

भानुजी, उदाहरणों के विषय में, लिखते हैं—"जहाँ तक बना अश्लील उदाहरणों का बहुत कुछ बचाव किया गया है। यदि इतने पर भी कहीं भूल हो गई हो तो आशा है कि उदार पाठक क्षमा करेंगे।" यह लिखना आपकी शालीनता है; पर, खेद है, काव्यप्रभाकर के अनेक स्थलों में बेहद शृंगारिक पद्य आगये हैं। उनमें से कोई कोई अश्लील भी हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

इस मयूख के अन्त में आपने एक नया काम किया है। वह यह कि आपने "दादरे में समस्त नायिका भेद" वर्णन किया है। और इस काम की आलोचना भी आपने स्वयं कर दी है। आप लिखते हैं:—"बात पुरानी होने पर भी आप लोगों के सन्मुख बिलकुल नवीन रीति से उपस्थित की जाती है। उसे पढ़ कर आप देखेंगे कि रेत में से सोंना निकाला गया है—अर्थात् मृत्तिका में से मणि का अन्वेषण किया गया है।" साधु साधु! पाठकों को आपके दादरे पढ़ने से कुतूहल होगा। अतएव, इच्छा न रहते हुए भी, मैं इस "मृत्तिका में से मणि के अन्वेषण" का नमूना नीचे दिखलाता हूँ। परन्तु मैं सिर्फ़ ४—६ मणियों का ही परिचय दूँगा। यदि इतने से पाठकों का कुतूहल न शान्त हो तो मैं लाचार हूँ। लीजिए:—

'गोरा गाल तिल काला मुनइयाँ ने क्या जादू डाला'
(नायिका)

'सवतिया काहे को जरी जाय'
(प्रेमगर्विता)

'कुआँ पानी न जैहों नजर लागे'

'बलम कजरौटी लइयो रे ये नैना बिगरे जायँ'
(रूपगर्विता)

'आली री बरतोर भयो है'
(अज्ञातयौवना)

'काय रँगरेजा रँगी मोरी अँगिया'
(ज्ञातयौवना)

बस, अब और नहीं। पाठक इतने से ही इस रेत में से निकाले गये सोने की उत्तमता की जाँच करलें! इसकी मैं और कोई समालोचना नहीं करना चाहता; भानुजी स्वयं ही इसकी आलोचना कर चुके हैं। यदि दादरों में नायिका-भेद का वर्णन किया जा सकता है तो क्या फाग में नहीं? फिर उसे क्यों आपने छोड़ दिया? ग़ज़लों और ठुमरियों में भी तो नायिका-भेद कहा जा सकता है। कहा किस राग-रागिनी या छन्द में नहीं जा सकता? परन्तु क्या इस विषय की इन चीज़ों से भी हिन्दी-साहित्य को भरना इष्ट समझा जा सकता है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ मयूख में उद्दीपनविभाव-वर्णन है। जिनसे रस का उद्दीपन होता है वे उद्दीपन विभाव कहलाते हैं। यद्यपि इनकी कोई निश्चित संख्या नहीं स्थिर हो सकती तथापि भानुजी ने उद्दीपन के मुख्य बारह हेतु माने हैं। उन सबका वर्णन इस मयूख में अच्छी तरह किया गया है। इसी मयूख में "मण्डनान्तर्गत" नख-सिख का वर्णन भी है। ग्रन्थकार की राय है कि शृंगार-रस-उद्दीपन के अनेक कारणों में से नख-सिख प्रधान कारण है।

शृंगार-रस के उद्दीपक कारणों में से नख-सिख प्रधान कारण अवश्य है। पर मण्डनान्तर्गत नख-सिख होना चाहिए या नख-सिख के अन्तर्गत मण्डन? मेरी राय में नख-सिख प्रधान है, मण्डन गौण। नख सिख-वर्णन से मतलब है शरीरसौन्दर्य के वर्णन से; और मण्डन-वर्णन से मतलब है भूषणादि की सजावट के वर्णन से। यद्यपि नख-सिख के अन्तर्गत भूषण-वर्णन भी आ जाता है; पर हैं ये दोनों बातें भिन्न भिन्न। इनके नाम से ही इनकी भिन्नता प्रकट है। यदि भानुजी मण्डन-मण्डित नख-सिख को ही शृंगार-रस-उद्दीपन का प्रधान कारण मानते हैं तो खेद की बात है। जो सहज ही सुन्दर है उसके लिए भूषणों का होना न होना बराबर है।

न रम्यमाहार्य्यमपेक्षते गुणम्—भारवि

दृग-पग पोंछन को किये भूषण पायंदाज—बिहारीलाल

कण्वर्षि के तपोवन में जब पहले पहल दुष्यन्त ने शकुन्तला को देखा तब वह अपने साधारण वेश में थी। "मण्डनान्तर्गत नख-शिख" भूषिता न थी। पर उसे देख कर दुष्यन्त के हृदय में जो भाव उत्पन्न हुआ था वह कवि-कुलगुरु के इस पद्य से भलीभाँति प्रकट होता है:—

"सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्"

अर्थात्

"सरसिज लगत सुहावनों यदपि लियो ढकि पङ्क।
कारी रेख कलङ्क हू लसति कलाधर अङ्क॥
पहरें बलकल-बसन यह लागत नीकी बाल।
कहा न भूषण होय जो रूप लिख्यो विधि भाल॥"

राजा लक्ष्मणसिंह।

नख-सिख वर्णन करते समय भानुजी ने यह भी लिख दिया है कि अमुक अमुक अङ्गों के अमुक अमुक उपमान होते हैं। इस विषय में कविप्रिया जो बातें हैं उनके सिवा आपने इधर उधर से बहुत सी बातों का संग्रह किया है। षड्ऋतु वर्णन आपका खूब है। सच तो यह है कि तीसरे, चौथे और आगे के कई मयूखों में भी अनेक कवियों की रचनाओं के रसास्वादन की बहुत कुछ सामग्री है।

पञ्चम, षष्ठ, सप्तम और अष्टम मयूखों में क्रम से अनुभाव, सञ्चारी, स्थायी और काव्य के रस का वर्णन है। जगद्विनोद और रसकुसुमाकर आदि पुस्तकों में इन विषयों का जैसा सरस और बोधगम्य वर्णन है वैसा ही इन मयूखों में भी है। यथा-सम्भव सरल रीति से सब बातें समझाई गई हैं। उदाहरण भी अच्छे अच्छे दिये गये हैं। पर कहीं आध जगह, कहीं कहीं, कुछ बातें चिन्त्य हैं—जैसे वियोग की दशाओं का उल्लेख करते हुए प्रलाप के उदाहरण में भानुजी ने रसखान कवि का यह पद्य दिया है:—

"मोर पखा सिर ऊपर राजिकै (? धारिकै)
गुंज की माल हिये (गरे) पहरौंगी।
ओढि पीताम्बर लै लकुटी
वन गावत गोधन संग फिरौंगी॥
भा वैरी तोहि कहा रसखान सो
तेरे लिए सब स्वाँग करौंगी।
या मुरली मुरलीधर की
अधरान धरी अधरा न धरौंगी!॥"

इस पद्य को आपके द्वारा प्रलाप के उदाहरण में दिया गया देख, सच कहता हूँ, मुझे अपरिमित परिताप हुआ। अहा! क्याही सरस उक्ति है! कैसा विलक्षण प्रेम-चिन्तन है! यदि यह प्रलाप है तो फिर आलाप रसातल को गया समझिए! मालूम नहीं भानु जी जैसे जन से ऐसी बात कैसे लिखी गई!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवम मयूख में अलङ्कारों का वर्णन है। अलङ्कार-शास्त्र वादग्रस्त विषय है। कोई किसी अलङ्कार को अलङ्कारत्व ही नहीं देता। कोई किसी के किये हुए लक्षण को लक्षण ही नहीं समझता। कोई कहता है, अमुक ग्रन्थकार ने अमुक अलङ्कार को भिन्न लिखा है, यह उसकी भूल है। उसे तो अमुक अलङ्कार के ही अन्तर्गत मानना चाहिए। अप्पय-दीक्षित-कृत कुवलयानन्द के अनुसार ही प्रायः हिन्दी में अलङ्कारों का वर्णन हुआ है। पण्डितराज जगन्नाथ की अप्पय दीक्षित से बिलकुल ही नहीं पटती थी। उन्होंने अनेक स्थलों में अप्पय दीक्षित की बातों का खण्डन किया है। श्रीयुत कन्हैयालाल पोद्दार ने अपने अलङ्कार-प्रकाश में कहीं कहीं ऐसी बातों का वर्णन भी किया है। यद्यपि काव्यप्रभाकर में ऐसा विवेचन नहीं है, तथापि लक्षण और उदाहरण यथासम्भव सरल दिये गये हैं। यदि उदाहरणों के अन्त में स्पष्टीकरण और जोड़ दिया जाता तो और भी सरलता आ जाती। एक बात और रह गई है। कहीं कहीं भिन्न भिन्न दो अलङ्कारों में एकता सी दिखाई देती है। यदि उनकी भिन्नता समझा दी जाती तो बहुत अच्छा होता। यद्यपि दो चार स्थलों में ऐसा किया भी गया है; परन्तु इस ओर भानु जी का विशेष ध्यान नहीं गया। यह त्रुटि खटकती है। क्योंकि मेरे जैसे अज्ञ जनों को इस से कहीं कहीं भ्रम हो सकता है। जैसे—समताद्रूप्य और पञ्चम प्रतीप अलङ्कारों के उदाहरण मिल से जाते हैं। पञ्चम प्रतीप का उदाहरण आपने यह दिया है:—

"हम आगे मृग कछु न ये पञ्चप्रतीपाकार"

आपका समताद्रूप्य का उदाहरण सुनिए:—

"नैन कमल ये ऐन हैं और कमल किहि काम"

देखिए, ये दोनों कितने मिलते हैं। दोनों से उपमानों का निष्फलत्व ही बोध होता है। सेठ कन्हैयालाल ने पञ्चम प्रतीप का यह उदाहरण दिया है:—

"अमिय झरत चहुँ ओर तें नयन ताप हरि लेत।
राधा जू को बदन अस चन्द उदय किहि हेत॥"

भानु जी के समताद्रूप्य के उदाहरण में और इसमें परस्पर कुछ भी भिन्नता नहीं मालूम होती। अतएव ऐसे स्थलों में टिप्पणी देना ज़रूरी था।

इस मयूख में एक विशेषता भी है। वह यह कि प्रत्येक अलङ्कार के सम्बन्ध में पहले एक संस्कृत-पद्य दिया गया है जिसमें लक्ष्य-लक्षण दोनों आ गये हैं। उसी के नीचे आपने दोहे में उसका अनुवाद दिया है। जैसे—

विभावना विनापि स्यात् कारणं कार्य्यजन्म चेत्।
अप्यलाक्षारसासिक्तं रक्तं तच्चरणयद्वयम्॥

इसका अनुवाद:—

"विभावना षट हेतु बिन जहँ वरणत है काज।
बिन जावक दीन्हें चरण अरुण लखे हैं आज।"

इस तरह प्रत्येक अलङ्कार का वर्णन करके फिर आपने और और उदाहरण दिये हैं। परन्तु संस्कृत में अलङ्कारों के भेदों का वर्णन नहीं किया गया। ऐसा करने से विस्तार बहुत हो जाता। अतएव आपने हिन्दी-पद्यों में ही लक्ष्य-लक्षण लिख दिये हैं। जैसे इसी विभावना का दूसरा भेद:—

"हेतु अपूरण ते जबै कारज पूरण होय"।
कुसुमबाण कर मँह मदन सब जग जीत्यो जोय॥

इसी अलङ्कार के और और उदाहरणों के साथ एक यह दोहा भी है:—

तिय कत कमनैती पढ़ी बिन जिहि भौंह कमान।
बेत वेधत चूकत नहीं बंक विलोकति वाम॥

यद्यपि काव्यप्रभाकर से यह नहीं मालूम हो सकता कि यह दोहा किस कवि का है, पर जो बिहारी के कविता के रसिक हैं उन्होंने किसी तरह जान ही लिया होगा कि यह सतसई का है! 'किसी तरह' मैं इसलिए कहता हूँ कि यह दोहा दुर्दशा में पड़ कर ऐसा हो गया है कि सहज में नहीं पहचाना जाता!

रसखान कवि के एक पद्य के सम्बन्ध में भानुजी से मैं ऊपर, सङ्केत द्वारा, शिकायत कर चुका हूँ। बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःख की बात है कि यहाँ भी इस दोहे के लिए मैं आपको उपालम्भ देता हूँ। और, यह उपालम्भ उससे अधिक है। कारण यह कि उस पद्य से तो कवि की विशेष हानि नहीं, पर इसमें तो कवि की कविता-कान्ता पर बुरी तरह से आघात किया गया है। भानु जी ने पूर्वोक्त दोहे का जैसा पाठ दिया है उससे यह अर्थ निकलता है :—

हे तिय! तूने यह कमनैती कहाँ पढ़ी है कि बिना प्रत्यञ्चा की भौंह-कमान से तू चित्त को बेधती है; चूकती नहीं। वाम (स्त्री) टेढ़ा देखती है!"

आरम्भ में तिय और अन्त में भी तिय (वाम)! इस पुनरुक्ति का विचार भी आपने नहीं किया! ख़ैर। पुनरुक्ति को जाने दीजिए। जो अज्ञ हैं वे भी इस दोहे को सुन कर कह उठेंगे कि ओह, यह क्या? यहाँ तो तुक ही नहीं मिली। ऊपर कमान और नीचे उसी के जोड़ में 'वाम'।

यद्यपि 'बिन जिहि' से आपका कार्य्य पूर्ण हो गया, पर यहाँ तो बिहारी का एक रत्न ही चूर्ण चूर्ण हो गया! आपने यह भी नहीं सोचा कि कमनैती पढ़ी नहीं जाती, सीखी जाती है!

'बिन जिहि' के सिवा यहाँ पर कुछ और भी है, और वह कुछ इस दोहे के सब कुछ में से है। सुनिए :—

"तिय कत कमनैती सिखी बिन जिहि भौंह कमान।
चल चित बेधत चुकत नहिँ बंक विलोकनि बान॥"

अर्थात्—हे सुन्दरि! तूने यह कमनैती—धनुर्विद्या—कहाँ सीखी है। तू तो बिना प्रत्यञ्चा की भौंह—कमान पर वंक-विलोकन रूप बाण रख कर चलायमान चित्त को बेध डालती है! सो भी एक दो दफ़े नहीं हमेशा—कभी चूकती ही नहीं! इधर तेरी कमान तो बिना प्रत्यञ्चा की है और उधर तेरा लक्ष्य स्वभाव से ही चञ्चल है। तिस पर भी तू उसे बेधने में नहीं चूकती। गज़ब करती है!!! किसी किसी ने वंक को भी बाण का विशेषण माना है। अतएव टेढ़े बाण से हेतु की और भी अपूर्णता हुई। क्या भानु जी के दिये हुए वाले दोहे से इस अर्थ की गन्ध भी आ सकती है?

दशम मयूख में दोष-वर्णन है।

कर्णकटु, निरर्थक, अवाचक और असमर्थ आदि दोषों का सोदाहरण वर्णन इस मयूख में किया गया है। कविताकारों के लिए ये बातें विशेष काम की हैं। असमर्थ का जो उदाहरण इसमें दिया गया है उसे पढ़ कर अफ़सोस हुआ। जिस अर्थ के लिए जो शब्द रक्खा जाय वह यदि उससे न निकले, दूसरा ही अर्थ निकले, तो उसे असमर्थ-दोष कहते हैं। इसका उदाहरण सुनिए :—

"सुन्दर कोप नहीं सपने"

इसका प्रकृत अर्थ यह है कि सुन्दर को सपने में भी क्रोध नहीं होता। परन्तु कोप के 'पकार' को 'नहीं' में मिला कर पढ़ने से अर्थ निकलता है—सुन्दर को पनहीं, अर्थात् जूते!

रघुवंश के तीसरे सर्ग में एक पद्य है। वह यह है :—

जनाय शुद्धान्तचराय शंसते
कुमारजन्मामृतसंमिताक्षरम्।
अदेयमासीत्त्रयमेव भूपतेः
शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे॥

इसका अर्थ—कुमार (रघु) का जन्म हुआ है, यह अमृतमय वचन सुनानेवाले अन्तःपुर के सेवकों के लिए राजा दिलीप को केवल चन्द्रमा के समान छत्र और दोनों चामर—ये तीन ही चीज़ें अदेय रहीं और कुछ नहीं। मतलब यह कि पुत्र के जन्म की बात सुन कर उदार राजा ने अपने राज-चिह्नों के सिवा और किसी वस्तु के देने में सङ्कोच नहीं किया। इस पद्य के अन्त में 'उभे च चामरे' का मतलब एक बार एक पण्डितजी ने हँस कर यह किया था कि उभे—दोनों—चचा मरे; अर्थात् दोनों चाचा मर गये! भानुजी के उदाहरण को पढ़ कर मुझे इस बात का स्मरण हो आया। भानुजी का दिया हुआ पूर्वोक्त उदाहरण असमर्थता का द्योतक नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकादश मयूख में काव्य-निर्णय है। इस मयूख के कुछ विषयों की सूची सुनिएः—

मङ्गलाचरणनिर्णय, साहित्य और काव्यनिर्णय, लक्षणनिर्णय, छन्दोनिर्णय, काव्य-लक्षण-निर्णय, काव्य-कारण-निर्णय, काव्यस्वरूप-निर्णय, काव्य-भेद-निर्णय, ध्वनिलक्षणनिर्णय इत्यादि ऐसी ही और भी कितनी ही बातों का निर्णय इस मयूख में किया गया है। मङ्गलाचरण-निर्णय में तीनों तरह के मङ्गलाचरणों का वर्णन है। साहित्य-निर्णय में इस बात का विवेचन किया गया है कि काव्य से साहित्य भिन्न है; पर काव्य के अर्थ में यह शब्द रूढ हो गया है। छन्दोनिर्णय में इस बात का निर्णय किया गया है कि किस विषय के लिए कौन सा छन्द विशेष उपयुक्त है। काव्यनिर्णय में साहित्यदर्पण के अनुसार काव्य का विवेचन करके "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" को भानुजी ने कविता का ठीक लक्षण माना है। इसी प्रकार की बातें इस मयूख में लिखी गई हैं। आपकी दो एक बातों के विषय में अपना मत प्रकट करके मैं इस लेख को समाप्त करूँगा।

काव्य-कारण-निर्णय में आप लिखते हैंः—

"मराठी निबन्धमाला के लेखक चिपलूनकर महाशय के इस सिद्धान्त से कि काव्य के लिए केवल शक्ति ही बस है, विद्वत्ता की कुछ भी आवश्यकता नहीं है हम बिलकुल सहमत नहीं हैं। काव्य के लिए शक्ति, निपुणता और आयास तीनों की नितान्त आवश्यकता है। इससे यह प्रतिपादित हुआ कि अभ्यास से निपुणता और निपुणता से शक्ति प्राप्त होती है। अतएव अभ्यास ही सबमें मुख्य है।"

श्रीयुत कन्हैयालाल पोद्दार ने भी अलङ्कारप्रकाश की भूमिका में कुछ ऐसा ही लिखा है। भानुजी अभ्यास को प्रधानता देते हैं। पर मेरी राय में कविता विशेष कर शक्ति या प्रतिभा पर ही अवलम्बित रहती है। अभ्यास तो होता ही है; पर यदि प्रतिभा नहीं है तो कवि होना कठिन ही नहीं, असम्भव है। और, प्रतिभा ईश्वरदत्त होती है। वह उत्पाद्य भी होती है, पर असल असल ही है। असल और नक़ल में बड़ा भेद है। जो लोग प्रतिभावान् होते हैं उन्हें अनायास ही निपुणता प्राप्त हो जाती है। वे थोड़े ही में बहुत कुछ कर दिखलाते हैं। अतएव यदि पण्डित विष्णु-शास्त्री चिपलूनकर महाशय ने कविता के लिए प्रतिभा ही को प्रधानता दी तो वह सर्वथा उचित है। हमारे आचार्यों ने भी प्रतिभा को ही प्रधानता दी है। प्रतिभा को उन्होंने पहले लिखा है, निपुणता और अभ्यास को पीछे। किसी किसी ने तो स्पष्ट भी कह दिया हैः—

"कवित्वं जायते शक्तेः"

भानुजी ने अभ्यास को तो प्रधानता दी है, पर आप ही ने आगे एक जगह लिखा है कि "कविता शक्ति परमेश्वर की देन है"। इससे भी प्रतिभा की ही प्रधानता सिद्ध होती है। यदि कवित्वशक्ति प्रतिभा पर ही अवलम्बित न रहती तो लाखों-करोड़ों कालिदास नज़र आते। कवित्वशक्ति को कवि मा के पेट से ही प्राप्त करके पैदा होता है। अँगरेज़-विद्वानों ने भी इस बात को स्वीकार किया है। एक दिन मैं अपने एक अँगरेज़ी दाँ ग्रेजुएट मित्र से इस विषय पर बातें कर रहा था। उन्होंने कहा कि अँगरेज़ी में एक कहावत हैः—

"Poets are born, not made."

आपने इस विषय में एक बात और भी मुझे सुनाई। वह पोप कवि के जीवनचरित से सम्बन्ध रखती है। पोप स्वभाव से ही कवि था। पर उसका पिता नहीं चाहता था कि पोप कवि बने। इसलिए, कि उस समय इँगलैंड में कविता का बुरा हाल था। पोप के पिता को चिन्ता हुई कि कवि होने पर पोप को पेट भरना भी कठिन हो जायगा। कवियों को पूछता ही कौन है। इस कारण वह पोप को कविता करने से रोका करता था। पर क्या प्रतिभा का वेग रोका जा सकता है? एक दिन पोप कुछ लिख रहा था कि उसका पिता अचानक आ गया। बालक पोप अपने ध्यान में मग्न था। उसे अपने पिता के आने की ख़बर भी न हुई। ख़बर कब हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब पिता के हाथ का बेंत आप पर पड़ने लगा! बालक सहसा घबरा उठा। उसने पिता से माफ़ी माँगी कि क्षमा कीजिए; अब मैं कविता न लिखा करूँगा। पर आप जानते हैं कि यह माफ़ी माँगी उसने किस तरह। पोप की प्रतिभा का वेग उस समय ख़ूब प्रबल हो रहा था। अतएव मार खाने पर भी अनायास उसके मुँह से एक पद्य निकल गया! अर्थात् पद्य में ही उसने अपने पिता से माफ़ी माँगी।

वह पद्य यह है:—

"Father! Father! mercy take,
I shall verses never make."

शॉ साहब ने अँगरेज़ी-साहित्य का इतिहास लिखा है। उसमें उन्होंने एक जगह लिखा है कि पोप दाईख़ाने (Nursery) से भी बाहर न निकला था जब उसने कविता लिखना आरम्भ किया था। यह बात भी मैंने अपने एक मित्र से सुनी है। इससे भी कविता प्रतिभा ही पर अवलम्बित सिद्ध होती है।

चिपलूनकर महाशय की गति काव्य-शास्त्र में बहुत ही अच्छी थी। अतएव उनके उस कथन में चाहे कुछ अत्युक्ति भले ही हो, पर उनकी बात सर्वथा सत्य की नींव पर अटल है। चाहे जैसी निपुणता और चाहे जैसा अभ्यास हो, यदि प्रतिभा नहीं तो कविता में सफलता नहीं प्राप्त हो सकती। फिर, जो कारण मुख्य है उसे ही मुख्यता क्यों न दी जाय? मैंने ऐसे आदमियों का हाल सुना है और एक आध को देखा भी है जो विद्वान् नहीं पर कवि ज़रूर हैं। दतिया रियासत के एक गाँव में एक कहार था। वह कुछ विशेष पढ़ा-लिखा न था। पर सुनते हैं वह अच्छी कविता बना लेता था। उसकी रचना का एक नमूना मैं यहाँ पेश करता हूँ:—

"पुहुमी सबीज करो वारिद! तिहारी रीति
सब पै समान दृष्टि प्रभुता सुहात की।
स्वाति बूँद पाय प्रेमी पालत कुटुम्ब सदा
और सों न प्रीति ऐसी रीति यहि जात की॥
'परसराम' एरे घन! बरस पपीहा काज
आय जैहै पौन रैहै प्रभुता न हात की।
कित जल जैहै कित उमग बिलैहै कित—
तू ही चलि जैहै कित जैहै उड़ि चातकी॥"

इस लेख से यह न समझना चाहिए कि मैं निपुणता और अभ्यास के प्रतिकूल हूँ। ऐसा समझना भूल है। मैं कविता के लिए शक्ति को प्रधानता देता हूँ। निपुणता आदि को मैं सहायक कारण समझता हूँ।

"हिन्दी कविता की भाषा" शीर्षक निबन्ध जो स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदासजी के एक लेख के आधार पर लिखा गया है, भानुजी ने लिखा है कि "खड़ी बोली की कविता के प्रेमियों को चाहिए कि वे प्रथम सर्व गुण-आगरी परम रसीली व्रजभाषा की कविता में अच्छी योग्यता प्राप्त कर लें, पश्चात् खड़ी बोली की कविता में हाथ डालें। व्रजभाषा के ग्रन्थ देखें तथा उसमें अनुभव प्राप्त किये बिना खड़ी बोली की कविता में माधुर्य आना असम्भव है।"

और, यदि सम्भव हो तो, भानुजी की यही बात और बढ़ा कर इस तरह कही जा सकती है कि जो लोग अँगरेज़ी में कविता करना चाहें वे पहले लैटिन में योग्यता प्राप्त कर लें और जो उर्दू में कविता करना चाहें वे पहले फ़ारसी की कविता में योग्यता प्राप्त कर लें। अथच जो व्रजभाषा में कविता करना चाहें वे पहले उसकी पूर्ववर्ती भाषाओं की कविताओं में योग्यता प्राप्त कर लें नहीं तो उनकी कविताओं में माधुर्य आना असम्भव है। यद्यपि किसी भी विषय का ज्ञान निरर्थक नहीं, तथापि यह बात युक्ति सिद्ध नहीं है कि बिना व्रजभाषा कविता सीखे बोल-चाल की भाषा में माधुर्य आना असम्भव है। कविता के लिए भाव प्रधान और भाषा गौण। किसी भी भाषा में कविता की जा सकती है। यदि आप यह कहते कि भाषा-ज्ञान को इस तरह सम्पादन करके तब कविता करना ठीक होगा तो आपका कहना उचित भी होता। कविता की भाषा पर यद्यपि किसी क़दर भानुजी ने बोल-चाल की भाषा का अधिकार स्वीकार किया है, पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतने बड़े ग्रन्थ में बोल-चाल की भाषा का एक भी पद्य नहीं लिखा। यह कार्पण्य क्यों ?

मेरी अल्प बुद्धि तो यह कहती है कि अब खड़ी बोली में ही कविता होना सर्वथा इष्ट है। व्रजभाषा की कविता सब कहीं इतनी बोधगम्य नहीं हो सकती जितनी खड़ी बोली की कविता हो सकती है। मेरी राय में आपका यह कहना भी ठीक नहीं कि व्रजभाषा के कवियों को खड़ी बोली की ओर न झुकाया जाय। जिस हिन्दी को हम लोग राष्ट्रभाषा बनाने की कोशिश करें उसी का साहित्य कविता से ख़ाली पड़ा रहे, यह कैसे दुःख की बात है। कविता, साहित्य का प्राण है। जिस भाषा में कविता नहीं वह भाषा कभी साहित्यवती होने का गर्व नहीं कर सकती। और, जिस भाषा को साहित्य का गर्व नहीं वह राष्ट्र-भाषा क्या ख़ाक हो सकती है। अतएव बोल-चाल की भाषा में ही कविता होना इष्ट है। आपका यह कहना सर्वथा अनुचित, अदूरदर्शिता-दर्शक और देशहित-घातक है कि "यह आग्रह करना कि आज कल खड़ी बोली में ही कविता की जाय सर्वथा हानिकारक है"। यह कहना हानिकारक होना तो दूर रहा, उलटा लाभदायक है। इसे हानिकारक कहना मानो हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के प्रयत्न में बाधा डालना है।

भानु जी भले ही बोल-चाल की भाषा की कविता को अपने ग्रन्थों में स्थान न दें, और व्रज-भाषा के कवियों को खड़ी बोली की कविता की तरफ़ झुकाने से मना करें, पर समय की गति को कौन रोक सकता है ? वे दिन नज़दीक आ रहे हैं जब कविता की भाषा का मुख्य आसन बोल-चाल की भाषा ही को प्राप्त होगा और हमारी हिन्दी—वह हिन्दी जिसमें सब तरह की किताबें लिखी जाती हैं और जो राष्ट्रभाषा होने का पूरा दावा रखती है—गद्य और पद्य, दोनों में, समानता को प्राप्त होकर पूर्णरूप से अपने अधिकार को प्राप्त होगी। एवमस्तु।

"शब्दरूपान्तर-निर्णय" शीर्षक लेख में आपने कुछ ऐसे शब्दों का कोष्ठक दिया है जो शुद्ध से अपभ्रंश हो गये हैं। इस कोष्ठक में कुछ ऐसे शब्दों को आपने अपभ्रंश लिख दिया है जिन्हें देख कर बुद्धि काम नहीं करती। देखिए:—

शुद्ध	अपभ्रंश
तुरग	तुरंग, तुरंगम
औषधि	ओषधि
मस्तिष्क	मस्तक
सूर्य	सूर
चरित्र	चरित

कहने की ज़रूरत नहीं कि जिन शब्दों को आपने अपभ्रंश बतलाया है वे सर्वथा विशुद्ध शब्द हैं। सुनते हैं, भानुजी संस्कृत जानते हैं। पर संस्कृतज्ञों से तो ऐसी ग़लती न होनी चाहिए। आपने एक और ग़ज़ब किया है कि कहीं कहीं अपभ्रंश शब्दों को भी आपने शुद्ध शब्द मान लिया है जैसे 'भेष'। शुद्ध शब्द वेश या वेष है—भेष नहीं। ऐसी बातें आपकी योग्यता में बट्टा लगाने वाली हैं।

प्रकृति-प्रत्यय के विषय में भानुजी की सम्मति है:—

"प्रकृती—प्रत्यय साथ ही लिखें सुगमता होय।
भिन्न लिखे कछु हानि नहिं दूर लिखो मत कोय॥"

खूब झगड़ा निपटाया! यद्यपि आपने फ़ैसला मिला कर लिखनेवालों के ही पक्ष का किया है, पर भिन्न लिखनेवालों का भी मन आपने रख लिया है। हिन्दी के लेखक भी कभी कभी बड़ा मज़ा करते हैं। एक महाशय ने एक बार लिखा था कि आज कल एकता के लिए प्रयत्न हो रहा है। फिर, विभक्तियाँ क्यों शब्दों से विभक्त रक्खी जायँ! मेरी राय तो यह है कि इस एकता के लिए प्रयत्न करने के ज़माने में शब्द भी अलग अलग न लिखे जाने चाहिएँ, सब मिला कर ही लिखना उचित है! तभी पूरी एकता होगी!

द्वादश मयूख में "कोष-लोकोक्ति-संग्रह" है। इसका विषय नाम ही से स्पष्ट है। लोकोक्तिसंग्रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का नाम आपने लोकोक्तिहज़ारा रक्खा है। पर अन्त में आप लिखते हैं:—

"कहिबे को लोकोक्ति हज़ारा,
पर यथार्थ में डेढ़ हज़ारा।
कविजन करि काव्यसृत पाना,
भानु सदा पैहैं सुख नाना॥"

यद्यपि अभी और भी कितनी ही बातों पर लिखा जा सकता है, पर भानुजी जैसे विज्ञजनों के लिए यह दिग्दर्शन ही बहुत है। मत-भेद होना कोई विचित्र बात नहीं। मत-भेद से हानि नहीं, लाभ ही होता है। जिस विषय में मत-भेद होता है उसका विचार विशेषरूप से होता है और विचार करने से बड़ी बड़ी विषम समस्यायें भी हल हो जाती हैं। अतएव जो कुछ मैंने भानुजी के लेख के प्रतिकूल कहा है उसके लिए क्षमा माँग कर, अन्त में, इस वृहद् ग्रन्थ के संग्रह और सम्पादन करने के लिए मैं आपको बधाई देता हूँ।

मैथिलीशरण गुप्त।

जरमनी में शिशुशिक्षा।

जङ्गल और फूल-बाग़ के वृक्ष और लता आदि प्रायः समान जाति के होते हैं, पर फूल-बाग़ वाले जैसे सुहावने लगते हैं वैसे जङ्गल के नहीं। बाग़ के वृक्षों को माली, यथा-स्थान, अपनी रुचि के अनुसार, लगाता और बढ़ाता है; पर जङ्गल के वृक्ष मनमाने उगते और बढ़ते हैं। इसी से वे प्यारे नहीं लगते। ठीक यही हाल शिशुओं का भी है। जो माता-पिता अपने शिशुओं को उचित समय पर देश और धर्म्म के अनुसार शिक्षा देते हैं वे उन्हें सर्वप्रिय और योग्य बना कर अपना कर्तव्य-पालन करते हैं।

खेल-कूद और खिलौनों के द्वारा शिशुओं के कोमल हृदय पर शिक्षाओं के फल अङ्कित करने की रीति जर्मन देश से ही निकली है। अतएव उस देश की शिशुशिक्षा पर कुछ लिखना, सम्भव है, हमारे देश के लिए लाभदायक हो। माता शिशु की शिक्षा का मूल है। इसलिए यह लेख स्त्रियों को विशेष उपयोगी होना चाहिए। अतएव केवल स्त्रियों के लिए प्रकाशित होनेवाले पत्रों में यदि यह लेख उद्धृत किया जाय तो अच्छा हो।

विद्या का बल संसार के सब बलों से अधिक है। जिस देश की प्रजा विद्वान् है वहाँ सब सुख प्राप्त होते हैं। हिन्दुस्तान की तरह जरमनी भी पहले अनेक छोटी छोटी रियासतें थीं। सब अपनी अपनी डफली अपना अपना राग अलापती थीं। पर जबसे जरमनवालों ने मिल कर फ्रांस को हराया तबसे उन्हें एके का महत्त्व अच्छी तरह मालूम हो गया। तभी से सारी जरमनी एके के सूत्र में बँधी और तभी से, केवल चालीस वर्ष के भीतर, उसकी बेहद बढ़ती हुई है। जरमनी ने अपने एक भी बच्चे को निरक्षर नहीं रक्खा। जहाँ बच्चा चार-पाँच वर्ष का हुआ तहाँ माता-पिता उसे स्कूल भेज देते हैं। अब इन बच्चों के स्कूलों का कुछ वृत्तान्त सुनिए।

आठ से साढ़े आठ बजे तक सवेरे और दो से तीन बजे तक तीसरे पहर यदि आप जरमन देश के किसी छोटे से भी छोटे गाँव या नगर में निकलें तो आपको एक अजूबा दृश्य दिखाई पड़ेगा। ऐसी कोई गली या सड़क न होगी जिस पर से आप दस-पाँच, बीस, पचीस शिशुओं को कन्धे पर टीन का बक्स लटकाये हुए गुज़रते न देखेंगे। ये शिशु पाँच से सात बरस की उम्र के हैं। ये कहाँ जा रहे हैं? किनडर-शूल (Kinder Schule) बच्चों के स्कूल में। आबादी के हिसाब से हर महल्ले में एक, दो, तीन, चार किनडर-शूल हैं। ये बच्चे वहीं जा रहे हैं। अहा, चार वर्ष का बच्चा सबेरे जागते ही—"माता, काफ़ी—मामा, काफ़ी" पुकारता है। सभ्य देश में माँ बच्चे को अपने साथ नहीं सुलाती। वह अलग अपने छोटे से पलँग पर सोता है। माँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को जगा देख उसकी चारपाई पर चित्रों की पुस्तक रख देती है और वह उसे देखने लगता है। इतने में माँ उसे काफ़ी तैयार करके देती है। बच्चा काफ़ी पीकर—"शूल-शूल"—पुकारता है। माँ उसे कपड़े पहनाती है और रोटी के एक छोटे टुकड़े पर कुछ मक्खन चुपड़ कर उसके टीन के बक्स में रख देती है। बच्चा बड़ी ही ख़ुशी से इस टीन के बक्स को अपने कन्धे पर लटका कर खटा-खट करता हुआ स्कूल को चल देता है।

बतलाइए तो सही यह किनडर-शूल कौन सा जादूघर है जहाँ बच्चा अपने आप ख़ुशी से चला जाता है? यह कौन सा खिलौना है जहाँ चार से सात वर्ष तक के छोटे छोटे बच्चे दिन में आठ नौ घंटे बिना अपने माता-पिता की याद किये बने रहते हैं? एक दिन मैं यह सब जानने के लिए एक किन-डर-शूल में गया। एक बड़ा कमरा, क़रीब ५० फीट लम्बे का, नज़र पड़ा। आधे में छोटी छोटी बेंचें और डेस्क सजे हैं, और आधा ख़ाली है। एक ओर लिखने का बोड है, और दूसरी ओर एक आलमारी रक्खी है। एक घुड़िया भी पास ही रक्खी थी, जिसमें बहुत सी खूँटियाँ लगी थीं। इस कमरे के भीतर कोई ३५ वर्ष उम्र की एक स्त्री और कुछ बच्चे मौजूद थे। स्त्री क्या थी, देवी थी। मुझे आया देख वह मेरी ओर आगे बढ़ी और गुटेन-मार्गन (Guten-morgen)—सबेरे का सलाम—किया। फिर मुसकरा कर वह पूछने लगी कि क्या आप बच्चों का स्कूल देखने आये हैं। हाँ, उत्तर पा कर वह बड़ी ख़ुशी से मुझे भीतर लिवा ले गई। बच्चों के आने का सिलसिला अभी जारी है। जो आता है वह देवी की हथेली पर कूद कर थप्पी मारता है और गुटेन-मार्गन (Guten-morgen) कह कर हाथ मिलाता है। जरमनी में बच्चे कूद कर माता-पिता आदि की हथेली पर थप्पी मार कर सलाम करते हैं। अहा! शिशुओं की यह पवित्र माता उनके कन्धों से टीन के बक्स उतार कर खूँटी पर टाँगती है और बच्चे अपने स्थान पर जा बैठते हैं। मुझे क़रीब १५ मिनट हुए होंगे कि इतने में महल्ले के सब बच्चों से कमरा भर गया। एक अजूबा बात मैंने वहाँ यह देखी कि एक साढ़े तीन वर्ष का बच्चा अपनी बहिन के साथ रोता हुआ आया। देवी चट उसकी ओर बढ़ी और जैसे ही रूमाल निकाल कर वह उसका मुँह पोछने लगी वैसे ही न जाने बच्चे की रुलाई कहाँ को बिदा होगई। उसने कूद कर अध्यापिकाजी के हाथ पर थप्पी मारी और अपनी जगह पर जा बैठा।

शिक्षा शुरू हुई। देवी पूँछती है—आज कौन सा दिन है? अहा, बच्चों के उत्तरों को सुन कर जो आनन्द मुझे आया उसका वर्णन नहीं हो सकता। कोई चुप है; कोई ताग कहता है, कोई टाग, कोई हैटे, कोई मनटाग (सोमवार) अन्त में देवी ने ठीक दिन बताया। तब फिर सबने एक-स्वर से उस दिन का नाम लिया। उसके बाद अध्यापिका ने समय पूछा। बच्चों ने खड़े होकर उसे अपनी उँगलियों से घड़ी में समय बताया। बहुतों ने ठीक समय बताया। इसके अनन्तर बच्चों ने एक-स्वर से देवी के साथ ईश्वर-प्रार्थना-सम्बन्धी गाना शुरू किया। उस समय बच्चों की मीठी और तोतली वाणी में ईश्वर की प्रार्थना सुन कर मेरे चित्त में अनेक भाव उत्पन्न होने लगे। मेरा कलेजा भर आया। बच्चों ने कभी किसी साँवले मनुष्य को न देखा था। इसलिए सब की निगाह मेरे चेहरे और साफ़े पर थी। यह देख देवी ने बच्चों से पूछा—"क्या तुम लोग इस सज्जन के साथ जावगे"? सबने एक ही साथ उत्तर दिया "नाय"। "अच्छा, इन्हें सलाम करो"। बिना किसी के सिखाये, इन बच्चों के मुँह से एकदम निकला—"Guten-morgen, schwartzy mann" अर्थात् गुडमारनिंग्, काले आदमी"। मुझे इनके काला कहने पर ज़रा भी बुरा नहीं लगा। हमारे देश में भी तो, बच्चे क्या जवान तक, योरपवालों को गोरा कहते हैं।

मैं एक ओर खड़ा हूँ और देवी बीच में। उसका सङ्केत पाते ही बच्चे खड़े हो गये और फिर बैठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये। दो चार बार बैठा उठी के सङ्केत किये गये। बीच बीच में देवी उन बच्चों को सङ्केत पर खड़ा होना और बैठना बताती थी जो बिलकुल ही नादान थे। सिर्फ़ दो या तीन ही बच्चे ऐसे थे। कुछ ठहरने के बाद अब दूसरे सङ्केत किये गये। पहले एक हाथ ऊपर को उठा; फिर दूसरा हाथ; फिर दोनों हाथ नीचे आये। अब एक एक करके दोनों हाथ आगे को बढ़े; फिर तिरछे हुए। कठपुतलियों का सा तमाशा होने लगा। तमाशा यहीं पर ख़तम नहीं हुआ। मुट्ठी बँधी, पहले दाहनी फिर बाईं। सिलसिलेवार देवी की उँगलियों की ताल के साथ वे डेस्क पर पड़ने लगीं। यह होही रहा था कि पैर से भी थप्पी मारने का इशारा मिला। जरमनी में फ़र्श तख़्तों के होते हैं। बच्चों के पैरों की थप्पियों और मुट्ठियों की आवाज़ ने एक अजूबा समा बाँध दिया। ऐसा प्रतीत होता था कि कोई मारू बाजा बजा रहा हो। देवी की उँगलियों के इशारे पर बच्चों के हाथ और पैर तख़्तों पर पड़ते थे। क़रीब बीस मिनट के यही होता रहा।

अनन्तर, पाँच मिनट का विश्राम देकर उस मनोहारिणी देवी ने अपनी पाकट से काग़ज़ का एक लम्बा टुकड़ा निकाला। उसे वह अपने होठों पर लगा कर एक अजीब आवाज़ निकालने लगी। तब सब बच्चे खड़े हो गये। वे भी अपनी आवाज़ और हाथों से उसका साथ देने लगे। डैशलेंड—डैशलेंड—की आवाज़ सुन कर मैं समझ गया कि यह इनका जातीय गान है। इस गीत के गाने में बच्चों के चेहरों पर एक अद्भुत रङ्ग छा गया था। धन्य है वह देश जहाँ बच्चों के कोमल हृदय पर देश-भक्ति, मातृसेवा, बन्धुस्नेह, एवं राजभक्ति का अङ्कुर जमाने के लिए उनसे प्रति दिन जातीय गीत गवाये जाते हैं।

एक दिन मैंने अपने एक मित्र की नौ वर्ष की लड़की से पिआनो बाजे पर जातीय गान गाने को कहा। वह चट बाजे के स्टूल पर बैठ गई और जैसे ही उसने "डैशलेंड" निकाला कि उसका एक छोटा भाई और बहिन भी आगई और वे दोनों भी बाजे के साथ गाने लगे। न जाने जातीय गान में क्या जादू भरा हुआ है। मेरे मित्र और उनके कुछ सम्बन्धी, जो मुझसे मिलने आये थे, दोनों ने अपनी अपनी कुरसियाँ छोड़ दीं और बड़े ही प्रेम से वे भी गाने लगे:—

मातृभूमि पितरदेश डैशलेंड प्यारे।
भानु जहँ प्रकाश होय, मिलता सब कहीं तोय
क्षण हू तुमसे कदापि हों कोई न न्यारे॥ १॥
बन्धुभाव जहँ समान, सब का तू महा प्रान,
चलें सदा हम सब इक तेरे ही सहारे।
होती जहँ मानहानि, उठते इक साथ पानि,
देते बलिदान तुच्छ जान प्राण सारे॥ २॥
डैश नारि डैश सेाम*, डैश गाना डैश क़ौम,
इनके ही रंग को सदैव रहें धारे।
डैश शक्ति डैश राज, में पगा सभी समाज,
युगयुग ऐश्वर्य्य पूर्ण होहु तुम हमारे॥ ३॥

जरमन लेागों के जातीय गीत का यह सार है। इस नौ वर्ष की लड़की ने जातीय गान समाप्त करते ही एक दूसरा गान छेड़ दिया। वह क्या था? मैं दूसरे दिन बिदा होने को था। अतएव उसने मातृभूमि से बिदा होने का गाना गाया। इस गान का अर्थ ऐसा हृदय को विह्वल करता है कि मैं उसे लिख नहीं सकता। यह गान दूसरे स्कूल का था, जहाँ १२ वर्ष तक की लड़कियाँ पढ़ती हैं।

हाँ, उस शिशु-शिक्षालय की बात तो भूल ही गया। बच्चों के उस पूर्वोक्त गान से स्कूल गूँज उठा। गाना ख़तम होते ही देवी ने सङ्केत किया। सब बच्चे अपनी अपनी बेंचें छोड़ कर ख़ाली जगह में आ गये। अब बच्चों ने अपने अपने क़द के मुताबिक़ अपनी अपनी जोड़ी चुन ली। जिस तरह सिपाहियों के पैर ज़मीन पर पड़ते हैं, बच्चे अपने दोनों की एँडी को फ़र्श पर मारते हुए मार्च करने लगे

* अंगूर और सेव जरमनी वालों की शराब है। नशीली नहीं होती। बलोत्पादक है, इस लिए वह सोम कहलाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजब आवाज़ निकलती थी। याद रहे उनमें लड़कियाँ भी थीं। पाँच सात चक्कर कमरे में लगवा कर उस पवित्रमूर्ति ने उस ओर का दरवाज़ा खोल दिया जिधर चौगान था। बच्चे उधर से निकल कर चौगान में आकर अपनी अपनी इच्छा के अनुसार खेलने लगे। मैं चलने को था, पर देवी ने मुझे ठहरने को कहा। उसने एक आलमारी खोल कर मुझे दिखाई और सीटी बजाई। सुनते ही सब के सब बच्चे कमरे में आ गये। टीन के बक्स प्रायः एक ही रङ्ग और माप के थे। पर बच्चे अपने अपने बक्स पहचानते थे। देवी खूँटी से बक्स उतारने लगी और बच्चे अपने अपने बक्स लेकर बेंच पर बैठ अपनी अपनी प्यारी माँ की रक्खी हुई रोटी खाने लगे। यह तमाशा देख, मैंने उस देवी से विदा माँगी और अपने डेरे पर वापस आया।

क्या ही अच्छा हो, यदि हमारे देश में भी इस तरह के स्कूल खोले जायँ। बच्चों के बक्सों में रोटियों की जगह भुने हुए चने ही सही!

गुरुदयालसिंह।

तुलसीदास की अद्भुत उपमायें।

स्वामी तुलसीदासजी के समान महाकवि, हिन्दी-साहित्य में फिर होगा कि नहीं, इसमें सन्देह है। बहुत से विद्वानों ने तो सिद्धान्त कर लिया है कि गोस्वामीजी के समान महाकवि हिन्दी में अब न उत्पन्न होगा। जो हो, हम इतना तो अवश्य ही कहेंगे कि—जिस प्रकार संस्कृत-साहित्य में वाल्मीकि, व्यास और कालिदास की प्रतिष्ठा तथा प्रसिद्धि है उसी प्रकार हिन्दी-साहित्य में तुलसीदास की भी है। यदि हम गोस्वामी तुलसीदासजी को समाज का नेता कहें तो अतिशयोक्ति नहीं हो सकती। उन्होंने जो ग्रन्थ बनाये हैं उनमें ऐसे ऐसे सदुपदेश भरे हैं जिनसे समाज का पापी पुरुष पुण्यात्मा बन सकता है। दुराचारी सदाचारी हो सकता है। धर्मभ्रष्ट पुनः अपने धर्म का अवलम्बन कर सकता है। लम्पट पुरुष एकपत्नीव्रत धारण कर सकता है। यदि आजन्म अन्यधर्मावलम्बी मनुष्य भी तुलसीदासजी की बनाई पुस्तकें रामायण, विनयपत्रिका, दोहावली इत्यादि कुछ दिनों तक निरन्तर अवलोकन तथा मनन करे तो विश्वास है कि वह (रामभक्त) बन जाय *। कई लोग तो रामायण ही का पाठ करते करते अच्छे महात्मा तथा रामभक्त बन गये हैं। तुलसीदासजी का जन्म ऐसे समय में हुआ था जब कितने ही हिन्दू मुसल्मान-बादशाहों की सभा में उच्चपद पाने की अभिलाषा से मुसल्मान बन गये थे। यदि उस समय गोस्वामीजी का जन्म न होता और वे इन अनुपम ग्रन्थों को न बनाते तो निस्सन्देह वैदिकधर्मावलम्बी हिन्दुओं की जन-संख्या और भी घट जाती। उस धर्म के विप्लव-समय में कोई ऐसा उत्तम ग्रन्थ हिन्दी में न था जिसे सर्वसाधारण पढ़ कर अपना धर्म पहचानते और अपने धर्म पर पूर्ण-विश्वासपूर्वक दृढ़ रहते। गोस्वामीजी ने अपने ग्रन्थों में बड़ी सुन्दरता के साथ जन-समुदाय को वैदिक धर्म का रास्ता दिखलाया और सगुण ईश्वर की भक्ति ही को मोक्ष का सर्वोत्तम

---

* ई० एल० प्रेस्टन० (एम्० ए०) साहिब पहले पटना डिवीज़न के इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूल्स थे। पीछे से वे असिस्टेंट डाइरेक्टर आफ़ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन, बंगाल हो गये थे। अभी हालही में इनका परलोकवास हुआ है। उन्होंने मुझसे रामायण पढ़ी थी। एक दिन आपने मुझसे कहा—"पण्डितजी, यदि मैं हिन्दू होता तो अवश्य ही रामचन्द्रजी का भक्त बनता। रामचन्द्रजी के समान सदाचारी पुरुष इस भूमण्डल पर कोई नहीं हुआ। हां यदि उनकी कुछ बराबरी कर सकते हैं तो हमारे परमपूज्य प्रभु ईसा, अथवा बुद्धदेव"। पूर्वोक्त साहिब हिन्दी के बड़े अच्छे विद्वान् थे। समय पड़ने पर वे हिन्दी में व्याख्यान भी देते थे। उनका उच्चारण बहुत ही परिष्कृत होता था। आप आरा नागरी प्रचारणी सभा के एक प्रधान सभ्य थे और १०) वार्षिक सहायता भी देते थे। (लेखक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपाय बतलाया। सर्वसाधारण की सामयिक अवस्था पर विशेष दृष्टि रख कर, सगुण ब्रह्मही की भक्ति को उन्होंने कल्याणकारिणी सिद्ध किया। उन्होंने यह भी साफ़ साफ़ कह दिया कि मनुष्य का चित्त निराधार निर्गुण ब्रह्म की चिन्तना में कभी स्थिर नहीं हो सकता। इसलिए सगुण ब्रह्म के रूप को आधार बना कर उसी पर चित्त का ठहराना सुख-साध्य है। यही कारण है जो गोस्वामी जी ने अपने सब ग्रन्थों में भक्तिरस का अविच्छिन्न प्रवाह बहाया है। वे इस कार्य में भलीभाँति सफल-मनोरथ भी हुए हैं। उनकी कविता की भाषा भी ऐसी है जिसे हिन्दी-भाषा-भाषी समस्त भारतवासी भलीभाँति समझ लेते हैं। उनके ग्रन्थों में एक विचित्रता यह भी है कि मूर्ख हो या पण्डित, जो उसका पाठ करे वही अपनी बुद्धि के अनुसार आनन्द पावे। षट्शास्त्रज्ञ विद्वान् उनके ग्रन्थों में छओं शास्त्रों का सारांश पाते हैं; अल्पज्ञ जन, सांसारिक पवित्र व्यवहार की शिक्षा पाते हैं। उन्हें यह बात भली भाँति मालूम हो जाती है कि पिता, माता, भाई तथा मित्र आदि से कैसा व्यवहार करना चाहिए। ऐसे महाकवि और महात्मा को निन्दक की उपाधि देनेवालों का भगवान् भला करे!

सुकविजनों का हृदयोद्गार ही काव्य कहलाता है। जिस कवि का हृदय जितना ही ऊँचा होगा उस कवि का हृदयोद्गार भी उतना ही ऊँचा होगा। सच बात तो यह है कि काव्यही कवि के हृदय का प्रत्यक्ष सजीव रूप है। जो कवि रसिक होगा उसकी कविता भी रसवती होगी। जो कवि विरागी होगा उसकी कविता भी विरागयुक्त होगी। भक्त कवियों की कविता भक्ति-रस से सराबोर होगी। तात्पर्य यह कि कविता से ही कवि के रहन-सहन, चाल-चलन, आकृति-प्रकृति आदि का अच्छा ज्ञान हो जाता है। यदि सुकवि का हृदयोद्गार रस, भाव, अलङ्कार, चमत्कार, ओज आदि गुणों से विभूषित होता है तो वही हृदयोद्गार सुकाव्य कहलाता है। कवि का हृदय जिस समय जितने विकाशभाव में रहता है उस समय कवि के हृदय से उतने ही उद्गार निकलते हैं। यदि कवि का हृदय साधारण भाव में रहता है तो उसके हृदय से उद्गारभी ऐसे नहीं निकलते। इस कारण सुकवि जन तत्पर होकर या सजधज कर कविता करने के लिए नहीं बैठते, जब उनका हृदय निश्चिन्त होता है, और किसी कारणवश विशेष उत्साहित होता है, तभी वे कविता की रचना करते हैं। अथवा यों कहना चाहिए कि उसी निश्चिन्तता में उनके हृदय से विलक्षण विलक्षण हृदयोद्गार निकलते हैं। कवि भी दो प्रकार के होते हैं। एक स्वाभाविक, दूसरे कृत्रिम। कृत्रिम कवियों को कविता करने में बड़ा परिश्रम पड़ता है। किन्तु जो स्वाभाविक कवि होते हैं वे कविता करने के लिए तैयारी नहीं करते। न उन्हें काव्यरचना में विशेष परिश्रम ही पड़ता है। उनकी आँखों के सामने कोई अद्भुत वस्तु आती अथवा जब कोई विलक्षण घटना सुन पड़ती और उसका प्रभाव उनके हृदय पर पड़ता है, तब उनके हृदय में एक प्रकार का आवेश उत्पन्न होता है, जिस से प्रेरित होकर कवि स्वयं निः प्रयास बोलने लगता है। उस समय उसके वचन ऐसे शृङ्खलाबद्ध और गुणसम्पन्न होते हैं जिन्हें सुनतेही कवितामर्मज्ञ सहृदय जनों का हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है। वही वचन काव्य कहलाते हैं। उस आवेश में—उस जोश में—कवि कभी कभी करण की मर्यादा का उल्लङ्घन कर जाते हैं, कभी समाज-बन्धन की परवा नहीं करते, कभी लोक-लज्जा भूल जाते हैं और कभी अपनी मर्यादा तक का पद तक का ध्यान नहीं रखते। कहने का तात्पर्य यह कि जिस समय कोई सुकवि कविता करने लगता है उस समय वह एक प्रकार की तुरीयावस्था में पहुँच कर कविता में तदाकार हो जाता है। इसीलिए काव्य को साहित्यलक्षणकार लोग "ब्रह्मानन्द-सहोदर" कहते हैं।

काव्य का बनाने वाला ही कवि कहलाता है। कविता की रचना का ही नाम काव्य है। यदि कवि की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना महाकाव्यों के लक्षणों से लक्षित होगी तो वही "महाकाव्य" नाम से विख्यात होगी और उसी महाकाव्य का बनानेवाला कवि "महाकवि" नाम से विख्यात होगा।

कविता की प्रधान सामग्री अलङ्कार है। जिस प्रकार उत्तम वस्त्रभूषणादि अलङ्कारों से कामिनी की शोभा होती है उसी प्रकार उपमा, रूपक आदि अलङ्कारों से कविता की शोभा होती है। जिस प्रकार अलङ्कारविहीन कामिनी मनोमोहक नहीं जान पड़ती उसी प्रकार अलङ्कारविहीन कविता भी नीरस जान पड़ती है। जैसे कामिनी के अलङ्कारों में वस्त्र प्रधान है उसी प्रकार कविता के अलङ्कारों में उपमालङ्कार प्रधान है। इसी उपमालङ्कार के कारण कालिदास इतने प्रसिद्ध हैं। "उपमा कालिदासस्य"—यह लोकोक्ति इसीसे प्रसिद्ध हुई है।

गोस्वामी तुलसीदासजी के बनाये ग्रन्थों में सब से प्रधान "रामचरितमानस" या "रामायण" है। इसकी भाषा बड़ी सुन्दर तथा सबके समझने योग्य है। हिन्दी-भाषा-भाषी समस्त भारतवर्षीय जन इसकी भाषा को भलीभाँति समझ लेते हैं। इसके भावों में उच्चता तथा पवित्रता पूर्णरूप से विद्यमान है। यह ग्रन्थ भक्ति की अनुपम सुधा से सराबोर है। इसकी रचना से स्पष्ट है कि गोस्वामीजी का हृदय श्रीरामचन्द्रजी की भक्ति की अथाह नदी में निमग्न था। वे उनके अनन्य भक्त थे। इसी पवित्र भक्ति की महिमा से रामायण का प्रचार भारत के प्रत्येक स्थान में है। क्या राजा का आकाशस्पर्शी उच्चप्रासाद और क्या महादरिद्र की झोंपड़ी। जहाँ देखिए वहीं रामायण की एक न एक पुस्तक अवश्य मिलेगी। सकलशास्त्रपारङ्गत महाविद्वान् या महा अबोध मूर्ख, सबके मुँह से इस रामायण का कोई न कोई पद अवश्य निकलेगा। कितने लोग तो आपस में मिलने पर रामायण ही के दोहे चौपाइयों में बातचीत करते हैं। भारतीय जनों की बात जाने दीजिए। यूरोपीय विद्वान् भी इसका बहुत आदर करते हैं और इसे पढ़ते भी हैं। कलकत्ते की High Proficiency तथा Degree of Honours की परीक्षा में भी (जो प्रायः यूरोपीय जनों ही के लिए है और जिसमें पारितोषिक क्रमशः १०००) और २०००) रक्खा गया है) रामायण प्रधान पाठ्य पुस्तक है। भारत में जैसा आदर और प्रचार इस रामायण का हुआ वैसा किसी ग्रन्थ का नहीं। धन्य तुलसीदास! और धन्य तुम्हारी रामायण! आपके समान भाग्यशाली कवि बहुत कम हुए होंगे।

गोस्वामीजी के बनाये ग्रन्थों में सबसे उत्तम रामचरितमानस ही है। यही सर्वाङ्गसुन्दर है। इसकी कथा बड़ी मनोहर तथा शिक्षादायिनी है। गोस्वामीजी ने ग्रन्थ की सुन्दरता को स्थिर रखने के लिए महर्षि वाल्मीकि का अनुकरण नहीं किया। जिन लोगों ने वाल्मीकीय रामायण और तुलसीकृत रामायण दोनों का भली भाँति पाठ किया है वे इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि कई स्थलों में उस रामायण से इस रामायण में बहुत भेद है। इसकी भाषा बड़ी मनोहर है। इसकी उपमायें बड़ी अद्भुत हैं। उन्हीं को दिखलाने के लिए यह लेख लिखा गया है। इन उपमाओं में से कितनी ही तो संस्कृत के प्राचीन महाकवियों की छाया पर लिखी गई हैं और कितनी ही एकदम नई हैं, जिन्हें सुन कर एक प्रकार का विलक्षण आनन्द मिलता है। इन उपमाओं को देखकर गोस्वामी तुलसीदासजी की साहित्य-पारदर्शिता, अलौकिक भक्ति, रचनाचातुरी इत्यादि बातों का पूर्ण परिचय मिल जाता है।

(असमाप्त)

अक्षयवट मिश्र।

वाटरलू की संग्राम-भूमि।

(लेखक—पण्डित प्यारेलाल मिश्र, बैरिस्टर—एट—ला)

ब्रसल्स (Brussels) की प्रदर्शिनी देख कर हम यूरोप का कुरुक्षेत्र वाटरलू (Waterloo) देखने गये। ब्रसल्स नगर का हाल हम किसी और समय सुनावेंगे। आज केवल वाटरलू के विषय में कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखा चाहते हैं। इतिहास पढ़ने वालों को इस महाभारत से ख़ूब परिचय होगा। इसलिए हम संग्राम पर कुछ नहीं लिखना चाहते। इतना कहना काफ़ी होगा कि यह घोर संग्राम अँगरेज़, प्रशियन्स बैलजियन्स और फ़रासीसियों के बीच, १८ जून सन् १८१५ ईसवी को, हुआ था। संयुक्त सेनाओं के जनरल वैलिङ्गटन और फरासीसी सेना के नायक प्रसिद्ध नपोलियन थे। नपोलियन इस युद्ध में परास्त हुए और घबराहट और निराशा के कारण रणभूमि छोड़ भाग गये। इस महायुद्ध ने नपोलियन की कमर तोड़ दी, नहीं तो आज सारा यूरोप नपोलियन ही के चुंगल में रहता। फ़रासीसी सैनिक-संख्या कोई पौन लाख थी। तोपों की संख्या अनुमान ढाई सौ थी। संयुक्त सैनिक-संख्या सत्तर सहस्र के लगभग थी और तोपें क़रीब १६० के थीं। इस विषम युद्ध में बहुत जीव-नाश हुआ। ख़ून के नाले बह गये। नपोलियन की सेना के क़रीब ४० हज़ार आदमी खेत रहे। संयुक्त सेना ने अनुमान पच्चीस सहस्र मनुष्यों से हाथ धोये।

वाटरलू पाँच हज़ार की बस्ती का छोटा सा गाँव है। बैलजियम (Belgium) की राजधानी ब्रसल्स से यह १० मील की दूरी पर है। वाटरलू को ब्रसल्स से ही जाते हैं। जाने के दो रास्ते हैं—एक पक्की सड़क द्वारा, दूसरा रेल द्वारा। सड़क से जाने में और भी कई मनोहर स्थान देखने में आते हैं। हमें इतना समय न था; इससे हम रेल द्वारा गये। रेल से केवल आध घंटे का रास्ता है। युद्ध-भूमि पहुँचने के पूर्व वाटरलू गाँव मिलता है। कई मुसाफ़िर इसी जगह उतर पड़ते हैं। पर उनकी यह भूल है। कारण यह कि इस गाँव से संग्राम-भूमि तीन मील से अधिक फ़ासले पर है। युद्धस्थल के आस पास उस समय सिवा वाटरलू के कोई गाँव न होने से उसका नाम वाटरलू रक्खा गया था। वाटरलू में तब केवल थोड़े से झोंपड़े थे। वैलिङ्गटन का मुक़ाम इसी गाँव में था। वाटरलू के आस पास की धरती रेतीली है। कहीं कहीं काली धरती भी है। बीच में छोटे छोटे टीले, गढ़े और खाइयाँ हैं। बहुत हैं। अब इस मैदान में खेती होती है। बहुधा घोड़ों द्वारा होती है, पर यहाँ हमने हलों गायें भी जुती देखीं। हम यह लिखने को भूल कि ब्रसल्स नगर के स्टेशनों पर वाटरलू ले जाने दिखाने वाले लोग मुसाफ़िरों को मक्खियों की घेरते हैं। गाड़ी वाले कहते हैं, चलिए हम आप सस्ते किराये पर आराम के साथ ले चलते उधर संग्राम-भूमि दिखलाने वाले भी बहुत चौड़ी बातें मारते हैं। पर मुसाफ़िरों को जाल में एक दम न फँसना चाहिए। उन्हें शहर का चक्कर लगाकर वाटरलू-सम्बन्धी पुस्त ख़रीदनी चाहिए, जो कि स्टेशन से निकलते किसी भी पुस्तक बेचने वाले के पास दस आने में मिल सकती है। होटल वाले भी, मुसाफ़िर होटलों में ठहरें तो, बहुत कुछ हाल सकते हैं। ऐसा करने से मुसाफ़िर बहुत कुछ और तक़लीफ़ से बच सकते हैं। पर योरप में के लिए और नहीं तो फ़्रेंच भाषा अवश्य जान चाहिए, क्योंकि यह भाषा थोड़ी बहुत सब देशों समझी जा सकती है। इसके न जानने से बहुत ठगे जाते हैं। इसी तरह मुसाफ़िरों को देश में सैर करनी हो उस देश के सिक्कों को से समझ लेना चाहिए। इस विषय में पुस्तकों टामस कुक के दफ़्तरों से बहुत कुछ सहायता सकती है। बल्कि उनके यहाँ हर एक मुल्क सिक्के भी मिल सकते हैं। ब्रसल्स स्टेशन पर हम वाटरलू के लिए टिकट ख़रीदने गये तब बाबू ने हमें ठग लिया। हमसे कुछ पैसे अधिक लिये। इतने में वाटरलू ले जाने वाला गाइ (Guide) हमें देख रहा था। टिकट लेने के उसने हमसे पूछा—आपने टिकट के लिए कित पैसा दिया। हमने कहा इतना। तब वह हम साथ टिकट बाबू के पास गया और कहा, इन बाक़ी पैसा वापस दीजिए। बाबू ने तुरंत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लौटा दिया। हमने गाइड को धन्यवाद दिया। मालूम हुआ कि कदाचित् यह आदमी बाहरी लोगों को इसी तरह ठगा करता है।

संग्राम-स्मारक

यह स्मारक लड़ाई होने के सात वर्ष बाद बनाया गया था। यह संयुक्त देशों के द्रव्य से बनाया गया है। इसी स्थान पर प्रिंस आफ़ आरेञ्ज (Prince of Orange) घायल होकर गिरे थे। ये युवराज संयुक्त फ़ौजों के एक अगुआ थे। यह स्मारक मिट्टी का एक ऊँचा गोलाकार टीला सा है। इसके आस पास हरी घास लगी हुई है। भेड़ और गायें इस पर चरती रहती हैं। उँचाई इस टीले की २०० फुट है। ऊपर जाने को सीढ़ियाँ लगी हैं जो बहुत सकरी और नीची हैं। सीढ़ियाँ क़रीब सवा दो सौ के हैं। ऊपर चढ़ कर देखने से दूर तक मैदान दिखाई देता है। इस टीले की चोटी पर लोहे का एक शेर रक्खा है, जो फ़रासीसी तोपों को तोड़ कर बनाया गया है। शेर का वज़न २८ टन है और लम्बाई उसकी छः फुट के लगभग है। उँचाई उसकी १४ फुट है। जिस चबूतरे पर वह रक्खा है उसकी उँचाई २० फुट है। इस चबूतरे के आस पास कठसुई है जो चित्र में साफ़ दिखाई देती है। इस स्मारक के बनाने में तीन लाख फ़्रेंक ख़र्च हुए थे। एक फ़्रेंक दस आने के बराबर होता है। स्मारक तीन साल में तैयार हुआ था। कहते हैं, टीले को बैलजियम और डचकी स्त्रियों ने बनाया है। इस स्मारक से कुछ दूर आस पास स्काच, जरमन, और अँगरेज़ों के स्मारक हैं। ये स्मारक उन अफ़सरों और सिपाहियों की याद में बने हैं जो उस युद्ध में मारे गये। इन सब स्मारकों को देखने के लिए सिवा फ़रासीसियों के, दूर दूर के लोग भी आते हैं। शेर का स्मारक फ़रासीसियों को काँटे सा खटकता है। उसके देखने से उन्हें अपने गौरव-नाश का स्मरण हो आता है। शेर का मुँह फ़्रांस की ओर है। वह दाँत निकाले खड़ा है। देखने में भयानक लगता है। फ़्रांस वाले उसका मुँह अपने देश की ओर नहीं चाहते। उसे वे अपना अपमान समझते हैं। वह दुश्मनी का चिह्न है। वह संयुक्त सेनाओं का विजयरूपी सिंह है। उसके बनने के बाद फ़रासीसियों ने उसे तोड़ डालने के अनेक प्रयत्न किये। कहते हैं, एक समय जब फ़रासीसी सेना अन्टवर्प की लड़ाई को वहाँ से जा रही थी तब उसके कुछ सिपाहियों ने ऊपर चढ़ कर सिंह की पूँछ तोड़ डाली जो कि पीछे से फिर जोड़ दी गई।

स्मारक के नीचे चार छः घर हैं, जहाँ खाने पीने का सामान मिलता है। एक मकान में लड़ाई के समय के कुछ टूटे फूटे अस्त्र, गोलियाँ इत्यादि रक्खी हैं। यह एक छोटा सा अजायबघर है। इस मकान के लोग लड़ाई का भी हाल बताया करते हैं। थोड़ी दूर चल कर एक पुरानी गढ़ी है। इसके सामने का द्वार बहुत चौड़ा है, जो हमारे यहाँ की गढ़ियों के फाटकों से मिलता है। इस गढ़ी के कुछ दूर आगे एक नालेनुमा खाई है, जो लड़ाई के समय रक्त से बह चली थी। इस खाई से कुछ दूर फ़रासीसी फ़ौजें खड़ी थीं और इस पार, अर्थात् गढ़ी के सामने, संयुक्त सेनायें थीं। गढ़ी ईंटों से बनी है और इन ईंटों पर फ़रासीसी सेना की गोलियों के निशान अभी तक दिखाई देते हैं। इस गढ़ी में अब कुछ किसान रहते हैं। बस सिवा इन चिह्नों के वाटरलू में और कुछ नहीं है। संग्राम-स्मारक बहुत दूर से दिखाई देता है। इसके बिना शायद ही कोई जान सके कि यह प्रसिद्ध स्थान कभी यूरोप का कुरुक्षेत्र रहा हो। हमारे साथी एक बूढ़े अँगरेज़ थे। इससे हमारा समय अच्छा व्यतीत हुआ। वाटरलू से हम दोनों ब्रसल्स लौटे। देर हो जाने से हम लोग लोकल ट्रेन द्वारा आये। गाड़ी छूटने में चन्द मिनिट रह गये थे। इससे हम दोनों एक तीसरे दरजे के डब्बे में जा घुसे। पर जो अनुभव हम लोगों को उस दिन हुआ वह सारी ज़िन्दगी न भूलेगा। बल्कि यह समझना चाहिए कि हम दोनों कुछ काल के लिए नरक में ठेल दिये गये थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डब्बे में मैले, गँवार, मनहूस मज़दूर भरे थे जो रोज़ सन्ध्या को काम से अपने अपने स्थानों को लौटा करते हैं। मैले कुचैले होने के सिवा उन्होंने सारे डब्बे को थूक से गन्दा कर रक्खा था। उस दिन पानी बरसा था। इससे वह डब्बा जूतों के कीचड़ से और भी मैला हो रहा था। सबके सब तम्बाकू पी रहे थे, जिसके धुंए से सम्पूर्ण डब्बा काला हो रहा था। ख़ूब हल्ला हो रहा था। कोई गाते थे, कोई ताश खेल रहे थे। हम लोगों की उन्हें ज़रा भी परवा न थी। हम लोग मन ही मन ख़ूब पछताये। ख़ैर जैसे तैसे वाटरलू स्टेशन आया। हम लोग जी बचा कर दूसरे दरजे में जा बैठे। उस दिन हमें मालूम हुआ कि इन बदतमीज़, मैले, राक्षसों की अपेक्षा अँगरेज़ी मज़दूर कई दर्जे साफ़ और तमीज़दार होते हैं। विलायत में हमें उनके साथ रेल में सफ़र करने का कई बार मौक़ा मिला। वे बहुत शान्त होते हैं। दूसरों का अदब करते हैं। गाड़ी में हल्ला गुल्ला नहीं करते।

छात्रों से नम्र निवेदन।

एकमात्र अवलम्ब देश के छात्रवृन्द, तुम शिक्षित हो।
देश-समाज-धर्म-रक्षा के महायज्ञ में दीक्षित हो॥
सादर कुछ कर्तव्य तुम्हारा तुमसे वर्णन करता हूँ।
हो सुपात्र, यह समझ, यथामति, नम्र निवेदन करता हूँ॥१॥
"शिष्टाचार"-विचार तुम्हारा पहला है कर्तव्य बड़ा।
इस पर जिसने ध्यान दिया, वह कभी नहीं बन कर बिगड़ा॥
शिक्षा का यह पहला फल है, होता है गौरव इससे।
उन्नति का सोपान यही है, बढ़ता है वैभव इससे॥ २॥
इसके बाद मान-मर्यादा अपने कुल की पहचानो।
आने दो न कलङ्क-कालिमा, जीवन-सार उसे जानो॥
फिर, समाज से अपना कैसा है सम्बन्ध-विचार करो।
जो कुछ हो कर्तव्य तुम्हारा, सो, उसके अनुसार करो॥ ३॥
जाति-समाज वसन-सम समझो जिसका एक सूत तुम हो।
मिल कर निर्मल रहना सीखो, जिससे घनीभूत तुम हो॥
एक सूत हट जाने से ही छिद्र जगह कर लेते हैं।
पाकर छिद्र, क्षुद्र कण्टक भी छिन्न भिन्न कर देते हैं॥ ४॥
"जातीयता" जान लो जीवन, उसे जाति भर में भर दो।
गौरव-गर्व जाति का रख कर "जाति"-सङ्गठन फिर कर दो॥
सामाजिकता का भी रक्खो ध्यान सर्वदा आपस में।
राष्ट्रीयता रक्त में मिल कर रहे तुम्हारी नस नस में॥ ५॥
जन्मभूमि जननी स्वदेश की हालत पर भी ग़ौर करो।
उसका सुख-दुख अपना समझो, स्वावलम्ब पर ध्यान धरो॥
पोथी पढ़ कर कोरे पण्डित बनने का सङ्कल्प न कर।
कारीगरी कला-कौशल भी सीखो, देखो अपना घर॥ ६॥
रातों को दीपक के आगे रट कर अपना कोर्स, अगर।
अन्त रहे टट्टू के टट्टू, कर न सके निज नाम अमर॥
तो शिक्षा से लाभ हुआ क्या? क्या उन्नति तुमने कर ली?
पशु की तरह चाकरी करके केवल उदर-दरी भर ली॥ ७॥
जो वकील बैरिस्टर ही बन, रक्त देश का चूस लिया।
अथवा बीमारों को सर्जन बन बहुधा मायूस किया॥
या कुछ प्रभुता भी पा करके अपना ही संहार किया।
अपनी तेज़ी दिखलाने को निज पर अत्याचार किया॥ ८॥
या जो मर कर द्रव्य कमाया सो फ़ैशन में फूक दिया।
देशी कारीगरी मिटा कर परदेशी सामान लिया॥
तो अच्छे हैं निरे निरक्षर जिनसे होती हानि नहीं।
बल्कि देश की रक्षा ही कुछ उनसे होती कहीं कहीं॥ ९॥
'अर्थ', मूल है 'काम'-सिद्धि का, उसे 'धर्म' से प्राप्त करो।
अर्थकरी विद्या की शिक्षा तुम घर घर में व्याप्त करो॥
'मोक्ष' मिलेगी जब त्रिवर्ग यह करगत कर लोगे प्यारे।
होगे अमर, यहीं पाओगे वैभव सुरपुर के सारे॥ १०॥
इतना ही कर्तव्य नहीं है, और अङ्ग भी इसके हैं।
सुगम, सहज, अपने हाथों में, सुन्दर साधन जिसके हैं॥
जब सब पढ़ने से अवसर ले, हो गृहस्थ, व्यापार करो।
तब तुम साथ साथ ही उसके औरों का उपकार करो॥ ११॥
स्वयं ज्ञान-सञ्चय करने से कभी न चूको, ध्यान रहे।
सदा समाज, स्वदेश, जाति की बातों का भी ज्ञान रहे॥
जैसे तुम हो शिक्षित वैसे औरों को तैयार करो।
जो कुछ पाओ ज्ञान, वही साहित्यकोष में भरो-भरो॥ १२॥
अहा, "नागरी"-रूप हमारी माता को सन्तुष्ट करो।
सुकवि सुलेखक सकल कला के होकर, उसको पुष्ट करो।
जगत्पिता के गुणगानों से पहले हृदय-शुद्धि कर लो।
फिर गौरव-गरिमा से मण्डित प्रतिभा-प्रखर बुद्धि कर लो॥ १३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा प्रजा समान मान कर, दोनों के अनुकूल रहो।
राजभक्ति से देश-भलाई करो, न्याय का नाश न हो॥
खुल से नहीं, किन्तु कामों से, राजभक्ति तुम दिखलाओ।
जा-प्रेम भी बात बात में यथाशक्ति तुम सिखलाओ॥ १४॥

स्वावलम्ब-देशानुराग-गुण अँगरेज़ों से प्राप्त करो।
आडम्बर-अनुकरण वृथा है, विलासिता से सदा डरो॥
वैर, विरोध, विवाद छोड़ कर सबल, सरल, साहसी बनो।
भिक्षा छोड़ बढ़ाओ शिक्षा, कलह-कलुष में नहीं सनो॥ १५॥

एक बार इन ग्रामीणों के कष्टों पर भी करो नज़र।
करते जो उत्पन्न अन्न को, वे सब कैसे करें गुज़र?
पड़े झोंपड़ों में सड़ते हैं, कपड़े भी हैं पास नहीं।
ऋण से दबते ही जाते हैं, छुटकारे की आस नहीं॥ १६॥

इनसे मिलने जुलने में तुम कभी न कुछ सङ्कोच करो।
समय समय पर मिल कर, इनमें उन्नति की लालसा भरो॥
हम क्या थे, क्या हुए, और क्या होनेवाला है हम पर।
क्या कर्तव्य हमारा है, यह अलोचना करो मिल कर॥ १७॥

इनका सभ्य-समाजमात्र से कुछ भी है सम्बन्ध नहीं।
इनको दुर्गति से उबारने का कुछ हुआ प्रबन्ध नहीं॥
इनको आप बिना अपनाये, नहीं अग्रसर हो सकते।
इनको बिना जगाये हम तुम कभी न सुख से सो सकते॥ १८॥

ऐ महलों में बड़े चैन से आठ पहर रहने वालो*।
टूटे फूटे ग्राम्य घरों को शान्ति-कुटीर बना डालो॥॥
ग्राम्य गृहस्थों के कुटुम्ब में नव जीवन सञ्चार करो।
खेती के नव नियम सिखा कर कारीगरी-प्रचार करो॥ १९॥

जन्मभूमि जननी-भाषा को तुम लोगों की आशा है।
इन्हें न भूलो, हर हालत में, यही यहाँ अभिलाषा है॥
इनकी सेवा में तन, मन, धन, जीवन, सब अर्पण कर दो।
लक्ष्मी, सरस्वती, दोनों को तुम भारत भर में भर दो॥ २०॥

अपने देश और भाषा पर जो अनुराग न दिखलाता।
इन दोनों को दुखी देख कर, जिसका हृदय न भर आता॥
वह कुपुत्र पाषाण-हृदय है, नहीं पातकी उसके सम।
उसके विद्या-वैभव को है धिक, धिक, अधिक कहें क्या हम॥ २१॥

केवल पाठ-परीक्षा देना, निज कर्तव्य न तुम जानो।
अथवा तुच्छ चाकरी करके जीवन सार्थक मत मानो॥
भारत की उन्नति, अवनति भी, मित्रो, तुम पर निर्भर है।
जीवन-मरण-समस्या का भी, आज फ़ैसला तुम पर है॥ २२॥

रूपनारायण पाण्डेय (कमलाकर)

* यह सम्बोधन राजा, महाराजों के और ज़मींदार, रईसों के शिक्षित लड़कों के लिए है।

अमेरिका के लुइस्टन नगर का फलोपवन।

अमेरिका की संयुक्त रियासतों के निवासी बड़े उद्योगी हैं। उनके उद्योग ही के कारण अमेरिका दिन पर दिन उन्नति कर रहा है। विद्या और उद्योग का जहाँ सङ्गम होता है वहीं लक्ष्मी भी चिरकाल तक वास करती है। थोड़े ही समय में मैंने अमेरिकावालों के उद्योग के बहुत से उदाहरण देखे हैं, जिन में से लुइस्टन का फलोपवन भी है। आज उसी उपवन का हाल पाठकों को सुनाता हूँ।

पहाड़ी ज़मीन पर खेती करने में बहुत रुपया ख़र्च होता है। भारत में तो रुपया लगाने पर भी पहाड़ी ज़मीन से बहुत ही थोड़ा लाभ होता है। परन्तु अमेरिका में बहुत से आदमी ऐसे मौजूद हैं जो मज़दूरी ज़ियादह देकर भी पहाड़ी ज़मीन ही की बदौलत करोड़पति हो गये हैं। जिस फलोपवन का मैं वर्णन कर रहा हूँ उसकी ज़मीन भी पहाड़ी है। इस उपवन में दो हज़ार फुट तक ऊँची और नीची ज़मीन पाई जाती है। पहले वहाँ घास के सिवा कुछ न होता था। कुछ वर्ष हुए किसानों ने वहाँ गेहूँ बोना शुरू किया। इस प्रान्त में साल भर में केवल तेरह चौदह इञ्च वर्षा होती है। वर्षा की कमी के कारण किसानों को गेहूँ की फ़सल से फ़ायदा न हुआ। बहुत से किसान खेत छोड़ छोड़ कर अन्य प्रान्तों को भाग गये। इसके बाद यहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ धनवान् लोगों का चित्त इस ओर आकर्षित हुआ। उन्होंने इस पहाड़ी भूमि पर फलोपवन बनाने की इच्छा से "लुइस्टन आरचर्ड कम्पनी" (Lewiston Orchard Company) की स्थापना की।

अमेरिका की संयुक्त रियासतों की आयड़ाहो रियासत (Idaho State) में लुइस्टन नाम का एक नगर सर्प-नदी (Snake River) पर बसा हुआ है। यह फलोपवन लुइस्टन नगर से छही सात मील दूर है। इसीलिए इसका नाम 'लुइस्टन—फलोपवन" है। कम्पनी ने इस भूमि में परोपकार के लिए फलोपवन नहीं बनाया। तेरह चौदह मील दूर पहाड़ी नदी से, उपवन के लिए पानी लाकर, लाखों रुपया ख़र्च करने में कम्पनी का मूल उद्देश यह था कि वह उससे यथासमय ख़ूब लाभ उठावेगी। कम्पनी का उद्देश सफल भी हुआ। जिस भूमि से किसान लोग कुछ भी लाभ न उठा सके थे उसी भूमि से कम्पनी इस समय बेहद लाभ उठा रही है। कम्पनी अभी और भी अधिक लाभ उठाने का यत्न कर रही है। वह इस भूमि पर सब से अच्छे, सुन्दर और सुखदायक बाग़ीचे लगाने की इच्छा रखती है।

यहाँ वाले उसी काम को हाथ में लेते हैं जिस से वे लाभ होना निश्चित समझते हैं। भारत और अमेरिका में आकाश-पाताल का अन्तर है। अधिकांश भारतवासी सन्तोषप्रेमी हैं। वे विशेष करके आध्यात्मिक विचारों ही में लीन रहते हैं। वे पैसे की बहुत कम परवा करते हैं। परन्तु डालर (रुपया) ही अमेरिका वालों का आराध्य देव है। भारतवासी पैसे से दूर भागते हैं; अमेरिकावाले पैसे के पीछे पीछे दौड़ते हैं। अस्तु।

कम्पनी के संस्थापक लोग इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि बिना विज्ञान का सहारा लिये ऐसी भूमि से पैसा कमाना बड़ा कठिन काम है। इस लिए उन्होंने सबसे पहले देश के कृषि-शास्त्र-विशारदों से उस भूमि को उपजाऊ बनाने की रीति पूँछी। उन्होंने अच्छा वेतन देकर देश के एक बड़े भारी कृषि-शास्त्र-वेत्ता को काम करने के लि नियत कर दिया। तदन्तर उन्होंने वाशिङ्ग महाविद्यालय के प्रोफ़ेसर जार्ज सिवियरेन्स आरेगन के प्रसिद्ध कृषि-महाविद्यालय के प्रोफ़ेस कोल को बुला कर उनसे उस भूमि की परी करवाई। दोनों अध्यापकों ने परीक्षा करके को फलोत्पादन के योग्य बताया। कम्पनी ने प्र पक कोल को नौकर रख लिया। उन्होंने उपव सेव, आड़ू आदि फलों के बहुत से छोटे छ बाग़ीचे लगाये। थोड़े ही दिनों में कम्पनी ने वा ङ्गटन-महाविद्यालय के फल-शास्त्र-विभाग मुख्याध्यापक थार्नबर साहब को, पन्द्रह हज़ रुपया सालाना तनख़्वाह पर, अपना प्रधान फ़ शास्त्रज्ञ बनाया। इनके अतिरिक्त कितने ही इञ्ज नियर, सर्वेयर आदि भी नियत किये गये।

इस समय कम्पनी का सब काम वैज्ञानि रीति से होता है। कम्पनी का आफ़िस लुइस्ट नगर की एक बड़ी भारी इमारत में है। आज पाँच सात वर्ष पहले जहाँ निरा जङ्गल था इस समय सुन्दर सुन्दर फलदार बाग़ीचे देख में आते हैं। यहाँ उन्नति होते देर नहीं लगती भारत की सी दशा यहाँ नहीं। यहाँ उन्नति चं की चाल नहीं चलती।

कृषि-शास्त्र के तत्त्वों की दृष्टि से पहले अच्छा स्थ और अच्छी भूमि चुननी पड़ती है। सब भूमि एक सी नहीं होती। पृष्ठ-भूमि (Surface Soil) और गर्भ-भूमि (Sub-Soil) में अन्तर होता है। वर्षा, प्रकाश, उष्णता, भूगर्भ-रचना आदि पर खेती का काम अवलम्बित रहता है। आबपाशी से खेती करने योग्य भूमि और साधारण भूमि में भी अन्तर होता है। अनाज पैदा करने वाली भूमि भी वैसी ही नहीं होती जैसी फल पैदा करनेवाली भूमि होती है। लुइस्टन कम्पनी के कर्म्मचारियों ने इन सब बातों पर अच्छी तरह विचार करके इस पहाड़ी भूमि पर फलोपवन लगाया है। उपवन की भूमि में पानी सञ्चित रखने की अच्छी शक्ति है। इस

Indian Press, Allahabad.
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

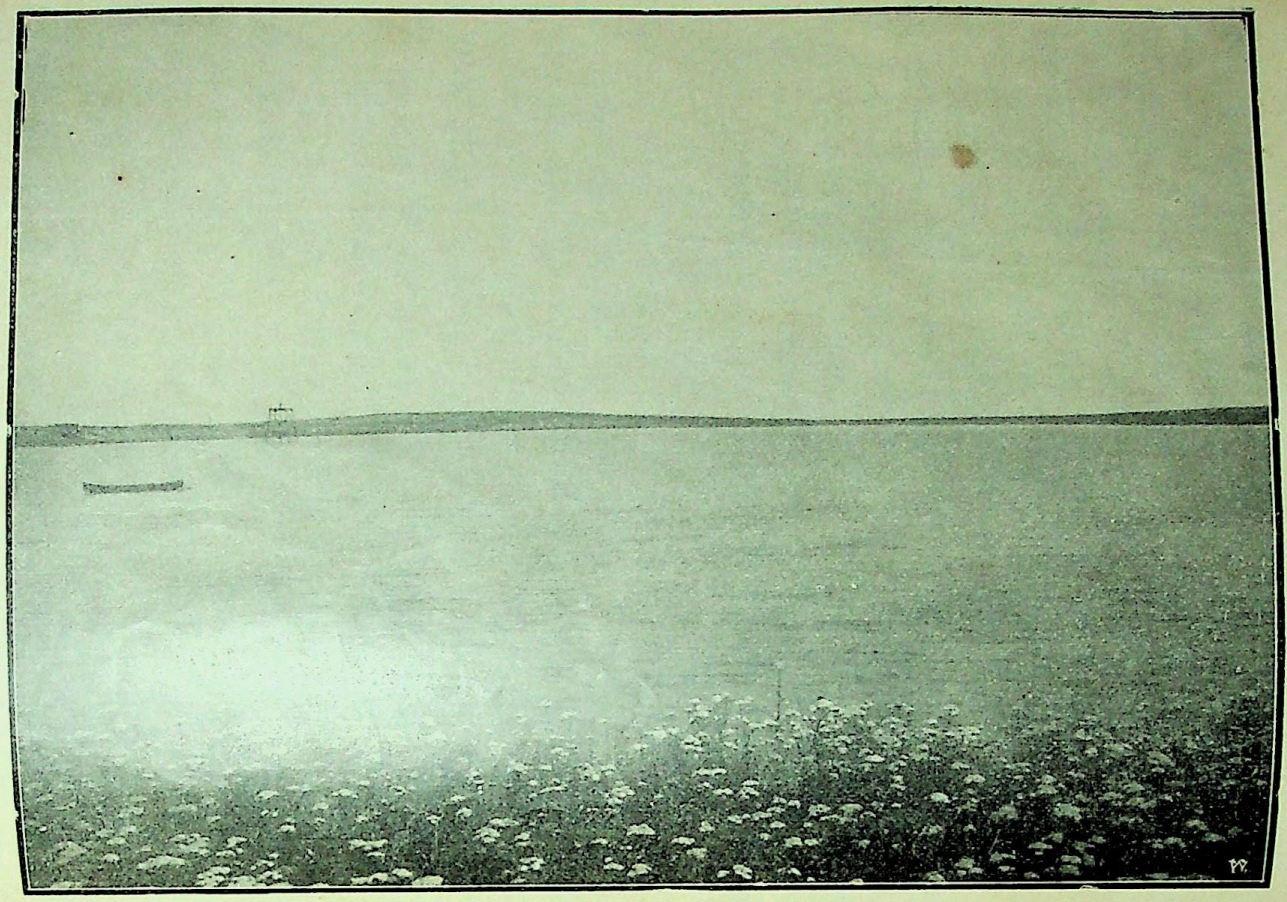

लुइस्टन के फलोपवन की आबपाशी के लिए सञ्चित जलाशय।

Indian Press, Allahabad.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार की भूमि फलों की कृषि के लिए बहुत उपयोगिनी होती है। पर मूर्ख किसान ऐसी भूमि से कुछ भी लाभ नहीं उठा सके। यथार्थ में उन्नति का परम शत्रु अज्ञान ही है।

यहाँ लोगों को फलोपवन दिखाने के लिए मोटर गाड़ियाँ लुइस्टन नगर से फलोपवन तक दौड़ा करती हैं। दूर ही से उपवन का बड़ा भारी फाटक दिखाई पड़ता है। भीतर पहुँचतेही मनुष्य आश्चर्य्य से चकित हो जाता है। उपवन में छोटे छोटे अनेक बाग़ीचे हैं। इन सब बाग़ीचों का बाहरी और भीतरी दृश्य बिलकुल एक सा है। ऐसा मालूम होता है मानो सब बाग़ीचे साँचे में ढाल कर बनाये गये हैं। प्रत्येक बाग़ीचा बाड़ी (Fencing) से घिरा है। रास्ते चौड़े और सीधे हैं। उनके दोनों तरफ़ छायादार वृक्ष खड़े हुए हैं। जगह जगह पर पानी के नल लगे हुए हैं। इन्हीं नलों से बाग़ीचों को पानी दिया जाता है। बाग़ीचे और मार्ग के वृक्ष एक दूसरे से समान अन्तर पर हैं। ऊँचाई भी सब वृक्षों की एक सी है। इस प्रकार के एक-समान सुन्दर और ऊँचे वृक्षों से घिरे हुए रास्तों में चलने से बहुधा दिशाभ्रम हो जाता है। उपवन के बाग़ीचों में आड़ू, नाशपाती, अङ्गूर, ख़रबूज़े, तरबूज़, फूल-गोभी और गोभी आदि चीज़ें होती ही हैं। सेब बहुत अधिकता से होता है। सेब विशेष करके सर्द देश में ही होता है; परन्तु अधिक सर्दी भी उसके लिए अहितकर है। उपवन-भूमि में न अधिक गरमी पड़ती है और न अधिक सर्दी। साल में दिसम्बर से लेकर जून तक तेरह चौदह इञ्च पानी बरस जाता है। सर्दी के दिनों में आकाश मेघाच्छन्न रहता है। इस प्रकार का मौसम सेब के लिए बहुत ही उपयोगी है। इस उपवन में जितने फल होते हैं सब का रङ्ग और स्वाद अच्छा होता है। यहाँ भूमि जोतने और बोने की प्रणाली भी भारत से भिन्न है। वसन्त के आरम्भ में चक्रहल (Disk Plough) से और ग्रीष्म में साधारण हल से भूमि जोती जाती है। इस प्रकार जोतने से भूमि में नमी बहुत दिनों तक बनी रहती है। अतएव आबपाशी की विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती। घास-फूस वृक्षों के आहार और जल को चूस लेते हैं। वे भी भूमि के इस प्रकार जोते जाने से नष्ट हो जाते हैं। प्रत्येक बाग़ीचा दस दस बारह बारह एकड़ भूमि में है। ये इसलिए बनाये गये हैं जिसमें थोड़ी पूँजी के भी व्यापारी इनके फल मोल ले सकें। प्रत्येक बाग़ीचे में एक एक मकान भी है, जिस में उसका ख़रीदार रहता है। इन मकानों में बिजली की रोशनी होती है और टेलीफोन तथा पानी के नल आदि का भी प्रबन्ध रहता है। इन सुव्यवस्थाओं ही के कारण उपवन के सौन्दर्य्य और मूल्य दोनों बढ़ चढ़ रहे हैं।

भारत में वृक्षों की उँचाई आदि की समानता का कोई ख़याल नहीं रक्खा जाता। वृक्षों के क़लम करने की क्रिया भी वहाँ बहुत कम लोग जानते हैं। इसी अज्ञान के कारण वहाँ के बहुत से बाग़ बड़ी हीनदशा में हैं। लुइस्टन-फलोपवन में वृक्षों की बड़ी सेवा की जाती है। यदि किसी पेड़ की जड़ या शाखा सड़ जाती है तो, भविष्यत् में हानि से बचाने के लिए, उसके सड़े हुए अवयव काट डाले जाते हैं। यों भी शाखाओं को काटते रहते हैं, जिससे बहुत लाभ होता है। काटने छाँटने से वृक्ष ख़ूब फैलता है, उसमें नई नई शाखायें निकलती हैं; उसका आकार सुन्दर हो जाता है; और उसमें फिर फल भी ख़ूब लगते हैं। शाखाओं को न काटने से हानियाँ भी बहुत होती हैं। कमज़ोर शाखायें फल के बोझ से टूट पड़ती हैं। पेड़ में डालियाँ भी कम होती हैं। इस कारण वह अधिक ऊँचा हो जाता है, जिससे उसके फल तोड़ना और उस पर औषधि-प्रयोग करना कठिन हो जाता है। शाखायें न काटने से वृक्ष उचित रीति से अपने खाद्य द्रव्य को भी नहीं ग्रहण कर सकता।

इस फलोपवन में जितने पेड़ लगाये जाते हैं बढ़ने पर पहले ही वर्ष उनका ऊपरी भाग काट डाला जाता है। इससे यह लाभ होता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृक्ष छोटे और फैले हुए होते हैं। दूसरे वर्ष फिर उनकी शाखायें काट दी जाती हैं। जिस से वे पुष्ट और दीर्घायु होते हैं। इस क्रिया का इतना अच्छा परिणाम हुआ है कि पाँच ही वर्ष में वृक्ष यथेष्ट ऊँचे और पुष्ट हो जाते हैं और कितने ही तो फल देने लग जाते हैं। शाखाओं के क़लम करने का काम कृषि-कालेज के ग्रेजुएट करते हैं। उन्हें अच्छा वेतन मिलता है। मैंने भी इस फलोपवन में कई महीने यही काम किया है।

वृक्ष भी आदमियों, पशुओं और पक्षियों की तरह बीमार हुआ करते हैं। यदि वृक्षों की रक्षा प्रारम्भ ही से न की जाय तो कीड़े लग जाना, पत्तों का पीले हो कर गिर पड़ना, फलों का गल गल कर गिर जाना, पेड़ से रस बहना, गोंद की बीमारी हो जाना और छाल का ख़राब हो जाना आदि अनेक रोग हो जाते हैं। भारत में तो वृक्षों की बीमारियों पर कोई ध्यान ही नहीं देता; परन्तु इस देश में लोग इस बात का बड़ा ख़याल रखते हैं। मनुष्य-रोग-चिकित्सा-शास्त्र की तरह वृक्षरोग-चिकित्सा-शास्त्र भी एक विद्या है। यहाँ वालों ने इस विषय का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया है। इस फलोपवन में एक वृक्ष-रोग-चिकित्सक भी है। वह प्रति दिन उपवन के सब वृक्षों को देखता है। किसी भी वृक्ष में बीमारी के चिह्न प्रकट होते ही वह उसको दूर करने का उपाय करता है। यदि किसी वृक्ष में कोई संक्रामक रोग पैदा हो जाता है तो वह उसको बिलकुल ही जला देता है। इससे अन्य वृक्ष उस रोग से बच जाते हैं। औषधि-सिञ्चन द्वारा भी वृक्षों के रोग दूर किये जाते हैं। इस कार्य्य-दक्षता का परिणाम यह हुआ है कि दस हज़ार एकड़ के इस सुविस्तृत फलोपवन में कोई भी वृक्ष रोगी नहीं दिखाई पड़ता।

फलोपवन कम्पनी ने जो कुछ काम किया है वह केवल धन कमाने के लिए किया है। थोड़े ही वर्ष पहले जिस भूमि से लाभ होना तो दूर रहा उलटी हानि होती थी, आज उसी से हज़ारों रुपये फ़ी एकड़ मुनाफ़ा होता है। कम्पनी को अपने कर्मचारियों के सुभीते का बहुत ख़याल है। उसने उनके लड़कों लड़कियों की शिक्षा का सुप्रबन्ध कर दिया है। वन से पाठशाला छः मील दूर है। इस लिए ने कितने ही ताँगे बनवा दिये हैं, जो उपवन के और लड़कियों को पाठशाला ले जाते हैं और वहाँ आते हैं। कम्पनी ने फलों की कृषि-विद्या की के लिए विद्यालय भी खोला है। उसमें फलों कृषि-विद्या की शिक्षा मुफ़्त मिलती है। स्त्रियों शिक्षा का भी प्रबन्ध है। उन्हें गृह-प्रबन्ध सिखाया जाता है। जो लोग उपवन में नहीं वे भी फ़ीस दे कर इस विद्यालय में शिक्षा पा सकते हैं। शिक्षा केवल मौखिक या पुस्त द्वारा ही नहीं दी जाती; सबको अपने अपने हाथ काम करना पड़ता है। विद्यालय केवल जाड़े के में खुला रहता है, क्योंकि इन्हीं दिनों में किसानों अपने काम से कुछ छुट्टी मिलती है।

इस प्रकार की कम्पनी से स्वार्थ और परा दोनों की सिद्धि होती है। भारतवर्ष में यदि कम्पनियाँ स्थापित की जायँ तो बहुत लाभ हो।

पाण्डुरङ्ग खानखोजे
(अमेरिका

बड़ादा का राजकीय पुस्तकालय।

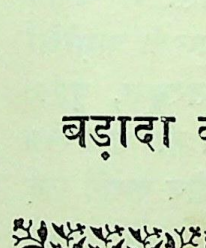

महाराजा गायकवाड़ बड़ेही विद्यानुरा हैं। वे योरप, अमरीका जापान कई बार हो आये हैं। वे केवल सैरही करने के लिए गये, किन्तु वहाँ जा कर उन्होंने देशों की शिक्षा-सम्बन्धिनी विधि संस्थाओं को भी विचार-पूर्वक देखा; वहाँ की शि प्रणाली का भी मनन किया; और, इस प्रकार, अप यात्राओं से अच्छा अनुभव प्राप्त किया। वे स्वयं अच्छे विद्वान् हैं और सदा विद्याप्रचार के लिए यत्न करते रहते हैं। कुछ वर्ष हुए उन्होंने अपने रा में अनिवार्य्य शिक्षा दी जाने की आज्ञा दी थी। लो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को महाराज के इस काम में सफलता होने में संदेह था; परन्तु आज इस बात को देख कर आश्चय होता है कि बड़ोदा-राज्य शिक्षा में कितना आगे बढ़ा हुआ है। बड़ोदा-राज्य के विद्या-प्रचार का इस बात से अनुमान किया जा सकता है कि १९०६ से भी पहले वहाँ, देहात में, लगभग एक सौ पुस्तकालय और समाचार-पत्र-वाचनालय प्रजा की ओर से थे।

१९०६ ईसवी में महाराज ने विद्याप्रचार की एक और व्यवस्था की। राज्य के शिक्षाविभाग को, देहात में, राज्य की ओर से पुस्तकालय और समाचार-पत्र-वाचनालय खोलने की आज्ञा हुई। राजकोष से इस काम के लिए तीस हज़ार रुपया सालाना की मंज़ूरी हुई। जिस गाँव के निवासी समाचार-पत्र मँगाने के लिए चौबीस रुपया वार्षिक एकत्र कर लेते, उन्हें उतना ही रुपया उस काम के लिए राजकोष से मिलने लगता और जो २५) रुपया वार्षिक पुस्तकालय के लिए एकत्र कर लेते, उन्हें ढाई सौ रुपया वार्षिक उस काम के लिए मिलता। राज्य की इस सहायता से पुस्तकालयों की संख्या बढ़ गई। गत वर्ष राज्य भर में लगभग दो सौ से अधिक पुस्तकालय थे। केवल बड़ोदा नगर ही में कई अच्छे अच्छे पुस्तकालय हैं। लक्ष्मीविलास महल का पुस्तकालय नगर के सब पुस्तकालयों से बड़ा है। उसमें लगभग इक्कीस हज़ार बहुमूल्य और दुष्प्राप्य पुस्तकें हैं। यह पुस्तकालय ख़ास महाराज का है। महाराज के भाई श्रीमान् सम्पतराव के "श्रीसयाजी-पुस्तकालय" में लगभग सोलह हज़ार पुस्तकें हैं। बड़ोदा-कालेज का पुस्तकालय भी बड़ा है। स्त्रियों के लिए भी एक पुस्तकालय है। राज्य के भिन्न भिन्न विभागों के दफ़्तरों में भी बहुत सी पुस्तकें संगृहीत हैं। विट्ठल-मन्दिर में लगभग दो हज़ार संस्कृत-पुस्तकें हैं। राज्य की ओर से सर्व-साधारण के लिए जो पुस्तकालय है उसमें लगभग दस हज़ार पुस्तकें हैं। इस प्रकार अकेले बड़ोदा नगर के पुस्तकालयों में कोई डेढ़ लाख पुस्तकें हैं। बड़ोदा नगर के अतिरिक्त बाहर, राज्य में भी चालीस बड़े बड़े पुस्तकालय हैं, जिनमें सब मिला कर लगभग चालीस हज़ार पुस्तकें हैं। गाँवों में १९१ पुस्तकालय हैं, जिन में कोई पच्चीस हज़ार पुस्तकें हैं। माडर्न-रिव्यू में इस विषय पर एक सुन्दर लेख, अभी हाल में प्रकाशित हुआ है। उसी के आधार पर यह छोटा सा लेख लिखा जा रहा है।

कोई दो वर्ष हुए महाराजा गायकवाड़ अमेरिका गये थे। वहाँ से वे मिस्टर बोर्डन नाम के एक साहब को अपने साथ ले आये। बोर्डन साहब पुस्तकालय-सम्बन्धी काम के अच्छे ज्ञाता हैं। बड़ोदा-राज्य के सब पुस्तकालयों के निरीक्षण का काम उन्हीं को दिया गया है। उन्होंने राज्य के सब पुस्तकालयों की दशा पर विचार कर के बड़ोदा नगर में एक बड़ा भारी राजकीय पुस्तकालय खोलने का प्रस्ताव किया, जिसे महाराज ने स्वीकार कर लिया। यह पुस्तकालय इस देश में अपने ढंग का अद्वितीय होगा। राज्य की ओर से पुस्तकालय का एक महकमाही अलग खोला गया है। उसके अधिकारी राजधानी के राजकीय पुस्तकालय का निरीक्षण करेंगे। पुस्तकालय खोलने और उसे अच्छी तरह चलाने का काम विद्यार्थियों को सिखलावेंगे, गाँव गाँव में पुस्तकालय खोलने का प्रबन्ध करेंगे, लोगों की रुचि पुस्तकावलोकन की ओर प्रवृत्त करेंगे—इत्यादि।

यह सब काम दस वर्ष में अच्छी तरह चल निकलेगा। इसमें कोई अठारह लाख रुपया ख़र्च होगा। राजकीय पुस्तकालय की इमारत लगभग तीन चार लाख रुपये में, कला-भवन और लक्ष्मी-विलास महल के सामने, बनेगी। जब तक पुस्तकालय की इमारत नहीं बनती तब तक लक्ष्मी-विलास में ही पुस्तकालय सम्बन्धी सब काम होता रहेगा।

राजकीय पुस्तकालय की इमारत का नक़शा तैयार हो गया है। वह षट्कोणाकार दो-मंज़िला इमारत होगी। हर कोने में एक बड़ा कमरा रहेगा और उसके ऊपर एक मीनार होगा। फाटक से चल कर बायें हाथ पर एक बड़ा षट्-कोण कमरा बनेगा, जो मुख्य पाठालय का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम देगा। इस कमरे का व्यास साठ फीट होगा। इसके ऊपर जो कमरा होगा उस में स्त्रियों के पढ़ने का प्रबन्ध किया जायगा। इन दोनों कमरों में लगभग छब्बीस हज़ार ऐसी पुस्तकें रहेंगी जो सर्व-साधारण के काम की होंगी। फाटक की दाहनी ओर व्याख्यान-भवन होगा, जो आकार में मुख्य पाठालय के बराबर होगा। उसके ऊपर का कमरा स्त्रियों के लिए होगा। इन कमरों में सर्व-साधारण की ज्ञान-वृद्धि के लिए व्याख्यान हुआ करेंगे।

मुख्य पाठालय के पीछे छापाख़ाना होगा। उसके ऊपर वाले कमरे में पुस्तकों की जिल्दबन्दी हुआ करेगी। उसके आगे जो कमरा होगा वहाँ से पुस्तकालय के सदस्य पुस्तकें ले जा सकेंगे। उसके ऊपर के कमरे में महाराज के भाई श्रीमान् सम्पतराव गायकवाड़ द्वारा एकत्र की गई देशी भाषाओं की पुस्तकें रहेंगी। इन दोनों कमरों में बीस हज़ार पुस्तकें रहेंगी। आगे बढ़ कर एक बड़ा लम्बा चतुष्कोण कमरा मिलेगा, जिसमें इतिहास और उपन्यास की लगभग सत्तर हज़ार पुस्तकें होंगी। ये पुस्तकें खुली हुई अलमारियों में रक्खी रहा करेंगी। इसके बाद इमारत की बाईं तरफ़ का अन्तिम कमरा मिलेगा। इसमें लगभग आठ हज़ार पुस्तकें रक्खी जायँगी। इस कमरे में पुस्तकालय का काम सिखाने की पाठशाला होगी। ६ मार्च सन् १९११ से इस पाठशाला का काम आरम्भ भी हो गया है। छात्रों में सात पुरुष और तीन स्त्रियाँ हैं। पुरुषों में एक एम० ए०, तीन बी० ए० और तीन एफ० ए० हैं। दो स्त्रियाँ ईसाई हैं, एक हिन्दू। इन सबको राज्य की ओर से मासिक छात्र-वृत्ति मिलती है। इनकी शिक्षा एक वर्ष में समाप्त होगी। उसके बाद इन्हें राज्य के पुस्तकालय-विभाग में उचित पद मिलेगा।

इमारत के पिछले भाग के बीच में, पूर्वोक्त पाठशाला से लगा हुआ, बच्चों के पुस्तकालय का कमरा होगा। यहाँ ऐसी रंग बिरंगी सुन्दर सचित्र पुस्तकों का भाण्डार होगा जिन्हें बच्चे बड़े चाव से पढ़ें। अमेरिका में बच्चों के लिए इस प्रकार के बहुत से पुस्तकालय हैं; परन्तु भारत में अभी तक बच्चों के लिए ऐसी पुस्तकों का अभाव है। बड़ोदा-राज्य में इस त्रुटि को दूर करने का प्रयत्न किया जा रहा है। [illegible] तक के पुस्तकालयों में कुछ पुस्तकें ऐसी अवश्य रक्खी जायँगी जिनको बच्चे रुचि से पढ़ें। अँगरेज़ी और [illegible] पाश्चात्य भाषाओं में इस विषय की अनेक पुस्तकें हैं। सम्भव है, राज्य का पुस्तकालय-विभाग इस [illegible] की कुछ पुस्तकें स्वयं भी प्रकाशित करे।

बच्चों के पुस्तकालय के ऊपर का कमरा [illegible] महत्त्व का होगा। यह कमरा उन लोगों के लिए [illegible] जो शान्तिपूर्वक पुस्तकालय में किसी ख़ास विषय [illegible] अच्छी तरह मनन करना चाहेंगे। यहाँ पर उन्हें आवश्यकता के अनुसार सब बातों की व्यवस्था [illegible] दी जायगी और वे सुख-पूर्वक अपना अभीष्ट ग्रन्थ अध्ययन कर सकेंगे।

अध्ययन-शाला से लगा हुआ, इमारत के दाहिने कोने में, जो कमरा होगा उसके ऊपरी भाग में पुस्तकालय के महकमे का दफ़्तर होगा और [illegible] के भाग में नई पुस्तकें जाँचने और उन्हें यथास्थान पहुँचाने का काम होगा।

आगे बढ़ कर जो लम्बा चौकोन कमरा, [illegible] हाथ वाले चौकोन कमरे के सामने मिलेगा। उसमें भी शिल्प, कला-कौशल और विज्ञानसम्बन्धी सत्तर हज़ार पुस्तकें होंगी। इस कमरे से मिला हुआ जो षट्कोण कमरा होगा उसके नीचे [illegible] भाग में बैठ कर लोग इन पुस्तकों को पढ़ेंगे और यहीं से पुस्तकालय के सदस्य पुस्तकें घर ले जाने के लिए पा सकेंगे। इस कमरे के ऊपरी भाग में समाजशास्त्र से सम्बन्ध रखने वाली पुस्तकें रक्खी जायँगी। इन दोनों कमरों में सब मिला कर लगभग बीस हज़ार पुस्तकें होंगी।

अब इस कमरे और व्याख्यान-भवन के बीच में एक कमरा और रह गया। उसके नीचे एक कमरे में प्रबन्धकारिणी समिति की बैठक हुआ करेगी और दूसरे में सर्व-साधारण के अवलोकनार्थ साहित्य-सम्बन्धी बड़े महत्त्व के ग्रन्थों का संग्रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा। पुस्तकालय के इस भाग में भी लगभग दस हज़ार पुस्तकें होंगी।

भवन का मध्य-भाग खुला हुआ रहेगा। उसका व्यास कोई सौ फ़ीट होगा। उसमें एक उद्यान लगाया जायगा। उद्यान के बीच में एक सुन्दर फ़व्वारा रहेगा।

इस समय पुस्तकालय में कोई पच्चीस हज़ार पुस्तकें हैं, जिनमें से चार हज़ार तो अभी हाल में मँगाई गई हैं। गत वर्ष पुस्तकें ख़रीदने के लिए तेरह हज़ार और समाचार-पत्र ख़रीदने के लिए पन्द्रह सौ रुपया राजकोश से दिया गया है। पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या तो बहुत बढ़ जाती—बड़ोदा-नगर के कितने ही पुस्तकालय अपनी पुस्तकें देने को तैयार हैं—परन्तु लक्ष्मी-विलास-भवन में, जहाँ इस समय पुस्तकालय है, उनको रखने के लिए यथेष्ट स्थान ही नहीं है।

पुस्तकालय का प्रबन्ध एक बिलकुल ही नई प्रणाली के अनुसार किया जाता है। अन्य पुस्तकालयों में पुस्तकों की सूची पुस्तकाकार होती है। परन्तु इस में सदा नई नई पुस्तकें आया करेंगी। इस कारण इस प्रकार की सूची यहाँ एक महीने भी ठीक ठीक काम न दे सकेगी। यहाँ काग़ज़ के सादे कार्डों पर पुस्तकों के नाम लिखे जायँगे। वही अलमारियों में रक्खे रहेंगे। पुस्तकें खुली हुई अलमारियों में रहेंगी। हर आदमी उन्हें देख सकेगा। पुस्तकालय का जो सदस्य कोई पुस्तक घर ले जाना चाहेगा, उसे अपने नाम का एक टिकट मिलेगा, जिसे वह अपने पास उस समय तक रक्खेगा जब तक वह अपनी इच्छित पुस्तक न पा जाय। पुस्तकों के ऊपर काग़ज़ चढ़ा रहेगा। उस काग़ज़ पर एक टिकट होगा, जिस पर पुस्तक का नाम और नम्बर लिखा रहेगा। टिकट पर सदस्य अपने हस्ताक्षर कर के उसे अपने पूर्व टिकट के साथ पुस्तकालय के कर्म्मचारी को दे देगा और किताब ले लेगा। सदस्य तो अब छुट्टी पा जायगा; कर्म्मचारी को पुस्तक के विषय में जो कुछ लिखना पढ़ना होगा उन्हीं टिकटों पर सन्ध्या-समय वह लिख लेगा; अलग किसी रजिस्टर की आवश्यकता न होगी। इस रीति से हज़ारों आदमी कुछ ही मिनटों में पुस्तकें पा सकेंगे।

राजकीय पुस्तकालय राज्य के अन्य सब पुस्तकालयों की भी यथोचित सहायता करेगा। पचीस रुपये देने से गाँवों के पुस्तकालयों को वहाँ से एक सौ रुपये के मूल्य की पुस्तकें मिला करेंगी। यदि क़स्बे वाले अपने यहाँ पुस्तकालय के लिए तीन सौ और ज़िले वाले सात सौ रुपया वार्षिक जमा कर लिया करेंगे तो उन्हें राजकीय पुस्तकालय से उतने ही रुपये वार्षिक मिला करेंगे। समय समय पर राजकीय पुस्तकालय से कुछ ऐसी पुस्तकें अन्य पुस्तकालयों को भेजी जाया करेंगी जिनके पढ़ने से सर्व-साधारण को विशेष लाभ पहुँचे। यह सहायता उन्हीं पुस्तकालयों को दी जायगी जिनसे लोग बिना जाति-पाँति और बिना रङ्ग-रूप के भेद के लाभ उठा सकें।

बड़ोदा-राज्य को विद्याप्रचार के काम में इस प्रकार अग्रसर देख कर किस विद्या-प्रेमी के चित्त में आनन्द न होगा?

जनसंख्या की निःसीम वृद्धि से हानियाँ और उनसे बचने के उपाय।

(१)

किसी समाज या मनुष्य-मात्र की उन्नति का विचार उपस्थित होने पर ये दो प्रश्न आपसे आप मन में उठते हैं:—

(१) वे कौन कौन से कारण हैं जो अब तक मनुष्यजाति की उन्नति और सुख-समृद्धि को रोकते रहे? और (२) क्या भविष्यत् में उन सब कारणों, या सब न सही तो उनमें से कुछ कारणों, के दूर होने की आशा है?

इन प्रश्नों को पूरी तरह हल करना और मनुष्य की उन्नति के बाधक कारणों पर पूरी तरह से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार करना किसी एक मनुस्य की शक्ति के बाहर है। इसीलिए भिन्न भिन्न देशों तथा भिन्न भिन्न समयों के विद्वानों, तत्त्ववेत्ताओं तथा लोक-हितैषी मनुष्यों ने इन प्रश्नों को अपने अपने ढँग पर अलग अलग हल करने का प्रयत्न किया है और उन्नति के बाधक कारणों में से किसी एक कारण पर अपने अपने विचार प्रकट किये हैं। इन्हीं पुरुष-रत्नों की कोटि में अँगरेज़ो के प्रसिद्ध लेखक और तत्त्ववेत्ता मालथस साहब भी हैं। इनके मत में संसार की उन्नति का सबसे बड़ा बाधक कारण है:— "... ... the constant tendency in all animated life to increase beyond the nourishment prepared for it." अर्थात् जीवन-धारण करने के लिए प्रकृति ने जितना आहार प्राणियों के लिए सम्पादित किया है उससे अधिक प्राणि-मात्र में अपनी संख्या बढ़ाने की चेष्टा है। मालथस महाशय के इस सिद्धान्त का सारांश हम लिखते हैं। आशा है पाठकों को रुचेगा।

वनस्पति तथा जीवमात्र में स्वभाव ही से बढ़ने की अद्भुत शक्ति है। यदि वे एक दूसरे की वृद्धि को न रोकें और उनकी ख़ूराक उन्हें पूरी तरह मिलती चली जाय तो उनके बढ़ने की कोई हद न रहे। यदि पृथ्वी पर घास को छोड़ कर और कोई वनस्पति न होती तो अपनी उत्पादिका शक्ति से समस्त पृथ्वी पर यही घास छा जाती। इसी तरह अँगरेज़ जाति को छोड़ कर यदि और कोई जाति इस पृथ्वीतल पर न होती तो केवल एक यही जाति बढ़ते बढ़ते समस्त पृथ्वी पर फैल जाती।

प्रकृति ने वनस्पति तथा प्राणिमात्र को बड़ी उदारता के साथ बढ़ने की शक्ति दी है। किन्तु इसके साथही उनके बढ़ने के लिए दो अत्यन्त आवश्यक वस्तुओं में, अर्थात् स्थान और आहार में, बड़ी अनुदारता के साथ कमी कर दी है। पृथ्वी में पैदा करने की अनन्त शक्ति है। इतने अधिक पशु, पक्षी तथा वनस्पति बीजरूप से पृथ्वी में छिपे पड़े हैं कि यदि वे स्वच्छन्दतापूर्वक अपने आप बढ़ने पावें तो यही दुनिया नहीं, पर अनेकों, कुछ शताब्दियों में उनसे भर जायँ। प्रकृति का नियम है कि कोई जीव हद ज़ियादा न बढ़ने पावे। इसी नियम के अनुसार वनस्पति तथा मनुष्येतर जीवों को अपनी वृद्धि को रोकना पड़ता है। और, प्रकृति के इसी नियम के आगे मनुष्य को भी, इस नियम से बचने के हज़ार प्रयत्न करने पर भी, अपना सिर झुकाना पड़ता है।

वनस्पति तथा ज्ञानरहित पशुओं में प्रकृति का ऊपर कहा हुआ नियम बहुत साफ़ साफ़ तौर आसानी के साथ देखा जाता है। वनस्पतियों और पशुओं में, मनुष्य की तरह, अच्छे बुरे का ज्ञान या विवेक नहीं। उनमें एक प्रकार की स्थूल बुद्धि होती है। उसी की प्रेरणा से वे अपने समूह का दल बढ़ाते चले जाते हैं। वे इस बात से कभी नहीं हिचकते कि जिनको वे उत्पन्न करते हैं उनके आहार का क्या प्रबन्ध है। जहाँ स्वच्छन्दता होती है वहाँ बढ़ने की शक्ति बहुत अधिक काम करती है। किन्तु, अन्त में, स्थानाभाव तथा आहाराभाव के कारण, प्रकृति के कठोर नियमों से वह वृद्धि कुण्ठित भी डाली जाती है।

मनुष्यों और पशुओं में अन्तर यह है कि मनुष्यों में पशुओं के समान स्थूल बुद्धि के अतिरिक्त ज्ञानशक्ति भी है। जब मनुष्य स्थूल-पशु-बुद्धि के वशीभूत होकर पशुओं के समान अपना वंश बढ़ाने लगता है तब ज्ञान-शक्ति आकर उससे पूछती है कि जिनको वह उत्पन्न करेगा उनके भरण-पोषण का भी उसने कुछ प्रबन्ध किया है या नहीं। यदि वह ज्ञानशक्ति के इस सङ्केत की ओर कुछ ध्यान न देकर ज्ञानरहित पशुओं की तरह सन्तान उत्पन्न करता चला जाय और इस बात को बिलकुल न सोचे कि उनके भरण-पोषण के लिए काफ़ी भोजन है या नहीं तो इसका फल यह होगा कि जितनी आबादी के जीवननिर्वाह के लिए खाद्य पदार्थ पृथ्वी पर उत्पन्न होता है उससे वह अधिक बढ़ जायगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु जीवनधारण के लिए भोजन अत्यन्त आवश्यक है। इस कारण आबादी को कभी भी उस संख्या से अधिक न बढ़ने देना चाहिए जिस संख्या तक के भरण-पोषण के लिए काफ़ी खाद्य, पदार्थ पृथ्वी पर उत्पन्न होता है। और जब उस संख्या से अधिक आबादी बढ़ेगी तब उसका फल यह होगा कि मनुष्य-समाज दुर्भिक्ष, प्लेग आदि अनेकों क्लेशों से पीडित तथा जर्जरित रहेगा।

अब यह देखना चाहिए कि यदि आबादी स्वच्छन्दतापूर्वक बढ़ने दी जाय तो स्वाभाविक तौर पर वह कितनी बढ़ जायगी। इसी प्रकार भूमि की उपज भी, मनुष्य के अधिक से अधिक प्रयत्न और परिश्रम करने पर और हर एक बात अनुकूल होने पर, किस हिसाब से बढ़ेगी।

अमरीका की उत्तरी रियासतों में, देश-बस्ती नई होने के कारण, ज़मीन बहुत उपजाऊ थी और खाद्य पदार्थ अधिकता से उपजते थे। वहाँ के निवासियों में दुष्कर्म की मात्रा भी बहुत कम थी और बाल्यविवाह का प्रचार योरप से अधिक था। वहाँ २५ वर्ष में आबादी दूनी हो जाती थी। १५० वर्ष तक वहाँ यही हाल रहा। कुछ रियासतों में, जो पीछे से आबाद हुई थीं, आबादी के दुगनी होने में सिर्फ़ १५ ही वर्ष लगे। कुछ प्रान्तों में १२ वर्ष में और कुछ में तो दस ही वर्ष में आबादी दुगनी होती हुई देखी गई है। अतः सिद्ध हुआ कि अधिक से अधिक २५ वर्ष में, यदि कोई रुकावट न हो तो, आबादी दूनी हो सकती है।

पृथ्वी की उपज किस हिसाब से बढ़ेगी, इसका अनुमान करना सहज नहीं है। किन्तु इसमें कुछ सन्देह नहीं कि उपज उतनी तेज़ी के साथ न बढ़ेगी जितनी तेज़ी के साथ आबादी की वृद्धि होगी। एक लाख मनुष्यों की आबादी एक हज़ार मनुष्यों की आबादी की तरह २५ वर्ष में दूनी हो जायगी। किन्तु अधिक संख्या की वृद्धि के लिए उतनी आसानी से भोजन न मिलेगा जितनी आसानी से कम संख्या की वृद्धि के लिए। यदि यह मान भी लिया जाय कि संसार में जितनी उपजाऊ ज़मीन है सब में खाद्य पदार्थ उत्पन्न किया जाय तो भी यह असम्भव है कि आबादी के साथ साथ उपज भी २५ वर्ष में दूनी हो जायगी। क्योंकि पृथ्वी की उत्पादिका शक्ति बढ़ती नहीं, घटती है। यदि मान भी लिया जाय कि किसी देश की उपज, मनुष्य के भरसक प्रयत्न करने पर, पहले २५ वर्ष में दूनी हो सकती है तो भी इस बात को कोई नहीं मान सकता कि दूसरे २५ वर्ष में वह चौगुनी हो जायगी।

यहाँ पर दो बातों की कल्पना कीजिए। पहली बात यह कि भूमि की सालाना उपज घटने के बदले वही बनी रहे। (२) दूसरी बात यह कि हर २५ वर्ष में भूमि की उपज, जितनी आजकल होती है उतनी ही बढ़ती जाय। इन दोनों बातों को मान कर हम भारत का उदाहरण पाठकों के सामने रखते हैं।

भारत की वर्तमान जनसंख्या लगभग ३० करोड़ के है। मान लो कि देश की वर्तमान उपज इस जनसंख्या के भरण-पोषण के लिए काफ़ी है। यही आबादी पहले २५ वर्ष में बढ़ कर दूनी, अर्थात् ६० करोड़ हो, जायगी और पृथ्वी की उपज भी २५ वर्ष में दूनी होकर इस बढ़ी हुई जनसंख्या के लिए पर्याप्त होगी। दूसरे २५ वर्ष में आबादी १२० करोड़ हो जायगी और उपज सिर्फ (६० + ३०) ९० करोड़ का पालन कर सकेगी। तीसरे २५ वर्ष में आबादी २४० करोड़ होगी और खाद्य पदार्थ सिर्फ़ (९० × ३०) १२० करोड़ के लिए काफ़ी होगा। और १०० वर्ष के बाद आबादी बढ़ कर ४८० करोड़ हो जायगी और खाद्यपदार्थ सिर्फ़ (१२० × ३०) १५० करोड़ के लिए पर्याप्त होगा। इस तरह १०० वर्ष के बाद ३३० करोड़ मनुष्यों के जीवननिर्वाह के लिए कुछ न रहेगा और वे भूखों मरेंगे।

भारत के स्थान पर यदि हम समस्त पृथ्वी को रख लें और पृथ्वी की वर्तमान जनसंख्या एक अरब मान लें तो संसार की आबादी १, २, ४, ८, १६, ३२, ६४, १२८, २५६,—इस हिसाब से बढ़ेगी और भूमि की उपज केवल १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के हिसाब से। दो सौ वर्ष में आबादी २२६ अरब बढ़ेगी तो उपज सिर्फ़ ९ अरब के पोषण करने के लिए बढ़ सकेगी। तीन सौ वर्ष में आबादी बढ़ कर ४०९६ अरब हो जायगी और पृथ्वी की उपज केवल १३ अरब का पोषण कर सकेगी। दो हज़ार वर्ष में आबादी और उपज में बे हिसाब फ़र्क पड़ जायगा।

ऊपर के उदाहरण से पाठकों को मालूम हो गया होगा कि यदि पृथ्वी की उपज हमेशा बढ़ती चली जाय तो आबादी सर्वदा उपज से बहुत अधिक बढ़ी रहेगी। आबादी की इस बे हिसाब बाढ़ को रोकने के लिए और आबादी को उस संख्या तक घटाने के लिए कि जिस संख्या तक के जीवन-निर्वाह के लिए पृथ्वी में खाद्य पदार्थ उत्पन्न होता है, बड़ी बड़ी रुकावटें काम किया करती हैं। वे कौन कौन सी रुकावटें हैं, उनको हम दूसरे किसी लेख में दिखलाने का प्रयत्न करेंगे।

जनार्दन भट्ट।

विविध विषय

१—बाइबल का प्रचार।

हमारे यहाँ रामायण और अन्य धार्म्मिक तथा सदाचार शिक्षा-प्रदायक पुस्तकों के प्रचार का कोई विशेष प्रबन्ध नहीं, यद्यपि इन पुस्तकों में कुछ पुस्तकें बहुत ऊँचे दरजे की और उत्तमोत्तम शिक्षाओं से पूर्ण हैं। अब बाइबल का हाल सुनिए। उसके प्रचार के लिए विलायत में एक सभा है। उसने गत सौ वर्ष में इस पुस्तक के प्रचार के लिए चौबीस करोड़ रुपया ख़र्च कर डाला है। कोई सात सौ भिन्न भिन्न भाषाओं और बोलियों में इसका अनुवाद हो गया है। गत वर्ष इस सभा ने बाइबल की ६६ लाख कापियां प्रकाशित कीं। गत ५० वर्ष में, हर साल, उसके पहले साल की अपेक्षा, ९० हज़ार कापियाँ अधिक निकाली गईं! इस अकेली एक पुस्तक के प्रचार के लिए यह सभा प्रति दिन साढ़े दस हज़ार रुपया ख़र्च करती है!!! फिर भला द्वीप द्वीपान्तरों तक में क्यों न बाइबल का प्रचार हो और क्यों न उसकी बड़ी बड़ी किताबें दो चार चार आने को बिकें।

२—वेदों का रचना-काल।

काशी की नागरी-प्रचारिणी पत्रिका की जनवरी १९१ वाली संख्या में वेदों के रचना-काल और उनके निर्म्माण सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है उसकी नक़ल नीचे जाती है:—

"मनुष्य की सृष्टि पहले किस वा किन स्थानों में हुई ठीक निश्चय नहीं हुआ है, पर इसमें किसी को कुछ नहीं कि बहुत पूर्वकाल में, जिसे हम अनिर्दिष्ट काल सकते हैं, मनुष्यजाति इस पृथ्वी के एक या कई स्थानों आरोह-नियमानुसार उत्पन्न हो गई। इसी मानव-जाति आर्य्य-जाति भी एक शाखा है, जिसका सौभाग्य-सूर्य्य पहले उदय हुआ। इस जाति ने सबसे पहले विज्ञान सभ्यता प्राप्त की। आर्य्यों की सदा अपनी सन्तानों के यही शिक्षा थी—"यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्नेा इतराणि"। इन्हीं ने सबसे पहले अपनी भाषा को परि बनाया और इस योग्य किया कि इस भाषा में अपने मार्मि भावों को प्रकट कर सकें। अपनी इस सुविस्तृत वाणी उन लोगों ने बहुत कुछ गद्य, पद्य और गीतों की रचना जिन्हें उनके सन्तान कंठाग्र रखते आये। ये मन्त्र, जो सन्तानों को कण्ठाग्र थे, पीछे, भिन्न भिन्न कालों में संहिता में संगृहीत हुए, जो वेद कहलाये। यद्यपि महाभारत पीछे तक मन्त्रों की रचना वैदिक भाषा में होती रही, फिर भी मन्त्रों की रचना कब से प्रारम्भ हुई, इसका चलाना दुःसाध्य है। यह कहना अनुचित न होगा कि को जब वाक शक्ति प्राप्त हुई और जब इनकी भाषा योग्य हुई कि ये अपने अभिप्रायों को शब्दों द्वारा प्रकाशित सकें तभी से मंत्रों की रचना प्रारम्भ हुई।"

वेदों के विषय में ऐसी सम्मति देना साहस का काम

३—उर्दू के शार्ट-हैंड का तीसरा वार्षिकोत्सव।

"सरस्वती" के पाठक जानतेही हैं कि लखनऊ अध्यापक एम० एल० घोष ने उर्दू के शार्ट-हैण्ड का आविष्कार किया है। गत २७ मार्च को उसी का तीसरा वार्षिकोत्सव लखनऊ के रीड-क्रिश्चन-कालेज में धूम-धाम से मनाया गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीयुत शिवस्वामी आइयर ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्सव के सभापति थे युक्त-प्रदेश की पुलिस के इन्स्पेक्टर जनरल, मिस्टर डगलस स्टूअर्ट।

क्रिश्चन-कालेज में उर्दू के शार्ट-हैण्ड की एक क्लास है। युक्त-प्रदेश की गवर्नमेंट के भेजे हुए कितने ही सब-इन्स्पेक्टर इस क्लास में शिक्षा पाते हैं और कितने ही पा चुके हैं। निज़ाम की गवर्नमेंट के भेजे हुए भी कितने ही कर्मचारी इसकी शिक्षा यहां पाते हैं।

इस दफ़े, उत्सव के दिन, प्रसिद्ध विद्वान् मौलाना शिबली नोमानी ने एक वक्तृता दी। उसे शार्ट-हैंड-क्लास के छात्रों ने बड़ी योग्यता से लिखा। अशुद्धियां बहुत ही कम निकलीं। जो कर्मचारी इस क्लास से शार्ट-हैंड-सीख कर निकलते हैं वे अख़बारों के रिपोर्टरों की तरह वक्ताओं की वक्तृतायें लिख सकते हैं। परन्तु लिखने का अभ्यास बनाये रखना चाहिए। अभ्यास न रखने से लिखने की गति कम हो जाती है और भूलें भी होने लगती हैं।

सो उर्दू का शार्ट-हैंड चल निकला। पर बेचारी नागरी के शार्ट-हैंड का कोई पुरसां नहीं!

४—बड़े लाट और देशी भाषायें।

उत्तीर्ण छात्रों को पदक-प्रदान करने और उन्हें उपदेश आदि देने के लिए हर विश्वविद्यालय को हर साल एक जलसा करना पड़ता है। इस वर्ष कलकत्ते के विश्वविद्यालय के जलसे में लार्ड हारडिंग ने अपनी वक्तृता देते हुए देशी भाषाओं के विषय में एक बात बड़े महत्त्व की कही। आपने कहा :—

"विद्यार्थियों में शास्त्रीय अनुसन्धानों की रुचि बढ़ाने के लिए गत चार वर्षों से विश्व-विद्यालय की ओर से, समय समय पर, वक्ता नियत होते रहे हैं। इन वक्ताओं में मिस्टर दीनेशचन्द्र सेन भी हैं। उन्होंने बँगला-साहित्य का आदि से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक का एक बहुत अच्छा इतिहास लिखा है। उन्होंने एक और भी उसी तरह का अपूर्व्व इतिहास लिखा है जो शीघ्र ही प्रकाशित होगा। मैं आशा करता हूँ कि और लोग भी दीनेश बाबू के उदाहरण का अनुकरण करेंगे और अपनी अपनी भाषाओं की गवेषणापूर्ण समालोचनायें करके महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखेंगे"।

और लोग चाहे भले ही लाट साहब की आशा पूर्ण करें, हिन्दी जिनकी मातृभाषा है उनसे तो ऐसी आशा नहीं। उन्हें कहां फ़ुरसत!

५—एकता पर सर्वोत्तम निबन्ध लिखने वाले को ५० रुपया इनाम।

नागरी-प्रचारक के सम्पादक श्रीयुत पण्डित रूपनारायण पांडे की मारफ़त कुञ्जगली, बनारस, के बाबू मूलचन्द कपूर ने एक विज्ञापन हमारे पास भेजा है। उसमें लिखा है कि जो महाशय, एकता पर, फूल्सकेप साइज़ के कम से कम ७० पृष्ठ पर, हिन्दी में सर्वोत्तम निबन्ध लिख कर, भादों के अन्त तक, उनके पास भेज देंगे उन्हें वे पचास रुपया पुरस्कार देंगे। इस विषय में जिसे कुछ पूछना हो वह उनसे पत्रद्वारा पूछ सकता है।

६—माननीय श्रीयुत शिवस्वामी आइयर।

परलोकवासी श्रीयुत कृष्णस्वामी आइयर की जगह पर, मदरास के गवर्नर के कार्य्यसम्पादक कौन्सल में, श्रीयुत पी० एस० शिवस्वामी आइयर, सी० आई० ई०, नियत किये गये हैं। मदरास में विकालत करते आपको २७ वर्ष हुए। चार वर्ष तक आप ऐडवोकेट जनरल के प्रतिष्ठित पद पर रह चुके हैं। मदरास के क़ानूनी कालेज में कई वर्ष तक आपने अध्यापक का काम भी किया है। मदरास के विश्वविद्यालय की तरफ़ से आप वहां के क़ानूनी कौन्सल में आठ वर्ष तक सभासद् भी रह चुके हैं। जिस पद पर आपकी अब नियुक्ति हुई है उसके आप सर्वथा योग्य हैं :—"रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन"।

७—मुहम्मद साहब के चरित्रलेखक को २०० रुपया महीना सहायता।

शम्सुल-उल्मा मौलाना शिबली नोमानी भूपाल की बेगम साहबा की आज्ञा से, मुसल्मानों के पैग़म्बर मुहम्मद साहब का जीवन-चरित लिखने जाते हैं। जब तक आप इस काम को करते रहेंगे तब तक बेगम साहबा आपको ख़र्च के लिए २०० रुपया महीना दिया करेंगी। जिस उर्दू के ऐसे लेखक और सहायक हों उसकी उन्नति क्यों न हो। अकेले संयुक्त प्रान्तों में ही कम से कम १०१ महाराजा, राजा, तअल्लुक़ेदार और बड़े बड़े ज़मींदार होंगे। पर उनमें से कितने ऐसे हैं जिन्होंने हिन्दी में कोई अच्छी पुस्तक लिखने के लिए एक धेला भी ख़र्च किया हो। हां, मोटरकार, कहो, हर महीने एक मँगाया करें। अथवा, कहो, साल में ६ महीने शिमला या मंसूरी के पहाड़ पर चढ़े कई हज़ार रुपये महीना ख़र्च किया करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८—टाइटानिक नामक जहाज़ का डूबना।

टाइटानिक नामक जहाज़, जमे हुए बर्फ़ की बहती हुई पर्वताकार चट्टानों से टकरा कर, अटलांटिक समुद्र में डूब गया। १४ एप्रिल की रात को यह दुर्घटना हुई। कोई ढाई हज़ार मुसाफ़िर इस पर थे। उनमें से सात सौ के लगभग बचे। शेष सब डूब कर जलजीवों के पेट में चले गये। जो बचे हैं उनमें से स्त्रियां और बच्चे ही अधिक हैं। यह जहाज़ बिलकुल नया था; बहुत बड़ा भी था; मुसाफ़िरों के आराम के सामान भी इसमें बहुत अधिक थे। यह एक शाही महल सा था। पहले ही पहल समुद्र-यात्रा कर रहा था। बड़े बड़े अमीर इस पर सवार थे। इस पर साढ़े तीन हज़ार मुसाफ़िर सवार कराने का हुक्म था। इतनों ही के लिए, दुर्घटना के समय, जान बचानेवाली नावें भी इस पर होनी चाहिए थीं। पर थीं केवल ६५० ! इसी से इतनी अधिक प्राणहानि हुई। इसके ऊपर से बेतार के जो तार भेजे गये उनमें से कितने ही तार लोगों ने बीच ही में पढ़ने की चेष्टायें कीं। बेतार की तारबर्क़ी में ऐसा हो सकता है। इससे इस जहाज़ के दुर्घटना सम्बन्धी सारे समाचार भी ठीक ठीक न पहुँच सके। इन त्रुटियों को दूर करने की ओर इस समय सारे योरप और अमेरिका खण्ड का ध्यान लग रहा है। डेढ़ हज़ार मनुष्यों की प्राणहानि ने दोनों देशों में हाहाकार मचा दिया है। अमीर, ग़रीब—बादशाह तक—सभी शोक मना रहे हैं। लाखों रुपये का चन्दा हो रहा है। सबके प्राणों की एक सी क़ीमत नहीं होती। उसमें बहुत अन्तर होता है। हिन्दुस्तान में अकेले हमारे प्रान्त में हर हफ़्ते हज़ारों आदमी प्लेग से प्राण खोते हैं। परन्तु उनके लिए न हाहाकार मचता है, न चन्दा होता है और न शोक ही मनाया जाता है ! अँगरेज़ी के प्रसिद्ध मासिक पत्र रिव्यू आव् रिव्यूज़ के सम्पादक, मिस्टर डबलू टी. स्टीड, का नामोल्लेख सरस्वती में अनेक बार हो चुका है। ये आदर्श सम्पादक, आदर्श लेखक और आदर्श सत्पथगामी थे। दुःख की बात है, ये भी टाइटानिक पर सवार थे। एक धार्मिक जलसे में शरीक होने अमेरिका जा रहे थे। दुर्घटना के समय ये जहाज़ पर अपने कमरे के भीतर थे। गड़ बड़ सुन कर बाहर निकले। देखा, लोग बेतरह भयभीत हो रहे हैं। सभी अपनी अपनी जान बचाने की फ़िक्र में हैं। नावों तक पहुँचने के लिए ग़दर मचा रहे हैं। मार पीट तक हो रही है। यह दशा देख, बिना किसी से कुछ कहे, आप अपने कमरे को चुपचाप लौट गये। फिर नहीं निकले। मौत से ज़रा भी नहीं डरे। शान्तिपूर्वक अपने कमरे के भीतर ही बैठे जल में समाधिस्थ हो गये। इनके धार्मिक विचारों पर जो लोग पहले हँसते थे वही अब उनके लिए रो रहे हैं, गिरजाघरों में उनकी आत्मा की सद्गति के लिए प्रार्थना कर रहे हैं और उनकी धर्म्मनिष्ठा और शान्ति की प्रशंसा के गीत गा रहे हैं।

टाइटानिक के जो मुसाफ़िर डूबने से बच रहे हैं उनमें से एक आदमी की राय है कि स्टीड साहब की शकल का एक आदमी समुद्र में तैरता हुआ एक बजरे पर चढ़ने की कोशिश कर रहा था; परन्तु चढ़ न सका। इससे कुछ देर बाद डूब गया। परन्तु इस समाचार को लोग विश्वसनीय नहीं समझते।

पुस्तक-परीक्षा।

१—जीवन-चरित। आरा की जैन कन्याशाला की अध्यापिका परलोकगत जानकी बाईजी का यह संक्षिप्त चरित है। आरा-निवासी श्रीयुत देवेन्द्रप्रसादजी जैन ने लिखा है। छोटी सी पुस्तक है। अच्छे चिकने काग़ज़ पर छपी है। विशेष करके स्त्रियों के पढ़ने योग्य है।

⁂

२—उन्नति का केन्द्र। आर्य्योपदेशक मास्टर लछमन दास रामनगरी ने इस १९६ पृष्ठों की पुस्तक को उर्दू में और अरबी-फ़ारसी अक्षरों में लिख कर प्रकाशित किया है। दाम इसके ८ आने हैं। इसमें लेखक ने बड़े विस्तार से इस बात को सिद्ध करने की चेष्टा की है कि "ब्रह्मचर्य्य-पालन और गुरुकुलों में रह कर सच्ची विद्या" की प्राप्ति के बिना किसी प्रकार की उन्नति मनुष्य नहीं कर सकता।

चित्र-परिचय।

सन्ध्या

इस संख्या के आरम्भ में जो रङ्गीन चित्र दिया गया है वह एक प्रसिद्ध विलायती चित्रकार का बनाया हुआ है। विलायत में इस चित्र की बड़ी प्रशंसा की गई है। इसमें सायंकालीन प्राकृतिक दृश्य कैसी उत्तमता से दिखाया गया है।

Printed and Published by Apurva Krishna Bose at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

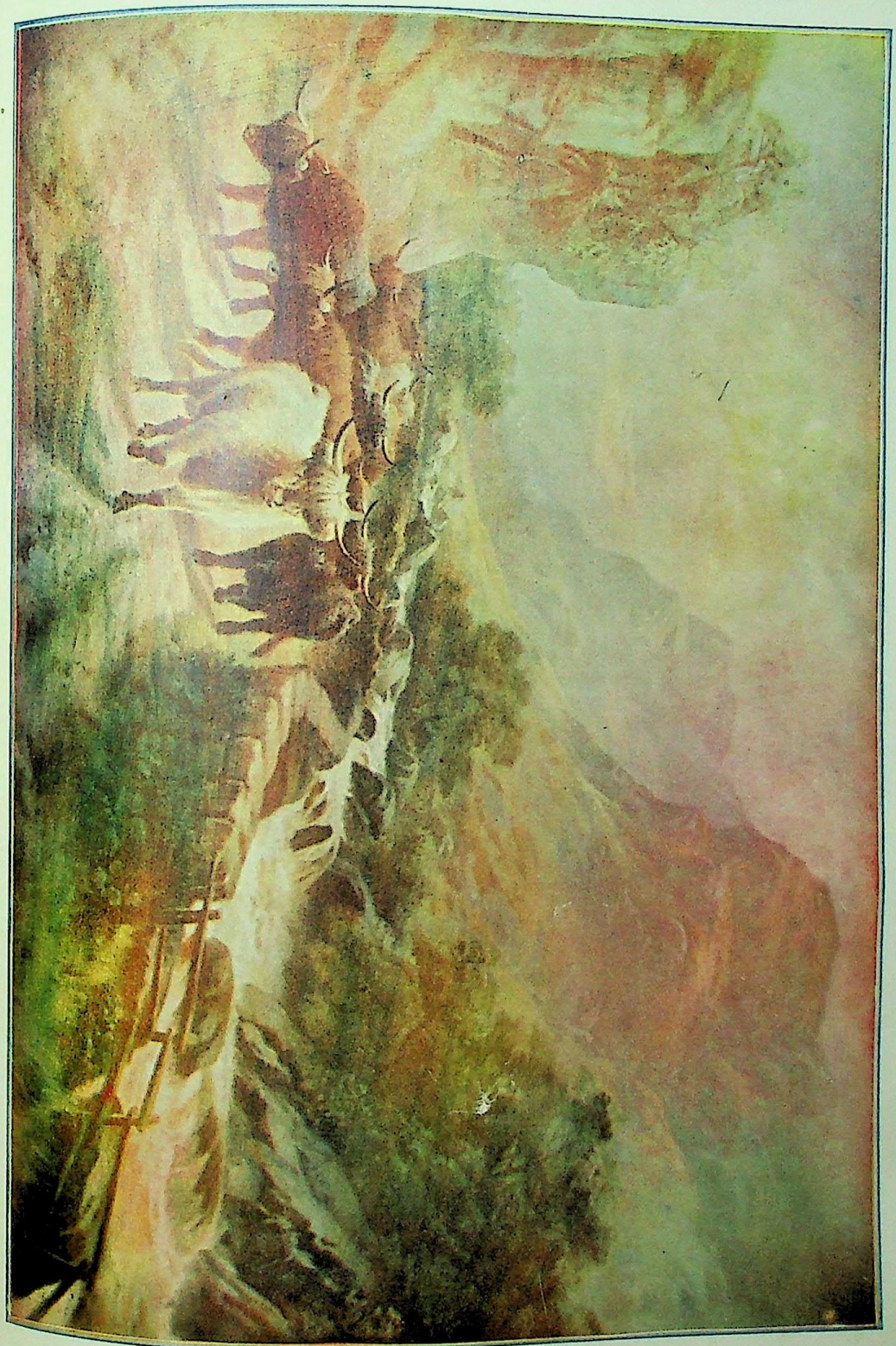

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

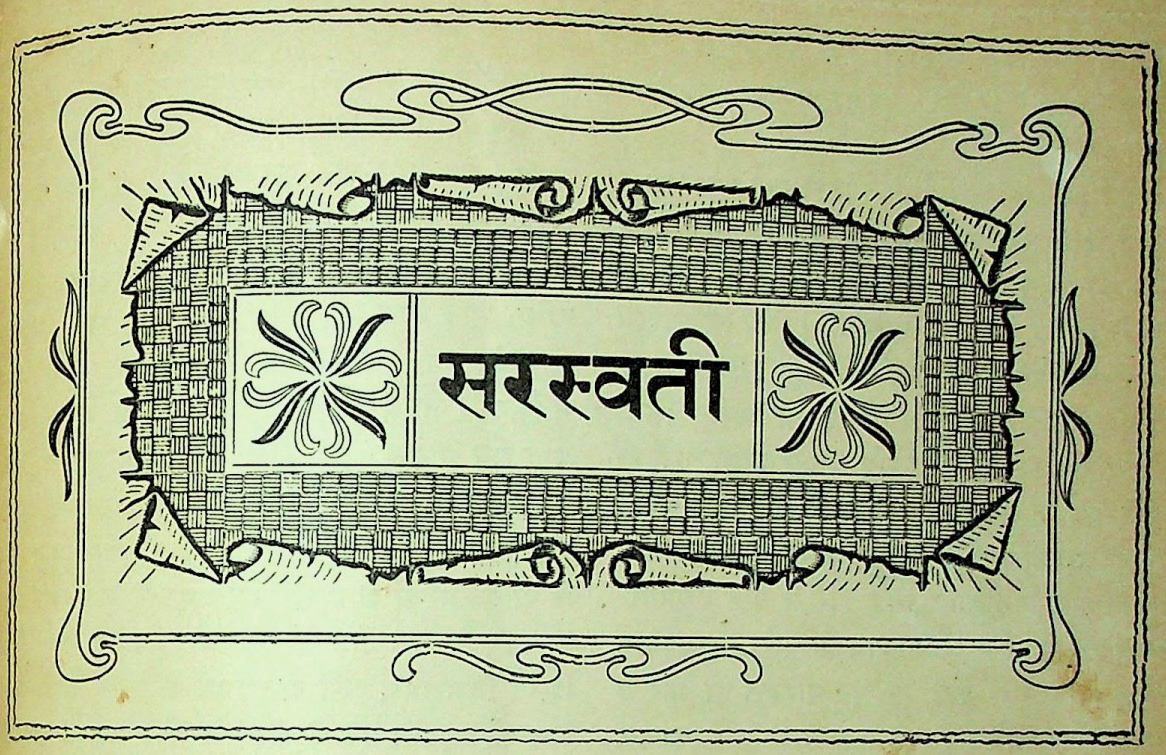

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग १३] १ जून, १९१२—आषाढ़ कृष्ण २, १९६९। [संख्या ९

हीरविजय सूरि।

जैनियों में हीरविजय सूरि नाम के एक बड़े महात्मा और बड़े विद्वान् हो गये हैं। वे अकबर बादशाह के समय में थे। देवविमल-गणि-कृत हीरसौभाग्य नामक काव्य से उनका बहुत कुछ हाल मालूम हो सकता है। इस काव्य में अकबर, उसकी राज्यव्यवस्था, उसके धार्म्मिक विचार आदि के सम्बन्ध में भी बहुत सी बातें हैं। जैन पण्डितों पर वह कितनी कृपा करता था, उनकी प्रार्थनाओं को वह कहाँ तक मानता था और उनको कितने आदर की दृष्टि से देखता था—इन बातों का भी पता हीरसौभाग्य से लगता है। जगद्गुरु काव्य नाम का एक और भी ग्रन्थ संस्कृत में है। उससे भी इन बातों का ज्ञान प्राप्त करने में बड़ी सहायता मिल सकती है। सभी धर्म्मों और सम्प्रदायों के महात्माओं और पण्डितों से वार्त्तालाप करके अकबर अपने धार्म्मिक ज्ञान की वृद्धि करने के लिए सदैव तत्पर रहता था। तत्त्वज्ञान और सत्य चाहे जहाँ से प्राप्त हो सके, उसे प्राप्त करने के लिए वह सदैव सचेत रहता था। इसी कारण से वह जैन और हिन्दू विद्वानों हीं को नहीं, क्रिश्चियन धर्म्म के अनुयायियों तक का आदर-सत्कार करने में उदारता दिखाता था। काशी के जैन-शासन नामक पत्र के दिवाली के अङ्क में एक लेख, इस विषय में, निकल चुका है। उसी का सारांश हम नीचे देते हैं। उससे अकबर की धर्म्मोदारता का हाल और हीर-विजय सूरि का संक्षिप्त चरित, दोनों बातें, पाठकों को मालूम हो जायँगी।

अकबर के दरबार में जितने विद्वान् थे सब पाँच श्रेणियों में विभक्त थे। हीरविजय सूरि पहली श्रेणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में थे। दो और जैन पण्डित भी अकबर के यहाँ थे—विजयसेन सूरि और भानुचन्द्र उपाध्याय। वे पाँचवीं श्रेणी में थे।

हीरविजय का जन्म पालनपुर में हुआ था। जब वे १३ वर्ष के थे तभी उनके माता-पिता मर गये। हीरविजय की बहन पाटन नगर में ब्याही थी। अतएव वे निराश्रित हो कर वहीं चले गये। वहाँ विजयदान सूरि नामक विद्वान् से उनकी भेंट हुई। उसके उपदेशों ने हीरविजय के हृदय पर इतना असर किया कि वे संसार से विरक्त हो गये। इस तरह, तेरह ही वर्ष की उम्र में, १५३९ ईसवी में, उन्हों ने विजयदान सूरि से दीक्षा ग्रहण करके शास्त्राभ्यास में मन लगाया। कुछ दिन बाद उनके गुरु ने उन्हें देवगिरि-निवासी धर्म्मसागर उपाध्याय के पास न्यायशास्त्र पढ़ने भेज दिया। वहाँ से पूरे पण्डित हो कर वे गुजरात लौट आये। १५५१ ईसवी में उन्हें वाचक की उपाधि मिली और १५५३ में सूरि की।

हीरविजय की विद्वत्ता का समाचार अकबर ने जो सुना तो उसने अपने मोदी और कमाल नाम के दो कर्म्मचारियों को अपना फ़रमान देकर अहमदाबाद के गवर्नर शहाबुद्दीन अहमद ख़ाँ के पास भेजा। उसमें उसने हीरविजय सूरि को अपने दरबार में भेज देने के लिए हिदायत की। फ़रमान के विषय में हीरसौभाग्य काव्य के ग्यारहवें सर्ग में इस प्रकार लिखा है :—

मदीयानुगः साहिबः खान आस्ते
हितैषी पितेवाङ्गिनां गुर्जरेषु।
ददातां युवां तस्य निःशेषवाच्यं
दधानं स्फुरन्मानमेतन्मदीयम्॥

इस फ़रमान को पाकर शहाबुद्दीन अहमद ने अहमदाबाद के प्रधान प्रधान जैनों को एकत्र किया और उनसे सब हाल कहा। विजय सूरि उस समय किसी और शहर को गये हुए थे। इससे कुछ प्रतिष्ठित जैन मिल कर वहाँ उनके पास गये और उनसे शाही फ़रमान की बात कही। हीरविजय सूरि ने समझा कि अकबर के दरबार में जाने से जैन धर्म को बहुत कुछ लाभ पहुँचने की सम्भा[वना] है। इसलिए उन्होंने फ़तहपुर सीकरी, जहाँ [उस] कि अकबर उस समय रहता था, जाना स्वी[कार] किया। जो लोग उन्हें फ़रमान की सूचना देने [गये] थे वे उनके साथ अहमदाबाद लौट आये। [तब] शहाबुद्दीन अहमद ख़ाँ उनसे प्रेमपूर्वक मिल[ा] हाथी, घोड़े और बहुत सा धन वह सूरि महा[राज] को देने लगा; परन्तु उन्होंने कुछ भी लेना [स्वी]न किया। जो दो आदमी फ़रमान ले कर अहमद[ाबाद] बाद गये थे उन्हीं के साथ वे फ़तहपुर के लि[ए] पैदल रवाना हुए। पट्टन, सिद्धपुर, सिरोही, मेड़ता आदि जिन जिन स्थानों में वे पहुँचे, सभी कहीं [के] के अधिकारियों और प्रतिष्ठित पुरुषों ने उनका [बड़ा] सत्कार किया। जब वे साँगानेर पहुँचे तब [उन] शिष्य विमलहर्ष को बादशाह के पास अपने [आ]मन की सूचना देने के लिए उन्होंने भेजा। बादशाह ने थानसिंह आदि अपने अफ़सरों को आज्ञा दी [कि] बड़ी धूमधाम के साथ हीरविजय सूरि की अगवा[नी] की जाय। शाही अफ़सर और अनेक प्रमुख [लोग] फौज, रथ, घोड़े और हाथी ले कर साँगानेर पहुँचे। उनके साथ सूरि महाराज फ़तहपुर आये। वहाँ [वे] रात जगमल कछवाहा के महल में वे रहे। दूसरे दिन वे शाही दरबार में उपस्थित हुए। परन्तु उस समय अकबर एक बहुत आवश्यक और महत्त्व का काम कर रहा था। इस कारण उसने हीरविजय सूरि की सेवा-शुश्रूषा का काम अबुल-फ़ज़ल को सौंपा।

अबुलफ़ज़ल हीरविजय सूरि को अपने घर में ले गया। वहाँ उसने बड़े ही भक्ति-भाव से उन्हें बिठाया। कुछ देर बाद उसने हीरविजय सूरि से धर्म-सम्बन्धी बातें पूछीं। उसके प्रश्न का सार हीर-सौभाग्य के अनुसार नीचे दिया जाता है—

अबुलफ़ज़ल ने कहा—"हमारे कुरान में लिखा है कि मरने पर मुसलमान धर्म के अनुयायियों के शरीर धरोहर के तौर पर पृथ्वी के पेट में रख दिये जाते हैं। प्रलयान्त में उन सब शरीरों की आत्मायें अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी क़बरों से निकल कर ख़ुदा नाम के परमेश्वर के सामने खड़ी होंगी। ख़ुदा उस समय सबके पुण्य-पाप का विचार, पक्षपातरहित होकर, करेगा। सबको पुण्य और पाप का फल उस समय वह उसी तरह देगा जिस तरह कि पृथ्वी उसमें बोये गये बीजों का फल देती है। कुछ स्वर्ग को भेज दिये जायँगे, जिन्हें नाना प्रकार के भोग—अप्सरादि—प्राप्त होंगे और कुछ नरक को भेजे जायँगे, जहाँ उन्हें अनिर्वचनीय दुःख भोगने पड़ेंगे। हे महात्मा! आप कृपा कर के बतलाइए कि क़ुरान में जो ये बातें लिखी हैं वे सच हैं या केवल आकाश-कुसुम के समान निर्मूल हैं"*।

इस प्रश्न को सुन कर, हीरविजय सूरि ने पूर्वोक्त सिद्धान्त का कई श्लोकों में खण्डन कर के, अन्त में, यह कहा कि न तो इस संसार का कोई पैदा ही करने वाला है, और न कोई इसका नाश ही करने वाला। इसमें जो ये अनेक प्रकार की विभिन्नतायें देख पड़ती हैं उनका कारण प्राणियों ही के प्राक्तन कर्म हैं। अतएव मेरी राय में किसी स्रष्टा का अस्तित्व मानना वन्ध्यापुत्र का अस्तित्व मानने के समान है :—

कर्ता च हर्ता निजकर्मजन्यवैचित्र्यविश्वस्य न कश्चिदस्ति।
वन्ध्यात्मजन्मेव तदस्ति भावोऽसन्नेव चित्ते प्रतिभासते तत्॥

यह सुन कर अबुलफ़ज़ल बहुत ख़ुश हुआ :—

इदं गदित्वा विरते मुनीन्द्रे शेखः पुनर्वाचमिमामुवाच।
विज्ञायते तद् बहुगर्ह्यवाचि वीचीव तथ्येतरता तदुक्तौ॥

अर्थात् अबुलफ़ज़ल ने यह कहा कि इस दशा में यही कहना पड़ता है कि हमारी धर्म-पुस्तकों में बहुत सी तथ्येतर बातें हैं। यहाँ पर यह याद रखना चाहिए कि संसार के कर्तृत्व आदि के सम्बन्ध में हीरविजय का बतलाया हुआ सिद्धान्त जैन धर्म्म के अनुयायियों का सिद्धान्त है।

अकबर को काम से फ़ुरसत होने पर सूरि महोदय शाही दरबार में बुलाये गये। वहाँ जाने पर क्या हुआ सो जगद्गुरु-काव्य के प्रणेता के एक श्लोक से अवगत कीजिए:—

चंगा हो गुरूजीतिवाक्यचतुरो हस्ते निजं तत्करं
कृत्वा सूरि वरान्निनाय सदनान्तर्वस्त्ररुद्वाङ्गणे।
तावच्छ्रीगुरवस्तु पादकमलं नारोपयन्तस्तदा
वस्त्राणामुपरीति भूमिपतिना पृष्टाः किमेतद् गुरो॥

अकबर ने पूछा—"गुरु जी! चङ्गे तो हो"? अकबर की हिन्दी का यह नमूना ध्यान में रखने लायक़ है। फिर उनका हाथ पकड़ कर अकबर उन्हें महलों के भीतर ले गया और बिछौने पर बिठाना चाहा। पर हीरविजय ने वस्त्रासन पर पैर रखने से इनकार किया। इस पर अकबर को आश्चर्य्य हुआ और सूरि महोदय से उसने इसका कारण पूछा। जैन शास्त्रों में इस तरह बिस्तरे पर बैठने की आज्ञा नहीं है—इत्यादि बातें जब अकबर ने सुनीं तब उसे और भी आश्चर्य्य हुआ। जैन साधु सवारी नहीं रखते; वे सदा पैदल ही चलते हैं। अतएव हीरविजय भी अहमदाबाद से पैदल ही आये हैं—यह सब सुन कर अकबर के आश्चर्य्य की सीमा न रही। ख़ैर, अतिथि-सम्मादर-सम्बन्धिनी बातें हो चुकने पर धर्म्म-चर्चा छिड़ी। अकबर की आज्ञा पाकर सूरि ने धर्म्म, परमेश्वर और सद्गुरु के लक्षण निरूपित किये। इसके सिवा और भी अनेक बातें उन्होंने कहीं। हीरविजय की शुचिता, निस्पृहता और विद्वत्ता आदि देख कर अकबर बहुत प्रसन्न हुआ। अकबर ने उन्हें बहुत सी धर्म्मविषयक पुस्तकें भेंट कीं। पहले तो मुनि महाराज ने उन्हें लेने से इनकार किया। परन्तु अबु-

---

* पैगम्बरैर्नः समयेषु सूरे पुरातनैर्व्याहृतमेतदस्ति।
निश्चिप्यते न्यास इव क्षमायां यमातिथिर्यो यवनस्य वंश्यः॥
खुराह्वयश्रीपरमेश्वरस्यास्थानीं स्थितस्याधिपतेरिवोर्व्याः।
उत्थाय पृथ्व्याः परिवर्त्तकाले गन्ता समग्रोऽपि जनः पुरस्तात्॥
आदर्शिकायामिव पुण्यपापे संक्राम्यसंशुद्धनिजोपलब्धौ।
विधास्यते साधु स तत्र तस्य न्यायं निरस्य स्वपरानुरोधम्॥

* * *

कुरानवाक्यं किमिदं यथार्थं महात्मनां वाक्यमिवास्ति सूरे।
इत्थं प्रसूने गगनस्य तस्मिन्नुताभ्युदेति व्यभिचारिभावः॥

हीरसौभाग्य, सर्ग १३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लफ़्ज़ल के बहुत कहने पर उन्हें ले लिया और कुछ दिन बाद आगरे के पुस्तकालय को दे दिया।

अकबर से मिल कर सूरि महाराज आगरे आये। १५८२ ईसवी का चातुर्मास्य उन्होंने वहीं बिताया। वहाँ से वे फिर फ़तेहपुर सीकरी गये और अबुलफ़ज़ल के महलों में अकबर से मिले। बादशाह को वहाँ उन्होंने धर्म्मोपदेश भी दिया। अकबर इस बार उन्हें बहुत सा धन, हाथी, घोड़े, रथ आदि देने लगा; पर हीरविजय ने नम्रतापूर्वक अपनी अनिच्छा प्रकट की। अकबर ने बहुत इसरार किया तो उन्होंने कहा—मुझे कुछ देने के बदले आप क़ैदियों को छोड़ दीजिए, जो चिड़ियाँ पींजड़ों में बन्द हैं उन्हें उड़ा दीजिए और हम लोगों की पर्य्युषणा के समय आठ दिन तक जीवहिंसा-निवृत्ति की आज्ञा दीजिए :—

प्रारभ्य मेचकनभोदशमीं शमीश
यावन्नभस्य बहुलेतरषष्टिका स्यात्।
तावच्चरन्तु सुखमङ्गिगणाखिलोकी—
जीवातुनेव भवतां वचसेत्युदित्वा॥ हीरसौभाग्य, सर्ग १४

अकबर ने मुनिवर की आज्ञा शिरोधार्य्य की। उसने आठही नहीं, बारह दिन तक जीवहिंसा न की जाने का फ़रमान जारी कर दिया। कुछ दिन बाद नवरोज़ में भी पशुहिंसा न की जाने का हुक्म हो गया :—

श्रीमत्पर्युषणादिना रविमिताः सर्वे रवेर्वासराः।
सोफीयानदिना अपीदृदिवसाः संक्रान्तिवस्राः पुनः॥
मासः स्वीयजनेर्दिनाश्च मिहिरस्यान्येऽपि भूमीन्दुना।
हिन्दुम्लेच्छमहीषु तेन विहिताः कारुण्यपण्यापगाः॥
तेन नवरोजदिवसास्तनुजजनूरजबमासदिवसाश्च।
विहिता अमारिसहिताः सलतास्तरवो घनेनेव॥

हीरसौभाग्य, सर्ग १४

रविवार को भी हिंसा बन्द कर दी गई। जिस महीने में अकबार का जन्म हुआ था उसमें भी पशु न मारे जाने की आज्ञा हो गई। इसके सिवा हिन्दुओं, विशेष करके जैनों, को ख़ुश करने के लिए और भी कई दिन ऐसे निश्चित किये गये जिनमें पशुहिंसा करनेवालों को प्राण-दण्ड तक दिये जाने का हुक्म हो गया। सारे राज्य में इस विषय के फ़रमान जारी हो गये। इस बात का उल्लेख प्रसिद्ध इतिहास-लेखक बरदाऊनी ने भी किया है। विजय-प्रशस्ति नामक महाकाव्य में भी यह बात लिखी हुई है।

मेजर जनरल सर जॉन मालकम की लिखी हुई मेमायर आव् सेंटल इंडिया—नाम की एक पुस्तक दो जिल्दों में है। उसकी दूसरी जिल्द में उन्होंने इस फ़रमान का ज़िक्र किया है। इन्होंने लिखा है कि उज्जैन के एक जैन-मन्दिर में यह फ़रमान अब तक सुरक्षित है। उस मन्दिर का अधिकारी उसे साहब के पास ले गया और उनसे प्रार्थना की कि जैनों के पर्य्युषणा के १२ दिनों में हिंसा न की जाने के विषय में वे भी इसी तरह का एक आज्ञापत्र लिख दें। अकबर के इस फ़रमान का अनुवाद मेजर मालकम साहब ने अपनी पुस्तक में दिया है। उसे हम ज्यों का त्यों नीचे प्रकाशित करते हैं :—

"In the name of God. God is Great.

"FIRMAN OF THE EMPEROR JALAL-ODEEN MAHOMED AKBAR SHAH, PADSHA, GHAZEE.

"Be it known to the Moottasuddies of Malwa, that as the whole of our desires consist in the performance of good actions, and our virtuous intentions are constantly directed to one object, that of delighting and gaining the hearts of our subjects, etc.

"We, on hearing mention made of persons of any religion or faith, whatever, who pass their lives in sanctity, employ their time in spiritual devotion, and are always intent on the contemplation of the Deity, shut our eyes on the external forms of their worship, and considering only the intention of their hearts, we feel a powerful inclination to admit them to our association, from a wish to do what may be acceptable to the

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Deity. On this account, having heard of the extraordinary holiness and of the severe penances performed by Hirbujisoor and his disciples, who reside in Guzerat, and are lately come from thence, we have ordered them to the presence, and they have been ennobled by having permission to kiss the abode of honour.

"After having received their dismissal and leave to proceed to their own country, they made the following request:—That if the King, protector of the poor, would issue orders that during the twelve days of the month Bhodon, called Putchoossur (which are held by the Jains to be particularly holy), no cattle should be slaughtered in the cities where their tribe reside, they would thereby be exalted in the eyes of the world, the lives of a number of living animals would be spared, and the actions of His Majesty would be acceptable to God; and as the persons who made this request came from a distance, and their wishes were not at variance with the ordinances of our religion, but on the contrary were similar in effect with those good works prescribed by the venerable and holy Mussalman, we consented, and gave orders that, during those twelve days called Putchoossur, no animal should be slaughtered.

"The present Sunnud is to endure for ever, and all are enjoined to obey it, and use their endeavours that no one is molested in the performance of his religious ceremonies.

Dated 7th Jumad-ul-Sani, 992, Hijirah."

इस फ़रमान के दिये जाने का प्रमाण एक और फ़रमान में भी है। यह भी अकबर ही का फ़रमान है। इसे उसने जयचन्द्र सूरि की प्रार्थना पर दिया था। इसकी एक नक़ल हमारे पास काशी के मुनिवर इन्दुविजयजी ने भेजी है। यह फ़ारसी में है। ऊपर शाही मुहर की नक़ल है। इसका अक्षरान्तर नीचे दिया जाता है:—

"फ़र्मान जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर बादशाह ग़ाज़ी—

हुक्काम किराम व जागीरदारान व करोरियान व सायर मुत्सद्दियान मुहिम्मात सूबे मुलतान बिदानंद।

"कि चूं हमगी तवज्जोह ख़ातिर ख़ैरंदेश दर आसूदगी जमहूर अनाम बल काफ़्फ़ए जाँदार मसरूफ़ व मातूफ़स्त कि तबक़ात आलम दरमहाद अमन बूदा बफ़राग़े बाल बइबादत हज़रत एज़िद मुतआल इश्तग़ाल नुमायंद। व क़ब्ले अज़ीं मुरताज़ ख़ैरअंदेश जैचंद सूर ख़रतर गच्छ कि बफ़ैज़े मुलाज़िमत हज़रते मा शरफ़ इख़तिसास याफ़ता हक़ीक़त व ख़ुदा तलबी ओ ब ज़हूर पैवस्ता बूद। ओरा मशग़ूल मराहिम शाहंशाही फ़रमूदैम्। मुशारन् इलेहै इल्तिमास नमूद कि पेश अज़ीं हीरविजय सूरिसागर शरफ़ मुलाज़िमत् दरियाफ़्ता बूद। दर हर साल दोवाज़दह रोज़ इस्तदुवा नमूदा बूद कि दरां अय्याम दर मुमालिके महरूसा तसलीख़ जाँदारे न शवद। व अहदे पैरामून मुर्ग़ व माही व अमसाले आँ न गर्दद। व अज़रूय मेहरबानी व जाँ परवरी मुल्तमसे ऊ दरजै क़बूल याफ़्। अकनू उम्मेदवारम् कि यक हफ़्ै दीगर ईं दुवागोय् मिस्ले आँ हुक्मे आली शरफ़ सुदूर याबद्। बिनाबर उमूम राफ़त हुक्म फ़रमूदैम् कि अज़ तारीख़े नौमी ता पूरनमासी अज़ शुक्ल पछ असाढ़ दर हर साल तसलीख़ जाँदारे न शवद्। व अहदे दर मक़ाम आज़ार जाँदार.....मोरे न गरदद्। व अस्ल ख़ुद आँनस्त कि चूँ हज़रते बेचूँ अज़ बराए आदमी चंदीं न्यामतहाय गूनागूं मुहय्या करदा अस्त। दर् हेच वक्त. दर् आज़ार जानवर न शवद्। व शिकमे ख़ुदरा गोर हैवानात न साज़द। लेकिन ब जेहत् बाज़े मसालह दानायान पेश तजवीज़ नमूदा अंद। दरींविला आचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनसिंह सूरि उर्फ़ मानसिंह ब अरज़ अशरफ अक़्दस रसानीद् कि फ़र्माने कि क़ब्ल अज़ीं बशरह सदर अज़ सुदूर याफ़्ता बूद गुम शुदा। बिनाबरां मुताबिक़ मज़मून हुमा फ़रमान मुजद्दद फ़रमान मरहमत फ़रमूदैम्। मे बायद् कि हस्बुल मस्तूर अमल नमूदा ब तक़दीम रसानंद। व अज़ फ़रमूदह तख़ल्लुफ़ व इनहिराफ़ नवरज़ंद। दरीं बाब निहायत एहतमाम व क़दगन् अज़ीम लाज़िम दानिस्ता तग़ाफ़्युर् ब तबद्दुल् बक़वायद आँ राह न दिहंद। तहरीरन् फ़ीरोज़ रोज़ सी व यकुम माह ख़ुरदाद् इलाही सन् ४९।

(१) "ब रिसालए मुक़र्रबुल हज़रत स्सुलतानी दौलत ख़ाँ दर चौकी (उमदे उमरा)

(२) "ज़ुब्दतुलआयान राय मनोहर दरनौबत वाक़या नवीसी ख़ाजा लालचंद"।

जोधपुरनिवासी मुंशी देवीप्रसाद जी ने इसका अनुवाद हिन्दी में इस तरह किया है :—

फ़रमान अकबर बादशाह गाज़ी का।

"सूबे मुलतान के बड़े बड़े हाकिम, जागीरदार, करोड़ी और सब मुत्सद्दी (कर्मचारी) जान लें कि हमारी यही मानसिक इच्छा है कि सारे मनुष्यों और जीव-जन्तुओं को सुख मिले, जिससे सब लोग अमन चैन में रह कर परमात्मा की आराधना में लगे रहें। इससे पहले शुभचिन्तक तपस्वी जयचन्द सूरि खरतर (गच्छ) हमारी सेवा में रहता था। जब उसकी भगवद्भक्ति प्रकट हुई तब हमने उसको अपनी बड़ी बादशाही की मेहरबानियों में मिला लिया। उसने प्रार्थना की कि इससे पहले हीरविजय सूरि ने सेवा में उपस्थित होने का गौरव प्राप्त किया था और हर साल १२ दिन माँगे थे, जिन में बादशाही मुल्कों में कोई जीव मारा न जावे और कोई आदमी किसी पक्षी, मछली और उन जैसे जीवों को कष्ट न दे। उसकी प्रार्थना स्वीकार हो गई थी। अब मैं भी आशा करता हूँ कि एक सप्ताह का और वैसा ही हुक्म इस शुभचिन्तक के वास्ते हो जाय। इसलिए हमने अपनी आम दया से हुक्म फ़रमा दिया कि आषाढ़ शुक्लपक्ष की नवमी से पूर्णमासी तक साल में कोई जीव मारा न जाय और न कोई आदमी किसी जानवर को सतावे। असल बात तो यह है कि जब परमेश्वर ने आदमी के वास्ते भाँति भाँति के पदार्थ उपजाये हैं तब वह कभी किसी जानवर को दुख न दे और अपने पेट को पशुओं का मरघट न बनावे। परन्तु कुछ हेतुओं से अगले बुद्धिमानों ने वैसी तजवीज़ की है। इन दिनों आचार्य्य जिनसिंह उर्फ़ मानसिंह ने अर्ज़ कराई कि पहले जो ऊपर लिखे अनुसार हुक्म हुआ था वह खो गया है। इसलिए हमने उस फ़रमान के अनुसार नया फ़रमान इनायत किया है। चाहिए कि जैसा लिख दिया गया है वैसा ही इस आज्ञा का पालन किया जाय। इस विषय में बहुत बड़ी कोशिश और ताकीद समझ कर इसके नियमों में उलट फेर न होने दें। ता० ३१ ख़ुरदाद इलाही, सन् ४९।

हज़रत बादशाह के पास रहने वाले दौलतख़ाने के हुक्म पहुँचाने से, उमदाअमीर और सहकारी राय मनोहर की चौकी और ख़्वाज़ा लालचंद के वाक़िया (समाचार) लिखने की बारी में लिखा गया"।

इस फरमान से स्पष्ट है कि सूरि को बारह दिन के लिए जीवहिंसा न की जाने के विषय में तो फ़रमान मिला ही था। उनके बाद जयचन्द्र सूरि को भी एक सप्ताह के लिए फ़रमान मिला था।

अकबर ने हीरविजय को जगद्गुरु की पदवी दी। इसके बाद हीरविजय ने शान्तिचन्द्र नामक पण्डित को उपाध्याय बना कर अकबर के दरबार में छोड़ा और १५८४ ईसवी में आपने फ़तेहपुर से प्रस्थान किया। कुछ दिन वे प्रयाग में रहे और कुछ दिन फिर आगरे में। तदनन्तर आप गुजरात को लौट गये। चार महीने मार्ग में आप सिरोही रहे। १५८७ में वे पाटन पहुँचे।

इधर शान्तिचन्द्र ने अकबर की तारीफ़ में कृपा रसकोश नाम की एक पुस्तक बनाई। उसमें उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकबर के औदार्य और कारुण्यदर्शक सारे सत्कार्यों का उल्लेख किया।

इस पुस्तक को शान्तिचन्द्र के मुख से सुन कर अकबर को बहुत सन्तोष हुआ। अतएव, पाटन में हीरविजय का दर्शन करने के अभिप्राय से शान्तिचन्द्र जब फ़तेहपुर से बिदा होने लगे तब अकबर ने अपने हिंसा-प्रतिबन्धक फ़रमान की एक कापी उनके हाथ में दी। उसमें उसने अहिंसा के समय की सीमा को और भी बढ़ा दिया और जज़िया नामक कर उठा दिये जाने का भी हुक्म दे दिया:—

जयवतां धुरि संस्थितिमादधे
नृपतिरेष तमुग्रकरं त्यजन्। कृपारसकोश

सचमुच ही इस कर को उठा कर अकबर ने बहुत बड़ी नीतिनिपुणता दिखलाई। शान्तिचन्द्र के चले जाने पर भानुचन्द्र नामक जैन विद्वान् अकबर के दरबार में रहे। भानुचन्द्र के सिद्धिचन्द्र नामक एक शिष्य थे। इस सिद्धिचन्द्र ने बाणभट्ट की कादम्बरी की टीका लिखी है। इस टीका के अन्तिम वाक्यों से भानुचन्द्र तथा उसके सम्बन्ध की कुछ विशेष बातें मालूम होती हैं। टीके का अन्त इस प्रकार है:—

इतिश्रीपादशाहश्रीअकब्बरजलालुद्दीनसूर्य्यसहस्रनामाध्यापकश्रीशत्रुञ्जयतीर्थकरमोचनाद्यनेकसुकृतविद्यालयमहोपाध्यायश्रीभानुचन्द्रगणितच्छिष्याष्टोत्तरशतावधानसाधकप्रमुदितपादशाहश्रीअकब्बरप्रदत्तखुशफहमपदाभिधानमहोपाध्यायश्रीसिद्धिचन्द्रगणिविरचितायांकादम्बरीटीकायामुत्तरखण्डटीका समाप्ता।

इस से मालूम हुआ कि सिद्धिचन्द्र के शतावधान से प्रसन्न होकर अकबर ने उन्हें खुशफहेम उपाधि से भूषित किया था। इससे यह भी विदित हुआ कि भानुचन्द्र ने अकबर को सूर्य्यसहस्रनाम पढ़ाया था और शत्रुञ्जय-तीर्थ के यात्रियों को जो कर देना पड़ता था उसे भी उन्होंने अकबर से माफ़ करा दिया था। परन्तु हीरविजय सूरि के परामर्श से ही भानुचन्द्र ने यह काम किया था। इसके लिए उन्हें काश्मीर जाना पड़ा था। यह बात १५९३ ईसवी की है।

इसके बाद विजयसेन सूरि को भी बुला कर अकबर ने अपने यहाँ रक्खा। अनेक धार्म्मिक विषयों में उनसे अकबर ने वार्त्तालाप किया। उस समय वहाँ एक प्रकार का धार्म्मिक सम्मेलन सा था। अनेक विद्वान् राजधानी में उपस्थित थे। उनसे विजयसेन सूरि का शास्त्रार्थ हुआ। उन्होंने ३६३ विद्वान् प्रतिवादियों का पराभव किया। उनकी विद्वत्ता पर मुग्ध होकर अकबर ने उन्हें स्वामी की पदवी दी और विजयरत्न ने भानुचन्द्र को उपाध्याय की पदवी। इस पदवीदान का जलसा बड़ी धूम धाम से हुआ। कृपारसकोश के कर्त्ता का कथन है कि इस उपलक्ष्य में शेख़ अबुलफ़ज़ल ने ६०० रुपये और कितनेही घोड़े आदि दिये:—

शेखो रूपकषट्शतीं व्यतिकरे तत्राश्वदानादिभिः

सन् १५८७ ई० में हीरविजय सूरि चार महीने पाटन में रहे। १५८८ में शाह सौवर्णिक तेजपाल की प्रदान की हुई सुपार्श्व और अनन्त की मूर्त्तियों की उन्होंने प्रतिष्ठा कराई। १५९० में इसी तेजपाल की प्रार्थना पर शत्रुञ्जय-तीर्थ में सूरि महोदय ने आदीश्वर का मन्दिर खोलने की धर्म्मक्रिया का समापन किया। इसके बाद दो चार तीर्थों में पर्य्यटन और निवास करके, वृद्ध वय में, हीरविजय सूरि ने, १५९२ ईसवी में, शरीर छोड़ दिया।

इस आदीश्वर के मन्दिर में एक बहुत लम्बा शिला-लेख संस्कृत-पद्य में उत्कीर्ण है। उससे भी सूचित होता है कि अकबर के दरबार में, हीरविजय सूरि का बड़ा मान था। उनके विषय में इस शिला-लेख में है:—

दत्तं साहसधीरहीरविजयश्रीसूरिराज्ञां पुरा
यच्छ्रीशाहिअकब्बरेण धरणीशक्रेण तत्प्रीतये।
तच्चऽक्रेखिलमप्यबालमतिना यत्साज्जगत्साक्षिकं
तत्पत्रं फुरमाणसंज्ञमनघं सर्वा दिशो व्यानशे॥

विजयसेन के विषय में है:—

ये च श्रीमदकब्बरेण विनयादाकारिताः सादरं
श्रीमल्लाभपुरं पुरन्दरपुरं व्यक्तं सुपर्वोत्करैः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूयोभिर्व्रतिभिर्बुधैः परिवृता वेगादलं चक्रिरे
सामोदं सरसं सरोरुहवनं लीलामराला इव ॥

अस्तु। पुराने जैन पण्डितों की बदौलत संस्कृत-भाषा के साहित्य की बहुत वृद्धि हुई और इस देश में पशुहिंसा की कमी भी बहुत कुछ हुई। अतएव इस सम्बन्ध में वे सर्वथा अभिनन्दनीय हैं।

ऊपर, एक जगह, विजयप्रशस्ति नामक महाकाव्य का उल्लेख हुआ है। उसमें २१ सर्ग हैं। हीरसौभाग्य की तरह उसमें भी हीरविजयसूरि का चरित है। साथही अन्त के कुछ सर्गों में विजयसेन सूरि और विजयदेव सूरि का भी वर्णन है। इसके कर्त्ता का नाम हेमविजय गणि है। परन्तु समग्र काव्य इनका लिखा हुआ नहीं। सोलह सर्ग लिख चुकने पर इनकी मृत्यु होगई। अतएव अवशिष्ट पाँच सर्ग इनके गुरु-भाई गुणविजय गणि ने बना कर काव्य-पूर्त्ति की। गुणविजय ने इसकी एक टीका भी विक्रम-संवत् १६८८ में बनाई। यह सटीक काव्य बनारस के जैनयशोविजय-पाठशाला के अधिकारियों ने छाप कर प्रकाशित किया है। सम्पादन बड़ी योग्यता से हुआ है। पण्डित हरगोविन्द बेचरदास ने इसका संशोधन किया है। कोई सात सौ पृष्ठों की जिल्द बँधी हुई पुस्तक है और पाँच रुपये में मिलती है। इसके नवें सर्ग में हीरविजय सूरि और अकबर के समागम का वर्णन है। उसमें भी प्रायः वही बातें हैं जिनका उल्लेख, इस लेख में, ऊपर किया जा चुका है। इतिहास-दृष्टि से यह काव्य बड़े महत्त्व का है। रचना इसकी प्रायः सरस और अर्थगाम्भीर्य्य-पूर्ण है।

पूर्वस्मृति।

पूर्वस्मृति होने पर मन में उठते हैं जो भाव
पड़ता है हम पर उन सबका क्या ही प्रबल प्रभाव।
भूत-भविष्यद्वर्तमान के तारतम्य का ज्ञान
क्रम क्रम से कितनी बातों का आजाता है ध्यान ॥ १ ॥

अहो! समय की गति भी कैसी होती है अविराम
रुकता नहीं एक पल को भी कभी प्रकृति का काम।
चाहे हमें हानि ही पहुँचे चाहे लाभ विशेष
मिल सकता है नियत समय से अधिक न एक निमेष ॥ २ ॥

यथासमय आते जाते हैं वैसे ही दिन-रात
खग-कुल का कल-रव होता है सन्ध्या और प्रभात।
पर हम पर सदैव क्या इन का पड़ता एक प्रभाव
सृष्टि दीखती है वैसी ही हो जैसा निज भाव ॥ ३ ॥

पूर्वस्मृति होती है कैसी मधुर और गम्भीर
मानों हमको अन्य लोक में पहुँचाती सशरीर।
उसका उदय स्वप्न-सम ही हो किन्तु नहीं है व्यर्थ
जीवन-यात्रा करने में वह करती हमें समर्थ ॥ ४ ॥

सुख में भी पूर्वस्मृति शुभ है हो चाहे दुख-पूर्ण
अनायास वह विभव-गर्व को कर देती है चूर्ण।
पूर्व दुःख की दशा सोच हम हो जाते अवसन्न
सहज सहानुभूति सहृदयता होती है उत्पन्न ॥ ५ ॥

पूर्वस्मृति-बल दे कर प्रभु ने किया अतुल उपकार
हो जाता अन्यथा दुःख में मानव-जीवन भार।
सोच सोच कर पिछली बातें हो कर उन में लीन
दुख में भी हम सुख का अनुभव करते हैं स्वाधीन ॥ ६ ॥

जीवन-मध्य जन्म से लेकर अन्त-समय-पर्य्यन्त
होती हैं क्या घटित जगत में घटनायें न अनन्त?
उन सबका सिंहालोकन क्या हो सकता है व्यर्थ?
विस्मृत करने में भी उन को होगा कौन समर्थ? ७

किसी ऐतिहासिक घटना की रङ्गस्थली निहार—
हुए बिना रह सकता है क्या भावों का सञ्चार?
क्या कुछ गान नहीं सुनते हैं वहाँ तुम्हारे कर्ण?
नहीं दीखते हैं क्या तुम को नये नये बहु वर्ण? ८

पूर्व-स्मृति-सागर-मन्थन कर हो कर सफल-प्रयत्न
प्राप्त करो आदर्श नाम का अनुपम उज्ज्वल रत्न।
अनायास ही धरणीतल में हो जाओगे धन्य
है महत्त्व पाने का ऐसा साधन सहज न अन्य ॥ ९ ॥

मैथिलीशरण गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूगोल-विद्या।

[लेखक—साहित्याचार्य्य, प्रोफ़ेसर रामावतार शर्म्मा, एम० ए०]

और विद्याओं से भूगोल-विद्या में यह विलक्षणता है कि इसकी बातों के निःसन्देह असली अनुभव के लिए घर छोड़ना अत्यन्त आवश्यक है। घर बैठे बैठे मनुष्य आकाश की सैर कर सकता है और ज्योतिर्विद्या की बातों का पता लगा सकता है। रुपये हों तो रेल, तार आदि सब कुछ घर में हो सकता है। भूमि खोद कर भूगर्भ का भी बहुत कुछ पता घर ही से लग सकता है। बाहर घूमने से ज्योतिष आदि विद्याओं में सहायता अवश्य मिलती है, पर इन विद्याओं के लिए बाहर जाना अत्यन्त आवश्यक नहीं है। परन्तु भूगोल-विद्या की बातों का यदि स्वतन्त्र और उत्तम अनुभव मनुष्य चाहे तो घर छोड़ कर बाहर घूमे बिना इस काम को नहीं कर सकता। इस लिए शालीन जातियों को, अर्थात् प्रायः परदे में रहने वाली जातियों को, और विद्याओं का कुछ पता लगने पर भी भूगोल-विद्या से अलग ही रहना पड़ा है।

प्राचीन आर्य मेरु के आस पास के स्थानों से बर्फ़ के प्रलय के कारण, तथा, सम्भव है, अपने उत्साह के कारण भी भारत आदि में आये थे। इसी से उन्हें भूगोल-विषयक बहुत सी बातों का यथार्थ पता था। मेरु के चारों ओर सूर्य्य का घूमना तो सभी प्राचीन आर्य-ग्रन्थों में पाया जाता है। मेरु के आस पास बस्ती थी। वहाँ प्राचीन सभ्यता के अधिवास भूमि में गड़े हुए थे। इस बात का पता महाभारत के लिखने वाले भगवान् कृष्ण द्वैपायन को भी था। मेरु के आस पास उत्तर-कुरु में जाकर मरुत्तराज के समय के गड़े हुए सोने के बहुमूल्य पात्रों को लाकर युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के आरम्भ का वर्णन महाभारत में दिया हुआ है। मेरु के प्रदेशों में झबरा हाथी का होना यूरोप के लोगों को अभी विदित हुआ है। पर किरातार्जुनीय के ऐसे क्षुद्र काव्य के प्रणेता भारवि तक को ऐसे हाथियों की स्थिति विदित थी जैसा कि उन्होंने "कचाचितौ विष्वगिवागजौ गजौ" इस वाक्य में दरसाया है। तिमि, राघव आदि मछलियों के सदृश विशाल जन्तु प्रायः सुमेरु के समुद्रों ही में होते हैं। इनकी बातें भी भारतियों को विदित थीं। कालिदास ने तिमियों का मुँह खोल कर, छोटे जन्तुओं से भरे हुए समुद्र के पानी को लेकर, माथे के छिद्रों में से पानी के फ़व्वारे निकाल कर, जन्तुओं को खाने का वर्णन रघुवंश में कैसा अच्छा किया है। देखिए :—

ससत्त्वमादाय नदीमुखाम्भः संमीलयन्तो विवृताननत्वात्।
अमी शिरोभिस्तिमयः सरन्ध्रैरूर्ध्वं वितन्वन्ति जलप्रवाहान्॥

पृथ्वी पर क्षीर-समुद्र से प्राचीन आर्य बर्फ़ से ढके हुए समुद्र को समझते थे। श्वेत-द्वीप, अर्थात् यूरोप, की सफ़ेद जातियों के वासस्थान का भी इन्हें पता था। भास्कराचार्य को पृथ्वी का आकार भी ठिकाने से मालूम था। कदम्ब के गोले के सदृश पृथ्वी में कदम्ब के केसर के सदृश चिपके हुए मनुष्य आदि का वर्णन भास्करीय गोलाध्याय में है। बड़े बड़े कष्ट सह कर प्राचीन भारतीय इधर उधर घूमते थे। आज आङ्ग्लभूमि तक या आमेरिका तक पहुँचने में जो क्लेश नहीं है वह क्लेश पाणिनि को पुरुषपुर अर्थात् पेशावर के आस पास की तक्षशिला और शालातुर की भूमियों से आकर पाटलिपुत्र में पढ़ने के समय हुआ होगा। यदि आर्यों के उत्तर से आकर भारत में रहने का, या यहाँ से अर्जुन आदि का फिर उत्तर-कुरु तक जाने का, ख़याल करें तो आश्चर्य के समुद्र में जी डूबने लगता है। पर प्रकृति माता की विषम अन्ध-लीला विलक्षण है। ज़रा सँभाल कर मनुष्य न रहे तो कैसी कैसी आपत्तियाँ आपड़ती हैं। अर्जुन के सदृश वीर और पाणिनि के सदृश विद्वान् तो कार्य के लिए कहाँ से कहाँ पहुँचते थे और कितने कितने क्लेश सहते थे। और, आज, भट्ठी में घुड़की लगाने वाले तथा नीच जातियों का उबाला हुआ उसना (भुजिया) चावल खाने वालों में भी शुद्धि का ऐसा अभिमान आगया है कि विला-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत जाने के नाम से उभड़ पड़ते हैं। अजी विलायत को कौन कहे, आज कल के विद्वानों की चलती तो अङ्ग या भागलपुर, वङ्ग या बङ्गाल और कलिङ्ग या बालासोर के आस पास की भूमि में जाने पर बिना दस रोज़ गोबर खिलाये और बिना दस रुपया आपसे लिये जात भाई के साथ न भट्ठी में घुड़की लगाने देते न घर पर उसना चावल खाने की इज़ाज़त देते। इन लोगों का तो यह मत है कि मगह में भी न जाना चाहिए क्योंकि कदाचित् वहाँ मरे तो मरने पर धोबी की लादी ढोनी पड़ेगी।

कई सौ बरसों से भारत में वैसीही विलक्षण भूगोल-विद्या चली है जैसी कि अज्ञानावस्था में देशान्तरों में रहती आई है। सुमेरु को एक सोने का पहाड़ समझ लेना, सूर्य्य-विम्ब को रथ का एक पहिया मान लेना, सूर्य्य के सामने अँगूठे भर शरीर वाले साठ हज़ार बालखिल्य आदि की कल्पना कर लेना तो भला अपूर्व कविता है। इसे जाने दीजिए। पृथ्वी का कुछ विलक्षण ही आकार और आधार लोगों ने समझ लिया था। वराह के ऊपर या नीचे कच्छप, उसके ऊपर या कभी कभी नीचे आठ हाथी और आठ हथिनी, उनके ऊपर हज़ार माथे के शेष, फिर शेष के एक माथे पर सरसों के बराबर पृथ्वी, फिर पृथ्वी के समतल पर—जिसमें शेष के माथे पर वह न डगमगाय—कई पहाड़, फिर पृथ्वी के चारों ओर चार दिवारी के सदृश लोकालोक पहाड़—फिर एक उदयाचल जिस पर सूर्य्य उगते हैं और एक अस्ताचल जिस पर सूर्य अस्त होते हैं, फिर सूर्य का डूब कर पृथ्वी के नीचे नीचे समुद्र होकर ऊपर निकलना इत्यादि अनेक कल्पनायें पौराणिक कवि घर में बैठे ही बैठे निकालते गये। एक आध बात की, सम्भव है, कुछ जड़ बुनियाद भी हो जैसे कि सहस्रधार वायुमण्डल को लोगों ने शेष समझ लिया हो; या दक्षिण ध्रुव के किसी सर्पाकार तारा-मण्डल को शेष समझ लिया हो; या सूर्य के प्रकाश के कारण ही मेरुभूमि को सुवर्णमयी समझ ली हो। पर ऐसी बातों के पता लगाने से कुछ विशेष फल नहीं है। कल्पना बढ़ाते बढ़ाते घर में बैठे बैठे [illegible] वालों ने पृथ्वी को और पृथ्वी के अङ्गों को विलक्षण अवस्था को पहुँचा दिया। पृथ्वी के भीतर के खोखले में लोगों ने नाग और नागकन्याओं की स्थिति मान ली। दूर दक्षिण की ओर महाराज धर्मराज की नरक भूमि समझ ली। भारत के बाद देव, गन्धर्व, विद्याधर आदि की भूमि की कल्पना भी करली। विचारे बाणभट्ट तो भूतपत्तन अथवा भूटान और श्रीहट्ट या सिक्किम के आस पास, सुनहरी जटावाले किरात की भूमि के समीपही, मनुष्यभूमि की सीमा समझते थे। लामाओं का अपूर्व दर्शन भारत में होने पर भी मानससरोवर के आस पास त्रिविष्टप अर्थात् तिब्बत की भूमि को यक्षभूमि कौन नहीं समझता है? यहाँ के लोगों को अश्वमुख किन्नर आदि शब्दों से लोग बहुत दिनों से पुकारते आये। अज्ञान का कैसा माहात्म्य है कि भोज के पिता सिन्धुराज के समय में परिमल महा कवि ने तो भोज की मैया शशिप्रभादेवी को नागपुर की नागकन्या बना डाला है। बड़े बड़े नरसर्पों से सुरक्षित शशिप्रभा का वर्णन परिमल ने अनेक बार किया है। अब कहिए जिनकी दृष्टि नर्मदा के पार उतरतेही नागपुर अर्थात् नागलोक और अल्मोड़ा के ऊपर ही विद्याधरों की भूमि है उनसे भूगोलविद्या की क्या आशा की जाय? ऐसे समयों में केवल भास्कर के सदृश दो एक ज्योतिषियों को सूर्यसिद्धान्त आदि प्राचीन ग्रन्थों से एक आध बाहरी नगरों का नाम मालूम था। वे पृथ्वी के बीच लङ्का, उसके बहुत दूर पूरब यमकोटि, और बहुत दूर पच्छिम रोमक नगर, तथा ठीक नीचे सिद्धपुर जानते थे। इनमें से लङ्का और यमकोटि का तो आज कुछ पता ही नहीं। कितने ही लोग सिंहल को लङ्का समझते हैं। वर्त्तमान यवद्वीप को यमकोटि समझ लें तो कुछ क्षति नहीं है। रोमक नगर तो प्रसिद्ध ही है। आज भी इतिहास में उसकी कीर्ति-पताका फहरा रही है। सिकन्दरिया अमेरिका के मक्सिका राज्य को समझ सकते हैं। Mexico. जबसे पराशर आदि दक्खिनी धर्मशास्त्रियों ने समुद्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यात्रा पर अपना तुम्बा फोड़ा और आलस्य भगवान् की कृपा बढ़ती गई तबसे तो नगरों आदि के नामों का भी पता लगना दुस्तर हो गया। आज कल के व्यवस्थापकों को तो प्रायश्चित्त आदि के लिए देश-व्यवस्था निकालने में बड़ी ही दिक्कत होती है। चीनी-डांट, मरीच, हवा का मुल्क, ब्रह्मा का देश आदि पवित्र देवता या नैवेद्य के नाम से किसी देश का व्यवहार किया गया तो वह विलायत से कितना ही दूर क्यों न हो शास्त्री लोग वहाँ जाने आने वालों को कुछ नहीं कहते। विलायत का भी नाम मालपूआ भूमि के सदृश रहता तो भी प्रायः कुछ न बोलते। पर फ़्रान्स, विलायत, इङ्गलैंड, जर्मनी आदि अँगरेज़ी, फ़ारसी के नाम से वे लोग ऐसा घबरा उठते हैं कि उन देशों की स्थिति आदि का विशेष पता लगाये बिना ही राम राम छीः छीः कहने लगते हैं। और, वे प्रायश्चित्त के कौन कहे, प्रायश्चित्त करने पर भी, वहाँ जाने आने वालों से बिना मुक़द्दमा पड़े बात चीत नहीं करना चाहते।

ख़ैर, जो कुछ हो। आज तो रात दिन पृथ्वी पर यहाँ से वहाँ घूमने वाले और उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग का पता लगानेवाले अद्वितीय उत्साही पाश्चात्य वीरों की कृपा से भूगोल-विद्या का परोक्ष ज्ञान हमें बहुत कुछ हो रहा है। चार आने की भूगोल की प्रथम पुस्तिका से जितना छोटी पाठशालाओं के लड़कों को पता लगता है उतना इस समय लाख लोक की संहिता से भी बड़े बड़े विद्वानों को पता लगना दुस्तर है। विद्या तो भारतियों का धर्म ही है। हज़ार कोई कुछ कहे अन्ततः अविद्या से नाक सिकोड़ना और विद्या में मग्न रहना भारतियों को प्यारा लगे ही गा। हम दिग्गजों के साथ पाताल के अन्धकार में कब तक रहेंगे। पृथ्वी, आकाश आदि की असली स्थिति का पता ठिकाना, जहाँ से हो वहाँ से लगा कर, शाब्दिक परोक्षानुभव को, पैरों से घूम घूम कर और आँखों से देख देख कर, प्रत्यक्षानुभव में लाने का यत्न अवश्य ही करेंगे। यहाँ हम लोगों में इसी परोक्षानुभव का कुछ उपाय किया जा रहा है जिससे तेजस्वी लोग अपरोक्षानुभूति के व्यापार में सहायता पावें।

भास्कर आदि जैसा समझते थे वैसी ही प्रायः गोल पृथ्वी है। सूर्य के चारों ओर वेग से घूमने के कारण सुमेरु और कुमेरु अर्थात् दोनों ध्रुवों पर पृथ्वी चिपटी हुई है। अर्थात् भूगोल का पूर्व से पश्चिम का व्यास उत्तर से दक्षिण के व्यास से कुछ बड़ा है। प्रायः त्रिकोण के आकार का यह भारतवर्ष है। भारत के दक्षिण भारतीय महार्णव है। दक्खिन में यह बहुत दूर तक चला गया है। अभी तक उत्तर से दक्खिन तक इस समुद्र के आरपार कोई जा नहीं सका है। भारत के उत्तर हिमाचल है। यह पृथ्वी पर सबसे ऊँचा पहाड़ है। पहाड़ क्या, यह पहाड़ों की शृङ्खला है। हिमाचल के उत्तर चीन साम्राज्य है। चीन के उत्तर अत्यन्त विस्तृत मरु-प्राय ठंढी श्वेतभूमि है। यहाँ रूप्यों का साम्राज्य है। इसके उत्तर प्रायः बर्फ़ से ढका हुआ उत्तरीय समुद्र है। भारत के पूरब ब्रह्म देश है * जिसकी मध्य-भूमि को श्यामदेश और दक्षिणी जिह्वा को मलयदेश कहते हैं। ब्रह्म-देश के दक्षिण, समुद्र में, वरुणद्वीप, सुमित्रद्वीप, यवद्वीप, शलभद्वीप, नवगुणद्वीप आदि टापू हैं। इन टापुओं के दक्खिन एक बहुत बड़ा टापू है जिसे ऑष्ट्रालय कहते हैं। ऑष्ट्रालय से दक्खिन और पूरब के कोने पर नवजीव-भूमि है। ऑष्ट्रालय के पूरब छोटे छोटे बहुत से टापू हैं जो सब मिल कर पूर्णास्य-द्वीप-समूह के नाम से प्रसिद्ध हैं। मलयजिह्वा के पूरब फलप नाम से प्रसिद्ध द्वीपकदम्ब हैं। चीन के पूरब, समुद्र में, कई बड़े बड़े द्वीप हैं जो कर्पूरद्वीप के नाम से प्रसिद्ध हैं। ब्रह्म-देश के पूरब कर्पूरद्वीप आदि का आश्रय शान्त महार्णव है, जो अमेरिका के दोनों भागों के पच्छिम किनारे तक पहुँच गया है। इसका विस्तीर्ण दक्षिणमुख भारतीय महार्णव से मिला हुआ है तथा अत्यन्त सङ्कुचित उत्तरमुख वराङ्गबाहु

* यहाँ इरावती नदी है। उसके आस पास श्वेत हाथी मिलते हैं जिन्हें ऐरावत या (पूर्वदिक्पाल) इन्द्र का हाथी कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के नाम से प्रसिद्ध है और उत्तरध्रुव के समुद्र से जा मिला है। भारत के पच्छिम-दक्षिण की ओर आरय्य देश है। आरय्यों के उत्तर पारसीक देश है। पारसीकों के उत्तर रूष्य और चीन साम्राज्यों के अंश हैं। आरय्यों के तथा पारसीकों के पच्छिम विस्तीर्ण तुरुष्क राज्य है। आरय्यों के दक्षिण भारतीय समुद्र का एक सङ्कुचित बाहु है, जिसे रक्तसागर कहते हैं। रक्तसागर के दक्षिण बहुत बड़ी अफ़्रिक़ा-भूमि है। अफ़्रिक़ा-भूमि के पूरब एक बड़ा टापू है, जिसे मदागस्कर कहते हैं। रक्तसागर के पच्छिम ओर अफ़्रिक़ा और आरय्य भूमि से ज़रासा सम्बन्ध था, जिसे लोग सुबीज-ग्रीवा कहते थे। इसे काट कर पाश्चात्यों ने सुबीज-कुल्या बनाई है। सुबीजग्रीवा के पच्छिम आफ़्रिक़ा-भूमि से उत्तर मध्य-सागर है। चिरकाल तक जैसे भारतीय लोग भारतही के कुछ अंशों को मनुष्य-भूमि समझते थे और उनके आगे की भूमियों का इन्हें कुछ भी विशेष ज्ञान नहीं था वैसेही मध्यसागर के आस पास के सभ्य लोग बहुत दिनों तक मध्यसागर के आस पास की भूमि को छोड़ कर और किसी भूमि का विशेष ज्ञान नहीं रखते थे। मध्यसागर के उत्तर अंश में पृथ्वी की तीन जिह्वायें हैं। पूर्वी जिह्वा का नाम यवन-देश है। बीचवाली जिह्वा का नाम इष्टालय-देश है। पश्चिमी जिह्वा का नाम सुफेन-देश है। यवन-देश के उत्तर तुरुष्क और रूष्य लोग हैं। तुरुष्कों के पच्छिम हूणगृह नाम की भूमि है। हूणगृह के पच्छिम अस्त्रिय-भूमि है। इसके पच्छिम और इष्टालयों के उत्तर शर्मण्य-साम्राज्य है। इष्टालयों के पच्छिम और शर्मण्यों से दक्खिन, सुफेनों के उत्तर में, स्फाराङ्ग (या फ़्रांस) देश है। सुफेनों के, फ्रांसीयों के और शर्मण्यों के पच्छिम तुङ्गमहार्णव है। इसका दक्षिण-मुख भारत महार्णव से और उत्तर-मुख सुमेरु-समुद्र से लगा हुआ है। शर्मण्यों के पच्छिम और फ़्रांसीयों के उत्तर तुङ्गसागर में श्वेतद्वीप अथवा आङ्गलभूमि है। तुङ्गसागर के उत्तर-मुखमें हिमभूमि नाम का बड़ा टापू है। तुङ्गमहार्णव के पच्छिम, उत्तर की ओर, अति विस्तीर्ण हरित-भूमि है। हरित-भूमि के दक्खिन अमेरिका भूमि का उत्तर खण्ड है, जिसके दक्खिन अमेरिका का दक्षिण-खण्ड है। उत्तर और दक्षिण अमेरिका को जोड़नेवाली सङ्कुचितभूमि पर्णामयग्रीवा कहाती है*। अमेरिका के पच्छिम हम लोगों का पूर्वपरिचित शान्त महार्णव है। दक्षिण-अमेरिका की दक्षिण-जिह्वा शान्त महार्णव में घुसी हुई है। और, उत्तर-अमेरिका उत्तर-प्रदेश सुमेरु-समुद्र से मिले हुए हैं। देखें अमेरिका के बीच तुङ्ग-महार्णव में पूर्वसिन्धु नाम द्वीप-समूह है।

पृथ्वी के दोनों ध्रुवों के ठीक बीच से पूरब पच्छिम होती हुई जो रेखा मानी गई है, जहाँ सूर्य के किरण सीधे पड़ते हैं और इस कारण गरमी पड़ती है, उसे भूमध्य-रेखा कहते हैं। रात दिन बराबर होते हैं। इसलिए इसे विषुवरेखा या विषुवरेखा भी कहते हैं। इसके आस पास की भूमि को उष्ण-मेखला कहते हैं। उष्ण-मेखला के दोनों तरफ़ की भूमि को समशीतोष्णमेखला कहते हैं। दोनों ध्रुवों के चारों ओर की भूमि को शीत मेखला कहते हैं। सर्दी-गरमी के कारण पृथ्वी के ऐसे विभाग किये गये हैं। इसके अतिरिक्त पेड़ जन्तु आदि के हिसाब से भी पृथ्वी के विभाग लोगों ने किये हैं। पौराणिक भारतीयों ने आम-जामुन की भूमि को जम्बूद्वीप कहा था। इसी के अनेक खण्डों में से एक खण्ड भारतवर्ष है। पर इस जामुन कुछ अजीब होती थी। एक एक जामुन हाथी के बराबर होती थी और उसका रस बहता सोना हो जाता था। इसी रस की नदी, अर्थात् जम्बू नदी, से उत्पन्न होने के कारण लोगों ने [illegible] का नाम जाम्बूनद रक्खा था। और भी [illegible]

* सुबीजग्रीवा के सदृश पर्णामयग्रीवा को भी अब पाश्चात्य लोग प्रायः काट चुके हैं। कुछ दिनों में पर्णामय-कुल्या से होकर शान्त-सागर से शान्त-सागर में जा सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि अनेक द्वीप लोगों ने बताये थे, जिनकी स्थिति आदि का आज कुछ पता नहीं है। पौधों के हिसाब से आज कल पृथ्वी की पाँच मेखलायें समझी जाती हैं। एक सुमेरु मेखला है, जहाँ कि बहुत बरफ़ है और बरफ़वाले पौधे होते हैं। सुमेरुमेखला के चारों ओर उत्तर-मेखला है। उत्तर-मेखला के चारों ओर समशीतोष्ण-मेखला है। उसके बाद दक्षिण-मेखला है। उसके बाद समुद्रमेखला। सुमेरुप्रदेशों में कोई से भी सूक्ष्म कुछ ऐसे उद्भिद् होते हैं जिनसे कहीं कहीं बरफ़ का रङ्गमात्र बदल जाता है। इनके अतिरिक्त और कोई पौधे वहाँ नहीं होते। इसके बाद की भूमि में कई प्रकार की काइयाँ और झाड़ियाँ होती हैं। कितने ही पौधे, जो और जगह पूरे वृक्ष के रूप में बढ़ते हैं, यहाँ बिलस्त आध बिलस्त की झाड़ी होकर रह जाते हैं। इसके बाद की भूमि में कितने ही सदा हरे रहने वाले और कितने ही पत्ते बदलनेवाले वृक्ष होते हैं। और अधिक गरम भूमि में, जहाँ पानी कम होता है, केवल घास-पात होते हैं। जहाँ और भी कम पानी होता है वहाँ केवल मरुस्थल के कुछ पौधों के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। जहाँ पानी भी ख़ूब होता है और सूर्य का ताप और सूर्य की प्रभा ख़ूब प्रचण्ड है ऐसे समशीतोष्ण देशों में हज़ारों प्रकार के पौधे होते हैं। जीवों के अनुसार भी लोगों ने, इसी तरह, मेखलाओं का विभाग किया है।

(असमाप्त)

मनुष्य क्या चीज़ है ?

[लेखक—डाक्टर रामनारायण शर्म्मा, एल० एम० एस०]

आज कल हिन्दी भाषा के पढ़ने-लिखने वालों में प्रायः ऐसे मनुष्य बहुत हैं जिनको यातो वैज्ञानिक शास्त्रों से अनभिज्ञता और उदासीनता है, या वे इन शास्त्रों के सिद्धान्तों से लिल्लाही बुग़्ज़ रखते हैं। इसी कारण धार्म्मिक पक्षपात-रहित हिन्दी-लेखकों की संख्या बहुत ही कम है। यदि कोई लेखक निर्भय होकर कभी कभी किसी वैज्ञानिक विषय पर लिखने का साहस कर बैठता है तो हिन्दी-समाचार-पत्रों के धार्म्मिक सम्पादक, बिना समझे-बूझे, उसको आड़े हाथों ले डालते हैं। इसका फल यह होता है कि अन्य लेखक, इन महन्तों की घुड़कियों से डर कर, वैसे लेख लिखने की हिम्मत ही नहीं करते। हम नहीं जानते हमारे इस लेख पर क्या क्या अत्याचार किये जायँगे। ख़ैर, कुछ भी हो, आज हम सरस्वती के पाठकों को, संक्षेपक में, डार्विन के विकाश-सिद्धान्त का तात्पर्य्य समझाने का प्रयत्न करते हैं।

जब महात्मा डार्विन ने विकाशसिद्धान्त पर अनुसन्धान करके "ओरिजिन आफ़् स्पिशीज़" तथा अन्य पुस्तकें दुनिया के सामने पेश कीं तब समस्त युरोप में एकदम हलचल मच गई। कई प्रकार की झूँठी तोहमतों तथा अनुचित उपहास और फबतियों का इस महात्मा को सामना करना पड़ा। पादरी लोग तो डार्विन को एकदम नास्तिक और 'हीदन' (Heathen) कह कर भरे बाज़ार गालियाँ देने लगे।

इस सब विरोध के होते हुए भी धीरे धीरे विकाशसिद्धान्त की सचाई दुनिया में फैलती गई। अब तो वह वैज्ञानिकों का एक प्रकार गुरुमंत्र सा बन गई है। इस समय विज्ञान-शास्त्र का असली जानने वाला ऐसा कोई भी न होगा जो इसको न मानता हो।

इस छोटे से लेख में हम विकाशसिद्धान्त का सविस्तर वर्णन करने में असमर्थ हैं। इसमें हम संसार के केवल दो जीवों की तुलना करके, अन्त में, दो चार शब्द असली सिद्धान्त पर लिखेंगे। पहले तो हमें विचार इस बात पर करना है कि

"मनुष्य क्या चीज़ है ?"

एक समय एक रानी अपने कुमार के साथ जङ्गल में रास्ता भूल कर एक गड़रिये की झोंपड़ी में जा पहुँची। गड़रिये की स्त्री तथा बालबच्चों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकुमार को जब वस्त्रहीन देखा तब इस बात को देख कर आश्चर्य्य किया कि इसके शरीर की बनावट भी बिलकुल उनकी जैसी है। दूसरे प्रकार का आश्चर्य्य पशु के शरीर की बनावट (Comparative Anatomy) अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियों को प्रतिदिन होता है। ज्यों ज्यों नश्तर से चीर फाड़ करने पर एक एक रगपट्ठा उनके सामने आता है, अथवा जैसे जैसे उनको सूक्ष्म-दर्शी यन्त्र की सहायता से सूक्ष्म तन्तु दृष्टिगोचर होते हैं वैसे ही वैसे उनके मुँह से एकदम निकल पड़ता है कि इनमें और मनुष्य में बड़ी समानता है। सौ वर्ष पूर्व्व लोगों का पूर्ण विश्वास था कि अन्य जीवों की बनावट से मनुष्य की बनावट बिलकुल ही भिन्न है। निम्न लिखित तीन कारणों से उनकी समझ में यह फेर पड़ा हुआ था—

प्रथम—पुरानी लकीर का फकीरपन, अथवा यों कहिए कि संसारी भेड़ियाधसानपन।

द्वितीय—प्राचीन शास्त्रों पर सन्देह करने अथवा विचार करने की मनादी।

तृतीय—सूक्ष्मदर्शी आदि यन्त्रों का अभाव और चीरफाड़ के लिए पशुओं तथा मनुष्यों के मृतक शरीर प्राप्त करने में कठिनता। इतिहास से मालूम होता है कि युरोप में, पन्द्रहवीं सदी तक, मनुष्य के मृतक शरीर की चीरफाड़ करने वाले को फाँसी दी जाती थी। वैसेलियस नामी एक विद्वान् ने, सन् १५४३ ईसवी में, पहले पहल, मनुष्य के शरीर की बनावट पर पुस्तक लिखी। उस पर क्रुद्ध होकर पादरी लोगों ने इतनी आपत्ति उठाई कि उस बेचारे को फाँसी का हुक्म हुआ।

यदि मनुष्य अन्य जीवों से भिन्न नहीं है तो क्या वह भी अन्य पशुओं की तरह एक पशु है? सन् १८०३ ईसवी में क्यूवीयर (Cuvier) नामक एक फ्रेञ्च डाक्टर ने पहले पहल यह दिखाया कि जीवित जगत् में "मनुष्य" अकेला सारे पशुओं से पृथक् नहीं है, किन्तु पशु-समुदायों में जैसे अन्य पशु हैं वैसे ही वह भी एक समुदाय का जानवर है। क्यूवियर के उपरान्त कई और ग्रन्थ इस विचार की पुष्टि में लिखे गये। अन्त में, सन् १८५९ ईसवी में, महामान्य डार्विन और अध्यापक हक्सली इत्यादि ने स्पष्टतापूर्वक प्रमाणित कर दिया कि मनुष्य भी रीढ की हड्डी वाले (Vertebrate) पशुओं में से एक पशु है।

केवल इतना ही नहीं, सूक्ष्मदर्शक यंत्र की सहायता द्वारा जीवधारियों की देहों के सूक्ष्म परमाणुओं की परीक्षा से यहाँ तक साबित हुआ है कि हर एक जीव के सूक्ष्म परमाणु (Cell) एक ही प्रकार की बनावट के हैं। हम कभी किसी और लेख में पाठकों को दिखायेंगे कि सारे जीवधारी एक ही सजीव सूक्ष्म परमाणु (Cell) की लीला से गर्भ में बन जाते हैं।

उच्च श्रेणी के जीवों की चार कक्षायें हैं:—

(१) स्तन-पोषित
(२) पक्षी
(३) युगचर
(४) मछलियाँ } जल तथा थल दोनों में विचरने वाले जीव

नीच-श्रेणी के जानवरों को बेरीढ की हड्डी वाले कहते हैं, जिनमें चिउँटी, कीड़े, मकोड़े इत्यादि शामिल हैं।

उच्च श्रेणी के सब जानवरों की (मनुष्य तक की) बनावट मिलती है। सबके आन्तरिक अस्थिपञ्जर होता है, जो हड्डियों का एक प्रकार का ढांचा है जिसमें रीढ की हड्डी और खोपड़ी मुख्य है। मछली से लेकर इस श्रेणी के सब जीवों में "मस्तिष्क" (Brain) तथा "रीढरस्सी" (Spinal Cord) ये दोनों ज्ञानकेन्द्र पाये जाते हैं। मस्तिष्क की उत्कृष्टता और नीचता में यद्यपि भेद है, किन्तु उसकी अन्दरूनी बनावट एक ही तरह की है। जिस तरह ढाके की मलमल और गज़ी के कपड़े में बनावट की नफ़ासत में ही फ़र्क होता है, तानेबाने या रुई में नहीं, उसी तरह का भेद मस्तिष्क में भी होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल अस्थिपञ्जर और ज्ञानकेन्द्र ही एक से नहीं हैं, किन्तु हर बाहरी और भीतरी अवयव में भी समानता पाई जाती है। इससे पूर्णतया सिद्ध होता है कि मनुष्य उसी श्रेणी का है जिसके रीढ की हड्डी वाले अन्य पशु हैं।

क्या मनुष्य चौपाया है ?

दोपाये पक्षी और आदमी सबके सब चार पाँव रखते हैं। उच्च श्रेणी की सब कक्षाओं के जानवरों के पैरों की बनावट एक ही ढँग की है, जिसमें कुछ ख़ास ख़ास हड्डियाँ पाई जाती हैं। आदमी की बाँहें, तथा पक्षियों के परों की हड्डियाँ, चौपाये पशुओं के आगे वाले पावों की हड्डियों से बिलकुल तिल तिल मिलती हैं। जब तक लोग मनुष्य को पशुओं से पृथक् जीव मानते रहे तब तक वे अन्य पशुओं को चौपाया, दोदस्ता या चौदस्ता कहते रहे। उनके विचार में बन्दर के चार बाँहें थीं। इसलिए वे बन्दर को चौदस्ता (Quadrumana) कहते थे। अब तक कई पुराने ढर्रे के पुरुष बन्दर को चौदस्ता समझते हैं। अध्यापक हैक्कल का कथन है कि यदि हम सब उच्च कोटी के जीवों के पैरों की हड्डियों का मिलान करने बैठें तो मालूम होगा कि बनावट में सबकी हड्डियाँ बाल बाल मिलती हैं। एक बात, जो हमारा ध्यान ख़ास कर अपनी तरफ़ आकर्षित करती है, यह है कि पाँच उँगलियाँ, जो हर हाथ-पाँव में, कारबोनिफरस (Carboniferous) काल में, युगचर पशुओं में, थीं वे पुश्त-दरपुश्त इस क़दर जीवों में बनी रही हैं कि आदमी में भी अब तक हैं। न केवल हड्डियाँ ही, किन्तु जोड़, पुट्ठे, स्नायु, ज्ञान-तन्तु इत्यादि जो कुछ चौपाये जानवरों में है वही आदमियों में भी पाया जाता है। इन सब बातों से यह पूर्णतया सिद्ध है कि मनुष्य भी चौपाया है। यदि इस बात को यहाँ विस्तार देने लगें तो बात की बात में एक पोथी बन जाय। अतएव जिन पाठकों को अपनी उत्सुकता सन्तुष्ट करनी हो वे विकाशसिद्धान्त के ग्रन्थों का अवलोकन करें।

उच्च श्रेणी के जीवों में मनुष्य "स्तनपायी" जीवों की कक्षा में है। यह कक्षा "युगचर" कक्षा से विकसित हुई है। मनुष्य तथा इन पशुओं के अङ्गों में बाहरी तथा भीतरी, कुछ अन्तर पाया जाता है। बाहरी अन्तर यह है कि मनुष्य तथा इस कक्षा के जीवों की देह पर बाल होते हैं, तथा इनके चमड़े में दो प्रकार की ग्रन्थियाँ (Glands) मिलती हैं। एक श्वेतोत्पादक जिनमें पसीना बनता है, दूसरी सीबेसियस ग्लेण्ड्स (Sebacious Glands) जिनमें मोम जैसी एक चिकनी वस्तु पैदा होती है। इन "सीबेसियस" ग्रन्थियों का इस कक्षा के जीवों में पेट के चमड़े पर विशेष रूपान्तर होता है। उसी को स्तन कहते हैं। उन्हीं से ये जीव अपने बच्चों को दूध पिलाते हैं। इसी से इनका नाम स्तनपायी जीव पड़ गया है। स्तन की बनावट छोटी छोटी ग्रन्थियों से है। उसके ऊपर चमड़े की एक थैली मढ़ी होती है।

भीतरी अङ्गों में, इस कक्षा के जीवों में, अन्य कक्षा के जीवों से यह भेद होता है कि इनकी छाती और पेट के बीच में एक परदा होता है जो फेफड़ों को जिगर, गुर्दे, मेदा, पिलही इत्यादि अङ्गों से पृथक् करता है। यह भेद सभी स्तनपायी कक्षा के जीवों में पाया जाता है, केवल मनुष्य में ही नहीं।

इस स्तनपायी कक्षा में भी तीन छोटी छोटी कक्षायें हैं (१) मानोट्रीम्स। (२) मारसुपीपल्स। (३) प्लेसेण्टैल्स। इनका विकास भिन्न भिन्न काल में, एक दूसरे में से, एक दूसरे के पीछे, क्रम से, होता गया है। हर समुदाय में, समय के फेर तथा जीव की आवश्यकताओं या अपने बच्चों की परवरिश के लिहाज़ से, दिन दिन नये नये परिवर्तन होते गये। इनमें से एक परिवर्तन नाल-तन्तु की उत्पत्ति है। इस नाल-तन्तु द्वारा ये जीव अपनी सन्तान का, गर्भ में भी, पालन-पोषण कर लेते हैं।

मनुष्य प्लेसेण्टेल जीव है। इसके चार समुदाय हैं। (१) रोडेण्ट्स जैसे चूहे, ख़रगोश वग़ैरह। (२) अङ्गुलेटा—(३) कार्निवोरा जैसे चीता, बिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्यादि गोश्तख़ोर जीव और (४) प्राईमेटीज़ जैसे मनुष्य, लङ्गूर, वनमानुस इत्यादि।

इन सब पशुओं में हड्डियाँ लम्बी होती हैं, जिनकी बनावट प्राचीन समय में पेड़ों पर रहने की आदत होने के कारण ख़ास तरह की है। हाथ-पैर की पाँच पाँच उँगलियों में नाख़न होते हैं, पंजे नहीं। सब में दाँतों की संख्या एक सी होती है।

आदमी की उत्पत्ति पुरानी दुनिया के बन्दरों से है, जिनके बत्तीस दाँत होते हैं। पुरानी दुनिया के बन्दर कुछ श्वानमुख और पूँछदार होते हैं, कुछ बे पूँछ और मनुष्य-मुख होते हैं। मनुष्यों और इन बन्दरों में हर बात में समानता है जिससे यह परिणाम निकलता है कि मनुष्य की उत्पत्ति इन बे पूँछ के बन्दरों से ही हुई है। किन्तु आजकल के बन्दरों से नहीं। उन बन्दरों और आदमियों दोनों के शरीर में दो सौ हड्डियाँ होती हैं। दोनों के मस्तिष्क उतने ही सूक्ष्म परमाणुओं से बने हैं। हृदय में दोनों के चार ख़ाने हैं। दाँत बत्तीस हैं, जिनकी बनावट दोनों में एक सी है। अन्दर के सब अङ्ग तथा गुप्त अङ्ग, भीतर बाहर, सब एक से हैं। इन सब बातों से स्पष्टतया पता लगता है कि मनुष्य और बन्दर एक ही कक्षा के जीव हैं। यद्यपि बन्दर और मनुष्य में कई भिन्नतायें भी हैं, किन्तु वैसे तो भिन्नतायें सभ्य और असभ्य जातियों में भी होती हैं, और बहुत अधिक होती हैं।

मदन-दहन।

(कुमारसम्भव से अनुवादित)

(१)

प्रिय वसन्त, प्रियतमा प्राणसम रति भी, दोनों निपट सशङ्क
मन्मथ के अनुगामी होकर चले साथ उसके सातङ्क
"मैं अवश्य सुरकार्य करूँगा, चाहे हो शरीर भी नाश"—
यह दृढ़ कर, हिमशैल-शृङ्ग पर गया अनङ्ग शिवाश्रम-पास॥

(२)

उस आश्रम के आस पास थे जितने मुनिवर वनवासी,
असमय में ही देख आगमन ऋतुपति का मायाराशी।
सहसा अति गुरुतर विकार का, कई बार, खाकर झोंका,
किसी प्रकार उन्होंने अपना विचलित-चित्त-वेग रोका॥

(३)

यात्रा में सम्मुख पड़ता है जहाँ शुक्र, उस देश-समान,
दृष्टि बचाय नन्दिकेश्वर की, बड़े बड़े कर यत्न-विधान।
सुरपुन्नाग-वृक्ष-शाखायें फैली थीं जिस पर सविशेष,
शङ्कर के समाधि-मण्डप में रतिनायक ने किया प्रवेश॥

(४)

पावन देवदारु तरुवर की विशद वेदिका सुखदायी,
शारदूल के रुचिर चर्म से भली भाँति जो थी छाई।
योगमग्न त्रिनयन को बैठे हुए वहीं उसके ऊपर
शीघ्र शरीर छोड़ने वाले मनसिज ने देखा जाकर॥

(५)

तन का भाग ऊपरी स्थिर था, वीरासन में थे शङ्कर,
बैठे थे सीधे ही वे, पर कन्धे थे विनम्र अतितर।
उलटे रक्खे देख पाणियुग, मन में ऐसा आता था,
खिला कमल उनकी गोदी में मानो शोभा पाता था॥

(६)

लिपटा कर भुजङ्गवर ऊँचा जटा-कलाप बनाया था,
दोनों कानों में द्विगुणित कर अक्षमाल लटकाया था।
कृष्णसार-मृग-चर्म उन्होंने, गाँठ बाँध, लिपटाया था,
कण्ठकालिमा ने कालापन उसका बहुत बढ़ाया था॥

(७)

जो थोड़े ही भासमान थे, जिनकी अचल उग्र तारा,
और, जिन्हों ने भुला दिया था भृकुटी का विलास सारा।
पलकजाल जिनके निश्चल थे किरण अधोमुख पड़ते थे—
ऐसे नयनों से नासा की नोक महेश देखते थे॥

(८)

वारिद-वृन्द बिना वर्षा के जैसे शोभा पाता है,
बिना लोल *कल्लोल-कला के जैसे सिन्धु दिखाता है।
बिना वायुवाले मन्दिर में कम्पहीन दीपक जैसे
अन्तर्गतमारुतनिरोध से शम्भु हो रहे थे तैसे॥

(९)

विमल ज्योति की छटा शीश से होकर उदित, निकलती थी,
निकल, तीसरे दृग के पथ से जो सब ओर फैलती थी।

---

* कल्लोल—लहर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मदन-दहन ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदयदाही बाणप्रहार ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उससे, मृदुल-मृणाल-तन्तु की माला से भी कोमलतर
बालचन्द्रमा की शोभा को म्लान कर रहे थे शङ्कर ॥

(१०)

त्रिगुण तीन द्वारों में मन का आवागमन रोक ईशान
वश में कर उसको समाधि से, दे हृदयारविन्द में स्थान।
जिसको अविनाशी कहते हैं बड़े बड़े विज्ञान-निधान
उस आत्मा को वह अपने में देख रहे थे करके ध्यान ॥

(११)

मन से भी जिनकी न धर्षणा हो सकती है किसी प्रकार,
ऐसे दुराधर्ष त्रिनयन को देख समीप-भाग से मार।
वह, यह सका न जान, तनिक भी शिथिलित-कर होकर डर से,
शर भी, और शरासन भी, कब छूट पड़े उसके कर से ॥

(१२)

तदुपरान्त, निज सुन्दरता से मन्मथ का प्रायः निःशेष
हुआ वीर्य पुनरुज्जीवित सा फिर से करती हुई विशेष।
साथ लिये वन की दो देवी, धरती हुई शम्भु का ध्यान,
हुई नयनगोचर गिरिकन्या गिरिजा गुण-गौरव की खान ॥

(१३)

*काम-कामिनी को भी लज्जित करनेवाली बारंबार,
उस सर्वाङ्ग-सुन्दरी को कर लोचनगोचर भले प्रकार।
अति दुर्जय, अति अगम, जितेन्द्रिय, शूलपाणि शिव के स्वाधीन,
अपनी कार्य्यसिद्धि की आशा मनसिज को फिर हुई नवीन ॥

(१४)

होनहार निज पति शङ्कर का तपोभवन जो था सुन्दर,
उसके परम पवित्र द्वार पर शैलसुता पहुँची जाकर ॥
अन्तर्गत परमात्मासंज्ञक तेजःपुञ्ज विलोकन कर,
प्रखर-योग-साधक समाधि से विरत शम्भु भी हुए उधर ॥

(१५)

जिनके आसन के नीचे के भूमिभाग को सर्पाधीश
फण-सहस्र पर बड़े यत्न से रक्खे रहा लगाये शीश।
दे प्रवेश निज प्राणवायु को धीरे धीरे युक्ति-समेत
छोड़, निविड़ वीरासन अपना शिथिलित करके हुए सचेत ॥

(१६)

"महाराज ! गिरिवर की कन्या सेवा करने है आई"—
शीश नाय नन्दी ने उनसे कही बात यह सुखदायी।
स्वामी के भ्रूभंग-मात्र से जब उसने निदेश पाया,
गिरिजा को सत्कार सहित वह उनके सम्मुख ले आया ॥

(१७)

तोड़े हुए हाथ से अपने, महा मनोहरता के मूल,
पत्तों के टुकड़ेयुत नूतन शिशिरान्तक वसन्त के फूल।
गिरिजा की दोनों सखियों ने विधिवत करते हुए प्रणाम,
शिव के पैरों पर बिथराये जोड़ पाणिपङ्कज छविधाम ॥

(१८)

नील अलक में शोभित नूतन कर्णिकार-कलिका सुन्दर
देह झुकाते समय गिराती हुई महीतल के ऊपर।
कानों के पल्लव टपकाती, मस्तक निज नीचे रख कर,
किया उमा ने भी, तदनन्तर, शङ्कर को प्रणाम सादर ॥

(१९)

"पावे तू ऐसा पति जिसने देखी नहीं अन्य नारी"—
यह सच्ची आशीष ईश ने दी उसको सब सुखकारी।
महामहिमपुरुषों के मुख से वचन निकल जो जाता है,
विश्व बीच विपरीत भाव वह कभी नहीं दरसाता है ॥

(२०)

जलती हुई आग में गिरने के इच्छुक पतङ्ग सम मार,
बाण छोड़ने का शुभ अवसर आया है, यह कर कुविचार।
गिरिजा के समक्ष शङ्कर को लक्ष्यीकृत कर भले प्रकार,
अपने धन्वा की प्रत्यञ्चा तानी उसने बारंबार ॥

(२१)

मन्दाकिनी नदी ने जिसको निज जल में उपजाया है,
दिनकर ने अपनी किरणों से जिसे विशेष सुखाया है।
वह सरोज-बीजों की माला, अरुण-वर्ण कर में लेकर,
गिरिश तपस्वी को गौरी ने अर्पण की सुन्दर सुन्दर ॥

(२२)

प्रिय होगा प्रेमिणी उमा को इसके लेने का व्यापार,
यह विचार कर उस माला को शिव ने इधर किया स्वीकार।
संमोहन-नामक अमोघ शर निज निषङ्ग से उधर निकाल,
कुसुमशरासन पर, कौशल से, मन्मथ ने रक्खा तत्काल ॥

---

*काम-कामिनी = रति।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२३)

राकापति को उदित देख कर क्षुब्ध हुए सलिलेश समान,
कुछ कुछ धैर्य्यहीन होकर के, संयमशील शम्भु भगवान।
लगे देखने निज नयनों से सादर, साभिलाष, सस्नेह,
गिरिजा का बिम्बाधर-धारी मुखमण्डल शोभा का गेह॥

(२४)

खिले हुए कोमल कदम्ब के फूल तुल्य अङ्गों द्वारा,
करती हुई प्रकाश उमा भी अपना मनोभाव सारा।
लज्जित नयनों से, भ्रमिष्ट सी, वहीं, देखती हुई मही
अति सुकुमार चारुतर आनन तिरछा करके खड़ी रही॥

(२५)

महा जितेन्द्रिय थे; इस कारण, महादेव ने, तदनन्तर,
अपने इस इन्द्रियक्षोभ का बलपूर्वक विनिवारण कर।
मनोविकार हुआ क्यों? इसका हेतु जानने को सत्वर,
चारों ओर सघन कानन में प्रेरित किये विलोचन वर॥

(२६)

नयन दाहिने के कोने में मुट्ठी रक्खे हुए कठोर,
कन्ध झुकाये हुए, वाम पद छोटा किये भूमि की ओर।
धनुष बनाये हुए चक्र सम, विशिख छोड़ते हुए विशाल,
मनसिज को इस विकट वेश में त्रिनयन ने देखा उस काल॥

(२७)

जिनका कोप विशेष बढ़ा था तपोभङ्ग होजाने से,
जिनका मुख दुर्दर्श हुआ था भृकुटी कुटिल चढ़ाने से।
उन हर के तृतीय लोचन से तत्क्षण ही अति विकराला,
अकस्मात् अग्निस्फुलिङ्ग की निकली दीप्तिमान ज्वाला॥

(२८)

"हा हा! प्रभो! क्रोध यह अपना करिये, करिये, करिये शान्त"—
इस प्रकार का विनय व्योम में जब तक सब सुर करें नितान्त।
तब तक हर के दृग से निकले हुए हुताशन ने सविशेष,
मन्मथ के मोहक शरीर को भस्मशेष कर दिया अशेष॥

(२९)

तरुवर के टुकड़े करता है भीषण वज्रपात जैसे,
तप के विघ्नरूप मनसिज का देह-भङ्ग कर के तैसे।
नारी के नैकट्य-त्याग की इच्छा से, सब भूत लिए,
भूतनाथ, अपने आश्रम से तत्क्षण अन्तर्धान हुए॥

हिन्दी की वर्तमान दशा।

आज कल जगत् भर में अँगरेज़ी की क्यों इतनी पूछ है? सारा सभ्य जगत् उसका आदर क्यों करता है? वह पृथ्वी के प्रायः हर देश में क्यों समझी जाती है? संस्कृत कहीं की भी प्रचलित भाषा न होते हुए भी क्यों विद्वानों में इतना आदर पाती है? उर्दू राष्ट्र-भाषा होने के योग्य क्यों नहीं? हिन्दी राष्ट्र भाषा अब तक क्यों नहीं हुई? इस प्रकार कितने ही प्रश्न मन में उठते हैं। हिन्दी भाषा की वर्तमान दशा के कारण जानने के लिए इन प्रश्नों को समझना आवश्यक है।

अँगरेज़-जाति विजयी और देशभक्त जाति है। पृथ्वी के प्रायः सभी स्थानों में अँगरेज़ लोग मौजूद हैं। वहाँ रह कर भी वे अपनी भाषा काम में लाते हैं। भाषा वहाँ वालों की भी सीख लेते हैं, पर अपनी कभी नहीं छोड़ते। भाषा, भाव, वेश और भोजन वे सदा अपनेही रखते हैं। अपनी भाषा के प्रचार के लिए वे सदा उद्योग किया करते हैं। अँगरेज़ी भाषा की सफलता का एक मुख्य कारण उसके साहित्य की सर्वाङ्गसुन्दरता भी है। गद्य-पद्य दोनों ही एक से एक बढ़ कर हैं। ऐसा कौन सा साहित्यप्रिय मनुष्य है जिसे शेक्सपियर, मिल्टन और टैनिसन की कविता पढ़ने की लालसा न हो? संस्कृत का आदर भी उसका साहित्य ही कराता है। मानव-जाति के सबसे पुराने ग्रन्थ इसी भाषा में हैं। जो महाशय शेक्सपियर की कविता पढ़ने के लिए अँगरेज़ी सीखते हैं वही विद्वान् कालिदास की अमृततुल्य वाणी का स्वाद लेने के लिए संस्कृत का अभ्यास करते हैं, और, फिर इस प्रकार की सम्मतियाँ देते हैं:—

Would'st thou the young year's blossoms
and the fruits of it decline,
And all by which the soul is charmed
enraptured, feasted, fed

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Would'st thou the earth and heaven itself in one sole name combine?
I name thee, O Sakuntala, and all at once is said.

उर्दू राष्ट्र-भाषा के होने के योग्य इसलिए नहीं कि वह क्लिष्ट है, सुपाठ्य नहीं। वह बहुत दिनों में सीखी जाती है। हिज्जों की मनमानी और घर जानी तथा शिकस्ता की भ्रष्टता ने भी उसे अयोग्य बना दिया है। उसका साहित्य भी ऐसा नहीं कि उसको भारतवर्ष भर की एक मात्र भाषा बना सके। भारत के सब स्थानों में वह समझी भी नहीं जाती।

अब अन्तिम प्रश्न हिन्दी की बाबत रह गया। उसका उत्तर हम सविस्तर देंगे, क्योंकि यही हमारे लेख का मुख्य विषय है।

भाषाओं की उत्तमता कई प्रकार से जानी जाती है:—

१—उसके अक्षर कैसे हैं—शीघ्र सीखे और लिखे जा सकते हैं या नहीं?

२—वह कितने दिनों में सीखी जा सकती है?

३—उसकी उपयोगिता कितनी है?

४—उसका साहित्य कैसा है?

यह सर्व-मान्य बात है कि हिन्दी के अक्षरों की भांति सरल अक्षर किसी भाषा में नहीं हैं। जो लिखा हो वही पढ़ा जायगा; उच्चारण भी उसका ठीक ही होता है।

यह बात अँगरेज़ी, उर्दू आदि भाषाओं में नहीं। "सीन" "से" "छोटी हे" "बड़ी हे" "ते" "तोय" और "ज़े" "ज़ाल" और "ज़्वाद" आदि के झगड़ों से देवनागरी अक्षर मुक्त हैं। एक महीने से भी कम के अभ्यास में मनुष्य हिन्दी लिख पढ़ सकता है। बहुतों का यह कहना है कि हिन्दी शीघ्र लिखी नहीं जाती, उर्दू बहुत ही शीघ्र लिखी जा सकती है। पर लिखना और न लिखना अभ्यास पर अवलम्बित है। वह शीघ्रता किस काम की कि लिखने वाला उसे स्वयं भी न पढ़ सके। यह तो हमने कई बार देखा है कि यदि शिकस्ता का लिखा हुआ कोई शब्द किसी से पढ़वाया जाय तो वह उस पत्र को ऊपर से पढ़ कर और अर्थ समझ कर ही उस शब्द को बता सकता है। यह बात तो साफ़ लिखे हुए शिकस्ता की है। पुलिस की रिपोर्टों, पटवारियों के रजिस्टरों और अभियोगों में लिखे हुए इज़हारों की बात का तो कहना ही क्या है।

अतः जहाँ तक देवनागरी अक्षरों की बात है वहाँ तक तो यह अवश्य कहा जायगा कि वे बहुत ही सरल हैं और शीघ्रही सीखे जा सकते हैं। हिन्दी सारे भारतवर्ष में समझी जा सकती है। हिन्दी बोलने वाले सब जगह मिल सकते हैं। मारवाड़ी लोग भारत के सब स्थानों में पाये जाते हैं। वे जहाँ जाते हैं अपनी बोली साथ ले जाते हैं। वे लोग एक प्रकार की हिन्दी ही बोलते हैं। हिन्दीभाषा का गुजराती, मराठी और बंगाली से इतना मेल है कि इन भाषाओं के बोलने वाले हिन्दी समझ सकते हैं और हिन्दी जानने वालों को भी उन भाषाओं के जानने में बहुत कठिनता नहीं पड़ती। मराठी और हिन्दी के तो अक्षर एक ही प्रकार के हैं। गुजराती अक्षर भी देवनागरी अक्षरों से बहुत मिलते जुलते हैं। पञ्जाबी भी हिन्दी ही का एक रूपान्तर है। अभी यह बात भी ठीक नहीं हुई कि पञ्जाबी कौन से अक्षरों में लिखी जाय। बहुतों की यह सम्मति है कि वह देवनागरी अक्षरों में लिखी जाय। पर कुछ लोग कहते हैं कि गुरुमुखी अक्षरों ही में लिखी जाय।

एकलिपिविस्तारपरिषद् के प्रयत्न से यदि बँगला भाषा की पुस्तकें देवनागरी अक्षरों में छपने लगें और पंजाब में लाला लाजपतरायजी का परिश्रम सफल हो जाय और वहाँ नागरी अक्षरों का प्रचार हो जाय तो भारतवर्ष के सबसे बड़े भाग में नागरी प्रचलित हो जाय। क्योंकि राजपूताना की भाषा अब भी एक प्रकार के बिगड़े हुए नागरी अक्षरों में लिखी जाती है। मराठी भी उन्हीं अक्षरों को काम में लाती है। गुजराती अक्षर उन्हीं के रूपान्तर हैं। और मध्यप्रदेश में तो हिन्दी प्रचलित ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सम्मेलन में बंगाली यदि देवनागरी अक्षरों को स्वीकार कर लें तो बड़ी अच्छी बात हो। हमारे बंगाली भाई सदा से भारतवर्ष की सेवा में अग्रसर रहे हैं। अपनी विद्या, बुद्धि और देशभक्ति के कारण वे सारे भारतवर्ष के नेता हैं। उन्होंने मातृभूमि के लिए बड़े बड़े आत्मोत्सर्ग के काम किये हैं। हमें पूर्ण आशा है कि वे भारतवर्ष के हित के लिए देवनागरी अक्षरों को ग्रहण करके अपनी प्रगाढ़ देशभक्ति का एक और उदाहरण देंगे। किसी बड़े लाभ के लिए एक छोटे से लाभ को त्याग देना मतिमानों का काम है।

अब यही प्रश्न रह गया कि हिन्दी के साहित्य की आज कल क्या दशा है। गद्य का तो अभाव सा ही है। यदि सौ पचास ग्रन्थ हुए भी तो क्या। आज कल गद्य को पूर्ण करने के लिए काशी, प्रयाग, बंबई आदि नगरों में खूब प्रयत्न हो रहा है; तब भी हिन्दी के इस अङ्ग की दशा सन्तोष-जनक नहीं है। अच्छे अच्छे चरित्रसुधारक उपन्यासों की संख्या बहुत ही थोड़ी क्या नाम मात्र को ही है। यदि गिने जायँ तो ऐसे उपन्यास पच्चीस से अधिक न निकलेंगे। नाटकों की दशा और भी शोकजनक है। हरिश्चन्द्र के नाटकों को निकाल देने से अत्यल्प ही नाटक ऐसे निकलेंगे जो हिन्दी भाषा की शोभा समझे जा सकें। जीवनचरितों का तो प्रायः अभाव ही सा है। शोक की बात है कि रामचन्द्र, युधिष्ठिर, श्रीकृष्णजी, शिवाजी, महाराना प्रताप, पृथ्वीराज, बुद्धदेव और विक्रमादित्य आदि महान् पुरुषों का एक भी विस्तृत जीवनचरित नहीं। ऐसी ही शोचनीय दशा इतिहास की भी है। अर्थ-शास्त्र की केवल एक ही पुस्तक है। विज्ञान की पुस्तकों का तो बिलकुल ही अभाव सा है। भूगोल की एक भी पुस्तक नहीं। जिधर देखो उधर ही यह दशा है। हिन्दी-साहित्य की हीनता ही उसके राष्ट्रभाषा बनने में बाधक है। कविता का अङ्ग कुछ कुछ पूर्ण है। सूरदास, तुलसीदास और हरिश्चन्द्र हिन्दी-कवियों में विशेष आदर के योग्य हैं। वर्तमान काल में भी अच्छे अच्छे कवि मौजूद हैं। किन्तु उनकी पूछ ही नहीं। यहाँ तो यह हाल हो रहा है:—

रे गंधी मतिअंध तू, अतर दिखावत काहि।
करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि॥
चले जाहु ह्यां को करै, हाथिन को व्यौपार।
जानत नहिं या पुर बसैं, धोबी और कुम्हार॥

गुणग्राहकता की कमी के कारण बड़े बड़े आद-मियों के उत्साह मन्द हो जाते हैं। कवियों के लिए उत्साहित किये जाने की आवश्यकता है। घोड़े पर जब बहुत सवारी की जाती है तब अन्त में उसकी पीठ ठोंकी जाती है, उसे पुचकारा जाता है, उस पर हाथ फेरा जाता है और रात को नित्य से अधिक दाना दिया जाता है। पाठशाला के लड़कों के उत्साह-वर्धनार्थ पुरस्कार दिया जाता है। समर में विजयी सैनिकों को भी इसी लिए पदक, पुरस्कार आदि दिये जाते हैं। किन्तु हिन्दी भाषा के दुर्भाग्य से उसके कवियों को कुछ नहीं मिलता। यदि कहीं अपने व्यय से पुस्तकें छपवावें भी तो कोई नहीं लेता। शङ्करसरोज, जयद्रथवध, वीरप्रताप और रङ्ग में भङ्ग की उतनी पूछ नहीं जितनी ग़ज़लपुर-बहार, गुञ्जपरी, अलबलारागिया, साढ़े तीन यार का क़िस्सा, छबीली भटियारी, क़िस्सा डला और तोता-मैना की कहानी की। कोई भाषा कैसी ही उत्तम क्यों न हो जब तक उसके बोलनेवाले उसके लिए प्रयत्न न करें तब तक उसकी उन्नति होना असम्भव है। थोड़ी सी भी अँगरेज़ी पढ़ली कि हम लोग अपना पहला कर्तव्य यही समझते हैं कि घरवालों तक को अँगरेज़ी में पत्र लिखें। फिर यह प्रयत्न होता है कि स्त्री अँगरेज़ी नहीं जानती तो न सही उसे ए बी सी डी पढ़ाली। उसे 'रोमन' ही में पत्र लिखेंगे। क्या कोई ऐसा अँगरेज़ भी है जो हिन्दी या उर्दू पढ़ कर अपनी मातृभाषा का व्यवहार छोड़ दे। मैंने एक पत्र हिन्दी के एक मासिक पत्र के सम्पादक के नाम हिन्दी में लिख कर भेजा था। वह उसी मासिक पत्र के सम्बन्ध में था। उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर मुझे सम्पादक महाशय ने अँगरेज़ी में दिया। जब सम्पादक महाशय स्वयं ही हिन्दी का प्रयोग नहीं करते तब सर्व-साधारण से क्या आशा की जा सकती है।

बहुत से लोगों का यह कहना है कि हिन्दी के प्रचार में सरकार कुछ सहायता नहीं देती। हमारा इनसे पहला अनुरोध तो यह है कि सरकार से सहायता माँगने से पूर्व वे सारे स्वदेशी हिन्दू-महाशयों से तो सहायता लेलें। देशी राज्यों में तो हिन्दी का प्रचार करालें। दूसरी बात यह है कि अँगरेज़ जाति तो इस बात को मानने वाली है कि—"God helps those who help themselves" जो स्वयं अपनी सहायता करते हैं उनकी सहायता ईश्वर भी करता है। क्या हम लोगों ने अपना कर्तव्य पूरा कर लिया जो हम सरकार से कहते हैं कि वह भी इस सम्बन्ध में अपना कर्तव्य पूरा करे? सरकार ने जो सहायता दी है उससे हमने क्या लाभ उठाया है? कितने प्रार्थनापत्र कचहरियों में हिन्दी में दिये जाते हैं? कितने हिन्दू वकील-मुख़्तार ऐसे हैं जो अपना काम हिन्दी में करते हैं? न्यायालयों में कितने ऐसे हिन्दू कर्मचारी हैं जो हिन्दी जानते हैं? अवैतनिक (Honorary) मैजिस्ट्रेटों में कितने ऐसे हैं जो हिन्दी में काम करते हैं? इस बात का प्रयत्न होना चाहिए कि जितने कर्मचारी हैं वे कम से कम हिन्दी-उर्दू दोनों जानते हों। ऐसा होने के लिए हर तरह से प्रयत्न करना चाहिए।

अभी कुछ दिन हुए प्रान्तीय कौंसिल में एक प्रश्न पूछा गया था कि नक़लें हिन्दी में क्यों नहीं दी जातीं। इस पर सरकार की ओर से यह उत्तर दिया गया कि वे मिल सकती हैं, यदि कुछ अधिक फ़ीस दी जाय। इस बात का कोई प्रयत्न ही नहीं करता कि अधिक फ़ीस न ली जाय। नागरी-प्रचारिणी सभा की ओर से सरकार को पत्र पर पत्र इस बात पर भेजे गये कि रुपयों पर नागरी अक्षर भी रहा करें और नोटों पर उनका मूल्य हिन्दी में लिखा रहे। मैं यह नहीं कहता कि ये काम की बातें नहीं थीं, किन्तु, जो बातें मैंने ऊपर लिखी हैं वे इनसे अधिक महत्त्व की हैं।

सारांश यह है कि हिन्दी की उन्नति के लिए हम लोगों को स्वयं प्रयत्न करना चाहिए। अपने दैनिक व्यवहार में, जहाँ तक सम्भव हो, हिन्दी ही से काम लेना चाहिए। जब हम सरकार को यह दिखा देंगे कि हम लोग हिन्दी के बिना काम नहीं कर सकते—जब हम दिखा देंगे कि हमने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया—तब सरकार भी अवश्य ही हमारी बात सुनेगी। सबसे बड़ी बात यह है कि हमें हिन्दी को इस योग्य बना देना चाहिए कि वह हमारा कुल काम दे सके। उसके सारे अङ्ग पूर्ण कर देना हमारा पहला कर्तव्य है, जिससे उसे अन्य भाषाओं के आगे लजाना न पड़े। जब उसके अङ्ग पुष्ट हो जायँगे तब उसके राष्ट्र-भाषा होने में कोई रुकावट न रहेगी। जिस प्रकार रात के बाद दिन अवश्य ही होता है उसी प्रकार वह भी राष्ट्र-भाषा हो जायगी।

रीते सबहि तुच्छ जग माहीं;
बिनु पूरनता गौरव नाहीं।
अन्तर जब तेरो भरि जाई,
पवनहु तोहि न रोकि सकाई॥

योगेन्द्रपालसिंह।

सतीमोह।

हिन्दी के कालिदास महात्मा तुलसीदास ने अपने सुधामधुर रामचरितमानस के आरम्भ में, जहाँ तक हम समझते हैं, रामचन्द्र का उत्कर्ष, सर्वज्ञता और जितेन्द्रियता बताने के लिए सती-मोह की कल्पना की है। सबसे बढ़ कर प्रामाणिक वाल्मीकीय रामायण और अध्यात्मरामायण में, अथवा अद्भुतरामायण और आनन्दरामायण आदि में, सती-मोह की कथा नहीं है। अभी तक हमको गोस्वामीजी की रामायण के सिवा अन्यत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं यह कथा नहीं मिली। इसीसे हम इसे तुलसीदासजी की ही कल्पना मानते हैं। इसके सिवा आरम्भ में तुलसीदासजी ही लिखते हैं कि—

कीन्ह प्रश्न जेहि भाँति भवानी।
जेहि विधि शङ्कर कहा बखानी॥
सो सब हेतु कहब मैं गाई।
कथा प्रबन्ध विचित्र बनाई॥

इससे स्पष्ट है कि गोस्वामीजी ने इस कथा-प्रबन्ध की रचना में अपनी कल्पना से काम लिया है।

इस कल्पना में हमको अनौचित्य जान पड़ता है, और वही अनौचित्य दिखाने के लिए हम यह लेख लिखने बैठे हैं। किन्तु इसके पहले हम यह लिख देना आवश्यक समझते हैं कि तुलसीदासजी को निन्दक, अल्पज्ञ या अज्ञ बनाना, अथवा उनका अपमान करना हमारा उद्देश नहीं है।

गोस्वामीजी ने इस कथा की कल्पना का आरम्भ यों किया है कि त्रेतायुग में शिवजी सती को साथ लेकर अगस्त्य ऋषि के आश्रम को गये। वहाँ मुनि ने रामचरित्र-वर्णन किया। उसे शिव ने सुना। शिव ने भी मुनि को हरि की भक्ति सुनाई। इस प्रकार कुछ दिन वहाँ रह कर शिवजी लौटे। इधर रामचन्द्रजी लक्ष्मण-सीता सहित वन में पहुँच चुके थे। शङ्करजी रामचन्द्रजी के दर्शन के लिए यों सोच विचार करते जा रहे थे कि "… …कयहि बिधि दरसन होय। गुप्तरूप अवतरेउ प्रभु गये जान सब कोय" * लेकिन सती को इसकी कुछ ख़बर भी न थी। इतने में रामचन्द्र राह में मिल गये। उस समय सीताजी हरी जा चुकी थीं और रामचन्द्र लक्ष्मण के साथ उनको खोज रहे थे। उसी समय शम्भु को राम के दर्शन मिले। शम्भु ने "जय सच्चिदानन्द जगपावन" कह कर दूर ही से प्रणाम किया; कुसमय जान कर मुलाक़ात नहीं की। सती को राम के सच्चिदानन्द होने में सन्देह हुआ। क्योंकि वह उस समय साधारण मनुष्य की तरह सीता के वियोग में व्याकुल हो रहे थे। सती ने सोचा कि—

ब्रह्म जो व्यापक विरज अज, अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होय नर, जाहि न जानत वेद॥

विष्णु जो सुरहित नर तनुधारी।
सोउ सर्वज्ञ यथा त्रिपुरारी॥
खोजत सो कि अज्ञ इव नारी।
ज्ञानधाम श्रीपति असुरारी॥
शम्भुगिरा पुनि मृषा न होई।
शिव सर्वज्ञ जान सब कोई॥

अन्तर्यामी शिव सती के मन की बात जान गये। उन्होंने कहा—सती, ऐसा सन्देह मत करो। ये मेरे इष्टदेव परब्रह्म ही हैं। शिव के बार बार कहने पर भी सती का सन्देह निवृत्त न हुआ। तब शिव ने खीझ कर कहा—जो तुमको ऐसा ही सन्देह है तो जाकर परीक्षा क्यों नहीं लेतीं? तब तक मैं यहीं ठहरा हुआ हूँ। सती वहाँ से आज्ञा पाकर परीक्षा लेने चलीं। वे सीता का रूप बना कर राम के आगे आईं। लक्ष्मण को भ्रम और विस्मय हुआ, लेकिन रामचन्द्र सती का कपट जान गये। तब उन्होंने सती को प्रणाम किया, और यह सूचित करने के लिए कि मैं सब जान गया, कहा कि शिव कहाँ हैं? सती और तुम वन में अकेली क्यों घूम रही हो? सती

* यहाँ प्रश्न होता है कि दर्शन के लिए शिवजी को इतने सोच विचार की क्या ज़रूरत थी? वे गुप्तरूप से भी दर्शन कर सकते थे, किसी को कानों कान ख़बर भी न होती। दूसरे शिवजी का यह सोचना भी ठीक नहीं जँचता कि प्रभु ने गुप्तरूप से अवतार लिया है, (लेकिन) उसे सब कोई जान गये हैं। उस समय तक सर्वसाधारण ने उनको अवतार जाना या माना नहीं था। हाँ, अगर कुछ सिद्ध ऋषि-मुनि जानते हों तो उसके लिए हम नहीं कह सकते। किन्तु कुछ ऋषि-मुनियों के लिए 'सब कोई' का प्रयोग ठीक नहीं मालूम पड़ता। और अगर सब कोई यह जान भी गये थे तो उससे शिवजी के दर्शन करने में क्या बाधा थी? शिवजी ने राम का दर्शन किया, यह बात तो सब कोई नहीं जान सकते थे। और अगर जान भी जाते तो उससे शिव की हेटी क्या थी? क्योंकि शिव और राम (विष्णु) तो एक ही परमेश्वर के दो रूप थे। लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनही मन बहुत शर्मिन्दा हुईं और डरीं। वे चुपचाप शिव के पास लौटीं। तब राम ने सती को अपना प्रभाव दिखाया। सती ने देखा कि—

❋ ❋ ❋

आगे राम सहित सिय भ्राता ॥
फिर चितवा पाछे प्रभु देखा।
सहित बन्धु सिय सुन्दर वेखा ॥
जहँ चितवत तहँ प्रभु आसीना।
सेवहिँ सिद्ध मुनीश प्रवीना ॥
देखे शिव विधि विष्णु अनेका।
अमित प्रभाव एकते एका ॥
बन्दत चरण करत प्रभु सेवा।
विविध वेश देखे सब देवा ॥

सती विधात्री इन्दिरा देखीं अमित अनूप।
जिहि जिहि वेश अजादि सुर तिहि तिहि तनु अनुरूप॥

देखे जहँ तहँ रघुपति जेते।
शक्तिन सहित सकल सुर तेते ॥
जीव चराचर जे संसारा।
देखे सकल अनेक प्रकारा ॥

इत्यादि।

अस्तु, यह विचित्र दृश्य देख कर सती घबराईं और आँख मूँद कर बैठ गईं। फिर थोड़ी देर बाद आँख खोल कर देखा तो कहीं कुछ न था। सती शिव के पास आईं और उनके पूछने पर कह दिया—

कछु न परीक्षा लीन्ह गोसाईं।
कीन्ह प्रणाम तुम्हारिहि नाईं ॥
जो तुम कहा सो मृषा न होई।

❋ ❋ ❋ ❋

मगर शिवजी ने ध्यान करके सती का छल जान लिया। उन्होंने प्रभु-पत्नी का रूप धारण करने के कारण सती को त्याग दिया। तब आकाशवाणी हुई कि—अस प्रण तुम बिन करै को आना। ... ... सती ने देववाणी सुन कर शिवजी से उसके बारे में बहुत कुछ पूछा, मगर शिवजी ने कुछ नहीं बताया। शिव ने कैलास जाकर ८७००० वर्ष की समाधि लगाई। समाधि खुलने पर सती ने पिता के यज्ञ में जाने की इच्छा प्रकट की, और शिव की इच्छा न रहने पर भी, वहाँ गईं। वहाँ शिव का भाग न देख कर सती को क्षोभ हुआ। उन्होंने योगाग्नि से शरीर भस्म कर दिया। वही फिर हिमवान् के घर पार्वती हो कर शिव की पत्नी हुईं।

यही इस कथा का सारांश है। इसी की हमको आलोचना करनी है। हमको पहले यह देखना चाहिए कि हमारे प्राचीन पुराणग्रन्थों में सती का चित्र कैसा अङ्कित किया गया है और उनको क्या दर्जा दिया गया है। अगर हम सती को धार्मिक दृष्टि से भगवती आद्या शक्ति न मान कर ऐतिहासिक या सामाजिक दृष्टि से साधारण स्त्री-मात्र मानें तो भी ऊपर लिखा हुआ चरित्र उनके लिए अनुचित जान पड़ता है। सती को स्त्रियों के पातिव्रतधर्म का आदर्श कहना चाहिए। सच पूछो तो परम पतिव्रता स्त्रियों लिए प्रयुक्त 'सती' शब्द की उत्पत्ति ही उनसे हुई है। अपने पति के आधे अङ्ग में स्थान प्राप्त कर उन्होंने स्त्रीवाचक अर्धाङ्गिनी शब्द को सार्थक कर दिया है। उनके लिए तुलसीदास ने भी नारद के मुख से कहलाया है कि—

यहि कर नाम सुमिरि संसारा।
तिय चढ़ि हैं पतिव्रत-असिधारा।

ऐसी आदर्श पतिव्रता स्त्री का, पर पुरुष की स्त्री का रूप बना कर, उसकी परीक्षा लेने जाना क्या उचित जान पड़ता है? (हमने यहाँ पर राम को पर-पुरुष इस लिए लिखा है कि सती ने राम को साधारण पुरुष ही समझा था)। अगर स्त्री-स्वभाव-सुलभ कौतूहल के कारण वह ऐसा करने के लिए उद्यत भी हो गई थीं तो पति के, जिसके बारे में उनको विश्वास था कि वह सर्वज्ञ है, निश्चय दिलाने पर भी, उनका इस दुस्साहस से निवृत्त न होना क्या पतिव्रता और समझदार स्त्री के योग्य काम हुआ? इतना ही नहीं, उन्होंने वहाँ से लौट कर पति से—उसी सर्वज्ञ पति से—फिर भी छल किया! फिर भी झूठ बोलीं! क्या यह पतिव्रता का काम है? साधारण स्त्रियाँ भी यदि जानें कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा पति सर्वज्ञ है—उससे कुछ छिप नहीं सकता तो कभी ऐसा न करेंगी। किन्तु सती ने वही किया। कहना न मान कर और झूठ बोल कर पति का अपमान किया। गोस्वामीजी ने यहाँ तो यों सती से ही शिव का अपमान कराया है, किन्तु आगे चल कर दक्षयज्ञ भङ्ग के प्रसङ्ग में लिखा है कि—

तब चित चढ़ेउ जो शङ्कर कहेऊ।
प्रभु अपमान समुझि उर दहेऊ॥

अब विचारने की बात है कि जो दूसरे के द्वारा—ख़ास अपने पिता के द्वारा—पति का अपमान होते देख कर आग में जल मरी, वह स्वयं झूठ बोल कर—कहना न मान कर और उसके वचन पर विश्वास न करके—पति का अपमान कैसे कर सकती है?

गोस्वामीजी ने—

सती कीन्ह चह तहँहुँ दुराऊ।
देखहु नारि-सुभाव-प्रभाऊ॥

और—

बहुरि राममायहि सिर नावा।
प्रेरि सतिहि जेहि झूँठ बोलावा॥

लिख कर इन दोषों को दूर करना चाहा है। किन्तु स्त्री-स्वभाव को हम इसका कारण कभी नहीं मान सकते। अशिक्षिता और ख़राब चलन की स्त्रियों की बात जाने दीजिए। वे पति के वाक्य पर अविश्वास कर सकती हैं और पति से झूठ भी बोल सकती हैं। लेकिन शिक्षिता और सच्चरित्रा स्त्रियाँ अब भी ऐसी मिल सकती हैं जो पति के कहने से रात को भी दिन मानने के लिए तैयार रहती हैं तथा पति से कभी झूँठ नहीं बोलतीं। तब जो सती अपने पति को सर्वज्ञ मानती थीं और जिनको ब्रह्म-विवेचन की शक्ति थी, उन्हीं का, स्त्री-स्वभाव के कारण, ऐसा करने के लिए उद्यत हो जाना कैसे सङ्गत माना जा सकता है? रहा यह कि वे माया के झोंक में आकर ऐसा कर बैठीं, अथवा माया ने ज़बरदस्ती उनसे ऐसा कराया, सो यह भी ठीक नहीं मालूम पड़ता। क्योंकि तुलसीदासजी ने ही सती को स्वयं माया माना है। उन्होंने सप्तर्षियों के मुख से कहलाया है कि—

तुम माया, भगवान् शिव सकल जगत पितमात।
जब वह स्वयं माया थीं तो माया से माया को मोह कैसा? मोह किसी दूसरे के द्वारा होता है। आप ही अपने द्वारा कोई मोहित नहीं होता।

इसके सिवा गोस्वामीजी की इस कल्पना में पूर्वापरविरोध भी जान पड़ता है। वह एक जगह लिखते हैं कि शिव ने सती को त्याग दिया; वे उनके मन से उतर गईं। और दूसरी जगह लिखते हैं कि सती के जल जाने पर—

समाचार जब शङ्कर पाये।
वीरभद्र करि कोप पठाये॥

शिवजी जब सती को त्याग चुके थे तब सती के मर जाने पर उन्हें प्रसन्न होना था। अनायास ही बला टल गई थी। फिर वे कुपित क्यों हुए?

इस कथा-प्रसङ्ग में एक ऐतिहासिक अनौचित्य भी है। वह यह है कि इसमें तुलसीदासजी ने त्रेता युग में दक्ष की कन्या सती का होना बतलाया है। लेकिन अन्यान्य प्रामाणिक ग्रन्थों का सृष्टि-क्रम देखने से जान पड़ता है कि सती सत्ययुग में थीं। दक्ष प्रजापति ब्रह्मा के पुत्र हैं। सुतरां सृष्टि के आरम्भ में, सत्ययुग के आदि में, वे थे। यदि यह भी मान लिया जाय कि सत्ययुग के मध्य में उनके लड़कियाँ हुईं तो थोड़ी अवस्था में जल कर मर जानेवाली सती का त्रेतायुग में रहना सर्वथा असम्भव है। इसके सिवा पार्वतीपुत्र कार्तिकेय जिसमें लड़े थे वह तारकासुर के साथ होनेवाला देवतों का संग्राम सत्ययुग में ही हुआ था; किन्तु गोस्वामीजी की इस कथा के अनुसार देखा जाता है कि सत्ययुग में हिमवान् की लड़की पार्वती का जन्म भी नहीं हुआ था। इस हिसाब से भी सती का त्रेतायुग में होना असम्भव है।

हम जहाँ तक समझते हैं गोस्वामीजी ने भागवत में वर्णित ब्रह्मा-मोह के अनुकरण पर ही सती-मोह की कल्पना की है। उसमें और इसमें साहश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी बहुत है। वहाँ ब्रह्मा को यह सन्देह हुआ था कि वन में अहीरों के साथ माखन-रोटी खानेवाले बालक कृष्ण क्या परब्रह्म हैं? यहाँ भी सती को यह सन्देह हुआ कि वन में स्त्री के लिए विलाप करनेवाले राम क्या परब्रह्म हैं? वहाँ ब्रह्मा ने बछड़ों और बालकों को हर ले जाकर परीक्षा ली थी। यहाँ सती ने भी सीता का रूप बना कर राम की परीक्षा ली। वहाँ कृष्ण को मोह नहीं हुआ और यहाँ भी राम के मन में विकार नहीं आया। वहाँ बलदेवजी कुछ नहीं समझ सके थे और यहाँ भी गोस्वामीजी ने लिखा है कि—

लक्ष्मण दीख उमाकृत वेषा।
चकित हृदय भ्रम भयउ विशेषा॥

वहाँ ब्रह्मा ने पीछे से देखा कि सब बछड़े और ग्वाल-बाल ब्रह्मरूप हो गये, और ब्रह्मा-शिव आदि देवगण और अन्यान्य लोकपाल उनकी स्तुति करने लगे। और फिर घड़ी भर में देखा कहीं कुछ न था। यहाँ भी ठीक यही दशा हुई।

हमारी समझ में गोस्वामीजी अगर यह कल्पना न करते—सती देहत्याग का कारण जो प्राचीन ग्रन्थों में लिखा है उसी दक्ष-शिव के वैमनस्य का ही उल्लेख करते—तो अच्छा था। तो कोई हानि न होती।

इसमें सन्देह नहीं कि गोस्वामीजी ने केवल रामचन्द्र का उत्कर्ष दिखाने के लिए इस कथा की कल्पना की है। इस कथा से सती को नीचा दिखाने या अपमानित करने का उनका अभिप्राय नहीं था। किन्तु इस कथा-भाग से जैसे एक ओर राम का उत्कर्ष व्यक्त हुआ है वैसे ही दूसरी ओर अप्रत्यक्ष या अज्ञातरूप से सती का अपमान हुआ है। साम्प्रदायिकता के कारण * गोस्वामीजी उस पर लक्ष्य नहीं कर सके हैं। अथवा लक्ष्य करने पर भी उसे अनुचित नहीं मान सके हैं। केवल यही नहीं, गोस्वामीजी की कल्पना में और भी कई जगह साम्प्रदायिकता ने अनौचित्य की सृष्टि की है। हम अन्य किसी प्रबन्ध में उसकी आलोचना करेंगे।

अन्त में हम और एक बात लिख कर इस प्रबन्ध को समाप्त करते हैं। वह बात यह है कि मार्च की सरस्वती में हिन्दी-नव-रत्न पर ठाकुर रतनसिंह बी० ए० महाशय का जो लेख छपा है उसमें उक्त महोदय ने मिश्र-बन्धुओं की शङ्काओं या आक्षेपों का उत्तर देते हुए लिखा है कि "सतीमोह की कथा जब तक तुलसीदास की निज की गढ़न्त न सिद्ध की जाय तब तक उनके ऊपर यह दोषारोपण हो ही नहीं सकता"। यद्यपि हम मिश्र-बन्धुओं के इस मन्तव्य से सहमत नहीं कि "रामचन्द्र की महिमा बढ़ाने को गोस्वामीजी ने अन्य देवताओं की प्रायः निन्दा की है। सतीमोह इस कथन का पूर्ण प्रमाण है", तथापि हमारी दृष्टि से सतीमोह की कल्पना में अनौचित्य अवश्य है और मिश्र-बन्धुओं की तरह हम भी सतीमोह के कथा-भाग को तुलसीदास की ही कल्पना समझते हैं। अतएव ठाकुर साहब से हम सविनय निवेदन करते हैं कि जब यह कथा तुलसीदास की रामायण के सिवा, अन्यत्र, किसी प्रामाणिक या अप्रामाणिक ग्रन्थ में नहीं मिलती, तब इस कल्पना को गोस्वामीजी की गढ़न्त मानने या कहने के लिए प्रमाण खोजने की ज़रूरत नहीं है। हाँ, जो लोग यह मानते हों कि यह कथा कहीं से ली गई है, तुलसीदास की गढ़ी हुई नहीं है, उन्हें अवश्य श्रम करके इस कथा का मूल खोज कर फिर कहना चाहिए कि यह कथा तुलसीदास की गढ़न्त नहीं है, अमुक पुस्तक से ली गई है।

रूपनारायण पाण्डेय।

स्वार्थ-सप्तक।

मनुज दीन दुःखी भूखे मरवाये तूने,
अनुज जेष्ठ भ्राताओं से लड़वाये तूने।

* हम समझते हैं कि गोस्वामीजी रामानन्दी मत के वैष्णव थे। क्योंकि उसी मत में राम को परब्रह्म मान कर उपासना की जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करवाये अन्याय सतत सतवाये सज्जन;
स्वार्थ ! कदापि न देखे कोई तेरा आनन ॥ १ ॥
"भले भले वे सब पदार्थ हम को मिल जावें,
बुरे बुरे वे किसी और का भार बढ़ावें।"
तेरे शिष्य सदैव यही करते हैं चिन्तन;
स्वार्थ ! कदापि न देखे कोई तेरा आनन ॥ २ ॥
"प्यारे वत्स हमारे तो पढ़ही जावेंगे,
चर्चा औरों की सुन के हम क्या पावेंगे ?"
ऐसी दुर्मति देने वाले, नरमति-भञ्जन
स्वार्थ ! कदापि न देखे कोई तेरा आनन ॥ ३ ॥
हैं माने उपदेश दोषमय जिसने तेरे
सीखे उसने निर्दयता के कार्य्य घनेरे।
पहुँचा उससे कभी किसी को कुछ भी लाभ न;
स्वार्थ ! कदापि न देखे कोई तेरा आनन ॥ ४ ॥
तुझे जिन्होंने है अपना शुभ शिक्षक जाना
पीछे उनको हुआ कष्टकर सुख का पाना।
सुख तक का तू रक्त सुखाता चिन्तानल बन;
स्वार्थ ! कदापि न देखे कोई तेरा आनन ॥ ५ ॥
"देना है क्या ऋण हम को अपने समाज का ?
क्यों समाज हो रहा आज है विषय लाज का ?"
इन प्रश्नों से फेरे तूने हम सब के मन;
स्वार्थ ! कदापि न देखे कोई तेरा आनन ॥ ६ ॥
खोटा है तू बड़ा विषय कलिराज सरीखा,
जाने ऐसा अनाचार तूने क्यों सीखा ?
करता है परमार्थ-भजन से भी तू वर्ज्जन;
स्वार्थ ! कदापि न देखे कोई तेरा आनन ॥ ७ ॥

सत्कविदास।

गुह-बन्धु।

जापान का स्मरण इस समय भी हो रहा है। "कुर्मा" (छोटी गाड़ी) का खड़ खड़ शब्द अभी तक कानों में गूँज रहा है! यह दृश्य भी अब तक दिखाई दे रहा है कि बङ्गाल असोसिएशन के द्वारा भेजे हुए चार बङ्गाली छात्र जापानी कुर्मा में बैठे भारत-वर्ष से "सायोनारा" (नमस्ते) कह रहे हैं। मानसिक चक्षु से यह भी दिखाई दे रहा है कि जापान के अभ्युदय का सूर्य्य इन छात्रों के अन्तःकरण को प्रकाशमान कर रहा है। इन बङ्गाली भाइयों में गुह-बन्धुओं की मूर्तियाँ विशेष प्रतिभा-पूर्ण हैं। वही हमारे लेख के नायक हैं और उन्हीं की कथा मुझे आपको सुनाना है।

जापान के एक क़सबे में एक रात को, चार भारतीय छात्र एक "थोकेया" (घड़ी बेंचने वाले) के घर में रहने वाले एक दरिद्र महाराष्ट्रीय विद्यार्थी से मिलने आये। कङ्गाल मराठा वङ्गमाता के सुपुत्रों के आगमन से अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने वङ्ग-भ्राताओं का प्रेम-पूर्वक सत्कार किया। उन्होंने भी उसकी स्नेह-पूर्ण "ओचा" (चाय) को सहर्ष स्वीकार किया। फिर इधर उधर की बातचीत छिड़ी।

इन वङ्ग-भ्राताओं में हमारे नायक गुह-बन्धु भी थे। वे धन-सम्पन्न, पर मराठा धनहीन—इस बात को सोच कर मराठा मन ही मन बहुत लज्जित हुआ। निर्धन मराठे को उत्साहित करते हुए गुह-बन्धु बोले—"मित्र! चलो, अमेरिका चलें। एक वर्ष तो हो गया; और कितने दिन तक जापान में छोटे छोटे काम सीखते रहोगे? चलो, अमेरिका में विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करें, जिस से आत्म तथा देशोन्नति का कुछ काम हो सके"।

मराठा धीरे से बोला—"हाँ, बात तो ठीक है; परन्तु मेरे पास राह-ख़र्च नहीं। मेरे लिए अमेरिका अभी स्वप्नवत् है।"

गुह-बन्धु आश्वासन देते हुए बोले—"हम तुम को कुछ दे सकते हैं। अमेरिका पहुँच कर, जब सम्भव हो तब, उसे अदा कर देना। चलो सब मिल कर अब वहीं चलें"।

मराठे ने उनको इस कृपा के लिए हार्दिक धन्यवाद दिया और अमेरिका चलने को तैयार हो गया।

याकोहामा नगर की मेडिकल परीक्षा देने के लिए उन्हें कुछ दिन जापान में और रहना पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षा पास कर लेने पर अमेरिका के लिए तैयारी कर दी गई।

"अमेरिकामारू" नाम के जहाज़ पर यात्री सवार हुए। जहाज़ चला। यात्रियों ने रूमाल द्वारा जापान-प्रवासी अपने हिन्दुस्तानी भाइयों को तथा "दाय निप्पन" (Great Japan) को भी "सायोनारा" किया। जहाज़ पर चढ़ कर यात्री बड़े आनन्दित हुए; परन्तु थोड़ी ही देर में "रङ्ग में भङ्ग" शुरू हो गया। जल-यात्रा के दुख बड़े भीषण रूप में प्रकट होने लगे। तूफ़ान आया। जहाज़ डगमगाने लगा। यात्रियों का सिर फिरने लगा और जी मचलाने लगा। यात्री अपने थर्ड क्लास के शय्या-गृह में सोने गये; परन्तु निद्रा न आई। निद्रा आती भी कैसे? शय्या-गृह दुर्गन्ध से भरा हुआ था। भोजन-कष्ट भी बेहद था। मराठे को वहाँ सत्तू तो नहीं मयस्सर हुआ; परन्तु बङ्गालियों को उनका प्यारा "भत्तू" (भात) अवश्य मिल सकता था। तथापि उन्हें वह जापानी ढँग का भात पसन्द न था। जापानियों और बङ्गालियों के भोजन में कुछ कुछ समता है। दोनों जातियों को मछली-भात बहुत प्रिय है; परन्तु जापानी मछली-भात की सड़ी मछलियों की दुर्गन्ध से बङ्गाली यात्रियों को घृणा होती थी। यात्रा में और भी कितने ही कष्ट झेलने पड़े, परन्तु गुह-बन्धु सदा प्रसन्न-चित्त रहते और वेदान्तोपदेश देकर औरों को भी प्रसन्न रखने की चेष्टा करते थे। राम राम कर के यात्रा समाप्त हुई। अमेरिका नज़दीक आ गया। वह देखो! सान-फ्रान्सिस्को का "गोल्डन गेट" (स्वर्ण-द्वार) दिखलाई देने लगा!

जहाज़ बन्दर पर लग गया। बन्दर पर प्रवासियों की शरीर-परीक्षा होती है। जो रोगी होता है वह रोक लिया जाता है और बहुधा अपने देश को लौटा भी दिया जाता है। उस समय कुछ चीनी और जापानी वापस किये जाने वाले थे। यह बात सुन कर यात्रियों को बड़ी चिन्ता हुई। सबके चेहरों पर दुःख और भय के चिह्न प्रकट हो गये। छाती धड़कने लगी। शरीर-परीक्षा आरम्भ हो गई। डाक्टर ने एक बङ्गाली यात्री का हाथ देखा। उसे छोड़ दिया। अब कुछ कुछ आशा का सञ्चार हुआ। गुह-बन्धु आगे बढ़े। डाक्टर ने उनकी नाड़ी देखी; आँखों की भी परीक्षा की और दोनों को रोक लिया। इस पर वे दोनों एक ऐसी जगह भेजे गये जहाँ और भी इसी तरह के कितने ही लोग थे। जिन गुह-बन्धुओं ने मुझ पर इतना उपकार किया था उनको इस प्रकार रोके जाते देख मराठा जीवित रहते हुए भी मृतवत् हो गया। उसके हाथ-पाँव काँपने लगे। डाक्टर ने मराठे का भी हाथ पकड़ा; और आँखें भी देखीं। पर ख़ैर हुई कि उसे उसने छोड़ दिया। मराठे को छूटने से आनन्द तो हुआ; परन्तु शीघ्र ही चिन्ता ने उसके आनन्द को हर लिया। वह परोपकारी गुह-बन्धुओं के लिए अत्यन्त चिन्तित हो उठा।

मराठा और पूर्वोक्त पहला बङ्गाली दोनों साथ साथ सानफ़्रान्सिस्को से बर्कले नगर गये। वहाँ से वे दोनों गुह-बन्धुओं के खाने के लिए फलाहार आदि लाये और अवरोध-स्थल में जाकर दे आये। इसी तरह वे प्रायः प्रति दिन करने लगे। परन्तु जब दस दिन बाद गुह-बन्धु मुक्त हुए तब उनसे मालूम हुआ कि उन के लिए भेजी गईं चीज़ें उन्हें न मिलती थीं; अवरोधालय के कर्मचारी उन चीज़ों को बीच ही में हड़प कर जाते थे। गुह-बन्धुओं को अवरोध-स्थल में खाने पीने और रहने का बड़ा कष्ट हुआ। परन्तु उन्होंने बड़ी धीरता से उन सब कष्टों को सहा। उनकी मुक्ति पर मराठे और पूर्वोल्लिखित बङ्गाली को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे गुह-बन्धुओं को अपने स्थान पर ले आये और उन की मुक्ति की ख़ुशी में भोज दिया। बर्कले के प्रवासी भारतीय छात्रों को भी गुह-बन्धुओं की मुक्ति से परमानन्द हुआ।

कुछ समय बाद सब लोग अपने अपने काम में लग गये। मराठे ने मज़दूरी कर के गुह-बन्धुओं का क़ज़ अदा कर दिया। गुह-बन्धु तीन थे; परन्तु हम यहाँ पर उन में से दो ही भ्राताओं का हाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिख रहे हैं। देवेन्द्रनारायण गुह बड़े भाई थे; सुरेन्द्रनारायण गुह छोटे। विद्योपार्जन की इच्छा इन दोनों भाइयों में बहुत प्रबल थी। सुरेन्द्र कैलीफोर्निया-विश्वविद्यालय में दाख़िल हो गये और देवेन्द्र व्यावहारिक कृषि की शिक्षा प्राप्त करने के लिए सानलुई चले गये। कैलीफोर्निया प्रान्त में वहाँ का कालेज, व्यावहारिक कृषिशिक्षा-सम्बन्धी बहुत ही अच्छा विद्यालय है। दोनों भाई बड़े प्रेम और बड़े उत्साह से विद्यार्जन करने लगे।

देवेन्द्र सानलुई में अपना अध्ययन पूरा कर के कृषि का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए सिएटल की "अलास्का यूकोन पैसिफिक प्रदर्शिनी" में गये। सुरेन्द्र भी गरमी की छुट्टियों में अर्थोपार्जन करने के लिए सियेटल पहुँचे। पूर्वोक्त बङ्गाली, तीसरे गुह-बन्धु और मराठा भी प्रदर्शिनी देखने और पैसा कमाने के लिए सिएटल गये। दो वर्ष से बिछुड़े हुए पाँचों भारतीय छात्रों का पुनः सम्मिलन हुआ। पाँचों एक साथ "भारतीय-भवन" (India House) में रहने लगे। प्रदर्शिनी देखने के बाद देवेन्द्र ने अमेरिका के भिन्न भिन्न प्रान्तों की कृषि तथा कृषकों की स्थिति देखने की इच्छा प्रकट की। पास काफ़ी धन न था, तो भी मज़दूरी करते हुए भ्रमण करने का निश्चय मन में कर के उन्होंने अपनी यात्रा आरम्भ कर दी। सुरेन्द्र कैलीफोर्निया-विद्यालय में पढ़ने चले गये। तीसरे गुह का नाम था निरुपमचन्द्र गुह। वे भी वाशिंगटन-महाविद्यालय में विद्याध्ययन करने चले गये। मराठा आरेगन पहुँचा, जहाँ वह कृषि-महा-विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने लगा।

एक वर्ष बीत गया। एक दिन अकस्मात् मराठे को देवेन्द्रनारायण गुह का पत्र मिला। उसमें लिखा था—"मैं वाशिङ्गटन के विश्व-विद्यालय में उद्भिज्जाणु-शास्त्र (Bacteriology) का पूरा पूरा अध्ययन कर चुका। अब आरेगन के कृषि-महाविद्यालय में फल-रक्षा-सम्बन्धी शास्त्र सीखने के लिए आरेगन आना चाहता हूँ। इस पत्र को पढ़ कर मराठा परम प्रसन्न हुआ। उसने अपने मित्र देवेन्द्रनारायण को शीघ्र आरेगन चले आने को लिख भेजा। थोड़े ही दिनों में देवेन्द्रनारायण आरेगन आ गये। मराठा और ाली आनन्द-पूर्वक फिर एक साथ रहने लगे।

देवेन्द्र ने कृषि का व्यावहारिक ज्ञान बहुत कुछ प्राप्त कर लिया था। सान फ्रांसिस्को, पोर्टलैंड, सिएटल आदि शहरों के बड़े बड़े फल-रक्षण-सम्बन्धी कारख़ानों में अपने हाथ से काम करने के कारण वे इस काम को बहुत अच्छी तरह सीख गये थे। यन्त्रों के चलाने और उनके कील-काँटों को ठीक लगाने के काम में भी वे निपुण हो गये थे। उनकी निपुणता का हाल जान कर बङ्गाले की एक कम्पनी ने उनकी अध्यक्षता में भारत में एक फल-रक्षा का बड़ा भारी कारख़ाना खोलने का विचार उन पर प्रकट किया था। वे उस कारख़ाने में काम करने के लिए तैयार हो गये। आवश्यक यन्त्रों को भारत भेजने का प्रबन्ध भी कर दिया। इस निमित्त वे शीघ्र भारत लौटने वाले भी थे, परन्तु केवल इस विषय का कुछ विशेष तात्त्विक ज्ञान प्राप्त कर लेने के लिए वे विशिष्ट विद्यार्थी की हैसियत से आरेगन के कृषि-विद्यालय में भरती हो गये। उन्हों ने फल-रक्षा-सम्बन्धी उद्भिज्जाणुशास्त्र में ही विशेष ज्ञान प्राप्त करने का निश्चय किया।

मराठा कालेज में सीनियर अन्डर ग्रेजुएट था। देवेन्द्र भी उसी के साथ पढ़ने लगे। समय आनन्द से कटने लगा। परन्तु यह आनन्द अधिक दिनों तक न रहा। देवेन्द्र का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। इससे हम दोनों छात्रों की चिन्ता बढ़ी। देवेन्द्र को सात रुपए रोज़ पर मराठा कारवालिस के बड़े अस्पताल में शुश्रूषा के लिए ले गया। वहाँ डाक्टरों से मालूम हुआ कि देवेन्द्र "टायफाइड" ज्वर से पीड़ित हैं। मराठे की चिन्ता ने विकराल भाव धारण किया। उसने पढ़ना लिखना छोड़ दिया और अस्पताल में रह कर देवेन्द्र की सेवा करने लगा। देवेन्द्र को अस्पताल में पड़े पड़े एक महीने से अधिक हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

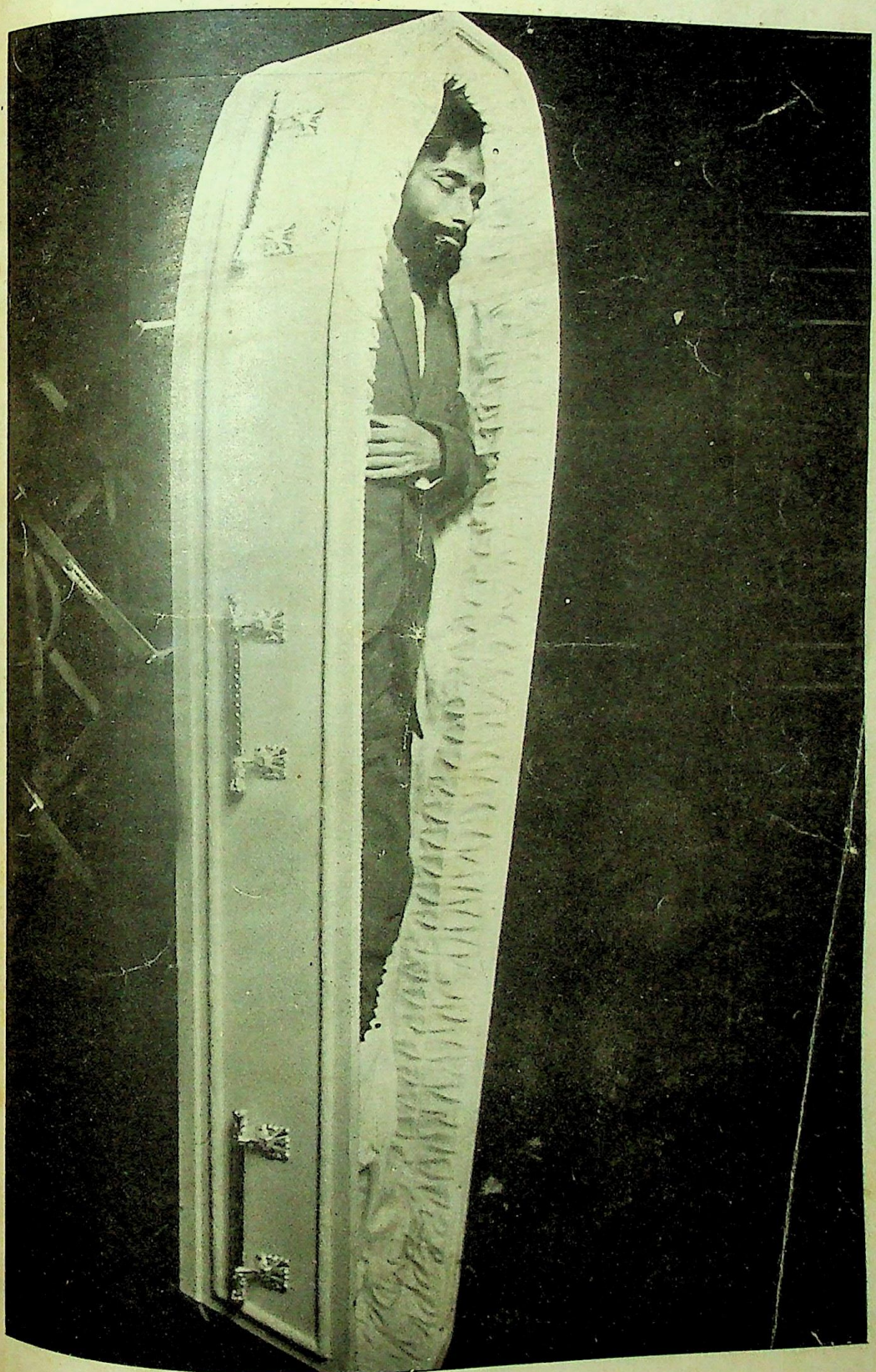

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

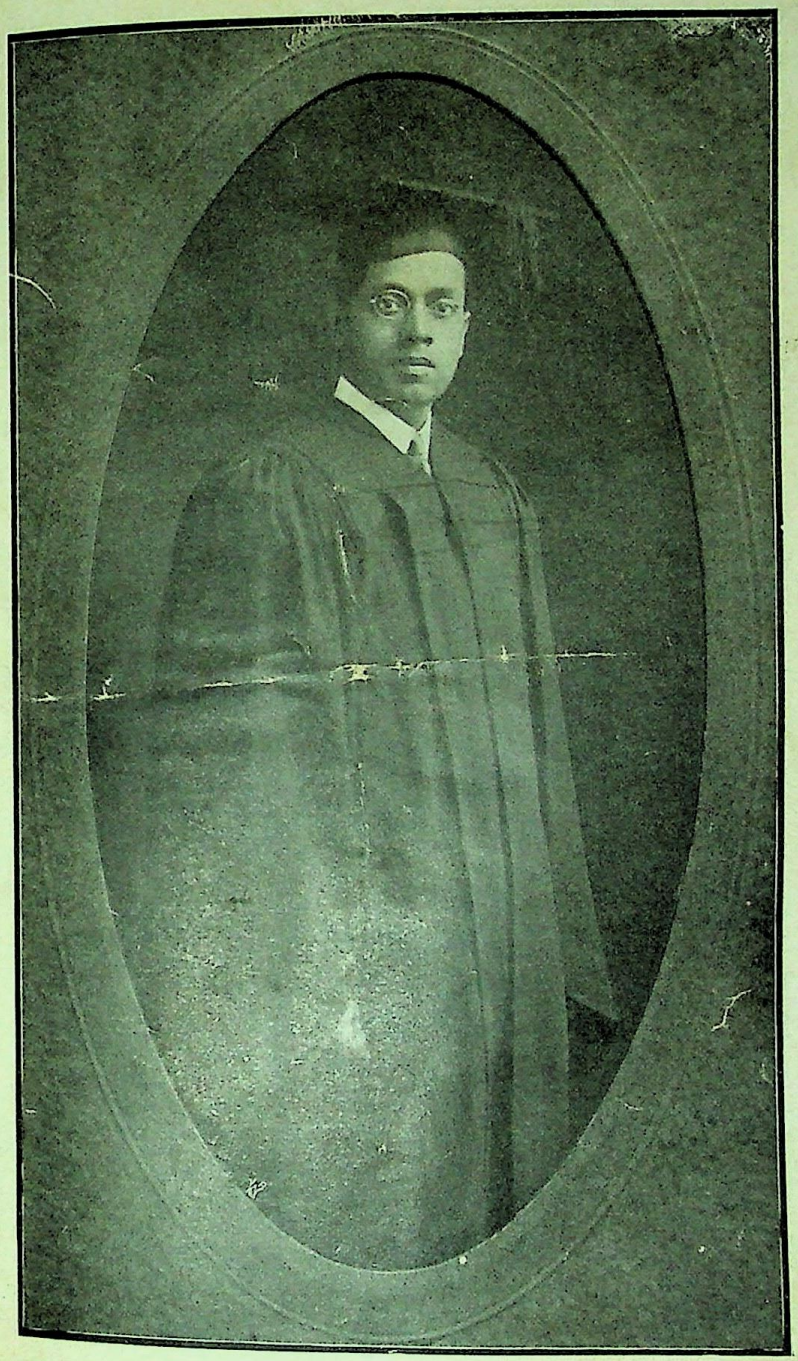

श्रीसुरेन्द्रनारायण गुह, बी० एस०, एम० आर० सी० एस०,
एम० पी० ई० एस० ।

Indian Press, Allahabad.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी बीमारी बढ़ती ही गई। मराठे ने सेवा शुश्रूषा में और डाक्टरों ने चिकित्सा में कोई कसर न छोड़ी। परन्तु परमेश्वर की इच्छा ही विपरीत थी। देवेन्द्र की तबीयत बहुत बिगड़ती देख कर मराठे ने उन के छोटे भाई सुरेन्द्रनारायण गुह को कैली फोर्निया तार दिया। वे शीघ्र ही आ गये। भाई को देख कर रोगी देवेन्द्र बहुत प्रसन्न हुए।

वे बोले,—"भाई, घबराना मत। जो कुछ होगा अच्छा ही होगा"।

धीरे धीरे देवेन्द्र अपने जीवन से निराश हो चले। एक दिन वे मराठे से बोले "मित्र! शीघ्र ही मेरा शरीरान्त होने वाला है। मुझे मृत्यु से तनिक भी भय नहीं, परन्तु मुझे दुख है की औद्योगिक उन्नति में मैं भारत की कुछ भी सेवा न कर सका। मेरे भाई को धीरज देना। मुझे आशा है कि जिस काम के करने की इच्छा मेरे मन में थी उसे आप लोग पूरा करेंगे"। देवेन्द्र के ये शब्द भारत-वासियों के लिए उनकी मृत्यु के समय के सन्देश के तुल्य हैं।

मृत्यु के सात दिन पहले देवेन्द्र ने कहा, "परमेश्वर मेरा इन्हीं माता-पिता के घर फिर जन्म दे, और साथ ही भारत की सेवा करने का भी अवसर दे"। देवेन्द्र की मातृ-पितृ-भक्ति और स्वदेश-प्रेम को देख कर उनके परिचित अमेरिका-निवासी भी चकित हो गये।

देवेन्द्र के जीवन का अन्तिम दिवस आ गया। उस दिन तक वे बेसुध नहीं हुए। मराठा उनके सिराहने बैठा था और उनके भाई सुरेन्द्र पास ही खड़े थे। डाक्टर आदि भी वहीं पर थे। देवेन्द्र का श्वासोच्छ्वास धीरे धीरे मन्द हो चला। मालूम होता था कि वे प्राणायाम कर रहे हैं। कमरे भर में सन्नाटा था। सन्ध्या का समय हो गया। सूर्य्य का प्रकाश जाने पर हुआ। इसी समय देवेन्द्र की आत्मा परमात्मा में लीन हो गई।

देवेन्द्र के स्वर्ग-वास से उनके छोटे भाई सुरेन्द्र शोकाकुल हो गये। वे विलाप करते हुए भूमि पर गिर पड़े। मराठा उन्हें किसी प्रकार उठा कर दूसरे कमरे में ले गया और उनके शोक को, समझा बुझा कर, कम करने की चेष्टा करने लगा। मराठा स्वयं ही इस वज्रपात से आकुल हो रहा था, पर करता क्या! देवेन्द्र की मृत्यु का समाचार कालेज में पहुँचाया गया। कालेज के सब छात्रों और अध्यापकों को भी बड़ा दुख हुआ। आरेगन में यह पहले ही भारत-वासी की मृत्यु थी। देवेन्द्र के शोक में दूसरे दिन कालेज बन्द रक्खा गया। जब कालेज का कोई छात्र या अध्यापक मर जाता है तब, उसके सम्मान के लिए, अमेरिका में, राष्ट्रीय पताका स्तम्भ के सिरे से उतार कर मध्य भाग में लगा दी जाती है। इसी रवाज के अनुसार दूसरे दिन देवेन्द्र की मृत्यु के कारण अमेरिका की राष्ट्रीय पताका राष्ट्र-स्तम्भ के मध्य भाग में लगाई गई। कालेज के छात्रों, अध्यापकों, कास्मापोलीटन क्लब के मेम्बरों तथा अन्य नगर-निवासियों ने भी देवेन्द्र की अकाल मृत्यु पर शोक प्रकट करने के लिए एक बड़ी भारी सभा की। प्रोफ़ेसर रेसलर आदि अध्यापकों ने वक्तृतायें दे कर देवेन्द्र की अकाल-मृत्यु पर शोक भी प्रकट किया और उनका गुणगान भी किया। देवेन्द्र के माता-पिता आदि के शोक में सहानुभूतिसूचना के द्योतक प्रस्ताव पास किये गये। मराठे ने देवेन्द्र के माता-पिता आदि की ओर से नागरिकों, अध्यापकों और छात्रों को उनकी सहानुभूति के लिए धन्यवाद दिया।

दूसरे दिन पोर्टलैंड के दहनालय में देवेन्द्र के मृत देह के दहन की तैयारी की गई। पोर्टलेण्ड के सारे हिन्दुओं, मुसलमानों और कितने ही अमेरिका-निवासियों और जापानियों ने दहन-संस्कार में सम्मिलित होने की कृपा की। दहनालय में सब लोग एकत्र हुए। मराठा ब्राह्मण-पुत्र है। धर्म-संस्कारों का उसे ज्ञान है। उसी ने दहन-संस्कार कराया। सब काम श्रुति-स्मृति आदि शास्त्रों के अनुसार हुआ। तदनन्तर मराठे ने गीता के द्वितीय अध्याय के आधार पर जीवन-मरण के सम्बन्ध में, हिन्दी में, एक छोटी सी वक्तृता दी। श्रीसुरेन्द्रमोहन बोस ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमेरिका और जापान-वासियों के समझने के लिए उसी विषय पर अँगरेज़ी में कहा। मराठा यह सब काम तो करता था, परन्तु वह मित्र-वियोग से कुण्ठित-कण्ठ हो रहा था। उसने कभी यह स्वप्न में भी न सोचा था कि जिन देवेन्द्रनारायण गुह की सहायता से वह अमेरिका पहुँचा था उन्हीं के मृत-शरीर के दहन का काम उसे करना पड़ेगा! सुरेन्द्रनारायण गुह की विकलता और विह्वलता भी निःसीम थी।

देवेन्द्र बड़ी सरल प्रकृति के मनुष्य थे। अपने मित्रों के लिए वे हर प्रकार का कष्ट झेलने को सदा तैयार रहते थे। वे बड़े स्वार्थ-त्यागी थे। भारत की औद्योगिक उन्नति की उन्हें सदा चिन्ता रहती थी। उन्हें अपने माता-पिता से भी बड़ा प्रेम था। वे इतने दिन विदेश में रहे; परन्तु उनकी धर्म-निष्ठा में ज़रा भी कमी न हुई। वे महात्मा राम-कृष्ण के अनुयायी थे और बड़ी सादगी से रहते थे। भगवान् उनकी आत्मा को सद्गति दे।

देवेन्द्रनारायण गुह के छोटे भाई सुरेन्द्रनारायण गुह भी बड़े योग्य हैं। वे भी वेदान्ती हैं। उनको भी विद्या से बड़ा प्रेम है। इसी वर्ष उन्हें कैलीफोर्निया-विश्वविद्यालय से बी० एस सी० (B. Sc.) की पदवी मिली है। वे भी अपने स्वर्गवासी भाई की तरह भारत की औद्योगिक उन्नति के अभिकांक्षी हैं। उन्होंने भारत के विषय में यहाँ अनेक व्याख्यान दिये हैं। उनका मुख्य विषय कृषि-रसायन है। वे इस समय एम० एस सी० (M. Sc.)की पदवी प्राप्त करने के लिए अध्ययन कर रहे हैं। आशा है कि शीघ्र ही उनको वह पदवी मिल जायगी। वे कैलीफोर्निया की तीन चार प्रतिष्ठित सभाओं के सभासद हैं। वे भी बड़े ही सरल-स्वभाव हैं। अभिमान तो उनको छू तक नहीं गया।

पाण्डुरङ्ग खानखोजे।

खड़ी बोली की काव्य-स्वतन्त्रता।

छन्दो-भंग की रक्षा के लिए 'माथ' का 'मथ' होना प्रसिद्ध है, और पुरानी हिन्दी की कविता में यह रक्षा यहाँ तक बढ़ी हुई है कि पद्माकरजी ने एक जगह 'सपने' के बदले 'सापने' लिखा है, यद्यपि शब्दों को थोड़ा इधर उधर करने से 'सपने' का उपयोग हो सकता था। और और प्राचीन कवियों ने तो शब्दों का इतना अङ्ग-भङ्ग किया है कि उनकी कविता न तो व्रज-भाषा ही में है और न उनकी मातृ-भाषा में; वरन् वह एक नई भाषा ही सी हो गई है। खड़ी बोली की कविता का प्रचार होने के जो कई कारण हैं उनमें से एक मुख्य कारण यह भी है कि गद्य और पद्य की भाषाओं में ज़मीन आसमान का अन्तर न होना चाहिए। अभी तक तो यह अन्तर खड़ी बोली में नहीं है; पर किसी कवि को अथवा किसी प्रचलित भाषा को व्याकरण की बेड़ियों से कोई सदा के लिए नहीं बाँध सकता। जो बातें आज हम खड़ी बोली की कविता के विषय में लिखते हैं उनमें से बहुतेरी कदाचित् पचीस बरस के बाद इस भाषा के सम्बन्ध में न लिखी जा सकेंगी; बरन् उस समय कुछ बातें इनके बदले में और कुछ बातें नई ही लिखनी पड़ेंगी।

खड़ी बोली में अब इतनी कविता होने लगी है और पाठकों की रुचि उसकी ओर इतनी है कि इस समय उस भाषा की काव्य-स्वतन्त्रता के कुछ नियम निश्चित करना अनावश्यक या अनुचित न होगा। जो थोड़े से (अधूरे) नियम यहाँ लिखे जाते हैं उनमें से प्रायः सभी 'सरस्वती' या 'कविताकलाप' पर से रचे गये हैं। अभी और पुस्तकों के उदाहरण छाँटने का सुभीता लेखक को नहीं हुआ है। आशा है कि कोई और महाशय इस विषय पर पूर्णता से लिखने की कृपा करेंगे।

आगे जो उदाहरण दिये जायँगे वे केवल स्वतन्त्रता ही के नहीं हैं, वरन् 'निरङ्कुशता' के भी हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस लेख का नाम हमने कई कारणों से 'निरङ्कुशता' नहीं रक्खा। कविता के साथ साथ यह निरङ्कुशता इतनी बढ़ी है कि जो लोग खड़ी बोली की कविता को "भद्दी" बताते हैं उनका मत इससे और भी पुष्ट हो जाना सम्भव है।

(१) प्राचीन शब्दों का उपयोग।

इस कविता में कुछ ऐसे शब्दों का उपयोग होता है जो पुरानी भाषा में पाये जाते हैं; पर गद्य में नहीं आते। इन शब्दों से यह लाभ है कि पढ़ने वालों का मन उनकी ओर (कविता में होने के कारण) अधिक खिँचता है। ये शब्द प्रान्तिक और संस्कृत-दोनों प्रकार के रहते हैं; जैसे,

(क) पै प्रथम आये को अधिकतर मानते मतिमान हैं (सर० १०, पृ० ३१); नेक न जीवन काल बिताना (सर० १२, पृ० ११६)

(ख) इस कारण हे वीर! न तुम यों मुझे निहारो (सर० १०, पृ० ११७)

(ग) हो आतुर अत्यन्त काम-वश दशा-बिसारे (सर० १०, पृ० ११८)

(घ) सबके साथ अपनपो जोड़ो (सर० १२, पृ० ११२)

(च) सिद्ध करैं हम उसे अलीक (सर० १२, पृ० १९१)

(छ) सब धर्म, व्रत, साधन क्रियाएँ प्रेम ही के मीत हैं (सर० १२—३३५)

(ज) खोल चोंच, तज गान सुखद छाया तकते हैं (१२—३४५)

(झ) स्वस्थ बैठ जब नेत्र मींचते (१२—२१०)

(२) प्राचीन (संस्कृत) शब्दों का दुरुपयोग।

किसी किसी कविता में संस्कृत-शब्दों के उपयोग की स्वतन्त्रता इतनी बढ़ी है कि रामायण का अर्थ जानने वाला भी इस कविता का अर्थ नहीं समझ सकता। ये गूढ़ शब्द किसी नये विचार या उपमा के लिए नहीं आते; बरन् उनका अभाव स्पष्ट दिखा देते हैं। कहीं कहीं इन शब्दों की कुछ भी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। खड़ी बोली की कविता को मधुर बनाने के बदले ये शब्द उसे कर्कश बनाते हैं; जैसे,

(क) ज्यों इन्दीवर में वराटक (१२—५७)

(ख) भव्य भात प्रभात यह मिलता यहाँ तुझको घना (१२—३५८)

(ग) है न तुम्हारा साम्य लोक में (१२—२१०)

(घ) भाता है जो स्वयमपि वही रूप होता वरिष्ठ (१०—३४१)

(च) आती यहां संयम की सुयुक्ति
है प्राप्त होती युग भुक्ति-मुक्ति (१२—२६४)

(छ) हुए कारुण्यार्द्र द्रुत जल भरे नम्र घन ज्यों (१०—४१४)

इन शब्दों के विषय में एक विचित्र बात यह दिखाई देती है कि बहुधा देशी घोड़ी पर विलायती ज़ीन रख दिया जाता है। ऊपर का "भव्य भात" इसका एक उदाहरण है। एक जगह (१०—३४१) ससुर तो 'श्वसुर' हो गये, पर 'सास' 'सास' ही रहीं। इनके सिवा किसी किसी पात्र के मुख से ऐसे ऐसे कठिन शब्द कहलवाये जाते हैं कि उनको पढ़ कर बड़ा अचरज होता है। यथार्थ में इन शब्दों का उपयोग किसी सिद्धान्त के अनुसार नहीं है। यह स्वतन्त्रता निरङ्कुशता के सिवा और कुछ नहीं है।

(३) संस्कृत-शब्दों का अपभ्रंश।

उच्चारण की सुगमता के लिए कुछ शब्दों का अपभ्रंश कर दिया जाता है। इस प्रकार के कुछ शब्द पुरानी भाषा में भी पाये जाते हैं। अपभ्रंश बहुधा संयुक्त अक्षरों में होता है; जैसे,

मारग (मार्ग) [१०—९]; यद्यपि = यदपि (१०—११७)

परमार्थ = परमारथ (१०—९); परमात्मा परमातमा (,,)

मूर्ख = मूरख (१०—९); चक्षु = चख (१०—११८)

हरिश्चन्द्र = हरिचन्द्र (कविता-कलाप, पृ० ११)

इस प्रकार के अपभ्रंश बहुत से शुद्ध संस्कृत-शब्दों की अपेक्षा अधिक प्रयोजनीय हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) नाम-धातुओं का उपयोग

अपभ्रंशों के समान इनसे भी कविता को मधुरता और कोमलता प्राप्त होती है; क्योंकि इनका अर्थ बहुधा सहज रहता है और इनके रूप से एक प्रकार का कौतूहल बढ़ता है। इनमें वे क्रियायें भी शामिल हैं जो संस्कृत-धातुओं में हिन्दी-क्रिया-प्रत्यय लगाने से बनती हैं; जैसे,

न तो भी तुझे लोग सम्मानते हैं (१०—२९२)

हमें सदा निज दास जान हम पर अनुरागो (१०—११७)

तुमने तो दयामय! प्रथम सब भाँति अपनाया हमें (१०—२८७)

इससे यह सन्देश भेजने योग्य मुझी को अनुमाना (१२—४६१)

देख युवा का भी मन लोभा (कविता-कलाप, पृ० ६७)

भग, रक्त प्राण (१२—२४)

अपनी बेटी का हृदयस्थल क्यों अनुचित कह दहते हो (१२—३२४)

बैठ विचार प्रचार (१२—११६)

(५) लंबे समास।

तीन शब्दों से बड़े समास, मेरी समझ में, हिन्दी में शोभा नहीं देते। इस प्रकार के कई समास रामायण में (दूसरी पुरानी कविता में भी) आये हैं; पर उनका कारण विभक्तियों का वह निरङ्कुश लोप है जो प्राचीन कविता का एक मुख्य लक्षण है। इन लम्बे समासों से हिन्दी-कविता की स्वाभाविक सुन्दरता में उसी प्रकार भद्दापन आता है जैसा कि उन सङ्कर-समासों के कारण होता है जो कभी कभी खड़ी बोली की कविता में दिखाई देते हैं। इनसे शब्दाधिकाराभाव भी सूचित होता है।

उदाहरण।

(क) नल-नृप-छबि (क० क०, पृ० ५१)
श्रोतृ-दृष्टि-प्रभेद (,, ,,)
अगणित-कमल-अमल-जल-पूरित (क० क०, पृ० ५३)
श्रम-जन्म-खेद-हर्ता (१२—२१०)
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह-वश (१२—१३२)
शैलेन्द्र-तीर-सरिता-जल (१२—२४)

(ख) पीयूष-सोता (१२—५७); आंगन तट (१२—४१५)
मानव-तन (१२—१३१); आलस-नद (१२—१२२)
वारिद-धुनि (१०—३०४); वन-बाग़ (१०—३६२)
रण-खेत (१०—३०); लोक-चख (१०—४१३)

(ग) दो शब्दों के समास में आद्य अक्षरों का जो अनुप्रास होता है वह सुनने में मधुर लगता है; जैसे,

पाटीर-पङ्क (१२—७); प्रेम-प्रवाह (१०—१०५)
ज्ञान-गौरव, भक्ति-भाव (१०—११६); दया-द्रवित (१२—४६३)
कल्पना-कमल (१०—४३७); सङ्गति-सुख १०—३९४)
विरह-विह्वला (क० क०—३०)

(६) फ़ारसी-अरबी शब्दों का उपयोग।

इनमें भी संस्कृत-शब्दों के समान निरङ्कुशता दिखाई देती है। इन भाषाओं के कई शब्द तो ऐसे आते हैं कि वे निरी हिन्दी जानने वालों के लिए जापानी सरीखे दिखाई देते हैं। दिले बिस्मिल, साक़ी, काकुल, आहू, उर्दू (१२—२६३) इस प्रकार के शब्द हैं। इन शब्दों से यही जान पड़ता है कि कवि "ज़बांदां" है और वह सब को "आलिम-वत्" समझता है। सर्व-सम्मति से इन भाषाओं के सहज शब्द भी किसी किसी अवसर पर अनुचित समझे जाते हैं। कोई भी हिन्दू "राम की औरत" न कहेगा; यद्यपि "औरतों के लिए" रेल के डिब्बों पर लिखा रहता है। ऐसी अवस्था में:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हे भक्त-वत्सल दीनबन्धो! हम कहा कर आपके—
अफ़सोस! अब तक भी बने हैं पात्र जो सन्ताप के—
(१०—२८७)

इस कविता का "अफ़सोस" विचारने के योग्य है। जो भक्त "दीनबन्धो" (संस्कृत का सम्बोधन) कहना जानता है क्या वह अपनी प्रार्थना में "अफ़सोस" भी लायगा? इस कविता के साथ "हन्त," "हा हन्त," "करुणा" से होड़ लगाने वाले "बला," "कलेजे" भी आये हैं। कुछ कुछ ऐसी ही झलक नीचे लिखे पद्य में पाई जाती है—

"शिरोरोग का अतः एक दिन लिये बहाना,
किया बहू ने शुरू खूब रोना चिल्लाना"
(१०—५०५)

यहाँ "शिरोरोग" के साथ "शुरूअ" होता तो बनाव पूरा बन जाता। "मंजु दिल," "पीयूष का प्याला," सुक्रोड़ित वा मंजु मुखरित (सर० ८—३५८, ३५९ में) इस निरङ्कुशता के और उदाहरण हैं।

(७) शब्दों के प्राचीन रूपान्तर।

संस्कृत के सम्बोधन कारक का उल्लेख हो चुका है। परिचित शब्दों में इससे एक प्रकार का गौरव सम्भव है; पर अतिशय सदा वर्जित है। अधिकरण के चिह्न "तक" के बदले "लौं" और "में" के बदले 'मध्य' आते हैं; ये भी किसी प्रकार अनुचित नहीं जान पड़ते। कहीं कहीं "लौं" "समान" के अर्थ में आता है (८—३५९) यह भी कविता की मधुरता में विघ्न सा नहीं जान पड़ता। पूर्व-कालिक क्रिया का भी प्राचीन रूपान्तर उपयोग में आता है। इसका एक ही उदाहरण "पाय" (१२—३२) बस होगा। क्रिया के और और रूपान्तरों के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

करिये = कीजिये (१०—११७)
करियो = कीजियो (१२—२४१)
हूजो = हूजियो (,,); आन = आय
(१०—३८९)
दीजो, कीजो (१२—२४१); देगे = देओगे
(१२—१२३)
कहाँ जलै है वह आगी = जलती है (ए०वा० यो०)

(८) शब्दों की तोड़-मरोड़।

खड़ी बोली की कविता का एक मुख्य लक्षण यह भी कहा जाता है कि उसमें पुरानी भाषा के समान शब्द तोड़े-मरोड़े नहीं जाते। इस विषय के हमें बहुत से उदाहरण नहीं मिले हैं; पर सम्भव है कि काल पाकर यह दोष बढ़ जावे। इसके थोड़े से उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—तुही = तूही (१०—२९२) चहता = चाहता (क० क०—२८); नहिँ = नहीं (१२—४३८)

(९) पाद-पूरक शब्द।

प्राचीन कविता में 'जु', 'सु', 'हिं', आदि शब्द कहीं कहीं केवल छन्द की मात्रा पूरी करने के लिए लगाये जाते हैं। इनसे कोई विशेष लाभ न होकर कवि की शब्द-हीनता सूचित होती है। कहीं कहीं खड़ी बोली की कविता में भी यही दोष पाया जाता है;

है सु कोकिल समान कलवैनी (८—३५९)
न होगी अहो! पुष्ट जौ लौं स्वभाषा (१०—२९३)

(१०) शब्द-भेदों में हेरफेर।

(क) अकर्मक क्रिया को सकर्मक तथा सकर्मक को अकर्मक बनाना:—

प्रेम-सिन्धु में स्वजन-वर्ग को शीघ्र नहा दो
(१०—१५२)
अपनी बेटी का हृदय-स्थल क्यों अनुचित कह
दहते हो (१२—३२४)
व्यापक न ऐसी एक भाषा और दिखलाती यहाँ
(१०—५३८)

(ख) विशेषण को क्रिया विशेषण बनाना—
(सभीजन) जीवन सुखद बिताते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(११) संस्कृत की वर्ण-गुरुता।

इसका प्रचार बहुत है। कहीं कहीं तो लम्बे समासों के साथ इस गुरुता से उच्चारण ही कठिन हो जाता है। जान पड़ता है कि जहाँ मात्रा की कमी हुई और कवि ने यह युक्ति लगाई। इसके इतने उदाहरण पाये जाते हैं कि यहाँ कोई उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है।

(१२) व्याकरण की भूलें।

(क) बहुधा अप्राणी-वाचक संज्ञाओं के साथ अकारण ही 'को' चिह्न लगा दिया जाता है; जैसे,

सहसा उसने पकड़ लिया (१०—११९); पाकर उचित सत्कार को (१०—३१) कृष्णा के कर को।

(ख) "नहीं" के बदले "न" का उपयोगः—

शुक! न हो सकते फलों से वे कदापि रसाल हैं (१२—३६०)

लिखना मुझे न आता है (१२—४६३)

(ग) भूतकाल का प्राचीन रूपः—

मोह महाराज की पताका फहरानी है (क० क०—१३)

रति भी जिसको देख लजानी (क० क०—६७)

रतिपति के वह हाथ बिकानी (,, ,,)

(घ) कर्मणि-प्रयोग की भूलः—

तद्विषय एक रस-केलि आप निर्धारे

स्वपद-भ्रष्ट किये जिसने हमें

कवि लोग कदाचित् व्याकरण को उसी दृष्टि से देखते हैं जिस दृष्टि से वैयाकरण लोग कविता को देखते हैं!

कामताप्रसाद गुरु।

विरहिणी सीता।

कुहकिनी आशे! अधिक अब और मुझको मत छलो,
प्राण! अब प्रिय के निकट तनु त्याग कर तुम उड़ चलो।
"पति-बिना जीती रही रह राक्षसों में जानकी"
ज्ञात क्या तुम को नहीं यह बात है अपमान की? १

अश्रु-जल! साथी तुम्हीं हो आज मेरे शोक में,
हाय रे! मुझ सी अभागी कौन होगी लोक में?
नीच तनु! निश्चय अनल में मैं जलाऊँगी तुझे,
दुःख जिसके हेतु ये सहने पड़े ऐसे मुझे॥ २॥
समय! जब सर्वस्व से तू ने मुझे वञ्चित किया
फिर भला यह जीव मेरा छोड़ क्यों तू ने दिया?
दैव! क्यों निज दान की त्रुटि-पूर्ति कर लेता नहीं,
जब वियोग दिया मुझे तब मृत्यु क्यों देता नहीं? ३
भाग्य! तू कह तो भला किसने बनाया है तुझे?
वह विधाता मूर्ख है जिसने बनाया है तुझे।
अन्यथा संसार में सुख लूटता ही लूटता
यों अचानक शीघ्रता से तू कदापि न फूटता॥ ४॥
है अपूर्व अशोकवन! तू शोकवन मेरे लिए!
हूँ कलङ्क-समान मैं भी शोक से तेरे लिए।
सींच कर तुझको हुए हैं नेत्र मेरे अन्ध से
भेज मम सन्देश अब तो प्रिय-निकट निज गन्ध से॥ ५॥
हाय! प्रियतम, तुम कहाँ हो? और मैं भी हूँ कहाँ?
था न निमिषान्तर जहाँ हा! आज यह अन्तर वहाँ!
धन्य राक्षसराज रावण! धन्य तेरी नीचता,
देख कर अघ भी तुझे है आज आँखें मींचता॥ ६॥
नाथ! क्या निज किङ्करी की सुध कभी लोगे नहीं?
और क्या इस जन्म में दर्शन मुझे दोगे नहीं?
जान कर यह हाय! तुम कितने विकल होगे नहीं?
भोगती हूँ दुःख वे वे जो कभी भोगे नहीं॥ ७॥
नाथ! मेरी सहचरी करुणा तुम्हारी है कहाँ?
ज्ञात क्या तुम को नहीं मैं सिन्धु-पार पड़ी यहाँ?
इस विपद से अब कभी उद्धार क्या होगा नहीं?
इस निशाचर-राज्य का संहार क्या होगा नहीं? ८
सोचती निज दुःख ही मैं हूँ बड़ी ही कर्कशा,
हाय! प्रिय, मेरे बिना होगी तुम्हारी क्या दशा?
देव-गण करती विनय है जानकी हो उन्मुखी,
"दुःखिनी चाहे रहूँ मैं तुम उन्हें रखियो सुखी"॥ ९॥
विरहिणी सीता सती अब और बोल सकी नहीं
रह गईं वे ध्यानमग्ना मूर्ति सी बन कर वहीं।
हाय! क्यों सीतापते! तुम कर रहे हो क्रूरता?
दूर कर दो देव! अब तो मैथिली की दूरता॥ १०॥

मैथिलीशरण गुप्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरहिणी सीता ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसीदास की अद्भुत उपमायें

[२]

कुछ उपमाओं को मैं नमूने के तौर पर नीचे देता हूँ:—

(१)

सज्जनों की प्रशंसा में तुलसीदासजी लिखते हैं—

सो मोसन कहि जात न कैसे।
साक-बनिक मनि-गन-गुन जैसे।

जिस प्रकार शाक-भाजी बेचने वाला खटिक मणियों का गुण—कौन से ज़वाहिर कैसे हैं, किसके कितने दाम हैं—नहीं कह सकता—उसी प्रकार मैं भी सज्जनों की पूरी प्रशंसा नहीं कर सकता।

(२)

बंदउँ संत समान चित हित अनहित नहिँ कोउ।
अंजुलिगत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोउ।

सज्जनों का चित्त सब पर एकसा रहता है, उनके लिए सभी बराबर हैं। जैसे अञ्जली में लिये हुए फूल बायें और दाहिने दोनों हाथों को बराबर सुगन्धित करते हैं।

(३)

भनिति बिचित्र सुकविकृत जोऊ।
राम-नाम बिनु सोह न सोऊ॥
बिधुबदनी सब भाँति सवाँरी।
सोह न बसन बिना बरनारी॥

जिस प्रकार सब गहनों से लदी हुई भी कामिनी कपड़े के बिना अच्छी नहीं लगती उसी प्रकार अच्छे कवि की अति सुन्दरी भी कविता राम-नाम के बिना अच्छी नहीं लगती। तात्पर्य यह कि जो कविता परमेश्वर—रामचन्द्र—से सम्बन्ध नहीं रखती वह सज्जनों को नहीं भाती।

(४)

मनि-मानिक-मुकुता-छबि जैसी
अहि-गिरि-गज-सिर सोह न तैसी।
नृप-किरीट तरुनीतनु पाई
लहहिँ सकल सोभा अधिकाई॥
तैसेहि सुकबि-कबित बुध कहहीँ
उपजहिँ अनत, अनत छबि लहहीँ।

जैसे सर्प की फणा में उत्पन्न होने वाला मणि सर्प की फणा में, पर्वतों की खानों से निकले हुए रत्न पर्वतों की खानियों में, और हाथी के सिर में पैदा होने वाला मोती हाथी के सिर में शोभा नहीं पाता। उनकी शोभा होती है राजाओं के मुकुट में और स्त्रियों के गहनों में। वैसे ही सुकवि पैदा होते हैं एक जगह और प्रतिष्ठा यथेष्ट पाते हैं दूसरी जगह। तात्पर्य यह कि किसी वस्तु की यथेष्ट प्रतिष्ठा अपनी जन्मभूमि में नहीं होती।

(५)

बरषा-रितु रघुपति-भगति तुलसी-सालि सुदास।
रामनाम बर बरन जुग सावन भादौं मास॥

रामचन्द्र की भक्ति वर्षा ऋतु है और तुलसीदास शाली-धान है। और "राम" ये दोनों सुन्दर अक्षर श्रावण और भाद्रपद महीने हैं। जिस प्रकार वर्षा ऋतु के सावन-भादों महीने में खूब पानी बरसता है जिससे धान बढ़ते हैं और फलते हैं उसी प्रकार भक्ति में निरत भक्तजन "राम" इन दोनों अक्षरों का जप कर के मोक्ष-फल पाते हैं।

(६)

बैठे सोह कामरिपु कैसे।
धरे सरीर सांतरस जैसे॥

शिवजी एकान्त में बैठे हुए ऐसे जान पड़ते थे जैसे शान्तरस शरीर धारण करके बैठा हो।

(७)

झूठउ सत्य जाहि बिनु जाने
जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने॥

झूठी बात भी बिना जाने सच्ची जान पड़ती है जैसे बिना जाने रस्सी को लोग साँप समझ लेते हैं। तुलसीदास ने यही बात संस्कृत में भी लिखी है—"रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः"।

(८)

काम-कोटि-छबि स्याम सरीरा।
नील-कंज-बारिद-गंभीरा॥
अरुन-चरन-पंकज-नख-जोती।
कमल-दलहि बैठे जनु मोती॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचन्द्र के शरीर में करोड़ों कामदेवों की सी शोभा है। वह शरीर काले कमल तथा मेघ के समान नीला है। लाल लाल चरण कमलों के नख ऐसे जान पड़ते हैं जैसे कमल की पखड़ियों पर मोती रक्खे हों।

(९)

लता-भवन तें प्रगट भये तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद-पटल बिलगाइ।

उस समय दोनों भाई लता-भवन से बाहर निकल आये। जान पड़ा—मानो बादलों को चीर कर दो स्वच्छ चन्द्रमा उग आये। कैसी अच्छी उपमा है।

(१०)

डगइ न संभु सरासन कैसे।
कामी-बचन सती-मन जैसे॥

जिस प्रकार कामी पुरुष—लम्पट आदमी—के कहने पर भी सती—पतिव्रता-स्त्री का चित्त अपने धर्म से नहीं डिगता—उसी प्रकार शिवजी का धनुष किसी का डिगाया न डिगा। इस उपमा का यह भाव अत्यन्त पवित्र है। वह महत्त्व से भरा हुआ है।

(११)

बिधि केहि भाँति धरउँ उर धीरा।
सिरिस-सुमन-कन बेधिय हीरा॥

जानकीजी कहती हैं—हे ब्रह्मा! रामचन्द्र तो बड़े ही सुकुमार हैं। उनसे यह अति कठोर धनुष कैसे टूटेगा। हाय! कैसे धीरज धरूँ। क्या शिरीष के फूल के टुकड़े से हीरे में छेद हो सकता है? इस चौपाई में अभिज्ञान-शाकुन्तल के—

"इदं किलाव्याजमनोहरं वपुः, तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीतरुं छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति"

इस श्लोक की छाया विद्यमान है।

(१२)

सोहत जनु जुग जलज सनाला।
ससिहि सभीत देत जयमाला॥

सखियों ने कहा—"सखी! जानकी! रामचन्द्र को जयमाल पहना दो" इस पर जानकी ने लज्जा से—माला पहनाने के लिए धीरे से अपने दोनों हाथ उठाये। उस समय जान पड़ा कि नाल (कमल की डंठी) के सहित दो कमल-पुष्प, चन्द्रमा को डरते डरते, जयमाल पहना रहे हैं। कमल चन्द्रमा को देख सम्पुटित हो जाता है। इसलिए वे दोनों कर-कमल चन्द्रमा के पास जाने में सकुचते हैं। यह भाव नया है।

(१३)

मन मलीन तनु सुन्दर कैसे।
बिष-रस भरा कनक-घट जैसे॥

परशुराम ने कहा:—यह लड़का—लक्ष्मण—यद्यपि शरीर से सुन्दर है तथापि मन इसका कलुषित है। वह ऐसा है जैसे सोने का घड़ा ज़हर से भरा हो। भाव यह कि इसका रूप जैसा मनोहर है वैसा इसका वचन मनोहर नहीं। यद्यपि संस्कृत के कवियों ने "विषकुम्भं पयोमुखं" लिखा है तथापि वह उक्ति इतनी सुन्दर नहीं जितनी कि यह। इसमें "कनक-घट" "बिषरस भरा" आदि पदों से विचित्रता विशेष बढ़ गई है।

(१४)

रामसीय-सुन्दर-परछाहीं।
जगमगाति मनि-खंभन माहीं॥
मनहुँ मदन-रति धरि बहु रूपा।
देखत राम-बिवाह अनूपा॥
दरस-लालसा सकुच न थोरी।
प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी॥

राम और जानकी की परछाईं मणियों के खम्भों में पड़ कर जगमगा रही है। जान पड़ता है कि काम-देव और रति अनेक रूप धारण करके राम का विचित्र विवाह देख रहे हैं। देखने की भी बड़ी लालसा है और प्रकट होते लज्जा भी मालूम होती है। इसलिए वे बार बार छिपते हैं और और बार बार प्रकट होते हैं। राम जानकी के साथ भाँवरी दे रहे हैं। इससे हिलती हुई चञ्चल परछाईं पड़ती है। इस कारण यह उपमा बड़ी ही हृदयहारिणी है। कवि ने यहाँ अनुपम चातुरी दिखलाई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१५)

लखइ न रानि निकट दुख कैसे ।
चरइ हरित त्रिन बलिपशु जैसे ॥

कैकेयी बहुत समीप आई हुई विपत्ति को भी नहीं देखती थी । उलटा अपने मन में वह अनेक प्रकार के मनोरथ का सुख लूटती थी—जैसे बलि-दान करने के लिए खड़ा किया हुआ पशु हरी हरी घास खाकर खुश होता है ।

(१६)

बिपति-बीजु बरषा-रितु चेरी ।
भुइँ भइ कुमति केकई केरी ॥
पाइ कपट-जलु अंकुर जामा ।
बर दोउ दल दुख-फल परिणामा ॥

विपत्ति बीज, मन्थरा वर्षा ऋतु और कैकेयी की कुबुद्धि पृथिवी के समान है । वह कपटरूपी जल को पाकर अङ्कुरित हो गई । उसमें वर रूपी दो पत्ते हुए, जिन का अन्तिम फल दुःख हुआ ।

(१७)

दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू ।
जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू ॥

दशरथ ने कहा—" रानी ! तुम्हारे ही मन की बात कर रहा हूँ । कल ही रामचन्द्र को युवराज बनाता हूँ " यह बात सुन कर कैकेयी का कठोर हृदय दलक गया—हिल गया—मानो पका हुआ बरतोड़ (एक प्रकार का फोड़ा जो ज़रा भी छू जाने से बहुत दुखता है) छू गया । यह उपमा एक दम नई है ।

(१८)

भूप-मनोरथ सुभग बन सुख सुबिहंग-समाजु ।
भिल्लिनि जनु छाड़न चहति बचन भयंकर बाजु ॥

दशरथ का मनोरथ सुन्दर वन है । सुख सुन्दर पक्षियों का झुण्ड है । उसमें कैकेयी भीलनी भयंकर वचन रूपी बाज़ छोड़ना चाहती है । जैसे सुहावने वन में मनोहर चिड़ियों को नष्ट करने के लिए भीलनी अपने पोसे हुए "बाज़" पक्षी को छोड़ देती है वैसे ही कैकेयी ने दशरथ के मनोरथ में होनेवाले भावी सुख को नष्ट करने के लिए अपना बाज़रूपी कठोर वचन निकालना चाहा । यह नया भाव है ।

(१९)

कवने अवसर का भयउ गयउ नारि बिसवास ।
जोगसिद्धि-फल-समय जिमि जतिहि अविद्या नास ॥

हाय ! किस समय क्या होगया ! स्त्री का विश्वास चला गया । मानो योग की सिद्धि का फल प्राप्त होने के समय अज्ञानता ने संन्यासी का नाश कर दिया ।

(२०)

व्याकुल राउ सिथिल सब गाता ।
करिनि कल्पतरु मनहु निपाता ॥

दशरथ घबराये हुए शिथिल पड़े हैं—मानो हथिनी ने कल्प वृक्ष को गिरा दिया है । यहाँ कैकेयी की हथिनी से, और दशरथ की कल्पवृक्ष से समता बड़ी ही भली और उचित जान पड़ती है ।

(२१)

मंगल सकल सुहाँहि न कैसे ।
सहगामिनिहिँ बिभूषन जैसे ॥

जैसे पति की चिता में जलने के लिए उद्यत सती को मङ्गल की चीज़ें नहीं सुहातीं वैसेही दशरथ को स्तुतिगान तथा मनोहर बाजे अच्छे नहीं लगते । अच्छी उपमा है ।

(२२)

जाइ देखि रघुवंसमनि नरपति निपट कुसाजु ।
सहमि परेउ लखि सिंहिनिहि मनहु वृद्ध गजराजु ॥

राम ने दशरथ को बड़ी ख़राब हालत में देखा । मानो सिंहिनी को देखते ही बूढ़ा हाथी डर कर गिर गया है । मनोहारिणी उपमा है ।

(२३)

जीभ कमान बचन सर नाना ।
मनहुँ महिप मृदु लच्छ समाना ॥
जनु कठोरपनु धरे सरीरू ।
सिखइ धनुष-बिद्या बरबीरू ॥

कैकेयी दशरथ से बारंबार कठोर वचन बोल रही है । मानो कठोरता शरीर धारण करके बाण-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्या सीख रही है, जिसकी जीभही धनुष है, अनेक प्रकार के वचन ही बाण हैं और दशरथ ही कोमल लक्ष्य—निशाना—हैं।

(२४)

सहज सरल रघुबर-बचन कुमति कुटिल कर जान।
चलइ जोंक जिमि बक्रगति जद्यपि सलिल समान॥

राम का वचन स्वभाव से ही सीधा था, पर कैकेयी उसे टेढ़ा समझती थी। जैसे, पानी यद्यपि स्वभावतः सम रहता है पर जोंक उसमें भी टेढ़ी ही चाल चलती है। नई उपमा जान पड़ती है।

(२५)

लागहिँ कुमुख बचन सुभ कैसे।
मगह गयादिक तीरथ जैसे॥

कैकेयी के कलुषित मुख में सुन्दर और कोमल वचन ऐसे जान पड़ते हैं जैसे अपवित्र देश मगध में गया, राजगृह आदि तीर्थ। अनोखी उपमा है।

(२६)

सीतल सिख दाहक भइ कैसे।
चकइहि सरदचन्द-निसि जैसे॥

राम की शीतल बानी—कि तुम वन मत जाव—सुन कर जानकी जी को ऐसा दुःख हुआ जैसा कि शरत्काल की शीतल चाँदनी देखकर चकवी को दुःख होता है।

(२७)

सिअरे बचन सूखि गये कैसे।
परसत तुहिन तामरस जैसे॥

राम की ठंढी बात सुन कर लक्ष्मण ऐसे सूख गये जैसे कि बर्फ़ पड़ने से कमल सूख जाता है। यह उपमा गम्भीरता से भरी हुई है।

(२८)

मनहुँ बारिनिधि बूड जहाजू।
भयउ बिकल बड़ बनिक-समाजू॥

सोये हुए सारे अयोध्यावासियों को छोड़ कर रामचन्द्र वन को चले गये। प्रातःकाल सब लोग रामचन्द्र को न देख कर ऐसे घबराये जैसे कि समुद्र में जहाज़ डूब जाने पर बनियों का झुण्ड घबरा उठता है। यह एकदम नई उपमा है।

(२९)

आगे राम लषन पुनि पाछे।
तापस बेष बिराजत काछे॥
उभय-बीच सिय सोहति कैसी।
ब्रह्म-जीव-बिच माया जैसी॥
बहुरि कहउँ छबि जसि मन बसई।
जनु मधु-मदन-मध्य रति लसई॥
उपमा बहुरि कहऊँ जिय जोही।
जनु बुध-बिधु-बिच रोहिनि सोही॥

उस वन में तपस्वी का सुन्दर वेष धारण कर रामचन्द्र आगे और लक्ष्मण पीछे चलते हैं। उन दोनों के बीच में जानकी जी चलती हैं। उस समय उनकी ऐसी शोभा होती है जैसी कि ब्रह्म और जीव के बीच में रहने वाली माया की होती है। अथवा ऋतुराज वसन्त और काम के बीच रति की। अथवा चन्द्रमा और बुध के बीच रोहिणी की। ये उपमायें बड़ी ही सुन्दर तथा नवीन हैं। कालिदास की भी एक उपमा इसी ढंग की है पर इनसे एकदम भिन्न है। राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा के बीच में खड़ी हुई नन्दिनी गौ की उपमा में कालिदास ने लिखा है—"दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या"। अर्थात् जैसे दिन और रात के बीच में सन्ध्या की शोभा होती है वैसे ही राजा और रानी के बीच में गाय शोभा दे रही है। वहाँ एकही उपमा थी; यहाँ गोस्वामीजी ने तीन अनूठी उपमायें दे डालीं।

(३०)

जोगवहिँ प्रभु सिय लषनहिँ कैसे।
पलक बिलोचन-गोलक जैसे॥
सेवहिँ लषन सीय रघुबीरहिँ।
जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहिँ॥

जानकी तथा लक्ष्मण की रामचन्द्र ऐसी रक्षा करते हैं जैसी कि आँखों की पुतलियों की रक्षा पलकें करती हैं। जानकी तथा लक्ष्मण राम की इस प्रकार सेवा करते हैं जिस प्रकार अज्ञानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष शरीर की सेवा करते हैं। ये दोनों उपमायें भी बहुत अच्छी हैं।

(३१)

हृदय न बिदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतम नीर।
जानत हौं मोहि दीन बिधि यह जातना सरीर॥

सुमन्त्र कहता है:—मैं जानता हूँ कि विधाता ने इतनी बड़ी वेदना मुझे सहने ही के लिए दी है। नहीं तो जिस प्रकार प्यारे जल के वियोग से पङ्क फट कर हज़ारों टुकड़े हो जाता है उसी प्रकार रामचन्द्र के विरह में मेरे हृदय के भी टुकड़े हो जाने चाहिए थे, सो न हुए। "हृदय न विदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतम नीर" यह उपमा एकदम नई और बहुत ही अद्भुत है। हम जहाँ तक समझते हैं ऐसी उपमा किसी दूसरे ने नहीं लिखी।

(३२)

अस अनंद अचरज प्रति ग्रामा।
जनु मरुभूमि कल्पतरु जामा॥

भरत को देख कर ग्रामवासी जनों के आनन्द तथा आश्चर्य की सीमा नहीं है; मानो मारवाड़ में कल्पवृक्ष उग आया है।

(३३)

भरत दरस देखत खुलेउ मग-लोगन्ह कर भागु।
जनु सिंहलबासिन्ह भयउ बिधिबस सुलभ प्रयागु॥

उस पथ के लोगों का भाग्य भरत को देखते ही खुल गया। जैसे सिंहलवासियों को भाग्यवश तीर्थराज प्रयाग सुलभ हो जाय।

(३४)

भरतदसा तेहि अवसर कैसी।
जलप्रवाह जल-अलि-गति जैसी॥

जब भरत अपनी माता की करतूत याद करते हैं तब लज्जित होकर घर लौट जाना चाहते हैं। जब रामचन्द्र की उदारता याद करते हैं तब आनन्दित होकर आगे बढ़ना चाहते हैं। उस समय भरत के मन की दशा ऐसी थी जैसी कि जलप्रवाह में जल के भौंर की होती है। तत्पर्य यह कि जैसे भौंर का जल आगे पीछे हुआ करता है वैसे ही भरत का मन भी आगे पीछे हो रहा है। यह उपमा भी बहुत ही चुटीली है।

(३५)

भरत-महा-महिमा जलरासी।
मुनि-मति ठाढ़ि तीर अबलासी।
गा चह पार जतनु हिय हेरा।
पावति नाव न बोहित बेरा॥

भरत की महिमा—उदारता—जलराशि (समुद्र) है। वशिष्ठ मुनि की बुद्धि—अबला—स्त्री है। वह बुद्धि रूपिणी स्त्री उस महिमारूपी सागर के तीर पर खड़ी पार करना चाहती है, पर कोई नाव या जहाज़ नहीं मिलता, जिससे पार कर सके। तात्पर्य यह कि वशिष्ठ की बुद्धि भरत की महिमा का अन्त नहीं पा सकती। यह बहुत ही अद्भुत उपमा है। इसमें नवीनता भी है।

(३६)

तेहि पुर भरत बसत बिनु रागा।
चंचरीक जिमि चंपक-बागा॥

सकल-सम्पत्ति-पूर्ण उस अयोध्या पुरी में भरत बिना प्रेम रहते थे। जैसे भौंरा चम्पक के बाग़ में। कवि ने यहाँ पर दिखलाया है कि उस राज्य में भरत का विराग लोकलज्जा या अपयश के भय से नहीं था, बरन यह विराग हार्दिक था। अस्तु, यह उपमा भी बड़े महत्त्व की है।

(३७)

जिमि पिपीलिका सागर-थाहा।
महामंदमति पावन चाहा॥

जिस प्रकार चिउँटी सागर की थाह लगाना चाहे उसी प्रकार इन्द्रपुत्र जयन्त रामचन्द्र के बल की परीक्षा करना चाहता था।

(३८)

मुनि मग माँझ अचल होइ बैसा।
पुलक सरीर पनसफल जैसा॥

अगस्त्य ऋषि का शिष्य सुतीक्ष्ण मार्ग में रामचन्द्र का ध्यान करने लगा। आनन्द से उसके शरीर के सारे रोम खड़े हो गये। मानों वह कटहल का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फल बन गया। रोमाञ्चित होने की यह उपमा एक दम नई है।

(३९)

मुनिहिँ मिलत अस सोह कृपाला।
कनकतरुहिं जनु भेंट तमाला॥

मुनि से मिलने के समय राम ऐसे शोभित हुए जैसे सुवर्ण-वृक्ष से तमाल-वृक्ष सट गया हो।

(४०)

नवनि नीच कै अति दुखदाई।
जिमि अंकुस, धनु, उरग, बिलाई॥

जैसे अंकुश, धनुष, सर्प, और बिल्ली की नम्रता—झुकाव—बहुत दुख देती है वैसे ही नीचों की नम्रता। तात्पर्य यह कि यदि नीच जन नम्रता प्रकट करें तो उनसे डरना ही चाहिए। क्योंकि वे लोग धोखा देने ही के लिए नम्रता दिखाते हैं; अन्यथा नहीं। अच्छी उपमा है।

(४१)

करत बिलाप जात नभ सीता।
ब्याध-बिबस जनु मृगी सभीता॥

विवश सीता विलाप करती हुई रावण के साथ चली जाती थी। जैसे व्याध के वश में पड़ी हुई हरिणी।

(४२)

भगति हीन नर सोहइ कैसा।
बिनु जल बारिद देखिय जैसा॥

जैसे बिना पानी के मेघ नहीं शोभा देता वैसे ही भक्ति के बिना मनुष्य भी शोभा नहीं देता।

(४३)

संत-हृदय जस निर्मल बारी।
बाँधे घाट मनोहर चारी॥
जहँ तहँ पियहिँ बिबिध मृग नीरा।
जनु उदारगृह जाचक भीरा॥

पम्पा-सरोवर का जल ऐसा निर्मल है जैसा सज्जनों का हृदय। वहाँ पानी पीने के लिए अनेक प्रकार के जानवर आते हैं—जैसे दानी पुरुष के दरवाज़े पर याचक।

(४४)

पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइय मर्म।
मायाछन्न न देखिये जैसे निर्गुन ब्रह्म॥

कमल के चौड़े पत्तों से उस सरोवर का पानी यहाँ तक छिप गया है कि दिखाई नहीं देता, जैसे माया से आच्छादित निर्गुण ब्रह्म नहीं देख पड़ता।

ये सिर्फ़ बाल, अयोध्या और अरण्य-काण्ड की अद्भुत अद्भुत उपमाओं के कुछ नमूने हैं। यदि हो सका तो कभी आगे के काण्डों की उपमाओं के नमूने भी पाठकों की सेवा में उपस्थित करूँगा।

अक्षयवट मिश्र।

स्वामी बालराम उदासीन।

निखिल शास्त्र-निष्णात श्रीमान् उदासीन बालराम स्वामी में प्रायः वही सब गुण विद्यमान थे जो धर्मधुरन्धर श्रीशङ्कराचार्य आदि आचार्यों में थे। स्वामी जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन देशहित और सनातनधर्म की उन्नति करने ही में व्यतीत किया। उन्होंने भारतवर्ष के प्रसिद्ध प्रसिद्ध सम्पूर्ण नगरों में अपनी ओजस्विनी वक्तृता द्वारा कुतर्कियों का पराजय करके सनातनधर्म का विजय-डङ्का बजाया। बहुत से सनातनधर्मच्युत हिन्दुओं का भ्रम दूर करके उन्हें उन्होंने फिर धर्म-पथ पर चलाया। उन्होंने यह भी अच्छी तरह प्रकट कर दिया कि अपने शास्त्रों का ठीक ठीक तत्त्व न जानने के कारण ही लोग अपने धर्म पर अश्रद्धा तथा दूसरे धर्म पर श्रद्धा करने लगते हैं। स्वामी जी को यदि हम सनातन-धर्म-ध्वज कहें तो भी कोई अत्युक्ति न होगी। स्वामीजी ने (१) अबोधध्वान्त-मार्तण्ड, (२) अमूल्यरत्न, (३) गङ्गा-स्थिति-निर्णय, (४) श्रौतसर्वस्व, (५) पातञ्जलयोगदर्शन का भाष्य आदि अनेक हिन्दी के ग्रन्थ लिख कर सनातनधर्म तथा हिन्दी-साहित्य का बड़ा ही उपकार किया। उनकी रची हुई सभी पुस्तकें खड्गविलास प्रेस—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाँकीपुर में मिलती हैं। यदि स्वामी जी और कुछ दिनों तक इस धरातल पर रहते तो अपने बहुत से उच्च सङ्कल्पों को पूर्ण करके इस अधःपतित देश का बहुत कुछ उपकार करते। किन्तु दैव की कुटिल गति से वह बात न होने पाई।

स्वामी जी का जन्म कुरुक्षेत्र के निकट एक गाँव में, विक्रम सं० १९१७ में, एक सारस्वत ब्राह्मण के कुल में हुआ था। बाल्यावस्था में ही माता-पिता का शरीरान्त हो जाने से स्वामी जी अनाथ हो गये। उस समय एक उदासीन महात्मा ने स्वामी जी को शरण दी। उन्होंने दीक्षा भी उदासीन-धर्म (नानकमत) की दी। कुछ दिनों बाद, जब स्वामीजी की अवस्था प्रायः १७ वर्ष की थी, वे वहाँ से काशी चले आये। काशी में महामहोपाध्याय श्रीराम-मिश्र शास्त्री जी से व्याकरण, साहित्य, सांख्य, योग, वेदान्त, मीमांसा आदि अनेक शास्त्रों को स्वामी जीने पढ़ा। बङ्गाल के नवद्वीप (नदिया) में जाकर न्यायशास्त्र भी आपने भली भाँति अनुशीलन किया। इनकी बुद्धि बड़ी प्रतिभावती थी। इस कारण ये थोड़े ही दिनों में छओं शास्त्रों तथा अन्यान्य सम्पूर्ण अङ्गों में अद्वितीय विद्वान् हो गये। स्वामी जी संस्कृत के बहुत अच्छे वक्ता और लेखक समझे जाने लगे। इनकी वक्तृता और लेखों में शास्त्रीय गाम्भीर्य की छटा पूर्ण रूप से झलकती थी। आपका वाक्यविन्यास अत्यन्त गम्भीर होता था। चारों वेदों को आप अर्थसहित अच्छी तरह जानते थे। आप एक एक ऋचा के ग्यारह ग्यारह तक अर्थ कर सकते थे। ये बातें मैंने अपने कानों सुनी हैं। रतलाम (मालवा) नगर में जो आपका व्याख्यान हुआ था उसमें आपने "पतिमेकादशं कृधि" इस ऋचा के ग्यारह अर्थ किये थे। उस समय मैं रतलाम में ही था। स्वामीजी एक एक नगर में एक एक महीने ठहर कर प्रति दिन सनातनधर्म-सम्बन्धी व्याख्यान दिया करते थे। स्वामीजी व्यासगद्दी पर बैठ कर, खड़े होकर नहीं, हिन्दी में उपदेश देते थे। भारतवर्षीय प्राचीन उपदेशक ऋषियों की उपदेश देने की परिपाटी भी यही थी। एक बार शृङ्गेरी-मठ के अधिष्ठाता जगद्गुरु शङ्कराचार्य से शास्त्रार्थ करने के लिए स्वामीजी ने इच्छा प्रकट की थी, किन्तु शङ्कराचार्यजी ने अस्वीकार कर दिया। इससे शास्त्रार्थ रुक गया। स्वामीजी हिन्दी के भी अच्छे लेखक और वक्ता थे। व्याख्यान सर्वदा हिन्दी में ही देते थे, पर शास्त्रार्थ संस्कृत में करते थे।

स्वामीजी बाल-ब्रह्मचारी थे। आपका चरित्र बहुत ही पवित्र था। ये श्रीराधाकृष्ण के अनन्य भक्त थे। शाङ्कर भाष्य ही इनका इष्ट ग्रन्थ था। स्वामीजी सत्य बोलना, ईर्ष्या-द्वेष न करना, लोभ-क्रोध से दूर रहना, काम का नाम न लेना—इत्यादि सद्गुणों से विभूषित थे। इनके साथ सदा पचास साठ साधु रहा करते थे। कई महाराजाओं ने स्वामीजी से मठ स्थापन करने के लिए प्रार्थना की, पर इन्होंने स्वीकार न किया। स्वामीजी पूर्ण विरक्त थे। इन झंझटों से वे कोसों दूर भागते थे।

१९६२ विक्रमाब्द के माघ महीने में, प्रयाग की त्रिवेणी के परम पवित्र तट पर, स्वामीजी ने अपने पार्थिव शरीर को त्याग दिया। १५ दिन पहले ही से स्वामीजी ने अपने भक्तों को पत्रद्वारा सूचना दे दी थी कि जिसे मिलना हो वह मिल जाय, नहीं फिर साक्षात्कार न होगा। इस कारण उस समय वहाँ उनके बहुत से भक्तगण उपस्थित हो गये थे। "कुम्भ" के कारण यात्रियों की भी भीड़ थी। शरीर छोड़ने के दो दिन पहले स्वामीजी को कुछ ज्वर आया। फिर कानों से जल गिरने लगा। जब अन्तिम समय निकट आया तब स्वामीजी ने दो हज़ार रुपये का सुवर्ण-सङ्कल्प करके ब्राह्मणों तथा दीन-दुखियों को बाँट दिया। और भी कई प्रकार के दान आपने दिये। अन्त समय में स्वामीजी ने इशारे से कहा कि मुझे कुशासन पर बिठा कर त्रिवेणी के जल से स्नान करा दो। उनके प्रधान शिष्य आत्मस्वरूप स्वामी तथा अन्य लोगों ने वैसा ही किया। तब स्वामीजी ने ध्यानावस्थित होकर इस अनित्य शरीर को छोड़ कर ब्रह्मपद प्राप्त किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी मानव-लीला समाप्त हो गई। उनके मृतक शरीर की पूजा चन्दन, पुष्प, माला आदि से भली-भाँति करके सब लोगों ने नेत्रों में जल भरकर प्रणाम किया और अन्त में उनका शरीर त्रिवेणी की पवित्र धारा में प्रवाहित कर दिया।

अक्षयवट मिश्र।

नीर-नारी।

संसार में ऐसी अगणित अपूर्व चीज़ें कभी कभी देखने में आती हैं जिनके अस्तित्व पर हमें सहज ही में विश्वास नहीं होता। जब हम उन्हें अपने नेत्रों से देखते या किसी विश्वास-पात्र सूत्र से उनके अस्तित्व की बात सुनते हैं तब हमें आश्चर्य्य से चकित होकर सृष्टिकर्त्ता के असीम रचना-कौशल की प्रशंसा करनी पड़ती है। आज हम विधाता की एक ऐसी ही अद्भुत रचना का कुछ हाल पाठकों को सुनाते हैं:—

१८१० ईसवी के जूलाई मास में अमेरिका-देश के पूर्वी तट पर एक बड़ा भारी तूफ़ान आया। अमेरिका की भूमि समुद्र-तल से अधिक ऊँची नहीं है। इससे समुद्र की लहरों ने, आगे बढ़ कर, समुद्र-तट को दूर तक जल-मग्न कर दिया। इससे, कुछ समय बाद, एक दिन, कुछ लोग नाव पर सवार होकर उसी जल-मग्न समुद्र-तट की सैर को निकले। सैर करते करते उन्होंने समुद्र के ऊपर एक मनुष्य-मस्तक को तैरते हुए देखा। पास जाकर देखने पर उन्हें मालूम हुआ कि एक सुन्दर स्त्री तैर रही है। उसकी नाभि के ऊपर का भाग तो स्त्री के अङ्ग-प्रत्यङ्गों के सदृश था; परन्तु नीचे के भाग में टाँगों की जगह मछली का आकार था। वे लोग उसे बड़े यत्न से पकड़ कर शहर में ले आये और उस मत्स्य-नारी को पानी के एक हौज़ में रक्खा। उसके पालन-पोषण के लिए कुछ स्त्रियाँ नियत कर दी गईं। कुछ दिनों में उस नीर-नारी ने धीरे धीरे मनुष्य के अनेक आचार-व्यवहार सीख लिये। दूध और रोटी वह प्रसन्नता से खाने लगी; स्त्रियों के समान वस्त्र भी धारण करने लगी; कुछ सीना पिरोना भी उसने सीख लिया। यहाँ तक कि ईसाई धर्म के चिह्न 'क्रास' के सामने पादड़ियों को सिर झुकाते देख कर स्वयं भी सिर झुकाने लगी। परन्तु न वह मनुष्य की भाषा अथवा सङ्केतों ही को समझ सकी, और न कोई मनुष्य उसी के शब्दों से कुछ मतलब निकाल सका। न्यूयार्क-शहर में यह मत्स्यनारी सोलह वर्ष तक जीवित रही। जब वह मरी तब उसके शरीर की अन्त्येष्टि-क्रिया उसी प्रकार की गई जिस प्रकार एक धार्मिक ईसाई की की जाती है।

इसके बाद, १८७० ईसवी में, कप्तान रिचार्ड ह्वाइट वारनर ने सेंट हारबर नामक समुद्र-शाखा में एक और मत्स्यनारी को देखा। पर वे उसे अच्छी तरह न देख सके; क्योंकि जब वह जहाज़ की ओर बढ़ी तब उन्होंने डर के मारे जहाज़ की चाल ख़ूब तेज़ कर दी और किसी तरह उससे पीछा छुटाया। एक और स्टीमर से भी उस मत्स्यनारी की वहाँ मुड़-भेड़ हुई। मत्स्यनारी ने स्टीमर पर चढ़ जाने का यत्न किया। पर यात्रियों ने उसे बन्दूक़ का निशाना बना डाला। इस समुद्र में कई बार नीर-नारियाँ देखी गई हैं।

नीर-नारियों का वर्णन अनेक पुस्तकों में पाया जाता है। मत्स्य-पुराण में भी ऐसी स्त्रियों का वर्णन है। अँगरेज़ी में कई पुस्तकें इस विषय पर हैं। एक अँगरेज़ी पुस्तक में लिखा है—"जल में रूपवती स्त्रियाँ निवास करती हैं। वे अपना सुन्दर मुख मण्डल जल से बाहर निकाल कर प्रायः मधुर-गान किया करती हैं। उनका मधुर-स्वर सुननेवाला मनुष्य उन्मत्त होकर उनके पास चला जाता है; परन्तु फिर वह कभी नहीं लौटता"। मत्स्य-नारी नाम की एक बड़ी सी पुस्तक अँगरेज़ी में है। उसमें इन नारियों के सम्बन्ध में अनेक बातें हैं। ग्रीस-देश के कवि होमर के ओडेसी नामक काव्य में भी इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

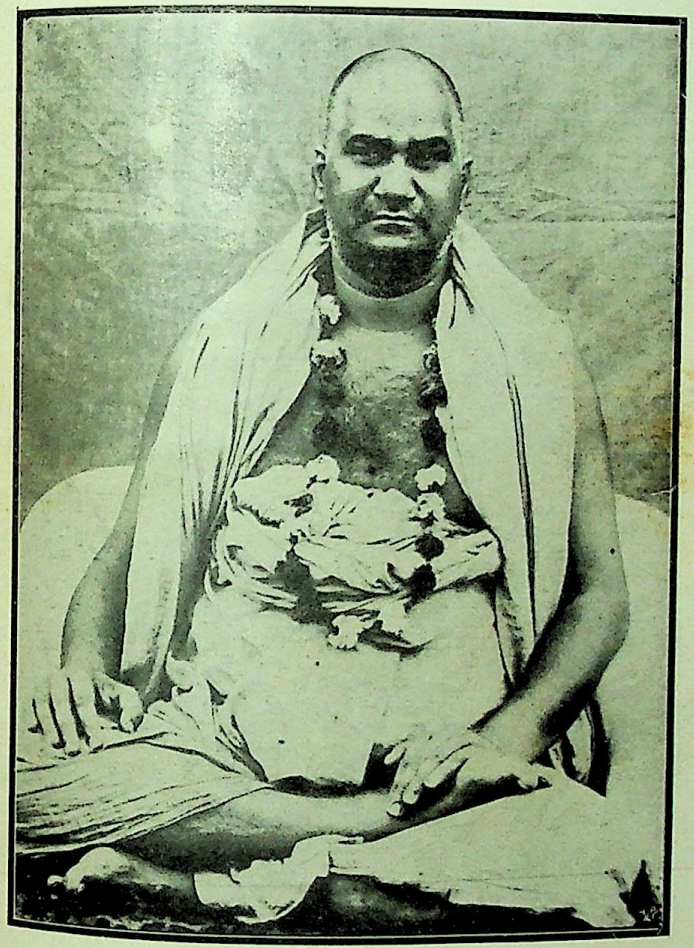

श्रीयुत बालराम स्वामी ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

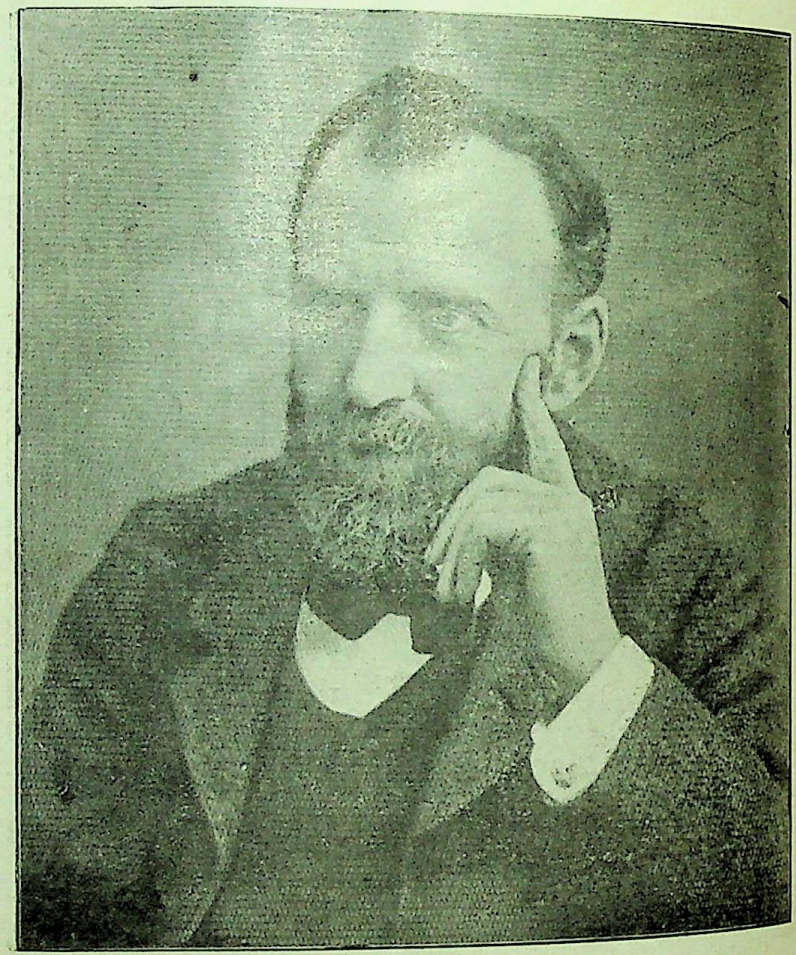

मिस्टर स्टेड ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय का कुछ उल्लेख है। उसका सारांश नीचे देते हैं:—

"सिसली नाम के टापू के पास एक छोटा सा टापू था, जहाँ तीन नीर-नारियाँ रहती थीं। जब कोई नौका उस टापू के पास पहुँचती तब वे इतने मधुर स्वर से गाने लगतीं कि नौकारोही गीत सुनते ही अपना कर्तव्य, यहाँ तक कि खाना पीना तक, भूल जाते और अन्त में उपवास करते करते वहीं समाप्त हो जाते। जब राजा यूलिसस ने मनुष्यों को इस प्रकार ग़ायब होते सुना तब उसने इस बात की स्वयं परीक्षा करनी चाही। उसने एक जहाज़ तैयार कराया और उसके मल्लाहों के कानों पर पट्टियाँ बांध दीं जिससे वे गाना न सुन सकें। इसके बाद उसने अपने शरीर को जहाज़ के मस्तूल से इतनी मज़बूती के साथ बाँध दिया कि अपनी सारी शारीरिक शक्ति ख़र्च करने पर भी वह अपने को न छुड़ा सके। परन्तु अपने कान उसने खुले रक्खे।

जहाज़ चला। उक्त टापू के पास उसके पहुँचते ही जल-युवतियों ने कोकिल-कल से गाना आरम्भ किया। उनके गीत सुन कर यूलिसस उन्मत्त होगया और मल्लाहों को जहाज़ ठहराने के लिए हुक्म देने लगा। क्षण क्षण पर उसकी उन्मत्तता बढ़ने लगी। हाथ-पैर पटक पटक कर वह बन्धनों से मुक्त होने की चेष्टा करने लगा। उधर मल्लाहों के कान बन्द थे। इस कारण न तो वे गीत ही सुन सके और न राजा का हुक्म ही। परन्तु राजा को हाथ पैर पटकते देख वे भयभीत हो गये। इस कारण शीघ्र ही किनारे पर पहुँचने के लिए उन्होंने जहाज़ की गति बढ़ा दी। दूर निकल जाने पर राजा होश में आ गया। कहते हैं कि उस दिन से वे नीर-नारियाँ फिर कभी नहीं देखी गईं। तब से जहाज़ उस टापू के पास निःशङ्क होकर आने जाने लगे।"

१७१९ ईसवी में इँगलैंड के ससेक्स प्रदेश के पास वाले समुद्र में भी एक अर्ध-मनुष्याकार प्राणी पकड़ा गया था। उसका स्वभाव मनुष्य के स्वभाव से बहुत कुछ मिलता जुलता था; परन्तु न वह किसी की बात समझ सकता था और न कोई उसकी बात।

विगत वर्ष प्रयाग की प्रदर्शिनी में भी ऐसे ही दो जीवों के मृतक शरीर रक्खे गये थे। उनके मस्तक, नेत्र, भौं, मुख और ठुड्डी इत्यादि अवयव मनुष्य के अवयवों की तरह थे। उनके हाथ भी थे, जिनमें पाँचों उँगलियों के स्पष्ट चिह्न मौजूद थे। उनका अधोभाग मछली का सा था। उनकी लम्बाई कोई छः फ़ीट के थी। इन अद्भुत अर्ध-मनुष्याकार जीवों को कप्तान जान काकू ने लोहित-समुद्र (Red Sea) में पकड़ा था। उनमें से एक नर था; दूसरी नारी। स्त्री-पुरुष के चिह्न भी उनमें स्पष्ट देख पड़ते थे। उनका संक्षिप्त हाल सरस्वती में यथा-समय प्रकाशित हो चुका है।

आर० ए० अग्रवाल।

मिस्टर स्टेड की अकाल-मृत्यु।

सम्पादकीय जगत् के प्रकाशमान ध्रुव-नक्षत्र, अँगरेज़ी भाषा के धुरन्धर लेखक, ब्रिटिश साम्राज्य के प्रसिद्ध राजनैतिक विद्वान् मिस्टर स्टेड अब इस जगत् में नहीं हैं। जो लोग समाचारपत्रों को पढ़ते हैं या जिन्हें राजनीति से थोड़ा भी प्रेम है वे अवश्य मिस्टर स्टेड से परिचित होंगे। इसलिए अपने पाठकों को आज हम उक्त महानुभाव का संक्षिप्त चरित भेट करते हैं। पाठक देखेंगे कि एक साधारण बालक अपने प्रयत्न और व्यवसाय से कितना प्रसिद्ध और सम्मानित हो सकता है। मिस्टर स्टेड की मृत्युवार्ता सुन कर संसार भर के सभी पढ़े लिखे मनुष्य दुखी हुए हैं।

स्टेड साहब का संक्षिप्त चरित सुनाने के पहले हम उस दुर्घटना का थोड़ा सा वर्णन कर देना चाहते हैं जिसके कारण इनको अपने प्राण छोड़ने पड़े।

अमेरिका में एक धार्मिक परिषद् होने वाली थी। उसमें समवेत होने के लिए मिस्टर स्टेड गत एप्रिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मास में टाइटेनिक ज़हाज़ पर इँगलैंड से रवाना हुए। इस ज़हाज़ की सुन्दरता और मज़बूती के सम्बन्ध में यही कह देना बस होगा कि यह संसार भर में अद्वितीय था। ह्वाइट स्टार नेविगेशन कम्पनी ने दो बड़े मज़बूत जहाज़ बेलफास्ट में बनवाये। एक का नाम है ओलिंपिक और दूसरा यही टाइटेनिक था। इनमें से प्रत्येक का वज़न ४५००० टन था। इतने वज़नी जहाज़ संसार में अभी तक और कहीं नहीं हैं। क्योंकि इनसे पहले बड़े से बड़े जहाज़ का वज़न ३३००० टन होता था। टाइटेनिक ८८० फुट लंबा, ९० फुट चौड़ा और ६६ फुट ऊँचा था! इसमें ९ डेक थे, जिनमें ३३४६ मुसाफ़िरों के बैठने की जगह थी। इस जहाज़ के इंजिन में ४६००० घोड़ों की ताक़त थी। यह प्रति घंटे २१ समुद्री मील के हिसाब से चलता था। इसमें मुसाफ़िरों के लिए हर तरह का आराम था। स्नानागार, भोजनालय, क्रीड़ास्थल, वाचनालय आदि सब कुछ था। इसके बनवाने में १, ७६, २५,००० रुपये खर्च हुए थे। जहाज़ में जिन बातों की ज़रूरत होती है वे सब इसमें प्रमाण से अधिक मौजूद थीं। इस लिए किसी के मन में यह विचार भी उत्पन्न न हो सकता था कि यह हिम-चट्टान की टक्कर से सामान्य जहाज़ की भाँति जलमग्न हो जायगा। रवाना होने के पंद्रह दिन पहले डेढ़ करोड़ में जहाज़ का बीमा भी करा लिया गया था।

यह जहाज़ गत एप्रिल में साउदम्पटन से २३४० मुसाफ़िर, बहुत सी चा और कोई डेढ़ करोड़ के हीरा-मोती आदि लेकर न्यूयार्क के लिए रवाना हुआ। अनेक धनवान् पुरुष इस नये ढँग के जहाज़ पर बैठ कर सिर्फ़ समुद्री सैर करने निकले थे। एक अमेरिकन करोड़पति की महिला ऐसे मोतियों का गहना पहने थी जिनकी क़ीमत १८ लाख थी!

उत्तरी हिमसागर में इन दिनों बर्फ़ के टीले प्रायः तैरा करते हैं। इनका दृश्य बड़ा ही मनोहर होता है। जितना हिस्सा इनका पानी के ऊपर दिखाई देता है उससे कई गुना अधिक पानी में डूबा रहता है। इनके ऊपर जब सूर्य की किरणें पड़ती हैं तब इन्द्रधनुष के मनोहर रङ्गों की छटा दिखाई देती है। इस दृश्य को देखने के लिए सहस्रावधि यूरोपियन नर-नारियाँ उसी भाँति एकत्र होती हैं जैसे कि प्रयाग में कुम्भ के मेले पर हिन्दू यात्री। इस साल और सालों की अपेक्षा भी बड़े बर्फ़ के शैल बने। यहाँ तक कि एक स्थान पर तो उनका एक द्वीप ही बन गया।

गत १४ एप्रिल को रात के साढ़े ग्यारह बजे न्यूफ़ौंडलैंड की ओर से बर्फ़ का एक दीर्घाकार पर्वत बहता हुआ आया। उस समय टाइटेनिक अपनी जिस तेज़ चाल से समुद्र के वक्ष को फाड़ता हुआ दौड़ रहा था हिमनग की चाल उससे कम न थी। जब वह जहाज़ से पाव मील की दूरी पर आ पहुँचा तब मल्लाह लोग चौंके। कप्तान ने उससे होनेवाली टक्कर से जहाज़ को बचाने के लिए बहुत चेष्टा की, पर वह सब निरर्थक हुई। अन्त में टक्कर लगी और उसका कुछ धक्का भी किसी किसी यात्री को मालूम हुआ। इस समय कोई ताश खेल रहा था, कोई समाचारपत्र पढ़ रहा था और कोई मज़े में बैठा हुआ चुरुट पी रहा था। कुछ लोग निद्रा के क्रोड़ में थे। अतएव वे यह न जानते थे कि हम जहाज़ के ऊपर लेटे हैं या घर में पलँग पर। अस्तु। उस हलके धक्के से लोग ज़रा भी विचलित न हुए। उन्होंने सोचा कि टाइटेनिक सुदृढ़ है। वह समुद्र-गर्भ में लेटने का साहस न करेगा। यदि कहीं कुछ टूटा फूटा भी तो तुरन्त ठीक कर लिया जायगा। परन्तु कप्तान ने तभी ताड़ लिया कि यह धक्का ऐसा वैसा नहीं है। इसकी चोट खाकर जहाज़ अधिक समय तक तैरता न रह सकेगा।

तुरन्त जहाज़ रोक दिया गया। छोटी छोटी किश्तियाँ छोड़ दी गईं। रबरी गोले और नलियाँ बाँटी गईं, जिनसे यात्री प्राण-रक्षा कर सकें। किश्तियों में बैठते समय कुछ दङ्गा हुआ। पर आफ़िसरों ने गोलियाँ दाग कर उसे शान्त कर दिया। सिर्फ़ कुछ स्त्रियाँ और बालक इन किश्तियों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिठलाये गये। इतना होने पर भी कुछ लोग जहाज़ की दृढ़ता का विचार करके इसे कप्तान की फ़िज़ूल दूरन्देशी समझते थे। पर जब एक सिरा टूट फूट जाने के कारण जहाज़ शनैः शनैः जल-मग्न होने लगा तब उनकी आँखें खुलीं।

कितनी ही स्त्रियाँ तो अपने प्राण लेकर किश्तियों पर चली गईं; परन्तु अनेकों ने प्राण बचाने की अपेक्षा पति के साथ समुद्र में ही डूब जाना अच्छा समझा। कुछ लोग प्राण बचाने को धड़ाधड़ समुद्र में इस इच्छा से कूदे कि तैर कर प्राण-रक्षा कर लेंगे। पर मारे ठंड के अँकड़ कर बेचारे मर गये। मिस्टर स्टेड भी यही समझते थे कि यह टक्कर कर ही क्या सकेगी। इसी से वे पुस्तक रख कर अपने कमरे में चले गये। पर जब जहाज़ डूबने लगा तब एक पटिये के सहारे उन्होंने भी प्राण बचाने की चेष्टा की; पर इसमें उन्हें सफलता न हुई।

जब प्राणरक्षा का किसी को भरोसा न रहा तब सबने मिल कर ईश्वर की प्रार्थना की। बैंड बाजा बजा और महाराज सप्तम एडवर्ड का प्रिय भजन गाया गया। २ बज कर २५ मिनट पर जहाज़ का एक सिरा डूब गया और दूसरा सिरा १५० फुट ऊँचा खड़ा होगया। इस समय जहाज़ का इंजिन वग़ैरह सारा सामान धड़ाधड़ समुद्र में गिरा, जिस की भयानक आवाज़ से कानों के पर्दे फट से गये। यह दशा कोई ५ मिनट तक रही। बिना तार के यन्त्र द्वारा यह समाचार चारों ओर भेजा जा चुका था। सो कोई साढ़े चार बजे कारपेथिया जहाज़ ने आकर उन लोगों की रक्षा की जो किश्तियों पर किसी प्रकार अबतक प्राणधारण किये थे। अफ़सोस! इस समय मिस्टर स्टेड का शरीर निर्जीव हो चुका था।

चरित्रनायक ने विलियम टामस स्टेड के यहाँ, एक्सटन ग्राम में, १८४९ ईसवी में, जन्म लिया। थोड़े ही दिनों के बाद आप अपने पिता सहित हौडन ग्रान-टाइन को चले गये। यहीं आपने विद्याध्ययन किया। आपके पिता पुरोहित थे। इसलिए बाल्य-काल से ही आपके हृदय में धार्मिक उपदेश और शुभशिक्षाओं का बीज बोया जाने लगा। १४ वर्ष की अवस्था में आपने पाठशाला छोड़ दी। इस दशा में आप हौडन की म्युच्यूअल इम्प्रूवमेंट सोसाइटी के पुरस्कर्ता रहे। इसी अवस्था से आप समाचारपत्रों में लेख लिखने लगे। २३ वर्ष की अवस्था में आपने 'दि नार्दर्न एको' नामक पत्र निकाला। इस पत्र की शैली और मनोहर लेखों को देख कर प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मिस्टर ग्लैडस्टन ने आपकी बड़ी प्रशंसा की। हिन्दुस्तान के स्टेट सेक्रेटरी मिस्टर (अब लार्ड) मार्ले, जब १८८० ई० में पालमाल गैज़ट के सम्पादक थे, तब आप उसके सहायक सम्पादक बनाये गये। अन्त में, होते होते, सन् १८८३ में, आप उसके प्रधान सम्पादक हुए। इस काम को आपने सन् १८८९ तक बड़ी योग्यता से किया। इस बीच में आप अनेक विद्वानों और राजनैतिक पुरुषों से मिल कर तत्कालीन देश-स्थिति और विषयों पर उत्तम प्रबन्ध लिख कर साहित्य-सेवा करते रहे।

सन् १८८४ में आपने जहाज़ी शक्ति पर कुछ लेख लिखे। इन लेखों ने वहाँ के जल-सेना-विभाग में अनेक सुप्रबन्ध कराये। उनकी बदौलत आज इँगलैंड का जहाज़ी बेड़ा संसार में सबसे श्रेष्ठ गिना जाता है। सन् १८८५ में आपने "मेडन ट्रिब्यूट ऑफ़ मॉडर्न बबिलोन" शीर्षक लेखमाला प्रकाशित की। इसे पढ़ कर लोग बहुत ही चिढ़े। आपको जिस बात पर सच्चा विश्वास होजाता था उसके आप प्रबल पक्षपाती हो जाते थे। इस लेखमाला के कारण कोई ३ महीने आपको जेल में भी रहना पड़ा। पर आप जेल में रह कर भी लेख लिखा करते थे। आपको वहाँ भी इतनी सुविधा थी।

सन् १८८८ ई० में आपने रूस की यात्रा की। वहाँ पर आप बड़े बड़े लोगों से ख़ूब मिले जुले। अन्त में आपने "रूस की सच्ची अवस्था" नामक पुस्तक प्रकाशित की। दूसरे निकलस ज़ार से आपका अच्छा परिचय था। आपने ज़ार को और ज़ारों की अपेक्षा सज्जन और सद्गुणी बतलाया। सन् १८८९ में आपने रोम की यात्रा की। वहाँ आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पोप से मिले। इस यात्रा से वापिस आने पर आपने "पोप और नवीन युग" नामक पुस्तक लिखी, जिसका समाज में बड़ा आदर हुआ। दिसंबर १८८९ में आपने पाल-माल गैज़ट से पृथक् होकर, सन् १८९० में, उस (रिव्यू ऑफ़ रिव्यूज़) पत्र को जन्म दिया जिसके कारण आप जगद्विख्यात हुए। सन् १८९१ और ९४ ईसवी में आपने इसी पत्र की यथाक्रम अमेरिकन और आस्ट्रेलियन आवृत्तियाँ निकालीं। और सन् १८९३ में "बार्डरलैंड" निकाला जो ९७ ई० तक चलता रहा। सन् १९०४ में आपने "डेली पेपर" नामक दैनिक पत्र निकाला। इसका सभी ढँग नया था। प्रबन्ध भी अच्छा था। परन्तु यह चल न सका। इसके बाद आपने बच्चों के लिए पुस्तकमाला और बड़े बड़े लेखकों के निबन्धों का संक्षिप्त संग्रह लिखा।

आपको पक्षपात से बड़ी घृणा थी। आपने एक जगह स्पष्ट स्वीकार किया है कि सेण्ट निहालसिंह, उत्तम अँग्रेज़ी लिखनेवालों में, सबसे श्रेष्ठ हैं। इस बात की आपने कुछ भी पर्वा नहीं की कि उक्त सेण्ट महोदय एक ऐसे भारतीय युवक हैं जिनकी मातृ-भाषा अँगरेज़ी नहीं। समय समय पर आप भारतवर्ष के सम्बन्ध में बहुत ही चोखी सम्मति दिया करते थे। जब भारत में कुछ अशान्ति के चिह्न व्यक्त हुए तब आपने लार्ड रिपन और लाला लाजपतराय से मिल कर इस सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर करके उसे अपनी सम्मति सहित छापा। और, जब बाबू विपिनचन्द्र पाल के 'स्वराज्य' में प्रकाशित "बम की उत्पत्ति का मूल कारण" शीर्षक लेख भारत-सरकार ने राजद्रोही ठहराया तब उसे आपने "रिव्यू ऑफ़ रिव्यूज़" में अविकल उद्धृत कर के कहा कि ऐसा लेख राजद्रोही नहीं हो सकता। मैं इसे छापता हूँ। देखें मुझे कौन राजद्रोही ठहराता है। आपकी निर्भीकता और सत्यता के ये छोटे छोटे उदाहरण हैं। जैसे आप प्रचण्ड लेखक थे वैसे ही धुरन्धर समालोचक भी थे। पक्षपात से अच्छी पुस्तकों और उत्तम चित्रों में दूषण निकालने वाले समालोचकों को आपकी लिखी समालोचनायें पढ़ कर कटाक्ष करने का ढँग सीखना चाहिए।

हेग की शान्ति-सभा और बोअर-युद्ध के सम्बन्ध में आपने मार्के के लेख लिखे। ब्रिटिश-जाति में जन्म लेकर, उसी राज्य में रह कर और उसके प्रबल पक्षपाती होने पर भी आपने उस समय इस हेडिंग का लेख लिखा कि "क्या हम अपने भाइयों की गर्दन पर छुरी चलावें?" उनकी ऐसी स्पष्ट सम्मति को सुन कर कौन विस्मित न हुआ होगा? जिस समय वीज़ा बिल पेश हुआ, उस समय आपने लार्डों की अयोग्यता बड़ी ख़ूबी से प्रकट की। ट्रिपली पर अधिकार कर लेने के कारण इटली को आपने डाकू की उपाधि दी और टर्की के पक्ष में ऐसे लेख लिखे कि अनेक शत्रुओं तक ने उनकी प्रशंसा की। आप सदैव जन-साधारण के पक्ष में रहे। आपका सारा जीवन राजनैतिक छानबीन, पुस्तक-लेखन, समाचारपत्र-सम्पादन और साहित्य-सेवा में ही बीता। इसी काम की बदौलत संसार में आप पूज्य दृष्टि से देखे जाते थे। ग़रीबों से लेकर अमीरों और राजाओं तक आपकी पैठ थी। यही कारण है जो आपके मरण से समस्त संसार के साहित्य-प्रेमियों को वही दुःख हुआ है जो अपने आत्मीय के वियोग से हुआ करता है। इँगलैंड में राजनैतिक और सम्पादकीय गगन से नष्ट हुए इस प्रकाशमान ध्रुव तारे ने जो तिमिर फैलाया है वह बहुत समय तक दूर न हो सकेगा।

लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेय।

जलद-आवाहन।

शीघ्र आजाओ जलद! स्वागत तुम्हारा हम करें।
ग्रीष्म से सन्तप्त मन के ताप को कुछ कम करें॥
है धरित्री के उरस्थल में जलन तेरे बिना।
शून्य है आकाश तेरे ही जलद घेरे बिना॥ १॥
मान-दण्ड समान जो संसार को हैं मापते।
लूह की पञ्चाग्नि जो दिन रात ही हैं तापते॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीव जिनकी आश्रमोपम गुरु-गुहा में मोद से।
वास करते, खेलते हैं बाल-वृन्द-विनोद से॥ २॥
पत्रहीना वल्लरी जिन की जटा बिखरी हुई।
उत्तरीय समान जिन पर धूप है निखरी हुई॥
शैल वे साधक अचल जीवन-सुधा को चाहते।
ध्यान में काली घटा के नित्यही अवगाहते॥ ३॥
धूलि-धूसर है धरा मलिना तुम्हारे ही लिए।
है फटी दूर्वादलों की श्याम साड़ी देखिए॥
डालकर पर्दे हरे तरुपुञ्ज के निज बाग से।
देखती है शून्य पथ की ओर अति अनुराग से॥ ४॥
जल रही छाती तुम्हारा प्रेम-वारि मिला नहीं।
इसलिए उसका मनोगत-भाव-फूल खिला नहीं॥
नेत्र-निर्झर सुख-सलिल से भरें, दुख सारे भगें।
शीघ्र आजाओ जलद! आनन्द के अङ्कुर उगें॥ ५॥

जयशङ्करप्रसाद।

जर्मनी के आधुनिक विद्यार्थियों का जीवन।

योरप में, आज कल, सबसे अधिक विद्वान् जर्मनी वाले गिने जाते हैं। गूढ़ विचार, गम्भीर विषय, दर्शन-शास्त्र और विज्ञान में जर्मनी ही योरप के सब देशों का सरताज है। दर्शनशास्त्र तो मानो जर्मनीवालों की बपौती है। आधुनिक समय में सबसे बड़े दार्शनिक जर्मनी में ही जनमे हैं। वहाँ के लोगों की विचार-पद्धति भारतवर्ष की विचारशैली से बहुत कुछ मिलती जुलती है। उनके तत्त्वज्ञान में हमारे दर्शनों की छाया स्पष्ट देख पड़ती है। जर्मनी के विद्वानों को संस्कृत से बड़ा प्रेम है। वे लोग संस्कृत सीखने में बड़ा प्रयत्न करते हैं। उन्होंने संस्कृत-साहित्य की बड़ी छानबीन की है। मोक्षमूलर ने तो अपना सारा जीवन ही संस्कृत-भाषा के अध्ययन और उसके ग्रन्थों का अनुवाद करने में लगा दिया। इसके लिए सारा संसार उनका ऋणी है। इस सब विद्वत्ता और विद्योन्नति का कारण वहाँ का विचार-स्वातन्त्र्य और वहाँ की शिक्षा-पद्धति है। यहाँ पर यह दिखलाने का अभिप्राय है कि प्रारम्भिक तथा उच्च शिक्षा प्राप्त करते समय जर्मनी में साधारण विद्यार्थियों का जीवन किस तरह व्यतीत होता है—अर्थात् वहाँ के विद्यार्थी किस तरह इतने पौरुष-पूर्ण और इतने विद्वान् तथा विचारशील होते हैं।

जर्मनी के विद्यार्थियों का जीवन दो भागों में विभाजित है—स्कूल और कालेज। इन दो शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं में जर्मनी में इतना भेद है जितना किसी अन्य देश में नहीं। इस भेद का अनुमान भी हम लोग अच्छी तरह नहीं कर सकते। स्कूल की शिक्षा का मुख्य उद्देश छात्रों की बुद्धि बढ़ाने और उन्हें मानसिक तथा शारीरिक शिक्षा प्रदान करने का है। इस अवस्था में विद्यार्थी मानों अपनी पाठशाला का जीवन है। उस पर बहुत निगरानी रहती है। उसे स्वेच्छा-पूर्वक शहर में घूमने की स्वाधीनता नहीं। न वह मनमानी पुस्तकें ही पढ़ सकता है। उसके चरित्र-गठन, शारीरिक पुष्टता और बुद्धि-विकास की ओर शिक्षक लोग बड़ा ध्यान रखते हैं। स्कूल का आख़िरी इम्तहान पास करते ही विद्यार्थी मानों एक बिलकुल ही नवीन जीवन में प्रवेश करता है। उसे इन्ट्रस का सार्टीफ़िकेट क्या मिला मानो मानवी स्वत्वों और पुरुषत्व का पद मिला। माँ-बाप का उस पर अब कुछ ज़ोर नहीं। अध्यापक के परामर्श की उसे आवश्यकता नहीं। जर्मनी राज्य के जिस विश्व-विद्यालय में चाहे उसमें वह अपना नाम लिखा सकता है। प्रतिवर्ष चार सौ रुपये के लगभग विश्वविद्यालय को भेंट करने पड़ते हैं। किताबों में बहुत ही कम दाम लगते हैं। जो कोर्स चाहे वह ले सकता है। नाम लिखा लेने के बाद मन में आवे तो वह कालेज जाय, न आवे तो न जाय। साल भर वह कई विश्वविद्यालयों और कालेजों में अध्ययन के लिए स्वेच्छा-पूर्वक जा सकता है। यह नहीं कि एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालेज का विद्यार्थी सार्टीफ़िकेट लेने पर भी दूसरे कालेज में न लिया जाय। वहाँ विद्यार्थियों को कालेज बदलने की स्वतन्त्रता इस अभिप्राय से दी गई है कि वे भिन्न भिन्न अध्यापकों के विचार, विद्वत्ता और विद्याभाण्डार से फ़ायदा उठावें। इस विषय में वहाँ के शिक्षा-विभाग के कर्मचारी यहाँ की तरह रोक टोक नहीं करते। किन्तु साल भर में कई कालेज बदलने के लिए विद्यार्थियों को उत्तेजित करते हैं। वहाँ इँगलैंड की तरह विद्यार्थियों के रहने के लिए कोई ख़ास मकान, बोर्डिंहौस इत्यादि, नहीं है। प्रत्येक विद्यार्थी अपने रहने का प्रबन्ध स्वयं करता है। विद्यार्थी किराये के मकानों में रहते हैं। प्रत्येक विद्यार्थी का खाने पीने में प्रति वर्ष साधारणतः ५००) रुपये के लगभग लगता है। विद्यार्थियों के अपने निज के क्लब (समितियाँ) होते हैं। पहले इन विद्यार्थियों की मण्डलियों का मुख्य उद्देश राजकीय रहता था। वहाँ वे अपनी समितियों में मिल कर राजकीय विषयों और अपने देश की स्थिति पर विचार करते थे। किन्तु अब देश में राम-राज्य हो जाने से वे इन क्लबों में मनोरञ्जन और लड़ाकू खेल (Duel) इत्यादि की चर्चा करते हैं और परस्पर के समागम से लाभ उठाते हैं। कालेज में ऊँच और नीच, धनी और दरिद्री समदृष्टि से देखे जाते हैं।

गत वर्ष जर्मनी में विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की संख्या ५७००० थी। इनमें से २५०० स्त्रियाँ थीं।* चालीस वर्ष पहले वहाँ विद्यार्थियों की संख्या केवल १३००० थी। गतवर्ष, उदाहरण के के लिए, बर्लिन के विश्वविद्यालय में ८४२५ पुरुष और ७७७ स्त्रियाँ पढ़ती थीं। स्त्रियों में ६१३ दर्शन-शास्त्र, १५२ डाक्टरी, १० क़ानून और २ अध्यात्मविद्या पढ़ती थीं। इस † छोटे से देश में २१ विश्वविद्यालय हैं। वहाँ इँगलैंड या भारतवर्ष की तरह कुछ विशेष पुस्तकों के पढ़ने और रटने से ही डिग्री नहीं मिल जाती। प्रत्येक विद्यार्थी को विचार-स्वातन्त्र्य और निज-बुद्धि-विकास का प्रमाण देकर अध्यापकों को सन्तुष्ट करना पड़ता है। जर्मनी वालों का कथन है कि हमारा डाक्टर इँगलैंड के बी० ए० के बराबर है। वहाँ डाक्टर की उपाधि (LL.D.) तभी मिल सकती है जब कोई व्यक्ति बिलकुल ही नई पुस्तक—जिसमें अपने ही विचार हों और दूसरों से मदद न ली गई हो—लिख कर पेश करे।

स्वतन्त्रता तो वहाँ के विद्यार्थियों की रग रग में भरी है। वे अपने लोहू बहाने वाले एक पुराने खेल (द्वन्द्वयुद्ध) को अभी तक क़ायम रखना चाहते हैं। इस विषय में क़ानून भी उन्हें रोक नहीं सका। इस द्वन्द्व-युद्ध को डुयल (Duel) कहते हैं। उसे वे लोग एक प्रकार का वीर-रसोत्पादक खेल मानते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के हाथ में बड़े बड़े छुरे होते हैं। दोनों अखाड़े में कूद पड़ते हैं। अन्य विद्यार्थी तमाशा देखते हैं, या अपनी पारी की राह देखते हुए तैयारी करते रहते हैं। डाक्टर, तथा और लोग भी, उनके बहुत जोश में आ जाने पर, उनकी रक्षा करने के लिए खड़े रहते हैं। छुरे उनके बदन का ख़ून अवश्य पीते हैं। किन्तु प्राणों तक की नौबत नहीं पहुँचने पाती। जर्मनी के वर्तमान सम्राट् भी इस ख़ूनी खेल की प्रशंसा करते हैं। उनका कथन है कि खेल के बहाने लड़ने से युवकगण पौरुषेय गुणों का सम्पादन करते हैं और अपनी मानसी शक्ति को बढ़ाते हैं। यह तो सबको विदित ही है कि जर्मनी में दो वर्ष के लिए प्रत्येक जर्मन युवक को सेना में युद्ध-शिक्षा के लिए रहना पड़ता है।

"वर्म्मा"

* जर्मनी की जन-संख्या ६५०००००० है।

† जर्मनी का क्षेत्रफल (Area) २०५००० वर्ग-मील है।

राजा और रानी।

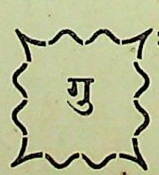

गुजरात में बिलकुल पानी नहीं बरसा। चारों ओर हाहाकार मच गया। प्रकृति ने भीषण मूर्त्ति धारण करली। वृक्ष सब फल-फूल-रहित जीर्ण शीर्ण हो गये। खेत मरुभूमि में परिणत हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाय, बैल आदि जानवर दारुण पीड़ा से अस्थिर होकर अपने प्राण त्यागने लगे। मनुष्य भी मरने लगे। प्रकृति भी मानो प्राणहीन हो गई। वृक्षों में हरे भरे पत्ते नहीं, जानवरों में प्रीति-प्रफुल्लता नहीं, मनुष्यों में माधुर्य्य नहीं। यदि कुछ था तो दारुण उत्ताप। वह समस्त देश को जला रहा था।

पानी नहीं बरसा। इससे अन्नकष्ट उपस्थित हुआ। किसान आशा भरे नेत्रों से आकाश की ओर देखते देखते निराश हो गये। उनके घर में अन्न नहीं। विषाद की छाया ने उनका मुख मलिन कर दिया। गृहस्थों के घर में अतिथि-सत्कार बन्द हुआ। राजपथ भिखारियों की भीड़ से परिपूर्ण हो गये। माता के गले लिपट कर बच्चा रोता था। पर उस स्नेहमयी के वक्षःस्थल में अब वह स्वर्ग की सुधा नहीं। सूखे कण्ठ से बच्चा रो रो कर माता ही के सामने अपने प्राण छोड़ता है। हाय! यह चित्र कितना भयानक है!

दारुणसिंह उसी देश के राजा थे। उसी समय उनका विवाह हुआ था। रानी का नाम था करुणावती। विवाह का उत्सव अभी पूर्णतया समाप्त न हुआ था। देश की यह चिरप्रथा थी कि ऐसे राजकीय उत्सवों में प्रजाजन राजा को अर्थोपहार दें। उसी नियम के अनुसार राजा ने प्रजा पर नया कर लगाया।

भूख-प्यास से पीड़ित, शोक-ताप से दुःखित, दीन-हीन प्रजा ने राजा का यह आदेश सुन कर हाहाकार मचाया। माता-पिता अपने आँखों के सामने प्राण से भी प्यारे अपने बच्चों की मृत्यु देखने लगे। उनके हृदय इस समय वज्र से भी कठोर हो गये। किसी से इस भीषण दृश्य को देख कर भी विदीर्ण न होते थे। गृद्ध और श्वान मृत देहों पर टूट कर आपस में लड़ते थे। जान पड़ता था कि किसी के अभिशाप से ही सहसा देश की यह दुर्दशा हुई है। राजा के इस कर ने उस भीषण समय को भीषणतर बना दिया।

सारे देशवासी राजा की आज्ञा का पालन न कर सके। जिसके पास कुछ धन था वह नया कर देने में समर्थ हुआ। जिसके घर में कुछ भी चीज़ थी वह भी दे सका। जो किसी प्रकार सायंकाल तक एक मुट्ठी अन्न पाकर अपने बच्चों का पालन करता था उसने भी उस अन्न को बच्चों के मुख से छीन कर राजा के दरबार में भेज दिया। जो कुछ भी न दे सके उन्हें राजा की आज्ञा से दण्ड मिला।

नरनारी देवालयों में एकत्र होकर ईश्वर की प्रार्थना करने लगे। किन्तु पानी न बरसा। निष्ठुर राजा के कानों में उनकी आर्त्तध्वनि का भी कुछ असर न हुआ। क्या अशरणशरण दयामय हरि भी इस कातर प्रार्थना को न सुनेंगे?

देश की इस भीषण अवस्था ने रानी के कोमल हृदय को कँपा दिया। प्रजा के दुःख से वह विकल हो उठी। उसकी आँखों में आँसू भर आये। आँसू भरी हुई आँखों से अनेकबार रानी ने हाथ जोड़ कर ईश्वर से प्रार्थना की—"हे ईश्वर कृपा करो। दुखी प्रजा को बचाओ। ये तुम्हारे ही हैं। तुम्हीं इनको उबारो"। अहा! स्त्री का कोमल हृदय क्या ऐसी दुर्दशा को देख सकता है?

राजा घोड़े पर सवार होकर घूमने निकले। रानी भी उसके साथ चलीं। मार्ग में उन दोनों में परस्पर इस प्रकार बात चीत हुई:—

रानी—प्रियतम! देश में दुर्भिक्ष है। मनुष्यों के कष्ट की सीमा नहीं। प्रजा ने देव-मन्दिरों में बहुत प्रार्थना की, किन्तु विफल हुई। दैव ही उनसे इस समय विमुख है। पानी न बरसने से देश में हाहाकार मच रहा है। प्रतिदिन कितने ही जीव मृत्यु के कराल-ग्रास बन रहे हैं। देखिए, मार्ग में कैसे कैसे भीषण दृश्य देख पड़ते हैं।

राजा—प्रिये! तुम्हें क्या इस बात का भय है कि शायद कोई भूखा प्यासा जानवर हम लोगों पर चोट करेगा? क्या यह सोचती हो कि उद्यानों में फूल नहीं खिलते। बेला-चमेली के फूल कहीं नज़र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं पड़ते। किस चीज़ से मैं तुम्हरा आदर-सत्कार करूँगा?

रानी—नहीं स्वामिन्! नहीं। इस कारण मैं चिन्तित नहीं। यह समय उपहास का नहीं। मेरी एक प्रार्थना है। आप क्या उसे पूर्ण करेंगे? आप चाहें तो अवश्य पूर्ण कर सकते हैं।

राजा—क्या प्रार्थना है?

रानी—आप देशवासियों की रक्षा करें। उन लोगों का अपराध क्षमा कर दें।

राजा—क्या तुम इस राजद्रोही प्रजा-समूह की तरफ़ से मुझसे विकालत कर रही हो?

रानी—राजद्रोही! आपके विरुद्ध क्या इन लोगों ने अस्त्र धारण किया? ये राजद्रोही कैसे?

राजा—उन्होंने मेरी आज्ञा नहीं मानी। वे मेरा प्राप्य कर नहीं देते। वे सब मेरी ज़रूरत को जानते हैं। इस अनावृष्टि और अन्न-कष्ट के दिनों में मेरे कोशागार में रुपये की बड़ी कमी है।

रानी—किन्तु देशवासी अन्न-कष्ट से मर रहे हैं।

राजा—तो क्या मैं भी अन्न के अभाव से मरूँ? वे चाहे मरें। मैं क्यों मरूँ?

रानी—ओह! आपने ऐसे कठोर शब्द किस तरह उच्चारण किये? स्वामिन्! दीजिए उन लोगों को जीवन-दान दीजिए। सुख और शान्ति दीजिए। इन हतभागों में बहुत से ऐसे हैं जिन्होंने शैशव-काल में मुझे गोद में लेकर स्नेह से मुखचुम्बन किया था। विवाह के समय शुभ आशीर्वाद दिया था। जब कभी मेरी आँखों से आँसू गिरे उन्होंने आदर और यत्न के साथ आँसू पोंछे। जब कभी मैंने कुछ माँगा उसी समय उन्होंने लाकर उपस्थित किया। यदि आज मेरी मृत्यु हो जाय तो क्या वे शोक करेंगे? क्या वे रोवेंगे? रोवेंगे भी तो किसके लिए? अपनी निष्ठुर राजपत्नी के लिए?

राजा—किन्तु विवाह का उत्सव अवश्य किया जाना चाहिए।

रानी—अवश्य!

राजा—फिर?

रानी—फिर क्या? नर-शोणित बहा कर प्राप्त किये गये धन से उत्सव नहीं हुआ करता! देखिए, भिखारी प्रजा अन्न के अभाव से रो रही है! मृत बच्चे को लेकर माता ऊँचे कण्ठ से आकाश विदीर्ण कर रही है! यह दृश्य कितना भीषण है! आइए हम दोनों इन सब अन्न-कष्ट से पीड़ित सन्तानों को पेट पर भोजन दें। ईश्वर हम लोगों को आशीर्वाद देगा। हमारा जीवन सफल होगा। आइए महाराज! यह उत्सव करें। आपका नृत्य-वाद्यमय उत्सव उत्सव नहीं। यथार्थ उत्सव इस समय यही है।

राजा—रानी! तुम क्या पागल हो गई हो?

रानी—सचमुच मैं पागल हो गई हूँ। मैं नहीं जानती कि मैं क्या कह रही हूँ। मेरे भीतर से कोई ये सब बातें कहला रहा है। स्वामिन्! आपने अपना सिर क्यों झुका लिया? इधर देखिए।

राजा—ठहरो। मुझे सोचने दो।

रानी—सोचिएगा क्या? अच्छे काम में सोचना क्या? वह सुनिए, क्षुधा से कातर होकर बच्चा रो रहा है। नारी होकर मैं यह दृश्य नहीं देख सकती।

वे दोनों इसी तरह बातें करते हुए जा रहे थे कि दूसरी तरफ़ से उन्होंने राजपुरोहित को आते देखा। उसको देख कर राजा ने रानी से कहा:—

राजा—पुरोहितजी आ रहे हैं। हम लोग प्रासाद से कई मील दूर घूमते घूमते चले आये हैं। घोड़े से क्यों उतर रही हो? उतरो मत। उतरने से मेरा अपमान होगा।

रानी—नहीं महाराज! मैं घोड़े पर अब और न चढ़ूँगी। जब तक आप इस कठोर कर से प्रजावृन्द को मुक्त न कर देंगे तब तक—तब तक—महाराज! मैं इसी तरह खड़ी रहूँगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—अच्छा, देखो, पुरोहित की देह कैसी हृष्ट-पुष्ट है। देशवासी अन्न के कष्ट से दुःखित नहीं। वे पुराने नियम तोड़ना चाहते हैं। (पुरोहित की तरफ़ देख कर) पुरोहितजी! मैं रानी के इस व्यवहार से बहुत लज्जित हूँ।

रानी—स्वामिन्! आप देशवासियों पर प्रसन्न हों।

राजा—प्रसन्न! अच्छा यदि तुम नग्न होकर घोड़े पर सवार हो और मध्याह्न के समय समस्त राजपथ घूम आओ तो मैं प्रजा का अपराध क्षमा कर दूँ। यह बात मैं शपथ-पूर्वक कहता हूँ।

रानी—महाराज! क्या आपका हृदय इतना निष्ठुर है?

पुरोहित—महाराज! आपने यह कठोर बात कह कर रानी के कोमल हृदय को बहुत दुःख दिया। देखिए, रानी काँप रही हैं। मुख मलिन हो गया है। महारानी! मैं आशीर्वाद देता हूँ कि आप सुखी हों।

रानी—महात्मन्! जब तक देश सुखी न होगा तब तक मैं सुखी नहीं हो सकती। आपने मेरे स्वामी के निष्ठुर वाक्य सुने हैं?

पुरोहित—माता! आप यह बात भूल जायँ।

रानी—मुझे इसका बिलकुल सोच नहीं।

पुरोहित—आप यथार्थ में देवी हैं।

रानी—क्या महाराज ने जो कहा है वह सचमुच ही शपथ-पूर्वक कहा है?

पुरोहित—हाँ, शपथ-पूर्वक कहा है?

रानी—ईश्वर! तुम्हीं अब इस हतभागे देश की रक्षा करो। स्वामिन्! क्या आपसे अब और कोई आशा नहीं?

राजा—नहीं, मैं और कुछ नहीं कर सकता। तुमने मेरी बात न सुनी। मैंने मना किया, फिर भी तुम घोड़े से उतर पड़ीं!

रानी—मैं आपके वाक्यों का अनादर करने के लिए नहीं उतर पड़ी। मैं लज्जित होकर घोड़े से उतरी हूँ।

राजा—मैं भी यही समझता हूँ।

इस तरह बात-चीत करते हुए राजा और रानी घर लौटे। रानी मन में सोचने लगी—"मुझे बड़ा अटपटा काम करना है। हे ईश्वर! तू शक्ति दे। तूही मुझे साहस भी दे। इस विपत्ति में तूही मेरी सहायता कर। दीन-दुखियों की आर्त्तध्वनि मैं और नहीं सुन सकती।

सवेरा हुआ। देशवासियों ने प्रतिज्ञा की कि कोई घर से बाहर न निकले। देखते देखते मध्याह्न काल उपस्थित हो गया। कहीं छाया नहीं। कहीं अँधेरा नहीं। चारों तरफ़ सूर्य का प्रकाश है। मार्ग में मनुष्य का नाम नहीं। गृही गृह में आबद्ध हैं। दरवाज़े, खिड़कियाँ सब बन्द हैं। गृहहीन निराश्रय भी उस समय मार्ग में नहीं, वे देवालयों में चले गये हैं। कहीं शब्द तक नहीं सुनाई पड़ता। स्थिरता और निश्चलता का सब ओर आधिपत्य है। वृक्ष भी नहीं हिलते। वायु भी नहीं चलती। मानो समस्त देश मृत्यु के गोद में सो रहा है। हाय! केवल निर्लज्ज प्रकाश चारों तरफ़ फैला हुआ है।

पाठकगण! आप भी अपनी आँखें मूँद लें। उस मार्ग की ओर मत देखें। बाह्य चक्षुओं को मूँद कर अन्तरतम प्रदेश के दिव्य चक्षु से देखिए। मानों वह करुणामयी नारी दीन-जनों के दुःख दूर करने के लिए अभयारूप में अवतीर्ण हुई है।

रानी घोड़े पर सवार होकर निकली। वह नग्न नहीं। सतीत्व का आवरण उसके सारे शरीर को ढाके हुए है। सिर के काले बालों ने उसके पृष्ठ-देश को ढाँक लिया हैं। सब शरीर से एक स्वर्गीय सौन्दर्य निकल रहा है। किसका सामर्थ्य कि उस प्रदीप्त सूर्य की ओर देखे। हवा भी मानों डर के मारे निश्चल हो गई है।

सारा राजपथ घूम कर महारानी करुणावती घर लौटी। ईश्वर ने उसका मनोरथ सफल किया। जिसने कौरवसभा में विवसना द्रुपद-तनया की रक्षा की थी उसी ने आज पर-दुःख से दुःखित करुणावती की सहायता की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस समय राजेश्वरी करुणावती प्रजा के दुःख दूर करने के लिए राजपथ पवित्र करती हुई जा रही थी, उस समय एक महापापी अपने घर की दीवार के एक छिद्र से इस दृश्य को देख रहा था। किन्तु सतीत्व का प्रताप बड़ा ही प्रबल है। हत-भागा उसी समय अन्धा हो गया!

अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार राजा ने कार्य किया। कर उठा दिया। भूखे-प्यासे प्रजावृन्दों के लिए उसने अपना भण्डारा खोल दिया। ईश्वर की कृपा से पानी भी बरसा। फिर अनाज और शाक-पात से देश परिपूर्ण हो गया। महारानी करुणावती का पवित्र नाम जगत् में सर्वत्र व्याप गया। *

विनयकृष्ण मुखोपाध्याय।

विविध विषय

१—ब्रिटिश गायना में भारतवासियों के जाने की आवश्यकता।

दक्षिणी अमेरिका में ब्रिटिश गायना नाम का एक छोटा सा देश समुद्र से मिला हुआ है। उसका क्षेत्रफल १,२०,००० वर्ग-मील है। यह बहुत ही कम आबाद है। तीन लाख से अधिक आबादी न होगी। इसमें कोई नब्बे फ़ी सदी जङ्गल और पड़ती ज़मीन है। राज्य अँगरेज़ी है। हिन्दुस्तानियों के साथ अच्छा वर्त्ताव किया जाता है। ट्रांसवाल, कनाड़ा, नटाल और केप कालोनी का जैसा नहीं। नागरिक के नाते उन्हें वही अधिकार प्राप्त हैं जो गोरों को हैं। डाक्टर रामनारायण शर्म्मा, एल० एम० एस० कुछ समय से इस देश की राजधानी जार्ज-टाउन में जा रहे हैं। उनके कई लेख सरस्वती में निकल चुके हैं। एक इस संख्या में भी है। आप कहते हैं कि गायना में परिश्रमी भारतवासियों की इस समय बड़ी ज़रूरत है। पड़ती ज़मीन को खेती के लायक़ बना कर उसमें गन्ने की खेती करने से काश्तकार थोड़े ही दिनों में मालामाल हो सकता है। वहाँ हीरे और सोने की खानें भी हैं। हीरे की एक खान का कुछ सत्व डाक्टर साहब ने भी प्राप्त किया है। इन खानों में काम करने वालों को भी ख़ासी आमदनी होती है। डाक्टर साहब के लिए भी हिन्दुस्तानियों की ज़रूरत है। डाक्टरों, पण्डितों और वकीलों की भी वहाँ मांग है। क्या ही अच्छा हो जो हिन्दुस्तान के मेहनती किसान, जिन्हें यहाँ पेट भर खाने को भी नहीं मिलता, वहाँ चले जायँ और सदा के लिए नहीं, तो कुछ ही समय के लिए बस जायँ। डेढ़ दो सौ आदमियों को तो अकेले डाक्टर साहब ही काम दे सकते हैं।

२—प्रेम-महाविद्यालय, वृन्दावन।

इस विद्यालय की १९११–१२ की रिपोर्ट से सूचित होता है कि यह दिन पर दिन उन्नति कर रहा है। इसके उद्देश पढ़े ही उदार और देश के लिए बहुत ही लाभदायक हैं। इसमें साधारण शिक्षा के सिवा औद्योगिक और कला-कौशल सम्बन्धी शिक्षा विशेष रूप से दी जाती है। सबसे बड़ी बात इसमें यह है कि यह सारी शिक्षा मुफ़्त दी जाती है। इसके सञ्चालकों के औदार्य्य-भाव की जितनी प्रशंसा की जाय कम है। इसकी सहायता करना और इससे लाभ उठाना हम लोगों का कर्त्तव्य है। जिसे इसके विषय में कुछ पूछना हो वह इसके मन्त्री महाशय को लिख कर पूछ सकता है।

३—गुजराती साहित्य-परिषद् में गायकवाड़ का भाषण।

गुजराती साहित्य-परिषद् का चौथा अधिवेशन बड़ोदे में हो गया। बड़ोदा-नरेश श्रीमान् सयाजीराव गायकवाड़ ने उसमें अपनी वक्तृता में कहा :—

"भारत के विद्वानों को केवल भूत काल की महिमा गाते ही न रह जाना चाहिए। उन्हें उचित है कि वे इस बात का भी पूर्ण प्रयत्न करें कि उनका वर्तमान काल भी वैसा ही उज्ज्वल हो जैसा उनका भूतकाल था। यह हमें शोभा नहीं देता कि हम पूर्व्वजों के कामों की कीर्ति ही गाते रहें और स्वयं कुछ न करें। भूत काल के विद्वानों की रचना की तो रक्षा करते रहें, परन्तु स्वयं साहित्य-संसार की सेवा न करें। पूर्व्वजों के ऊपर से ज़िम्मेदारी हट कर वर्तमान समय में वह हमारे ऊपर आ गई है। हमारी नसों में उन्हीं पूर्व्वजों का रक्त बहता है जिन्हें हम पूजते हैं। हमारे हृदयों में उन्हीं संस्कारों का राज्य है जिनके बल से हमारे पूर्व्वज सत्य-मार्ग पर चलते हुए अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दे सके थे। हमें चाहिए कि हम ऐसा अवसर न आने दें कि हमारी सन्तानों को कहना पड़े कि हुआ

* वाल्टर सैवेज लैंडर की एक कहानी के आधार पर लिखित—लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वजों की नसों में बहने वाला रक्त ठंडा पड़ गया था और उनकी आत्मायें आलस्य का शिकार हो कर प्रतिभा-शून्य हो गई थीं। आप अब उठ खड़े हूजिए और देश में एक-भाषा और एक-लिपि का प्रचार करके देश-वासियों की सेवा और देश में ऐक्य-भाव की उत्पत्ति कीजिए। अन्य जातियों के उत्तम विचारों को अपनाने से देश का बहुत कुछ भला हो सकता है। ये विचार अनुवाद द्वारा हमें प्राप्त हो सकते हैं। अनुवाद प्राचीन समय की किसी मुर्दा भाषा में नहीं, किन्तु उस भाषा में होने चाहिएँ जिसे हमने माता का स्तन्य-पान करते समय सीखा है। मैं अपने राज्य में एक ऐसा महकमा खोल रहा हूँ जिसमें योरप की अच्छी अच्छी पुस्तकें गुजराती अथवा अन्य देशी भाषाओं में अनुवादित हो कर प्रकाशित हुआ करेंगी। इस काम के लिए मैं अपने पास से दो लाख रुपया देता हूँ, जिसके सूद से यह काम चलेगा"।

बड़ोदा-नरेश का स्वदेश-प्रेम प्रशंसनीय है। हिन्दी पर भी उनका बड़ा प्रेम है। नागरी-लिपि के प्रचार का जो उद्योग वे कर रहे हैं वह किसी से छिपा नहीं। आशा है, महाराज अपने इस नये महकमे को आज्ञा दे कर थोड़े से अच्छे अच्छे ग्रन्थों के अनुवाद हिन्दी में भी करावेंगे।

४—जापान में पुस्तकों की बिक्री।

पाल एस० रीश जापानी साहित्य के अच्छे ज्ञाता हैं। वे अपने एक लेख में जापान-विषयक अन्यान्य बातों के अतिरिक्त यह भी लिखते हैं कि आज कल जापान में अच्छी पुस्तकों की बेहद बिक्री होती है। जापान के एक ग्रन्थकार का नाम फ़ुकुज़वा है। पहले ये महा निर्धन थे। परन्तु यूरप की शिक्षा और सभ्यता से सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तकें लिख कर ये थोड़े ही दिनों में अमीर हो गये। इनकी एक पुस्तक की, केवल पाँच ही छः वर्ष में, सात लाख कापियाँ बिक गईं। इनकी अन्यान्य पुस्तकों की भी बड़ी बिक्री हुई। आज तक इनके ग्रन्थों के अनेक संस्करण हो चुके और करोड़ों कापियाँ बिक चुकीं।

५—बन्दरों की बुद्धिमत्ता।

बन्दर बड़े बुद्धिमान् होते हैं। दक्षिणी अफ़रीका के कोई कोई बन्दर तो इतने बुद्धिमान् होते हैं कि यदि उन्हें पकड़ कर सिखाया जाय तो वे नौकरों का काम बड़ी अच्छी तरह कर सकें। वहाँ के आदिम निवासी यहाँ तक कहते हैं कि बन्दर आपस में बात चीत भी करते हैं, परन्तु ज्योंही वे किसी मनुष्य को देखते हैं, चुप हो जाते हैं। अस्तु; जो कुछ हो; परन्तु, उस देश में इस समय दो बन्दर ऐसे मौजूद हैं जिनसे उनके मालिक नौकर का काम लेते हैं। पहले बन्दर का मालिक निम्नश्रेणी का एक रेलवे-कर्मचारी है, जिसकी दोनों टाँगें रेल की किसी दुर्घटना में कट गई हैं। उसका पालतू बन्दर रोज़ अपने मालिक को एक छोटी गाड़ी पर बिठाता है और उस गाड़ी को स्वयं घसीटता हुआ उस स्थान पर ले जाता है जहां वह काम करता है। अपने मालिक का रेलवे-सम्बन्धी काम भी वही करता है। झण्डी दिखाना और अन्य दूसरे काम, जिस प्रकार उसका मालिक बैठा बैठा उसे बतलाता जाता है, वह करता है। वर्षों से वह इसी प्रकार काम कर रहा है। कभी कभी शाम को कुछ लोग उस बन्दर को होटल में ले जाते हैं। वहाँ भी वह नौकर का काम करता है। शराब के पात्र उठा उठा कर वह लोगों को देता है। उसे एक ख़ास क़िस्म की शराब बहुत प्रिय है। शराब के अन्य प्यालों के साथ थाल पर एक प्याला उस शराब का भी रख दिया जाता है जो उसे प्रिय है और थाल उसके हाथ में दे दिया जाता है। वह थाल को होटल में खाना खानेवालों के पास कुछ दूर पर लाकर रख देता है, और पहले अपने प्याले को पीकर तब दूसरों को उनके प्याले देता है। यदि इस बीच में किसी ने जल्दी की और उससे थाल ले लेना चाहा तो वह अप्रसन्न हो जाता है और प्रायः झगड़ पड़ता है।

दूसरा बन्दर एक साहब के पास है जिसे उन्होंने गड़रिये का काम सिखाया है। जो भेड़-बकरियाँ उसके सिपुर्द की जाती हैं उन्हें वह बड़े प्रेम से चराता है और उनकी बड़ी हिफ़ाज़त करता है। नियमपूर्वक वह उन्हें सन्ध्या-समय घर पर लाता है और बाड़े में बन्द करके स्वयं उनके पास ही सोता है। एक पल के लिए भी वह अपनी भेड़-बकरियों को अपनी नज़र के ओट नहीं करता। इस बन्दर में एक ख़ास बात यह है कि जहाँ उसने दूसरे बन्दर की आवाज़ सुनी कि वह अपनी भेड़-बकरियों को समेट कर जल्दी से बाड़े में बन्द कर देता है। यह बन्दर बड़ाही एकान्त-प्रिय है।

६—कोलर की सोने की खान।

मैसोर-राज्य के अन्तर्गत सोने की एक बहुत बड़ी खान है, जो कोलर की सोने की खान कहलाती है। गत तीस वर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से इस खान से सोना निकाला जाता है। अब तक इस खान से साढ़े पैंतालीस करोड़ का सोना निकाला जाचुका है। उससे कोई बीस करोड़ रुपये मुनाफ़ा हुआ है। आज कल खान का काम सात अँगरेज़-कम्पनियों के हाथ में है। मैसोर-गोल्ड-मायनिङ्ग कम्पनी सबसे बड़ी है। यह कम्पनी १८८० ईसवी में स्थापित हुई थी। आज कल इसकी पूंजी पैंतालीस लाख पछत्तर हज़ार रुपये है। इसने अब तक लगभग अठारह करोड़ रुपये का सोना निकाला और नव करोड़ रुपया अपने हिस्से-दारों को मुनाफ़ा बाँटा है। गत वर्ष ही में इसने सवा करोड़ रुपये से अधिक का सोना निकाला। लगभग सात लाख रुपया मैसोर राज्य को राज-कर देना पड़ा और पचास लाख साल भर में ख़र्च हुआ। इन रक़मों को निकाल डालने पर भी इस कम्पनी को पचास लाख रुपये से अधिक मुनाफ़ा हुआ।

दूसरी कम्पनी का नाम है—दि चैम्पियन रीफ़ गोल्ड मायनिङ्ग कम्पनी—(The Champion Reef Gold Mining Company) खान की ७४३ एकड़ भूमि इसके क़ब्ज़े में है। इसका मूल-धन उन्तालीस लाख रुपया है। यह अब तक एक हज़ार मन से अधिक सोना निकाल चुकी है; और, आज तक, इसके हिस्सेदार लगभग साढ़े पाँच करोड़ रुपया मुनाफ़े में पा चुके हैं।

तीसरी कम्पनी—नन्दीदुर्ग कम्पनी है। यह तेईस वर्ष से काम कर रही है। यह भी लगभग छः करोड़ रुपये का सोना प्राप्त कर चुकी है, और दो करोड़ रुपये से अधिक अपने हिस्सेदारों को दे चुकी है। चौथी कम्पनी का नाम औरीगम है। यह तीस वर्ष से काम कर रही है। इस बीच में इसे सवा आठ करोड़ की प्राप्ति हुई, जिसमें से लगभग पौने तीन करोड़ रुपया हिस्सेदारों को मिला। पांचवीं कम्पनी बालाघाट कम्पनी के नाम से प्रसिद्ध है। गत बीस वर्ष में इसने लगभग दो करोड़ का सोना निकाला और इसके हिस्सेदारों ने बत्तीस लाख रुपये से अधिक मुनाफ़ा पाया। दो कम्पनियाँ और हैं जो बहुत छोटी हैं; परन्तु लाभ उनको भी बहुत अच्छा होता है। संसार की अन्य सब सोने की खानों से कोलर की खान में ख़र्च कम बैठता है। कम्पनियों को मैसोर-राज्य से भी बहुत सहायता मिलती है। राज्य के कृषि-विभाग ने प्रजा के लाभ के लिए एक बड़ी भारी झील बनवाई थी। यह झील सोने की खान के पास ही है। आज कल इसी झील का पानी खान में ख़र्च होता है। प्रत्येक कम्पनी मैसोर सरकार को अपने लाभ का एक अंश करके रूप में देती है।

खेद की बात है, हमारे देशवासी व्यवसाय करना नहीं जानते। सोने की यह खान अपने देश में है। परन्तु यहां वाले उससे लाभ नहीं उठाते।

७—लूथर बरबैंक की मृत्यु।

टाइ टैनिक ने अमेरिका-निवासी सुप्रसिद्ध उद्यान-विद्या-विशारद लूथर बरबैंक को भी जलमग्न कर दिया। इन्होंने वनस्पति-विद्या में घोर परिवर्तन कर दिया था। आपने फलों को बड़े और अधिक स्वादिष्ट पैदा करने की कितनी ही नई नई तरकीबें खोज निकाली थीं। आपने अनार, आलू, जामुन और बेर आदि फल उनके साधारण आकार से चौगुने बड़े पैदा किये। एक प्रकार का ऐसा बेर पैदा किया जिसमें गुठली ही नदारत। घासों पर भी आपने अपनी शक्ति को आज़माया। उनसे एक प्रकार के छोटे छोटे गन्नों की उत्पत्ति हुई, जिनमें रस की अधिकता है। फूल भी आपकी विल-क्षण बुद्धि का परिचय पाने से न बचे। आपने गुलाब, गुलेब-हार, सोसन, गुलनार आदि कितने ही फूलों की कितनी ही नई क़िस्में उत्पन्न कर दीं। आपके कोई कोई फूल तो एक एक वर्ष तक जैसे के तैसे बने रहते हैं वे सूखते ही नहीं! बीजों को परखने में भी आप ख़ूब निपुण थे। ढेरियों में से आप सहज ही सर्वोत्तम बीज अलग चुन लेते थे। आपका यह मत था कि जिस प्रकार फूल और फल बड़े और अच्छे किये जा सकते हैं उसी प्रकार यदि प्रयत्न किया जाय तो मनुष्य भी अधिक सुन्दर, बलवान् और बुद्धिमान् उत्पन्न किये जा सकते हैं।

आपकी बुद्धि की विलक्षणता देख कर अमेरिका के सुप्रसिद्ध धन-कुबेर मिस्टर कारनेगी आपको आरम्भ में वर्षों तक तीस हज़ार रुपये वार्षिक की एक वृत्ति इसलिए देते रहे कि कहीं आपको अर्थकष्ट से अपने काम में असुविधा न हो। मरते समय आपकी आयु साठ वर्ष से अधिक थी। अभागी टाइटैनिक ने इन्हें भी समुद्र के गर्भ में सदा के लिए सुला दिया। उद्भिज्ज-विद्या-विषयक आपकी योग्यता आदि के विषय में कई नोट सरस्वती में निकल चुके हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक-परीक्षा।

१—**संक्षिप्त वाल्मीकि-रामायण**। पहले तीन काण्ड। लाहोर के डी० ए० वी० कालेज के संस्कृताध्यापक पण्डित राजाराम शास्त्री कई साल से आर्षग्रन्थावलि नाम की एक पुस्तकमाला निकाल रहे हैं। इस समय वाल्मीकि-रामायण सरल-हिन्दी-टीका सहित प्रकाशित हो रही है। इसके पहले तीन काण्ड छप कर पुस्तकाकार निकाले गये हैं। मूल का अनावश्यक भाग छोड़ कर आपने इस रामायण का सम्पादन किया है और कर रहे हैं। टीका आपकी सच मुच ही सरल और सर्व्वसम्मत हुई है। दाम इस ५४६ पृष्ठ की पुस्तक का ३ रुपया है। पञ्जाब की गवर्नमेंट ने आपके इस काम से प्रसन्न होकर आपको २०० रुपये पारितोषिक दिया है। रामायण के प्रेमियों और हिन्दी के हितैषियों को भी आपकी इस पुस्तक का आदर करना चाहिए। मिलने का पता :—

सम्पादक, आर्ष-ग्रन्थावलि, लहौर।

२—**श्रीसरयूपारीण**। यह मासिक पत्र है। चैत्र संवत् १९६९ से प्रकाशित होने लगा है। सरयूपारीण-ब्राह्मण-महासभा का यह मुखपत्र है और प्रयाग से निकलता है। मूल्य इसका वार्षिक २) है। पर अपनी महासभा के सभासदों को १) में मिलता है। तीन सरयूपारीण विद्वान् इसके सम्पादक हैं। इसके पहले अङ्क में अच्छे अच्छे लेख और कवितायें निकली हैं। हम हृदय से इसका अभ्युदय चाहते हैं। मिलने का पता :—

मैनेजर, श्रीसरयूपारीण, बादशाही मण्डी, प्रयाग।

३—**स्वदेशबान्धव**। यह मासिक पत्र सात वर्ष से बड़ी ही भोग्यता से सम्पादित होकर आगरे से निकलता है। कुँवर हनुमन्तसिंह जी इसके प्रधान सम्पादक हैं और पण्डित पन्नालालजी सहकारी सम्पादक। इसके आठवें भाग की पहली संख्या से मालूम हुआ कि इसके प्रचार में उत्तरोत्तर उन्नति हो रही है। होनी ही चाहिए। रत्न का कौन नहीं आदर करता? इसके लेख सचमुच ही सर्वोपयोगी होते हैं। आख्यायिकायें इसकी मनोरञ्जक भी होती हैं और शिक्षादायक भी। सरस्वती के आकार के २४ पृष्ठ इसके प्रत्येक अङ्क में रहते हैं। तिस पर भी इसका मूल्य केवल १॥) है। स्त्रियों और छात्रों के लिए तो यह पत्र और भी उपयोगी है। मिलने का पता:—

मैनेजर, राजपूत—एंग्लो ओरियंटल प्रेस, आगरा।

४—**गणितसार**। श्रीयुत गिरधारीलाल चोमवाल इसके कर्त्ता हैं। पट्टी-पहाड़ों से ले कर व्यापारियों और दुकानदारों को जितने हिसाब की आवश्यकता होती है प्रायः वह सभी, किसी न किसी रीति से, थोड़े में, इस पुस्तक में बतलाया गया है। अनेक प्रकार के गुरु भी इसमें हैं। सोना, चाँदी, मोती, हुण्डी, कपड़ा, अफ़ीम, व्याज, आदि से सम्बन्ध-रखने वाले हिसाब बड़ी सुगमता से समझाये गये हैं। पृष्ठ-संख्या ८८। मूल्य चार आने। रामगढ़ ज़िला सीकर के पते से पत्र भेजने पर गणितसार के कर्ता से ही यह पुस्तक मिल सकती है।

५—**बालचर्य्या**। लेखक श्रीयुत माधवप्रसाद। मूल्य १ आना। अच्छी छपी है। बालकों के लिए गद्य-पद्यमय शिक्षायें भी इसमें बहुत अच्छी हैं। बाबू महेशलाल, बिहार एञ्जल प्रेस, भागलपुर से मिलती है।

६—**चाणक्य-नीति-दर्पण**। प्रसिद्ध चाणक्य-नीति का यह हिन्दी में पद्यानुवाद है। साथ ही मूल-संस्कृत-श्लोक भी हैं। अनुवादक हैं :—पं० गजाधरप्रसाद त्रिपाठी, असिस्टंट मास्टर, प्लौडनगञ्ज, सागर। पृष्ठ-संख्या ९६ है। मूल्य साढ़े पांच आने। संस्कृत-पद्यों में अशुद्धियां रह गई हैं—उनका पदच्छेद भी ठीक ठीक नहीं किया गया। अनुवाद में में भी यत्र तत्र दोष हैं। बेहतर यह होता कि पद्य के बदले हिन्दी-गद्य में ही इस पुस्तक का अनुवाद किया जाता।

७—**नीतिसंग्रह**। उर्दू-गद्य में है। शुक्रनीति, चाणक्यनीति, विदुरनीति, आदि कई नीतियों का संग्रह है। संग्रहकर्ता स्वामी श्रीमित्रसेनजी हैं। प्रकाशक प्रेमीसेवक गङ्गाराम, क़िला दीदारसिंह, गुजरानवाला। जो लोग न हिन्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानते हैं न संस्कृत, पर उर्दू जानते हैं, उन्हें इस पुस्तक से नीति-विषयक बहुत बातें मालूम हो सकती हैं। दाम मालूम नहीं। पृष्ठ-संख्या १६०

❋

८—**श्रीसन्तविनय**। स्वामी श्रीमित्रसेन-रचित। पृष्ठ-संख्या ३०० से ऊपर। प्रेमविलास नामक मासिक पत्र के उपहार में वितरित। दाम मालूम नहीं। इस उर्दू-पुस्तक में—"जन्म-मरन का पूरन भेद उपनिषदों के परमानों से इस पैराये में निरूपन हुआ है कि जिससे अपना जगत-सम्बन्ध साफ़ ज़ाहिर होकर अपनी ज़िन्दगी ईश्वर-प्रेम में बरत जाती है"। पुस्तकान्त में कुछ पद्य भी हैं। बीच बीच में सुभाषित भी हैं; यथा :—

(१) न दौलत न प्यारा कोई साथ होगा—चलें जब तो खाली हर एक हाथ होगा।

(२) अदम से जानिबे हस्ती तलाशे यार में आये।

(३) चु अज़्बे बदरद आवरद रोज़गार—दिगर अज़्-बहारा न मानद क़रार।

❋

९—**व्याख्यान-परिषद्विचार**। खामगांव-निवासी बालचन्द्रजी-मुनि-प्रणीत। ९६ पृष्ठ की पुस्तक है। मूल्य इसका आठ आने रक्खा गया है। पुस्तक जैन-धर्म्म से सम्बन्ध रखती है। जैन-वक्ताओं और श्रोताओं के गुण-दोष आदि का इसमें विवरण है। भाषा कहीं कहीं विचारणीय है।

चित्र-परिचय।

शाहेजहाँ बादशाह के समय का एक चित्र।

कलकत्ते के स्कूल आव् आर्ट्स के भूतपूर्व प्रधानाध्यक्ष ई० बी० हेवल महाशय ने अँगरेज़ी में—इंडियन स्कल्पटर ऐंड पेंटिंग—नाम की एक महत्त्वपूर्ण चित्र और मूर्ति-निर्म्माण-विद्या विषयक पुस्तक लिखी है। उसे प्रकाशित हुए बहुत दिन हुए। पुस्तक क़ीमती है और कोई ५० रुपये में आती है। उसके आरम्भ में हेवल साहब ने एक बढ़िया रङ्गीन चित्र दिया है। यह चित्र शाहेजहाँ बादशाह के दरबारी चित्रकारों में से किसी का बनाया हुआ है। चार चित्रों का यह एक ग्रूप (समुदाय) है। चारों में से पहले तीन के नाम आपने अपने चित्र के नीचे फ़ारसी अक्षरों में लिखे हैं। बाईं तरफ़ से तीनों के नाम ये हैं:—ख़्वाजा अब्दुल्ला, मुल्ला-शाह और सुलेमांशाह मीर। चौथे चित्र का नाम नहीं लिखा। यही ग्रूप इस संख्या में अन्यत्र प्रकाशित किया जाता है। चित्र बहुत बढ़िया है। मुग़ल-बादशाहों के ज़माने में जिस तरह के चित्र बनते थे उनका यह उत्तम नमूना है। इस चित्र की असल कापी कलकत्ते की ललितकला-शाला (Art Gallery) में सुरक्षित है।

हृदयदाही बाणप्रहार।

एक बार राजा दशरथ शिकार खेलते हुए तमसा नदी के तट पर पहुँचे। नदी में, उस समय, श्रमण नामक एक तपस्विकुमार घड़े में जल भर रहा था। घड़े के शब्द को दशरथ ने हाथी का शब्द समझ कर दूर ही से शब्दवेधी बाण मारा। बाण ने मुनिकुमार के हृदय को छेद दिया। घड़ा हाथ से छूट गया। बालक भूमि पर गिर कर तड़पने लगा। दशरथ ने पास जाकर देखा तो वे दुःखातिरेक से अभिभूत हो गये। वही दृश्य इस चित्र में अङ्कित किया गया है। शरबिद्ध बालक के कहने पर उन्होंने उसे, उसी क्षण, पास ही कुछ दूर पर बैठे हुए, उसके अन्धे पिता तथा माता के पास पहुँचाया और अपने कृत्य को भ्रम से हुआ बतला कर बहुत दुःख और पश्चात्ताप किया। वहीं उन्होंने मुनिकुमार के पिता की आज्ञा से शर को उसकी छाती से निकाला। बालक मर गया। पिता भी जल मरा। परन्तु मरने के पहले उस तपस्वी ने शाप दिया:—मेरी तरह वृद्धावस्था में तुम भी पुत्रशोक से मृत्यु को प्राप्त होगे। इस पर दशरथ ने कहा:—

शापोऽप्यदृष्टतनयाननपद्मशोभे सानुग्रहो भगवता मयि पातितोऽयम्।
कृष्यां दहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धो बीजप्ररोहजननीं ज्वलनः करोति॥

अर्थात्—बड़ी कृपा की जो आपने मुझे ऐसा शाप दिया। मैंने अभी तक पुत्र के मुखकमल की शोभा नहीं देखी। यह शाप नहीं, इसे मैं अनुग्रहही समझता हूँ। ईंधन से बढ़ी हुई आग खेत को जला कर भी उसे बीज पैदा करने वाला कर देती है।

Printed and Published by Apurva Krishna Bose at the Indian Press, Allahabad.
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

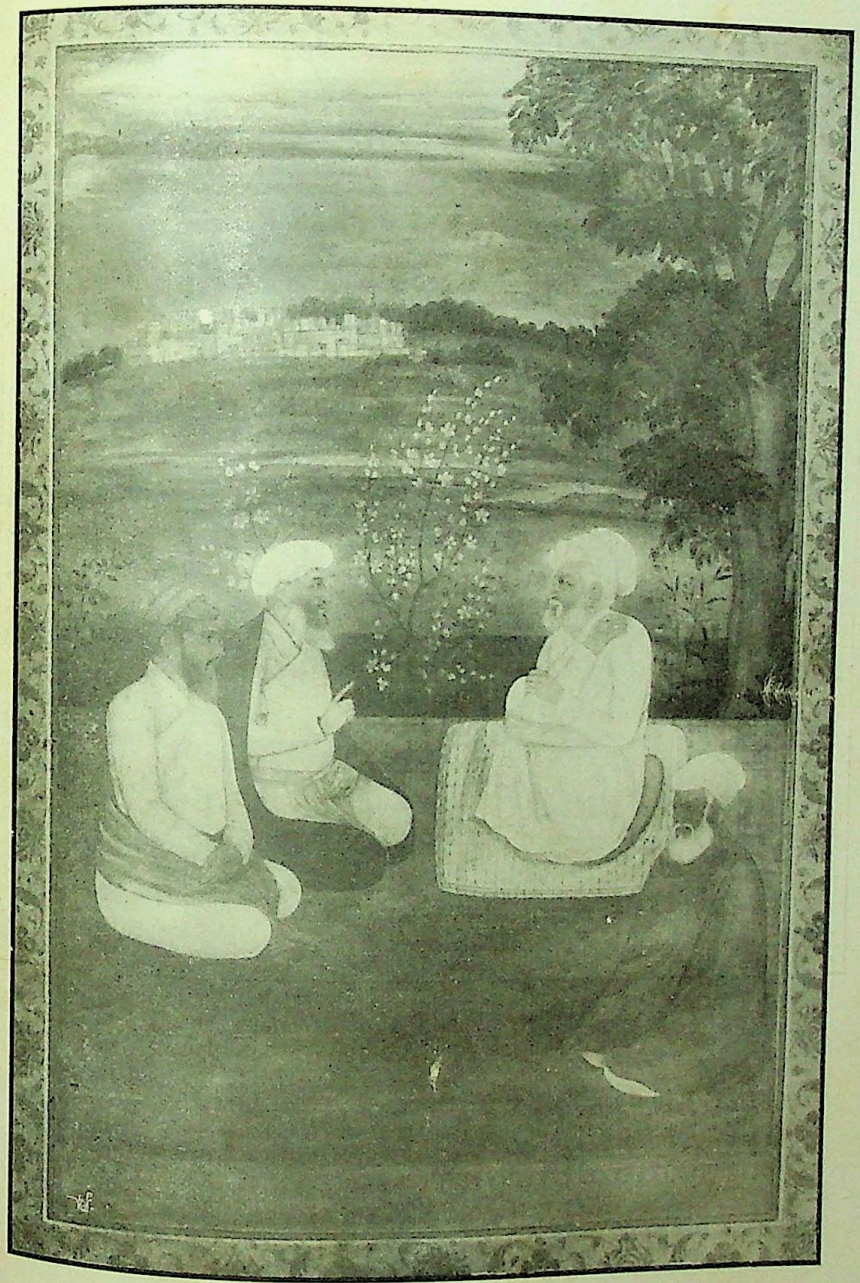

शाहेजहाँ बादशाह के चित्रकारों का अङ्कित किया हुआ एक चित्र।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

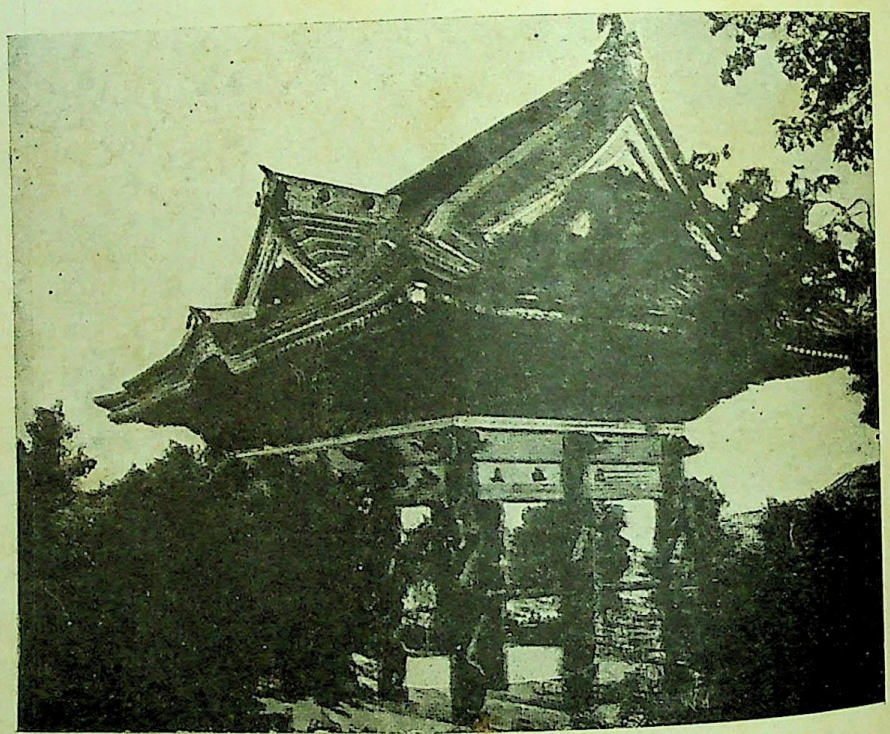

जापानियों का चाय-घर (टोकिओ-जापान)

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

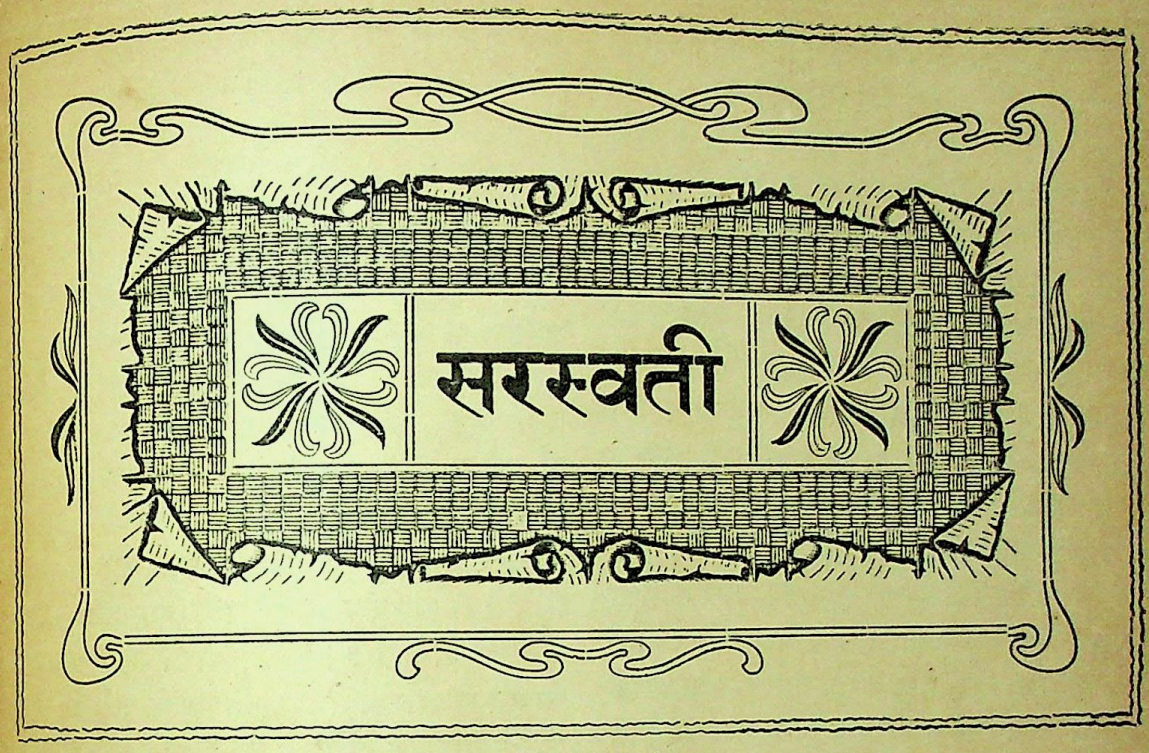

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग १३] १ जुलाई, १९१२—द्वितीय आषाढ़ शुक्ल २, १९६९। [संख्या ७

मेरी यात्रा।

(४)

[ले० श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल, बी० ए० (आक्सफ़र्ड), बैरिस्टर, प्रोफेसर-आव्-लॉ, कलकत्ता-विश्वविद्यालय]

तुर्क-राजधानी कांसटैंटिनोपल।

(क) नगरी-वर्णन।

समुद्र-तट देख पड़ा। यह समुद्र बास्फ़रस था। इस पार योरप, उस पार एशिया। रेल तेज़ी से जारही थी। शाम होरही थी। रेल की सड़क की दाहनी ओर, घास पर, एक मैले ईंट के मकान के नीचे, सादी मलमल की चादरें सर पर ओढ़े, कोई आठ दस महिलायें बैठी देख पड़ीं। पर मुहूर्त्त मात्र ही; क्योंकि रेल, स्टेशन पहुँचने को, दौड़ रही थी। इन महिलाओं ने मुँह फेर लिये। यह पूरब था—यह पूरब की स्त्री-जाति का सङ्कोच था, जो चार बरस के बाद फिर दृष्टिगत हुआ। सौन्दर्य भी पूरब का था। गोरा रंग, जिस पर लाली न थी। शरीर भारी और आलस भरे से। भूमि पर अपने यहाँ की स्त्रियों की तरह बैठी हुईं—न मेज़ थी न कुरसी। यह दृश्य मनोहर, कौतूहल-जनक, नया सा जान पड़ा। योरप में रहते रहते वहाँ की बातें साधारण और अपने घर की बातें असाधारण सी समझ पड़ने लगती हैं। महिलावृन्द का भूमि पर बैठना, उनका आलसपन, उनका मुँह घुमा लेना कौतूहल-जनक, अतएव मनोहर, मालूम हुआ। कौतूहल इस बात पर और भी था कि यही वह अ-पवन-स्पृश्य "हरम" अर्थात् तुर्क-अन्तःपुर का अनारोपित चित्र था, जिसकी झूठ सच अनेकानेक कहानियाँ योरप में गढ़ी और पढ़ी जाती रही हैं। चलते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र सा यह आँखों की ओट हुआ ही था कि साथी अफ़सरों में से एक ने उँगली उठा कर कहा—"स्तम्बूल"। तुर्की-भाषा में कांस्टैंटिनोपल को स्तम्बूल कहते हैं। समुद्र-तट, छोटे और कम ऊँचे मकान—जिन पर उल्टी नाँदों की गुम्बज़ोंवाली छत, बाँस की सुघर टट्टियों से खिड़कियाँ बन्द, मुर्ग़े-मुर्ग़ियाँ चुगती हुईं, लोग मूंज की छोटी छोटी कुर्सियों या मचियों पर बैठे हुए। यह चित्र बड़ी राजधानी के बाहर का था। दृश्य मैला था। मुझे यह जान पड़ा कि यह देश मानों एशिया ही है जिसके सामने योरप के साफ़ सुथरे ऊँचे मकान हम से अपनी श्रेष्ठता, रूपकभाव से, जता रहे हैं। यह सोच रहा था कि मित्र सैनिक ने ऊपरी पुल की ओर उँगली उठा कर कहा—'बादशाह हमीद सलामलिक'। मैं समझ गया कि बादशाह अब्दुलहमीद सलामलिक करने इसी पुल पर से जाता था। पर यह बात मुझे अभी मालूम हुई कि तुर्क देश में सम्राट् को सुलतान (जैसा कि अँगरेज़ी में लिखा जाता है) नहीं, बल्कि बादशाह कहते हैं। सलामलिक शुक्र की शाही नमाज़-यात्रा को कहते हैं, जिसका वर्णन आगे चल कर होगा।

स्टेशन पर उतरने पर, पास पोर्ट फिर देखा गया और लिख लिया गया कि मैं कहाँ ठहरूँगा। स्टेशन लम्बा चौड़ा, पर कुछ बनावट या सजावट नहीं। स्टेशन पर बड़ी आमोदजनक बात यह कि दो घड़ियाँ लगी हुई थीं, जिनके इङ्गित समयों में कोई ७-८ घन्टे का अन्तर था! तुर्कों की समय-गणना भिन्न होती है। जब हमारे हिसाब से सूर्योदय की गणना के अनुसार प्रातःकाल के ८ बजते हैं तब उनके कोई तीन या चार बजते हैं। दिनरात में चौबीस घंटे वे भी मानते हैं।

स्टेशन पर दो-भाषिया मिल गया। उसने बग्गी की। बग्गियाँ यहाँ जोड़ी जोतती हैं, लँडो होती हैं और रोकने को उनमें 'ब्रेक' लगा रहता है; यह इस-लिए कि सारी राजनगरी, पहाड़ी शहर की तरह, ऊँची नीची भूमि पर बसी हुई है। गाड़ी बास्फरस के उस हिस्से पर पुल से पार होने लगी जिसे गोल्डेन हार्न (Golden Horn) अथवा

स्वर्णशृङ्ग

कहते हैं। गोल्डेन हार्न काशी में गङ्गा के पाट से कुछ कम ही चौड़ा होगा। यह व्यापारिक नावों और जहाज़ों के ठहरने का स्थान होने के कारण 'स्वर्ण' और वक्रप्राय आकार के कारण 'शृङ्ग' कहलाता है। 'स्वर्णशृङ्ग' का दृश्य अलौकिक है। राजनगरी का पश्चिमी भाग मरकतपटल स्वर्णशृङ्ग के ऊपर क्रमशः उभरता हुआ चला गया है। नगरों की रानी, कांसटैंटाइन की पुरी का ऊपरी अङ्ग अट्टालिका-वितान से सघन आच्छादित है। वह ऊँची उड़ीयमान नुकीली मीनारों की किरीट-श्रेणी से देखनेवालों के लोचन लुभा रहा है। स्वर्णशृङ्ग के पूर्वी अञ्चल पर, जल-पोतों और नावों के नीचेवाली भूमि, जो राज-नगरी की पादस्थली है, एशिया के अग्रभाग पर अव-स्थित हुई शोभामूर्त्ति की अङ्गपूर्तिसी करती जान पड़ती है। वह नैसर्गिक छवि का चित्र है, नागरिकता तो बहाना मात्र है। कोई अचरज नहीं जो विजेताओं का मन ऐसी रूपवती राजधानी के लिए बारंबार ललचे। कांस्टैंटिनोपल में इतना नैसर्गिक सौन्दर्य्य है जितना इस संसार के किसी भी अन्य नगर में नहीं।

राजधानी का पश्चिमी भाग, समुद्रखण्ड बास्फ-रस से अलगाया हुआ, योरपीय पार्श्व पर है। वह अब स्तम्बूल कहलाता है और दूसरे पार एशिया का जहाँ आरम्भ होता है गलेता पेरा कहा जाता है। बीच में गलेता का पुराना, लोहे की नावों पर, लकड़ी का पुल है। यह पुल, जिस पर होकर मैं पेरा आया, एशिया योरप को जोड़ रहा है। इस पर जो बुर्ज है वह गलेता-बुर्ज कहलाता है। बाइज़नटीय या पुराने ईसाई-साम्राज्य के समय, इसके सामने दूसरे तट पर, एक ऐसा ही बुर्ज था। शत्रु के जलपोत रोक देने को इन पर से शृङ्ग-समुद्र के ऊपर साँकड़ा तान दिया जाता था। पेरा योरपीय ढँग पर बसा हुआ है। यहाँ बंक, होटेल, राजदूतों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

2. Byzantium
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के निवास-स्थल, ईसाइयों के मकान आदि हैं। स्तम्बूल में तुर्क लोगों की बस्ती, सुब्लीम पोर्त्त (Sublime Porte) प्रभृति सर्कारी दफ़्तर, आया सौफ़िया, बड़ी बड़ी मसजिदें, बाईज़नटीय हिपड्रोम, अर्थात् ईसाई-ग्रीक-समय का चौक, अखाड़ा आदि प्रायः सभी मुख्य मुख्य स्थान हैं।

ऐतिहासिक विवरण।

पहले इसके कि इस रमणीयतमा नगरी का आधुनिक-काल-सम्बन्धी वर्णन किया जाय, कुछ इसके इतिहास का परिचय देना आवश्यक है। पहले बाइज़नटियम् नामक ग्रीक या यूनानी नगर यहाँ था। वस्तुतः यह पुराने यूनान देश के अन्तर्गत है। सिकन्दर के बाप फ़िलिप ने भी स्वर्णशृङ्ग के आरपार एक पुल नावों का बना दिया था। रोमक साम्राज्य के दिनों में इस महानगरी की नींव डाली गई (३२० ई०) और ग्रीक बाइज़नटियम् उसके अन्दर आगया। नींव डालने वाला सम्राट् कान्सटैंटाइन था, जिसे "महा" कान्सटैंटाइन कहते हैं। यह मूलतः एक सेनापति था। इसके समय में रोम-सम्राज्य में अधिकार का झगड़ा इतना बढ़ गया कि अपने को सम्राट् पुकारने वाले ६ भले मानस एक साथ ही पृथक् पृथक् खंडों में विहर रहे थे। कान्सटैंटाइन बहुतों को मार कर और हरा कर स्वयं पूरब से पच्छिम तक रोम-साम्राज्य के लहलहे जङ्गल में अकेला सिंह हुआ। वह सिंह सा विक्रमी, पर सर्प सा कुटिल था। सगुरे साले की क्या गिनती, बेटे तक का खून करने में उसे सङ्कोच न था। रोम में जब वह थोड़े दिनों के लिए पहुँचा, अपनी स्त्री का गला स्नानालय में घुँटवा डाला। इस पर रोमनगरी भी, जो यद्यपि हत्याओं से अपरिचित न थी, नाराज़ हुई। फल इस का यह हुआ कि रोम सर्वदा के लिए उसने छोड़ दिया और नव रोम (Nova Roma) बनाना आरम्भ किया। रोम की तरह सात पहाड़ियों या शिखरों पर नवरोम की स्थापना का सूत्रपात इसने करही दिया। कोई सौ वर्ष पीछे उसे सम्राट् थिओडीसिअस दूसरे ने पूर्ण किया। नाम इसका नवरोम प्रसिद्ध न हुआ, किन्तु कांस्टैंटाइन-पुरी या कांस्टैंटिनोपल ही पड़ गया। सिर्फ़ ग्रीक-शाखा के ईसाई मत की लिखा-पढ़ी में और शाहे रूम और कदाचित् ज्योतिष के रोमक शब्द में असल नाम बच रहा है। इस देश में मुसलमान उसे अपभ्रंश-रूप में कुस्तुनतुनिया भी कहते हैं। कान्स्टैंटिनोपल में नई राजधानी होने के कारण, आगे चल कर, रोम-साम्राज्य के दो टुकड़े हो गये जिसमें से पूर्वी खंड का साम्राज्य, जिस की राजधानी कांस्टैंटिनोपल रही, ग्रीक बाइज़नटियम् साम्राज्य कहलाया। यहीं जसटिनियन नामी सम्राट् हुआ जो रोमक क़ानून का व्यास हुआ। जसटिनियन ने ही कांस्टैंटाइन* के छोटे गिरजाघर को सेंट सोफ़िया नामक लोकोत्तर गिरजाघर बनवाया। इस राजधानी पर एशिया की ओर से हूणों ने, जस्टिनियन (ई० ५५३) के समय में; अरबों ने, ६ बार, ६७२–६७९ ई० में; और अन्ततः, तुर्कों ने, मुहम्मद 'फ़ातेह' (विजेता) के नेतृत्व में, चढ़ाई करके

१४५३ ईसवी की २९ वीं मई

को उस समय की इस महत्तम, आद्यतम, योरपीय राजधानी को योरप से छीन एशिया में मिला लिया। उन्तीसवीं मई की कमाई अब तक एशिया के हाथ है। उन्तीसवीं मई के चिह्न अब तक वर्त्तमान हैं। पुष्ट और बृहत् प्राचीर, ढहे ढहते हुए और छिन्नशिरस्क दुर्ग, अर्धाङ्गगलित प्रासाद, बास्फ़रस के किनारे उन्तीसवीं मई को याद करते, देखनेवाले को उसकी याद दिला रहे हैं। चाँदनी रात में, एक दिन, सैन स्टीफ़ानो से बग्गी में एक मित्र के साथ लौटते हुए, रात के १० बजे, कच्चे मार्ग से मैं उसी फाटक पर पहुँच गया, जिसे इति-

* "महा" कांस्टैंटाइन अपनी जड़ जमाने को ईसाई हो गया था। यह पहला ईसाई सम्राट् था। इस के पीछे, और इसी के कारण, यह धर्म रोम-सम्राज्य का धर्म होगया, जो उस साम्राज्य के भ्रष्ट होने का घोर साधन हुआ। कांस्टैंटाइन कहता था कि उसने ईसा की शूली का साक्षात् दर्शन पाया था!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हासप्रसिद्ध उस दैत्यदेहा तोप ने, जो दिन में दो ही तीन बार चलाई जा सकती है, पहियों पर बने हुए काठ के जङ्गम बुर्ज पर चढ़ी हुई, २९ वीं मई को दोपहर के समय सर किया था और जिस फाटक से "विजेता" मुहम्मद ने घुस कर सेंट सोफ़िया के गिरजाघर में अपनी विजय-दुन्दुभी बजाई थी। साँय साँय करती हुई रात मानों डर से साँस ले रही थी। ढेरों भग्नावशेषों और हज़ारों मन की टूटी दीवारों की चट्टानों के नीचे पूर्वी रोम-साम्राज्य की क़ब्र दबी मालूम होती थी। रण-चण्डी का ऐसा विकराल लीलावशेष योरप में और कहीं देखने में नहीं आता।

उनतीसवीं मई के चिह्न से कहीं अधिकतर महत्त्वमय उन्तीसवीं मई का दूरस्थ परिणाम है। योरप के लिए यह हार अमृत सी गुणकारिणी हुई। भारतवर्ष और पूर्व के अन्य देशों की चीज़ों के लिए रास्ता रुक जाने के कारण समुद्र से दूसरे मार्ग ढूँढ निकाले गये। कांसटैंटिनोपल से ग्रीक विज्ञान और शास्त्र भग कर पश्चिमी योरप पहुँचे, और उनसे योरप का कायापलट हो गया; उनके कारण लोगों को अन्धकारमय धार्मिक विचारों से मुक्ति मिली, और नव योरप का जन्म हुआ।

वस्तुतः उन्तीसवीं मई, १४५३ ने मनुष्यजाति के जीवन-चक्र को जो झोंका दिया उसके बल आज तक वह चक्र चलता ही जा रहा है।

इमारतें और नगर।

राजधानी की सर्वसाधारण इमारतें छोटी और महत्त्वहीन हैं। इमारतों की कृत्रिम शोभा, कहना चाहिए कि कुछ भी नहीं है। योरप के सामने क्या, हमारे हिन्दुस्तान के बनारस, जयपुर का वे कोना भी न सजा सकेंगी। लखनऊ से शहर की बराबरी वे अलबत्ता कर सकती हैं। स्तम्बूल की तङ्ग गलियों, और रास्तों में अस्वामि-कुक्कुर-कुल विहार करते हुए, चलनेवाले और गाड़ियाँ जिनसे ख़ुद हट कर चलें पर जो आप हटनेवाले नहीं, मुझे घर की सुध दिलाते थे। इन्हें देख योरपवाले बहुत घबराते हैं, क्योंकि ये हमारी पल्टनों के साथ पूरब से यहाँ विजेता के भाव से पहुँचे हैं। इन कुत्तों की काहिली, मुहल्ले की काहिली का नमूना मात्र है। लोग मूँज की मचियों पर बैठे 'नर्गेलिए' (नारिकेल ?) अर्थात् हुक्का पीते देख पड़ेंगे या बैठे बातें करते। खिड़की बन्द मकान, ताँबे के क़लई दार बर्त्तन, गल्दापन, "देसी" कुत्ते, सड़क में सिर्फ़ मर्द ही मर्द, भड़भूजे की दूकान, फेरीवालों का सौदा बेचना, रास्ते में पानी पिलाने वाला इत्यादि बहुत कुछ अपने यहाँ का सा पुरानी तुर्की का चित्र स्तम्बूल की गलियों में आप देख लीजिए। कुछ दिनों बाद नवतुर्की में वह न मिलेगा। अब भी पूर्वी आलस्य और लौधरपने में योरपीय सफ़ाई और सजीवता घुसी हुई पाइएगा। पानी पिलाने वाला यद्यपि पूर्वी संस्था है, पर उसे भी एक चादर, वस्त्रों के ऊपर, सफ़ाई के लिए बाँधे हुए देखिएगा। जूते सब पहिनते हैं, पर वे प्रायः यूरोपीय ढंग के होते हैं। एक ही आध आदमी अब देशी जूता पहिनते हैं। भोज्य वस्तुओं की दूकानों में कुर्सी मेज़, छुरी काँटे पहुँच गये हैं। लोगों में दैनिक अख़बार पढ़ने की आदत होगई है। [अख़बार, देश और लोगों को धनकृच्छ्रता के अनुरूप इतने सस्ते कि संसार में वैसे नहीं। अधेले से भी कुछ कम में एक अङ्क मिलता है]

इमारतें, भूकम्प की बहुतायत के कारण, काठ की हैं। यहाँ वहाँ ईंट, पर पलस्तर इस तरह कि कभी आप पहचान नहीं सकते कि ये काठ की हैं। काठ के कारण वहाँ गर्मी में आग बहुत लगती है। राज-भवन भी, जिनमें सरालियो और दोलमा बाग़चा मुख्य हैं, काठ की इमारतें हैं। दोमला बाग़चा ऐसा सुन्दर और प्यारा राजभवन मैंने कहीं नहीं देखा। यह एशिआई भाग में अवस्थित है। नीचे एक पहाड़ी से उतर कर जाना होता है। ऊपर जब खड़े रहिए, नीचे समुद्र-बाहु से एक ऐसी चित्त को आह्लाद से मत्त करनेवाली छ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

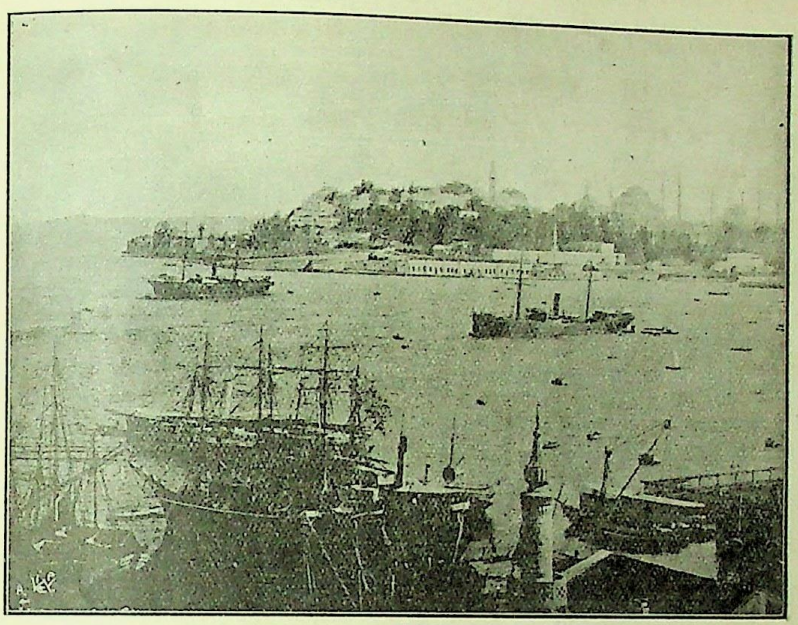

सरालिओ-राजभवन, उत्तरी तट पर, समुद्र चूमता हुआ देख पड़ता है।

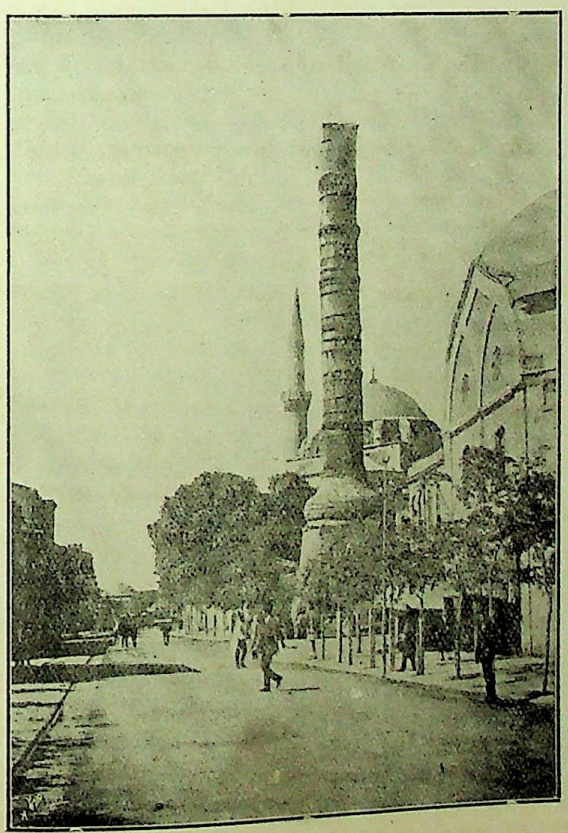

"झुलसा हुआ स्तम्भ अब भी वर्तमान है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

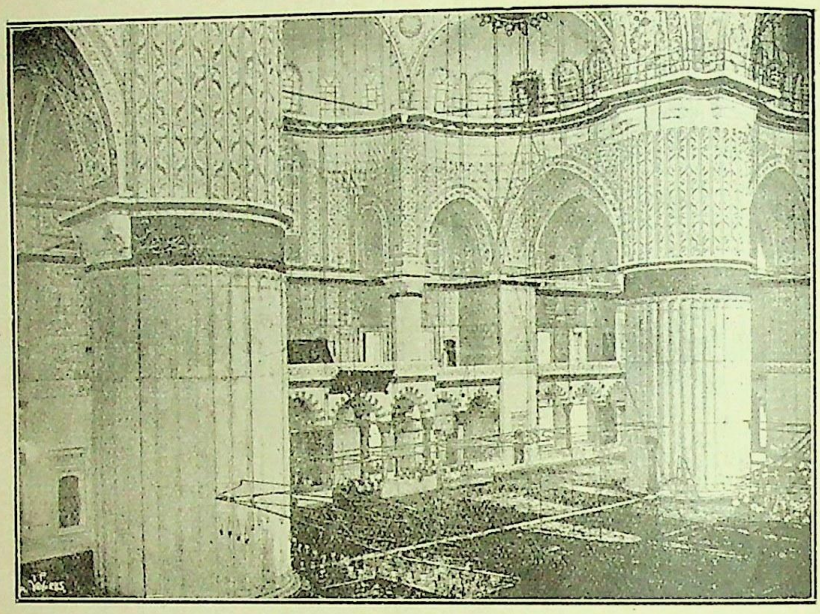

अहमदिए मसजिद का भीतरी रंगीन काम ।

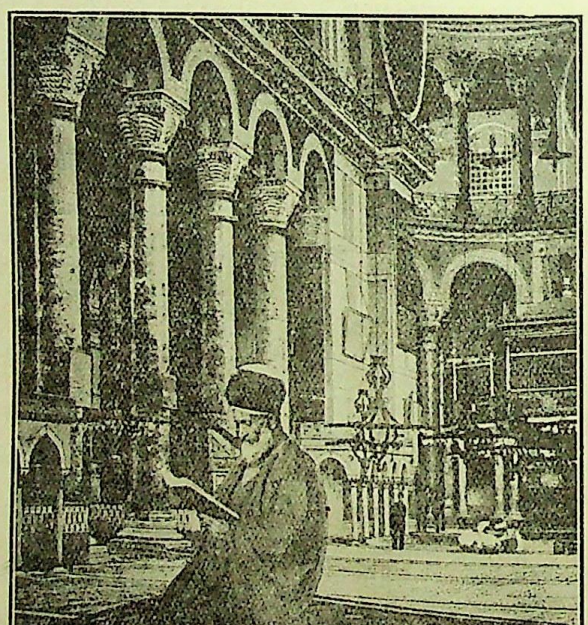

सोफ़िया के भीतर वहाँ के पुस्तकालय का अध्यक्ष ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आती है कि वर्णनातीत है। स्पर्शशक्ति को अगर बोलने की शक्ति होती तो वह अपने अनुभव कह सुनाती। इसकी ठंढाई, कुछ भारीपन, कुछ सुगन्ध लिये हुए, अजीब तरह की है। चित्र-पटल से तत्क्षण ही सारे वर्तमान संस्कार दूर करके, प्रकृति के इस प्रासाद-फौवारे के रंग में भिगो कर, वह मन्द समीर भूमि पर पैरों को जकड़ सा देता है। उधर दोलामा बाग़चे का सौन्दर्य्यनन्दन नीचे बुलाता है।

बादशाह अब्दुलहमीद, जो हम लोगों के सामने सिंहासन से उतारा गया है, प्रायः यिलदिज़ के कियॉस्क अर्थात् उद्यान-भवन में रहता था। यिलदिज़ इस लिए योरप में प्रसिद्ध हो गया। अब वह म्युज़ियम सा बर्त्ता जाता है।

मसजिदें

स्तम्बूल की मुख्य इमारतें हैं जो बहुत दिनों तक महलों के मिट जाने पर भी बनी रहेंगी। इनकी शोभा विशेष और अलौकिक है। ये ईंट और पत्थर की बनी हुई हैं। प्रथम ईसाई रोमन सम्राट् की नामधारिणी राज-नगरी आज मसजिदों की काशी है। काशी में गली गली शिवालय और कान्सटैंटिनोंपल में जगह जगह मसजिदें। इनकी गिनती कोई ५०० होगी। पहले कोई ५०० वहाँ गिरजे थे। मोटे फूले, चिपटे गुम्बज़ों का कौरूप्य, मीनारों की नुकीली छवि से मिल कर, ऐसा सौष्ठव पैदा करता है जो फ़ारसी ढांचे की हमारी जामे-मसजिदों में देखने में नहीं आता। जैसे तुर्क-मुल्ला ने ग्रीक पादरी का ऊपरी जामा ईसाइओं को राज़ी करने को पहन लिया, और आज भी पहनता है, जैसे फ़ातेह ने ग्रीक-नगरी के चिह्न, सतारक अर्द्ध चन्द्र, अपने साम्राज्य का चिह्न मान कर ग्रहण किया, उसी तरह तुर्क कारीगरों ने भद्दे गुम्बज़ ग्रीक लोगों के गिरजाघरों से नक़ल किये और उसके साथ फ़ारस के मीनारों का नुकीलापन उनमें जोड़ दिया।

सोफ़िया

के गिरजाघर में भी सिर्फ़ पूर्वोक्त प्रकार के मीनार जोड़ दिये गये हैं, जिनसे भद्दे दैत्यकाय गिरजाघर में एक तरह की सुरूपता आगई है। तथापि वे मनोहर अब भी नहीं कहे जा सकते। स्तम्बूल की दूसरी मसजिदें इससे कहीं सुन्दर हैं। पर सोफ़िया का महत्त्व उसके इतिहास से है। सोफ़िया का इतिहास बड़े बाइज़नटीय साम्राज्य का इतिहास है। इसी से योरप में इसकी इतनी चर्चा होती है। प्रथम शाही गिरजा होने के साथ वह इतना बड़ा था कि शायद अब भी सबसे बड़ा है। एक योरोपीय सम्राट् का बनाया हुआ गिरजाघरों का राजा आज एक एशिआई और विधर्मी जाति के हाथ में देख स्वभावतः योरपवालों के कलेजे में कांटे की सी कसक होती है। हाल तक, और शायद अब भी, बहुतों की यह लालसा रही है कि सोफ़िया फिर ईसाई-अधिकार में आकार ईसाई-मन्दिर हो जाय। इसके लिए कवितायें लिखी गई हैं, दोआयें माँगी गई हैं, व्याख्यान हुए हैं, भविष्यद्वाणियाँ कही गई हैं। "सोफ़िया में ईसा की वेदी पर तू साष्टाङ्ग प्रणाम कर! ऐ सारे रूस के सम्राट्! तू वहां उठ कर सारी स्लाव जाति का सम्राट् होजा"।

यह एक कवि की "भविष्यद् वाणी"—कविता का नमूना है। पर, अब नव तुर्की में लोगों का मत है कि, वह भविष्यद्वाणी पूरी न होगी। या कम से कम वह दिन, जब कि सोफ़िया के गुम्बज़ पर से चाँदी का चाँद उतर कर फिर क्रूस चढ़ेगा, बहुत दूर चला गया।

अब यह गिरजा-मसजिद आया सोफ़िया कहलाता है। अपने इतिहास के कारण, विजय का महान् चिह्न होने के कारण, यह इसलाम की सबसे बड़ी जगह मक्के के बाद गिनी जाती है। तुर्क अपने को उसमान-ली अर्थात् उस्मानीय कहते हैं। उसमानली की राष्ट्रीय घटनाओं का यह केन्द्र सा है। जुलाई १९०८ में यहीं इरादी या राजाज्ञा सुनाई गई थी कि उसमानेया साम्राज्य को पार्लिमेंट दी गई। जिस पल्टन ने यह हुक्म, बलूम की नोक दिखा कर, लिखवाया उसने उसे ध्वजा-पताकाओं सहित मैदान में सोफ़िया के ऊपर, नीचे, हर जगह, सुनाया था। उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय महिलायें भी पर्दा तोड़ कर इस जगह एकत्र हुई थीं। २९ वीं मई से आज तक सोफ़िया ही राष्ट्रीय परिवर्तनों की भूमि है। उस दिन का राष्ट्रीय चित्र आज गली गली बिकता है।

यद्यपि बाहर सौन्दर्य नहीं, पर भीतर जाने पर एक बार ही आँखों में चकाचौंध छा जाती है! गिरजे-मसजिद का भद्दापन बाहर ही रह जाता है। भीतर मानों आकाश क़ैद है। बीच में गुम्बज़ के नीचे इतनी जगह, और इतनी ऊँची छत देख पैरिस का पैन्थियन, लन्दन का सेंटपाल और कालेन का कथीडरल सब भूल जाते हैं। कोई आश्चर्य्य नहीं जो धर्माच्छादित-विलोचन ग्रीक ईसाइयों ने इसे फरिश्तों की कारीगरी और ईसा के पिता ईश्वर के भेजे रुपये से बना हुआ माना। इसके बनने में वस्तुतः १॥ करोड़ रुपये, बेगार और सस्ती मज़दूरी के दिनों में लगे थे। लकड़ी का कहीं नाम नहीं; फाटक अष्टधात के लगे हुए हैं। इमारत पत्थर और ईंट की है। गुम्बज़ की ईंटे और पत्थर चुन कर हलके हलके लगाये गये हैं। मसाला एशिया और ग्रीस से, पुराने मन्दिर उधेड़ कर, लाया गया था। १० सहस्र कर्मी और १०० मिस्त्री दैनिक काम करते थे। ५३२ ईसवी में पहला पत्थर रक्खा गया था। इसके महामिस्त्री दो थे, अनथीमिअस और इसिडोरस। गुम्बज़ की उँचाई फर्श से १८० फुट है, व्यास उसका १०७ फुट है। ख़म इतना कम है कि गुम्बज़ सिर्फ़ ४६ फुट गहरा है। उसमें ४० खिड़कियाँ कटी हुई हैं। १८४७–४९ में फोसाटी ने मरम्मत की; उस समय उसने पाया कि इतनी फ़िक्र करने पर भी गुम्बज़ का वज़न दीवारें नहीं थाम सकतीं।

मेहराबों और खम्भों से, रंगों और सजावटों से, मसजिद का व्यायाम और दीर्घ परिमाण भर सा जाता है। ईसाई-मूर्तियाँ छील और पलस्तर से ढाँक डाली गई हैं। गुम्बज़ के नीचे और महरावों के तले कहीं मुल्ला मुल्लों को पढ़ा रहे हैं; कहीं कुरान कण्ठस्थ किया जा रहा है; सैनिक जूते खोल हाथ में लिये हुए फ़ौवारे में वज़ू कर नमाज़ को जा रहा है; बच्चे दो ज़ानू बैठे हिल हिल पढ़ रहे हैं। उधर दीवारों और खम्भों पर चटकीले रंगों में अली की काली ढाल टँग रही है; उधर पुराना, मुहम्मद के समय का काला झंडा लटक रहा है। कहीं पच्चीकारी में या रंगीन चीनी ईंटों में कुरान की आयतें अङ्कित हैं, जिन में से एक को झूँठ बोलने वाला ग्रीक "गाइड" बताता है कि यह वही आयत है जिसमें पैग़म्बर साहब ने कहा था कि स्तम्बूल फ़तह किया जायगा। बीच में दाहिनी ओर गिरजाघर का वही पुराना 'पुलपिट' अर्थात् प्रार्थना और व्याख्यान-निसेनी है, जिस पर मुल्ला हाथ में तलवार लिये चढ़ कर आज भी कुरान की वीर-रस-पूर्ण आयतें सुनाता है।

सोफ़िया का पुस्तकाध्यक्ष।

सोफ़िया में मैंने इस्लाम की सजीवता देखी। मैं अपने तुर्क मित्र के साथ जूतों पर मसजिदी कपड़े की चट्टियाँ चढ़ा घूम रहा था कि एक मुल्ला ने हरी पगड़ी बाँधे, जो सय्यद होने का चिह्न है, पास आकर पूछा कि क्या मैं "हिन्दू हूँ?" हाँ, कहने पर फिर सवाल किया—"मुस्लमान या क्रिस्तान? मैंने कहा 'बरहमनी'। इसके बाद उसने कहा, चलो सोफ़िया का पुस्तकालय दिखलाऊँ। हम लोग साथ हुए। मेरा मित्र दो-भाषिए का काम देता था। बहुत सी पुस्तकें सुन्दर अक्षरों में लिखी हुईं मुल्ला ने दिखलाईं, जिनमें एक दवाओं पर सचित्र थी। मैंने कहा कि सबसे पुरानी पुस्तक दिखलाइए। मुल्ला साहब ने, जो स्वयं पुस्तकालय का अध्यक्ष था, एक कुरान की पोथी निकाली और तुर्की में कहा—'दामाद अली की लिखी हुई है'। यह मुहम्मद साहब के दामाद अली के हाथ की लिखी हुई, उन्हीं के क़लम से हस्ताक्षराङ्कित, पुस्तक वहाँ के पुस्तकालय में सबसे पुराना ग्रन्थ है। मैंने हाथ में ले कर इसे अच्छी तरह देखा और मुल्ला की कृपा पर बहुत अनुगृहीत हुआ। बाद इसके जब आना चाहा तब मुल्ला ने कहा, मैं भी आता हूँ। बाहर आकर एक क़हवे की दूकान में ले जाकर मैदान में पड़ी मचियों पर हमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिठा कर वह बैठ गया। बातें जो इसकी हुईं अद्भुत थीं। बहुत कुछ बहस की कि मुसलमान हो जाओ। जब मैंने समझा दिया कि मैं इसकी ज़रूरत नहीं समझता तब मुल्ला ने पूछा, अच्छा यह बतलाइए कि ईश्वर आपके यहाँ कितने हैं? मैंने कहा, 'एक'। फिर राज़ी हो गया और कहा, शुक्र है कि ईसाइयों के तीन ईश्वर आपके यहाँ नहीं; काफ़िर सिर्फ़ दुनिया में ईसाई ही हैं। मैंने तुर्की राजनीति की बात उठाई, और देखा कि सिर्फ़ क़ुरान और शरियत की नहीं, वरन संसार की भी उसे ख़बर है। उसने बताया कि हिन्दुस्तान में इतने, चीन में इतने और रूस में इतने मुसलमान हैं। रूस में सिर्फ़ दूमा में इतने मुसलमान मेंबर हैं। तुर्की में ईसाइयों और मुसलमानों में अब ज़रा भी फ़र्क नहीं माना जाता। उनको बराबर हक़ दिये गये हैं। अगर ग्रीस न चेतेगा (उन दिनों ग्रीस से बड़ी खटपट क्रीट के बारे में थी) तो मेरे लड़के तो सब लड़ाइयों में खेत आ चुके हैं, अब की बार मैं ही जाऊँगा। अगर येारप दस्तन्दाज़ी करेगा तो हम लोगों को जेहाद वाला ख़लीफ़ों का हरा झंडा तोशे-खाने से बाहर निकालना पड़ेगा। फिर दुनिया के सारे मुस्लमान बिगड़ पड़ेंगे। इत्यादि बहुत सी समझ और थोड़ी बे-समझी की बातें मुल्ला ने कीं; पर इस्लाम-धर्म्म मुल्ला में सजीव देखने में आया। मैंने पूछा कि पार्लिमेंट को आप कैसा समझते हैं? कहा—वह तो क़ुरान में है। मैंने फिर कहा कि येारप में लोग कहते हैं कि आप क्रिस्तान रिआया को कष्ट देते हैं। उत्तर दिया कि उनके पादरी और येारप वाले ही उन्हें भड़काते और हमें तंग करते हैं; तथा अपराध भी वही कराते हैं। वे ईसाई प्रजा को कर देने से रोकते और नाना प्रकार के विघ्न करते हैं। असल बात यही है। मुल्ला ने मेरे साथ बड़ा सौहार्द दिखलाया, और चलते समय कहा कि भूलिएगा नहीं।

अहमदिआ मसजिद-हिपऽड्रोम—या नगर का पुराना चौक।

सोफ़िया से नीचे उतर कर हिपड्रोम नामक कान्सटैंटिनोपल का पुराना चौक है। बहुत ही प्यारी ६ मीनारों वाली अहमदिए मसजिद अब यहाँ सबसे बड़ी इमारत है। इसके भीतर ऐसा रङ्गीन काम है कि ताजगञ्ज का धोखा होता है। वस्तुतः यह चीनी मिट्टी के खपड़ों पर रङ्ग का काम है। बाइजंटीय साम्राज्य के समय में यहाँ बड़े बड़े प्रासाद थे। हिपऽड्रोम में सङ्गमर्मर का फ़र्श था। ऊपर महलों से महिलायें, नीचे मनुष्य और पशुओं के बीच लड़ाइयाँ, देखती थीं। इसी चौक में क़ानून के लिए प्रसिद्ध जसटिनियन ने, जो "महा" कहलाता है, ३०००० नागरिकों के सिर कटवाये थे। फिर यहीं महमूद ने, जिसने तुर्कों को येारप बनाना आरम्भ किया, डाढ़ी मुड़वाने, येारपीय कपड़े पहनने, तुर्की टोपी पगड़ियों की जगह लगाने की चाल निकाली और "सुधारक" कहलाया। उसीने यहीं पर प्रसिद्ध जाँनिसारों की तुर्क सेना (जिसे येारप जानिसरीज़ कहता है) सारी कटवा डाली। ये जाँनिसार बड़े ज़बरदस्त थे। इन्हों ने येारप जीता था। जिसे चाहते तख़्त से उतारते, जिसे चाहते फाँसी लटका देते। इनके अफ़सरों को "पाशा", "बे" आदि कहते थे। लम्बा अङ्गा पहनते और सर पर बड़ी गुजराती पगड़ी के शकल की पगड़ी बाँधते थे। इनकी मूर्त्तियाँ और कपड़े पास के अजायब घर में रक्खे हुए हैं। कोई बोरसी पर भुट्टे भून रहे हैं; कोई आग ताप रहे हैं। जूते मध्य-प्रदेश के चमौधे से पहने हुए हैं। रूप विचित्र और विकराल है। इन सिपाहियों के नाम पर येारप थर्राता था। वीर ऐसे थे कि येारप के ऐतिहासिक यह कहने लग गये कि ये अवश्य येारपीय हैं, सिर्फ़ मुसलमान हो गये हैं।

कान्सटैंटाइन का जयस्तम्भ, जिस पर सोना चढ़ा हुआ था और सोने पर रोमन और ग्रीक पौराणिक कहानियाँ चित्रित थीं, पास ही था। उसका मूर्त्ति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रित सोना आग ने जला कर गला दिया। झुलसा हुआ स्तम्भ अब भी वर्त्तमान है। कहते हैं, कान्सटैंटाइन ने इसके नीचे ईसा की असली शूली गाड़ी थी।

यहीं पर मैंने, एक बड़ी मसजिद में, सैनिकों के कम्बलों की गाँठें मसजिद के बरामदे में रक्खी हुई देखीं। इससे जान पड़ता था, सैनिक सामग्री के लिए यथेष्ट गोदाम न थे। इस लिए मसजिदों से उनका काम लिया जा रहा था। इससे उस्मान-ली की वर्तमान व्यावहारिकी बुद्धि का भी परिचय मिलता है, जिसके बारे में आगे चल कर लिखा जायगा।

भूगर्भ की इमारतें।

कान्सटैंटिनोपल में सम्राटों ने भूगर्भ में बहुत सी इमारतें, बन्दीगृह, तहख़ाने आदि बनवाये थे। पर जलाशय अधिक बनवाये थे, जिसमें लड़ाई के समय काम आवें। ऊपर आप चाय पी रहे हैं, और बहुत सम्भव है, आपके पैरों के नीचे सैकड़ों खम्भों पर खड़ी कोई इमारत हो। ऐसी एक इमारत मैंने हिपड्रोम के पास देखी। "गाइड" एक जर्जर मकान में ले गया। वहाँ उसने एक हीजड़े को कुछ पैसे दिये। वह कुंजी और मशाल साथ लाया। भूमि से एक कपाट उघाड़ सीढ़ियों द्वारा हम नीचे उतरे। भूगर्भ में खम्भों का जंगल था। दो हाथ साफ़ पानी भरा हुआ था। न जाने यह कितना लम्बा-चौड़ा था। कहते हैं, एक बार कुछ लोग पता लगाने, छोटी किश्ती पर सवार-हो कर घुसे। पर वापस न आये। तबसे किसी ने फिर हिम्मत न की।

सुब्लीम पोर्त

उसी पहाड़ी पर है जिस पर सोफ़िया है। यह फ़्रेंच भाषा में तुर्क शब्द का अनुवाद है, जिसका अर्थ "ऊँचा दरवाज़ा" है। एक बड़ा अहातेदार प्रासाद है, जिसके फाटक पर पहले विदेशी मंत्री का दफ़्तर था। यहीं विदेशी राजदूत आया करते थे। इस लिए तुर्क-सरकार के विदेशी महकमे और कभी कभी स्वयं गवर्नमेंट के भी, सुब्लीम पोर्ट (Sublime Porte) कहने लगे और अब भी कहते हैं।

सेरास्केरात।

सैनिक विभाग (War Office) को सेरास्केरात कहते हैं। यहीं से आज कल तुर्की का राज्य-सूत्र सञ्चालित होता है। इस समय सबसे बड़ा उस्मान-ली महमूद शवकत पाशा नामक सेनापति, जिसने तुर्की और तुर्क पार्लिमेंट को अब्दुलहमीद के चङ्गुल से छुटकारा दिया, यहीं बैठता है।

फ़ौवारे।

राजधानी में यद्यपि जाड़ों में ख़ूब सरदी पड़ती है, पर गरमी में निरभ्र आकाश में चमकते सूरज की कड़ी धूप से प्यास का आधिक्य रहता है। गली गली शरबत बिकता है। स्थान स्थान पर फ़ौवारे, बादशाहों और बड़े बड़े आदमियों के बनवाये हुये हैं, जहाँ लोग पानी पी सकते हैं। इनकी इमारतें 'छतरी' की तरह बड़ी सुहावनी लगती हैं। तुर्कों से मित्रता प्रकट करने के लिए जर्मनी के वर्त्तमान सम्राट् विलियम ने भी एक फ़ौवारा बनवा दिया है।

गिरजे से मसजिद।

५०० गिरजे इस राजधानी में १२०० ई० में थे। इनमें से ५ या ६ अब रह गये हैं। उनकी जगह अब ५०० मसजिदें हैं। गिरजे कैसी आसानी से मसजिदें बन सकीं—इसका नमूना कहरिया मसजिद है। रोमन 'बसलिका' में सिर्फ़ एक मीनार जोड़ दिया गया बस मसजिद हो गई। इसमें एक जगह खपड़ैल की छवाई है जो ठीक अन्तर्वेद और अवध की खपड़ैल सी है। कुस्तुनतुनिया में अनेक स्थानों में इसके दर्शन होते हैं और घर की याद आती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

युद्धविभाग का कार्य-भवन।

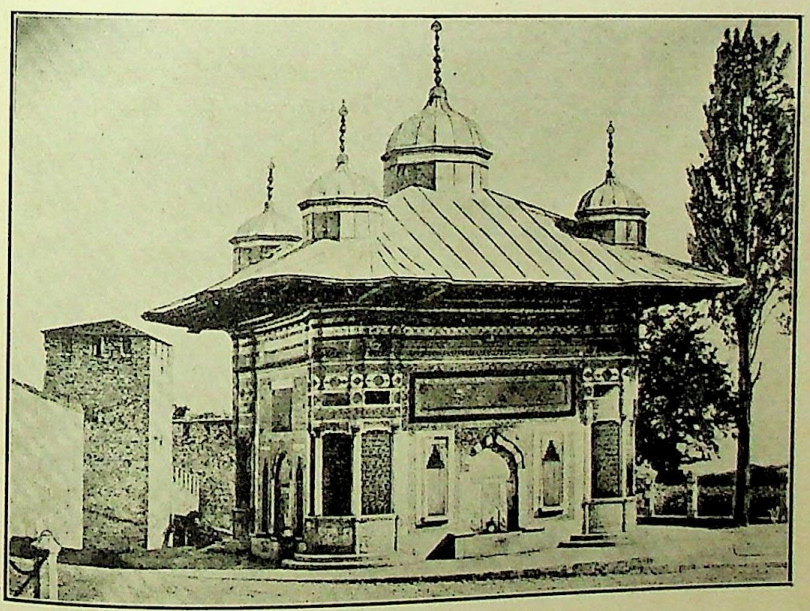

सुतलान अहमद का फ़व्वारा।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

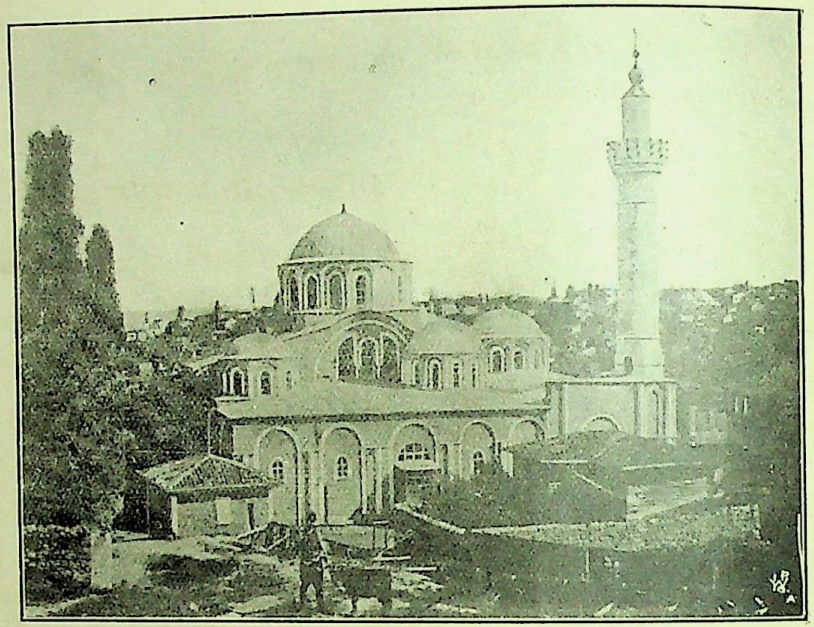

कहरिये की मसजिद ।

दोलमा-बागचा ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाज़ार।

योरप में स्तम्बूल का बाज़ार एक अद्भुत जगह है। हम लोगों को उसमें विशेष नयापन नहीं मालूम होता, पर योरपवालों के लिए वह अनोखी चीज़ है। यह समझिए कि बनारस की कुञ्ज-गली है। बाज़ार बहुत बड़ा अवश्य है। ऊपर छत पटी हुई है; दूकानें लग रही हैं; एक के दस दाम अरमनी और ग्रीक दूकानदार माँग रहे हैं; नई तुर्की की कोई कोई महिलायें हरम से बाहर आकर बुर्क़ा ओढ़े, योरपीय जूते पहने, नीचे योरपीय कपड़े ऊपर से चुस्त चादर लपेटे, चीज़ें खरीद रही हैं। काकेशश (कोह क़ाफ़) का क़ज़ाक हथियारों से लदा, काली टोपी लगाये, पट्टका बाँधे, सौदा ख़रीद रहा है, या योरपीय यात्री कौतूहल की चीज़ें ख़रीद रहा है और लुट रहा है।

राजधानी में यही एक जगह है जहाँ धक्कों का डर है। नहीं तो सब जगह चलने फिरने में आसानी है। न मोटरों का निशान है, न बाइसिकिलों की रपेट, न जोड़ियों की दौड़ और न बसों का नाम है। टामवे सिर्फ़ दो मुहल्लों में है। भीड़ कुछ सोफ़िया के पास और कुछ स्टेशन पर रहती है। १५ लाख के ऊपर आबादी होने पर भी यह दशा है।

❀ ❀ ❀ ❀

यहाँ तक तो अधिकतर पुराने स्तम्बूल का वर्णन हुआ। आगे आधुनिक बातों का म्युज़ियम, सेना, अख़बार, राजनैतिक कायापलट, पार्लिमेंट, रीति-रवाजों का हाल लिखा जायगा। तुर्की आँखों के सामने बदल रही है। एशिया के लिए यह शिक्षा है। वह हमसे बहुत दूर नहीं। वह योरप में हमारी एशिया का पुश्ता है। उसका हाल जानने के लिए हममें सदा कौतूहल होना चाहिए। जहाँ तक वहाँ का वर्त्तमान हाल मालूम हो सके, वाञ्छनीय है। खेद का विषय है देश के अँगरेज़ीपत्र भी तुर्की के मामलों से अभिज्ञ नहीं। कोई मुसलमान भी इस देश में ऐसा नहीं जो वहाँ की बातों से विशेष परिचय रखता हो। शायद एक भी भारतीय ऐसा नहीं है जो तुर्की भाषा जानता हो। आशा है कि यह दशा चिरस्थायिनी न रहेगी।

विलायत में उपाधियों का क्रय-विक्रय।

वर्तमान काल वाणिज्य-काल है। तरह तरह के बनिज-व्यापार से लोग रुपया कमाते हैं। संसार में ऐसी वस्तुओं की संख्या बहुत ही थोड़ी है जो रुपये से प्राप्त नहीं की जा सकतीं। जो चीज़ें रुपये से अप्राप्य समझी जाती हैं उनमें से भी बहुत सी रुपये द्वारा, किसी न किसी तरह, प्राप्त हो जाती हैं। किसे विश्वास हो सकता है कि उपाधि ऐसी श्रेष्ठ और मान-सूचक वस्तु भी रुपया द्वारा घर बैठे प्राप्त की जा सकती है? सभ्य राष्ट्र अपनी प्रजा में से ऐसे ही जनों को उपाधियाँ प्रदान करते हैं जिन्होंने यथार्थ में देश या राष्ट्र की कोई अच्छी सेवा की हो, अथवा विद्वत्ता और औदार्य्य आदि के उच्च आदर्श दिखाये हों। परन्तु ऐसी बहु-मानव्यञ्जक उपाधियों का अब क्रय-विक्रय भी होने लगा है! सभ्य-शिरोमणि इँगलैंड देश ही में आज कल उपाधियों का बाज़ार लगा है। पियर्सन्स मैगे-ज़ीन नामक एक मासिक पत्र में इस पर एक लेख निकला है।

कोई पचास वर्ष से इँगलैंड में उपाधियों का क्रय-विक्रय होने लगा है। इसी से इँगलैंड में उपाधि-धारियों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। क्रय-विक्रय का काम बड़ी ही गुप्त रीति से होता है। किसी को कानोकान ख़बर नहीं लगने पाती।

इँगलैंड में लिबरल और कानसर्वेटिव नाम के दो बड़े राजनैतिक दल हैं। इन्हीं दोनों दलों के हाथ में घूम फिर कर इँगलैंड का शासन-सूत्र रहता है। ये दोनों दल अपना अपना बल बढ़ाने का सदा यत्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया करते हैं। इस काम के लिए इन्हें धन की आवश्यकता पड़ती है। इनके अनुयायी चन्दा कर के धन बटोरते हैं और अपने अपने पक्ष के ख़र्च के लिए सञ्चित करते रहते हैं। इन दोनों पक्षों के ऐसे आयव्यय का हिसाब गुप्त रक्खा जाता है। वह कभी प्रकाशित नहीं किया जाता और न कोई उसे कभी देख सकता है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि दोनों दलों का कोश ख़ूब भरा पूरा रहता है।

संसार की शायद ही कोई जाति पूरी उदार कही जा सकती हो। मनुष्य एक ही ईश्वर की सन्तति है। पर उसमें नीच और उच्च के भेद की प्रथा, सब जगह, और सब जातियों में, किसी न किसी रूप में, अवश्य है। सबको बराबर समझने की डींग हाँकने वाली जातियाँ भी सङ्कीर्णता की दलदल में फँसी हुई हैं। अमेरिका स्वतन्त्र है और वहाँ वाले उदारहृदय कहलाते हैं। परन्तु जब काले और गोरे का प्रश्न उठता है तब वहाँ के गोरों की उदारता प्रायः हवा खाने चली जाती है। परन्तु, हाँ, इसमें सन्देह नहीं की कहीं का समाज घोर अन्धकार में ठोकरें खा रहा है और कहीं का आगे बढ़ा हुआ है। अँगरेज़ी समाज में भी कम त्रुटियाँ नहीं हैं। वहाँ भी कुलीनता का थोड़ा बहुत राग अवश्य अलापा जाता है। भारत के कुलीन ब्रह्मा जी के द्वारा गढ़े जाते हैं, परन्तु कुलीन अँगरेज़ संसार में ही निर्म्मित किये जाते हैं। निम्न श्रेणी में उत्पन्न हुए ग्रेटब्रिटन-वासी थोड़ा ही ऐश्वर्य्य पाने पर मध्यम श्रेणी के आदमी बन जाते हैं। फिर, जिन्हें मध्यम श्रेणी से उच्च और उच्चतम श्रेणी में कूद जाने की अभिलाषा होती है उनके लिए और अनेक उपाय तो हैं ही, परन्तु एक उपाय यह भी है कि दो में से किसी एक राजनैतिक दल का पक्ष ग्रहण कर के और उसके गुप्त कोश में गुप्त दान दे कर कोई न कोई उपाधि प्राप्त कर लें। दान सीधे किसी के हाथ में नहीं दिया जाता—कितने ही हाथों से हो कर वह ठिकाने पहुँचता है। दान देने और लेने वाले का कभी प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता। सारा काम एक मध्यस्थ कर देता है। जितना बड़ा दान होता है उतना ही बड़ा फल भी उससे प्राप्त होता है। पन्द्रह हज़ार पौंड देने से नाइट, तीस हज़ार देने से बेरोनेट, और एक लाख देने से लार्ड की पदवी प्राप्त हो सकती है। जो व्यक्ति मध्यस्थ का काम करता है उसे दलाली मिलती है। दान की रक़म कई क़िस्तों में अदा की जा सकती है; परन्तु दान-दाता को यह बात किसी तरह नहीं मालूम होने पाती कि दान की रक़म किस तरह ख़र्च की जाती है। उपाधि पाने के पूर्व ही रक़म का एक बड़ा भाग दे देना पड़ता है, क्योंकि एक दो दफ़े ऐसा भी हुआ है कि लोगों ने उपाधियाँ पा कर रक़म देने से इनकार कर दिया है। उपाधि-लोलुप लोग ऐसा भी कहते हैं कि जब उन्हें एक दल उपाधि दिलाने में देर, या किसी कारण से टाल टूल, करता है तब वे दूसरे दल का आश्रय ग्रहण करते हैं।

गत दस वर्षों में ९६ नये लार्ड बनाये गये। इनमें से ४९ को तो उनकी जाति और देश-सेवा के लिए यह पदवी मिली; परन्तु, सुनते हैं, कि शेष ने रुपये दे कर ही इस गौरव-सूचक पदवी को ख़रीदा। किसी समय सर राबर्ट पील इँगलैंड के महा-मन्त्री थे। उनके शासन-काल के पाँच वर्षों में केवल पाँच आदमियों को लार्ड की पदवी मिली। परन्तु, इस समय, लार्ड की उपाधि का वितरण फ़ी महीने एक के हिसाब से हो रहा है। उसमें भी इन नये लार्डों में ऐसे ही लोगों की संख्या अधिक है जिन्होंने रुपये के बल से ही पदवी पाई है। जेम्स डगलस नाम के एक महाशय ने पियर्सन्स मैगेज़ीन में ऐसी ही बातें लिखी हैं।

उपाधि देते तो हैं सम्राट्, परन्तु दिलाते हैं महामन्त्री और मन्त्रि-मण्डल। इसमें सन्देह नहीं कि उपाधियों के क्रय-विक्रय की बात महा-मन्त्री को मालूम रहती है। लार्ड रोज़बरी इँगलैंड के महा-मन्त्री थे। वे इस गुप्त क्रय-विक्रय से बड़े दुखी रहते थे। यदि वे प्रयत्न करते तो कदाचित् इस प्रथा को बन्द भी करा देते; परन्तु यथार्थ में महामन्त्री लोग इस प्रथा के रोकने में असमर्थ से हैं। इस कुप्रथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का मिटाना स्वयं अपने ही पैरों पर कुठार चलाना है; क्योंकि जब उपाधियों के लालच से अपनी थैलियों का मुँह खोल देने वाले धनवान लोग राजनैतिक दलों को दान देना बन्द कर देंगे तब, आर्थिक दशा ठीक न होने के कारण, इन दलों का बल बहुत कम हो जायगा और सदा एक दूसरे के जल्दी जल्दी पतन का भय लगा रहेगा। हाँ, प्रत्येक दल अपने अपने अनुयायियों से भी चन्दा बटोर कर धन एकत्र कर सकता है; परन्तु यह काम घोर चढ़ाऊपरी और परिश्रम का है, और इस तरह बहुत ही थोड़ा रुपया मिल सकता है। जब तक आराम से बैठे बैठे रुपयों की ढेरी मिलती जाय तब तक परिश्रम करके भी थोड़ा ही रुपया पाना किसे पसन्द आ सकता है? उपाधि के विषय में प्रजा चूँ तक नहीं कर सकती। किसी को उपाधि मिलने पर वह नाराज़ या ख़ुश चाहे जितना हो ले; पर उसे इस बात के जानने का कोई अधिकार नहीं कि अमुक व्यक्ति को किस लिए अमुक उपाधि मिली। सम्राट् भी नियमबद्ध हैं। वे भी उपाधिदान के मामले में दख़ल नहीं दे सकते। वहाँ का क़ानून ही ऐसा है।

उपाधियों के क्रय-विक्रय के कारण अन्याय भी बहुत होता है। प्रायः ऐसा हुआ है कि उपयुक्त पात्रों को उपयुक्त उपाधि नहीं दी गई। इस कारण उन बेचारों को बहुत कुछ मनस्ताप हुआ।

विलायत में अब इस प्रथा के विरुद्ध लोगों ने ज़ोर से आन्दोलन करना आरम्भ कर दिया है। लोगों ने दोनों राजनैतिक दलों से अपने अपने कोश का हिसाब प्रकाशित करने के लिए अनुरोध किया है। हिसाब प्रकाशित करने से भण्डा फूट जायगा। इस कारण दोनों दल अभी तक इस सम्बन्ध में आनाकानी करते जाते हैं। लोगों ने एक दूसरी युक्ति भी निकाली है। वे उन व्यक्तियों से, जो कामन्स सभा के सदस्य होने के लिए उनसे वोट मांगते हैं, इस बात का वचन लेने लगे हैं कि वे सदस्य हो कर पारलियामेंट में दोनों दलों के गुप्त कोशों की जाँच के विषय में घोर आन्दोलन करेंगे। इन बातों से प्रकट होता है कि उपाधियों के क्रय-विक्रय का बाज़ार थोड़े दिनों में ठण्डा पड़ जायगा। तथास्तु।

मयूरी।

["व्रजाङ्गना" काव्य के एक अंश का भाव]

(१)

शिखिनि! विरसवदना हो बैठी तरु-शाखा पर तू कैसे?
तेरे प्राण, न देख श्याम को, रोते हैं क्या मुझ जैसे?
तू भी है दुखिया क्या? आहा! उन पर कौन नहीं मरता?
किसे नहीं शशि शीतल करता किसका हृदय नहीं हरता?

(२)

आओ सखि, बैठें हम दोनों मौन परस्पर कण्ठ धरें,
तुम घन का, मैं मनमोहन का, निज निज धन का ध्यान करें।
क्या तेरा होता वह, यद्यपि देती है तू मन घन को?
पावेगी अब और हाय! क्या राधा राधारञ्जन को?

(३)

गर्जन करता हुआ गगन में जलधर क्या ही छवि पाता
स्वर्ण-शक्र-धनु रत्न-खचित तनु है किरीट सा बन जाता।
विद्युद्दाम पहन कर विधि से शोभित होता है ऐसे—
मुकुलित लता गले लिपटा कर अति सुन्दर तरुवर जैसे॥

(४)

किन्तु शिखिनि! मम श्याम रूप सम भला कहाँ छवि भाती है?
अहो! धन्य वह रूप माधुरी किस का चित न चुराती है!
देखा है जिस की आँखों ने मोहन-रूप बिना बाधा,
वही जान सकता है क्यों कर कुलकलङ्किनी है राधा॥

(५)

शिखिनि! विरसवदना हो बैठी तरु-शाखा पर तू कैसे?
तेरे प्राण, न देख श्याम को, रोते हैं क्या मुझ जैसे?
तू भी है दुखिया क्या? आहा! उन पर कौन नहीं मरता?
कवि "मधु" है इस सत्य कथन का मन से अनुमोदन करता॥

"मधुप"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूगोल-विद्या।

[२]

(लेखक—साहित्याचार्य प्रोफेसर रामावतार शर्मा, एम० ए०)

पृथ्वी पर प्रायः चार वर्ण के मनुष्य हैं—श्वेत, रक्त, पीत और नील। श्वेत वर्ण के लोग प्रायः यूरोप में पाये जाते हैं। रक्त वर्ण के लोग अमेरिका में रहते थे; आज कल उनकी संख्या घटती जाती है। चीन, कर्पूर-द्वीप आदि के लोग पीत वर्ण के हैं। अफ्रिका के लोग नील वर्ण के हैं। भारत आदि कई देशों में वर्णविभाग रखने का बहुत प्रयत्न रहा, तथापि चारों वर्ण जहाँ तहाँ से आकर देश की सुन्दरता के कारण बसे और बसते जाते हैं। इस लिए बहुत वर्णसङ्कर होता जाता है। प्रायः नील वर्ण के लोग असभ्य होते हैं। ये गरम मुल्कों में रहते हैं। केवल वर्णान्तरों के समागम से जहाँ तहाँ कुछ शिक्षा इन लोगों में आई है। जन्मान्तर की कल्पना, टोटका पूजना, पिशाच-पूजा, जन्तु-पूजा, वृक्ष-पूजा आदि इनमें बहुतायत से है। लाल वर्ण के लोग केवल अमेरिका ही में पाये गये हैं *। अमेरिका में ध्रुव-प्रदेश से लेकर विषुव-वृत्त तक ये फैले हुए थे। बड़े बड़े मकान, मन्दिर आदि इनके थे। चिरकाल तक विना वर्णान्तरों के समागम के इन लोगों में बड़ी सभ्यता का विकास था। पाँच चार सौ बरस से इन्हें श्वेत वर्णों का समागम हुआ है। सुफेन आदि लोग जबसे अमेरिका में पहुँचे तबसे इन्हीं लोगों के समागम से रक्त वर्ण का ह्रास होने लगा। रक्त वर्णों में बड़े बड़े मन्दिर और देव-मूर्त्तियाँ अभी तक पाई जाती हैं। पीत वर्ण वाले लोग प्रायः समशीतोष्ण-देश में रहते हैं। नील वर्ण और रक्त वर्ण वाले लोगों से इनका धर्म अधिक शुद्ध है और सभ्यता अधिक ऊँची है। श्वेत वर्ण वाले लोग सबसे अधिक सभ्य हैं। समशीतोष्ण-भूमि के उत्तर भाग में ये रहते थे। अब ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ ये न पाये जाँय। ये बड़े दार्शनिक और वैज्ञानिक होते हैं। इनका धर्म अत्यन्त शुद्ध है। सबसे ऊँची सभ्यता पर ये लोग पहुँचे हैं। वर्णान्तरों पर प्रायः इन्हीं का साम्राज्य है। प्रायः सोलह अर्बुद मनुष्य पृथ्वी पर हैं। साठ अर्बुद से अधिक मनुष्य पृथ्वी पर नहीं रह सकते। प्रजा की जैसी बढ़ती हो रही है उससे मालूम पड़ता है कि दो सौ बरस के भीतर पृथ्वी पर रहने को जगह न मिलेगी। श्वेतवर्ण के लोग प्रायः अस्सी करोड़ हैं। पीत वर्ण के लोग साठ करोड़ हैं। लाल वर्ण के लोग प्रायः तीन करोड़ हैं। और नील वर्ण के लोग अठारह करोड़ हैं।

जङ्गलों में लोग प्रायः जङ्गली फल और कभी कभी मांस खाकर रहते हैं। कपड़ों की आवश्यकता नहीं पड़ती। सुभीते से खाना पीना मिल जाने से और कपड़े-लत्ते की ज़रूरत न पड़ने से उनकी बुद्धि नहीं बढ़ने पाती। जङ्गली जानवरों से बचने के लिए कुछ ज़मीन के घेर घार करने की ज़रूरत पड़ती है और धनुर्बाण आदि सीधे सादे हथियारों की आवश्यकता होती है। जब शिकार करने की अधिक आवश्यकता होने लगती है और दुर्बल लोगों के कपड़े-लत्ते आदि छीन कर काम चलाना पड़ता है तब धीरे धीरे बुद्धि का विकास होने लगता है। केवल फलाहारी जङ्गली को अपने जङ्गल के बाहर जाने की प्रायः ज़रूरत नहीं पड़ती। शिकारी लोग चाहे जङ्गल में चाहे मैदान में रहते हैं। साहसी लुटेरे लोग प्रायः पहाड़ आदि के दुर्ग में रहते हैं और वहाँ से दूर दूर तक जाकर लूट पाट करते हैं। जहाँ केवल घासवाले मैदान बहुत हैं वहाँ पर लोग गाय-बकरी चराकर ज़िन्दगी बिताते हैं और रहते

* सम्भव है कि ये लाल वर्ण वाले श्वेत वर्ण वालों के द्वारा एक बार पहले भी भारत से निकाले गये हों और यही वार्ता लेकर परशुराम की क्षत्रिय-नाश-कथा बनी हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का खेमा लिये इधर उधर घूमते हैं। इन लोगों को भेड़, बकरी, गाय, घोड़ा, ऊँट आदि पालना पड़ता है। कुत्ते आदि कितनेहीं जङ्गली जानवरों को भी अपने काम में लाना पड़ता है। क्योंकि इन्हीं से इन लोगों की रक्षा होती है। पर जो जङ्गली जानवर वश में नहीं आ सकते उन्हें ये लोग एक दम नष्ट करने का यत्न करते हैं। जो डाकू, लुटेरे आदि आलसियों को लूट पाट कर जीते हैं उनसे रक्षा के लिए घूमनेवाली जातियाँ को फ़ौज रखनी पड़ती है। यदि सैकड़ों हज़ारों इकट्ठे न रहें तो लुटेरों से जान न बचे। नदियों के समीप उपजाऊ मैदानों में कृषक लोग रहते हैं। गाँव बनाकर, ज़मीन जोत बो कर, ये अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। शिकारी लोग, या घूमनेवाले लोग, अपनी जगह छोड़ कर दूसरी जगह भी चले जाते हैं। इनको भूमाता से उतना सम्बन्ध नहीं है जितना कृषक लोगों को। कृषक लोग मातृभूमि से अत्यन्त प्रीति रखते हैं और उसे छोड़ना नहीं चाहते। समुद्र के किनारे मछली मारने वाली जातियाँ रहती हैं। समुद्र से सम्बन्ध रखने के कारण नाव बनाने और चलाने आदि की शक्ति इनकी बढ़ती जाती है। समुद्र के समीप के देशों में (जहाँ का जल-वायु कुछ ऐसा है कि जितना ही परिश्रम करो उतनी ही जीवन की सुविधा होती है) आलस्य से पड़े पड़े काम नहीं चलता है। ऐसी ही भूमियों में सभ्यता ख़ूब बढ़ी है। जिन भूमियों में आलस्य से काम चला जाता है वहाँ के लोगों की सभ्यता ख़ूब बढ़ने नहीं पाती। जहाँ जीवन के लिए अधिक परिश्रम की अपेक्षा है। वहीं के लोग खान खोदते हैं, वाणिज्य के लिए देशान्तरों में आते जाते हैं और कृषि के लिए बड़ी कठिनता से भूमि-शोधन करते हैं। खेमों में घूमनेवाली जातियों की बस्ती घनी नहीं होती, दूर दूर तक बिखरी हुई रहती है—जैसे कि आरब्यों की बस्ती। खेती करने वालों की बस्ती भी दूर दूर तक फैली रहती है और बहुत घनी नहीं होती। केवल अजपुत्र, भारत, चीन आदि देशों में, जहाँ थोड़ी ही भूमि से बहुत लोगों का काम चल जाता है, बस्तियाँ घनी पाई जाती हैं। पर जहाँ खान आदि की चीज़ों के सुभीते के कारण बड़े बड़े वाणिज्य के कारख़ाने हैं वहाँ बस्ती बहुत घनी है। सबसे घनी बस्ती शर्मण्य देश के कुछ अंशों में है। सब से कम घनी बस्ती पच्छिमी ऑष्ट्रालय में है। यवद्वीप में वर्ग-कोस पीछे १२७२ मनुष्य हैं। भारत में वर्ग-कोस पीछे ६६८ मनुष्य हैं। आङ्ग्ल-देश में वर्ग कोस पीछे २२३२ मनुष्य हैं। शर्मण्य-देश के एक अंश में वर्ग कोस पीछे २९७२ मनुष्य हैं। श्रीदेर में वर्ग-कोस पीछे चार आदमी का पड़ता पड़ता है। पच्छिम ऑष्ट्रायल में वर्ग-कोस पीछे एक आदमी से भी कम पड़ता है। जब तब मनुष्य अपनी बस्ती छोड़ कर नई बस्तियाँ बनाते हैं। कभी कभी जल-वायु के गड़बड़ से, खेत आदि के ख़राब होने या ढह जाने से, भूकम्प आदि के उपद्रव से, महामारी आदि पहुँचने से, एक ही स्थान में बहुत घनी बस्ती हो जाने से, बली लोगों के द्वारा निकाले जाने से या नैतिक और धार्म्मिक पीड़ाओं से मनुष्य अपना घर छोड़ दूसरी जगह चले जाते हैं। ऐसे मनुष्य जहाँ पहुँचते हैं वहाँ के दुर्बल लोगों को प्रायः खदेरते हैं। इस प्रकार नई बस्तियों की तरङ्गें सी उठने लगती हैं। कभी कभी अच्छी भूमि में चारों ओर से लोग पहुँचने लगते हैं। सोना, हीरा, कोयला आदि के खेतों के आस पास तथा अमेरिका के गोधूम-भूमि के आस पास बस्तियाँ इसी प्रकार घनी होती गई हैं। पर जन्मभूमि का प्रेम मनुष्यों में स्वाभाविक है और बिना बाहरी कारणों की बाधा या लालच के मनुष्य अपना घर छोड़ना नहीं चाहता। जन्मभूमि का प्रेम देशभक्ति का कारण होता है। मरुभूमि में घूमनेवाली जातियों में भूमि-सम्बन्ध कच्चा रहता है। इसलिए उनमें प्रायः देशभक्ति नहीं होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारों ओर से समुद्र, पहाड़ आदि से घिरे हुए देशों में देशभक्ति नहीं होती। समुद्र की सीमा सबसे पक्की होती है और टापू के राज्य बहुत स्थिर होते हैं। समुद्र के बाद सीमा बनाने में पहाड़ों का दर्जा है। नदियों का सिवाना बहुत पक्का नहीं होता। कभी कभी मरुस्थल भी एक देश को दूसरे देश से अलग करते हैं। भाषा-विभाग से भी देश का विभाग होता है। कभी कभी कृत्रिम दुर्ग-शृङ्खला, महाप्राचीर आदि से भी देशों का सिवाना बँधा रहता है। अस्त्रिय और इष्टालय के बीच एक बड़ी सी दुर्ग-शृङ्खला है। चीन के उत्तर, बहुत दूर तक, बारह सवार एक के बग़ल एक चलने के लायक़, एक महाप्राचीर है।

पृथ्वी पर राज्य भी अनेक प्रकार के हैं। स्वेच्छानुसारी राजा केवल यूरोप के पूरब तथा जम्बूद्वीप में पाये जाते हैं। पूरब में केवल कर्पूरद्वीप समिति-तन्त्र राजा का राज्य है। कर्पूरद्वीप को छोड़ कर समिति-तन्त्र राजाओं के राज्य केवल यूरोप में पाये जाते हैं। शुद्ध-प्रजा-तन्त्र राज्य यूरप में फ़्रांस आदि में हैं। पर ऐसे राज्य की स्थिति विशेष कर अमेरिका में है। जम्बूद्वीप में चीन के नये प्रजातन्त्र राज्य को छोड़ कर आज तक ऐसे राज्य नहीं देखे गये। नई बस्तियों का शासन कहीं कहीं तो स्वतन्त्र राजपुरुषों के अधिकार में है और कहीं कहीं पूर्ण प्रजातन्त्र है। नई बस्तियों का प्रजातन्त्र-शासन केवल बृटिश-साम्राज्य में पाया जाता है। कहीं कहीं देश-शासन का एक ठीक केन्द्र है, जैसे कि आङ्ग्ल-भूमि में या फ़्रांस देश में। कहीं कहीं स्वतन्त्र अनेक राज्य, नैतिक कार्यों के लिए एक सङ्घात बनाये बैठे हैं। शर्मण्यों में ऐसे अनेक राज्यों का सङ्घात है। अमेरिका में अनेक प्रजाराज्यों का सङ्घात है। प्रत्येक राज्य प्रान्त, मण्डल, जनपद आदि अवान्तरीय भागों में बँटा रहता है। प्राचीन समयों में आत्मरक्षा के लिए नगरों में घनी बस्तियाँ थीं। इसी लिए पुराने नगर प्राकार, परिखा, अटारी आदि से सुरक्षित रहते थे। फिर, कुछ समय बाद, खान आदि के समीप या देश-रक्षा के लिए अपेक्षित स्थानों में या वाणिज्य के योग्य स्थानों में शहर बसने लगे। समुद्री और दरियाई बन्दरगाहों पर, बाष्प-यान-पथ के विराम स्थानों पर, तथा नदी-प्रतर, उपत्यका-द्वार, पर्वतावतार, चतुष्पथ आदि पर, इसी प्रकार, शहर बसने लगे। जहाँ पर भूमि नीची है और दलदलों से भरी है वहाँ साधारण सड़क और रेल की सड़क प्रायः पहाड़ियों की ऊँची भूमि से जाती है। पर जहाँ पहाड़ बहुत ऊँचे हैं वहाँ सब मार्ग तराइयों और मैदान से होते हुए जाते हैं। कहीं कहीं बीच की बाधाओं को हटाने के लिए नदी, समुद्र आदि पर सेतुओं की और पहाड़ों में सुरंगों की अपेक्षा होती है। ऐसे कार्यों के लिए बाष्प-विज्ञान की निपुणता और बहुत धन की अपेक्षा होती है। वाणिज्य आदि के लिए भूमि, जल, वायु आदि के स्वभाव की परीक्षा करनी पड़ती है। पालवाली नाव उड़ानेवालों को तो जलधारा और वायुधारा के ख़ूब ही अधीन रहना पड़ता था। अब धूम-नौकाओं के चलने से जल-वायु की इतनी अपेक्षा नहीं रही है। तथापि बहुत दूर की यात्राओं में समुद्रविद्या और अन्तरिक्षविद्या की आवश्यकता पड़ती ही है। कृषि-वाणिज्य आदि की चीज़ों के निकालने और उत्पन्न करने के लिए भूमि, जल, वायु, जन्तु आदि के स्वभाव की परीक्षा की भी बहुत अपेक्षा है। कैसा अन्न कहाँ पैदा हो सकता है, कृषि के लिए बैल, घोड़े, भैंसे आदि कौन जन्तु कहाँ सुलभ हैं—इत्यादि का ज्ञान कर्षक आदि को अत्यन्त अपेक्षित है।

अब यह देखना है कि पृथ्वी के अंशों का ज्ञान सभ्य मनुष्यों को कैसे कैसे हुआ। आर्यों का ध्रुव-प्रदेश से इधर उधर होना भाषा-तत्त्व, भूगर्भ-शास्त्र आदि से कुछ कुछ अनुमित होता है। मध्य-सागर के आस पास से फणीश जाति के लोग बहुत दूर पूरब और पच्छिम तक वाणिज्य करते थे। मध्य-सागर के दक्खिन करथजपुर और सुफेन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाधिजपुर नाम से प्रसिद्ध इनकी बस्तियाँ थीं। कितने ही लोगों का अनुमान है कि सिंहल आदि से लेकर आङ्ग्ल भूमि तक इनका वाणिज्य प्रचलित था। मध्यसागर के हरिकुलमुख से लेकर भारत के दक्खिन तक इनका वाणिज्य था, इसमें बहुत सन्देह नहीं है। करध्वजपुर शकाब्दारम्भ से प्रायः आठ नौ सौ वर्ष पहले बसा था। करध्वजपुर से हनु और हिमार्क दूर दूर के देशों के अन्वेषण में निकले थे, ऐसी प्रसिद्धि है। फणीशों के बाद यवन लोग भी बड़े सांयात्रिक थे। पृथेश, मांसला नामक यवनोपनिवेश से, शकाब्द से चार सौ वर्ष से भी पहले, सुवर्ण-भूमि को खोजते खोजते आङ्गल-भूमि होते हुए, सम्भव है कि हिमभूमि तक भी गया हो। पारसीक आदि जाति से लड़ते झगड़ते मगद्रोणि के राजा और यवनों के नायक अलिकचन्द्र सिन्धुनद के इस पार तक आ पहुँचे थे। वे नन्दराज की राजधानी तक दौड़ मारना चाहते थे। पर चन्द्रगुप्त आदि की बुद्धि से उनकी सेना में कुछ ऐसा भेद उत्पन्न हुआ कि सिन्धु के आस पास ही से उन्हें लौट जाना पड़ा। अलिकचन्द्र के पोतनायक नयार्क सिन्धुमुख से समुद्र में होते हुए अपने देश में पहुँचे। असुरों की प्राचीन राजधानी भव्यलून-पुरी में, भारत से आने पर कुछ ही दिन के बाद, अलिकचन्द्र की मृत्यु हुई। नहीं तो पुनः समुद्र में और भूमि पर यात्राओं से और देशों की भी ये ख़बर लेते। अन्ततः अलिकचन्द्र का उत्तराधिकारी यवनराज शल्यक का दूत मेघस्त पाटलि-पुत्र में मौर्यसिंह चन्द्रगुप्त की कचहरी में कितने ही दिनों तक रहा। तुरमय नामके कई राजा मिश्र देश में या अजपुत्रों में हुए। इनके समयों में ज्योतिर्विद्या और भूगोलविद्या की बहुत कुछ उन्नति हुई। पृथ्वी का वर्तुल आकार और परिमाण पाश्चात्यों को इन्हीं के समय में परिज्ञात हुआ। जगद्विजयेच्छु रोम-नगरी की चढ़ती जवानी में, यात्रा के शौक़ से, व्यसन की चीज़ों के वाणिज्य के लिए, तथा साम्राज्यार्थ रोम-वासियों ने अनेक देशों से सम्बन्ध किया। मध्य-सागर के आस पास के यवन, मिश्र, करध्वज आदि देशों से ले कर सुफेन, गौर, शर्मण्य, श्वेतद्वीप आदि तक रोमनगर का अधिकार हुआ। आरव्य, पारसीक, शक और भारत तक रोम के वीरों की यात्रायें होती थीं। निरय नामक सम्राट् के समय में नील-नद के मूल के अन्वेषण का प्रयत्न हुआ था। हयपाल रक्तसागर से होते हुए भारत तक पहुँचा था। सुवेर सम्राट् के समय में तो रोम से भारत और चीन तक रास्ता लग गया था। रोम-साम्राज्य के दो विभाग होने पर जब एक सम्राट् कंसतन्तुपुर में रहने लगा तबसे पूरब की ओर यात्रा और भी बढ़ी। जुष्टनय के समय में दो साधु चीन से कौशेय कृमि के अण्डे छड़ी में छिपा कर ले गये, जिससे कोशा या रेशम के कपड़े बनने लगे। शकों की आठवीं शताब्दी में आरव्य सभ्यता ख़ूब बढ़ी। अपने धर्म के जोश से इन लोगों ने धीरे धीरे सुफेन से भारत तक अपना साम्राज्य बढ़ाया। यवनों के भूगोल-ग्रन्थ का अरबी में अनुवाद हुआ। शूलमणि नाम का अरबी सौदागर पारस की खाड़ी से भारत और चीन तक गया। कुछ दिनों के बाद दनुभूमि और नरभूमि से जहाज़ी लुटेरे श्वेतद्वीप आदि में पहुँचे। ये गौर-देश से होते हुए श्रीशल्य तक बसे। कई सौ वर्ष तक नवगर्त से हो कर, भारत से उत्तर यूरोप तक, रास्ता लगा था। सूद-भूमि में आज भी आरव्य मुद्रायें पाई जाती हैं। नर-भूमि से लोग जाकर हिमभूमि में बसे। इनका रक्ताशीश नामक नायक हरित-भूमि तक गया और हिम-भूमि वालों से हरित-भूमि के किनारों को बसाया। अरीशसुनु ने उत्तर अमेरिका के किनारों की खोज की। रोम-साम्राज्य के नाश के साथ जो वन्य विसर्प हुआ था उसका अन्त होते होते कई ख्रिस्तीय युद्ध हुए, जो स्वस्तिक युद्ध के नाम से प्रसिद्ध हैं। जारूषाण में जो ईसा की क़ब्र है उसको मुसलमानों से छीनने के लिए युद्ध करते समय ईसाइयों को देश देशान्तर से होते हुए जाना पड़ा। इस प्रकार इन युद्धों के द्वारा मनुष्यों का भूगोल-ज्ञान बढ़ा। रोम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ईसाई पुराहित पोप लोगों ने भी तातार आदि में दूत आदि भेजे थे। जब इष्टालय में रोम-साम्राज्य के मृत अङ्गों से फिर छोटे छोटे प्रजा-राज्य उत्पन्न हुए तब वेणीश आदि नगरों ने भारत की चीज़ों की बहुत कुछ सौदागरी शुरू की। इष्टालय से जाकर पाल १७ वर्ष तक कुवलय-राज्य की कचहरी में रहा था। उदयार्क भी मलय-द्वीप-समूह, चीन आदि होते हुए लामा लोगों की अलकापुरी तक गया था। बटुक नाम का आरब्य यात्री अफ़्रिका, पारस आदि होता हुआ घूमते घामते दिल्ली नगर के तुग्र राजाओं की कचहरी में आठ वर्ष रह कर, सिंहल होते हुए, मलय-द्वोप समूह को पार कर, राजदूत की हैसियत से चीन तक गया। निचुलशान्ति पारस से हो कर मालवर के किनारे से सुमित्र, यव आदि द्वीपों में होता हुआ चीन के दक्खिन से लौट कर पचीस वर्ष के बाद अपनी जन्मभूमि वेणीशनगर में पहुँचा। रुद्रविष ने भी ऐसी ही विस्तीर्ण यात्रा की। सोलहवीं शक-शताब्दी से जहाज़-घड़ी का उपयोग होने लगा। पूर्त्तगल के राजकुमार हरि के (जो नाविक के उपाधि से प्रसिद्ध हैं) समय में उनके उत्साह से भूयात्रा और भूगोलविज्ञान की बड़ी उन्नति हुई। पाश्चात्य यात्रियों को तुङ्ग-सागर और दक्खिन-सागर होते हुए भारत तक पहुँचाने की इन्हें बड़ी इच्छा थी। पूर्त्तगल वाले दक्खिन से होते हुए भारत में पहुँचना चाहते थे। इसी बीच सुफेन की रानी ईशवेला के उत्साह से तुङ्ग-सागर को पार करके कुलुम्ब पच्छिम से भारत पहुँचना चाहता था। वह भारत तो न पहुँचा, पर अमेरिका का परिज्ञान कर गया। इधर पूर्त्तगल के वस्क महाशय भी प्रायः उसी समय अफ्रिका के दक्खिन से, समुद्र से होते हुए, भारत आ पहुँचे। पाश्चात्त्य लोग जिस सुवर्ण-भूमि की खोज में कितने ही दिनों से मरते थे सो भूमि मिल गई। जिस दिन वस्क महाशय दाक्षिणात्य नगर कलिकूट में पहुँचे उस दिन से पाश्चात्यों की उन्नति का बड़ा भारी द्वार खुल गया। कुछ दिन बाद कुल्यपुरी के अमेरिक महाशय दक्षिण अमेरिका गये। अमेरिका नामकरण इन्हीं के नाम पर हुआ। अब तो प्रजारि आदि सुफेन देशीय पेरु आदि प्राचीन राज्यों के नाश में लगे। मृगहर्ष नामक पूर्त्तगलदेशीय, वेशवार-द्वीप की खोज में, पच्छिम चला। पत्रगोणिका आदि होते हुए वह शान्त-महासागर में पहुँचा। शान्त-महासागर को पार कर, फलद्वीप में पहुँच कर, वन्य जातियों के हाथ से उसने अपने प्राण नष्ट किये। इस प्रकार सुफेनवाले तो पृथ्वी के ऊपर से नीचे चारों ओर घूम आये। उधर पूर्त्तगलवाले भी भारत, मलय, वेशवार द्वीप आदि में कारख़ाने खोल रहे थे। मुग़लराज अर्कवट की कचहरी में इनके धर्म्मदूत पहुँचे थे। अब पुनः कृतयुग सा आ रहा था। भारतीय लोग "कलिः शयानो भवति" की अवस्था में थे। पर पाश्चात्य लोग तो "कृतं सम्पद्यते चरन्" का अनुसरण करते हुए पृथ्वी के किसी अंश को बिना देखे छोड़ना नहीं चाहते थे। आङ्ग्ल-भूमि, हर-भूमि और स्फाराङ्ग-भूमि से उत्साही लोग भारत-भूमि में पहुँचे तथा और भी दूर दूर की भूमियों में पहुँचने लगे। कितने ही आङ्ग्ल-यात्रियों ने उत्तर की ओर से चीन पहुँचने का रास्ता निकालना चाहा। कई जहाज़ उत्तर के हिम-समुद्र में नष्ट होगये। चञ्चलार्य उत्तर में क्षीर-समुद्र तक पहुँचे और रूष्यों की राजधानी मुष्कपुर होते हुए घर आये। फिर कई यात्री कारासागर तक गये। हर-सूनु, वराङ्ग आदि महोद्योगी महात्मा लोग सुमेरु-सागर के कितने ही अंशों तक पहुँचे। ये कई बार आङ्ग्ल सांयात्रिक मृगहर्ष के रास्ते से पृथ्वी के चारों ओर हो आये। ड्रेक शान्त-महासागर से मृग-हर्ष-नलिका से होते हुए अमेरिका के उत्तर से लौट आये। बीच बीच में अन्धगिरि आदि महापर्वत, पत्रगोणिका आदि प्रदेश और अमरनद आदि महा-नदों की खोज खाज भी चलती रही। भारत-भूमि में प्राच्य-सिन्धु नामक आङ्ग्ल-वणिक्समिति स्थापित हुई। आङ्ग्ल-वणिक्समितियाँ कुछ दिन के लिए कर्पूर-द्वीप आदि में भी चलीं, पर मुद्गलों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के और उनके बाद महाराष्ट्रों के नाश होने से भारत कुछ ऐसी अवस्था में आ पड़ा कि पाश्चात्य लोग अपने अपने राज्य-स्थापन का प्रयत्न यहाँ करने लगे। इस प्रयत्न में पूरी सफलता आङ्ग्लसमिति ही को हुई। भारत में आङ्ग्ल-राज्यस्थापन के पहले से दक्षिण-सागर की भी सैर पाश्चात्य लोग कर रहे थे।

हर-भूमिवासी ब्रह्माङ्ग महाशय ब्रौष्ट्रालय द्वीप की पच्छिमी भूमि पर उतर चुके थे। वहाँ की कल-हंस नदी का भी दर्शन इन्हें हो चुका था। तस्मन महाशय और आगे नवजीव-भूमि तक पहुँचे। इन्हें शास्त्रियों से उत्प्रेक्षित दक्षिणसागरीय कुमेरुद्वीप के अन्वेषण की बड़ी इच्छा थी। अब पाश्चात्यों में नाप-जोख की विद्या भी खूब हो चली। चीन, त्रिविष्टप आदि के नकशे इन्होंने बनाये। देशदारी आदि पादरी आगरा से हिमालय पार कर अलकापुरी में पहुँचे। हरभूमि के यात्री समबल भी अलका आदि में पहुँचे। गत दो तीन शताब्दो में पृथ्वो के सब खंडों का पाश्चात्यों के द्वारा कैसा पूर्ण अन्वेषण हुआ है, इसके विवरण के लिए एक बहुत बड़ी पुस्तिका चाहिए। इस छोटे से वर्णन में कहाँ तक क्या कहें। शुक आदि एक एक यात्री की एक एक यात्रा पर बड़ी बड़ी पुस्तिकायें बन चुकी हैं। आज कल तो भूगोल-विद्या की अनेक समितियाँ पाश्चात्यों के पेरिस, नन्दन आदि नगरों में वर्त्तमान हैं। आज पृथ्वी पर सौ से अधिक ऐसी सभायें हैं। इन सभाओं के लाखों सभासद हैं। सौ दो सौ भौगोलिक पत्र भी आज पृथ्वी पर चल रहे हैं। हाल में महात्मा षड्-बल, शाकतनु आदि प्रायः दक्षिण-सागर में कुमेरु तक की यात्रा कर आये हैं। महात्मा प्रियार्य ख़ास उत्तर ध्रुव तक अभी हो आये हैं। अभी सुनते हैं कि अमन्दसेन ठीक दक्षिण ध्रुव से लौटे आ रहे हैं। कृतयुग के प्रवर्तक धन्य हैं ऐसे महात्मा। कलि में होने वाले हम लोग तो इनका चरित भी सुनें और पढ़ें तो डर बना रहता है कि कोई प्रायश्चित्त न देना दे।

काव्य-स्वतन्त्रता पर सम्मति।

सरस्वती की गत मास की संख्या में पण्डित कामताप्रसाद गुरु का जो लेख निकला है उस पर मेरा निवेदन इस प्रकार है:—

गुरु जी ने इस लेख में अपनी कविता का एक भी दूषित उदाहरण नहीं दिया। यदि महाकवि क्षेमेन्द्र की तरह वे इस विषय में उदारता दिखलाते तो उनकी बड़ी प्रशंसा थी। जहाँ व्याकरण-विषयक दोषों का उल्लेख किया गया है वहाँ —

"खुले ठौर की कड़ी शीत में जो मरता है"

—दीन निहोरा।

"तो भी नहीं इष्ट सपने भी मुझे आप से दूर निवास"

—दासी रानी।

'यह आर्य्य-भूमि पावन सौ दुःख की सताई"

"सब से अधिक सहे हैं तेरी कठोरताई॥"

—ईर्ष्या।

इन पंक्तियों में पतले टाइप में छपे शब्दों पर भी यदि आप कुछ लिखने की कृपा करते तो आपकी उदारता विशेष रूप से प्रदर्शित होती।

कहीं कहीं (शायद शीघ्रता के कारण) आप बिना विचार किये भी लिख गये हैं। जैसे "स्वर्गीय-सङ्गीत" में आये हुए दिले बिस्मिल, साक़ी और काकुल आदि शब्दों पर आपने व्यर्थ ही आक्षेप किया है। गुरु महाशय को जानना चाहिए कि वे शब्द उस कविता में जान बूझ कर रक्खे गये हैं। खेद से मुझे कहना पड़ता है कि उस कविता के उद्देश पर आपने कुछ भी विचार न करके वृथा ही यह परिश्रम उठाया है। उर्दू की गन्दी शायरी का नमूना उसमें दिखलाया गया है। बात है तो स्पष्ट, पर नहीं मालूम क्यों आपके ध्यान में नहीं आई। ऐयारी और तिलिस्म से भरे हुए काशी के अश्लील उपन्यासों की भी निन्दा उस कविता में की गई है। इसी लिए तिलिस्म और

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐयार शब्द भी वहाँ आये हैं। जान पड़ता है आपने उस कविता को पढ़ते समय उसके शब्दों पर ही ध्यान रक्खा है, भाव पर नहीं।

प्राचीन शब्दों के उपयोग के विषय में मेरी राय है कि वे एक सीमा के भीतर रहने चाहिएँ। जो शब्द प्रचलित हो गये हैं वे तो रहे ही गे, पर उनकी अधिकता न होनी चाहिए। अन्यथा हानि है। मेरी मन्द बुद्धि के अनुसार गुरु जी की कविता में ऐसे शब्दों की जितनी अधिकता रहती है उतनी न रहनी चाहिए।

संस्कृत-शब्दों के विषय में भी आपकी राय विचारणीय है। मैं इस बात को मानता हूँ कि भाषा का सबसे बड़ा गुण सरलता है। पर कहीं कहीं संस्कृत के शब्द लेने ही पड़ते हैं। बिना ऐसा किये मुझ ऐसे अल्पज्ञ जनों का काम नहीं चलता। मेरी तो यह राय है कि अभी हिन्दी में संस्कृत के शब्द और भी सम्मिलित होंगे। बिना ऐसा हुए उसका शब्द-सञ्चय विपुल न होगा। ख़ैर, गुरु जी लिखते हैं:—"ये गूढ़ शब्द किसी नये विचार या उपमा के लिए नहीं आते; वरन उनका अभाव प्रत्यक्ष दिखा देते हैं। कहीं कहीं तो इन शब्दों की कुछ भी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। खड़ी बोली की कविता को मधुर बनाने के बदले ये शब्द उसे कर्कश बनाते हैं। जैसे—ज्यों इन्दीवर में वराटक"। इस पर मेरा निवेदन है कि क्या ये शब्द किसी नई उपमा के लिए नहीं आये हैं? सम्भव है आपने यह उपमा कहीं देखी हो, पर लेखक की समझ में तो यह नवीन ही है। इसमें "वराटक" शब्द पर स्वयं लेखक को दुःख है, पर दूसरा कोई अच्छा शब्द न मिलने से इसे ही रखना पड़ा। यदि आप जानते हों तो कृपा कर बतला दें। आगे, आवश्यकता पड़ने पर, उसी का प्रयोग करने की चेष्टा की जायगी। शब्द ऐसा हो जो सब कहीं समझ लिया जाय और पूरा अर्थ देता हो। अन्यथा उसकी अपेक्षा "वराटक" के ही प्रयोग में क्या हानि है? यदि आपकी राय में यह नई उपमा नहीं है तो कृपा कर इसकी प्राचीनता भी दिखा दीजि कृतज्ञ हूँगा। परन्तु अपने लिए मैं इसे फिर नवीन ही समझूँगा। क्योंकि मैंने इसे कहीं कर नहीं लिखा। रही कर्कशता की बात सो राय में यहाँ नहीं। हाँ, क्लिष्टता हो सकती यदि 'वराटक' के 'ट' से ही यहाँ कर्कशता तो फिर इसे आप क्या कहेंगे:—

"मन भाइ भाइयों का तू ने निपट फटाया
फिर मित्रके खड़ग से सिर मित्र का कटाया।
—ईषी।

कहिए, आप ही कहिए और सच कहिए कि इस "निपट फटाया" में वराटक से कितना अधिक माधुर्य्य है। इन पङ्क्तियों में 'भाई' की जगह 'भा' और 'खड्ग' के स्थान में 'खड़ग' पर मैं कुछ नहीं कहता। कहने की ज़रूरत भी नहीं।

उस दिन काशी में "बार्हस्पत्य" जी को अपनी एक तुकबन्दी सुनाई थी। उसमें एक जग लिखा है :—

"थे योग-बल से वश हमारे नित्य पाँचो तत्त्व भी
मनुजत्व में वह शक्ति थी रखता न जो अमरत्व भी"।

इस तुकबन्दी में 'मनुजत्व' शब्द सरल है परन्तु 'अमरत्व' होने से बार्हस्पत्य जी की समझ है कि यहाँ 'मर्त्यत्व' में विशेषता है। अतएव इस क्लिष्टता को क्षम्य समझते हैं। गुरु जी चाहे जो समझें।

मैं देखता हूँ "भव्य भात" आपको बहु ही खटका है। आपकी राय में यहाँ देशी घो पर विलायती ज़ीन रख दिया गया है। इस उत्तर में निवेदन है कि हिन्दी के विशेष्य शब्द के लिए क्या संस्कृत के विशेषण शब्द नहीं आते फिर एतराज़ क्यों? आप चाहे इसे देशी घो पर विलायती ज़ीन रखना कहें, चाहे और कुछ पर मैं तो ऐसे मौक़े पर ऐसा साहस नहीं कर सकता। सुनिए:—

"उचित न्याव मेरा हिय ज्ञाता पति ही से अब टूटेगा
—दासी रानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह 'उचित न्याव' क्या है? अच्छा जाने दीजिए इसे; 'हिय ज्ञाता' को ही देखिए। 'भव्य भात' तो हुआ देशी घोड़ी पर विलायती ज़ीन रखना, पर यह क्या हुआ, सो आप ही समझ लें। यदि इस से भी आप सन्तुष्ट न हों तो और सुनिए:—

क्या स्वराज्य, क्या सभा, पक्ष सीरा क्या ताता"।
—शिवा जी।

अहा "पक्ष सीरा क्या ताता" क्या ही मधुर भाषा है। यह 'सीरा' तो सचमुच शक्कर का शीरा ही जान पड़ता है! आफ़त इतनी ही है कि 'शीरा' ज़रा 'ताता' है; इससे जीभ के जलने का डर है। और कुछ नहीं!

ध्यान रहे, 'भव्य भात' में एक प्रकार का अनुप्रास भी है।

अरबी-फ़ारसी के शब्दों के प्रयोगों पर आप नाराज़ी ज़ाहिर करते हुए लिखते हैं:—

"शिरोरोग का अतः एक दिन लिए बहाना।
किया बहू ने शुरू ख़ूब रोना-चिल्लाना।"

"यहाँ 'शिरोरोग' के साथ 'शुरूअ' होता तो बनाव पूरा बन जाता।" मेरी राय में उर्दू, फ़ारसी या अरबी के प्रचलित शब्दों पर कुढ़ना भी अनुचित है। शब्द चाहे जिस भाषा के हों यदि वे प्रचलित शब्द हैं और सब कहीं बोल-चाल में आते हैं तो उन्हें हिन्दी के शब्द-समूह से बाहर समझना भूल है। फिर 'शुरू, 'ख़ूब' और 'बहाना' आदि शब्दों से एतराज़ क्यों? क्या वे नित्य के बोल चाल में नहीं आते? गुरु जी यदि अपनी ही कवितायें उठाकर देखेंगे तो सारी बात आपकी समझ में आ जायगी। देखिए:—

"ज़रा उबालो अपना रक्त"
—भानु की झाँकी

गुरू जी कहते हैं कि 'शिरोरोग' के साथ 'शुरूअ' होता तो बनाव पूरा बन जाता। क्या मैं उनसे प्रार्थना कर सकता हूँ कि यदि ऊपर की कविता में 'ज़रा' के साथ 'रक्त' की जगह 'ख़ून' होता तो बनाव पूरा बन जाता? और लीजिए:—

"जीती जाती हुई जिन्हों ने भारत-बाज़ी"
—शिवाजी।

"धन-प्रभुता-बल-बुद्धि व्यर्थ है निरा बहाना"
—दीननिहोरा।

"प्यारी बहिन! सौंपती हूँ मैं अपना तुम्हें ख़ज़ाना"
बेटी की बिदा

"वे भी निरख रहे हैं तुझ डाह के इशारे"
ईर्ष्या।

आप इसी लेख में एक जगह लिखते हैं ".....गद्य और पद्य की भाषाओं में ज़मीन आसमान का अन्तर न होना चाहिए।" सो गद्य-पद्य और अन्तर के बीच में "ज़मीन-आसमान" को तो जगह मिल जाय पर 'शिरोरोग' के पास 'शुरू' को जगह न मिले! आकाश-पाताल शायद यहाँ बे-मुहाविरा होता।

गुरु जी एक जगह लिखते हैं:—

"देश-भक्ति थी भरी झोपड़ी तलक महल से"।
—शिवा जी।

इसमें ज़रा 'तलक' की झलक तो देखिए। यह उर्दू मुहाविरा है या क्या? मेरी राय में तो 'तलक' हिन्दी में शायद ही कोई लिखता हो।

इसके उत्तर में गुरु जी शायद यह कहें कि गुरुजन जो कुछ करें उसे न करके जो कुछ वे आज्ञा करें वही करना चाहिए। बहुत अच्छा। मैं हार गया, आप ही की जीत हुई!

मैथिलीशरण गुप्त।

राका।

प्राची में यह प्रकट मनोहर चन्द है।
क्याही इसमें भरा हुआ आनन्द है॥
सचमुच इससे सुधा सरस है बरसती।
ताप-हीन होगई देख लो वसुमती* ॥ १ ॥

---

* पृथ्वी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वच्छ सरोवर सा सुनील आकाश है।
सलिल-सदृश यह चारु चन्द्रिकाभास है॥
राजहंस सा विचर रहा राकेश है।
कुमुद, तारका में न भेद का लेश है॥ २॥
चन्द नहीं, यह प्याला है पीयूष का।
या, बोया है बीज विमल प्रत्यूष * का॥
अथवा, है 'आदर्श' प्रकृति के रूपका।
या, चन्द्रातप † तना मनोभव भूपका॥ ३॥
चार ओर, कमनीय चन्द्रिकाकान्ति है।
बरस रही या स्वर्गलोक से शान्ति है॥
गिरी इन्दु से स्वर्गङ्गा की धार है।
या, उस प्रभु ने किया कृपा-विस्तार है॥ ४॥
होकर शीतल, नयन रहे विश्रान्त यों।
किरणजाल में फँसे मुग्ध मृग भ्रान्त ज्यों॥
फेरे फिरती नहीं, दृष्टि इस सृष्टि से।
तृप्त होगया हृदय सुधा की वृष्टि से॥ ५॥
होकर यह निस्तब्ध, नदी भी मुग्ध है।
(वाह, चन्द्रिकारञ्जित जल क्या, दुग्ध है)॥
लहर-हाथ से लिये हृदय में चन्द को।
कम्प-विवश हो रही पाय आनन्द को॥ ६॥
चन्द्र-कान्ति-निष्णात, विमल वृत्तावली।
लगती है इस समय कहो कैसी भली?
कर-स्पर्श कर प्राप्त, यथा प्रिय चन्द से।
पृथ्वी के रोमाञ्च हुआ आनन्द से॥ ७॥
देते निज फल, फूल, मूल, सब अङ्ग ही।
रखते परम उदार निराला ढङ्ग ही॥
वृक्षवरों ने आज इसी उपकार से।
पाई है यह खिलत प्रकृति-दरबार से॥ ८॥
डाली डाली फूल फूल कर खिल गये।
आप दौड़ कर मस्त मधुव्रत मिल गये॥
मधुर माधवी-महक मिली जिस ओर ही।
भौरों की भी भीड़ चली उस ओर ही॥ ९॥
किन्तु वहाँ भी लगा न उनका चित्त जब।
चले मालती-पास भूल कर प्रीति सब॥
टिके वहाँ भी नहीं, लिया रस, चल दिये।
मतलब के हैं यार, रहें फिर किस लिये?॥ १०॥
मन्द मन्द यह पवन लहर लेता हुआ।
सुन्दर सुखद सुगन्ध हमें देता हुआ॥
मचल मचल कर बाग़ बाग़ होकर अहा!
लतिकाओं से छेड़ छाड़ है कर रहा॥ ११॥
लगते ही यह हवा जानसी पड़ गई।
शीतल हुआ शरीर, शक्ति आई नई॥
चिन्ता चित की गई, मिटी सारी थकन।
खिली हृदय की कली, हो गया मस्त मन॥

रूपनारायण पाण्डेय (कमलाकर)

---

* प्रातःकाल। † चँदोवा।

रामायण का प्रभाव।*

हज़ारों वर्ष पहले कवि ने तमसा नदी के पवित्र तट पर जो वीणा बजाई थी उसकी मधुर तान भारतीय नर-नारियों के कान में आज भी ध्वनित हो रही है। प्राचीन अयोध्या ध्वंस हो गई है; किन्तु हिन्दू-समाज के हृदय में रामायण की अयोध्या नित्य नई के समान चिरकाल से प्रतिष्ठित है। संसार में हिन्दू-जाति का जब तक अस्तित्व रहेगा तब तक उसके हृदय से रामायण का प्रभाव दूर न हो सकेगा। इस छोटे से लेख में हम इस प्रभाव के दो एक दृष्टान्त देना चाहते हैं।

छोटा नागपुर और बिहार में घटवार कहलाने वाले कितने ही ज़मींदार हैं। बहुधा लोग उन्हें टिकैत या ठाकुर कहते हैं। वे अपने को सूर्य्य-वंशी बतलाते हैं। अपने स्वार्थ की कुछ भी परवा न कर के वे सत्य की रक्षा करने में तत्पर रहते हैं। राजा दशरथ को वे इस विषय में अपना आदर्श मानते हैं। उनका यह काम, वर्त्तमान समय में, बहुत ही

* प्रवासी में प्रकाशित श्रीमनोरञ्जन गुह ठाकुरता के एक बँगला-लेख का भावार्थ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशंसनीय कहा जा सकता है। एक नहीं, दो भी नहीं, किन्तु जितने घटवार ज़मींदार हैं सभी अपनी बात के ऐसे धनी हैं कि यदि वे किसी विषय में कोई वचन दे दें तो, आप निश्चिन्त रहें, उन्हें फिर चाहे हानि हो या लाभ—दुख हो या सुख—अपने वचन को वे कभी न टालेंगे। घटवार के साधारण वचन को रजिस्टरीशुदा दस्तावेज़ मान लेने में कोई हानि नहीं। यदि अपने वचन के निबाहने से सर्वस्व भी नष्ट होता हो, या न निबाहने से एक रुपये के बदले सौ रुपये का लाभ होता हो, तो भी घटवार अपने वचन से कभी पीछे नहीं हटते। वे सूर्य्य-वंशी हैं। फिर वे किस तरह सत्य-भ्रष्ट हो सकते हैं? जिस वंश के राजा दशरथ ने सत्य की रक्षा करने के लिए अपने प्रियतम पुत्र, नहीं नहीं प्राणों तक का विसर्जन कर दिया, उसी वंश में उत्पन्न हो कर किस प्रकार वे दिये हुए वचन को मेट सकते हैं? घटवार ज़मींदार प्रायः अपने कर्मचारियों के हाथ के खिलौने होते हैं, परन्तु वचन-रक्षा करते समय उनके सामने कर्मचारियों की कुछ भी नहीं चलती। जब कर्मचारी लोग प्रकट रूप से उन के वचन की पूर्ति होने में बाधा डालने लगते हैं तब वे अपनी वाक्य-रक्षा के लिए गुप्त रीति तक से प्रयत्न करते हैं। जब कर्मचारी उन्हें स्वार्थ-नाश का भय दिखलाते हैं तब वे तुलसीदास की रामायण की इस चौपाई को सुना कर उन्हें निरुत्तर कर देते हैं:—

रघुकुल-रीति सदा चलि आई।
प्राण जाहिँ बरु बचन न जाई॥

हज़ारीबाग ज़िले में डोरंडा नाम की एक ज़मींदारी है। उसके सोलहों आने के मालिक टिकैत दिलीपनारायणसिंह हैं। जब यह ज़मींदारी कोर्ट आव् वार्ड्स के अधीन थी तब मैंने उस के अन्तर्गत एक स्थान में अभ्रक की खान ढूँढ निकाली। थोड़े ही दिनों में वह स्थान अभ्रक के लिए प्रसिद्ध हो गया। जब कोर्ट आव् वार्ड्स से निकल कर उक्त ज़मींदारी टिकैत महाशय के हाथ में आई तब मेरे पट्टे के निर्दिष्ट काल में केवल दो वर्ष बाक़ी रह गये थे। यह देख कर कितने ही अमीर आदमियों के मुँह से लोभ की लार टपकने लगी। उन्होंने चाहा कि दो वर्ष बाद वह खान उन्हीं को मिले। किन्तु टिकैत ने मेरे जेठे बेटे को यह वचन दे दिया था कि यदि नये बन्दोबस्त के समय तुम ढाई सौ रुपये की सालाना मालगुज़ारी खज़ाने में जमा कर दोगे तो फिर तुम्हीं को सात वर्ष के लिए पट्टा दे दिया जायगा। मेरे प्रतिपक्षियों में से कितने ही लोग डेढ़ डेढ़ हज़ार रुपया तक देने के लिए तैयार हो गये और बङ्गाली मैनेजर महाशय भी, जो पहले मेरे पक्ष में थे, कुछ कारणों से मेरे विपक्ष में खूब ज़ोर लगाने लगे। फिर लोभ भी थोड़ा नहीं। जिसकी कुल सालाना आमदनी बीस हज़ार रुपये से अधिक न हो उसकी आमदनी में १२५०) की वृद्धि थोड़ी वृद्धि नहीं। उधर कर्मचारी भी अधिक आमदनी के ही पक्ष में थे। ऐसी अवस्था में वचन-रक्षा करना सहज काम नहीं। किन्तु उस उभय सङ्कट में पड़ कर भी, आप जानते हैं, घटवार टिकैत ने क्या किया? एक दिन अपने कर्मचारियों से छिप कर, और केवल एक विश्वास-पात्र आदमी को साथ ले कर, चालीस मील दूर एक गाँव में वे आये और सात वर्ष के लिए, ढाई सौ रुपये सालाना लगान पर, उन्होंने पट्टा लिखा और रजिस्टरी करा कर उसे मुझे दे दिया। कुछ दिन बाद जब मेरे विपक्षियों को यह बात मालूम हुई तब उन्हें बहुत रंज हुआ। मैंने टिकैत महाशय को बहुत धन्यवाद दिया। परन्तु जब कभी उनसे मेरी मुलाक़ात होती और इस विषय पर बात चीत चलती तब वे यही उत्तर देते कि जिसको जो वचन एक बार दे चुके, क्या फिर उससे कभी मुकर सकते हैं? क्योंकि

रघुकुल-रीति सदा चलि आई।
प्राण जाहिँ बरु बचन न जाई॥

गोविन्दपुर के सुप्रसिद्ध वकील बाबू क्षिति-भूषण मुख्योपाध्याय झरिया के घटवार राजा के मैनेजर थे। उनके समय में एक बङ्गाली वकील राजा के पास, कई सौ बीघा कोयलेवाली ज़मीन लेने के लिए, आये। राजा ने उन्हें देने का वचन दे दिया। किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस के कुछ ही दिन बाद कलकत्ते की एक प्रसिद्ध कम्पनी उसी ज़मीन के लिए उन बङ्गाली वकील से दो लाख रुपया अधिक देने को तैयार हो गई। क्षिति-भूषण बाबू ने जब राजा को इस बात की सूचना दी तब राजा ने बिना ज़रा भी दुःख प्रदर्शित किये ही कह दिया— "वह भूमि तो अमुक बाबू की हो गई"। यद्यपि इस विषय की कोई लिखा पढ़ी न हुई थी, तथापि केवल इच्छा प्रकट कर देने से ही राजा साहब ने अपनी बात को इक़रारनामे से भी बढ़ कर समझा। क्योंकि—

रघुकुल-रीति सदा चलि आई।
प्राण जाहिँ बरु बचन न जाई॥

एक टिकैत ने किसी महाजन से बहुत सा रुपया उधार लिया। जब उनकी ज़मींदारी कोर्ट आव् वार्ड्स के अधीन हो गई तब उनके क़र्ज़ की जाँच पड़ताल की गई। मालूम हुआ कि महाजन ने क़र्ज़ की रक़म बहुत कुछ बढ़ा कर लिख दी थी और सूद भी बहुत अधिक जोड़ा था। इस कारण उसे बहुत से रुपये से हाथ धोना पड़ा। जितनी रक़म वाजिब थी उतनी ही उसे दी गई। परन्तु जब पन्द्रह वर्ष बाद टिकैत महाशय के हाथ में फिर ज़मींदारी आई तब उन्होंने उक्त महाजन को बुला कर उसका बाक़ी रुपया भी कौड़ी कौड़ी चुका दिया। जिस ऋण को उन्होंने स्वीकार कर लिया था और जिसके अदा करने का उन्होंने वचन दे दिया था उससे उन्हें छुड़ाने वाला क़ानून कौन होता था? वे सत्यभ्रष्ट नहीं हो सकते, क्योंकि:—

रघुकुल-रीति सदा चलि आई
प्राण जाहिँ बरु बचन न जाई।

गिरीड़ी के श्रद्धास्पद श्रीयुक्त तीनकौड़ी वसु महाशय छोटा नागपुर की भिन्न भिन्न ज़मींदारियों में कोई बीस वर्ष तक प्रधान प्रधान पदों पर अधिष्ठित रह चुके हैं। इस लेख के विषय-सम्बन्ध में उन से मेरी बातचीत हुई तो उन्होंने कहा कि घटवार लोग सचमुच ही बड़े सत्य-प्रतिज्ञ हैं। उन्होंने एक उदाहरण भी दिया। वे बोले कि जब मैं श्रीरामपुर के घटवार राजा का मैनेजर था तब राजा ने एक आदमी की भूमि रेहन रख कर उसके बदले में कुछ अधिक रुपया देने का वचन उसे दे दिया। दरियाफ़्त करने पर मालूम हुआ कि उस भूमि के दाम बहुत ही थोड़े हैं और उसके बदले में जितना रुपया राजा ने देने कहा था उस का अल्पांश भी उससे वसूल न होगा। राजा से यथार्थ बात बतलाई गई तो उन्होंने साफ कह दिया:—"अब तो उतना रुपया देना ही होगा; क्योंकि हमने वचन दे दिया है":—

रघुकुल-रीति सदा चलि आई
प्राण जाहिँ बरु वचन न जाई:—

इस प्रकार के और भी अनेक दृष्टान्त दिये जा सकते हैं। बारह वर्ष तक घटवार ज़मींदारों की बातों पर विश्वास करके मैंने जितने काम किये हैं उनमें कभी मैंने धोखा नहीं खाया। जिन लोगों को घटवार ज़मींदारों से काम पड़ा है वे बिना किसी सङ्कोच के यही कहते हैं कि घटवारों के मुख से निकली हुई बात रजिस्टरीशुदा दस्तावेज़ से कम नहीं। इस दुर्नीतिदलित समय में इस प्रकार वाक्यरक्षा करना बड़े ही गौरव और सौभाग्य की बात है।

धन्य कवि-गुरु वाल्मीकि, धन्य गोस्वामी तुलसीदास और धन्य तुम्हारी वीणा की अक्षय-ध्वनि। धन्य राजा दशरथ और धन्य तुम्हारा सर्वस्वत्यागपूर्वक सत्य का पालन। इतना समय बीत जाने पर भी जङ्गली और पहाड़ी ग्रामवासी तक तुलसीदास के कण्ठ से कण्ठ मिला कर उच्च स्वर से सुना रहे हैं:—

रघुकुल-रीति सदा चलि आई
प्राण जाहिँ बरु बचन न जाई।

वायु-पम्प।

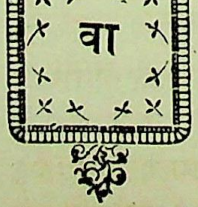

वायु-पम्प को अँगरेज़ी में एर-पम्प (Air-Pump) कहते हैं। इसका काम है किसी स्थान या वस्तु की वायु को निकाल लेना। सन् १६५० ईसवी में ओटो वान ग्वेरिक (Otto Von Guericke) नाम के एक विद्वान् ने इस यन्त्र को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाया था। चित्र नं० १ में यन्त्र के सामने का भाग दिखलाई पड़ता है और चित्र नं० २ में पीछे का।

यन्त्र में शीशे की दो चौड़ी नलियाँ हैं। इन नलियों में चमड़े के दो गट्टे क, और ख, (चित्र नं० १ तथा २ देखिए) नीचे ऊपर आते जाते हैं। ये नलियों से इस तरह सटे हुए हैं कि वायु ऊपर नीचे नहीं जा सकती। गट्टे दो दाँतदार डण्डों ग और घ से जुड़े हुए हैं।

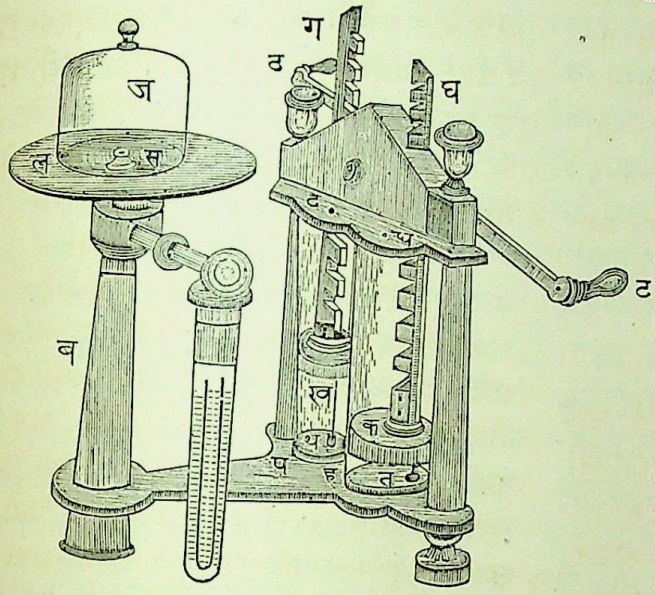

चित्र नं० १

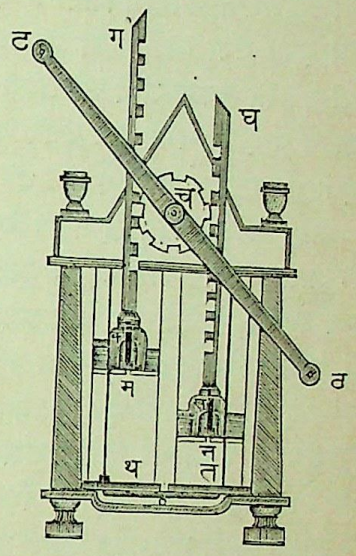

चित्र नं० २

दाँतदार डण्डे एक दाँतदार चक्कर च के घूमने से, जो मूठ ट और ठ को पकड़ कर घुमाया जाता है, इस प्रकार चलते हैं कि एक डण्डा नीचे उतरता है और दूसरा ऊपर चढ़ता है। शीशे की नलियाँ पीतल के आधार प से जुड़ी हुई हैं। प पर एक स्तम्भ है। स्तम्भ से एक प्लेट ल जुड़ी हुई है और उस पर एक शीशे का ढकना ज, जिसको अँगरेज़ी में (Receiver) कहते हैं, रक्खा हुआ है। प्लेट के मध्य भाग से एक नली स आरम्भ होती है और स्तम्भ के भीतर से होकर आधार प के अन्दर से होती हुई दोनों नलियों के बीच के स्थान ह तक आती है। यहाँ इसकी दो शाखायें हो जाती हैं। एक शाखा उधर की नली की ओर जाकर थ छिद्र से मिल जाती है और दूसरी इधर की नली की तरफ़ आकर छिद्र त से मिल जाती है (देखो चित्र नं० २)।

छिद्र त और थ नीचे तङ्ग और ऊपर चौड़े हैं। ये छिद्र दो ऐसे ढकनों से बन्द रहते हैं जो गट्टे के ऊपर चढ़ते समय खुल जाते हैं; परंतु जहाँ गट्टा नीचे उतरने लगा ये तुरन्त छिद्र को बन्द कर देते हैं।

गट्टों में भी दो छिद्र म और न हैं (चित्र नं० २) ये दोनों कमानीदार ढकनों से बन्द रहते हैं और गट्टे के नीचे उतरते समय खुल जाते हैं। त, थ, न और म ये चार छिद्र ऊपर ही की ओर खुलते हैं। आप यन्त्र की बनावट समझ गये होंगे। अब उसके हवा निकालने का ढंग सुनिए।

जब मूठ पकड़ कर दाँतदार पहिया घुमाया जाता है तब डंडा ऊपर चढ़ता है। ऐसा होते ही छिद्र थ खुल जाता है। परन्तु छिद्र म कमानी के ज़ोर और ऊपर की वायु के दबाव के कारण बन्द रहता है। डण्डे के चढ़ने से रिसीवर, स्तम्भ आदि के अन्दर की कुछ हवा खिँच कर शीशे की नली में भर जाती है। जो हवा रिसीवर और स्तम्भ आदि में बच जाती है वह फैल कर निकली हुई वायु का स्थान ग्रहण कर लेती है। प्लेट ल पर शीशे के ढकने ज के ख़ूब चिपके रहने के कारण बाहर की वायु नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ सकती। केवल वही वायु खिँचेगी जो रिसीवर आदि में भरी है। वायु में यह गुण है कि वह फैलने से हलकी हो जाती है अर्थात् उसका घनत्व कम हो जाता है। अस्तु, अब चक्कर उलटा घुमाया गया और ग ने नीचे उतरना आरम्भ किया। ऐसा होते ही छिद्र थ बन्द हो गया। जो हवा पहले नली में भर चुकी थी उसको निकल जाने का रास्ता न रहा। इधर यह रास्ता बन्द हो गया और उधर ऊपर से गट्टा उसे दबाता चला आता है। अब वह जाय तो कहाँ जाय। वायु के ज़ोर से छिद्र म का कमानीदार ढकना खुल जाता है और वायु गट्टे के ऊपर निकल जाती है और वहाँ से (जब गट्टा फिर ऊपर चढ़ता है) नलियों के ऊपर के छिद्र द और ध द्वारा निकल कर वायु-मण्डल में मिल जाती है। इस प्रकार रिसीवर की कुछ हवा निकल गई। फिर चक्कर उलटा घुमाया गया और गट्टा ऊपर चढ़ा। रिसीवर की वायु खिँच कर नली में भर गई। फिर गट्टा नीचे उतरा और नली में भरी हुई वायु छिद्र म को खोल कर निकल गई। इसी तरह तीन चार बार में रिसीवर की वायु निकल जाती है। सब वायु नहीं निकलती; कुछ रह जाती है। परन्तु वह फैल कर इतनी हलकी हो जाती है कि उसका होना न होने के बराबर हो जाता है। उसमें इतना बल ही नहीं रहता कि वह म के कमानीदार ढकने को खोल कर ऊपर जा सके। इसी से वह दबती चली जाती है और गट्टा नली के पेंदे में आकर अपने स्थान पर बैठ जाता है।

वायु-पम्प से लाभ।

वायु-पम्प से बड़े कौतूहल-वर्धक कार्य्य होते हैं। एक ऐसी शीशे की नली लीजिए जिसके दोनों सिरे खुले हों। एक सिरे पर एक पीतल की टोपी, जो दोनों तरफ़ से खुली हो, परन्तु एक ओर प्याले के आकार की हो, लगा दीजिए। प्याले में चमड़े का एक टुकड़ा इस प्रकार फँसा दीजिए कि वह नीचे नली में न गिरने पावे और न ऊपर से वायु नली में जा सके। चमड़े पर थोड़ा पारा डाल दीजिए। दूसरा सिरा, रिसीवर अलग करके, वायु-पम्प के छिद्र स (चित्र नं० १) पर रख दीजिए और अब नली के अन्दर की वायु निकालिए। वायु के निकलते ही नली के अन्दर पारे की छोटी छोटी बूंदें बरसने लगेंगी। चमड़ा बीच में रहते हुए भी नली में पारे की बूंदें पड़ती देख आप ज़रूर चकराएँगे और कारण जानने के लिए उत्सुक होंगे। कारण यह है कि चमड़े में बहुत से छोटे छोटे छिद्र होते हैं। जब तक नली में हवा रही तब तक ऊपर और अन्दर की हवा का दबाव बराबर रहने से पारा अपने स्थान पर स्थिर रहा। परन्तु जब नीचे (अर्थात् नली के अन्दर) की हवा निकल गई तब ऊपर की हवा के दबाव पड़ने से और नीचे उस दबाव को कोई साधने वाली शक्ति न रहने से पारा चमड़े के छिद्रों से छन कर नली में बरसने लगा।

दो या डेढ़ गज़ लम्बी शीशे की एक नली लीजिए। उसका एक सिरा बन्द कर के उसमें काग़ज़, लकड़ी और पत्थर आदि के टुकड़े डाल दीजिए। दूसरे सिरे पर एक ऐसी टोंटी लगाइए जैसी पानी के पम्पों में लगी होती है—अर्थात् उसमें चाभी लगी हो, जिस के कस देने से उसके अन्दर वायु न जा सके। इस टोंटी को वायु-पम्प के छिद्र में कस कर नली के अन्दर की वायु निकाल दीजिए और चाभी कस दीजिए। अब उस सिरे को, जिस ओर पत्थर आदि के टुकड़े पड़े हैं, एक दम से ऊपर कर दीजिए। ऐसा करने से सब चीज़ें नीचे गिर जायँगी। परन्तु आप को यह देख कर बड़ा आश्चर्य होगा कि सब चीज़ें एक साथ नीचे गिरीं। तिल भर भी फ़र्क़ न हुआ। यदि आप किसी ऊँचे स्थान से क़ागज़ और पत्थर के टुकड़े एक साथ नीचे फेंके तो पत्थर पहले पृथ्वी पर आ जायगा, परन्तु काग़ज़ धीरे धीरे और देर में नीचे गिरेगा। यह बात इस वायु-शून्य नली में न होगी। इसमें सब एक साथ और एक ही वेग से नीचे गिरेंगे। यही बात सब वायु-शून्य स्थानों में होती है। कारण यह है कि हलकी वस्तु को वायु देर तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथे रखती है, परन्तु जहाँ वायु ही नहीं वहाँ उसे कौन साधे। यदि आप पम्प के रिसीवर में कोई छोटा जीव—चिड़िया आदि, रख कर रिसीवर के अन्दर की वायु निकाल लीजिए तो वह बहुत ही शीघ्र मर जायगा। वायु में आक्सजिन गेस मिश्रित है और वही मनुष्य और जानवरों के जीवन का मूल कारण है। उस के न मिलने से वे शीघ्र ही मर जाते हैं। आग भी इसी कारण जलती है। जहाँ वायु न होगी वहाँ आग भी न जलेगी। वायु-शून्य स्थान में कीड़े मकोड़े भी नहीं रह सकते। हरे भरे पौधे शीघ्र मुरझा जाते हैं, क्योंकि उनके जीवन का सहारा कार्बोनिक एसिड गेस है और वह हवा में मिली होती है। न ऐसे स्थान में कोई चिड़िया ही उड़ सकती है, क्योंकि उड़ने में वायु की सहायता की आवश्यकता होती है। यदि आप दो छोटी-बड़ी, परन्तु तौल में बराबर, चीज़ों को एक ही काँटे में लटका कर रिसीवर में रख दीजिए और रिसीवर की वायु निकाल लीजिए तो जो वस्तु आकार में बड़ी होगी उसकी ओर का काँटा नीचे झुक जायगा—अर्थात् वह भारी पड़ जायगी। रिसीवर से निकाल कर बाहर रखने पर फिर वे दोनों बराबर हो जायँगे। इसका कारण यह है कि वायु में जितनी वस्तु बड़ी होगी उसी के आकार के बराबर वायु का जो बोझ होगा उतना ही बोझ उस वस्तु में से कम हो जायगा। वायु-शून्य स्थान में ऐसा नहीं होता। किसी वस्तु की असली तौल केवल वायु-शून्य स्थान ही में तौलने से मालूम हो सकती है। वायु में तौली हुई तौल ठीक नहीं होती।

एक चौड़ी नली लीजिए, जो दोनों ओर से खाली हो। उसको पम्प के छिद्र स के ऊपर खड़ा कर दीजिए और उसके दूसरे सिरे पर अपना हाथ रखिए। अब यदि वायु-पम्प चलाइए तो आपका हाथ नली के सिरे पर चिपक सा जायगा। आप उसे बड़ी कठिनता से अलग कर सकेंगे। आपको मालूम होगा कि आपके हाथ के अन्दर की नसें फटी सी जाती हैं। हाथ के चिपकने का कारण हाथ के ऊपर की वायु का दबाव है। हाथ के अन्दर की नसों में भरी हुई वायु फैलती है और नली के अन्दर जाना चाहती है। इसी कारण आपको प्रतीत होगा कि आपका हाथ फटा चाहता है।

यदि आप किसी चौड़े मुँह की बोतल को, जिसका पेंदा खुला हो, लेकर उसके मुँह पर चमड़ा या रबड़ बाँध दें और उसे पम्प के छिद्र के ऊपर रख कर उसके अन्दर की वायु निकाल लें तो वायु निकलते ही चमड़ा बड़े ज़ोर की आवाज़ के साथ फट जायगा। चमड़े के नीचे की वायु निकल जाने से ऊपर की वायु का दबाव ज़ियादह पड़ता है। इस कारण चमड़ा फट जाता है। बोतल में डाट लगा कर उसे रिसीवर के अन्दर रख दीजिए और रिसीवर की हवा निकाल लीजिए तो बोतल के अन्दर की वायु के फैल कर बाहर निकलने से डाट उछल कर दूर जा गिरेगी। एक अण्डा लीजिए। उसमें एक छेद कीजिए। उसे सीधा खड़ा करके (जिसमें छेद ऊपर रहे) रिसीवर की वायु निकाल लीजिए तो अण्डे के अन्दर का पानी फौवारे की तरह बाहर उछलेगा। कारण वही है जो बोतल से काग निकल जाने का है। एक चमड़े या रबड़ का फुकना लेकर उसमें थोड़ी सी हवा भर कर मुँह बाँध दीजिए और रिसीवर में रख कर हवा निकाल लीजिए तो फुकना खूब फूल जायगा। सम्भव है कि फट भी जाय।

गुनगुना पानी वायु-शून्य स्थान में रखने से भाफ बन कर उड़ जाता है। पहाड़ों पर खाद्य पदार्थों के आग पर न गलने का यही कारण है। पहाड़ों पर उँचाई के कारण वायु बहुत हलकी होती है। इसलिए वहाँ जब कोई वस्तु पकाने के लिए पानी मिला कर आँच पर रक्खी जाती है तब थोड़ी ही गरमी पाने से पानी भाफ बन कर उड़ने लगता है। वह गरमी की उस मात्रा (Temperature) को नहीं पहुँचता जो उस वस्तु को गलाने के लिए आवश्यक है। आप चाहे जितनी आँच दें कुछ फल न होगा। किन्तु पानी और शीघ्रता से भाफ बनना आरम्भ हो जायगा। इस के लिए केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक उपाय है। वह यह कि वायु का दबाव और ज़ियादह किया जाय। पेपिन साहब ने एक ऐसा यन्त्र बनाया है जो ऊँचे स्थानों पर भोजन आदि पका सकता है। इस यन्त्र का नाम है—पेपिन्स डाईजस्टर (Papin's Digester) वायु-शून्य स्थानों में यदि आप के कान के पास तोप भी दाग़ी जाय तो भी आपको ख़बर न हो। वायु ही शब्द को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाती है। वायु-शून्य स्थान में धुवाँ ऊपर न जाकर नीचे उतरता है।

जहाँ वायु न हो वहाँ चुम्बक का लोहे पर कुछ असर नहीं पड़ता—अर्थात् वह लोहे को नहीं खींच सकता। रिसीवर में चुम्बक और लोहा रख कर वायु निकाल कर देख लीजिए। चुम्बक कभी लोहे को न खींचेगा।

वायु-शून्य जगह में भोजन आदि खाने की चीज़ें बहुत दिन तक ख़राब नहीं होतीं। यूरप, अमेरिका आदि से जो खाने पीने की चीज़ें आती हैं वे सब वायु-शून्य टीनों के डब्बों में रख कर भेजी जाती हैं। यही कारण है कि वे महीनों रक्खी रहने पर भी नहीं बिगड़तीं।

आटो साहब ने इस सिद्धान्त को कि वायु का दबाव चारों ओर से पड़ता है—सिद्ध करने के लिए एक पीतल का गोला बनाया था। वह गोला डिबिया की तरह दो भागों में खुलता और बन्द होता था। उसका व्यास चार इञ्च था। उसके एक ओर पीतल की टोंटी थी। इस टोंटी में एक चाभी भी लगी थी, जिसके कस देने से गोले के अन्दर की वायु आ, जा नहीं सकती थी। उन्होंने गोले को अच्छी तरह बन्द करके उसके अन्दर की वायु निकाल ली और चाभी कस दी। उसको खोलने के लिए कई बलिष्ठ आदमी लगे, परन्तु वह न खुला। तब उसमें घोड़े जोते गये। घोड़े भी एक दो नहीं, पूरे बारह। छः एक ओर और छः दूसरी ओर। तब जाकर कहीं वह गोला खुला। विज्ञान, तेरी महिमा अतर्क्य है!

विश्वम्भरनाथ शर्म्मा।

ग्राम-गौरव।

कपट-कलह-ईर्ष्या-पाप-पाखण्ड युक्त—
व्यसन-विषय से हो सर्वथा ही विमुक्त,
सदन शुचि सुधा के, शान्ति-सारल्य-धाम
नित चित किसके ये मोहते हैं न ग्राम॥ १॥
विषमय न यहाँ है स्वार्थ का घाव घोर;
श्रुति-कटु न यहाँ है शान्ति का शत्रु शोर।
वन, गिरि, झरने हैं शान्तिदायी विचित्र;
अतिसुखद सदा है ग्राम का वास मित्र॥ २॥
सरल-हृदय होते ग्रामवासी किसान;
श्रमरत श्रमजीवी सच्चरित्र-प्रधान।
सुखयुत रहते वे अल्प में तुष्टि मान,
लघु धन-महिमा में, सद्गुणों में महान॥ ३॥

पाण्डेय लोचनप्रसाद।

आत्मा और अन्तःकरण।

पुराने शास्त्र-वेत्ताओं ने आत्मा की परिभाषा कई प्रकार से की है। मनुष्य-शरीर में उसका वास भी अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार भिन्न भिन्न स्थान में उन्होंने बताया है। कोई कहता है कि आत्मा का वास हृदय में है। ज्ञान-स्वरोदय के माननेवालों का सारा मत इसी बात पर अवलम्बित है। कोई इसका वास मस्तिष्क में मानते हैं। इन पुरातन शास्त्रानुयायियों से यदि हम आत्मा, मन और प्राण की परिभाषा पूछें तो ये लोग सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सकते। केवल कबीर की एक आध साखी, या दादू का कोई दोहा, या सुन्दरदास का कोई कवित्त सुना कर टालमटोल कर देते हैं। वास्तव में इन लोगों को आत्मा, मन और प्राण इन तीनों का भेद अच्छी तरह ज्ञात नहीं।

जबसे वैज्ञानिक शास्त्र का विस्तार होने लगा और विज्ञान की शाखायें संसार के कोने कोने में फैलने लगीं तबसे इन उलझनों को सुलझाने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्ग खुल सा गया। इस समय आत्मा के विषय में सारे संसार के विज्ञानवेत्ता एकमत हैं। उनका जो कुछ मत है वही आज सरस्वती के पाठकों को सुनाया जाता है।

सरस्वती की जनवरी मास की संख्या में हमने एक छोटा सा लेख पुनर्जीवन पर लिखा था। उसमें हमने "जीव" को "जीवनाधार पदार्थ" (Protoplasm) का गुण सिद्ध करने का प्रयत्न किया था, तथा साथ ही यह भी लिख दिया था कि यही मत समस्त संसार के निष्पक्षपात वैज्ञानिकों का भी है। धार्मिक-पक्षपातपूर्ण शास्त्रवेत्ता, अथवा लोकापवाद से डरनेवाले वैज्ञानिक विज्ञान के सिद्धान्तों को घसीट कर पुराने विश्वासों की पुष्टि करने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु इनका यह उद्योग सर्वथा असम्मत है, क्योंकि ये लोग सत्य का पूर्ण सञ्चार होने में विघ्न डालते हैं।

आत्मा कोई वस्तु नहीं। न दीपक की ज्योति के समान वह कोई आन्तरिक प्रकाश है जिसकी खोज योगी लोग करते हैं; न कोई अनहद नाद है जिसे सुनने का प्रयत्न, आँखें बन्द करके और एकाग्रचित्त हो कर किया जाय; न शरीर में उसके वास के लिए कोई स्थल ही निर्दिष्ट है।

लोग प्रश्न कर सकते हैं कि यदि तुम आत्मा को नहीं मानते तो तुम्हारे शरीर के भीतर "मैं" कहने वाला कौन है। तुम्हारे और हमारे भीतर "मेरा हाथ", "मेरा पैर," "मेरी स्त्री," "मेरा पुत्र" कहने वाला कौन है? यह "मैं" क्या चीज़ है? क्या "मैं" शरीर के किसी अवयव का नाम है? इन सबका उत्तर बड़ा आसान है और वही उत्तर आत्मा की परिभाषा है।

आत्मा—Soul.

जबसे मनुष्य या अन्य जीव इस संसार में जन्म लेता है तबसे उसकी इन्द्रियाँ—आँख, कान, नाक, स्नायुतन्तु इत्यादि—अपना अपना काम करने लगती हैं। बल्कि यह कहना अनुचित न होगा कि गर्भ में ही इन इन्द्रियों में से कुछ इन्द्रियाँ अपना अपना कर्त्तव्य करने लगती हैं। हम पाठकों की आसानी के लिए जन्म-काल से आरम्भ कर "आत्मा" की उत्पत्ति पर विचार करते हैं। जब बालक का जन्म हो गया और उसकी इन्द्रियाँ अपना अपना काम करने लगीं तब देशकाल (Environments) के अनुसार आत्मा और अन्तःकरण भी बनने लगे। जिस घर में जिस समय बालक उत्पन्न हुआ, उस घर में उस समय होने वाली वस्तुओं का ज्ञान उसको अपनी इन्द्रियों द्वारा होने लगता है। इन सब ज्ञानों का "सङ्गठन" (Sum Total) ही "आत्मा" या "मैं" बन जाता है। विषय गम्भीर है, इस लिए हम यहाँ पर मामूली शब्दों का ही व्यवहार करके पाठकों को समझाते हैं। मान लीजिए कि एक ब्राह्मण के घर बालक का जन्म हुआ। बालक उत्पन्न होते ही "मनुष्य की आत्मा" धारण करता है। अर्थात् उसे दृष्टिगत, स्पर्शगत, अथवा कर्णगत इत्यादि अनुभव पहले होते हैं—और जातिगत ज्ञान बहुत काल पीछे होता है। जैसे जैसे अपनी इन्द्रियों से उसे वस्तु-विशेष का ज्ञान होता जाता है वैसे ही वैसे उसकी "आत्मा-विशेष" भी बनती जाती है। इसी लिए देखा जाता है कि रंग-रूप को छोड़ कर जन्म-समय ब्राह्मण और चमार के बालक में कोई फ़र्क नहीं होता है। किन्तु ज्यों ज्यों वे लोग बढ़ते हैं तथा इन्द्रिय द्वारा देशकाल के अनुसार संसार की झाँई उनके मस्तिष्क पर पड़ती है तैसे तैसे उनमें भिन्नता आती जाती है। यह बात केवल भिन्न जातिवालों में ही नहीं होती, किन्तु एक ही समय में एक ही माता के गर्भ से पैदा होने वाले दो बालकों में भी होती है। क्योंकि यद्यपि उनमें देशकाल (Environments) एक से हैं, किन्तु इन्द्रियाँ अपनी अपनी भिन्न भिन्न हैं। तथा इन इन्द्रियों की सूक्ष्म बनावट में भी कुछ फ़र्क होता है। जब ये बालक बढ़ते हैं और वस्तु-विशेषों का संयोग इनसे विशेष काल तक होता है तब इनको ये "अपना" कह कर पुकारते हैं। जब इनका पिता मेले-तमाशे से ला कर इनको खिलौने देता है तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक बालक अपने अपने खिलौने को अपनी ही आँखों से देखता और अपने ही हाथों से स्पर्श करता है। उसी ज्ञान की तसवीर मस्तिष्क पर अङ्कित हो कर आत्मा और आत्मीय पदार्थ का भाव उत्पन्न कर देती है। कोई कोई वस्तु तो क्षण भर के ही स्पर्श-ज्ञान से अपनी बन जाती है। जैसे किसी के हाथ में दी हुई रोटी। जहाँ वह उसके हाथ में गई कि उस की हो गई। इस प्रकार हमारी इन्द्रियाँ प्रति दिन हमारी आत्मा को बनाने का कारण हुआ करती हैं। जैसे जैसे देशाटन, विद्याध्ययन, तथा कार्यविशेष में हम प्रवृत्त होते हैं वैसे ही वैसे हमारी आत्मा या हमारा "मैं" भी परिवर्त्तित होता जाता है।

आत्मा कोई वस्तुविशेष या ईश्वरदत्त शक्ति-विशेष नहीं; किन्तु हमारी इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञानों की एक गठरी है। (It is the sum total of the impressions that the brain receives through the various sensory channels.)

अन्तःकरण—Conscience.

यह बात सर्वथा असङ्गत है कि अन्तःकरण ईश्वर ने केवल मनुष्य को ही सब पशुओं से श्रेष्ठ जान कर दिया है। अर्थात् भला-बुरा पहचानने की शक्ति केवल मनुष्य ही रखता है। जितने जीव संसार में हैं उन सबको उनकी दिमाग़ी पुष्टि के अनुसार भला बुरा जानने का ज्ञान देश, काल तथा सामाजिक स्थिति के कारण अनुभव से प्राप्त होता है। मनुष्य में ही विचार-शक्ति और बुद्धि नहीं है, किन्तु अन्य जीवों में भी है। कौन नहीं जानता है कि बन्दर, बिल्ली या कुत्ता इत्यादि पशु जब चोरी से कोई चीज़ उठाने जाते हैं तब इधर उधर देखते रहते हैं और तनिक भी आहट सुनने पर भाग जाते हैं। इसके विरुद्ध जब वही वस्तु उनको मालिक से मिलती है और वे अपने स्थान पर निर्भय खाते हैं तब किसी आदमी के आने और धमकाने पर उलटा वे उसे घुड़की दिखाते हैं।

अन्तःकरण और भला बुरा पहचानने की शक्ति अनुभव से प्राप्त है। वह ईश्वरदत्त नहीं। जिस देश में, जिस काल में, जिस धर्म में मनुष्य उत्पन्न होता है उसी देश, काल, धर्म्म तथा समाज के नियमों का उसे पालन करना पड़ता है। नियमों में त्रुटि होने से उसे दण्ड मिलता है। इसी दण्ड के भय से उसे शनैः शनैः यह मालूम होजाता है कि क्या उचित है और क्या अनुचित। क़ानून एक से होने पर भी, सभ्य देशों और सभ्य जातियों के मनुष्यों के भी अन्तःकरण में फ़र्क़ पाया जाता है। यदि हम एक छोटे से गाँव को ही देखें, जहाँ सब जातियाँ रहती हों, तो हमें मालूम होगा कि मदिरा की बोतल भरे बाज़ार लेजाते ब्राह्मण घबराता है। किन्तु चमार उसे बाज़ार में खड़े होकर पीने से भी नहीं हिचकता। यदि किसी जैनमतावलम्बी या अन्य "अहिंसा परमो धर्मः" वालों से एक चिऊँटी जान बूझ कर मर जाय तो उनका कलेजा धक धक करने लगता है। किन्तु उसी स्थान में उनका पड़ोसी भूरेखाँ कसाई रोज़ बीसों भेड़ों की गरदन पर ख़ुशी से छुरी चलाता है। यदि अन्तःकरण ईश्वरदत्त है तो क्यों वह सब मनुष्यों में एक सा नहीं? यह तो हुई इन छोटी छोटी ग़लतियों की बात।

यदि हम महापापों की ओर निगाह डालें जिनका स्मरण करते ही हमारा दिल थर्रा जाता है, जैसे नरहत्या, परस्त्रीगमन, चोरी—इत्यादि तो इनके विषय में भी, पृथ्वी-पर्य्यटन करने वाले लोगों से मनुष्य-भक्षी जातियों की कहानियाँ सुनकर हमारा विश्वास अन्तःकरण पर से एक दम उठ जाता है। यद्यपि मनुष्य-हत्या पाप है किन्तु ये मनुष्य-भक्षी लोग अपने बूढ़े मा-बापों को आनन्द से खाते हैं और पड़ोसियों की दावत करते हैं। इसी तरह चोरी और परस्त्रीगमन को भी दक्षिणी अमेरिका के जङ्गली लोग पाप नहीं समझते। इन सब बातों से यही सिद्ध होता है कि अन्तःकरण सामाजिक, सामयिक तथा दैशिक है और वह अनुभव से प्राप्त है। जिस देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में, जिस काल में, जिस समाज में हम रहते हैं उस देश, काल, तथा समाज की घटनाओं के अनुसार ही हमारा अन्तःकरण बन जाता है। गिरजा-घर में जूता पहने जाना पाप नहीं है, किन्तु टोपी सिर पर रखना गिरजाघर की तौहीन है। परन्तु हिन्दू-मन्दिर में जूता पहन कर जाना मना है। इस तरह के सैकड़ों दृष्टान्त और भी दिये जा सकते हैं, जिनसे स्पष्टतया सिद्ध होता है कि अन्तःकरण ईश्वरीय दान नहीं, किन्तु मानुषिक अनुभव से प्राप्त हुई चीज़ है।

रामनारायण शर्मा, एल० एम० एस०

जनसंख्या की वृद्धि से भारत की हानि।

(२)

यह तो पाठकों को विदित ही हो गया होगा कि अन्ततोगत्वा भोजन की सामग्री का अभाव ही जन-संख्या की वृद्धि में रुकावट पैदा करता है। किन्तु भोजन के अभाव के अतिरिक्त और भी कई कारण हैं जो जन-संख्या की निःसीम वृद्धि रोकने में सहायता किया करते हैं। वे कारण बुरे रस्म-रिवाज़, प्लेग आदि बीमारियाँ, और व्यभिचार आदि हैं। इन सब कारणों से मनुष्य का शरीर निर्बल हो कर बहुत जल्द मौत के पंजे में फँस जाता है।

जन-संख्या की वृद्धि रोकनेवाले जितने कारण हैं उनके तीन भाग किये जा सकते हैं:—(१) इन्द्रिय-दमन, (२) दुराचार, (३) दैवी और मानुषी विपत्तियाँ।

(१) विवाह न करके पवित्र और दुराचार-रहित जीवन व्यतीत करना ही इन्द्रियदमन या ब्रह्मचर्य कहलाता है। यह एक ऐसा गुण है जो मनुष्य को छोड़ कर अन्य प्राणियों में नहीं पाया जाता। यह गुण उस विवेक-शक्ति का परिणाम है जिससे मनुष्य अपने कार्यों के भावी शुभाशुभ परिणाम को सोच सकता है। उसके पास कितनी पूँजी है? उसकी आमदनी कितनी है? जितना धन वह आज कल अपने आराम के लिए केवल अपने शरीर पर ख़र्च करता है, सन्तान उत्पन्न होने पर वही शायद आदमियों में क्या न बट जायगा? विवाह करने पर समाज में उसे किसी तरह का अनादर तो न सहना पड़ेगा और अपनी पुरानी आदतों को तो न छोड़ना पड़ेगा? रोटी कमाने के लिए उसे अधिक शारीरिक परिश्रम तो न करना पड़ेगा? क्या वह अपनी भावी सन्तान की शिक्षा आदि का उचित प्रबन्ध करने के योग्य है अथवा नहीं? और, क्या उसकी स्वतन्त्रता में किसी तरह का धक्का तो न लगेगा? ये सब, और इनके समान और अनेक विचार हर एक सभ्य जाति में बहुत मनुष्यों को विवाह करने से रोकते रहते हैं।

यदि विवाह न करने पर मनुष्य दुराचार से पराङ्मुख और पवित्र बना रहा तो इससे बढ़ कर और कोई बात मनुष्य को सुखी नहीं बना सकती। अलबत्ता इन्द्रियदमन से कुछ न कुछ क्षणिक कष्ट अवश्य होता है; किन्तु यह क्षणिक कष्ट उन कष्टों के मुक़ाबले में कुछ भी नहीं जो जन-संख्या की वृद्धि को रोकने वाले प्लेग आदि अनेक कारणों से उत्पन्न होते हैं।

(२) विवाह न करके भी अपनी विषयवासना शान्त करना इन्द्रियदमन या ब्रह्मचर्य नहीं कहलाता। वह जो कुछ कहलाता है उसका नाम तक लेते सङ्कोच होता है। मनुष्यों को पशुवत् नीच बनाने वाली और उन्हें अल्पायु करनेवाली और कोई चीज़ संसार में उससे बढ़ कर नहीं। मनु महाराज ने कहा है:—

नहीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥

जब किसी देश के मनुष्यों में इस तरह का दुराचार अधिक हो जाता है—जब वे स्त्रियों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पवित्र दृष्टि से देखना बन्द कर देते हैं—तब परिणाम यह होता है कि उनके गार्हस्थ सुख के मूल ही में कुठारघात हो जाता है, दाम्पत्य प्रेम तथा अपत्य-स्नेह का नाश हो जाता है, और माता-पिता अपने पुत्रों की शिक्षा और चरित्र की ओर कम ध्यान देने लगते हैं। कुछ दिन तक यदि यही दशा रहती है तो समाज छिन्न भिन्न हो जाता है। धर्म और सुख के स्थान पर अधर्म और दुःख का राज्य हो जाता है। अधर्म और दुःख से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं जिनसे समाज जर्जरित हो जाता है। मनुष्यों में सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति का ह्रास होता है। लोग अल्पायु होते हैं। इन सब बातों का परिणाम जन-संख्या की क्षीणता के सिवा और क्या हो सकता है।

(३) वे विपत्तियाँ, जो प्रकृति के अनिवार्य नियम के अनुसार मनुष्यों को सहनी पड़ती हैं—जैसे प्लेग, क़हत इत्यादि, दैवी विपत्तियाँ कहलाती हैं। मानुषी विपत्तियाँ वे विपत्तियाँ हैं जिनको लोग अपनी कर-तूत से अपने ऊपर लाते हैं—जैसे युद्ध और अत्यधिक परिश्रम, जिससे मनुष्य अल्पायु हो जाता है।

हर देश में ऊपर लिखे गये अनेक कारणों में से कोई न कोई कारण सर्वदा विद्यमान रहते हैं और उस देश की जन-संख्या की निःसीम वृद्धि को रोका करते हैं। जैसे माली अपने बाग़ की काट-छाँट किया करता है वैसे ही ये सब कारण भी आबादी को काटछाँट कर उसी संख्या तक लाने में लगे रहते हैं जिस संख्या तक के भरण-पोषण के लिए अन्न मौजूद हो।

ऊपर लिखे गये मालथ्यूज़ साहब के मत का थोड़े से शब्दों में निष्कर्ष यह है कि :—

(१) आबादी अवश्यमेव उसी संख्या तक परिमित रहेगी जिस संख्या तक के भोजन के लिए अन्न मौजूद है।

(२) जन-संख्या अन्न की वृद्धि के साथ ही साथ बढ़ेगी।

(३) जन-संख्या की निःसीम वृद्धि को रोकने और उसे एक नियत संख्या के भीतर रखनेवाले कारण हैं:—

(१) इन्द्रिय-दमन, (२) दुराचार, (३) दैवी और मानुषी विपत्तियाँ।

जनार्दन भट्ट।

उपासनापञ्चक।

अजन्मा न आरम्भ तेरा हुआ है।
किसी से नहीं जन्म मेरा हुआ है॥
रहेगा सदा अन्त तेरा न होगा।
किसी काल में नाश मेरा न होगा॥
खिलाड़ी खुला खेल तेरा रहेगा।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा॥ १॥
अजा को अकेली न तू छोड़ता है।
मुझे भी जगज्जाल में जोड़ता है॥
न तू भोग भोगे बना विश्व योगी।
किया कर्म योगी मुझे भोग-भोगी॥
निराला न तेरा बसेरा रहेगा।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा॥ २॥
निराकार आकार तेरा नहीं है।
किसी भाँति का मान मेरा नहीं है॥
सखा सर्व-संघात से तू बड़ा है।
मुझे तुच्छता में समाना पड़ा है॥
उजाला रहेगा अँधेरा रहेगा।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा॥ ३॥
अनेकत्व होगा न एकत्व तेरा।
न एकत्व होगा अनेकत्व मेरा॥
न त्यागे तुझे शक्ति सर्वज्ञता की।
लगी है मुझे व्याधि अल्पज्ञता की॥
दुई का घटाटोप घेरा रहेगा।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा॥ ४॥
तुझे बन्ध-बाधा सताती नहीं है।
मुझे सर्वदा मुक्ति पाती नहीं है॥
प्रभो शङ्करानन्द आनन्ददाता।
मुझे क्यों नहीं आपदा से छुड़ाता।
दया दान का दीन चेरा रहेगा।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा॥ ५॥

नाथूराम शङ्कर शर्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरामानुजसम्प्रदाय ।*

स समय वैष्णवों में नीचे लिखे हुए चार सम्प्रदाय मुख्य माने जाते हैं। रामानुजसम्प्रदाय, विष्णुस्वामीसम्प्रदाय, मध्वाचार्यसम्प्रदाय और निम्बार्कसम्प्रदाय। वैष्णवधर्म की अन्यान्य आधुनिक शाखा-प्रशाखायें इन्हीं चार सम्प्रदायों के अन्तर्गत गिनी जाती हैं। पद्मपुराण में लिखा है :—

सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते निष्फला मताः।
अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः॥
श्रीमध्वरुद्रसनका वैष्णवाः क्षितिपावनाः।
चत्वारस्ते कलौ देवि सम्प्रदायप्रवर्तकाः॥

अर्थात् जो मंत्र सम्प्रदायहीन हैं वे निष्फल हैं। इस लिए हे देवि, कलियुग में, सम्प्रदाय चलानेवाले चार पुरुष होंगे। श्री, मध्व, रुद्र और सनक नाम चार वैष्णव पृथ्वी पर उत्पन्न होकर चार सम्प्रदाय चलावेंगे। उनके जन्म से पृथ्वी पवित्र होगी।

ऊपर कहे गये चारों सम्प्रदायों की प्रामाणिकता प्रमाणित करने के लिए वैष्णव लोग इन्हीं दोनों श्लोकों को कहते हैं। इसके सिवा प्रमाणप्रमेयरत्नावली नामक ग्रन्थ में भी एक श्लोक है, जिसमें इन चारों सम्प्रदायों के चलानेवाले पुरुषों का नामोल्लेख देखा जाता है। वह श्लोक यह है :—

रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे मध्वाचार्यं चतुर्मुखः।
श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रो निम्बादित्यं चतुः सनः॥

अर्थात् लक्ष्मीदेवी ने रामानुज को, ब्रह्मा ने मध्वाचार्य्य को, रुद्र ने श्रीविष्णुस्वामी को, और सनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमार ने निम्बादित्य को स्वीकार किया।

अस्तु, ऊपर लिखे हुए चारों सम्प्रदायों में रामानुज-सम्प्रदाय प्रधान माना जाता है। इस सम्प्रदाय को श्रीसम्प्रदाय भी कहते हैं। इस सम्प्रदाय के चलाने वाले महात्मा रामानुज का जन्म दक्षिणापथ, अर्थात् भारत के दक्षिण खण्ड, में हुआ था। उसी तरफ़ उनका मत अधिक प्रचलित भी है। उस खण्ड में, विशेष कर उसके दक्षिण अंश में, वैष्णव आदि अन्यान्य पौराणिक और तान्त्रिक मतों का यथारीति प्रचार होने के पहले शैव धर्म्म का एकाधिपत्य था। दक्षिणापथ के भिन्न भिन्न स्थानों में प्रचलित अनेक कथाओं और किंवदन्तियों की आलोचना करने से यही सिद्ध होता है। पाण्ड्यराज्य और चोलराज्य के प्राचीन राजा परम शैव थे। उनके चरित्रों में भी उनके शैव होने का विशेष आभास मिलता है। उनमें से अनेक राजाओं ने शिवमूर्ति की प्रतिष्ठा की थी। शिवा और शिव ही उनके राज्य में ग्रामदेवता थे। ग्रीस देश के एरियन नाम ग्रन्थकार ने कन्याकुमारी का नाम केवल कुमारी लिख कर कहा है कि एक देवी के नाम पर इसका यह नाम रक्खा गया है। उक्त ग्रन्थकार के समय में भी इस स्थान पर कुमारी देवी की मूर्ति स्थापित थी। दुर्गा देवी का एक नाम कुमारी भी है। कुमारी देवी की मूर्ति अब तक उसी जगह पर मौजूद है। एरियन ईसा की दूसरी शताब्दी में वर्तमान था। इससे यह अवश्य ही अङ्गीकार करना पड़ता है कि १७-१८ सौ वर्ष पहले दक्षिण भारत में शिव-शक्ति की उपासना खूब प्रचलित थी। फिर धीरे धीरे अन्यान्य मत भी प्रचलित हुए। इसके बाद शकाब्द की सातवीं शताब्दी के अन्त, अथवा आठवीं शताब्दी के आरम्भ, में भगवान् शङ्कराचार्य का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने वेदान्त के प्रतिपाद्य अद्वैत मत का प्रचार किया। वे शिव का अवतार माने जाने लगे। उनकी सहायता से शैव सम्प्रदाय का विशेष अभ्युदय हुआ। जान पड़ता है, इसी लिए वैष्णव लोग अपने धर्म की पुष्टि और प्रसार के लिए तबसे विशेष यत्न करने लगे। शकाब्द की ग्यारहवीं शताब्दी में रामानुजाचार्य ने शैव धर्म

---

* इस लेख के लिखने में बाबू अक्षयकुमारदत्त की 'भारतवर्षीय उपासक सम्प्रदाय' पुस्तक से सहायता ली गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को दबाने के लिए अपने नाम से प्रसिद्ध वैष्णव-सम्प्रदाय चलाया। उसके बाद अन्यान्य वैष्णवसम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ। *

"स्मृतिकालतरङ्ग" के मत से १०४९ शकाब्द में और खोदी हुई प्राचीन लिपियों के प्रमाण से १०५० शकाब्द में रामानुज जी मौजूद थे। † कर्णाट-नरेशों के चरित्र-वर्णन में लिखा हुआ है कि चोलाधिपति त्रिभुवन चक्रवर्ती ४६० फ़सली में जीवित थे। रामानुजाचार्य उसी राजा के पुत्र वीरपाण्ड्य चोल के समसामयिक थे ‡। विल्क साहब अपने संग्रह किये हुए प्रमाणों से अनुमान करते हैं कि रामानुजजी ११०४ शकाब्द में जीवित थे §। रामानुज के समकालीन विष्णुवर्द्धन की १०५५ शकाब्द तक की अनेक खुदी हुई लिपियाँ पाई गई हैं ||। इन सब प्रमाणों में खुदी हुई लिपियों का प्रमाण सबसे अधिक माननीय जान पड़ता है। अतएव यह बात एक प्रकार से प्रमाणसिद्ध मानी जा सकती है कि शकाब्द की ग्यारहवीं शताब्दी के मध्यभाग में रामानुजाचार्य उत्पन्न हुए थे।

रामानुज का चरित्र दक्षिण-भारत में खूब प्रसिद्ध है। भार्गवपुराण में लिखा है कि रामानुज जी अनन्तदेव का अवतार हैं और उनके प्रधान प्रधान शिष्य विष्णु भगवान् के शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि के अवतार हैं। कनाड़ी भाषा में रामानुजाचार्य का जो जीवनचरित्र है उसका नाम है "दिव्यचरित्र"। उसमें भी रामानुजस्वामी शेषावतार लिखे गये हैं। मदरास के पश्चिमोत्तर अंश में अवस्थित पेरुम्बुर नामक स्थान इनकी जन्मभूमि थी। पिता का नाम केशवाचार्य और माता का नाम भूमिदेवी था। रामानुज जी ने काञ्चीपुर में शिक्षा पाई और पहले वहीं अपने मत का प्रचार उन्होंने किया। कुछ दिन तक श्रीरङ्गक्षेत्र में रहकर श्रीरङ्गनाथ भगवान् की उन्होंने उपासना की। श्रीरङ्गद्वीप त्रिचिनापल्ली के पास है। कावेरी नदी की गोद में यह टापू बहुत ही भला लगता है। वहाँ रहकर रामानुज स्वामी ने कई ग्रन्थ रचे। उसके बाद वे दिग्विजय के लिए निकले। भारत के अनेक प्रदेशों में भ्रमण करते हुए रामानुज ने पण्डितों से शास्त्रार्थ किया। अनेक पण्डित परास्त हुए। इसी समय वेङ्कटगिरि आदि स्थानों के शिवमन्दिरों पर रामानुज ने अपना अधिकार कर लिया। वेङ्कट-पर्वत मदरास से लगभग ३६ कोस उत्तर-पश्चिम कोने में है। रामानुज ने शिवमन्दिरों पर अधिकार करके उन्हें विष्णुमन्दिर बना दिया। वहाँ विष्णु की उपासना होने लगी।

यह सब काम करके जब रामानुजजी लौटे और श्रीरङ्गपत्तन आये तब वहाँ शैव और वैष्णवों में घोर विवाद होने लगा। उस समय चोलदेश का राजा परम शैव था। किसी किसी का मत है कि वह राजा प्रसिद्ध चोल-राज केरिकाल चोल ही था। वही बाद को कृमिकोण्ड चोल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सुना जाता है कि उस राजा ने अपने राज्य के सब ब्राह्मणों से एक स्वीकारपत्र लिखवा लिया कि—"हम देवदेव महादेव को प्रधान मानते हैं"। किन्तु रामानुज ने यह आज्ञा नहीं मानी। डराना और धमकाना व्यर्थ समझ कर राजा ने रामानुज को पकड़ लाने के लिए सेना भेजी। पर रामानुज अपने शिष्यों की सहायता से निकल गये और कर्णाट-देश के जैन राजा बेतालराय की शरण ली। लोग कहते हैं कि इस जैन राजा की एक कन्या थी। उसे ब्रह्मराक्षस सताता था। रामानुज ने ब्रह्मराक्षस की बाधा दूर कर दी और राजा को अपना शिष्य बना लिया। राजा की स्त्री को पहले ही से वैष्णव मत पर अनुराग था। इसी से राजा सहज ही में जैन से वैष्णव होगया *। तबसे बेतालदेव का नाम विष्णुवर्द्धन होगया। विष्णुवर्द्धन ने यादवगिरि में एक मन्दिर बनवाया। उसमें चवलराय नामक कृष्ण

* Journ., R. A. S., No. 6, pp. 204 and 206 देखो।
† Buchanan's *Mysore* देखो।
‡ Journ., A. S. B., Vol. 7, p. 128 देखो।
§ Wilk's *History of Mysore*, Vol. I, p. 141 देखो।
|| *Mackenzie's Collection*, p. cxi देखो।

* *Mackenzie's Collection*, p. cx. देखो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की एक मूर्ति स्थापित की। यादवगिरि को इस समय मैलकोट कहते हैं। मैसूरप्रदेश में श्रीरङ्गपत्तन से उत्तर, ६ कोस पर, यह स्थान है। रामानुजाचार्य इस मन्दिर में १२ वर्ष तक रहे। उसके बाद जब रामानुजाचार्य को ख़बर लगी कि वैष्णवविरोधी चोलराज मर गया तब वे कावेरी-तट-वर्ती श्रीरङ्ग-धाम को फिर चले आये। उन्होंने शेष जीवन, वहीं रह कर, धर्मप्रचार में व्यतीत किया।

दक्षिण में रामानुजसम्प्रदाय के अनेकानेक अखाड़े और गद्दियाँ हैं। हर एक गद्दीधर का प्रधान शिष्य गुरु के बाद गद्दी पाता है। उत्तरखण्ड के आचार्यों की अपेक्षा दाक्षिणात्य आचार्य प्रधानतर समझे जाते हैं। बकानन साहब ने दाक्षिणात्य लोगों से जो कुछ जाना है उससे पता लगता है कि रामानुजाचार्य ने ७०० मठ स्थापित किये थे। उनमें से इस समय केवल ४ मठ मौजूद हैं। दक्षिण बदरिकाश्रम, अर्थात् मैलकोट, में रामानुजाचार्य का एक प्रधान मठ है। इसके सिवा रामानुजाचार्य ने ७४ गुरुओं की सृष्टि की है। रामानुज-सम्प्रदाय के लोग इन्हीं ७४ गुरु-द्वारों में से किसी एक के चेले होते हैं। ये आचार्य अथवा गुरुगण अपनी प्रधानता स्थापित करने के लिए वैष्णव-संन्यासियों से अब तक झगड़ा किया करते हैं। किन्तु सर्वसाधारण में संन्यासियों की ही प्रधानता है। बकानन साहब ने एक जगह पर यह भी लिखा है कि रामानुजाचार्य ने सब मिला कर ८९ गुरु-पद स्थापित किये थे। उनमें ८४ गृहस्थ और ५ संन्यासी थे। तोताद्रि, रामेश्वर, श्रीरङ्ग, काञ्ची और अहोबालेम ये पाँच मठ संन्यासियों के हैं।

श्रीसम्प्रदाय के वैष्णव लोग विष्णु और लक्ष्मी की, तथा उनके अवतारों की भी, अलग अलग और युगलरूप से भी उपासना करते हैं। इस एक सम्प्रदाय में भी ख़ूब मतभेद है। कोई नारायण की, कोई लक्ष्मी की, कोई लक्ष्मीनारायण की, कोई राम की, कोई सीता की, कोई सीताराम की, कोई कृष्ण की, कोई रुक्मिणी की, कोई कृष्ण-रुक्मिणी की, कोई विष्णु के अन्य अवतारों की अथवा उनकी शक्तियों की आराधना करते हैं। इस प्रकार भिन्न भिन्न इष्ट-देव की उपासना करने से श्रीवैष्णवों में भी अनेक श्रेणियाँ हो गई हैं।

भारत के उत्तर भाग—आर्यावर्त—में श्रीसम्प्रदाय का विशेष ज़ोर नहीं है। यद्यपि श्रीसम्प्रदाय के गुरुओं के लिए संन्यास ग्रहण करना वैसा ज़रूरी नहीं है तथापि इस तरफ़ के श्रीवैष्णव प्रायः संन्यासी हैं। ब्राह्मण के सिवा अन्य जाति को दीक्षागुरु होने का अधिकार नहीं है; किन्तु शिष्य सब हो सकते हैं। केवल जारज सन्तान को मन्त्र लेने का अधिकार नहीं है।

इस सम्प्रदाय के वैष्णवों ने जगह जगह मन्दिर बनवा कर उनमें विष्णु, लक्ष्मी, राम, कृष्ण आदि की मूर्तियाँ स्थापित की हैं। दक्षिण में लक्ष्मीबालाजी, रामनाथ और रङ्गनाथ, उत्कल में जगन्नाथ, हिमालय में बदरीनाथ, गुजरात में द्वारका आदि तीर्थस्थानों में अनेक विष्णु-मूर्तियाँ स्थापित हैं। इस सम्प्रदाय के गृहस्थों के घर में भी नित्य देवसेवा होती है। ये लोग मन्दिर में, या घर में ही, पाषाण या धातु की मूर्तियाँ और शालग्राम-शिला रखते हैं। इनके यहाँ तुलसी का वृक्ष भी अवश्य रहता है। श्रीवैष्णव सूती कपड़ा पहन कर भोजन नहीं करते। नहाने के बाद रेशमी या ऊनी वस्त्र धारण करते हैं। पराया अन्न नहीं खाते; अपने ही हाथ से पकाते हैं। आचार्य लोग जिस शिष्य पर बड़ी कृपा करते हैं उसके यहाँ भोजन करते हैं। रसोई बनाते या भोजन करते समय दूसरे की दृष्टि पड़ जाने पर उसी समय रसोई बनाना या भोजन करना ये बन्द कर देते हैं और खाने की सामग्री फेंक देते हैं। इन लोगों की दो श्रेणियाँ हैं—एक आवरणी दूसरी अनावरणी। जो लोग ऊपर लिखी हुई प्रथा के अनुयायी हैं वे आवरणी हैं और जो इस नियम को नहीं मानते वे अनावरणी हैं।

मन्त्र लेना सभी उपासकों के लिए एक गोपनीय और प्रधान क्रिया है। श्रीवैष्णव लोग "ओं रामाय नमः" इस मन्त्र की दीक्षा लेते हैं। इनके हर सम्प्र-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दाय में विषयी और धर्मव्रती दो तरह के लोग हैं। जब कोई धर्मव्रती या विषयी श्रीवैष्णव अन्य किसी धर्मव्रती को देखता है तब "दासोऽस्मि" या "दासोऽहम्" कह कर प्रणाम करता है। आचार्यों को सब लोग साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं।

तिलक-सेवा वैष्णवों का एक मुख्य साधन है। वे ललाट, कण्ठ, वामबाहु, दक्षिणबाहु, हृदय, नाभि, वामपार्श्व, दक्षिणपार्श्व, वाम-कर्ण-मूल, दक्षिण-कर्ण-मूल, सिर और पीठ—इन बारह अङ्गों में गोपीचन्दन और अन्यान्य मिट्टियों से तरह तरह के तिलक लगाते हैं। द्वारका का गोपीचन्दन सबसे उत्तम समझा जाता है। श्रीवैष्णव लोग मस्तक पर दो खड़ी रेखायें बना कर उनके नीचे एक आड़ी रेखा से उन्हें मिला देते हैं। दोनों खड़ी रेखाओं के बीच में रोली या रामरज से एक और छोटी खड़ी रेखा लगाते हैं :—

यदूर्द्ध्वपुण्ड्रं तिलकं शोभनं तन्मनोहरम्।
तन्मध्यपीतरेखञ्च श्रीमद्रामानुजं विदुः ॥*

श्रीवैष्णव लोग इसके सिवा हृदय और दोनों बाहुओं में गोपीचन्दन से शंख, चक्र, गदा, पद्म बनाते हैं और इन शंख आदि के बीच में रोली की एक रेखा लगाते हैं। यह रेखा श्री का स्वरूप है। काशीखण्ड में भी वैष्णवों के इस आचार का बहुत माहात्म्य लिखा हुआ है :—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा यदि वेतरः।
विष्णुभक्तिसमायुक्तो ज्ञेयः सर्वोत्तमश्च सः ॥
शंखचक्राङ्कितनुः शिरसा मञ्जरीधरः।
गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो दृष्टश्चेत्तदघं कुतः ॥

श्रीवैष्णवों के पास शंख-चक्रादि के लकड़ी या पीतल के छापे रहते हैं। उन्हीं चन्दनादि लिप्त छापों को लगा कर वे शरीर को पवित्र करते हैं। बहुत से वैष्णव पीतल या लोहे के छापों को गरम करके शरीर पर सदा के लिए अङ्कित कर लेते हैं। किन्तु यह कार्य सर्वसम्मत नहीं है। इस विषय में लिखा है :—

तथा हि तप्तशंखादिलिङ्गचिह्नतनुर्नरः।
स सर्वपातकाभोगी चाण्डालो जन्मकोटिभिः ॥
तं द्विजं तप्तशङ्खादिलिङ्गाङ्किततनुं हर।
सम्भाष्य रौरवं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥

(बृहन्नारदीय-पुराण)

शरीर में तप्त मुद्रा लगाने की प्रथा दक्षिण में अधिक प्रचलित है। पहले क्रिश्चियन लोग भी ऐसा ही करते थे। वे दीक्षा लेते समय खूब तपे हुए लोहे से ललाट पर क्रूस का चिह्न अङ्कित करते थे *।

---

* यह पद्मपुराण के उत्तर-खण्ड का वचन शब्दकल्पद्रुम में उद्धृत किया गया है। इस श्लोक में रामानुज का नाम आया है। जो लोग पुराणप्रणेता महोदय को भ्रम-शून्य भविष्यद्वक्ता मानने के लिए नहीं तैयार हैं वे अवश्य ही कहेंगे कि पद्मपुराण का उत्तर-खण्ड, रामानुजसम्प्रदाय चल निकलने के बाद, अर्थात् शकाब्द की ग्यारहवीं शताब्दी में, अथवा उसके कुछ काल उपरान्त, बनाया गया है। यह बात प्रमाणित करने के लिए और भी श्लोक उद्धृत किये जा सकते हैं। इसी खण्ड के छब्बीसवें अध्याय में तिलक के लिए वेङ्कटगिरि की मिट्टी सर्वोत्तम बताई गई है—

आदाय परया भक्त्या वेङ्कटाद्रौ ह्रदे मृदम्।
धारयेदूर्द्ध्वपुण्ड्राणि हरिसालोक्यसिद्धये ॥

इसके आगे कई अध्यायों के बाद यह बतलाया गया है कि किस किस जगह विष्णु की प्रधान मूर्तियाँ हैं। इसमें भी वेङ्कटगिरि का और वहाँ की विष्णुमूर्ति का उल्लेख है। किन्तु इसी लेख में पहले कहा जा चुका है कि रामानुजाचार्य के पहले वेङ्कटगिरि पर शिव की मूर्ति स्थापित थी; रामानुज ने जा कर विष्णु की मूर्ति स्थापित की और उनकी उपासना चलाई। अतएव मानना पड़ेगा कि जिन सब वचनों या स्थलों में वेङ्कटगिरि, विष्णुपूजा और विष्णुमाहात्म्य का स्थान बतलाया गया है वे रामानुज के उपरान्त या उनके ही समय में निर्म्मित हुए हैं। अर्थात् लिखे हुए वचन या तो प्रक्षिप्त हैं, या पद्मपुराण का उत्तर-खण्ड श्रीसम्प्रदाय स्थापित होने के उपरान्त बनाया गया है। दो में से एक बात अवश्य माननी पड़ेगी। लेखक।

* A similar practice seems to have been known to some of the early Christians, and baptizing with fire was stamping the Cross on the forehead with a hot iron.—Wilson's *Hindu Sects.*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैष्णव लोग गले में तुलसी की माला पहनते हैं। जप में तुलसी या कमलगट्टे की माला का व्यवहार करते हैं। वेदार्थसंग्रह, वेदान्तसार, वेदान्तप्रदीप, गीताभाष्य, रामानुजकृत ब्रह्मसूत्रभाष्य—ये सब वेदार्थविषयक संस्कृत-ग्रन्थ इनके प्रधान प्रामाणिक शास्त्र हैं। इनके सिवा स्तोत्रभाष्य, शतदूषणी आदि वेङ्कटाचार्य की बनाई पुस्तकों और चण्डमारुत, वैदिक त्रिंशत् ध्यान, पञ्चरात्र आदि अन्यान्य ग्रन्थों को भी ये लोग प्रामाणिक मानते हैं। पुराणों में ये लोग विष्णुपुराण, नारदीयपुराण, गरुड़पुराण, पद्मपुराण, वराहपुराण और श्रीमद्भागवत को प्रामाणिक मानते हैं। पद्मपुराण में लिखा है कि ये छः पुराण सात्विक हैं। शेष बारह पुराणों को राजसिक और तामसिक मान कर ये लोग स्वीकार नहीं करते। इन सब संस्कृत-ग्रन्थों के सिवा दक्षिण की भाषाओं में रामानुजसम्प्रदाय के बहुत से ग्रन्थ हैं। उनमें से गुरुपर नामक ग्रन्थ में रामानुज का जीवन-चरित है।

अब हम संक्षेप में इनके मत का सारांश लिख कर इस लेख को समाप्त करते हैं। इनके मत में पदार्थ तीन प्रकार के हैं:—चित्, अचित् और ईश्वर। जीवात्मा को चित् कहते हैं; वह भोग करने वाला और नित्य-चेतन-स्वरूप है। अचित् जड़ जगत् है और उसके तीन विभाग हैं:—भोग्यवस्तु—अन्न जल आदि; भोगोपकरण—भोजनपात्र आदि; भोगायतन—शरीर आदि। ईश्वर विश्व का कर्त्ता और उपादान कारण है। वह अखण्डित ज्ञान स्वरूप है; चित् और अचित् उसका शरीर है। ईश्वर सब जीवों का नियन्ता है *। ये लोग विष्णु को ही जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कारण परब्रह्म मानते हैं। कहते हैं कि पहले केवल एक वही थे; उन्हीं से इस जगत् की सृष्टि हुई है। उन्होंने इच्छा की कि मैं एक से बहुत हो जाऊँ। इच्छा से ही वे एक से अनेक हो गये। ये लोग वेदान्तियों की तरह विश्व में और विश्व के कारण ईश्वर में भेद नहीं मानते। कहते हैं कि जैसे मिट्टी ही घड़े, सकोरे आदि भिन्न भिन्न रूपों में देख पड़ती है वैसे ही परमेश्वर भी चित् और अचित् रूप से विराजमान हैं। किन्तु वेदान्ती लोग जैसे जीव और जड़ से परमात्मा को, वास्तव में, अभिन्न मानते हैं वैसे ये नहीं मानते। इनका कथन है कि जीवात्मा जैसे हस्तपदविशिष्ट भौतिक शरीर का अन्तर्यामी है और यह शरीर जैसे जीव का शरीर है, वैसे ही परमात्मा जीव और जड़ का अन्तर्यामी है। और जीव एवं जड़ उस परमात्मा का शरीर है। अतएव शरीर और जीव शरीरात्म-स्वरूप से अभिन्न कह कर प्रसिद्ध होने पर भी जैसे वास्तव में अभिन्न नहीं है वैसे ही परमात्मा भी वास्तव में जड़ और जीव से अभिन्न नहीं सिद्ध किया जा सकता। परमात्मा ईश्वर या स्वामी है और जीव उसका दास है *। वेदान्ती लोग परब्रह्म को निर्गुण और निराकार कहते हैं; किन्तु श्रीवैष्णव लोग उसे सगुण और साकार मानते हैं। श्रीवैष्णवों के मत में उस ईश्वर के अनन्त गुण हैं †। ये लोग ईश्वर के दो रूप मानते हैं—एक परमात्म-रूप अर्थात् कारणरूप; और दूसरा स्थूलरूप अर्थात् विश्वमय-कार्यरूप। अद्वैतवादी वेदान्तियों के साथ कार्यकारण के अभेदवाद के सिवा ईश्वर के रूप-गुण आदि अन्यान्य विषयों में इस प्रकार की विशेषता मानने के कारण श्रीसम्प्रदाय के वैष्णव अपने को "विशिष्टाद्वैतवादी" कहते हैं।

* वासुदेवः परम्ब्रह्म कल्याणगुणसंयुतः।
भुक्तानामुपादानं कर्ता जीवनियामकः॥
(रामानुजदर्शन)

तत्र चिच्छब्दवाच्या जीवात्मानः परमात्मनः सकाशाद् भिन्ना नित्याश्च।...अचिच्छब्दवाच्यं दृश्यं जडं जगत् त्रिविधं भोग्यवस्तु-भोगोपकरणभोगायतनभेदात्।...
(वेदान्तस्यन्तक)

* ईश्वरादन्यः तद्वन्नित्यचेतनः तद्दासो जीवो भवतीति सिद्धम्।
(वेदान्तस्यन्तक)

† तस्य गुणाश्च ज्ञानानन्दादयोऽनन्तास्ततो नातिरिच्यन्ते।
(वेदान्तस्यन्तक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीवैष्णव का मत है कि परमात्म-रूप और विश्व-रूप के सिवा भक्तवत्सल भगवान् ने भक्तों के हित के लिए, समय समय पर, और भी पाँच प्रकार की मूर्तियाँ धारण की हैं; यथा अर्चा, विभव, व्यूह, सूक्ष्म और अन्तर्यामी। प्रतिमा आदि 'अर्चा' है। मत्स्य, कूर्म, वाराह आदि 'विभव' हैं। वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध 'व्यूह' हैं। श्रीमद्भागवत तृतीयस्कन्ध के छब्बीसवें अध्याय में भी इस चतुर्व्यूह का उल्लेख है। उसमें वासुदेव को चित्त का, सङ्कर्षण को अहङ्कार का, प्रद्युम्न को बुद्धि का और अनिरुद्ध को मन का अधिष्ठाता माना है। सम्पूर्ण छः गुणों से युक्त वासुदेव नामक परब्रह्म 'सूक्ष्म' है। विरज अर्थात् रजोगुण का अभाव, विमृत्यु अर्थात् मरण का अभाव, विशोक अर्थात् शोकादि दुःखों का अभाव, विजिघित्सा अर्थात् भूख-प्यास का अभाव, सत्यकामना और सत्यसङ्कल्प—यही परब्रह्म के छः गुण हैं। सब जीवों के प्रेरक रूप को अन्तर्यामी कहते हैं *।

भक्त लोग ईश्वर के इन पाँच रूपों में से क्रमशः एक एक की उपासना करते हैं। और एक की उपासना सिद्ध हो जाने पर दूसरे की करते हैं। वैष्णवों की उपासना भी पाँच प्रकार की होती है; अभिगमन, उपादान, इज्या, स्वाध्याय और योग। देवमन्दिर को झाड़ना, बुहारना, लीपना, पोतना—अभिगमन है। फूलमाला, चन्दन आदि सामग्री जुटाना उपादान है। भगवत्पूजा ही इज्या है। पूजा में बलि-दान नहीं किया जाता। मंत्र का अर्थ जान कर उसे जपना, वैष्णवसूक्त और स्तोत्रों का पाठ करना, नाम-कीर्तन और रामानुजभाष्य आदि तत्त्वज्ञानविषयक शास्त्रों का अभ्यास स्वाध्याय है*। ध्यान, धारणा, समाधि आदि को योग कहते हैं। इस पाँच प्रकार की उपासना से साधक वैकुण्ठवासी होकर भगवान् के सर्वकर्तृत्व गुण को छोड़ कर अन्य सब गुणों को पाता और उनके साथ सुपवित्र नित्य सुख-भोग करता है। बस, यही श्रीवैष्णवमत का सार है।

दक्षिण में बहुत लोग रामानुजसम्प्रदाय के हैं; किन्तु विन्ध्याचल के उत्तर तरफ़ इस सम्प्रदाय के लोग बहुत कम देखे जाते हैं। शैवों के साथ इन लोगों का विलक्षण विरोध है। आधुनिक वल्लभ-सम्प्रदाय के वैष्णवों से भी इन लोगों की विशेष सहानुभूति नहीं है।

रूपनारायण पाण्डेय।

* वासुदेवः स्वभक्तेषु वात्सल्यात्तत्तदीहितम्।
अधिकार्यानुगुण्येन प्रयच्छति फलम्बहु॥
तदर्थं लीलया स्वीयाः पञ्च मूर्तीः करोति वै।
प्रतिमादिकमर्चास्यादवतारास्तु वैभवाः॥
सङ्कर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः।
व्यूहश्चतुर्विधो ज्ञेयः सूक्ष्मसम्पूर्णषड्गुणम्॥
तदेव वासुदेवाख्यं परम्ब्रह्म निगद्यते।
अन्तर्यामी जीवसंस्थो जीवप्रेरक ईरितः॥

(रामानुजदर्शन)

* स्वाध्यायो नाम अर्थानुसन्धानपूर्वको मन्त्रजपो वैष्णवसूक्तस्तोत्रपाठो नामसङ्कीर्तनं तत्त्वप्रतिपादकशास्त्राभ्यासश्च।

(रामानुजदर्शन)

बँगला-विश्व-कोश के रचयिता
बाबू नगेन्द्रनाथ वसु-
प्राच्यविद्यामहार्णव।

साहित्य, समाज, धर्म्म आदि किसी भी विषय की उन्नति के लिए आत्म-समर्पण की बड़ी भारी आवश्यकता है। हिन्दी-साहित्य की हीन दशा के कारणों में से एक कारण यह भी है कि हिन्दी-साहित्य-सेवियों में आत्म-समर्पण की बहुत कमी है। इसके विपरीत वङ्ग-भाषा का साहित्य बहुत उन्नत है और दिन पर दिन और भी उन्नत होता जा रहा है। इसका कारण यह है कि वङ्ग-भूमि ने ऐसे आत्म-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्यागी पुत्र-रत्नों को उत्पन्न किया जिन्हों ने अपनी आत्मा से वङ्ग-साहित्य को प्रकाशमान और समुन्नत कर दिया। यदि हिन्दी-साहित्य-सेवी उनको अपना आदर्श मान कर उनके पद-चिह्नों पर चलने की चेष्टा करें तो हिन्दी की दशा कुछ की कुछ हो जाय। आज हम वङ्ग-भूमि के एक ऐसे अध्यवसायी का कुछ हाल सुनाते हैं जिसने २८ वर्ष के निरन्तर कठिन परिश्रम से अँगरेज़ी महाग्रन्थ इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (Encyclopædia Britannica) के ढँग पर चौपेजी सत्तरह हज़ार पृष्ठों में "विश्व-कोष" नामक, मोटी मोटी बाईस जिल्दों में एक बड़ा भारी ग्रन्थ लिख कर केवल अपनी मातृ-भाषा ही का मुखोज्ज्वल नहीं किया है, किन्तु सारे भारत का सिर भी ऊँचा कर दिया है।

वङ्ग-साहित्य के इस रत्न का नाम है बाबू नगेन्द्रनाथ वसु, प्राच्यविद्या-महार्णव। नगेन्द्र बाबू से पहले भी लोग वङ्ग-भाषा में विश्व-कोष लिखने की चेष्टा कर चुके थे। भ्रातृद्वय पण्डित रङ्गलाल मुखोपाध्याय और पण्डित त्रैलोक्यनाथ मुखोपाध्याय ने तो दो वर्ष तक क्रम क्रम से उसे प्रकाशित भी किया था। परन्तु "आ" के कुछ अंश तक ही उसको प्रकाशित कर के कई कारणों से उन्हें इस काम को छोड़ देना पड़ा।

सन् १८६६ ईसवी की छठी जूलाई को नगेन्द्र बाबू का जन्म हुआ। जब वे केवल अठारह वर्ष के थे तभी उन्हों ने एक बड़े भारी काम का बोझा अपने ऊपर लिया था। उस समय "शब्देन्दु-महाकोष" नामक अँगरेज़ी और बँगला का एक बड़ा भारी कोष प्रकाशित होता था। उस के सङ्कलन का भार आप ही पर था। इस काम में उनके दो सहकारी भी थे। "अ" से "अनन्त" ही तक "शब्देन्दु-महाकोष" की रचना हुई थी कि नगेन्द्र बाबू के एक सहकारी की मृत्यु हो गई और उन्हें स्वयं भी कुछ दैविक विपत्तियों का सामना करना पड़ा। लाचार हो कर उन्हें इस काम को बन्द कर देना पड़ा।

जब वे "शब्देन्दु-महाकोष" का काम करते थे तब सुप्रसिद्ध पण्डित (अनन्तर महामहोपाध्याय) हरप्रसाद शास्त्री और सर राधाकान्त देव बहादुर के दौहित्र नाना-भाषाविज्ञ श्रीयुत आनन्दकृष्ण वसु की दृष्टि उन पर पड़ी। नगेन्द्र बाबू की योग्यता देख कर ये बहुत प्रसन्न हुए। जब "शब्देन्दु-महाकोष" का काम बन्द हो गया तब आनन्दकृष्ण बाबू के परामर्शानुसार "शब्दकल्पद्रुम" के सङ्कलन-कार्य्य में नगेन्द्र बाबू प्रवृत्त हो गये। इस समय उन्हें कुछ पुस्तकें संग्रह करने के लिए मुर्शिदाबाद जाना पड़ा। वहाँ प्रसिद्ध कृषि-तत्त्व-वेत्ता बाबू नृत्यगोपाल से उनकी भेंट हुई। बाबू नृत्यगोपाल ने "विश्वकोष" के बन्द होजाने पर खेद प्रकाशित करते हुए नगेन्द्र बाबू से उसके पुनः प्रकाशित करने का आग्रह किया। नगेन्द्र बाबू के मन में भी यह बात आगई। परन्तु कलकत्ते लौटने पर उन्हें मालूम हुआ कि वङ्गवासी-सम्पादक श्रीयुत योगेशचन्द्र वसु और औपन्यासिक श्रीयुत शरच्चन्द्र मजूमदार ने "विश्वकोष" के पुनः प्रकाशित करने का सङ्कल्प किया है। वे इन दोनों महानुभावों से मिलने गये तो पता चला कि उन्होंने उस महाकार्य्य का सङ्कल्प, उसके बहु-व्यय-साध्य होने के कारण, त्याग दिया। इस पर नगेन्द्रबाबू को दुःख हुआ। उनका चित्त तो चाहता था कि इस काम को लेलें, परन्तु जब वे अपनी आर्थिक दशा पर विचार करते थे तब हताश होना पड़ता था। अन्त में आनन्दकृष्ण बाबू द्वारा उत्साहित किये जाने पर, उन्होंने, ईश्वर पर भरोसा रखकर, उक्त महाकार्य्य को अपने ऊपर ले लिया। भ्रातृ-द्वय त्रैलोक्य बाबू और रङ्गलाल बाबू ने भी इस समय बड़ी उदारता दिखाई। नगेन्द्र बाबू के लिखते ही उन्होंने "विश्व-कोष" के स्वत्व और प्रकाशन का भार उन्हें सौंप दिया। वे इस काम से बिल्कुल अलग भी न हुए। समय समय पर नगेन्द्र बाबू को इस काम में वे सहायता देते रहे।

केवल इक्कीस वर्ष की अवस्था में नगेन्द्र बाबू ने "विश्व-कोष" ऐसे महा-ग्रन्थ के सङ्कलन का भार अपने ऊपर लिया। उस समय उनकी आर्थिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवस्था अच्छी न थी। "शब्द-कल्पद्रुम" की सामान्य नौकरी ही से उनकी जीविका चलती थी। कुटुम्ब भी थोड़ा न था और उसका भार भी इन्हीं के ऊपर था। इस सङ्कल्पित कार्य्य में बहुत धन लगाने की आवश्यकता थी, परन्तु पास कौड़ी भी न थी। अन्त में उन्होंने घर के कुछ ज़ेवर गिरवी रखकर "विश्व-कोष" का काम आरम्भ किया। "अ" के कुछ अंश तक मुखोपाध्याय-भ्राता लिख चुके थे; उसके आगे नगेन्द्र बाबू ने लिखना आरम्भ किया। आनन्दकृष्ण बाबू भी उनकी बहुत सहायता करते थे। कई वर्षों तक छपने के पहले लेखों का वे संशोधन कर दिया करते थे। पहले पहल उन्होंने गणित-ज्योतिष पर कई प्रबन्ध भी लिखे थे।

दो वर्ष तक नगेन्द्र बाबू "विश्व-कोष" के साथ "शब्द-कल्पद्रुम" का भी काम करते रहे, परन्तु वे दोनों कामों को न सँभाल सके। इससे लाचार होकर उन्होंने "शब्द-कल्पद्रुम" का काम छोड़ दिया।

"विश्व-कोष" प्रकाशित तो होने लगा; परन्तु उसकी ग्राहक-संख्या का बढ़ना तो दूर रहा, वह घटने लगी। लोगों ने समझा कि अभी नगेन्द्रनाथ बालक हैं। थोड़े दिन इस काम को करके छोड़ देंगे। इस लिए "विश्व-कोष" के ग्राहक बनना व्यर्थ है। नगेन्द्र बाबू बड़ी विपत्ति में पड़े। इसी समय वैदिक और पौराणिक भूगोल की आलोचना करते हुए उन्होंने "विश्व-कोष" में आर्यावर्त का प्राचीन मान-चित्र निकाला। बस, फिर क्या था। नगेन्द्र बाबू की विद्वत्ता की धूम मच गई। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने उस मान-चित्र को रायल एशियाटिक सोसायटी के सामने पेश किया। सोसायटी के सभापति और सदस्यों ने नगेन्द्र बाबू की विद्वत्ता की बड़ी प्रशंसा की। गवर्नमेंट का चित्त भी इस ओर आकर्षित हुआ। "विश्व-कोष" की १५ प्रतियाँ वह ख़रीदने लगी। ग्राहक-संख्या में भी वृद्धि होने लगी।

कोष के दो खण्ड निकल चुकने के बाद जब तीसरा खण्ड निकला तब उसमें "कामरूप", "कायस्थ" और "कुलीन" शीर्षक निबन्धों को पढ़कर शिक्षित-मण्डली नगेन्द्र बाबू की विद्या, बुद्धि और गवेषणा शक्ति की और भी क़ायल होगई। इस समय ग्राहक-संख्या में भी आशातीत वृद्धि हुई। परन्तु आमदनी और ख़र्च फिर भी बराबर न हुआ। बारहवें वर्ष से कहीं "विश्व-कोष" की आमदनी इतनी हो गई कि नगेन्द्र बाबू को आर्थिक कष्ट की शिकायत न करनी पड़ी।

शुभ कामों में बड़े बड़े विघ्न उपस्थित होते हैं। नगेन्द्र बाबू को भी इस कार्य्य में रोग, शोक और अन्य कितनी ही विपत्तियों का कई बार सामना करना पड़ा। विपत्तियों से कातर हो कर एक जगह नगेन्द्र बाबू ने यहाँ तक लिखा:—"बड़ी बड़ी आशाओं से उत्साहित हो कर मैंने विश्वकोष के सङ्कलन का भार अपने ऊपर लिया। किन्तु जिस देश में साहित्य-सेवियों के लिए अन्न नहीं, जिस देश के महाकवि दातव्य-चिकित्सालय में प्राण-त्याग करते हैं, उस देश में हमारी आशा कहाँ तक सफल होगी! हम नाना प्रकार की विपत्तियों से घिरे हैं। हम उनका सामना कर सकते हैं किन्तु हमें "विश्व-कोष" के बन्द हो जाने की आशङ्का सदा कातर किये रहती है। भगवान् से प्रार्थना है कि भगवन्! हृदय में बल दीजिए जिससे भिक्षा माँग कर भी हम विश्वकोष को पूर्ण कर सकें। हमारी यही आकांक्षा है कि हमारे जीवन का यह व्रत शीघ्र ही सफल हो"।

नगेन्द्र बाबू को अपने इस महाकार्य्य से कितना सच्चा प्रेम था उसका ठीक ठीक पता नीचे की घटना से भी लग सकता है। आप एक बार "बेरी बेरी" रोग से पीड़ित हो कर शय्या-शायी हो गये। उनकी अवस्था बड़ी ही शोचनीय हो गई। लोग उन्हें देखने जाने लगे। एक दिन वे अपने पास बैठे हुए लोगों को कातर-दृष्टि से देख रहे थे। उस समय उपस्थित जनों में से एक ने पूछा—"क्या आप कुछ कहना चाहते हैं"? उनकी आँखों से आँसू की दो बूँदें निकल पड़ीं। लोगों ने समझा कि रोग की यन्त्रणा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कारण नगेन्द्र बाबू की यह दशा हुई। परन्तु थोड़ी ही देर में उनका यह भ्रम दूर हो गया। नगेन्द्र बाबू ने धीरे से कहा—"बड़े दुःख की बात है कि मैं विश्व-कोष को समाप्त किये बिनाही जारहा हूँ"। इतना कहते कहते उनके नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग गई। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री भी उस समय वहाँ उपस्थित थे। उन्हों ने नगेन्द्र बाबू को बहुत कुछ आशा-भरोसा दे कर शान्त किया।

अन्त में यह महा-ग्रन्थ अभी, कुछ ही समय पूर्व, समाप्त हो गया। नगेन्द्र बाबू को लगभग सौ आदमियों से कई तरह की सहायता लेनी पड़ी। उन्हें इसके सम्पादन के लिए पचास हज़ार पुस्तकें देखनी पड़ीं, जिनमें दस हज़ार के लगभग हस्तलिखित थीं। इसके सम्पादन में लगभग डेढ़ लाख रुपये ख़र्च हुए। ग्रन्थ भी ऐसा बना कि विदेशियों तक ने उसे प्रामाणिक समझा। अँगरेज़ी महाग्रन्थ एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के ग्यारहवें संस्करण के सम्पादकों तक ने नगेन्द्र बाबू के "विश्व-कोष" से भारतीय बातों के विषय में सहायता ली। इस काम से नगेन्द्र बाबू की ख्याति भी ख़ूब हुई। बङ्ग-भाषा-भाषियों ने भी उनका अच्छा आदर किया। बङ्ग-साहित्य-परिषद् ने एक विशेष अधिवेशन करके उन पर प्रीति और श्रद्धा प्रकट की और उनके इस महा-ग्रन्थ की प्रशंसा करके उन्हें यथेष्ट सम्मानित किया।

संसार के सभी ज्ञातव्य विषयों का इस कोश में समावेश है। नगेन्द्र बाबू इसे देवनागरी लिपि और हिन्दी भाषा में भी प्रकाशित करना चाहते हैं। क्या कभी ऐसा भी दिन आवेगा जब उनकी यह आशा सफल होगी?

यह लेख लिखने में मुझे आर्य्यावर्त नामक बँगला के मासिक पत्र से बड़ी सहायता मिली है। अतएव मैं उसका बहुत कृतज्ञ हूँ।

गोपालप्रसाद शर्म्मा।

तुलसीदास की अद्भुत उपमायें।

[२]

किष्किन्धाकाण्ड में गोस्वामीजी ने वर्षा और शरत् का वर्णन बड़ी विलक्षणता से किया है। उसमें इतनी उपमायें हैं जिनके लिखने का स्थान इस छोटे से लेख में नहीं है। उनमें से कुछ नीचे दी जाती हैं:—

(१)

दामिनि दमकि रही घन माहीं।
खल की प्रीति यथा थिर नाहीं॥
× × × ×
बुंद अघात सहहि गिरि कैसे।
खल के बचन संत सह जैसे॥
× × × ×
दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई।
बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई॥
× × × ×
महा वृष्टि चलि फूट कियारी।
जिमि सुतंत्र भये बिगरहिं नारी॥
× × × ×

मेघ में बिजली चमकती है पर ठहरती नहीं, जैसे दुष्टजनों की प्रीति। बूँदों की चोट पर्वत ऐसे सहते हैं जैसे दुष्टों का वचन सज्जन। चारों ओर मेंढक ऐसे बोल रहे हैं जैसे ब्रह्मचारियों का समूह वेद पढ़ता है। बहुत वर्षा होने से कियारी ऐसी फूट चली हैं जैसी स्वतन्त्र होकर स्त्रियाँ।

(२)

फूले कमल सोह सर कैसा।
निर्गुन ब्रह्म सगुन भये जैसा॥
× × × ×
चक्रवाक मन दुख निसि पेखी।
जिमि दुरजन परसंपति देखी॥
× × × ×

शरत्काल में कमलों के फूलने से तालाब ऐसा शोभित होता है जैसा निर्गुण ब्रह्म सगुण होने से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रात को देख कर चकवा इस प्रकार दुखी होता है जिस प्रकार दूसरे का धन देख कर दुष्ट जन।

अब सुन्दरकाण्ड की दो उपमायें सुनिएः—

(३)

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी।
जिमि दसनन्हि महँ जीभ बिचारी॥

विभीषण ने कहा—हे पवनकुमार, यहाँ मैं इस प्रकार रहता हूँ जिस प्रकार कि दाँतों के बीच बेचारी जीभ रहती है। उसे दाँतों से कट जाने का सदा डर रहता है।

(४)

सहज पापप्रिय तामस देहा।
जथा उलूकहिँ तम पर नेहा॥

मेरा शरीर तमोगुणी है। इससे मेरा पाप पर स्वाभाविक प्रेम है। जैसे घुग्घू का प्रेम अन्धकार पर।

लंकाकाण्ड से भी कुछ उपमायें नीचे दी जाती हैं:—

(५)

अंगद दीख दसानन बैसा।
सहित प्रान कज्जलगिरि जैसा॥
भुजा बिटप, सिर सृंग समाना।
रोमावली लता जनु नाना॥
मुख नासिका नयन अरु काना।
गिरि कन्दरा खोह अनुमाना॥

अंगद ने रावण को बैठे देखा। मानो वह प्राण युक्त काजल का पहाड़ है। उसकी लंबी भुजायें पेड़ों के समान, मस्तक पहाड़ की चोटी के समान, रोम सब लताओं के समान, मुँह, नाक, आँख, और कान पहाड़ की कन्दराओं के समान हैं।

(६)

भूमि न छाड़त कपि चरन, देखत रिपु मद भाग।
कोटि बिघ्न तें संत कर, मन जिमि नीति न त्याग॥

अङ्गद का पैर ज़मीन नहीं छोड़ता—नहीं टलता—(यह देख शत्रुओं का अहङ्कार नष्ट हो गया) जैसे करोड़ों विघ्न आने पर भी सज्जनों का चित्त नीति नहीं छोड़ता।

(७)

उमा! रावनहि अस अभिमाना।
जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना॥

हे पार्वती! रावण के हृदय में ऐसा अभिमान था जैसे टिटहरी के मन में। टिटहरी चिड़िया इस लिए उतानी होकर सोती है कि यदि आकाश टूट पड़ेगा और मैं अपने पंजों पर उसे उपरी ही से रोक लूँगी तो दुनिया दबने से बच जायगी।

(८)

जिमि अरुनोपल निकर निहारी।
धावहिँ सठ खग मांस अहारी॥
चोंच भंग दुख तिन्हहिँ न सूझा।
तिमि धाये मनुजाद अबूझा॥

जैसे लाल पत्थरों के टुकड़े देख कर मांसभक्षी पक्षी खाने के लिए दौड़ते हैं—वे यह नहीं जानते हमारी चोंच टूट जायगी—वैसे ही मूर्ख राक्षस लड़ने को दौड़े।

(९)

एक एक सोँ मर्दि करि, तोरि चलावहिँ मुंड।
रावन आगे परहिँ ते, जनु फूटहिँ दधिकुंड॥

बानर लोग एक का सिर तोड़ कर दूसरे राक्षस पर चलाते हैं। वे सिर रावण के आगे गिर कर ऐसे फूटते हैं जैसे दही की हँड़िया। अच्छी उपमा है।

(१०)

घायल बीर बिराजहिँ कैसे।
कुसुमित किंसुक के तरु जैसे॥

घायल बीर, जिनके अङ्गों से रक्त टपक रहा है, कैसे शोभित होते हैं जैसे फूलों से लदे हुए पलास के पेड़।

(११)

रामकृपा कपि-दल-बल बाढ़ा।
जिमि तृन पाइ लाग अति डाढ़ा॥
छीजहिँ निसिचर दिन अरु राती।
निजमुख कहे सुकृत जेहि भाँती॥

राम की कृपा से कपियों का दल बढ़ने लगा—जैसे एक दफे आग लग जाने से घास। रात दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राक्षस घटते ही जाते हैं—जैसे अपने मुँह से कहने पर पुण्य-कर्म्म।

(१२)

जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर तिमि तिमि होहिँ अपार।
सेवत विषय बिबर्ध जिमि, नित नित नूतन मार॥

रामचन्द्र ज्यों ज्यों रावण के मस्तक काटते जाते थे त्यों त्यों वे मस्तक बढ़ते ही जाते थे। जैसे ज्यों ज्यों विषय का सुख लेते जाइए त्यों त्यों कामोत्कर्ष नित नया होकर बढ़ता ही जाता है। "न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति, हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते" इति मनुः।

(१३)

गहे न जाहिँ करन्ह पर फिरहीँ।
जनु जुग मधुप कमल बन चरहीँ।

नल और नील रावण की बीसों भुजाओं पर घूम रहे हैं, पर पकड़े नहीं जाते। जान पड़ता है कमल के वन में दो भौंरे घूम रहे हैं।

(१४)

सो राम-बाम-बिभाग राजति रुचिर अति शोभा भली।
नव-नील-नीरज-निकट मानहुँ कनक-पंकज की कली।

रामचन्द्र की बाईँ ओर जानकी जी शोभित हो रही हैं। मानों नये नील कमल के पास पीले कमल की कली रक्खी है। यह उपमा बड़ी ही कोमल है।

अब उत्तरकाण्ड की दो चार उपमायें सुन लीजिए।

(१५)

प्रभु मिलत अनुजहिँ सोह मो पहिँ
जाति नहीँ उपमा कही।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि
मिले बर सुखमा लही॥

रामचन्द्रजी भरत से मिल रहे हैं। उस मिलाप की उपमा मुख से नहीं कही जाती। मानों प्रेम और शृङ्गार शरीर धारण कर आपस में मिल रहे हैं।

(१६)

नारि कुमुदिनी, अवध सर, रघुपति बिरह दिनेस।
अस्त भये, बिकसित भईँ निरखि राम-राकेस॥

अयोध्या की स्त्रियाँ कुमुदिनी हैं, अयोध्या तालाब है, रामचन्द्र का विरह सूर्य है, और रामचन्द्र चन्द्रमा हैं। सूर्य के अस्त होने पर चन्द्रमा को देख वे कुमुदिनियाँ खिल गईँ। तात्पर्य यह कि वियोग मिट जाने से राम को देख स्त्रियाँ बहुत प्रसन्न हुईँ।

(१७)

संत असंतन्ह कै अस करनी।
जिमि कुठार-चंदन आचरनी॥
काटइ परसु मलय सुनु भाई।
निज गुन देइ सुगंध बसाई॥

सज्जन और असज्जनों के ऐसे काम हैं जैसे चन्दन और कुल्हाड़े के। कुल्हाड़ा चन्दन को काटता है, पर चन्दन अपना गुण—सुगन्ध—कुल्हाड़े को देता है। इसी प्रकार असज्जन सज्जनों को दुख देते हैं, पर सज्जन असज्जनों का उपकार ही करते हैं।

(१८)

प्रीति बिना नहिँ भक्ति दृढाई।
जिमि खगपति जल कै चिकनाई॥

कागभुशुण्डी कहते हैं कि हे गरुड़! भक्ति के बिना प्रीति उसी तरह स्थिर नहीं होती जिस तरह जल की चिकनाई तुरत सूख जाती है, जिससे पानी में भीगी हुई वस्तु फिर रूखी हो जाती है।

(१९)

जोइ तन धरउँ तजउँ पुनि, अनायास हरिजान।
जिमि नूतन पट पहिरइ, नर परिहरइ पुरान॥

काकभुशुण्डी कहते हैं कि हे गरुड़, मैं जिस शरीर को धारण करता था, उसको बिना दुःखही—बिना परिश्रमही—छोड़ देता था—जैसे मनुष्य नवीन वस्त्र धारण करता है और पुराना छोड़ देता है। यह उपमा भगवद्गीता के "वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि" इस श्लोक की छाया ले कर लिखी गई है अथवा यह कहिए कि उसी का अनुवाद है।

(२०)

कामिहिँ नारि पियारि जिमि लोभिहिँ प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुबंस निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

गोस्वामी तुलसीदासजी रामायण समाप्त करते समय रामचन्द्रजी से प्रार्थना करते हैं—"हे रघुवंश-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मणि राम! जैसे कामी पुरुष को स्त्री प्यारी लगती है और जैसे कंजूस को धन प्यारा लगता है वैसे ही तुम मुझे प्यारे लगो—यही मेरी प्रार्थना है।

अक्षयवट मिश्र।

ऐतिहासिक बातें।

(१)

अकबर बादशाह का ख़ज़ाना।

अकबर बादशाह ने जब आगरे का क़िला बनवाना शुरू किया था तब उसकी लागत के लिए एक जरीब ज़मीन पर तीन सेर अनाज कर के तौर पर रैयत पर लगाकर उसकी उघाई करने को न्यारे ही तहसीलदार भेज दिये थे। इस आमदनी से, तीन करोड़ रुपये की लागत में, यह क़िला, पाँच वर्ष तक बराबर काम जारी रहने पर तैयार हुआ था। मुल्ला अबदुलक़ादिर बदाऊनी ने अपनी तवारीख़ में लिखा है कि इसमें इतना रुपया तो लगा, पर यह दुनिया भर के सोने, चाँदी और जवाहरात के लिए एक मज़बूत भाँडार बनगया। यह बात ठीकही थी। इस क़िले के ख़ज़ाने से इतना द्रव्य ख़र्च होता रहा है जिसकी संख्या देखकर आदमी की अक़ल हैरान होजाती है और कहती है कि अकबर ने कितना असंख्य द्रव्य अपने ख़ज़ाने में जमा किया था, जिसका पीढ़ियों तक अन्त ही न हुआ। जहाँगीर जैसे विलासी बादशाह ने अपने भोगविलास में उसे ख़ूब ही उड़ाया। शाहजहाँ जैसे आडम्बरप्रिय सम्राट ने तख़्तेताऊस और ताजमहल जैसे बढ़िया कामों में इसी ख़ज़ाने का रुपया और रत्न लगाया। औरङ्गज़ेब भी दक्षिण की बेक़ायदा लड़ाइयों में यहीं से सोना और चाँदी मँगा मँगाकर मिट्टी में मिलाता रहा। शाहेआलम बहादुरशाह जब अपने भाई कामबख़्श से लड़ने के लिए दक्षिण को जाता था तब अकाल था और मरी पड़ रही थी। बुरहानपुर में बहुत से आदमी मरी से मर गये। एक कूच ३ कोस का होता था। वहाँ तक एक बीमार के वास्ते ८) रुपया किराया बारबरदारों का था। हर मंज़िल में कई कई हज़ार क़बरें खुदी हुई तैयार रहती थीं। ज्योंही बादशाही सवारी पैशख़ाने में दाख़िल होती थी त्योंही मुरदे उन क़बरों में गाड़े जाते थे। लशकर में दवाइयों का इतना अकाल था कि एक तोला कासनी एक रुपये में आती थी। माजून और शरबत वग़ैरह का तो कहना ही क्या था। अनाज भी एक रुपये का ३।४ सेर से ज़ियादा नहीं मिलता था। इस पर भी लशकर अकबरी मोहरों से मालामाल था जो आगरे के ख़ज़ाने से ख़र्च के वास्ते खिची चली आती थीं और ८) रुपये के भाव से बिकती थीं। उनका मोल शाहजहाँ के समय में १४) रुपया था।

जब जहाँदारशाह पर उसका भतीजा फ़र्रुख़सियर पटने से चढ़ कर आया तब जहाँदारशाह ने ख़ज़ाना खोलकर सारा सोना-चाँदी अमीरों और सिपाहियों को दे दिया। इस पर भी जो कमी हुई तो दौलतख़ाने की छत का चाँदी सोना उतारा और जवाहरख़ाने के जवाहरात निकाले।

तवारीख़ मोहम्मदशाही के कर्त्ता मुन्शी ख़ुशालीराम के बाप जीवनराम ने जवाहरख़ाने के एक सयाहे * में लिखा देखा था कि एक सप्ताह में साढ़े तीन करोड़ रुपये का जवाहरात ख़र्च हुआ था। फिर मोहम्मदशाह रंगीले की रंगरलियों में भी रहा सहा ख़ज़ाना ख़ूब उड़ा। नादिरशाह भी बहुत कुछ लाद लेगया। अहमदशाह के राज्य में पठानों और मरहटों ने भी ख़ूब लूटा। कुछ खुरचन रही थी सो सन् १८५७ के ग़दर में साफ़ होगई।

भला जिस ख़ज़ाने का धन ३०० वर्ष तक इस बेदरदी के साथ खपा और लुटा उसका कोई क्या लेखा कर सकता है। यह क्या कुछ कम बात थी कि

* रोज़मर्रे का हिसाब जिसको बनिये रोज़ाना कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोहनूर जैसा हीरा, जो आजकल बहुत मशहूर हो रहा है, उसख़ज़ाने का एक तुच्छ रत्न था और एक करोड़ रुपये के हीरे, लाल और पन्ने जो तख़्तेताऊस में जड़े थे उस ख़ज़ाने के जवाहरख़ाने के फालतू जवाहरात थे। इस जवाहरख़ाने में भीम-पाण्डव का एक पटका था जिसमें दुनिया भर के अनमोल और अनोखे जवाहरात टँके हुए थे। और तो क्या पाण्डवों के समय के अलभ्य पदार्थ भी इसमें खिच आये थे। तवारीख़ मोहम्मदशाही में, जहाँ एक सप्ताह के भीतर ३॥ करोड़ का जवाहर निकाला जाना लिखा है, इतना और भी लिखा है कि उन जवाहरात में राजा युधिष्ठिर के भाई भीमसेन की कमर का एक जड़ाऊ पटका भी था जो ११ गज़ लम्बा और ७ गज़ चौड़ा था!

(२)

जहाँदारशाह की लंका।

औरङ्गज़ेब का पोता और शाहेआलम शाह का बेटा जहाँदारशाह अजब अलबेला बादशाह था। एक दिन जो लङ्का देखने की जी में आई तो जमना पार महाराजा जसवन्तसिंह की हवेली से लगाकर सलाबतख़ाँ की हवेली तक ५।६ कोस लम्बी और २ कोस चौड़ी बाँस और लकड़ी की लङ्का बनवाई। लाखों चिराग़ उस पर जलवाये। जब तेल नहीं मिला तब घी जलाने का हुक्म दिया। आतिशबाज़ी भी ख़ूब छोड़ी गई। तेल जो कुछ दिनों पहिले १) रुपया का सात सेर बिकता था डेढ़ सेर बिकने लगा। अनाज भी ७।८ सेर से ज़ियादह नहीं था।*

(३)

जहाँगीर बादशाह की राखी।

यह बादशाह स्वयं अपने रोज़नामचे में लिखता है कि "हिन्दुओं के ४ वर्ण ठहराये गये हैं और हर एक निज धर्म्म पर चलता है। हर एक साल भर में एक दिन अपना त्यौहार मनाता है। पहला ब्राह्मण, अर्थात् ब्रह्म को जाननेवाला। उसके छः धर्म्म हैं:—

१ विद्या पढ़ना, २ दूसरों को पढ़ाना, ३ आग पूजना, ४ दूसरों को पुजाना, ५ दान लेना, ६ दान देना।

इनका त्यौहार सावन के अन्त में होता है जो बरसात का दूसरा महीना है। इस दिन को पवित्र समझ कर पुजारी लोग नदियों और तालाबों पर चले जाते हैं और मन्त्र पढ़ कर डोरों और रंगे हुए तागों पर फूँकते हैं। दूसरे दिन, जो नये साल * का पहिला दिन होता है, उन डोरों को राजों और बड़े लोगों के हाथों में बाँधते हैं और शकुन समझते हैं। इन डोरों को राखी यानी रक्षा कहते हैं। यह दिन † तीर के महीने में आता है जब सूर्य्य कर्क राशि पर होता है। दूसरा क्षत्रिय वर्ण है जो क्षत्री भी कहलाते हैं। क्षत्रिय वह है जो अन्याय करनेवालों से दीनों की रक्षा करे। उसके तीन धर्म्म हैं:—

१ आप पढ़े, दूसरों को न पढ़ावे; २ आप आग पूजे, दूसरों को न पुजवावे; ३ आप दान दे, दूसरे का दान न ले। इसका त्यौहार विजया दशमी है। इस दिन सवारी करना और शत्रु पर चढ़ कर जाना इसकी समझ में शुभ होता है। रामचन्द्र ने, जिसको ये लोग पूजते हैं, इसी दिन चढ़ाई कर के अपने वैरी को जीता था। इस दिन को ये उत्तम समझते हैं। हाथी घोड़ों को सजा कर पूजते हैं। यह दशहरे का दिन शहरेवर के महीने में आता है, जब सूर्य्य कन्या राशि पर होता है। हाथी घोड़ों के रक्षकों को इस दिन पारितोषिक मिलता है।

तीसरा वैश्य वर्ण है। यह ऊपर लिखे दोनों वर्णों की सेवा करता है। खेती, लेन-देन, ब्याजबट्टा और सौदागरी इनका कर्तव्य है। इनका भी एक त्यौहार है। उसको दिवाली कहते हैं। यह दिन मिहर महीने में आता है, जब सूर्य्य तुला राशि पर

---

* यह लेख भी तवारीख़ मोहम्मदशाही के आधार पर लिखा गया है।

* इस लेख से जाना जाता है कि ढूंढार और मेवाड़ की भांति आगरे में भी उस समय लौकिक संवत्सर भादों वदी १ से बदला जाता था।

† तीर फ़ारसी महीने का नाम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। इस दिन की रात को दीपमाला कहते हैं। मित्र और बान्धव एक दूसरे के घर में जुड़ कर जुआ खेलते हैं। इन लोगों का धन्धा ब्याज और लेन देन का है। इस लिए इस दिन हारने जीतने को ये शकुन जानते हैं।

चौथा शूद्र वर्ण है। यह हिन्दुओं का सबसे नीचा जथा है। यह सबकी सेवा करता है। जो ऊपर के वर्णों के अधिकार हैं उनसे इसको कुछ प्रयोजन नहीं है। इसका त्यौहार होली है जो इसकी समझ में वर्ष का अन्तिम दिन है। यह दिन असफ़न्दार महीने में आता है, जब सूर्य्य मीन राशि में होता है। इस दिन की रात को रास्तों और गलियों में आग जलाते हैं। जब दिन निकलता है तब पहर भर तक एक दूसरे पर राख डालते हैं। फिर नहाकर कपड़े पहनते हैं। बाग़ों और जङ्गलों में बिचरने को चले जाते हैं।

हिन्दुओं में मुर्दा जलाने की रीति है। इस लिए इस रात को आग जलाने से यह अभिप्राय है कि पिछले वर्ष को, जो मरे के समान हो गया है, जलाते हैं।

मेरे पिता के समय में हिन्दू अमीरों और दूसरे लोगों ने ब्राह्मणों की देखा देखी राखी की रीति इतनी फैला दी थी कि रत्नों, मोतियों और जड़ाऊ फूलों को डोरों में पिरो कर उनके हाथ में बाँधा करते थे। कई वर्ष तक ऐसा होता रहा। जब यह आडम्बर बहुत ही बढ़ गया तब उन्हों ने उकता कर बन्द कर दिया। ब्राह्मण अपने डोरों और रेशम के धागों को निज नियमानुसार शकुन के वास्ते बाँधते रहे। मैंने भी इस वर्ष उन्हीं के शिष्टाचरण का अनुकरण कर के हुक्म दिया कि हिन्दू अमीर और हिन्दुओं के मुखिया मेरे हाथ में राखी न बाँधें। परन्तु राखी के दिन, जो * ९ वीं अमरदाद को था, फिर वही दङ्गल हुआ। दूसरे लोगों ने वह देखा देखी की बात हठ से नहीं छोड़ी। तब मैंने इसी वर्ष के लिए स्वीकार करके कहा कि ब्राह्मण लोग उसी प्राचीन रीति से डोरे और रेशम बाँधें।"

देवीप्रसाद

* अमरदाद को भादों बदी १ थी। इससे भी उस समय भादों बदी को राखी बाँधना सिद्ध होता है।

टाइटानिक की सिन्धु-समाधि।

(१)

सौ योजन पुल बाँध जिन्होंने थल-सम किया जलधि को पार;
भारत की लक्ष्मी-स्वरूपिणी जनकसुता को लिया उबार।
नररूपी उन परमेश्वर का राम-नाम भज बारंबार,
आओ, पाठक! विपत्-काल में देखें वीरों के व्यवहार॥

(२)

ऊपर नील नभोमण्डल है, नीचे क्षार समुद्र अपार;
दोनों में अपूर्व समता है दोनों का अद्भुत व्यापार।
किन्तु सिन्धु-गाम्भीर्य्य देख कर नैश गगन चञ्चल है आज;
प्रतिबिम्बित हो कर पानी में कम्पित है नक्षत्र-समाज॥

(३)

ऐसे में यह धीर भाव से कौन अपूर्व पर्वताकार—
नभ में मेघ-समान सिन्धु की छाती पर कर रहा विहार!
सुनो, सुनो, मानों उसमें से निकल रही यह ध्वनि गम्भीर—
"हटो, टाइटानिक आता है हे समीर! हे सागर-नीर!"

(४)

मन्द वायु से हिलता डुलता गर्वित सा है सिन्धु अथाह;
किन्तु टाइटानिक जहाज़ को ज़रा नहीं उसकी परवाह।
मस्तूलों के मिस वह अपने कीर्त्ति-केतु कर के उड्डीन,
चीड़-फाड़ कर सिन्धु-नीर को चला जा रहा है स्वाधीन॥

(५)

जगती के जलयानों में है आज टाइटानिक सिरमौर,
इस नव युग में बना कहीं भी ऐसा श्रेष्ठ जहाज़ न और।
विश्वविदित इँगलैंड देश की कला-कुशलता का परिणाम—
है जहाज़, या सभ्य जगत का है यह एक मनोहर ग्राम!

(६)

ग्रन्थागार, वाचनालय हैं, बने कई क्रीड़ा के स्थान,
कहीं सरोवर, कहीं नाट्यगृह और कहीं सुन्दर उद्यान।
यह जहाज़, जिसमें आसकते यात्री साढ़े तीन हज़ार—
निकल पड़ा मानों पन्द्रहवाँ रत्न सिन्धु से शोभागार!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७)

कर-मुख-निधि-भू संख्यक सन् की चौदहवीं एप्रिल है आज,
परसों चला विलायत से है यह प्रासाद-समान जहाज़।
यात्री-जन पँचगुने पाँच सौ, हैं जिनमें बहु नर-कुल-केतु,
आरोही हैं इस पर सुख से अमरीका जाने के हेतु॥

(८)

कहीं कहीं सोते हैं यात्री, कहीं कहीं पुस्तक का पाठ,
कहीं हास-परिहास हो रहा कहीं खेल-क्रीड़ा का ठाठ।
कहीं प्रिया के सङ्ग मुदित मन करते प्रेमी प्रेमालाप,
फैला है अति अचल भाव से चारु चञ्चलालोक-कलाप॥

(९)

अटलांटिक सागर की शोभा देख रहा है कोई वीर,
जा सकती है दृष्टि जहाँ तक भरा हुआ है केवल नीर।
वह देखो, रेलिंग पकड़ कर कौन युवक करता है गान—
"जय जय इँगलिस्तान, हमारे प्यारे बल-विज्ञान-निधान॥"

(१०)

यह क्या, यह क्या हुआ अचानक धक्के पर धक्के का ज़ोर,
होने लगा यहाँ सहसा क्यों भय-सूचक घण्टे का शोर!
चारों ओर हुआ कोलाहल हाय! हाय! क्या होगा आज,
हिम की शैलाकार शिला से टकरा कर फट गया जहाज़!

(११)

एक साथ आसन्न-मृत्यु का देखा सबने दृश्य समक्ष,
नभ में पक्ष-पतित-पक्षी-सम लगे धड़कने सब के वक्ष।
यह जहाज़ भी डूब जायगा, कौन जानता था यह बात?
यह यात्रा अन्तिम यात्रा है, था किस यात्री को यह ज्ञात!

(१२)

ऐसे समय सोच के बदले है धीरज में ही कल्याण,
इस कारण सब लगे सोचने कैसे बच सकते हैं प्राण।
पर वह इतनी नहीं कि सब की रक्षा का हो सके उपाय,
कौन मरेगा, कौन बचेगा? कैसा कठिन प्रश्न है हाय!

(१३)

तब क्षण एक वीर-कण्ठ-स्वर धीर भाव से हुआ प्रमाण—
"पीछे हटें पुरुष, हो पहले स्त्रियों और बच्चों का त्राण।"
कप्तान स्मिथ की आज्ञा से पीछे हटे धन्य सब धीर,
है जिनमें आस्टर से धनपति तथा स्टेड से नैतिक वीर॥

(१४)

हाय! दृश्य आगे का अब वह है करुणा का पूर्ण प्रपात,
पति-पत्नी का, पिता-पुत्र का, है जिसमें अन्तिम साक्षात।
आग्रह के वश अबलाओं का वह रोते रोते प्रस्थान,
है प्रत्यक्ष कि स्वप्न, हाय! कुछ समझ नहीं पड़ता भगवान!

(१५)

कितनी ही महिलायें अपने पतियों का तज सकीं न साथ—
बोलीं लिपट कण्ठ से उन के "साथ मरेंगी हम हे नाथ!"
"प्रिये! धैर्य्य धर जिये। हाय! तुम देखो सुत के मुख की ओर",
रोई यों सुन कोई पत्नी, शोक-सिन्धु में उठी हिलोर॥

(१६)

हुए व्यग्र भी कितने ही जन प्राण बचाने को उस काल,
किन्तु वीर-सिंहों के वन में होते हैं क्या नहीं शृगाल?
जो हो, कर्णधार की वाणी सुनी गई फिर यों गम्भीर—
"छी! छी! सच्चे ब्रिटिश बनो रे, मरो भले ही, हो न अधीर"॥

(१७)

ऐसी गड़बड़ में भी भीतर निश्चल है वह नरवर कौन?
अहो युवक! तुम सर्वनाश के समय यहाँ बैठे हो मौन!
वीर फिलिप निज सोच न कर के तार भेजने में है लग्न—
"दौड़ो, चलो, बचाओ, आओ, हुआ टाइटानिक जल-मग्न!

(१८)

देखो, एक मनुज वह जल में तैर रहा है किसी प्रकार,
कुछ नौकारोही जन उसका करने जाते हैं उद्धार।
किन्तु सुनो, वह क्या कहता है—"नौका सह न सकेगी भार—
प्राण बचाओ, जाओ तुम सब है मुझको मरना स्वीकार"॥

(१९)

औरों की रक्षा के हित यों मर सकती जिसकी सन्तान,
क्यों न भला वह देश जगत में हो सम्मानित और महान?
प्राण बचाने को औरों के तज सकता है जो निज देह,
जितना गौरव प्राप्त करे वह है थोड़ा ही निस्सन्देह॥

(२०)

आये नहीं आठ सौ जन भी नौकायें भर गईं तमाम,
सोलह सौ यात्री निर्भय हो मर कर अमर कर गये नाम।
वह मरना भी दर्शनीय है, है सजीवता का वह चित्र,
उस स्वर्गीय भाव को भाषा प्रकट करेगी कैसे मित्र!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२१)

वह देखो, आस्टर से धनपति तथा स्टेड से नैतिक वीर—
एक एक सामान्य मनुज की रक्षा कर तज रहे शरीर !
वह देखो, वीरों की श्रेणी करके आत्म-त्याग पुनीत,
धन्य मृत्यु को भेट रही है बैंड बजा कर गा कर गीत !

(२२)

[गीत]

" मृत्यु ! मृत्यु ! आजा, आजा, तू, स्वागत करते हैं हम लोग,
बड़े भाग्य से मिल सकता है ऐसे गौरव का संयोग।
तू तो केवल नियति मात्र है फिर तुझसे भय का क्या काम ?
हम अपना कर्त्तव्य कर चुके, लेते हैं अब चिर-विश्राम।
हँसते हँसते स्वर्ग-धाम में भोगेंगे दुर्लभ सुख-भोग
मृत्यु ! मृत्यु ! आजा, आजा, तू, स्वागत करते हैं हम लोग !

(२३)

ब्रिटिश-जाति मरने से डरती तो क्या कर सकती कुछ काम ?
सिंह-उपाधि-युक्त पृथिवी पर हो सकता क्या उसका नाम ?
मृत्यु ! न डर कर ही तुझसे हम यह उन्नति कर सके समस्त—
ब्रिटिश-राज्य में आज देख लो, सूर्य्य नहीं हो सकता अस्त !
यह तो होता ही रहता है नश्वर तनु का योग-वियोग,
मृत्यु ! मृत्यु ! आजा, आजा, तू, स्वागत करते हैं हम लोग !

(२४)

वे जग को चौंकाने वाले अद्भुत अद्भुत आविष्कार,
वह वैज्ञानिक वृद्धि कि जिससे होता है अपूर्व उपकार।
वे यन्त्रादि बाष्प-विद्युन्मय, वे वाहन, वे व्योम-विमान,
प्रकटित कर सकते हम कैसे करते जो न आत्म-बलि-दान ?
हम मर जायँ परन्तु हमारे अजर अमर हैं सब उद्योग,
मृत्यु ! मृत्यु ! आजा, आजा, तू, स्वागत करते हैं हम लोग !

(२५)

हे करुणावरुणालय प्रभुवर ! विश्वमूर्ति विश्वम्भर ईश !
नाथ ! तुम्हारे पद-पद्मों में अर्पण करते हैं हम शीश।
देव ! विनय स्वीकृत कर लीजे, कीजे निज सामीप्य प्रदान
परम पिता हैं आप हमारे, दीजे आत्म-शक्ति भगवान !
शान्तिमयी यह मृत्यु हमारे दूर करे सारे भव-रोग,
मृत्यु ! मृत्यु ! आजा, आजा, तू, स्वागत करते हैं हम लोग !"

× × × ×

(२६)

अहा ! शब्द-सागर में डूबा अब्धि और आकाश महान,
हुआ साथ ही मग्न सिन्धु में भग्न टाइटानिक जल-यान !
हुए आज निर्वाण भले ही वे बहु जीवन-दीप अनित्य,
उदित हुआ आदर्श नाम का जग में एक नया आदित्य॥

(२७)

वीरो ! हम विदेशवासी भी देते तुम्हें अश्रु-जल-दान,
धन्य धैर्य्यमय त्याग तुम्हारा, तुम्हें शान्ति देवें भगवान।
मिलती नहीं महत्त्व-प्रदर्शक आज तुम्हारे योग्य उपाधि,
प्रलय-काल में भी न मिटेगी धन्य तुम्हारी सिन्धु-समाधि !

× × × ×

(२८)

हाय ! आज इस दुर्घटना पर हो कर करुणा का उद्रेक—
तेरह सौ बत्सर पहले की याद आगई घटना एक।
भारतवर्ष तीर्थ को आते बौद्ध भिक्षुओं ने उस बार—
ली समाधि थी वङ्ग-सिन्धु में करके औरों का उद्धार॥

(२९)

भग्न हुई ज्योंही वह तरणी पाकर शिखराघात कठोर—
दैवयोग से एक दूसरी नौका आ पहुँची उस ओर।
करना चाहा उसने पहले बौद्ध भिक्षुओं का उद्धार,
किन्तु उन्होंने पहले अपना बचना नहीं किया स्वीकार !

(३०)

अन्य जनों का त्राण हुआ पर रहा तरी में स्थान न शेष,
बौद्ध भिक्षुओं ने तब अपनी देकर सामग्री निःशेष।
बोधि-द्रुम-तल में उस सबके अर्पण का करके उपदेश—
ली समाधि "अमिताभ" पाठ कर सफल किया जीवन-उद्देश॥

(३१)

बौद्ध भिक्षुओं की वह वाणी अब भी मुग्ध कर रही प्राण—
" सम्भव नहीं बौद्ध हो कर जो करें प्रथम हम अपना त्राण।
हमें अपेक्षा करनी होगी—बुद्ध देव की है यह उक्ति—
कब तक ? जब तक तुच्छ कीट तक पा न सकें पृथ्वी पर मुक्ति।"

मैथिलीशरण गुप्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीठे रीठे।

गुरु नानक की एक करामात।

आज कल विज्ञान की अच्छी उन्नति हो रही है। तरह तरह के करिश्मे दिखाये जा रहे हैं। अद्भुत अद्भुत सुधार हो रहे हैं। और तो क्या, उसकी सहायता से कड़वे फल मीठे और मीठे कड़वे बनाये जा रहे हैं। परन्तु हम जिस समय की बात कहना चाहते हैं उस समय इस नूतन विज्ञान की भारतवर्ष में कुछ भी चर्चा न थी। उस समय को आज लगभग साढ़े चार सौ वर्ष हो चुके हैं।

रीठे, रेठे अथवा रेठड़े, जिनसे रेशमी कपड़े धोये जाते हैं और जिन्हें अँगरेज़ी में (Soap Nut) कहते हैं, एक तरह के क्षार-फल हैं। यदि तन्दुरुस्त आदमी रीठे के एक दो दाने खा ले तो उसे उलटियाँ होने लगें। लोग कहते हैं कि नीम का कड़वापन और रीठे का खारापन किसी तरह दूर नहीं हो सकता। परन्तु गुरु नानकजी ने अपनी करामात से कड़वे रीठे को मीठा कर दिखाया। यह बात गुरु नानकजी की "जन्म-साखी" में इस तरह लिखी है:—

एक बार गुरु नानकजी बाला और मदीना नाम के अपने दो साथियों सहित एक पहाड़ी जङ्गल से जा रहे थे। वहाँ दूर तक कोई शहर या गाँव न था। और, न उस जङ्गल में फल, मेवा या कन्द आदि ही कुछ था। उसी समय मदीने को बहुत भूख लगी। उसने गुरु नानकजी से कहा कि आप कृपा कर के मुझे कुछ खाने को दीजिए। मेरे प्राण जा रहे हैं। गुरु नानकजी ने उससे कहा कि तू कोई फलदार वृक्ष देख कर उसके फल खा ले और अपनी भूख निवृत्त कर ले। उसने इधर उधर बहुत देखा भला, परन्तु उसे खाने लायक़ कोई फलदार वृक्ष न मिला। उसने गुरु नानकजी से कहा—"महाराज, यहाँ कोई भी खाने लायक़ फल का वृक्ष नहीं है"। तब गुरु नानकजी ने उससे पूछा—"अच्छा, किसी वृक्ष में फल लगे हुए हैं भी?" मदीने ने जवाब दिया—"गुरु जी, एक रीठे का वृक्ष है। उसमें फल लगे हुए हैं"। तब गुरु नानकजी ने कहा कि अच्छा उसी के फल खा कर अपनी भूख मिटा ले। मदीने ने कहा—"महाराज, उसके फल तो बहुत कड़वे और ज़हरीले होते हैं। क्या आप रीठे खिला कर मुझे मारना चाहते हैं? गुरु नानकजी ने कहा—"तू हमारी बात पर विश्वास कर। अगर उसके फल तुझे मीठे लगें तो खाना नहीं तो न खाना"। मदीने को भूख बहुत सता रही थी। लाचार होकर वह खाने पर राज़ी हो गया। वह वृक्ष पर चढ़ गया और रीठे तोड़ तोड़ कर खाने लगा। उसे वे मीठे लगे और उसने ख़ूब पेट भर कर उन्हें खाया।

जिस वृक्ष के रीठे मदीना ने तोड़ कर खाये थे वह आज तक मौजूद है। जिस डाल के फल उसने खाये थे उसमें आज तक मीठे रीठे लगते हैं। और जिन डालों के फल नहीं खाये थे उनमें आज तक कड़वे रीठे लगते हैं। एक ही वृक्ष में ये दो चमत्कार!

संयुक्त-प्रान्त में "पीलीभीत" नाम का एक मशहूर नगर है। लोग वहाँ के चावलों की बहुत तारीफ़ करते हैं। उसकी उत्तर दिशा में, १२ मील पर, "नानक-मता" नाम का एक स्थान नदी के किनारे पर बसा है। इस स्थान का नाम पहले "गोरख-मता" था। यहाँ गोरखनाथ के चेले रहा करते थे। जब गुरु नानकजी यहाँ पर आये तब गोरखनाथ के चेलों ने उन्हें अपना चेला बनाने के लिए उनसे शास्त्रार्थ किया। परन्तु शास्त्रार्थ में स्वयं गोरखनाथ के चेले ही हार गये। तबसे इस स्थान का नाम गोरखमता की जगह नानकमता पड़ गया। यह घटना भी गुरु नानक जी की "जन्म-साखी" में लिखी है। यह स्थान एक जङ्गली प्रदेश में है। यहाँ से ३० कोस उत्तर की तरफ़, पहाड़ी प्रदेश में, वह रीठे का वृक्ष है। वहाँ नानकमते के महन्त का एक आदमी रहता है, जो मीठी डाल के रीठे इकट्ठे कर के महन्त के पास भेज देता है। महन्त जी वहाँ जानेवाले हर यात्री को ५ रीठे प्रसाद में देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९०३ ईसवी के मई मास में मैंने नानक-मते की यात्रा की थी। मुझे भी पाँच रीठे प्रसाद में मिले। मैंने उन्हें खा कर देखा। उनका ज़ायक़ा छुहारे का सा था। यदि उस समय मेरा सरस्वती से परिचय होता तो मैं सरस्वती-सम्पादक को भी दो तीन रीठे चखने के लिए भेजता। अब फिर कभी उधर जाना हुआ तो ज़रूर भेजूँगा।

मेरी बड़ी इच्छा थी कि मैं उस वृक्ष को अपनी आँखों से देखूँ। पर कोई साथी न होने से मेरी यह इच्छा पूरी न हुई। बहुत लोगों ने उस वृक्ष को अपनी आँखों से देखा है और फल तोड़ कर खाये हैं। जैसा हाल मैंने ऊपर दिया है वैसा ही वे भी बताते हैं।

केसरसिंह मुलतानी।

विज्ञानवेत्ता हक्सले के अनमोल बोल।

(१)

आधुनिक सभ्यता की जड़ वैज्ञानिक ज्ञान है। विज्ञान ने संसार में जो कर्तब दिखाये हैं यदि हम उनको निकाल बाहर करें तो बाक़ी कुछ भी न रह जाय। अगर हम आधुनिक लज्जा-जनक दशा का सुधार न करेंगे तो हमारे बालबच्चे हमें लानत देंगे। यदि हम बीस वर्ष और जीवित रहे तो हम स्वयंही अपने आपको बहुत कोसेंगे।

(२)

इस दशा को सुधारने का एक मात्र उपाय यह है कि हम वैज्ञानिक शिक्षा को प्रारम्भिक शिक्षा का आवश्यक अंश बना दें। वह दिन संसार के इतिहास में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण होगा जिस दिन संसार भर के अध्यापक लोग वास्तविक वैज्ञानिक ज्ञान से परिचित हो जायँगे। किन्तु, केवल किताबी विज्ञान भयङ्कर चीज़ है। असली वैज्ञानिक ज्ञान वही है जो अध्यापकों को निश्चित घटनाओं से प्राप्त हुआ हो।

(३)

किसी सच्चे वैज्ञानिक सिद्धान्त पर भद्दी झूँठी तोहमतें लगा कर उसे रद करने की कोशिश करना विज्ञानशास्त्र पर सबसे बड़ा अत्याचार करना है।

(४)

विज्ञान और साहित्य दो चीज़ें नहीं हैं, किन्तु एक ही चीज़ के दो पहलू हैं।

(५)

जो आदमी निर्भय हो कर अपने विश्वास को साफ़ साफ़ कह डालता है उसका लोग बहुत आदर करते हैं—चाहे उसके साथ वे सहमत हों, चाहे न हों।

रामनारायण शर्म्मा, एल० एम० एस०।

विविध-विषय।

१—शम्स-उल-उल्मा डाक्टर नज़ीर अहमद का देहान्त।

बिजनोर-निवासी डाक्टर नज़ीर अहमद का देहान्त होगया। आप उर्दू-साहित्य-संसार के एक देदीप्यमान रत्न थे। बहुत दिन तक आप युक्त-प्रदेश में डिप्टी कलेक्टर थे। कुछ वर्षों से आप देहली में रहने लगे थे। इन्डियन पेनल कोड और क़ुरान के अनुवाद उर्दू में करने के कारण आपकी बड़ी ख्याति हुई। परन्तु सबसे अधिक नाम आपने कई एक शिक्षा-प्रद उपन्यास लिखकर पैदा किया। आपकी तौबतुन-नसूह नाम की पुस्तक का बड़ा आदर हुआ। अँगरेज़ी में उसका अनुवाद भी हुआ। आपकी इस पुस्तक का सटीक संस्करण लन्दन में छपा। मुसलमानों में शिक्षा के प्रचार का आप बड़ा उद्योग करते थे। मुसलमानों की शिक्षा-परिषद् के तो आप स्तम्भ समझे जाते थे। आपकी विद्वत्ता और योग्यता से प्रसन्न होकर गवरनमेंट ने आपको शम्स-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

शम्स-उल-उल्मा मौलवी नज़ीर अहमद ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उल-उलमा की उपाधि-से विभूषित किया। विलायत के एडिनवर्ग-विश्व-विद्यालय ने आपको आनरेरी एल० एल० डी० बनाया और पञ्जाब के विश्वविद्यालय ने डी० सी० एल०। बहुत दिनों तक आपने सर सैयद अहमद के दाहिने हाथ की तरह उनकी सहायता की। यद्यपि आप अच्छी उम्र और मान पाकर मरे तो भी आपके उठ जाने से उर्दू के साहित्य-संसार में जो स्थान ख़ाली हुआ है उसकी पूर्त्ति शीघ्रही होने वाली नहीं।

२—भारतीय शिल्प-शास्त्र।

प्राचीन काल में शिल्पकला की बहुत सी पुस्तकें संस्कृत में थीं। आज उनके नामों तक का पता नहीं। जबसे कुछ भारतीय विद्वानों का ध्यान अपने देश की शिल्पकला की ओर आकर्षित हुआ है तबसे इस विषय के कुछ ग्रन्थों का पता लगा है। गत शताब्दी के प्रारम्भ-काल में रामराज नाम के एक बड़े भारी विद्वान् मदरास प्रान्त में होगये हैं। उन्हें शिल्पकला से बड़ा प्रेम था। उन्हों ने इस विषय की एक बड़ी अच्छी पुस्तक भी बनाई। उसमें एक जगह लिखा है कि भारतीय शिल्पकारों में परम्परा से यह कहावत चली आती है कि भारत में शिल्प-शास्त्र की कोई चौंसठ पुस्तकें थीं। दक्षिणी भारत में खोज करने से उन्हें इन चौंसठ ग्रन्थों में से लगभग दस ग्रन्थों के कुछ खण्ड प्राप्त भी हुए, जिनमें से नौ के नाम ये हैं (१) मानसार, (२) मयमत, (३) काश्यप, (४) वैखानस, (५) शुक्लाधिकार, (६) विश्वकर्मीय, (७) सनत्कुमार, (८) सारस्वत्यम्, (९) पाञ्चरात्रम्।

प्राचीन हस्तलिखित संस्कृत-पुस्तकों के एक सूचीपत्र से इस विषय के कुछ और ग्रन्थों का भी पता लगा है। उन ग्रन्थों के नाम ये हैं:—

(१) शिल्पशास्त्र (२) शिल्प-कला-दीपिका (३) शिल्प-ग्रन्थ (४) शिल्प-लेख (५) शिल्प-सिद्धि-संग्रह (६) शिल्पार्थसार (७) विश्वकर्म-प्रकाश। सुप्रसिद्ध डाक्टर कुमार-स्वामी ने "मीडिवल सिंहालीज़ आर्ट" नाम की पुस्तक बनाने में सीलोन (लङ्का) में पाये गये सारिपुत्र, मायामतन् और रूपावलीय नाम के इस विषय के तीन ग्रन्थों से बहुत कुछ सहायता ली है। सुप्रसिद्ध डाक्टर भण्डारकर ने "लकुलीश" नामक अपने एक निबन्ध में इसी विषय के विश्वकर्मावतार-वास्तु-शास्त्र नाम के एक हस्तलिखित-ग्रन्थ का प्रमाण दिया है जिसे उन्होंने पूना के दक्षिण-कालेज के पुस्तकालय में पाया था। इसी प्रकार बङ्गाल के एक विद्वान् ने भी इस विषय के विश्वकर्म-शिल्प नामक एक ग्रन्थ का उल्लेख अपने एक लेख में किया है। "विश्वकर्म-प्रकाश" नाम का भी एक ग्रन्थ इस विषय का है। वह तो बम्बई में छप भी गया है।

ग्रन्थों की इस नामावली से सिद्ध है कि किसी समय शिल्पकला की भारत में बड़ी उन्नति थी और सैकड़ों ग्रन्थ इस विषय के संस्कृत में विद्यमान थे। पर समय के फेर से अब उनके नाम तक लुप्त-प्राय होरहे हैं।

३—एक नई असभ्य मानव-जाति।

दक्षिणी अमेरिका के न्यू-गिनी नामक प्रदेश में एक नई मानव-जाति का पता लगा है। पता लगाने वाले हैं डोनेल्ड मके नामक एक साहब, जो १९०८ में अपने दो चार साथियों सहित उक्त प्रदेश के अगम्य भागों में भ्रमण करने निकले थे। अपनी इस यात्रा में उन्हें बहुत कष्ट सहने पड़े। न्यूगिनी में पुरारी नाम की एक नदी है। मके साहब अपने साथियों सहित इसी नदी के किनारे किनारे दूर तक चले गये। फिर वे नावों पर चढ़ कर आगे बढ़े। रास्ते में ख़ूब पानी बरसा और नदी में बाढ़ आ गई। नाव डूबते डूबते बची। वहाँ के निवासियों ने भी उन्हें बहुत तङ्ग किया। नाव छोड़ कर वे आगे बढ़े तो पहाड़ों की उँचाई के कारण रास्ते का पता न लगा। नदी की ओर बढ़े तो थोड़ी दूर पर उसकी दो शाखें हो गई थीं और वे भी कुछ दूर जाकर लोप हो गईं थीं। इस बीच में वहाँ के आदिम निवासियों का आक्रमण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत बढ़ गया। ख़ैर किसी प्रकार प्राण ले कर यात्री लोग पीछे लौटे और कुशल-पूर्वक एक सुरक्षित स्थान पर पहुँच गये। उनका कथन है कि जिस जङ्गली जाति के लोगों ने उनकी यात्रा निर्विघ्न न समाप्त होने दी उनकी बनावट सुन्दर है, छाती चौड़ी है और उँचाई लगभग पाँच फीट के है। पुरुषों की नाक में एक सलाई पड़ी रहती है जिसकी नोकों में पतली हड्डी के काँटे लगे रहते हैं। वे ऐसी छाल के कमर-बन्द बाँधते हैं जिन पर तीर की मार असर नहीं करती। कुछ लोग तो वृक्ष की भीतरी छाल को कमर में लपेट लेते हैं और कुछ केवल पत्तियों के गुच्छे लटकाते हैं। वे हड्डियों के बाले, बाज़ू-बन्द और कण्ठे पहनते हैं। उनके कुछ हथियार पत्थर के होते हैं। वे तीर-कमान भी रखते हैं। तीरों की नोकें हड्डी की होती हैं। सुअर मारने के लिए उनके तीर बाँस के होते हैं। ये तो इञ्च लम्बे होते हैं। इनकी नोकें चिपटी होती हैं। बीच में ये कुछ मोटे होते हैं। उनकी ढालें वृक्ष की मोटी छाल की होती हैं। उनके भाले ताड़ की लकड़ी के होते हैं। वे आठ फ़ीट लम्बे होते हैं। उनकी नोकें एक चिड़िया की टाँग की बनती हैं।

४—समुद्र में प्रकाश-लहरें।

कभी कभी समुद्र में बड़ी ही विचित्र चीज़ें देखने में आती हैं। प्रकाश-लहरों का दृश्य भी एक ऐसी ही चीज़ है। बहुत लोगों ने इस दृश्य को देखा है। १९०९ में डेनमार्क देश के "नैटिंग" नामक जहाज़ के कप्तान ने मलाका-अन्तरीप के पास ऐसे ही एक दृश्य को देखा था। १९ जून को तीन बजे रात के समय जहाज़ के मेट ने कप्तान को भरी नींद से जगा कर इस दृश्य को दिखाया। पहले बड़ी बड़ी प्रकाश-लहरें पश्चिम से पूर्व की ओर समुद्र के भीतर जाती हुई दिखाई पड़ीं। फिर थोड़ी देर में मालूम हुआ, मानों क्षितिज के पास कहीं पर उनका केन्द्र है, जिसके चारों ओर वे चक्कर लगा रही हैं। जहाज़ के पास की लहरें छः छः फीट चौड़ी थीं। वे एक दूसरे से बारह बारह फीट की दूरी पर थीं। उनका प्रकाश समुद्र के भीतर जा रहा था। एक मिनट में लगभग साठ लहरें एक स्थान पर से गुज़रती थीं। धीरे धीरे ये लहरें जहाज़ से दूर हटती गईं और थोड़ी देर में दृष्टि से छिप गईं। लगभग पन्द्रह मिनट तक यह दृश्य दिखाई पड़ता रहा।

२१ नवम्बर १८९७ को एक जर्मन जहाज़ के कप्तान ने भी बङ्गाल की खाड़ी में ऐसा ही एक दृश्य देखा था। रात के बारह बजे ऐसा मालूम हुआ कि समुद्र के भीतर आग लग गई है। अगणित प्रकाश-लहरें समुद्र के भीतर दिखाई पड़ती थीं। दो बजे तक यही हालत रही। बाद को ज़ोर से पानी बरसने लगा और सब लहरें ग़ायब हो गईं। १२ अगस्त १९१० को भी एक डच जहाज़ के कप्तान ब्रेयर ने चीनी-समुद्र में एक ऐसा ही तमाशा देखा था। उन्हें पहले पूर्वीय क्षितिज की ओर ख़ूब प्रकाश दिखाई पड़ा। थोड़ी देर में वह प्रकाश सर्वत्र फैल गया। पानी के भीतर प्रकाश-लहरें बड़ी तेज़ी से चक्कर मारती हुई मालूम होने लगीं। ये लहरें झुकी हुई न थीं, इनके केन्द्र का ही कुछ पता न था। ये एक दूसरे से बिलकुल सटी हुई थीं। थोड़ी देर में ये जहाज़ के नीचे से हो कर गुज़रने लगीं। जहाज़ के चारों ओर का पानी उनके वेग के कारण उछलने लगा। पाँच मिनट के बाद यह सारा खेल ख़तम हो गया।

और भी कितने ही बार इस प्रकार का दृश्य समुद्र में देखा गया है। लोगों ने इसका कारण भी बतलाया है, परन्तु यथार्थ में अभी तक कोई कारण ठीक नहीं मालूम हुआ।

५-भारत में कोयले का व्यवसाय।

ज्यों ज्यों भारत में कल-कारख़ानों की वृद्धि होती जाती है त्यों त्यों यहाँ कोयले का व्यवसाय भी उन्नतावस्था को प्राप्त होता जाता है। आज से चालीस पचास वर्ष पूर्व भारत में पत्थर का कोयला सेर भर भी न बिकता था। इस प्रकार के कोयले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की रेल आदि के लिए जितनी आवश्यकता होती थी उतनी विदेश से कोयला मँगाकर पूरी की जाती थी। कुछ वर्ष बाद यहाँ की खानों से भी कोयला निकाला जाने लगा। १८७८ में यहाँ की खानों से लगभग दस लाख टन कोयला निकाला गया। धीरे धीरे इस व्यवसाय में उन्नति होती गई। गत वर्ष लगभग एक करोड़ अठारह लाख टन, अर्थात् १८७८ ई० से बारहगुना अधिक कोयला यहाँ की खानों से निकला। इतने पर भी लगभग तीन लाख टन कोयला भारत में इङ्गलैण्ड, आस्ट्रेलिया और नैटाल आदि से प्रति वर्ष आता है। भारतवर्ष का कोयला बाहर भी जाता है। लङ्का में तो प्रायः यहीं का कोयला ख़र्च होता है। स्ट्रेट सेटलमेंट नामक द्वीप-समूह में अभी तक जापान और आस्ट्रेलिया का कोयला खपता था, परन्तु अब वहाँ भी भारतीय कोयला जाने लगा है। १८९० में भारतीय रेलों ने साढ़े आठ लाख टन कोयला ख़र्च किया, जिसमें से तीन-चौथाई तो देशी और शेष विदेशी कोयला था। १९१० में, रेलों में, सैंतीस लाख टन से अधिक कोयला ख़र्च हुआ। इस कोयले में केवल एक शतांश ही विदेशी था। जिस प्रकार इस व्यवसाय में उन्नति होरही है उससे प्रकट होता है कि कुछ ही दिनों में विदेशी कोयले की आमदनी यहाँ बिलकुल ही बन्द हो जायगी। साथही भारतीय कोयला विदेश को और भी अधिकता के साथ जाने लगेगा।

६—बन्दरों की बुद्धिमत्ता।

बन्दर बड़े बुद्धिमान् होते हैं। दक्षिणी अफ़रीका के कोई कोई बन्दर तो इतने बुद्धिमान् होते हैं कि यदि उन्हें पकड़ कर सिखाया जाय तो वे नौकरों का काम बड़ी अच्छी तरह करें। वहाँ के आदिम-निवासी यहाँ तक भी कहते हैं कि बन्दर आपस में बात चीत भी करते हैं, परन्तु ज्योंही वे किसी मनुष्य को देखते हैं चुप होजाते हैं। अस्तु। जो कुछ हो, उस देश में इस समय दो बन्दर ऐसे मौजूद हैं जिनसे उनके मालिक नौकर का काम लेते हैं। पहले बन्दर का मालिक निम्नश्रेणी का एक रेलवे-कर्मचारी है जिसकी दोनों टाँगें रेल की किसी दुर्घटना में कट गई हैं। उसका पालतू बन्दर रोज़ अपने मालिक को एक छोटी गाड़ी पर बिठाता है और उस गाड़ी को स्वयं घसीटता हुआ उस स्थान पर ले आता है जहाँ वह काम करता है। अपने मालिक का रेलवे-सम्बन्धी काम भी वही करता है। झण्डी बतलाना और अन्य दूसरे काम जिस प्रकार उसका मालिक बैठा बैठा उसे बतलाता जाता है—वह करता है। वर्षों से वह इसी प्रकार काम कर रहा है। कभी कभी शाम को कुछ लोग उस बन्दर को होटल में ले जाते हैं। वहाँ भी वह नौकर का काम करता है। शराब के पात्र उठा उठा कर लोगों को देता है। उसे एक ख़ास क़िस्म की शराब बहुत प्रिय है। शराब के अन्य प्यालों के साथ, थाल पर, एक प्याला उस शराब का भी रख दिया जाता है जो उसे प्रिय है और थाल उसके हाथ में दे दिया जाता है। वह थाल को होटल में खाना खाने वालों के पास कुछ दूर पर लाकर रख देता है, और पहले अपने प्याले को पीकर तब दूसरों को उनके प्याले देता है। यदि इस बीच में किसी ने जल्दी की और उससे थाल ले लेना चाहा तो वह अप्रसन्न हो जाता है और प्रायः झगड़ पड़ता है।

दूसरा बन्दर एक साहब के पास है जिसे उन्हों ने गड़रिये का काम सिखाया है। जो भेड़-बकरियाँ उसके सिपुर्द की जाती हैं उन्हें वह बड़े प्रेम से चराता है और उनकी बड़ी हिफ़ाज़त करता है। नियमपूर्वक वह उन्हें सन्ध्या-समय घर पर लाता है और बाड़े में बन्द करके स्वयं उनके पास ही सोता है। एक पल के लिए भी वह अपनी भेड़-बकरियों को अपनी नज़र की ओट नहीं करता। इस बन्दर में एक ख़ास बात यह है कि जहाँ उसने दूसरे बन्दर की आवाज़ सुनी कि वह अपनी भेड़-बकरियों को समेट कर जल्दी से बाड़े में बन्द कर देता है। यह बन्दर बड़ा ही एकान्त-प्रिय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७—नक़ली रेशम।

योरप और अमेरिका में नक़ली रेशम बहुत दिनों से बनता है। वह अब इतना अच्छा बनने लगा है जिसके सामने असली रेशम मात है। नक़ली रेशम बनाने में ख़र्च भी बहुत कम पड़ता है। कीड़े पालने और उनकी रक्षा करने का कष्ट नहीं उठाना पड़ता। नक़ली रेशम वृक्षों के गूदे से बनाया जाता है। गूदे में कितने ही रासायनिक पदार्थ मिलाये जाते हैं। फिर वह कूट कर बारीक लच्छेदार किया जाता है। उसे कात कर सूत तैयार किया जाता है। चमक और भड़क में वह असली रेशम के सूत से भी अच्छा होता है। आस्ट्रिया, फ़्राँस, जर्मनी, स्विटज़रलैंड और इँगलैंड में नक़ली रेशम बनाने के कई कारख़ाने बहुत दिन से स्थापित हैं। संयुक्त-राज्य, अमेरिका, में भी अब इसका आरम्भ हुआ है। सबसे पहले चारडोनेट नाम के एक फरासीसी ने वृक्ष के गूदे से रेशम तैयार किया और उसका व्यवसाय भी किया। इस व्यवसाय में पहले उसे बहुत हानि उठानी पड़ी। परन्तु अब तो वह नक़ली रेशम ही की बदौलत अमीर हो गया है।

नक़ली रेशम को लोगों ने पसन्द भी बहुत किया है। पहले तो इस रेशम से स्त्रियों के काम की छोटी ही छोटी चीज़ें बनती थीं; पर अब तरह तरह के कपड़े और पर्दे आदि भी बनने लगे हैं।

नक़ली रेशम रँगने के लिए उन्हीं मसालों की ज़रूरत पड़ती है जो साधारण सूत रँगने के काम आते हैं। नक़ली रेशम रँगते समय बड़ी सावधानी दरकार होती है। जब तक रेशम सूख नहीं जाता तब तक रँग के उड़ जाने का भय रहता है। नक़ली रेशम के बनाने के लिए जिन रासायनिक पदार्थों की ज़रूरत होती है उनकी मात्रा को भी मौसम की गरमी और सरदी के अनुसार घटाना बढ़ाना पड़ता है।

पहले पतला धागा तैयार होता है; फिर पन्द्रह बीस धागे मिला कर मोटा धागा तैयार किया जाता है। नक़ली रेशम का सेर भर पतला सूत बारह सौ मील लम्बा होता है। आज कल संसार में नक़ली रेशम का जितना पतला धागा चौबीस घंटे में तैयार होता है उतना यदि फैलाया जाय तो उसकी लम्बाई तीस लाख मील से अधिक होगी।

सुन्दरता और मज़बूती में नक़ली रेशम असली रेशम से किसी तरह कम नहीं है। मूल्य में तो वह बहुत सस्ता पड़ता है। मालूम होता है कि अब असली रेशम संसार में थोड़े ही दिनों का महमान है। इधर वृक्षों के गूदे से काग़ज़ तो करोड़ों मन बनता ही था। अब उसी से रेशम भी बनने लगा है। इस लिए अब बेचारे वृक्षों की ख़ैर नहीं!

८—सिद्धान्तशिरोमणि की हिन्दी-टीका।

सरस्वती के पाठकों से पण्डित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी का परिचय कराने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि आज तक उनके अनेक लेख सरस्वती में निकल चुके हैं। आप कई भाषाओं के ज्ञाता और ज्योतिर्विद्या के आचार्य्य हैं। हाल ही में आपने भास्कराचार्य्य के सुप्रसिद्ध सिद्धान्त-शिरोमणि नामक ग्रन्थ के गोलाध्याय का सम्पादन करके उसे प्रकाशित कराया है। इस पुस्तक में मूल के सिवा भास्कराचार्य्य ही का लिखा हुआ वासना-भाष्य भी है। द्विवेदी जी ने इस आकर ग्रन्थ का पहले तो प्रभा-नामक भाष्य संस्कृत में बड़ीही योग्यता से किया है; फिर आपने संस्कृत श्लोकों का भावार्थ हिन्दी में देकर सब विषयों की उपपत्ति दी है और क्षेत्र तथा अन्यान्य चक्र देकर गणित-सम्बन्धिनी जटिल बातों को बहुत ही अच्छी तरह समझाया है। यथा-स्थान आपने टिप्पनी में गुरुत्वाकर्षण, केपलर के सिद्धान्त, किरणवक्रीभवन और कालसमीकरण आदि पाश्चात्य विद्वानों के आविष्कृत नवीन सिद्धान्तों का भी दिग्दर्शन किया है। यह पुस्तक ज्योतिषियों ही के काम की नहीं, किन्तु अपने विद्वान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीवान बहादुर रघुनाथराव ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वजों की विद्वत्ता का गर्व रखने वाले सभी के काम की है। इसे पढ़ कर हम सहज ही जान सकते हैं कि बौद्धों, जैनों और पौराणिकों की कही गई कितनी ही बातें भ्रमपूर्ण हैं। भास्कराचार्य्य ने इसमें उनका युक्तियुक्त खण्डन किया है। पुस्तक का मूल्य डेढ़ रुपया है और, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से मिलती है।

९—मङ्गल-ग्रह में पक्षियों और चौपायों का आधिक्य।

पश्चिमी देशों के पण्डित मङ्गल ग्रह के पीछे पड़ गये हैं। उसके विषय में उनकी जाँच बराबर जारी है। यह जाँच दिन पर दिन अधिकाधिक उत्साह और दृढ़ता से हो रही है। फल यह हुआ है कि इस ग्रह के सम्बन्ध में नई नई बातें मालूम होती चली जा रही है। फ्रांस देश के प्रधान ज्योतिषी अध्यापक पेरियर ने इस बात का प्रमाण ढूँढ निकाला है कि मङ्गल में विशेष कर के गरम ख़ून वाले जानवरों की ही अधिकता है। अतएव वहाँ चौपायों और पक्षियों ही संख्या और प्राणियों की अपेक्षा अधिक होगी। मङ्गल पर माध्याकर्षण का असर बहुत कम पड़ता है। इस कारण उछलने कूदने, दौड़ने और उड़नेवाले ही जीव बहुत होंगे। सम्भव है, वहाँ आदमियों के भी पंख हों और वे भी चिड़ियों की तरह उड़ते हों।

१०—दीवान बहादुर रघुनाथराव सी० एस० आई० का परलोकवास।

गत मई में दक्षिणी भारत के प्रसिद्ध पुरुष दीवान बहादुर आर० रघुनाथ-राव का, ८५ वर्ष की उम्र में, देहान्त होगया। सन् १८३१ ईसवी में उनका जन्म एक धनवान और उच्च वंश में हुआ था। प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ राजा सर टी० माधव राव भी इसी वंश में उत्पन्न हुए थे। शिक्षा-काल समाप्त होने पर रघुनाथ राव ने सरकारी नौकरी करली। १८५९ में वे डेप्युटी कलेक्टर हो गये। सरकारी काम उन्होंने बड़ी ही योग्यता, स्वतन्त्रता और ईमानदारी के साथ किया। लल्लो-चप्पो उन्हें आती ही न थी। महाराजा होलकर ने उनकी योग्यता पर मुग्ध होकर उन्हें भारत सरकार से माँग लिया और अपना दीवान बनाया। परन्तु वे इस नये पद पर अपनी स्वाभाविक स्वतन्त्रता के कारण अधिक दिनों तक न ठहर सके। वे अपने पूर्व पद पर लौट आये। १८८८ में आपने पेनशन लेली। तबसे आप देश-सेवा में रत थे। १८७७ में उन्हें दीवान बहादुर की पदवी मिली और १९०९ में सी० एस० आई० की। १९०९ के दिसम्बर में वे मदरास लेजिसलेटिव कौंसिल के सदस्य बनाये गये।

दीवान बहादुर रघुनाथ राव बड़े ही देश-भक्त थे। उन्हें अपनी जातीय संस्थाओं और धर्म से बड़ा प्रेम था। वे सुधारक भी बड़े भारी थे, परन्तु अपनी जातीय संस्थाओं की उपयोगिता और अपने देश और जाति की अवस्था पर बिना विचार किये सुधार की लहर में बहे चले जाना उन्हें पसन्द न था। वे सत्य की खोज में सदा लगे रहते थे और सत्य बात को वे बड़ी ही निर्भीकता से प्रकट करते थे। उन्होंने अध्ययन भी बहुत किया था और उन्हें अनुभव भी बहुत था। अपने जीवन के अन्तिम काल में उन्होंने अपने अध्ययन और अनुभव के बल से सार्वजनिक कामों में पूर्णतया योग देकर देश की अच्छी सेवा की। ऐसे देश-भक्त-पुरुष की मृत्यु पर किस भारत-वासी को दुःख न होगा?

११—कानपुर की कन्या-पाठशाला।

कानपुर में डाक्टर सुरेन्द्रनाथ सेन सबसे अधिक प्रसिद्ध डाक्टर हैं। आप जितने ही अधिक यशस्वी हैं, उतने ही अधिक उदाराशय और विद्या-व्यसनी भी हैं। आपने आठ वर्ष से एक कन्या-पाठशाला खोल रक्खी है। उसमें हिन्दी और बँगला दोनों भाषाओं की शिक्षा दी जाती है। इसके सिवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीक्षा भी की है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के विषय में भी बहुत कुछ लिखा है। यह पुस्तक सनातनधर्म्मावलम्बियों और आर्य्यसमाजियों, दोनों, के देखने योग्य है। इसकी एक प्रति भेजने के लिए हम शुक्ल जी के बहुत कृतज्ञ हैं।

❋

७—नागरी-निरादर। पण्डित शिवनाथ शर्म्मा इसके लेखक हैं। दो आने में मैनेजर, दामोदर प्रेस, बड़ी कालिका गली, लखनऊ से मिलती है। प्रहसन है। नामानुसार नागरी-लिपि के निरादर का अच्छा दृश्य दिखाया गया है। हास्यरस से ख़ूब सराबोर है।

❋

८—Transformation of Sikhism. डाक्टर गोकुलचन्द नारङ्ग, एम० ए०, पी-एच० डी० इसके कर्त्ता हैं। पुस्तक अँगरेज़ी में है। पृष्ठ संख्या दो सौ के ऊपर है। मनोहर जिल्द बँधी हुई है। दाम दो रुपया है। पुस्तक-भाण्डार, लोहार-मण्डी, लाहौर से मिलती है। हिन्दी, फ़ारसी, गुरुमुखी और अँगरेज़ी में आज तक सिक्खों के विषय में जो कुछ लिखा गया है, अथवा जो कुछ प्राप्य है, उसका अच्छी तरह अध्ययन करके डाक्टर साहब ने इस पुस्तक की रचना की है। आपके लेख से पक्षपात की ज़रा भी गन्ध नहीं आती। आपकी राय है कि सिक्ख धर्म्म या पन्थ हिन्दू-धर्म से ही निकला है। परन्तु उसमें कुछ विशेषतायें ज़रूर हैं, जो हिन्दू धर्म्म में नहीं पाई जातीं। इन विशेषताओं की आवश्यकता ही ने इसे उत्पन्न कर के इसका प्रचार किया। आपने इस पुस्तक को बड़ी योग्यता से लिखा है। इसमें आपने आरम्भ से लेकर अठारवें शतक के अन्त तक सिक्खों की क्रमप्राप्त वृद्धि और विकाश का अच्छा वर्णन किया है। एक छोटे से धार्म्मिक सम्प्रदाय से बढ़ते बढ़ते किस प्रकार सिक्ख लोग पञ्जाब के राजा बन बैठे, इस बात को आपने बड़ी अच्छी भाषा में बड़े अच्छे ढँग से दिखाया है। इतिहास के प्रेमियों को यह पुस्तक अवश्य देखनी चाहिए। इस छोटी सी पुस्तक को पढ़ जाने से सिक्खों से सम्बन्ध रखनेवाली सभी मुख्य मुख्य बातों का ज्ञान हो सकता है।

९—पत्रोपहार। इस ५० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य ४ आने हैं। कुँवर हनुमन्तसिंहजी रघुवंशी ने राजपूत ऐंग्लो ओरियेंटल प्रेस, आगरा, से इसे प्रकाशित किया है। उन्हीं से मिलती है। इसमें पिता की तरफ़ से पुत्र को उपदेश-पूर्ण नौ पत्र हैं। उनके लेखक पण्डित नर्म्मदाप्रसाद मिश्र ने उनमें दुराचार, दुर्वृत्ति और संसार के अनुचित प्रलोभनों से दूर रहने, और सदाचार, सद्विद्याप्राप्ति और सत्सङ्ग आदि का महत्त्व समझाने का यत्न किया है। पुस्तक उत्तम है। सबको इसकी एक एक कापी अपने लड़कों के लिए लेनी चाहिए।

चित्रपरिचय।

(१)

अहल्या।

इस संख्या का रङ्गीन चित्र अहल्या है। यह एक कुशल चित्रकार की कृति है और तीन रङ्गों से रञ्जित है। गौतम की पत्नी अहल्या वन में फूल चुनने गई है और एक फूल को हाथ में लिये हुए खड़ी कुछ सोच रही है। सोच क्या रही है, इन्द्र को देख कर वह मोहित हो गई है। अतएव मन ही मन उसी की चिन्तना कर रही है। अहल्या के चेहरे पर चित्रकार ने उसकी इस तत्कालीन चिन्तना का भाव बड़ी ही योग्यता से दरसाया है। यही इस चित्र की सब से बड़ी ख़ूबी है।

(२)

मिस्टर स्टेड का नया चित्र।

सरस्वती की गत संख्या में स्टेड साहब का चित्र और चरित प्रकाशित हो चुका है। इस संख्या में उनका एक नवीन चित्र और प्रकाशित किया जाता है।

Printed and Published by Apurva Krishna Bose at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहल्या ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

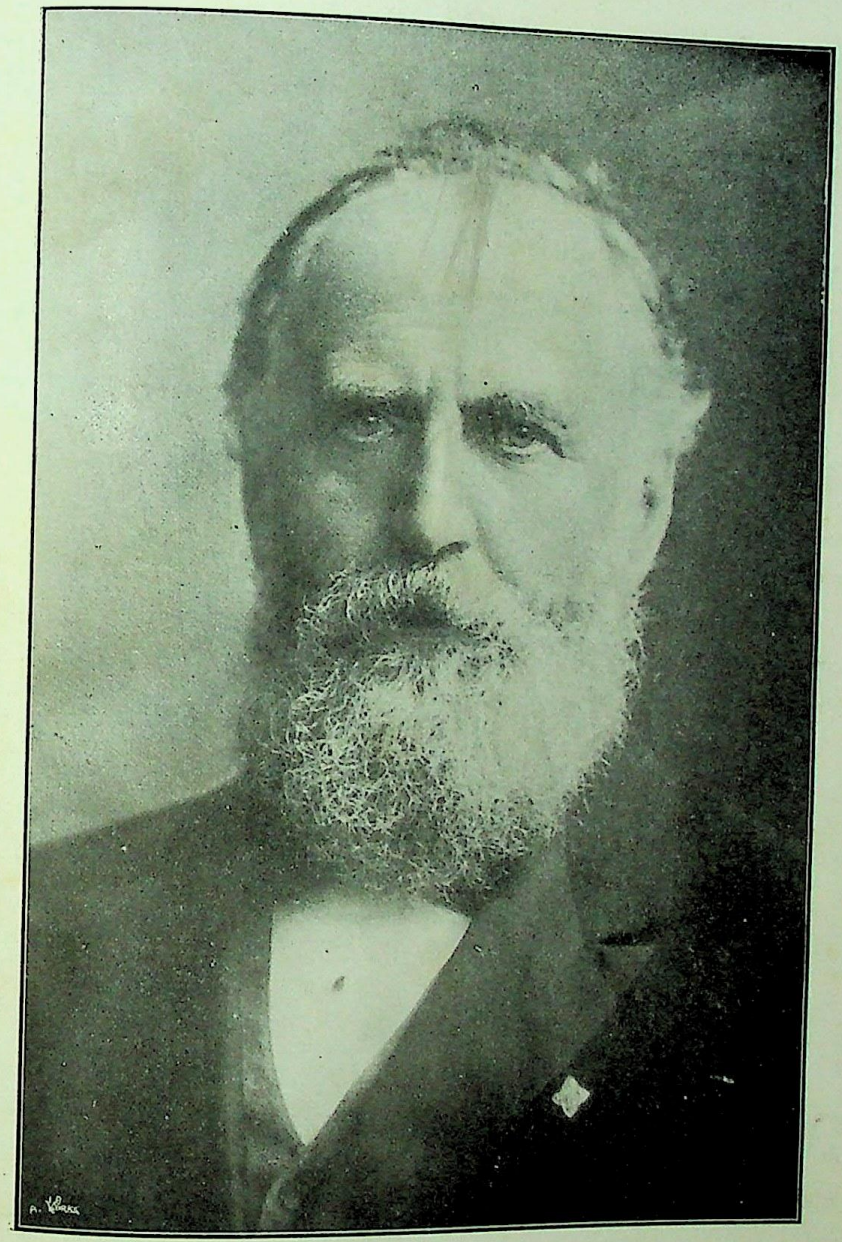

महात्मा स्टेड ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

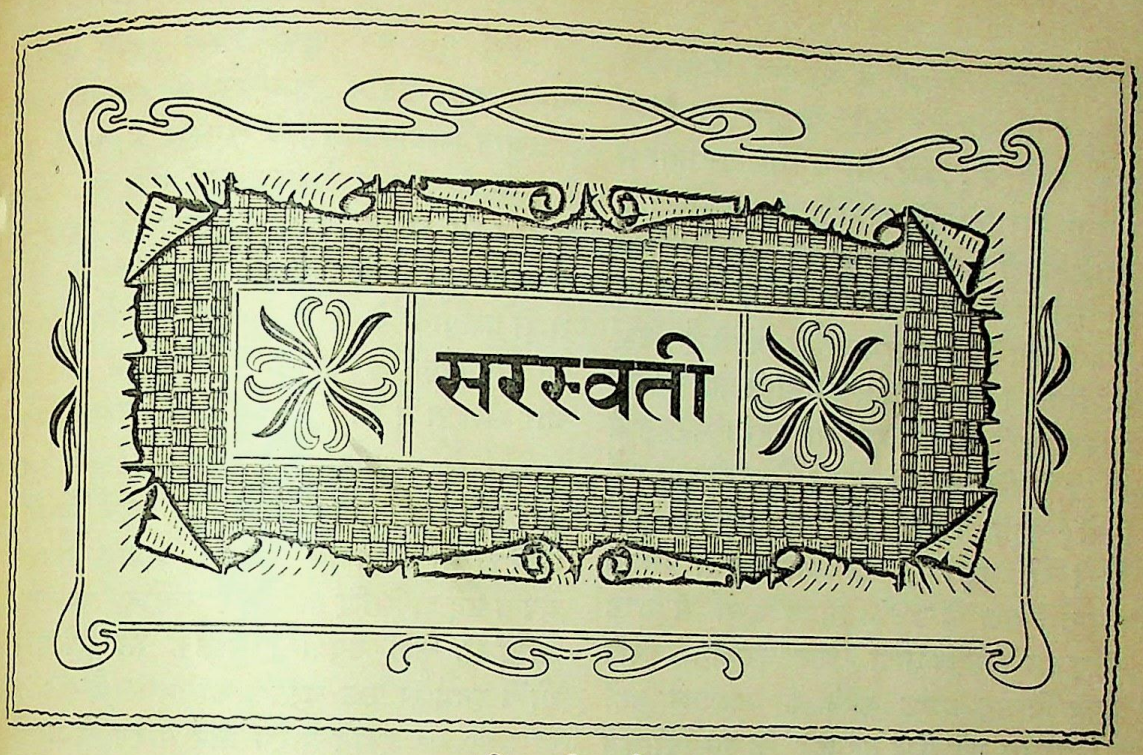

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग १३] १ अगस्त, १९१२—श्रावण कृष्ण ३, १९६९। [संख्या ८

योरप के विद्वानों के संस्कृत-लेख और देवनागरी लिपि।

हिन्दुस्तान में हज़ारों लोग ऐसे हैं जिन्होंने अँगरेज़ी ऐसी क्लिष्ट और विदेशी भाषा में बड़े बड़े गहन ग्रन्थ लिखे हैं, जो अँगरेज़ी के प्रतिष्ठित पत्रों और सामयिक पुस्तकों का बड़ी ही योग्यता से सम्पादन करते हैं, जो अँगरेज़ी में धारा-प्रवाह वक्तृता देते हैं और जिन्हें अँगरेज़ी भाषा मातृ-भाषा सी हो रही है। कितने ही भारत-वासियों की लिखी हुई अँगरेज़ी-पुस्तकें विलायत तक के पुस्तक-प्रकाशक बड़े ही आग्रह और उत्साह से प्रकाशित करते हैं और लेखकों को हज़ारों रुपया पुरस्कार भी देते हैं। इस देश के कितने ही वक्ताओं की मनोमोहनी और अविश्रान्त वाग्धारा के प्रवाह ठेठ विलायत की भूमि पर भी सैकड़ों-हज़ारों दफ़े बहे हैं और अब भी समय समय पर बहा करते हैं। हम लोगों की अँगरेज़ी को 'बाबू इँगलिश' कह कर घृणा प्रकाश करने वालों की आँखों के सामने ही ये सब दृश्य हुआ करते हैं। परन्तु आज तक इँगलिस्तान वालों में से ऐसे कितने विद्वान् हुए हैं जिन्होंने हमारी हिन्दी या संस्कृत-भाषा में पुस्तकें लिखी हों, अथवा इन भाषाओं में कभी वैसी वक्तृता दी हो जैसी कि बाबू सुरेन्द्र-नाथ बैनर्जी या पण्डित मदनमोहन मालवीय देते हैं। ढूँढने से शायद दो ही चार विद्वान् ऐसे निकलेंगे। विलायत वाले चाहे संस्कृत में कितने ही व्युत्पन्न क्यों न हो जायँ, पर, यदि उसके विषय में कभी कुछ कहेंगे तो अपनी ही भाषा में, लिखेंगे तो अपनी ही भाषा में, व्याख्यान देंगे तो भी अपनी ही भाषा में। संस्कृत पढ़ कर ये लोग अधिकतर भाषा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान और संस्कृत-शास्त्रों के सम्बन्ध में ही लेख और पुस्तकें लिखते हैं। कोई प्राचीन पुस्तकों के अनुवाद करते हैं; कोई वैदिक-साहित्य-सागर में गोता लगा कर नये नये तत्त्वरत्न ढूँढ़ निकालते हैं; कोई साहित्य की अन्य शाखाओं का अध्ययन करके उसकी तुलनामूलक समालोचना करते हैं। परन्तु यह सब वे अपनी ही मातृभाषा में करते हैं। उन्हें संस्कृत-साहित्य से सम्बन्ध रखने वाली बातें संस्कृत ही में लिखने की आवश्यकता भी नहीं। संस्कृत में लिखने से कितने आदमी उनके लेख और पुस्तकें पढ़ सकें? बहुत ही कम। और जो पढ़ भी सकें उनमें से भी बहुत ही कम भारतवासी पण्डित ऐसी पुस्तकें मोल ले सकें। शायद इसी से योरप के संस्कृतज्ञ संस्कृत-भाषा और देवनागरी-लिपि में अपने विचार प्रकट करने का अभ्यास नहीं करते। अतएव यदि कोई यह कहे कि उनमें संस्कृत लिखने का माद्दा ही नहीं तो उसकी यह बात न मानी जायगी। अभ्यास से क्या नहीं हो सकता? योरप वाले सैकड़ों काम ऐसे करते हैं जिन्हें देख अथवा जिनका वर्णन पढ़ कर हम लोगों को अपार आश्चर्य होता है। अतएव अभ्यास करने से अच्छी संस्कृत लिख लेना उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं। वह उनके लिए सर्वथा साध्य है। जो लोग भारत आते हैं और यहाँ कुछ समय तक रहते हैं उनके लिए तो यह बात और भी सहल है।

इस पर भी कई विद्वान् योरप में ऐसे होगये हैं, और अब भी कई मौजूद हैं, जिनकी लिखी संस्कृत-भाषा देख कर मालूम होता है कि वह उन्हें करतलगत आमलकवत् हो रही है। डाक्टर बूलर और पिटर्सन बिना रुके संस्कृत में बातचीत कर सकते थे। कुछ समय हुआ, रूस के एक विद्वान्, भारत आये थे। वे भी अच्छी संस्कृत बोल लेते थे। विदेशियों की संस्कृत बोली में यदि कोई विलक्षणता होती है तो वह उच्चारणसम्बन्धिनी है। परन्तु इस प्रकार की विलक्षणता स्वाभाविक है। हम लोगों की अँगरेज़ी भी तो विलक्षणता से ख़ाली नहीं।

कोई ६० वर्ष हुए, जेम्स राबर्ट बालेंटाइन नामक एक विद्वान्, बनारस के गवर्नमेंट-कालेज में प्रधान अध्यापक थे। ये संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। अरबी-फ़ारसी में भी इनकी गति थी। संस्कृत ये बोल भी सकते थे और लिख भी सकते थे। संस्कृत-भाषा और देवनागरी-लिपि के ये बड़े भारी पक्षपाती थे। ये चाहते थे कि अँगरेज़ी में जो ज्ञान-समूह है उससे भारतवासी लाभ उठावें और संस्कृत में जो कुछ ज्ञेय है उससे अँगरेज़ी जाननेवाले लाभ उठावें। इसी से इन्होंने बनारस-कालेज के संस्कृत-विभाग में पढ़ने वालों को अँगरेज़ी भाषा सीखने का भी प्रबन्ध किया था। अपनी उद्देश-सिद्धि के लिए इन्होंने, गवर्नमेंट की आज्ञा से, कुछ उपयोगी पुस्तकें भी प्रकाशित की थीं। इनमें से एक पुस्तक का नाम है—Synopsis of Science. इसमें योरप और भारत के शास्त्रों का सारांश, अँगरेज़ी और संस्कृत-भाषाओं में, है। बालेंटाइन साहब की यह पुस्तक देखने लायक़ है। इस पुस्तक को छपे और प्रकाशित हुए ५० वर्ष से अधिक समय हुआ। इसका दूसरा संस्करण, जो हमारे सामने है, मिर्ज़ापुर के आर्फन-स्कूल-प्रेस का छपा हुआ है। न्याय, सांख्य, वेदान्त, ज्यामिति, रेखागणित, बीजगणित, प्राणिशास्त्र, रसायनशास्त्र, समाजशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, कीटपतङ्गशास्त्र, भूगोल-विद्या, भूस्तरविद्या, राजनीति-विज्ञान, यहाँ तक कि सम्पत्तिशास्त्र तक के सिद्धान्तों का इसमें वर्णन है। पुस्तक दो भागों में विभक्त है। प्रथमार्द्ध में पूर्वोक्त शास्त्रों का सारांश अँगरेज़ी में दिया गया है, और उत्तरार्द्ध में संस्कृत में। गौतमीय न्यायशास्त्र के आधार पर साध्य की सिद्धि की गई है। योरप और भारत के शास्त्रीय सिद्धान्तों में जहाँ जहाँ विरोध है वहाँ वहाँ योग्यता-पूर्वक वह विरोध स्पष्ट करके दिखलाया गया है। परन्तु किसी के मत, सिद्धान्त या विवेचन पर कटाक्ष नहीं किया गया। एक उदाहरण लीजिए। गौतम-सूत्रों के आधार पर बालेंटा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन साहब ने एक जगह अपवर्ग, अर्थात् मोक्ष, की व्याख्या कर के यह लिखा :—

"पुनर्दुःखोत्पत्तिर्यथा न स्यात् विमोक्षो विध्वंसः तथा च पुनर्दुःखोत्पत्तिप्रतिबन्धको दुःखध्वंसः परमपुरुषार्थस्तत्त्वज्ञानेन प्राप्तव्य इति गौतममतम्।"

इसके आगे ही आपने अपने, अर्थात् योरप के तत्त्वज्ञानियों के, मत का इस प्रकार निदर्शन किया:—

"अस्मन्मतं तु नैवंविधदुःखध्वंसमात्रं परमपुरुषार्थः। तस्याभावरूपतया तुच्छत्वेन स्वतो मनोहरत्वाभावात्। किन्तु परमपुरुषार्थे दुःखध्वंसादन्यत् किमपि स्पृहणीयमस्ति। यद्वा तद्वा तदस्तु, तत् सर्वथा सर्वज्ञस्य परमदयालोः परमेश्वरस्यैव प्रसादेन तद्भक्तैः प्राप्यमस्तीति"।

इसी तरह बराबर आप, जहाँ जहाँ आवश्यकता थी, अपना मत देते गये हैं। पर कहीं भी अनुचित आक्षेप किसी धर्म्म, मत या सिद्धान्त पर नहीं किया।

बालेंटाइन साहब की पूर्वोक्त पुस्तक के आरम्भ में जो उपोद्घात अँगरेज़ी में है उसमें आपने कितनी हीं ज्ञातव्य बातों का समावेश किया है। उसमें आपके उदारतापूर्ण विचारों की बड़ी ही भरमार है। आपने तत्त्वज्ञान को सब ज्ञानों से श्रेष्ठ समझ कर पहले उसी का विचार किया है। पुस्तक के उत्तरार्द्ध के आरम्भ में आपकी लिखी हुई एक छोटी सी भूमिका संस्कृत में भी है। उस से भी आप के हृदय के औदार्य्य का सोता सा बह रहा है। उस का कुछ अंश हम नीचे उद्धृत करते हैं।

"सुनिपुणानां बुद्धिमतां विचारे परस्परविरोधः केवलं दुःखहेतुः। वादिप्रतिवाद्यभिमतार्थस्याभेदेऽपि यदि तयोर्भाषाभेदमात्रेण भेदावभासः तर्हि सोऽपि तथैव। अन्योन्यमतपरीक्षणात्पूर्वं परस्परनिन्दादिकं निष्फलत्वादनुचितम्। अपि च यत्र केवलं विवदमानयोर्द्वयोरपि भ्रान्तिमूलकविवाददूरीकरणार्थः प्रयत्नो महाफलत्वात्प्रशस्यस्तत्र भूखण्डद्वयनिवासिनावदूकानां परस्परं विवाददूरीकरणार्थक प्रयत्नः प्रशंसायोग्य इति किं वक्तव्यम्। एतादृशप्रयत्नकारी पुरुषः सम्पूर्णफलाप्राप्तावपि न निन्द्यः। भारतवर्षीयार्यजनानां प्राचीनस्वमतग्रन्थपरिपालनं तत्प्रेम च तेषां महास्तुतिकारणम्। एवं प्रतिदिनं वर्द्धमानस्वमतग्रन्थाभ्यासजनितसततज्ञानवृद्धया सन्तुष्यन्तो यूरोपीयलोका अपि न निन्द्याः। यदि कश्चिद् यूरोपीयजनो भारतवर्षीयार्योक्तं वास्तवमपि तदीयव्यवहारं तन्मततत्त्वञ्च यथार्थतोऽविज्ञाय निन्देत्तदनुचितमेव। एवं यदि भारतीयजनो यूरोपीयमतमविज्ञाय निन्देत्तदपि तथैव। एवञ्चान्यतरभ्रान्तिजनितमतविरोधप्रयुक्तदुःखस्य हेयतया तद्दूरीकरणायावश्यं कश्चिदुपायोचितमतस्वीकारे सति सत्फलासम्भवोऽनीप्सितदुष्टफलसम्भवश्च। अतो विचारिणोर्द्वयोरेकविषये मतभेदे सदसद्विर्णयाय वादः समुचितः। परन्तु यावत्सम्यक् प्रकारेण मतभेदो नावधृतस्तावद्वादोऽपि न समीचीनः। प्रथमतो मतयोर्यथासम्भवं साम्यं निर्णीय तदुत्तरं भेदनिर्णयः कर्त्तव्यो येन मतैक्ये विवादो न भवेत्"।

इसी लिए आपने यह उभयभाषात्मक न्यायकौमुदी नामक शास्त्रसंग्रह ग्रन्थ लिख कर प्रकाशित किया। आपकी पुस्तक के इस अवतरण में कितनी ही बातें ऐसी हैं जिनसे हम लोगों को बहुत कुछ शिक्षा और उपदेश की प्राप्ति हो सकती है। इस इतने बड़े अवतरण देने का मतलब यह है कि पाठक बालेंटाइन साहब के उस उद्देश को भी समझ जायँ जिससे प्रेरित हो कर उन्हों ने यह ग्रन्थ लिखा और साथ ही उनकी संस्कृतज्ञता का अन्दाज़ा भी उन्हें हो जाय। आपकी संस्कृत बड़ी ही सरल और सुबोध है। पुस्तक भर में आपने इसी तरह की प्राञ्जल भाषा लिखी है। आपको संस्कृत में पद्यरचना का भी अभ्यास था। पाठक कह सकते हैं कि, सम्भव है, उन्होंने इस पुस्तक को किसी बनारसी पण्डित की सहायता से लिखा हो। ऐसी शङ्का के लिए जगह अवश्य है। काशी में, विशेष करके कालेज में, पण्डितों के बीच रह कर उन्होंने पण्डितों से सहायता ली हो तो कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। परन्तु बालेंटाइन साहब की संस्कृत पण्डितों की जैसी लच्छेदार संस्कृत नहीं। वह इतनी सरल और स्वाभाविक है कि प्रकाण्ड पाण्डित्य की गन्ध उससे ज़रा भी नहीं आती। वह पुकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुकार कर कह रही है कि मैं काशी के पण्डितों की करामात नहीं। इस भीतरी साक्ष्य के सिवा हमारे पास पण्डित मथुराप्रसाद मिश्र का भी साक्ष्य है। वे बालेंटाइन के समय में ही बनारस कालेज में थे और बालेंटाइन साहब ही की सूचना के अनुसार लघुकौमुदी का अनुवाद उन्हों ने हिन्दी में किया था। इस प्रबन्ध के लेखक ने उनके मुख से सुना था कि बालेंटाइन साहब अच्छे संस्कृतज्ञ ही न थे, किन्तु अच्छे संस्कृत-वक्ता और अच्छे संस्कृत-लेखक भी थे।

१८४४ ईसवी में जे० म्यूर साहब बनारस कालेज के प्रधानाध्यापक थे। ये भी संस्कृत में अच्छी योग्यता रखते थे। यह बात इनके एक ग्रन्थ से प्रमाणित है। यह ग्रन्थ बड़ी बड़ी पाँच जिल्दों में है। इसका नाम है:—"Original Sanskrit Texts on the Origin and History of the People of India, their Religion and Institutions." इसके सिवा बालेंटाइन साहब ने भी म्यूर साहब की संस्कृतज्ञता और योग्यता की गवाही दी है। अपनी न्यायकौमुदी की अँगरेज़ी-भूमिका में उन्होंने लिखा है:—

"Mr. Muir delivered lectures, in Sanskrit, on Moral and Intellectual Philosophy; and the sentiments which he then inculcated have often, since that time, furnished topics for discussion in the college."

म्यूर साहब जब संस्कृत में लेकचर दे सकते थे तब वे अवश्य ही अच्छी तरह संस्कृत बोल लेते रहे होंगे। यह उनकी संस्कृतज्ञता और सम्भाषण शक्ति का प्रमाण हुआ। यह बात तो डाक्टर टीबो और वीनिस साहब आदि संस्कृत-विद्वानों में भी पाई जाती है। म्यूर साहब में एक और विशेषता थी। वे संस्कृत लिखते भी थे। गद्य ही नहीं, पद्य भी। उनकी लिखी हुई मत-परीक्षा नामक एक बहुत बड़ी पुस्तक संस्कृत-पद्य में है। उस से दो चार श्लोक हम नीचे उद्धृत करते हैं:—

यः पूर्वभूतवृत्तान्तः पारम्पर्येण लभ्यते।
स जातु प्रत्ययार्होऽस्ति जातु नास्तीति बुध्यते॥
वृत्तान्तः कश्चिदेको हि सप्रमाणः प्रतीयते।
प्रमाणवर्जितोऽन्यस्तु प्रतिभाति परीक्षणात्॥
अतोऽमुका पुरावृत्तकथा विश्वासमर्हति।
न वेत्येतद्विवेकाय तद्विशेषो विचार्य्यताम्॥
असौ कथा कदा कुत्र कस्य वक्त्रादजायत।
श्रोतारश्चादिमास्तस्याः कीदृशाः कति चाभवन्॥

इन पद्यों की रचना कह रही है कि ये म्यूर साहब ही के लिखे हुए हैं। अतएव इसमें सन्देह नहीं कि वे संस्कृत बोल भी सकते थे और लिख भी सकते थे।

The Light of Asia, Indian Poetry, Secret of Death आदि पुस्तकों के लेखक सर एडविन आर्नल्ड का नाम पाठकों में से बहुतों ने सुना होगा। आपकी भी गिन्ती संस्कृतज्ञों में है। १८९६ में आपने चौरपञ्चाशिका का पद्यात्मक अनुवाद अँगरेज़ी में करके मूल-सहित उसे प्रकाशित किया। परन्तु टाइप में नहीं, लीथो में। प्रत्येक पृष्ठ को आपने अपने ही हाथ से खींचे गये चित्रों से भी अलङ्कृत किया। ऐसा करने में किसी किसी पद्य के भाव को आपने चित्र में भी अलङ्कृत कर दिया। आपकी लिखी हुई चौरपञ्चाशिका के सातवें श्लोक का फोटो अलग छापा जाता है। उससे पाठकों को आर्नल्ड साहब की देवनागरी लिपि का नमूना देखने को मिल जायगा।

आपके नक़ल किये हुए पद्यों में से कई पद्यों में त्रुटियाँ हैं। परन्तु वे क्षम्य हैं।

फ्रेडरिक पिनकाट, भट्ट मोक्षमूलर और अध्यापक मुग्धानलाचार्य की नागरी-लिपि के नमूने सरस्वती में निकल चुके हैं। यहाँ पर हम डाक्टर ग्रियर्सन की लिपि का एक नमूना देते हैं। उनसे और इन पङ्क्तियों के लेखक से, एक दफ़े, कविता की भाषा के सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार हुआ। इस विषय में आपने अपने हाथ से बाबू हरिश्चन्द्र की सर्वश्रुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर एडविन आर्नल्ड की हस्तलिपि

अद्यापि तां सुरततारुण्यसूत्रधारो
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखो मदविह्वलाङ्गो ।
नव्यो विशालजघनस्तनभारखिन्ना
व्यालोलकुन्तलकलापवतीं स्मरामि ॥७॥

डाक्टर ग्रियर्सन की हस्तलिपि

"मन देखिये कैसी थोड़ी कविता है। मैंने इसका कारण सोचा कि खड़ी बोली में कविता मीठी क्यों नहीं बनती तो मुझको सबसे बड़ा यह कारण जान पड़ा कि इसमें क्रिया इत्यादि में प्रायः दीर्घ मात्रा होती है। इससे कविता अच्छी नहीं लगती ॥"

आर० पी० ड्यहर्स्ट साहब की हस्तलिपि

बरेदमत पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी सम्पादक सरस्वती मासिक पत्रिका बमक़ाम दौलतपुर डाकखान भोजपुर ज़िला राय बरेली पहुँचे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मति लिख भेजी, जिसकी प्रतिलिपि अलग छापी गई है।

आप की भी वही राय है जो बाबू हरिश्चन्द्र की थी। डाक्टर साहब अनेक पूर्वी भाषाओं और बोलियों के ज्ञाता हैं। हिन्दी भी आप बहुत अच्छी जानते हैं; परन्तु लिखते नहीं। हमारे प्रार्थना करने पर भी आपने हिन्दी में लेख लिखने की कृपा न की। कुछ भी हो, देवनागरी आप सफ़ाई और शुद्धता के साथ लिख सकते हैं। इस में सन्देह नहीं।

आर० पी० डाहर्स्ट साहब इन प्रान्तों में सिविलियन हैं। कुछ समय पहले आप रायबरेली में डेपुटी कमिश्नर थे। आप हिन्दी, उर्दू और फ़ारसी के अच्छे पण्डित हैं। शायद आप अरबी भी जानते हैं। बड़े विद्वान्, बड़े विद्याव्यसनी और बड़े पुरातत्त्वप्रेमी हैं। आपके लेख एशियाटिक सोसाइटी आदि के जर्नलों में निकला करते हैं। आपकी देवनागरी लिपि बड़ी ही सुन्दर और स्पष्ट होती है। शुद्ध भी होती है। मार्च १९०७ में इस लेखक के पत्र के उत्तर में आपने कृपा करके एक पत्र लिखा था। उसके लिफ़ाफ़े पर अँगरेज़ी के सिवा देवनागरी में भी पता लिखने की आपने कृपा की थी। उसका चित्र अलग दिया गया है।

देखिए, आपकी हस्तलिपि कैसी मनोहारिणी है।

जो कुछ यहाँ तक लिखा गया, उससे सिद्ध हुआ कि योरप के विद्वान् यदि अभ्यास करें तो पूर्वी देशों की भाषायें और लिपियाँ उसी तरह लिख सकें जिस तरह कि भारतवासी अँगरेज़ी भाषा और रोमन लिपि लिख सकते हैं।

मलय-मारुत ।*

(१)

मलयाचल गृह सुना तुम्हारा जहां विहगिनी गाती हैं,
क्या अप्सरा नन्दन-वन में श्रवण-सुधा बरसाती हैं।
हे मलयानिल ! कुसुम-कामिनी अति कोमल कमला कैसी
सेवा करती सदा तुम्हारी रतिनायक की रति जैसी ॥

(२)

हाय ! आज व्रज में क्यों फिरते, जाओ तुम सरसी के तीर,
मृदु हिल्लोल-युक्त नलिनी को मुदित करो हे मन्द समीर !
व्रज-दिनकर जो हैं वह व्रज तज अन्धकार फैला कर आज,
अन्य दिशा में हैं विराजते विदित नन्दनन्दन व्रजराज ॥

(३)

देगी तुम्हें सुरभि-मणि नलिनी राधा क्या देसकती हाय !
भींग रही है नयन-नीर से वह दुःखिनी आज निरुपाय।
जाओ, जहां कोकिला गाती, मधु-वर्षासी होती है;
इस निकुञ्ज में आज विरहिणी राधा बैठी रोती है ॥

(४)

समदुःखी हो यदि तुम मेरे तो हरि-निकट शीघ्र जाओ,
जाओ, जाओ, सुभग आशुगति ! जहां श्याम धन को पाओ।
राधा का रोदन-रव उनके कानों तक तुम पहुँचाओ;
"मरती है राधा वियोगिनी"—राधावर से कह आओ ॥

(५)

जाओ, अहो महाबलि ! सत्वर लाओ व्रजभूषण का शोध,
दुर्मति तुङ्ग शृङ्ग को तोड़ो करे तुम्हारा जो गति-रोध।
विघ्न करे तरुराज कहीं तो वज्रपात करके सक्रोध,
भञ्जन करना उसे प्रभञ्जन ! करती हूँ तुम से अनुरोध ॥

(६)

तुम्हें देख यदि नदी-सुन्दरी डाले प्रेम-पाश अनुभूत
मत भूलो उसके विभ्रम में तुम हे राधा के प्रिय दूत !
मन का क्रय करने को देगी कुसुम-कामिनी सौरभ धन;
मत देखो, मत देखो उसको, छलना है वह अहो पवन !

(७)

शिशिर-नीर से भींग न भूलो धारावाहिक लोचननीर;
शाखा पर यदि कोकिल बोले छोड़ो वह वन शीघ्र, समीर !
होना सुख से विमुख सोच कर राधा का यह दुख भारी;
पर-दुख से जो दुखी वही है सुकृती, सुजन, सदाचारी ॥

(८)

पहुँचो जब हरि-निकट, सुनाना उन्हें राधिका का रोना,
श्याम बिना गोकुल रोता है—कह देना, साक्षी होना।
और कुछ नहीं कह सकती हूँ लज्जावश, मैं हूँ नारी;
'मधु' कहता है व्रजबाले ! मैं कह दूँगा बातें सारी ॥

—— "मधुप"।

* "व्रजाङ्गना" के एक अंश का भाव।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्ति का सार्वभौमिक राज्य।

आज सारे संसार की बड़ी बड़ी शक्तियाँ शान्ति का मधुर राग अलाप रहीं हैं। जिधर देखो उधर शान्ति का साम्राज्य स्थापित करने की बड़ी बड़ी कोशिशें हो रही हैं। सभी सभ्य देश पारस्परिक राष्ट्रीय नियमों के बन्धन में बँधे हुए यह कह रहे हैं—"मनुष्यमात्र बराबर हैं; सबको स्वाधीनता का रस चखने का एकसा अधिकार है"। बड़े राष्ट्र छोटे राष्ट्रों को सांत्वना देते हुए कह रहे हैं—"डरो मत, अब कोई किसी के ऊपर अत्याचार नहीं कर सकता। वह समय गया। अब जिसकी लाठी उसकी भैंस का ज़माना नहीं"। इन वचनों की पुष्टि का प्रमाण भी मिलता है—कानों को नहीं, आँखों को। देखो, यह देश का अन्तर्राष्ट्रीय महा-न्यायालय है। बड़े बड़े राष्ट्र जिनके हाथों में सारे संसार का वाणिज्य है। जिनके बल और पराक्रम पर विचार करने से सिकन्दर और सीज़र, अशोक और अकबर आदि महावीरों का बल और पराक्रम तुच्छ मालूम पड़ता है; और, जिनके इच्छानुसार वर्तमान संसार का राजनैतिक चक्र घूमा करता है—वे सभी इस पुनीत मन्दिर में बड़ी श्रद्धा से शान्ति-देवी की आराधना कर रहे हैं। राष्ट्रीय-नियम-रूपी विशाल छत्र के नीचे प्रत्येक राष्ट्र निर्भय होकर विचार रहा है। जान पड़ता है, अब कोई बलवान् देश किसी निर्बल देश को न सता सकेगा। लड़ाई और झगड़ा, अत्याचार और अशान्ति आदि, मनुष्य जाति की सुख और समृद्धि में बाधा डालने वाली बातों का अब ख़ातमा ही हुआ चाहता है।

परन्तु, क्या सचमुच शान्ति का सार्वभौमिक राज्य संसार पर हो गया अथवा हो जायगा? क्या अब हमें जंगी अस्त्र-शस्त्रों की झङ्कार न सुनाई पड़ेगी? क्या अब भीमकाय तोपें मनुष्यों का संहार करती हुई कानों के पर्दे न फाड़ेंगी? क्या अभी तक आपस में लड़नेवाले राष्ट्र—वे राष्ट्र जो अपने से कमज़ोर को हड़प कर जाने की चिन्ता में सदा मग्न रहते थे—जो अपनी राजनैतिक दुरङ्गी चाल से संसार भर को नचाया करते थे और जो अपने भयङ्कर युद्ध-पोतों और तोपों से अर्ध-सभ्य, असभ्य और कमज़ोर देशों को भयभीत रखते थे—समानता के उज्ज्वल और पवित्र सिद्धान्त के मीठे रस का इतना मज़ा पा गये कि वे अब "टट्टी की ओट शिकार खेलने" अथवा कमज़ोरों को संसार से नेस्त-व-नाबूद कर देने की प्रथा का त्याग कर देंगे और सौम्य रूप धारण कर के संसार में शान्ति का परमावश्यक और सुखदायी साम्राज्य स्थापित होने देंगे?

इस समय संसार में जो घटनायें हो रही हैं उन पर विचार करने से तो यही कहना पड़ता है कि शान्ति का कहीं नाम भी नहीं। महा-शक्तियों के शान्ति के राग के भीतर अशान्ति का चीत्कार ही अधिक सुनाई पड़ता है। वे शान्ति के परम उपासक तो अवश्य हैं, परन्तु यह उपासना मौखिक ही है। वे शान्ति का पाठ रटा तो करते हैं, परन्तु उनके हृदय में अशान्ति ही की ज्वाला भभकती रहती है। वे सदा सिर से ले कर पैर तक अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हैं। एक यदि ड्रेटनाट तैयार करता है तो दूसरे को सुपर-ड्रेटनाट (Super-Dreadnaught) बनाने की चिन्ता उत्पन्न हो जाती है। इस चिन्ता से उसका छुटकारा उस समय तक होता ही नहीं जब तक वह सुपर-ड्रेडनाट या उसके सदृश और कोई भयानक और शान्ति-नाशक वस्तु तैयार नहीं कर लेता। हर महा-शक्ति दूसरी से बढ़ी चढ़ी ही रहना चाहती है। नाविक शक्ति का समुच्चय क्या संसार में शान्ति के स्थापनार्थ ही हो रहा है और क्या उसके रहते संसार में शान्ति का राज्य स्थापित हो सकता है?

इसमें सन्देह नहीं कि भूमण्डल की महा-शक्तियों के बड़े भारी केन्द्र, योरप, में कोई चालीस वर्ष से कोई युद्ध नहीं हुआ। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि योरप की महा-शक्तियों ने शान्ति की उपयोगिता को अच्छी तरह समझ लिया है। यद्यपि योरप में तोपों का घोरनाद और अस्त्र-शस्त्र की झङ्कार नहीं सुनाई पड़ती, तथापि योरप में—भयङ्कर से भयङ्कर तोप या ड्रेटनाट से भी भयानक काम करनेवाले व्योमयान जो संसार में अशान्ति ही की वृद्धि का मूल कारण कहे जा सकते हैं—उनके बनाने में एक बलवान् राष्ट्र दूसरे से ज़रा भी पीछे नहीं रहना चाहता। मनुष्यों के प्राण लेने वाले इन आविष्कारों को देख कर हम इस बात को मान सकते हैं कि ये सब बातें महाशक्तियाँ अपना बल योरप से बाहर एशिया और अफरीक़ा में आज़माने से नहीं चूकीं। हाँ, अमेरिका उनकी नादिरशाही से अवश्य बचा हुआ है।

जिस योरप में एक छोड़—संसार की छः छः महा-शक्तियां हों—और जहाँ महा-भयङ्कर मनुष्य-नाशक नये नये यन्त्रों का आविष्कार और उनकी उन्नति होती हो—वहाँ रक्त-पात न होने के कुछ बड़े भारी कारण अवश्य हैं। योरप की सामाजिक अवस्था बड़ी ही शोचनीय है। समृद्धि-शाली योरप के निवासियों के सामने रोटी का सवाल बड़ा भयङ्कर रूप धारण किये सदा उपस्थित रहता है। उनके पास आज के लिए खाने को है तो कल के लिए नहीं। दो दिन के लिए उनके कारख़ाने बन्द हो जायँ तो वे भूखों मरने लगें। चालीस वर्ष तक योरप में शान्ति रहने का एक कारण यह भी है कि यदि वहाँ अशान्ति हो तो सारे कारख़ाने बन्द हो जायँ और बे-पेशा हो जाने वाले मज़दूर भूख से बचने के लिए देश में अराजकता फैला कर बाहरी शत्रु से भी अधिक हानि पहुँचावें।

योरप की शान्ति का एक कारण और भी है। योरप की महा-शक्तियाँ दो दलों में बँटी हुई हैं। इँगलैण्ड, फ्रांस और रूस एक तरफ़ हैं; और जर्मनी, इटली और आस्ट्रिया दूसरी तरफ़। दोनों पलड़े बराबर हैं। योरप के बड़े बड़े राजनीतिज्ञ बहुत वर्षों से इन पलड़ों को बराबर रखने की चेष्टा करते आये हैं। जहाँ एक पलड़ा नीचे हुआ कि बस, योरप की आफ़त आगई समझो। इनके सिवा और भी कितने ही छोटे मोटे कारण हैं, जिनसे योरप के चालीस वर्ष बिना रक्त-पात के बीत गये।

अमेरिका में भी बहुत दिनों से शान्ति विराजमान है। यदि हम उस युद्ध को हिसाब में न लें जो उन्नीसवीं शताब्दी के तीसरे चरण में ग़ुलामी की प्रथा उठाने के लिए अमेरिका की उत्तरी और दक्षिणी रियासतों के बीच में हुआ था और जिसमें किसी छीना-झपटी की गरज़ से नहीं, किन्तु मनुष्य-जाति की एक बड़ी भारी कमज़ोरी दूर करने के लिए भाई ने भाई का गला काटा था—तो यही सिद्ध होता है कि कोई सौ वर्ष से अमेरिका में छीना-झपटी की प्रथा बन्द है। इसका कारण योरप की ऐसी सामाजिक दुर्दशा अथवा एक राज्य का पलड़ा दूसरे राज्य के पलड़े के बराबर रखने का यत्न नहीं। इसके कारण और ही हैं। सुनिए :—

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक दक्षिणी अमेरिका पूरा, और उत्तरी अमेरिका का मेक्सीको तक दक्षिणी भाग, योरप की तत्कालीन दो महा-शक्तियों के, अर्थात् पोर्चुगाल और स्पेन के, लिए उपनिवेश का काम देते थे। उस शताब्दी के आरम्भ में महावीर नेपोलियन के आतङ्क से योरप की सारी शक्तियाँ थर थर काँप रही थीं। इँगलैंड को छोड़ कर शेष सभी शक्तियों को एक एक करके नेपोलियन से नीचा देखना पड़ा। स्पेन और पोर्चुगाल भी परास्त हुए। नेपोलियन ने इन दोनों देशों पर वहाँ के राज-वंशों को निकाल कर अपना अधिकार जमाया। इस राज्यक्रान्ति से इनके उपनिवेशों में बड़ी हलचल मची। पोर्चुगाल का राज-वंश तो भागा हुआ अपने उपनिवेश ब्रेज़िल पहुँचा। इसलिए ब्रेज़िल में तो एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गया। शेष बचे हुए देशों में, जो स्पेन के अधीन थे, बहुत कुछ गड़बड़ के बाद उत्तरी अमेरिका के संयुक्त राज्य के ढंग के प्रजा-सत्ताक राज्य स्थापित हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब नेपोलियन का पतन हुआ तब स्पेन का पुराना राज-वंश फिर चेता। उसे अपने उपनिवेशों को परास्त करने की सूझी। योरप की कुछ शक्तियाँ स्पेन को इस काम में सहायता देने के लिए भी तैयार हुईं। उन दिनों उत्तरी अमेरिका के संयुक्त-राज्य के सभापति थे मिस्टर जेम्स मानरो। मानरो जितने शान्ति-प्रिय थे उतने ही न्याय-प्रिय भी थे। जब उन्हें स्पेन की नीयत का पता चला तब उन्होंने संयुक्त राज्य की ओर से एक घोषणा प्रकाशित की जिसका सारांश यह था:—

दोनों अमेरिका, अमेरिका वालों के हैं। स्पेन योरप की कुछ शक्तियों की सहायता से दक्षिणी और मध्य अमेरिका के कुछ प्रजा-सत्ताक राज्यों को दबाना चाहता है। परन्तु यह बात अच्छी नहीं। संयुक्त-राज्य अमेरिका, योरप की राजनीति में बिलकुल हस्तक्षेप नहीं करता। इससे योरप की सब शक्तियों को भी अमेरिका के राज्यों के काम में दस्तन्दाज़ी न करनी चाहिए। यदि योरप की कोई शक्ति दोनों अमेरिका के किसी राज्य की स्वतन्त्रता में बाधा डालने का प्रयत्न करे तो अमेरिका का संयुक्त-राज्य योरप की उस शक्ति के साथ मित्रता का व्यवहार रखने में असमर्थ होगा।

मानरो की इस घोषणा से स्पेन स्तम्भित हो गया। फिर उसने अमेरिका में पैर रखने का कभी विचार तक न किया। योरप की अन्य शक्तियाँ भी सन्नाटा खींच गईं। मानरो की इस घोषणा ने वह काम किया जो बड़े बड़े ड्रेडनाट और भयङ्कर तोपों से सुसज्जित सेनायें भी न कर सकतीं। प्रत्येक अमेरिका-निवासी को इस घोषणा का बड़ा गर्व है। केवल इसी घोषणा के कारण आज तक संसार की कोई भी महा-शक्ति अमेरिका में पैर न रख सकी; और, आज वहाँ शान्ति का अटल राज्य है।

भूमण्डल पर छः महाद्वीप हैं;—एशिया, योरप, अफ़रीका, दो अमेरिका और आस्ट्रेलिया। आस्ट्रेलिया ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत होने के कारण शान्ति का पूरा पूरा सुख अनुभव कर रहा है, और जब तक ब्रिटिश साम्राज्य है तब तक वह इस सुख को भोगता जायगा। दोनों अमेरिका में भी इस समय तक शान्ति है; परन्तु भविष्यत् में वहाँ शान्ति रहेगी या नहीं, इस में लोगों को शङ्का है। मानरो की घोषणा ने अमेरिका वालों को बाहरी आक्रमण से तो बहुत कुछ निर्भय कर दिया, परन्तु वहाँ अभी तक आपस में हाथापाई रोकने का कोई बन्दोबस्त नहीं। इस समय अमेरिका में कोई २१ स्वतन्त्र राज्य हैं। कोई भी आपस में मज़े से लड़ सकते हैं और विजित के राज्य का जितना भाग चाहें हज़म कर सकते हैं। मानरो की घोषणा इसे नहीं रोक सकती।

अमेरिका वाले इस त्रुटि को अच्छी तरह समझते हैं। इससे शीघ्र ही वहाँ कोई ऐसा अन्तरराष्ट्रीय नियम बनने वाला है जिससे अमेरिका के प्रजा-सत्ताक राज्य कभी एक दूसरे का राज्य या उसका कुछ अंश छीनने की चेष्टा न करें। इस नियम के बन जाने पर अमेरिका में भी भविष्यत् में शान्ति रहेगी।

अफ़रीका की क़िसमत का फ़ैसला योरप के हाथ में है। एशिया का भी योरप से बहुत बड़ा सम्बन्ध है। योरप में ही शान्ति रहने से एशिया और अफ़रीका भी शान्त रह सकते हैं। योरप के बड़े बड़े विद्वान् जी-जान से चेष्टा कर रहे हैं कि योरप में शान्ति का अटल राज्य हो जाय। हेग का महा-न्यायालय अशान्ति की अग्नि बुझाने के लिए ही स्थापित हुआ है। योरप में इस समय ऐसा साहित्य भी तैयार हो रहा है जिस में बड़ी बड़ी युक्तियों द्वारा शान्ति से लाभ और युद्ध से हानियाँ दिखाई जा रही हैं। अनेक विद्वान् यह सिद्ध कर रहे हैं कि युद्ध से विजित और विजेता—दोनों—को सिवा हानि के कोई लाभ नहीं। जो हो, यदि संसार में शान्ति का साम्राज्य स्थापित करना है तो योरप वालों में शान्ति-प्रियता का बढ़ना परमावश्यक है। योरप में शान्ति का राज्य स्थापित हो जाने से एशिया और अफ़रीका में भी शान्ति रहेगी। जिस दिन से योरप की शक्तियाँ एक दूसरे की प्रतिद्वन्द्विता एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियमित सीमा तक ही करने लगेंगी और जैसे वे योरप में अपनी तलवार म्यान में रखना ही अच्छा समझती हैं वैसे ही जिस दिन से वे योरप के बाहर भी करने लगेंगी—उसी दिन शान्ति के सार्वभौमिक राज्य की नींव पड़ेगी।

गणेशशङ्कर विद्यार्थी।

जनसंख्या की बाढ़ से भारत की अवनति।

देश में चारों तरफ़ लोग एका एका चिल्ला रहे हैं। पर एका हो तो कैसे हो। जिस देश के लोग छोटे छोटे दुधमुँहे बच्चों का ब्याह करके अपाहिजों और जाहिलों की उत्पत्ति से देश की आबादी बढ़ा रहे हों; जिस देश की आधी जनसंख्या यह नहीं जानती कि भरपेट भोजन किसे कहते हैं; जहाँ एक रोटी में चार आदमी साझा लगाने वाले हों; जहाँ "बुभुक्षितः किन्न करोति पापम्" के अनुसार ज़रा ज़रा सी बातों के लिए न जाने कितने पाप, मुक़द्दमेबाज़ी और लड़ाई-झगड़े होते हों वहाँ एका का नाम लेना सभ्य संसार के सामने अपनी हँसी कराना है। जिस देश की ऐसी दशा हो वहाँ एकाकार, सुधार, अधिकार और व्यापार आदि की वृद्धि होना बहुत ही कष्टसाध्य बात है।

अगर माली हर रोज़ बाग़ की सफ़ाई और पेड़-पत्तों की व्यर्थ बाढ़ की काट-छाँट न करे तो बहुत जल्द वही सुरम्य बाग़ जङ्गल की शकल में बदल जाय और वहाँ शोभा और शान्ति के राम-राज्य के स्थान पर कुरूपता और अशान्ति की नादिरशाही का दौरदौरा दिखाई देने लगे। इसी तरह यदि किसी जाति की जनसंख्या एक नियत सीमा का उल्लंघन कर जाती है, और यदि कोई उपाय इस बढ़ी हुई आबादी को नियत सीमा तक लाने का नहीं किया जाता तो दरिद्रता, प्लेग, नास्तिकता, दुराचार आदि अनेक बुराइयों की वृद्धि होने लगती है। ऐसी ही अवस्था में जातियों का अधःपतन शुरू होता है। रोम, ग्रीस तथा और भी कितनेही गिरे हुए देशों के अधःपतन का मूल कारण यही जनसंख्या की निःसीम वृद्धि थी। न जाने कितने वर्ष पहले ही से भारतवर्ष इस शोचनीय अवस्था को पहुँच चुका है—परन्तु हम लोगों ने अब तक इस बुराई को दूर करने का कुछ भी प्रयत्न नहीं किया। कोई और देश इतने अधिक मनुष्यों से बसा हुआ और साथ ही इतना दरिद्र नहीं है। भारतवर्ष के प्रत्येक छोटे छोटे गृहस्थ के घर में भारतवासियों की दुर्दशा का सच्चा चित्र खिँचा हुआ मिलता है। जिस घर में पेट भर खाने को भी न मिलता हो उसमें हर साल दो एक लड़के लड़कियों की बाढ़ साक्षात् नरक का सामना कराती है और उस पर हिन्दू धर्म की विवाह-सम्बन्धिनी तथा अन्य कुरीतियाँ तो 'गण्डस्योपरि पिण्डम्' के समान हैं। अगर काफ़ी चारा न हो तो पास पास रहने वाले निकृष्ट जानवर भी चारे के लिए लड़ कर एक दूसरे की जान के गाहक बन जाते हैं, तो फिर मनुष्यों का क्या कहना।

जितनी भूख है उससे यदि हम अधिक खायँगे तो हमें बदहज़मी हो जायगी और हम बीमार पड़ जायँगे। यदि हम क्रोध के वशीभूत होकर आपे के बाहर हो जायँगे तो, सम्भव है, हम कभी ऐसा काम कर बैठें जिसके लिए हमें पश्चात्ताप करना पड़े। इसी तरह यदि हम बिना विचार किये औलाद पैदा करते हुए देश की आबादी को एक नियत सीमा से बहुत अधिक बढ़ाते चले जायँ तो निःसन्देह ही हम दरिद्रता और प्लेग के शिकार बनेंगे। इन तीनों अवस्थाओं में प्रकृति का एक ही नियम काम कर रहा है। प्रकृति के नियम तोड़ने ही से ये सब उपद्रव खड़े होते हैं। लोग समझते हैं, प्लेग आदि बीमारियाँ ईश्वर के कोप का फल हैं। नहीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं, ये हमारे ही दुष्कर्मों के फल हैं। प्रकृति के नियमों को तोड़ने से ही प्रकृति, हम लोगों को सचेत करने के लिए, प्लेग आदि विपत्तियाँ हम पर डालती है। बड़े बड़े विद्वानों का मत है कि प्लेग दरिद्रता की बीमारी है। और, दरिद्रता जनसंख्या की निःसीम वृद्धि का परिणाम है।

यहाँ तक तो इस बात का वर्णन किया गया कि हतभाग्य भारतवर्ष में जनसंख्या की निःसीम वृद्धि से क्या क्या बुराइयाँ पैदा हो रही हैं। अब उन बुराइयों को दूर करने के कुछ उपाय बतलाये जाते हैं।

(१) दूसरे देशों को जाना मना है, यह विचार इस देश से हमेशा के लिए दूर हो जाना चाहिए और उन आदमियों को एक दम देश छोड़ देना चाहिए, जो देश में भले प्रकार जीवन नहीं व्यतीत कर सकते। कूपमण्डूक के समान अपने अपने घरों की चहार-दीवारी के अन्दर ही बन्द न रह कर ज़रा बाहर की भी हवा खाना चाहिए।

(२) एक समय था जब भारतवर्ष के प्राचीन आर्य अधिक सन्तान के लिए ईश्वर से प्रार्थना किया करते थे। उस समय देश का देश ख़ाली पड़ा था और आर्यों की संख्या बहुत थोड़ी थी। देश को आबाद करने के लिए उन्हें अधिक सन्तान की आवश्यकता थी। इस विचार से उन्होंने सन्तान उत्पन्न करना हर आर्य का कर्त्तव्य कर्म्म कर दिया और "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति" आदि वाक्यों को लिख कर सन्तान उत्पन्न करना धर्म में दाख़िल कर दिया। लेकिन अब वह समय नहीं। इस समय तो आबादी हद से ज़ियादह बढ़ी हुई है और देश में दरिद्रता देवी का अखण्ड वास है। अतएव इस समय सन्तान की वृद्धि अपेक्षित नहीं।

हम लोगों ने अपने जीवन का उद्देश विवाह करके अपाहिज सन्तान उत्पन्न करना, आलस्य से जीवन व्यतीत करना और अन्त में अनेक प्रकार के दुःख भोगते हुए प्राण-विसर्जन करना समझ रक्खा है। अपने अधःपतन के लिए कभी हम किसी को दोष देते हैं, कभी किसी को। वास्तव में देखा जाय तो सारा दोष हमारा ही है। जो विवाह-बन्धन संसार में अति पवित्र बन्धन समझा जाता है, जिस पर हमारी ज़िन्दगी का दारोमदार है, और जिस पर भावी हिन्दू जाति का बनना बिगड़ना अवलम्बित है वही विवाह-बन्धन यहाँ एक खेल समझ रक्खा गया है।

देश के अभ्युदय और कल्याण के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि आबादी बहुत अधिक न बढ़ने पावे। पर इससे यह मतलब नहीं कि लोग विवाह ही न करें। विवाह अवश्य करें; पर तब, जब कि वे अपनी भावी सन्तान का भरण-पोषण करने योग्य हो जायँ। विवाह-प्रथा का संशोधन होने से आबादी का मसला बहुत कुछ हल हो जायगा और आबादी की बाढ़ से पैदा होने वाली प्लेग आदि बुराइयों से भी छुटकारा मिल जायगा।

जनार्दन भट्ट।

बाल-काल

(१)

बाल-काल क्या ही मधुमय है; जीवन का उत्कृष्ट समय है।
शान्ति-सुधा का वह आकर है; शुचि स्वर्गीय सौख्य का घर है।

(२)

चिन्ता, शोक, वियोग नहीं है; भय, अशान्ति, दुख, रोग नहीं है।
बाद-विवाद, न भ्रम, संशय है; क्या ही अच्छा सुखद समय है॥

(३)

तेजस्वी जिनके आनन हैं; पवित्रतामय जिनके मन हैं।
कुछ ऐसे शिशु आन मिले हैं; मानों पद्म-प्रसून खिले हैं॥

(४)

कौतुकमय क्रीड़ायें करना; यहाँ वहाँ स्वच्छन्द विचरना।
कभी साथियों से लड़ जाना; उन्हें मना फिर हृदय लगाना॥

(५)

इस प्रकार के अभिनय नाना—करते सुख से दिवस बिताना।
लभ्य न क्या हम को अब होगा! नव जीवन आगम कब होगा!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६)

वह पवित्र संसार कहाँ है ! बाल-सखा-परिवार कहाँ है !
वह नाटक, हे भ्रात कहाँ है ! शेष एक स्मृति मात्र यहाँ है ॥

(७)

पवित्रता थी भरी नयन में ; था माधुर्य्य-निवास श्रवण में ।
हृदय भक्ति से भरा हुआ था ; हास्य वदन पर धरा हुआ था ॥

(८)

वही नयन, मन, वही श्रवण है; वही हृदय है, वही वदन है ।
पर न रहीं अब वे सब बातें ; दिन पलटे ; पलटीं वे रातें ॥

(९)

बाल्य-खेल सुख सदन कहाँ हैं ! मृदुल धूल के भवन कहाँ हैं !
आंखमिचौनी , गिल्लीदण्डा, थे बचपन में सुख का झण्डा ॥

(१०)

मात-पिता के सुखद गोद में—साथ सखाओं के विनोद में ।
खेल बिताना नित दिन सारा—था शैशव-सुषमा का द्वारा ॥

(११)

जाति-भेद, मतभेद बिसारे, प्रकृत सरलता उर में धारे ,
हिलमिल क्रीड़ा कौतुक करते—थे हम अपने सब दुख हरते ॥

(१२)

भाई भाई लड़ जाते थे; सौंह न मिलने की खाते थे ।
पल में पर सबको बिसरा कर; एक साथ खाते घर जाकर ।

(१३)

ईर्ष्या, द्वेष, विरोध नहीं था; लोभ, मोह, मद, क्रोध नहीं था ।
शत्रु-मित्र सब में समता थी, प्रतिपक्षी से भी ममता थी ॥

(१४)

पर का उदय देख कर जलना; प्रतिहिंसा के पथ पर चलना ।
भाई पर भी खड्ग चलाना; शैशव में था किसने जाना ?

(१५)

सरल न तब किसका स्वभाव था ? लगा स्वार्थ का किसे घाव था ?
कहां एकता का अभाव था ? पूर्ण प्रीतिमय भ्रातृ-भाव था ॥

(१६)

निरुत्साह का नाम नहीं था; अविश्वास मन में न कहीं था ।
थी न घटा चिन्ता की छाई; दुख था तब न रोग था भाई !

(१७)

तब क्या जीवन-भार हुआ था ? विषमय क्या संसार हुआ था ?
प्राणों में थी भरी सरसता; सुख था आठों याम बरसता ॥

(१८)

विद्या से यदि हम वञ्चित थे; गुण तो भी हममें सञ्चित थे ।
अब सब विद्या से मण्डित हैं; पाखण्डों के हम पण्डित हैं ॥

(१९)

ईश्वर में अनुरक्ति अचल थी; मात-पिता में भक्ति अचल थी ।
श्रद्धा-संयुत थी आस्तिकता, ज्ञात न थी हमको नास्तिकता ॥

(२०)

बाल-काल ! आते सुधि तेरी आंखें भर आती हैं मेरी ।
साथ न अब तेरा होना है; इसीलिए ही यह रोना है ॥

पाण्डेय लोचनप्रसाद।

शुद्ध हिन्दी ।

हिन्दी गद्य का आरम्भ हुए आज एक शतक से ऊपर समय बीत गया ; तो भी हिन्दी की लेख-शैली में अभी तक अपनी अपनी डफली और अपना अपना राग है। अँग-रेज़ी में एक कहावत है कि जब वैद्य ही सहमत नहीं है तब निर्णय कौन करेगा ? इसी प्रकार जब हिन्दी के लेखक ही हिन्दी की लेख-शैली के विषय में कुछ निर्णय नहीं करते तब यह भाषा अपनी उन्नति के लिए किसका मुँह ताकेगी ? हिन्दी में लेख-शैली की भिन्नता बहुधा शब्दों के कारण होती है। जो लोग ठेठ हिन्दी के शब्द लिखते हैं उनके विषय में तो यह कहा जाता है कि वे लोग ये शब्द खोज खोज कर लाते हैं। पर जो लोग निरर्थक संस्कृत या फ़ारसी के शब्द लिखते हैं उनके विरुद्ध एक शब्द भी नहीं लिखा जाता। यद्यपि लेखकों के स्वभाव और लेख के गौरव के अनुसार भाषा में अन्तर पड़ना ही चाहिए, तो भी शब्दों के उपयोग में यह विचार आवश्यक है कि जो शब्द हम काम में लाते हैं वह उपयुक्त है या नहीं। यदि किसी एक विचार के लिए हिन्दी शब्द है और वह हिन्दी-प्रदेशों में एक रूप से प्रच-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लित है तो उसके बदले संस्कृत, फ़ारसी या अँगरेज़ी शब्द लिखने का क्या काम है? और, यदि हिन्दी का कोई ऐसा शब्द हो जो सब स्थानों में एक ही रूप में न बोला जाता हो तो लेख में उसका वह रूप दिया जाना चाहिए जो हिन्दी के मुख्य क्षेत्र में पाया जाता है। दूसरी भाषा के शब्दों का उपयोग तभी आवश्यक है जब कि मातृ-भाषा में न तो वैसा विचार हो और न वैसा शब्द। दूसरी भाषाओं को भी सम्बन्ध की निकटता के अनुसार प्रधानता दी जानी चाहिए। एक-देशी शब्द भी उसी प्रकार त्याज्य है जिस प्रकार अनावश्यक विदेशी शब्द। यहाँ पर कह देना असङ्गत न होगा कि पढ़नेवालों की योग्यता के विचार से भाषा सहज या कठिन होनी चाहिए। कठिन भाषा केवल कठिन शब्दों से ही नहीं बनती, वरन सहज शब्दों से वाक्य की रचना के कारण भी भाषा कठिन हो जाती है।

हिन्दी में देशी कहावत और मुहाविरों का उपयोग लेखक बहुधा नहीं करते। इसके बदले फ़ारसी के पद्यों की भरमार बहुत दिखती है। अगर इन कहावतों के बिना काम चलता न दीखे तो बात दूसरी है; पर देशी कहावतों से ही हिन्दी की शोभा है।

शास्त्रीय या धर्म-सम्बन्धी विषयों में कभी कभी एक दो साधारण शब्दों के स्थान में संस्कृत के उपयुक्त शब्द लाये जा सकते हैं; पर सहज विषय के लिए अपरिचित शब्द लाना या साधारण योग्यता के लोगों के लिए कठिन भाषा लिखना उचित नहीं है।

ऊपर कुछ विषयान्तर हुआ है। प्रस्तुत विषय की ओर लौट कर अब इस बात का निर्णय करना चाहिए कि हिन्दी में शुद्ध भाषा का सबसे अच्छा उदाहरण कौन है? हमें कविता के उदाहरण की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि अक्षरों की गिनती और तुकान्त के कारण उसमें कई अनावश्यक शब्द आ जाते हैं। शुद्ध हिन्दी का सबसे पहला और अच्छा उदाहरण प्रेम-सागर है। पण्डित लोग इसकी भाषा का तिरस्कार कर सकते हैं; क्योंकि इसमें बड़े बड़े समास नहीं हैं और हिन्दी-शब्दों के बदले संस्कृत-शब्द नहीं भरे गये हैं। तो भी इसमें घरू शब्दों के साथ साथ आवश्यक संस्कृत-शब्द भी आये हैं। थोड़ा पढ़ा भी इसकी भाषा सहज ही समझ सकता है। कुछ शब्द इसमें ऐसे भी हैं जो एकदेशी तथा ग्रामीण हैं; पर उनसे 'प्रेमसागर' की भाषा की मनोहरता में बाधा नहीं आई। इन शब्दों को छोड़ कर कोई भी हिन्दी-लेखक इसकी भाषा को आदर्श मान सकता है। पर यह भाषा शास्त्रीय विषय के अनुकूल नहीं है, क्योंकि उसके लिए इतने शब्द बस नहीं हैं। इस पुस्तक में एक विशेषता यह भी है कि भाषा में एक भी यवन-शब्द नहीं आया है। हम लोग यवन-शब्दों का इतना बहिष्कार नहीं कर सकते।

शुद्ध हिन्दी का दूसरा उदाहरण 'सत्य-हरिश्चन्द्र' है। इसमें आवश्यक संस्कृत और फ़ारसी शब्दों के साथ साथ ठेठ हिन्दी के भी कई शब्द हैं और इसकी भाषा सहज तथा स्वाभाविक है। इसमें और प्रेमसागर में बड़ा अन्तर भी है। 'प्रेम-सागर' की वाक्य-रचना में अँगरेज़ी शिक्षा का वह प्रभाव नहीं है जो 'सत्य-हरिश्चन्द्र' में पाया जाता है। इसके सिवा नये विचारों की उन्नति का प्रकाश करने के लिए 'सत्य-हरिश्चन्द्र' में कई नये शब्द भी आये हैं।

शुद्ध हिन्दी का तीसरा उदाहरण 'इतिहास-तिमिर-नाशक' का तीसरा भाग है। इसमें हमको ऐसे शब्द बहुत कम मिले हैं जिनकी आवश्यकता पुस्तक में न हो—अर्थात् जिनके बदले कोई और कठिन या सहज शब्द रक्खे जावें। उर्दू-शब्दों से भरे हुए दो भाग लिखने के पश्चात् राजा साहिब ने अपनी भाषा में हेर फेर करना उचित समझा है।

इन तीन पुस्तकों का नाम देने से हमारा यह आशय नहीं है कि आज तक शुद्ध हिन्दी में और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई ग्रन्थ नहीं लिखे गये हैं। ये तीन ग्रन्थ तीन शैलियों के नमूने हैं, और बहुत से ग्रन्थ इनमें से किसी न किसी भेद के अन्तर्गत हैं।

'शुद्ध हिन्दी' शब्द का उपयोग कोई कोई उसी अर्थ में करते हैं जिसमें बंगाली लोग 'साधु भाषा' का उपयोग करते हैं। साधु भाषा में केवल विदेशी शब्दों ही का बहिष्कार नहीं होता है, वरन प्रचलित बङ्गाली शब्दों के स्थान में भी संस्कृत शब्द आते हैं। 'शुद्ध हिन्दी' का ऐसा अर्थ नहीं है। शुद्ध हिन्दी वह हिन्दी है जिसमें अनावश्यक संस्कृत या फ़ारसी शब्द न हों और जिसे समझने के लिए साधारण हिन्दी जाननेवाले को बार बार कोश खोलने का काम न पड़े। यह सहज शुद्ध हिन्दी की परिभाषा है। असाधारण शिक्षित लोगों के लिए शुद्ध हिन्दी का कठिन रूप भी लिखा जा सकता है; पर वह विषय की गम्भीरता और भाषा की रचना पर अवलम्बित है।

हिन्दी की लेख-शैली में भिन्नता होने का दूसरा कारण व्याकरण का तिरस्कार है। हिन्दी का व्याकरण खड़ी बोली पर बना है और खड़ी बोली बहुत कम लेखकों की मातृ-भाषा है। यही कारण है कि शब्दों के रूपान्तर में भिन्नता पाई जाती है। लेखकों की मातृ-भाषा का प्रभाव उनके लेखों पर यहाँ तक पड़ता है कि कभी कभी उनकी घरू बोली ही अनुवाद-रूप से खड़ी बोली हो जाती है। हिन्दी की भिन्न भिन्न उपभाषाओं में केवल शब्दों ही का अन्तर नहीं है वरन रचना का भी अन्तर है। इस अन्तर के कारण कभी कभी अच्छे शिक्षित लेखक भी ऐसी भाषा लिखते हैं जो ठेठ हिन्दी होने पर भी "शुद्ध हिन्दी" नहीं कही जा सकती। अन्त में अपने मत को स्पष्ट और पुष्ट करने के लिए अब हम 'इतिहास' नामक एक लेख का कुछ भाग उद्धृत कर, संक्षेप में, उस पर टीका करेंगे :—

"इस विषय के प्राक् कथन के स्वरूप में जिन जिन बातों का वर्णन होना उचित था उनका यहाँ लौं वर्णन किया गया। अब स्वयं इस विषय के सम्बन्ध से विचार करते हैं। प्रथमतः इतिहास से क्या लाभ होता है? आपाततः यह प्रश्न बहुत ही अनुचित जान पड़ता है और साथ ही यह भी जान पड़ता है कि ऐसा प्रश्न कोई करता ही नहीं होगा। क्योंकि इससे और कुछ लाभ न हुआ तो मनुष्य की निसर्गजात जिज्ञासा की तृप्ति तो होती है। यह क्या कुछ कम लाभ है?"

उदाहरण के लिए इतना अंश बस होगा। इस अंश में छोटे टाइप के शब्द विचारणीय हैं। जिस वाक्य में 'प्राक्कथन' आया है उसी में 'लौं' रक्खा गया है। मानो मनः के रथ में एक ओर हाथी और दूसरी ओर गर्दभ जोता गया हो। यह लेख साधारण पढ़े लोगों के लिए नहीं है; पर उसका विषय इतना गम्भीर नहीं है कि उसका काम 'प्रथमतः' के बिना न चलता हो। विषय की गम्भीरता में भी 'आपाततः' से कोई विशेष काम नहीं निकलता। इतने लम्बे लम्बे शब्दों का उपयोग करके लेखक को अन्त में फ़ारसी के दो अक्षरों के 'कम' शब्द की शरण लेनी पड़ी! क्या 'कम' के लिए 'निसर्गजात' सदृश कोई शब्द नहीं मिलता था? इन शब्दों के उपयोग में लेखक की प्यारी इच्छा और मन की तरङ्ग ही मानो सिद्धान्त हैं। संस्कृत के कठिन शब्दों में एक 'जिज्ञासा' ही ऐसा शब्द है जिसके उपयोग की आवश्यकता इस लेख में है। अनावश्यक शब्दों के भरने से हिन्दी को क्या लाभ पहुँचता है?

इस लेखांश में व्याकरण के तिरस्कार के भी दो एक उदाहरण मिलते हैं। दूसरे वाक्य में कर्त्ता का लोप है। इसके ऊपर दो पृष्ठों में भी कहीं 'हम' शब्द नहीं आया है; तो भी उसका लोप हो गया। वाक्य पढ़ने से एकाएकी कर्त्ता का पता नहीं लगता। दूसरा उदाहरण 'करता होगा' के साथ 'नहीं' का उपयोग है। "न" और "नहीं" का अन्तर हिन्दी में नियम-पूर्वक मिलता है।

संक्षेप में मेरा मत यह है कि यह लेखांश "शुद्ध हिन्दी" में नहीं लिखा गया है, यद्यपि इसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े बड़े संस्कृत-शब्द व्याकरण के शुद्ध रूप में आये हैं।

कामताप्रसाद गुरु।

रामचन्द्र के चरित्र-चित्र का धुँधला अंश।

रामायण हिन्दू मात्र का परम पूजनीय ग्रन्थ है। विदेशी विद्वान् भी इसको मान की दृष्टि से देखते हैं। परन्तु इसके नायक के चित्र के उज्ज्वल भाग को ही प्रकाशित करने के लिए बहुधा विद्वन्मण्डली की लेखनी चलती है। इसका धुँधला भाग प्रकट करने के लिए बहुत ही कम लोग लेखनी हाथ में उठाते हैं। अनेक विद्वानों के द्वारा चारों ओर से किये गये तिरस्कारों और फटकारों को सहन करने के लिए तैयार होजाना कम साहस का काम नहीं।

मर्य्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र के सद्गुणों और सत्कर्मों की ओर न जाकर मैं उनके चित्र का धुँधला भाग ही दिखलाने के लिए आज आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। इससे यह न समझना चाहिए कि राम के प्रति मेरे हृदय में आदर नहीं है। नहीं, दीनवत्सल राम के प्रति उतनी ही भक्ति और उतना ही प्रेम है जितना कि एक सच्चे वैष्णव के हृदय में होना चाहिए।

शूर्पणखा के प्रार्थना करने पर राम ने उपहास से कहा "मैं तो विवाहित हूँ। तुम पराक्रमी लक्ष्मण के पास जाव"। राम का यह वाक्य लक्ष्मण को अविवाहित प्रमाणित करता है। परन्तु लक्ष्मण का विवाह सीताजी की चचेरी बहिन ऊर्म्मिला के साथ होचुका था। ऐसी अवस्था में रामचन्द्र पर मिथ्या भाषण करने का दोष लगता है। यद्यपि सांसारिक जनों में, परिहास में, मिथ्या भाषण करना दोष नहीं। तथापि नरश्रेष्ठ और मर्य्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र के मुख से अन्य की स्त्री के साथ उपहास और उससे मिथ्या भाषण दोनों ही बातें अच्छी नहीं लगतीं।

मायावी-मृग-रूप धारण करके जब मारीच बड़े मनोहर गति के साथ इधर उधर हरी हरी घास खाता और उछलता कूदता फिरता था तब लक्ष्मण ने उसके कपट-वेश को अच्छी तरह जान लिया था। लक्ष्मण ने यह बात राम पर भी प्रकट करदी थी। तो भी राम ने लक्ष्मण के वाक्य पर विश्वास न कर मारीच के कपट-कर्म को सीता पर प्रकाशित न किया। सम्भव था कि इस मर्म के ज्ञात हो जाने पर जानकीजी मारीच-मृग के मारने का आग्रह न करतीं। उनका यही आग्रह महा-भीषण युद्ध और उत्कट कायापलट का विषम कारण हुआ। जब सीता के आग्रह करने पर भी लक्ष्मण ने उन को अकेली छोड़ कर जाना न चाहा तब सीता ने उन को शाप का भय दिखाया। भयभीत हो कर लक्ष्मण ने राम के पास जाने के लिए प्रस्थान किया। रामचन्द्र लौटे आरहे थे। मार्ग ही में वे लक्ष्मण को मिले। लक्ष्मण से सब बातें ज्ञात होजाने पर भी राम ने उन पर आज्ञा-भङ्ग करने का दोषारोपण किया और उन्हें कटुवाक्य कहे। यह बात मार्जनायोग्य नहीं।

पत्नी-वियोग में राम के दारुण दुःख और कातर विलाप को सुन कर उनमें रावण का वध करने की पर्य्याप्त शक्ति न होने की भी शङ्का बहुतों को होने लगती है।

राम का छिप कर वालि को मारना भी अमार्जनीय है। वानर जाति भारतवर्ष की प्राचीन नीच जातियों में से थी और यद्यपि उनमें परदारा-हरण आदि निन्दनीय बातों का होना कोई असाधारण बात न थी। फिर भी यह सर्वथा सम्भव था कि राम के समझाने पर तारा को वालि लौटा देता, क्योंकि उसके हृदय में राम-भक्ति का अङ्कुर विद्यमान था। परन्तु उन्होंने वैसा न किया। अपनी सहधर्मिणी सीता के हरे जाने पर तो साम, दान, दण्ड, भेद आदि विविध प्रकार की नीतियों का रामचन्द्र ने प्रयोग किया; यहाँ तक कि जानकी को लौटा देने पर अङ्गद के द्वारा रावण को अभय दान देने का सन्देशा तक उन्होंने भेजा। अपने ऊपर आपड़ने पर तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने नीति का अवलम्बन किया; परन्तु वालि के लिए बिना उचितानुचित का विचार किये ही प्राण-दण्ड का निश्चय कर लिया। वालि-सुग्रीव के युद्ध के समय राम ने वृक्ष की ओट से वालि पर बाणों का प्रहार किया। यह बात युद्ध-शास्त्र और धर्म के सर्वथा प्रतिकूल है। राम सुग्रीव के सहायक हैं, इस बात से वालि अनभिज्ञ था। उस को आशा थी कि राम की दृष्टि में हम दोनों भाई एक सा दर्जा रखते हैं। आशाविरुद्ध राम-द्वारा अपने अकस्मात् वध पर वालि को नितान्त शोक तथा आश्चर्य हुआ।

स्वार्थसिद्धि ही के लिए राम ने वालि को मारा। राम ने सुग्रीव से कहा है:—"मैथिली और उस दुष्ट रावण का खोज लगावो। तुम्हारा जो काम मेरे लायक़ हो निधड़क कहो और उसे सिद्ध हुआ समझो"। किष्किन्धा का राज्य सुग्रीव को देने पर राम ने फिर भी कहा:—"यह श्रावण वर्षा-ऋतु का प्रथम मास है। कार्त्तिक के आरम्भ में ही रावण-वध का उद्योग करना। यही हमारा तुम्हारा इक़रार है"।

राम ने कितने ही स्थानों पर सुग्रीव के प्रति "मित्र" शब्द का प्रयोग किया। उनकी इस मित्रता में भी स्वार्थ का समावेश था। वर्षा व्यतीत होने पर भोग-विलास में अधिक रत रहने के कारण सुग्रीव जब अपने वचन को भूल सा गया तब राम ने लक्ष्मण द्वारा सुग्रीव को यह सँदेसा भेजा:—"हे सुग्रीव, वह मार्ग सङ्कुचित नहीं होगया है जिससे वालि मर कर गया है। अतएव अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर रहो। वालि के मार्ग पर चलने की इच्छा मत करो"। लक्ष्मणजी ने भी तारा से कहा था:—"सुग्रीव उपकार को प्राप्त होकर भी प्रत्युपकार करने में शिथिल दीख पड़ता है"। लक्ष्मण के कहे हुए ये शब्द भी रामचन्द्र की स्वार्थपरता प्रकट करते हैं।

राम पर सीता-निर्वासन का कलङ्क भी है। राम के आचरण पर यह कालिमा चन्द्रमा में ग्रहण के समान है। बेचारी सीता का क्या अपराध था जो उसे इतने समय तक अरण्य में अनेक यातनायें और पति-वियोग सहन करना पड़ा। माना कि राम ने प्रजा-मत-प्राबल्य तथा अपकीर्त्ति के कारण यह दुष्कर कार्य किया, परन्तु जिस अग्नि-परीक्षा के द्वारा लङ्का में सीता की शुद्धता सिद्ध की गई थी उसका अयोध्या में भी होना हर प्रकार सम्भव था। ऐसी कौन बात थी जो सीता को निर्दोष प्रमाणित करने में रोकती थी? राम ने अश्वमेध यज्ञ के समय सीता की विशुद्धचरित्रता प्रमाणित करने के लिए अग्नि-परीक्षा की बात कही है। क्या यह बात वे पहले ही कह कर प्रजा को विश्वास न दिला सकते थे?

यह हमारी समझ में नहीं आता कि रामचन्द्र ने किस नीति की किस धारा के अनुसार सीता के निर्वासन की व्यवस्था की। क्या वह स्वयं रावण के घर चली गई थी? क्या सीता किसी के प्राणों की प्यासी थी? फिर उसे ऐसा भीषण दण्ड क्यों? हा, सती साध्वी सीता, विधाता ने तेरे भाग्य में दुख ही दुख लिखा था। जो सीता निशि दिन पति के चरणारविन्दों का ध्यान करती थी उसी के प्रति राम का ऐसा कठोर और अन्याययुक्त बर्ताव! अफ़सोस! करुणायुक्त विलाप करते हुए राम ने स्वयं कहा है—"यदि मैंने अग्नि-परीक्षा अयोध्या-वासियों के सम्मुख की होती तो मुझे आज ऐसा दारुण दुःख न सहना पड़ता"। प्रत्येक सच्चा नृपति समस्त सांसारिक कार्यों को न्यायपूर्वक करता है और प्रत्येक बात के सच्चे तथा झूठे होने का ज्ञान प्राप्त करने के लिए खोज करता है। परन्तु राम, जो आदर्श नृप माने जाते हैं, सीता का परित्याग, बिना न्याय की कसौटी पर कसे ही, किये देते हैं। अपयश के डर से सीता का त्याग राम जैसे न्यायी नृप को कदापि शोभा नहीं देता। लोग कहते हैं कि राम ने धर्म-सङ्कट में पड़ कर ऐसा किया। यह उनकी भूल है। धर्म्म यदि न्यायानुकूल है तभी वह धर्म की परिभाषा के भीतर आ सकता है। पर राम का यह काम न्यायसङ्गत नहीं।

राम का किया हुआ तपस्वी शूद्र का वध भी समर्थन-योग्य नहीं। नीच जाति के कितने ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष तपस्वी के बल से ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए हैं। तपस्या के ही द्वारा बहुत से लोगों ने वर्णाश्रम के नियमों का उल्लंघन तक किया है। मातङ्ग ऋषि, वाल्मीकि, विश्वामित्र आदि इस बात के जीते जागते उदाहरण हैं। प्राचीन काल में कर्म्म पर ही ज्ञाति निर्भर थी। फिर समझ में नहीं आता कि तपस्वी शूद्र के कौन से घोर अपराध के कारण राम ने उसे प्राण-दण्ड दिया?

और भी कई बातें हैं जो यथावकाश सरस्वती के पाठकों की सेवा में उनके विचारार्थ निवेदन करूँगा।

प्यारेलाल वृष्णी।

केशिनी।

ब्रह्मचर्य प्रतिपाल, सीख विद्या व्यवहारी
चन्द्रकला सी बढ़ी केशिनी राजकुमारी।
उपवर उसे विलोक पिता-माता अकुलाये;
शीघ्र स्वयंवर ठान, पत्र सर्वत्र पठाये॥ १॥
आये राजकुमार अनेकों छवि में नीके;
मुख पर थे प्रत्यक्ष भाव सब उनके जीके।
ऋषिकुमार भी कई वहाँ आये गुणशाली
जिनकी शोभा सरल सहज थी छटा निराली॥ २॥
शुभ दिन और मुहूर्त्त स्वयंवर का जब आया
राजा का प्रण कठिन सभा में गया सुनाया।
जो बल, विद्या, नीति, रूप में बढ़ कर होगा
सो इस गुण की मूर्त्ति केशिनी का वर होगा॥३॥
तब सखियों के सङ्ग किन्तु छवि में हो न्यारी
आई मण्डप-मध्य प्रभा सी राजकुमारी।
रूप-भार से झुकी भूमि पर दृष्टि लगाये
खड़ी हुई निज भाव हिये में सहज छिपाये॥ ४॥
भक्त-श्रेष्ठ प्रह्लाद-पुत्र विद्वान विरोचन
राज-सुता के सङ्ग हुआ था जिनका पाठन।
यद्यपि सब के तुल्य निमन्त्रण पाकर आये,
कुल-विचार से अलग अकेले गये बिठाये॥ ५॥
दोनों ने अनलखे हुए दोनों को देखा;
सुमिर पुरानी प्रीति धन्य अपने को लेखा।
ज्यों ज्यों परिचय तुल्य गुणों में अधिकाता है,
त्यों त्यों उनमें प्रेम प्रबल बढ़ता जाता है॥ ६॥
दोनों ने गुण-रूप परस्पर जाँच लिये थे;
अब मिलने के लिए उमँगते उभय हिये थे।
तो भी देशाचार उन्होंने सभी निभाये;
सहा बहुत अपमान, प्रेम के कष्ट उठाये॥ ७॥
राजकुमारी इधर रीतिवत भवन सिधाई;
उधर पिता ने लक्ष्य-भेद की जाँच कराई;
केवल पाँच कुमार जाँच में पूरे ठहरे;
फिर विद्या में मिले पाँच में दो ही गहरे॥ ८॥
दोनों सुन्दर, नीति-निपुण, दोनों बलधारी;
दोनों थे विद्वान, संयमी, शिष्टाचारी।
एक विरोचन तत्त्वज्ञान में कुशल बहुत थे;
अपर सुधन्वा विज्ञ अङ्गिरा ऋषि के सुत थे॥९॥
दोनों ने अब गूढ़ ज्ञान में वाद बढ़ाया;
अपना अपना पक्ष योग्यता-सहित निभाया।
उनके सब गुण राज-पण्डितों ने जब देखे,
दोनों माने गये एक से उनके लेखे॥ १०॥
हो निराश भय-भीत उचित लज्जा के मारे;
अभिलाषी सब शेष विवश निज देश सिधारे।
भीड़ घटी पर बढ़ी भूप को चिन्ता भारी;
रानी भी अति दुखी हुई त्यों राजकुमारी॥ ११॥
इधर विरोचन और सुधन्वा ने अनुमाना;
राज-सभा को बहुत कठिन है वाद मिटाना।
तब दोनों ने कड़ी होड़ में प्राण लगाये;
राजा, पण्डित, सचिव सभी इससे घबराये॥ १२॥
फिर दोनों प्रह्लाद भक्त को पञ्च बना कर
पहुँचे उनके पास सङ्ग में सब के जाकर।
सुन विवाद प्रह्लाद भक्त ने मत निर्धारा—
सब प्रकार निज पक्ष विरोचन ही है हारा॥ १३॥
तब राजा ने शीघ्र जोड़ कर कहा विनय से
महाराज! हो गया बड़ा अनरथ इस जय से।
इस मत के अनुसार एक कन्या पावेगा;
पर दूजा निर्दोष वृथा जी से जावेगा॥ १४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

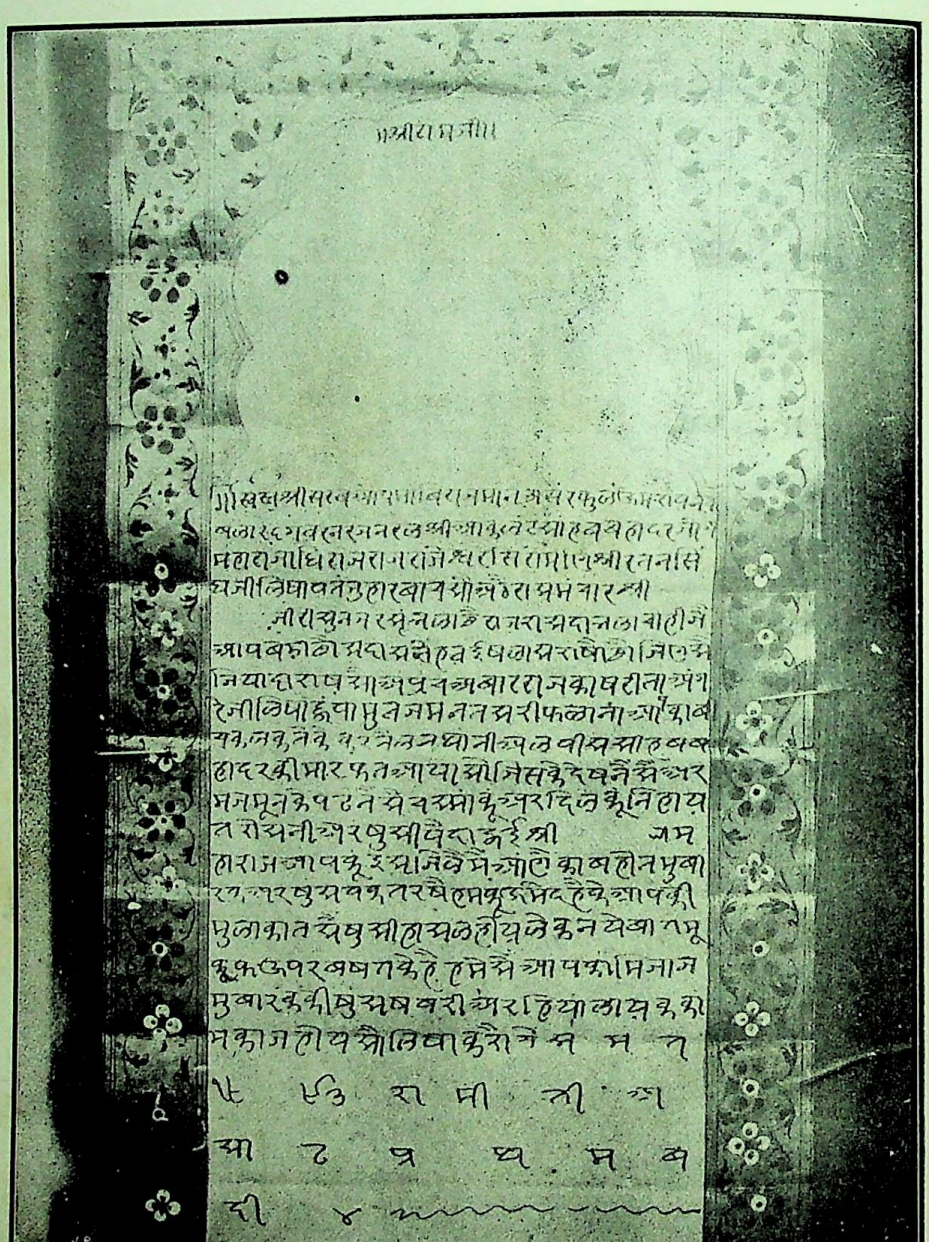

महाराज रत्नसिंह का पत्र ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन यह घटना नई नेक प्रह्लाद न बोले ;
शान्त सिन्धु के तुल्य नहीं सङ्कट से डोले।
धीर पिता के धीर पुत्र भी रहे अचञ्चल,
किन्तु गर्भ में हुए सुधन्वा जय से चञ्चल ॥१५॥
तब राजा हो दीन सुधन्वा से यह बोले—
नाथ ! नहीं कुछ लाभ वृथा रस में विष घोले।
अभी महल से आय केशिनी को ले जावें ;
पर निष्कारण प्राण न निर्दोषी के जावें ॥ १६ ॥
सोच सत्यता निठुर पुत्र के विषय पिता की
मुनिकुमार को सहज प्रेरणा हुई दया की।
दान उन्होंने दिया विरोचन को जीवन का ;
फिर लेकर वैराग्य किया कन्या के मन का ॥१७॥

कामताप्रसाद गुरु।

बड़े लाट लार्ड आकलेंड को हिन्दी में पत्र।

कलकत्ते के बृहत् सरकारी पुस्तकालय (इम्पिरियल लाइब्रेरी) की नुमायशी आलमारियों में एक हिन्दी-पत्र सजा हुआ रक्खा है। पत्र बहुत चटकीला और मनोहर है। सुन्दर नेपाली काग़ज़ के चारों ओर सुनहली पट्टी पर पँचरंगे बेल-बूटों की चित्रकारी की हुई है। अक्षर नागरी और भाषा मारवाड़ी चाल की है। मैं उसे सहज ही पढ़ सका। उसमें पत्र-प्रेषक का नाम महाराजाधिराज राजराजेश्वर-शिरोमणि श्रीरत्नसिंहजी लिखा है। पर स्थान का नाम नहीं। इसलिए मुझे यह जानने की बड़ी उत्कण्ठा हुई कि यह किस राजा का भेजा हुआ पत्र है। मैंने तत्कालीन पुस्तकाध्यक्ष अनेक-भाषाविद् स्वर्गीय बाबू हरिनाथ दे महोदय से उक्त पत्र-सम्बन्धी विशेष बातें जानने की इच्छा प्रकट की। पत्र आलमारी खोल कर निकाला गया। उसके साथ एक लिफ़ाफ़ा और मिला। उस पर उन्हीं नागरी अक्षरों में बड़े लाट का नाम था। इसके सिवा अँगरेज़ी में इतना और भी लिखा था:—"एन० डबल्यू० पी० के छोटे लाट के सेक्रेटरी के दफ़्तर से २ जुलाई १८३६ ई० को रवाना होकर यहाँ १५ जुलाई को मिला" *। लिफ़ाफ़े के पीछे एक मोहर फ़ारसी में है; पर उसमें भी देश का नाम नहीं केवल—"रतनसिंह बहादुर महाराजाधिराज राजराजेश्वर"—लिखा है; और साथ ही २४०३ अङ्क लिखे हैं, जिसका मतलब कुछ समझ में न आया। इसके सिवा उर्दू में चार पाँच जगह तारीख़ आदि है, जो एन० डबल्यू० पी० के सेक्रेटरी के दफ़्तर के सङ्केत जान पड़ते हैं। उनमें एक जगह 'राजपूताना नागरी' भी लिखा है।

मैंने पुस्तकाध्यक्ष महोदय से पुस्तकालय के दफ़्तर में और खोज की जाने का अनुरोध किया; पर बहुत खोज करने पर भी पत्र के सम्बन्ध में और कोई बात न मालूम हुई। लाचार, मैंने उनसे पत्र का एक फ़ोटो लेने की प्रार्थना की। इस बात को उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया।

इस पत्र से यह प्रमाणित है कि सत्तर अस्सी वर्ष पूर्व बड़े लाट तक को हिन्दी में पत्र लिखे जाते थे। इस पत्र को देखने से एक बात यह भी जानी जाती है कि हमारे देश के बने रङ्ग और स्याही कितनी अच्छी होती है और कितने दिन तक रहती है। सत्तर वर्ष का पत्र मानों कल का लिखा ज्ञान पड़ता है। कहीं फीकापन नहीं। पर इसी पत्र पर अँगरेज़ी की जो दो लाइन हैं उनकी स्याही उड़ कर लाल पड़ गई है! अस्तु।

इतिहास से जाना जाता है कि उस समय बीकानेर के सिंहासन पर श्रीमान् महाराज रत्नसिंहजी सुशोभित थे। इससे सिद्ध है कि यह पत्र उन्हीं का है। पत्र की भाषा भी इस बात की पुष्टि करती है।

फोटो में इस पत्र को पढ़ने में शायद कष्ट हो। इस कारण इसकी यथातथ्य नक़ल नीचे दी जाती

* Transferred from the Secretary to Lt. Governor, N. W. P., 2nd July 1836. Received 15th July.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। साथ ही फोटो भी इसका अलग प्रकाशित किया जाता है।

नक़ल।

॥ श्रीरामजी ॥

स्वति श्री सरबओपमां विराजमांन असरफुल ऊमराव नवाब लारद गवरनर जनरल श्री आकलंट साहब बहादर जोग्य महाराजाधिराज राजराजेश्वर सिरोमणि श्रीरतनसिंघजी लिखावतं जुहार बाचसौ अठैरा समंचार श्री जीरी सुनजर सूं भला छै राजरा सदा भला चाहीजै आप बड़ा छौ सदा सनेह वू ईष-लास राखौ छौ जिण सैं जियादा राखसौ अप्रंच अबार राजका षरीता अंगरेजी लिखा हुवा मुन-जमन तसरीफलाना आपका बीच कलकत्ते के करनैल नथांनीअल वीस साहब बहादर की मारफत आया सेा जिसके देषनैं सैं अर मजमून के पढ़नैं सैं चस्मां कूं अर दिल कूं निहायत रोसनी अर षुसी पैदा हुई श्रो महाराज आप कूं इस जिलै मैं आणै का बहोत मुबारक अर षुसवकत रषै हम कूं ऊमेद है के आपकी मुलाकात सैं षुसी हासल होय लेकन ये बात मूकूफ ऊपर बषत के है हमेसैं आपका मिजाज मुबारक की षुसषबरी अर हियां लायक काम काज होय सौ लिषा करौगे समत १८९३ रा मीती असाढ प्रथम बदी ४

रामकुमार गोयनका।

---

*हिन्दी-हितैषी स्वर्गीय श्रीभूदेव मुखोपाध्यायजी, सी० आई० ई०।

राजानो यं प्रशंसन्ति यं प्रशंसन्ति पण्डिताः।
साधवो यं प्रशंसन्ति स पार्थ पुरुषोत्तमः॥

राजा लोग जिसकी प्रशंसा करें, पण्डित और साधुजन भी जिसकी बड़ाई करें, हे अर्जुन, वही पुरुष उत्तम है।

हमारे चरित्र-नायक में ये सब बातें पूर्णरूप से थीं। गवर्नमेंट से इनको अच्छा सम्मान प्राप्त था। पण्डित लोग इनकी प्रतिभा, विद्या, बुद्धि, गम्भीर गवेषणा आदि को बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे। साधु सज्जन भी इनके सदाचार को आदर्श मानते थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये आदर्श पुरुष थे। इसी लिए हम आज इनका चित्र और पवित्र संक्षिप्त जीवन-चरित सरस्वती के पाठकों की सेवा में उपस्थित करते हैं। इनके आदर्श जीवन में पाश्चात्य स्वदेशभक्ति और उद्यम, तथा प्राच्य धर्मनिष्ठा का शुभ सम्मिलन देखा जाता है। उससे हमको बहुत कुछ शिक्षा मिलती है। हमको विश्वास है कि इनके चरित्र का आंशिक अनुकरण करने से भी भारत की बहुत कुछ भलाई हो सकती है।

भूदेव बाबू के पूर्वपुरुष हुगली ज़िले के अन्तर्गत नतीबपुर नामक गाँव में रहते थे। इनके दादा श्री हरिनारायण सार्वभौम महाशय तीन भाइयों में सब से छोटे थे। भाइयों में पैतृक सम्पत्ति के बँटवारे में कुछ झगड़ा खड़ा हुआ। यह अपना हिस्सा न लेकर, घर छोड़, कलकत्ते चले आये और वहीं रहने लगे। इनके इसी आत्मत्याग से अगले वंश की उन्नति का सूत्रपात हुआ। इनके पुत्र-पौत्र बड़ेही प्रसिद्ध पुरुष हुए। भूदेव बाबू के पिता पण्डित विश्वनाथ तर्कभूषण महाशय एक असाधारण पण्डित थे। उनके आचरण भी प्राचीन ऋषियों के ऐसे थे। इन्होंने तीर्थयात्रा में अनेक देशों को देखा भाला। घूमने से इनको सांसारिक बातों का भी अच्छा ज्ञान होगया। इनके एक शिष्य ने इनकी सहायता से मनु-संहिता का एक अँगरेज़ी अनुवाद प्रकाशित किया। उसकी प्रशंसा गोल्डस्टूकर साहब ने की और उसे सर विलियम जोन्स के किये अनुवाद से भी कई

*इस जीवनी के नोट्स आदि देकर भूदेव बाबू के पौत्र, श्रीमान् बटुकदेव मुखोपाध्याय, एम० ए० ने हमारी विशेष सहायता की है। इसके लिए हम उनके चिरकृतज्ञ रहेंगे।

लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातों में बढ़ चढ़ कर बतलाया। तर्कभूषण महाशय गवर्नमेंट से भी सम्मानित थे। ये बाँकुड़ा में जज-पण्डित थे।

कलकत्ता, हरीतकी बागान लेन में, सन् १८२५ की १२ वीं फ़रवरी (फाल्गुन कृष्ण ३) को भूदेव बाबू का जन्म हुआ। भूदेव बाबू लड़कपन में भी और लड़कों की तरह उद्धत या हठी नहीं थे। लड़कपन से ही इनको पढ़ने लिखने का बड़ा शौक़ था। इनके लड़कपन से ही यों शान्त होने का एक कारण यह भी था कि इनकी माता ब्रह्ममयी साक्षात् देवी थीं। पूजा-पाठ के सिवा उनकी पति-भक्ति अतुलनीय थी। वे नित्य स्वामी का चरणोदक लिये बिना जलपान भी नहीं करती थीं। उनकी पतिभक्ति और धर्मनिष्ठा प्राचीन आर्यनारियों से कम न थी। भूदेव बाबू जब तीन चार वर्ष के थे तब उन्होंने खेलते खेलते अपने पिता के जूते पहन लिये। उसी समय उनकी माता ने पति के लिए बारंबार प्रणाम कर बालक का अपराध क्षमा करने की प्रार्थना की, और वह जूता पुत्र के सिर पर रख कर उसके अज्ञात-पाप का प्रायश्चित्त करा डाला। ऐसी ही माता होने से लड़कों के मन में गुरुजनों की भक्ति बद्धमूल होती है और धर्मविश्वास की नींव पड़ती है।

आठ वर्ष तक अपने घर में ही शिक्षा पाकर भूदेव बाबू कलकत्ते के संस्कृतकालेज में भर्ती हुए। तीन वर्ष तक वहाँ संस्कृत की शिक्षा पाकर वे इंडियन-एकाडेमी नामक अँगरेज़ी स्कूल में चले गये। संस्कृतकालेज के प्रोफ़ेसर ऊलस्टन (Wollaston) साहब आप ही से इनको अँगरेज़ी पढ़ाने लगे। इंडियन-एकाडेमी में पढ़ कर फिर ये नवीन माधव के स्कूल में भर्ती हुए। इस स्कूल में इनको परीक्षा पास करने पर पहले नम्बर का इनाम मिला। उस समय इनके चचा का साला, जो इन्हीं के घर में पलता और साथ ही पढ़ता था, इनसे कहने लगा कि तुम यह इनाम मुझे देदो। तुम दुलारे लड़के हो, अगर इनाम न पाओगे तो भी तुमको कोई कुछ न कहेगा। मगर मुझे डाँट पड़ेगी। सरल और उदार-हृदय बालक भूदेव ने स्वीकार कर लिया और प्रौढ़ पुरुषों की तरह अपना यश दूसरे को अर्पण कर दिया। भूदेव बाबू ने यह बात किसी से नहीं कही। घर में दूसरे लड़के की ख़ूब प्रशंसा हुई। बहुत दिनों के बाद इनके चचा से और मास्टर साहब से भेंट हुई। मास्टर साहब ने भूदेव बाबू की बड़ी प्रशंसा की। तब सब रहस्य खुल गया। यह बात जब भूदेव बाबू के पिता ने सुनी तब उन्होंने कहा—बहुत अच्छा किया।

नवीन माधव के स्कूल में पढ़ कर फिर भूदेव बाबू मधु-चक्रवर्ती के स्कूल में और फिर हेयर-स्कूल में भरती हुए। वहाँ से फिर हिन्दू-कालेज में गये। इस समय अँगरेज़ी पढ़े लिखे लोगों में संस्कृत भाषा पर अश्रद्धा और अपने सनातनधर्म पर अनास्था ख़ूब बढ़ रही थी। अपने को सुशिक्षित समझने वाले नये लोग पुराने ब्राह्मणों की ख़ूब हँसी उड़ाते थे। पहलेही दिन भूगोल पढ़ाते पढ़ाते कालेज के मास्टर रामचन्द्र मित्र ने भूदेव बाबू से कहा—पृथ्वी नारङ्गी की तरह गोल है; लेकिन भूदेव, तुम्हारे पिता इस बात को न मानेंगे। पितृभक्त बालक ने घर में आते ही पिता से पूछा—पृथ्वी का आकार कैसा है। पिता ने कहा—पृथ्वी का आकार गोल है। उन्होंने उसी समय गोलाध्याय खोल कर दिखा दिया कि "करतलकलितामलकव-दमलं वदन्ति ये गोलम्"। दूसरे दिन भूदेव बाबू ने मास्टर साहब को यह वचन दिखलाया। मास्टर साहब ने झेप कर कहा—बेशक मैंने ग़लती की थी। लेकिन बहुत से पण्डित इस तत्त्व से अनभिज्ञ हैं। वे पृथ्वी को समतल और त्रिकोण बतलाते हैं।

इसी समय भूदेव बाबू के पिता को घोर अर्थकष्ट का सामना करना पड़ा। किसी राजा के यहाँ से उनको पचास रुपया मासिक घर बैठे मिलता था। राजा के यहाँ से यह आज्ञा प्रचारित हुई कि वे विद्वान् पण्डित, जिनको वृत्ति मिलती है, महीने महीने आकर वृत्ति ले जाया करें। तेजस्वी ब्राह्मण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने इसको अपना अपमान समझा और वृत्ति लेने नहीं गये।

हिन्दू-कालेज में, अपने क्लास में, भूदेव बाबू प्रधान छात्र थे। इन्हें अपना पाठ याद करने के सिवा और भी कई बालकों को पढ़ाना पड़ता था। लेकिन यह काम इन्होंने अपनी ख़ुशी से लिया था। आज कल देखा जाता है कि स्कूल में जो एक दो लड़के इस लायक़ होते भी हैं तो वे जी चुराते हैं। स्वयं पढ़ कर औरों को पढ़ाने में केवल औरों का ही भला नहीं होता, अपना भी विशेष उपकार होता है। पाठ पक्का होता है और पढ़ा हुआ नहीं भूलता। भूदेव बाबू लड़कपन में ही सवेरे साढ़े तीन या चार बजे उठते थे। वे उसी समय अपने लिखने पढ़ने का सब काम कर लेते थे। यही कारण था कि उन्हें औरों को पढ़ाने लिखाने का सुभीता रहता था। इस ब्राह्म मुहूर्त में ऐहिक या पारलौकिक, सब काम, करने का सुभीता होता है। इस समय हृदय शान्त और चित्त प्रसन्न रहता है। क्या विद्यार्थी बालक, क्या उद्योगी युवक, और क्या धर्मार्थी वृद्ध नरनारी, सबको इस समय उठने की आदत डालनी चाहिए।

हिन्दू-कालेज में भूदेव बाबू बहुत ऊँचे दर्जे के समझदार और सच्चरित्र छात्र समझे जाते थे। भूदेव बाबू ने अपने पिता से धर्म-कर्म का मर्म ख़ूब समझ लिया था। इसी से अँगरेज़ी की उच्च शिक्षा पाकर भी उनका दिमाग़ नहीं बिगड़ा। उनका विश्वास धर्म से नहीं डिगा। वे अपने धर्म के बड़े पक्षपाती थे और उनकी लिखी पुस्तकों में, ख़ास कर आचार-प्रबन्ध में, इसका पूर्ण परिचय मिलता है।

कालेज में मौलवी अब्दुललतीफ़ और माइकेल मधुसूदन दत्त इनके सहपाठी थे। एक दिन तीनों सहपाठी बैठे बातचीत कर रहे थे। आपस में प्रश्न हुआ कि कौन क्या चाहता है? तब, जो पीछे नवाबबहादुर की पदवी पाकर भोपाल रियासत के दीवान हुए उन मौलवी साहब ने कहा—मैं उच्च राजसम्मान चाहता हूँ। अपूर्व काव्य मेघनाद-वध के रचयिता माइकेल ने कहा—मैं बड़ा भारी कवि होना चाहता हूँ। किन्तु बालक भूदेव ने कहा—मैं तो यही चाहता हूँ कि कुछ भी जन्मभूमि की सेवा कर सकूँ। ईश्वर ने तीनों की अभिलाषा पूर्ण की।

सन् १८४६ में लिखना पढ़ना समाप्त कर भूदेव बाबू ने कालेज छोड़ा। फिर इन्होंने, धनोपार्जन के विचार से नहीं, बल्कि अपने अज्ञानान्ध भाइयों में शिक्षा प्रचार करने के लिए, इधर उधर घूम कर कई स्कूल खुलवाये। इस काम में बाबू चण्डीचरण मजूमदार और बाबू हरकाली मुकर्जी आदि कई अन्तरङ्ग बन्धु इनके सहायक थे। इस प्रकार भूदेव बाबू ने तीन साल तक अध्यापक रह कर अँगरेज़ी, बँगला और संस्कृत का प्रचार किया। इतने में इनकी छोटी बहन का व्याह आ पड़ा। हम पहले ही कह चुके हैं कि इनके यहाँ उस समय आर्थिक कष्ट था। भूदेव बाबू ने व्याह के लिए कुछ रुपया ऋण लिया। काम निकल गया। उसके बाद इन्होंने डाक्टर मोवट (Mowatt) के पास जाकर नौकरी की इच्छा प्रकट की। ये महाशय कौंसिल आफ़ एजूकेशन के सेक्रेटरी थे। उस समय दो स्थान ख़ाली थे। हिन्दू-स्कूल में सातवें क्लास के मास्टर की जगह और मदर्सा-कालेज में सेकंड मास्टर की जगह। पहली में ७५) रु० और दूसरी में ५०) रु० वेतन था। इसके सिवा पहली नौकरी रहने की जगह से पास ही थी और दूसरी नौकरी दूर थी। लेकिन भूदेव बाबू ने उच्चश्रेणी के छात्रों को शिक्षा देने की इच्छा से दूसरी ही नौकरी स्वीकार की। जो मासिक मिलता था उसमें से आधा तो वे घर में देते थे और आधे से ऋण चुकाते थे। ऋण चुक जाने पर वही आधा रुपया बँक में जमा करने लगे।

सन् १८४९ में भूदेव बाबू कलकत्ता-मदर्सा के सेकंड मास्टर हुए। यही उनकी पहली सर्कारी नौकरी हुई। भूदेव बाबू जिस दृष्टि से हिन्दू छात्रों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को देखते थे उसी दृष्टि से मुसलमान छात्रों को भी देखते थे। मुसलमान छात्र और इष्ट मित्र बराबर उनके घर पर आते और आदर पाते थे।

भूदेव बाबू अपने क्लास में पढ़ा कर हेड-मास्टर क्लिंगर साहब की भी प्रायः सहायता करते थे। उनके क्लास के लड़कों को भी वे पढ़ाते थे। हेड-मास्टर साहब प्रायः भूदेव बाबू के भरोसे क्लास छोड़ कर चले जाते थे। इन्स्पेक्टर कर्नल राइली को कालेज के मौलवी से यह हाल मालूम हो गया। उन्होंने एक दिन स्कूल में आकर खूब आँखें लाल पीली कीं और भूदेव बाबू से पूछा कि हेडमास्टर कहाँ हैं? भूदेव बाबू ने उत्तर में नम्रता के साथ कहा कि आप अनुग्रह करके हेड-मास्टर साहब से ही पूछिएगा। इस उत्तर से कर्नल राइली मनही मन बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने कहा—"Young man, always behave thus and you will succeed in life." अर्थात् हे युवक, तुम बराबर ऐसा ही व्यवहार करना; तुम्हारे जीवन-कार्य्यों में उन्नति होगी। कर्नल साहब बड़े ही क्रोधी थे। उनको शीघ्र ही भूदेव बाबू की पदोन्नति (हवड़ा ज़िला स्कूल की हेडमास्टरी) के लिए सिफ़ारिश करते देख कर डाक्टर मोयर ने भूदेव बाबू से कहा—"How could you tame that tiger"? अर्थात् तुमने उस बाघ को कैसे क़ाबू में कर लिया?

इसी साल भूदेव बाबू हबड़ा ज़िला स्कूल के हेडमास्टर हो गये। भूदेव बाबू सब दर्जों में जाकर वहाँ की पढ़ाई देखते थे। अगर कोई लड़का पढ़ने में मन नहीं लगाता था तो ये उसे दण्ड न देकर दो तीन दिन अपने घर ले जाते थे और समझा बुझा कर पढ़ने में प्रवृत्त करते थे। बालक के हृदय में उच्च आशा भर कर उद्यम की आवश्यकता समझा देते थे। इनके समय में हबड़ा स्कूल की खूब प्रसिद्धि और प्रशंसा हुई। इन्होंने सैकड़ों लड़कों को सुशिक्षित और सच्चरित्र बना दिया।

उस समय मिस्टर हजसन प्राट साहब हबड़े के मजिस्ट्रेट थे। इनसे भूदेव बाबू की बड़ी घनिष्ठता थी। एक दिन प्राट साहब ने स्कूल में भूदेव बाबू से मिल कर कहा—"आप कभी बँगले पर क्यों नहीं मिलते"? भूदेव बाबू ने सरलता के साथ उत्तर दिया—"साहब लोग प्रायः जी खोल कर बात चीत नहीं करते और उनके चपरासी उन तक जल्दी ख़बर नहीं पहुँचाते। यही कारण है कि भिन्न समाज के सुशिक्षित और कामकाजी लोगों से मिल कर, उनसे शिक्षा लेना और बुद्धि को बढ़ाना आवश्यक समझ कर भी हम लोग अलग ही रहते हैं।" उसी दिन से साहब ने ऐसी व्यवस्था कर दी कि भूदेव बाबू के लिए कोई रोकटोक नहीं रही। वे जब जाते तभी सीधे साहब के रीडिंगरूम में जाकर बैठते थे। प्राट साहब भूदेव बाबू को बहुत मानते थे। एक बार भूदेव बाबू को बुख़ार आया। ख़बर पाकर मिस्टर प्राट और उनकी मेम ने आकर इलाज का प्रबन्ध किया और सेवा-शुश्रूषा भी की। भूदेव बाबू के मरने पर मि० प्राट ने विलायत के एक पत्र में लिखा था:—

"I see clearly, as if it were yesterday, that tall dignified figure in his pure white robe and those handsome features of fair complexion. He spoke with that thoughtfulness and gravity which mark the Hindu of high caste."

अर्थात् उस साफ़ सुथरी पोशाक से शोभित सुन्दर गौरवर्ण शरीर और उच्चभाव-सूचक आकृति को जैसे स्पष्ट रूप से अपनी आँखों के आगे देखता हूँ। वह कितने दिनों की मुलाक़ात, बात-चीत और परिचय जैसे कल की बात जान पड़ती है। वे ऊँचे दर्जे के हिन्दू की स्वाभाविक चिन्ताशीलता और गम्भीरता के साथ बातचीत करते थे।

प्राट साहब विलायत में कभी कभी अपने लड़कों से पूछते थे—"Who is my best friend in India"? अर्थात् भारत में मेरा सबसे अच्छा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोस्त कौन है? लड़के अपने बाप की शिक्षा के अनुसार कहते थे—"भूदेव मुखर्जी।"

भूदेव बाबू भी कहा करते थे—"मुझ से अनेक अँगरेज़ों से परिचय हुआ और वे सब मेरे हितैषी हुए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अच्छे अँगरेज़ों से मिल कर कुछ न कुछ अवश्य सीखा जा सकता है। इसके सिवा उनके सङ्ग से यह इच्छा प्रबल होती है कि हम फिर अपने पूर्वजों का ऐसा गौरव प्राप्त करें। स्वावलम्ब, जातीयता और देशानुराग की शिक्षा तो अँगरेज़ों से बढ़ कर और किसी जाति से नहीं मिल सकती।" भूदेव बाबू अच्छे अँगरेज़ों को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। वे उनको वर्तमान भारत में 'एका बढ़ानेवाले' और 'भगवान् के भेजे हुए शिक्षक' समझते थे। वे अँगरेज़ों के सुशृंखलाबद्ध कार्य-क्रम और तत्परता की प्रशंसा किया करते थे।

सन् १८५६ में भूदेव बाबू हुगली-नार्मल-स्कूल के हेडमास्टर हुए। इस जगह उन्होंने बड़े परिश्रम और यत्न से मन लगा कर अपना काम किया। उस समय इस स्कूल के छात्रों को सभी स्कूलों के सेक्रेटरी अपने यहाँ मास्टर बनाने के लिए उत्सुक रहते थे।

इसी समय भूदेव बाबू के पहले पुत्र महेन्द्रदेव का स्वर्गवास हो गया। लड़का बहुत सुशील और तेज़ था। उसकी बुद्धि और स्मरणशक्ति बहुत अच्छी थी। वह बारह वर्ष की अवस्था में ही एन्ट्रेंस का कोर्स पढ़ता था। साधारण ज्वर आया और कुछ घंटों में ही मृत्यु हो गई। इस दुर्घटना से भूदेव बाबू को बड़ा भारी दुःख हुआ।

इसी बीच में इन्स्पेक्टर उडरो साहब ने छः महीने की छुट्टी ली। उनकी जगह पर मेड्लिकट साहब आये। मगर वे शिक्षाविभाग का काम बिल्कुल न जानते थे। इस लिए भूदेव बाबू को उनके सहकारी का स्थान मिला। मेड्लिकट साहब भूदेव बाबू को बहुत चाहते थे। भूदेव बाबू भी उनसे बड़ा स्नेह रखते थे। कुछ दिन बाद साहब पागल होगये। भूदेव बाबू ने साहब के बँगले के पास तम्बू में ४० दिन रह कर साहब की देखरेख और सेवा की। पागलपन की हालत में भी जब (साहब का दिमाग़ बहुत ख़राब हो जाता था) भूदेव बाबू "मेड्लिकट" कह कर पुकारते थे तब साहब शान्त होकर खाते और सो जाते थे। मेम साहब या और कोई साहब को नहीं शान्त कर सकता था।

सन् १८६२ के जूलाई मास में भूदेव बाबू स्थायी रूप से स्कूलों के असिस्टेंट इन्स्पेक्टर नियत होगये। उस समय सेक्रेटरी आफ़ स्टेट की यह इच्छा हुई कि कई एक प्रधान ज़िलों में प्राथमिक शिक्षा और बढ़ाई जाय। इस कार्य में भूदेव बाबू ने बड़ी सहायता की।

सन् १८६३ के जनवरी मास में भूदेव बाबू एडीशनल इन्स्पेक्टर बनाये गये और उनको स्वतन्त्र होकर काम करने का अवसर दिया गया। उन्होंने गवर्नमेंट की इच्छा को अच्छी तरह पूर्ण किया। इसके पुरस्कार में उनको अस्थायी रूप से शिक्षा-विभाग का सर्वोच्च पद मिला। वे डाइरेक्टर किये गये।

सन् १८६९ में गवर्नमेंट ने उन्हें युक्तप्रदेश और पञ्जाब की प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में हल्कावंदी की प्रथा के बारे में रिपोर्ट करने का काम सौंपा। भूदेव बाबू ने जाँच करके रिपोर्ट की और उसे बङ्गाल-गवर्नमेंट, भारत-गवर्नमेंट और स्टेट-सेक्रेटरी ने बहुत पसन्द किया। सर ऐशली ईडन ने उस रिपोर्ट को देख कर कहा—"It is gem of a report." अर्थात् यह रिपोर्ट एक रत्न है। इस रिपोर्ट में ख़ूबी यह थी कि भूदेव बाबू ने अपने विरुद्ध सम्मति देनेवालों के वाक्य उद्धृत कर उन्हीं से अपने मत का समर्थन किया था। फल यह हुआ कि पहले बङ्गाल में और फिर युक्तप्रदेश और पञ्जाब में भी प्राथमिक शिक्षा के लिए प्रजा पर नया कर लगाने का प्रस्ताव नामंज़ूर कर दिया गया। इसके बाद भूदेव बाबू १५००) रु० महीने पर सर्किल इन्स्पेक्टर हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १८७२ में भूदेव बाबू की स्त्री का देहान्त होगया। इससे भूदेव बाबू को बड़ा कष्ट हुआ। उनका स्वास्थ्य भी कुछ ख़राब हो गया। भूदेव बाबू बड़े स्पष्टवक्ता थे। इसलिए बङ्गाल के छोटे लाट सर जार्ज कैम्बेल से कुछ मनोमालिन्य हो गया। भूदेव बाबू ने छुट्टी ले ली। कुछ दिन तक आसाम और बर्मा में घूमे। उस समय बर्मा के कमिश्नर ईडन साहब ने (जो पीछे से बङ्गाल के छोटे लाट होगये थे) भूदेव बाबू के सम्बन्ध में सर जार्ज कैम्बेल को एक पत्र लिखा था। उसका कुछ अंश हम नीचे उद्धृत किये देते हैं—"Let me say a word to you about my old friend, Babu Bhoodeb Mokerjea. Bhoodeb has many of the higher qualifications of the Europeans and very few failings of his countrymen. * * I should like to think that five out of ten of our civilians are as conscientious workers. as he is." अर्थात् मैं अपने पुराने मित्र बाबू भूदेव मुकर्जी के सम्बन्ध में एक बात कहता हूँ। वह यह है कि उनमें यूरोपियन लोगों के अनेक उच्च गुण हैं। उनके देश के लोगों में जो त्रुटियाँ देखी जाती हैं वे उनमें बिलकुल ही नहीं हैं, यह तो नहीं कहा जा सकता, पर ऐसी त्रुटियाँ हैं भी उनमें तो बहुत कम हैं। हमारे सिविलियन भाइयों में दस में पाँच ही उनके समान विवेकपूर्वक काम करने वाले होंगे।

सन् १८७७ में पटने के सात ज़िलों (उस समय तिरहुत कमिश्नरी अलग नहीं हुई थी), भागलपुर के पाँच ज़िलों, बर्दवान के छः ज़िलों और उड़ीसा के तीन ज़िलों, सब मिला कर इक्कीस ज़िलों की शिक्षा का प्रबन्ध भूदेव बाबू को सौंपा गया। उनके नीचे कई एक असिस्टेंट इन्स्पेक्टर भी नियत थे। इसके बाद गवर्नमेंट ने सी० आई० ई० की उपाधि देकर उन्हें सम्मानित किया। इसी अवसर में शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर क्राफ्ट साहब की तबीयत कुछ ख़राब हो गई। उन्होंने तीन महीने की छुट्टी लेने का विचार किया। उस स्थान पर भूदेव बाबू को नियत करने का प्रस्ताव हुआ। यह देख कर कई यूरोपियन इन्स्पेक्टरों और कालेज के प्रिंसिपलों ने इसका विरोध और क्राफ्ट साहब से छुट्टी न लेने का अनुरोध किया। उन्होंने यहाँ तक कह दिया कि अपने देश के लोगों को एतद्देशीय लोगों के अधीन काम करने के लिए विवश करके स्वास्थ्य ठीक करने की अपेक्षा मर जाना ही भला है। क्राफ्ट साहब ने छुट्टी न ली। अपने भाइयों के जाति-गर्व-गौरव की रक्षा करने से उनकी तबीयत भी अच्छी होगई। धन्य अँगरेज़ जाति, तुम्हारा स्वाभिमान धन्य है।

इसके बाद भूदेव बाबू ने एक बहुत अच्छा काम किया, जिसके लिए हिन्दीभाषाभाषी लोग उनके चिरकृतज्ञ रहेंगे। बिहार की अदालतों में उस समय फ़ारसी अक्षर प्रचलित थे। भूदेव बाबू के उद्योग से गवर्नमेंट ने उनकी जगह पर नागरी लिपि प्रचलित की। उस समय यह बात चली थी कि बहुत से हिन्दू (कायस्थ आदि) भी उर्दू के पक्षपाती हैं। इसके उत्तर में भूदेव बाबू ने कहा—"बिहारी हिन्दू बालक अपनी मातृभाषा हिन्दी, धर्म की भाषा संस्कृत और राजा की भाषा अँगरेज़ी सीखें। और मुसलमानों के लड़के प्रचलित भाषा हिन्दी, धर्म की भाषा अरबी और राजा की भाषा अँगरेज़ी सीखें—यही उचित है। बिहारी बालक उर्दू या फ़ारसी सीखने के लिए क्यों विवश किये जाते हैं? क्या इस लिए कि पहले के राजा मुसलमानों ने हिन्दी को विकृत कर दिया और विदेश से एक नई लिपि तथा भाषा ले आये? यदि यही है तो इँगलैण्ड में विजेता सेक्सन लोगों की जर्मन भाषा और विजेता नार्मन लोगों की फ़रासीसी भाषा आज भी उसी तरह प्रचलित रखनी चाहिए। इत्यादि"। ईडन साहब इस उत्तर से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने भूदेव बाबू की बात मान ली।

इस काम से बिहार के लोग भूदेव बाबू से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने उनकी प्रशंसा में कई एक गीत बना डाले और वे गीत गली गली सुनाई देने लगे। पण्डित अम्बिकादत्त व्यास के बनाये दो गीत हम यहाँ डाक्टर ग्रियर्सन साहब की बनाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विहारी व्याकरण-माला के भोजपुरीखण्ड से उद्धृत किये देते हैं:—

"कचहरियों में नागरी अक्षर चलित होने के विषय में सरकार की प्रशंसा:—

(१)

पूर्वी गीत।

धन्य धन्य गवर्नमेंट परजासुखदाई।
यावनी के दूर करी नागरी चलाई॥
'भुवनदेव' करि पुकार लाट निकट जाई।
परजा दुख दूर करहु यावनी दुराई॥
नानाविधि जाल होत यावनी में राई।
परजा में हरष होत विद्या निज पाई॥
धन्य बुद्धि धनि विचार धन्य अन्तर माई।
करि नियाव हिन्द बीच हिन्दुई चलाई॥
परजा नित सुयश गाव अम्बिका मनाई।
जब ले चंद सुरज रहैं राज रहै भाई॥

(२)

हुकुम भईल सरकारी,
रे नर सीखो नागरिया।
यावनि जी से देहु दुराई,
पढ़ि गुनि काज करो नरहरिया॥
लै पोथी नित पाठ करहु अब,
यावनि ग्रंथ देहु पैसरिया॥
जब ले नागरी आवत नाहीं,
कैथी अक्षर लिखो कचहरिया।
धन्य मन्त्री प्रजाहितकारी,
अम्बिका मनावत राज विक्टोरिया॥

भूदेव बाबू ने अपनी लिखी पुस्तकों में भी हिन्दी की प्रशंसा, उसके प्रचार की आवश्यकता और उसके राष्ट्रभाषा बनने की योग्यता दिखलाई है। हम दो तीन स्थलों को यहाँ उद्धृत करते हैं:—

(१) विद्याचर्चा की बढ़ती के साथ संस्कृत-रत्नाकर से भी बहुत से शब्द निकाले जाकर चलित भाषा में मिलाये जायँगे। यों होते होते हमारी भिन्न भिन्न भाषायें परस्पर निकट होती जायँगी; इतना अन्तर नहीं रहेगा। अर्थात् सब भाषायें एकता की ओर अग्रसर होंगी। भारत में जितनी भाषायें प्रचलित हैं उनमें हिन्दी या हिन्दुस्तानी ही सब से प्रधान है। वह पहले के मुसलमान बादशाहों और कवियों की कृपा से एक प्रकार देश भर में व्याप्त हो रही है। इस लिए अनुमान किया जा सकता है कि उसी के सहारे किसी समय सारे भारत की भाषा एक हो जायगी"।

(सामाजिक प्रबन्ध, पृ० २२५)

भूदेव बाबू की यह भविष्यद्वाणी अब सफल होती देख पड़ती है।

भूदेव बाबू ने भारत के इस विराट् समाज के सब अंशों में परस्पर सहानुभूति बढ़ाने के उपाय जहाँ लिखे हैं वहाँ हिन्दी भाषा के व्यवहार को ही प्रधानता दी है। आप लिखते हैं:—

(२) "स्वदेशी लोगों के प्रति सर्वदा आदर दिखलाना चाहिए। हमें ध्यान रखना चाहिए कि हम सब एक ही पुण्यभूमि में पैदा हुए और पले हैं। हमारे अन्तःकरण की गठन परस्पर अभिन्न है। भारत के अधिकांश लोग हिन्दी में बातचीत कर सकते हैं। इस लिए भारतवासियों की बैठक में अँगरेज़ी, फ़ारसी का व्यवहार न होकर हिन्दी में बातचीत होनी चाहिए। साधारण पत्र-व्यवहार भी हिन्दी ही में होना चाहिए। हमारे पड़ोसी या इष्ट-मित्र, चाहे वे मुसलमान, क्रस्तान, बौद्ध आदि कोई भी हों, सब सहज में हिन्दी समझ सकते हैं"। इत्यादि।

(सामाजिक प्रबन्ध, पृ० २८५)

और एक जगह लिखा है:—

(३) "एक ही वर्ण के लोग भिन्न भिन्न देश में रह कर एक दूसरे से विवाह-सम्बन्ध नहीं करते। जैसे बङ्गाल के कायस्थ और पछाँह के कायस्थों में, दोनों के कायस्थ होने पर भी, विवाह-सम्बन्ध नहीं होता। किन्तु यह सङ्कीर्णता अब उचित नहीं है। पहले एक देश से दूसरे देश में जाने आने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीभूदेव मुखोपाध्याय, सी० आई० ई० ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद । CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुभीता न था। इसी से इस सङ्कीर्णता का जन्म हुआ। अब इस तरह पर विवाह-सम्बन्ध प्रचलित होने से भारत का समाज दृढ़ होगा, और एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश की सहानुभूति बढ़ेगी। इसके साथ ही हिन्दी भाषा का भी सर्वत्र अधिक प्रचार होगा, जो कि बहुत ज़रूरी है"।

(सामाजिक प्रबन्ध, पृ० २३६)

बाँकीपुर का खड्गविलास प्रेस भूदेव बाबू ने ही स्थापित किया था। पहले इसका नाम बुधोदय प्रेस था। बाबू रामदीनसिंह को भूदेव बाबू ने यह प्रेस दे डाला। तबसे यह सिंह जी की सम्पत्ति हो गया।

भूदेव बाबू ने बँगला की बहुत सी पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद करा कर उन्हें प्रकाशित कराया है। स्कूलों के प्राइज़-फंड से धन-दान कर हिन्दी में नई पुस्तकों की रचना भी कराई है। इस काम में पण्डित शिवनारायण शास्त्री, पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र, पण्डित छोटूराम त्रिवेदी और बाबू रामदीनसिंह उनके सहायक थे।

भूदेव बाबू ने अपने परम प्रीतिभाजन पण्डित रामगति न्यायरत्न महाशय को बाँकीपुर से एक चिट्ठी लिखी थी। उसका कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं। पाठक उसे पढ़ कर समझ सकेंगे कि भूदेव बाबू हिन्दी के क्यों पक्षपाती थे। वह इस प्रकार है:—

"इस प्रदेश से फ़ारसी दफ़्तर उठ जाने की आज्ञा हुई है। इससे मुसलमान और उन्हीं के सदृश कुछ हिन्दू भी बहुत गोलमाल कर रहे हैं। वे मुझको दोष देते हैं। जो लोग फ़ारसी के पक्ष में नहीं हैं वे मुझ से परम प्रसन्न हैं। ... ... जब से मैं बिहार में आया हूँ तभी से फ़ारसी को उठा देने की चेष्टा कर रहा हूँ। मेरे आने के पहले यहाँ जातीय भाषा (हिन्दी) के स्कूलों की बहुत बुरी हालत थी; कोई उनका आदर नहीं करता था। मैंने आकर उन उपेक्षित स्कूलों पर ध्यान दिया और उनकी उन्नति की। अब यहाँ हिन्दी के स्कूलों की संख्या पहले से दस गुनी हो गई है। सन् १८३९ में बङ्गाल से फ़ारसी के दफ़्तर उठ गये और सच पूछो तो तभी से बङ्गाल की उन्नति हुई। क्योंकि, तभी से बङ्ग-भाषा की श्रीवृद्धि का सूत्रपात हुआ। हिन्दी के प्रचार से क्या बिहार की वही दशा न होगी? क्यों न होगी? मुझे आशा है कि बङ्गाल में जितनी उन्नति ४० वर्ष में हुई है उतनी बिहार में १५-१६ वर्ष के भीतर ही हो जायगी। मैं अपने इस तुच्छ जीवन के छोटे छोटे कामों में इस काम को बड़े महत्त्व की दृष्टि से देखता हूँ। ... ..."

भूदेव बाबू को दृढ़ विश्वास था कि विदेशी जीवन-चरित पढ़ने से बालकों की शिक्षा के एक अंश की विशेष क्षति होती है। वे समझते हैं कि इस देश में आदर्श-चरित लोग उत्पन्न ही नहीं हुए। इसी लिए भूदेव बाबू ने चरितावृत्त, नीतिपथ और रामचरित आदि कई किताबें लिखाई थीं। हिन्दी में गया का भूगोल भी उन्हीं की सम्पूर्ण सहायता और उत्साह से लिखा गया है।

सन् १८८२ में भूदेव बाबू बङ्गाल की व्यवस्थापक सभा के मेम्बर बनाये गये। इस समय वे शिक्षाकमीशन के भी मेम्बर थे। सन् १८८३ के जूलाई मास में भूदेव बाबू ने पेंशन ले ली। इसके बाद काशी में जाकर वेदान्तशास्त्र पढ़ा। परमहंस श्री १०८ भास्करानन्द सरस्वती उनको बहुत मानते थे। यहाँ तक कि उन्हें 'पिता' कह कर पुकारते थे। स्वामीजी की समाधि में मूर्ति के नीचे जो संस्कृत के श्लोक खुदे हैं वे भूदेव बाबू के ही बनाये हुए हैं। भूदेव बाबू काशी से लौट कर चूँचुड़ा में रहने लगे। वहाँ उन्होंने संस्कृत-प्रचार के लिए, सन् १८८९ में, १७ अप्रैल को पिता के नाम से एक पाठशाला स्थापित की। फिर सन् १८९४ की ६ जनवरी को अपने पिता के नाम से विश्वनाथ-फंड स्थापित किया। उसमें भूदेव बाबू ने अपनी कमाई का १ लाख ६० हज़ार रुपया जमा कर दिया। साथ ही यह भी व्यवस्था कर दी कि इस रुपये के सूद की आमदनी का एक पञ्चमांश मूल धन में जमा होता रहेगा और बाक़ी से संस्कृत के शिक्षकों और छात्रों को वृत्तियाँ दी जायँगी। इस फंड के सूदी काग़ज़-पत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बङ्गाल बैंक में जमा हैं। एजूकेशन गज़ट में हर साल इस फंड का हिसाब प्रकाशित हुआ करता है। बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा में श्रुति-स्मृति और दर्शन-शास्त्रों के अध्यापकों को ५०) रु० साल और काशी के छात्रों को ३६) रु० साल वृत्ति दी जाती है। इस साल ८४ शिक्षकों और २० छात्रों को वृत्ति दी गई है। इस फंड से दो खैराती औषधालय (एक कविराजी और एक होमिओपैथी) भी चलते हैं। भूदेव बाबू ने ये औषधालय अपनी माता 'ब्रह्ममयी' के नाम से स्थापित किये हैं।

भूदेव बाबू धर्मशिक्षा के बड़े पक्षपाती थे। उनका ख़याल था कि धर्मोन्नति के बिना भारत की सच्ची उन्नति नहीं हो सकती और उस धर्मोन्नति के लिए गाँव गाँव में संस्कृत-पाठशालायें स्थापित होकर उन में सदाचारी, निर्लोभ, तेजस्वी और सुपण्डित अध्यापक तथा पुरोहित तैयार होने चाहिए। भूदेव बाबू कहा करते थे कि हमारे देश में समाज की रक्षा ब्राह्मणों के ही द्वारा हो सकती है। सच्चे और कर्मठ ब्राह्मण तैयार करना ही समाज और देश की उन्नति चाहने वालों का पहला कर्त्तव्य है।

सन् १८९४ की १६ मई को वैशाखशुक्ल ११ के दिन सत्तर वर्ष की अवस्था में, चूँचुड़ा में, गंगा तट पर ईश्वर का ध्यान करते करते महात्मा भूदेव बाबू का आत्मा इस लोक को छोड़ कर परम पिता की शरण में चला गया।

भूदेव बाबू ने कई मौलिक और अति उत्तम पुस्तकें बँगला में लिखी हैं। भूदेव बाबू की ग्रन्थावली देखने से उनकी प्रखर प्रतिभा, मनन और विचार की अपूर्व शक्ति, विद्वत्ता, मातृभाषा-प्रेम, स्वदेशानुराग आदि का पता लगता है। भूदेव बाबू और उनकी ग्रन्थावली के विषय में हमको अभी और भी लिखना है। फिर लिखेंगे।

रूपनारायण पाण्डेय।

सान्त्वना।

(रघुवंश से)

उस प्रिय जन का शोक न धीरज बिना झिलेगा,
रोने से वह कहाँ? मरण से भी न मिलेगा।
तन तज कर परलोक जीव ज्यों ही जाते हैं,
कर्म्मों के अनुसार भिन्न गतियाँ पाते हैं॥ १॥
सोच व्यर्थ है, धैर्य्य धरो, मन को समझाओ,
तत्सम्बन्धी शेष कर्म्म कर शान्ति बढ़ाओ।
स्वजनों का अति रुदन प्रेत-पीड़क होता है,
कहते हैं—वह शान्त भाव उस का खोता है॥ २॥
जीवन तो है विकृति मरण है प्रकृति हमारी,
कहते हैं बुध-वृन्द सृष्टि नश्वर है सारी।
लेते हैं क्षण मात्र श्वास जो जीवनधारी,
निश्चय उन के लिए लाभ है यह भी भारी॥ ३॥
प्रिय-विनाश से भ्रान्त बुद्धि वाले रोते हैं,
मान हृदय में विद्ध शेल व्याकुल होते हैं।
किन्तु मुक्ति का द्वार उसे जो विज्ञ जानते—
उलटा निकला हुआ शेल हैं उसे मानते॥ ४॥
जब अपने ही देह और देही भूतल में—
हैं संयोग-वियोगशील विश्रुत पल पल में।
अन्य विषय का विरह, घटे फिर चाहे जैसे—
दे सकता है ताप कहो, विज्ञों को कैसे?॥ ५॥
उचित नहीं हे वीर! तुम्हें निज धीरज खोना—
इतर जनों के सदृश शोक के वश में होना।
वृक्ष और गिरि-मध्य रहा क्या भेद परस्पर—
यदि दोनों ही हिलें वायु से व्याकुल हो कर?॥ ६॥

मैथिलीशरण गुप्त।

महाराज हर्षवर्द्धन।

महाराज हर्षवर्द्धन बड़े वीर, बड़े विद्वान् और महादानी नरेश हो गये हैं। उन्होंने अपनी सुकीर्त्ति से संसार को व्याप्त कर दिया था। सातवीं शताब्दी में उनका जन्म हुआ था। उनका दूसरा नाम शीलादित्य था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके पिता का नाम प्रभाकरवर्धन था। प्रभाकरवर्द्धन दिल्ली के निकटवर्त्ती थानेश्वर के अधिपति थे। हर्षवर्द्धन बाल्यकाल से ही—अपने पूज्य पिता के समय में ही—संग्राम-भूमि में जाने और अपनी युद्धकुशलता का परिचय देने लगे थे। आप के बड़े भ्राता का नाम राज्यवर्द्धन था। आपके एक भगिनी भी थी। वह राजेश्वरी देवी के नाम से विख्यात थी।

महाराज प्रभाकरवर्द्धन के स्वर्गवासी होने पर आपके बड़े भ्राता थानेश्वर के सिंहासन पर आरूढ़ हुए। आपकी भगिनी राजेश्वरी देवी का विवाह मालव-नरेश से हुआ। राजेश्वरी बड़ी विदुषी थीं। उनके विवाह के कुछ ही समय बाद मालव-नरेश अपने एक शत्रु के हाथ से मारे गये। उस दुष्ट ने राजेश्वरी देवी का शील भी भङ्ग करना चाहा। यह सोच कर उसने राजेश्वरी को क़ैद कर लिया। परन्तु राजेश्वरी देवी ने वीर बाला की तरह क़ैदख़ाने के दुःखों को कुछ भी न समझा। उसे उन्होंने सन्तोषपूर्वक सहन किया और अपने निष्कलङ्क चरित को किञ्चिन्मात्र भी कलङ्कित न होने दिया।

यह समाचार राज्यवर्द्धन को मिला तो वे बड़ी भारी सेना लेकर मालवा पर चढ़ दौड़े। मालव-नरेश के शत्रु से आपका घोर संग्राम हुआ। फल यह हुआ कि वह परास्त होकर भाग गया। तब राज्यवर्द्धन अपनी भगिनी राजेश्वरी को क़ैद से छुड़ाने चले। परन्तु मार्ग ही में किसी ने धोखे से उन्हें मार डाला। यह समाचार जब थानेश्वर पँहुचा तब राज्यवर्धन के छोटे भाई हर्षवर्द्धन बड़े शोकाकुल हुए। आपने एक बड़ी भारी सेना एकत्र करके अपने शत्रु से बदला लेने और अपनी बहिन को छुड़ाने के लिए थानेश्वर से मालवा की ओर कूच किया। जिस प्रकार सूर्य्य के प्रकाश होते ही तिमिरान्धकार का कहीं पता नहीं चलता उसी प्रकार महाराज हर्षवर्द्धन के मालवा पहुँचते ही उनका शत्रु बङ्गाल की ओर भाग गया और खोज करने पर भी न मिला। इधर आपकी भगिनी राजेश्वरी देवी भी किसी युक्ति से क़ैदख़ाने से निकल कर मालवा के निकटवर्त्ती पर्वतों में चली गईं।

जब आपने बहन को मालवा में न पाया तब आप को बड़ा दुःख हुआ। बड़ी कठिनता से उनका पता चला। जिस समय राजेश्वरी देवी से आप मिले उस समय वे अपने शरीर को भस्मीभूत करने के लिए चिता बना रही थीं। उनसे आप ने सब हाल कहा। राजेश्वरी देवी को भाई की मृत्यु का वृत्तान्त सुन कर उत्कट वेदना हुई। आपने उन्हें धीरज दिलाया और सती होने से रोका। राजेश्वरी देवी ने भी भाई के आग्रह को मान लिया और थानेश्वर लौट आईं।

आप के थानेश्वर पहुँचने पर प्रजा ने आपसे राज्याधिपति होने के लिए प्रार्थना की। आप पिता और भ्राता की मृत्यु, तथा राजेश्वरी देवी के वैधव्य के कारण संसार से विरक्त होगये थे। अतएव आपने राज्य का भार लेने से इनकार कर दिया। जब लोगों ने बहुत आग्रह किया तब आपने कहा कि मैं एक बौद्ध महात्मा की सम्मति लेकर तब इस विषय में आपसे अपना निश्चय निवेदन करूँगा। यदि वे आज्ञा देंगे तो मैं राज्य-शासन को हाथ में लूँगा, अन्यथा नहीं। पूछने पर उस महात्मा ने भी यही उत्तर दिया कि तुम्हीं राज्य करने योग्य हो। अतः तुम्हें ही सिंहासनासीन होना चाहिए। तब आपने विवश हो कर राज्य का भार अपने ऊपर लिया। परन्तु अपने को महाराजा के पद योग्य न समझ कर अपना नाम कुमार शीलादित्य ही रहने दिया। इन्होंने अपने नाम का संवत् चलाया। यह संवत् अक्टूबर सन् ६०६ ईसवी से प्रारम्भ हुआ। पर यह संवत् बहुत दिन तक नहीं चला।

राज्याभिषेक के कुछ काल बाद हर्षवर्धन ने दिग्विजय की तैयारी की। पहले तो आपने पास के अन्य राजाओं पर विजय प्राप्त किया। फिर दूर के देशों पर चढ़ाई की। सब कहीं आपकी जीत हुई। अन्त को दक्षिण में आपने हार खाई। वहाँ से इन्हें थानेश्वर लौट आना पड़ा। तथापि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायः सारा उत्तरी भारत-वर्ष, पञ्जाब और बङ्गाल इनके शासनाधीन रहा।

हर्षवर्धन ने अपने राज्य-शासन का बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया। मार-काट का नाम न रहा। सबलों का निर्बलों पर अन्याय होना बन्द होगया। सर्वत्र मूर्तिमती शान्ति विराजने लगी।

महाराज हर्षवर्धन को आलस्य छू तक न गया था। चातुर्मास के सिवा आप सदा दौरे ही पर रहते और सब बातों का पूर्णतया निरीक्षण करते थे। आपको अपने आराम का ख़याल न था। ख़याल था सिर्फ़ प्रजा के आराम का।

आपके राज्य में बड़े बड़े अपराध बहुत ही कम होते थे। यदि होते भी थे तो अपराधियों को कठोर दण्ड दिया जाता था। उस समय फाँसी का दण्ड प्रचार में न था। हाँ, चोरों के हाथ ज़रूर काट दिये जाते थे। इससे फिर किसी को वैसा दुष्कर्म करने का साहस न होता था।

महाराज हर्षवर्धन बड़े विद्याप्रेमी थे। आप ख़ुद बड़े भारी विद्वान् थे। संस्कृत का प्रसिद्ध कवि बाण भट्ट आपही के दरबार में था। आप संस्कृत में ग्रन्थरचना करते थे। नागानन्द और रत्नावली इन्हीं की रचना है।

हर्षवर्धन बड़े दानी थे। भोजन करने के पूर्व आप हज़ारों रुपया दान करते थे। आप हर पाँचवें साल प्रयाग जाते थे और वहाँ बड़े समारोह के साथ सर्वस्व दान कर देते थे। एक बार आपके साथ चीन का प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता हुएनसांग भी था। आपने इस दफ़े इतना दान दिया कि अपने पहनने के वस्त्र भी पास न रक्खे। अपनी बहन राजेश्वरी देवी से अन्य वस्त्र मँगवा कर पहनने पड़े।

आपने प्रजा के हितार्थ सड़कें, नहर और बाग़ आदि बनवाये। आबपाशी का एक अलग महकमा क़ायम किया। प्रजा का सच्चा हाल जानने के लिए संख्यातीत जासूस रक्खे। चुंगी का महकमा भी आपने खोला। जब कोई वस्तु बाहर से आती या बाहर को जाती तो उस पर टैक्स लगता था। यह टैक्स बहुत थोड़ा था। इससे देने वालों को कष्ट न होता था। किन्तु आपने नशीली चीज़ों पर बहुत अधिक टैक्स लगाया था, जिसमें उनका प्रचार न बढ़े।

आप बौद्धमतावलम्बी थे। अतएव आपने बौद्ध धर्म्म के प्रचारार्थ ऊँचे ऊँचे स्तूप बनवाये। वे स्तूप आज कल भी गङ्गा-यमुना के दुआबे में कहीं कहीं पाये जाते हैं। आपने बौद्ध-धर्म्म की उन्नति के लिए स्थान स्थान पर धर्म्मोपदेशक नियत किये थे। आपने बौद्ध-धर्म्म का इतना उपकार किया कि वह धर्म्म कुछ समय के लिए भारत का प्रधान धर्म्म होगया। परन्तु कोई बलात् किसी को बौद्धधर्म्मावलम्बी नहीं बना सकता था और न किसी धर्म्म पर हस्ताक्षेप कर सकता था। धर्म्म के विषय में सब को स्वतन्त्रता थी।

हर्षवर्धन ने अपने जीवन के अन्तिम भाग को—सन् ६४२ से ६४८ तक—बौद्ध-धर्म्म की सेवा में ही व्यतीत किया। आपकी भगिनी राजेश्वरी देवी आपको राज-कार्य्य में बहुत कुछ सहायता देती थीं। राजेश्वरी देवी महाराज के साथ साथ हुएन-संग के व्याख्यानों को बड़े प्रेम से सुनती थीं और शङ्का-समाधान भी करती थीं। इससे सूचित होता है कि पुराने ज़माने में यहाँ स्त्रीशिक्षा का प्रचार था।

हर्षवर्धन ने ४२ वर्ष तक राज्य किया। ६४८ ईसवी में उनका शरीरान्त हुआ।

आपके हस्ताक्षरों का एक चित्र विन्सेंट साहब ने अपने भारत-वर्ष के इतिहास में छापा है। उसी की प्रति लिपि यहाँ दी जाती है।

हरिश्चन्द्र।

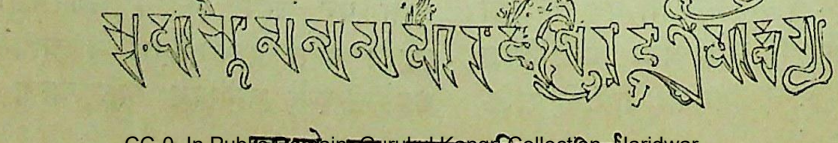

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराणों की प्राचीनता।

जनवरी १९१२ के "माडर्न रिव्यू" में बी० सी० मजूमदार महाशय का लिखा हुआ एक लेख पुराणों के विषय में प्रकाशित हुआ है। उसका भावार्थ, संक्षेप में, नीचे दिया जाता है।

संस्कृत में, और उससे सम्बन्ध रखने वाली अन्य भारतीय भाषाओं में, "पुराण" शब्द का अर्थ पुरातन है। जब इस शब्द का व्यवहार संज्ञा की भाँति किया जाता है तब इससे उन धार्मिक ग्रन्थों का मतलब लिया जाता है जिनमें प्राचीन समय के देवताओं, राजाओं और महा-पुरुषों की कीर्ति का वर्णन है। "पुराण" शब्द नया नहीं है; वह वेदों में भी पाया जाता है। वहाँ भी उसका वही अर्थ है जो उसके संज्ञा-रूप का होता है। अथर्व-वेद के ग्यारहवें काण्ड के सातवें सूक्त में यह शब्द इसी अर्थ में व्यवहृत हुआ है। इस से पुराणों की प्राचीनता प्रकट होती है। पौराणिक साहित्य उतना ही प्राचीन और पुनीत है जितने कि वैदिक मन्त्र, जैसा कि आगे चल कर प्रमाणित किया जायगा।

यज्ञ में वेद-मन्त्रों का काम पड़ता है; परन्तु कौन मन्त्र किस समय और किस प्रकार पढ़ा जाना चाहिए, इन बातों का वेदों में कहीं ज़िक्र नहीं। साम, ऋक् और अथर्व-वेद में केवल मन्त्र ही मन्त्र हैं। हाँ, यजुर्वेद में अवश्य यज्ञ करने और मन्त्र पढ़ने की प्रणाली का कुछ वर्णन है। पर मन्त्रों के महत्त्व और यज्ञों के विधानों का पूरा पूरा वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों ही में है। इन ग्रन्थों से मालूम होता है कि अमुक देवता की किस समय और, किस मन्त्र से प्रार्थना करनी चाहिए; अमुक मन्त्र का कर्त्ता कौन ऋषि है; पूर्व समय में कब और कौन मन्त्र से कौन यज्ञ किया गया और क्या फल हुआ; और, किस मन्त्र का उच्चारण किस प्रकार किया जाना चाहिए—इत्यादि। केवल मूल मन्त्र जान लेने से विशेष लाभ नहीं; मन्त्रों के देवता और उनकी उच्चारण-प्रक्रिया का भी जानना आवश्यक है। इस बात का जानना तो सबसे अधिक आवश्यक है कि अमुक मन्त्र की उत्पत्ति का इतिहास क्या है और पूर्व-काल में उसके पाठ से क्या क्या लाभ हुए थे। अध्यापक लेनमन ने अथर्व-वेद का एक बड़ा अच्छा संस्करण प्रकाशित किया है। उसमें इस बात का भी उल्लेख है कि कौन सूक्त किस कामना को पूर्ण करने के लिए पढ़ना चाहिए। ब्राह्मण-ग्रन्थ तो इन्हीं बातों से भरे पड़े हैं। ऋग्-वेद के सब मन्त्रों के इतिहास का वर्णन बृहद्-देवता नामक ग्रन्थ में है। इस ग्रन्थ के चौथे अध्याय में लिखा है कि दीर्घात्मा नामक एक व्यक्ति जन्म ही से अन्धा था। ऋग्वेद के प्रथम काण्ड के कुछ सूक्तों के पारायण से उसे फिर दृष्टि प्राप्त हो गई। वेद-मन्त्रों का इस प्रकार का इतिहास, उनके उच्चारण की विधि, और उनके फल का निर्देश, यह सारा विषय-समुदाय, पूर्वकाल में, पुराण या पुराणेतिहास के नाम से उल्लिखित होता था।

वर्तमान काल में, यज्ञ करते समय, मन्त्रों के इतिहास (पुराण) सुनाने की रीति नहीं; परन्तु महाभारत के समय तक वेद-मन्त्रों के कीर्ति-गान की प्रथा प्रचलित थी। इस काम का भार पौराणिकों पर था। उदाहरण के लिए महाभारत की भूमिका देखिए, जहाँ पर पौराणिक उग्रश्रवा, यज्ञ करते समय, ऋषियों से यह पूछते हैं कि क्या आप लोग इतिहास सुनने के लिए तैयार हैं?:—

कृताभिषेकाः शुचयः कृतजप्याहुताग्नयः।
भवन्त आसने स्वस्थाः ब्रवीमि किमहं द्विजाः? (१५)

महाभारत की इसी भूमिका में नीचे दिया गया श्लोकार्द्ध भी है, जिससे प्रकट होता है कि वेद-मन्त्रोच्चारण के समय पुराणेतिहास का वर्णन आवश्यक था:—

इतिहास-पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्—(२६७)

प्रसिद्ध है कि कलियुग के आरम्भ में भगवान् व्यास ने वेद-मन्त्रों को यथाक्रम सजा कर उन्हें वर्तमान रूप में परिणत किया। यहाँ पर इस बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के विचार की आवश्यकता नहीं कि किस समय और किस हिसाब से किसने वेदों को विभक्त किया। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उस समय वह भाग, जो इतिहास-पुराण के नाम से प्रसिद्ध था, वेदों से पृथक् कर दिया गया। तभी आधुनिक पुराणों का जन्म हुआ समझना चाहिए।

शतपथ-ब्राह्मण, तैत्तिरीय आरण्यक और उपनिषदों से विदित होता है कि प्राचीन समय में ब्राह्मण लोग भी इतिहास-पुराण का अध्ययन बड़ी श्रद्धा और रुचि से करते थे। छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है :—

ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद अथर्वणश्चतुर्थ-
इतिहास-पुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः ॥

इसके अनुसार अथर्व-वेद चौथा वेद और इतिहास-पुराण पाँचवाँ वेद है। भारतीय युद्ध के बाद इतिहास-पुराण को कुरु-पाण्डवों की कथा से मिला कर महाभारत की रचना हुई जान पड़ती है। इसी से महाभारत पञ्चम वेद के नाम से विख्यात हुआ है।

आधुनिक पुराणों में बहुत से राजवंशों, राजाओं और देवताओं आदि का वर्णन है। वैदिक पुराणों में भी केवल वेद-मन्त्रों ही का इतिहास न था। महाभारत ही में, जहाँ पुराणों का वैदिक श्रुतियों से घनिष्ठ सम्बन्ध बतलाया गया है, इस प्रकार के कितने ही श्लोक पाये जाते हैं :—

(१) "मया श्रुतमिदं पूर्वं पुराणे पुरुषर्षभ"।

अथवा

(२) "अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्"।

अथवा

(३) "श्रूयते हि पुराणेऽपि जटिला नाम गौतमी"

अथर्ववेद के अन्तिम सूक्तों से भी प्रकट होता है कि पुराणेतिहास में केवल देवताओं ही का इतिहास नहीं, किन्तु मनुष्यों का भी इतिहास रहता था। उसमें जगत् की उत्पति, मनुष्य की उत्पत्ति और मन्वन्तर आदि के वर्णन के साथ ही साथ आदर्श राजाओं और बड़े बड़े राजवंशों का भी वर्णन रहता था। पुराणों में जहाँ जहाँ "पुराण" शब्द का प्रयोग हुआ है वहाँ वहाँ इस शब्द से तात्पर्य्य ऐसी सभी बातों से है। वायु-पुराण में पुराण की यह परिभाषा दी गई है :—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितञ्चेति पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

महाभारत से भी इसी मत की पुष्टि होती है। मेगास्थनीज़ के लेखों से भी विदित होता है कि उस समय हमारी जिन पुस्तकों में सृष्टि की उत्पत्ति आदि का हाल था उन्हीं में बड़े बड़े राज-वंशों, राजाओं और देश का इतिहास भी था। पाटलीपुत्र में उसने सर्ग-प्रतिसर्ग तथा भारत की अन्य ऐतिहासिक घटनाओं का हाल हिन्दुओं से साथ ही सुना था।

कुछ लोग जब तक किसी बात का वर्णन प्राचीन पुस्तकों में नहीं देखते तब तक उसकी प्राचीनता स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होते। "पुराण" शब्द अथर्व-वेद और शतपथ-ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में तो पाया जाता है, परन्तु पाणिनि के किसी सूत्र में उसका पता नहीं लगता। परन्तु इससे पुराणों की अर्वाचीनता सिद्ध नहीं होती। पाणिनि ने सारी पुरानी बातों का उल्लेख करने की प्रतिज्ञा थोड़े ही की थी। पुराणों की प्राचीनता ढूँढ़ने के लिए अष्टाध्यायी के सूत्रों की पड़ताल करने की आवश्यकता नहीं। उसमें न सही; उससे भी पुरानी पुस्तकों में तो "पुराण" शब्द है।

इस बात का ठीक ठीक पता नहीं लगता कि महाभारत के रूप में परिवर्तित होने के पहले पुराणेतिहास का क्या रूप था और उसकी क्या दशा थी। सम्भव है, जिस प्रकार प्रत्येक वेद के ब्राह्मण, अनुक्रमणिकायें, उपनिषद् आदि अलग अलग हैं उसी प्रकार प्रत्येक वेद के मन्त्रों की ऐतिहासिक बातों के सूचक पुराणेतिहास भी अलग अलग रहे हों। बृहद्देवता में जिन पुराणों का वर्णन है उनका अन्य वेदों के मन्त्रों से तो सम्बन्ध है, परन्तु अथर्व-वेद के मन्त्रों से कोई सम्बन्ध नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथर्व-वेद के मन्त्रों का पुराण भी रहा होगा। प्रत्येक वेद के मन्त्रों का पुराण अलग अलग रहा होगा—इस सम्भावना का एक कारण है। शतपथ ब्राह्मण के ग्यारहवें, आत्रेय ब्राह्मण के पाँचवें, और छान्दोग्य-उपनिषद् के चौथे अध्याय में लिखा है कि जब प्रजापति ने वेदों की प्राप्ति के लिए तप किया तब ऋग्वेद की उत्पत्ति अग्नि से, सामवेद की सूर्य्य से और यजुर्वेद की वायु से हुई। वायु, अग्नि और सूर्य्य के नाम पर तीन आधुनिक पुराण भी हैं। इन तीनों पुराणों का पूर्वोक्त तीनों वेदों से सम्बन्ध होने ही के कारण उनके ये नाम पड़े। यही तीन पुराण महाभारत के पहले रहे होंगे। अन्य आधुनिक पुराणों की उत्पत्ति महाभारत के पीछे हुई जान पड़ती है।

महाभारत के वनपर्व के १९१ वें अध्याय में और उसके अन्तिम पर्व के छठे अध्याय में आधुनिक पुराणों का ज़िक्र ज़रूर है, परन्तु उन स्थलों को विचारपूर्वक पढ़ने से स्पष्ट मालूम होता है कि वे प्रक्षिप्त हैं। वनपर्व के १८८ वें अध्याय में ऐसी घटनाओं का वर्णन है जो महाभारत के समय के बहुत पीछे हुई हैं। आगे चल कर, १९० वें अध्याय में, युधिष्ठिर मार्कण्डेय से पूछते हैं कि कलियुग में क्या होगा? वे इस प्रश्न को पहले भी पूछ चुके हैं और मार्कण्डेय पूरा पूरा उत्तर भी दे चुके हैं। परन्तु वे उसे फिर पूछते हैं और मार्कण्डेय फिर अपने पूर्व उत्तर को दुहराते हैं। १९१ वें अध्याय में भी वही बातें कही गई हैं जो १९० वें में हैं। इसी अध्याय में यह श्लोक है:—

एतत्ते सर्वमाख्यातमतीतानागतं मया।
वायुप्रोक्तमनुस्मृत्य पुराणं ऋषिसंस्तुतम्॥

कदाचित् यह सङ्केत यजुर्वेद के किसी पुराण की ओर हो। परन्तु महाभारत में अन्य सब पुराण सम्मिलित हैं और वह पञ्चम वेद कहलाता है। उसमें किसी पुराण का प्रमाण न होना चाहिए। इसी अध्याय में वायुपुराण की भी कुछ बातें उद्धृत हैं, जिनसे मालूम होता है कि किसी ने बहुत पीछे अपने समय का दिग्दर्शन कराने के लिए इस ग्रन्थ में कुछ अध्याय बढ़ा दिये हैं। ४९ वें श्लोक में वायु-पुराण का प्रमाण देते हुए कहा गया है कि भविष्यत् में लड़कियाँ पाँच छः वर्ष की उम्र में ही गर्भवती हुआ करेंगी। परन्तु वायुपुराण के ५८ वें अध्याय के ५८ वें श्लोक में लिखा है कि कलियुग में लड़कियाँ सोलह वर्ष की उम्र के पूर्व ही गर्भवती हुआ करेंगी। उक्त श्लोक दो प्रकार से लिखा जाता है। उसके दोनों रूप ये हैं:—

प्रणष्टचेतनाः पुंसो मुक्तकेशास्तु चूलिकाः।
ऊनषोडशवर्षाश्च प्रजायन्ते युगक्षये॥

दूसरे रूप में "प्रजायन्ते युगक्षये" के स्थान पर "धर्षयिष्यन्ति मानवान्" है।

श्लोक का दूसरा पाठान्तर विशेष शुद्ध मालूम होता है। परन्तु श्लोक के दोनों पाठों से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि किसी समय भारत में सोलह वर्ष के पूर्व लड़कियों का विवाह न होता था।

महाभारत के अन्तिम पर्व के अन्तिम दो अध्यायों में भी अठारह पुराणों का ज़िक्र है। महाभारत में कई जगह इस बात का उल्लेख है कि संसार में इतने शास्त्र और इतनी विद्यायें हैं। परन्तु कहीं भी अठारह पुराणों का वर्णन नहीं। अतएव अन्तिम पर्व का छठा अध्याय निःसन्देह प्रक्षिप्त है। उसके पहले का अर्थात् पाँचवाँ अध्याय भी पीछे से मिला दिया गया है; क्योंकि स्वर्गारोहण तो चौथे अध्यायही में हो गया। पाँचवें अध्याय में सिवा पहले अध्यायों की बातों के और कुछ नहीं। उदाहरण के लिए पाँचवें अध्याय के ६८ वें और ६९ वें श्लोक आदि पर्व के दूसरे अध्याय के ३९५ वें और ३९६ वें श्लोक की केवल नक़ल हैं।

जब हम आधुनिक पुराणों को जाँच की कसौटी पर कसते हैं तब मालूम पड़ता है कि सारे पुराण महाभारत के पीछे बने हैं। रहे वैदिक समय के पुराणेतिहास, सो वे कुरु-पाण्डवों की कथा से संयुक्त होकर महाभारत के रूप में परिवर्तित हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यमान हैं। एक भी आधुनिक पुराण महाभारत के पहले का नहीं।

पुराण वैदिक समय में भी थे। उस समय भी वे इतिहास-संयुक्त थे। पीछे से उन्हें पञ्चम वेद, महाभारत, का रूप प्राप्त हुआ। इन बातों का वर्णन हो चुका। अब हम आधुनिक पुराणों की ओर झुकते हैं। आधुनिक पुराण सन् ईसवी से १४० वर्ष पूर्व के पहले के नहीं हैं। व्याकरण-महाभाष्य की रचना भी उसी समय की है। मनु-संहिता उससे भी पीछे की है। इन दोनों पुस्तकों में दुर्गा, गणेश, महादेव आदि देवताओं का कहीं भी ज़िक्र नहीं। आधुनिक पुराणों में बहुत सी वैदिक कथायें हैं; परन्तु उनका रूप तोड़ मरोड़ कर कुछ का कुछ कर दिया गया है। बहुत सी कथायें नई भी हैं; उनमें नये नये राजवंशों और राजाओं का वर्णन है। पूर्व-काल के राजाओं के बल-विक्रम और गौरव की कथायें लोग पुराणों में सुनते थे। इस कारण समय समय पर पुराणों की भाषा में भी परिवर्तन होता रहा है। जैसे जैसे आर्य्य-सभ्यता भारत में फैलती गई वैसेही वैसे नये नये प्रदेश, नदी, पहाड़ और अन्य स्थानों के नाम पुराणों में आते गये। आधुनिक और वैदिक पुराणों में और भी कई प्रकार का भेद है। उनके इतिहास वर्णन की प्रणालियाँ भी भिन्न भिन्न हैं। इन बातों पर विचार करने से प्रकट होता है कि आधुनिक पुराण बहुत प्राचीन नहीं हैं। परन्तु एक बात अवश्य है। आधुनिक पुराणों के एक बार बन जाने पर उनमें उसके बाद विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। आधुनिक पुराणों में वैदिक समय के राजाओं और राजवंशों के नाम वैसे ही पाये जाते हैं जैसे कि वैदिक पुराणों में हैं। मत्स्य-पुराण में जहाँ इक्ष्वाकु-वंश का वर्णन है वहाँ लिखा है:—

अत्राणु-वंशश्लोकोऽयं विप्रैर्गीतः पुरातनैः।
इक्ष्वाकूनामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति।

इसी तरह अन्य पुराणों में राजाओं और राजवंशों का जो वर्णन है वह काल्पनिक नहीं है। उनमें उल्लिखित राज-वंशों द्वारा प्राचीन राजाओं का काल-निरूपण करने में बड़ी सहायता मिल सकती है। पुराणों के राजवंश और तत्सम्बन्धी घटनायें इतिहासप्रेमियों के बड़े काम की हैं।

पुराणों में गुप्तवंश के महाराजाओं तक ही का हाल मिलता है। इस लिए कुछ लोगों का ख़याल है कि पुराण गुप्त राजाओं के समय में बनाये गये। परन्तु बात ऐसी नहीं है। पाँचवीं शताब्दी के अन्त में गुप्त-वंश हूण लोगों के आक्रमण से नष्ट हो गया। गुप्त वंश के बाद भारत में कोई साम्राज्य न रह गया। केवल छोटे छोटे बहुत से राज्य हो गये। देश में कोई साम्राज्य न रहने के कारण पुराणों में अन्य राजवंशों का नाम नहीं आया। गुप्त वंश के बहुत पूर्व भी भारत में कोई साम्राज्य न था। देश में अनेक छोटे मोटे राज्य थे। पर उन राजवंशों की कीर्ति का वर्णन पुराणों में है। गुप्तवंश के बाद के राजाओं की कीर्ति-वर्णन करनेवालों की कमी भी न थी। पाँचवीं शताब्दी के बाद यद्यपि पुराणों में किसी बड़े वंश या साम्राज्य का उल्लेख नहीं तथापि बहुत से ऐसे प्रमाण मिलते भी हैं, जिनसे प्रकट होता है कि उस समय छोटे छोटे राजाओं और राज्यों के वर्णन से पुराणों के आकार की अच्छी वृद्धि हुई है। इसी समय महाभारत की भी बहुत कुछ वृद्धि हुई है। भिन्न भिन्न स्थानों में पुराणों के बढ़ाये जाने का काम हुआ है। उड़ीसा में ब्रह्म-पुराण बढ़ाया गया; गया में अग्निपुराण में कितने ही अध्याय मिलाये गये; पुष्कर में पद्मपुराण में पुष्कर की कथा और कालिदास-कृत शकुन्तला और रघुवंश के उल्लेख को भी स्थान दिया गया। यह सब मिश्रण तो अवश्य होता रहा; परन्तु पुराणों की उस रचना-शैली में कोई परिवर्तन नहीं किया गया, जिसका समय सम्भवतः सन् ईसवी के सौ दो सौ वर्ष पहले का जान पड़ता है।

कर्म-काण्ड के सुभीते के लिए ही वेदों का क्रम विभाग हुआ और पुराण उनसे पृथक् किये गये। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि पुराणों के बनानेवाले व्यासजी ही थे। महाभारत में भी ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

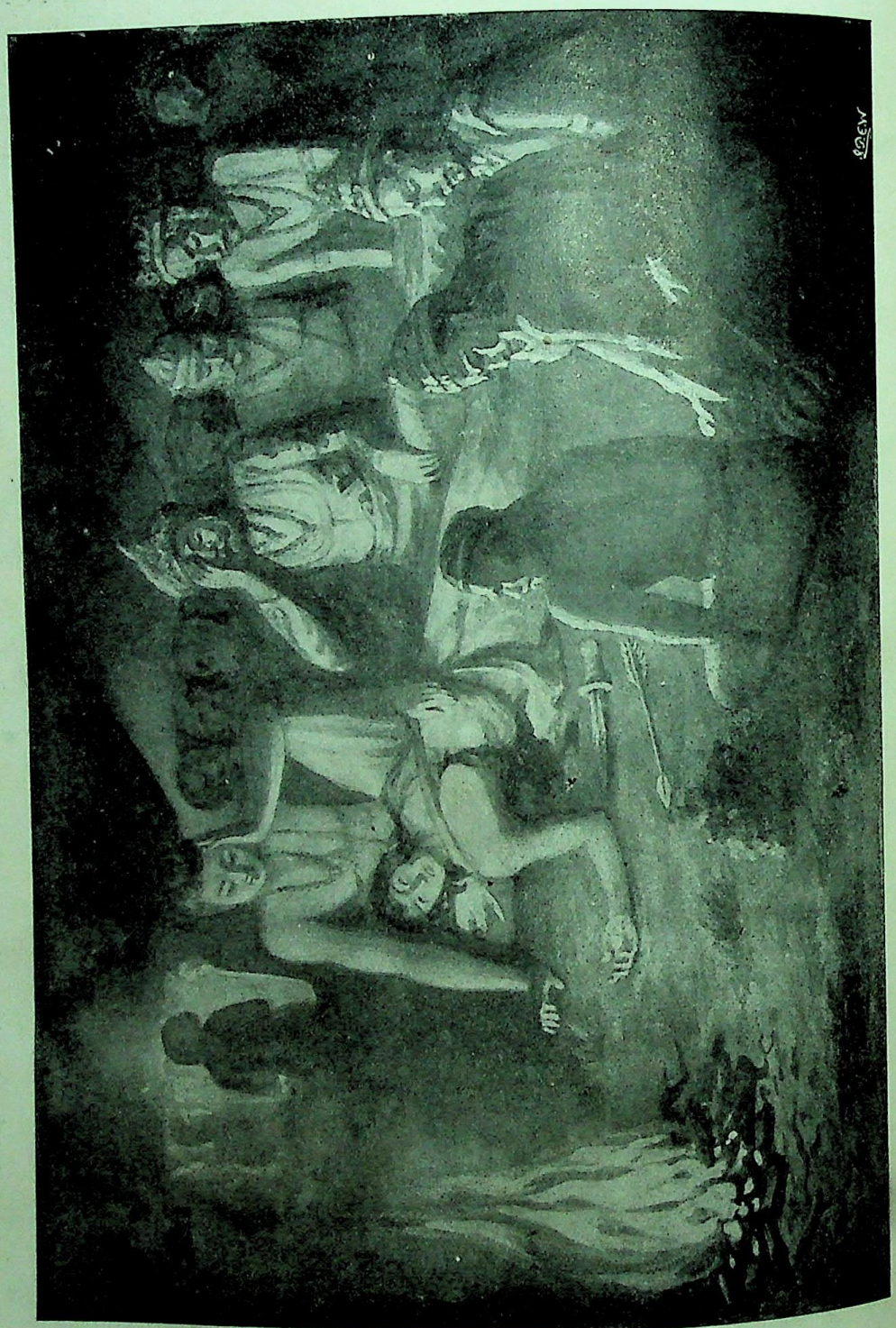

श्रीराघवविलाप ।

सरस्वती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं लिखा। महाभारत में केवल इतना ही लिखा है कि व्यासजी ने अपने कुछ शिष्यों को पुराण पढ़ाया और इन शिष्यों ने पुराणों की उन्नति की। अब यदि कुरु-पाण्डवों की कथा पृथक् कर दी जाय तो महाभारत ही से पता लगता है कि पुराणों की उत्पत्ति "लोमहर्षण" द्वारा हुई। रही भारती कथा, सो उसे व्यासजी के शिष्यों ने रचा।

"लोमहर्षण" शब्द की व्याख्या वायुपुराण में इस तरह की गई है :—

लोमानि हर्षयांश्चक्रे श्रोतृणां यत्सुभाषिते।
कर्म्मणा प्रथितस्तेन लोकेऽस्मिन् लोमहर्षणः॥

इससे मालूम होता है कि पुराण किसी एक व्यक्ति के बनाये हुए नहीं हैं। "लोमहर्षण" एक जाति थी जो लोगों को कौतूहल-वर्द्धक घटनायें सुनाया करती थी, जिनके श्रवण से शरीर के रोम खड़े हो जाते थे।

पुराण समय समय पर बनाये गये, यह बात पुराणों ही से सिद्ध होती है। जिस क्रम से पुराण बनाये गये हैं उस क्रम का प्रायः सभी पुराणों में वर्णन है। सबसे पहले ब्रह्म-पुराण बना। उसके पीछे (२) पद्म (३) विष्णु (४) वायु (५) भागवत (६) नारद (७) मार्कण्डेय (८) अग्नि (९) भविष्य (१०) ब्रह्म-वैवर्त (११) लिङ्ग (१२) बराह (१३) स्कन्द (१४) वामन (१५) कूर्म (१६) मत्स्य (१७) गरुड और सब के पीछे (१८) ब्रह्माण्ड पुराण। यह सूची सब पुराणों में पीछे से जोड़ दी गई जान पड़ती है।

जो लोग पुराण पढ़ते थे वे सूत कहलाते थे। आधुनिक स्मृतियों में सूतों और मागधों को बहुत नीचा स्थान दिया गया है। वायुपुराण में भी लिखा है कि सूत को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है। परन्तु महाभारत की भूमिका में जिन सूतजी का नाम है वे इतने मान्य थे कि ब्राह्मणों तक ने उनकी प्रतिष्ठा की। कितने ही पुराणों में वर्णन है कि नारद और मार्कण्डेय के सदृश मुनियों तक ने पुराणेतिहास सुना कर सूत का काम किया था। वैदिक समय में भी बड़े बड़े प्रतिष्ठित ब्राह्मण पुराण कहते और सुनते थे। पीछे से सूत लोग पुराण सुना कर रुपया कमाने लगे। मालूम होता है कि इसी कारण समाज ने उनको नीचे गिरा दिया। एक कारण और भी हो सकता है। जब मगध के राजाओं के हाथ में भारत का साम्राज्य आया तब ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य जातियों ने भी पुराणेतिहास सुनाने का काम अपने हाथ में ले लिया। इसी कारण सूतों की प्रतिष्ठा उतनी न रही जितनी पूर्ववर्ती सूतों की थी। इस समय तो ब्राह्मण ही पुराणपाठी हो रहे हैं।

श्रीराघव-विलाप।

("मेघनाद-वध" के आधार पर)

निशि-समय नित्य कुटीर-द्वारे धनुष को धारण किये—
जग कर तुम्हीं ने तो हमें वन में सभी सुख थे दिये॥
फिर आज हे लक्ष्मण धनुर्धर! भूल क्यों हम को रहे—
इस दुःखरूपी सिन्धु में हम जा रहे हैं जब बहे॥१॥

इस रिपु-नगर में पा रहे हैं आज हम दुस्सह व्यथा,
पर हाय! तुम यों सो रहे हो भूल हम को सर्वथा!
अब तुम बिना इस घोर दुख में कौन रक्षक है अहो,
है क्या यही तुम को उचित? हे वीर वर! कुछ तो कहो॥२॥

माना नहीं तुम ने कहा इस बन्धु के आदेश को?
फिर आज उठ कर क्यों नहीं हरते हमारे क्लेश को॥
दुर्भाग्य से यदि आज तुमने है हमें तजही दिया,
पर कौन सा अपराध हा! सीता अभागी ने किया? ॥३॥

सौमित्र देवर को सदा वह शत्रु-कारागार में —
है स्मरण करती मग्न हो कर दुःख—पारावार में।
बहु राक्षसी हैं त्रास देतीं हा! उसे वेष्टित किये,
ऐसे समय तुम को उसे क्या भूल जाना चाहिए? ४

माता-सदृश सम्मान जिस को है सदा तुम ने दिया,
तव कुल-वधू उस जानकी को बद्ध है जिस ने किया।
उस दस्यु पामर को समर में योग्य दण्ड बिना दिये,
क्यों सो रहे हो हाय! तुम निश्चिन्त यों होकर दिये? ॥५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे वीरबाहो ! तुम समर में अग्नि-सम दुर्वार हो,
यह नींद त्यागो, तुम हमारे प्राण के आधार हो।
बलहीन चक्र-विहीन रथ में है रथी होता यथा,
त्यों ही अबल हम हो रहे हैं तुम बिना अब सर्वथा ॥६॥
हा ! इस तुम्हारी नींद से गुण-हीन धनु के तुल्य ही
मारुत-तनय हनुमान की निर्बल अवस्था हो रही।
अङ्गद तथा सुग्रीव सन्मति क्लेश से हैं रो रहे ;
देखो, शुभैषी ये बिभीषण धैर्य्य को हैं खो रहे ॥ ७ ॥

ऋतुराज के प्रस्थान से होता विपिन ज्यों व्यस्त है,
त्यों ही सबल यह दल सभी हा ! तुम बिना अति त्रस्त है।
ऐसे समय की नींद है यह वांछनीय नहीं कभी ;
उठ कर नयन शीतल करो भाई ! त्वरा करके अभी ॥८॥
दुर्दान्त रण से क्लान्त अब तुम हो गये हो जो कहीं,
तो लौट फिर वन को चलो कुछ काम है रण का नहीं।
तव प्राप्ति का सीता अभागी ! अब नहीं कुछ काज है,
अति तुच्छ, लक्ष्मण के बिना, हम को जगत का राज है ॥९॥
"राघव ! तवानुज मम नयनमणि है कहां लक्ष्मण कहो ? "
सुन जननि से यह बात हम उन से कहेंगे क्या अहो !
हे वत्स ! उठ कर शीघ्र ही अन्तःकरण शीतल करो
हैं शत्रु गर्जन कर रहे जो गर्व सब उन का हरो ॥१०॥

तुम को न लेकर साथ हम साकेत में जब जायँगे
तब ऊर्म्मिलायुत पुरजनों को किस तरह समझायँगे ?
माँ तुम बिना अवलोक हम को हाय ! रोवेंगी यदा,
लक्ष्मण ! उन्हें हम किस तरह यह मुख दिखावेंगे तदा ॥११॥
तज राज्य-सुख जिस के लिए वनवास है तुम ने लिया
उस बन्धु के अनुरोध से अब क्यों विमुख मन कर लिया ?
हे वीरबाहो, भ्रातृवत्सल ! विदित हो तुम लोक में
क्या त्यक्त होना चाहिए तुम से हमें इस शोक में ! ॥१२॥
तुम देख कर हमको दुःखी आँसू बहाते थे सदा,
आपत्ति में तुम ही हमें धीरज बँधाते थे सदा।
हैं हो रहे हम आँसुओं से आज आर्द्र शरीर यों
तुम देखते तक हो नहीं हम को तदपि हे धीर ! क्यों ? १३
आजन्म हम ने धर्म्मयुत सप्रेम सुर-पूजन किया,
है क्या उन्हीं ने अब यही उस का हमें प्रतिफल दिया !
तुम ओस से हे निशि ! सरस करतीं तपाकुल फूल को,
यह कुसुम भी विकसित करो मेटो हमारे शूल को ॥१४॥
तुमको 'सुधानिधि' हे निशाकर ! मनुज कहते हैं सभी,
अतएव जीवनदायिनी तुम सुधा बरसा कर अभी।
सच्चरित लक्ष्मण को बचाओ सदय हो कर शीघ्र ही
जिससे बचे यह दीन राघव है विनय तुम से यही ॥१५॥

सियारामशरण गुप्त।

पिट्सबर्ग और उसके कल-कारख़ाने, विद्यालय आदि।

सरस्वती के पाठकों को आज मैं इस नगर का संक्षिप्त वृत्तान्त सुनाता हूँ। इसी को मैंने कुछ काल के लिए अपना निवास-स्थान बना लिया है। यह विषय बहुत बड़ा है ; परन्तु है बड़ा मनोरञ्जक और शिक्षा-प्रद। इस लिए विचार है कि इस लेख को कई भागों में बाँट कर मैं पाठकों को भेट करूँ। परन्तु प्रयत्न ऐसा होगा कि प्रत्येक भाग दूसरे से बिलकुल ही स्वतन्त्र रहे।

पिट्सबर्ग अमेरिका के पश्चिम-दक्षिण में पेन्सिलवेनिया नामक रियासत का प्रधान नगर है और दो नदियों के सङ्गम पर बसा हुआ है। यह नगर पहाड़ी है ; परन्तु तिजारत में अमेरिका की नाक है। धन भी व्यापार ही से प्राप्त होता है। इसी से इसके निवासी बड़े धनाढ्य हैं। आधुनिक व्यापार की उन्नति दो मुख्य वस्तुओं पर अधिक अवलम्बित है। एक तो कोयला, दूसरे लोहा। इँगलैण्ड की सारी राजनैतिक और व्यापारिक उन्नति इन्हीं दो चीज़ों की बदौलत है। इँगलैण्ड में कोयला और लोहा न होता तो इस समय वह शायद योरप के उत्तर-पश्चिम कोने में एक छोटा सा बल-हीन और व्यापार-हीन द्वीप होता—जो कहीं वह फ़्रान्स या जर्मनी का ग्रास न बन गया होता। इन दो धातुओं के बिना कैसे वह बड़े बड़े जहाज़ बनाता, कैसे वह उन्हें चला कर भारत तक पहुँचाता और कैसे वहाँ साम्राज्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

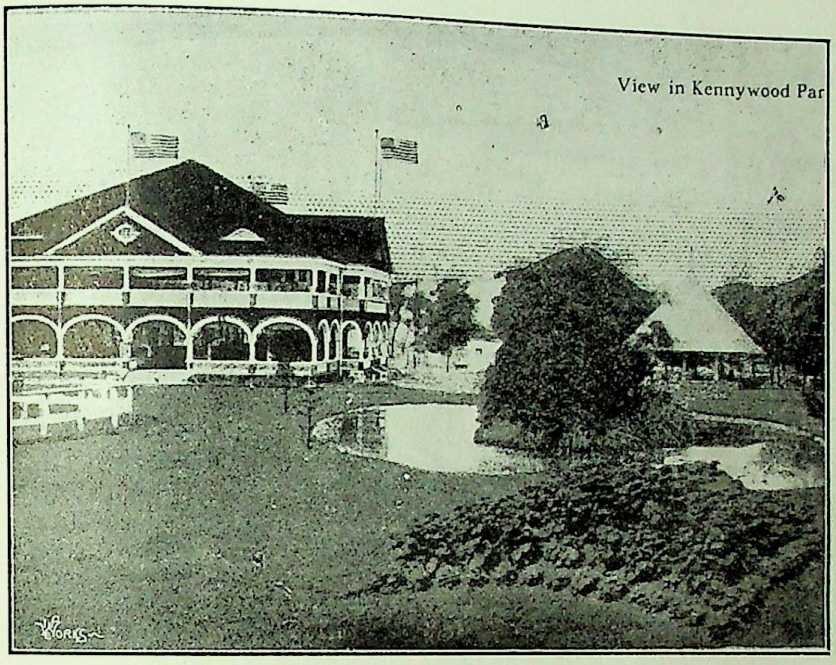

पिट्सबर्ग का केनीउड नामक उद्यान।

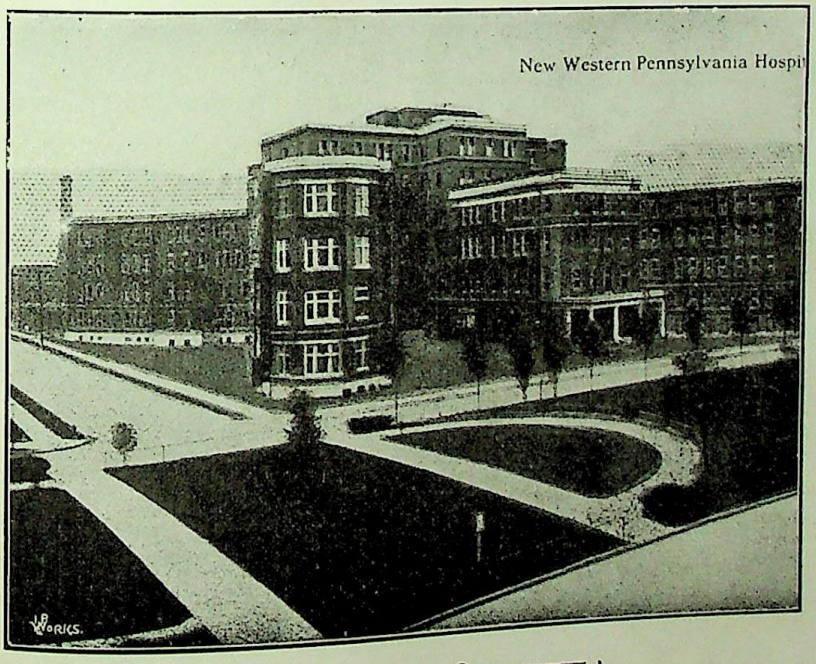

पिटसबर्ग का पेन्सिलवानिया अस्पताल।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

'Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

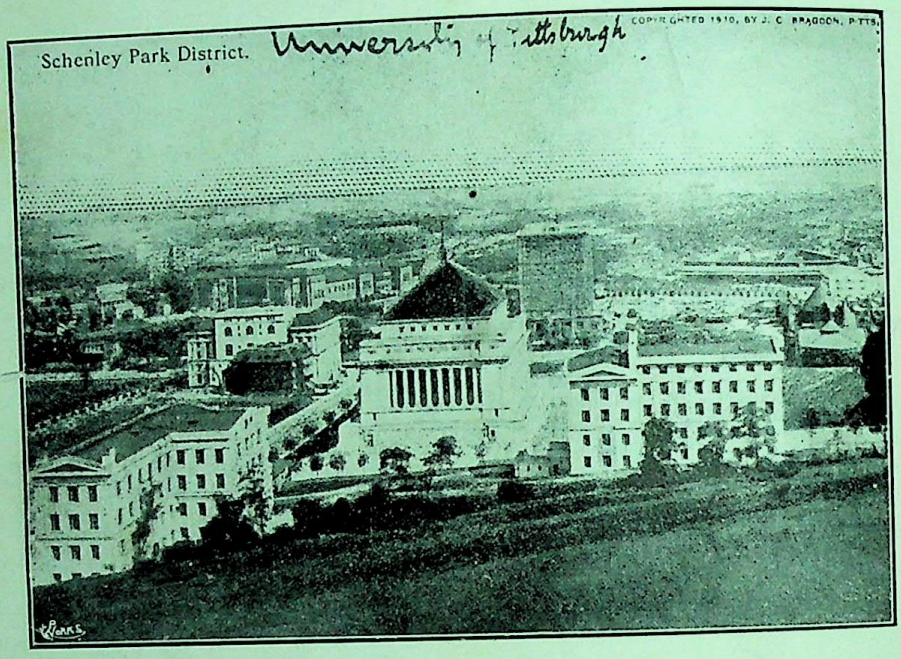

पिट्सबर्ग का विश्वविद्यालय ।

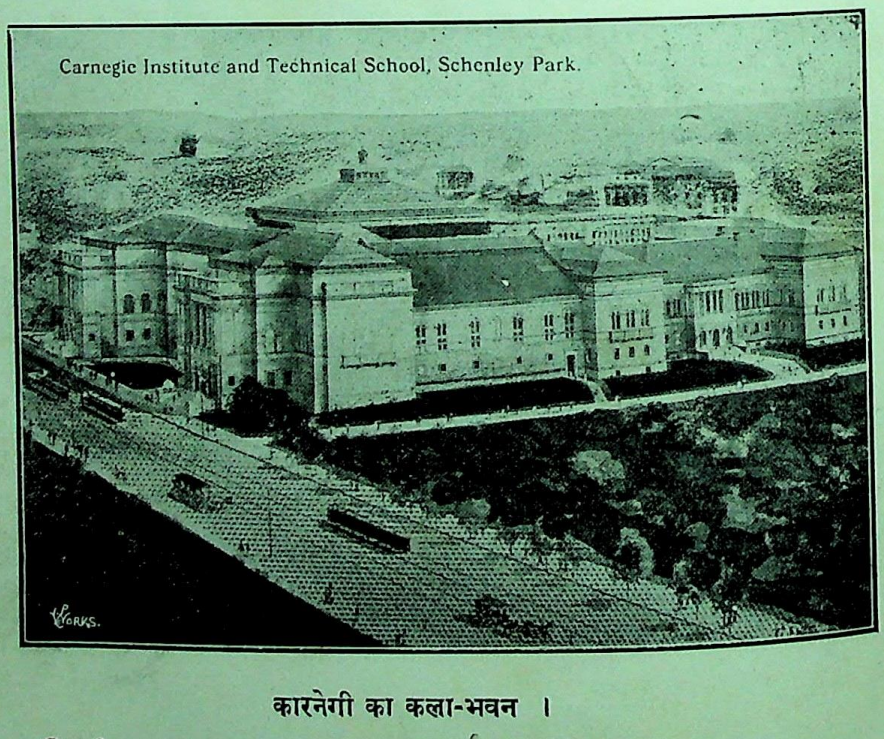

कारनेगी का कला-भवन ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क़ायम करता? लोहे और कोयले के महत्त्व का प्रमाण कोयले की खान वालों की अभी कल की जंगी हड़ताल से अच्छा मिलता है। उसने इँग-लैण्ड के तमाम व्यापार को बन्द कर दिया था। ऐसा मालूम होता था कि देश में प्रलय होना चाहता है।

पिट्सबर्ग की तमाम दौलत इसकी कोयले की खानों ही की बदौलत है। १९१० में इसकी खानों से क़रीब ४,२०,००,००० टन कोयला निकाल कर दूसरे नगरों और देशों के ख़र्च के लिए बाहर भेजा गया और १,५६,००,००० टन इसी पिट्सबर्ग के कारख़ानों में खपा। इसके अतिरिक्त लोहे की कई खानें भी इस नगर में हैं। इसी से अमेरिका में पिट्सबर्ग व्यापार में सबसे बढ़ा चढ़ा है। इसी नगर में लोहे का सबसे बड़ा वह कारख़ाना है जिसने कारनेगी को धन-कुवेर बना रक्खा है। इसके आस पास कोई तीन हज़ार कारख़ाने हैं। उनमें लोहे, टीन, काँच, मोटरकार, बिजली के औज़ार, रेल के पुर्ज़े, इञ्जिन और बायलर के कार-ख़ाने मुख्य हैं। इस नगर से, १९१० में, १६ करोड़ ८० लाख टन व्यापार की सामग्री तैयार होकर संसार के दूसरे भागों में बिकने के लिए गई थी।

इस नगर की आबादी तो कोई आठ ही लाख है; परन्तु इसके इर्द गिर्द चालीस मील तक मनुष्य बसते हैं। इतनी आबादी के आराम और शिक्षण का उत्तम प्रबन्ध है। शहर के भीतर २२ उद्यान, १३८८ एकड़ भूमि में, बने हुए हैं। १० नाटक-घर हैं। २३ खेल-कूद के स्थान हैं। दो विश्व-विद्यालय हैं। पिट्सबर्ग के विश्वविद्यालय में १९४८ विद्यार्थी और डुकेब-विश्वविद्यालय में ४५० विद्यार्थी हैं। कारनेगी का स्थापित किया हुआ विशाल कलाभवन यहीं है। उसमें २४५० विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं। सब मिला कर ५२ हाई स्कूल हैं। १२५ स्कूल प्रारम्भिक शिक्षा के लिए हैं, जिनमें २०६१ अध्यापक हैं और ७१,२२१ विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं।

कारनेगी का बनाया हुआ, दो करोड़ रुपये की लागत का, नुमायशगाह भी इसी नगर में है। उसमें अद्भुत अद्भुत पदार्थ एकत्र किये गये हैं। उसी में एक विशाल व्याख्यान-गृह भी है। एक विचित्र सङ्गीतालय भी उसी में है, जहाँ प्रत्येक शनिवार को सन्ध्या-समय और रविवार को मध्याह्न में नगर-निवासियों को, बिना किसी फ़ीस के, सङ्गीत सुनाया जाता है। इसी के साथ एक विशाल पुस्त-कालय भी है, जिसकी तीस शाखायें नगर के भिन्न भिन्न स्थानों में फैली हुई हैं। इसमें ३,५८,७३२ जिल्द किताबें हैं। हर साल इसके विशाल पाठालय में बैठ कर १३,९३,४४६ मनुष्य पढ़ते हैं। इसके अति-रिक्त नगर में कई व्याख्यान घर भी हैं। एक स्वतन्त्र नुमायशगाह भी है, जहाँ हर साल सितम्बर और अक्तूबर में प्रदर्शिनी हुआ करती है।

और भी सुनिए। इस नगर में ३९७ गिर्जाघर हैं, जो ५,१०,००,००० रुपये की लागत से बने हैं। २२ अस्पताल हैं, जिनमें मरीज़ों के लिए ३००० बिस्तर लगे हुए हैं। ६२ पागलख़ाने हैं और २६ अना-थालय।

सब कारख़ानों में काम करने वालों की संख्या ८५,००० है। प्रत्येक मज़दूर हर साल दो हज़ार रुपये के लगभग मज़दूरी पाता है। मज़दूरों की इस आमदनी में से ५,१०,०,००,००० रुपया नगर के बैंकों में जमा है। पिट्सबर्ग के मज़दूर संसार के और सभी मज़दूरों से अधिक धनी हैं।

दूसरे लेख में पाठकों को मैं बिजली के उस बड़े कारख़ाने में ले जाऊँगा जहाँ इस समय लेखक स्वयं काम सीख रहा है।

जगन्नाथ खन्ना
(पिट्सबर्ग-विश्वविद्यालय)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाश।

प्रकाश हमारे नेत्रों को पदार्थ का ज्ञान प्राप्त कराने का मुख्य कारण है। जब हम एक अँधेरे कमरे में प्रवेश करते हैं तब हमें वहाँ की कोई भी वस्तु दृष्टिगोचर नहीं होती। परन्तु जब उसमें सूर्य्य की किरणों का आगमन होता है अथवा एक दीपक प्रज्वलित कर दिया जाता है तब एक ऐसी शक्ति उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण सब चीज़ें दिखाई देने लगती है। इसी शक्ति को हम प्रकाश कहते हैं।

प्रकाश का प्रभाव सर्वदा सीधी किरणों द्वारा होता है। ये दो प्रकार से कार्य्य करती हैं। या तो ये किसी पदार्थ पर पड़ कर फिर पीछे लौट जाती हैं या कुछ झुक कर पदार्थ को पार कर जाती हैं। किरणों की इन अवस्थाओं को क्रमशः किरण-प्रतिक्षेप (Reflection) और किरण-वक्रता (Refraction) कहते हैं।

किरणों का प्रतिक्षेप यों तो थोड़ा बहुत सभी पदार्थों में होता रहता है; क्योंकि प्रत्येक पदार्थ हमको उसी समय दिखाई देता है जब उससे प्रतिक्षिप्त किरणें हमारे नेत्रों पर पड़ती हैं। परन्तु उसके विशेष रूप से जानने की यह रीति है कि हम एक दर्पण पर सूर्य्य की किरणों को डालें। ऐसा करने से किरणों के प्रतिक्षेप के कारण किसी निकटवर्ती वस्तु के ऊपर हमें प्रकाश का एक गोलाकार चिह्न दिखाई देने लगेगा। प्रतिक्षिप्त किरणों के प्रतिबिम्बित होने के कारण यह गोला दर्पण के हिलाने झुलाने पर चलता फिरता हुआ प्रतीत होगा।

किरण-वक्रता का ज्ञान इस प्रकार हो सकता है:—किसी ख़ाली बर्तन की तलहटी में एक पैसा रख दो, जैसा कि चित्र नं० १ में है, और अपनी दृष्टि पर इस प्रकार लगाओ कि पैसा न दिखाई पड़े। अब धीरे धीरे उस बर्तन में जल डालना आरम्भ करो। बर्तन में ज्यों ज्यों जल बढ़ेगा त्यों त्यों पैसा अपने स्थान (प) से उठता हुआ दिखाई देगा। दृष्टि में ऐसे परिवर्तन होने का कारण यह है कि पहले पैसे से प्रतिक्षिप्त हुई किरणें बर्तन के किनारे रुक जाने के कारण नेत्रों तक नहीं पहुँच सकती थीं। परन्तु उसमें जल भर जाने से किरणों को जल पार करने के लिए (स) स्थान पर झुकना पड़ा। इस कारण वे नेत्रों तक सुगमता से पहुँचने लगीं। पैसा उठा हुआ दिखाई पड़ने का यह कारण है कि हमारी दृष्टि सर्वदा सीधी गमन करती है; किसी भी अवस्था में वक्र नहीं होती। इस लिए पैसा हमको (प') स्थान पर दिखाई देगा जोकि ठीक नेत्रों के सामने है। परन्तु ज्यों ज्यों हम अपने नेत्रों को बर्तन के ऊपर लाते जायँगे त्यों त्यों किरणों की वक्रता कम होती जायगी और पैसा (प) स्थान से नीचे बैठता हुआ मालूम होगा। जब हमारे नेत्र ठीक पैसे के ऊपर आ जायँगे तब पैसे से प्रतिक्षिप्त किरणें बिलकुल सीधी नेत्रों पर पड़ने लगेंगी और पैसा ठीक उसी स्थान पर दिखाई देने लगेगा जहाँ वह वास्तव में है।

इसी तरह यदि हम जल के भीतर से किसी बाहर की वस्तु को देखें, जैसा कि चित्र नं० २ में है, तो उस वस्तु (म) से भी जो किरणें प्रतिक्षिप्त होंगी उनको नेत्रों तक पहुँचने में झुकना पड़ेगा। इस कारण वह वस्तु (न) स्थान पर दिखाई देगी। परन्तु ज्यों ज्यों वह वस्तु हमारे नेत्रों के ऊपर आती जायगी त्यों त्यों वह, उससे प्रतिक्षिप्त किरणों की वक्रता कम हो जाने से, कम उठी हुई दिखाई देगी अर्थात् (प) और (प') के बीच का फ़ासला कम होता जायगा। जब वह वस्तु ठीक नेत्रों के ऊपर आजायगी तब उसका वास्तविक स्वरूप दिखाई देने लगेगा।

जब किरणें किसी पदार्थ को पार करती हैं तब पूर्वोक्त प्रकार से कुछ किरणें तो उसको पार कर जाती हैं और कुछ पार न हो सकने के कारण पीछे लौट जाती हैं। इस तरह किरणों के पीछे लौट जाने को "पूर्ण किरणप्रतिक्षेप" (Total Reflection) कहते हैं। जब हम जल में रक्खी हुई किसी वस्तु को इस तरह देखते हैं जैसा कि चित्र नं० ३ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

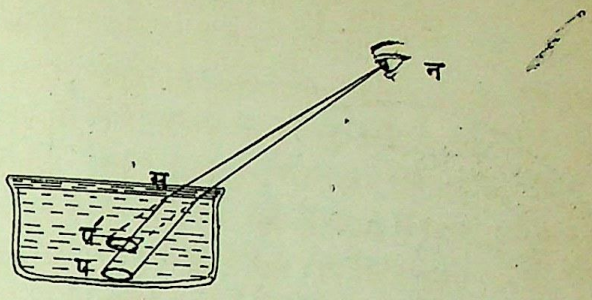

नं० १

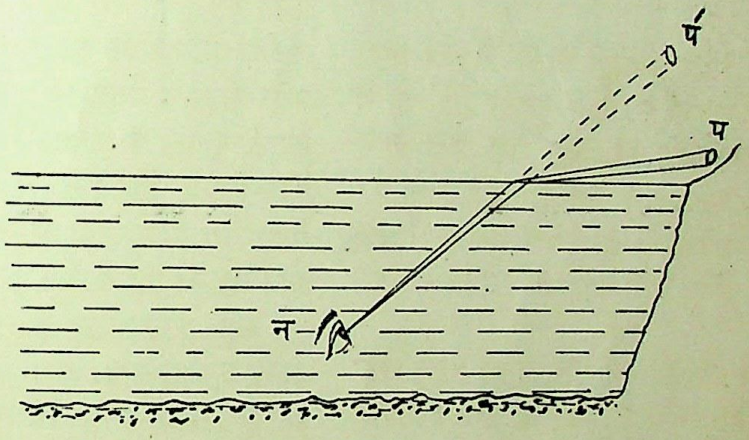

नं० २

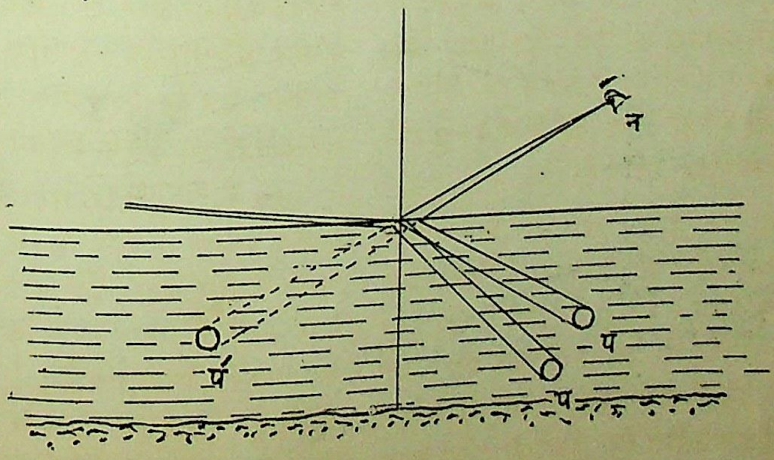

नं० ३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

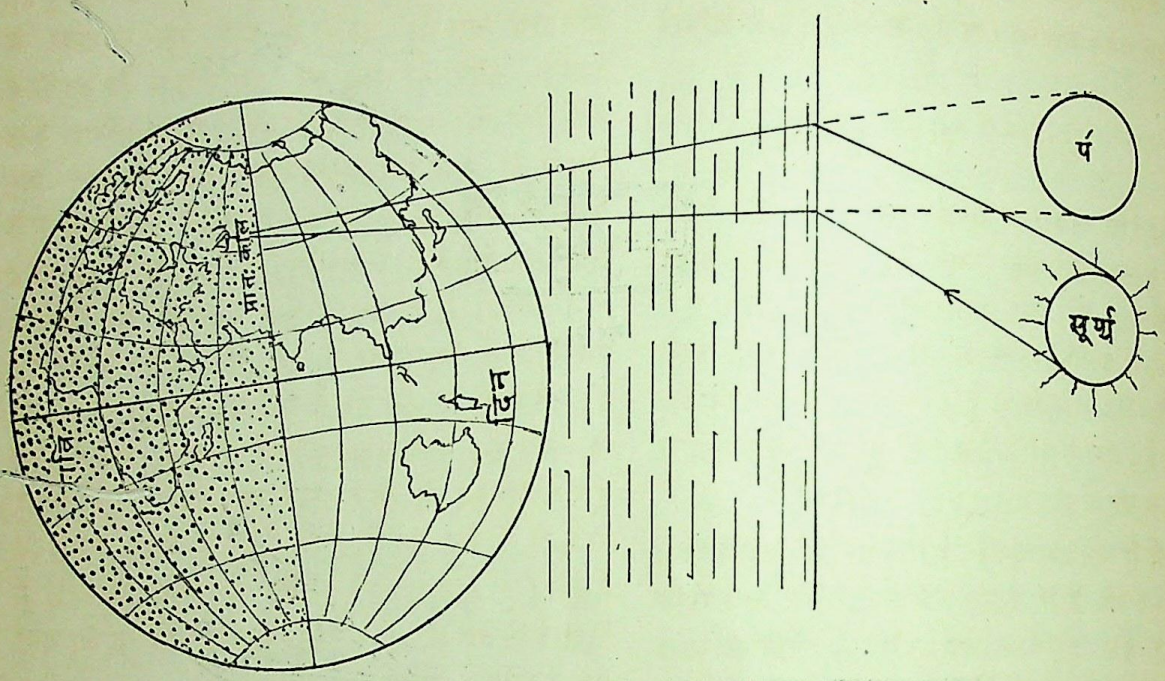

नं० ४

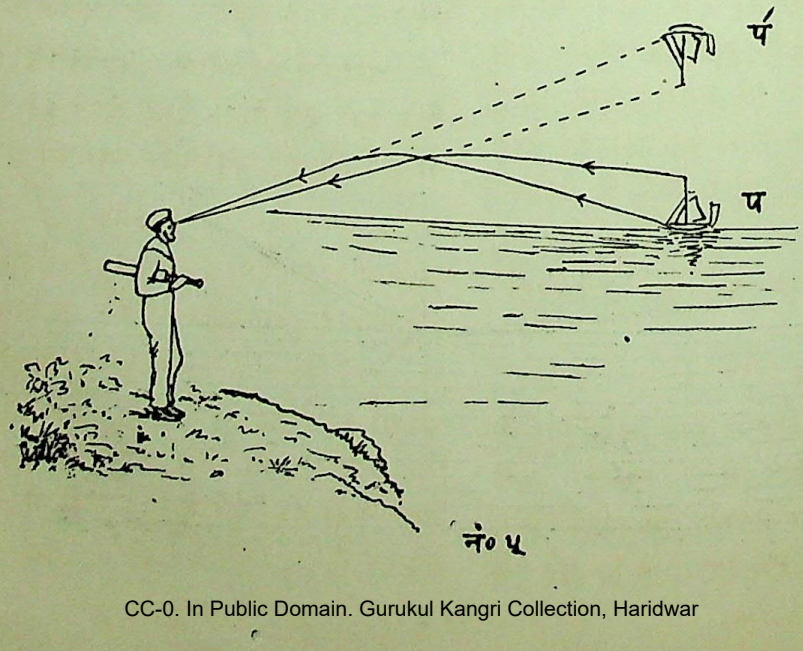

नं० ५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाया गया है तब यह दृश्य दिखाई देता है। उस समय वह वस्तु बजाय (प) के (प') पर दिखाई देती है।

भ्रमरूपी सूर्य्य।

उदय होते समय सूर्य्य का रूप रक्त-वर्ण होता है। परन्तु ज्यों ज्यों यह रक्त-पिण्ड आकाश में ऊपर उठता जाता है त्यों त्यों प्रकाशवान् होता जाता है। कुछ काल में उसका प्रकाश नेत्रों को असह्य होने लगता है। यह भ्रम मात्र है। सूर्य्य एक ही अवस्था में रहता है; उसमें परिवर्तन नहीं होता। इस भ्रान्ति का कारण यह है:—

काल पृथ्वी से लगभग १०० मील की ऊँचाई तकही शोधि है। उसके ऊपर शून्य आकाश है। जब सूर्य्य किरणें इस शून्य नभोमण्डल में होकर वायु अधिर पार करती हैं तब उनको हमारे नेत्रों तक पहुँचने मुदित के लिए रुकना पड़ता है। चित्र नं० ४ देखिए। झुकने उनका तेज बहुत कम हो जाता है। इसी से सूर्य वर्त एक मिथ्या रक्ताभ मूर्ति के दर्शन (प') स्थान पर है ने लगते हैं, जैसा कि चित्र नं० ४ में दिखाया गया सूर्य है। ज्यों ज्यों सूर्य्य ऊपर आकाश में चढ़ता है त्यों त्यों उसकी किरणों की वक्रता कम हो जाने से तेज बढ़ता जाता है और वह भ्रमरूपी मूर्ति प्रकाशित होती जाती है। ऐसे भ्रमरूपी सूर्य्य के दर्शन हमको उस समय तक होते रहते हैं जब तक सूर्य्य ठीक हमारे नेत्रों के सामने नहीं आ जाता। इस तरह प्रति दिन सूर्य्योदय से अस्त तक, दो पहर को छोड़ कर, अन्य भ्रमरूपी सूर्य्य ही हमारे नेत्रों के सामने रहता है।

पृथ्वी के ऊपर की वस्तुओं का आकाश में दिखाई देना।

ये दृश्य विशेष कर ईजिप्ट और अफ़रीक़ा के मरुस्थलों में दृष्टिगोचर होते हैं। सबसे पहले इनके दिखाई देने का कारण मिस्टर मौंग (Monge) ने जाना था। इन दृश्यों के दिखाई देने का यह कारण है कि जब सूर्य्य के तेज से पृथ्वी अतिशय तप्त हो जाती है और इस उष्णता के कारण ऊपर की वायु का घनत्व कम हो जाता है तब भूमि के ऊपर की वस्तुओं से प्रतिक्षिप्त कुछ किरणें तो इस कम घनत्ववाली वायु को पार कर जाती हैं और कुछ पार न कर सकने के कारण पीछे लौट जाती हैं। अर्थात् उनका पूर्ण प्रतिक्षेप होने लगता है। जब ये पूर्ण प्रतिक्षिप्त हुई किरणें हमारे नेत्रों पर पड़ती हैं तब (प') पर की वस्तु हम को आकाश में (प) पर दिखाई देने लगती हैं, जैसा कि चित्र नं० ५ में दिया हुआ है। अभी थोड़े ही दिन हुए अमेरिका के एक समाचारपत्र में यह ख़बर निकली थी कि बफेलो (Buffalo) नगर का दृश्य टारेन्टो (Toronto) नगर के ऊपर आकाश में दिखाई दिया था। इसका कारण यही था जो यहाँ पर बतलाया गया।

कृष्णचन्द्र गुप्त।

मथुरा-पञ्चदशी।

(१)

जयति सा परमाद्भुतराधिका-रमणवृत्तपवित्रतरी कृता।
कुसुमितद्रुमराजिविराजिता व्रततिकाततिकापरिवेष्टिता॥

श्रीकृष्ण के अनोखे पवित्र चरित्रों से परम पुनीत और फूले हुए वृक्षों और फैली हुई बेलों से चारों तरफ़ घिरी हुई मथुरापुरी ख़ूब ही शोभित है।

(२)

सरसरासविहाररतस्वभू —चरणपङ्कजलाञ्छितभूतला।
वनगुहान्तरवासकसज्जिका—नवरता वरतामरसोदका॥

जहाँ रसमय रास-विहार करने से भूमि पर चरणों का चिह्न हो गया है, वनों की कन्दराओं में विहार-स्थान नये नये अनुरागों के बढ़ाने वाले हैं और पास ही खिले हुए कमलों से जलाशय ख़ूब मनोहर हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३)

अभिनवस्फु शाखिशिखास्खल—त्कुसुमसौरभसंकुलसंचरा ।
नददुदारखगावलिरुच्चकै—रुपवना पवनाधुतपल्लवा ॥

जहाँ नये नये सुन्दर वृक्षों से गिरे हुए फूलों के ढेर के कारण गलियों में चलना कठिन है और वायु से हिलाये गये वृक्ष-पल्लवों पर मनोहर पक्षियों के मीठे आलापों से उपवन बड़ाही सुहावना मालूम होता है।

(४)

रुचिरकुञ्जगृहान्तरसंचर—द्भुजगभोजिविकासिततण्डवा ।
विपुलसूरसुतापुलिनान्तरे सुनयना नयनादरजृम्भिता ॥

कहीं रमणीय कुञ्जगृहों के भीतर मोर आनन्द से नाच रहे हैं, कहीं यमुनाजी के तट मान-पूर्वक बुलाई हुई व्रज-सुन्दरियों से जगमगा रहे हैं।

(५)

विकिरकेलिविमर्दसमुच्चर—त्कुसुमसौरभसान्द्रदिगन्तरा ।
किमपि चेतसि नर्म वितन्वती, मुरजितो रजितोद्धतसंपदः ॥

कहीं कूलों के गुच्छों पर खेलनेवाले पक्षियों की रगड़ से फैली हुई पुष्प-सुगन्धियों से दिशायें गूँज रही हैं। जगह जगह पर भगवान की अपार विभूतियों का विकाश देख कर चित्त में बड़ा ही आनन्द होता है।

(६)

स्फुरितनैकविधच्छवितूलिका—लिखितवर्णगणैर्हरिनामभिः ।
विविधचित्रचणासु कनत्प्रजा—सुखचिता खचितालयभित्तिषु ॥

जहाँ मनुष्यों को सब तरह का सुख प्राप्त है। नाना भाँति की सुन्दर सलाइयों से लिखे हुए भगवान के चित्र-विचित्र नाम मकानों की दीवारों पर बहुत ही मनोहर मालूम होते हैं।

(७)

निबिड़भावसमेधितसुन्दर—स्वरजुषां रजसां तमसामपि ।
क्षतिकृतां महतां हरिकीर्त्तन—ध्वनिरमा निरमानितकल्मषा ॥

महापुरुषों द्वारा बड़ी भक्ति से सुन्दर स्वरों में की गई हरि-कीर्तन-ध्वनि की महिमा रजोगुण और तमोगुण का नाश कर के सुख देती है ॥ ७ ॥

(८)

विबुधसद्मसुपल्लवितोल्लस-ल्ललितभागवतामृतपायिभिः ।
विविधभक्तजनैश्च समन्ततोवलयिता लयितालसमन्विता ॥

जहाँ सत्संगियों के स्थान सुन्दर पल्लवों के बंदनवार से भूषित और कथामृत पीनेवाले भक्तजनों से शोभित हैं और बाजों में ताल का लय बड़ा आनन्ददायक है।

(९)

महितरामचरित्रपवित्रिता ललितसारवनीरतरङ्गिता ।
दशरथस्य पुरीव हरीक्षिता सुभरता भरताश्रयसंस्कृता ॥

जो पूज्य बलराम के चरितों से पुनीत, सुन्द वन-विहारों से पूर्ण भगवान् की दया-दृष्टि देखी गई, और नाना विध नृत्यशालाओं से भरी दशरथ की पुरी—अयोध्या—की तरह शोभित अयोध्यापक्ष में—भगवान् रामचन्द्र के चरितों पवित्र, सुन्दर सरयू-जल से पूर्ण, वानरों से पूरी, भरतजी के निवास से शोभित है।

(१०)

सततसंगतसाधुमहोदया—धिमणिकर्णिकविष्णुपदाञ्चिता ।
स्मरजितो नगरीव शिवोज्ज्वला सुरुचिरा रुचिराजितनागरा

जहाँ अच्छे उत्सव के कार्य होरहे हैं और भाग्य शाली पुरुष निवास करते हैं तथा भाँति भाँति के रत्न के आभूषण और भगवान् के मन्दिर दिखाई दे रहे हैं। काशी-पक्ष में—जो पुराणों में प्रसिद्ध महोदय-योग से, मणिकर्णिका के समीप विष्णुपद से, (एक श्मशान), रुद्रगणों से और बहुत भाँति की शोभाओं से युक्त है।

(११)

गहनसालसमाकलितावने प्रतिदिनं विकसन्मधुसूदना ।
यदुपुरीव च सागरसंश्रिता मधुरसाधुरसा स्फुरदुद्धवा ॥

जहाँ घने वृक्षों में भ्रमर घूम रहे हैं; भगवान् के गोवर्धन पर्वत उठाने का आनन्द छा रहा है; साधु-महात्मा लोग पुलकित हैं; और उत्सवों की धूम हो रही है।

द्वारका-पक्ष में—जिसकी सीमा का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता; जहाँ भगवान् स्वयं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजापालन में तत्पर हैं, और जहाँ उद्धव विराजमान हैं। समुद्र के तट पर वह नगरी शोभित होरही है।

(१२)

प्रथितविक्रमरम्यरसाश्रिता सरितमादधती खलु भास्वतीम्।
स्फुरितधाममहेशमवन्तिका कविकलाविकलाकलनालया॥

जहाँ श्रीकृष्ण के दैत्यवध के स्मारक चिह्न वर्तमान हैं और पक्षियों के इधर उधर संचार और निवास से जहाँ आनन्द छाया हुआ है। यमुना जहाँ बह रही हैं। जो महेश को हर्षदायक है और जो कवियों की सुन्दर कविताओं का स्थान है।

उज्जयिनी-पक्ष में—विक्रमादित्य, शिप्रानदी, महाकाल शिव, और कवियों से अवन्ती—उज्जयिनी—शोभित है।

(१३)

अधिगताधिकदक्षिणमण्डलं सदनुकम्पकृतस्थितिशालिनी।
मुदितमुक्तिसतीवरकाञ्चिका सुरचिता रचिताघविनाशना॥

जिस मथुरानगरी में उदार पुरुषों का मण्डल वर्तमान है, जो दयाशील महानुभावों से शोभित है, सती मुक्ति का जो उत्तम भूषण है; जहाँ पापक्षय होगया है।

काञ्ची-पक्ष में—काञ्ची सब पुरियों से दक्षिण है, क्योंकि वहाँ अक्षांश ९°।५६, द्वारका में २२°।१५', उज्जयिनी में २३°।९', काशी में २५°।२०'' अयोध्या में २६°।४८', मथुरा में २७°।२९, हरद्वार में २९°।५५', है। वह कम्पा नदी के समीप शोभायमान है। वहाँ मुक्ति प्रसन्न होरही है और देवतागण निवास कर रहे हैं।

(१४)

स्फुरदुदग्रसुपर्वतरङ्गिणी विबुधदत्तनिरूपितसत्क्रिया।
लसवती महतां बहुमायका, गमहिता महिताश्रुतशासनैः॥

जो गोवर्धन पर्वत से शोभा को प्राप्त है। जहाँ विद्वान् लोग नानाविध श्रौत-स्मार्त कर्म कर रहे हैं। सम्पत्तियों से जो भरी पूरी है। जिसकी महिमा शास्त्रों में गाई गई है।

मायापक्ष में—सुपर्वतरङ्गिणी—गङ्गा। दक्ष प्रजापति। महापुरुषों का निवास। नानावृक्ष-लताओं से सुशोभित।

(१५)

अमरराजपुरीव सुवज्रिका, भुजगराजपुरीव सुभोगिका।
मधुपुरी प्रतिसद्मसमुल्लसन्नवसुधा वसुधातलभूषणा॥

जो मथुरापुरी, इन्द्रनगरी के समान हीरक आदि रत्नों से सम्पत्ति वाली है। विलासी लोगों की जो विलासभूमि है। जहाँ के स्थान चूना, अस्तरकारी आदि से खूब मनोहर हैं।

अथवा, वज्री—इन्द्र, भोगी—सर्प जहाँ निवास करते हैं।

श्रीदुर्गाप्रसाद द्विवेदी।

एक वैज्ञानिक का स्वप्न।

['प्रवासी' में प्रकाशित श्रीजगदानन्द राय के लेख का आशय]

हम लोगों के शास्त्रों में जिन "क्षित्यप्तेजोमरुद्व्योम" नामक पञ्चभूतों का उल्लेख है, अष्टादश शताब्दी के पहले पाश्चात्य पण्डित उनमें से केवल चार अर्थात् मृत्तिका, जल, अग्नि और वायु को ही मूल पदार्थ मानते थे। उनका विश्वास था कि भूमि के प्राणधारी उद्भिज्ज, नदी-समुद्र, शिलाकङ्कर आदि सभी पदार्थ उन्हीं चार मूल पदार्थों से बने हुए हैं। अठारहवीं शताब्दी के पण्डित जिस समय चिरकाल से प्रचलित असम्बद्ध भावों, चिन्ताओं और अद्भुत कहानियों के कूड़ा-करकट के बीच से रासायनिक तत्त्वों को खोज खोज उन्हें मूर्तिमान करने की चेष्टा कर रहे थे उस समय वे इसी चातुर्भौतिक सिद्धान्त पर विश्वास करते थे।

उन्नीसवीं शताब्दी को हम सब प्रकार की उन्नति का युग कह सकते हैं। वसन्त की दक्षिण-वायु का स्पर्श जिस प्रकार सारी प्रकृति को सजीव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर देता है, उन्नीसवीं शताब्दी के ऊषालोक के स्पर्श ने उसी प्रकार सारे सभ्य देश को जाग्रत कर दिया। वैज्ञानिक, दार्शनिक, समाजतत्त्वज्ञ आदि सभी लोग दीर्घकाल की जड़ता परित्याग करके सत्य के यथार्थ ज्ञान के लिए लालायित हो पड़े। रसायनशास्त्रियों ने भी प्राचीन पुस्तकों के पन्ने उलट उलट कर इस बात का अनुसन्धान आरम्भ कर दिया कि मृत्तिका, जल, वायु और अग्नि किस कारण से मूल पदार्थ माने जा रहे थे। परीक्षा-गृहों में भी देशविदेश के महा-पण्डितों ने परीक्षायें आरम्भ कर दीं। थोड़े ही दिनों में यह निश्चित हो गया कि जल, वायु, अग्नि और मृत्तिका में से एक भी मूल पदार्थ नहीं। आक्सिजन, हाइड्रोजन आदि कई एक वायवीय पदार्थ तथा गन्धक, ताम्र, लोह, स्वर्ण, रौप्य और पारद आदि तरल और कठिन पदार्थ ही सृष्टि के मूल उपादान हैं। इसके उपरान्त अणु-परमाणु के अस्तित्व आदि की जाँच और प्रयोग द्वारा किस प्रकार आधुनिक रसायनशास्त्र की प्रतिष्ठा हुई, उसका विशेष विवरण देना निष्प्रयोजनीय है। अधिक दिन नहीं हुए, दसही बारह वर्ष पूर्व, वैज्ञानिक लोग उसी अणु-परमाणु का स्वप्न देखते थे और उसी का अवलम्बन करके सृष्टि के मूल रहस्य का आविष्कार करने की चेष्टा में थे। उस समय एक बड़ी भारी समस्या ने उपस्थित होकर वैज्ञानिकों के उस सुख-स्वप्न में विघ्न डाल दिया।

पदार्थ मात्र को हम साधारणतः कठिन, तरल और वायवीय—इन्हीं तीन अवस्थाओं में देखते हैं। तीस वर्ष पहले अँगरेज़ वैज्ञानिक क्रुक्स (Crooks) ने पदार्थ की एक चौथी अवस्था की चर्चा चलाई। वायुशून्य शीशे की नली के दोनों सिरों पर "बैटरी" का तार लगा कर उसके भीतर विद्युत् प्रवाहित करने से शून्य नल के भीतर बिजली की धारा बहने लगती है। इस प्रकार की परीक्षा में क्रुक्स साहब ने एक अति सूक्ष्म जड़-कणिका को विद्युत् वहन करते देखा। इन कणिकाओं में कठिन, तरल अथवा वायवीय किसी पदार्थ के कोई लक्षण न देख पड़े। इसी से आविष्कर्त्ता ने पदार्थ की एक चौथी अवस्था का होना भी निश्चय किया। आधुनिक वैज्ञानिकों के अन्यतम नेता सर विलियम लाज (Lodge) ने भी इन कणिकाओं की परीक्षा आरम्भ की। उन्होंने यह सिद्धान्त स्थिर किया कि ये कणिकायें आकार और गुरुत्व में लघुतम परमाणु की अपेक्षा भी सैकड़ों गुना छोटी हैं। लाज साहब ने सोचा कि हो न हो यही सृष्टि के सारे पदार्थों का मूल उपादान है। किन्तु उस समय इस विषय में कुछ विशेष आलोचना न हुई। इसी कारण क्रुक्स साहब की वह चतुर्थ अवस्था वाली बात जहाँ की तहाँ ही रह गई।

प्रायः बीस वर्ष हुए, सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक स्टोनी (Johnstone Stoney) साहब ने देखा कि कुछ से यौगिक पदार्थों में "बैटरी" के दोनों तार डुबो कर रखने से पदार्थ विश्लिष्ट हो जाता है, और विश्लिष्ट अंश (Ions) तारों के पास निर्दिष्ट परिमाण में विद्युत् वहन कर वहीं इकट्ठा भी हो जाता है। उन्होंने नाप जोख कर इस विद्युत् के परिमाण को इलेक्ट्रन (Electron) नाम दिया। इसके बाद क्रुक्स साहब की उस परमाणु की अपेक्षा भी सूक्ष्म विद्युत्पूर्ण कणिकाओं के ऊपर वैज्ञानिकों की दृष्टि पड़ी। अनुसन्धान करने पर यह बात देखी गई कि इन कणिकाओं का भी विद्युत्-परिमाण स्टोनी साहब के इलेक्ट्रन के सर्वथा सदृश है। अतएव सब लोग क्रुक्स साहब की उन सूक्ष्म कणिकाओं को इलेक्ट्रन नाम से पुकारने लगे। तब चिन्ताशील वैज्ञानिक जड़कणिका और इलेक्ट्रन की एकता देख कर यह कहने लगे कि आज तक स्वर्ण, रौप्य, हाइडोजन, नाइट्रोजन आदि को जो मूल पदार्थ समझते थे वह भूल थी। इलेक्ट्रन के आविष्कार ने प्रचलित रासायनिक सिद्धान्तों को खूब ही विचलित कर दिया।

ये नई नई बातें होने पर वैज्ञानिक लोग निश्चिन्त कैसे रह सकते थे। नाना प्रकार की नूतन गवेषणाओं के लिए हज़ारों द्वार खुल पड़े।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ्रांस और जर्मनी आदि सभी देशों के बड़े बड़े वैज्ञानिकों के मन में यह बात आने लगी कि सत्तर या अस्सी मूल पदार्थ नहीं हैं; जान पड़ता है कि एक ही मूल पदार्थ से सारे विश्व की रचना हुई है और यह एक पदार्थ यही इलेक्ट्रन है।

क्रुक्स साहब भी निश्चेष्ट नहीं बैठ रहे। सब मूल पदार्थों की जड़ में केवल एक ही मूल पदार्थ के अस्तित्व की बात इनके भी मन में उदित हुई। इस काल्पनिक वस्तु को "प्रोटाइल" (Protyle) नाम देकर, अपने निर्जन परीक्षागार में वे विश्व-रचना का स्वप्न देखने लगे। उनके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि उनकी आविष्कृत वे अति सूक्ष्म कणिकायें ही किसी अज्ञात शक्ति द्वारा एकत्र होकर हाइड्रोजन के परमाणुओं की रचना करती हैं। कई एक और नूतन कणिकायें, अल्पाधिक परिमाण में उनके साथ मिल कर गन्धक, आर्सनिक, लोह, ताम्र आदि की सृष्टि करती हैं; तथा सम्मिलित कणिकाओं की समष्टि अत्यन्त अधिक हो जाने पर यूरेनियम सदृश गुरुत्वपूर्ण धातुओं की सृष्टि होती है। अन्त को उन्हें विदित हुआ कि वह विद्युद्वाहक कणिका केवल लघुगुरु पदार्थ का जन्म देकर ही क्षान्त नहीं होती, किन्तु गुरुत्व-पूर्ण धातुओं से बाहर निकल कर वह अन्य लघुतर पदार्थों में परिणत हो जाती है।

पच्चीस वर्ष पूर्व अध्यापक क्रुक्स की पूर्वोक्त चिन्ता सचमुच ही स्वप्न के सदृश थी। अब बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में वही सत्य में परिणत हो चली है। इलेक्ट्रन क्या चीज़ है, यह बात आज भी अच्छी तरह ज्ञात नहीं। कोई तो उसे विद्युत्पूर्ण जड़ कण के नाम से अभिहित करना चाहते हैं, कोई उसे विशुद्ध विद्युत् अथवा मूर्तिमती शक्ति ही कहना चाहते हैं। किन्तु यह पदार्थ ही सृष्टि का मूल उपादान है, इस विषय में प्रायः किसी को भी सन्देह नहीं है। इलेक्ट्रन का संगठन-तत्त्व यद्यपि अभी तक अज्ञात है, तथापि उसके आकार-प्रकार के सम्बन्ध में अनेक नूतन तत्त्व जाने जा चुके हैं। ये इलेक्ट्रन इतने छोटे होते हैं कि जब तक एक हज़ार एकत्र होकर मिल नहीं जाते तब तक उनका आकार और गुरुत्व हाइड्रोजन के परमाणु के समान नहीं होता। जिस समय वे विश्लिष्ट होकर चल निकलते हैं उस समय उनके वेग का परिमाण आलोक के वेग के प्रायः दो तिहाई तक पहुँच जाता है।

रसायनशास्त्री जिस समय इस पदार्थ का पता पाकर उसके रहस्य की बातें जानने के लिए अँधेरे में टटोल रहे थे उस समय "रेडियम" नामक एक अद्भुत धातु के आविष्कार ने गवेषणा का एक नवीन पथ उन्मुक्त कर दिया। इस नई धातु का आणविक गुरुत्व (Atomic Weight) जान लिया गया है। किन किन रंगों की किरणें उससे निकल कर यन्त्र विशेष में दिखाई देती हैं, यह भी विदित हो गया है। किन किन पदार्थों के मेल से उसके कितने यौगिक मिश्रण उत्पन्न होते हैं, इसका भी पता लग गया है। किन्तु एक रत्ती रेडियम से जो अविराम तापरश्मि और इलेक्ट्रन निर्गत होते रहते हैं, उनका यथार्थ ज्ञान अभी तक किसी को नहीं हो सका। इस मूल पदार्थ में परिवर्तन नहीं होता। आलोक और विद्युत् की उत्पत्ति के विषय में जो सिद्धान्त इस समय प्रचलित हैं उनको भी यह पदार्थ भ्रामक सिद्ध करने का लक्षण दिखा रहा है।

इसी विद्युन्मय इलेक्ट्रन और रेडियम के सम्बन्ध में आज तक भिन्न भिन्न देशों में अनन्त गवेषणायें हुई हैं। इनका फल यह हुआ है कि प्रचलित रासायनिक सिद्धान्तों में वैज्ञानिकों के अविश्वास की मात्रा बढ़ती ही जा रही है। रेडियम एक प्रकार का धातव मूल पदार्थ है। अतएव प्रचलित सिद्धान्तानुसार इसका रूपान्तर न होना चाहिए। किन्तु जब हम देखते हैं कि इससे निकले हुए इलेक्ट्रन जिस समय एकत्र किये जाते हैं उस समय हेलियम (Helium) नामक एक और धातु की उत्पत्ति होती है तब रेडियम को परिवर्तनशील मूल पदार्थ स्वीकार करना ही पड़ता है। यदि केवल रेडियम में ही यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरोधी धर्म देखा जाता तब तो विशेष विवाद की बात न थी। परन्तु वैज्ञानिकों ने कई मूल पदार्थों में एक ऐसे पदार्थ का पता लगाया है जो मूल पदार्थ से निकल कर दूसरे पदार्थ में परिवर्त्तित हो जाता है। इसीसे इस बात को इतना महत्त्व प्राप्त हुआ है।

क्रुक्स साहब अपने स्वप्न की केवल आंशिक सफलता को ही देख कर चुप नहीं हो बैठे। पूर्वोक्त यूरेनियम नामक धातु की आपने जो परीक्षा की तो मालूम हुआ कि यह पदार्थ जिस जगह होता है उसके चारों तरफ़ रेडियम भी पाया जाता है। पहले उन्होंने इस केवल एक आकस्मिक व्यापार समझ लिया था; किन्तु आज कल देखा जाता है कि जहाँ यूरेनियम रहता है उसके चारोँ तरफ़ रेडियम भी पाया जाता है। इससे यह निश्चय हुआ है कि यूरेनियम से इलेक्ट्रन निकलने पर यूरेनियम क्षीण हो जाता है। अतएव उससे उसकी अपेक्षा लघुतर धातु रेडियम की उत्पत्ति होती है। यह बात अविश्वसनीय नहीं। किसी वंश का परिचय देते समय वंश के प्रतिष्ठाता का नाम शीर्ष स्थान में जगह पाता है। उसके बाद पुत्र, कन्या, पौत्र, दौहित्र आदि का नाम यथाक्रम लिखा जाता है। क्रुक्स साहब एवं अन्य वैज्ञानिकों ने यूरेनियम की एक इसी प्रकार की वंशतालिका प्रस्तुत की है। जितने धातव अथवा अधातव तत्त्व अब तक ज्ञात हुए हैं उन सब से यह पदार्थ गुरुत्व में श्रेष्ठ है। इसी से इसे प्रतिष्ठाता का आसन दिया गया है। इसके बाद इसके देहच्युत इलेक्ट्रन द्वारा जिन जिन पदार्थों की उत्पत्ति हुई देखी गई है उन सब का यथाक्रम उल्लेख किया गया है। इस प्रकार अकेले यूरेनियम ही के पुत्र-पौत्रादिकों के नाम से पूर्ण एक बड़ी लम्बी तालिका बन गई है। इनमें से कौन किस खानि में किस रूप में पाई जाती है, इस बात का अनुसन्धान अब तक नहीं हुआ। तथापि यूरेनियम वंशधरों की संख्या प्रायः बीस तक पहुँच गई है। ये सभी डाल्टन साहब के सिद्धान्तानुसार मूल पदार्थ अर्थात् उच्च कुलवाले हैं। किन्तु इस समय ये सब गड्डबड्ड हो कर अपना कुल-गौरव कम कर रहे हैं।

विद्यालय में अध्यापक महाशय सत्तर-अस्सी मूल पदार्थों के नाम कण्ठस्थ करा कर यह बतलाते हैं कि उनमें न परिवर्तन होता है और न उनका क्षय ही होता है। परन्तु, इस समय देखते हैं कि यही दोनों बातें बीसवीं शताब्दी के मूल-पदार्थ का प्रधान धर्म हो रही हैं। प्राणिवर्ग में सब प्राणियों की उम्र एक सी नहीं। जो दो ही चार घंटों में अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देते हैं ऐसे कई एक उद्भिज्ज प्राणियों को हम जानते हैं। और, जो दो चार सौ अथवा दो चार हज़ार वर्ष तक जीवित रहते हैं ऐसे जीवों के साथ भी हमारा परिचय है। अद्यावधि विद्वान् जिन सब वस्तुओं को मूल पदार्थ समझते थे उन सबके जीवन की भी सीमा का निश्चय हो गया है। यूरेनियम प्रायः तीस करोड़ वर्ष जीवित रहता है; रेडियम कई सहस्र वर्षों में ही विकार को प्राप्त हो कर पदार्थान्तर में परिणत हो जाता है। अर्थात् एक रत्ती यूरेनियम धातु एक पात्र में रख कर यदि तीस करोड़ वर्षों तक प्रतीक्षा की जाय तो शेष में यूरेनियम का कुछ भी पता न चलेगा। उसके देहनिर्गत तेज, अर्थात् इलेक्ट्रन, के द्वारा जिन अन्य पदार्थों की उत्पत्ति होती है उन्हीं से वह पात्र पूर्ण पाया जायगा। सीसक का आणविक गुरुत्व स्वर्ण और रौप्य सदृश बहुमूल्य धातुओं से बहुत अधिक है। अतएव कालान्तर में क्षय को प्राप्त होकर सीसक का स्वर्ण में परिवर्त्तित हो जाना कोई विचित्र बात नहीं। कोई भविष्यद्दर्शी मनुष्य यदि अपने लोहे के सन्दूक़ में सीसा रख कर सुवर्ण पाने की आशा में प्रतीक्षा करे, तो अवैज्ञानिकों द्वारा लाञ्छित किये जाने पर भी, वैज्ञानिक-मण्डली में उसके आदर पाने की सम्भावना है।

यही सब बातें देख-सुन कर पदार्थतत्त्वज्ञ कहते हैं कि यह जो नदी-समुद्र और उद्भिज्ज आदि से परिपूर्ण जगत् दिखलाई पड़ता है सो वास्तव में कुछ भी नहीं है। कोई भी जड़ वस्तु संसार में नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थ के सूक्ष्मतम कण अर्थात् परमाणु तोड़ कर हज़ार अथवा उससे भी अधिक अंशों में उसे विभक्त करने पर देखा जायगा कि इन सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणों ने उसी इलेक्ट्रन की मूर्त्ति ग्रहण कर ली है। और, इलेक्ट्रन विशुद्ध विद्युत् की कणिका के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसी से यह कहना पड़ता है कि यह ब्रह्माण्ड विद्युत् का ही एक रूपान्तर है। अर्थात् संसार में जड़ पदार्थ एक भी नहीं; सारा विश्व ही शक्तिमय है।

गत शताब्दी के पिछले भाग में क्रुक्स साहब ने जो स्वप्न देखा था वह सत्य सिद्ध हो गया। पदार्थ-तत्त्ववेत्ता इस समय स्वप्न में जड़ की जो शक्तिमयी मूर्त्ति देख रहे हैं वह भी सफलता ही की ओर अग्रसर हो रही है। बीसवीं शताब्दी के अन्त में इस स्वप्न के स्थान में कौन सा स्वप्न विश्व की किस मूर्त्ति का आविर्भाव करेगा सो केवल विश्वनाथ ही का ज्ञेय विषय है।

"कुञ्ज"।

क्राइमिया के युद्ध में कुमारी नाइटिंगेल।

स परोपकारिणी नारी का जन्म १८२० ईसवी में फ्लारेन्स में हुआ। इटली देश में फ्लारेन्स एक सुन्दर नगर है। १८७० ईसवी के पहले इसी नगर में इटली की प्राचीन राजधानी थी। नाइटिंगेल के पिता का नाम विलियम एडवर्ड नाइटिंगेल था। आप लीहर्ट्स में रहते थे जो इँगलैण्ड के डरबीशायर सूबे में एक गाँव है। माता-पिता के इच्छानुसार फ्लारेन्स को गणित और गायन भली भाँति सिखाया गया। इँगलैण्ड के बड़े घर की युवतियों में जिन गुणों की आवश्यकता समझी जाती है वे सब गुण नाइटिंगेल में थे। इतना ही नहीं वह अपने समय की युवतियों से कई बातों में बढ़ कर थी। अँगरेज़ होने के कारण अँगरेज़ी भाषा तो वह जानती ही थी। उसके सिवा योरप की अन्य कई भाषाओं में भी उसकी निपुणता कम न थी। बाल्यावस्था से ही उसका स्वभाव परोपकारी था। जब वह २१ वर्ष की हुई तब पिता के विपुल धन की स्वामिनी हो गई। यदि वह चाहती तो आराम से अपना जीवन व्यतीत कर सकती थी; परन्तु परोपकार ही उसे परम प्रिय था। उसका द्रव्य और समय विशेष कर दीन-दुखियों की सहायता में ही ख़र्च होता था। बीमारों की सेवा-शुश्रूषा करना उसे बहुत प्रिय था। और, केवल इसी काम को सीखने के लिए उसने सारे योरप में भ्रमण किया। इस भ्रमण में वह उन स्थानों को गई जहाँ कई प्रकार की बीमारियाँ फैली हुई थीं। वहाँ वह बीमारों की शुश्रूषा करती रही। १८५४ ई० में इँगलैण्ड और रूस के बीच क्राइमिया का भयङ्कर युद्ध शुरू हुआ। उस समय इँगलैण्ड से २५००० सिपाही युद्ध में भेजे गये। यद्यपि अँगरेज़ सैनिक अच्छे योद्धा होते हैं, तथापि कई वर्षों से लड़ने का मौक़ा न आने के कारण वे इस विद्या को भूल सा गये थे। ओमन नाम के एक साहब का कथन है कि १८१५ से १८५४ तक किसी अँगरेज़ सिपाही ने योरप में गोली न चलाई थी। १८१५ में नपोलियन हराया और क़ैद किया गया था। उसके बाद, तब तक, लड़ाई का मौक़ा ही नहीं आया था। इस समय सारे सैनिक और सेनापति, डयूक आव् वेलिंगटन और उसकी उच्च सैनिक शिक्षा को याद करते थे। परन्तु उसकी सी बुद्धिमानी एक में भी न थी। हो कहाँ से, प्रत्येक वस्तु का ज्ञान अनुभव से बढ़ता है। पर बेचारे सैनिकों को ३९ वर्ष से गोली चलाने का काम ही न पड़ा था। यद्यपि अँगरेज़ ही इस युद्ध में विजयी हुए तथापि जितना कष्ट इस युद्ध में उन्हें हुआ उतना शायद ही किसी और युद्ध में हुआ होगा। जाड़ा शुरू हो गया था; परन्तु सैनिकों के पास गरम कपड़े न थे। इस कारण कितने ही लोग ठंड से अकड़ गये और कितने ही मर भी गये। सैनिकों की बड़ी दुर्दशा होने लगी। समाचारपत्रों द्वारा जब इस बात की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खबर इँगलैण्ड पहुँची तब सारे देश में खलबली मच गई। पारलियामेंट में तूफान सा आ गया। प्रधान मन्त्री और मन्त्रिमण्डल को लोग मनमाने दोष देने लगे। बेचारे मन्त्री भी घबरा गये। जल्दी जल्दी सामान भेजने की वे तैयारी करने लगे। परन्तु जो काम जल्दी और घबराहट में किया जाता है वह ठीक नहीं होता। सैनिकों के लिए बहुत सा क़हवा भेजा गया। परन्तु यह बात किसी को न सूझी कि उसे भुनवा और कुटवा कर भेजें। यदि यह न हो सका था तो कूटने के लिए कोई मशीन ही भिजवानी थी। पर वह भी न किया गया। बेचारे सैनिक क़हवा के बीजों को क्या चबाते? गार्डिनर नाम के एक महाशय एक बड़ी ही हास्यकारक बात लिखते हैं। आपका कथन है कि सैनिकों के लिए जो जूते भेजे गये थे वे सब बायें ही पैर के थे, दाहने पैर का एक भी न था! बीमार सैनिक जिस स्थान पर थे वहाँ न भेज कर और कहीं उनके लिए दवायें भेजी गईं!! जिस जहाज़ द्वारा सेना के लिए सामान भेजा गया था वह काले सागर में तूफ़ान आने से डूब गया!!! घबराहट में कोई काम ठीक ठीक नहीं होता। खैर, धीरे धीरे सब बातें ठीक हो गईं। बहुत से डाक्टर भेजे गये। बीमार सैनिकों के लिए टर्की के स्कुटारी नामक नगर में अस्पताल भी खोले गये। यद्यपि डाक्टर लोग यथाशक्ति इलाज करते थे, तथापि सैनिकों की शुश्रूषा अच्छी तरह न हो सकती थी। इस काम के लिए कुछ बुद्धिमती स्त्रियों की आवश्यकता समझी गई। स्वर्गीया महारानी विक्टोरिया ने यह काम नाइटिंगेल को सौंपा। नाइटिंगेल ने प्रसन्नतापूर्वक इस काम को स्वीकार किया। हम पहले ही कह चुके हैं कि उसे ऐसे काम बहुत पसन्द थे। बयालीस स्त्रियों को लेकर वह रवाना हो गई। इनमें से कई स्त्रियाँ उच्च और अमीर घराने की थीं। उसके स्कुटारी पहुँचने के दूसरे ही दिन सारे घायल सिपाही वहाँ अस्पताल में लाये गये। जगह कम होने के कारण सिपाही बहुत पास पास सुलाये गये। कुमारी नाइटिंगेल, दूसरी स्त्रियों के साथ, सफ़ेद पोशाक पहन कर बीमारों की निगरानी करने लगी। जो लोग सख्त बीमार थे और मामूली खाना, जो बीमारों के लिए बनाया जाता था, न खा सकते थे उनके लिए अरारोट और शोरबा इत्यादि वह बनवाती थी। कभी कभी तो वह खुद ही खाना पकाने में भिड़ जाती थी और बीमारों को खुद ही खिलाती भी थी। अनेक घायल सिपाही घाव पर नश्तर चलवाने की अपेक्षा मर जाना पसन्द करते थे। परन्तु वह उन्हें धैर्य देती और उनके पास खड़ी रहती थी। सिपाही उसे माँ या बहिन के समान मानते थे। इस कारण उसके कहने से वे चीड़फाड़ का कष्ट सह लेते थे। रात को वह एक छोटा सा लैम्प ले कर बीमारों की देखभाल करती हुई इधर उधर घूमती थी। इससे वह इतिहास में लैम्पवाली लेडी (Lady of the lamp) के नाम से प्रसिद्ध है। जब वह अस्पताल में घूमती थी तब बीमार उसी की ओर देखा करते थे। प्रत्येक की यही इच्छा होती थी कि नाइटिंगेल उसी के पास रहे। उसके कहने से जितनी शान्तता से सिपाही कष्ट सह लेते थे उतनी शान्तता से शायद ही और किसी के कहने से वे सहते। उसका कथन है कि उसके सामने सिपाही कभी अभद्र शब्दों का उच्चारण न करते थे। यह सोच कर बहुधा उसकी आँखें डब डबा आती थीं कि जो सिपाही स्वभाव ही से मुँह के हलके और उद्धत होते हैं वे बीमारी में कैसे शान्त और दीन हो गये हैं। यथार्थ में सैनिकों के शान्त स्वभाव का कारण बीमारी ही थी। मनुष्य चाहे कैसा ही शान्त क्यों न हो, बीमारी में वह अवश्य ही चिड़चिड़ा हो जाता है। बात यह है कि उद्धत होने पर भी सिपाही लोग कुमारी नाइटिंगेल की मातृतुल्य शुश्रूषा और अच्छे बरताव के कारण उसके वशीभूत हो गये थे। जब वह पहले पहल अस्पताल में पहुँची तब सैनिकों के कपड़े धोने जाने का कोई प्रबन्ध न था। पर उसके प्रबन्ध से बीमारों को साफ़ कपड़े मिलने लगे। दिसम्बर में एक दिन कुमारी के पास महारानी विक्टोरिया का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आया तब सारे अस्पताल में आनन्द छा गया। महारानी ने उसे लिखा था कि "आप कृपा करके मेरे बीमार और देशभक्त सैनिकों से कह दें कि उनके दुःख से मैं बहुत दुःखी हूँ। रात दिन मुझे उन्हीं की चिन्ता रहती है। उनसे मेरी पूर्ण सहानुभूति है। उनके शौर्य और पराक्रम का सब से अधिक गर्व मुझे है"। इस पत्र की कई नक़लें की गईं और बीमारों को पढ़ कर सुनाई गईं। जब पढ़ने वाले अन्त को "God save the Queen" (परमेश्वर महारानी की रक्षा करें) कहते थे तब बीमार और अधमरे सिपाही भी ज़ोर से Amen (तथास्तु) कह उठते थे। इस पत्र से उनको जो सन्तोष और आनन्द हुआ वह लिखा नहीं जा सकता। गरमी के दिनों में वह एक और अस्पताल में दवा लेकर गई। वहाँ पर बीमार सिपाही उसके आने से बड़े प्रसन्न हुए। वहाँ कुछ दिन रहने के बाद वह ख़ुद ही बीमार हो गई और एक अन्य अस्पताल में भेजी गई। वहाँ कुछ दिनों तक वह बहुत बीमार रही। कुछ अच्छी होने पर वह इँगलैण्ड लौट गई। यद्यपि वह अशक्त और बीमार थी तथापि उसका मन सदा स्कुटारी के अस्पताल ही की चिन्ता में मग्न रहता था। इसी से वह शीघ्र ही वहाँ लौट आई। १८५५ ईसवी में परस्पर सन्धि होकर लड़ाई बन्द होगई। परन्तु नाइटिंगेल १८५६ तक वहीं रही। क्योंकि अनेक सिपाही तब तक चंगे नहीं हुए थे। जब वह इँगलैण्ड लौटने लगी तब महारानी से लेकर ग़रीब से ग़रीब किसान तक ने उसके सुस्वागत का विचार किया। परन्तु वह ऐसे भारी सम्मान को पसन्द न करती थी। अतएव इँगलैण्ड पहुँचने पर वह इस तरह चुपचाप घर चली गई कि कोई उसे पहिचान ही न सका। तथापि लोग उस पर अपनी कृतज्ञता प्रकट करना ही चाहते थे। इसलिए उन्होंने ७,५०,००० रुपया चन्दा करके जमा किया। इसमें अधिक चन्दा उन सैनिकों का था जो लड़ाई में ज़ख्मी हो कर कुमारी को सौंपे गये थे। उसकी इच्छा के अनुसार इस धन से एक अस्पताल खोला गया जिसमें स्त्रियों को बीमारों की सेवा शुश्रूषा सिखलाई जाने लगी। सैनिकों की वह विशेष आदर पात्र हो गई; क्योंकि उन्हीं के लिए अपने स्वास्थ्य की कुछ भी परवा न करके वह स्कुटारी गई थी। लौटते समय टर्की के सुलतान ने उसे एक बहुमूल्य आभूषण नज़र किया; और, महारानी ने उसे हीरा जड़े हुए एक सुवर्ण पदक से सम्मानित किया। उसके एक ओर Crimea और दूसरी ओर "To Florence Nightingale as a mark of esteem and gratitude for the devotion towards the Queen's brave soldiers. From Victoria R. खुदा हुआ था।

वह कई अच्छी अच्छी पुस्तकें लिख गई। उसकी अन्तिम पुस्तक का नाम—Notes on Nursing है। इस पुस्तक में अच्छी तरह समझाया गया है कि बीमारों की अच्छी तरह सेवा न होने से कितनी हानि होती है। इस पुस्तक में स्वच्छ वायु को ही विशेष महत्त्व दिया गया है। वह सदा सरकार से प्रार्थना करती थी कि गाँवों और नगरों की स्वच्छता की ओर विशेष ध्यान दिया जाय। अनेक लोग, जिन्हें उसका नाम तक न मालूम था, उसकी पुस्तकों से लाभ उठा रहे हैं। एक दफ़े रात को एक अँगरेज़ कवि क्राइमिया की लड़ाई का वर्णन पढ़ रहा था। जब वह स्कुटारी के अस्पताल और नाइटिंगेल का वर्णन पढ़ने लगा तब वह उसमें इतना मग्न हो गया कि उसे मालूम होने लगा जैसे किसी जगह कई बीमार और ज़ख्मी पड़े हैं और एक युवती सफ़ेद कपड़े पहने, हाथ में एक छोटा सा लैम्प लिए, प्रत्येक के पास जाती है और उसकी सेवा करती है। पढ़ना समाप्त होते ही उसने यह कविता बनाई :—

A lady with a lamp will stand,
In the great History of the land,
A noble type of good.
Heroic Womanhood.

लक्ष्मणराव काटोलकर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक उपदेश।

श्रीमान् नारायणराव पेशवा के रक्त का तिलक अपने मस्तक पर लगा कर राघोबा दादा पेशवा की गद्दी पर बैठ गये। उन्हें गद्दी तो प्राप्त होगई पर तत्कालीन प्रसिद्ध राजनैतिकों की सहायता उन्हें न प्राप्त हो सकी। राजनीति-कुशल पुरुष उन्हें ज़रा भी न चाहते थे। सदा परस्पर एक दूसरे की घात में लगे रहते थे। इसका कारण यह था कि जिस समय नारायणराव पेशवा का शवदाह हो रहा था, उस समय, श्मशान में ही, कुछ लोगों ने प्रण कर लिया था कि ऐसे क्रूरकर्म्मा नरेश की आज्ञा पालना महान् पातक है। हम लोग तो उसको अभिवादन तक न करेंगे। अन्त में इन लोगों ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया और विकट षड्यन्त्र रच कर राघोबा को पद-भ्रष्ट करके ये लोग नारायणराव की रानी के गर्भस्थ स्वामी की प्रतीक्षा करने लगे। इस राज्यक्रान्ति के मुखिया, नाना फड़नवीस आदि बारह चतुर पुरुष थे। यही कारण है कि यह "बारह भाई" अथवा "बारह भाइयों का-षड्यन्त्र" कहलाता है।

जिस प्रकार उत्तम फल-फूल-दायक वृक्ष होने के लिए अच्छे बीज की ज़रूरत होती है उसी प्रकार अच्छी उर्वरा ज़मीन की भी ज़रूरत होती है। छत्रपति शिवाजी महाराज स्वयं बड़े तेजस्वी थे। फिर श्रीसमर्थ रामदास जी के वचनामृत में अपूर्व शक्ति थी। इसी से महाराष्ट्र-महाराज रूपी तरुवर की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार इन बारह भाइयों के नीति-कौशलरूपी क्षेत्र में नाना फड़नवीस के विचाररूपी बीज बोये गये और उन पर परम विद्वान् राम शास्त्री का उपदेशामृत सींचा गया। इसीसे "बारह भाई" का प्रसङ्ग-तरुवर उत्पन्न हुआ और उसमें शाखा-प्रशाखायें फूट कर कुछ समय बाद सवाई माधव-राव रूपी उत्तम फल लगा।

नाना फड़नवीस और सखाराम बापू के साथी सज्जन भी स्वयं धुरन्धर राजनीतिज्ञ, विचारवान् और नीतिनिपुण थे। इतने पर भी श्रीरामशास्त्री जैसे सत्पुरुष से सहायता मिली। फिर सफलता में शङ्का ही क्या? समय पाकर बाल-राजदिनकर का उदय हुआ। इससे थोड़ेही समय में उदासीनतारूपी तमोराशि विलीन होगई और सभी के हृत्कमल प्रफुल्लित हो उठे।

इस "बारह भाई" को न्यायमूर्ति श्रीरामशास्त्री ने जो उपदेश दिया—जो अमृत पिलाया—वह यद्यपि थोड़ा ही सा था, तथापि उसमें शक्ति अपरिमित थी। वेदोक्त होने के कारण वह इतना रसाल और प्रसादमय था कि यदि सब लोग उसे सर्वदा ध्यान में रक्खें तो वह उन्हें बहुत ही कल्याण-दायक हो। क्योंकि सत्पुरुषों के शब्दों में जगत् के कल्याण का हेतुही प्रधान रहता है। इसी से उनका मूल्य भी बहुत होता है। "केरल-कोकिल" के आधार पर हम केवल यही बतलाते हैं कि यह योगायोग कब और कैसे हुआ।

रघुनाथराव ने अमानुषी काम करके पेशवा की गद्दी तो प्राप्त करली, पर वह मानसिक चिन्ता और लोकापवाद से अपना पीछा न छुटा सके। सोते जागते, खाते पीते, सर्वदा उनके आगे मूर्तिमान् ब्रह्म-बाल-हत्या खड़ी रहती थी। यह हत्या उनके हृदय में रह रह कर दारुण व्यथा पैदा करती थी। इसके अतिरिक्त कुछ साहसी लोग उन्हें ताने भी दिया करते थे। कुछ ऐसे भी निस्पृह सज्जन थे जो उनके आगे यह बात साफ़ साफ़ कह दिया करते थे कि पेशवाओं के वंश में जन्म लेकर आपने अच्छी नामवरी पैदा की! इसीसे उन्हें अपना जीवन दुस्सह होगया। बेचारा अपनी स्त्रीरूपिणी राक्षसी के जाल में फँसकर अपकीर्ति के अन्धकूप में गिर पड़ा। बालक के रक्त से रँगा पेशवा का राज्य तो मिल गया पर वैभव-सुख का लेश भी न मिला। अहोरात्र चिन्ता के मारे बेचारे को शान्ति न मिलने पाई। बिना शान्ति के जीवन ही व्यर्थ है। संसार में यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब कुछ मिला और शान्ति न मिली तो बेचैनी नहीं दूर होती। यही सोच कर राघोबा ने रामशास्त्री जी को इस उद्देश से बुलवाया कि इस कृतापराध का किञ्चित् प्रायश्चित्त कर पातकों का यथासम्भव क्षालन करूँ और किसी तरह लोकापवाद से छुट्टी पाऊँ।

शास्त्रीजी की बुद्धिमानी, न्यायप्रीति और निस्पृहता सबको विदित थी। इन्हें श्रीमान् माधवराव ने अपना मुख्य न्यायाधीश बनाया था। निमन्त्रण पाते ही वे राजमहल में पहुँचे और उचित अभिवादन कर बैठ गये। कुछ इधर उधर की बातें करके राघोबा ने शास्त्रीजी से कहा कि "आप उद्भट विद्वान् हैं। हमारे महल में जो दुर्घटना हो चुकी है उसका सब आद्योपान्त वृत्तान्त भी आप जानते हैं। आपसे कोई बात छिपी नहीं। नारायणराव को मारा तो किसी ने और लोकापवाद पड़ा मुझ पर! किसी के मुहँ पर कोई हाथ थोड़ेही रख सकता है। अब मेरी इच्छा है कि "यद्यपि सिद्धं लोकविरुद्धम्" के नाते मैं उस पाप का कुछ प्रायश्चित्त करूँ। कृपा करके आप बतलावें कि इसका क्या प्रायश्चित्त हो सकता है"?

यह सुन कर शास्त्रीजी कुछ देर तक न बोले। अन्त में यह कह कर वे अपने घर चले गये कि मैं विचार करके रात को उत्तर दूँगा। घर जाकर उन्होंने भोजन इत्यादि नैमित्तिक काम किये और घर का सारा असबाब गाड़ियों में लदवा कर बाल-बच्चों को काशी रवाना कर दिया। इस प्रकार घर की व्यवस्था करके वे पेशवा से मिलने गये। नाना फड़नवीस और सखाराम बापू आदि दरबारी भी वहाँ उपस्थित थे। शास्त्रीजी को देख कर राघोबा दादा ने उनकी अभ्यर्थना की और पूछा कि "कहिए पण्डितजी, हमने सबेरे जो प्रश्न किया था उसका आपने क्या निर्णय किया?" राघोबा दादा समझते थे कि कुछ पूजा-पाठ कराने और ब्राह्मणों को लड्डू खिलाकर दक्षिणा में अशर्फ़ियाँ देने से ही मेरा पिण्ड छूट जायगा। इसी आशासूत्र में बद्ध होकर वे जल्दी कर रहे थे।

परन्तु शास्त्रीजी पूरे न्याय-मूर्ति थे। उन्हें रत्ती भर भी अन्याय न रुचता था। उनके मन में सदा यह तत्त्व जागृत रहता था कि "निस्पृहस्य तृणं जगत्।" भला ऐसे सत्पुरुष के हाथ से इस अघोर कर्म का आच्छादन कैसे हो सकता था? उन्होंने भरे दरबार में पेशवा को उत्तर दिया—"अन्नदाता, ऐसे पातकों का प्रायश्चित्त प्राणान्त के अतिरिक्त और कुछ नहीं है"। हम नहीं कह सकते कि इस उत्तर को पाकर पेशवा की कैसी दशा हुई होगी। पर इतना ज़रूर बतलाये देते हैं कि उन्हें यह सोच कर और भी अधिक विषाद हुआ कि रामशास्त्री सरकारी नौकर हैं। अपने स्वामी को ऐसा उद्दण्डता-पूर्ण उत्तर देने का उन्हें साहस कैसे हुआ। अतएव शास्त्रीजी के उत्तर को सुन कर क्रोधवश उन्होंने इतना ही कहा "हाँ ठीक है"। इस पर शास्त्रीजी ने नमस्कार करके यह कहा कि श्रीमान् अधिक सोच विचार में न पड़ें। मैंने अपना सारा सामान पूने से रवाना कर दिया है। काशी-यात्रा की तैयारी करके यहाँ आया हूँ। आज तक मैंने श्रीमान् की यथामति सेवा की। अब यहाँ रहने में भलाई नहीं है; और मेरी अब यहाँ ज़रूरत भी नहीं है। इतना कह कर वे महलों के बाहर होगये। पेशवा कुछ कहने वाले थे, पर उन्होंने उधर ध्यान ही नहीं दिया। इसीसे क्रोधवश पेशवा ने भी उनसे रहने के लिए विशेष आग्रह नहीं किया।

नाना फड़नवीस वग़ैरह समीप ही बैठे थे। अकस्मात् शास्त्रीजी को जाते देख उनके मन अधिक उद्विग्न हुए। अतएव उन्होंने पेशवा से यह कह कर आज्ञा माँग ली कि हम लोग शास्त्रीजी को पहुँचाने जाते हैं। जाते समय शास्त्रीजी ने सोचा कि अब जाते तो हैं ही, देव-दर्शन क्यों न करते चलें। इससे वे पूने के एक सर्वश्रेष्ठ मन्दिर में दर्शन करने चले गये। नाना फड़नवीस वग़ैरह भी उनके पीछे पीछे वहीं पहुँचे। मन्दिर में सबसे मुलाक़ात हुई। वहाँ बिलकुल एकान्त था। बारह राजनीतिज्ञ मंत्री और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेरहवें शास्त्रीजी को छोड़ वहाँ और कोई न था। उस समय पेशवाओं के राज्य में शास्त्रीजी एक तेजोमय रत्न थे। राज-मन्त्रियों की उनके सम्बन्ध में विशेष पूज्य बुद्धि थी। बिना शास्त्रीजी की सलाह के वे कोई काम न करते थे। ऐसे विकट समय में उनका चला जाना सबको दुःखदायी हुआ। नाना फड़नवीस के नेत्रों से आँसू टपकने लगे। सब लोग शास्त्रीजी से रहने की प्रार्थना करते करते थक गये; पर उन्होंने एक न मानी। वे अपने निश्चय पर अटल रहे। अन्त में नाना ने गद्गदकण्ठ से कहा कि "शास्त्रीजी, आप यह बखूबी जानते हैं कि आजकल पेशवाओं की गद्दी पर कैसे भयानक सङ्कट आरहे हैं। अकेला यह घरेलू झगड़ा ही कितना अनर्थ कर रहा है। यह गद्दी ब्रह्म-बाल-राजा के रक्त से भीगी हुई है। वर्तमान हिरण्यकशिपु को परास्त करने का हमने विचार कर लिया है। हमें ऐसे घातकी पुरुष की सेवा करने की इच्छा नहीं। अवसर ढूँढ़ रहे हैं। दैव-कृपा से आशा-तन्तु भी मिल गया है। आपसे कहना नहीं होगा कि राज्यक्रान्ति उत्पन्न करना कितना विकट काम है। ऐसे समय में आपके न रहने से हमारी दक्षिण भुजा टूट जायगी। हमें सलाह देने के लिए कोई योग्य पुरुष न रहेगा। आप इस बात का विचार क्यों नहीं करते। यदि आपको यहाँ रहना मंज़ूर नहीं है तो हम भी आपके ही साथ चलते हैं। फिर यहाँ रक्खा ही क्या है"! नाना फड़नवीस के इन शब्दों को सुन कर शास्त्रीजी का गला भर आया। वे कहने लगे "नाना, यह बड़े आश्चर्य की बात है कि तुम्हारे जैसा राज-कार्य-धुरन्धर ज़रा सी बात के कारण उदासीन हो रहा है। सभी काम ईश्वर के सङ्केतानुसार हुआ करते हैं। उनके लिए ज्ञानवान् को विशेष सुख-दुःख न मानना चाहिए। आप सब लोग चतुर, दूरदर्शी और राज-कार्य-पटु हैं। इसमें ज़रा भी संदेह नहीं कि आप अभीष्ट कार्यों को अच्छी तरह करके गर्भस्थ प्रभु की कीर्ति दिग्दिगन्त में फैलावेंगे। मैं आपके राजकार्य्य में कभी नहीं पड़ा और मुझसे वह सिद्ध भी नहीं हो सकता। मैं तो केवल धर्मशास्त्र की सहायता से अभियोगों का निर्णय करता रहा हूँ। हाँ, आप भाईबन्धु के समान सलाह लेने आते थे; सो मैं आपसे यथामति निवेदन कर देता था। बस, इतनी ही बात थी। किन्तु अब यहाँ रहना अच्छा नहीं। इससे आप भी आग्रह करना छोड़ दें"।

यह सुन कर सब निरुपाय होगये। उन्होंने जान लिया कि शास्त्रीजी रोके न रुकेंगे। तथापि नाना ने एक और विनती की। वे बोले—"महाराज आप सबसे वयोवृद्ध और पूज्य हैं। अब हमें आपके विचारपूर्ण मधुर एवं उत्तम उपदेश दुर्लभ होजायँगे। हाय अब हमारे कर्णकुहरों में आपके मधुर शब्द कदाचित् ही फिर प्रविष्ट हों! अतएव हमें आपके मुखारविन्द से दो चार शब्दोपदेश सुनने की इच्छा है। उनसे ही हमें समाधान होगा"।

इस पर शास्त्रीजी कुछ हँस कर बोले—"नाना और बापू, तुम दोनों क्या कम हो? काशी से लेकर रामेश्वर पर्यन्त तुम्हारी बुद्धि का डङ्का बज रहा है। तुमको मैं क्या उपदेश दूँ? तथापि तुम भक्तिभाव से पूछ रहे हो और मेरे अल्पोपदेश को भी संदैव ध्यान में रखने का वचन देते हो। अतएव मैं कुछ कहता हूँ। तुम सब एक से एक बढ़ कर चतुर हो। परन्तु, सम्भव है, कभी मतविरोध होजाय। आपस में फूट होते समय मेरे विचार तुम्हारे काम आवेंगे। साधारणतः सभी ज्ञानवान् हैं। ऐसा कौन है जिसे भले बुरे का ज्ञान न हो। और यह बात भी नहीं कि जो कुछ मैं कहूँगा वह पूर्वजों के कथन से अधिक महत्त्व का होगा या कोई एक दम नई बात होगी। किन्तु जिसके मुख से उपदेश होता है उसकी पूज्य बुद्धि होने के कारण श्रोताओं को उसका बारम्बार स्मरण होता रहता है। अतएव मैं भी एक रूप में एक बात तुमसे कहता हूँ। वैदिक मन्त्रों द्वारा निवेदन करना चाहता हूँ। क्योंकि वेदों में सबकी बड़ी ही पूज्य बुद्धि है। आप ऋग्वेद-संहिता के अन्तिम दो मन्त्रों को सर्वदा ध्यान में रक्खें। बस मैं इतनाही कहना चाहता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ २॥
समानो व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ४॥

इस वेदवाणी के अनुसार आचरण करने से सब सिद्धियाँ प्राप्त होंगी। मेरा भी यही आशीर्वाद है। नाना ने कहा महाराज, हम इन वेदमन्त्रों का अर्थ नहीं समझे। अतएव आप अर्थ भी श्रीमुख से ही बतलावें। शास्त्रीजी ने कहा, इनका अर्थ बहुत ही अच्छा है। तदनुसार व्यवहार करना बहुतही हितकर है। अर्थ है :—"तुम सब मित्र भाव से रहो। परस्पर का विरोध भाव छोड़ो। एक मत होकर भाषण करो। तुम सब अपने मन का रुख एक ही तरफ़ को रहने दो। जिस प्रकार आदि देवता एकमत से अपना अपना हविर्भाग ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार तुम भी मत-मतान्तर के वैमनस्य को त्याग कर इष्ट फल की प्राप्ति की तरफ़ ध्यान रक्खो।

"अपना निश्चय एक रहने दो। अन्तःकरणों को एकरूप बनाओ। तुम्हारे मन समान हों; तुम्हारा हृदय एक सा हो; सर्वत्र समानता रहे।

यही इन मन्त्रों का आशय है। अपना व्यवहार तुम इसी उपदेशानुसार करो। ये मन्त्र वेदोक्त हैं और इनका अर्थ रामशास्त्री के मुख से निकला हुआ है। इन मन्त्रों में और इनके अर्थ में अपूर्व शक्ति है। इनका अनुसरण करना सर्वथा शुभफलदायक है।

ललीप्रसाद पाण्डेय।

विविध-विषय।

१—बङ्गालियों की हिन्दी।

हिन्दी वह भाषा है जिसे वे लोग भी समझ सकते हैं जो बङ्गाल, मदरास और बम्बई प्रान्तों के निवासी हैं। समझ ही नहीं सकते किन्तु आवश्यकता पड़ने पर अपने विचार भी इस भाषा में प्रकट कर सकते हैं। इन बातों को सभी जानते हैं। परन्तु एक बात शायद सब लोग नहीं जानते। वह यह कि बिना हिन्दी पढ़े और बिना उसे लिखने का अभ्यास किये अन्य प्रान्त वाले इस भाषा को लिख भी सकते हैं। भाषा अच्छी न हो, वह अशुद्धियों से भरी हो, उसमें प्रान्तिक शब्दों का बाहुल्य हो, उसे पढ़ कर आप भले ही हँसे—तथापि फिर भी वह हिन्दी ही है। हिन्दी-भाषा-भाषियों को उससे अर्थ-ज्ञान तो होजाता है। यह बात नीचे दिये गये एक विज्ञापन की नक़ल से स्पष्ट हो जायगी। देखिए:—

हामलोक माड़ोवारी लेड़का को सुविस्ता का ओवास्ते १४ नं० पगेया पटी विठलदास का मोकाम में अङ्ग इंराजी ओ बाङ्गाला पड़ाने का श्रीयास्ते एकठी भाला बन्दोवस्त किया, हिंया तिनठो माष्टार बाबू हाय उलोक क, ख, से इंराजी स्कुल का एण्ट्रस क्लास तक पड़ायगा माड़ोवारी भद्र आदमी का लेड़का लोक को पड़ाने का ओवास्ते हिया बहुत सूबिस्ता होगा।

समय फजिर सात से नय बाजातक बेला एक टा से चार बाजातक माष्टार लोक रहेगा। जिसका जो घण्टा में सुविस्ता होगा, उलोक ऐ घण्टा में आने सेकेगा।

फि महिना में दू, चार, छय, आट, दश रुपेवा, करके। किसका केसा माफिक फि लागेगा मुलाकात से ओ सब मिल यायेगा। भर्ति होने का वकत एकठो रुपेया देने होगा।

यह कलकत्ते के किसी बङ्गभाषा-भाषी की हिन्दी है। लेखक महाशय को हिन्दी का बिलकुलही अभ्यास नहीं है। उनकी हिन्दी विलक्षणता से परिपूर्ण है। उसमें बँगलापन भरा हुआ है। पर जिस उद्देश से उन्होंने यह विज्ञापन हिन्दी में प्रकाशित किया है वह अवश्यही सिद्ध होगया है।

२—व्योमयान बनाने और उस पर बैठ कर उड़नेवाला पहला भारतवासी।

ऐसा कोई काम नहीं जिसे और देश वाले करते हों पर भारतवासी न कर सकें। समय, सुभीता और सहायता मिलने पर भारतवासी क्या नहीं कर सकते? हाल में एस० वी० सेटी नामक एक महाशय ने व्योमयान-विद्या में अच्छी योग्यता दिखाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। आप भारतवासी हैं। माईसोर में असिस्टंट इंजिनियरी के पद पर नियुक्त हैं। बी० ए० हैं। रुड़की के इंजिनियरी कालेज का इम्तहान पास किये हुए हैं। व्योमविहारिणी विद्या से अधिक प्रेम होने के कारण, कुछ समय से, आप इँगलैंड में हैं। माडर्नरिव्यू के एक लेख से मालूम हुआ कि अब आप इस विद्या में पारङ्गत हो गये हैं। आपने एक व्योमयान अपने हाथ से भी बनाया और उस पर बैठ कर लन्दन से कुछ दूर एक मैदान में सफलता-पूर्वक आप उड़े भी। आपकी कारीगरी और कामयाबी पर मुग्ध होकर आपके यान को एक साहब ने तुरन्त ख़रीद लिया। अब आप एक और उससे भी बढ़िया आकाश-यान बना रहे हैं। आपने व्योमयान बनाने और उड़ने का आजन्म व्यवसाय करने का निश्चय कर लिया है। सिद्धिरस्तु।

३—बेतार का टेलिफोन।

बेतार के तार की तरह अब बेतार का टेलिफोन भी चल निकला। इस तरह के टेलिफोन के आविष्कार का समाचार प्रकाशित हुए तो बहुत दिन हुए; परन्तु अब वह चलने भी लगा और उसके सम्बन्ध की बहुतसी बातें भी प्रकाशित होगईं। एच० ग्रिंडल मैथ्यूज़ नाम के एक यंजिनियर ने इसका आविष्कार किया है। बारह मील इससे बातचीत की जासकती है। तार की बिलकुल ज़रूरत नहीं पड़ती। इसका यंत्र बहुत छोटा होता है और आसानी से एक जगह से दूसरी जगह जासकता है। एक आदमी यदि एक कोठरी के भीतर बैठे और इसके यन्त्र के चोंगे के सामने मुँह कर के कुछ कहे तो, दूसरा आदमी दूसरी कोठरी के भीतर, वैसेही यन्त्र के सामने बैठ कर और उसके चोंगे को कान में लगा कर उसकी बात सुन सकता है। बीच में चाहे जितनी दीवारें और दरवाज़े आजायँ, बात सुनने में कुछ भी रुकावट नहीं होती। इस यन्त्र का प्रचार हो जाने पर लोग घर बैठे पुलिस के दफ़्तर, डाकख़ाने, रेलवे स्टेशन और तारघर से बातचीत कर सकेंगे। लड़ाई के समय एक सेनानायक दूसरे सेनानायक से कोसों की दूरी से बातचीत कर सकेगा। जो लोग खानों के भीतर काम करते हैं वे वहीं से ऊपरवालों से बातचीत कर सकेंगे और कोई दुर्घटना होने पर उसकी सूचना भी दे सकेंगे। इस टेलिफोन के यन्त्र भी बहुत सस्ते हैं। अतएव साधारण आमदनी के लोग भी इससे फ़ायदा उठा सकेंगे।

४—देशी भाषाओं की शिक्षा।

गत ३ अगस्त को, सन्ध्या समय, इन प्रान्तों के छोटे लाट, सर जान हिवेट ने इलाहाबाद-विश्वविद्यालय के सिनेट का नया भवन खोलते समय शिक्षा के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण वक्तृता की। उसमें आपने इस बात पर खेद प्रकट किया कि उनके एक बार पहले सूचना देने पर भी विश्वविद्यालय ने देशी भाषाओं की शिक्षा का कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया। आपकी राय है कि अपने देश की भाषाओं का साहित्य अच्छी तरह समझने के लिए भाषा-शिक्षा की बड़ी ज़रूरत है। तिस पर भी भाषा-विज्ञान के सिखाने का अब तक कोई यत्न नहीं हुआ। स्कूलों और कालेजों में अँगरेज़ी के सिवा अन्य भाषाओं की जो शिक्षा दी जाती है वह बहुत ही थोड़ी है। उससे काम नहीं चल सकता। हाल में गवर्नमेंट को अपने गैज़ट का अनुवाद कराने की आवश्यकता पड़ी। अतएव कई एक बाहरी शिक्षित आदमियों से इस काम के लिए कहा गया। उन्होंने जो अनुवाद के नमूने भेजे वे अशुद्धियों से भरे हुए थे। उनका प्रायः नख से सिख तक संशोधन करना पड़ा। तब कहीं वे अनुवाद छपने योग्य हुए। सुनते हैं, अब ऐसा प्रबन्ध हो रहा है कि बी० ए० तक के विद्यार्थियों से उर्दू और हिन्दी से अँगरेज़ी में और अँगरेज़ी से उर्दू और हिन्दी में अनुवाद कराया जायगा। एम० ए० में अब भाषा-विज्ञान भी पढ़ाया जायगा। शुभमस्तु शीघ्रम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५—लन्दन में कविवर रवीन्द्रनाथ का आदर।

बङ्गाल के कविश्रेष्ठ बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर इस समय लन्दन में हैं। १० जूलाई को इंडिया सोसायटी नाम के एक समाज ने उन्हें भोज दिया। इँगलैंड के अनेक कवि और लेखक भी आमन्त्रित हुए। उनसे रवि बाबू का परिचय कराने ही के लिए यह उत्सव किया गया था। प्रत्येक विद्वान् स्त्री-पुरुष एकत्र हुए। रवि बाबू की तीन कविताओं का अनुवाद अँगरेज़ी में एक महाशय ने सुनाया। सुन कर सब लोग आनन्द-मग्न हो गये। सबने रवि बाबू के विचारों और प्रतिभा की प्रशंसा की। एक कवि की राय में तो रवि बाबू की बराबरी करने वाला कवि इस समय भारत में तो क्या संसार में कोई नहीं और उनसे बढ़ कर कविता करने वाला एक भी कवि इस समय इँगलैंड या अमेरिका में नहीं। रवि बाबू की कुछ कविताओं का अनुवाद अँगरेज़ी में प्रकाशित होने वाला है। उनमें से एक का अँगरेज़ी अनुवाद, रवि बाबू का ही किया हुआ, पूर्वोक्त कवि महाशय को दिया गया और प्रार्थना की गई कि ज़रा इसका संशोधन कर दीजिए। अँगरेज़ कवि ने उत्तर में कहा कि इसका संशोधन करने की चेष्टा करना मूर्खता है। जो इसके संशोधन की चेष्टा करेगा उसे मैं समझूँगा कि वह साहित्य का अर्थ नहीं जानता। रवि बाबू का इस समय लन्दन में इतना आदर हो रहा है कि भारत में नौकरी करने के बाद पेन्शन पाने पर अपने देश को लौटते हुए एक गोरे अफ़सर ने तो रवि बाबू के पैर छू कर उनको प्रणाम किया! रवि बाबू के इस कीर्ति-प्रसार और आदरातिथ्य का वृत्तान्त सुन कर किस भारतवासी को सन्तोष न होगा?

६—ईसामसीह के जीवन-चरित की तिब्बत में प्राप्ति।

ईसा के जीवन-चरित के विषय में, योरप और अमेरिका के समाचारपत्रों में, एक अद्भुत समाचार प्रकाशित हुआ है। लिखा है कि नोटविच नाम के एक रूसी यात्री को तिब्बत के हीमिस नामक मठ में ईसा का एक जीवनचरित मिला है। यह चरित बहुत पुराना है। इसमें लिखा है कि तेरह चौदह वर्ष की उम्र में अपने माँ-बाप से रूठ कर ईसा अपने घर से भाग निकला और हिन्दुस्तान आया। यहाँ वह राजगृह, काशी, पुरी आदि स्थानों में घूम कर कई वर्ष बाद अपने देश को लौटा। भारत में उसने पाली भाषा सीखी और बौद्धों के धर्म्म-ग्रन्थों का परिशीलन किया। कुछ समय तक के लिए वह बौद्ध भी हो गया। पर अपने देश को लौट कर उसने अपना नया ही धर्म्म चलाना चाहा। इसी बखेड़े में उसे फाँसी की सज़ा हो गई। ईसाई लोग नोटविच की इन बातों को जाल बताते हैं। जाल हो या यथार्थ, ईसाई अब ईसा को ईश्वर का पुत्र मानने से पश्चात्पद नहीं हो सकते। बहुत दिन की बात है, हमने पुरानी छपी हुई एक पुस्तक अँगरेज़ी में पढ़ी थी। उसमें बड़े बड़े प्रमाण देकर ईसामसीह के अस्तित्व ही पर कुठाराघात किया गया था और ईसा के सूली पर चढ़ाये जाने की बात भी कल्पना-प्रसूत ठहराई गई थी। परन्तु ईसाई धर्म्म अब तक बना हुआ है और पादरी साहब पापी प्राणियों को स्वर्ग के फाटक के भीतर ढकेलते ही जा रहे हैं।

७—प्रसिद्ध आविष्कारक एडीसन के बनाये हुए सीमेंट के अद्भुत सामान।

बहुत दिनों से अमेरिका के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक मिस्टर एडीसन सीमेंट की कुछ चीज़ें साँचे में ढाल कर बनाना चाहते थे। अब उन्होंने इस समस्या को हल भी कर लिया है। आपने अपने ही लिए मेज़, कुर्सी, आलमारी आदि कुछ चीज़ें ढाल कर बनाई हैं। ये चीज़ें बहुत ही सुन्दर और मज़बूत बनी हैं। इनकी सुन्दरता के मुक़ाबले में बहु-मूल्य लकड़ी की बनी हुई वैसी ही चीज़ें मात हैं। उन्होंने एक आलमारी बनाई है जो बड़ी ही मनोहर है। उसके ऊपर अङ्कित बेल-बूटे उसकी सुन्दरता को और भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ाते हैं। उसका मूल्य तीस रुपया है। परन्तु एडीसन साहब का कथन है कि अधिक संख्या में बनाने से वह और भी सस्ती पड़ेगी। इन चीज़ों की मज़बूती की भी परीक्षा की गई। बिना विशेष हिफ़ाज़त के रेल पर लाद कर ये सैकड़ों कोस दूर भेज दी गईं; परन्तु इनमें से कोई भी ज़रा न टूटी। इनमें यह भी ख़ूबी है कि इन पर जैसा रङ्ग देना चाहो दे लो।

एडीसन साहब एक बात इससे भी विशेष महत्त्व की सोच रहे हैं। वे बड़े बड़े मकानों को भी साँचे में ढाल कर बनाना चाहते हैं। उनका अनुमान है कि इस तरह का एक घर इक्कीस दिन में तैयार हो सकेगा। ऐसे घर की कोठरियाँ, दालान, कमरे, आँगन, रसोई घर, स्नान-घर आदि सब साँचे में ढाल कर बनाये जायँगे। सीमेंट का गारा बना कर और उसमें कुछ मसाले मिला कर लोहे के साँचों में भर दिया जायगा। दो चार दिन में जब वह सूख जायगा तब साँचा निकाल लिया जायगा। फिर उस पर उसी तरह बना कर सीमेंट की छत रख दी जायगी। दरवाज़े और खिड़कियाँ पीछे से लगा दी जायँगी। इस तरह के मकान हज़ारों वर्ष रहेंगे। टपकेंगे भी नहीं। ख़र्च भी बहुत नहीं पड़ेगा। उन्होंने सीमेंट की दीवारें और छतें आदि ढाल कर इस तरह के एक आध मकान नमूने के तौर पर तैयार भी किये हैं। वे बहुत ही सुन्दर और मज़बूत हैं। उनकी दीवारों पर रङ्ग भी बहुत अच्छा आया है। अमेरिका का यह विश्वकर्म्मा चाहे जो करे।

८—अन्धों के लिए नये ढंग से छापी गई पुस्तकें।

अन्धों के लिए पुस्तकें पहले उभड़े हुए अक्षरों में छपती थीं, फिर बिन्दुओं में छपने लगीं। बिन्दुओं का छपना विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ। ये बिन्दु-मय पुस्तकें टाइप में नहीं छपतीं। इनका मज़मून प्लेटों पर ढाल लिया जाता है। इस छपाई में एक दोष है। वह यह है कि प्लेट का मज़मून काग़ज़ के एक ही तरफ़ छप सकता है। दूसरी तरफ़ नहीं। परन्तु हाल ही में न्यूयार्क के एक बड़े भारी छापेख़ाने ने, जिसमें केवल अन्धों ही के लिए पुस्तकें छपती हैं, एक नई युक्ति ढूँढ निकाली है जिससे पचीस हज़ार पृष्ठ दोनों तरफ़ केवल एक घंटे में छप सकते हैं।

९—एक अद्भुत बालक।

मदरास प्रदेश के एक साधारण लड़के ने अपने असाधारण गणित-ज्ञान का परिचय दिया है। वह अभी निरा बच्चा है। उसकी सूरत शकल से यह नहीं जान पड़ता कि उसमें कुछ भी विलक्षणता या प्रतिभा होगी। पढ़ा लिखा भी वह राम का नाम ही है, परन्तु गणित के कठिन से कठिन प्रश्नों को वह बड़ी ही सरलता से हल कर देता है। कोचीन के एक साहब ने उसकी परीक्षा ली। उन्होंने पहले उस से ९७६ का ७९ से गुणनफल पूँछा। उनके मुँह से प्रश्न निकलने की देरी थी कि बालक ने चट से उत्तर दिया-७७,१०४। तब उन्होंने इससे भी लम्बे गुणा का एक सवाल बोला। लड़के को उसके भी उत्तर देने में देर न लगी। साहब को इतने से सन्तोष न हुआ। वे एक अङ्क-गणित की पुस्तक उठा लाये। उसमें से उन्होंने वर्ग-मूल, घन-मूल, आना पाई का गुणा, सूद दर सूद आदि कितने ही प्रकार के प्रश्न दिये। साहब को तो बोलने में देर लगती थी; परन्तु उत्तर देने में लड़के को मुश्किल से पाँच सेकण्ड लगते थे। इसके पूर्व कि वे अङ्क-गणित को उलट कर किये गये प्रश्न का उत्तर देखें बालक उनके प्रश्न का उत्तर दे देता था। इस प्रतिभा पर मुग्ध हो कर उक्त साहब ने "मदरास मेल" नामक पत्र में लिखा है कि देश के बड़े बड़े वैज्ञानिकों को इस बालक के मस्तिष्क की जाँच करनी चाहिए और इस "गुदड़ी में छिपे हुए लाल" से दर दर की भिक्षा-वृत्ति छुड़ा कर इसकी शिक्षा और रक्षा का उचित प्रबन्ध करना चाहिए।

१०—"सती-मोह"।

जून की सरस्वती में पण्डित रूपनारायण पाण्डेय का "सती-मोह" नामक लेख निकल चुका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसमें लेखक महोदय को यह शङ्का हुई है कि सतीमोह की कथा तुलसीदास ही की कल्पना है। इस पर मुकामा से बाबू आदित्यनारायणसिंह ने एक लम्बा लेख भेजा है और आनन्द-रामायण तथा शिवपुराण के सतीखण्ड से अनेक श्लोक उद्धृत करके यह दिखाया है कि यह कथा तुलसीदास की कल्पना नहीं। उनमें से दो चार श्लोक नीचे दिये जाते हैं। आनन्द-रामायण में पार्वती से शङ्कर कहते हैं :—

त्वं गत्वा च समीपं श्रीराघवस्य तदा वने।
सीतारूपेण स रामस्त्वया प्रोक्तः शुभं वचः॥ १४३॥
राम राजीवपत्राक्ष मामग्रे पश्य जानकीम्।
क्रीडस्वात्र मया सार्द्धमेहि शीघ्रं सुखी भव॥ १४४॥
आनन्द रामायण, मार्कण्डेय सप्तम सर्ग,
शिव-पार्वती-संवाद।

शिवपुराण में रामचन्द्रजी सीतारूपिणी सती से पूछते हैं :—

प्रेमतस्त्वं सति ब्रूहि क्व शम्भुस्ते नमो गतः।
एका हि विपिने कस्मादागता पतिना विना॥ ४९॥
त्यक्त्वा स्वरूपं कस्मात्ते धृतं रूपमिदं सती।
ब्रूहि तत्कारणं देवि कृपां कृत्वा ममोपरि॥ ५०॥
शिवपुराण, द्वितीय खण्ड, चौबीसवां अध्याय।

११—खेती के लिए नेत्रजन-तत्त्व की उपयोगिता।

अमेरिका के संयुक्त राज्य कृषि में बड़ी उन्नति कर रहे हैं। इस उन्नति का कारण यह है कि वहाँ वालों को, भूमि को विशेष उर्वरा बनाने का एक नया उपाय मालूम हो गया है। नेत्रजन नामक तत्त्व पौदों की बाढ़ के लिए ख़ूराक का काम देता है। जब किसी भूमि में इस तत्त्व की कमी हो जाती है तब उसकी उपज भी कम हो जाती है। भूमि के उपजाऊ होने से यही मतलब है कि उसमें नेत्रजन यथेष्ट अंश में मौजूद है। नेत्रजन की कमी की पूर्ति अदल बदल कर फ़सल बोने से हो सकती है। भारतवासी कृषक भी इस बात को जानते हैं; परन्तु उन्हें अभी तक यह नहीं मालूम कि ऐसा क्यों होता है। एक जर्मन रसायन-शास्त्र-वेत्ता ने इसका कारण यह बताया है कि कुछ पौदे ऐसे होते हैं जो अपनी नेत्रजनरूपी ख़ूराक भूमि से नहीं, किन्तु हवा से पाते हैं। मटर, सेम, मसूर, उड़द इत्यादि ऐसे ही पौदे हैं। इन पौदों की जड़ों में गाँठें होती हैं। ये गाँठें छोटी से छोटी आलपीन के सिर के बराबर और बड़ी से बड़ी आलू के बराबर होती है। लोग इन गाँठों को अभी तक व्यर्थ समझते थे, परन्तु, यथार्थ में ये बड़ी ही उपयोगी वस्तु हैं। इनमें लाखों जीवाणु होते हैं जो हवा से पौदे की ख़ूराक प्राप्त करते हैं। ऐसे खेत में जिसकी उपज कम हो गई हो, मटर की फसल बहुत अच्छी तो होगी ही, परन्तु उससे यह भी लाभ होगा कि फसल कट जाने पर उसमें बहुत सा नेत्रजन-तत्त्व रह जायगा। फल यह होगा कि वह खेत पहले से अधिक उपजाऊ हो जायगा।

पुस्तक-परीक्षा।

१—सनातनधर्म्मोद्धारः। माननीय पण्डित मदन-मोहन मालवीय बहुत दिनों से सनातनधर्म्म-सम्बन्धी एक संग्रह प्रकाशित कराने के विचार में थे। उनका वह विचार सफल हो रहा है। उन्हीं की प्रेरणा से इस धर्म्मोद्धार की रचना काशीवासी पण्डित उमापति द्विवेदी। (उपनाम नक-छेद राम शर्म्मा) ने की है। यह पूरे ग्रन्थ के सामान्य काण्ड के पूर्वार्द्ध का प्रथम खण्ड है। यह बड़े बड़े ४१० पृष्ठों में समाप्त हुआ है। दाम इसका ३ रुपया है। मिलने का पता:—पण्डित रुद्रदत्त द्विवेदी मिश्र—पोखरा, बनारस है। इसके अगले खण्ड भी शीघ्र छप कर प्रकाशित होने वाले हैं। अनेक सज्जन इस कार्य में सहायक हैं। इस खण्ड में धर्म और अधर्म का स्वरूप और लक्षण लिख कर विद्वान् संग्रह-कार ने वेदों के विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं। अनेक ग्रन्थों के प्रमाण-प्रमेय आदि पर बहस करके आपने वेदों की अनित्यता, धर्ममूलकता, शब्दभावना और अर्थवाद आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर बहुत कुछ लिखा है। इसके सिवा वेद-सम्बन्धी और भी कितनीही बातों का आपने विचार किया है और वेदों पर जिन सम्प्रदायों या धर्म्मों ने आक्षेप किये हैं उनका उत्तर भी आपने दिया है। संग्रहकारजी अच्छे विद्वान् मालूम होते हैं। अनेक शास्त्रों में आपकी गति जान पड़ती है। बड़ी योग्यता से आपने नाना ग्रन्थों के वाक्य उद्धृत करके अपने कथन का सामञ्जस्य सिद्ध किया है। ऐसा करने में आपने किसी को न कटुवाक्य कहा और न किसी के आक्षेपों का उत्तर देते समय वितण्डा और छल आदि तार्किक-दोषों को ही पास आने दिया। भावप्रभा नाम की हिन्दी टीका करके आपने इस ग्रन्थ का आशय असंस्कृतज्ञों के लिए भी सुलभ कर दिया है। अतएव आपको अनेक साधुवाद। यह नोट लिख चुकने पर, आपकी पञ्चत्वप्राप्ति का समाचार सुन कर दुःख हुआ।

❋

२—सुमतिप्रकाशिका। ज़िला इलाहाबाद में सराय-आक़िल के पास बुद्धिपुरी नाम की कोई पुरी है। वहाँ के निवासी, पण्डित इन्द्रनारायण शर्म्मा द्विवेदी ने साठ सत्तर पृष्ठ की सुमतिप्रकाशिका नामक एक पुस्तक लिख कर एक रुपया उसका मूल्य रक्खा है। आज तक स्वदेशी और परदेशी, नये और पुराने—भास्कर, बापूदेव और गैलीलियो आदि—जितने विद्वान् इस बात के मानने वाले हो गये हैं कि पृथ्वी चलती है उन सबकी समझ को सुमतिप्रकाशिका में दुर्मति-दुष्ट सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। लिखा गया है कि आर्यभट्ट और भास्कराचार्य की जिन युक्तियों से लोग भूभ्रमण सिद्ध करते हैं उनका ठीक अर्थही उनकी समझ में नहीं आया। इसी से प्रकाशिकाकार जी ने वेद, विज्ञान और ज्योतिर्विद्या के आधार पर उन लोगों के भ्रम को दूर करने और "भूरचला स्वभावतः" को सिद्ध करने के लिए यह प्रयास स्वीकार किया है। आपकी सचक्र सुमतिप्रकाशिका का यह केवल ज्योतिष-खण्ड है। वेद और विज्ञान-खण्ड शायद कभी फिर प्रकाशित होंगे। पण्डित इन्द्रनारायणजी ने इस पुस्तक को हमारे पास समालोचना के लिए भेज कर हम पर बड़ी कृपा की। परन्तु हममें इसकी समालोचना करने की योग्यता नहीं। क्योंकि वेद, विज्ञान और ज्योतिष में से एक का भी पर्य्याप्त ज्ञान हममें नहीं। अतएव इस विषय में सिवा चुप रहने के हम और कुछ नहीं कह सकते। क्योंकिः—

विशेषतः सर्व्वविदां समाजे
विभूषणं मौनमपण्डितानाम्।

हाँ, इतना हम निःसन्देह कह सकते हैं कि आपकी इस पुस्तक की हिन्दी कहीं कहीं संशोधन अवश्य मांगती है।

❋

३—The Hindu Realism। श्रीयुत जगदीश-चन्द्र बैनर्जी बी० ए० (केम्ब्रिज), विद्यावारिधि, दर्शन शास्त्र के अच्छे विद्वान् हैं। आप काश्मीरराज्य में पुरातत्त्व-विभाग के डाइरेक्टर हैं। आपही इस पुस्तक के प्रणेता हैं। भारतवर्षीय दर्शनशास्त्र की समस्त शाखाओं का अध्ययन और उन पर आजतक जो कुछ—टीका, टिप्पणी, व्याख्यान और भाष्य के रूप में—लिखा गया है उसका मन्थन करके इस पुस्तक को आपने लिखा है। इसमें विशेष करके आपने न्याय—वैशेषिक के ही मुख्य मुख्य सिद्धान्तों का आशय समझाया है। पर अन्यान्य दर्शनों के सिद्धान्तों का भी उल्लेख जहाँ जैसी आवश्यकता आ गई है, आपने किया है। इस देश के और पश्चिमी देशों के दार्शनिक विचारों में जहाँ कहीं भेद है उसे भी आपने योग्यतापूर्वक दिखा दिया है। भारतीय दर्शन-शास्त्र के धर्ममीमांसा और तत्त्व-मीमांसा, ये दो भाग करके आत्मा, मन, परमाणु, काल और दिक् तथा सृष्टि की उत्पत्ति, आत्मा के मायाबन्धरूप दुःख, पुनर्जन्म आदि पर आपने बड़ीही योग्यता से शास्त्रीय विचारों को प्रकट किया है। दर्शन-शास्त्र के ज्ञाता सैकड़ों क्या हज़ारों होगये हैं और अब भी हैं। पर इस शास्त्र के तत्त्व दूसरों को सरल भाषा में समझा देने वाले विद्वान् बहुत ही थोड़े हैं। विद्यावारिधिजी इन्हीं थोड़े विद्वानों में से हैं। आपकी यह पुस्तक अँगरेज़ी में है। इलाहाबाद के इंडियन प्रेस में बहुतही चिकने-मोटे काग़ज़ पर सुन्दर टाइप में छपी है। मनोहर जिल्द बँधी हुई है। दाम ३) है।

❋

४—Shaktism। प्रयाग में ९, १० और ११ जनवरी १९११ को एक धर्म-संघ हुआ था। महाराजा दरभङ्गा उसके सभापति थे। अनेक धर्म्मों, मतों और सम्प्रदायों के सम्बन्ध में उसमें लेख पढ़े गये थे और वक्तृतायें हुई थीं। उस धर्म-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्धी जन-समुदाय में सिवान, ज़िला सारन, के वकील बाबू काशिनाथ सहाय ने शाक्त मत पर एक निबन्ध अँगरेज़ी में पढ़ा था। उसकी बड़ी प्रशंसा हुई थी। वही अब पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ है। पुस्तक बहुत छोटी, कोई २० पृष्ठ की है। आरम्भ में महाराजा दरभङ्गा की सूचना से ऋग्वेदोक्त देवीसूक्त भी, अँगरेज़ी-अनुवाद सहित, रख दिया गया है। थोड़े में शक्तिपूजा के स्थूल सिद्धान्त बड़ी योग्यता से इसमें बतलाये गये हैं।

❋

५—बाबू रामलाल वर्म्मा की भेजी हुई तीन पुस्तकें। पहली पुस्तक का नाम है—भारत के कारख़ाने। पृष्ठ-संख्या ८८; मूल्य १० आने। इसमें भारत के आटे, ईंट, लोहे, लकड़ी, कपड़े, चमड़े, चीनी, चावल, जूट, ग्लास आदि के मुख्य मुख्य कारख़ानों तथा खानों के नाम और पते हैं। पण्डित चतुर्भुज औदीच्य ने इस नामावली का सङ्कलन किया है। व्यवसायियों के यह काम की चीज़ है। दूसरी पुस्तक का नाम है—रोमिओ जुलियट। शेक्सपियर के इस नाम के नाटक का यह आख्यानात्मक अनुवाद है। अनुवादक हैं पूर्वोक्त पण्डित चतुर्भुज जी औदीच्य। अनुवाद सरल भाषा में किया किया है। कहानी पढ़ने योग्य है। इस छोटे आकार की ६० पृष्ठ का मूल्य ४ आने है। तीसरी पुस्तक का नाम है—नलिनी बाबू। यह हास्यरसपूर्ण एक छोटा सा सामाजिक उपन्यास है। पण्डित ईश्वरीप्रसाद शर्म्मा का यह लिखा हुआ है। पृष्ठ इसमें केवल ३० हैं। मूल्य दो आने है। तीनों पुस्तकों पर—"बड़ा बाज़ार गज़ट का १९११ ईसवी का उपहार" छपा हुआ है। बाबू रामलाल वर्म्मा, २०१–२, अपर चीतपुर रोड, कलकत्ते से ये पुस्तकें मिल सकती हैं।

❋

६—पञ्चम जार्ज का जीवन-चरित। इस ८७ पृष्ठ की पुस्तक के लेखक, कर्वी (बाँदा) के स्कूलों के सब डिप्युटी इन्सपेक्टर ठाकुर शिवकुमारसिंह हैं। इसमें महाराज पञ्चम जार्ज का जीवन-चरित वर्णित है। महारानी मेरी और उनकी सन्तति का भी संक्षिप्त वृत्तान्त इसमें है। हिन्दी और संस्कृत के अनेक सामयिक पद्यों से पुस्तक की रोचकता बढ़ गई है। टायटिल पेज के बाद सम्राट् का एक सुन्दर चित्र भी है। भाषा सरल और शुद्ध है। छपाई और काग़ज़ भी अच्छा है।

❋

७—प्रोफ़ेसर राममूर्ति और उनका व्यायाम। बाबू कालिदास माणिक ने इस ४८ पृष्ठ की पुस्तक को लिखा है। इसमें प्रसिद्ध पहलवान राममूर्ति का संक्षिप्त चरित और उनकी कसरतों का संक्षिप्त वर्णन है। पुस्तक उपयोगी है और सरल भाषा में लिखी गई है। मूल्य २ आने। मिलने का पता:—

बाबू हरिदास माणिक, ९४ मिश्र पोखरा, काशी।

❋

८—भारत-धर्म्मनेता। यह पत्र पहले पाक्षिक था; अब साप्ताहिक हो गया है। रायल चौपेजी आकार के चार पृष्ठों पर बनारस से निकलता है। पहले और चौथे पृष्ठ पर विज्ञापन रहते हैं, दूसरे और तीसरे पर नोट, लेख और समाचार। २५ जून की संख्या में समाज-रक्षा नामक लेख अच्छा है। मूल्य इसका मुफ़स्सिल में केवल डेढ़ रुपया वार्षिक है। सामाजिक, धार्म्मिक, नैतिक और साहित्यविषयक—सभी तरह के लेख प्रकाशित करने का विचार इसके सम्पादक महाशय का है। ईश्वर करे वे अपनी सदिच्छा की पूर्ति कर सकें और उनके पत्र की उन्नति हो।

❋

९—नीति-कथा। श्रीमती लावण्यप्रभा वसु की लिखी हुई इस नाम की एक पुस्तक बँगला में है। श्रीयुत प्रकाशदेव-कृत उसी का यह हिन्दी-अनुवाद है। इसमें सत्यता, न्यायपरता, कर्त्तव्यपालन, सहनशीलता आदि कई नैतिक विषयों पर अच्छे अच्छे निबन्ध हैं। कथाओं और पौराणिक आख्यानों के आधार पर इन गुणों का महत्त्व इन निबन्धों में व्यक्त किया गया है। भाषा सरल है। पृष्ठ-संख्या ११८ और मूल्य ५ आने है। पञ्जाब-ब्रह्मसमाज, अनारकली, लाहौर के पते पर प्रकाशक से यह पुस्तक मिलती है।

❋

१०—गृह-कथा। श्रीमती लावण्यप्रभा वसु की एक बँगला पुस्तक का यह भी हिन्दी अनुवाद है। अनुवादक हैं:—अनारकली—लाहौर—के ब्रह्मसमाज के श्रीयुत प्रकाशदेवजी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ इसे तीन आने में बेचते हैं। पुस्तक छोटी, केवल ५४ पृष्ठ की, है। पर विषय इसके सुन्दर और बालोपयोगी हैं। माता-पिता, भाई-बहन और दास-दासी आदि पर लिखे गये इसके निबन्ध बच्चों के लिए विशेष लाभदायक हैं। इसमें जो निबन्ध हैं उनके बीच बीच आख्यान और कल्पित कथायें रख कर लेखिका ने इसकी उपयोगिता को और भी बढ़ा दिया है।

❋

११—**शब्द-सुमन-माला**—प्रथम भाग—कानपुर के आर्य्य-समाज-स्कूल के अध्यापक पण्डित रामरत्न त्रिपाठी ने इसे गूँथा है। इसमें, अमरकोश के ढँग पर, एक एक के अनेकानेक पर्य्यायवाची शब्द दिये गये हैं। पुस्तक पद्य में है। जैसा नीरस विषय है कविता भी वैसीही है। पुस्तक विद्यार्थियों के लिए बनाई गई है। छपाई और काग़ज़ साधारण है। ६० पृष्ठ की इस पुस्तक का मूल्य ≡) तीन आना है। लेखक से प्राप्य।

चित्रपरिचय।

(१)

श्रीकृष्णाष्टमी

भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म की अद्भुत कथा को प्रायः सभी लोग जानते हैं। जिस समय पापी कंस के बन्धनों से छुट कर वसुदेव जी शिशु कृष्णचन्द्र को लिये मथुरा से गोकुल जा रहे थे उस समय भाद्रमास की कृष्णाष्टमी थी। आधी रात का समय था। आकाश घनघोर घटा से आच्छादित था। चञ्चला की चञ्चल चमक नेत्रों में चकाचौंध पैदा कर रही थी। वर्षाकाल के कारण बढ़ी हुई यमुना को पैदल ही पार करते हुए वसुदेव जी श्रीकृष्ण को लिये जा रहे हैं। देखिए, चतुर चित्रकार ने तत्कालीन दृश्य इस चित्र में कैसी उत्तमता से दिखाया है।

(२)

समुद्र-मन्थन।

समुद्र-मन्थन का जो चित्र इस संख्या में अन्यत्र प्रकाशित है वह कई सौ वर्ष के पुराने एक चित्र के फोटो से तैयार किया गया है। समुद्र-मन्थन-सम्बन्धिनी पुराण-प्रसिद्ध घटना का सारा दृश्य इस चित्र को देखने से नेत्रों के सामने आ जाता है।

(३)

सती का अग्नि-संस्कार।

अपने पति के साथ स्त्रियों का सती हो जाना, इस देश में, किसी समय, एक साधारण सी बात थी। ईस्ट इंडिया कम्पनी के ज़माने में कम्पनी के अफ़सरों ने ऐसे कितनेही सती-संस्कारों को प्रत्यक्ष देख कर उनके वर्णन लिखे थे। वे अबतक प्राप्य हैं। कई एक तो इतिहासों में सम्मिलित होगये हैं। इन घटनाओं के चित्र भी वहाँ दिये हुए हैं। सती के एक ऐसेही अग्नि-संस्कार का चित्र इस संख्या में दिया जाता है। इसका सम्बन्ध बङ्गाल से है। स्त्रियों के लिए वैधव्य से बढ़ कर कोई और दुःख नहीं:—

"दहनजा न पृथुर्दवथुव्यथा विरहजैव पृथुर्यदि नेदृशम्।
दहनमाशु विशन्ति कथं स्त्रियः प्रियमपासुमुपासितुमुद्वराः"॥

अर्थात्—अग्नि के ताप की अपेक्षा वैधव्यताप स्त्रियों को अधिक असह्य होता है। इसी से जल जाने की कुछ भी परवा न करके वे मृत पति का अनुगमन कर जाती हैं।

कृतज्ञता-ज्ञापन।

मुझ पर जो कौटुम्बिक आपदा आई है उसका समाचार सुन कर मेरे अनेक उदाराशय मित्रों ने तार, पत्र और लेख द्वारा अपनी सहानुभूति और समवेदना प्रदर्शित की है। मैं नहीं जानता, किस तरह मैं उनको धन्यवाद दूँ और किन शब्दों में कृतज्ञता-ज्ञापन करूँ। दुःख में आश्वासन देनेवाले मित्र भी भाग्य से ही मिलते हैं। सो मुझे मिले हैं। आशा है, उनके सान्त्वना-वाक्य विफल न जायँगे। सब के पत्रादि का उत्तर देने की मुझ में शक्ति नहीं। और यदि उत्तर देना भी चाहूँ तो क्या लिखूँ, यही मेरी समझ में नहीं आता। अतएव इस विज्ञप्ति-द्वारा, एकही साथ, मैं सबके तारों और पत्रों की पहुँच लिखता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि जो कृपा उन्होंने मुझ पर की है उसे मैं कभी भूलने का नहीं।

महावीरप्रसाद द्विवेदी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Printed and Published by Apurva Krishna Bose at the Indian Press, Allahabad.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णाष्टमी ।

पैडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

. Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

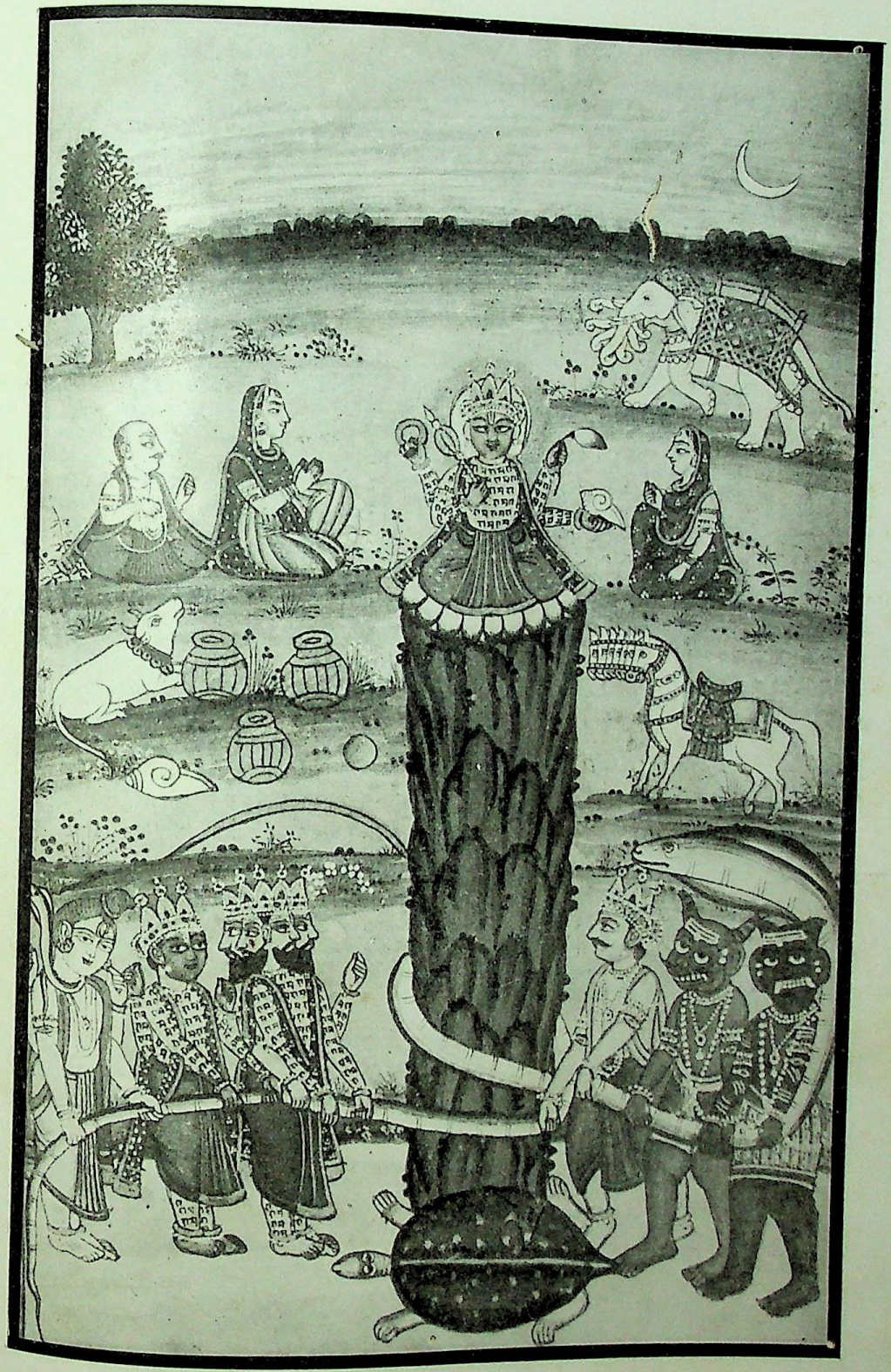

समुद्र-मन्थन ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सती का अग्नि-संस्कार ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

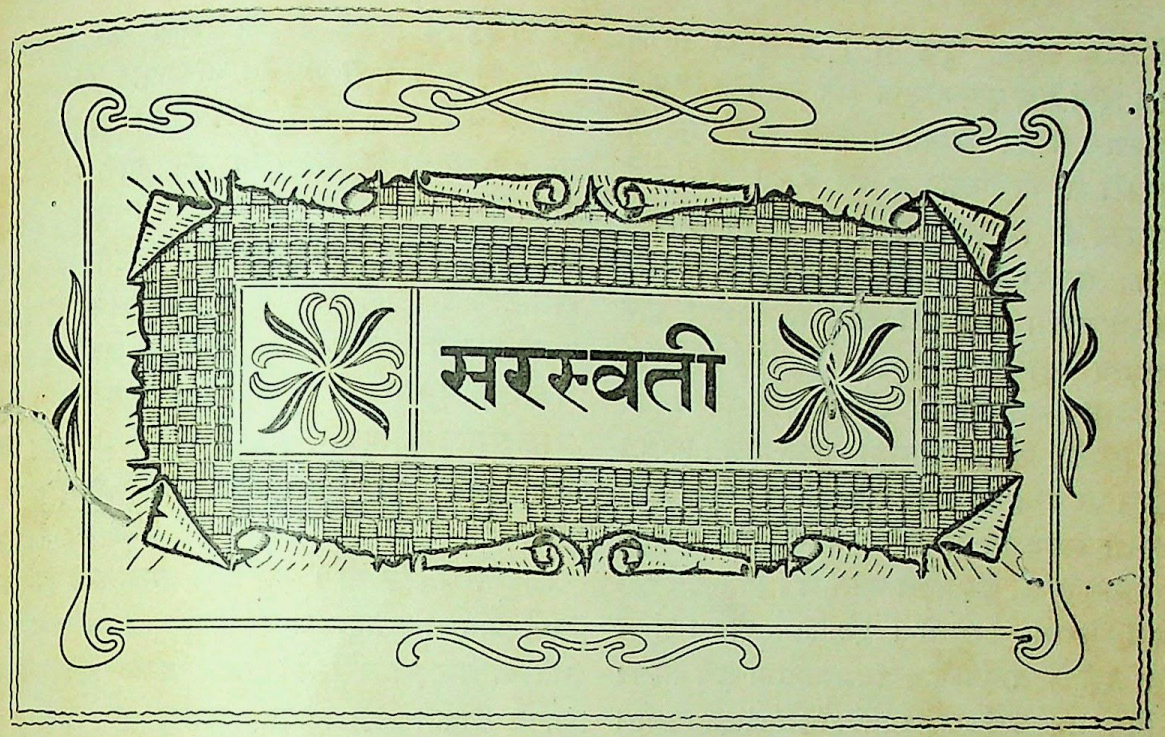

सचित्र मासिक पत्रिका ।

भाग १३] १ सितंबर, १९१२—भाद्रपद कृष्ण ५, १९६९। [संख्या ९

परलोकवासी मिकाडो मुत्सू हीटो ।

जिस नन्हे से जापान ने हाल ही में संसार की महाशक्ति रूस को रण-क्षेत्र में पछाड़ा था, जिसके बल और वैभव, उन्नति और पराक्रम का इतने थोड़े काल में विकास होते देख संसार के बड़े बड़े उन्नतिशील देशों तक को आश्चर्य्य से दाँतों तले उँगली दबानी पड़ी थी और जिसने अपने बाहु-बल द्वारा संसार की महान् से भी महान् जातियों की पंक्ति में खड़े होने का स्वत्व प्राप्त करके पूर्व के नीचे झुके हुए सिर को ऊपर उठाया था उसे इस उन्नतावस्था को पहुँचाने के सबसे बड़े सूत्रधार, उसके सम्राट् मुत्सू हीटो, का गत २९ जूलाई को देहान्त होगया ।

मुत्सू हीटो का जन्म तीसरी नवम्बर सन् १८५२ ईसवी को हुआ था । जापान का राजवंश बहुत पुराना है। जापान के प्रथम सम्राट् जिम्मू टेनो ने सन् ईसवी के १९६७ वर्ष पूर्व से राज्य करना आरम्भ किया था । परलोकवासी सम्राट् मुत्सू हीटो जिम्मो टेनो की १२१ वीं पीढ़ी में थे*

मुत्सू-हीटो की शिक्षा पूर्वी देशों के राज-कुमारों की तरह लाड़ प्यार से न हुई थी । उनके पिता सम्राट् ओसा हीटो काल-चक्र की गति को

* जापान के सम्राट मिकाडो (अर्थात् आली जनाब or Honourable Gateway) कहलाते हैं। परन्तु इस नाम का व्यवहार जापान में बहुत कम किया जाता है। वहाँ सम्राट् को "टेनो" और "टेनशी" कहते हैं। मुत्सू हीटो "मीजी" (अर्थात् प्रकाश-पूर्ण शान्ति) के नाम से जापान में प्रसिद्ध हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छी तरह समझ चुके थे। वे जानते थे कि अधिक दिनों तक कूप-मण्डूक बने रहने से जापान का कल्याण न हो सकेगा। इसी लिए उन्होंने मुत्सू-हीटो को आधुनिक ढँग पर शिक्षा दी। उन्हें इस प्रकार की शिक्षा दी जाती थी जिसमें वे नरम गद्दे का सहारा ढूँढ़नेवाले कोमलाङ्ग राजकुमार ही न रह जायँ। घोड़े की सवारी, व्यायाम और अस्त्र-शस्त्र के प्रयोग में वे थोड़े ही काल में सिद्ध-हस्त होगये। नियमानुसार कार्य्य करने की उनकी आदत डाली गई। वे सदा आज्ञा-पालन करते। न करने पर उन्हें साधारण बालक की तरह दण्ड मिलता। लड़कपन ही से वे सहिष्णु थे। वे बहुत कम खेलते कूदते थे; पढ़ते बहुत थे। प्रति-दिन कुछ कविता भी रचा करते थे। इन कामों से जो समय बचता उसे वे नाना प्रकार के व्यायामों में ख़र्च करते। बड़े होने पर उन्हें राजनीति की भी शिक्षा मिली। विदेशों का इतिहास और वहाँ की राज-प्रणालियों का वृत्तान्त उन्हें अच्छी तरह पढ़ाया गया।

१८६७ में, अपने पिता के मरने पर, मुत्सू-हीटो राज-सिंहासन पर आसीन हुए। उस समय जापान की अवस्था बड़ी ही शोचनीय थी। जापान में शोगन नाम का एक पद था। जापान के सम्राट् केवल नाम मात्र को सम्राट् थे। वे इतने पवित्र और मनुष्य-कोटि से इतने उच्च समझे जाते थे कि प्रजा को उनके दर्शन तक दुर्लभ थे। अतएव शोगन लोग ही उनके नाम से जापान पर राज्य करते और विदेशी राज्यों से सन्धि आदि करते थे। १८५४ में, तत्कालीन शोगन ने, जापान के कुछ बन्दरगाहों को विदेशी वाणिज्य और विदेशियों के निवास के लिए खोल दिया। इस पर पुराने विचार के लोग बड़े नाराज़ हुए। उनकी नाराज़ी बढ़ती ही गई। वे शोगन-पद तक के उड़ा देने के लिए तैयार होगये। नये सम्राट् ने भी इनका साथ दिया। शोगन का पद तोड़ दिया गया, परन्तु सहज ही में नहीं। बड़े बड़े उत्पात हुए। वे सब बलपूर्वक शान्त किये गये। लोगों ने सोचा था कि शोगन-पद के टूटते ही विदेशियों का जापान में आना जाना बन्द हो जायगा और फिर वही पुराना शान्ति और आनन्द-मय समय आ जायगा, जब मनमानी करना ही बलवानों का और लातें और बातें सहना ही निर्बलों का काम था। परन्तु उनकी आशा पूर्ण न हुई। शोगन-पद के टूटते ही नवीन सम्राट् ने उस दल का पक्ष लिया जो विदेशियों को अपने देश में आने देने और जापानी जाति में नाना प्रकार के सुधार किये जाने का हामी था। धीरे धीरे सम्राट् के विचार कार्य्य-रूप में परिणत होने लगे। जिस सम्राट् का दर्शन उसकी प्रजा तक को दुर्लभ था उसी ने, १८६८ के मार्च में, विदेशी राजदूतों से भेंट की। लोगों ने उनके इस काम पर बड़ी आपत्ति उठाई, और कितने ही जापानियों ने गलियों और बाज़ारों में फिरने वाले विदेशियों के ऊपर आक्रमण भी किया; परन्तु इन बातों से वे तनिक भी भयभीत न हुए। सम्राट् अपनी राजधानी क्योटो से ईडो (वर्तमान टोकियो) नगर में उठा लाये। उन्होंने विदेशियों पर आक्रमण करनेवालों को उचित दण्ड दिया और विदेशियों की जो क्षति हुई थी उसे राज-कोष से पूर्ण कर दिया।

देश में कौन कौन से सुधार किये जायँ, इस विषय पर विचार करने के लिए, १८६८ में, मुत्सू-हीटो ने देश के गण्य-मान्य पुरुषों की एक सभा का सङ्गठन किया। इस सभा के अधिकारी ज़मींदार-सदस्यों ने जिस प्रकार की देश-भक्ति उस समय प्रकट की उस प्रकार की शायद ही संसार के किसी भी देश के ज़मींदारों ने कभी प्रकट की हो। उन्होंने एक संयुक्त प्रार्थनापत्र सम्राट् के सामने पेश किया। उसमें उन्होंने लिखा:—"हम और हमारे पूर्वजों ने चिरकाल तक इन ज़मींदारियों की आमदनी से सुख-भोग किया है। इनमें निवास करने वालों के तो हम विधाता ही हैं; परन्तु देश और जाति के सुधार के लिए, और इस लिए कि हमारा देश संसार के उन्नत देशों की श्रेणी में गिना जाय, और हमारी जाति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परलोकवासी जापान-नरेश मुत्सो हीटो (मिकाडो)।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

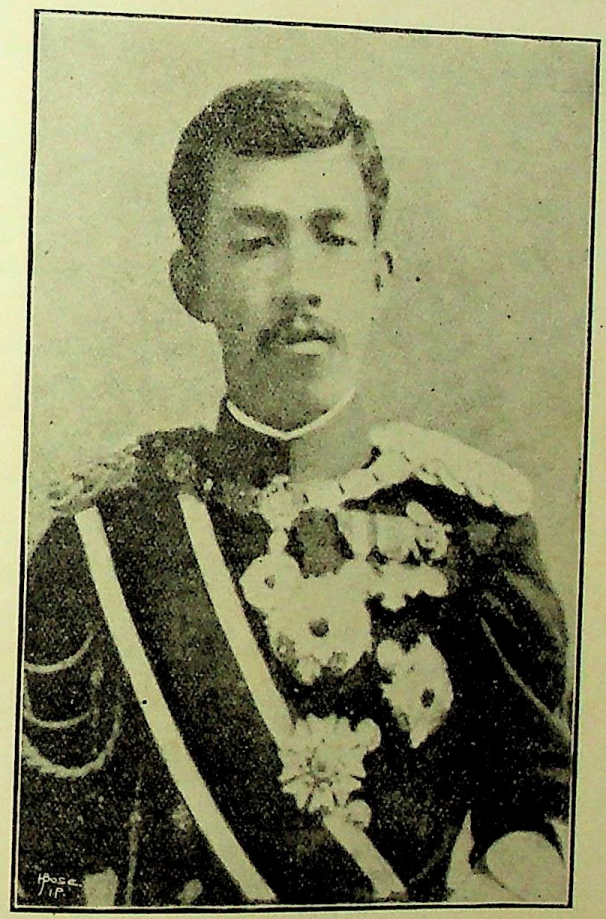

जापान के नये नरेश।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार की उच्च जातियों की बराबरी कर सके, हम इन ज़मींदारियों से, जिन पर आज तक हमें स्याह और सुफेद तक करने का अधिकार प्राप्त था, जिनकी आमदनी से हम शारीरिक आनन्द लूटते थे और जिनके निवासियों को हम गुलामी की रस्सी के अमानुषिक बन्धनों से बाँधे हुए अपनी इच्छा के अनुसार नाच नचाते थे—हाथ उठाते हैं और अपने सब स्वत्वों को त्यागते हैं। ये ज़मींदारियाँ अब आपके चरणों में अर्पित हैं। इनका जो चाहिए सो कीजिए। इतना ही नहीं, जननी-जन्मभूमि के लिए यदि हमारे शरीरों की आवश्यकता हो तो वे भी हाज़िर हैं"।

ज़मींदारों के इस आत्मोत्सर्ग से सम्राट् की शक्ति बढ़ गई और निम्न-श्रेणियों को पराधीनता की शृङ्खला में बाँधे रखने वाली ज़मींदारी की कुत्सित प्रथा का दौर दौरा जापान से उठ गया।

अब सुधार शुरू हुए। अत्याचारी दण्डों की प्रथा बन्द हुई। नये सिरे से, फ़्रान्स के क़ानून के आधार पर, जापानी क़ानून की रचना हुई। १८७२ में, जापान की पहली रेल बनी। पाश्चात्य सन् और तारीख़ का व्यवहार होने लगा। पाठशालाओं में अँगरेज़ी की शिक्षा भी आरम्भ हो गई। दल के दल जापानी युवक शिल्प-कला की शिक्षा प्राप्त करने के लिए अमेरिका और योरप पहुँचे। बड़े आदमी भी घर में न बैठे रहे। विदेशों में जा जाकर उन्हों ने भी देश के लिए अनुभव प्राप्त किया। विद्वान् और व्यापारी भी पीछे न रहे। वे भी पाश्चात्य देशों की शिक्षा-प्रणाली और व्यापारी ढँग देखते फिरे। राष्ट्र ने भी बल-वृद्धि की चेष्टा की। अँगरेज़ों को नौकर रख रख कर उसने अपनी नौ-शक्ति को बढ़ाया और जर्मन सैनिकों द्वारा अपनी थल-सेना का सुधार किया। १८८९ में सम्राट ने प्रजा को पार्लियामेंट देने का वचन दिया और १८९० के नवम्बर में पहली जातीय महासभा (पार्लियामेंट) की बैठक हुई।

जापान में महान् परिवर्त्तन हो गया। उसका रूप ही बदल गया। इतने अल्प काल में इस प्रकार के परिवर्त्तन संसार में थोड़े ही हुए होंगे। ये परिवर्त्तन हो गये, और मुत्सू-हीटो तथा उनकी प्रजा की बुद्धिमत्ता के कारण इतने अल्प काल में हो गये; परन्तु निर्विघ्न नहीं हुए। १८७६ से लेकर १८८४ तक—आठ वर्ष तक—जापान के भिन्न भिन्न प्रान्तों में, जगह जगह, सुधारों के विरुद्ध कई एक छोटे बड़े विप्लव हुए। इधर घर की इस अग्नि को शान्त करने में मुत्सू-हीटो रत थे, उधर उन्हें अपने घर से बाहर चीन ऐसी बड़ी शक्ति से तलवार नापनी पड़ी। १८७४ में फारमोसा द्वीप के कुछ नौकारोही डाकुओं ने कई जापानी जहाज़ों को लूट लिया। उस समय फारमोसा चीन के अधीन था। शिकायत करने पर चीन ने डाकुओं को सज़ा देने में अपनी असमर्थता प्रकट की। तब मुत्सू-हीटो को लाचार होकर चीन के विरुद्ध शस्त्र-ग्रहण करना पड़ा। जापानी नौ-सेना ने फारमोसा पर अधिकार करके डाकुओं को दण्ड दिया और द्वीप को उस समय तक न छोड़ा जब तक चीन ने उनकी क्षति की पूर्ति न कर दी।

इन घरेलू और बाहरी झगड़ों को निपटा कर मुत्सू-हीटो ने जापान को अन्य विदेशीय स्वतन्त्र देशों के बराबर समझे जाने का दावा संसार के सामने पेश किया। पहले तो किसी ने इस दावे की ओर ध्यान न दिया; परन्तु १८९४ में, अपने इस दावे को ज़ोर से पेश करने पर मुत्सू-हीटो को सफलता प्राप्त हुई। इँगलेंड ने जापान से समानता-सूचक सन्धि कर ली। अन्य देश भी आगे बढ़े; और, अन्त में, १९०१ तक, अन्य स्वतन्त्र शक्तियों ने भी जापान के साथ मैत्री स्थापन की।

१८९४ में जापान को फिर चीन का मुक़ाबला करने के लिए रण-क्षेत्र में अवतीर्ण होना पड़ा। इस बार पहले की सी लड़ाई न थी। चीन ने पूरी पूरी तैयारी कर ली थी। पर अन्त में चीन को हार जाना ही पड़ा। जापानी योद्धाओं ने अपनी वीरता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सिक्का संसार पर जमा दिया। इस युद्ध में मुत्सूहीटो ने अपने सेना-नायकों को बहुत उत्साहित किया।

१९०४ में, जापान को फिर अपनी वीरता प्रकट करने का अवसर प्राप्त हुआ। रूस से उस की खट पट होगई। वर्ष भर तक जिस ज़ोर के साथ यह युद्ध होता रहा और जापानियों ने जिस प्रकार की क़ुर्बानियाँ करके अपनी देश-भक्ति और वीरता का परिचय संसार को दिया, वह समाचार-पत्रों के पाठक भूले न होंगे। संसार उनकी वीरता और उनके सम्राट् मुत्सूहीटो और अन्य राज-पुरुषों की बुद्धिमत्ता और राजनीतिज्ञता का लोहा मान गया। उनके बल के सामने संसार की महाशक्ति रूस को अन्त में नीचा देखना पड़ा और नन्हें से जापान की गणना अब संसार की महती शक्तियों में होने लगी।

अज्ञात जापान अवनति के गढ़े से निकाला जाकर उन्नति और प्रसिद्धि के शिखर पर चढ़ा दिया गया। गला घोंटने और शरीर को छिन्न भिन्न करने वाली ज़मींदारी-प्रथा से उसे छुटकारा मिला। संसार की अग्र-गण्य जातियाँ और देश उसे अपनी बराबरी का समझने लगे। इतना ही नहीं, उसने अपनी उन्नति से भूमि-लोलुप पाश्चात्य महा-शक्तियों को समझा दिया कि अब भविष्यत् में वे एशिया महाद्वीप में फूँक फूँक कर क़दम रक्खें। ये सब महत्त्व-पूर्ण बातें थीं; पर ये बहुत ही अल्प काल में होगईं। इनका करना किसी एक आदमी का काम न था और न ये एक दिन में हो ही सकती थीं। वर्षों पूर्व्व से भीतर ही भीतर नाना प्रकार की शक्तियाँ जापानी जाति को ठोंक पीट कर इस परिवर्तन के लिए तैयार कर रही होंगी। परन्तु जापान के सम्राट् मुत्सूहीटो ने इस उन्नति-चक्र को घुमाने का जो यत्न किया वह कम महत्त्व का नहीं कहा जा सकता। पराधीनता के अन्धकार में ठोकर खाती फिरने वाली जाति का पुनरुद्धार करना बड़ा भारी काम अवश्य है; परन्तु अवनति के गढ़े में गिरी हुई जाति को सचेत कर के उन्नति के शिखर पर बिठा देना और संसार से उसकी प्रतिष्ठा करा लेना भी कम महत्त्व का काम नहीं। मुत्सूहीटो ने दूसरे प्रकार का काम कर दिखाया। यदि नेपोलियन बीस लाख से अधिक मनुष्यों का रक्तपात करा कर—फ्रान्स के प्रजा-सत्ताक राज्य का अपनी उच्च-अभिलाषाओं की पूर्त्ति के निमित्त बलिदान दे कर और अन्त में—हार जाने पर—फ्रान्स को योरप की शक्तियों के सामने घुटने टेके दया-प्रार्थी होते हुए छोड़ कर—महान् पुरुष कहा जा सकता है, तो संसार में शायद ही कोई ऐसा हृदय-शून्य मनुष्य हो जिसे मुत्सूहीटो को—जिन्हों ने अपने देश जापान ही को इस उच्च अवस्था को नहीं पहुँचाया, किन्तु पाश्चात्य शक्तियों के बढ़े हुए हाथों से पास के अन्य पूर्व्वीय देशों को भी अंशतः निर्भय करने का पुण्य कमाया—महान् पुरुष कहने में सङ्कोच हो।

जापानी जाति मुत्सुहीटो को जी-जान से चाहती थी। समय समय पर इस बात के कितने ही उदाहरण मिल चुके हैं। परन्तु उस समय की राज-भक्ति का दृश्य, जब मुत्सूहीटो मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए थे और चिकित्सकों ने जवाब दे दिया था, बड़ा ही कारुणिक था। राजमहल के चारों ओर हज़ारों जापानी उदास घूमते रहते थे और सम्राट् के नीरोग होने के लिए झुक झुक कर ईश्वर से प्रार्थना करते थे। एक आदमी ने तो सम्राट् के आरोग्य-लाभ के लिए बलिदान-स्वरूप आत्म-हत्या तक कर डाली। देश भर में नाच और तमाशे बन्द हो गये। व्यापार बन्द पड़ गया। मन्दिरों में पूजा-पाठ और प्रार्थनायें होने लगीं। महारानी दिन रात सम्राट् की सेवा-शुश्रूषा किया करतीं। युवराज योशीहीटो बीमार थे। पिता की नाज़ुक अवस्था का समाचार सुन कर वे बेहोश हो गये; परन्तु अच्छी चिकित्सा के प्रभाव से शीघ्र ही चंगे हो गये। वे भी पिता की रोग-शय्या के पास सदा मौजूद रहते। अन्त में स्त्री, पुत्र, और प्रजा, किसी की कोई सेवा काम न आई। सब को रोते छोड़ कर सम्राट् उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक को चले गये जहाँ एक दिन हम सब को जाना है।

मुत्सूहीटो के बाद उनके युवराज योशी हीटो जापान की गद्दी पर विराजमान हुए हैं। आपने घोषणा-पूर्व्वक प्रण किया है कि मैं उसी तरह शासन करूँगा जिस तरह कि मेरे पिता करते थे। एवमस्तु।

कालिदास का समय-निरूपण।

कालिदास नाम के कई संस्कृत-कवि हो गये हैं। कोई एक हज़ार वर्ष पहले, अपना नाम कालिदास रखने की चाल सी पड़ गई थी। कोई कालिदास का नाम पदवी के तौर पर अपने नाम के पीछे लगाता था; कोई अपना निज का नाम छोड़ कर कालिदास ही के नाम से अपने को प्रसिद्ध करता था; कोई अभिनव-कालिदास बनता था। राजशेखर नामक एक जैन कवि हो गया है। उसने अपनी सूक्तिमुक्तावली नाम की पुस्तक में तीन कालिदास होने का उल्लेख किया है:—

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु॥

नवसहसाङ्कचरित के कर्त्ता पद्मगुप्त ने अपना नाम परिमल-कालिदास रक्खा था। वह धाराधिप मुञ्ज की सभा-कवि था। भोज के शासन-समय में भी एक कालिदास हो गया है। ज्योतिर्विदाभरण और शत्रुपराभव नामक ज्योतिष-ग्रन्थों के कर्त्ताओं का नाम भी कालिदास ही था। रघुवंश आदि काव्यों के कर्त्ता विश्वविश्रुत कालिदास को लोग दीपशिखा-कालिदास कहते आये हैं। रघुवंश के छठे सर्ग में एक श्लोक है:—

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः॥

इस मनोहर पद्य में जो 'दीपशिखा' पद है उसी के कारण प्रसिद्ध कालिदास का नाम दीपशिखा-कालिदास पड़ गया है। किरातार्जुनीय के एक पद्य में 'आतपत्र', शिशुपालवध के एक पद्य में 'घण्टा' और हरविजय के एक पद्य में 'ताल' आजाने से इन तीनों काव्यों के कर्त्ता यथाक्रम आतपत्र-भारवि, घण्टा-माघ और ताल-रत्नाकर कहलाते हैं। इससे यह जान पड़ता है कि प्राचीन कवियों के काव्यों में यदि कोई विशेष सुन्दर शब्द आ जाते थे तो वे उन शब्दों के नाम से पुकारे जाने लगते थे। अस्तु! हमें औरों से मतलब नहीं; मतलब केवल दीपशिखा-कालिदास से है।

जिस महाकवि ने रघुवंश की रचना की है उसी ने कुमारसम्भव, मेघदूत, शाकुन्तला, विक्रमोर्व्वशीय और मालविकाग्निमित्र की भी रचना की है। इनके सिवा ऋतुसंहार और शृङ्गारतिलक आदि और भी कई छोटे छोटे काव्य इसी महाकवि के बनाये हुए मालूम होते हैं। पर इन पिछले काव्यों की रचना रघुवंश आदि पूर्व्व-निर्दिष्ट काव्यों की रचना के पहले की है।

कालिदास के ग्रन्थों में, तथा अन्यत्र भी, ऐसी अनेक बातें पाई जाती हैं जिनके आधार पर कालिदास के समय आदि का निरूपण किया जा सकता है। उनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है:—

(१) किसी विक्रम-नामधारी राजा से इस महाकवि का सम्बन्ध।

(२) उसके द्वारा की गई वाल्मीकि की प्रशंसा *

(३) रघुवंश में हूण, यवन आदि जातियों का उल्लेख †

(४) प्रशस्ति आदि में उसके नाम का पाया जाना।

---

* तामन्वगच्छद्रुदितानुसारी कविः कुशेध्माहरणाय यातः।
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः॥
रघुवंश, सर्ग १४

† तत्र हूणावरोधानां; यवनीमुखपद्मानां-इत्यादि। रघुवंश, सर्ग ४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) रघुवंश की आकस्मिक समाप्ति।

(६) भास, धावक, कविपुत्र आदि उसके समकालिकों का उसके तथा अन्यों के द्वारा नामोल्लेख।

आज तक कालिदास के समय-सम्बन्ध में विद्वानों ने जिन कल्पनाओं का आश्रय लिया है उनमें से प्रधान प्रधान कल्पनाओं का सम्बन्ध नीचे लिखी गई घटनाओं से है :—

(क) अग्निवर्ण के पुत्र का समय।

(ख) विक्रम-संवत् के आरम्भ का समय।

(ग) स्कन्दगुप्त का समय।

(घ) कोरूर के युद्ध का समय।

इनके सिवा किसी किसी ने ईसा के ग्यारहवें शतक में, धाराधिप भोज के यहाँ भी कालिदास के होने की कल्पना की है। पर यह कल्पना बिलकुल ही युक्तिहीन है। इस कल्पना के उद्भावकों को इसकी शायद ख़बर ही न थी कि कालिदास नाम के अनेक कवि हो गये हैं। भोज के समय में यदि कालिदास नाम का कोई कवि रहा हो तो हो सकता है; पर वह रघुवंश आदि का कर्त्ता नहीं हो सकता। बम्बई के डाक्टर भाऊ दाजी ने मातृगुप्त को ही कालिदास सिद्ध करने की चेष्टा की थी। पर उनकी वह चेष्टा और कल्पना अत्यन्त ही असार है। अतएव उस पर भी कुछ न कह कर पूर्वोक्त कल्पनाओं पर ही विचार किया जाता है।

रघुवंश के उन्नीसवें सर्ग में राजा अग्निवर्ण का वृत्तान्त है। उसी को लिख कर कालिदास ने रघुवंश की समाप्ति कर दी है। पर समाप्ति-सूचक कोई बात नहीं लिखी। कुछ परीक्षकों का ख़याल है कि अग्निवर्ण के पुत्र के समय में ही कालिदास थे। इसी से उन्हों ने अपने आश्रयदाता के पिता तक ही का वृत्तान्त लिखा है। अतएव वे ईसवी सन् के कोई ८०० वर्ष पहले विद्यमान थे। यह कल्पना ठीक नहीं। अग्निवर्ण के समय से रघुवंशी-राजाओं की महिमा और प्रभुता बहुत कुछ क्षीण हो चली थी। अतएव आगे होने वाले उपप्लवों और राज्यक्रान्तियों का वर्णन करने की कालिदास ने आवश्यकता न समझी। फिर, और राजाओं का वृत्तान्त लिखने से काव्य का विस्तार भी बहुत बढ़ जाता। एक बात और भी है। यदि कालिदास अग्निवर्ण के पुत्र के समय में होते तो वे उस राजा का भी कुछ हाल अवश्य लिखते। अपने आश्रयदाता अथवा सामयिक राजा का वर्णन न लिख कर पुस्तक की पूर्त्ति कर देना किसी तरह युक्तिसङ्गत नहीं ज्ञात होता। यह भी तो सोचने की बात है कि अग्निवर्ण के पुत्र के समय में होकर वे उसके पिता अग्निवर्ण की कामुकता का वर्णन कैसे कर सकते थे। अतएव यह कल्पना ग्राह्य नहीं।

कुछ लोगों की राय है कि कालिदास, विक्रम संवत् के आरम्भ में, महाराज विक्रमादित्य की सभा में थे। यह राय ठीक भी है और ठीक भी नहीं है। जहाँ तक इसका सम्बन्ध समय से है तहाँ तक यह ठीक नहीं। पर जहाँ तक इसका सम्बन्ध विक्रम नामक राजा से है तहाँ तक ठीक है। इस पर आगे चल कर हमें बहुत कुछ कहना है।

रघुवंश में हूणों का वर्णन देख कर कुछ परीक्षक पण्डितों ने यह कल्पना की है कि कालिदास, महाराज स्कन्दगुप्त के समय में, अर्थात् ईसवी सन् के पाँचवें शतक के अन्त में, विद्यमान थे। परन्तु भारतीय ग्रन्थकारों ने हूण, यवन, शक आदि शब्दों का प्रयोग जाति-वाचक कई अर्थों में किया है। अतएव यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि कालिदास के हूण वही इतिहास-प्रसिद्ध हूण थे जिन्होंने, ४५८ ईसवी में, भारत पर चढ़ाई की थी। बहुत सम्भव है, उसके पहले भी उनका नाम भारतवासियों को ज्ञात रहा हो; क्योंकि लूट-पाट करने के लिए ये लोग इस देश की सीमा के भीतर ज़बर्दस्ती घुस आया करते रहे होंगे।

किसी किसी इतिहास-लेखक की राय है कि उज्जैन के किसी विक्रम नामधारी राजा ने कोरूर की लड़ाई में म्लेच्छों को परास्त किया था। यह लड़ाई ईसवी सन् के छठे शतक के मध्य भाग में हुई थी। विन्सेंट स्मिथ साहब ने अपने भारतवर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास में लिखा है कि मध्य भारत में यशोधर्म्मा नाम का एक राजा था। मगध-नरेश बालादित्य की सहायता से उसी ने मिहिरगुल नामक म्लेच्छ राजा को हराया था। यद्यपि यह घटना कोरूर-युद्ध के बहुत पहले की है तथापि कुछ लेखकों ने यशोधर्म्मा ही को विक्रमादित्य समझ लिया और यह कल्पना करली कि मालव-संवत् को उसी ने, अपनी जीत के उपलक्ष्य में, अपने नाम के अनुसार परिवर्त्तित करके उसका नाम विक्रम-संवत् कर दिया। यही नहीं, उन लोगों ने यह भी कल्पना कर ली कि संस्कृत-साहित्य का पुनरुज्जीवन भी यशोधर्म्मा ही के समय में हुआ और कालिदास भी उसी की सभा के सभासद् थे। इस कल्पना की उद्भावना का एक कारण यह भी हुआ कि—"धन्वन्तरिः क्षपणकोऽमरसिंहशङ्कुः"—इत्यादि नवरत्न-सम्बन्धी श्लोक में कालिदास के साथ वराहमिहर का भी नाम है। और, वराहमिहर का समय सन् ईसवी के छठे शतक का उत्तरार्ध माना जाता है। इसी से परीक्षा-प्रवृत्त पण्डितों ने यह सिद्धान्त निकाला कि जब वराहमिहिर यशोधर्म्मा के समय में थे तब कालिदास भी ज़रूर ही रहे होंगे। क्योंकि वे दोनों विक्रम की नवरत्नमालिका के अन्तर्गत थे। परन्तु नवरत्न-सम्बन्धी इस श्लोक में उतना ही सत्यांश है जितना कि भोजप्रबन्ध के उन लेखों में जिन में भवभूति, भारवि, माघ और कालिदास सब समकालीन माने गये हैं। अतएव यह कल्पना भी अग्राह्य है। अच्छा तो फिर कालिदास थे कब? सुनिए।

इसमें सन्देह नहीं कि कालिदास किसी विक्रम नामधारी राजा के सभासद् थे। अपने रूपकों में से एक का नाम विक्रमोर्वशीय रखना और उसकी प्रस्तावना में यह लिखना कि—"अनुत्सेकः खलु विक्रमालङ्कारः—" इस बात की पुष्टि करता है कि राजा विक्रम से कालिदास का कुछ सम्बध अवश्य था। जनश्रुति भी यही कहती है। कविवर अभिनन्द-कृत रामचरित का:—

ख्यातिं कामपि कालिदासकवयो नीताः शकारातिना

इत्यादि श्लोक भी इसकी पुष्टि करता है। अतएव जब तक इस कल्पना के विरुद्ध कोई प्रमाण न मिले तब तक इसे स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं।

अच्छा तो अब यह देखना है कि किस विक्रम के समय में कालिदास विद्यमान थे।

ईसा के पहले शतक में विक्रम नाम का कोई ऐतिहासिक राजा नहीं हुआ। उसके नाम से जो संवत् चलता है वह पहले मालवगणस्थित्याब्द * कहलाता था। महाराज यशोधर्म्मा के बहुत काल पीछे उसका नाम विक्रम-संवत् हुआ। गणरत्न-महोदधि के कर्ता वर्धमान पहले ग्रन्थकार हैं जिन्हों ने विक्रम-संवत् का उल्लेख किया है। यथा :—

सप्तनवत्यधिकेष्वेकादशसु शतेष्वतीतेषु।
वर्षाणां विक्रमतो गणरत्नमहोदधिर्विहितः॥

इसका पता नहीं चलता कि कब और किसने मालव-संवत् का नाम विक्रम-संवत् कर दिया। सम्भव है, यह परिवर्तन भ्रम से हुआ हो। मालवगण-स्थित्याब्द, एक तो बहुत लम्बा नाम है। फिर कर्ण-मधुर भी नहीं। इसी से किसी ने कथासहस्र के नायक कल्पित विक्रमादित्य को मालवेश्वर समझ कर उसी के नाम से इस संवत् को प्रसिद्ध कर दिया होगा।

अच्छा तो अब कालिदास के विक्रम का पता लगाना चाहिए। कालिदास शुङ्ग राजाओं से परिचित थे। वे फलितज्योतिष भी जानते थे और गणित ज्योतिष भी। मेघदूत में उन्होंने बृहत्कथा की कथाओं का उल्लेख किया है।

हूण आदि सीमाप्रान्त की जातियों का भी उन्हें ज्ञान था। उन्होंने अपने ग्रन्थों में पातञ्जल के अनुसार कुछ व्याकरण-प्रयोग जान बूझ कर ऐसे किये हैं जो बहुत कम प्रयुक्त होते हैं। इन कारणों से हम कालिदास को ईसवी सन् का पूर्ववर्ती नहीं मान सकते।

* मन्दसौर में ५२९ संवत् का जो उत्कीर्ण लेख मिला है:—वह इस संवत् का दर्शक सब से पुराना लेख है। उसमें लिखा है:—
मालवानां गणस्थित्या याते शतचतुष्टये—इत्यादि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे उसके बाद हुए हैं। पतञ्जलि ईसा के पूर्व दूसरे शतक में थे। उनके बाद पाली की पुत्री प्राकृत ने कितने ही रूप धारण किये। वह यहाँ तक प्रबल हो उठी कि कुछ समय तक उसने संस्कृत को प्रायः दबा सा दिया। अतएव जिस काल में प्राकृत का इतना प्राबल्य था उस काल में कालिदास ऐसे संस्कृत-कवि का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। फिर, पैशाची भाषा में लिखी हुई गुणाढ्यकृत बृहत्कथा की कथाओं से कालिदास का परिचित होना भी यह सूचित कर रहा है कि वे गुणाढ्य के बाद हुए हैं, प्राकृत के प्राबल्य-काल में नहीं। कालिदास ने अपने ग्रन्थों में ज्योतिष-सम्बन्धिनी जो बातें लिखी हैं उनसे वे आर्य्यभट्ट और वराहमिहिर के समकालीन ही से जान पड़ते हैं। या तो उन्होंने ज्योतिष का ज्ञान इन्हीं दोनों ग्रन्थकारों के ग्रन्थों से प्राप्त किया होगा या ठीक इनके पूर्ववर्त्ती ज्योतिषियों के ग्रन्थों से। इससे सूचित होता है कि कालिदास ईसवी सन् के तीसरे शतक के पहले के नहीं। पर इसके साथ ही यह भी मानना पड़ता है कि वे ईसवी सन् के पाँचवें शतक के बाद के भी नहीं, क्योंकि सातवें शतक के कवि बाणभट्ट ने हर्षचरित में कालिदास का नामोल्लेख किया है। दूसरे पुलकेशी की प्रशस्ति में रविकीर्त्ति ने भी भारवि के साथ कालिदास का नाम लिखा है। यह प्रशस्ति भी सातवें शतक की है। इस प्रशस्ति के समय भारवि को हुए कम से कम सौ वर्ष ज़रूर होचुके होंगे। क्योंकि किसी प्रसिद्ध राजा की प्रशस्ति में उसी कवि का नाम लिखा जा सकता है जो स्वयं भी ख़ूब प्रसिद्ध हो। और, प्राचीन समय में किसी की कीर्त्ति के प्रसार में सौ वर्ष से क्या कम लगते रहे होंगे। इधर बाण ने कालिदास का नामोल्लेख करने के सिवा सुबन्धु की वासवदत्ता का भी उल्लेख किया है। अतएव सुबन्धु भी बाण के कोई सौ वर्ष पूर्व हुए होंगे। इस हिसाब से भारवि और सुबन्धु का अस्तित्व-समय ईसवी सन् के छठे शतक के पूर्वार्द्ध में सिद्ध होता है। भारवि और सुबन्धु की रचना में भङ्गश्लेष आदि के कारण क्लिष्टता आगई है। पर यह दोष कालिदास की कविता में नहीं है। अतएव वे भारवि और सुबन्धु के कोई सौ वर्ष ज़रूर पहले के हैं। इस प्रकार कुछ विद्वानों का जो यह मत है कि कालिदास या तो ईसवी सन् के चौथे शतक के अन्त में विद्यमान थे, या पाँचवें शतक के आरम्भ में, सो बहुत ठीक मालूम होता है। हमारी राय तो यह है कि वे गुप्त-नरेश द्वितीय चन्द्रगुप्त, उपनाम विक्रमादित्य, और तत्परवर्ती कुमारगुप्त के समय में थे। अर्थात् अनुमान से वे ३७५ से ४५० ईसवी के बीच में विद्यमान थे।

छठे शतक में उत्पन्न भारवि और सुबन्धु ने पाणिनीय व्याकरण के नियमों का उल्लङ्घन नहीं किया; पर—"तं पातयां प्रथममास पपात पश्चात्;" "वपुः प्रकर्षात्;" "शक्यमालिङ्गितुं पवनः" इत्यादि में कालिदास ने उल्लंघन किया है। अतएव वे भारवि और सुबन्धु के ज़रूर पहले के हैं। भारवि और सुबन्धु के समय में पाणिनि की व्याकरण-विषयक आज्ञा सर्वमान्य हो चुकी थी। अतएव उसका किसी ने उल्लङ्घन नहीं किया। पर कालिदास के समय में यह बात न थी; तब पाणिनि के किसी किसी नियम का पालन न भी किया जाता था। इसी से कालिदास और अश्वघोष के काव्यों में पाणिनि की आज्ञा के प्रतिकूल प्रयोग पाये जाते हैं। अतएव इसमें सन्देह नहीं कि कालिदास, भारवि और सुबन्धु के पहले के हैं।

कालिदास के ग्रन्थों का आकलन करने से ज्ञात होता है कि उनका ज्योतिष-विद्या-विषयक ज्ञान गहन न था। अतएव वे आर्य्यभट्ट के बाद के नहीं हो सकते। वराहमिहिर के वे समकालीन भी नहीं हो सकते। क्योंकि इस समकालीनता का सूचक एक मात्र नवरत्न वाला पद्य है, जो योग्य प्रमाण नहीं। यह पद्य ज्योतिर्विदाभरण का है। इस पुस्तक की रचना किसी अर्वाचीन जैन पण्डित की जान पड़ती है। इसकी संस्कृत महा अशुद्ध है। इसका पूर्वोक्त श्लोक कदापि विश्वसनीय नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

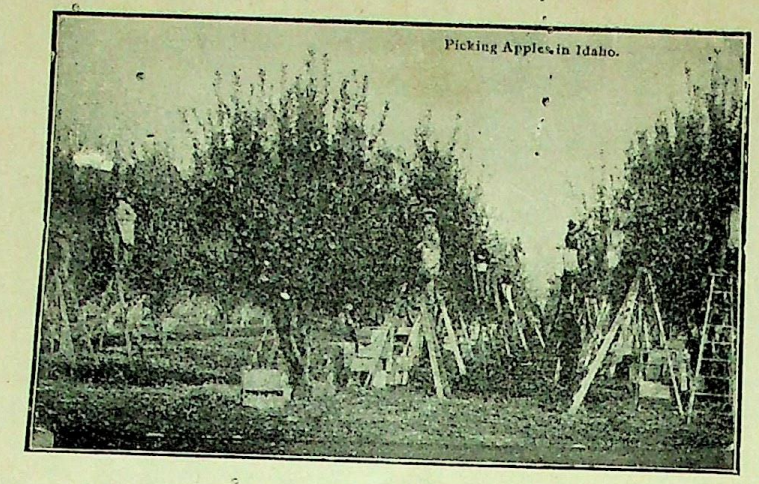

लुइस्टन के फलोपवन में फल तोड़ने का तरीक़ा ।

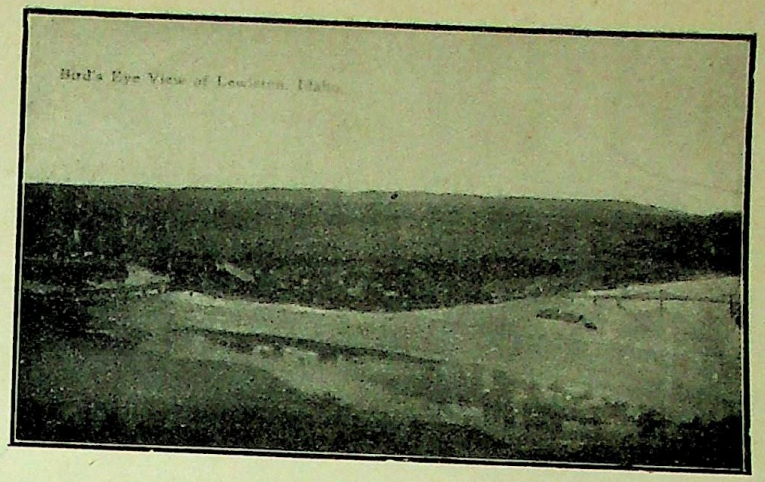

लुइस्टन-नगर का दृश्य ।

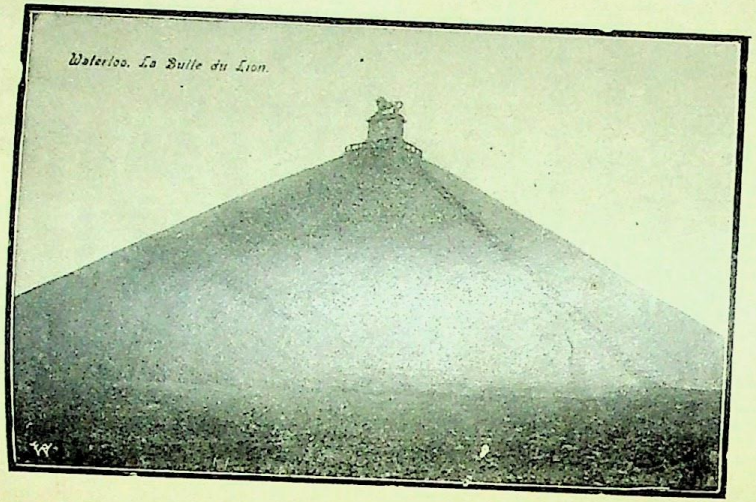

वाटरलू के युद्ध का स्मारक ।

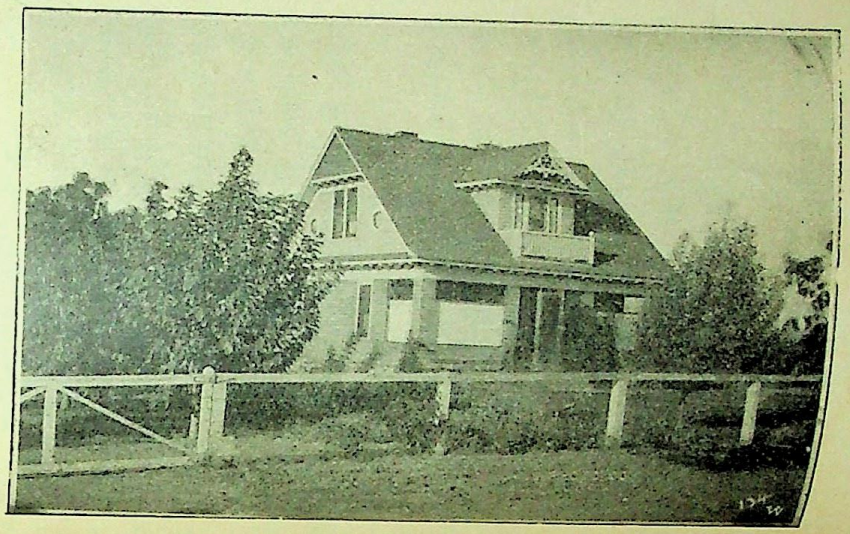

लुइस्टन-फलोपवन के एक बागीचे में रहने के लिए मकान ।

Indian Press, Allahabad.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास यद्यपि उज्जयिनी-नरेश की सभा के सदस्य थे तथापि उज्जयिनी उनकी जन्मभूमि नहीं कही जा सकती। कालिदास को ग्रीष्म ऋतु से सविशेष प्रेम था। उन्होंने अपने काव्यों में इस ऋतु का वर्णन कई जगह किया है। हिमालय-प्रदेश के दृश्यों से भी उनका अधिक परिचय था। जहाँ कहीं उनका वर्णन उन्होंने किया है बहुत ही अच्छा किया है। अतएव महाकवि बाण की तरह वे भी काश्मीर के निवासी थे। इसी से तो बिल्हण ने विक्रमाङ्कदेवचरित में लिखा है* कि कविता और केसर केवल काश्मीर में पैदा होती है, अन्यत्र नहीं। यदि कालिदास काश्मीरी न होते तो बिल्हण को यह गर्वोक्ति लिखने का कभी साहस न होता।

अनुमान से मालूम होता है कि प्रौढ़ वय में कालिदास ने उज्जयिनी-नरेश का आश्रय स्वीकार किया। क्योंकि कुमारसम्भव और मालविकाग्निमित्र में उनके उज्जयिनी-सम्बन्ध की कोई सूचना नहीं। कालिदास की युवावस्था के यही ग्रन्थ हैं। यदि वे उनकी रचना के समय उज्जेन में होते तो बहुत सम्भव था कि वहाँ का कुछ न कुछ हाल उनमें अवश्य पाया जाता। अब मेघदूत आदि पीछे के ग्रन्थों को देखिए। उनमें उज्जेन के मन्दिर, प्रासाद, उद्यान आदि का आँखों देखा सा वर्णन है। इससे मालूम होता है कि वे प्रौढ़ वय में उज्जेन आये और वहाँ के तत्कालीन राजा के आश्रय में उसकी सभा के सदस्य होकर रहे।

अच्छा तो उस समय उज्जेन का राजा कौन था। रघुवंश के छठे सर्ग में इन्दुमती के स्वयंवर का वर्णन है। स्वयंवर में आये हुए जिन राजाओं का उल्लेख कालिदास ने वहाँ पर किया है उनमें उन्होंने मगध-नरेश को प्रधानता दी है। पहले उसी का वर्णन किया है। उसी के सामने पहले इन्दुमती को खड़ा किया है। यह क्यों? उज्जयिनी-नरेश को क्यों प्रधानता न दी? इसका उत्तर यह है कि कालिदास के समय में मगधेश्वर ही अवन्ती का भी अधीश्वर था। इस बात को मान लेने से सारे झंझट दूर हो जाते हैं। यदि कालिदास यशोधर्म्मा या और किसी ऐसे राजा के यहाँ होते जिसका शासन मगध पर न होता, तो वे मगधेश्वर को कदापि इतनी प्रतिष्ठा न देते और उसका इतना पक्षपात न करते। रघुवंश के छठे सर्ग में जितने राजाओं का वर्णन कालिदास ने किया है उनमें अवन्ती और मगध के राजाओं को ही सब से अधिक बली और शक्तिशाली ठहराया है। लिखा है कि मगधपति की ही बदौलत पृथ्वी राजन्वती है; और राजा तो बहुत ही क्षुद्र हैं। अवन्ती के राजा के विषय में लिखा है कि उसके घोड़ों के खुरों से उड़ाई हुई धूल ने अन्यान्य राजाओं की मुकुट-मणियों की प्रभा क्षीण कर दी। इससे जान पड़ता है कि कालिदास के समय में अवन्ती (जिसकी राजधानी उज्जेन थी) और मगध का शासक एक ही राजा था। जो मगध का राजा था वही अवन्ती का भी। अच्छा तो ईसवी सन् के चौथे शतक के अन्त में ऐसा कोई राजा था भी? ज़रूर था। उसका नाम क्या था? उसका नाम था द्वितीय चन्द्रगुप्त। इतिहास-वेत्ताओं ने लिखा है कि मगध के सिंहासन पर उस समय यही राजा विराजमान था और इसी ने अवन्ती को जीत कर उसे भी अपने राज्य में मिला लिया था। अतएव, सिद्ध हुआ कि इसी राजा के आश्रय में कालिदास थे।

इस सिद्धान्त की पुष्टि में कितनी ही बातें कही जा सकती हैं। रघुवंश के छठे सर्ग में इन्दुमती जब मगधाधिप और अवन्तिनाथ के सामने हुई तब यद्यपि उसने उनमें से एक को भी पसन्द न किया तथापि वह उनसे बड़ी ही श्रद्धा और भक्ति से पेश आई। न उनके सामने उसने कोई अनादरसूचक चेष्टा ही की, न कोई आक्षेप-योग्य बात ही कही। परन्तु और राजाओं का उल्लङ्घन घृणा और तिरस्कारपूर्वक कर के वह आगे बढ़ती गई। इस से सूचित होता

* सहोदराः कुङ्कुमकेसराणां भवन्ति नूनं कविताविलासाः।
न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि कालिदास को मगध और अवन्ती के राजा का आदर मंज़ूर था। जिस समय रघुवंश का पूर्वार्द्ध लिखा गया उस समय रुद्रदामा का विजेता मगधाधिप द्वितीय चन्द्रगुप्त बूढ़ा हो चला था। कालिदास ने स्वयंवर में आये हुए मगध-नरेश का नाम परन्तप लिखा है। उसे इन्दुमती ने पसन्द न किया। कालिदास के इस लेख की चन्द्रगुप्त ने बूढ़े होने के कारण विशेष परवा न की होगी। पर यदि परन्तप के विषय में कालिदास कोई अनुचित बात लिख देते तो वह चन्द्रगुप्त को अवश्य असह्य होती। इसी से उन्हों ने ऐसा नहीं किया।

रघुवंश के छठे सर्ग में मगधाधिप परन्तप का वर्णन करते समय कालिदास ने लिखा है:—

ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः

इसके आगे अवन्ति-नरेश के वर्णन में उन्होंने कहा है:—

इन्दुं नवोत्थानमिवोन्दुमत्यै

इन श्लोकों में 'चन्द्रमस' और 'इन्दु' शब्दों का प्रयोग करके तो कालिदास ने चन्द्रगुप्त से अपना सम्बध साफ़ही साफ़ प्रकट कर दिया है। इसी प्रकार का साङ्केतिक वर्णन विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस की प्रस्तावना में भी किया है। यथाः—

क्रूरग्रहः सकेतुश्चन्द्रमसं पूर्णमण्डलमिदानीम्।
अभिभवितुमिच्छति बलाद्बुधयोगः॥

यहाँ पर भी 'चन्द्रमसं' पद से मौर्य्य चन्द्रगुप्त का अर्थ ध्वनित किया गया है। कालिदास ने भी पूर्वोक्त श्लोकों के 'चन्द्रमस' और 'इन्दु' शब्दों में द्वितीय चन्द्रगुप्त की ध्वनि निहित कर दी है।

इस सिद्धान्त के पुष्टीकरण में और भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। दिलीप और रघु का चरित, जैसा कि कालिदास ने चित्रित किया है, विलक्षणता से ख़ाली नहीं। चन्द्रगुप्त से कालिदास का सम्बन्ध मान लेने से इस विलक्षणता का कारण भी समझ में आ जाता है। प्राचीन पुराण-कथाओं में यह कहीं नहीं लिखा कि दिलीप ने अश्वमेध-यज्ञ किया था। रघु के दिग्विजय का उल्लेख भी उनमें नहीं। यदि हम यह मान लेते हैं कि कालिदास ने द्वितीय चन्द्रगुप्त के चरित को आदर्श मान कर रघु का चरित चित्रित किया है तो दिलीप और रघु के विषय में जो नई नई बातें उन्हों ने कहीं हैं उनका आशय तत्काल ही ध्यान में आ जाता है। रघुवंश में जिन राजाओं का वृत्तान्त है उनमें रघु और राम ही श्रेष्ठ हैं। रामचन्द्र का चरित तो इतना विश्रुत है कि उसको आदर्श मान कर अपने आश्रयदाता द्वितीय चन्द्रगुप्त के चरित का चित्रण करना कालिदास ने मुनासिब नहीं समझा। इसी से उन्होंने रघु को चन्द्रगुप्त का प्रतिनिधि बनाया।

कालिदास के आश्रयदाता द्वितीय चन्द्रगुप्त के पिता का नाम था समुद्रगुप्त। इस समुद्रगुप्त ने अश्वमेध-यज्ञ किया था। बस इसी से कालिदास ने रघु के पिता दिलीप से भी अश्वमेध-यज्ञ करा डाला। यह सिर्फ़ इस लिए कि पिता-पुत्र का सम्बन्ध ठीक हो जाय। चन्द्रगुप्त हुआ रघु और समुद्रगुप्त हुआ दिलीप। और देखिए। द्वितीय चन्द्रगुप्त की माँ बहुत करके किसी मगध-देशीय राजा की कन्या थी। इसी से रघु की माँ भी 'मागधी' बनाई गई। चन्द्रगुप्त की माँ का नाम था दत्ता देवी और रघु की माँ का था सुदक्षिणा। ये 'दत्ता' और 'दक्षिणा' शब्द भी समानार्थवाची हैं। चन्द्रगुप्त की विजयों होना इतिहास-प्रसिद्ध है। इसी से रघु की भी कालिदास ने दिग्विजय कराया। फाहियान नामक चीन-देशीय यात्री ने गुप्त-साम्राज्य के प्रथम भाग में भारतपर्य्यटन किया था। उसने लिखा है कि इस राज्य में चोरों का कहीं नामोनिशान भी नहीं। कालिदास ने दिलीप और रघु के शासन-समय के वर्णन में भी यही बात लिखी है:—

वातोऽपि नास्संयदंशुकानि
को लम्बयेदाहरणाय हस्तम्?

कालिदास ने रघुवंश में अपने वर्णन किये गये राजाओं के लिए गोप्तृ शब्द का अनेक बार प्रयोग किया है। यह शब्द और कवियों ने बहुत ही कम लिखा है। अब देखिए, जिस धातु से गोप्तृ शब्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बना है उसी से गुप्त भी बना है। अतएव कालिदास के 'गोप्ता' और 'गोप्तरि' आदि प्रयोग मगध के गुप्त-नरेश के ही स्मारक हैं। एक जगह, रघुवंश में, तोः—

स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः

लिख कर गुप्त-शब्द का उन्हों ने स्पष्ट ही उल्लेख कर दिया है।

अतएव सर्वथा सिद्ध है कि विक्रमादित्य और विक्रमाङ्क आदि विरुदधारी, पश्चिमी सागर पर्य्यन्त गुप्त-राज्य का विस्तार बढ़ानेवाले, गुजरात के शक-सत्रपों का संहार करने के कारण शकारि पदवी पानेवाले मगधाधीश दूसरे चन्द्रगुप्त के समय में ही कालिदास विद्यमान थे। सुदूरवर्ती पूर्व के सुह्म आदि और दक्षिण के चोल आदि कुछ प्रदेशों को छोड़ कर अवशिष्ट सारे भारत का कई चालीस वर्ष तक यही चक्रवर्ती राजा था। रघुवंश के चौथे सर्ग में कालिदास ने जिन जिन देशों का रघु के द्वारा जीता जाना लिखा है उन उन सभी देशों पर द्वितीय चन्द्रगुप्त का अधिकार था। परन्तु रघु के विजित देशों में मगध और अवन्ती का नाम नहीं। यह क्यों? यह इसी लिए कि रघु तो द्वितीय चन्द्रगुप्त की छाया मात्र है। अवन्ती और मगध का तो वह राजा ही था। उनका उल्लेख कालिदास क्यों करते। जिसका जहाँ पहलेही से अधिकार होता है उसका जीतना कैसा? रघु को चन्द्रगुप्त का प्रतिनिधि माने बिना यह प्रश्न, और किसी तरह, हल नहीं हो सकता।

जान पड़ता है कालिदास की मृत्यु बूढ़े होने पर हुई। अपने आश्रयदाता चन्द्रगुप्त के मरने के बाद भी वे कुछ समय तक शायद जीवित थे। अपने अन्तिम वय में ही उन्होंने शाकुन्तला और रघुवंश का उत्तरार्द्ध लिखा होगा। कालिदास को अपने नूतन वय में उज्जयिनी राजधानी से बड़ा प्रेम था। पर बुढ़ापे में राज-नगर और राज-प्रासाद से उन्हें घृणा सी होगई थी। शाकुन्तला में वे दुष्यन्त के राज-भवन के विषय में कण्व के शिष्य के मुँह से कहलाते हैं:—

जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं गृहमिव।

अनुमान से मालूम होता है कि उनका जितना आदर-सत्कार चन्द्रगुप्त के समय में था उतना उसके उत्तराधिकारी कुमारगुप्त के समय में नहीं रहा। इसी से खिन्न हो कर उन्होंने शाकुन्तला और रघुवंश के अन्तिम कई सर्गों में अपने मन के विकार विवश होकर प्रकट किये हैं। मेघदूत में उज्जयिनी की इतनी प्रशंसा करके, उत्तर वय में वे नगरवास की अपेक्षा वनवास के ही विशेष अनुरागी से हो गये जान पड़ते हैं। चन्द्रगुप्त के बाद मगध की ऊर्ज्जितावस्था क्षीण होती गई। इसी को लक्ष्य करके कालिदास ने रघुवंश के अठारहवें सर्ग में कई जगह रघुवंशियों के राज्य की हीनावस्था दिखाई है और अन्त के, अर्थात् उन्नीसवें सर्ग में तो राजा अग्निवर्ण की कामुकता और मृत्यु का वर्णन करके रघु के वंश की प्रायः समाप्ति ही सी कर दी है।

अतएव यह सिद्धप्राय है कि कालिदास ईसवी सन् के चौथे शतक के अन्त और पाँचवें शतक के आरम्भ में विद्यमान थे। अशोक के अनन्तर इसी समय भारतवर्ष की गौरववृद्धि हुई। मेण्ठ, सुबन्धु, भास आदि महाकवि, दिङ्नाग, उद्योतकर आदि दार्शनिक और आर्यभट्ट, वराहमिहिर आदि वैज्ञानिक भी इसी समय हुए। इस समय भारत में विद्योन्नति का जो प्रादुर्भाव हुआ वह कोई एक हज़ार वर्ष तक बना रहा। तेरहवें शतक में राजा लक्ष्मणसेन के राज्य का अवसान होने पर उसका भी अवसान होगया।

यह लेख साहित्याचार्य्य पण्डित रामावतार शर्म्मा, एम० ए० के एक हस्तलिखित संस्कृत-अँगरेज़ी-प्रबन्ध के आधार पर लिखा गया है।

अन्योक्ति-पुष्पावली।

खद्योत।

१—खद्योत! है लुप्त जहाँ निशेश
है वारिदाच्छन्न नभ-प्रदेश।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है यत्र सर्वत्र बढ़ा अँधेरा—
है योग्य ही तत्र विकाश तेरा ॥

सन्ध्या ।

२—सदैव ही क्यों रहती न बन्ध्या—
तम-प्रसू तू बनती न सन्ध्या !
कु-पुत्रता हा ! न किसे खली है ?
अपुत्रता ही उस से भली है ॥

पत्थर ।

३—तप में तनुदाहक चण्ड हुए
हिम की ऋतु में हिम-खण्ड हुए ।
कुछ भी सुविचार किया न अरे !
तुम आख़िर पत्थर ही ठहरे ॥

कुक्कुट ।

४—मैं ही जगाता सब को पुकार के,
मानी न हो कुक्कट ! यों विचार के ।
तू बोलता जाकर है नहीं जहाँ
होता नहीं मूढ़ ! निशान्त क्या वहाँ ?

हिमालय ।

५—तू भेषजालय-धनालय भी बड़ा है,
हा ! किन्तु नाम तुहिनालय ही पड़ा है ।
होते प्रसिद्ध गुण सत्वर हैं न वैसे
हैं फैलते जगत में द्रुत दोष जैसे ॥

मेघ ।

६—देते समान तुम तो सब को सुनीर,
पाते न किन्तु हम चातक ही अधीर ।
है दोष हे जलद ! क्या इस में तुम्हारा ?
दुर्भाग्य मात्र यह निश्चय है हमारा ॥

गङ्गाजल ।

७—है कौन जन्हु-तनया- जल सा पवित्र
गाते समस्त जन हैं जिस के चरित्र ।
है रीति किन्तु मुझ चातक की तथापि
लेता नहीं घन बिना जल मैं कदापि ॥

आम्र ।

८—तव मधुर फलों की प्राप्ति का ही रसाल !
यह शुभ फल मैं हूँ मानता सर्व-काल !
मुझ पिक-खग की जो भारती अर्थहीन
सहृदय रसिकों को मोद देती नवीन ॥

चन्द्रमा ।

९—यद्यपि गुण अनेकों आप में श्रेष्ठ पाते
तद्पि सब कलङ्की आप को हैं बताते !
अहह ! सच कहा है पण्डितों ने निशेश !
सब गुण हरता है एक ही दोष-लेश ॥

काक ।

१०—बलि-समय तुझे जो अन्न का दान देते,
न समझ इस से तू वे तुझे मान देते !
अहह ! हृदय से भी तू रहा काक ! काला !
समय पर सभी से काम जाता निकाला ॥

मैथिलीशरण गुप्त ।

मज़दूरी और प्रेम ।

हल चलानेवाले का जीवन ।

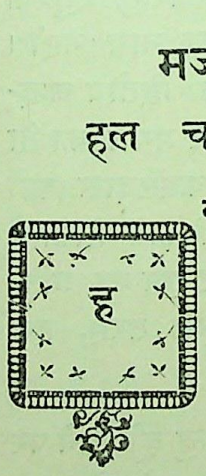

हल चलाने और भेड़ चराने वाले प्रायः स्वभाव से ही साधु होते हैं । हल चलाने वाले अपने शरीर का हवन किया करते हैं। खेत उनकी हवन-शाला है । उनके हवन-कुण्ड की ज्वाला की किरणें चावल के लम्बे और सुफ़ेद दानों के रूप में निकलती हैं । गेहूँ के लाल लाल दाने इस अग्नि की चिनगारियों की डलियाँ सी हैं। मैं जब कभी अनार के फूल और फल देखता हूँ तब मुझे बाग़ के माली का रुधिर याद आजाता है। उसकी मेहनत के कण ज़मीन में गिर कर उगे हैं, और हवा तथा प्रकाश की सहायता से वे मीठे फलों के रूप में नज़र आरहे हैं । किसान मुझे अन्न में,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फूल में, फल में आहुत हुआ सा दिखाई पड़ता है। कहते हैं, ब्रह्माहुति से जगत् पैदा हुआ है। अन्न पैदा करने में किसान भी ब्रह्मा के समान हैं। खेती उसके ईश्वरी प्रेम का केन्द्र है। उसका सारा जीवन पत्ते-पत्ते में, फूल-फूल में, फल-फल में बिखर रहा है। वृक्षों की तरह उसका भी जीवन एक प्रकार का मौन जीवन है। वायु, जल, पृथ्वी, तेज और आकाश की नीरोगता इसी के हिस्से में है। विद्या यह नहीं पढ़ा; जप और तप यह नहीं करता; सन्ध्या-वन्दनादि इसे नहीं आते; ज्ञान, ध्यान का इसे पता नहीं; मन्दिर, गिरजे, मसजिद से इसे कोई सरोकार नहीं; केवल साग-पात खाकर ही यह अपनी भूख निवारण कर लेता है। ठण्ढे चश्मों और बहती हुई नदियों के शीतल जल से यह अपनी प्यास बुझा लेता है। प्रातःकाल उठ कर यह अपने हल-बैलों को नमस्कार करता है और हल जोतने चल देता है। दोपहर की धूप इसे भाती है। इसके बच्चे मिट्टी ही में खेल खेल कर बड़े होजाते हैं। इसको और इसके परिवार को बैल और गौवों से प्रेम है। उनकी यह सेवा करता है। पानी बरसाने वाले के दर्शनार्थ इसकी आँखें नीले आकाश की ओर उठती हैं। नयनों की भाषा में यह प्रार्थना करता है। सायं और प्रातः, दिन और रात, विधाता इसके हृदय में अचिन्तनीय और अद्भुत आध्यात्मिक भावों की वृष्टि करता है। यदि कोई इसके घर आजाता है तो यह उसको मृदु वचन, मीठे जल और अन्न से तृप्त करता है। धोखा यह किसी को नहीं देता। यदि इसको कोई धोखा दे भी दे, तो उसका इसे ज्ञान नहीं होता; क्योंकि इसकी खेती हरी भरी है; गाय इसकी दूध देती है; स्त्री इसकी आज्ञा-कारिणी है; मकान इसका पुण्य और आनन्द का स्थान है। पशुओं को चराना, नहलाना, खिलाना, पिलाना, उनके बच्चों को अपने बच्चों की तरह सेवा करना, खुले आकाश के नीचे उनके साथ रातें गुज़ार देना क्या स्वाध्याय से कम है? दया, वीरता और प्रेम जैसा इन किसानों में देखा जाता है अन्यत्र मिलने का नहीं। गुरु नानक ने ठीक कहा है:—"भोले भाव मिलें रघुराई"। भोले भाले किसानों को ईश्वर अपने खुले दीदार का दर्शन देता है। उनकी फूस की छतों में से सूर्य्य और चन्द्रमा छन छन कर उनके बिस्तरों पर पड़ते हैं। ये प्रकृति के जवान साधु हैं। जब कभी मैं इन बे-मुकुट के गोपालों के दर्शन करता हूँ, मेरा सिर स्वयं ही झुक जाता है। जब मुझे किसी फ़क़ीर के दर्शन होते हैं तब मुझे मालूम होता है कि नङ्गे सिर, नङ्गे पाँव, एक टोपी सिर पर, एक लँगोटी कमर में, एक काली कमली कन्धे पर, एक लम्बी लाठी हाथ में लिये हुए गौवों का मित्र, बैलों का हमजोली, पक्षियों का हमराज़, महाराजाओं का अन्न-दाता, बादशाहों को ताज पहनाने और सिंहासन पर बिठाने वाला, भूखों और नंगों का पालने वाला, समाज के पुष्पोद्यान का माली और खेतों का वाली जा रहा है।

गड़रिये का जीवन।

एक बार मैंने एक बुड्ढे गड़रिये को देखा। घना जङ्गल है। हरे हरे वृक्षों के नीचे उसकी सुफ़ेद ऊनवाली भेड़ें अपना मुँह नीचे किये हुए कोमल कोमल पत्तियाँ खा रही हैं। गड़रिया बैठा आकाश की ओर देख रहा है। ऊन कातता जाता है। उसकी आखों में प्रेम-लाली छाई हुई है। वह नीरोगता की पवित्र मदिरा से मस्त हो रहा है। बाल उसके सारे सुफ़ेद हैं। और, क्यों न सुफ़ेद हों? सुफ़ेद भेड़ों का मालिक जो ठहरा! परन्तु उसके कपोलों से लाली फूट रही है। बरफ़ानी देशों में वह मानो विष्णु के समान क्षीर-सागर में लेटा है। उसकी प्यारी स्त्री उसके पास रोटी पका रही है। उसकी दो जवान कन्यायें उसके साथ जङ्गल जङ्गल भेड़ चराती घूमती हैं। अपने माता-पिता और भेड़ों को छोड़ कर उन्हों ने किसी और को नहीं देखा। मकान इनका बे मकान है; घर इनका बे घर है; ये लोग बे नाम और बे पता हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी घर में न घर कर बैठना इस दारे फ़ानी में।
ठिकाना बे ठिकाना और मकां बर ला-मकां रखना॥

इस दिव्य परिवार को कुटी की ज़रूरत नहीं। जहाँ जाते हैं एक घास की झोपड़ी बना लेते हैं। दिन को सूर्य्य और रात को तारागण इनके सखा हैं।

गड़रिये की कन्या पर्वत के शिखर के ऊपर खड़ी सूर्य्य का अस्त होना देख रही है। उसकी सुनहली किरणें इस के लावण्यमय मुख पर पड़ रही हैं। यह सूर्य्य को देख रही है और वह इसको देख रहा है।

हुए थे आँखों के कल इशारे इधर हमारे उधर तुम्हारे।
चले थे अश्कों के क्या फ़वारे इधर हमारे उधर तुम्हारे॥

बोलता कोई भी नहीं। सूर्य्य उसकी युवावस्था की पवित्रता पर मुग्ध है और वह आश्चर्य्य के अवतार सूर्य्य की महिमा के तूफ़ान में पड़ी नाच रही है।

इनका जीवन बर्फ़ की पवित्रता से पूर्ण और वन की सुगन्धि से सुगन्धित है। इनके मुख, शरीर, और अन्तःकरण सुफ़ेद; इनकी बर्फ़, पर्वत और भेड़ें सुफ़ेद। अपनी सुफ़ेद भेड़ों में यह परिवार शुद्ध सुफ़ेद ईश्वर के दर्शन करता है।

जो ख़ुदा को देखना हो तो मैं देखता हूँ तुमको।
मैं देखता हूँ तुमको जो ख़ुदा को देखना हो॥

भेड़ों की सेवाही इनकी पूजा है। ज़रा एक भेड़ बीमार हुई, सब परिवार पर विपत्ति आई। दिन रात उसके पास बैठे काट देते हैं। उसे अधिक पीड़ा हुई तो इन सब की आँखें शून्य आकाश में किसी को देखने लग गईं। पता नहीं ये किसे बुलाती हैं। हाथ जोड़ने तक की इन्हें फ़ुरसत नहीं। पर, हाँ, इन सब की आँखें किसी के आगे शब्द-रहित, सङ्कल्प-रहित, मौन प्रार्थना में खुली हुई हैं। दो रातें इसी तरह गुज़र गईं। इनकी भेड़ अब अच्छी है। इन के घर मङ्गल हो रहा है। सारा परिवार मिल कर गा रहा है। इतने में नीले आकाश पर बादल घिर आये और झम झम बरसने लगे। मानो प्रकृति के देवता भी इनके आनन्द से आनन्दित हुए। बूढ़ा गड़रिया आनन्द-मत्त हो कर नाचने लगा। वह कहता कुछ नहीं; पर किसी दैवी दृश्य को उसने अवश्य देखा है। वह फूले अङ्ग नहीं समाता। रग रग उसकी नाच रही है। पिता को ऐसा सुखी देख दोनों कन्यायों ने एक दूसरे का हाथ पकड़ कर पहाड़ी राग अलापना आरम्भ कर दिया। साथही धम-धम थम-थम नाच की उन्होंने धूम मचा दी। मेरी आँखों के सामने ब्रह्मानन्द का समाँ बाँध दिया। मेरे पास मेरा भाई खड़ा था। मैंने उससे कहा—"भाई, अब मुझे भी भेड़ें ले दो"। ऐसेही मूक जीवन से मेरा भी कल्याण होगा। विद्या को भूल जाऊँ तो अच्छा है। मेरी पुस्तकें खो जावें तो उत्तम है। ऐसा होने से कदाचित् इस वनवासी परिवार की तरह मेरे दिल के नेत्र खुल जायँ और मैं ईश्वरी झलक देख सकूँ। चन्द्र और सूर्य्य की विस्तृत ज्योति में जो वेदगान हो रहा है उसे इस गड़रिये की कन्याओं की तरह मैं सुन तो न सकूँ, परन्तु कदाचित् प्रत्यक्ष देख सकूँ। कहते हैं, ऋषियों ने भी, इनसे देखाही था, सुना न था। पण्डितों की ऊटपटांग बातों से मेरा जी उकता गया है। प्रकृति की मन्द मन्द हँसी में, ये अनपढ़ लोग ईश्वर के हँसते हुए ओंठ देख रहे हैं। पशुओं के अज्ञान में गम्भीर ज्ञान छिपा हुआ है। इन लोगों के जीवन में अद्भुत आत्मानुभव भरा हुआ है। गड़रिये के परिवार की प्रेम-मज़दूरी का कौन मूल्य दे सकता है?

मज़दूर की मज़दूरी।

आप ने चार आने पैसे मज़दूर के हाथ में रख कर कहा—"यह लो, दिन भर की अपनी मज़दूरी"। वाह क्या दिल्लगी है! हाथ, पाँव, सिर आँखें इत्यादि सबके सब अवयव उसने आप को अर्पण कर दिये। ये सब चीज़ें उसकी तो थीही नहीं; ये तो ईश्वरीय पदार्थ थे। जो पैसे आपने उसको दिये वे भी आपके न थे। वे तो पृथिवी से निकली हुई धातु के टुकड़े थे; अतएव ईश्वर के निर्म्मित थे। मज़दूरी का ऋण तो परस्पर की प्रेम-सेवा से चुकता होता है; अन्न-धन देने से नहीं। वे तो दोनों ही ईश्वर के हैं। अन्न-धन वही बनाता है और जल भी वही देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक जिल्दसाज़ ने मेरी एक पुस्तक की जिल्द बाँध दी। मैं तो इस मज़दूर को कुछ भी न दे सका। परन्तु उसने मेरी उम्र भर के लिए एक विचित्र वस्तु मुझे दे डाली। जब कभी मैंने उस पुस्तक को उठाया मेरे हाथ जिल्द-साज़ के हाथ पर जा पड़े। पुस्तक देखतेही मुझे जिल्दसाज़ याद आ जाता है। वह मेरा आमरण मित्र हो गया है। पुस्तक हाथ में आतेही मेरे अन्तःकरण में रोज़ भरत-मिलाप का सा समाँ बँध जाता है।

गाढ़े की एक कमीज़ को एक अनाथ विधवा सारी रात बैठ कर सीती है; साथही साथ वह अपने दुख पर रोती भी है:—दिन को खाना नहीं मिला; रात को भी कुछ मयस्सर न हुआ। अब वह एक एक टाँके पर आशा करती है कि कमीज़ कल तैयार हो जायगी; तब कुछ तो खाने को मिलेगा। जब वह थक जाती है तब ठहर जाती है। सुई हाथ में लिये हुए है। कमीज़ घुटने पर बिछी हुई है। उसकी आँखों की दशा उस आकाश की जैसा है जिसमें बादल बरस कर अभी अभी बिखर गये हैं। खुली आँखें ईश्वर के ध्यान में लीन हो रही हैं। कुछ काल के उपरान्त—"हे राम"—कह कर उसने फिर सीना शुरू कर दिया। इस माता और इस बहन की सिली हुई कमीज़ मेरे लिए मेरे शरीर का नहीं—मेरी आत्मा का वस्त्र है। इसका पहनना मेरी तीर्थ-यात्रा है। इस कमीज़ में उस विधवा के सुख, दुख, प्रेम और पवित्रता के मिश्रण से मिली हुई जीवन-रूपिणी गङ्गा की बाढ़ चली जा रही है। ऐसी मज़दूरी और ऐसा काम—प्रार्थना, सन्ध्या और नमाज़ से क्या कम है? शब्दों से तो प्रार्थना हुआ नहीं करती। ईश्वर तो कुछ ऐसोही मूक-प्रार्थनायें सुनता है और तत्काल सुनता है।

प्रेम-मज़दूरी।

मुझे तो मनुष्य के हाथ से बने हुए कामों में उन के प्रेम-मय पवित्र आत्मा की सुगन्ध आती है। रफ़ैल आदि के चित्रित चित्रों में उनकी कला-कुशलता को देख, इतनी सदियों के बाद भी उन के अन्तःकरण के सारे भावों का अनुभव होने लगता है। केवल चित्र का ही दर्शन नहीं, किन्तु, साथ ही, उस में छिपी हुई चित्रकार की आत्मा तक के दर्शन हो जाते हैं। परन्तु यन्त्रों की सहायता से बने हुए फोटो निर्जीव से प्रतीत होते हैं। उन में और हाथ के चित्रों में उतनाही भेद है जितना कि बस्ती और श्मशान में।

हाथ की मेहनत से चीज़ में जो रस भर जाता है वह भला लोहे के द्वारा बनाई हुई चीज़ में कहाँ। जिस आलू को मैं स्वयं बोता हूँ, मैं स्वयं पानी देता हूँ, जिसके इर्द गिर्द की घास-पात खोद कर मैं साफ़ करता हूँ उस आलू में जो रस मुझे आता है वह टीन में बन्द किये हुए अचार-मुरब्बे में नहीं आता। मेरा विश्वास है कि जिस चीज़ में मनुष्य के प्यारे हाथ लगते हैं, उस में उस के हृदय का प्रेम और मन की पवित्रता सूक्ष्मरूप से मिल जाती है और उस में मुर्दे को ज़िन्दा करने की शक्ति आ जाती है। होटल में बने हुए भोजन महा नीरस होते हैं, क्योंकि वहाँ मनुष्य मशीन बना दिया जाता है। परन्तु अपनी प्रियतमा के हाथ से बने हुए रूखे सूखे भोजन में कितना रस होता है। जिस मिट्टी के घड़े को कन्धों पर उठा कर, मीलों दूर से उसमें मेरी प्रेममग्न प्रियतमा ठण्ढा जल भर लाती है, उस लाल घड़े का जल जब मैं पीता हूँ तब जल क्या पीता हूँ—अपनी प्रेयसी के प्रेमामृत को पान करता हूँ। जो ऐसा प्रेम-प्याला पीता हो उसके लिए शराब क्या वस्तु है? प्रेम से जीवन सदा गद् गद् रहता है। मैं अपनी प्रेयसी की ऐसी प्रेम-भरी, रस-भरी, दिलभरी सेवा का बदला क्या कभी दे सकता हूँ?

उधर प्रभात ने अपनी सुफ़ेद किरणों से अँधेरी रात पर सुफ़ेदी सी छिटकी, इधर मेरी प्रेयसी, मैना अथवा कोयल की तरह, अपने बिस्तर से उठी। उसने गाय का बछड़ा खोला; दूध की धारों से अपना कटोरा भर लिया। गाते गाते अन्न को अपने हाथों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पीस कर सुफ़ेद आटा बना लिया। इस सुफ़ेद आटे से भरी हुई छोटी सी टोकरी सिर पर; एक हाथ में दूध से भरा हुआ लाल मिट्टी का कटोरा; दूसरे हाथ में मक्खन की हाँड़ी। जब मेरी प्रिया घर की छत के नीचे इस तरह खड़ी होती है तब वह छत के ऊपर की श्वेत प्रभा से भी अधिक आनन्ददायक, बलदायक, बुद्धि-दायक जान पड़ती है। उस समय वह उस प्रभा से भी अधिक रसीली, अधिक रँगीली—जीती जागती, चैतन्य और आनन्दमयी प्रातःकालीन शोभा सी, लगती है। मेरी प्रिया अपने हाथ से चुनी हुई लकड़ियों को अपने दिल से चुराई हुई एक चिनगारी से लाल अग्नि में बदल देती है। जब वह आटे को छलनी से छानती है तब मुझे उसकी छलनी के नीचे एक अद्भुत ज्योति की लौ नज़र आती है। जब वह उस अग्नि के ऊपर मेरे लिए रोटी बनाती है तब उसके चूल्हे के भीतर मुझे तो पूर्व दिशा की नभोलालिमा से भी अधिक आनन्ददायिनी लालिमा देख पड़ती है। यह रोटी नहीं, कोई अमूल्य पदार्थ है। मेरे गुरु ने इसी प्रेम से संयम करने का नाम योग रक्खा है। मेरा यही योग है।

मज़दूरी और कला।

आदमियों की तिजारत करना मूर्खों का काम है। सोने और लोहे के बदले मनुष्य को बेचना मना है। आज कल भाफ़ की कलों का दाम तो हज़ारों रुपया है, परन्तु मनुष्य कौड़ी के सौ सौ बिकते हैं। सोने और चाँदी की प्राप्ति से जीवन का आनन्द नहीं मिल सकता। सच्चा आनन्द तो मुझे मेरे काम से मिलता है। मुझे अपना काम मिल जाय तो फिर स्वर्ग-प्राप्ति की इच्छा नहीं। मनुष्य-पूजा ही सच्ची ईश्वर-पूजा है। मन्दिर और गिरजे में क्या रक्खा है? ईंट, पत्थर, चूना, कुछ ही कहो—आज से हम अपने ईश्वर की तलाश मन्दिर, मसजिद, गिरजा और पोथी में न करेंगे। अब तो यही इरादा है कि मनुष्य की अनमोल आत्मा में ईश्वर के दर्शन करेंगे। यही आर्ट है—यही धर्म है। मनुष्य के हाथ ही से तो ईश्वर के दर्शन करानेवाले निकलते हैं। मनुष्य और मनुष्य की मज़दूरी का तिरस्कार करना नास्तिकता है। बिना काम, बिना मज़दूरी, बिना हाथ के कलाकौशल के विचार और चिन्तन किस काम के! सभी देशों के इतिहासों से सिद्ध है कि निकम्मे पादड़ियों, मौलवियों, पण्डितों और साधुओं का, दान के अन्न पर पला हुआ ईश्वर-चिन्तन, अन्त में पाप, आलस्य और भ्रष्टाचार में परिवर्तित हो जाता है। जिन देशों में हाथ और मुँह पर मज़दूरी की धूल नहीं पड़ने पाती वे धर्म और कलाकौशल में कभी उन्नति नहीं कर सकते। पद्मासन निकम्मे सिद्ध हो चुके हैं। वही आसन ईश्वर-प्राप्ति करा सकते हैं जिनसे जोतने, बोने, काटने और मज़दूरी का काम लिया जाता है। लकड़ी, ईंट और पत्थर को मूर्तिमान् करनेवाले लुहार, बढ़ई, मेमार तथा किसान आदि वैसे ही दिव्य पुरुष हैं जैसे कि कवि, महात्मा और योगी आदि। उत्तम से उत्तम और नीच से नीच काम सब के सब, प्रेम-शरीर के अङ्ग हैं।

निकम्मे रह कर मनुष्यों की चिन्तन-शक्ति थक गई है। बिस्तरों और आसनों पर सोते सोते और बैठे बैठे मन के घोड़े हार गये हैं। सारा जीवन निचुड़ चुका है। स्वप्न पुराने हो चुके हैं। आज कल की कविता में नयापन नहीं। उसमें पुराने ज़माने की कविता की पुनरावृत्ति मात्र है। इस नक़ल में असल की पवित्रता और कुँवारेपन का अभाव है। अब तो एक नये प्रकार का कला-कौशल-पूर्ण सङ्गीत साहित्य संसार में प्रचलित होनेवाला है। यदि वह न प्रचलित हुआ तो मशीनों के पहियों के नीचे दब कर हमें मरा समझिए। यह नया साहित्य मज़दूरों के हृदय से निकलेगा। उन मज़दूरों के कण्ठ से यह नई कविता निकलेगी जो अपना जीवन आनन्द के साथ खेत की मेड़ों का, कपड़े के तागों का, जूते के टाँकों का, लकड़ी की रगों का, पत्थर की नसों का भेद भाव दूर करेंगे। हाथ में कुल्हाड़ी, सिर पर टोकरी, नङ्गे सिर और नङ्गे पाँव, धूल से लिपटे और कीचड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से रँगे हुए ये बे-ज़बान कवि जब जङ्गल में लकड़ी काटेंगे तब लकड़ी काटने का शब्द इनके असभ्य स्वरों से मिश्रित होकर वायु-यान पर चढ़, दशों दिशाओं में ऐसा अद्भुत गान करेगा कि भविष्यत् के कलावन्तों के लिए वही ध्रुपद और मलार का काम देगा। चरख़ा कातने वाली स्त्रियों के गीत संसार के सभी देशों के क़ौमी गीत होंगे। मज़दूरी की मज़दूरी ही यथार्थ पूजा होगी। कलारूपी धर्म की तभी वृद्धि होगी। तभी नये कवि पैदा होंगे; तभी नये ओलियों का उद्भव होगा। परन्तु ये सब के सब मज़दूरी के दूध से पलेंगे। धर्म-योग, शुद्धाचरण, सभ्यता और कविता आदि के फूल इन्हीं मज़दूर-ऋषियों के उद्यान में प्रफुल्लित होंगे।

मज़दूरी और फ़क़ीरी।

मज़दूरी और फ़क़ीरी का महत्त्व थोड़ा नहीं। मज़दूरी और फ़क़ीरी मनुष्य के विकाश के लिए परमावश्यक हैं। बिना मज़दूरी किये फ़क़ीरी का उच्च भाव शिथिल हो जाता है; फ़क़ीरी भी अपने आसन से गिर जाती है; बुद्धि बासी पड़ जाती है। बासी चीज़ें अच्छी नहीं होतीं। कितने ही, रात्र भर, बासी बुद्धि और बासी फ़क़ीरी में मग्न रहते हैं; परन्तु इस तरह मग्न होना किस काम का? हवा चल रही है; जल बह रहा है; बादल बरस रहा है; पक्षी नहा रहे हैं; फूल खिल रहे हैं; घास नई, पेड़ नये, पत्ते नये—मनुष्य की बुद्धि और फ़क़ीरी ही बासी! ऐसा दृश्य तभी तक रहता है जब तक बिस्तर पर पड़े पड़े मनुष्य प्रभात का आलस्य-सुख मनाता है। बिस्तर से उठ कर ज़रा बाग़ की सैर करो, फूलों की सुगन्ध लो, ठण्डी वायु में भ्रमण करो, वृक्षों के कोमल-पल्लवों का नृत्य देखो तो पता लगे कि प्रभात-समय जागना बुद्धि और अन्तःकरण को तरोताज़ा करता है और बिस्तर पर पड़े रहना उन्हें बासी कर देता है। निकम्मे बैठे हुए चिन्तन करते रहना, अथवा बिना काम किये शुद्ध विचार करने का दावा करना, मानों सोते सोते ख़र्राटे भरना है। जब तक जीवन के अरण्य में पादड़ी, मौलवी, पण्डित और साधु-संन्यासी हल, कुदाल और खुरपा लेकर मज़दूरी न करेंगे तब तक उनका आलस्य जाने का नहीं; तब तक उनका मन और उनकी बुद्धि, अनन्त काल बीत जाने तक, मलिन मानसिक जुआ खेलती ही रहेगी। उनका चिन्तन बासी, उनका ध्यान बासी, उनकी पुस्तकें बासी, उनके लेख बासी, उनका विश्वास बासी और उनका ख़ुदा भी बासी हो गया है। इसमें सन्देह नहीं कि इस साल के गुलाब के फूल भी वैसे ही हैं जैसे पिछले साल के थे। परन्तु इस साल वाले ताज़े हैं, इनकी लाली नई है, इनकी सुगन्ध भी इन्हीं की अपनी है। जीवन के नियम नहीं पलटते; वे सदा एक ही से रहते हैं। परन्तु मज़दूरी करने से मनुष्य को एक नया और ताज़ा ख़ुदा नज़र आने लगता है।

गेरुये वस्त्रों की पूजा क्यों करते हो? गिरजे की घण्टी क्यों सुनते हो? रविवार क्यों मनाते हो? पाँच वक़्त की नमाज़ क्यों पढ़ते हो? त्रिकाल-सन्ध्या क्यों करते हो? मज़दूर के अनाथ नयन, अनाथ आत्मा और अनाश्रित जीवन की बोली सीखो। फिर देखोगे कि तुम्हारा यही साधारण जीवन ईश्वरीय भजन हो गया।

मज़दूरी तो मनुष्य के समष्टि-रूप का व्यष्टिरूप परिणाम है। आत्मा-रूपी धातु के गढ़े हुए सिक्के का नक़दी बयाना है, जो मनुष्यों की आत्माओं को ख़रीदने के लिए दिया जाता है। सच्ची मित्रता ही तो सच्ची सेवा है। उससे मनुष्यों के हृदय पर सच्चा राज्य हो सकता है। जाति-पाँति, रूप-रङ्ग और नाम-धाम तथा बाप-दादे का नाम पूछे बिना ही अपने आप को किसी के हवाले कर देना प्रेम-धर्म का तत्त्व है। जिस समाज में इस तरह के प्रेम-धर्म का राज्य होता है उसका हर कोई हर किसी को बिना उसका नाम-धाम पूछे ही पहचानता है; क्योंकि पूछने वाले का कुल और उसकी जात वहाँ वही होती है जो उसकी, जिससे कि वह मिलता है। वहाँ सब लोग एकही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माता-पिता से पैदा हुए भाई-बहन हैं। अपने ही भाई-बहनों के माता पिता का नाम पूछना पागलपन से क्या कम समझा जा सकता है? यह सारा संसार एक कुटुम्बवत् है। लँगड़े, लूले, अन्धे और बहरे उसी मौरूसी घर की छत के नीचे रहते हैं जिसकी छत के नीचे बलवान्, नीरोग और रूपवान् कुटुम्बी रहते हैं। मूढ़ों और पशुओं का पालन-पोषण बुद्धिमान्, सबल और नीरोगही तो करेंगे। आनन्द और प्रेम की राजधानी का सिंहासन सदा से प्रेम और मज़दूरी के ही कन्धों पर रहता आया है। कामनासहित होकर भी मज़दूरी निष्काम होती है; क्योंकि मज़दूरी का बदला ही नहीं। निष्काम कर्म्म करने के लिए जो उपदेश दिये जाते हैं उनमें अभावशील वस्तु सुभावपूर्ण मान ली जाती है। पृथ्वी अपने ही अक्ष पर दिन रात घूमती है। यह पृथ्वी का स्वार्थ कहा जा सकता है। परन्तु उसका यह घूमना सूर्य्य के इर्द गिर्द भी घूमना तो है और सूर्य्य के इर्द गिर्द घूमना सूर्य्य-मण्डल के साथ आकाश में एक सीधी लकीर पर चलना है। अन्त में, इसका गोल चक्कर खाना सदा ही सीधा चलना है। इसमें स्वार्थ का अभाव है। इसी तरह मनुष्य की विविध कामनायें उसके जीवन को मानो उसके स्वार्थ-रूपी धुरे पर चक्कर देती हैं। परन्तु उसका जीवन अपना तो है ही नहीं; वह तो किसी आध्यात्मिक सूर्य्य-मण्डल के साथ की चाल है और अन्ततः यह चाल जीवन का परमार्थ-रूप है। स्वार्थ का यहाँ भी अभाव है। जब स्वार्थ कोई वस्तु ही नहीं तब निष्काम और कामना-पूर्ण कर्म करना दोनों ही एक बात हुई। इस लिए मज़दूरी और फ़क़ीरी का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है।

मज़दूरी करना जीवन-यात्रा का आध्यात्मिक नियम है। जोन आव् आर्क (Joan of Arc) की फ़क़ीरी और भेड़ें चराना, टाल्सटाय का त्याग और जूते गाँठना, उमर ख़ैयाम का प्रसन्नतापूर्वक तम्बू सीते फिरना, ख़लीफ़ा उमर का अपने रङ्क-महलों में चटाई आदि बुनना, ब्रह्म-ज्ञानी कबीर और रैदास का शूद्र होना, गुरु नानक और भगवान् श्रीकृष्ण का मूक पशुओं को लाठी लेकर हाँकना—सब फ़क़ीरी का अनमोल भूषण है।

समाज का पालन करनेवाली दूध की धारा

एक दिन गुरु नानक यात्रा करते करते भाई लालो नाम के एक बढ़ई के घर ठहरे। उस गाँव का भागो नामक रईस बड़ा मालदार था। उस दिन भागो के घर ब्रह्मभोज था। दूर दूर से साधु आये हुए थे। गुरु नानक का आगमन सुन कर भागो ने उन्हें भी निमन्त्रण भेजा। गुरु ने भागो का अन्न खाने से इनकार कर दिया। इस बात पर भागो को बड़ा क्रोध आया। उसने गुरु नानक को बलपूर्वक पकड़ मँगाया और उनसे पूछा कि आप मेरे यहाँ का अन्न क्यों नहीं ग्रहण करते? गुरु-देव ने उत्तर दिया—भागो, अपने घर का हलवा-पूरी ले आओ तो हम इसका कारण बतलादें। वह हलवा-पूरी लाया तो गुरु नानक ने लालो के घर से भी उसके मोटे अन्न की रोटी मँगवाई। भागो की हलवा-पूरी उन्होंने एक हाथ में और भाई लालो की मोटी रोटी दूसरे हाथ में लेकर दोनों को जो दबाया तो एक से लोहू टपका और दूसरी से दूध की धारा निकली। बाबा नानक का यही उपदेश हुआ। जो धारा भाई लालो की मोटी रोटी से निकली थी वही समाज का पालन करने वाली दूध की धारा है। यही धारा शिवजी की जटा से और यही धारा मज़दूरों की उँगलियों से निकलती है।

मज़दूरी करने से हृदय पवित्र होता है; सङ्कल्प दिव्य लोकान्तर में विचरते हैं। हाथ की मज़दूरी ही से सच्चे ऐश्वर्य्य की उन्नति होती है। जापान में मैंने कन्याओं और स्त्रियों को ऐसी कलावती देखा है कि वे रेशम के छोटे छोटे टुकड़ों को अपनी दस्तकारी की बदौलत हज़ारों की क़ीमत का बना देती हैं; नाना प्रकार के प्राकृतिक पदार्थों और दृश्यों को अपनी सुई से कपड़े के ऊपर अङ्कित कर देती हैं। जापान-निवासी काग़ज़, लकड़ी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्थर की बड़ी अच्छी मूर्तियाँ बनाते हैं। करोड़ों हुनर के हाथ के बने हुए जापानी खिलौने विदेशों में बिकते हैं। हाथ की बनी हुई जापानी चीज़ें मशीन से बनी हुई चीज़ों को मात करती हैं। संसार के सब बाज़ारों में उनकी बड़ी माँग रहती है। पश्चिमी देशों के लोग हाथ की बनी हुई जापान की अद्भुत वस्तुओं पर जान देते हैं। एक जापानी तत्त्वज्ञानी का कथन है कि हमारी दस करोड़ उँगलियाँ सारे काम करती हैं। इन उँगलियों ही के बल से, सम्भव है, हम जगत् को जीत लें। ("we shall beat the world with the tips of our fingers") जब तक धन और ऐश्वर्य्य की जन्मदात्री हाथ की कारीगरी उन्नत नहीं होती तब तक भारतवर्ष ही की क्या, किसी भी देश या जाति की दरिद्रता दूर नहीं हो सकती। यदि भारत की तीस करोड़ नर-नारियों की उँगलियाँ मिल कर कारीगरी के काम करने लगें तो उनकी मज़दूरी की बदौलत कुबेर का महल उनके चरणों में आप ही आप आ गिरे।

अन्न पैदा करना, तथा हाथ की कारीगरी और मिहनत से जड़ पदार्थों को चैतन्य-चिह्न से सुसज्जित करना, क्षुद्र पदार्थों को अमूल्य पदार्थों में बदल देना इत्यादि कौशल ब्रह्मरूप हो कर धन और ऐश्वर्य्य की सृष्टि करते हैं। कविता, फ़क़ीरी और साधुता के ये दिव्य कला-कौशल जीते-जागते और हिलते डुलते प्रतिरूप हैं। इनकी कृपा से मनुष्य-जाति का कल्याण होता है। ये उस देश में कभी निवास नहीं करते जहाँ मज़दूर और मज़दूर की मज़दूरी का सत्कार नहीं होता; जहाँ शूद्र की पूजा नहीं होती। हाथ से काम करने वालों से प्रेम रखने और उनकी आत्मा का सत्कार करने से साधारण मज़दूरी सुन्दरता का अनुभव कराने वाले कला-कौशल, अर्थात् कारीगरी, का रूप हो जाती है। इस देश में जब मज़दूरी का आदर होता था तब रात को आकाश के नीचे बैठे हुए मज़दूरों के हाथों ने भगवान् बुद्ध के निर्वाण-सुख को पत्थर पर इस तरह जड़ा था कि इतना काल बीत जाने पर, पत्थर की मूर्ति के ही दर्शन से ऐसी शान्ति प्राप्त होती है जैसी कि स्वयं भगवान् बुद्ध के दर्शन से होती है। मुँह, हाथ, पाँव इत्यादि का गढ़ देना साधारण मज़दूरी है; परन्तु मन के गुप्त भावों और अन्तःकरण की कोमलता तथा जीवन की सभ्यता को प्रत्यक्ष प्रकट कर देना प्रेम-मज़दूरी है। शिवजी के ताण्डव-नृत्य को और पार्वतीजी के मुख की शोभा को पत्थरों की सहायता से वर्णन करना जड़ को चैतन्य बना देता है। इस देश में कारीगरी का बहुत दिनों से अभाव है। महमूद ने जो सोमनाथ के मन्दिर में प्रतिष्ठित मूर्तियाँ तोड़ी थीं उससे उसकी कुछ भी वीरता सिद्ध नहीं होती। उन मूर्तियों को तो हर कोई तोड़ सकता था। उसकी वीरता की प्रशंसा तब होती जब वह यूनान की प्रेम-मज़दूरी, अर्थात् वहाँ वालों के हाथ की अद्वितीय कारीगरी प्रकट करने वाली मूर्तियाँ तोड़ने का साहस कर सकता। वहाँ की मूर्तियाँ तो बोल रही हैं—वे जीती जागती हैं, मुर्दा नहीं। इस समय के देव-स्थानों में स्थापित मूर्तियाँ देख कर अपने देश की आध्यात्मिक दुर्दशा पर लज्जा आती है। उनसे तो यदि अनगढ़ पत्थर रख दिये जाते तो अधिक शोभा पाते। जब हमारे यहाँ के मज़दूर, चित्रकार तथा पत्थर और लकड़ी पर काम करने वाले भूखों मरते हैं तब हमारे मन्दिरों की मूर्तियाँ कैसे सुन्दर हो सकती हैं? ऐसे कारीगर तो यहाँ शूद्र के नाम से पुकारे जाते हैं। याद रखिए, बिना शूद्र-पूजा के मूर्तिपूजा किंवा कृष्ण और शालग्राम की पूजा होना असम्भव है। सच तो यह है कि हमारे सारे धर्म-कर्म बासी ब्राह्मणत्व के छिछोरेपन से दरिद्रता को प्राप्त हो रहे हैं। यही कारण है जो आज हम जातीय दरिद्रता से पीड़ित हैं।

पाश्चिमी सभ्यता का एक नया आदर्श।

पश्चिमी सभ्यता मुख मोड़ रही है। वह एक नया आदर्श देख रही है। अब उसकी चाल बदलने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगी है। वह कलों की पूजा को छोड़ कर मनुष्यों की पूजा को अपना आदर्श बना रही है। इस आदर्श के दरसाने वाले देवता रसकिन और टाल्स्टाय आदि हैं। पाश्चात्य देशों में नया प्रभात होने वाला है। वहाँ के गम्भीर विचार वाले लोग इस प्रभात का स्वागत करने के लिए उठ खड़े हुए हैं। प्रभात होने के पूर्व ही उसका अनुभव कर लेने वाले पक्षियों की तरह इन महात्माओं को इस नये प्रभात का पूर्व-ज्ञान हुआ है। और, हो क्यों न? इंजनों के पहियों के नीचे दब कर वहाँ वालों के भाई-बहन—नहीं नहीं उनकी सारी जाति—पिस गई; उनके जीवन के धुरे टूट गये; उनका समस्त धन घरों से निकल कर एक ही दो स्थानों में एकत्र हो गया। साधारण लोग मर रहे हैं; मज़दूरों के हाथ-पाँव फट रहे हैं; लहू चल रहा है; सरदी से ठिठुर रहे हैं। एक तरफ़ दरिद्रता का अखण्ड राज्य है; दूसरी तरफ़ अमीरी का चरम दृश्य। परन्तु अमीरी भी मानसिक दुःखों से विमर्दित है। मशीनें बनाई तो गई थीं मनुष्यों का पेट भरने के लिए—मज़दूरों को सुख देने के लिए—परन्तु वे काली काली मैशीनें ही काली बन कर उन्हीं मनुष्यों का भक्षण कर जाने के लिए मुख खोल रही हैं। प्रभात होने पर ये काली काली बलायें दूर होंगी। मनुष्य के सौभाग्य का सूर्य्योदय होगा।

शोक का विषय है कि हमारे और अन्य पूर्वी देशों में लोगों को मज़दूरी से तो लेश मात्र भी प्रेम नहीं, पर वे तैयारी कर रहे हैं पूर्वोक्त काली मशीनों का आलिङ्गन करने की। पश्चिम वालों के तो ये गले पड़ी हुई बहती नदी की काली कमली हो रही हैं। वे छोड़ना चाहते हैं, परन्तु काली कमली उन्हें नहीं छोड़ती। देखेंगे, पूर्व-वाले इस कमली को छाती से लगा कर कितना आनन्द-अनुभव करते हैं। यदि हम में से हर आदमी अपनी दस उँगलियों की सहायता से साहसपूर्वक अच्छी तरह काम करें तो हम मशीनों की कृपा से बढ़े हुए पश्चिम वालों को, वाणिज्य के जातीय-संग्राम में, सहज ही पछाड़ सकते हैं। सूर्य्य तो सदा पूर्व ही से पश्चिम की ओर जाता है। पर, आओ, पश्चिम में आने वाली सभ्यता के नये प्रभात को हम पूर्व से भेजें।

इंजनों की वह मज़दूरी किस काम की जो बच्चों, स्त्रियों और कारीगरों ही को भूखा और नङ्गा रखती है; और केवल सोने, चाँदी, लोहे आदि धातुओं ही का पालन करती है। पश्चिम को विदित हो चुका है कि इनसे मनुष्य का दुख दिन पर दिन बढ़ता है। भारतवर्ष जैसे दरिद्र देश में मनुष्य के हाथों की मज़दूरी के बदले कलों से काम लेना काल का डङ्का बजाना होगा। दरिद्र प्रजा और भी दरिद्र हो कर मर जायगी। चेतन से चेतन की वृद्धि होती है। मनुष्य को तो मनुष्य ही सुख दे सकता है। परस्पर की निष्कपट सेवा ही से मनुष्य-जाति का कल्याण हो सकता है। धन एकत्र करना तो मनुष्य-जाति के आनन्द-मङ्गल का एक साधारण सा और महा तुच्छ उपाय है। धन की पूजा करना नास्तिकता है; ईश्वर को भूल जाना है; अपने भाई-बहनों तथा मानसिक सुख और कल्याण के देने वालों को मार कर अपने सुख के लिए शारीरिक राज्य की इच्छा करना है; जिस डाल पर बैठे हैं उसी डाल को स्वयं ही कुल्हाड़े से काटना है। अपने प्रिय जनों से रहित राज्य किस काम का? प्यारी मनुष्य-जाति का सुख ही जगत् के मङ्गल का मूल साधन है। बिना उसके सुख के अन्य सारे उपाय निष्फल हैं। धन की पूजा से ऐश्वर्य्य, तेज, बल और पराक्रम नहीं प्राप्त होने का। चैतन्य आत्मा की पूजा से ही ये पदार्थ प्राप्त होते हैं। चैतन्य पूजा ही से मनुष्य का कल्याण हो सकता है। समाज का पालन करने वाली दूध की धारा जब मनुष्य के प्रेम-मय हृदय, निष्कपट मन और मित्रता-पूर्ण नेत्रों से निकल कर बहती है तब वही जगत् में सुख के खेतों को हरा भरा और प्रफुल्लित करती है और वही उनमें फल भी लगाती है। आओ, यदि हो सके तो, टोकरी उठाकर कुदाली हाथ में लें। मिट्टी खोदें और अपने हाथ से उसके प्याले बनावें। फिर एक एक प्याले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर घर में—कुटिया कुटिया में—रख आवें और सब लोग उसी में मज़दूरी का प्रेमामृत पान करें।

है रीत आशकों की तन मन निसार करना।
रोना सितम उठाना और उनको प्यार करना॥

पूर्णसिंह।

बहरामजी एम० मलाबारी।

गत ग्यारहवीं जूलाई १९१२ को मिस्टर बहरामजी मेरवानजी मलाबारी का देहान्त, शिमले में, हृदय-गति के रुक जाने के कारण हो गया। जिन थोड़े से भारतीय सपूतों ने सामाजिक कुरीतियाँ दूर करने के लिए देश को अपना तन, मन, धन सभी कुछ अर्पण कर रक्खा है, और जो अपने इसी आत्म-त्याग के कारण उन्हीं के हाथों से, जिन की भलाई करने के लिए वे दत्त-चित्त होते हैं, नाना प्रकार के कष्टों और लाञ्छनों को सहते हुए भी अपने उद्देशों की पूर्ति में लगे ही रहते हैं—उनमें मिस्टर मलाबारी का आसन बहुत ऊँचा है। देश की विधवाओं की दुर्दशा देख कर उनके करुण-हृदय को बड़ा ही कष्ट हुआ। भारतीय स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए जिस आत्म-त्याग और परिश्रम के साथ उन्हों ने काम किया उस पर विचार करने से मालूम पड़ता है कि उनके स्थान की पूर्ति शीघ्र ही होने वाली नहीं।

वे सुधारक तो थे ही, परन्तु वे लेखक भी बड़े ज़बर्दस्त थे। उनके हास्य-रस-पूर्ण समाज-सुधार-सम्बन्धी लेख जिसने पढ़े वही उन पर मुग्ध हो गया। अपनी लेखनी के बल से उन्हों ने नाम भी खूब पैदा किया। भारतवर्ष ही के नहीं, पाश्चात्य देशों तक के बहुत से बड़े बड़े विद्वान् उनकी योग्यता पर मुग्ध हो कर उनके मित्र हो गये थे। आज ऐसे बड़े विद्वान् सुधारक के उठ जाने से किस देशहितैषी को दुख न होगा?

मलाबारी का जन्म, १८५३ में, बड़ोदा में हुआ था। उनके पिता धनजीभाई मेहता, बीस रुपये मासिक पर, बड़ोदे में नौकर थे। मलाबारी मुश्किल से छः सात वर्ष के रहे होंगे कि उनके पिता का शरीरान्त हो गया। खाने तक का ठिकाना न रहने के कारण उनकी माता भीखी बाई अपने एक दूर के सम्बन्धी मेरवानजी नानाभाई मलाबारी के यहाँ नानपुरा ग्राम में रहने लगी। मेरवानजी की स्त्री मर गई थी। उस के कोई पुत्र भी न था। इस लिए उस ने भीखी जी से अपना विवाह कर लिया और हमारे चरित-नायक को गोद ले लिया।

पाँच वर्ष की ही अवस्था से मलाबारी ने पाठशाला जाना आरम्भ कर दिया। पुरानी रीति के अनुसार वे गुजराती सीखने लगे। विद्यार्थी-अवस्था में वे बड़े ही चञ्चल थे। उन की शरारतों से गाँव भर के लोग तङ्ग रहते थे। खेल और तमाशे भी उन्हें बहुत पसन्द थे। आठ नौ वर्ष ही की अवस्था में वे ऐसे मधुरस्वर से गाना गाते थे कि लोग दङ्ग हो जाते थे। यद्यपि वे अपने गुरुओं से यहाँ तक डरते थे कि दूसरे लड़के को मार खाते देख उन को ज्वर आ जाता था, तथापि पाठशाला से बाहर उनकी शरारतें किसी प्रकार कम न हुईं। अन्त में मेरवानजी ने उन्हें एक बढ़ई के यहाँ काम सीखने के लिए भेज दिया। वहाँ भी वे कुछ न कर सके। वे फिर पाठशाला में भर्ती हुए और गुजराती और अँगरेज़ी पढ़ने लगे। उनकी शरारत यहाँ भी न छूटी। पाठशाला में एक बड़ी भारी शरारत करते हुए वे पकड़े गये। हेड-मास्टर ने उन्हें एक दर्जन बेंत की सज़ा दी। पहला बेंत पड़ते ही मलाबारी तिलमिला कर बेहोश हो गये। अध्यापक लोग पानी छिड़क कर उन्हें होश में लाये। होश में आते ही पहला काम जो मलाबारी ने किया वह यह था कि हेड-मास्टर पर झपटे और किताबें आदि जो कुछ हाथ में आया उस पर फेंक कर अपने घर की तरफ़ भागे। वे भागते जाते थे और मन में सोचते जाते थे कि घर पहुँचते ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं अपनी माता से मास्टर की ये शिकायतें करूँगा। परन्तु वे घर पहुँचे तो देखा कि माता भीखी बाई अचेत पड़ी हैं। उन्हें हैज़ा हो गया था। मलाबारी अपनी सब बातें भूल गये। बैठ कर माता की सेवा-शुश्रूषा करने लगे। तीन रात और तीन दिन तक निरन्तर बालक मलाबारी अपनी माता की सेवा करता रहा। तो भी वे न बच सकीं।

माता के मरते ही मलाबारी में बड़ा भारी परिवर्तन हो गया। वे अभी तक चञ्चल बालक थे; परन्तु इस घटना के होते ही वे गम्भीर पुरुष हो गये। उन्हें अपनी माता की इतनी शीघ्र मृत्यु का बड़ा ही दुख हुआ। उनकी माता बड़ी ही शुद्ध-चरित्र और उदार-हृदया थीं। दान और दया की बान तो उनके हृदय में इतनी थी कि वे सदा अपनी प्रिय से प्रिय चीज़ भी देने और नीच से नीच जाति के व्यक्ति से सद्व्यवहार करने में कभी न चूकती थीं। कभी कभी उन्हें अपनी इन बातों के लिए पारसी-समाज में बहुत अनादर भी सहना पड़ता था। उन्हें दूसरे विवाह से दुख के सिवा कभी सुख न मिला। माता भीखी बाई के शुद्ध-चरित्र का प्रभाव पुत्र मलाबारी पर बहुत पड़ा। माता और पुत्र में स्नेह भी बहुत था। एक दूसरे को जी-जान से चाहता था। अपने जीवन में मलाबारी बहुधा अपनी माता को याद करके रो दिया करते थे।

माता की मृत्यु के समय मलाबारी केवल बारह वर्ष के थे। उन्हें उनका कोई सम्बन्धी पढ़ाने के लिए तैयार न हुआ। तब उन्होंने अपने ही बल पर पढ़ना निश्चय किया। वे सूरत पहुँचे और वहां के मिशन स्कूल में अँगरेज़ी पढ़ने लगे। पल्ले तो कुछ था ही नहीं, इस लिए वे लड़कों को पढ़ा कर अपने ख़र्च भर के लिए अर्थोपार्जन कर लिया करते थे। तीन वर्ष तक वे इसी पाठशाला में पढ़ते रहे। पाठशाला के मुख्याध्यापक मिस्टर डिक्सन उनकी प्रतिभा पर मुग्ध रहा करते थे। वे बहुधा कहा करते थे कि भविष्यत् में मलाबारी अवश्य बड़ा आदमी होगा। वे मलाबारी को बड़े प्रेम से पढ़ाते थे। मलाबारी ने भी उनसे पढ़ कर थोड़े ही काल में अँगरेज़ी की इतनी योग्यता प्राप्त कर ली कि शेक्सपियर, मिल्टन, टेनीसन आदि महा कवियों के ग्रन्थों को अच्छी तरह पढ़ने और समझने लगे। १८६८ में मलाबारी ने मेट्रिक की परीक्षा दी; परन्तु गणित में कमज़ोर होने के कारण वे उत्तीर्ण न हो सके। तत्पश्चात् वे बम्बई चले गये और वहाँ की एक पाठशाला में बीस रुपये मासिक पर अध्यापक हो गये। कुछ ही महीने बाद उन्हें उसी पाठशाला में साठ रुपये मासिक वेतन मिलने लगा। इसके अतिरिक्त वे सौ डेढ़ सौ रुपये महीना लड़कों को घर पर पढ़ा कर पैदा करने लगे। उन्हें अब धन-कष्ट न रहा। इस बीच में उन्होंने पढ़ना न छोड़ा था। वे गणित में बहुत कच्चे थे इसी लिए चार वर्ष तक निरन्तर अनुत्तीर्ण होते रहने के बाद, कहीं १८७१ में, वे मेट्रिक परीक्षा पास कर पाये।

मलाबारी के अब अच्छे दिन आये। बम्बई-प्रदेश के प्रसिद्ध पादड़ी डाक्टर विलसन से उनका परिचय हो गया। डाक्टर विलसन गुजराती भाषा के अच्छे ज्ञाता समझे जाते थे। मलाबारी ने बहुत सी कवितायें गुजराती भाषा में रची थीं। वे जैसी की तैसी ही पड़ी थीं। एक दिन, किसी मित्र के कहने पर, वे उन्हें डाक्टर विलसन को दिखाने ले गये। डाक्टर साहब ने उनको बहुत पसन्द किया। उनका संग्रह, १८७५ में, "नीति-विनोद" नाम की पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ। गुजराती-साहित्य-संसार में इस पुस्तक की बहुत प्रशंसा हुई और मलाबारी का नाम प्रसिद्ध हो गया। इसके बाद उनका दूसरा ग्रन्थ "Indian Muse in English Garb" नाम का अँगरेज़ी में निकला। इस पुस्तक ने मलाबारी को और भी प्रसिद्ध कर दिया। महारानी विक्टोरिया, मिस फ्लारेन्स नाइटिंगेल, मेक्समूलर, टेनीसन आदि तक ने इस ग्रन्थ को पढ़ कर मलाबारी की योग्यता को सराहा।

१८७६ से वे समाचार-पत्रों के संसार में अवतीर्ण हुए। बम्बई के कुछ नवयुवकों ने मिल कर "इंडियन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पेक्टेटर" नाम का पत्र निकाला था। मलाबारी उस में लेख लिखने लगे। युवक-मण्डली उसे सँभाल न सकी। इससे मलाबारी ने उसे ख़रीद लिया। मलाबारी की लेखनी में तो शक्ति थी, परन्तु उनकी जेब में धन न था। इसलिए उन्हें इस पत्र के चलाने में बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। आरम्भ में मुश्किल से उसके पचास साठ ग्राहक थे। मलाबारी ही को उसे अपने ही लिखे लेखों से भरना, उसके प्रूफ़ों का संशोधन करना और उसे स्थानीय ग्राहकों के यहाँ पहुँचाना भी पड़ता था। केवल इतना ही नहीं, उन्हें इस पत्र के चलाने के लिए अपनी धर्म्म-पत्नी के आभूषणों तक को बेचना पड़ा। वे इन सब विपत्तियों को धैर्य्य-पूर्व्वक सहते हुए अपना काम करते ही गये। अन्त में उनके कठिन परिश्रम और आत्म-त्याग का फल यह हुआ कि १८७९ से "इंडियन स्पेक्टेटर" की प्रसिद्धि आरम्भ हुई और थोड़े ही काल में भारत-वर्ष के मुख्य मुख्य पत्रों ही के नहीं किन्तु अमेरिका, फ़ान्स और इँगलैंड के भी नामी नामी पत्रों तक ने उसकी लेख-शैली, प्रौढ़-विचार और निर्भीकता की प्रशंसा की। भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड रिपन तक उसे बहुत अच्छा पत्र समझ कर सदा पढ़ा करते थे। अपने पत्र की इस उन्नति में मलाबारी को सुप्रसिद्ध अर्थ-शास्त्र-वेत्ता मिस्टर दीनशाह ईदुलजी वाचा से बहुत सहायता मिली। १८८३ में मलाबारी ने देश-भक्त मिस्टर दादा-भाई नैरोजी की सलाह से "Voice of India" नाम का एक मासिक पत्र निकाला; परन्तु वह बहुत दिन न चल सका। वह "स्पेक्टेटर" में मिला दिया गया।

मलाबारी इस बीच में मैक्स-मूलर के "हिबर्ट लेकचरों" का देश की भिन्न भिन्न भाषाओं में अनुवाद करने के लिए भारत के बड़े बड़े नगरों में चन्दा एकत्र करते फिरे। उन्होंने "स्पेक्टेटर" में कुछ ऐसे हास्य-पूर्ण लेख लिखे जिनको लोगों ने बड़े ही चाव से पढ़ा और वे "गुजरात और गुजराती" नाम से पुस्तक-रूप में प्रकाशित हुए। डाक्टर विलसन की मृत्यु पर उन्होंने "विलसन-विरह" नाम का गुजराती काव्य रचा, जिसके कारण गुजराती-साहित्य-संसार में उन्हें एक बड़ा ही उच्च स्थान प्राप्त हुआ। १८८१ में उनका "सरोद-इत्तफ़ाक़" नाम का काव्य प्रकाशित हुआ। लोगों ने इस ग्रन्थ को भी बहुत पसन्द किया। यह "नीति-विनोद" और "विलसन-विरह" से भी अधिक बिका।

१८८३ से मलाबारी का ध्यान देश की विधवाओं की दशा सुधारने की तरफ़ गया। विधवाओं के ऊपर होनेवाले अत्याचारों को देख कर मलाबारी सदा दुखी रहते थे। उन्होंने अपने पहले ग्रन्थ "नीति-विनोद" ही में उनके दुखों पर बहुत आँसू बहाये थे। उनका मत था कि किसी विधवा को उसकी इच्छा के विरुद्ध पुनर्विवाह के लिए मजबूर करना अनुचित है। परन्तु बाल-विधवाओं को, जिन्हें "पति" और "विवाह" के अर्थ भी नहीं मालूम, सारा जीवन वैधव्य में व्यतीत करने पर मजबूर करना उन पर बड़ा भारी अत्याचार करना है। बङ्गाल के सुप्रसिद्ध सुधारक पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्या-सागर ने बड़े ही उद्योग से विधवाओं के पक्ष में, विधवा-विवाह के क़ानूनन मान्य समझे जाने के लिए, एक क़ानून पास करा लिया था। मलाबारी भी तन, मन, धन से इस प्रकार के एक क़ानून के पास कराने की चेष्टा करने लगे कि बारह वर्ष से कम उम्र की किसी लड़की और सोलह वर्ष से कम उम्र के किसी लड़के का विवाह न हो। इस काम को हाथ में लेने पर लोगों ने उन्हें बहुत बुरा-भला कहा। पारसी होते हुए हिन्दू-जाति के सुधार-सम्बन्धी कामों में हस्तक्षेप करने के लिए उन्हें कुछ लोगों ने नाम चाहनेवाला कह कर बदनाम किया। बहुत लोग तो उनके काम में बाधा डालने से भी बाज़ न आये। परन्तु वे अपने काम में लगे ही रहे। अपनी लेखनी और सहायकों के बल से इस कुरीति पर बराबर कुठार चलाते ही गये। वे लार्ड रिपन से मिले और उन्हें भारतीय विधवाओं की दुर्दशा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का पूरा पूरा हाल सुनाया। पहले तो लार्ड रिपन हिचकचाये; परन्तु अन्त में वे मलाबारी के पक्ष में हो गये। मलाबारी ने यत्न करने में तो कुछ उठा न रक्खा; परन्तु लोगों के विरोध के कारण गवर्नमेंट बाल-विवाह रोकने के लिए कोई क़ानून न बना सकी। हाँ, कुछ दिनों बाद, १८८३ में, उनके प्रयत्न का फल यह अवश्य हुआ कि सहवास-सम्मति-सम्बन्धी क़ानून पास हो गया।

इस आन्दोलन के बाद मलाबारी ने देश के लिए दो काम बड़े महत्त्व के किये। एक तो उन्होंने सुविख्यात सुधारक अवसर-प्राप्त जज, श्रीयुत दयाराम गीडूमल की सहायता से "सेवा-सदन" नाम की एक संस्था स्थापित की। इसमें भारतीय स्त्रियों को अध्यापिका, दाई आदि का काम सिखाया जाता है। दूसरा, उन्होंने, शिमले के पास, धर्म्मपुर में, क्षय-रोग के रोगियों के लिए एक निवास-स्थान बनवाया।

इस बीच में भी उनकी लेखनी शिथिल न थी। विलायत से लौट कर, १८९३ में, उन्होंने अपनी विलायत-यात्रा पर "The Indian Eye on English Life" नाम का ग्रन्थ प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ को भी लोगों ने बहुत पसन्द किया। "स्पेक्टेटर" तो निकलता ही था, उन्होंने अपने सम्पादकत्व में "East and West" नाम का एक मासिक पत्र निकाला, जो अब तक निकल रहा है।

मलाबारी बड़े ही निरभिमानी पुरुष थे। वे नीच ऊँच का बिकुल ख़याल न करते थे। वे सब से हँस कर बोलते थे। उनका स्वभाव बड़ा सरल था। छल-कपट तो वे जानते तक न थे। जिससे उनका एक बार भी परिचय हो जाता था उसे वे कभी न भूलते थे। ग़रीबों के तो वे पूरे मित्र थे। उनमें आत्म-बल भी बहुत था। अपने उद्देशों को पूरा करने के लिए उन्हें आर्थिक कष्ट और शारीरिक क्लेश तक सहना पड़ा, परन्तु वे अपने सिद्धान्त से गिरे कभी नहीं। वे नाम बिलकुल न चाहते थे। १८८७ में, महारानी विक्टोरिया की स्वर्ण-जुबली पर, उन्हें बम्बई के शरीफ़ का पद और "सर" की उपाधि मिलती थी, परन्तु उन्होंने उन दोनों में से एक को भी स्वीकार न किया। लाड कर्ज़न उन्हें क़ैसरे-हिन्द के स्वर्ण-पदक और लार्ड मिन्टो उन्हें "सर" की उपाधि देते थे, परन्तु उन्होंने धन्यवाद सहित उनके लेने से भी इनकार किया। बात यह थी कि वे काम करना जानते थे, नाम के भूखे न थे।

रमणभाई रेवतीराम।

भक्त की भावना।

(१)

"वह मेरा सर्वस्व है; मैं हूँ उसका दास"
और ज्ञान मुझको नहीं; बस, यह है विश्वास॥

(२)

आप उसे अर्पण किया मैंने अपना चित्त।
मेरे हर्ष-विषाद का है बस वही निमित्त॥

(३)

आजाता है सामने जब उसका मुख-चन्द।
होता उस आलोक से अकथनीय आनन्द॥

(४)

वह प्रकाश पाकर उमड़ पड़ता हृदय-समुद्र।
रोक न फिर सकती उसे सुख-दुख-सीमा * क्षुद्र॥

(५)

औरों को वह हो भले भीषण पावक पुञ्ज।
किन्तु मुझे तो है सदा शीतल करुणाकुञ्ज॥

(६)

आँख तुम्हारे हो अगर तो देखो तुम 'रूप'।
मैं केवल जानूँ यही कि है सुधा का कूप॥

(७)

नख से शिख तक मैं गया हूँ उसमें ही डूब।
रङ्ग वही हर अङ्ग † में चढ़ा हुआ है खूब॥

---

* सांसारिक सुखदुःख ही हृदयरूपी समुद्र के दोनों ओर की सीमा अथवा किनारे हैं।

† यहां अङ्ग से इन्द्रिय समझना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८)

तुम देखो जाकर उधर क्या क्या हैं गुण-दोष।
यहां अन्ध-आराधना में ही है सन्तोष॥

(९)

मेरे प्रिय के है नहीं नाम और गुण, रूप।
वह निर्गुण, निश्श्रेष्ट है मेरे ही अनुरूप॥

(१०)

व्यर्थ वाद आता नहीं, जानूँ सीधी बात।
वह मेरा है और मैं उसका हूँ विख्यात॥

(११)

जैसे ढल कर बिन्दु-जल चञ्चल-कमल-दल-स्थ।
मिल करके जल-राशि में हो जाता है स्वस्थ *॥

(१२)

फिर सत्ता उसकी कभी रहती नहीं स्वतन्त्र।
वैसे ही यह क्षुद्र, अति क्षुद्र हृदय परतन्त्र—

(१३)

उस प्रियतम से जा मिला होकर एकाकार।
यह उसमें है और वह इसका है आधार॥

(१४)

सूर्य-विभा को देख ज्यों तारे होते लीन।
या माया लख अलख † को होती संज्ञाहीन ‡॥

(१५)

या जुगनू की ज्योति ज्यों उषाहास्य § को देख।
हो जाती है लीन सी, रहे न इतर-विशेष॥

(१६)

त्यों मेरा जीवन मिला उस जीवन में यार।
नन्दनवन सा बन गया यह अशान्त संसार॥

(१७)

वह मेरा है और मैं उसका हूँ—यह सोच।
गद्गद् हो जाता हृदय, मिटता सब सङ्कोच॥

(१८)

तब यह छोटा सा हृदय बनता प्रेम-समुद्र।
फिर इसकी रहती नहीं सीमा इतनी क्षुद्र॥

(१९)

उस बहाव में प्रेम के बह जाता है भेद।
थाह न उसकी पा सकें शास्त्र और सब वेद॥

(२०)

प्रेम-तरङ्गों में पड़ा मन होता है मस्त।
संशय का सन्ताप तब होता स्वयं निरस्त॥

(२१)

हृत्तन्त्री * को छेड़, मन गावे, तज खटराग †।
"वह मेरा है और मैं उसका हूँ"—यह राग॥

रूपनारायण पाण्डेय।

---

* स्वस्थ और अपने में स्थित। † ब्रह्म
‡ मूर्च्छित और नामहीन। § उषःकाल का विकास।

संयुक्त-प्रान्तों की पत्थर की कारीगरी।

इतिहास।

पत्थर की सब से पुरानी बनी हुई चीज़ें तीर, हथौड़े, हथियारों की नोकें और चाक़ू आदि हैं। इनको पत्थर का देख कर यह सूचित होता है कि ये उस समय के हैं जब मानव-जाति ने लोहे के शस्त्र बनाना नहीं सीखा था। जङ्गली लोग तो अब भी पत्थर को हथियार बनाने के काम में लाते हैं। हमारे प्रान्तों में भी ये चीज़ें इलाहाबाद, मिर्ज़ापुर, बुलन्दशहर, बस्ती, बनारस और बुँदेलखण्ड में बहुत पाई गई हैं। मानव-जाति की सभ्यता के आरम्भ में ये चीज़ें सर्वत्र पत्थर ही की बनाई गई थीं। फर्गुसन साहब का मत है कि शस्त्र आदि पहले से भले ही बनते रहे हों, पर भारत में सन् ईसवी के पूर्व की तीसरी शताब्दी से पहले भवन आदि बनाने के काम में पत्थर न लाया जाता था। यहाँ लकड़ी के मकान बनते थे, जैसा कि बर्मा में अब तक होता है। पत्थर के मकानों का बनना महाराज अशोक के समय से ही प्रचलित हुआ है।

---

* हृदय की वीणा। † छः राग और छत्तीस रागिनी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें सन्देह नहीं कि पत्थर के मकानों का नमूना लकड़ी ही के निर्मित भवनों से लिया गया है। पर यह बात भी ठीक और निश्चित है कि पत्थर का यह उपयोग अशोक के समय के शताब्दियों पूर्व से होता चला आया है। सारनाथ और कसिया के स्तूप इस बात के प्रमाण हैं। वे सन् ईसवी के पूर्व की तीसरी शताब्दी से भी पहले के हैं। उनकी बनावट और उनकी उच्च कोटि की कारीगरी से यह प्रकट होता है कि उस समय तक इस कला ने बहुत कुछ उन्नति करली थी। इतनी उन्नति दो, चार या पचास, साठ वर्ष में न होगई होगी। इसमें शताब्दियाँ लगी होंगी। किन्तु शोक है कि बौद्ध काल से पहले के कोई भी चिह्न हम लोगों को नहीं मिले। अतः हमारे इस विषय के इतिहास का आरम्भ वास्तव में बौद्ध काल ही से होता है। महाराज अशोक ने अपने समय में बहुत से स्तूप, चैत्य और विहार आदि बनवाये थे। उनके टूटे फूटे अंश अब तक पाये जाते हैं। उस समय लोगों को सादगी बहुत पसन्द थी। इसी से जो स्तूप आदि पाये गये हैं उन पर आज कल के से बेल-बूटे की भरमार नहीं है। जिन पर बेल बूटे हैं भी तो बहुत थोड़े हैं और बड़े ही भले मालूम होते हैं। इसी से मालूम होता है कि इस कला ने उस समय बहुत उन्नति की थी।

जैनियों के समय में यह बात न रही। उनको सादगी न भाती थी। देवगढ़, ज़िला झाँसी, में उस समय के बहुत से मन्दिर पाये जाते हैं। पत्थर पर बेल-बूटे, मूर्त्ति आदि की बहुलता ही इन मन्दिरों की विशेषता है। बौद्धों और जैनों के समय की वस्तुओं में भेद कम मिलता है। पर दो बातें हैं जिनसे हम जान सकते हैं कि अमुक चीज़ अमुक काल की हैं:—

पहली यह है कि जैनियों के तीर्थङ्करों की मूर्तियों पर वस्त्र नहीं। वे नग्नावस्था में हैं। परन्तु जहाँ बुद्ध महाराज की मूर्तियाँ मिली हैं, कुछ न कुछ वस्त्र उन पर अवश्य बने हुए पाये गये हैं।

दूसरी बात कारीगरी की बहुलता है। बौद्ध काल में पत्थरों पर इतना काम न किया जाता था कि अधिक मालूम पड़े। जैन समय में इस के विपरीत हाल था।

उस समय के हिन्दुओं के मन्दिरों और मकानों आदि का पता बहुत कम चलता है। हाँ, गुप्त-वंश के राजाओं के समय के कुछ चिह्न अवश्य पाये जाते हैं:—

देवगढ़ में पत्थर का एक बहुत ही सुन्दर मन्दिर हिन्दुओं का बनाया हुआ है। यह सन् ईसवी की चौथी शताब्दी में बना था।

इसके बाद का कुछ भी पता नहीं चलता। कारण यह कि हिन्दुओं और जैनियों के जो मन्दिर थे वे सब मुसलमानों ने तोड़ फोड़ डाले। बहुतों को उन्होंने मसजिदें बना डाला। आश्चर्य तो यह है कि कुछ मन्दिर बच कैसे गये? हिन्दू और जैन समय के मन्दिरों में धार्मिक ही चित्र पत्थर पर अधिक खोदे जाते थे। उस समय की विशेषता यही थी। मनुष्यों और पशु-पक्षियों की आकृतियाँ भी कहीं कहीं खोदी जाती थीं।

इसके बाद मुसलमानों के तूफ़ान का समय आया। इनके समय की सब से पुरानी इमारत इन प्रान्तों में जौनपुर में हैं। वह एक मसजिद है। इसमें सन्देह नहीं कि आस पास के मन्दिरों को तोड़ कर ही उस के लिए पत्थर एकत्र किया गया होगा। इस मसजिद में सब से अच्छा काम भीतर मिहराबों पर है। यह सन् १४३८ ईसवी के लगभग की बनी हुई है। इसके और मुग़लों के समय के बीच के कोई भी चिह्न यहाँ नहीं मिलते।

मुग़ल बादशाह बाबर को पत्थर के काम से बड़ा प्रेम था। यह बात वह अपने आत्म-चरित में ख़ुद लिख गया है:—

"मुझे प्रतिदिन आगरे में अपने महल बनवाने के लिए वहाँ ही के ६८० शिल्पकारों को रखना पड़ता था। इसके सिवा आगरा, सीकरी, ध्यानाधौलपुर, ग्वालियर और कोयल में १४९१ शिल्पकार मेरा काम करते थे"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु खेद है कि उसके समय का एक भी मकान नहीं मिलता। मुग़लों के समय की जो इमारतें मिलती हैं वे अकबर के समय के पहले की नहीं।

अकबर के पहले जितने मुसलमान बादशाह होगये उनका उद्देश राज्य-स्थापना करने का न था। लूट-मार से जो कुछ मिला उसेही लेकर वे चलते बने और राज्य-प्रबन्ध किसी ग़ुलाम या सैनिक पर छोड़ते गये। बाबर भारतवर्ष में आकर थोड़े ही दिन जीवित रहा। हुमायूँ बेचारा विपत्ति ही में रहा। अकबर ही ने, जो मुग़लों में सब से अच्छा और शक्तिशाली सम्राट् हुआ, पहले पहल यहाँ पर राज्य स्थापित कर के बसना बिचारा। उसने भारत ही को अपनी मातृभूमि बनाया। आगरे का लाल पत्थर का क़िला उसी का बनवाया हुआ है। सिकन्दरे का पत्थर का काम और फ़तहपुर सीकरी के भवन आदि भी उसी के समय के बने हुए हैं।

भारत में मुसलमानों के आगमन से इस कला में भी एक बड़ा भारी परिवर्तन होगया। इन लोगों के मूर्तिपूजक न होने के कारण मनुष्य-मूर्तियों का बनाना बहुत कम हो गया। इन के धर्म-ग्रन्थों में लिखा है कि मनुष्य या पशु-पक्षी किसी की भी आकृति न बनानी चाहिए। इसी से जहाँ कहीं ऐसी आकृतियाँ खुदे हुए मन्दिर या भवन आदि मिले उन्होंने तोड़ डाले। महमूद आदि का तो इस बात पर बड़ा गर्व था कि वे "बुतपरस्त" न होकर "बुतशिकन" थे। इसी से उन्होंने हज़ारों मूर्तियाँ तोड़ डालीं और लाखों का अङ्ग-भङ्ग कर डाला। इस पर लोगों ने सोचा कि यदि हम इसी प्रकार का काम फिर करावेंगे तो ये फिर तोड़ डालेंगे। इसी से मनुष्य, पशु और पक्षियों की आकृतियों को छोड़ कर पत्थर पर बेल-बूटे, फूल-पत्ते, जाली आदि का काम होने लगा। तभी से मूर्ति-निर्माण-विद्या बहुत अवनत होगई। केवल देवताओं की मूर्तियाँ कहीं कहीं बनती थीं। उनके लिए नाप लिखे हुए थे। बस उसी की पाबन्दी होती थी। अपने दिमाग़ से कोई कारीगर काम न करता था। यदि ऐसा न होता तो सम्भव था कि आज कल भारत में भी इतनी अच्छी मूर्तियाँ बनती होतीं कि इटली की बनी हुई मूर्तियों को कोई भी न पूछता। इटली वालों को मुसलमानों को धन्यवाद देना चाहिए कि जिनके ताअस्सुब के कारण भारत में मूर्तियों का बनना एक प्रकार से बन्द सा होगया। नहीं तो शायद इटली इस बात में भारत की बराबरी न कर सकता; क्योंकि यहाँ का पत्थर वहाँ के पत्थर से अधिक अच्छा होता है और अब इस गिरी हुई दशा में भी यहाँ पर अच्छे मूर्तिकार हैं। यदि मुसलमान लोग मूर्तियों पर ऐसा अत्याचार न करते तो ऐसा कभी न होता कि मातृतुल्य पूजनीया महारानी विक्टोरिया की मूर्तियाँ इटली में बनतीं।

अकबर इतना मुताअस्सब न था कि पत्थर पर खुदी हुई मनुष्यों अथवा पशु-पक्षियों की आकृतियों को न देख सकता। उसकी हिन्दू-रानियों के महलों में पुराने ढँग का, हिन्दुओं के समय का सा, काम है। आगरे के क़िले में बने हुए, अकबर की हिन्दू-बेगमों के महलों में अब तक पुरानी हिन्दू कारीगरी के कुछ न कुछ चिह्न पाये जाते हैं। वे मुसलमानी समय की कारीगरी से भिन्न हैं। अकबर के समय के बने हुए मकानों की सादगी बौद्ध काल की सादगी की याद दिलाती है। कटाव आदि अवश्य हैं; पर इतने नहीं कि कुछ भी स्थान न बचा हो। सुन्दर और मनोहर होते हुए भी उनसे एक प्रकार का मरदानापन झलकता है। शाहजहाँ और जहाँगीर के बनवाये हुए भवनों में इस बात का अभाव है। न उन पर इतना कम व्यय हुआ है कि वे सुन्दर या राजभवन सदृश न बने हों और न इतना अधिक रुपया बिगाड़ा ही गया है कि प्रजा को कष्ट पहुँचा हो। सुन्दरता और दृढ़ता में वे शाहजहाँ की बनाई हुई इमारतों से कम नहीं। न इनमें वह ज़नानापन या सुकुमारता पाई जाती है जो बाद की बनी हुई मुग़ल इमारतों में है। कारण यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि अकबर को तो राज्य स्थापित करना था। जगह जगह लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी थीं। उसके समय में ऐसी सुकुमारता कहाँ से आती। परन्तु उसके उत्तराधिकारियों को बना बनाया राज्य मिल गया। इसी से वे विलास-प्रिय होगये। ज्यों ज्यों विलास-प्रियता बढ़ती गई पुरुषत्व कम होता गया और सुकुमार वस्तुओं की आवश्यकता बढ़ने लगी। इसका प्रभाव इस कला पर भी पड़ा।

जहाँगीर तो सदा ही से विलास-प्रिय था। नूरजहाँ के अपूर्व सौन्दर्य्य ने उसे अपने वशीभूत कर लिया था। बेगमों के रत्न जड़े हुए आभूषण ही उसकी आँखों के सामने सदा रहते थे। उन जड़ाऊ भूषणों के आगे पत्थर पर खुदे हुए बेल-बूटे कैसे उसकी निगाह में जँच सकते थे? इसी से उसे यह इच्छा हुई कि जैसे ये जड़ाऊ भूषण हैं वैसे ही जड़ाऊ भवन भी होने चाहिए। अतएव इस कला में फिर एक नई बात पैदा हुई। अब तक तो पत्थर पर बेल-बूटे, मूर्तियाँ, जालियाँ आदि ही बनती थीं; अब बेल-बूटों में रङ्ग-बिरङ्गे पत्थर और रत्न भी जड़े जाने लगे। फिर इसी कला का नाम मुनब्बतकारी है। इस का आरम्भ जहाँगीर बादशाह के ही समय में हुआ। इसने पूरी पूरी उन्नति शाहजहाँ के समय में पाई। इसके उदाहरण आगरे में ताजगञ्ज, सम्मन बुर्ज और दीवाने ख़ास हैं। ये शाहजहाँ के बनाये हुए हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इनकी सुन्दरता अद्वितीय है और ऐसे सुन्दर मकान कहीं भी नहीं पाये जाते। किन्तु ख़र्च की अधिकता के कारण यह काम बहुत दिन तक न चल सका। शाहजहाँ के बाद ही यह बन्द सा होगया।

फिर आया औरङ्गज़ेब का समय। मन्दिरों और मूर्तियों के लिए तो मानों प्लेग आगई। उसके समय में जहाँ कहीं मन्दिर थे प्रायः सभी तोड़ दिये गये और बहुतों की मसजिदें कर दी गईं। इस बादशाह के समय में इस कला ने कुछ भी उन्नति न की। जो मसजिदें उसके समय की हैं उनमें से अधिकांश यथार्थ में मन्दिर थे, जिन्हें उसने तोड़ फोड़ कर मसजिदें बना दीं। कदाचित् वह कोई नया राजभवन बनवाता और अपने समय की इस कारीगरी के कुछ चिह्न छोड़ जाता। परन्तु उसे मन्दिरों के तोड़ने और दक्षिण की चढ़ाई से फ़ुरसत ही न मिली।

उसके बाद बादशाही नाम मात्र को रह गई। सारे देश में गड़ बड़ मची रही। इससे कारीगरी को बड़ा धक्का पहुँचा। तथापि हिन्दुओं ने जहाँ तहाँ मन्दिर आदि बनवा कर इस कला को जीवित रक्खा।

इसकी वर्तमान अवस्था।

आज कल भी इसकी वही दशा है जो औरङ्गज़ेब के समय में थी। इस समय इस कला के संरक्षक अधिकतर हिन्दू ही हैं। चाहे गाँव में बनें, चाहे शहर में, जहाँ कहीं मन्दिर बनते हैं पत्थर का काम अवश्य होता है। मुसलमानों की इस समय की मसजिदें बहुधा चूने और ईंट से बनती हैं। मथुरा, काशी, मिर्ज़ापुर, आगरा आदि में अब भी बहुत अच्छा काम मन्दिरों में किया जाता है। पर यह मुनब्बतकारी का वैसा काम नहीं जैसा शाहजहाँ और जहाँगीर के समय में होता था। यह काम अकबर के समय के काम से मिलता जुलता है। मुनब्बतकारी का काम तो अब बिलकुल बन्द सा हो गया है। उसमें ख़र्च इतना पड़ता है कि हर मनुष्य उसे नहीं करा सकता। वर्तमान समय के बने हुए मन्दिरों में आगरे की एक गली में एक जैन-मन्दिर है, जिसमें अच्छी मुनब्बतकारी की गई है। अब तो यह काम केवल तश्तरियों, मेज़ों, काग़ज़ दाबने के पत्थरों, डिबियों, क़लमदानों आदि ही पर किया जाता है और इन्हीं चीज़ों की माँग भी बहुत है। जाली का काम भी होता है। अधिकतर मन्दिरों ही में यह काम पाया जाता है। आगरे में जाली के काम की डिबियाँ भी बनती हैं; उनकी माँग योरप में बहुत है।

इन कामों के लिए पत्थर खानों से आता है। ये खानें अधिकतर चुनार, मिर्ज़ापुर, करवी, ललित-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

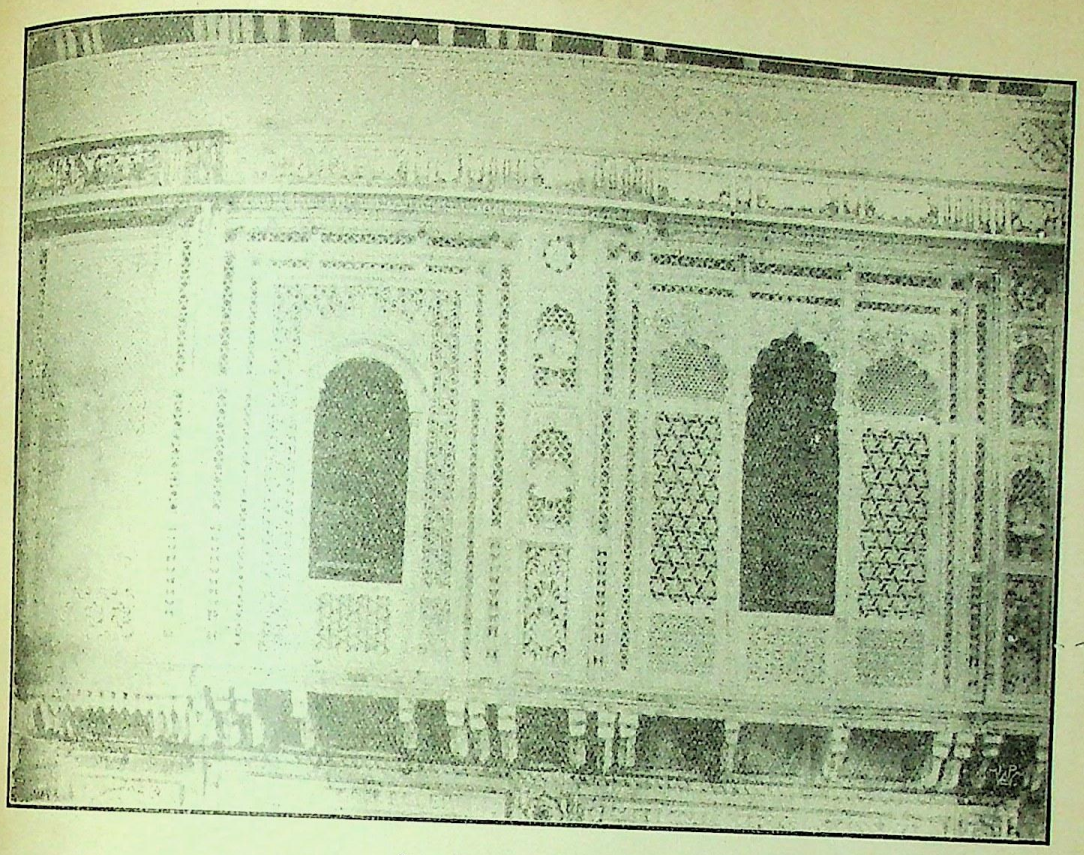

वृन्दावन के श्रीविहारीजी के मन्दिर की जाली।

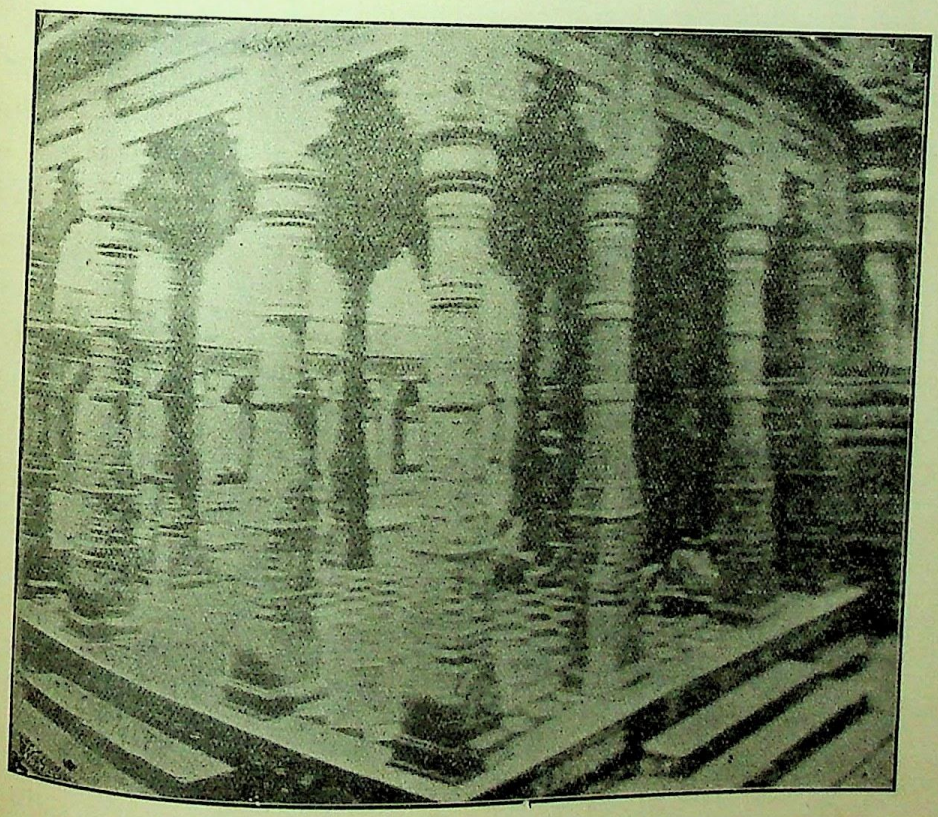

दुर्गा जी का मन्दिर, काशी।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

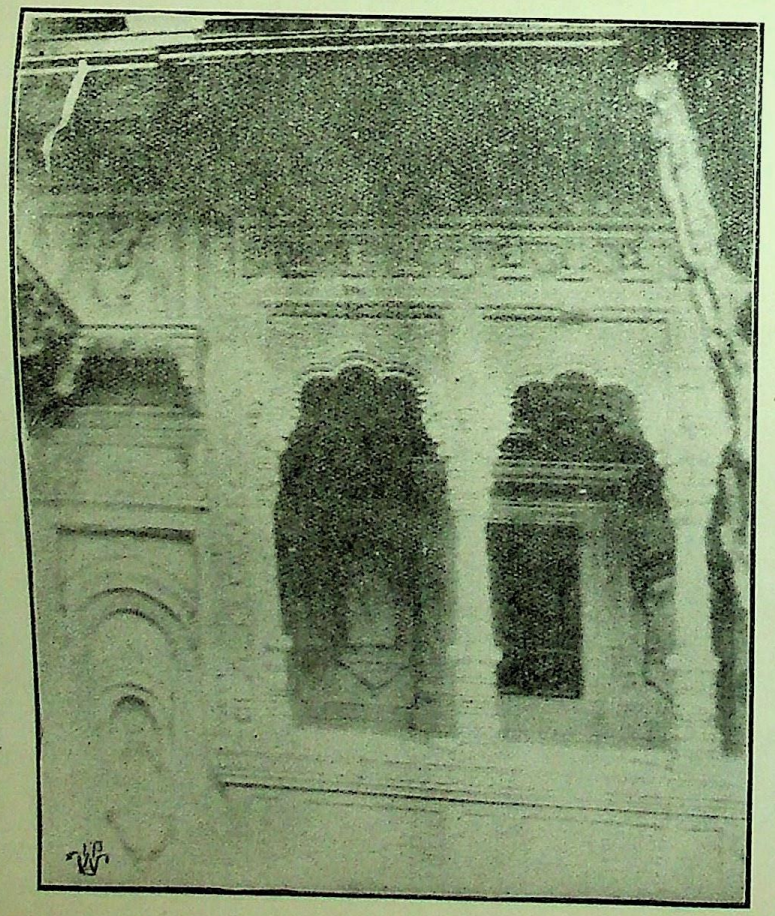

विन्देश्वरी प्रसाद के मन्दिर का एक भाग (मिर्ज़ापूर)।

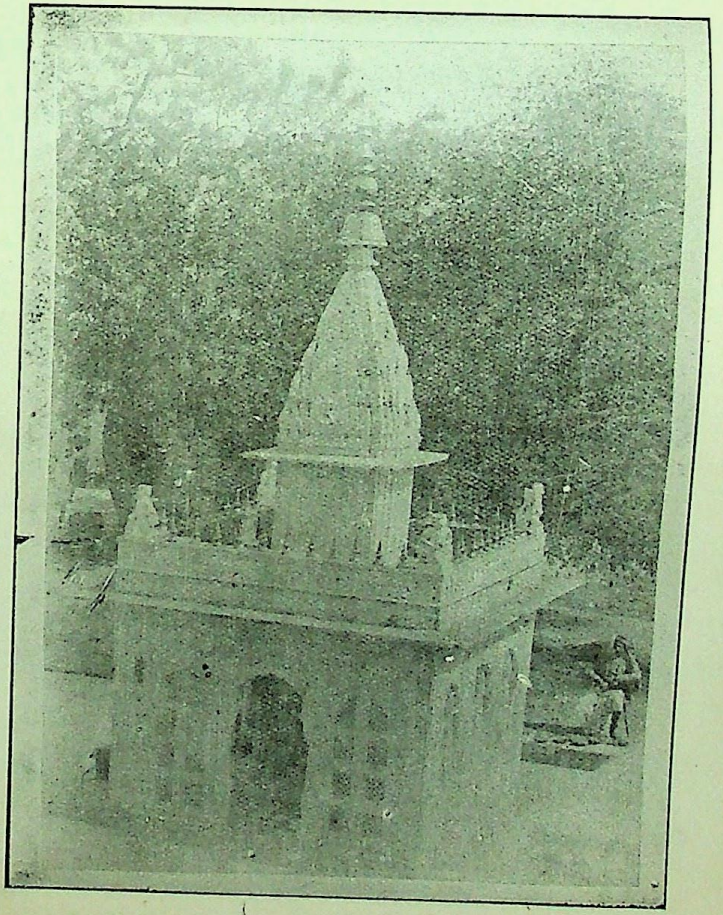

आगरा ज़िले का एक देहाती मन्दिर।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुर, ग्वालियर, भरतपुर और फ़तहपुर सीकरी में हैं। चुनार में तो पत्थर की खानों का एक महाल ही अलग बना दिया गया है। उसका नाम स्टोन महाल है। उसके प्रबन्ध के लिए एक तहसीलदार रहता है। सरकार को इससे एक लाख रुपये साल की आमदनी होती है। यह पत्थर दो तरह का होता है—लाल और सफ़ेद। सफ़ेद के दाम लाल से अधिक होते हैं। पर सङ्गमरमर, जो आगरे के ताज और क़िले में अधिकता से लगाया गया है, मकराने से आता है। यह स्थान जोधपुर राज्य का है। अब भी यह पत्थर मन्दिरों आदि में अधिकता से काम में आता है और वहीं से मँगाया जाता है। यह मामूली लाल और श्वेत पत्थर से कहीं अधिक पुष्ट होता है और सुन्दरता का तो वर्णन करना ही क्या है। ताजगंज, समन बुर्ज़ और दीवाने ख़ास ही इसका वर्णन कर रहे हैं। इसकी दृढ़ता के विषय में एक उदाहरण देना अयुक्त न होगा। फ़तहपुर सीकरी की जाली और चुनार की दरगाह की जाली एकही समय की बनी हुई है। पर फ़तहपुर सीकरी की जाली अब भी ऐसी ज्ञात होती है जैसे कल की बनी हो और चुनार की दरगाह की जाली तो अभी से फटने और टूटने लगी है। कुछ काल में उसका नाम ही शेष रह जायगा। परन्तु इस सङ्गमरमर पर इतना कर लिया जाता है कि वह इटली से आये हुए सङ्गमरमर से भी मँहगा पड़ता है और लोग उसकी सुन्दरता और दृढ़ता पर मुग्ध रहते हुए भी उसे अधिक नहीं ख़रीद सकते।

मुनब्बतकारी में नीचे लिखे हुए पत्थर बहुधा काम आते हैं :—

सफ़ेद सङ्गमरमर, मकराने से
काला ,, राजपूताना से
पीला ,, जिसे अब्री भी कहते हैं, जेसलमेर से
ग्वालियर का रत्तक पत्थर, ग्वालियर से
जबरजद, खंवात से
फ़ीरोज़ा, जबलपुर से
सुलेमानी पत्थर, केन नदी से
अक़ीक—बम्बई, खंवात और बाँदा से
तामड़ा पत्थर, जयपुर से
लाजवर्दी, बुलन्दशहर और लङ्का से
बादल पत्थर, सबलगढ़ से

सीप भी मुनब्बतकारी में काम आती है। आगरे में तश्तरियाँ आदि इससे भी जड़ी जाती हैं। इसके काम का सर्वोत्तम उदाहरण फ़तहपुर सीकरी में शेख़सलीम चिस्ती की क़ब्र पर है। किन्तु सीप का काम इतना सुकुमार और कमज़ोर होता है कि मन्दिरों और मकानों में उसका प्रयोग नहीं किया जाता। मूँगा, फ़ीरोज़ा, उजूबा भी मुनब्बतकारी में काम आते हैं। सुनहली पत्थर भी ताजगञ्ज में लगा हुआ है; पर अभी तक यह ज्ञात नहीं कि वह कहाँ से आया था।

आज कल पत्थर के काम करनेवाले अधिकतर हिन्दू ही हैं। इन लोगों के पास कोई बढ़िया यन्त्र नहीं; केवल कई प्रकार की टाँकियाँ होती हैं। जो कोई इस काम को सीखता है वह छोटेपन से ही किसी चतुर राज के पास बैठ कर उसको काम करते देखा करता है। इसी प्रकार जब वह कुछ समझने लगता है तब छोटी छोटी चीज़ें उसे बनाने को दी जाती हैं। अभ्यास करते करते वह पूरा कारीगर हो जाता है। इन लोगों में विद्या का बड़ा अभाव है। ये पुरानी लकीर के फ़क़ीर होते हैं। जिस प्रकार की जालियाँ और बेलें आदि ये बनाते आये हैं उसी प्रकार की बनाते हैं। इनमें स्वतन्त्र विचार इतना भी नहीं कि नई नई बेलें, जालियाँ, फूल, वृक्ष आदि बना सकें।

इस कला का भविष्य।

विद्या का अभाव एक बड़ा अभाव है। यदि पत्थर के कारीगर उन्नति न करेंगे तो उनका व्यवसाय बहुत दिन न चल सकेगा। एक दिन विदेश से बन कर यही चीज़ें आने लगेंगी। अतएव इस बात की आवश्यकता है कि हमारे शिक्षित नवयुवक इस काम की ओर ध्यान दें। जब तक हम लोगों में नौकरी करने की चाह कम न होगी उन्नति कठिन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगरे में इस काम के लिए एक स्कूल खुल जाना चाहिए। उसमें एक स्वतन्त्र शाखा ऐसी होनी चाहिए जिसमें खुदाई के लिए नये नये प्रकार के नमूने निकाले जायँ और तैयार किये जायँ। उसमें नक़शा खींचना आदि सभी कुछ सिखाया जाय। हमको अपनी पुरानी मूर्ति-निर्माण-विद्या का फिर से पुनरुद्धार करना चाहिए। यह स्कूल, आर्ट-स्कूल के ढँग पर हो। सङ्गमरमर को सस्ता करने का भी प्रयत्न करना चाहिए। मैं जिस कालेज में पढ़ता था वहाँ की यह रीति है कि वहाँ से जितने विद्यार्थी बी० ए० आदि की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते हैं उनके नाम सफेद सङ्गमरमर की पटिया पर काले अक्षरों में खोद दिये जाते हैं। पुरानी पटिया भर गई थी; उस पर स्थान न रहा था। अतः नई पटिया मँगाकर दीवार पर जड़ी गई। पुरानी पटियाँ सब मकराने के पत्थर की थीं। पर यह नई पटिया, जो सस्ती समझ कर ली गई थी, इटली के पत्थर की थी। इसमें सन्देह नहीं उसमें और इसमें कौड़ी मोहर का अन्तर था; पर बात यह है कि रुपया पत्थर से ज़्यादा मँहगा है। यदि जोधपुर के महाराज उस पर से कुछ कर कम करदें तो उनकी आमदनी भी बढ़ जाय और इस कला की भी उन्नति हो।

न जाने क्यों हमारे धनी पुरुष अपने रहने के भवनों में पत्थर का काम बहुत नहीं कराते; पर मन्दिरों में अवश्य कराते हैं। रहने के भवन भी पत्थरे के काम के बनने लगें तो दृढ़ भी अधिक हों, सुन्दर भी अधिक हों, और इस कला की उन्नति भी हो। भोजनालय, पाकालय, स्नानभवन आदि पत्थर ही के बहुत अच्छे होते हैं। यह आवश्यक नहीं कि उन पर काम ही कराया जाय। सादे भी तो बहुत अच्छे होते हैं। यदि हम लोग इस ओर ध्यान दें तो पत्थर की बहुत सी काम की चीज़ें बन सकती हैं। सरकारी मकान अधिकतर ईटों ही से बनाये जाते हैं। ईटों की बहुलता और सस्तेपन के कारण ऐसा होता है। यदि उनमें पत्थर का भी प्रयोग किया जाय तो इस कला की बहुत कुछ उन्नति हो। हर्ष की बात है कि बम्बई के अपोलो बन्दर पर सम्राट् पञ्चम जार्ज के पदार्पण का स्मारक-भवन बनाया जानेवाला है। आशा है यह भवन भारत की कारीगरी ही से विभूषित किया जायगा; और, दिल्ली में जो राजभवन बनाये जायँगे उनमें भी ऐसा ही होगा। यदि महाराज ग्वालियर और बीकानेर की दी हुई सम्राट और सम्राज्ञी की मूर्तियाँ भारत ही में बनाई जायँ तो बहुत अच्छा हो।

योगेन्द्रपालसिंह

काल की कुटिलता।

१

थे कल मुदित हम, आज हमको मोद पाना है नहीं;
इस ज़िन्दगी का भाइयो! कुछ भी ठिकाना है नहीं।
पा कर क्षणिक सुखभोग हैं हा! हम अभी फूले हुए;
घट जाय कैसे कौन सी घटना—इसे भूले हुए॥

२

है उदय से ही अस्त; जीवन से मरण प्रत्यक्ष है;
संयोग से समझो सदा दुःसह वियोग समक्ष है।
सुख-कौमुदी छिटकी अभी; दुख-मेघ वह अब घिर रहा—
यों नित्य सुख के सङ्ग ही दुख भी सदा ही फिर रहा॥

३

दिन बीतते थे सर्वदा आमोद से जिनके बड़े,
हैं आज एकाएक वे ही दुःख-सागर में पड़े।
हत-प्राण, नत-मस्तक किये, गत-सत्व सांसें ले रहे;
हा! किन्तु हम इस पर कभी क्या ध्यान भी हैं दे रहे?

४

सुख-सिन्धु में था खेलता, दुख-गर्त में क्यों कर गड़ा,
था हँस रहा, क्या हो गया जो वह बिलखता अब पड़ा!
इस तरह भङ्गुरता विषम अत्यन्त आती दृष्टि है;
सुख नाम को ही; सर्वथा दुख-पूर्ण सारी सृष्टि है॥

५

उत्साह से था हो रहा सुख-साज अति सुन्दर जहां,
देखो, अभी ही मच गया है दुःख का क्रन्दन वहां।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

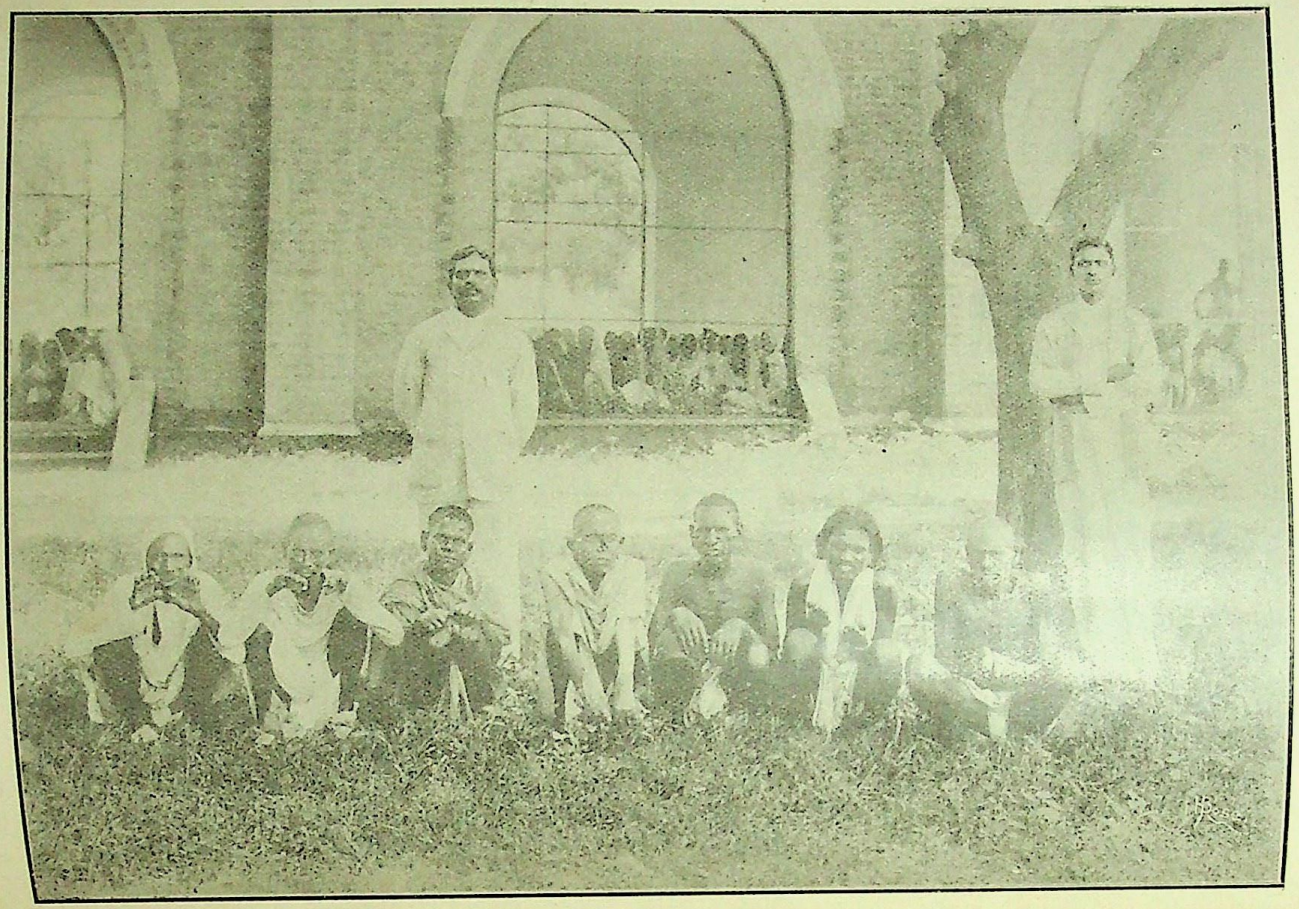

नैनी-कुष्ठाश्रम के पुरुष कुष्ठी ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

नैनी-कुष्ठाश्रम की कुष्ठरोगिणी स्त्रियाँ ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेनी-कृषाश्रम के कुछ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहते किसी को ज्ञात परिवर्त्तन भला ये क्या कहीं ?
है काल की यह कुटिलता जानी कभी जाती नहीं ॥

पाण्डेय मुकुटधर शर्म्मा, विद्यार्थी।

कोढ़ियों के प्रति हमारा कर्तव्य।

हमारे देश-भाइयों में, इस समय, ढाई लाख ऐसे जीव हैं जो कुष्ठरूपी असाध्य और भीषण रोग से ग्रस्त हो कर अनेक यातनायें भोग रहे हैं। उनके शरीर की गाँठ गाँठ में पीड़ा ने मानो घर कर लिया है। इस असह्य वेदना के साथ मन की उदासीनता और आत्म-ग्लानि से उनका जीवन उन्हीं को बोझ सा हो रहा है। किसी ओर से उन्हें कोई आशा नहीं दिखाई देती। दूसरों की कौन कहे उनके आत्मीय जन भी उन से घृणा करते हैं। वैद्यों के पास इनके लिए कोई दवा नहीं, और अन्य लोगों के हृदय में इन के लिए ज़रा भी दया नहीं। जिनके पास चार पैसे हैं वे किसी प्रकार घर के कोने में पड़े हुए मृत्यु की प्रतीक्षा किया करते हैं, और जो निर्धन हैं और नित की मज़दूरी से उदर पालते हैं वे रोग से जर्जर और असमर्थ हो जाने पर गली गली भिक्षा माँगने लगते हैं। अन्त में मृत्यु इनको इस महा संकट से मुक्त कर देती है। यह रोग स्पर्श-जन्य है। निर्धन, निस्सहाय रोगियों के इस तरह जहाँ तहाँ घूम कर भिक्षा माँगने से कहीं यह रोग सर्व-साधारण में न फैल जाय, इसलिए सरकार ने १८९२ में लेप्रोसी ऐक्ट नं ३ (Leprosy Act, No. 3) नाम का एक क़ानून पास किया था। उसके अनु-सार वे खाने पीने की चीज़ें बनाने तथा बेचने से, जिस कुये से जनसाधारण काम लेते हों उसमें नहाने-धोने से, रेल के सिवा और गाड़ियों पर चढ़ने से तथा दूकान आदि करने से रोके गये। इन नियमों को उल्लङ्घन करनेवाला कोढ़ी दण्डनीय समझा जाता है।

पर, इस क़ानून का पूर्ण व्यवहार देखने में नहीं आता। प्रायः जहाँ तहाँ कोढ़ी लोग बाज़ार में, धर्मशालाओं में या घाटों पर घूमा करते हैं। वे अपने घावों को दिखला कर दुकानों पर चुटकी माँगा करते हैं। जब वे हाथ पैर के ठूँठे हो जाते हैं तब घावों पर लत्ते बाँध बाँध कर इधर उधर घिसलते फिरते हैं। सैकड़ों मील की यात्रा इसी प्रकार घिसल कर वे तै करते हैं।

अन्तिम मनुष्य-गणना के अनुसार इनकी संख्या २,५०,००० है। पर अनुमान किया जाता है कि इनकी वास्तविक संख्या इसकी दुगुनी होगी। प्रायः लोग अपमानित होने के भय से इस रोग को छिपाते हैं। इसका बड़ा बुरा फल होता है। इन के संसर्ग से और लोगों में तो यह रोग फैलता ही है; पर इससे भी अधिक भयङ्कर फल इनकी सन्तान को भोगना पड़ता है। अपने माता-पिता के साथ रह कर इनके बच्चे भी इस रोग से ग्रस्त हो जाते हैं। थोड़े ही दिनों में बच्चों का रुधिर बिगड़ जाता है। फिर उनके मुख पर वह कान्ति और हास्य तथा शरीर में वह फुरतीलापन बाक़ी नहीं रहता। अग्नि की ज्वाला में शुष्क तरु-लता की तरह इस रोग में वे अपने को आहुत कर देते हैं। बड़े बड़े डाक्टरों का मत है कि यह रोग कुल-क्रम से नहीं फैलता, अर्थात् माता-पिता के दोष से बच्चों का स्वास्थ्य नहीं बिगड़ता। यदि थोड़ी ही अवस्था में बच्चे अपने मा-बाप से अलग कर दिये जायँ तो वे इस रोग से बिलकुल बच जायँ। सन् १८९०—९१ के लेप्रोसी कमिशन का भी यही मत था और देखने में भी आया है कि जो लड़के इस प्रकार अलग कर दिये गये वे स्वस्थ रहे और उनकी सन्तान भी नीरोग हुई।

ग़दर के पहले इस देश में कई स्थानों पर कुछ ऐसी सभायें थीं जो अशक्य कोढ़ियों के भोजन, आच्छादन और आश्रय का प्रबन्ध कर देती थीं। पर, कुछ दिनों बाद, ये सभायें इस काम को न सँभाल सकीं और उन्होंने कोढ़ियों की रक्षा का भार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ईसाई सभा के सिपुर्द कर दिया। उसने भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों में कोढ़ियों के लिए ५० आश्रम, उनके स्वस्थ बालकों के लिए २० भवन और कोढ़ियों के इलाज के लिए ३० रोगशालायें बनवा दी हैं। इस समय लग भग नौ सहस्र अनाथ कोढ़ी इस सभा के आश्रय में हैं। उनके भोजन, वस्त्र, औषधि और धार्मिक उपदेश का भी पूरा पूरा प्रबन्ध है। उनके ६०० अबोध बालक-बालिकाओं के लालन-पालन का भार भी मिशन ने अपने ऊपर लिया है। अपने मुखपत्र "Without the Camp" में बार बार मार्मिक लेख लिख लिख कर मिशन वाले इनके लिए चन्दा इकट्ठा करते हैं। बड़े बड़े उदार शिक्षित महापुरुष स्वेच्छा-सेवा करके मिशन को इस कार्य्य में सहायता देते हैं। सरकार ने भी मिशन की धन से यथासम्भव सहायता की है। देश के अनेक विद्वान् और राज-कर्मचारियों ने मिशन के कामों की बड़ी प्रशंसा की है।

कोढ़ियों ने भी चारों ओर से ठोकरें खाकर मिशनवालों को अपना मित्र समझ लिया है। कोढ़ियों का मिशन, साधारण पादरियों से स्वतन्त्र है। पर बहुधा इसके सञ्चालक ईसाई ही होते हैं। फल यह होता है कि जब वे हमारे कोढ़ी भाइयों को आश्रय देकर अपनाते हैं तब साथ साथ वे उन्हें अपना धर्म भी सिखलाते हैं। विदेशियों की दया और कृपा से हमारे कोढ़ियों की दशा कहाँ तक सुधरी है तथा उनके विचार और धर्म के परिवर्तन से जाति को कहाँ तक हानि-लाभ पहुँचा है, यह पाठक स्वयं विचार सकते हैं। पर, हाँ, भविष्यत् में भारतवर्ष के इतिहास लिखनेवालों को इस बात को लिखते हुए अवश्य थोड़ी देर के लिए चिन्ता में निमग्न हो जाना पड़ेगा कि दया का ढ़कोसला रचने वाली भारतीय जाति इतनी निर्दयी निकली कि विदेशियों को उसके नौ हज़ार कोढ़ियों की सेवा-शुश्रूषा करने के लिए आगे बढ़ना पड़ा, जिसका फल यह हुआ कि ९००० कोढ़ियों में से ३५०० स्त्री-पुरुष ईसा के अनुयायी होने का दम भरने लगे!

हमारे देशवासी कोढ़ियों को दूरही से देख कर नाक भौं सिकोड़ने लगते हैं। इनकी परछाहीं पड़ते ही वे घृणा से थू थू कर के थूक उगलते हैं। कोई भी इन्हें पास नहीं आने देता। बहुतेरे तो इनसे यहाँ तक घृणा करते हैं कि इनकी चर्चा भी उन्हें अरोचक होती है। कोई पूर्व जन्म का फल कह कर और विधाता की लीला बतला कर उनसे अपना पिण्ड छुड़ा लेते हैं। कोढ़ियों की बात चलते ही धन की न्यूनता की भी दुहाई दी जाती है और समय और उत्साह का भी अभाव बताया जाता है। संक्षेपतः लोग कोढ़ियों का बड़ा तिरस्कार करते हैं। यह कितनी अमानुषिकता की बात है कि हमारे स्वदेशवासी ऐसे भयङ्कर रोग के चङ्गुल में पड़ कर हमारी आँखों के सामने दुःख से तड़पते दर दर की ठोकरें खाते फिरें और उनकी रक्षा के लिए यत्न करना तो दूर रहा हम उनके साथ सद्-व्यवहार भी न करें।

हाय! जिस भारतवर्ष में अनादि-काल से दया और धर्म के नाम पर आकाश और पाताल के कुलावे मिलाये जाते हैं वहाँ के पतित और दुखियों के पालन और आश्वासन में ऐसी शिथिलता! इस सम्बन्ध में यह कहना बिलकुल अतिशयोक्ति नहीं कि प्रायः हमारी ममता मनुष्यों से अधिक पशुओं पर देखने में आती है। नाना प्रकार के पशुओं के पालन-पोषण में हमारा लाखों रुपया प्रति वर्ष खर्च हो जाता है; पर कोढ़ियों के लिए, जो हमारी ही तरह मनुष्य हैं, हमारी ही तरह बोल चाल सकते हैं और हमारी ही तरह बुरा भला विचार सकते हैं, हमारा हृदय मनुष्यत्व के सार्वभौमिक भाव से इतना भी नहीं पसीजता जितना विवेक-शून्य पशुओं के लिए। हमारी बुद्धि की बलिहारी है कि हम मनुष्य को पशु से भी निकृष्ट समझने लगे हैं।

धन और समय की क्या त्रुटि! धन तो आप से आप एकत्र हो जायगा। हमारे ये अभागे भाई धन के इच्छुक नहीं; प्रेम के भूखे हैं। विदेशियों ने प्रेम से इनका मन मोह लिया है। हमने तो घृणा करके भाइयों को अपने हाथ से खोदिया है। आओ पहले हम इन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने हृदय में स्थान दें। कभी कभी घड़ी आध घड़ी इनके कल्याण की कामना में चित्त लगावें। इनकी दुर्दशा पर विचार करें। इनके प्रति प्रेम का भाव उत्पन्न होते ही हम इनके हित के पथ में अग्रसर हो जायँगे। ईश्वर हमारे हृदय में प्रेम की जोति का प्रकाश डाले।

"मागध"।

प्रेम।*

क्यों पीड़ा देने को विधि ने रचा प्रेमनिधि है निश्चल ?
इतना कोमल कर के फिर क्यों किया कण्टकित फुल्ल कमल ?
डूबे प्रथम अनलजल में तब मिलता प्रेमरत्न निर्मल।
कहीं मृत्यु-फल फलता उससे कहीं कलङ्क-लाभ केवल !
प्रेम दूर से ही सुन्दर है यथा चञ्चुलालोक चपल।
दर्शन में जो अति अनुपम है स्पर्शन में है दीप्तानल॥
जीवन-कानन में मरीचिका मोहमयी है महा प्रबल।
अहो ! यहाँ जो प्रेम चाहता वह चाहता उपल में जल॥
आज प्रेम जो पान करेगा हाय ! जान कर सुधा सरल;
कल विरहानल में पावेगा उसे अश्रु-जल और गरल !

"मधुप"

हीरा और लाल की कहानी।†

किसी नगर में एक ग़रीब घसियारा रहता था। वह रोज़ जङ्गल से घास काट कर लाता और शहर में एक दो आने को बेच कर अपना पेट भरता। एक दिन सुबहही उठ कर वह शहर के बाहर घास काटने गया। जब वह थोड़ी घास काट चुका तब उसे ख़याल आया कि वह गठड़ी बाँधने की रस्सी भूल आया है। ग़रीब घसियारे का मुँह मारे फ़िक्र के फ़ीका पड़ गया। उसकी दिन भर की मिहनत मिट्टी में मिली जाती थी। वह इस प्रकार सोच में बैठा था कि उसे कुछ दूर पर, धूप में, एक रस्सी सी चमकती दिखाई पड़ी। वह उसे देखने को अगाड़ी बढ़ा। पास जाने पर उसने देखा कि एक मरा हुआ साँप पड़ा है। उसे उस मरे साँप के मिलने से बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने सोचा कि रस्सी न सही इसीसे काम चल जायगा। उसने झट पट उसे उठा लिया। परन्तु यह क्या ! यह तो मरा हुआ साँप नहीं; यह तो एक बहुमूल्य माणिक (लाल) है। बेचारा मज़दूर पहले तो इस काया-पलट से चकराया और डरा; फिर कुछ हिम्मत की और उस माणिक को कस कर उसने अपनी पगड़ी के छोर में बाँध लिया। दिन छुपे तक वह घर लौटा। उसे उसके मूल्य की कुछ भी ख़बर न थी। उसने सोचा कि ऐसी सुन्दर चीज़ राजा को भेंट करने योग्य है। दूसरे दिन सुबह वह महलों में गया और उस माणिक को राजा की भेंट किया। राजा उस बहुमूल्य माणिक को पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ और घसियारे को बहुत सा इनाम इकराम देकर बिदा किया। घसियारे को इतना धन मिला कि मरते समय तक उसे घास काटने की आवश्यकता न पड़ी।

राजा माणिक को ले कर रनिवास में गये और उसे अपनी रानी को दिया। रानी हाथ में लेकर उसकी चमक दमक की प्रशंसा करने लगी। इतने ही में देखती क्या है कि हाथ में माणिक वानिक कुछ नहीं; उसकी जगह एक छोटा सा सुन्दर बच्चा है। रानी के होश हवास जाते रहे। ज़रा देर बाद उसने तबीयत को सम्हाला। रानी के कोई पुत्र न था। इसलिए उसेही पुत्र के समान वह प्यार करने लगी। वह बच्चा माणिक से प्राप्त हुआ था। इसलिए उसका नाम "लाल" रक्खा गया। लाल की अवस्था और सुन्दरता दिनों दिन बढ़ने लगी। उसके चेहरे पर राजसी झलक थी—ऐश्वर्य के सारे चिह्न दिखाई पड़ते थे। जब उसकी अवस्था आठ वर्ष की हुई,

---

* बँगला—"पलाशिर युद्ध" के एक गीत का भाव।
† अक्टूबर १९०७ के "माडर्न रिव्यू" में "शेख़चिल्ली" की अँगरेज़ी कहानी का अनुवाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके पिता ने उसे पाठशाला में भेजा। इस पाठशाला में केवल राजपुत्र और राज-कन्याओं को ही शिक्षा दी जाती थी। उसमें "हीरा" नाम की एक अति रूपवती राजकन्या भी पढ़ती थी। हीरा और लाल में शीघ्रही मित्रता हो गई। वे आपस में प्रेम करने लगे। बिना एक के देखे दूसरे को चैन न पड़ता था। इसी तरह कई वर्ष बीत गये और उनका बचपन का प्रेम अब सयानी में दृढ़ हो गया। लाल के पिता को इसकी ख़बर हुई। उस ने लाल की नाराज़गी की बिलकुल परवा न करके आज्ञा दी कि वह हीरा का साथ छोड़ दे और उससे कुछ सम्बन्ध न रक्खे। हीरा भी पढ़ लिख कर होशियार हो चुकी थी। उसका ब्याह एक बड़े राजा के साथ, जो उम्र में बहुत अधिक था, और जिसकी कमर झुक गई थी, बहुत शीघ्र होनेवाला था। जिस समय हीरा के ब्याह की ख़बर लाल को हुई, वह रंज के मारे पागल सा हो गया। दिन रात पलँग पर पड़ा रोया करता। एक दिन, रात के समय, चुप चाप महल से निकल कर उसने घोड़े पर काठी कसी और हीरा का पिता जिस नगर का राजा था उसका रास्ता लिया। नगर में पहुँचने पर लाल को मालूम हुआ कि उसी दिन हीरा की भाँवरें होने वाली हैं। हीरा बहुत से आदमियों के साथ, जो सुन्दर सुन्दर वस्त्र पहने थे, महल से निकली। आगे बाजे बजते जाते थे। बहुत सी मशालें साथ थीं। सारे बाज़ार सजाये गये थे। लोग तमाशा देखने को जमा थे। लाल भी तमाशा देखने को बाज़ार के मोड़ पर खड़ा हो गया। महल के पास जब सवारी पहुँची तब हीरा ने लाल को देख लिया। उसकी सारी चिन्ता जाती रही। उसने सोचा कि बस मेरा बचानेवाला आगया। लाल ने भी मौक़ा पाकर धीरे से हीरा के कान में कुछ कह दिया। जब सवारी एक ख़ास जगह पहुँची तब सब लोग आतिशबाज़ी देखने में लग गये। मौक़ा पातेही हीरा धीरे धीरे लाल के पास आगई। उसे कोई भी ताड़ न सका। उसने झट ज़नाना लिबास उतार डाला। लाल अपने से मरदाने कपड़े बग़ल में दबाये खड़ा था। उन्हें हीरा ने पहन लिया। कपड़े ऐसे ठीक बैठे कि कोई उसे पहचान नहीं सकता था कि वह स्त्री है। दोनों की सूरत एक सी थी; दोनों का क़द एक सा था; दोनों भाई भाई मालूम होते थे। इसके बाद हीरा और लाल दो घोड़ों पर बैठ कर शहर के बाहर आये। घोड़ों की बाग ढील दी। वे हवा से बातें करने लगे। घोड़ों की नालों से बार बार आग की चिनगारियाँ निकलती थीं। सारा जङ्गल उनकी टापों की आवाज़ से थर्रा गया। सूरज छिपने तक वे बराबर घोड़ों को उसी चाल से लेगये।

जब अँधियारा हो गया और आसमान में तारे दिखाई पड़ने लगे तब उन्होंने जाना कि शहर से बहुत दूर निकल आये; अब कोई उनका पीछा नहीं कर सकता। तब उतर कर सड़क के किनारे एक झोपड़ी में उन्होंने विश्राम किया। एक बुढ़िया उस झोपड़ी में रहती थी। उसने इन दोनों को आदरपूर्वक ठहराया। यह झोपड़ी दो बड़े विकट डाकुओं की थी। एक उस बुढ़िया का पति और दूसरा उसका बेटा था। वे अभी तक घर नहीं लौटे थे। इन दोनों प्रेमियों को कुछ भी ख़बर नहीं थी कि वे कैसे विषम-जाल में फँस गये हैं। हीरा बहुत थक गई थी; इस लिए लेट गई। बुढ़िया की नौकरनी आकर उसके हाथ पैर दबाने लगी। उसकी आँखों में नींद आती जाती थी। इतने ही में उसके पैरों पर एक बूँद पानी की टपकी। वह घबरा कर उठ बैठी और देखा कि नौकरनी रो रही है। हीरा ने उसके दुःख का कारण पूछा। वह और भी ज़्यादा ज़ोर से रोने लगी। उसने हीरा के कान में कहा कि "जिस घर में तुम आकर ठहरे हो वह बड़े निर्दयी डाकुओं का है। वे अभी लूटमार करने गये हैं। वहाँ से लौटते ही तुम दोनों को मार डालेंगे।" यह सुन कर हीरा झट खड़ी हो गई और लाल से सारा हाल कह सुनाया। उन दोनों ने शीघ्र ही चलने की तैयारी करदी और उस बुढ़िया से बिदा माँगी। घोड़ों पर सवार होकर वे अँधेरे ही में चल दिये। उस बुढ़िया ने हज़ारों बातें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बना कर उन्हें रोकना चाहा। कभी कहती कि अँधेरे में चोट लग जायगी; रास्ता भूल जावगे। कभी कहती कि रात बहुत हो गई है; थोड़ी देर तो आराम करलो। कभी कहती कि रास्ता बड़ा भयङ्कर है; चोर डाकुओं का डर है। पर उन दोनों ने उसकी एक भी बात न सुनी। जब उसने देखा कि वे किसी तरह नहीं लौटते तब ज़ोर से चिल्लाती हुई दौड़ी—"दो चिड़ियाँ उड़ी जाती हैं—दो चिड़ियाँ उड़ी जाती हैं।" उसके पति और बेटे ने, जो रात का काम पूरा करके लौट रहे थे, उसकी आवाज़ सुनी और उसके इशारे को समझ गये। उन दोनों ने भी अपने घोड़े उन प्रेमियों के पीछे डाल दिये। लाल ने देखा कि दो मनुष्य उनका पीछा कर रहे हैं। झट कमर से निकाल एक तीर उसने छोड़ा। तीर डाकू के बेटे की छाती में लगा और वह मर कर गिर गया। यह देख कर डाकू घर लौट आया और लाल से बदला लेने की शपथ खाई। इस अर्से में लाल और हीरा एक सराय के पास पहुँचे और रात को वहाँ ठहरने का विचार किया। सुबह होते ही वे वहाँ से रवाना हुए। उन्होंने देखा कि एक बुड्ढा मनुष्य बाहर बैठा है। उसने इनसे कहा—"महाराज मैं भूखों मरता हूँ। यदि आप मुझे अपना साईस बना लें तो बड़ी दया करें।" लाल ने उसे नौकर रख लिया और ये तीनों वहाँ से रवाना हुए। जब ये एक सुनसान स्थान पर पहुँचे तब उस साईस ने पीछे एक हाथ तलवार का ज़ोर से लाल के मारा। लाल का सिर अलग हो गया। उसे मार कर वह हीरा के पास पहुँचा और उसे भी मारने को तलवार उठाई। उसने हाथ जोड़ प्रार्थना की—"मुझे मत मारो। मैं, जैसा मेरे वस्त्रों से विदित होता है, पुरुष नहीं हूँ, स्त्री हूँ। यदि तुम मुझे न मारोगे तो तुम्हारे साथ व्याह कर लूँगी"। यह साईस और कोई नहीं, वही डाकू था। थोड़ी देर तक नहीं नहीं करने के बाद वह हीरा को न मारने पर राज़ी हो गया। दोनों घर की तरफ़ मुड़े। थोड़ी ही दूर ये चले होंगे कि हीरा ऊपर आसमान की तरफ़ देख कर ज़ोर से हँसने लगी। इस पर डाकू बहुत बिगड़ा और डपट कर बोला—"क्यों हँसता है! चुप!" हीरा ने आसमान की ओर उँगली उठा-कर कहा—"देखो, कैसी सुन्दर पतङ्ग है"। ज्योंही डाकू ने ऊपर को मुँह उठाया, हीरा ने तलवार खींची और एक पल में डाकू का सिर खट से अलग कर दिया। उसने उसके मुँह पर थूका और घोड़े पर सवार होकर जहाँ उसके प्रेमी का मृतक शरीर पड़ा था, लौट आई। वहाँ पहुँच कर उसने लाल का सिर गोद में रक्खा और ज़ोर ज़ोर से रोने लगी। सब आने जानेवाले उसका रोना सुन कर उस पर तरस खाते थे। सौभाग्य से शिव और पार्वती भी उधर ही होकर निकले। पार्वती ने हीरा को इस प्रकार रोते देख शिव से कहा—"यह लड़की क्यों रो रही है?" शिव ने उत्तर दिया—"देवी, यदि तुम इस लड़की के रोने का कारण सुनोगी तो तुम्हारा हृदय दुःख से भर आवेगा। अतएव इसके बारे में कोई प्रश्न मत करो। हीरा के रोने ने पार्वती का हृदय चञ्चल कर दिया था। उन्होंने कहा—"जब तक तुम मुझे इसके दुःख का कारण न बतला दोगे और जब तक उसका निवारण न हो जायगा मैं एक क़दम अगाड़ी न बढ़ा-ऊँगी"। शिव ने लाचार होकर लाल के मरने की बात बतला दी और हीरा के पास जाकर लाल का सिर उसके शरीर पर रख अपने रक्त से उसे जोड़ दिया। उनके रक्त में अमृत था। इसलिए लाल एकदम जी उठा। हीरा के उस समय के आनन्द का कौन वर्णन कर सकता है! उसने ज़मीन पर लोट कर शिव भगवान् और पार्वती को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। जब उठी तो देवता अन्तर्धान हो गये।

हीरा और लाल घोड़ों पर चढ़ कर अगाड़ी बढ़े। कई दिन तक चलने पर वे एक बड़े नगर में आये और एक सराय में ठहरे। लाल हीरा को छोड़ कर बाज़ार में सौदा लेने गया। उसने एक बड़े बाज़ार में जाकर सामान ख़रीदा और दुकान-दार को क़ीमत देकर कहा—"इन चीज़ों को अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूकान पर रक्खी रहने दो; हम लौट कर लेलेंगे"। इसी तरह वह दूकान दूकान सामान ख़रीदता फिरा। सब चीज़ें ख़रीद चुकने पर वह एक पान-वाली की दूकान पर आया। यह तमोलन जादूगरनी थी। लाल ने उसके पास जाकर पान बनाने को कहा। उसने कहा—"आइए हुज़ूर, जितने पान का हुक्म हो बना दूँ"। लाल को तो बेईमानी का बिलकुल सन्देह ही न था, वह पान बनवाने बैठ गया। उस जादूगरनी ने लाल को जादू के बल से बकरे के रूप में बदल लिया।

हीरा ने जब देखा कि लाल अभी तक नहीं लौटा तब वह ख़ुद उसे ढूँढने निकली। हीरा मर्दाने वेश में थी। जब वह उस बाज़ार में गई जहाँ लाल ने सौदा ख़रीदा था तब दूकानदार हीरा को लाल समझ कर उसका सामान देने लगे। उसने भी कह दिया कि लौटते समय सामान लेलूँगी। ज्यों ज्यों वह आगे बढ़ी प्रत्येक दूकानदार ने सामान देना चाहा। सबको उसने वही उत्तर दिया। जब वह उस जादूगरनी की दूकान पर पहुँची तब वह कुछ न बोली। हीरा झट असली बात को ताड़ गई कि लाल उसी के यहाँ मौजूद है। उसने पान बनाने को कहा। तब तमोलिन ने फिर वही बात कही—"आइए हुज़ूर, जितने पानों का हुक्म हो बनादूँ"। परन्तु हीरा यह कहती हुई चलदी कि "मैं उसकी तरह मूर्ख नहीं हूँ"। वह एक गली में होकर जा रही थी। उसने देखा कि एक बुढ़िया रोती जाती है और मिठाई बनाती जाती है। हीरा उसके पास गई और पूछा—"माँ, तुम मिठाई बनाते में रो क्यों रही हो?" स्त्री ने उत्तर दिया—"बेटा क्या पूछता है? यह बड़ी दुखभरी कहानी है। यहाँ के राजा के एक बेटी है, जिसके लिए हर रात को एक मनुष्य की बलि दी जाती है। आज मेरे लड़के की बारी है। मैं यह मिठाई उसी के लिए बना रही हूँ और उसी के लिए रो भी रही हूँ"। हीरा ने कहा—"माँ रोओ मत, तुम्हारे बेटे के बदले मैं आज उस भयङ्कर राजकुमारी के पास जाऊँगा। तुम मुझे मन भर के मिठाई खा लेने दो"।

बुढ़िया इस बात को सुन कर बड़ी प्रसन्न हुई और ख़ुशी से मिठाई हीरा के सामने रख दी। जब हीरा पेट भर के खाचुकी तब उठी और महलों को रवाना हुई। राज-कर्म्मचारियों ने उसे राज-कुमारी के कमरे तक पहुँचा दिया। हीरा मर्दानी पोशाक में होने से बिलकुल मर्द ही फब गई। राजकुमारी ने और और शिकारों की तरह उस पर भी प्रेम दिखलाना और दयापूर्वक बात चीत करना प्रारम्भ किया। जब हीरा कुछ नाश्ता कर चुकी तब एक पुजारी जी अन्दर आये। उन्होंने उन दोनों का हाथ जोड़ कर व्याह कर दिया। हीरा और राज-कुमारी एक ख़ास चौबारे में गये। वहाँ पहुँचतेही राजकुमारी का भाव एक दम बदल गया। अभी जो इतनी ग़रीब और दयालु दिखाई पड़ती थी वह एक क्षण में ही अत्यन्त कठोर होगई। उसके मुँह से झाग निकलने लगा। वह अपने बालों को नोचने लगी। उसको देखने से डर लगता था। उसकी आँखों से आग निकलती थी। वे जलते हुए कोयले के समान लाल हो रही थीं। वह ज़मीन पर लोट गई और क्रोध में आकर बर्राने लगी। धीरे धीरे उसका ग़ुस्सा घटा और उसे ग़श आ गया। जब वह इस प्रकार बेहोश पड़ी थी उसकी बाईं जाँघ से एक काला साँप निकला। साँप बड़ा ज़हरीला था। जब वह जाँघ से बाहर निकल आया तब वह फन फटकार कर फुफकारता हुआ हीरा की ओर लपका। उसकी लपलपाती जीभ देख कर हीरा को डर तो लगा, पर वह हतबुद्धि न हुई। जब वह साँप काटने को दौड़ा तब हीरा ने झट एक तेज़ धार की तलवार से उसका सिर अलग कर दिया। हीरा रात भर बेहोश राजकुमारी के पास ही रही। उसने भाँति भाँति की तरकीबों से राजकुमारी को होश कराया। इतने में राजा को ख़बर हुई कि उस साँप को, जिसने इतने दिनों से राजपुत्री को वश में कर रक्खा था, एक वीर कुमार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने, जिसका नाम हीरा है, मार डाला। राजा इस पर बड़े खुश हुए और हीरा को बुला कर पूछा—"बतला, तुझे क्या इनाम चाहिए?" हीरा ने कहा—"आध घंटे के लिए अपना राज्य मुझे दे दीजिए।" राजा ने झट अपना राजदण्ड उसके हवाले किया और मुकुट उतार कर हीरा को पहना दिया। सब कर्म्मचारियों को उसकी आज्ञा मानने का हुक्म हो गया।

जब हीरा गद्दी पर बैठ गई तब सबसे पहले उसने सारे नगर में यह ढिंढोरा पिटवाने की आज्ञा दी कि "नगरनिवासियों को विदित हो कि राजा ने ऐसी आज्ञा दी है कि नगर भर में जितने जानवर—पशु, पक्षी, गाय, बैल—हों, सब उनके सम्मुख मुलाहज़े के लिए बहुत शीघ्र उपस्थित किये जायँ"। सब लोग अपने अपने जानवर लेकर महल की ओर दौड़े। जब वे राजा के सामने इकट्ठे हुए और उनके नाम पढ़े गये तब मालूम हुआ कि वह तमोलन वहाँ मौजूद न थी। कर्मचारीगण तुरन्त उस के घर दौड़ाये गये और उसे बाँध कर ले आये। वे उसके बकरे को भी पकड़ लाये और राजा के सामने खड़ा किया। ज्योंही बकरे ने हीरा को देखा, वह उसकी ओर लपका और उसके आस पास कूदने लगा। हीरा ने ताड़ लिया कि यह ज़रूर लाल है और जादूगरनी से उसे बेचने को कहा। उसने उत्तर दिया—"ग़रीबपरवर, मैंने इस बकरे को काली की भेंट चढ़ाने को पाल रक्खा है और अब की पूर्णिमा को इसका बलिदान कर दूँगी। यह मेरी धर्म्मसम्बन्धी शपथ है। इसका उल्लङ्घन कर मैं बकरे को नहीं बेच सकती।" हीरा ने इस बात को सुन कर कहा—"इस जादूगरनी को बाँधो और इसको धीमी धीमी आग में जलाओ"। अफ़सरों ने उसे बाँध लिया और जलाने की जगह ले जाने लगे। हीरा ने उस बकरे को अपने पास रख लिया और मन्त्र पढ़ पढ़ कर उस पर जल मारने लगी। हीरा भी जादू जानती थी। पर किसी को कष्ट नहीं पहुँचाती थी। उसने लाल को मनुष्य के स्वरूप में फिर बदल दिया। सारे दरबार में उसने लाल को अपना पति माना। मर्दाने कपड़े उतार दिये और ज़नाने पहन कर ज़नानख़ाने में गई।

राजपुत्री यह जान कर बहुत चकित हुई कि हीरा असल में मर्द न थी। उसे कुछ हताश भी होना पड़ा, क्योंकि उसने अपने मन में हीरा को अपना पति बनाना चाहा था। पर शीघ्र ही उसका भी विवाह लाल के साथ हो गया। इससे उसकी चिन्ता जाती रही। इस प्रकार लाल अपनी दो पत्नियों के सङ्ग रह कर सुख से अपने दिन काटने लगा।

एक दिन राजपुत्री ने हीरा से पूछा—"प्यारी बहिन, यह तो कहो कि हमारे पति लाल कौन ज़ात हैं? हमें यह तो मालूम हो गया है कि राजा ने इन्हें गोद ले लिया है, पर मेरी समझ में इनकी उत्पत्ति में कुछ रहस्य जान पड़ता है। तुम पर उनका अधिक प्रेम है। तुम इस बारे में उनसे पूछना तो"। हीरा ने कहा—"हमें उनसे ऐसी बातें पूछने से क्या प्रयोजन? क्या हम उनके प्रेम से ही सुखी नहीं हैं? क्या हम केवल उनकी सूरत देख कर ही जीवित नहीं हैं? अब हमें और ज़्यादा क्या चाहिए?" राजपुत्री ने हीरा की बात न मानी और पति की ज़ात पूछने पर उतारू हो गई। उसने हीरा से यह वादा करा के छोड़ा कि वह लाल से उसकी ज़ात के बारे में पूछे। निदान हीरा ने लाल के पास जाकर पूछा—"प्रिय पति, कृपा कर हमें अपनी ज़ात बतला दो?" इस पर लाल को बड़ा दुख हुआ। उसने ठण्डी साँस भर कर कहा—"प्यारी हीरा, इस बात को मुझसे मत पूछो। तुम्हें इस पर पछताना पड़ेगा"। हीरा ने भी ज़िद की। लाल उसे गङ्गा के किनारे ले गया और कहा—"क्या तुम्हारी अब भी मेरी ज़ात जानने की इच्छा है?" हीरा ने कहा—"हाँ"। लाल घुटनों तक पानी के अन्दर गया और कहने लगा—"क्या अब भी तुम्हारा मेरी ज़ात जानने का पक्का इरादा है?" हीरा ने कहा—"हाँ महाराज"। लाल गरदन तक गहरे पानी में गया और कहने लगा—"क्या अब भी तुम्हारी वही इच्छा है? सोच लो; अब भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय है। बहुत ज़्यादा देर नहीं हुई है"। हीरा ने पहले की भाँति उत्तर दिया—"हाँ"। तब लाल और भी गहरे पानी में गया। अब उसके बाल मात्र पानी के ऊपर थे। सारी देह पानी में डूब चुकी थी। उसने फिर पानी में से कहा—"हीरा, क्या अब भी तू मेरी ज़ात जानने पर उतारू है? देख, मान ले, अब भी समय है, नहीं तो तू अपना जीवन नष्ट कर देगी"। लाल की आवाज़ पानी में से बड़ी ही विचित्र और अपरिचित सी सुनाई पड़ती थी। मालूम होता था कि वह दूसरे लोक में पहुँच चुका है। पर हीरा ने अपनी हठ अब भी न छोड़ी। उसने फिर भी वही उत्तर दिया—"हाँ, मैं जानना चाहती हूँ"। इन शब्दों के निकलते ही लाल के बाल भी नज़र से ग़ायब हो गये और एक पल में जिस जगह लाल खड़ा था वहाँ एक काला साँप तैरता दिखाई दिया। कुछ देर तक वह दीखता रहा, फिर वह भी ग़ायब हो गया। हीरा, लाल के आने की बाट देखती रही, पर लाल फिर न लौटा। जब उसे अपने भविष्य का ध्यान आया तब चीख़ मार कर ज़मीन पर गिर पड़ी। लोगों ने उठ कर उसे घर पहुँचाया। हीरा अपनी मूर्खता पर बहुत पछताई और अपने आप को कोसने लगी। उसने अपने जीवन के बाक़ी दिन योंही रात दिन रो रो कर काटे:—

"जैसी हो होतव्यता तैसी उपजै बुद्धि।
होनहार हिरदै बसै बिसरि जाय सब सुद्धि॥"

रामजीदास वैश्य।

सपूत और कपूत।

(सपूत)

(१)

चन्दन, चन्द, उशीर, हिमोपल, हिमरजनी भी और कपूर,
ये सब मिल कर भी न करेंगे, मानव-हृदय-ताप को दूर।
पर सपूत जिस कुल में होगा उस का समय आपही आप,
पलट जायगा, यश फैलेगा, मिट जावेगा सब सन्ताप॥

(२)

विमल-चित्त हो, दानशील हो, शूर वीर हो, सरल-विचार,
सत्य-वचन हो, प्रेमयुक्त हो, करे सभी से सम व्यवहार।
ज्ञानी, सहृदय, हो उपकारी, और गुणी हो अपना धर्म
कभी न छोड़े, देशभक्त हो, ये सब सत्पुत्रों के कर्म॥

(३)

देश-काल को ख़ूब देख कर करते हैं थोड़े में बात,
कैसे सभी सुखी हों इस में चिन्तित रहते हैं दिन रात।
मानामान समान समझ कर करते हैं कुछ अच्छे काम,
लक्षण यही सपूतों के जो नहीं चाहते अपना नाम॥

(४)

अतिशय क्लेश सहेंगे तोभी खल को हाथ न जोड़ेंगे;
मिलता हो त्रैलोक्य राज्य भी तोभी सत्य न छोड़ेंगे।
उच्च मनोरथ को कर नरवर उस में तत्पर रहते हैं;
कार्य सिद्ध होजाने पर ही उस को प्रकटित करते हैं॥

(५)

विद्याबल, भुज-बल से धन को एकत्रित करके मतिमान
ऐसे कामों को करते हैं जिन से सब को लाभ समान।
स्वार्थ समझते हैं परार्थ को, ऐसा उनका पावन धर्म,
जैसे हो, जब हो, कुछ भी हो, कर दिखलाते वे शुभकर्म॥

(६)

जननी-जन्मभूमि की भाषा से भूषित है जिनका आस्य
ऐसे सच्चे सत्पुत्रों का खल भी नहीं करेंगे हास्य।
सुधा-सनी सी, रत्न-कनी सी, विधुवदनी सी सदा सही,
हंसवाहिनी सी यह हिन्दी भली लगेगी किसे नहीं?

(७)

सुख में, दुख में भी, अच्छे नर एक भाव से रहते हैं;
करते वही विवेक बुद्धि से जो कुछ मुख से कहते हैं।
कभी कुपथ पर नहीं चलेंगे, मर कर वे मिटजावेंगे,
कठिन कार्य कैसाही हो पर तनिक नहीं घबरावेंगे॥

(८)

देख देख कर दीनों के दुख दुखी हृदय में होते हैं;
द्वीपान्तर की बातें सुन कर मनही मन रो देते हैं।
तोभी उत्साही रहते हैं; करते हैं जग का उपकार;
यथाशक्ति तन, मन, धन से, वे रहते हैं हर दम तैयार॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६)

घर के गुण-गौरव को सुन कर अतिप्रसन्न हो जाते हैं ;
अपने यश को अपने मुख से कभी नहीं फैलाते हैं ।
शरणागत की रक्षा करते हैं, वे देश-काल-अनुसार ,
ऐसे ही सत्पुरुषों द्वारा होता है कुछ देश-सुधार ॥

(कपूत)

(१)

आलस-रत, शोकातुर, लम्पट, कपटी और सदा बलहीन ,
मानस मलिन, सदा निद्रातुर, लोभी और अकारणदीन ।
ऐसे सुत से क्या फल होगा ? हे चतुरानन दे वरदान,
कभी कपूत किसी को मत दे, चाहे करदे निस्सन्तान ॥

(२)

पर से प्रेम, द्रोह अपने से, करते नित्य दुष्ट-गुणगान,
गुरुजन की निन्दा कर हँसते, अपने को कहते गुणवान ।
काला अक्षर भैंस बराबर, पर तो भी रखते अभिमान,
क्रोधानल में जलते रहते--यही कपूतों की पहचान ॥

(३)

जिह्वा गिर जाने के भय से नहीं बोलते अपने बोल,
भ्रम में पड़ कर पर-भाषा को समझ रहे हो अति अनमोल ।
अपने और पराये का तो पशु भी कर लेता है ज्ञान ;
हा ! तुम उस से भी बढ़ कर हो, जी में सोचो हे नादान ॥

(४)

ऐसा कौन देश है जिस ने निज भाषा का कर अपमान,
पर-भाषा का सेवक बन कर, फिर भी जग में हुआ महान ।
लोक यही है जान बूझ कर, बने हुए हो व्यर्थ कपूत,
आर्य ! तुम्हारे सिर पर से कब उतरेगा यह आलस-भूत ॥

(५)

आर्य ! काँपने लगते हैं जब हिन्दी को तुम लिखते हो ;
कान बधिर हो जाते हैं जब हिन्दी-कविता सुनते हो ।
आँखें तुरत फेर लेते हो हिन्दी-वर्ण देख नादान,
किसी तरह क्या उन्नत होगा हाय हमारा हिन्दुस्तान ॥

(६)

फटी धोती गृहिणी पहने, औरों को पहनाते हार,
घर में मूस चौकड़ी मारें बाहर दावत की भरमार ।
कुर्सी पर बाबू बन बैठे, नहीं देखते निज घर-द्वार,
फिर भी कैसे देश-सुधारक बनते हो कहिए सरकार !

(७)

विविध साम्प्रदायिक झगड़ों में लगे हुए हो तुम दिनरात ;
किस विरते पर फिर ज्ञानी बन करते एक ब्रह्म की बात ।
झूठ बोलने से न चूकते मानों नहीं पुण्य या पाप,
हिन्दी तक भी पढ़े नहीं तुम पण्डितमन्य धन्य हो आप ॥

(८)

जिनके ही शरीर से उपजे उनकी बात न सुनते हो ,
भले बुरे पर ध्यान न देते, अपने मन की करते हो ।
परभाषा-भूषण से भूषित हुए भूल कर अपनी चाल,
खान-पान सब बदल दिये, पर नहीं जानते घर का हाल ॥

(९)

आग भस्म कर सारे वन को तुरत शान्त हो जाती है,
रवि से तप्त जगत होने पर वर्षा ऋतु आजाती है ।
पर समुद्र को बाड़वाग्नि ज्यों खौलाताही रहता है,
त्यों कपूत का पिता जन्म भर दुख सहताही रहता है ॥

रामचरित उपाध्याय ।

कुछ धातुओं और शब्दों का इतिहास ।

[लेखक—बाबू जगन्मोहन वर्म्मा]

संस्कृत भाषा अत्यन्त स्वाभाविक भाषा है। उसके सभी शब्द धातुज या यौगिक हैं । सबसे पहले संस्कृत-शब्दों के यौगिक अथवा धातुज होने का पता महर्षि शाकटायनाचार्य्य को लगा। निरुक्त में यास्काचार्य्य लिखते हैं :—"नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो वैय्याकरणः नैरुक्तसमयश्च" अर्थात् वैय्याकरण और नैरुक्तक शाकटायनाचार्य का मत है कि संस्कृत-भाषा के सब नाम आख्यातज अथवा धातुज हैं। इसी बात का समर्थन महाभाष्य में भगवान् पतञ्जलि ने—"नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शाकटस्य च तोकम्" लिख कर किया है, जिसका अर्थ यह है कि शाकटायनाचार्य्य ने अपने व्याकरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और निरुक्त में नाम को धातुज कहा है। इन शाकटायनाचार्य्य ने व्याकरण और निरुक्त पर बहुत से ग्रन्थ रचे थे, जिनमें कितनेही तो लोप हो गये। पर व्याकरण, ऋक्तन्त्र, धातुपाठ, उणादि आदि अब तक मिलते हैं।

भारतवर्ष के विद्वानों की यह चाल थी कि समय समय पर वे प्राचीन ग्रन्थों का सुधार या संस्करण किया करते थे और अत्यन्त भेद पड़नेही पर वे नवीन ग्रन्थों की रचना करते थे। स्वयं वेदों की संहिताओं का कई बार सङ्कलन हुआ है। और वास्तव में किसी जाति की उन्नति के लिए यही उपयुक्त भी है। यद्यपि ऐसा करना विद्या और विज्ञान के लिए लाभकारी अवश्य है, पर ऐतिहासिक विचारों के लिए हानिकारक है। ऐतिहासिक तथ्य ढूँढने वाला पीछे की मिली हुई बातों को देख कर चक्कर में आसकता है और ग्रन्थकर्ता के काल को सैकड़ों वर्ष पीछे घसीट सकता है। इसी से भारतवर्ष के ग्रन्थकारों के विषय में पाश्चात्य विद्वानों को भ्रम हुआ है, जो सर्वथा अनिवार्य्य है।

धातुपाठ में धातुओं का संग्रह है। इन धातुओं की यद्यपि गणना कर दी गई है पर इनकी संख्या वास्तव में कितनी है, इसका निश्चय आजतक नहीं हुआ। किसी ने २४९०, किसी ने १७५०, किसी ने कुछ, किसी ने कुछ मानी है। प्राचीन आचार्य्यों की इस विषय में यही शिक्षा रही है:—"धातुं ज्ञात्वा प्रत्ययं कल्पनीयं प्रत्ययं ज्ञात्वा धातुः कल्पनीयः"। अर्थात् यदि धातु का पता चल जाय तो प्रत्यय की कल्पना कर लेनी चाहिए, और यदि प्रत्यय का पता लग जाय तो धातु की कल्पना कर लेनी उचित है।

इन धातुओं को आर्य्यों ने कहाँ से लिया, इस विषय में प्राचीनों ने कोई मत नहीं प्रकट किया है। पर आधे से अधिक धातु अनुकरणजन्य हैं, जिससे अनुमान होता है कि आर्य्यों ने धातुओं को शब्दों के अनुकरण से लिया है। इन्हीं धातुओं से आर्य्य-भाषा निकली थी, जिससे समस्त भाषायें, जिनका सम्बन्ध आर्य्य-भाषा से है, निकलीं। आर्य्य लोग यद्यपि आदिम काल में सारस्वत प्रदेश में रहते थे, पर, पीछे से, जब उनकी संख्या बढ़ी तब कश्यप सागर से श्रीगङ्गा-यमुना के किनारे तक फैल गये। इसी से इनकी प्रान्तिक भाषाओं में विभेद पड़ गया। स्वयं व्याकरण में प्राच्य, प्रतीच्य आदि देशों के प्रयोग-सम्बन्धी सूत्रों को देखने से इसका अनुमान होता है। धातुओं के अर्थों में भी क्रमशः अन्तर पड़ने लगा। शब्दों के अक्षरों में भी अभ्यास करते करते विपर्य्यय हो गया। कहीं किसी धातु का आख्यात रहा, कहीं उसके विकार का ही प्रयोग अवशेष रह गया। यास्काचार्य्यजी निरुक्त में 'शवति' धातु का लिखते हैं—"शवतिः गतिकर्म्मा कम्बोजेषु विकार इत्यार्य्याणाम्" अर्थात् शवति (शव) धातु 'गति' अर्थक है। उसका प्रयोग कम्बोज में, जो पारस का एक प्रान्त विशेष है, होता है। पर आर्यों की भाषा में इस धातु से बने हुए केवल 'शव' शब्द का प्रयोग अवशेष रह गया है।

वर्तमान फ़ारसी भाषा में अरबी-शब्द अधिक मिल गये हैं। फिर भी शुद्ध फ़ारसी भाषा पुरानी फ़ारसी वा ज़न्द भाषा से निकली है। इस लिए उसका अधिक सम्बन्ध संस्कृत से है। यह शवति (शव) धातु, जिसका कम्बोज में प्रयोग होना यास्काचार्य्य ने लिखा है, फ़ारसी धातु (شدن) का मूल कारण है। इसका अर्थ यद्यपि होना भी है तथापि फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि सादी ने, जो बारहवीं शताब्दी में हुए थे, इसका प्रयोग, अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ गुलिस्ताँ में, गति के अर्थ में किया है:—

شد غلامے کہ آب جو آرد
آبجو آمد و غلام بہ بُرد

अर्थात् सेवक नदी का पानी लेने गया। नदी की बाढ़ आई और सेवक को बहा ले गई।

आज हम कुछ शब्दों का इतिहास लिखने का साहस, इसी आधार पर, करते हैं और आशा करते हैं कि वह विद्यानुरागियों के लिए रुचिकर होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्=गिरना।

जब कोई पदार्थ ऊपर से गिरता है तब उसके गिरने से 'पट वा पत' इत्यादि के सदृश शब्द होता है। इस प्रकार पदार्थों के गिरने में बार बार शब्द होते देख आर्य्यों ने 'पत्'* धातु को गिरने के अर्थ में ग्रहण किया। जब उनको किसी पदार्थ के गिरने का सङ्केत करना होता था तब वे 'पत्' का प्रयोग करते थे। काल-भेद से इसके पतित, अपतत्, पपात आदि आख्यात-रूप कालान्तर में हो गये। फिर उपसर्गों द्वारा इसके अर्थों में विशेषता उत्पन्न हुई।

इसी पत् धातु से पत्र शब्द बना, जिसका अर्थ पत्ता है। पत्ता सूखने या टूटने पर पेड़ से गिरता है। इसी लिए आर्य्यों ने पत्ते को पत्र कहना प्रारम्भ किया। पीछे पत्र शब्द गिरने के भाव से अलग हो कर आकृति में लगाया गया और सब पदार्थ जो पतले, लम्बे और चौड़े होते थे 'पत्र' शब्द के वाच्य ठहराये गये। यहाँ तक कि भोजपत्र (भूर्जपत्र), जो एक वृक्ष की छाल है, पत्र शब्द से ग्रहण किया जाने लगा"। चिड़ियों के परों को पत्ते के आकार का देख-कर पत्र कहने लगे और बाण में पंख लगाने से उसे पतत्री कहना प्रारम्भ किया।

पूर्व-काल में जब लोगों ने बैठ कर खाना खाना प्रारम्भ किया तब वे उसे पत्ते पर रख कर खाते थे, अथवा वस्तुओं को ही पत्ते पर रखते थे। पीछे ज्यों ज्यों आवश्यकता बढ़ी, लोग बहुत से पत्तों को कुश से डाभ कर दोना, पत्तल आदि बनाने लगे। ऐसा करने में उनको कई पत्तों को तले ऊपर रख कर सीना पड़ता था। इसी लिए वे पत्तों की तह को भी पत्र कहने लगे। पीछे इसी पत्र से आद्यन्त विपर्य्यय द्वारा भाषा का 'परत' बना, जो तह के अर्थ में प्रयुक्त होता है। वे लोग उन पत्तों से बने हुए बर्तनों को पात्र कहते थे। बहुत पीछे जब उन लोगों ने मिट्टी आदि के पात्र बनाना प्रारम्भ किये तब उन्हें भी, तदाकार अथवा तत्प्रयोजन-साधक होने से, पात्र कहना प्रारम्भ किया। इस प्रकार होते होते पात्र शब्द बर्तन के अर्थ में रूढ़ हो गया।

पात्रों से वे लोग पदार्थों को ढाँक दिया करते थे। इससे पात्र शब्द पीछे से ढक्कन आदि आवरण-कारक वस्तुओं के लिए भी प्रयुक्त होने लगा। स्वयं संहिता में ('हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्'—'तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये') वह ढक्कन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इन ढक्कनों से ढाँके हुए पदार्थों की रक्षा होती थी। इसी भाव को ले कर पीछे 'पात्र' के दो भिन्न वर्णों को पृथक् करके 'पा' और 'त्र' दो धातुओं की कल्पना की गई। ये दोनों ही 'रक्षा' के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं और इनसे कितने ही शब्द संस्कृत-भाषा के निकले हैं।

इसी पत् धातु से 'पतन' शब्द बनता है, जिसका अर्थ गिरना है। इस शब्द के 'त' के स्थान में कहते कहते 'र' हो गया और फिर कालान्तर में 'रकार' का स्वर भी दूर हो गया। इस प्रकार 'पतन' से 'पर्ण' शब्द बन गया और उसका वाच्य 'पत्ता' ठहरा, क्योंकि पत्ता सूखने या टूटने पर वृक्ष से गिरता है। पीछे 'पर्ण' शब्द ऊपर से गिरने के भाववाले पदार्थों के अर्थ में आया और सूर्य्य की किरणों को लोगों ने, ऊपर से नीचे अथवा आकाश से पृथिवी पर आते देख, 'सुपर्ण' कहना प्रारम्भ किया। केवल भले लगने अथवा लाभदायक होने के कारण, उसके लिए प्रयुक्त 'पर्ण' शब्द के आगे 'सु' उपसर्ग बढ़ा दिया। वेदों में 'सुपर्ण' शब्द सूर्य्य की किरणों के लिए प्रायः आया है। निघण्टु में कश्यप प्रजापति ने 'सुपर्ण' शब्द का पाठ 'रश्मिनाम' में किया है। लोगों ने चिड़ियों को ऊपर से नीचे उतरते देख उनको भी 'सुपर्ण' कहना प्रारम्भ किया। बहुत पीछे 'सुपर्ण' शब्द का अर्थ उड़नेवाला हो गया और 'पर्ण'* उड़ने के अर्थ में काम आने लगा।

* पत् पष्, पद्, पट् इत्यादि इसी के अनुकरण और समा-नार्थक हैं।

* इसी 'पर्ण' से फ़ारसी भाषा का परीदन (پریدن) धातु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुपर्ण को लोगों ने आकाश में नित्य पक्षी के समान पूर्व से पश्चिम को उड़ कर जाते देखा और उसे भी सुपर्ण कहना प्रारम्भ किया। वेदों में कई जगह 'सुपर्ण' शब्द का प्रयोग सूर्य्य आदि के अर्थ में हुआ है।

चिड़ियों के उड़ने में प्रधान साधन उनके पर हैं। परों का आकार भी पत्तों का सा होता है। इसी लिए परों को भी पर्ण कहने की प्रथा चली। पत्ते पतझड़ के समय झड़ जाते हैं और पर भी कुरेज़ पर गिरते हैं। पतझड़ के पीछे फिर नये पत्ते निकलते हैं और थोड़े दिनों में कुल पेड़ पत्तों से ढक जाता है और कुरेज़ के बाद चिड़ियों का सारा बदन भी परों से ढक जाता है। इस तरह 'पर्ण' पीछे से एक स्वतन्त्र धातु बन गया और उसका व्यवहार आच्छादन करने के अर्थ में हो गया।

पत्ता या कोई और दूसरी चीज़ जब ऊपर से गिरती है तब वह एक पदार्थ से पृथक् हो कर दूसरे पदार्थ को प्राप्त होती है। इन दोनों भावों को ले कर 'पत्' से वर्ण-विकार द्वारा दो और धातु पद् और पट् की उत्पत्ति हुई, जिनमें पहले का अर्थ प्राप्त होना और दूसरे का अर्थ पृथक् होना है। ये दोनों धातु वास्तव में 'पत्' के रूपान्तर हैं।

इसी पत्† धातु से वर्णविकार और वर्णविपर्य्यय द्वारा पठ् और तप् दो और धातुओं की उत्पत्ति हुई, जिनमें पठ् का अर्थ पढ़ना और तप् का अर्थ गर्म होना है। आकाश से मेंह आदि के गिरने में पट पट या पठ पठ का तुमुल शब्द होता है। इसलिए पठ् धातु पहले शब्द करने के अर्थ में आया; पीछे पढ़ने और पुनः पुनः वाक्योच्चारण के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। सूर्य्य की किरण के साथ ही साथ गर्मी भी सूर्य्य से पृथिवी पर आती है। अतएव उसके लिए विपर्य्यय द्वारा पात की जगह ताप शब्द व्यवहृत होने लगा। फिर पीछे* 'तप्' का प्रयोग गर्मी पहुँचाने के अर्थ में भी होने लगा। इसी प्रकार 'पत्' से 'पथ्' धातु भी विकार द्वारा बना, जो गति आदि अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। इसी पथ् धातु से 'पथ' शब्द भी बना है, जिसका अर्थ राह है, क्योंकि राह ही पर चल कर लोग एक स्थान से दूसरे स्थान को प्राप्त होते हैं।

इसी प्रकार 'पत्' धातु से पत्, पथ्, पद्, पट्, पठ्, आदि के सदृश अनुकरण-रूप और भी कितने ही धातुओं और शब्दों की सृष्टि कालान्तर और अवस्थान्तर में हुई है।

पिट्सबर्ग के कारख़ाने।

(२)

वेस्टिंगहाउस एलेक्ट्रिक ऐंड मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी।

यह कम्पनी नगर से १२ मील की दूरी पर पूर्व में है। अमेरिका के बिजली के कारख़ानों में यह सर्वप्रधान है। सन् १८८५ में इसे जार्ज वेस्टिंगहाउस ने नगर के एक छोटे से मकान में स्थापित किया था। उस समय इसमें २०० मनुष्य काम करते थे। १८९५ में यह इस वर्तमान विशाल स्थान में उठ कर आया और आज ५५ एकड़ भूमि इसने व्याप्त कर रक्खी है। इसमें, इस समय, १५००० मनुष्य काम करते हैं, जिनमें क़रीब दो हज़ार के

निकला है जिस का अर्थ उड़ना है और जिससे फ़ारसी के परिन्दा, परदा आदि शब्द निकले हैं। स्वयं 'पत्' धातु के भी उड़ने के अर्थ में प्रयोग होने का पता 'पताका' शब्द से चलता है।

† इसी 'पत्' से फ़ारसी का फ़ितादन (فتادن) भी निकला है, जिसका अर्थ गिरना है।

* सूर्य्य की गरमी को जगत् में व्याप्त देख तप् के 'प' का लोप कर अप बना, जिसका अर्थ व्याप्त होना है। अप् से वप् उत्पन्न हुआ है, क्योंकि बोने के समय बीज को खेत भर में पहुँचाना पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़कियाँ होंगी। प्रतिमास तीस लाख रुपया वेतन मज़दूरों को बाँटा जाता है। हर महीने ८०० गाड़ियां माल की तैयार होकर देश-देशान्तर में बिकने को जाती हैं। इस कारख़ाने का तमाम काम बिजली के द्वारा होता है, जिसके लिए १२००० घोड़े की ताक़त इञ्जिनघर में तैयार होकर रोज़ बिजली बनाने में ख़र्च होती है। इसके इञ्जिनघर के लिए ५०० टन कोयला रोज़ ख़र्च होता है।

इस कारख़ाने की शाखायें देश के प्रधान प्रधान नगरों में हैं। इसका लैम्प बनाने का कारख़ाना न्यूजेरसी में है। कनाडा, आस्ट्रिया, इँगलैंड, फ्रान्स, इटली, रशिया, जर्मनी और साउथ अमेरिका में भी इसकी शाखायें हैं। इन कारख़ानों में निम्नलिखित चीज़ें तैयार होती हैं:—बिजली की रेल-गाड़ियाँ, सब प्रकार के डाइनिमो और मोटर, आकाश की बिजली को पकड़नेवाले सब प्रकार के औज़ार (जिनके द्वारा बिजली से मकान को किसी प्रकार की हानि नहीं होने पाती) बिजली से जलनेवाले सब तरह के लैम्प, खानों में चलनेवाली ख़ास क़िस्म की रेल-गाड़ियाँ, सड़क में दौड़नेवाली ट्राम-गाड़ियाँ, बिजली से गरम किये जाने वाले चूल्हे आदि, बिजली के तरह तरह के खंभे और तार इत्यादि।

इस कम्पनी का काम अनेक विभागों में बँटा हुआ है। इनमें से मैं दो विभागों का विशेष वर्णन करूँगा, क्योंकि ये विभाग ऐसे हैं जिनसे मज़दूरों को अधिक लाभ होता है। एक तो रिलीफ डिपार्टमेन्ट (Relief Department) दूसरा शिक्षा-विभाग (Educational Department) रिलीफ विभाग का काम है कि कारख़ाने के उन काम करनेवालों को सहायता पहुँचावे जो कारख़ाने में काम करते समय या कारख़ाने के बाहर ज़ख़्मी हो गये हों अथवा किसी रोग के शिकार हो गये हों। इस विभाग से सम्बन्ध रखनेवाला एक बड़ा अस्पताल कारख़ाने में है। उसमें सब प्रकार की दवाइयाँ और औज़ार हैं। कई डाक्टर रोगियों की देख-भाल के लिए नियुक्त हैं। इस विभाग का मेम्बर होने के लिए डेढ़ रुपया महीना देना पड़ता है। मेम्बर होने से बीमार होने या चोट लगने पर क़रीब बीस रुपये प्रति सप्ताह इस विभाग से ख़र्च को दिये जाते हैं, जिससे बीमार के सम्बन्धी भूखे न रहें। शिक्षा-विभाग में नामी नामी शिक्षक विद्युच्छास्त्र के ज्ञाता नियुक्त हैं। इसमें उन कर्मचारियों को बिजली की शिक्षा दी जाती है जो कारख़ाने में काम सीखने आते हैं। यहाँ प्रसिद्ध प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों के ग्रेजुएट आते हैं और दो साल तक मज़दूरों के साथ काम करके तजरिबा हासिल करते हैं। सप्ताह में कुछ घंटों के लिए स्कूल जाना पड़ता है जहाँ अपने अपने काम का ब्योरा देना पड़ता है और कठिनाइयों को शिक्षक द्वारा हल करना पड़ता है। इस समय इस विभाग में क़रीब ५०० ग्रेजुएट हैं। इन्हें कारख़ाने के प्रायः सभी विभागों में काम करना पड़ता है। तब इसके बाद इसी कारख़ाने में इन्हें ऊँचे दरजे का काम मिलता है, अथवा बाहर की शाखाओं में ये भेज दिये जाते हैं, अथवा एजंट के रूप में माल बेचने पर ये नियुक्त होते हैं। इसी विभाग में आज कल इस नोट का लेखक भी काम कर रहा है। पिट्सबर्ग-विश्वविद्यालय के साथ रियायत की गई है कि यहाँ के विद्यार्थी, ग्रेजुएट होने के पूर्व ही, तीसरे वर्ग में काम सीखने के लिए ले लिये जाते हैं। विश्वविद्यालय ने यह नियम कर दिया है कि तीसरे वर्ष के इन्जीरिङ्ग के विद्यार्थी छः महीने कालेज में पढ़ें और बाक़ी छः महीने जाकर इन बड़े बड़े कारख़ानों में काम सीखें। इससे विद्यार्थियों को ग्रेजुएट होने के पूर्व ही अच्छा तजरिबा हो जाता है। इन विद्यार्थियों को क़रीब नौ आने फ़ी घंटा मज़दूरी मिलती है और दिन में पाँच दस घंटे काम करना पड़ता है। इतवार को दिन भर की और शनिवार को आधे दिन की छुट्टी मिलती है। इस प्रकार प्रति विद्यार्थी को प्रति मास १२०) या १२५) रुपये मिल जाते हैं। संसार के और किसी भी देश में काम सीखने की मज़दूरी नहीं मिलती। इँगलैंड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में तो काम सीखनेवाले विद्यार्थी को अपनी तरफ़ से उलटा कुछ भेट करना पड़ता है। यह अमेरिका ही है जहाँ के कारख़ानों के मालिक यह जानते हैं कि काम सीख कर ये विद्यार्थी कारख़ाने को अनेक प्रकार से लाभ पहुँचावेंगे। चूँकि मैं बिजली की विद्या सीखता हूँ, इसलिए मुझे कालेजवालों ने इस कारख़ाने में काम करने भेजा है। गत वर्ष दो बङ्गाली विद्यार्थियों को, जो रसायन-शास्त्र सीखते थे, इसी कालेज ने कारनेगी की प्रसिद्ध स्टील कम्पनी में काम करने भेजा था। उन में से एक तो इस वर्ष ग्रेजुएट हो गये हैं; दूसरे यथेष्ट धन पास न होने से इस वर्ष भी कालेज न जाकर काम करके धन कमा रहे हैं। इन्हें १८० रुपया प्रतिमास मिल जाता है। अगले साल कालेज जाकर ये मेरे साथ ग्रेजुएट होंगे। पिट्सबर्ग में पढ़ने का यही बड़ा सुभीता है। यहाँ इतना अधिक काम है और इतने कारख़ाने हैं कि मेहनती और स्वतन्त्रताप्रिय विद्यार्थी को काम की कमी नहीं रहती। मेरे साथ इन कारख़ानेवालों ने बड़ा ही अच्छा सलूक किया है। इन्हें मालूम है कि मैं डिग्री लेकर अगले साल देश को वापस जाऊँगा। इसलिए कारख़ाने में छः महीने ही रह सकता हूँ। ये मुझे हर हफ़्ते एक विभाग से दूसरे विभाग में भेज देते हैं, जिसमें मैं बिजली के सम्बन्ध में मुख्य मुख्य सभी बातों को सीखलूँ। दो महीने से मैं यहाँ हूँ। अब तक चार विभागों में मैं हो आया हूँ। अब अनुसन्धान-विभाग (Testing) में काम करता हूँ। इस विभाग में तरह तरह के बिजली के औज़ारों के दोषों का पता लगाना पड़ता है और यह देखना पड़ता है कि इनकी तरक़्क़ी कैसे हो सकती है। यह काम बड़ा ही मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद है। अब मेरा इरादा बाक़ी समय तक यहीं रहने का है।

भारत के विद्यार्थियों को पिट्सबर्ग का बहुत कम हाल मालूम है। इसीलिए मैं यहाँ के कारख़ानों का हाल लिखता हूँ, जिससे भारत के स्वतन्त्रता-प्रिय और मेहनती विद्यार्थी यहाँ आवें और विद्योपार्जन भी करें और धन भी कमावें। साथही तजरिबा भी कारख़ानों के चलाने का हासिल करें, जिसकी देश में इस समय सब से अधिक आवश्यकता है। मैंने एक पत्र द्वारा विश्वविद्यालय के अध्यक्ष से पूछा था कि वे भारत से आनेवाले हिन्दू-विद्यार्थियों को कहाँ तक सहायता दे सकेंगे। उन्होंने उत्तर दिया कि प्रति विद्यार्थी के विषय में यह देख कर कि उसे कहाँ तक सहायता की ज़रूरत है सहायता दी जावेगी। इसलिए देश के युवक विद्यार्थियों से मेरी अपील है कि वे यहाँ आकर इस देश के उन गुणों को प्राप्त करें जिनसे यह बड़ा हुआ है और लौट कर अपने देश को भी बड़ा बनाने का प्रयत्न करें। पर जो विद्यार्थी यहाँ आवें वे पहले ८०० या १००० रुपया लेकर आवें। नहीं तो बड़ा कष्ट उठाना पड़ेगा। आने के पूर्व यदि मुझे लिखें तो मैं यथा-शक्ति सब प्रबन्ध कर दूँगा।

जगन्नाथ खन्ना
(पिट्सबर्ग, अमेरिका)

"पुराना जाता है, नया आता है"

पुराना जाता है और नया उसकी जगह क्यों आता है, इसका ठीक उत्तर चाहे जो हो, पर हम यह अवश्य कह सकते हैं कि जैसे पृथ्वी का घूमना एक प्राकृतिक नियम है, अथवा जैसे गुरुत्वाकर्षण के नियम के अनुसार ऊपर को फेंकी गई वस्तु नीचे गिर पड़ती है, वैसे ही प्राचीन का जाना और नवीन का आना भी एक प्राकृतिक नियम सा हो गया है। संसार के जुदे जुदे देशों के इतिहासों से यह प्राकृतिक नियम बहुत साफ़ साफ़ मालूम पड़ता है। इतिहास देखने से पता लगता है कि जो देश आज उन्नति के उच्च शिखर पर चढ़ा हुआ है वही कल अवनति के खड्ड में गिरा हुआ दिखलाई पड़ता है और कोई अन्य देश उन्नति के ऊँचे शिखर पर चढ़ा हुआ है। जो धर्म आज असंख्य मनुष्यों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्माओं को शान्ति देनेवाला है वही धर्म कल सिर्फ़ पोथियों में लिखा दिखलाई पड़ता है, और उसके स्थान पर हम किसी दूसरे ही धर्म का प्रचार देखते हैं। जो साहित्य और भाषा आज ज़िन्दा कहलाती है वही कल मुर्दा भाषा के नाम से पुकारी जाती है। किं बहुना, संसार की प्रायः सभी बातों में यह प्राकृतिक नियम दिखलाई पड़ता है। प्रकृति के इस नियम को, कुछ प्राचीन देशों के उदाहरण देकर, समझाने का हम यत्न करते हैं।

जो ईरान पहले संसार की दौड़ में सबके आगे बढ़ा हुआ अपनी विजयपताका फहरा रहा था वही ईरान आज मृत्युशय्या पर पड़ा हुआ अन्तिम श्वास ले रहा है। ईरान की न वह प्राचीन सभ्यता है, न वह विश्वविजयिनी शक्ति है और न वह धर्म ही है। ईरान के सूर्य्य-मन्दिर, अग्नि के उपासक, हरमुज्द के भक्त, दारा और कैखुसरो के वंशज, ज़िन्दभाषा, और पारसी-संस्थायें अब कहाँ हैं? आज ईरान में सूर्य्य और अग्नि-मन्दिरों की जगह मसजिदें; हरमुज्द और ज़रतुष्ट की जगह अल्लाह तथा मुहम्मद; कैखुसरो आदि के सिंहासन पर तुर्रानी और तातारी सरदारों की सन्तान; ज़िन्द भाषा की जगह फ़ारसी और पारसीक सभ्यता के स्थान पर अरबी सभ्यता के चिह्न पाये जाते हैं।

इसी तरह ईजिप्ट में भी महान् परिवर्त्तन हुए हैं। ईजिप्ट की प्राचीन कौप्ट जाति, पिरामिड्स बनवाने वाले पुराने सम्राटों की सन्तान, मिश्र के पुराने धर्म और देवी-देवता सब काल के करालगाल में लोप होगये। उनके स्थान पर आज कल ईजिप्ट में अरब, सूडानी और हबशी बसते हैं और अँगरेज़ शासन करते हैं। मिस्र के पुराने धर्म, वहाँ की सामाजिक संस्था और राज्यप्रणाली का कोई चिह्न यहाँ नहीं। अरब, तुर्क, फ़रासीसी और अँगरेज़ लोगों की बदौलत सब का सब नष्ट होगया।

ग्रीस और रोम में भी कुछ कम परिवर्तन नहीं हुए। ये दोनों देश योरप में उस समय भी बहुत सभ्य दशा में थे जब योरप की दूसरी जातियाँ बिलकुल ही असभ्य और जङ्गली थीं। रोम और ग्रीस वाले उस समय भी शहरों में रहते थे, क़ानून बनाते थे, राज्यशासन की प्रणाली जानते थे और व्यापार-वाणिज्य भी करते थे, जब योरप की अन्य जातियाँ लड़ा भिड़ा करती थीं और इधर से उधर जङ्गलों में घूमा करती थीं। इन दोनों देशवालों ने प्राचीन समय में लग भग समस्त संसार को जीत कर अपने अधीन कर लिया था। किन्तु अन्त में ये दोनों देश भी काल के अनियमित चक्र में पड़ कर चकना-चूर होगये। जिस रोम और ग्रीस के नाम से किसी समय समस्त संसार काँपता था वही रोम और ग्रीस आजकल योरप में तीसरे दरज़े की शक्तियाँ समझे जाते हैं। इन दोनों देशों की वर्तमान सभ्यता का प्राचीन सभ्यता से इस समय कुछ भी सम्बन्ध नहीं दिखलाई पड़ता। आज कल इन दोनों देशों में न प्राचीनों का सा साहस और वीरता है, न पुरानी सामाजिक और धार्मिक संस्थायें हैं, न पुराने त्योहार तथा उत्सव हैं, न पुरानी राजनैतिक प्रथा है, न पुरानी भाषा है, न पुराना साम्राज्य है, और न पुराने सम्राटों का वंश है। ईसाई धर्म के प्रचार, अपने दुराचार, गौथों, वाण्डालों और तुर्कों के आक्रमण और राज्य ने इन दोनों देशों की प्राचीन सभ्यता का नाश करके नवीन सभ्यता की नीव डाली है।

भारतवर्ष में भी ठीक इसी तरह का परिवर्तन हो रहा है। वैदिक युग गया, पौराणिक युग आया। पौराणिक युग गया, तन्त्रों का प्रचार हुआ। तन्त्रों को मिटा कर बौद्ध और जैनियों ने ज़ोर पकड़ा। बौद्ध और जैन धर्म को हटा कर स्वामी शङ्कराचार्य ने नवीन हिन्दू-धर्म की बुनियाद डाली। यहाँ के पुराने रहने वालों को निकाल कर आर्यों ने अपना राज्य स्थापित किया; आर्यों का पराजय करके मुग़लों और पठानों ने अपना प्रभुत्व जमाया। अँगरेज़ों ने मुसलमानों को भी उन आर्यों के समकक्ष कर दिया, जिनको जीत कर मुसलमानों ने ग़ुलाम और काफ़िर कहा था। वेद की भाषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को हटा कर संस्कृत-भाषा प्रचलित हुई। कुछ समय बाद संस्कृत मुर्दा भाषा मान ली गई और उसके स्थान पर प्राकृत का प्रचार हुआ। अब प्राकृत के स्थान पर हिन्दी, बँगला, गुजराती, पञ्जाबी आदि प्राकृत के अनेक भेद बोले और लिखे जाते हैं।

पञ्चभूतात्मक पञ्च प्राणवाले जीव जो इस चल और असार संसार में एक से न रहें तो कौन अचरज की बात है, जब बड़े बड़े अटल पहाड़, सैकड़ों कोस के मैदान और जङ्गल भी काल पाकर और के और होजाते हैं। महाकवि भवभूति ने इस प्राकृतिक परिवर्तन का चित्र, एक जगह, उत्तर-राम-चरित में, इस तरह खींचा है:—

पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरितां
विपर्यासं जातो घनविरलभावः क्षितिरुहाम्।
बहोर्दृष्टं कालादपरमिव मन्ये वनमिदं
निवेशः शैलानां तदिदमिति बुद्धिर्दृढयति॥

दण्डक-वन में जहाँ पहले सोते थे वहाँ नदियों के प्रवाह के कारण अब पुलिन बन गये। घने और विरले जङ्गलों में उलट पलट हो गया। जहाँ घना जङ्गल था वहाँ अब कहीं दो एक पेड़ रह गये और जो बिलकुल पट मैदान था वह घने जङ्गल में बदल गया—इत्यादि।

अस्तु। सारांश यह कि प्राचीन को मिटा कर नवीन का प्रचार सृष्टि का एक अखण्ड नियम हो गया है। इस नियम का मूल कारण यह है कि लोगों में नई बात की चाह विशेष रहती है और इसी चाह के बढ़ने का नाम तरक्की और उन्नति है। योरप और अमेरिका इन दिनों उन्नति के छोर को पहुँच रहे हैं। इसी से इस समय वे सभ्यता के शिरोमणि और संसार के अग्रगण्य माने जाते हैं। हमारे हिन्दुस्तानी भाई परिवर्तन से चिढ़ते और पुराने लकीर के फ़क़ीर बने रहना ही धर्म समझते हैं। तब क्या आशा है कि ये भी कभी उन्नति करेंगे। बुद्धिमान् राजनीतिज्ञों का सिद्धान्त है कि दुनिया दिन दिन तरक्की कर रही है। समुद्र की लहर के समान उन्नति की भी तरल तरङ्गें जुदे जुदे समयों में जुदे जुदे देशों में आती जाती रहती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि भारतवर्ष में ही सब से पहले तरक्की हुई। इसका कारण यह है कि देशों के समूह में हिन्दुस्तान सबसे पुराना है। इसीसे उन्नति, सभ्यता, तथा समाज-ग्रन्थन का बीज सबसे पहले यहीं बोया गया। मिस्र, यूनान और रोम आदि देश, जो प्राचीनता में भारत के टक्कर के हैं, सभी ने सभ्यता और उन्नति का अङ्कुर यहीं से ले लेकर अपनी अपनी भूमि में लगाया और उसको सींच सींच कर अति विशाल वृक्ष किया। वह वृक्ष यहाँ तक बढ़ा कि पृथ्वी के आधे हिस्से तक उसकी डालियाँ फैल गईं। रोम का राज्य किसी समय प्रायः समस्त योरप, अफ्रिका और एशिया में फैला हुआ था। ग्रीस और रोम की उस पुरानी उन्नति का लेशमात्र भी अब कहीं उन देशों में बाक़ी नहीं है। किन्तु विद्या, कला, सभ्यता, विज्ञान और भिन्न भिन्न प्रकार के दर्शनशास्त्रों में जो उन्नति भारत, यूनान तथा रोम ने की वह भाषान्तरित होकर अब तक बनी है। जिस बात का आविष्कार एक देश में होता है उसका बीज नष्ट नहीं होता। वह एक देश से दूसरे देश में ज़रूर पहुँच जाता है और वहाँ नया मालूम होने से लोग उसे बड़े चाव से ग्रहण करते हैं। पर यह स्मरण रहे कि जो उन्नति—सभ्यता तथा शिल्प-विज्ञान में—भारत तथा यूनान और रोम ने की थी वह बहुत ही अल्प थी। इस समय पहले से कई गुनी अधिक उन्नति योरप और अमरीका में देखी जाती है। तो यह सिद्ध हुआ कि दुनिया दिन दिन तरक़्क़ी कर रही है और इस तरक्की की बुनियाद सदा नई बात की चाह है।

मतलब यह कि परिवर्त्तन, जिसके हमारे हिन्दू भाई अत्यन्त विरोधी हैं, इस अस्थिर जगत् का एक मुख्य धर्म या गुण है। नये लोग इस परिवर्तन से चिढ़ते नहीं, बल्कि इसे तरक्की की एक सीढ़ी मानते हैं। हमारे अभाग्य से भारतवर्ष में परिवर्तन को लोग यहाँ तक बुरा समझते हैं कि दिन दिन अत्यन्त गिरी दशा को पहुँच कर भी हम परिवर्तन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ओर मन नहीं किया चाहते। जैसी विद्या की तरक्क़ी और शान्ति का समय इस बीसवीं शताब्दी में हमारे देश में हुआ है, वैसा किसी दूसरे देश में होता तो वह देश न जाने कितनी उन्नति कर डालता। परिवर्तनविमुखता के कारण से ही इस समय देश में विद्या-वृद्धि दाल में नमक की तरह मालूम होती है और जो धीमा क्रम यहाँ के लोगों में देखा जाता है उससे यही प्रतीत होता है कि भारत का भाग्योदय होना यदि असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। अस्तु, चाहे जो हो, जो हम अब हैं दस वर्ष पहले न थे; थोड़े दिन के बाद कुछ और के और हो जायँगे; क्योंकि यह संसार कभी एक सा नहीं रहा। एक बात, जो हमें भारत के भावी भाग्योदय की प्रबल आशा दिलाता है, यह है—

यूनानो मिस्र रोमा सब उठ गये जहाँ से।
बाक़ी है अब तलक भी नामोनिशां हमारा॥

जनार्दन भट्ट।

जुगनू।*

जब किसी साधारण विद्या-बुद्धि-बल वाले व्यक्ति का उल्लेख किया जाता है तब वक्ता या लेखक महाशय जुगनू का नाम लेते हैं। समझ में नहीं आता कि हम लोग जुगनू को क्यों इतना तुच्छ और उपहास का पात्र समझते हैं। शायद चन्द्र, सूर्य आदि बड़े बड़े प्रकाशों का संसार में होना ही जुगनू के इस अपमान का कारण है। अच्छा, जुगनू के थोड़ा हो या बहुत, कुछ प्रकाश है तो। लेकिन हममें? हम में तो कुछ भी नहीं है। इस अन्धकार में पृथ्वी पर जन्म लेकर अपने प्रकाश से किसे किसे राह दिखलाई? मुझे देख कर किसने दुस्तर मैदान में, दुर्दिन में, विपत्ति में, अन्धकार में कहा "आओ भाई, चलो; वह देखो प्रकाश हो रहा है; उसी प्रकाश को देख कर रास्ता चलें"।

यह संसार घोर अन्धकारमय है। इसमें हाथ मारा नहीं सूझता। बिना प्रकाश के राह चलना बहुत ही कठिन है। जब सूर्य-चन्द्र रहते हैं तब हम लोग राह चलते हैं, नहीं तो नहीं चल सकते। ये छोटे छोटे तारागण भी आकाश में ऊपर उठ कर कुछ प्रकाश करते हैं, लेकिन दुर्दिन में वे भी नहीं देख पड़ते। चन्द्र-सूर्य भी सुदिन के साथी हैं। दुर्दिन में, कुसमय में, जब मेघ की घटा, बिजली की छटा—एक तो रात उस पर घोर वर्षा—होती है तब कोई नहीं देख पड़ता। मनुष्य-निर्मित यन्त्र की तरह वे भी कहते हैं "Hora non numero nisi serenas!" जुगनू, केवल तुम्हीं,—क्षुद्र, क्षुद्रकान्ति, सहज ही मारे जाने वाले, सर्वदा मरे हुए, तुम्हीं, उस अन्धकारमय दुर्दिन में, वर्षा की भीषण रात्रि में, दिखाई देते हो। सच पूछो तो तुम्हीं भयानक अन्धकार में साथ देते हो! मैं तुमको प्यार करता हूँ।

मैं तुमको प्यार करता हूँ। इसलिए कि तुममें थोड़ा—बहुत थोड़ा—प्रकाश है। तुम अन्धकार में हो, और भाई, मैं भी घोर अन्धकार में हूँ। क्या अन्धकार में सुख नहीं है? तुम तो सदा अन्धकार में ही घूमा करते हो, बताओ। सावन-भादों की अँधेरी रात में जगत् अन्धकार से ढँक जाता है—चन्द्र नहीं होता, तारे नहीं होते, आकाश की नीलिमा और पृथ्वी की दीपमाला—यहाँ तक कि खिले हुए फूलों की आभा और शोभा भी नहीं देख पड़ती—केवल अन्धकार, घोर अन्धकार रहता है। केवल अन्धकार रहता है और तुम रहते हो। बताओ, अन्धकार में सुख नहीं है? जब झड़ी लग जाती है, सनसनाती हुई हवा चलती है, बिजली कभी कभी चमक जाती है, लोग अपने अपने घर में घुस रहते हैं, तब लहलहे हरे भरे वृक्षों के श्यामल पत्तों पर तुम आनन्द से टहलते देख पड़ते हो। भला बताओ, अन्धकार में सुख नहीं है?

* बङ्किम बाबू के एक लेख का अनुवाद। रूपनारायण पाण्डेय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं तो कहता हूँ कि है। नहीं तो किस साहस से तुम इस भयानक वर्षा के अन्धकार में, और मैं इस सामाजिक अन्धकार में, इस घोर दुर्दिन में, दोनों अपने थोड़े—बहुत थोड़े—प्रकाश से प्रकाश फैलाने की चेष्टा करते हैं। अन्धकार में रहना अवश्य आमोदजनक है। कोई न देखेगा—अन्धकार में तुम जलोगे और अन्धकार में मैं भी जलूँगा। मैं और तुम दोनों, एक नहीं—अनेक ज्वालाओं में जलेंगे।

जीवन का मतलब समझना अत्यन्त कठिन है; वह अत्यन्त गूढ़ है; अत्यन्त भयङ्कर है। क्षुद्र हो कर तुम क्यों जलते हो? क्षुद्र होकर मैं भी क्यों जलता हूँ? तुम क्या कभी यह सोचते हो? मैं तो सोचता हूँ। तुम अगर नहीं सोचते तो भाई तुम सुखी हो। मैं सोचता हूँ, मैं असुखी हूँ। तुम कीड़े हो—मैं भी कीड़ा हूँ, क्षुद्र से भी क्षुद्र कीड़े के बराबर हूँ। तुम सुखी हो,—लेकिन मैं किस पाप से असुखी हूँ? तुम क्या कभी सोचते हो कि "मैं (जुगनू) जगत् को प्रकाशित करने वाला सूर्य्य क्यों न हुआ? अथवा एक साथ आकाश और समुद्र को सनाथ और शोभित करनेवाला चन्द्र क्यों न हुआ? ग्रह, उपग्रह, धूमकेतु या छायापथ का एक अंश भी न हो कर जुगनू क्यों हुआ"? जिसने सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि को रचा है उसी ने तुम को भी रचा है। जिसने सूर्य आदि को प्रकाश दिया है उसी ने तुम्हें भी प्रकाशित किया है। तब, उसने एक को छोटा और दूसरे को बड़ा क्यों बनाया? एक को बहुत प्रकाश, दूसरे को थोड़ा प्रकाश क्यों दिया? अन्धकार में चक्कर खा कर तुमने क्या कभी इन बातों को सोचा है?

तुम सोचो या न सोचो, मगर मैं सोचता हूँ। मैंने सोच कर स्थिर किया है कि विधाता ने तुमको और मुझको केवल अन्धकार में रहने के लिए ही भेजा है। प्रकाश एकही है। तुम्हारा और सूर्य का, दोनों का प्रकाश, उसी जगदीश्वर का दिया हुआ है। किन्तु तुम केवल बरसात की रात के लिए हो, और मैं भी केवल विपत्तिवर्षा की रात के लिए हूँ। आओ मिल कर रोवें।

वर्षा की रात के साथ मेरा और तुम्हारा नित्य सम्बन्ध क्यों है? प्रकाश-पूर्ण नक्षत्र-मण्डली-मण्डित वसन्त-ऋतु के अप्रकाश में मेरे और तुम्हारे लिए जगह क्यों नहीं? वसन्त तो चन्द्रमा के लिए, सुखी के लिए, निश्चिन्त के लिए है; और वर्षा तुम्हारे लिए, दुखी के लिए, मेरे लिए है। इसी लिए रोने को कहता था। लेकिन रोऊँगा नहीं, रोना व्यर्थ है। जिसने तुम्हारे और मेरे लिए इस संसार को अन्धकारमय बनाया है, रोकर उसे दोष न दूँगा। यदि उसकी इच्छा यही है कि अन्धकार के साथ मेरा और तुम्हारा नित्य-सम्बन्ध रहे तो आओ अन्धकार में रहना ही पसन्द करें। आओ, नवीन नील मेघमाला को देख कर इस अनन्त असंख्य जगत्पूर्ण भीषण विश्वमण्डल की कराल छाया का अनुभव करें; मेघ गर्जन को सुन कर सर्वसंहारकारी काल के अविराम गर्जन को स्मरण करें; और चञ्चला की चमक को काल का कुटिल कटाक्ष समझें। समझें कि यह संसार भयङ्कर है; क्षणिक है। तुम भी क्षणिक हो और मैं भी क्षणिक हूँ। मैं और तुम दोनों, वर्षाकाल के लिए ही भेजे गये हैं। रोने की ज़रूरत नहीं है। आओ, चुपचाप, जलते जलते—अनेक ज्वालाओं में जलते जलते—सब सह लें।

नहीं तो, आओ मरें! तुम दीपक के चारों ओर चक्कर लगा कर जल मरो, और मैं आशारूपी प्रबल प्रोज्ज्वल और कभी न बुझनेवाले अग्निकुण्ड के चारों ओर घूम कर जल मरूँ। तुम्हारे दीपक में कौन मोहिनी है सो तो मैं नहीं जानता, लेकिन मेरे आशा के अग्निकुण्ड में अवश्य मोहिनी है। इस अग्निकुण्ड में कितनी ही बार मैं कूदा, कितनी ही बार जला, लेकिन मरा नहीं। यह मोहिनी क्या है, सो मैं जानता हूँ। बड़ी लालसा है कि प्रकाश प्राप्त कर संसार को प्रकाशित करूँ। लेकिन हाय! हम जुगनू हैं! हमारे प्रकाश से कुछ भी प्रकाशित न होगा। तुम इस वकुलकुञ्ज-किसलय-कृत अन्धकार में अपना क्षुद्र प्रकाश बुझा दो। और मैं? मैं भी जल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं हो, थल में हो, रोग में हो, दुःख में हो, कहीं न कहीं अपने क्षुद्रजीवन के प्रकाश को बुझाऊँगा।

मनुष्य—खद्योत।

विविध-विषय।

१-चीन में बौद्ध-भिक्षुओं के अद्भुत कार्य्य।

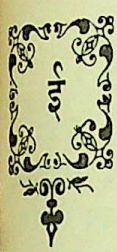

सवी सन् के कोई ढाई सौ वर्ष पहले चीन को भारत से बौद्धभिक्षु गये। डाक्टर ईटल ने अपनी बुद्धिज़्म नाम की पुस्तक में लिखा है कि अट्ठारह बौद्ध श्रमण पहले पहल चीन गये और वहाँ बौद्ध धर्म का उन्होंने उपदेश किया। उनके धार्म्मिक विचार सुन कर और उनका पाण्डित्य देख कर चीनवाले मुग्ध होगये और धीरे धीरे बौद्ध धर्म्म ग्रहण करने लगे। ये अठारहों साधु चीन जा कर फिर भारत नहीं लौटे। चीनवालों ने उनका इतना आदर किया कि उनके मरने पर उनकी मूर्तियाँ बनवा कर मन्दिरों में रक्खीं। ये मूर्तियाँ बड़े बड़े मन्दिरों में अब तक पाई जाती हैं। देवताओं के समान उनकी भी पूजा होती है। ६५ ईसवी में चीन के राजेश्वर मिंगटी ने और भी कितने ही साधुओं को भारत से बुला कर अपने देश में रक्खा और उनसे बौद्ध धर्म्म की दीक्षा ली। बौद्ध साधुओं का आवागमन जैसे जैसे बढ़ता गया वैसे ही वैसे बौद्ध धर्म्म का प्रचार भी वहाँ बढ़ता गया। इन साधुओं ने बौद्ध-धर्म्म-सम्बन्धी तथा अन्य विषयों के भी सैकड़ों ग्रन्थ चीनी भाषा में लिख डाले। कितनों ही का अनुवाद भी चीनी में कर डाला। पूर्वोक्त ईटल साहब ने—हैंड बुक आव चाइनीज़—में लिखा है कि धर्म्मरक्ष, कौशल, कुमारजीव, बुद्धभद्र, संघपाल, महाजनदेव, दिवाकर, शिक्षानन्द और अमोघ ने तो संस्कृत-ग्रन्थों को चीनी भाषा में शुद्धतापूर्वक लिखने के लिए उस भाषा में कितने ही चिह्नों की कल्पना करके चीनी-वर्णमाला का संशोधन तक कर दिया। इन पण्डितों ने चीनवालों को देवनागरी लिखना भी सिखाया। यन्त्र-मन्त्रों में वहाँ देवनागरी वर्णों का अब तक प्रयोग होता है।

२—वैदिक विश्वकोश।

गवर्नमेंट के प्रबन्ध से एक ऐतिहासिक पुस्तक-माला निकलती है। उसे तैयार कराती है गवर्नमेंट और प्रकाशित करती है मरे कम्पनी। कई पुस्तकें इस माला की निकल चुकी हैं। अबके जो पुस्तक निकलने वाली है उसका नाम है:—"Vedic Index of Names and Subjects"—अध्यापक मुग्धान-लाचार्य्य और डाक्टर कीथ ने इसे तैयार किया है। वेदों में जितने संज्ञाशब्द और जिन जिन बातों का वर्णन है वे सब बातें इस सूची या कोश में, वर्ण-माला के क्रम से, लिखी गई हैं। वैदिक साहित्य की सारी ऐतिहासिक सामग्री का इसमें संग्रह रहेगा। पुस्तक शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है।

३—व्योमयान द्वारा तीन हज़ार मील की यात्रा।

व्योम-यान द्वारा छोटी मोटी यात्रायें तो बहुत दिनों से होती हैं; अब लोग हज़ारों मील की यात्रायें भी व्योमयान द्वारा ही तै करने का साहस करने लगे हैं। १९०१ में दो अमेरिका-निवासी महा-द्वीप अमेरिका को व्योम-यान द्वारा पार करने चले थे; परन्तु उनका यान एक निर्जन रेतीले जङ्गल में गिर पड़ा और आगे न जा सका। इस कारण उनका मनोरथ सिद्ध न हो सका। १९०३ में दो अन्य साहसी पुरुषों ने इस इतनी बड़ी यात्रा को पैंसठ दिनों में समाप्त करही डाला। फिर तो अन्य कितनेही लोगों ने इस काम को विशेष सफलतापूर्वक कर दिखाया। जो यात्रा १९०३ में पैंसठ दिन में तै की गई थी वही, १९०६ में, साढ़े पन्द्रह ही दिन में तै की जाने लगी। हाल में राजर्स नामक अमेरिका के एक व्योम-यानिक ने कोई चालीस मील फ़ी घंटे के हिसाब से उड़ कर बयासी घंटे में ३३५० मील का सफ़र किया है। वह दिन दूर नहीं जब मोटर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाड़ियों की तरह व्योम-यान भी सब कहीं उड़ते दिखाई देंगे।

४—मृत आत्माओं के लेख और चित्र।

हाल में लन्दन के डाक्टर जेम्स कोटीज़ ने "Photographing the Invisible"—नाम की एक पुस्तक प्रकाशित की है, जिसमें उन्होंने इस बात को सिद्ध किया है कि मृत मनुष्यों की आत्माओं का चित्र भी लिया जा सकता है और उनके द्वारा लिखे हुए लेख भी प्राप्त हो सकते हैं। पुस्तक में केवल तर्क-वितर्क ही से काम नहीं लिया गया, किन्तु इस प्रकार की घटनाओं के कितने ही उदाहरण भी दिये गये हैं। उदाहरण भी यों नहीं दिये, कितने ही माननीय पुरुषों की गवाही देकर दिये हैं। पुस्तक में एक अध्याय है, मृत पुरुषों की आत्माओं के चित्रों के विषय पर। उसमें दो प्रसिद्ध हिन्दू सज्जनों का भी साक्ष्य है। पहले सज्जन हैं मद्रास प्रान्त के निवासी—"वेस्ट कोस्ट स्पेक्टेटर" नामक पत्र के सम्पादक श्रीयुत जी० सुब्बाराव जिन्होंने अपनी मृत पत्नी का चित्र शिकागो की एक समिति से अपने ही पसन्द किये हुए विलायती टाट के टुकड़े पर खिँचा हुआ प्राप्त किया। दूसरे साक्षी हैं "अमृत-बाज़ार-पत्रिका" के भूतपूर्व सम्पादक स्वर्गवासी श्रीयुत शिशिरकुमार घोष। उनको भी उसी समिति द्वारा अपने मृत-पुत्र का चित्र प्राप्त हुआ था।

५—"नागरी-प्रचारक" मासिक पत्र।

इस मासिक पत्र को लखनऊ से निकलते छः वर्ष से ऊपर हुआ। पहले इसका रूप-रङ्ग, आकार-प्रकार और था; अब कुछ और ही है। अब इसके प्रत्येक अङ्क में सरस्वती के आकार के २४ पृष्ठ रहते हैं। पर मूल्य केवल एक रुपया है। तिस पर भी असमर्थ विद्यार्थियों से आठही आना लिया जाता है। इसके सम्पादक अच्छे कवि और समालोचक जान पड़ते हैं। आपके नोट और समालोचनायें बहुत अच्छी होती हैं। आप अपनी राय निर्भीकता-पूर्वक प्रकट करते हैं। आपके नोटों और समालोचनाओं में तत्त्व रहता है। हम उन्हें आदर की दृष्टि से देखते हैं। इसी लिए आप के पत्र को हम मोल लेकर पढ़ते हैं। इसमें यदा कदा धार्मिक लेख भी निकलते हैं। उनसे भी लेखक की चिन्ताशीलता का परिचय मिलता है। हास्य-विनोद, कल्पित कथा और साहित्य-विषयक छोटे छोटे लेख भी इसमें पढ़ने योग्य प्रकाशित हुआ करते हैं। इन सब बातों को देखते एक रुपये में यह पत्र बहुत ही सस्ता क्या, सुफ़्त समझना चाहिए।

६—"इन्दु" मासिक पत्र।

यह मासिक पत्र दो ढाई वर्ष से काशी से निकल रहा है। बाबू अम्बिकाप्रसाद गुप्त इसके सम्पादक और प्रकाशक हैं। कुछ समय से इसने बड़ी उन्नति की है। अब इसके प्रत्येक अङ्क में छोटे आकार के सौ पृष्ठ रहते हैं। आरम्भ में एक आध चित्र भी रहता है। इसमें कहानियाँ और पुरातत्त्व-विषयक लेख कभी कभी बहुत अच्छे निकलते हैं। कवितायें भी इसकी बहुधा सरस होती हैं। पत्र लेने और पढ़ने योग्य है। वार्षिक मूल्य इसका ३॥) है।

७—पण्डित गणपति शर्म्मा का परलोकगमन।

आर्य्यसमाज के नामी वक्ता पण्डित गणपति शर्म्मा का शरीरान्त होगया। यह सुन कर बड़ा रंज हुआ। पण्डित जी चूरू (राजपूताना) के निवासी थे। संवत् १९३० में आप का जन्म हुआ था। ये ऐसे कुशाग्र-बुद्धि थे कि बहुत ही छोटी उम्र में व्याकरण और साहित्य में अच्छी गति प्राप्त कर ली थी। कई वर्ष तक काशी में रह कर इन्होंने न्याय और वेदान्त का अध्ययन किया। एक वर्ष ये नदिया में भी रहे। २२ वर्ष की उम्र में विद्याध्ययन समाप्त करके ये घर लौटे। तभी से ये आर्य्य-समाज के अनुयायी होकर उसकी उद्देश-सिद्धि के काम में लग गये। ये ऐसे अच्छे वक्ता थे कि हज़ारों मनुष्यों के जमाव में चार चार घंटे तक बड़ी ही ओजस्विनी और अस्खलित वक्तृता दे सकते थे। वेदान्त जैसे गहन विषय को भी ये इस तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

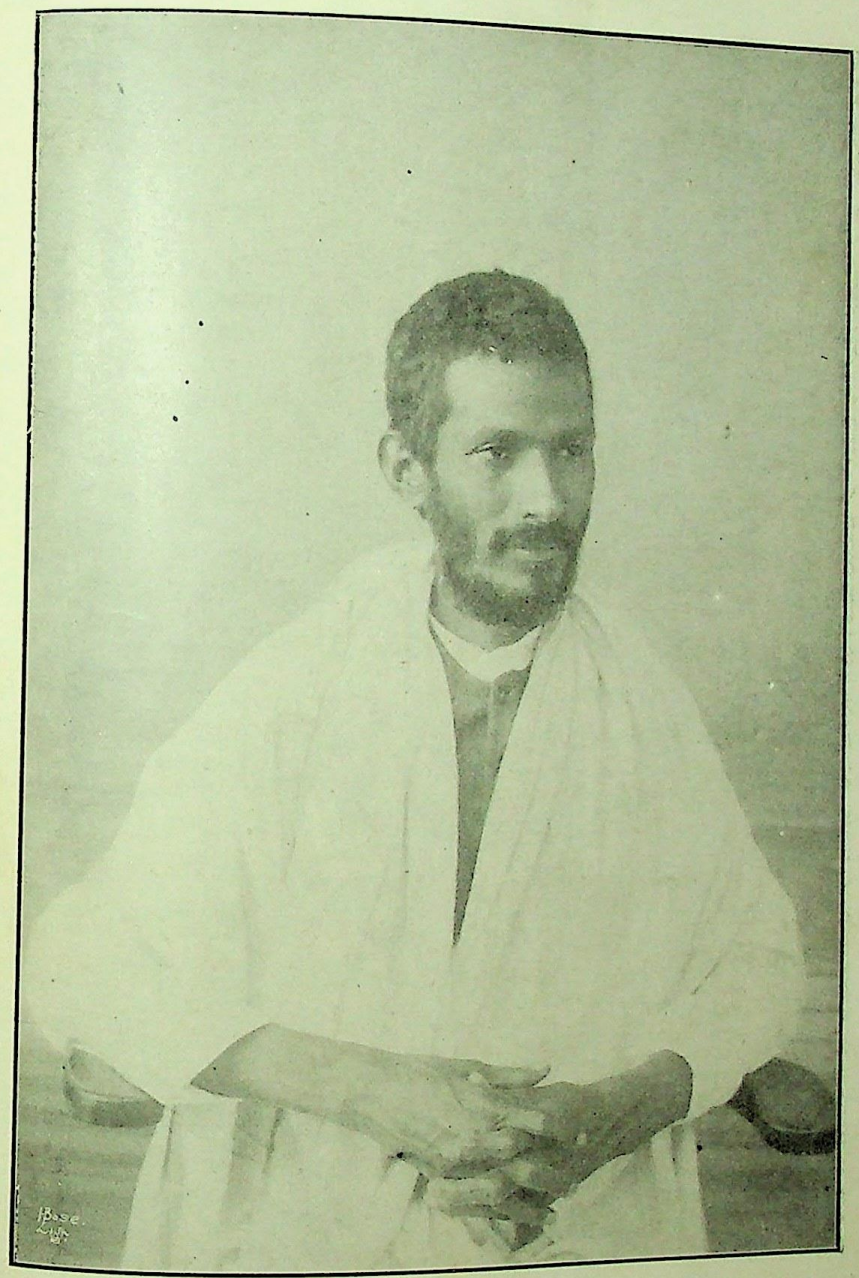

परलोकवासी श्रीयुत पण्डित गणपति शर्म्मा ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझाते थे कि अल्पज्ञ भी उसका तत्त्व समझ जाते थे। आपके व्याख्यान प्रायः ईश्वर, हरिभक्ति और वेदान्त आदि विषयों पर होते थे। इनके सदृश तार्किक आर्य्य-समाज में शायद ही एक आध और होगा। ये बड़े ही निस्पृह थे। अजमेर में इनके दर्शन करके इस नोट के लेखक ने अपने को कृतार्थ माना था। ज्वालापुर के महाविद्यालय ने पण्डित गणपति शर्म्माजी की यादगार में दस हज़ार रुपया लगा कर एक "गणपति-भवन" बनवाने का निश्चय किया है।

८—किन्डर-गार्टन-बक्स।

छोटे छोटे बच्चों को अब इस देश में भी कहीं कहीं किन्डर-गार्टन अर्थात् बालोद्यान-शिक्षा की प्रणाली से शिक्षा दी जाने लगी है। यह खेल का खेल और शिक्षा की शिक्षा है। इसी शिक्षा के लिए पण्डित देवीदत्त कन्याल (मौज़ा महरागाँव, डाकख़ाना मुवाली, ज़िला नैनीताल) ने दो बक्स तैयार किये हैं। प्रत्येक बक्स में लकड़ी के चौबीस चौबीस टुकड़े जुदा जुदा माप और आकार के हैं। एक बक्स के टुकड़े कुछ बड़े हैं, दूसरे के कुछ छोटे। बड़े का दाम एक रुपया और छोटे का बारह आना है। बक्स के साथ एक पुस्तक भी रहती है। उसका मूल्य डेढ़ आना है। इस पुस्तक में पूर्वोक्त लकड़ी के टुकड़ों को जोड़ कर वर्ण और अङ्क बनाने की प्रणाली लिखी हुई है। बक्स की लकड़ियों से हिन्दी, फ़ारसी और अँगरेज़ी की वर्णमाला और अङ्कों के आकार बड़ी आसानी से बन जाते हैं। कुछ शब्द भी छोटे छोटे बनाये जा सकते हैं। ड्राइंग की कई एक शकलें भी बन सकती हैं। कन्याल महाशय की कल्पना बहुत अच्छी है। छोटे बच्चों के लिए ये बक्स बहुत उपयोगी हैं। इनकी सहायता से बच्चे वर्णमाला और दस तक अङ्क सहज में सीख सकते हैं। टुकड़ों को उलट पुलट कर रखने में कभी कभी उनके जोड़ ठीक नहीं बैठते। इतना ही दोष इनमें है। पर इस दोष के कारण इनकी उपयोगिता रत्ती भर भी कम नहीं होती।

९—इलाहाबाद-विश्व-विद्यालय की परीक्षाओं के फल।

हिन्दुस्तान में इस समय पाँच विश्व-विद्यालय हैं—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, इलाहाबाद और पञ्जाब। और, आशा है, अनतिविलम्ब और भी तीन विश्व-विद्यालयों की स्थापना होगी—अर्थात् मुस्लिम-विश्व-विद्यालय अलीगढ़ में, हिन्दू-विश्व-विद्यालय बनारस में, और ढाका-विश्व-विद्यालय आसाम प्रान्त में।

इलाहाबाद-विश्व-विद्यालय की जो परीक्षायें गत मार्च और अप्रेल में हुई थीं उनके फल का विवरण नीचे दिया जाता है:—

परीक्षा का नाम	छात्रों की संख्या		
	परीक्षित	उत्तीर्ण	प्रतिशत
(१) एम० ए०, प्रथम वर्ष	९७	३७	३८.१
(२) एम० ए०, द्वितीय वर्ष	४५	२५	५५.५
(३) एम०एससी०, प्रथम वर्ष	१७	१५	८८.२
(४) एम०एससी०, द्वितीय वर्ष	१०	८	८०.०
(५) एल०एल०बी०, प्रथम वर्ष	४७९	३०८	६४.३
(६) एल.एल.बी., द्वितीय वर्ष	२३९	१३३	५५.६५
(७) बी० एस० सी०	१४१	५५	३९.०
(८) बी० ए०	८९५	३६९	४१.२
(९) इंटरमेडिएट	१४४६	५७०	३६.८
(१०) मैट्रिक्यूलेशन	३४१५	१२५५	३६.७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इण्टरमेडिएट और मैट्रिक्यूलेशन की परीक्षाओं का फल सन्तोषजनक नहीं। जान पड़ता है कि इन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने की योग्यता की मात्रा बहुत ही कड़ी कर दी गई है। इनमें से प्रत्येक में कम से कम ५० प्रति शत छात्र उत्तीर्ण होने चाहिए।

मैट्रिक्यूलेशन-परीक्षा के फल का प्रान्त-सम्बन्धी विवरण नीचे दिये नक़्शे से विदित होगा:—

प्रान्त का नाम	परीक्षाओं के लिए छात्र भेजने वाले हाई स्कूलों की संख्या	परीक्षित छात्रों की संख्या	उत्तीर्ण छात्रों की संख्या	उत्तीर्ण छात्रों की प्रति शत संख्या	प्रति शत संख्या के अनुसार प्रत्येक प्रान्त का स्थान
(१) संयुक्त प्रदेश	९०	१९१५	७३१	३८.१	तीसरा
(२) मध्य-प्रदेश	२७	६४०	२२६	३५.३	चौथा
(३) बरार	४	१३९	७२	५१.७	दूसरा
(४) राजपूताना	१४	२५४	८५	३३.४	पाँचवाँ
(५) मध्य-भारत	१८	१८८	११९	६३.५	पहला
(६) प्राइवेट उम्मेदवार	+	२८०	२२	७.८	छठा
टोटल	१५३	३४१५	१२५५	३६.७	

मैट्रिक्यूलेशन-परीक्षा में उत्तीर्ण छात्रों का जाति-विवरण।

१२५५ उत्तीर्ण छात्रों में से ४४० ब्राह्मण, २४६ कायस्थ, २३५ मुसल्मान, १११ वैश्य, ४० खत्री, ३५ ईसाई, ३१ क्षत्री, २३ राजपूत, १५ भार्गव, १२ जैनी, ६ पारसी, ५ जाट, ५ सुनार, ५ तम्बोली, ५ मराठा, ४ सिक्ख, ४ परभू, ३ विदुर या कृष्णपक्षी, २ वैद्य, २ लुहार, २ कुरमी, २ कलार, २ जुलाहा, २ ब्राह्मो, २ वैरागी, १ वैष्णव, १ पुष्कर, १ परमाणिक, १ भाटिया, १ अगरवाला, १ सद्गोप, १ जायसवाल, १ नरूला, १ बढ़ई, १ कोरी, १ परवार, १ लखेरा, १ गुरौ, १ यदुवंशी, १ मोहौला और १ कुरमी। यह जाति-विवरण दृढ़ रूप से सिद्ध करता है कि ब्राह्मणों, कायस्थों और मुसल्मानों को छोड़ कर इतर जातियों में उच्च श्रेणी की शिक्षा तो दूर रही, मध्यम श्रेणी की शिक्षा भी नहीं सी है। ४४० ब्राह्मण उत्तीर्ण हुए हैं, जिनमें से १५६ संयुक्त-प्रदेश के हैं, १४१ मध्य-प्रदेश के, ६२ मध्य-भारत के, ४७ बरार के, २७ राजपूताने के और ७ प्राइवेट उम्मेदवारों में से। संयुक्त-प्रदेश का विस्तार और उसकी जन-संख्या का विचार करने से मालूम होता है कि संयुक्त-प्रदेश की ब्राह्मण-जाति में मध्यम श्रेणी की शिक्षा का पूर्ण प्रचार नहीं है।

गणपतिलाल चौबे,
एजेंसी इंस्पेक्टर, स्कूल्स,
रायपुर, मध्यप्रदेश।

१०—तालपत्रों पर लिखी हुई बारह सौ वर्ष की पुरानी पुस्तकें।

नेपाल-नरेश के प्रधान मन्त्री आक्सफर्ड-विश्व-विद्यालय के डी० सी० एल० हैं। आपही के कृपा-कटाक्ष की बदौलत, १९०९ ईसवी में, संस्कृत के ६३०० दुर्लभ ग्रन्थ आक्सफर्ड के बाडलियन नामक पुस्तकागार को भेंट किये गये थे। अब ख़बर मिली है कि लार्ड कर्ज़न की सिफ़ारिश से आपने हज़ारों वर्ष के पुराने कितने ही ग्रन्थ, जिनमें अधिकांश तालपत्रों पर लिखे हुए हैं, आक्सफर्ड को मँगनी दिये हैं। ये ग्रन्थ ७० के लगभग हैं और नेपालियों की पीठ पर लाद कर विलायत पहुँचाये गये हैं। वहाँ इनके फोटो लिये जायँगे। फोटो आक्सफर्ड में रक्खे जायँगे और मूल ग्रन्थ लौटा दिये जायँगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनमें से कुछ ग्रन्थ ७०० ईसवी के लिखे हुए हैं। इतने पुराने हस्तलिखित ग्रन्थ भारत में अन्यत्र कहीं नहीं। अन्यत्र रह भी नहीं सकते। नेपाल ही का जल-वायु ऐसा है जो इतने काल तक इनकी रक्षा कर सकता है। ग्रन्थ भिन्न भिन्न विषयों के हैं और भिन्न भिन्न लिपियों में हैं। कुछ ग्रन्थ गुप्त-लिपि में हैं, कुछ नेवारी लिपि में, कुछ मैथिली लिपि में, कुछ बङ्गाली लिपि में और कुछ देवनागरी लिपि में। प्रत्येक पृष्ठ की लम्बाई दस से बीस इंच तक और चौड़ाई दो से चार इंच तक है। प्रति पुस्तक के ऊपर-नीचे दोनों तरफ़ एक एक पतली पटिया है। उनमें छेद हैं। छेदों के भीतर डोरे पड़े हैं। जिनसे पुस्तक के सब पृष्ठ बँधे हुए हैं। किसी किसी पुस्तक में तीन सौ से भी अधिक पृष्ठ हैं, इन बारह सौ वर्ष की पुरानी पुस्तकों को इनके ज्ञाता विद्वान् अनमोल बतलाते हैं।

११—नर्त्तकाचार्य्य पण्डित गिरिधारीलाल की अमरीका में चाह।

नर्त्तकाचार्य्यजी के विषय में हमारे पास यूनाइटेड स्टेटस् आव् अमेरिका से एक चिट्ठी आई है। वह ज्यों की त्यों नीचे उद्धृत की जाती है:—

315, Lake St.
Madison, Wis.,
U. S. A.
15-7-12

श्रीयुत द्विवेदी जी,

मुझे इस देश में आये तो कई मास हो चुके, पर इस साल की सरस्वती की प्रतियाँ देखने को गत मास तक न मिलीं। फरवरी मास की पत्रिका में पण्डित गणेशराम मिश्र नाम के एक महाशय ने नर्त्तकाचार्य्य पण्डित गिरिधारीलाल तिवारी की अद्भुत नृत्य-लीलाओं पर एक लेख लिखा है। लेख पढ़ने पर मुझे तो कुछ विशेष आश्चर्य्य न हुआ; क्योंकि मैंने इस प्रकार के विलक्षण पुरुषों की बाबत बहुत कुछ भारत ही में सुन रक्खा था। पर पण्डित जी की नाच-सम्बन्धीनी चतुराइयों को सुन कर अमेरिका वालों के होश उड़ते हैं। वे ऐसी बातों को सम्भव नहीं मानते। मेरे एक मित्र ने तो यहाँ तक कह दिया कि यह सब वृत्तान्त समाचार-पत्रवालों की गप्पों में से एक गप्प है। कई लोगों ने, जिन्हें मेरी बातों पर विश्वास आया है, मुझ से पण्डितजी को इस देश में आने के लिए पत्र लिखने का अनुरोध किया है। इनका कहना है कि इस देश में आकर पण्डित जी स्वदेश का मान बढ़ाने के साथ साथ थोड़े ही दिनों में लाखों रुपये के आदमी भी बन सकते हैं। मुझे पण्डित जी का पता मालूम नहीं। इसी कारण आपको क्लेश देता हूँ कि यद्यपि पण्डित जी को अपनी ख्याति तथा रुपया कमाने की इच्छा नहीं है तब भी स्वदेश के गौरव को इस देश-वासियों के हृदयों पर अङ्कित करने की इच्छा से आप कृपा करके उनसे यहाँ आने की प्रार्थना करें। मैंने अनेक स्वदेशवासी छात्रों से पण्डितजी के गौरव की चर्चा की। वे सब पण्डितजी को इस देश में देखने के इच्छुक हो रहे हैं।

स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ इस देश में वेदान्त के दाने बोकर जो भारत वर्ष का उपकार कर गये हैं उसका अनुमान करना कठिन है। हम भारतीय छात्रों का जो इस देश के वासी कुछ आदर और सत्कार करते हैं वह इन्हीं दो महात्माओं की करतूत है। श्रीमती सत्यबाला देवी ने भी अपने मधुर गान की तान से इस देश में स्वदेश का मान स्थापित किया है। मेरे एक मित्र का कहना है कि न्यूयार्क में सत्यबाला देवी ने कुछ रोगियों को अपने गाने बजाने के असर से चंगा करके अमेरिका वालों को स्तम्भित कर दिया। हमारे ब्रह्मचर्य्य के नियम क्या कर सकते हैं, इसकी परीक्षा राममूर्त्तिजी दे रहे हैं। वे यद्यपि अब तक इस देश में नहीं आये हैं तथापि सैकड़ों अमेरिका-प्रवासी उनके नाम से परिचित हैं। अब पण्डित गिरिधारीलाल तिवारीजी की बारी है। अतः उनसे निवेदन है कि समुद्र पार करने से जात-पाँत भ्रष्ट हो जाने की परवा न करके इस देश में आकर हमारी प्राचीन मृत विद्या से संसार को परिचित करने की कृपा करें। यहाँ आने में पण्डितजी को कोई कष्ट न होगा। हम लोग आपका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथों हाथ स्वागत करेंगे और जिस प्रकार रहने की पण्डितजी इच्छा प्रकट करेंगे उसी प्रकार उन्हें यहाँ रक्खेंगे।

आपका—रघुबरदयाल गुप्त।

आशा है, पण्डित गिरिधारीलालजी, गुप्तजी के प्रणयानुरोध का पालन करने के सम्बन्ध में अवश्य विचार करेंगे और पत्र द्वारा अपना निश्चय सूचित करने की उदारता दिखावेंगे।

पुस्तक-परीक्षा।

१—**आत्मविद्या**। यह मासिक पत्रिका कोई डेढ़ वर्ष से निकलती है। श्रीगोकुलानन्दप्रसाद वर्म्मा इसके सम्पादक हैं। इस पत्रिका का सम्बन्ध थियासफिकल सोसायटी से है। अतएव यद्यपि इसमें अध्यात्म-विद्या-विषयक लेखों की ही अधिकता रहती है तथापि अन्य उपयोगी विषयों पर भी लेख और कवितायें रहती हैं। समालोचना, साहित्य-चर्चा, सम्पादकीय विचार आदि भी इसमें रहते हैं। ओरियन के कई हज़ार वर्ष पहले के जन्मों का चरित्र जो इसमें निकल रहा है वह एक अद्भुत वस्तु है। मूल्य इसका सिर्फ़ एक रुपया है। मिलने का पता :—मैनेजर, आत्मविद्या, भागलपुर।

२—**तेली-समाचार**। यह मासिक पत्र कोई एक वर्ष से निकल रहा है। बाढ़, ज़िला पटना, इसका प्रकाशन-स्थान है। बाबू कालीप्रसाददास इसके प्रकाशक हैं। आज तक हमने इस पत्र के दस अङ्क देखे हैं। देखे ही नहीं उन्हें पढ़ा भी है। पत्र एक-जातीय होकर भी सार्वजनिक है। इसके सम्पादक सुयोग्य और सुशिक्षित जान पड़ते हैं। विषय-निर्वाचन भी वे अच्छा करते हैं और लेखों की उपयोगिता पर भी ध्यान रखते हैं। भाषा सरल होती है। हिन्दी के कितने ही अन्यान्य पत्रों से यह पत्र अच्छा है। फिर भी इसका डेढ़ ही रुपया मूल्य है। ईश्वर करे इस पत्र की ख़ूब उन्नति हो।

३—**संस्कृत-रीडर, प्रथम भाग**। इन प्रान्तों के स्कूलों के छठे क्लास में पढ़ाने के लिए, क्वीन्स कालिजिएट स्कूल, बनारस, के पण्डित यज्ञनारायण उपाध्याय, बी० ए०, ने भाषा-शिक्षा-सम्बन्धी संशोधित नियमों के अनुसार इस पुस्तक की रचना की है। सब मिला कर इसमें १३ पाठ हैं। कुटुम्ब, खेत, घर, खाद्य पदार्थ, गली, स्कूल, रेलवे-स्टेशन आदि ऐसे ही विषयों पर इसमें पाठ हैं जिनसे छोटे छोटे बच्चे परिचित रहते हैं। प्रत्येक पाठ में पहले शब्दावली है, फिर वाक्यावली, फिर प्रश्नावली। अन्त में व्याकरण के भी कुछ नियम हैं। इसी तरह सारे पाठों का क्रम रक्खा गया है। प्रत्येक पाठ के अन्त में नये नये शब्दों और क्रियाओं के भी कुछ रूप हैं और संस्कृत से हिन्दी तथा हिन्दी से संस्कृत करने के लिए भी कुछ वाक्य हैं। पुस्तक सचित्र है और बच्चों के लिए अवश्य उपयोगी है। मूल्य इस ४८ पृष्ठ की पुस्तक का ६ आना है। इसमें जो चित्र हैं उनमें से कई एक साहबों और मेमों के हैं। उदाहरणार्थ, पहले ही चित्र में एक साहबी कुटुम्ब का समुदाय है। ये चित्र विदेशी न हो कर स्वदेशी होते तो अच्छा था। 'आसन' का अर्थ 'A mat' क्यों? कुरसी, तख़्त, कम्बल आदि क्या आसन नहीं? 'गवाक्षः' (खिड़की) का अर्थ 'गौखा'—'मुक्ता' प्रान्तिक है; सर्वत्र प्रचलित नहीं'। "मामा माला को गिनता है"—शुद्ध नहीं। एक माला को कोई क्या गिनेगा। या तो 'माला' का बहुवचन लिखिए, या 'माला' की जगह—माला की मनकायें—लिखिए। 'गावः' बहुवचन है; उसका अर्थ-गायें-होना चाहिए, गाय-नहीं। 'हल' की जगह हल और 'गदहा' की जगह गधा लिखना शुद्ध था। 'गर्दभाः इष्टकां वहन्ति"—में इष्टका को बहुवचन में रखना था। "दासी किं करोति? खट्वायां किम् अस्ति"। यहाँ पहले वाक्य में 'किं' और दूसरे में 'किम्' क्यों? 'किं' ही क्यों नहीं? यह किम्-सम्बन्धी स्वातन्त्र्य इस पुस्तक में सभी कहीं है।

४—**सुमति-विनोद**। पण्डित शिवप्रसाद पाण्डेय काव्यतीर्थ की फुटकर कविताओं का यह संग्रह है। पृष्ठसंख्या ५० है। दाम चार आने। राज-स्कूल, बेतिया, के पते से काव्यतीर्थजी को लिखने से मिल सकता है। शृङ्गार, हास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करुण, वीर, शान्त, वात्सल्य, भक्ति आदि सब रसों की कविता इसमें है। शृङ्गार-रस की अधिक है; और रसों की थोड़ी थोड़ी। इसके कोई कोई पद्य बहुत अच्छे हैं।

❋

५—**कृष्णकथा वा कंस-विध्वंस**। रचयिता—उलाव, ज़िला मुङ्गेर-निवासी, बाबू बनवारीलाल। पृष्ठ-संख्या १४२—मूल्य ९ आने। नाटक है। पाँच अङ्कों में विभक्त है। विषय नाम ही से सूचित है। रचना सुन्दर है। पद्य-भाग भी मनोहर है। अभिनय योग्य है। प्रणेता से प्राप्य।

❋

६—**श्रीसनातन-धर्म्म-भजन-संग्रह**। छोटे आकार के ११५ पृष्ठ। मूल्य साढ़े चार आने। संग्रहकर्त्ता, पण्डित मोहनलाल भारद्वाज मिश्र, कोटला, आगरा। यह—"वेद स्मृति, पुराण, नीति आदि के प्रमाण तथा उनके भावार्थ-सहित उपयोगी भजनों का प्रकरणवार संग्रह" है। भजन सामाजिक भी हैं और धार्म्मिक भी। सब समयानुकूल हैं।

❋

७—**बीकानेर-नरेश का चित्र**। बीकानेर के जनरल मर्चेंट ऐंड कमीशन एजंट, श्रीयुत गोपालजीदास फ़क़ीरचन्द ने बीकानेर-नरेश महाराज गङ्गासिंहजी, जी० सी० आई० ई०, के० सी० एस० आई० के एक रङ्गीन चित्र की तीन कापियाँ और एक फोटो भेजने की कृपा की है। रङ्गीन चित्र "आइल पेंटिंग" है और रविवर्म्मा-प्रेस का छपा हुआ है। चित्र बहुत अच्छा है। दाम एक चित्र का चार आना है। पूर्वोक्त कमीशन एजंट महाशय को लिखने से मिलता है।

❋

८—**अबला-बल-दर्शन**। "एक भारत-पुत्र" द्वारा सम्पादित और लाहोर के रामचन्द्र ब्रदर्स से प्राप्य। पृष्ठ-संख्या १४०। स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धिनी पुस्तक है। पुस्तक के दो भाग हैं। पहले भाग में भारतीय स्त्रियों की प्राचीन और वर्तमान दशा का दिग्दर्शन तथा उन बातों का विचार है जिनके पालन से वे उन्नति कर सकती हैं। दूसरे भाग में पाँच कथात्मक जीवनचरित हैं, जिनमें स्त्री-जाति का महत्त्व दिखाया गया है। पुस्तक का विषय बहुत अच्छा है। पर भाषा संशोधनीय है। मूल्य आठ आना है। असमर्थ स्त्रियाँ केवल डाक-महसूल ही देकर इस पुस्तक को प्राप्त कर सकती हैं।

९—**विचारपरिणाम**। जेम्स ऐलन की एक पुस्तक —"As a man Thinketh" नाम की है। एक महाशय ने उसका अनुवाद उर्दू में किया है। उस उर्दू अनुवाद का यह हिन्दी अनुवाद है। इसके कर्ता मुंशी अमृतलाल, सुपरिंटेंडेंट पुलिस, उदयपुर हैं। विषय और विचार इसके बहुत अच्छे हैं। परन्तु अनुवाद की भाषा अच्छी नहीं। ७० से ऊपर ग़लतियाँ तो सिर्फ़ छापे की हैं जिन्हें अनुवादक को ही शुद्ध करना पड़ा है। पृष्ठ-संख्या ६६ और दाम छः आने हैं।

❋

१०—**वार्षिक वृत्तान्त**। प्रयाग की आर्य्य-कन्या-पाठशाला का यह पञ्चम वार्षिक वृत्तान्त है। यह आर्य्य-समाज के उद्योग का फल है। इसमें इस समय डेढ़ सौ के लगभग लड़कियाँ शिक्षा पाती हैं। अब तक पाँचवीं श्रेणी तक की पढ़ाई इसमें होती थी। परन्तु अब इस साल से छठी श्रेणी भी खोल दी गई है। गवर्नमेंट और म्यूनिसिपैलिटी से सहायता भी मिलती है। चन्दे से भी कुछ रुपया मिल जाता है। मार्च ११ से फ़रवरी १२ तक इसे ३६२०॥) ॥ की आमदनी हुई। ख़र्च २७८३।-) ॥ हुआ। इसमें चार पाँच अध्यापिकायें पढ़ाती हैं। परीक्षा देने और पास होनेवाली लड़कियों की संख्या देखने से मालूम होता है कि यह पाठशाला अच्छा काम कर रही है। लड़कियों को सीना-पिरोना भी सिखलाया जाता है। सर्व-साधारण का काम है कि धन से इसकी सहायता करके स्त्री-शिक्षा के प्रचार का पुण्य प्राप्त करें। सर जे० बम्फील्ड फुलर तक ने इस पाठशाला का निरीक्षण करके प्रसन्नता प्रकट की है। पर शिक्षा-विभाग के अधिकारियों के निरीक्षण का उल्लेख इस रिपोर्ट में नहीं; यह क्यों?

❋

११—**वर्णविचार**। देवनागरी-वर्णमाला में फ़ारसी, अरबी, तुर्की, अँगरेज़ी और तामील, तैलङ्गी आदि विदेशी भाषाओं के कुछ उच्चारणों को व्यक्त करने की शक्ति नहीं। कई विद्वानों ने इस बात को स्वीकार किया है। परलोकवासी कृष्णस्वामी आइयर ने तो इस अभाव की पूर्ति करने वाले को पुरस्कार भी देने की विज्ञापना की थी। प्रस्तुत **वर्ण-विचार** इसी अभाव को दूर करने के इरादे से लिखा गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसका दूसरा नाम है—सार्वभौमिक वर्णमाला की आलोचना पर प्रबन्ध। लीथो में छपी हुई यह ३४ पृष्ठ की पुस्तक है। समालोचकों की सम्मति के लिए ही यह प्रकाशित की गई है। इसके लेखक हैं—श्रीयुत अयोध्याप्रसाद वर्मा, २३। ११ वाराणसी घोष की सेकण्ड लेन, जोड़ासांकू, कलकत्ता। वर्म्मा महाशय ने बड़े परिश्रम, खोज और विचार से यह प्रबन्ध लिखा है। परन्तु आपने जो ऊपर-नीचे रेखाओं, बिन्दुओं तथा अन्य चिह्नों की कल्पना करके देवनागरी वर्णमाला की त्रुटियां दूर करने की चेष्टा की है उससे यह वर्णमाला बहुत जटिल हो जायगी। इससे सरलतर कोई युक्ति निकाली जाती तो अच्छा होता। सुनते हैं, द्राविड देश की भाषाओं के कई वर्णों में विशेषता है। पर एक को छोड़ कर और किसी विशेष-ध्वनि का विचार वर्म्मा महाशय ने इस निबन्ध में नहीं किया। तथापि आपकी अनेक कल्पनाओं में नवीनता है। वर्णमाला-रहस्य के विद्वानों को चाहिए कि आपके निबन्ध को पढ़ कर अपनी सम्मतियां प्रकट करने का कष्ट उठावें।

❋

१२—श्रीरामचरणाङ्क-माला। इसमें लाला भगवान-दीन जी के रचित ५२ पद्य हैं। पद्यों में रामचन्द्रजी के चरण-चिह्नों का वर्णन है। कविता सरल और सरस है। मूल्य डेढ़ आना। मिलने का पताः—मैनेजर, लक्ष्मी-प्रेस, गया।

चित्रपरिचय।

(१)

मन्दोदरी

राम-रावण का युद्ध छिड़ जाने पर रावण की महिषी मन्दोदरी के मन में बड़ी चिन्ता हुई। अपने पक्ष का निरन्तर पराजय होते देख कर मन्दोदरी का हृदय कपने लगा। वह बड़ी बुद्धिमती थी। रामचन्द्रजी के बल को वह अच्छी तरह जानती थी। अतएव उसको पूर्ण विश्वास था कि रामचन्द्रजी के सामने युद्ध में मनुष्य तो क्या देवता तक भी नहीं ठहर सकते। इसी कारण राम के साथ युद्ध करने के लिए जाते हुए अपने स्वामी को उसने अनेक प्रकार से समझा कर लौटाना चाहा और सीताजी को सादर लौटा देने के लिए खूब बल लगाया। पर जब रावण उसकी कुछ न सुन कर युद्ध-क्षेत्र में चला ही गया तब अपने स्वामी की जीत के लिए और अपने सौभाग्य की रक्षा के लिए मन्दोदरी को ईश्वराराधन के अतिरिक्त दूसरा अवलम्ब ही क्या था। देखिए पूजा की विविध सामग्री लिये, पतिदेव की मङ्गलकामना करती हुई, पतिव्रता मन्दोदरी, देव-पूजन के लिए, कैसे भक्तिभाव से जा रही है। इस संख्या के रङ्गीन चित्र में यही भाव दिखाया गया है।

(२)

हीरविजय सूरि।

गत जून की सरस्वती में जैन महात्मा हीरविजय सूरि का जीवन-चरित प्रकाशित हुआ है। इस संख्या में उनका चित्र प्रकाशित किया जाता है। इस चित्र में यह भाव दिखाया गया है कि सूरि महोदय खड़े हुए अकबर को धर्म्मोपदेश कर रहे हैं। बीकानेर में जैनियों का एक पुस्तक-भाण्डार है। वहीं से प्राप्त हुए एक पुराने चित्र से इसका ब्लाक तैयार किया गया है।

(३)

दलाई लामा।

दलाई लामा डारजिलिंग से रवाना होकर तिब्बत लौट रहे हैं। तिब्बत में विद्रोह की आग भभक रही है। उसे दबाने के लिए चीन से सेना आ रही है। इस संख्या के निकलने के पहले ही लामा महोदय तिब्बत पहुँच जायँगे। उनके वहाँ पहुँचने पर विद्रोह कैसा रूप धारण करेगा, यह बात पाठकों को अख़बारों से मालूम ही हो जायगी। हम सिर्फ़ दर्शनीय दलाई लामा का चित्र पाठकों को इस संख्या में दिखाये देते हैं।

(४)

जल-विहार।

इस संख्या का यह चित्र एक विलायती चित्रकार की रचना है। आसमान में घनघटा छाई हुई है। शीतल समीर के झोंके मनोमुकुल को प्रमोदमग्न कर रहे हैं। समय बड़ा ही सुहावना है। यही देख पाश्चात्य देश की दो रमणियाँ नौका-रूढ़ होकर नदी में जलविहार कर रही हैं।

Printed and Published by Apurva Krishna Bose at the Indian Press, Allahabad.
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

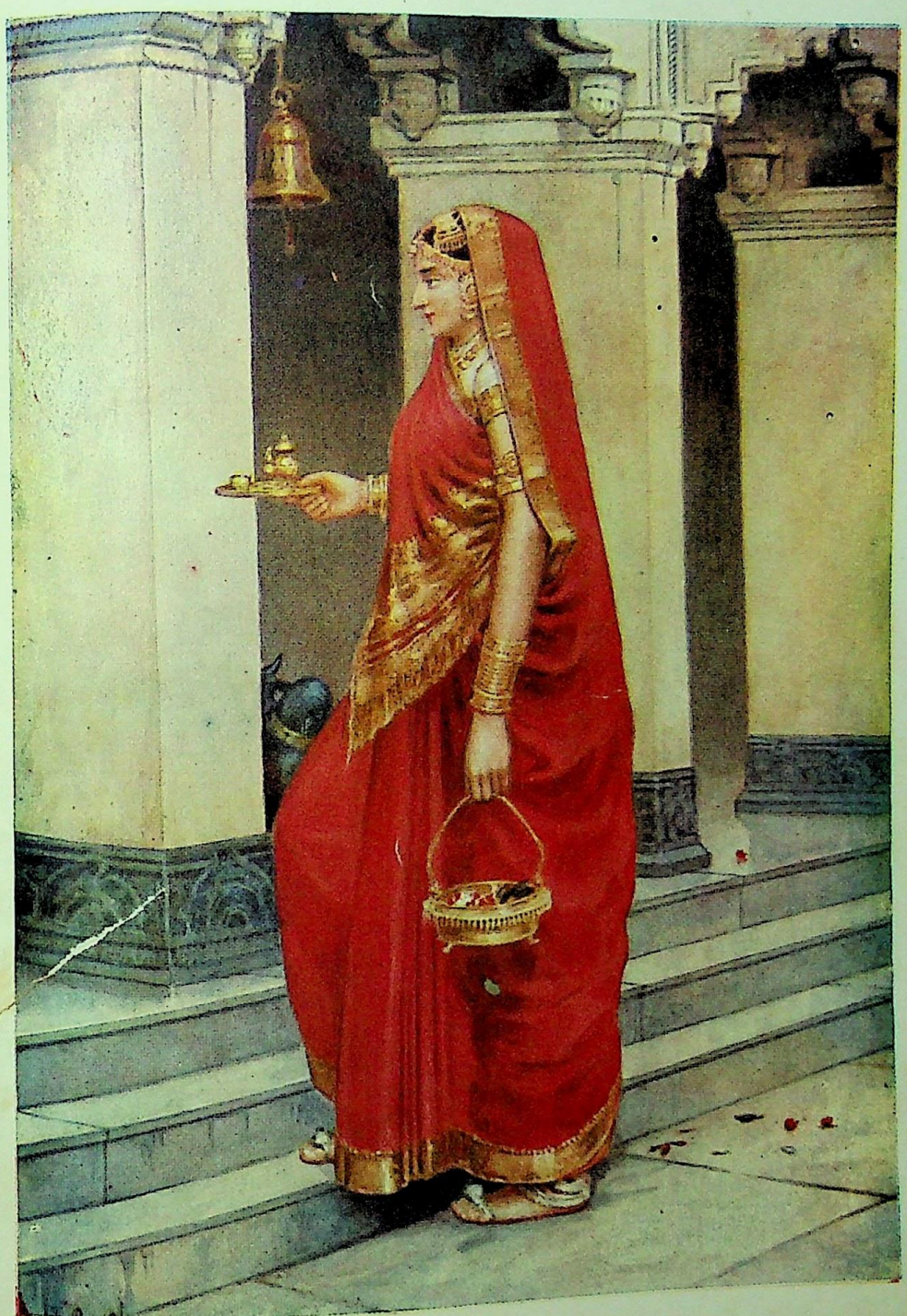

मन्दोदरी ।

Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सरस्वती

हीरविजय सूरि का अकबर को धर्म्मोपदेश ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दलाई लामा। [टाइम्स आव् इंडिया से लिया गया]

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

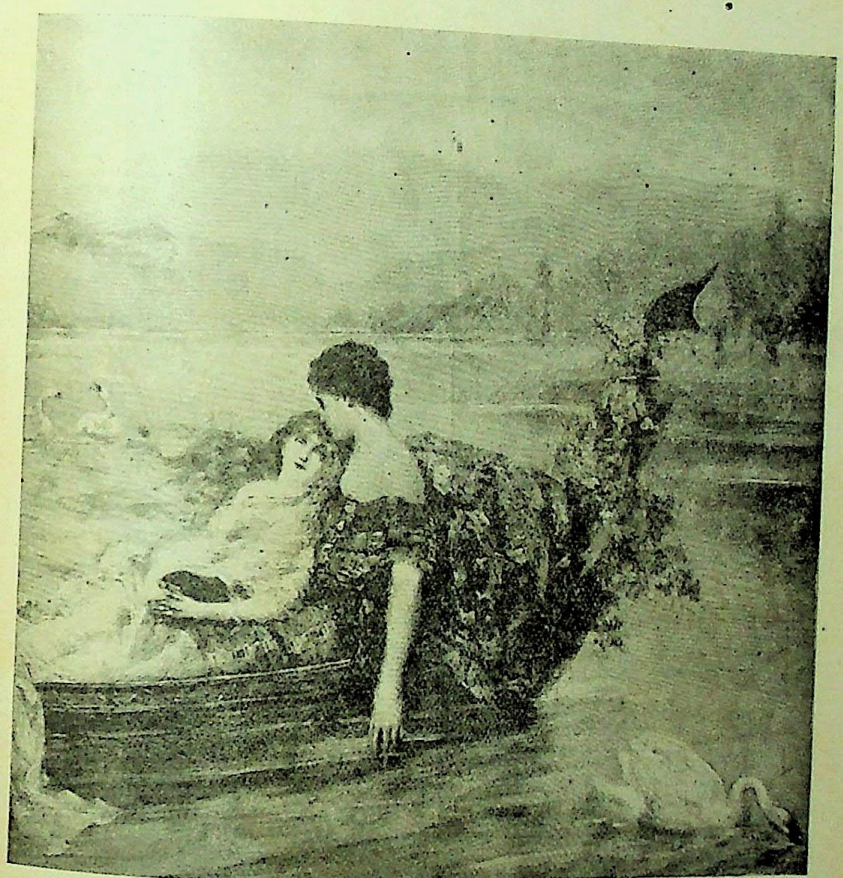

जल-विहार ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अल्मोड़े की एक सुन्दरी मन्दिर में पूजा करने जा रही है।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

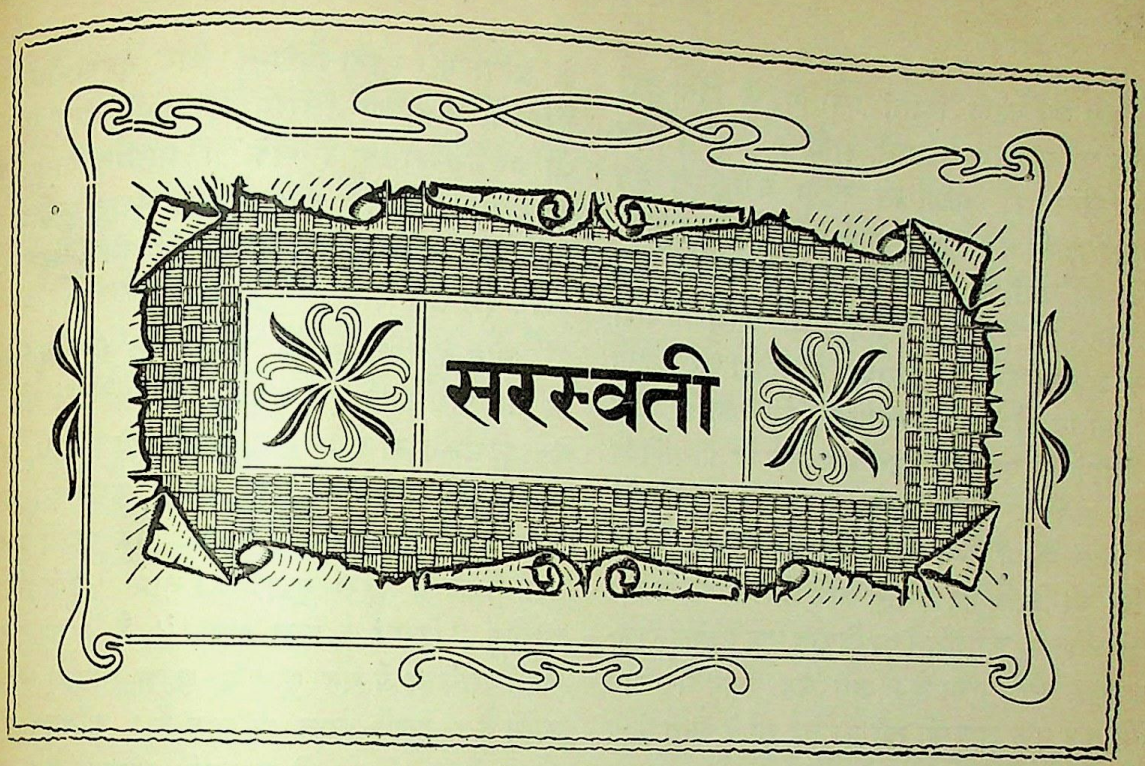

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग १३] १ अक्टूबर, १९१२—आश्विन कृष्ण ५, १९६९। [संख्या १०

चीन में स्त्री-शिक्षा।

(लेखक—श्रीयुत सेन्ट निहालसिंह, लन्दन)

स्त्री शिक्षा में जो उन्नति चीन ने गत दस वर्षों में की है उसका हाल थोड़े ही से भारतवासियों को मालूम होगा। चीन में कन्या-पाठशालाओं की जिस हिसाब से वृद्धि हो रही है और वहाँ की स्त्रियों में जिस तेज़ी से शिक्षा का प्रचार हो रहा है उसे देख आश्चर्य्य से चकित होना पड़ता है। दस वर्ष पहले चीन में सरकारी अथवा ग़ैर सरकारी शायद ही कोई कन्या-पाठशाला रही हो। हाँ, ईसाई पादड़ियों की ओर से कितनी ही कन्या-पाठशालायें अवश्य थीं, परन्तु वे भी चीन की आबादी के लिहाज़ से न होने के बराबर थीं। परन्तु अब प्रत्येक बड़े नगर में एक छोड़ कई कन्या-पाठशालायें स्थापित हो गई हैं और छोटे छोटे क़स्बों तक में कम से कम एक पाठशाला तो अवश्य ही है। प्रारम्भिक पाठशालाओं के अतिरिक्त स्त्रियों को उच्च शिक्षा देने के लिए भी विद्यालय स्थापित हो गये हैं और उन्हें दाई, अध्यापिका और डाकृरी आदि के काम सिखाने का भी प्रबन्ध किया गया है। चीनियों ने परीक्षोत्तीर्ण स्त्री-छात्रों को ज्ञान की वृद्धि के लिए जापान, अमेरिका और योरप भेजना भी आरम्भ कर दिया है।

इस जागृति के कारण चीनी स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार बड़ी ही तेज़ी से हो रहा है। चीन के कितने ही बड़े बड़े नगरों से स्त्रियों के लिए स्त्रियों ही द्वारा सम्पादित पत्र निकलने लगे हैं। कुछ वष पहले एक भी ऐसा पत्र न था। पर अब दिन पर दिन ऐसे पत्रों की उन्नति होती जाती है और इसी प्रकार के और भी नये नये पत्र जन्म लेते जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ वर्ष पहले स्त्रियों का विदुषी होना कोई महत्त्व की बात न समझी जाती थी; परन्तु आज कल स्त्रियों का अशिक्षित रहना कलङ्क की बात समझी जाती है। चीन में कुमारी लड़कियाँ अपने बालों की लटों को गूँध कर पीठ पर लटका लेती हैं। बहुत सी विवाहिता स्त्रियाँ भी बालों को इसी तरह लटका कर पाठशालाओं में प्रवेश करने लगी हैं। शायद ही किसी धनवान् का घर ऐसा हो जिस में स्त्रियों को पढ़ाने के लिए अध्यापक या अध्यापिका नियत न हो।

कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी हैं जिन्होंने अपनी सारी शक्ति स्त्री-शिक्षा का प्रचार करने में लगा रक्खी है। राजकुमार सू की बहिन का विवाह एक मङ्गोल राजकुमार के साथ हुआ है। जब वह अपने घर जाने लगी तब एक जापानी स्त्री को वह अपने साथ लेती गई। वहाँ पहुँच कर उसने एक कन्या-पाठशाला स्थापित की और जापानी स्त्री उसमें अध्यापिका नियत की गई। कुछ काल के उपरान्त वह अपनी ही पाठशाला के सत्तरह स्त्री-छात्रों सहित, पेकिन की कन्या-पाठशालाओं और वहाँ की शिक्षा-पद्धति का ढँग देखने के लिए वहाँ पहुँची। वहाँ से लौटते समय अपनी पाठशाला में चीनी साहित्य पढ़ाने के लिए वह पेकिन से एक उच्च शिक्षा पाई हुई चीनी स्त्री को अपने साथ लेती गई। राजकुमार की एक और बहिन है। उसने स्त्रियों को पाश्चात्य गणित और व्यायाम की शिक्षा देने के लिए पेकिन में एक पाठशाला खोल रक्खी है। उसमें लगभग अस्सी युवतियाँ शिक्षा पा रही हैं। राजकुमार सू की स्त्री ने भी अपने महल में एक पाठशाला स्थापित कर रक्खी है। उच्च कक्षा की कितनी ही और स्त्रियाँ भी, इसी प्रकार, अपने ख़र्च अथवा चन्दे से, कन्या-पाठशालायें चला रही हैं।

प्राचीन काल में, चीन में, स्त्री-शिक्षा।

प्राचीन काल में भी चीन में स्त्रियों की शिक्षा का प्रबन्ध था। उस समय लड़कियों को पढ़ने लिखने के अतिरिक्त सीना-पिरोना और गृहस्थ-धर्म्म भी सिखाया जाता था जिसमें वे अपने भावी पतियों को अच्छी सहायता दे सकें। प्राचीन काल में तो स्त्रीशिक्षा का प्रचार अवश्य था; परन्तु कुछ शताब्दियों से लोग उनकी शिक्षा की ओर बहुत कम ध्यान देने लगे थे।

चीन के इतिहास में कितनी ही विदुषी स्त्रियों के नाम पाये जाते हैं। अठारह सौ वर्ष पूर्व्व चीन में देवी टिसाओ नाम की एक विदुषी थी। लोग, आज कल, उसके नाम का बड़ा आदर करते हैं। कहा जाता है कि चीन में स्त्री-शिक्षा पर पहली पुस्तक उसी ने लिखी। इस पुस्तक का नाम "नू किसाई" अर्थात् "स्त्रियों के लिए नियम" है। आज तक चीनी साहित्य में यह पुस्तक बहुत अच्छी समझी जाती है। इसमें सात अध्याय हैं। पातिव्रत-धर्म्म, आत्म-संयम, चित्त की शुद्धता, व्यवहार-कुशलता, पति-प्रेम, सास और ससुर की आज्ञा का पालन और पति की भाई-बहनों से स्नेह आदि विषयों पर इसमें निबन्ध हैं। देवी टिसाओ का एक भाई था। वह भी बड़ा विद्वान् था। वह चीन के हन-राजवंश का इतिहास लिख रहा था कि उसकी मृत्यु हो गई। देवी टिसाओ ने उस अपूर्ण इतिहास का शेष भाग लिख कर पूर्ण किया। उसके समकालीन लोग भी उसका बहुत आदर करते थे। मरने पर, उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया बड़ी धूम धाम से की गई। उस समय, चीन में, मरणोपरान्त उपाधि मिलने की प्रथा थी। इसीलिए, मरतेही, सम्राट् ने उसे "महा-देवी" की उपाधि दी। इसी नाम से वह आज तक चीन में प्रसिद्ध है।

टिसाओ के बाद भी बहुत सी प्रसिद्ध स्त्रियाँ हुई हैं। सन् ५५६ ईसवी में, टिचांग-टिसी नाम की एक स्त्री थी। वह तत्कालीन सम्राट् की सब से छोटी रानी थी। उसके एक लड़का था। सम्राट् ने चाहा कि वह उस लड़के को अपना उत्तराधिकारी नियत करे; परन्तु टिचांग-टिसी ने उसे ऐसा करने से रोका। उसने उसे समझाया—"आप पुत्र-प्रेम में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न पड़ें। आप राजा हैं। यदि आप ऐसा करेंगे तो मैं अपने पुत्र को इस विशाल देश के राज-सिंहासन पर बैठे हुए देख प्रसन्न अवश्य हूँगी; परन्तु आप का ऐसा करना देश की रीति और नियमों का भङ्ग करना होगा। आप कदापि ऐसा काम न करें जिस से आपके कर्त्तव्य की च्युति हो"। यह स्त्री राज-नीति भी बहुत अच्छी जानती थी। बहुधा वह राज-नैतिक कार्य्यों में पति का साथ भी देती थी।

सम्राट् टाइ टिसोंग ईसा की सातवीं शताब्दी में था। उसकी महारानी टिचेंग सुनची बड़ी धार्मिक थी। उसकी धार्म्मिकता की चर्चा तो आज तक होती है। चीन में मृत पूर्व्वजों की पूजा बड़ी धूम धाम से होती है। उसे पुरुष ही करते हैं। स्त्रियाँ उसमें शामिल न होने पाती थीं। १०३३ में, चीन की एक महारानी ने, जो उस समय सम्राट् के नाबालिग़ होने के कारण साम्राज्य की संरक्षिका थी, स्त्रियों को इस पूजा से दूर रखने की प्रथा का बड़ा विरोध किया। चीन में पुच्छल तारे निकलने पर यही पूजा सम्राट् को करनी पड़ती थी। उसी समय एक पुच्छल तारा भी निकला। इस पर महा-रानी ने सम्राट् की ओर से स्वयं पूजा करने का आग्रह किया और उसका आग्रह सफल भी हुआ।

ये स्त्रियाँ अवश्य विदुषी रही होंगी; नहीं तो ये कदापि ऐसे काम न कर सकतीं। विदुषी रही हों या न रही हों, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उनके समकालीन लोग उनका बहुत आदर करते थे। इसी से आज भी चीन में उनके नाम बड़े भक्तिभाव से लिये जाते हैं। प्राचीन काल में, चीन में, स्त्रियों की प्रतिष्ठा वैसे भी बहुत होती थी। मातृ-पक्षही से वंश चलता था। चीन में, आज भी, बहुत सी देवियों की पूजा होती है। "कुआन ईन" इन सब में मुख्य समझी जाती है। दक्षिणी चीन में उसकी विशेष पूजा होती है। देवियों की पूजा का प्रचार इस बात का सूचक है कि चीन में स्त्रियों का बहुत आदर होता था।

मध्य-काल में, चीन में, एक भी प्रसिद्ध स्त्री नहीं हुई। मालूम पड़ता है कि सत्तरहवीं, अठारहवीं, और उन्नीसवीं शताब्दी में स्त्री-शिक्षा की ओर चीनियों ने बहुत ही कम ध्यान दिया। उच्च श्रेणी की स्त्रियाँ अवश्य कुछ लिखना पढ़ना सीख लेती थीं, परन्तु उनका मानसिक विकास निम्न श्रेणी वाली स्त्रियों से अधिक न होता था। लड़कियों को माता-पिता, सास-ससुर, पति-पुत्र की आज्ञा का पालन करना सिखाया जाता था। पुरुष ही स्त्रियों के धन के मालिक समझे जाते थे। स्त्रियों को अपने उदर-पोषण के लिए पुरुष ही के अधीन रहना पड़ता था। बाल्यकाल में वे पिता के, युवावस्था में पति के और वैधव्यदशा में पुत्र के अधीन रहती थीं। निम्न श्रेणी की स्त्रियाँ अपने परिश्रम द्वारा कुछ कमाती भी थीं। वे अपने घर पर, और बहुधा खेतों में भी, काम करती थीं। उन्हें घर के काम और मज़दूरी करना सिखाया जाता था। मध्यम और उच्च श्रेणियों की स्त्रियों का काम अपने पति और उसके माता-पिता को प्रसन्न रखने के सिवा और कुछ न था। हर एक लड़की का ब्याह होना आवश्यक समझा जाता था। इसी लिए धनवानों की स्त्रियाँ, पुरुषों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए, अपने अङ्गों को सँवारने और उन्हें अधिक सुन्दर बनाने के उपाय सोचा करती थीं। इसी को वे अपने जीवन का मुख्य उद्देश समझती थीं। उन्हें सुन्दरता बढ़ाने और दूसरों के साथ वार्तालाप करने के चित्ताकर्षक ढंग सिखाये जाते थे।

पुरुषों को ख़ुश करने ही के लिए स्त्रियों ने पैर छोटे करने की प्रथा सीखी। बाल्य-काल में हड्डियाँ नरम होती हैं। उसी समय लड़कियों के पैर इस ढंग और इतने ज़ोर से बाँध दिये जाते थे कि अँगूठे को छोड़ कर शेष चारों उँगलियाँ नीचे मुड़ जाती थीं। ऐंड़ी भी पैर के भीतर घुसती जाती थी। अँगूठा केवल नोक की तरह निकला रहता था। इस प्रकार पैर तोड़ने मोड़ने से बालिका को बहुत पीड़ा होती; वह महीनों चीख़ती चिल्लाती; परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सुन्दरता" बढ़ाने के लिए उसे इन सब कष्टों को सहनाही पड़ता। पैर का रूप भी बड़ा बेढँगा हो जाता था। चलना फिरना तो दूर रहा, बड़ी मुश्किल से गिरते पड़ते थोड़ा बहुत इधर उधर वह खिसक सकती। कुछ दिनों तक—कभी कभी महीनों और वर्षों तक—वह दर्द से रोने और चिल्लाने अथवा पैरों पर दवा लगाने और पट्टी बाँधने के सिवा और कुछ न कर सकती थी। अन्त में, अच्छी हो जाने पर, वह हाथों और घुटनों के बल खिसकती या पालकी या किसी और सवारी पर इधर उधर निकलती थी। धनवान् स्त्रियों की यह दुर्गति न होती थी; किन्तु वे स्त्रियाँ भी जिन्हें घर और गृहस्थी का काम करना पड़ता था, इस कुत्सित प्रथा का शिकार होती थीं; इस प्रथा के कारण उन्हें दर्द तो सहना पड़ता ही था, परन्तु इस प्रकार पङ्गुल बना दिये जाने पर वे कोई शारीरिक परिश्रम न कर सकती थीं। इसी लिए उनका स्वास्थ्य शीघ्र ही बिगड़ जाता था। यह प्रथा चीन देश की स्त्रियों की उन्नति की बड़ी बाधक हुई।

ईसाई पादड़ियों की कन्या-पाठशालायें

१८४४ में, कुमारी ऐल्डरसे नाम की एक ईसाई-धर्मप्रचारिका ने निंगपो नगर में चीनी लड़कियों के लिए एक पाठशाला खोली। उस समय लोगों का ख़याल था कि स्त्रियाँ बुद्धि-हीन होती हैं; वे पशुओं से किसी तरह अच्छी नहीं। अतएव उन्हें तो केवल घर के कामों की शिक्षा देनी चाहिए। कुमारी एल्डरसे को लोगों के इस अज्ञान और पक्षपात से घोर संग्राम करना पड़ा। बड़ी मुश्किल से उसने अपनी पाठशाला में चालीस लड़कियाँ बटोर पाईं। इन लड़कियों को किताब, काग़ज़, क़लम आदि के सिवा कुछ छात्र-वृत्ति भी इस लिए देनी पड़ती थी कि वे पाठशाला में आती रहें। उन्हें सीना-पिरोना, हिसाब, लिखना और पढ़ना सिखाया जाता था। कुछ दिनों में पाठशाला चल निकली। तब थोड़ी थोड़ी फीस ली जाने लगी।

स्त्री-शिक्षा के प्रचारकों को, चीन में, पहले कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा, इस बात का पता एक घटना से अच्छी तरह लग सकता है। एक ईसाई-धर्म्म-प्रचारक ने एक चीनी के पास जा कर प्रार्थना की कि अपनी लड़की को पाठशाला में पढ़ने के लिए भेज दिया कीजिए। चीनी ने पास ही बँधे हुए एक घोड़े की ओर सङ्केत करके कहा—"क्या तुम उस पशु को पढ़ा सकते हो?" पादरी ने उत्तर दिया—"पशु को पढ़ाना सम्भव नहीं"। तब चीनी ताना देता हुआ बोला—"यदि तुम समझदार घोड़े को नहीं पढ़ा सकते तो स्त्री को क्या पढ़ा सकोगे"! चीनी माता-पिता लड़की को पढ़ाना व्यर्थ समझते थे। वे उसका कम उम्र में व्याह कर देते थे। व्याह होते ही वह पति की जायदाद हो जाती थी। अपने माता-पिता से उसका इसके सिवा और कोई सम्बन्ध न रह जाता कि वह कभी कभी उनसे भेंट करने आती और फिर शीघ्र ही अपने पति के घर लौट जाती। इसी लिए चीनी माता-पिताओं के हृदयों में यह विचार उत्पन्न हो गया कि लड़की पराये घर की है और उसकी शिक्षा का प्रबन्ध करना धन और समय को नष्ट करना है। एक लेखक ने तो यहाँ तक लिखा है कि चीनी माता-पिताओं का ख़याल है कि "लड़कियों को पढ़ाना किसी अन्य आदमी के कुत्ते के गले में सोने की माला डालना है। जब कुत्ते का मालिक सीटी बजा कर अपने कुत्ते को बुला लेगा तब बहुमूल्य माला से भी हाथ धोना पड़ेगा"!

गत पचास वर्षों में पादड़ियों ने चीन में कई पाठशालायें स्थापित कीं; परन्तु धन और अध्यापकों की कमी के कारण वे लोग इस काम को इतना न बढ़ा सके जितना कि वे चाहते थे। चीनी भाषा बड़ी ही कठिन है। उसकी वर्ण-माला ही बड़ी विकट है। विदेशियों का उसे इतना सीख लेना कि वे लड़कों को पढ़ा सकें, आसान नहीं। पादड़ियों ने चीनी स्त्रियों से इस विषय में सहायता चाही। पहले तो उन्हें पढ़ी लिखी चीनी स्त्रियाँ मिली ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

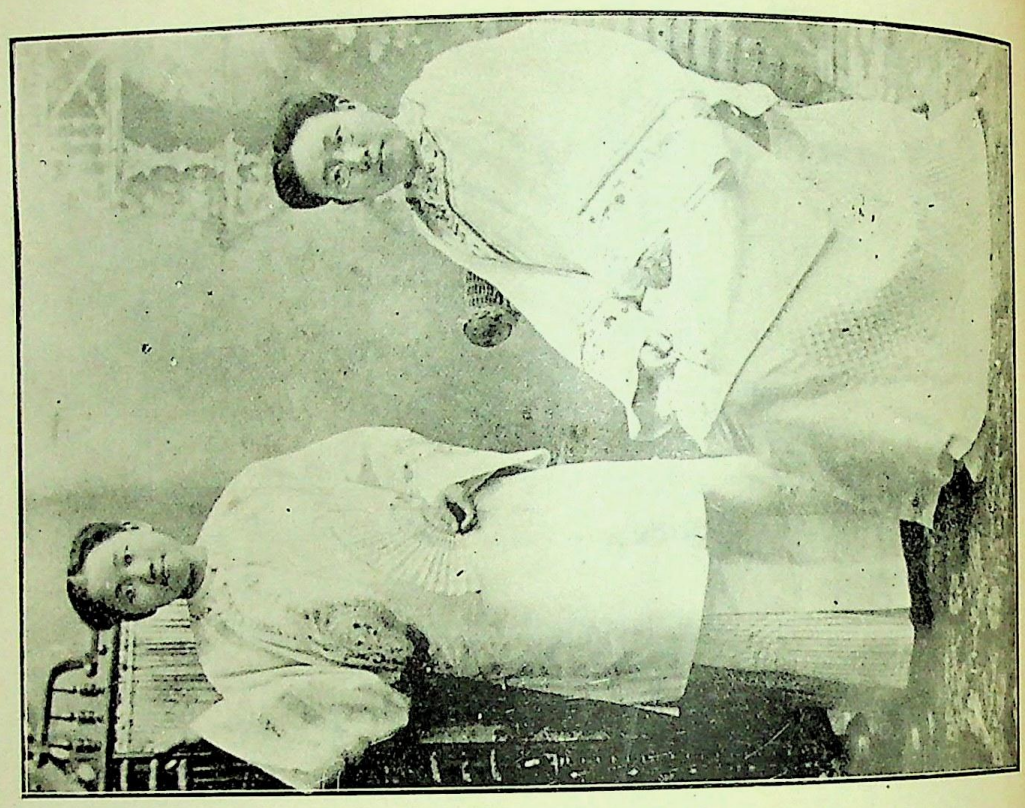

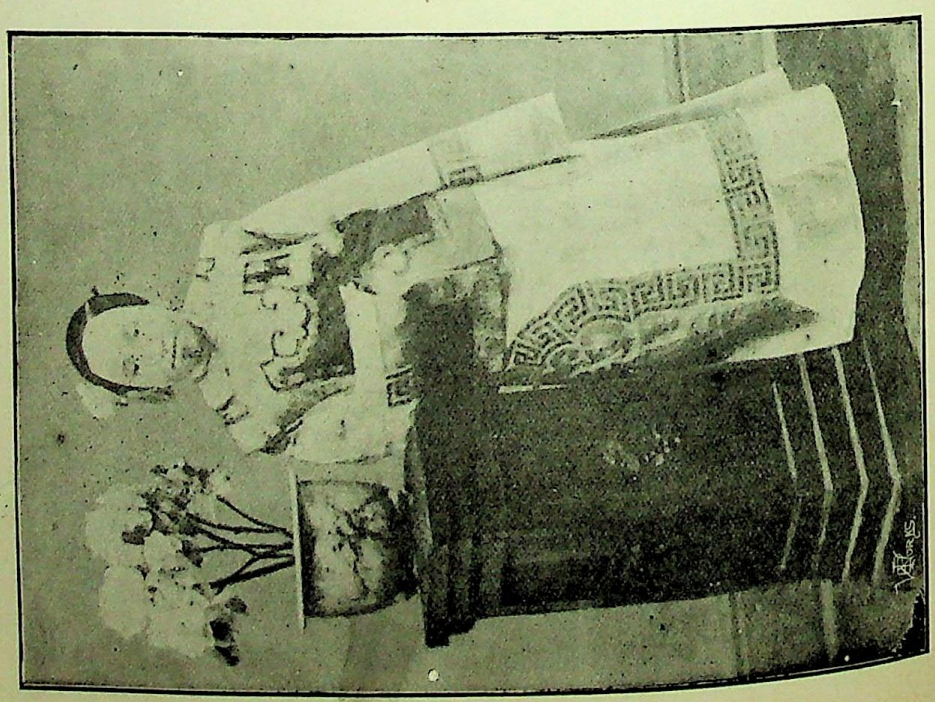

कुमारी कांता बी. ए., चित्रकार और समाचार-पत्र-लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमारी कांता बी. ए.—चित्रकार और समाचार-पत्र-लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

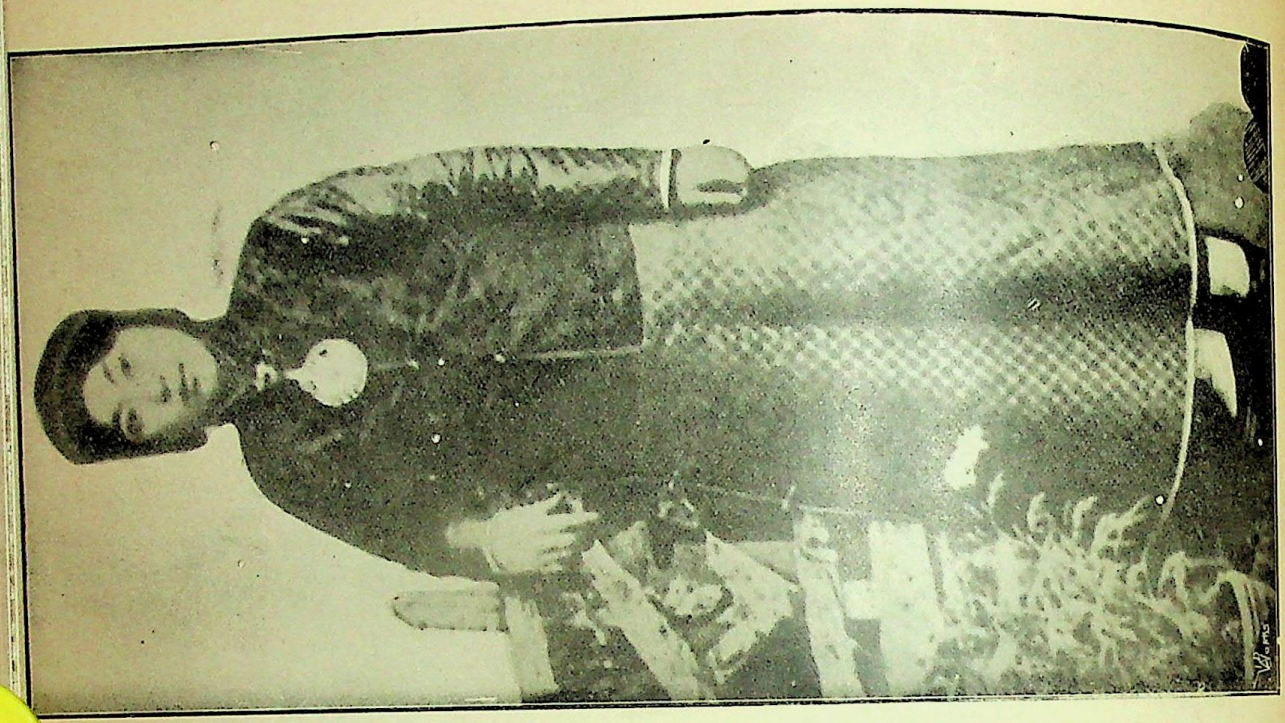

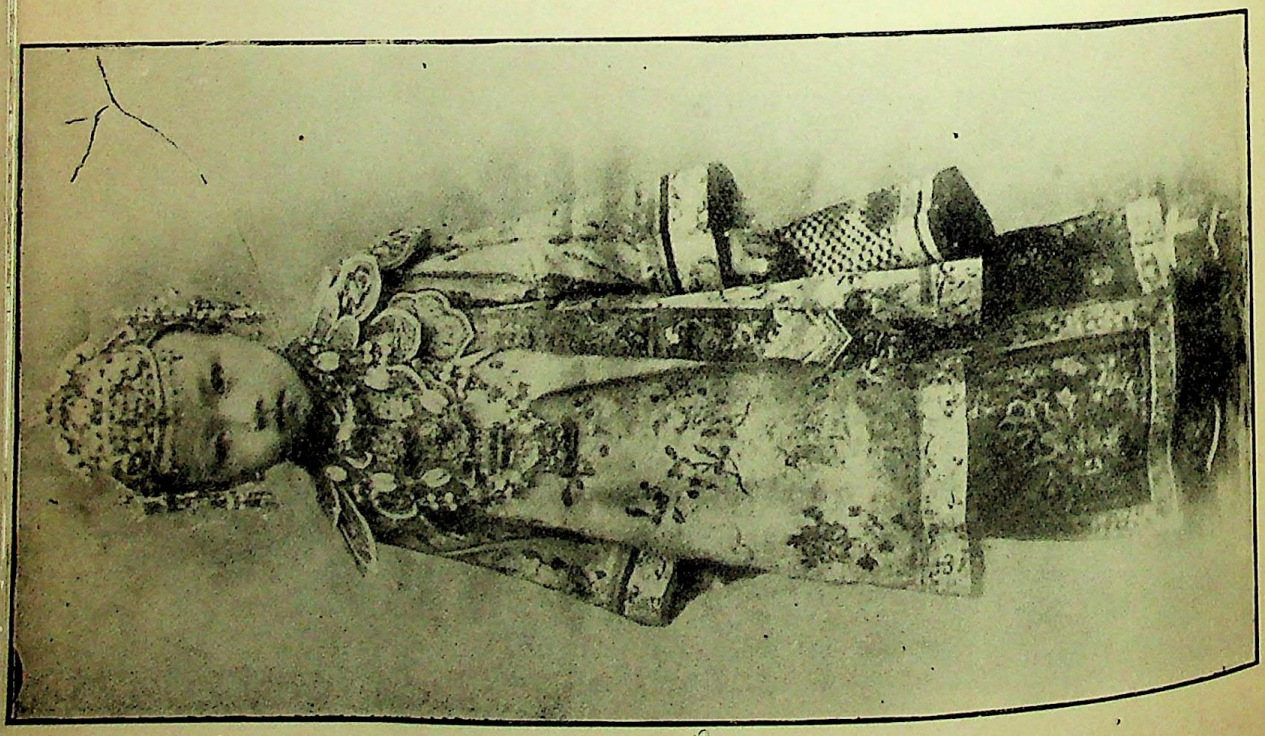

एक जीती जागती लड़की—जन्म-दिन के उत्सव की पोशाक में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मन्दारिन नामक एक चीनी उच्चपद-प्रतिष्ठित अधिकारी की पत्नी-राजसी पोशाक में।

पुराने ढंग से पली हुई एक चीनी स्त्री। पङ्गुता के कारण बिना सवारी के, यह कहीं जा नहीं सकती। चलना-फिरना इसके लिए सम्भव नहीं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्दारिन नामक एक चीनी उच्चपद-प्रतिष्ठित अधिकारी की पत्नी-राजसी पोशाक में ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

पुराने ढंग से पली हुई एक चीनी स्त्री । पङ्गुता के कारण बिना सवारी के, यह कहीं जा नहीं सकती । चलना-फिरना इसके लिए सम्भव नहीं ।

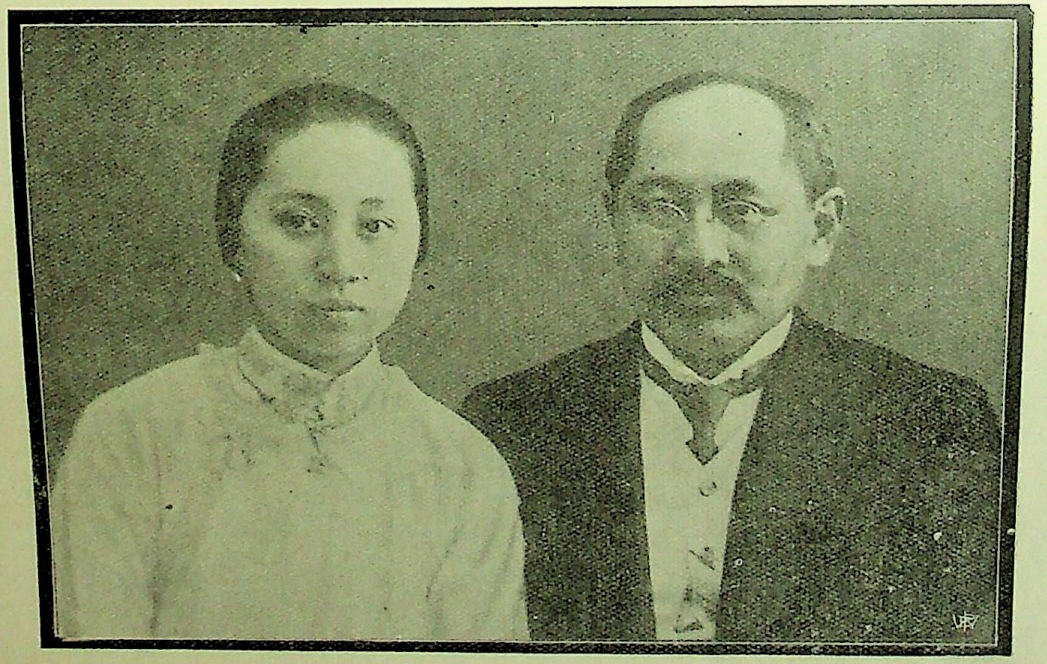

विलायत में शिक्षा पाये हुए डाक्टर लिम बून क्यङ्ग—पेकिन में स्वास्थ्य-विभाग के डाइरेक्टर—और उनकी विदुषी स्त्री ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं, और जो एक दो मिलों भी, वे पुराने ढंग से ही पढ़ाना जानती थीं। वह ढंग आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के बिलकुल विरुद्ध था। लाचार होकर उन्होंने अपनी पाठशालाओं की लड़कियों ही को अध्यापिका का काम सिखाना आरम्भ किया। उन्हें इस काम में पहले बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा; परन्तु अन्त में उन्हें सफलता प्राप्त हुई।

कठिनाइयाँ तो बहुत झेलनी पड़ीं; परन्तु विदेशियों ने बहुत सी चीनी लड़कियों को भी शिक्षा अच्छी दी। उनमें से कितनी ही प्रसिद्ध देश-भक्त, लेखक और डाक्टर हैं। डाक्टर मेरी स्टोन, डाक्टर ईदाखान, (यद्यपि इनके नाम अँगरेज़ी ढंग के हैं, परन्तु ये दोनों चीनी हैं), डाक्टर हीकिंग इंग-डाक्टर ली बी कू और डाक्टर ज़ाह फोह आदि चीन में प्रसिद्ध स्त्री-डाक्टर हैं। इन सबने पादड़ियों की सहायता से अमेरिका में डाक्टरी की शिक्षा पाई है।

क्यूकिंग नगर में डाक्टर मेरी स्टोन का डेनफोर्थ मेमोरियल हासपिटल (Denforth Memorial Hospital) नाम का एक बड़ा भारी औषधालय है। वह शल्य-चिकित्सा में बड़ी दक्ष है। ढाई तीन हज़ार से अधिक रोगी प्रति मास उसकी चिकित्सा में रहते हैं। दाइयों की शिक्षा के लिए उसने एक विद्यालय भी खोल रक्खा है। उसमें वह स्वयं ही शिक्षा देती है। अपने छात्रों को पढ़ाने के लिए उसने कई अँगरेज़ी पुस्तकों का चीनी भाषा में अनुवाद भी किया है। उसकी पढ़ाई हुई दाइयाँ अपने काम में चतुर निकलती हैं। अन्य औषधालयों में उसकी पढ़ाई हुई दाइयों की सदा ज़रूरत रहती है। वह पढ़ती भी बहुत है। उसने चिकित्सा-शास्त्र के कितने ही ग्रन्थ सर्व-साधारण की जानकारी बढ़ाने के लिए बड़ी ही सरल भाषा में लिखे हैं। अध्ययन-शील होते हुए भी वह रोगी नहीं रहती। वह बड़ी हँसमुख है। वह सदा प्रसन्न-चित्त रहती है और बड़ी ही मीठी बात-चीत करती है।

पादड़ियों की खोली हुई पाठशालाओं से एक काम और भी अच्छा हुआ है। पादड़ी पैर बाँधने की प्रथा के घोर विरोधी हैं। जो लड़कियाँ इनकी पाठशालाओं में पढ़ती हैं वे पैर नहीं बाँधने पातीं। इस में सन्देह नहीं कि पाठशाला छोड़ने पर कुछ लड़कियाँ अपने पैर बँधवा लेती हैं, परन्तु अधिकांश लड़कियों ने पाठशाला छोड़ कर अपने पैरों को बाँधना तो दूर रहा, अपनी सखियों और अन्य परिचित स्त्रियों के कान में ऐसा मन्त्र फूँका है कि उन तक के पैरों के बन्धन टूट गये हैं।

स्त्री-शिक्षा के लिए चीनवालों की चेष्टा।

१८९८ में, चीनी व्यापारियों और अधिकारियों ने मिल कर शंघाई में एक कन्या-पाठशाला स्थापित की। यह पहली पाठशाला थी जो चीनियों की ओर से स्थापित हुई। इसका काम चन्दे से चलता था। पुरुषों ने तो केवल उसके लिए धन का प्रबन्ध कर दिया, शेष सब काम स्त्रियों ने किया। शंघाई में रहने वाली चीनी स्त्रियाँ पाश्चात्य महिलाओं से मिलीं; उनसे पाठशाला के विषय में सलाहें लीं; और उन्हीं के परामर्श के अनुसार काम किया। पहले ही दिन उच्च वंश की सोलह लड़कियों ने पाठशाला में प्रवेश किया। दुर्भाग्य से भूत-पूर्व महारानी टिसी हसी के हृदय में यह बात पैठ गई कि यह पाठशाला माञ्चू राजवंश को हानि पहुँचाने के लिए स्थापित की गई है। अतः उनकी आज्ञा से यह पाठशाला, दो वर्ष तक चलने के बाद, बन्द कर दी गई।

परन्तु स्त्री-शिक्षा पर लोगों की श्रद्धा बढ़ती ही गई। चीनियों ने महारानी के क्रोध की कुछ पर्वाह न करके बड़े बड़े नगरों में कन्या-पाठशालायें स्थापित करना आरम्भ कर दिया। १९०२ तक, शंघाई में चीनियों की ओर से फिर दो पाठशालायें स्थापित हो गईं। १९०३ में एक, १९०४ में एक, १९०५ में चार और १९०६ में भी चार पाठशालायें और स्थापित हुईं। इस प्रकार १९०७ के आरम्भ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकेले शंघाई नगर में चीनियों की ओर से बारह कन्या-पाठशालायें हो गईं, जिनमें आठ सौ से अधिक लड़कियाँ पढ़ती थीं। इन पाठशालाओं में पढ़ने, लिखने के अतिरिक्त शिल्प-कला और औषध-शास्त्र की भी कुछ शिक्षा दी जाती थी। इन सब में व्यायाम करना परमावश्यक समझा जाता था। पाँच पाठशालायें ऐसी थीं जिनमें पढ़नेवाली कन्यायें पैर बाँधने की प्रथा त्यागने पर मजबूर की जाती थीं।

सरकारी कन्या-पाठशालायें।

१९०० तक चीन की सरकार ने स्त्री-शिक्षा के लिए कुछ भी न किया। तत्पश्चात् वह इस शिक्षा के पक्षपातियों को कुछ सहायता देने लगी। कुछ प्रान्तों के शिक्षित शासकों ने भी अपने अपने प्रान्तों में कन्या-पाठशालायें स्थापित कीं और स्त्री-शिक्षा का प्रचार करना आरम्भ किया।

बाक्सर-विप्लव के बाद चीन की महारानी पाश्चात्य जातियों का बल अच्छी तरह समझ गई। यह देख कर कि पाश्चात्य रङ्ग में रँगे होने के कारण छोटा सा जापान दीर्घाकार चीन को सहज ही में पछाड़ सकता है, महारानी ने देश में सुधार और शिक्षा-प्रचार करने का निश्चय किया। स्त्री-शिक्षा की ओर भी उसका ध्यान गया। उसने दो लाख रुपये से राजधानी पेकिन में कितनी ही कन्या-पाठशालायें स्थापित कर दीं। वह स्त्री-शिक्षा का इतना पक्ष लेने लगी कि एक बौद्ध लामा के मठ तक में उसने एक पाठशाला खोल दी। १९०५ में, फूचू नगर में स्त्रियों को अध्यापिका का काम सिखाने के लिए एक विद्यालय खोला गया। १९०६ में टेंगचौ और उसके आस पास के नगरों में भी कन्या-पाठशालायें स्थापित हो गईं। उसी वर्ष महारानी ने कुछ विद्वानों को विदेशों की शिक्षा-प्रणाली देखने के लिए भेजा। इन विद्वानों ने लौट कर शिक्षा-विभाग में अन्य बहुत से सुधार किये। १९०७ में चांगशा के सरकारी विद्यालय के अध्यापकी शिक्षा और प्रारम्भिक विभागों में दो सौ स्त्रियाँ अँगरेज़ी, गणित, चीनी भाषा और गृह-प्रबन्ध-शास्त्र पढ़ती थीं। उसी वर्ष चिली प्रान्त में १२१ कन्या-पाठशालायें थीं, जिनमें कोई तीन हज़ार लड़कियाँ थीं। १९०८ में, सज़ी चुआन में, ४९ सरकारी और गैर-सरकारी पाठशालायें थीं, जिनमें १८९७ युवतियाँ पढ़ती थीं। उस वर्ष इसी प्रान्त में २९७ ऐसी प्रारम्भिक पाठशालायें थीं, जिनमें लड़के और लड़कियाँ साथ साथ पढ़ती थीं। अकेले केन्टन में २५ कन्या-पाठशालायें थीं। १९०८ में, शिक्षा-विभाग के मन्त्री ने देश भर में कन्या-पाठशालायें स्थापित करने का प्रस्ताव महारानी के सामने पेश किया। महारानी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और यह भी आज्ञा दे दी कि बड़ी बड़ी पाठशालाओं में विदेशी अध्यापिकायें भी नौकर रक्खी जायँ। लड़कों और लड़कियों के लिए शिक्षा अनिवार्य्य कर दी गई। सरकारी पाठशालाओं में पढ़ाने के लिए पुस्तकें भी निर्धारित कर दी गईं। १९०९ में, सरकार की ओर से नानकिङ्ग नगर में नौ कन्या-पाठशालायें स्थापित हुईं। इन नौ पाठशालाओं में उन लड़कियों के अतिरिक्त जो पादड़ियों और गैर-सरकारी पाठशालाओं में पढ़ती थीं, नगर की ७५० लड़कियाँ शिक्षा पाती थीं। उसी वर्ष नानकिङ्ग नगर में तेरह सरकारी कन्या-पाठशालायें स्थापित की गईं।

चीन में स्त्री-शिक्षा की तीन श्रेणियाँ हैं। सात से लेकर दस वर्ष की आयु तक लड़कियाँ प्रथम श्रेणी में पढ़ती हैं। वे इन चार वर्षों में नैतिक शिक्षा के अतिरिक्त चीनी भाषा, प्रारम्भिक गणित, सीना-पिरोना, सङ्गीत आदि सीखती हैं। दूसरी श्रेणी में भी चार वर्ष तक पढ़ना पड़ता है। उन बातों के अतिरिक्त जो पहले सिखाई जा चुकी हैं इस श्रेणी में चीनी इतिहास और साहित्य, जापानी और अँगरेज़ी भाषा, बीज-गणित, मनो-विज्ञान-शास्त्र और व्यायाम की शिक्षा दी जाती है। तीसरी श्रेणी में अध्यापिका बनने और बच्चों के लालन-पालन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने की शिक्षा दी जाती है। प्रत्येक ज़िले में इस श्रेणी का एक विद्यालय है। इस में भी चार वर्ष की पढ़ाई होती है। इसमें अध्यापिका का काम, विज्ञान-शास्त्र, चित्र बनाना, गृह-प्रबन्ध, सीना-पिरोना, मेहनत के काम और सङ्गीत आदि की शिक्षा होती है। इस प्रकार की सरकारी पाठशालाओं में छात्रों से फ़ीस नहीं ली जाती। सर्व-साधारण भी सरकार से आज्ञा लेकर इस प्रकार की पाठशालायें खोल सकते हैं। इन पाठशालाओं से उत्तीर्ण हो कर निकलने पर प्रत्येक छात्र को तीन वर्ष तक किसी पाठशाला में पढ़ाने का काम करना पड़ता है।

सरकारी पाठशालाओं में पढ़ने वाली लड़कियाँ भड़कीले कपड़े नहीं पहन सकतीं। सादे सूती कपड़े पहन कर उन्हें पाठशाला में जाना पड़ता है।

सरकारी पाठशालाओं की इमारतें नई बनवाई गई हैं। उनमें लकड़ी के सामान और उन चीज़ों की, जिनकी आधुनिक शिक्षा के देने में आवश्यकता पड़ती है, कमी नहीं। इन पाठशालाओं के शिक्षकों और शिक्षिकाओं को पादड़ियों की पाठशालाओं से कहीं अधिक वेतन मिलता है। फ़ूचौ नगर में स्त्रियों का एक नार्मल-स्कूल है। उसके शिक्षकों और शिक्षिकाओं को ३० रुपये से ले कर १२० रुपये मासिक तक वेतन मिलता है। अधिक वेतन, योग्य स्त्री और पुरुषों को सरकारी पाठशालाओं में नौकरी करने के लिए, उत्साहित करता है। यद्यपि सरकारी पाठशालाओं में ये सब सुभीते हैं, तो भी योग्य अध्यापिकाओं की कमी के कारण, स्त्री-शिक्षा में, जैसी चाहिए वैसी, उन्नति नहीं हुई। पहले जापानी स्त्रियाँ पढ़ाने के लिए नौकर रक्खी गई थीं; परन्तु वे चीनी भाषा या तो जानती ही न थीं, या जानती भी थीं तो बहुत थोड़ी। इस लिए वे ठीक ठीक न पढ़ा सकती थीं। तत्पश्चात् पाठशालाओं में पढ़नेवाली लड़कियों को इस बात के लिए उत्साहित किया गया कि वे पढ़ कर, पाठशाला छोड़ने पर, अन्य कोई कथा न करके अध्यापिका ही का काम करें। इसी लिए टींटसिन प्रान्त के सूबेदार ने एक राजाज्ञा प्रकाशित की कि सरकारी पाठशालाओं में अध्यापिका का काम सीखने वाली प्रत्येक लड़की को सरकार की ओर से तीस रुपये मासिक छात्र-वृत्ति मिलेगी और शिक्षा-काल समाप्त होते ही उसे अध्यापिका का पद दिया जायगा। विदेशी स्त्रियाँ तो अध्यापिका का काम करने के लिए बहुत सी मिल जातीं; परन्तु सरकार ने उन्हें इस लिए नौकर न रक्खा कि वे सरकारी नौकर की हैसियत में भी अपने धार्म्मिक विचारों के प्रचार को रोकने के लिए तैयार न थीं। जो विदेशी स्त्री या पुरुष सरकारी पाठशाला में काम करता है उसे अपनी पाठशाला के नियमों से बद्ध होना पड़ता है। उसें मुक़द्दमेबाज़ी और विदेशी राजनैतिक आन्दोलनों से दूर रहना पड़ता है। साथ ही पाठशाला के अध्यक्ष की आज्ञा का पालन भी उसे करना पड़ता है।

इतना होने पर भी, चीन में, अभी हज़ार में केवल एक ही स्त्री शिक्षित है। परन्तु जिस गति से स्त्री-शिक्षा में उन्नति हो रही है उसे देख कर कहना पड़ता है कि, जापान की तरह, कुछ ही वर्षों में, चीन की स्त्रियों में भी अविद्या का नाश हो जायगा।

याच्ञा।

दया भी करोगे ? दया-धाम हो,
रमो चित्त में आप तो राम हो।
हमें शक्ति दो, भुक्ति दो या न दो,
विभो ! भक्ति दो, मुक्ति दो या न दो ॥१॥

गुणातीत हो, या निराकार हो
हमारे लिए तो तुम्हीं सार हो।
सभी ठौर हो सृष्टि में जो हरे !
पुनः दृष्टि से हो कहो, क्यों परे ? ॥२॥

तजो शून्यता और साकार हो,
पुनः रूप में भाव-विस्तार हो।
बनें चर्म के चक्षु भी धन्य ये,
तुम्हें छोड़ देखें किसे अन्य ये ॥३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई जन्म का हाय ! विश्लेष है,
कहो, क्या अभी और भी शेष है ?
नहीं किन्तु चिन्ता कि न्यारे रहें ;
तुम्हारा सदा ध्यान धारे रहें ॥४॥
व्यथा हो न जो भूमि को भार की
नहीं है हमें भीति संसार की।
तुम्हारे जगद्राज्य में भीति क्या ?
हमारे लिए है नई नीति क्या ? ॥५॥
तुम्हारा जगद्राज्य जीता रहे,
सदा प्रेम-पीयूष पीता रहे।
बढ़े शान्ति ज्यों चन्द्रमा की कला,
सभी के भले में हमारा भला ॥६॥
हमें ध्यान दो, ज्ञान दो या न दो,
गिरा-गान दो, मान दो या न दो।
तुम्हारे गुण-ग्राम गाया करें ;
इसी भाँति विश्राम पाया करें ॥७॥
नहीं लालसा है विभो ! वित्त की,
हमें चेतना चाहिए चित्त की।
भले ही न दो एक भी सम्पदा,
रहे आत्म-विश्वास पूरा सदा ॥८॥
नहीं मांगते हीर या हेम दो,
दिया विश्व तो विश्व का प्रेम दो।
सहें दुःख आपत्तियों से घिरे,
रहें किन्तु दुर्वृत्तियों से फिरे ॥९॥
न छूटें भले ही कभी बन्ध से,
फिरें मोह के मार्ग में अन्ध से।
न भूलें तुम्हारी निराली छटा,
घिरी ही रहे नित्य काली घटा ॥१०॥
रहें सर्वदा दुःख में, सोच क्या ?
तुम्हारा दिया दुःख, सङ्कोच क्या ?
नहीं मृत्यु से किन्तु जी में डरें ;
तुम्हें देखते देखते ही मरें ॥११॥
भिखारी खड़े हैं, ज़रा ध्यान दो,
न दो और तो दृष्टि का दान दो।
मरें या जियें भाग्य को लेख लें,
तुम्हारी अपाङ्ग-प्रभा देख लें ॥१२॥

मैथिलीशरण गुप्त।

भाषा-शिक्षा।

भाषा की प्रकृति।

भाव की उत्पत्ति और चित्त के ऊपर विश्व का कार्य।

गत् में जितने पदार्थ हैं वे सब मनुष्य के चित्त के ऊपर कार्य करके एक प्रकार के भाव और चिन्ता को उत्पन्न करते हैं। ये पदार्थसमूह ही मनुष्य की चिन्ता के विषय हैं। जब मनुष्य को प्राकृतिक जगत् की नानाविध श्राव्य और दृश्य वस्तुओं का संस्पर्श होता है, उनके साथ संयोग होता है, तब वह जलसम्बन्धी, स्थलसम्बन्धी और आकाशसम्बन्धी विभिन्न प्रकार के पदार्थों के विषय में चिन्ता करता है। इसी प्रकार समस्त स्थूल विश्व मनुष्य के भावराज्य के अधीन हो जाता है। इसी प्रकार मनुष्यसमाज, राष्ट्र, वैषयिक प्रतिष्ठान आदि मनुष्यविषयक जितने पदार्थ हैं, वे सब एक प्रकार की चिन्ता को उत्पन्न करते हैं। इनके साथ संयोग होते ही मन में एक प्रकार का भाव उदय हो जाता है। मानवीय और प्राकृतिक दोनों प्रकार के जगत् में जितने प्रकार की बातें या घटनायें हैं उन सब को छोड़ कर मनुष्य और कुछ चिन्ता कर ही नहीं सकता। मनुष्य का चित्त इन्हीं बातों या घटनाओं के द्वारा आन्दोलित हो कर इन्हीं के द्वारा पूर्ण हो जाता है। यही बातें भाव और धारणा के कारण हैं और यही भाव और धारणा के विषय हैं।

भाव की प्रकृति और पदार्थ में गुण का आरोप।

यह तो सिद्ध हो चुका कि विश्व के विविध पदार्थ ही भाव और धारणा के विषय हैं। जिस समय ये पदार्थ चित्त पर आघात करते हैं उस समय मनुष्य के सामने इनकी प्रकृति और स्वरूप प्रतीयमान होने लगता है। तात्पर्य यह है कि विश्व के विविध पदार्थों के द्वारा चित्त पर आघात पहुँचते ही मनुष्य उन पदार्थों की प्रकृति और स्वरूप के विषय में ज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त करने लगता है; वह उनसे परिचित हो जाता है। जब किसी विषय की चिन्ता की जाती है, या पृथ्वी का कोई पदार्थ जब मनोराज्य के अन्तर्गत हो जाता है, तब उन पदार्थों के गुण और धर्म मालूम हो जाते हैं। तभी ये लक्षणविशिष्ट हो कर सीमाबद्ध और निर्दिष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार गुण और धर्म का परिचय पाकर पदार्थों में विशेषता उत्पन्न करना भाव और चिन्ता का काम है। परिचय प्राप्त करना, स्वरूप का ज्ञान होना, धर्म का प्रकाश और गुण का आरोप—ये सब काम भाव और चिन्ता के प्राण हैं। जब मनुष्य वृक्ष, पर्वत आदि जड़ पदार्थों के विषय में चिन्ता करता है तब उसको इनकी स्थिति, परिमाण, प्रयोजनीयता आदि बातों का ज्ञान हो जाता है। अन्यान्य वृक्षादि के साथ तुलना करके, या अपने ही साथ सम्बन्ध स्थापन करके, या संसार के अन्यान्य पदार्थों के साथ संयोग-विधान करके मनुष्य इन पदार्थों को विशिष्टलक्षणाक्रान्त कर डालता है। इसी प्रकार चिन्ता के द्वारा समाज के नाना प्रकार के कार्यकलाप के सम्बन्ध में इनकी परस्पर तुलना हो जाती है और सम्बन्ध स्थिर हो जाता है। इसका फल यह होता है कि समाज के नाना प्रकार के पदार्थों का परिचय स्थिर और निर्दिष्ट हो जाता है। मनुष्य की कोई भावना या चिन्ता ऐसी नहीं है जिसके द्वारा किसी न किसी विषय के गुण और धर्म प्रकाशित न हों। तुलना न करके, सम्बन्ध स्थापन न करके, लक्षण का निर्णय न करके, और धर्मविशिष्ट न करके कोई धारणाकार्य सिद्ध नहीं हो सकता। भाव और चिन्ता की प्रकृति ही ऐसी होती है कि इनका विषयीभूत मानवीय और प्राकृतिक विश्वसंयोग, तुलना आदि के द्वारा विभिन्न लक्षणाक्रान्त और गुणविशिष्ट हो जाता है।

भाव का क्रमिक विकाश।

भिन्न भिन्न मनुष्यों की चिन्ताप्रणाली और ज्ञानवृद्धि की परम्परा आदि की आलोचना करके देखा जाय तो मालूम होगा कि मनुष्य की चिन्तापद्धति के कुछ साधारण नियम हो हैं।

१—एक बार एक से अधिक विषय में भाव की उत्पत्ति असम्भव है।

एक समय में दो वस्तुयें चित्त के ऊपर काम नहीं कर सकतीं। इस लिए, मनुष्य एकही बार में संसार के समस्त पदार्थों को चिन्ता के अधीन नहीं कर सकता। कोई मनुष्य संसार के सारे पदार्थों को एक ही बार नहीं सोच सकता; एक साथ, एक ही प्रयत्न से, सब पदार्थों के परिचय की प्राप्ति और गुणों का निर्णय नहीं कर सकता। उसको विषयों के विभाग करके एक एक का लक्षण निर्देश करना पड़ता है। इसी लिए चिन्तापद्धति में क्रम और पूर्वापरता रहती है।

२—अवस्था के अनुसार भाव-वैचित्र्य पैदा होता है।

चिन्ता के विषयीभूत पदार्थों में कुछ ऐसी विशेषता और पार्थक्य है कि मनुष्य की भिन्न भिन्न अवस्थाओं में ही उनका कार्य होसकता है। मनुष्य भिन्न भिन्न अवस्थाओं में भिन्न भिन्न जाति के पदार्थों की चिन्ता कर सकता है। सभी अवस्थाओं में किसी पदार्थ की सब प्रकार की धारणा होना असम्भव है। इस लिए भाव का क्रमिक विकाश वयोवृद्धि और धारणा-शक्ति के विकाश के ऊपर अवलम्बित है।

३—परिचित भाव के सहारे पर ही नवीन भाव की स्थिति होती है।

पुराने भावों और धारणाओं की नींव का सहारा विना लिए, प्रतिष्ठित-सुपरिचित-चिन्ता की सहायता विना लिए, मनुष्य नई धारणा या नया भाव ग्रहण नहीं कर सकता। परिचित पदार्थों के द्वारा चित्त के ऊपर जो जो कार्य होते हैं और उनके परिणाम से पृथ्वी के स्वरूपसम्बन्ध में, पदार्थों के गुण और धर्म के सम्बन्ध में जो ज्ञान पैदा होता है, वही चिन्ता कार्यसमूह और ज्ञान के साथ तुलना करके, उनका व्यवहार करके और उनके साथ संयोग पैदा करके, अपरिचित नवीन पदार्थों का ज्ञान पैदा होता है। इसी नवीन पदार्थ के द्वारा चित्त के ऊपर जो कार्य होता है उसकी प्रकृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्दिष्ट हो जाती है, और नवीन लक्षणों तथा गुणों का परिचय प्राप्त हो जाता है। इसी कारण मनुष्य पहलेही अपरिचित पदार्थों एवं दूर भविष्यत् तथा दूर भूत काल के विषय में चिन्ता नहीं कर सकता। अपरिचित को स्वाधीन करने की पद्धति में क्रम और पूर्वापरता का होना आवश्यक है।

४—किसी पदार्थ के सम्बन्ध में एक ही बार एक से अधिक भाव की उत्पत्ति असम्भव है।

मनुष्य, पहलेही, चिन्ता के विषयीभूत पदार्थों के सब प्रकार के गुण और धर्म नहीं जान सकता। एक साथ, या एक ही अवस्था में, वह, पदार्थों के साथ पदार्थों की तुलना करके, या संयोग पैदा करके, पदार्थों के साथ अपना सम्बन्ध पैदा करके, उनके सब प्रकार के धर्मों और लक्षणों का निर्देश नहीं कर सकता। इस गुणारोप में और धर्मप्रकाश में क्रम और पौर्वापर्य है। पदार्थों के गुणों और धर्मों का ज्ञान एक बार में ही नहीं होता, क्रम क्रम से होता है। जिस प्रकार मनुष्य एक समय में एक से अधिक पदार्थ की चिन्ता नहीं कर सकता, उसी प्रकार वह किसी एक ही अवस्था में सब प्रकार के विषयों का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। दूर, भूत, और भविष्यत् काल आदि के अपरिचित पदार्थ पहले ही पहल मनुष्य के चित्त के ऊपर कार्य करके परिचित, लक्षणाक्रान्त, धर्मसंयुक्त और विशेश रूप से निर्दिष्ट नहीं हो सकते। इसी प्रकार मनुष्य किसी पदार्थ के एक से अधिक गुण एक ही बार में, एक ही साथ, नहीं जान सकता। सब प्रकार के गुणों को कोई एक ही अवस्था में हृदयङ्गम नहीं कर सकता। किसी मनुष्य को पहले ही स्थूल, सूक्ष्म, जटिल आदि विचित्र लक्षणों की धारणा नहीं हो सकती। वयोवृद्धि और चिन्ताशक्ति के विकाश के साथ साथ भाव और चिन्ता की संख्या बढ़ा करती है। इनमें क्रमशः जटिलता और सूक्ष्मता आकर वैचित्र्य उत्पन्न हो जाता है।

५—भाव क्रमशः प्रणालीबद्ध और शृङ्खलीकृत होता है।

पहले धारणासमूह में शृङ्खला या सामञ्जस्य नहीं होता। आरम्भ में धारणाओं का रूप अधिक स्पष्ट नहीं होता। पहली अवस्था में पदार्थ के भिन्न भिन्न गुण अलग अलग प्रतीत होते हैं। तुलना के द्वारा इनमें योग और सम्बन्ध धीरे धीरे पैदा होते हैं। इस उपाय से गुण की विचित्रता और जटिलता में प्रणाली और नियम का आविष्कार होता है और लक्षण और धर्म शृङ्खला में होकर भावों को बाँध लेते हैं।

भाव और भाषा।

साधारणता से ग्रहण किये गये भाव के प्रकाशित करने के इशारों का नाम भाषा है।

जब मनुष्य अपने मन के भाव को समाज में किसी व्यक्ति पर प्रकट करना चाहता है तब उसको कुछ इङ्गितों—इशारों—का सहारा लेना पड़ता है। जो इङ्गित, जो चेष्टायें, जो इशारे व्यवहार में लाये जाकर समाज में मनुष्य के भावों को प्रकट करते हैं और आपस में सबके चिन्ताकार्यों में सहायता देते हैं उन्हीं इङ्गितों—इशारों—के द्वारा भाषा का संगठन होता है। यदि पृथ्वी पर एक मनुष्य के सिवा और कोई मनुष्य न होता, यदि समाज या समुदाय का नाम भी न होता, तो फिर पृथ्वी की जितनी चीजें हैं वे उसके चित्त के ऊपर कार्य करके, विश्व के सम्बन्ध में जैसा चिन्तन कराती उनके प्रकाशित होने का कोई कारण न रहता। ऐसा होने पर भाषा-सृष्टि का कुछ प्रयोजन ही न रहता; फिर भाषा की सृष्टि होती ही नहीं। किन्तु मनुष्य का संगठन ही ऐसा है कि उसको समाज की आवश्यकता है। संसार में जितने प्रकार के मानवीय और प्राकृतिक पदार्थ हैं उनकी प्रकृति और धर्म के सम्बन्ध में एक मनुष्य जो कुछ ज्ञान प्राप्त करता है उसको दूसरे मनुष्य पर प्रकट करके उस विषय में वह उसके मन के भाव को जानना चाहता है। इस लिए भाव और धारणा के आदान-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदान के साधन की आवश्यकता है। इसी कारण, इसी सुभीते के लिए, तदुपयोगी इङ्गितसमूहों और भाषा की सृष्टि हुई है। इन्हीं इङ्गितों में, इन्हीं इशारों में, मनुष्य ने ध्वनि और वचनों के विषय में बहुत कुछ उन्नति करली है। वाचनिक इङ्गितों (ज़बानी इशारों) और बातचीत को ही प्रधानतया भाषा कहते हैं।

भाषा उपाय मात्र है। उसका लक्ष्य भाव का प्रकट करना है।

यद्यपि भाषा या इङ्गितों—इशारों—के बिना आपस में मनोभावों का प्रकट करना असम्भव है तथापि भाषा उपाय मात्र है, साधन मात्र है। उनका कुछ अर्थ है इसी लिए वाक्यों का प्रयोजन है। वृक्ष, पर्वत, समाज, राष्ट्र आदि जितने पदार्थ हैं उनके द्वारा चित्त पर आन्दोलन होने से, उनके गुणनिर्णय, लक्षणनिर्देश, प्रकृति-परिचय और स्वरूपज्ञान होते ही इङ्गितों—इशारों—का सहारा लेकर, वाक्यों की सहायता ग्रहण करके, भाषा के व्यवहार से उनको प्रकट करना पड़ता है। अतएव भाव ही भाषा का प्राण है। इस कारण भाषा की प्रकृति, उत्पत्ति, और क्रमिक विकाश भाव की प्रकृति, उत्पत्ति, क्रमिक विकाश के ही अनुरूप होती है। भाषा सब विषयों में, सब तरह से, भाव का ही अनुसरण है। भाषा बिलकुल भावानुगामिनी ही होती है।

भाषा का इतिहास भाव के इतिहास के अनुरूप होता है।

यही कारण है कि भाव और धारणा के कारण और विषयसमूह, भाषा में, बात चीत के द्वारा या इशारों से ध्वनि की सहायता से प्रकाशित होते हैं।

मानवीय और प्राकृतिक जगत् की विभिन्न घटनायें ही भाषा के विषय हैं।

प्राकृतिक ज़गत् और मानवीय जगत् की सभी बातें, सभी घटनायें ही मनुष्य की भाषा के विषय हैं। जिस समय मनुष्य कोई इशारा करता है या कोई बात कहता है उस समय इस जगत् के विविध पदार्थ उसके कथन या इशारों के विषयीभूत हो जाते हैं। इनको छोड़ देने से मनुष्य की भाषा या वाचनिक कार्य सिद्ध नहीं हो सकते। विश्व के द्वारा मनुष्य के चित्त के ऊपर जो कार्य होता है वही भाषा का विषय और कारण है। मनुष्य की बातचीत और इङ्गितसमूह इसी विश्व की विविध घटनाओं से पूर्ण रहते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि जिस प्रकार भाव मानव और प्रकृति-विषयक है उसी प्रकार भाषा भी मानव और प्रकृति-विषयक है।

किसी पदार्थ के सम्बन्ध में वक्तव्य प्रकट करने के लिए भाषा की प्रकृति और लक्षण।

जिस प्रकार भाव की प्रकृति पदार्थ के गुण का आरोप करती है उसी प्रकार भाषा की प्रकृति भी समाज के पदार्थों के गुणों को प्रकट करती है। मनुष्य बात चीत करके, इङ्गित करके, मनुष्यों के सामने पदार्थों की तुलना करता है, उनका संयोग सिद्ध करता है और नाना प्रकार के उपायों से उनका धर्म प्रकट करता है। पदार्थों की प्रकृति और परिचय मनुष्यों की भाषा के ही द्वारा समाज में प्रकाशित होते हैं। मनुष्य जब कोई बात कहता है तभी वह किसी पदार्थ के एक धर्म को प्रकाशित करता है। मनुष्य की ऐसी कोई बात चीत नहीं हो सकती जिसके द्वारा वह किसी वस्तु या व्यक्ति के सम्बन्ध में विशेषण व्यवहार करके उसको विशिष्ट, वर्णित या निर्दिष्ट न करे।

शब्दयोजना के द्वारा वाक्यरचना।

मनुष्य किसी एक ही ध्वनि की सहायता से, एक ही पद या शब्द का व्यवहार करके अपने चित्त के ऊपर किसी पदार्थ का कार्य, अथवा किसी वस्तु या व्यक्ति के गुण का निर्णय या परिचय का प्रकाश नहीं कर सकता। किसी वस्तु का अच्छी तरह से परिचय प्रदान करने या स्वरूप के वर्णन करने और यथार्थ भाव से गुणों या लक्षणों को प्रकट करने के लिए एक पूरे वाक्य का प्रयोग करना पड़ता है। इस वाक्य के दो अङ्ग हैं। १—विश्व के जिस पदार्थ के द्वारा भाव का उद्रेक हो। २—जिस पदार्थ के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्ध में गुणारोप आवश्यक हो। विषय के सम्बन्ध में जो कुछ कहना पड़ता है वह विषयवाचक ध्वनि या शब्द कहाता है। यही वाक्य का पहला अङ्ग है और उसी पदार्थ के आघात के द्वारा मनुष्य का चित्त जिस प्रकार आन्दोलित होता है और उस आन्दोलित के फल से उसके सम्बन्ध में जो गुण का आरोप किया जाता है तथा उसके परिचय में जो कुछ कहा जाता है वही वक्तव्यवाचक ध्वनि या शब्द कहाता है। यह वाक्य का दूसरा अङ्ग है। केवल एक ही ध्वनि के प्रयोग से न तो किसी पदार्थ के साथ गुण का संयोग किया जा सकता है, न किसी पदार्थ के साथ तुलनासाधन या संयोगविधान किया जा सकता है, और न अपने साथ सम्बन्ध स्थिर किया जा जा सकता है। इसलिए तुलनासाधन और गुणारोप तथा भाव की प्रकृति के अनुरूप शब्दयोजना, पद-संयोग और वाक्य-रचना ही भाषा का लक्षण और प्रकृति है। जिस प्रकार किसी विषय के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त किये विना, पदार्थ के साथ उसके धर्म का संयोग किये विना चिन्ता का कार्य नहीं होता, उसी प्रकार शब्दयोजना के द्वारा वाक्यरचना विना किये कोई भाषा सिद्ध नहीं होती। पदविशिष्ट वाक्य ही भाषा का मुख्य उपादान है। केवल शब्द के व्यवहार करने से ही भाषा नहीं बन सकती, कारण यह कि भाषा केवल कुछ शब्दों की ही समष्टि नहीं है। जहाँ वाक्यों की अधिकता अथवा एक भी वाक्य का प्रयोग नहीं वहाँ भाषा का अस्तित्व ही नहीं।

भाषा का क्रमिक विकाश।

भाव भाषा के ही भीतर होकर प्रकट होता है, इसलिए भाव के क्रमविकाश के अनुसार ही भाषा का क्रमविकाश होता है। अलग अलग मनुष्यों की भावप्रकाश की प्रणाली और अलग अलग मनुष्य-समुदाय की भाषा की परिपुष्टि के पारम्पर्य और समालोचना करने से भाषा के विकाश-सम्बन्ध में कुछ साधारण नियम बनाने पड़ते हैं। देखा जाता है कि चिन्तापद्धति में जैसा क्रम और जैसा पारम्पर्य है वैसा ही क्रम और पारम्पर्य भाषा के इतिहास का भी है।

१—एक बार में एक से अधिक विषयों में वाक्यरचना असम्भव है।

मनुष्य एक ही समय में दो वस्तुओं या व्यक्तियों के सम्बन्ध में वाक्यरचना करके उनके विषय में अपना मनोभाव प्रकाशित नहीं कर सकता। वह एक बार में एक से अधिक वाक्यों की रचना करने में असमर्थ है। इसलिए उसको पूर्वापर विचार कर या किसी पर्याय या क्रम का सहारा लेकर पदार्थों के गुण प्रकाशित करने पड़ते हैं।

२—अवस्था के अनुसार वाक्यों में विचित्रता उत्पन्न होती है।

मनुष्य की भाषा एक ही अवस्था में सब प्रकार के भावों को प्रकट नहीं कर सकती। जैसे जैसे मनुष्य की अवस्था अधिक होती जाती है और जैसे जैसे मनुष्य का ज्ञान बढ़ता जाता है वैसेही वैसे उसके वाक्यों में विविध विषयों के वर्णन करने की शक्ति या योग्यता पैदा होती जाती है। मनुष्य अपनी प्रथम अवस्था में ही सारे पदार्थों के सम्बन्ध में, या किसी एक पदार्थ के सब तरह के गुणों के सम्बन्ध में पूरा वर्णन नहीं कर सकता। वह भिन्न भिन्न अवस्था में भिन्न भिन्न श्रेणी के वाक्यों की रचना करके विश्व के भिन्न भिन्न विभागों के सम्बन्ध में अपना वक्तव्य प्रकाशित करता है।

३—परिचित वाक्यों के आधार पर ही नवीन वाक्यों की रचना होती है।

जिन शब्दयोजनाओं के द्वारा मनुष्य वाक्यों का प्रयोग करके अपने मनोभावों को प्रकाशित करता है उन्हीं परिचित वाक्यसमूहों और उसी पुरानी भाषा के सहारे नये वाक्यों की रचना होती है। मामूली तौर से जिस भाषा का व्यवहार होता रहता है वही नवीन भाषा की सृष्टि का उपादान कारण है। इसी प्रकार मनुष्य की भाषा क्रमशः परिचित पदार्थसमूहों का वर्णन करते करते अपरिचित, दूरस्थ और नवीन पदार्थों की परिचायक हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—किसी विषय में एक बारही बहुत से वाक्यों की रचना असम्भव है।

मनुष्य किसी पदार्थ के सम्बन्ध में एक साथ, एक ही प्रयत्न से, बहुत प्रकार के वाक्यों की रचना नहीं कर सकता। जिस प्रकार मनुष्य की वाक्य-रचना पहले ही पृथ्वी के सारे पदार्थों के विषय में नहीं हो सकती, जिस प्रकार उसकी वाक्य-परम्परा एकही उम्र में सर्वभावव्यञ्जक तथा सर्वपदार्थज्ञापक नहीं हो सकती, एवं जिस प्रकार उसके वाक्यसमूह पहले ही अपरिचित, नवीन और अज्ञात-पदार्थ-विषयक नहीं हो सकते, उसी प्रकार उसके वाक्यसमूह किसी पदार्थ के विषय में पहले ही बहुविध नहीं हो सकते। क्रमशः वयोवृद्धि और बुद्धि के विकाश के साथ साथ जैसे जैसे उसकी धारणा और विचारशक्ति का विकाश होता जाता है वैसे ही वैसे उस की भाषा सूक्ष्म और जटिल हो कर वैचित्र्य को प्राप्त होती जाती है। भाषा पहले सरल और सहज होती है। उसमें जटिलता क्रमशः धीरे धीरे आती है।

५—वाक्य क्रमशः प्रणाली-बद्ध हो कर साहित्य में परिणत हो जाते हैं।

मनुष्य पहले ही खूब शृङ्खलाबद्ध—सिल-सिलेवार—बात नहीं कह सकता। बचपन में मनुष्य के वाक्य बड़े अटपटे होते हैं। उनमें किसी प्रकार की प्रणाली या शृङ्खला नहीं होती। पहली अवस्था में वाक्य परस्पर विरोधी और सम्बन्धहीन होते हैं। उनका अस्तित्व अलग अलग होता है। सामञ्जस्य और शृङ्खला उनमें धीरे धीरे आती है। फिर तो अन्त में वे ऐसे सुसम्बद्ध और प्रणालीबद्ध हो जाते हैं कि उन्हीं से प्रबन्ध और साहित्य की सृष्टि होने लगती है।

वाक्य क्रमशः विविध पदार्थविषयक और विविध भावव्यञ्जक होते हैं। वाक्यों में विविध पदार्थों के वर्णन तथा विविध भावों के प्रकट करने की शक्ति शनैः शनैः आती है। इसी उपाय से उनकी संख्या क्रमशः बढ़ जाती है। संख्यावृद्धि के साथ साथ वे विभिन्न श्रेणियों के अन्तर्गत जटिलता को प्राप्त होते हैं। वाक्यों में इस प्रकार की संख्यावृद्धि और जटिलता से ही भाषा की श्रीवृद्धि और सृष्टि होती है। इस लिए मनुष्य भाषा के भीतर प्रविष्ट हो कर क्रमशः वक्तव्य विषयों की संख्या बढ़ा देता है। वक्तव्य समूहों की विचित्रता और उत्कर्षता ही भाषा के सौष्ठव और उत्कर्ष के कारण हैं।

भाषा-शिक्षा की प्रणाली।

क्षुद्र और सरल वाक्यों की रचना से आरम्भ करके क्रमशः प्रणालीबद्ध वाक्यों की रचना होती है।

भाषाशिक्षा की प्रणाली के अवलम्बन करने के लिए कई बातों पर लक्ष्य रखने की आवश्यकता होती है। वे बातें ये हैं:—भाषा और भाव का सम्बन्ध, भाषा की उत्पत्ति, भाषा की प्रकृति और भाषा के क्रमिक विकाश का नियम। चाहे कोई भाषा क्यों न हो, उसके सीखने वाले को वक्तव्य और भावों की ओर विशेष ध्यान रखना होगा। इस कारण वाक्यरचना और पदयोजना को ही एक मात्र उपादान भाव से ग्रहण करना होगा। वाक्यरचना में निपुणता प्राप्त होने पर ही भाषा पर अधिकार जम सकता है, वह स्वायत्त हो सकती है, नहीं तो नहीं। इस लिए कोश में से पढ़ पढ़ कर शब्द कण्ठस्थ करने या व्याकरण के नियमों के घोखने की शुरू में कुछ भी आवश्यकता नहीं है। बहुत से शब्दों को जान लेने, या उच्चारण करने में कठिन, संयुक्ताक्षर शब्दों के अर्थ जान लेने ही से कोई भाषा में व्युत्पन्न नहीं हो सकता। क्योंकि केवल कठिन कठिन शब्दों के द्वारा ही भाषा कठिन नहीं हो सकती। वास्तव में भाव की कठिनता से ही भाषा में कठिनता पैदा होती है। सरल भाव के प्रकाशित करने के लिए कठिन शब्दों का प्रयोग करने पर भी, बहुत बार ऐसा देखा गया है कि, भाषा में कठिनता नहीं आती। किन्तु कठिन भाव के प्रकाशित करने के लिए चाहे जैसे सरल और असंयुक्ताक्षर शब्दों का प्रयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीजिए पर भाषा में अवश्य कठिनता रहेगी। इस लिए पहले ही से कठिन या यों ही बहुत से शब्द सीखने में न लग कर शिक्षार्थी को अपने भावों के प्रकाशित करने के योग्य वाक्यों की रचना सीखनी आरम्भ करनी चाहिए। जिस प्रकार वयोवृद्धि के साथ साथ भाव कठिन और जटिल होते जाते हैं उसी प्रकार उसे कठिन और जटिल वाक्यों की सहायता मिलती जाती है। वह फिर क्रमशः भिन्न भिन्न, परस्पर बिखरे हुए, वाक्यों को छोड़ कर शृङ्खलीकृत, सुसम्बद्ध और ऐक्यविशिष्ट वाक्यों का व्यवहार करने लगता है।

मातृ-भाषा-शिक्षा की प्रणाली।

मातृभाषा सीखने वाले शिक्षार्थी को पहले अपने मनोभावों के प्रकाशित करने के लिए उसी वाक्यरचनाप्रणाली का प्रयोग करना चाहिए जिसको वह रात दिन व्यवहार में लाता है। इसके सम्बन्ध में कुछ साधारण नियम देखे जाते हैं। वे ये हैं :—

१—विश्व के सारे पदार्थों के विषय में वाक्यरचना।

सारा ज्ञेय विश्व मनुष्य की मनोवृत्ति के विकाश का कारण है। इसलिए क्या प्राकृतिक, क्या मानवीय, दोनों प्रकार के जगत् ही मनुष्य के वाक्य-प्रयोगों के क्षेत्र हैं। इस कारण उसकी वाक्यरचना किसी एक पदार्थ या एक वस्तु में ही आबद्ध नहीं रहती, किन्तु वह सब पदार्थों एवं जगत् की सर्वविध घटनाओं के वाक्यों का प्रयोग करने लगती है। इससे जहाँ एक ओर उसकी भाषा में वैचित्र्य और जटिलता पैदा होती है वहाँ दूसरी ओर विश्व के सजीव और निर्जीव पदार्थों के सम्बन्ध में ज्ञान बढ़ाने में सहायता मिलती है। इसका फल यह होता है कि शिक्षार्थी केवल भाषा ही नहीं सीख जाता, किन्तु भाषा के साथ साथ भाव और धारणा, सृष्टि एवं ज्ञान के विकाशोपयोगी विविध विद्याओं की शिक्षा प्राप्त कर लेता है। इस लिए भाषा-शिक्षा के समय यदि अन्यान्य विद्यालब्ध ज्ञान के प्रयोग का प्रबन्ध हो तो सकल विद्याओं में परस्पर सहायता-विधायक सम्बन्ध स्थिर होजाता है। इससे समय की भी बचत होती है, परिश्रम भी कम पड़ता है, और भाषा-शिक्षा तो ठीक ठीक होती ही जाती है, किन्तु अन्यान्य विद्या-विषयक ज्ञान की जड़ भी मज़बूत हो जाती है।

२—भिन्न भिन्न अवस्थाओं में भिन्न भिन्न पदार्थविषयक वाक्यरचना होती है और उसकी रचना-प्रणाली भी विभिन्न प्रकार की होती है।

आयु के तारतम्यानुसार ही वाक्य-रचना-प्रयोग का क्षेत्र एवं वाक्य-रचना-प्रणाली का तारतम्य होता है। शिक्षार्थी के लिए तो यह सारा जगत् ही ज्ञेय है; पर इस सबको वह एक ही अवस्था में नहीं जान सकता। इस लिए शिक्षार्थी को अपने परिचित पदार्थों एवं प्रयोजनीय विषयों में ही वाक्य-रचना-प्रणाली को आबद्ध रखना पड़ता है। ज्ञेय पदार्थों में विभाग और विश्लेषण सिद्ध करके सुबोध्य अंशों को ही वाक्य-रचना का विषय बनाना होगा। इसी उपाय से क्रमशः संसार के सारे पदार्थ शिक्षार्थी की भाषा के अधीन हो जायँगे।

३—अभ्यस्त वाक्यों की सहायता लेकर नवीन वाक्यरचना।

किसी पदार्थ के वर्णन करने में शिक्षार्थी ने जिन अनेक वाक्यों की रचना की है उन्हीं वाक्यों की सहायता से उसको नये वाक्यों की रचना सीखनी होगी। जिस विषय में किसी ने कभी कुछ भी आलोचना नहीं की, उसके विषय में कभी एक भी वाक्य का प्रयोग नहीं किया, या पूर्वपरिचित एवं आलोचित विषयों के साथ जिस विषय का कुछ भी सम्बन्ध नहीं, ऐसे विषयों के सम्बन्ध में नवीन वाक्य-रचना करने की चेष्टा उचित नहीं। पहले अभ्यास के सहारे या आधार पर ही नवीन वाक्यों की रचना करनी होगी। इसलिए वाक्य से वाक्यान्तर में जाते समय भाव से भावान्तर में जाने की स्वाभाविकता और सुविधा-असुविधा का भी ध्यान विचारपूर्वक रखना होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—पहले सहज और सरल वाक्यों की रचना करनी चाहिए।

शिक्षार्थी को किसी विषय में एक बार ही बहुत से वाक्यों की रचना नहीं करनी होगी। पहली अवस्था में वाक्यों में ऐसी सरलता रखनी होगी जिसमें जटिलता का नाम तक न हो। पहली अवस्था में वाक्य वैचित्र्यपूर्ण और सूक्ष्मभावबोधक न होकर स्थूलगुणवाचक और सहज भावबोधक होने चाहिएँ।

५—पहले असम्बद्ध अलग अलग वाक्यों की रचना होती है।

पहले असम्बद्ध और अलग अलग वाक्यों की रचना होती है, पर उन्नति के साथ साथ विचित्र भाव प्रकाशित करने के योग्य विचित्र वाक्यों की रचना-शिक्षा प्राप्त करनी होगी। पदार्थ के सम्बन्ध में क्रमशः सूक्ष्म और विस्तृत भाव की वाक्यरचना करनी होगी। इस उपाय से वाक्य-समावेश की रीति, लिपिचातुर्य और रचना-कौशल सीखते सीखते प्रबन्धादि तथा उच्च साहित्य की रचना सीखनी होगी।

कोश और व्याकरण।

इस प्रकार वाक्य-रचना के द्वारा भाषा की प्रणाली को स्वाधीन कर लेने पर, शब्दसम्पत्ति को बढ़ाने और उच्च साहित्य को पढ़ने के लिए, कोश की सहायता से प्रचलित शब्दों का परिचय प्राप्त करना होगा और देखे हुए साहित्य में से शब्दों को लेकर उनका प्रयोग सीखना होगा।

इस उपाय से बात कह कर या प्रबन्ध लिखकर भाषा के प्रयोग करने में नैपुण्य और अभिज्ञता हो जाने पर भाषा की भीतरी युक्तियों को विश्लेषण करके देखना होगा। भाषा के व्यवहार का अभ्यास करके और भाषा के प्रयोग को देख कर, युक्ति से, उसकी वाक्य-रचना-प्रणाली की आलोचना तथा उसके नियम और व्याकरणसम्बन्धी प्रथा का आविष्कार करना होगा। व्याकरण भाषा का न्यायशास्त्र है। इसके आविष्कार का विषय प्रयोग के विषय से अलग है। भाषा-शिक्षा के लिए इसका कुछ प्रयोजन नहीं। न्यायशास्त्र का एक अङ्ग होने से इस विषय की स्वतन्त्र आलोचना करनी सङ्गत होगी।

(असमाप्त)

अनुवादक, पण्डित रामजीलाल शर्मा।

मुक्ति-फ़ौज के अधिष्ठाता जनरल बूथ।

जनरल बूथ संसार के उन महान् पुरुषों में से थे जिन्हें उन्नीसवीं शताब्दी ने जन्म दिया। वर्त्तमान समय में, जब कि संसार में चारों ओर पदार्थ-विज्ञान की महिमा के गीत गाये जा रहे हैं और लोग भौतिक उन्नति के मैदान में क़दम बढ़ाये जाना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं, जनरल बूथ ने अपने बुद्धि-बल से नहीं—क्योंकि उनकी बुद्धि में कोई विशेषता न थी—किन्तु अपने सुदृढ़ चरित्र-बल से, मुक्ति-फ़ौज नाम की संसार-व्यापिनी धार्म्मिक संस्था को जन्म दे, तथा उसे अच्छी तरह से चला कर ऐसा महान् काम किया जिससे उन के चरित की महत्ता अच्छी तरह सिद्ध होती है। उन्हें अपने इस काम में बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, कटुवचन और गालियाँ सुननी पड़ीं और उनके सहकारियों को जुर्माना देना और जेल तक जाना पड़ा; परन्तु वे अपने उद्देश से कभी न टले। अपने साथियों सहित—और ख़ूबी तो यह थी कि उनके साथी भी उन्हीं के सदृश दृढ़ मिले—वे अपना काम करतेही गये; और, अन्त में, फल यह हुआ कि सारी कठिनाइयों ने उन के आगे सर झुका दिया। जो उनका पहले अपमान करते थे वही उनका आदर करने लगे और जो उन्हें तङ्ग करते थे वही उनकी सहायता करने लगे। बड़े बड़े राजा-महाराजाओं तक ने उनका सम्मान किया और दीन-हीन लोगों के हृदय के तो वे स्वयं ही राजा बन गये।

बूथ महाशय का जन्म, १८२९ में, नाटिंघम नगर में, हुआ था। उनके पिता एक गिरजाघर में काम करते थे। उनके पिता का सम्बन्ध था तो गिरजाघर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से, परन्तु वे परलोक बनाने से इस लोक का बनाना अधिक अच्छा समझते थे। इसीलिए वे व्यापार द्वारा धन एकत्र करने की चिन्ता में अधिक रहते थे। वे थे तो विशेष शिक्षित नहीं, परन्तु हिसाब किताब रखना बहुत अच्छा जानते थे। पिता का यह गुण पुत्र को भी प्राप्त हुआ। जनरल बूथ भी बड़े ही हिसाबदाँ निकले। अन्य गुण उन्हें अपनी माता से मिले। उनकी माता बड़ी ही सुशीला और धार्म्मिक स्त्री थीं। माता और पुत्र में प्रेम भी बहुत था। एक दूसरे को देख कर जीते थे। उनका हृदय बड़ाही उदार था। वे दीन-हीन लोगों के दुख न देख सकती थीं। उनका विश्वास था कि कोई मनुष्य, चाहे कितना ही पतित क्यों न हो, सद्-व्यवहार से वह अच्छा बनाया जा सकता है। उन्होंने यह विचार बचपन ही में बूथ के हृदय में कूट कूट कर भर दिया था। माता की इस शिक्षा का फल यह हुआ कि पुत्र ने बड़े होने पर मुक्ति-फौज द्वारा पतितों का उद्धार करके इस विचार की सत्यता अच्छी तरह सिद्ध करदी।

बूथ का लड़कपन ग़रीबी में कटा। एक छोटी सी पाठशाला में थोड़ा बहुत पढ़ लिख कर, १८५० में, वे भी पादड़ी हो गये। १८६१ में, उन्होंने अपने इस पद को त्याग दिया। इस बीच में वे अपना व्याह कर चुके थे और उनके चार सन्तानें भी हो गई थीं। वे सपत्नीक नगर नगर धर्म्मोपदेश देते फिरे। अन्त में, १८६४ में, वे लन्दन लौट आये। वहाँ उन्होंने एक धर्म्म-सभा स्थापित की। इस सभा का कई बार नामकरण-संस्कार हुआ। अन्तिम नाम के पहले उसका नाम था "क्रिश्चियन मिशन" (Christian Mission) मज़दूर और अन्य निम्न श्रेणी के लोग ही उसके सदस्य थे। बूथ इन्हीं लोगों की सहायता से निम्न श्रेणी के लोगों में धर्म्मोपदेश देते थे। १८७८ में, इस सभा ने अपना अन्तिम, अर्थात् वर्त्तमान रूप, धारण किया। उसका नाम रक्खा गया—"मुक्ति-फौज" (Salvation Army) और उसके नेता बने "जनरल" बूथ।

पहले लोगों ने "मुक्ति-फ़ौज" का बड़ा ही प्रबल विरोध किया। इस फ़ौज के "सैनिकों" का नया ढङ्ग और नया रङ्ग देख कर लोग भयभीत से हो गये। जहाँ ये "सैनिक" गा गा कर धर्म्मोपदेश करना चाहते वहाँ लोग इतना ऊधम मचाते और इन्हें इतना तङ्ग करते कि लाचार होकर इन लोगों को वहाँ से खिसक जाना पड़ता। लड़के इन्हें राह चलते चिढ़ाते, लोग इनकी पोशाक़ की हँसी उड़ाते, और गली-गली, घर-घर, में इनके से बाजे बजा बजा और गा गा कर इनके उपदेश देने के ढंग का मख़ौल उड़ाते। कोई इन्हें पागल कहता, कोई मूर्ख, कोई इन्हें ढोंगी बतलाता, कोई ठग। केवल इतनाही नहीं, लोगों ने भी एक फ़ौज तैयार की जिसका नाम रक्खा:—"Skeleton Army" (ठटरी फ़ौज) इसका उद्देश "मुक्ति फ़ौज" को तोड़ देना था। बहुत दिनों तक ऐसी ही अवस्था रही। अन्त में लोग इनकी दृढ़ता और सुजनता के क़ायल हो गये। बड़े बड़े वैज्ञानिकों और राज-पुरुषों तक ने इनके कामों को सराहा। धर्म्म-संस्थाओं के नेता भी आगे बढ़े। उन्होंने "मुक्ति फ़ौज" की प्रशंसा करना आरम्भ कर दिया। स्वर्गीय सम्राट् एडवर्ड, महारानी एलेक्ज़ेंड्रा, जापान के भूत-पूर्व सम्राट्, संयुक्त-राज्य अमेरिका के प्रेसीडेन्ट आदि बड़े बड़े पुरुषों ने जनरल बूथ और उनके कामों की जी खोल कर प्रशंसा की।

मुक्ति-फ़ौज का काम इँगलैन्ड में ही परिमित न रहा। वह शीघ्र ही संसार-व्यापी हो गया। १८८६ में, संयुक्त-राज्य अमेरिका में, और, १८८१ में, आस्ट्रेलिया में, उसकी शाखायें स्थापित हो गईं। थोड़े ही दिनों में योरप के अन्य राज्यों में भी मुक्ति-फ़ौज के अड्डे बन गये। १९११ के सितम्बर मास तक मुक्ति-फ़ौज का प्रचार संसार के भिन्न भिन्न ५८ देशों में हो गया और उसकी पुस्तकें लगभग ३१ भाषाओं में छप गईं। इस समय उस की शाखायें ८५८२ स्थानों में हैं, परन्तु उसका केन्द्र लन्दन ही में है। केवल ब्रिटिश द्वीपों में ही उसके लग भग सवा लाख "सैनिक" और दो करोड़ की सम्पत्ति है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

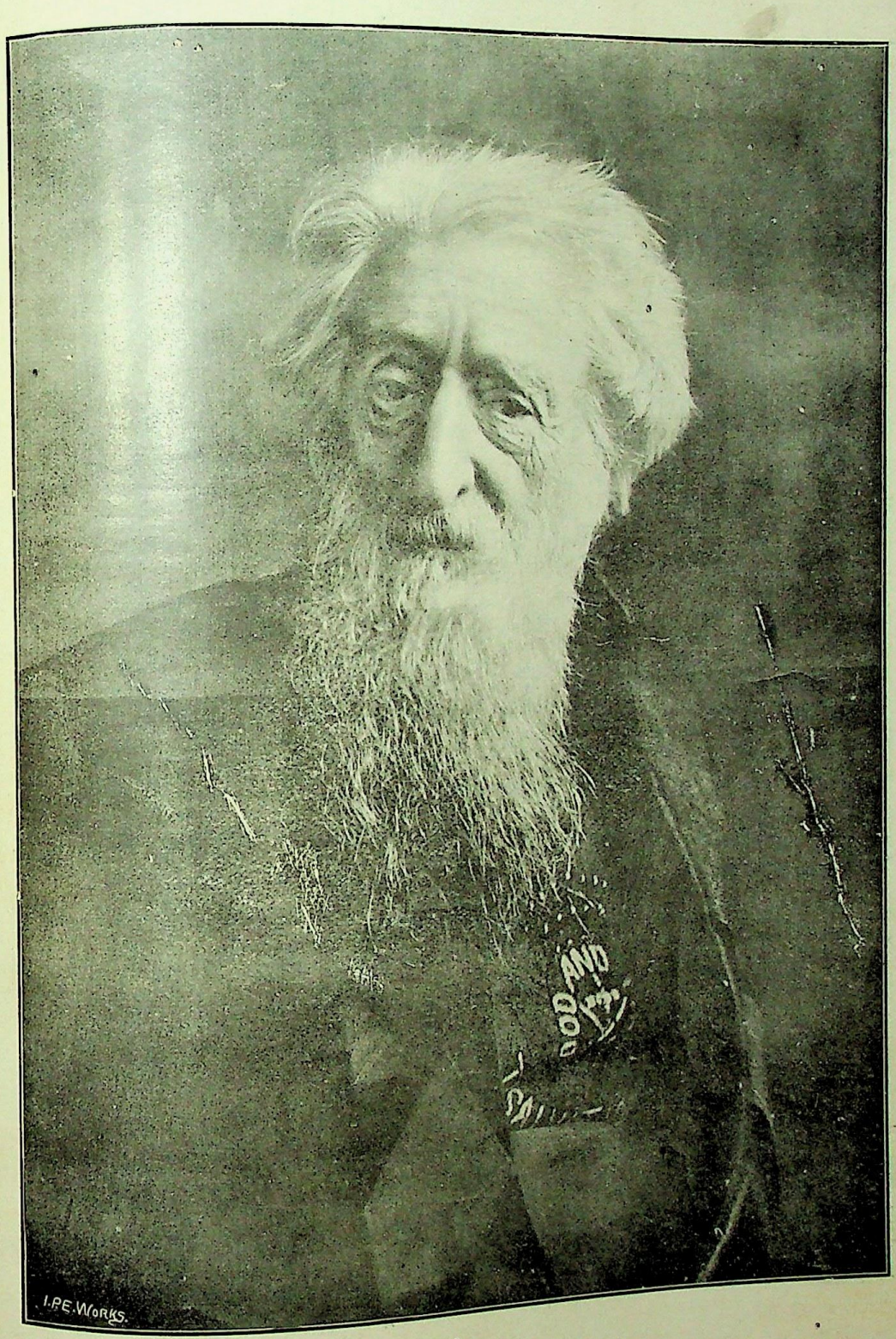

मुक्तिफ़ौज के परलोकवासी जनरल बूथ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी ओर से "All the World" नाम का एक मासिक पत्र भी निकलता है, जिसमें सब शाखाओं का हाल प्रकाशित होता रहता है।

हमारे देश में भी मुक्ति-फ़ौज के कितने ही अड्डे हैं। यहाँ इसका काम बड़ी धूम धाम से चल रहा है। यहाँ इस फ़ौज के लगभग ढाई हज़ार तो केवल अफ़सर ही हैं। अन्य काम करने वालों की संख्या लाखों तक पहुँची है। हिन्दी, उर्दू, मराठी, गुजराती, बँगला, गुरमुखी, तामील, तिलेगू आदि कितनी ही भारतीय भाषाओं में उसकी पुस्तकें छप चुकी हैं। फ़ौज की ओर से कितनी ही प्रारम्भिक पाठशालायें खुल चुकी हैं, जिनमें दस हज़ार से अधिक बच्चे शिक्षा पाते हैं। गाँवों में छोटी छोटी बैंकें खोली गई हैं, और, इस प्रकार किसानों से मेल बढ़ाया गया है। मुक्ति-फ़ौज के कितने ही सैनिक देहातों में रहने और वहाँ दुकानदारी करने लगे हैं। भारत की औद्योगिक उन्नति की तरफ़ भी इस फ़ौज का ध्यान है। सैकड़ों करघे जुलाहों को कम मूल्य पर दिये गये हैं और कपड़ा बुनना सिखलाने के लिए कितनी ही पाठशालायें भी खोली गई हैं। क़ैदियों और अन्य अपराध-पेशा जातियों के सुधार में इस फ़ौज को अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। दुर्भिक्ष के समय भी मुक्ति-फ़ौज वालों ने बुभुक्षित लोगों को भोजन तथा सस्ते भाव पर अन्न देकर बड़ा काम किया है। ये लोग देशी वेश ही में रहते हैं। इसी से ये इतना काम भी कर सके हैं।

१८९० में जनरल बूथ ने "In Darkest England and the Way Out" नाम की पुस्तक प्रकाशित की। इस पुस्तक में उन्होंने पतित लोगों की अवस्था सुधारने के कितने ही उपाय बतलाये। लोग उनका काम तो देख ही चुके थे, उनके प्रस्तावों को पढ़ते ही धड़ाधड़ चन्दा दे चले। थोड़े ही दिनों में पन्द्रह लाख रुपये मिल गये। काम आरम्भ हो गया। स्थान स्थान पर आश्रय-हीन लोगों के लिए सेवाश्रम खोल दिये गये। मुक्ति-फ़ौज द्वारा सुधारे गये पतित लोगों के निवास के लिए भी प्रबन्ध किया गया। समुद्र के किनारे और अन्य ग़ैर-आबाद स्थानों में वे बसा दिये गये। आश्रय-हीन और पतित लोगों में मुक्ति-फ़ौज ने जो काम किया उसका अनुमान इस बात से भली भाँति किया जा सकता है कि अकेले १९०९ में, ६४२५ आदमियों ने फ़ौज की शरण ली और २५५९ स्त्रियों और लड़कियों ने सेवाश्रम में स्थान पाया। शरण में रहने वाले लोगों को धर्म्म और सदाचरण की शिक्षा दी जाती है और उनसे फ़ौज-द्वारा सञ्चालित कारख़ानों में काम लिया जाता है।

जनरल बूथ शायद ही इतने बड़े काम को अकेले कर सकते यदि उन्हें अपने ही ऐसे दृढ़-विश्वासी और निरन्तर परिश्रम करने वाले सच्चे हृदय के साथी न मिलते। उनकी धर्म्मपत्नी केथराइन बूथ ने भी इस काम में उनका साथ दिया। कहा तो यहाँ तक जाता है कि यदि देवी केथराइन आरम्भ में दरिद्रता का सामना करती हुई अपने पति की सहायता न करतीं तो आज संसार में मुक्ति-फ़ौज का अस्तित्व ही न होता। इसमें सन्देह नहीं कि श्रीमती केथराइन अन्त समय तक मुक्ति-फ़ौज का काम बड़े उत्साह से करती रहीं। वे इस आन्दोलन की एक स्तम्भ समझी जाती थीं। १८९० में उनका देहान्त हुआ। उससे मुक्ति-फ़ौज के काम को बड़ी भारी क्षति पहुँची। अभी बूथ इस धक्के से सँभलने भी न पाये थे कि उनके ऊपर और भी कुटुम्बसम्बन्धिनी विपत्तियाँ टूट पड़ीं। उनकी एक लड़की रेल से कट गई। उनका दूसरा पुत्र उनसे लड़ कर अमेरिका पहुँचा और वहाँ उसने अपने पिता के ढंग का एक नया दल बनाया। इन सब पारिवारिक दुःखों को बूथ बड़े साहस से सहन करते और निरन्तर अपना काम करते रहे।

जनरल बूथ बड़ी ही सादगी से रहते थे। वे आहार और विहार की उचित सीमा का बहुत ख़याल रखते थे। वे निरामिष-भोजी थे। शराब और तम्बाकू भी वे न पीते थे। हाँ, चाय अवश्य पीते थे। उनके जितने काम थे सब नियत समय पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते थे। नियम-पूर्वक रहने के कारण ही उनका शरीर सुदृढ़ था और वे अस्सी वर्ष की अवस्था में भी मोटर-गाड़ी द्वारा हज़ारों मील की यात्रा करने में कष्ट बोध न करते थे।

८३ वर्ष की उम्र में, गत २० अगस्त १९१२ को, ४७ घन्टे अचेत रहने के पश्चात्, इस महात्मा का देहान्त हो गया। इँगलेंड भर में शोक छा गया और छोटे-बड़े सब प्रकार के आदमियों ने इस जातीय शोक में साथ दिया। सम्राट् जार्ज और अन्य बादशाहों ने मुक्ति-फ़ौज से उसकी इस क्षति पर, अपनी समवेदना प्रकट की।

जनरल बूथ के बड़े बेटे, ब्रामवेल बूथ, अब पिता की गद्दी पर बैठ कर मुक्ति-फ़ौज का काम चला रहे हैं। वही अब इस फ़ौज के प्रधान नायक हैं।

अमेरिका की चर्चा।

(१)

शरद-ऋतु।

वाह रे जाड़े, कितना कड़ाकेदार पड़ रहा है—थर्मामिटर का पारा शून्य से पाँच डिगरी नीचे चला आया है। इतनी सर्दी में मनुष्य की तो हिम्मत बाहर निकलने की पड़ती ही नहीं; पशु-पक्षियों की कौन कहे। पर संसार का काम कहीं रुक सकता है। गाड़ियों में जुते हुए घोड़े, कम्बल और कम्बल के ऊपर बर्फ़ से ढके, सड़क पर दिखाई पड़ रहे हैं। मनुष्य भी मज़दूरी से बँधे हुए अपने अपने काम पर जा रहे हैं। मैदान में जाने से मालूम होता है, मानो किसी मरु-भूमि में आये हों। जाड़े और जाड़े के पुत्र बर्फ़ ने सब दरख़्तों की पत्तियों का संहार कर दिया है। वे सूखे ठूँठ से हो रहे हैं। पृथिवी बर्फ़ से ढकी हुई है। यह बर्फ़ कैसी है जैसे रुई के फाहे और बाल के ज़र्रे—दूध की तरह सफ़ेद और साफ़। सवेरे सवेरे इतने मज़दूर कर क्या रहे हैं? इन्हीं बर्फ़ के ज़र्रों को ट्राम-गाड़ी की पटरी और उसके दोनों ओर की पत्थर वाली पगडंडियों से हटा रहे हैं। दूर दूर तक फैली हुई बर्फ़ की उज्ज्वलता नेत्रों पर अद्भुत रोब जमा रही है। ऐसे कड़े जाड़े के समय सूर्य-देव की सुन्दर किरणों को देख कर बालक और बालिकायें कैसी प्रसन्न हो रही हैं। वे घर की अँगीठियों की सुखदायिनी आँच को छोड़ कर, सड़क पर, बर्फ़ के साथ परस्पर कलोलें कर रहे हैं। बर्फ़ के गेंद बना बनाकर एक दूसरे को मारते हैं। कोई कोई ढालू स्थान के ऊपर से अपनी बे-पहिये की स्लाइड़-गाड़ी पर बैठे लुढ़क रहे हैं और कितनेही पुलीस की मुमानियत की परवा न कर पत्थर की पगडन्डियों (Footpath) पर फिसल रहे हैं। फिसलने से वे काँच के सदृश चिकनी हो गई हैं। पगडन्डियों के इस चिकनेपन के कारण कितनेही रास्ता चलनेवाले बुड्ढे गिर कर हाथ पाँव या किसी और अङ्ग को तोड़ बैठते हैं। मैं भी कई बार पहले गिरने से बचा। पर अब तो इन चिकने मार्गों पर फिसलना मैंने भी सीख लिया है। सब से अधिक काम अमेरिका वाले इस भयानक शरद-ऋतु में ही करते हैं। गरमी तो इनके लिए विश्राम का मौसम है। गरमी में अधिकांश लोग समुद्र-तट पर चले जाते हैं, अथवा देहात की हवा खाते हैं। जाड़ा ही इनके काम करने का मौसम है।

(२)

अमेरिका का विद्यार्थि-जीवन।

कालेज और स्कूल, पाठशाला और मदरसे—विद्या के सभी स्थान—जातीय जीवन की धौंकनी के समान हैं, जो जाति में जान डालते हैं। ये ऐसी मशीनें हैं जिनमें से जाति-सदृश इमारत के लिए मज़बूत और ख़ूबसूरत खम्भे ढलते हैं, जो भविष्यत् में इमारत को क़ायम रक्खेंगे। यदि ये खम्भे कमज़ोर हुए तो मकान के गिराने का कारण होंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि बदसूरत हुए तो इमारत कुरूपा हो जायगी। इसलिए मशीनें बहुत अच्छी होनी चाहिए। मशीनों के तैयार करने में समय लगता है। इसलिए धैर्य्य के साथ काम होना चाहिए। अमेरिका में विद्याध्ययन का समय जीवन की सब अवस्थाओं से विशेष आनन्दमय किया जाता है। विद्यार्थी बड़े आनन्द के साथ अपने पाठ को कालेज ही में तैयार कर लेता है। यहाँ पुस्तकाध्ययन विद्या का एक अङ्ग मात्र है। यहाँ के कालेजों में मानसिक, शारीरिक सभी प्रकार की उन्नतियों की ओर ध्यान दिया जाता है। प्रायः रोज़ ही एक न एक सभा हुआ करती है। कल अमुक विद्वान् का व्याख्यान था; आज अमुक बोल रहा है; कल के लिए किसी और ही विद्वान् को शारीरिक उन्नति पर बोलने का नेवता दे दिया गया है। विद्यार्थियों का जोश "फुटबाल" के मैदान में देखने में आता है। विद्यार्थियों की कितनी ही सभायें हैं। एक सभा के सब सभासद-विद्यार्थी एक साथ रह कर भाई चारे का भाव पैदा करते हैं। एक शाम को एक सभा में मेरा नेवता था। भोजन के उपरान्त प्रथम तो ख़ूब गप्पें हुईं; देश-देशान्तर के भिन्न भिन्न विषयों पर ख़ूब बातें हुईं। फिर पियानो पर धावा हुआ। देशभक्ति और मज़ाक से भरे हुए ख़ूब गीत हुए। यह न मालूम होता था कि इन होनहार अमेरिका के विद्यार्थियों को किसी बात की फ़िक्र है।

इस देश के विद्यार्थियों में धोखे और असत्य से घृणा, और सत्य और स्वाभाविक बातों से प्रेम आदि गुण होते हैं। वे फ़िज़ूल बातों को पसन्द नहीं करते। वे जो कुछ कहते हैं—थोड़े से शब्दों में और स्वाभाविक रीति से कहते हैं। वे सदा प्रसन्न-चित्त रहते हैं। उनका प्रत्येक शब्द मज़ाक और हँसी से भरा होता है। उदास आदमी उनकी घृणा का पात्र है। वे दूसरे के दोषों को भी मज़ाक में उड़ा कर भुला देते हैं। वे खेल और शारीरिक व्यायाम को बहुत पसन्द करते हैं। देश-भक्ति उनका धर्म है।

स्वतन्त्रता, न्यायपरता, और सत्यता की भूमि अमेरिका, ! मैं तुझे प्यार करता हूँ। वीरों की जन्मभूमि ! विद्या की खान ! धन का निवास-स्थान ! देश भक्ति-का खज़ाना ! मैं तुझे प्यार करता हूँ।

परन्तु भारत-भूमि ! मैं तुझे और भी अधिक प्यार करता हूँ—, क्योंकि तू मेरी जन्म-भूमि है। तू मेरे पूर्वज विद्वान् ऋषियों की बूढ़ी माता है। तू वीर देशभक्तों की प्यारी वस्तु है। तू असभ्यों को सभ्य बनानेवाली है। तू धर्म की मूर्ति है। मैं तुझे सब से अधिक प्यार करता हूँ। क्योंकि तुझे अपने बच्चों के प्यार की इस समय ज़रूरत है। संसार तेरे धर्म और तेरी सभ्यता की प्राप्ति का प्रार्थी है; क्योंकि तू ही संसार में वर्तमान अशान्ति को हटा कर शान्ति स्थापित कर सकती है!

जगन्नाथ खन्ना
(पिट्स्बर्ग, अमेरिका)

व्योम-यान द्वारा मुसाफ़िरी।

अब व्योम-यान द्वारा मुसाफ़िरी भी होने लगी। निश्चित समय पर, जहाज़ों की तरह, जर्मनी के कुछ बड़े बड़े नगरों में व्योम-यान यात्रियों को लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक उड़ने लगे हैं। रेल और जहाज़ की यात्रा की तरह इस यात्रा के लिए भी टिकट ख़रीदने पड़ते हैं। ये टिकट योरप और अमेरिका के सब बड़े बड़े नगरों में बिकते हैं।

पहले हवा का रुख़ देखा जाता है। व्योम-यान के कर्म्म-चारी हवा में एक ग़ुब्बारा उड़ाते हैं और उसकी गति को, उँचाई नापने के यन्त्र-द्वारा देख कर, वायु-वेग और उसके रुख़ का पता लगाते हैं। हवा की गति का ज्ञान महत्त्व-शून्य नहीं। व्योम-यान के दफ़्तर के दरवाज़े पर एक तख़्ती लटकी रहती है, जिसमें ऋतुसम्बन्धिनी बातों के सिवा वायु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्धिनी बातों का भी उल्लेख रहता है। उससे पता चलता है कि कितनी ऊँचाई पर वायु का वेग कितना और किस ओर है, और तूफ़ान अथवा ओलों के गिरने की सम्भावना है या नहीं। कोई भी व्योम-यान तब तक उड़ने नहीं पाता जब तक गुब्बारे द्वारा वायु की गति का पता लगाने वाले इस बात का निश्चय न करदें कि समय अच्छा है, वायु-गति व्योम-यान की यात्रा के मुवाफ़िक़ है और आँधी-पानी की सम्भावना नहीं। बहुधा व्योम-यान के उड़ने के निश्चित समय में, वायु-गति के बदल जाने अथवा दुर्दिन हो जाने के कारण, फेरफार भी करना पड़ता है। दफ़्तर के बाहर कितने ही चित्र लटके रहते हैं जिनमें व्योम-यानों के किसी झील, नदी अथवा पहाड़ पर उड़ने का दृश्य अङ्कित रहता है। वहीं पर एक कर्म्म-चारी मौजूद रहता है। यात्रियों के यात्रा-सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर देना ही उसका काम है।

व्योम-यान के यात्री अपने साथ अधिक असबाब नहीं रखते। प्रत्येक यात्री अपने साथ हलका बेग, ओवरकोट, तसवीर खींचने का केमेरा आदि थोड़ी सी छोटी मोटी चीज़ें मुफ़्त लेजा सकता है। अधिक असबाब होने से किराया बहुत देना पड़ता है। अधिक कपड़े साथ रखने की भी इजाज़त नहीं। दो हज़ार फीट ऊपर अवश्य कुछ सर्दी मालूम पड़ती है, परन्तु इतनी अधिक नहीं कि साधारण कपड़ों के रहते विशेष कष्ट हो। हवा की कमी नहीं होती; उसका प्रवाह किसी मुख्य दिशा की ओर नहीं होता। सौ फीट ऊपर ही सूर्य्य की प्रखरता लोगों की आँखों को चौंधिया देती है। इसी लिए यात्री लोग चौड़े किनारे की टोपियाँ लगाते हैं, जिससे नेत्रों की रक्षा होती रहे।

प्रातःकाल, सूर्योदय के पूर्व ही, व्योम-यान यात्रा की तैयारी करता है। उसका गोदाम बिजली के प्रकाश से चमक उठता है। उन हौज़ों और नलों में पानी भरा जाता है जो उड़ते समय अपने बोझ से यान का बोझ साधते हैं। इस बात की अच्छी तरह परीक्षा कर ली जाती है कि इन हौज़ों और नलों में कोई नुक़्स तो नहीं। फिर चमड़े के नलों-द्वारा लोहे के पीपों में बन्द गेस व्योम-यान के इञ्जिन में पहुँचाया जाता है। उसमें गेस के पहुँचते ही घोर नाद होना आरम्भ होता है। यन्त्रकार लोग यन्त्रों की परीक्षा करते हैं। इतने में सूर्योदय हो जाता है। कप्तान आता है और मुसाफ़िर लोग भी एक एक करके आने लगते हैं। व्योम-यान का एक दरवाज़ा खुलता है और उसमें से एक छोटी सीढ़ी नीचे भूमि पर लटका दी जाती है। लोग उसी पर चढ़ कर व्योम-यान के भीतर पहुँचते हैं। यात्रियों की संख्या चौबीस से अधिक नहीं होती। उनके भोजनादि के प्रबन्ध के लिए एक बाबर्ची भी व्योम-यान पर रहता है।

अब आदमियों का एक दल और आता है। व्योम-यान को गोदाम से बाहर ले जाकर उस स्थान पर पहुँचाना जहाँ से वह उड़ता है, इन लोगों का काम है। यात्री अपने मित्रों और स्नेहियों से बिदा होते हैं। सीटी बजती है। तमाशबीन पीछे हट जाते हैं। नीचे लटकी हुई सीढ़ी लपेट कर ऊपर उठा ली जाती है। आये हुए दल के लोग व्योम-यान के अगले हिस्से के चारों तरफ़ फैल जाते हैं और उनमें से हर एक नीचे लटकी हुई रस्सियों में से एक एक को थाम लेता है। फिर सीटी बजती है। गोदाम के बड़े बड़े फाटक ज़ोर से खड़खड़ाते हुए खुल पड़ते हैं और आगे का रास्ता बिलकुल साफ़ हो जाता है। तीसरी दफ़े सीटी होती है। व्योम-यान चलने लगता है। वह इतना धीरे सरकता है कि गोदाम की दीवारों की शहतीरों के देखे बिना यह नहीं मालूम होता कि वह चल रहा है या खड़ा है। रस्सियों को पकड़ने वाले आदमी ही अपना सारा बल लगा कर छः सौ मन भारी व्योम-यान को आगे खींचते हैं। व्योम-यान सीधा आगे बढ़ता है। वह इधर उधर गोदाम की दीवारों की ओर नहीं झुकता। उसके नीचे छोटे छोटे पहिये लगे रहते हैं जो पटरियों पर चलते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोदाम से लेकर उस स्थान तक, जहाँ से वह उड़ता है, पटरियाँ बिछी रहती हैं। पटरियों और पहियों के कारण वह सहज ही में घसीटा जाता है इधर उधर झुकता नहीं।

अब व्योम-यान गोदाम से बाहर उस स्थान में पहुँच जाता है जहाँ से उसे उड़ना है। उसके यन्त्र आदि फिर देखे जाते हैं। यन्त्र चलने पर घोर नाद आरम्भ होता है। लोग रस्सियों को छोड़ कर दूर हट जाते हैं। तब अन्तिम सीटी होती है। धीरे धीरे व्योम-यान भूमि से उठता है। थोड़ी देर तक उसकी चाल बड़ी धीमी रहती है, परन्तु, फिर, उसकी तेज़ गति को देख कर आश्चर्य्य होता है। साधारणतः वह ४० मील फी घन्टे के हिसाब से उड़ता है।

उड़ते हुए व्योम-यान के भीतर का दृश्य चलते हुए जहाज़ के कमरे के दृश्य से भिन्न नहीं। साज़ सामान सब वैसा ही होता है। वायु भी वैसी ही स्वच्छ, शुद्ध और सुखदायक मालूम होती है। जहाज़ से जहाँ तक दृष्टि पहुँचती है जल ही जल नज़र आता है। व्योम-यान से भी नीचे पृथ्वी, समुद्र के सदृश, जान पड़ती है। मैदानों में उड़ते समय व्योम-यान बिलकुल हिलता डुलता नहीं मालूम पड़ता। पहाड़ों के निकट, अथवा उन्हें पार करते समय, अवश्य उसमें थरथराहट उत्पन्न हो जाती है। झीलों और अन्य बड़े बड़े जलाशयों का दृश्य बड़ा ही मनोहर होता है। ऐसे अवसर पर तूफ़ान चलने और उससे व्योम-यान के पथ में अन्तर पड़जाने का भय रहता है। इसलिए समुद्र अथवा झील पार करते समय व्योम-यान के कर्म्मचारी ख़ूब चौकन्ने रहते हैं। पहाड़ और समुद्र आदि के ऊपर से गुज़रते समय व्योम-यान की गति कम कर दी जाती है। खुले मैदान में पहुँचते ही फिर उसकी गति बढ़ा दी जाती है।

यात्रियों के लिए भोजन का प्रबन्ध तो रहता ही है। भोजन का समय होते ही बावर्ची सब यात्रियों के सामने छोटी छोटी मेज़ें बिछा देता है। उन पर सुफ़ेद कपड़ा बिछा रहता है और चाँदी के पात्र रक्खे रहते हैं। बावर्ची उन पर भोजन रख देता है। आपस में बात चीत करते हुए यात्री भोजन करते हैं। भोजन समाप्त होने के बाद बावर्ची सब चीज़ों को हटा कर उचित स्थानों पर रख देता है। लोग मनोरञ्जन का भी सामान कर लेते हैं। कुछ आदमी ताश खेलने लगते हैं और कुछ बात चीत करके अपना जी बहलाते हैं। ऐसे मन-चले आदमियों की भी कमी नहीं होती जो व्योम-यान के एक भाग में लगे हुए बे-तारके तार के यन्त्र की खड़खड़ाहट सुनते हुए मद्य की बोतलें ख़ाली करते चले जाते हैं।

अब वह नगर दिखाई पड़ने लगता है जिसमें व्योम-यान को उतरना है। थोड़ी देर बाद वह उस नगर के ऊपर चक्कर मारने लगता है। इस समय का दृश्य बड़ा ही हृदयाकर्षक होता है। नगर के बाज़ारों और गलियों की चहल पहल देखते ही बन पड़ती है। नगर नक़शे की तरह मालूम पड़ता है। कोई भी गाड़ी या ठेला दृष्टि से नहीं बचता। पैदल चलने वाले भी व्योम-यान वालों की नज़र से नहीं छिपे रहते। नगर के बाग़ और बाग़ीचे भी, चाहे वे कितने ही गुप्त स्थान पर हों, ऊपर से ख़ूब दिखाई पड़ते हैं। नीचे की कोई भी चीज़, जो आकाश से देखी जासकती है, नज़र से छिपी नहीं रहती। इसी कारण पारस्परिक राष्ट्रीय नियमों के अनुसार व्योम-यानों का क़िलों पर से उड़ना मना है।

अब व्योम-यान धीरे धीरे अपने अड्डे पर उतरना आरम्भ करता है। इस समय उसमें झोंके से आते हैं। लोग गिरने से बचने के लिए खम्भों और कुर्सियों को पकड़ लेते हैं। रस्सियाँ पकड़ने के लिए लोग नीचे एकत्र होने लगते हैं। व्योम-यान का पानी नीचे गिर जाता है। उसकी गति बन्द हो जाती है और वह उतरने लगता है। रस्सियाँ नीचे लटका दी जाती हैं। लोग उन्हें पकड़ कर उस ओर खींचते हैं जिस ओर हवा चलती होती है। बड़ी युक्ति से व्योम-यान पहियों और पटरियों पर उतार लिया जाता है। अब उसका सब पानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीचे गिरा दिया जाता है और वह पहियों, पटरियों और रस्सी खींचने वालों की सहायता से गोदाम में पहुँचता है। यात्रियों के मित्र उनका स्वागत करने के लिए वहाँ खड़े रहते हैं। सीढ़ी लगाई जाती है और यात्री उतर आते हैं।

मानव-चरित्र का वैज्ञानिक विचार।

प्राचीन काल में हमारे ऋषियों ने विज्ञान, दर्शन, शिल्प-विद्या, कालाकौशल आदि में विलक्षण उन्नति की थी। जिन गूढ़ विषयों का उन्होंने परदा खोल दिया था उनकी बात सुनने से आज कल के विज्ञानवेत्ता भी दाँतों तले उँगुली दबाते हैं। उनके विविध ग्रन्थों के पढ़ने से इस बात का पूरा पूरा प्रमाण मिल जाता है। उनके पास आज कल की तरह सूक्ष्म यन्त्र तो न थे; पर उनकी बुद्धि और उनका धर्म्म-भाव इतना सूक्ष्म था कि उन्हीं के द्वारा वे सूक्ष्म से सूक्ष्मतर यन्त्र का भी काम अच्छी तरह कर सकते थे।

आज कल के नवीन शिक्षित जन इस बात का प्रश्न कर सकते हैं कि बिना सूक्ष्म यन्त्रों के वे कैसे सूक्ष्म विषयों का अनुसन्धान कर सकते थे। उनके नवीन विचारों के सामने हमारे ऋषियों की बातें मानों गजेंड़ियों की उक्तियों के समान हैं। किन्तु हे नवीन शिक्षित समुदाय! यदि आप ऐसा समझते हों तो निश्चय जानिए, बिना समझे बूझे आप उन महात्माओं की व्यर्थ निन्दा कर रहे हैं। बिना सूक्ष्म यन्त्रों के भी सूक्ष्म विषयों का अनुसन्धान किया जा सकता है। इसका प्रमाण सुनिए:—

आपने लिवेरियर का नाम शायद सुना होगा। यदि न सुना हो तो अब सुन लीजिए। वह फ्रांस का रहनेवाला था और गणितशास्त्र का बहुत बड़ा पण्डित था। उसने ज्योतिषशास्त्र भी अच्छी तरह पढ़ा था। किन्तु दरिद्र के घर जन्म लेने के कारण उसके पास एक भी यन्त्र न था। सारे यन्त्रों का मूल यन्त्र उसके पास थी उसकी सूक्ष्म बुद्धि। उसकी बुद्धि ही उसके लिए अणुवीक्षण (Microscope) तथा दूर-वीक्षण (Telescope) यन्त्रों का काम किया करती थी। * उसने हिसाब लगाते लगाते देखा कि दूसरे ग्रहों की अपेक्षा राहु का भ्रमण-मार्ग कुछ भिन्न प्रकार का है। इससे उसे सन्देह हुआ कि शायद † राहु (Uranus) के पास कोई दूसरा ग्रह भी होगा, जो उसको आकर्षण-शक्ति के द्वारा अपनी ओर खींचा करता है।

उस ग्रह को जानने के लिए उसका चित्त बहुत व्याकुल हुआ। दिन दिन भर वह उसी ग्रह को जानने के लिए हिसाब लगाया करता। जब उसकी साधना पूरी हो गई तब उसने अमेरिका, जर्मनी, तथा और और देशों के पण्डितों से दूरवीक्षण यन्त्र के द्वारा उस ग्रह को देखने के लिए प्रार्थना की। उन्होंने देखा कि वास्तव में राहु* (Uranus) के पास एक ऐसा ही ग्रह है। तब से उस ग्रह का नाम केतु (Neptune) रक्खा गया। इस से भली भाँति मालूम होता है कि बिना सूक्ष्म यन्त्रों के भी सूक्ष्म पदार्थों का अनुसन्धान किया जा सकता है। हमारे ऋषियों ने इसी केतु को अपनी बुद्धि और साधना के द्वारा हज़ारों वर्ष पहले जान लिया था।

---

* See Ball's Story of the Heavens, pp. 326-330. "* * * * We picture the great astronomer buried in profound meditation for many months; his eyes are bent not on the stars, but on his calculations; no telescope is in his hand; the human intellect is the instrument he alone uses * * *."

† See Babu Srisa Chandra Vasu's "The Daily Practice of the Hindus," p. 5, line 11.

* See Babu Srisa Chandra Vasu's "The Daily Practice of the Hindus," p. 5, lines 11 and 12.

† See Professor P. C. Ray's "History of Hindu Chemistry," p. 1 "* * * The atomic theory as propounded by him has many points in common with that of the Greek philosopher Democretus" and also compare this with Roscoe and Schorlemmar, Vol I. p. 96.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार कणाद का सिद्धान्त है कि सारे मूल पदार्थ (Elements) छोटे छोटे अणुओं (Atoms) तथा परमाणुओं (Molecules) में बँटे हुए हैं। वह आज कल के Dalton's Atomic Theory से बहुत सादृश्य रखता है। इस से भी यही प्रमाणित होता है कि Dalton's Atomic Theory हमारे ऋषियों के लिए कोई नई बात न थी। उन्होंने उसे हज़ारों वर्ष पहले जान लिया था। इसी प्रकार और भी कितनेही उदाहरण दिये जा सकते हैं।

आजकल यूरप तथा अमेरिका में बड़े बड़े वैज्ञानिक पुरुष उत्पन्न हो रहे हैं। उन लोगों का सिद्धान्त है कि आधुनिक रसायन शास्त्र चार खम्भों पर खड़ा है। यथा :—

१—Indestructibility of matter—अर्थात् जड़ पदार्थों का नाश न होना—उनकी स्थिति का क़ायम रहना।

२ Periodic Laws—अर्थात् सारे मूल पदार्थों में भेद रहने पर भी उनमें समता का होना।

३ Dulong & Pettits' Law—अर्थात् सारे मूल पदार्थों की आणविक उष्णता (Atomic Heat) का हर हालत में एकही रहना।

४ Valency—अर्थात् एक मूल पदार्थ से दूसरे मूल पदार्थ की विशेष प्रीति।

इन्हीं चार सिद्धान्तों पर सारी रासायनिक क्रिया की भीत खड़ी हुई है। इन सिद्धान्तों से हमारे चरित्र तथा प्रकृति से क्या सम्बन्ध है, इसका हाल सुनने लायक़ है।

१. Indestructibility of Matter.

अर्थात् जड़ पदार्थों का नाश न होना।

इसे साबित करने के लिए मैं एक बात आपसे कहता हूँ। उसीसे आपको मालूम हो जायगा कि संसार में किसी भी जड़ पदार्थ का नाश नहीं होता। मोमबत्ती को देखिए। वह जल कर धुआँ हो जाती है। उसका नामोनिशान तक बाक़ी नहीं रहता। किन्तु क्या वास्तव में वह नष्ट हो जाती है? नहीं, वह नष्ट नहीं होती, वह केवल अपना रूप बदल देती है। इसका प्रमाण सुनिए:—

एक बोतल लीजिए। उसके बीच में एक मोम-बत्ती खड़ी कर दीजिए। मोमबत्ती के मुँह के पास बिजली के दो तार लगा दीजिए। फिर बोतल के मुँह को अच्छी तरह बन्द कर दीजिए। अब बोतल के भीतर बाहरी हवा किसी तरह नहीं ज़ा सकती। किन्तु इस बात को अवश्य स्मरण रखिएगा कि बोतल के भीतर कुछ हवा अवश्य ही बन्द है। अब मोमबत्ती और बिजली के दोनों तार समेत उस बोतल को तौलिए। उसका वज़न लिख रखिए। तब तड़ित्-प्रवाह के द्वारा उस बत्ती को जला दीजिए। कुछ देर तक बत्ती बराबर जलती रहेगी। जब बोतल की हवा चुक जायगी तब वह बत्ती आपसे आप बुझ जायगी। जब बत्ती बुझ जाय तब सारी बोतल को फिर से तौलिए। आप देखिएगा कि उसका वज़न उतनाही है जितना कि पहले था। इससे क्या मालूम होता है? इससे केवल यही मालूम होता है कि यद्यपि मोमबत्ती का कुछ अंश जल कर आप की नज़रों से ग़ायब हो गया तथापि उस अंश का नाश नहीं हुआ। वह किसी दूसरी अवस्था में परिणत हो गया।

इसी प्रकार प्राण-वायु के निकल जाने पर हम लोगों का पाञ्चभौतिक शरीर भी अपने पाँचों भूतों अथवा तत्त्वों में परिणत हो जाता है। मर जाने पर हमारा शरीर भी, जो जड़ पदार्थ है, नष्ट नहीं होता। वह भी दूसरी अवस्था में परिणत हो जाता है। अकसर लोग कहा करते हैं कि हमारा पाञ्च-भौतिक शरीर नष्ट हो जाता है। नहीं, वह नष्ट नहीं होता। किन्तु पहली अवस्था को छोड़ कर दूसरी अवस्था में हो जाता है।

हमारे ऋषियों का कथन है कि हमारा आत्मा भी अविनश्वर है। उसका नाश नहीं होता। उसका रूपान्तर ही हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्णजी ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी आत्मा की अविनश्वरता के विषय में श्रीमद्-भगवद्गीता में लिखा है :—

"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

२. Periodic Laws.

सारे मूल पदार्थों में भेद रहने पर भी उनमें समता का क़ायम रहना।

इस बात को विज्ञान-वेत्ता इस रीति से सिद्ध करते हैं :—

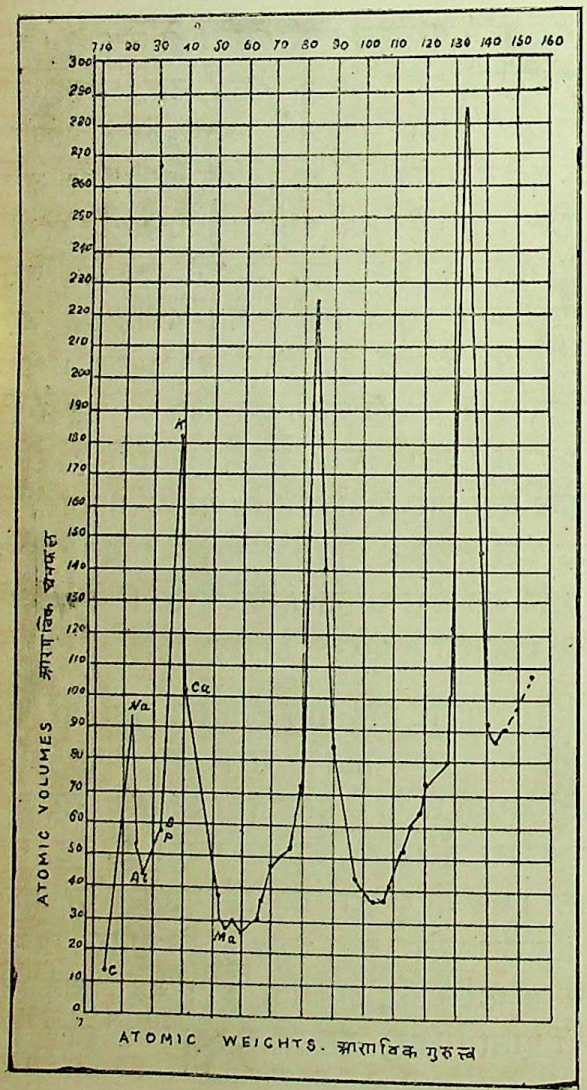

वे दो लकीरें बनाते हैं। इसका चित्र ऊपर देखिए। एक खड़ी दूसरी आड़ी। एक को आणविक घनफल (Atomic Volume) और दूसरी को आणविक गुरुत्व (Atomic Weight) मानते हैं। ये लकीरें परस्पर समकोण बनाती हैं। इन लकीरों को वे कई छोटे छोटे बराबर बराबर भागों में बाँट देते हैं। प्रत्येक मूल पदार्थ का आणविक गुरुत्व (At. Wt.) और आणविक घनफल (At. Vol.) अलग अलग होता है। वे इसी घनफल और गुरुत्व के द्वारा प्रत्येक मूल पदार्थ को एक एक चिह्न के द्वारा प्रकट करते हैं।

इसी प्रकार दूसरे मूल पदार्थों को भी माप कर एक एक चिह्न के द्वारा वे प्रकट करते हैं। बहुत से चिह्न एकत्र होजाने पर वे उन सब को मिला देते हैं। मिल जाने पर समतासूचक कई वक्र-रेखायें बन जाती हैं। ये वक्र-रेखायें आपस में बराबर तो नहीं होतीं, पर देखने में एक ही तरह की होती हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि सारे मूल पदार्थ भिन्न भिन्न होने पर भी समता क़ायम रखने की कोशिश करते हैं—अर्थात् सारे मूल पदार्थों के आणविक गुरुत्व तथा आणविक घनफल भिन्न भिन्न होने पर भी वे हमेशा उस वक्र-रेखा को उचित रीति से बनाने में एक दूसरे को सहायता देते हैं।

इसी तरह संसार में जितने प्रकार के मनुष्य हैं सब की प्रकृति भिन्न भिन्न प्रकार की हैं। यहाँ भी भेद रहने पर हम समता पाते हैं। अब आप यह प्रश्न कर सकते हैं कि समता कहाँ और किसमें है? देखिए, आप लोग संसार के भिन्न भिन्न कार्यों में व्याप्त रहते हैं। कोई किसी काम में लगे हैं कोई किसी में। सब का काम अलग, चिन्ता अलग, भावना अलग और कार्य्य-प्रणाली भी अलग ही है। हम लोगों की प्रकृति में इतनी विभिन्नता होने पर भी उसमें समता है। हम लोगों में से चाहे कोई कैसाही काम क्यों न कर रहा हो, पर हम सब आँख बन्द किये हुए उसी मार्ग की ओर दौड़ रहे हैं जिधर जाने से हमको सुख और शान्ति प्राप्त हो सकती है। यह सुख-प्राप्ति की इच्छा सबमें मौजूद है। हमको चाहे सुख मिले चाहे न मिले; पर हमारे सारे कामों का मुख्य उद्देश सुख-प्राप्ति ही है। मनुष्यों की प्रकृति में विभिन्नता रहने पर भी यहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समता दिखाई पड़ती है। इसलिए हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि मनुष्य की प्रकृति के साथ Periodic Laws का बहुत घना सम्बन्ध है।

३—Dulong & Pettits' Law.

सारे मूल पदार्थों की आणविक उष्णता का हर हालत में एकसा रहना।

विज्ञान-वेत्ताओं ने संसार में जितने मूल पदार्थों का आविष्कार किया है उन सब का आणविक गुरुत्व तथा आणविक घनफल अलग अलग देखा है। किन्तु उनके आणविक गुरुत्व तथा घनफल कितने ही भिन्न भिन्न क्यों न हों उनकी आणविक उष्णता हर हालत में बराबर ही रहती है।

अब हमें यह दिखलाना है कि Dulong & Pettits' Law से, और मनुष्य की प्रकृति से, क्या सम्बन्ध है। इस बात को प्रमाणित करने के पहले हमें इस बात को मान लेना चाहिए कि जैसे मूल पदार्थों में आणविक उष्णता नाम का एक गुण है वैसे ही मनुष्य के हृदय में भी दुःख नामक एक आवेग है। संसार के सारे जीव-जन्तु सुख-प्राप्ति के लिए तरह तरह के काम करते हैं। उनको करने में उन्हें सुख भी मिलता है और दुःख भी। ज्ञानी पुरुष यह समझते हैं कि इस सुख-दुःख-पूर्ण संसार में किसी को सुख कम, दुःख अधिक, और किसी को दुःख कम, सुख अधिक मिलता है। किन्तु ऐसा कहना भूल है। इस विचित्र माया-जाल में फँस कर सबके भाग्य में दुःख का बोझ बराबर ही रहता है। कितना ही कोई इस दुःख से छुटकारा पाने की कोशिश करे, तो भी ठीक आणविक उष्णता की तरह उसका दुःख हमेशा उसी के साथ रहा करता है। इससे यही कहा जा सकता है कि संसार के सारे मनुष्य समान-दुखी हैं। किसी का दुःख कम या अधिक नहीं है। अब इसका उदाहरण लीजिए:—

एक आदमी के पास अनन्त धन है। उसे खाने, पीने, पहनने, रहने का कुछ भी दुःख नहीं। किन्तु शायद उसके लड़का नहीं। इस शोक से उसका चित्त इतना दुखी रहता है कि उसके पास कुबेर की धन-संपत्ति रहने पर भी वह सुखी नहीं। उसका चित्त हमेशा उस दुःख की ओर लगा रहता है। उसे दिन में सुख नहीं, रात में शान्ति नहीं, खाने में चैन नहीं, और अच्छा कपड़ा पहनने में भी आनन्द नहीं। उसका चित्त सदा ही व्याकुल रहा करता है। इसी प्रकार, एक दरिद्र है। उसके पास खाने को नहीं है। किन्तु शायद उसकी स्त्री बड़ी पतिव्रता और लड़का भी बहुत सुशील है। इससे सारे दिन मिहनत मज़दूरी करके जब वह घर लौटता है तब उसे खाने को चाहे सूखी रोटी ही क्यों न मिले, किन्तु अपनी स्त्री से प्रेमालाप करने तथा पुत्र के मधुर वचनों को सुनने से उसका चित्त आनन्द से भर जाता है। उसी समय जब उसका छोटा बच्चा—बापू, धोती नहीं है—कह कर उसके पास आता है तब उसका सारा सुख स्वप्न हो जाता है। उसके हृदय पर अँधेरा छा जाता है! अब यदि इस दरिद्र और धनी के सुख-दुःख का मिलान करें तो आप को मालूम पड़ेगा कि दोनों के दुःख का परिमाण बराबर ही है।

इन बातों से सिद्ध होता है कि साधारण अवस्था में जड़ पदार्थों में आणविक उष्णता और मनुष्यों में दुःख का बोझ बराबर ही रहता है। किन्तु इतने ही से सारी बात पूरी नहीं होती। इस साधारण अवस्था के परे एक विशेष अवस्था भी है। उस अवस्था की भी बात सुनिए:—

विज्ञान-वेत्ता कहते हैं कि यों तो सारे मूल पदार्थों की आणविक उष्णता बराबर रहती है, किन्तु यदि वे पदार्थ धीरे धीरे ठंडे किये जायँ तो उनकी उष्णता बराबर कम होती जायगी। अन्त में वे पदार्थ उस अवस्था को प्राप्त होंगे जब उनमें उष्णता बिलकुल ही न रह जायगी। उस अवस्था को वैज्ञानिक भाषा में "Absolute Zero Temperature" कहते हैं। इसका यह अर्थ है कि उस अवस्था में उस पदार्थ में गरमी कुछ भी नहीं रह जाती। उस समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थों में किसी तरह का रूप-रङ्ग भी नहीं रह जाता। उनमें नियमित काम करने की शक्ति तक नहीं रह जाती। यदि इस अवस्था के कई भिन्न पदार्थ एक साथ रख दिये जायँ तो कोई यह नहीं कह सकता कि कौन क्या है। इस अवस्था को हमारी दार्शनिक भाषा में मुक्ति या निर्वाण कहने में विशेष अत्युक्ति न होगी। कहने का तात्पर्य्य यह है कि उस अवस्था को पहुँच कर उन पदार्थों ने मानों मुक्ति-लाभ कर ली है।

इसी प्रकार मनुष्य भी इस सुख-दुःख-पूर्ण संसार में रहते हुए भी अपने प्रयत्न से माया-जाल को काट कर निकल सकता है, अर्थात् वह भी मुक्ति-लाभ कर सकता है। इसका उपाय सुनिए। इस उपाय के बताने के पहले यह कह देना आवश्यक है कि मनुष्य का इस माया-जाल से क्या सम्बन्ध है। इस माया-जाल से हम लोगों का सम्बन्ध दूध और पानी का सा है। पानी में दूध को डाल देने से वह दूध भी पानी के सदृश हो जाता है। उस समय यह पता नहीं लगता कि कौन पानी है और कौन दूध। मनुष्य-जाति दूध है और माया-जाल पानी। इस पानीरूपी माया-जाल में जब दूध-रूपी मनुष्य छोड़ दिया जाता है तब वह उससे इतना मिल जाता है मानो वह अपने अस्तित्व तक को भूल जाता है। यह तो मनुष्यों की साधारण अवस्था है। इसके परे एक विशेष अवस्था भी है। वह अवस्था मुक्ति-लाभ की है। वह कैसे प्राप्त होती है सो भी सुनिए :—

संसार का स्वाभाविक नियम है कि यदि पानी में दूध मिला दिया जाय तो दोनों आपस में मिल जाते हैं। किन्तु यदि उस दूध से मक्खन निकाल कर पानी में छोड़ दें तो वह किसी तरह पानी से नहीं मिल सकता।

इसलिए ज्ञानी पुरुषों को उचित है कि अपने दूध-रूपी अस्तित्व को ज्ञान-रूपी मथनी द्वारा अच्छी तरह मथ कर मक्खन बना डालें। तब उसे पानी-रूपी माया-जाल में छोड़ दें तो मजाल नहीं कि वह पानी से एकदिल हो जाय। जब आदमी इस मक्खन की अवस्था को पहुँच जाता है तब मुक्त हो जाता है। उस समय उसमें सुख-दुःख अनुभव करने की शक्ति नहीं रह जाती। देखिए Dulong and Pettits' Law कैसे पग पग पर मनुष्य की प्रकृति से मेल रखता है।

४—Valency—एक मूल पदार्थ से दूसरे मूल पदार्थ की विशेष प्रीति।

जितने प्रकार के मूल पदार्थ आविष्कार किये गये हैं उनमें प्रायः सभी यौगिक क्रिया (Chemical action) के द्वारा एक दूसरे के साथ अच्छी तरह मिल जाते हैं। मिल कर वे एक नई चीज़ उत्पन्न कर देते हैं। अम्लजान (Oxygen) और उदजान (Hydrogen) दो भिन्न प्रकार के बाष्प हैं। जब ये दोनों यौगिक क्रिया के द्वारा किसी ख़ास परिमाण में एक दूसरे से मिलते हैं तब इनके मेल से पानी या भाप बनता है। इसी प्रकार जब अम्लजान (Oxygen), उदजान (Hydrogen) और गन्धक (Sulphur) यौगिक क्रिया के द्वारा किसी ख़ास परिमाण में एक दूसरे से मिलाये जाते हैं तब इनके मेल से गन्धक का तेज़ाब (Sulphuric acid) बन जाता है।

इससे यह साफ़ मालूम होता है कि यों तो भिन्न भिन्न प्रकृति वाले मूल पदार्थ यौगिक क्रिया के द्वारा एक दूसरे से मिलाये जा सकते हैं। किन्तु किसी पदार्थ को किसी दूसरे पदार्थ से विशेष प्रीति रहा करती है। जब ऐसे दो पदार्थ यौगिक क्रिया के द्वारा पास पास लाये जाते हैं तब वे तुरन्त एक दूसरे से मिल जाते हैं। इसी प्रकार चाँदी का खार तीन चीज़ों से मिल कर बनता है। इन तीनों को च, छ और ज से प्रकट किया है।

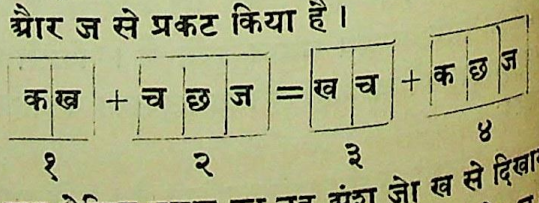

अब देखिए नमक का वह अंश जो ख से दिखाया गया है और चाँदी के खार का वह अंश जो च से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाया गया है—इन दोनों में बड़ी प्रीति है। इस लिए ज्योंही नं० १ और २ यौगिक क्रिया के द्वारा पास पास लाये गये त्यों ही ये दोनों चीज़ें आपस में मिल गईं और बाक़ी चीज़ें एक दूसरे से मिल गईं। चित्र नं० ३ और ४ को देखिए तो इसका पता लग जायगा। अब आदमियों की परीक्षा कीजिए :—

कल्पना कीजिए कि गोपाल और राम दो बड़े प्यारे मित्र हैं। इसके सिवा, गोपाल और राम प्रत्येक के अलग अलग चार चार मित्र हैं। अब इन दसों में आपस में जान-पहचान और मित्रता है। जब इनमें से कोई किसी से मिलता है तब वह उससे मित्र-भाव से बातचीत करता है। किन्तु जब गोपाल और राम से किसी जगह भेंट हो जाती है तब चाहे दोनों अपने अपने मित्रों के साथ ही क्यों न हों, किन्तु तो भी उन मित्रों को छोड़ कर वे आपस में मिल जाने की कोशिश करते हैं और अन्त में मिल भी जाते हैं। उनके दूसरे मित्र दूसरे रास्ते चले जाते हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि यद्यपि संसार के सारे मनुष्य एक दूसरे से मिल जाने के योग्य हैं तथापि उनमें उतनी अधिक प्रीति या आकर्षण नहीं हो सकता जितना कि ख़ास ख़ास मनुष्यों में होता है। इससे मालूम होता है कि Valency का माहात्म्य भी मनुष्य की प्रकृति से बहुत निकट सम्बन्ध रखता है।

हे मनुष्य-जाति! आपको अँगरेज़ी भाषा Highest of creation, उर्दू भाषा अशर्फ़ुल मख़लूक़ात और हिन्दी सर्व-श्रेष्ठ जीव क्यों कहती है—यह हमारी समझ में नहीं आता। आपकी प्रकृति तथा चरित्र में हमें तो कोई नई बात नहीं दिखाई देती। सारी बातें आपने छोटे छोटे निर्जीव जड़ पदार्थों से ही सीखी हैं—उन जड़ पदार्थों से सीखी हैं जिनसे आप, घृणा समझ कर, घृणा करते हैं और जिन्हें अपने से तुच्छ समझते हैं। पर आप उन जड़ पदार्थों से किसी बात में बढ़े चढ़े नहीं। आप भी एक जड़ पदार्थ ही हैं। प्यारे मित्र! आप किस भूल भुलैया में पड़े हैं? ज़रा अपने अस्तित्व को जानने की चेष्टा कीजिए।

श्रीनारायणचन्द्र चट्टोपाध्याय।

अभिलाषा।

प्यारे प्रेम प्रवीन, जन्म-जन्मान्तर में भी
रीझ रहे यह बनी, रहो तुम अन्तर में भी।
इष्टदेव हो तुम्ही हृदयमन्दिर के भीतर;
ध्यान धरूँ मैं सदा तुम्हारा हर्षित होकर ॥१॥
जो मैं होऊँ वृक्ष, लता बन कर तुम मिलना;
पाकर प्रेमप्रमोद गोद में खुल कर खिलना।
जो मैं होऊँ फूल कुञ्ज में सरस सुगन्धित,
तो बन कर मकरन्द सदा रहना अन्तःस्थित ॥२॥
जो मैं होऊँ कर्मभोग से काला विषधर,
तो प्राणाधिक, महामूल्य मणि होना सिर पर।
जो मैं होऊँ कठिन पहाड़ी पत्थर मर कर,
तो तुम होना विमल सुशीतल झरना सुन्दर ॥३॥
जो मैं होऊँ स्वच्छ सरोवर मीठे जल का,
तो तुम रखना रूप प्रफुल्लित अमल कमल का।
नीलाकाश अनन्त बीच जो मैं मिल जाऊँ,
निष्कलङ्क नव इन्दु-रूप में तुमको पाऊँ ॥४॥
जो मैं होऊँ अति-गभीर सागर तो प्रियवर,
मुझमें रहना मञ्जु मनोहर मोती बन कर।
किसी रूप में, कहीं रहूँ, मत होना न्यारे;
हर हालत में तुम्हें चाहता हूँ मैं प्यारे ॥५॥

रूपनारायण पाण्डेय।

पूर्व का पुराना विमान और पश्चिम का नया आकाश-यान।

आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों और उद्भावनाओं के द्वारा धरणीतल में विज्ञान का युगान्तर उपस्थित हो रहा है। पाश्चात्य पण्डित अद्भुत विज्ञान-बल से जो अलौकिक व्यापार संघटित कर रहे हैं उनको देखने से महर्षि विश्वामित्र की नूतन सृष्टि को अलीक कल्पना कहने का साहस किसी को नहीं हो सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाश्चात्य विज्ञान का प्रखर रश्मि-जाल जैसे हमारे ऊपर विकीर्ण होता है, वैसे ही भारत की विलुप्त रत्नराजि नवीन प्रकाश से प्रकाशित हो उठती है। पाश्चात्य नवीन विज्ञान, प्राच्य ज्ञान-राज्य में प्रज्वलित दीप का काम कर रहा है। अधोगति के गभीर गह्वर में निपतित हुए भारत की ज्ञान-रत्न-प्रभा अज्ञान-घनान्धकार में विलीन अवश्य हो गई है; परन्तु पाश्चात्य विज्ञान के प्रकाश से उसका तिमिरावरण दूर हो रहा है, और वह अपनी प्रभा को फिर भी दिगन्तरों में फैलाने का सुअवसर पा रही है।

ऊपर हमने महर्षि विश्वामित्र की नूतन सृष्टि का उल्लेख किया है। उसकी सीमा तक पहुँचने के लिए पाश्चात्य विज्ञान को अभी बहुत शताब्दियों की प्रतीक्षा करनी होगी। अस्तु, विश्वामित्र की सृष्टि के विषय में कुछ न कह कर, हम यहाँ पर आधुनिक विज्ञान के समतलवर्ती एक और ही प्राच्य आविष्कारक की कीर्ति-गाथा वर्णन करते हैं। प्राच्यों में मयदानव के समकक्ष आविष्करण-शक्ति और किसी में न थी। पुराणों में लिखा है कि वह अद्वितीय कारीगर था। परन्तु वह अद्वितीय यन्त्र-शिल्पी भी था, इस की ख़बर बहुत कम लोगों को है। उसके यन्त्र का परिचय दिलाने के लिए ही हमने उपस्थित प्रसङ्ग की अवतारणा की है। सुप्रसिद्ध ग्रन्थ कथा-सरित्सागर से हम विशेषतः इस विवरण का सङ्कलन करते हैं।

कथा-सरित्सागर में मय यन्त्र-शिल्प का प्रथम आविष्कारकारक माना गया है। इस ग्रन्थ के सूर्यप्रभलम्बक के प्रथम तरङ्ग में राजा चन्द्रप्रभ के पुत्र सूर्यप्रभ की यन्त्र-विद्या-शिक्षा मय द्वारा ही निष्पादित हुई थी। लिखा है—

"एवं मयेनाभिहितो राजा चन्द्रप्रभोऽब्रवीत्।
धन्याःस्मः पुण्यवानेष यथेच्छं नीयतामिति ॥ ३३ ॥
ततस्तमामन्त्र्य नृपं तदनुज्ञातमाशु तम्।
सूर्यप्रभं स सामात्यं पातालं नीतवान् मयः ॥ ३४ ॥
तत्रोपदिष्टवांस्तस्मै स तपांसि तथा यथा।
राजपुत्रः स सामात्यो विद्याः शीघ्रमसाधयत् ॥ ३५ ॥
विमानसाधनं तस्मै तथैवोपदिदेश सः।
येन भूतासनं नाम स विमानमुपार्ज्जयत् ॥ ३६ ॥
तद्विमानाऽधिरूढं तं सिद्धविद्यं समन्त्रिकम्।
सूर्यप्रभं स पातालान्मयः स्वपुरमानयत् ॥ ३७ ॥"

कथा-सरित्सागर में मय का जो संक्षिप्त इतिहास है उससे विदित होता है कि वह पहले अनार्यजाति के किसी सम्प्रदाय में था। अनन्तर अनार्यों का परित्याग करके आर्य-सम्प्रदाय में आया और आर्यों से उत्साहित होकर उसने इन्द्र की सभा का निर्माण किया। इसी से अनार्य लोग आर्यपक्षावलम्बी मय के ऊपर अत्यन्त कुपित हुए। उनके भय से मय विन्ध्याचल पर, भूगर्भ में, दुर्भेद्य विचित्र-चातुरी-पूर्ण एक पुरी बना कर रहने लगा। मालूम होता है, वही पुरी पाताल नाम से परिचित हुई है। मय-सम्बन्धी पूर्वोक्त इतिहास यहाँ पर उद्धृत किया जाता है :—

अस्ति त्रिजगति ख्यातो मयो नाम महासुरः।
आसुरं भावमुत्सृज्य शौरिं स शरणं श्रितः ॥ १२ ॥
तेन दत्ताऽभयश्चक्रे स च वज्रभृतः सभाम्।
दैत्यैश्च देवपक्षोऽयमिति तं प्रति चुक्रुधुः ॥ १३ ॥
तद्भयात्तेन विन्ध्याद्रौ मायाविवर-मन्दिरम्।
अगम्यमसुरेन्द्राणां ब्रह्माश्चर्यमयं कृतम् ॥ १४ ॥

कथा-सरित्सागर, मदनमञ्चुकालम्बक, तृतीय तरङ्ग।

कथा-सरित्सागर के पूर्वोक्त लम्बक में जहाँ मय-कन्या सोमप्रभा ने कलिङ्गसेना को स्वनिर्मित काष्ठमयी यन्त्रपुत्तलिका दिखलाई है, वहाँ ही हम मय की प्रथम यन्त्र-शिल्प-पारदर्शिता का साक्ष्य परिचय पाते हैं। वह कौतूहलजनक वर्णन इस प्रकार है :—

इत्युक्त्वाऽदर्शयत्तस्याः प्रोद्घाट्य बहुकौतुकाः।
सोमप्रभा काष्ठमयाः स्वमायायन्त्र-पुत्रिकाः ॥ १८ ॥
कीलिकाऽऽहतिमात्रेण काचिद् गत्वा विहायसा।
तदाज्ञया पुष्पमालामादाय द्रुतमाययौ ॥ १९ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काचित् तथैव पानीयमानिनाय यदृच्छया ।
काचिन्ननर्त काचिच्च कथालापमथाकरोत् ॥ २० ॥

अर्थात् सोमप्रभा ने, इतनी बात कह कर, काष्ठ-निर्मित यन्त्र-पुत्तलिका बाहर निकाल उनसे अनेक भाँति के कौतुक दिखाने लगी। कोई पुतली कील के आघात मात्र से ही आकाश में जाकर उसकी आज्ञा के अनुसार पुष्पमाला ले आई। कोई अपनी इच्छा से पानी ले आई। कोई नाचने लगी। कोई कथा-वार्ता कहने लगी।

इसके बाद का वर्णन और भी आश्चर्य-जनक है :—

ततः सोमप्रभाऽवादीद् राजन्नेतान्यनेकधा ।
मायायन्त्रादि शिल्पानि पित्रा सृष्टानि मे पुरा ॥ ४२ ॥
यथा चेदं जगद्-यन्त्रं पञ्चभूतात्मकं तथा ।
यन्त्राण्येतानि सर्वाणि शृणु तानि पृथक् पृथक् ॥ ४३ ॥
पृथ्वी प्रधानं यन्त्रं यद् द्वारादि पिदधाति तत् ।
पिहितं तेन शक्नोति न चोद्घाटयितुं परः ॥ ४४ ॥
आकारस्तोययन्त्रोत्थः सजीव इव दृश्यते ।
तेजोमयन्तु यद्यन्त्रं तज्ज्वालाः परिमुञ्चति ॥ ४५ ॥
वातयन्त्रञ्च कुरुते चेष्टा गत्यागमादिकाः ।
व्यक्तीकरोति चालापं यन्त्रमाकाशसम्भवम् ॥ ४६ ॥
मया चैतान्यवाप्तानि तातात्किन्त्वमृतस्य वत् (?)
रहस्यं चक्रयन्त्रं तत् तातो जानाति नापरः" ॥ ४७ ॥

कथा-सरित्सागर, मदनमञ्चुकालम्बक, तृतीय तरङ्ग।

अर्थात् सोमप्रभा कलिङ्गसेना के पिता कलिङ्गदत्त राजा से बोली:—राजन्! ये सब बहुविध कौशल-रचित यन्त्रशिल्प मेरे पिता ने बहुत समय पहलेही निर्माण किये हैं। यह जगद्रूप प्राकृतिक यन्त्र जैसे पञ्चभूतात्मक है वैसे ही यह यन्त्र भी पाञ्चभौतिक गुणों से युक्त है। जो यन्त्र पृथ्वीतत्त्व-प्रधान है, वह दरवाज़ा वगैरहः बन्द करता है; इसके बन्द किये हुए दरवाज़े कोई दूसरा नहीं खोल सकता। जल-यन्त्र से निर्मित आकार सचेतन की भाँति दिखाई देता है। तेजोमय जो यन्त्र है वह अग्निज्वाला बरसाता है। वायुयन्त्र गमनागमन क्रिया करता है। आकाश-यन्त्र वचन को अभिव्यक्त करता है। मैंने ये सब पिता से प्राप्त किये हैं, परन्तु अमृत का आधार जो चक्रयन्त्र है उसे पिता के सिवा दूसरा नहीं जानता।

इस जगह "जलयन्त्र" मूर्तियुक्त फ़व्वारे की कल ही प्रतीत होती है। "तेजोमय" यन्त्र आधुनिक गैस और इलेक्ट्रिक लाइट (Gas and Electric light) की कल के अनुरूप रहा होगा है। "वातयंत्र" प्रचलित साइकल और मोटरकार के सिवा और कुछ नहीं। "आकाशयन्त्र" से फोनोग्राफ के सदृश कल का बोध होता है। शेषोक्त चक्रयन्त्र कैसा था, इसका हाल मालूम नहीं। तथापि वह कोई चक्रविशिष्ट कल (Wheeled Machine) अनुमित होती है॥

कथा-सरित्-सागर में विमान-यन्त्र अर्थात् व्योम-यान का विस्तृत वर्णन है। उसके बहुल प्रचार का भी उल्लेख है। इससे यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है कि उस समय जन-साधारण भी इस प्रमोद से वञ्चित न थे। इस विषय में लिखा है :—

गत्वा तं यन्त्रतत्त्राणं वद प्राणधरं महत् ।
व्योमगामि विमानं नः प्रस्थानायोपकल्पय ॥ २२३ ॥

कथा-सरित्सागर, रत्नप्रभालम्बक, नवम तरङ्ग।

अर्थात्—प्राणधर! जाकर उस यन्त्र-शिल्पी से कहना कि हमारे पर्यटन के लिए एक बड़ा सा आकाशगामी व्योम-यान तैयार करो।

निर्दिष्ट वर्णन से जाना जाता है कि "विमान-यन्त्र" कोई ऐन्द्रजालिक कल न थी। किन्तु उसमें उच्च श्रेणी की कारीगरी थी और सचमुच ही वह व्योमगामी विमान था।

यह विमान-यन्त्र किस तरह चलाया जाता था और कितनी तेज़ी से दौड़ता था, यह भी सुन लीजिए :—

वातयन्त्रविमानञ्च तन्ममास्तीह मङ्कु यत् ।
योजनाष्टशतीं याति सकृत् प्रहतकीलिकम् ॥३८॥
आरुह्य स्वकृते ह्यस्मिन् वातयन्त्रविमानके ।
द्रुतं ततो गतोऽभूवं योजनानां शतद्वयम् ॥४४॥

इससे हम जान सकते हैं कि विमान-यन्त्र हवा के ज़ोर से ही चलता था। इसी से उसका नाम वात-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यन्त्र-विमान पड़ा। इस समय वैलून-यन्त्र (Balloon) जिस तरह गर्म हवा अथवा लघुबाष्प (Heated air or Light gas) से पूरित होकर उड़ता है, उसी तरह वातयन्त्र भी उड़ता था। यह बात निर्विवाद है। स्क्रू वगैरः घुमा कर जैसे कलें चलाई जाती हैं उसी तरह विमानयन्त्र कीलक घुमा कर, चलाया जाता था। एक बार कल के घुमाने से विमानयान की गति का वेग दो सौ योजन से आठ सौ योजन तक होता था। वेग-क्रम के सम्बन्ध में और भी प्रमाण मिलते हैं। यथा :—

प्रेरितेन पुनस्तेन विमानेन ख-गामिना।
ततोऽपि योजनशतद्वयमन्यदगामहम् ॥४५॥

कथा-सरित्सागर, रत्नप्रभालम्बक, नवम तरङ्ग।

अर्थात् एक बार और चाभी दे कर उस आकाश-गामी विमान से दो सौ योजन और भी मैं चला गया।

विमान की लम्बाई-चौड़ाई एक मनुष्य से ले कर हज़ार मनुष्यों तक के बैठने योग्य होती थी। जैसे :—

व्यजिज्ञपच्च सुमहद्विमानं कृतमस्ति मे।
यन्मानुषसहस्राणि वहत्यद्यावहेलया ॥२२८॥

क० स० सा०, र० प्र० ल०, ६ तरङ्ग।

अर्थात् यन्त्र-शिल्पी ने राजा से विज्ञप्ति की कि मेरे पास विस्तृत विमान प्रस्तुत है। वह सहज ही में एक हज़ार मनुष्यों को ले जा सकता है।

विमान-यन्त्र के उड़ने की बात हम लिख चुके। अब उड़ कर अभीष्ट स्थान पर उतरने का प्रमाण सुनिए:—

तत्राम्बरा दशाङ्कितमवतीर्णं वर-विमान-वहनं तम्।
सानुचरं नववध्वा युक्तं दृष्ट्वा विसिस्मिये जनता ॥२४२॥

एक हज़ार आदमियों को लेकर निःशङ्क आकाश से उतरते हुए उस विमान को देख कर लोगों को बड़ा विस्मय हुआ।

अर्थात् इस से स्पष्ट मालूम होता है कि विमान की सवारी जन साधारण में प्रचलित थी। उसको किसी प्रकार आपत्ति की शङ्का न थी।

वायु-यान आज कल के एरशिप ही के सदृश होता था।

सूर्यप्रभ ने मय से विमान-यन्त्र बनाना अच्छी तरह सीख लिया और विमान पर सवार हो कर दिग्विजयार्थ चीन तक बेरुकावट चला गया। यह विवरण भी कथा-सरित्सागर में है:—

एतस्य परिपन्थीहि कार्योऽस्मिन् खेचरेश्वरः।
विद्यते श्रुतिशर्म्माख्यः सोऽपि शक्रेण निर्मितः ४३१॥
सिद्धिविद्याप्रभावस्तु सहास्माभिर्विजित्य तम्।
एष विद्याधराधीश—चक्रवर्तित्वमाप्स्यति ॥३२॥
सोऽथ सूर्यप्रभो विद्या—प्रभावात्सचिवैः सह।
नाना देशान् विमानेन सदा बभ्राम लीलया ॥४०॥
अन्येद्युश्च विमानेन सह सूर्यप्रभो ययुः।
चन्द्रप्रभाद्याः सर्वे ते चीनदेशं स पौरवाः ॥१७५॥

विशेष उद्योग और चेष्टा करने पर भी पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने अपने आकाशयान की पूर्ण सिद्धता नहीं कर पाई। परन्तु पुराने भारतीय शिल्पियों ने इस विषय में चरम सिद्धि प्राप्त कर ली थी। इसमें कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं।

यहाँ पर हम प्राच्य-यन्त्रविद्या की पराकाष्ठा का कुछ उल्लेख करते हैं। नरवाहनदत्त ने राजकन्या कर्पूरिका से विवाह करना चाहा। उसकी खोज में कर्पूरसम्भव नगर का पता लगाते लगाते वह समुद्र के किनारे एक आश्चर्यमय स्थान में जा पहुँचा। वह स्थान एक समृद्धि-सम्पन्न शहर था। उस शहर के सम्पूर्ण निवासी काष्ठयन्त्र से निर्मित थे। परन्तु उनका व्यवहार सजीव मनुष्यों का जैसा देखकर वह अत्यन्त विस्मित हुआ। बाज़ार में जाकर उसने देखा तो सभी सौदागर और ग्राहक काठ ही के हैं और क्रय-विक्रय कर रहे हैं। केवल उनके बोलने से ही यह मालूम होता है कि वे निर्जीव हैं; अन्यथा उनका निर्जीवपन किसी प्रकार प्रकट नहीं होता। हाथी घोड़े भी सभी काठ के हैं; शहर के द्वार पाल भी वैसे ही हैं। जड़ इन्द्रियों में जिस प्रकार एक चेतन अधिष्ठाता है उसी प्रकार उन यन्त्र-मूर्तियों में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्टाचारसम्पन्न एक चेतन पुरुष रत्न-सिंहासन पर बैठा हुआ नरवाहनदत्त को दीख पड़ा।

यह पुरुष काञ्ची पुरी का रहने वाला था। मय-शास्त्र का पारदर्शी था। किसी कारण राजकोप से भयभीत हो कर विमान द्वारा उक्त स्थान में जा रहा था। उस निर्जन स्थान में अपना मन बहलाने के लिए काठ के मनुष्य निर्माण करके उनके बीच वह राजोचित ठाठ से रहता था। वह अपना "राज्यधर" नाम सार्थक कर रहा था। नरवाहनदत्त का उसने अद्भुत आतिथ्य किया। बात की बात में सब तरह की सामग्री वहाँ आगई। भोजनोपरान्त सब जगह साफ़ कर दी गई। यह सब कुछ हो तो गया; परन्तु कोई प्राणी यह सब काम करने वाला न दिखाई दिया। इसका वर्णन, जैसा कि कथा-सरित्सागर में लिखा हुआ है, सुनिएः—

प्रविश्य तत्र विपणी-मार्गेण च ददर्श सः।
काष्ठयन्त्रमयं सर्वं चेष्टमानं सजीववत् ॥ १० ॥
वणिग्विलासिनीपौरजनं जनितविस्मयम्।
विज्ञायमानं निर्जीव इति वाग्विरहात्परम् ॥ ११ ॥
क्रमाच्च गोमुखसखः सोऽन्तिकं राजवेश्मनः।
प्राप तादृशमेवात्र हस्त्यश्वादिविलोकयन् ॥ १२ ॥
विवेश चास्य सौवर्णपुरमस्तकशोभिनः।
अभ्यन्तरं स सचिवः साश्चर्यो राजसद्मनः ॥ १३ ॥
तत्र यन्त्रप्रतीहारवारनारीपरिश्रितम्।
जडानां स्पन्दने हेतुं तेषां चेतननामकम् ॥ १४ ॥
इन्द्रियाणामिवात्मानमधिष्ठातृतया स्थितम्।
रत्नसिंहासनाऽऽसीनं भव्यं पुरुषमैक्षत ॥ १५ ॥
× × × × ×
भार्यां परिच्छदो वा मे चिन्तिततस्तु न तिष्ठति।
तेन यन्त्रमयोऽत्रायं जनः सर्वः कृतो मया ॥ ५८ ॥
इतीहागत्य तत्रापि देवैकाकी करोम्यहम्।
राज्ञो लीलायितं राज्यधरो नाम विधेर्वशात् ॥ ५९ ॥
तद् देव! निर्मितेऽमुष्मिन् भवन्तोऽद्य पुरे दिनम्।
विश्राम्यन्तु यथाशक्ति परिचर्यापरे मयि ॥ ६० ॥
× × × × ×
बुभुजे तत्र चाहारान् ध्यानतोपस्थितान् शुभान्।
तेन राज्यधरेणाग्रे स्थितेन स समन्त्रिकः ॥ ६३ ॥
ततः केनाऽप्यदृष्टेन प्रमृष्टाहारभूमिकः।
अनुताम्बूलभोगं स तस्थौ पीतासवः सुखम् ॥ ६४ ॥

जिस कौशल से राज्यधर ने यन्त्रकाष्ठपुत्तलिका निर्माण की थीं उसी कौशल के उन्नत प्रयोग द्वारा उसने और भी सब अलौकिक काम किये थे। उसे हम वैद्युतिक यन्त्र की क्रिया कह सकते हैं। वैद्युतिक उपाय से, विना मनुष्य की सहायता के ही, भोजन परोसे जा सकते हैं, थालियाँ उठाई जा सकती हैं, पान खिलाये जा सकते हैं और शराब पिलाई जा सकती है। पुस्तकों की छपाई, सिलाई, जिल्दबन्दी आदि भी बिजली की कलों से होती है। इन बातों को प्रायः सभी जानते हैं। सुतरां राज्यधर के कौशल में ऐसी कोई बात नहीं जो असम्भाव्य हो।

राज्यधर को हमने मयशास्त्र का पारदर्शी कहा है। राज्यधर का भाई प्राणधर भी विचक्षण शिल्पी था। ये दोनों भाई शिल्पशास्त्र के पारगामी थेः—

तस्य राष्ट्रे नृपस्यावां तक्षाणौ भ्रातरावुभौ।
मयप्रणीतदार्वादिमायायन्त्रविचक्षणौ ॥ २२ ॥

कथा-सरित्सागर, रत्नप्रभालम्बक, नवम तरङ्ग।

युधिष्ठिर की महासभा के निर्माण से मय के अद्भुत कौशल का और भी एक प्रमाण मिलता है। मय दानव के आदेशानुसार उसके आठ हज़ार गगनचर आयुधधारी सेवक और राक्षस इस रमणीय महासभा का रक्षण करते थे; एवं आवश्यकतानुसार उठाकर उसे अन्यत्र भी ले जाते थे। यह बात महाभारत में लिखी हुई है।

वर्तमान समय में ईंटों के बने मकानों के स्थानान्तरित करने के समाचार सुन कर मनुष्य विस्मित होते हैं। मय भी Hydraulic Machine की भाँति किसी यन्त्र से मकानों को स्थानान्तरित कर देता होगा।

ऊपर के प्रमाणों से हम मय को ही यन्त्रशास्त्र का प्रधान प्रवर्तक कह सकते हैं—हम इसे प्राच्य संसार का एडीसन् (Edison) कह सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपसंहार में हम इस यन्त्र-विद्या के प्रादुर्भाव-काल के सम्बन्ध में एक कथा का उल्लेख करते हैं। मयकन्या सोमप्रभा के द्वारा की गई बुद्ध की पूजा के सम्बन्ध में लिखा है :—

ततो यन्त्रमयं यन्त्रं गृहीत्वा प्राहिणोत्तदा।
सोमप्रभा स्वप्रयोगाद् बुद्धार्चानयनाय सा ॥३८॥
स यन्त्रो नभसा गत्वा दूरमध्वानमाययौ।
आदाय मुक्तासद्रत्नहेमाम्बुरुहसञ्चयम् ॥३९॥
तेनाऽभिपूज्य सुगतान् भासयामास तत्र सा।
सोमप्रभा सनिलयान् सर्वाश्चर्यप्रदायिनी ॥४०॥

कथा-सरित्सागर, मदनमञ्चुकालम्बक, तृतीय तरङ्ग।

इससे प्रमाणित है कि बौद्ध युग में यन्त्र-विद्या का विशेष रूप से अनुशीलन होता था। डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र राय ने सिद्ध किया है कि बौद्ध काल में ही हिन्दू-रसायन-शास्त्र की उत्पत्ति हुई थी। उस काल में यन्त्रविद्या की भी वृद्धि होना सर्वथा सम्भव है।*

विद्यार्थी माँगीलाल शर्म्मा।

कृष्ण-कीर्तन।

(१)

कुण्डलमण्डितश्रवणयुग पीतवसन जगदीश।
वासं कुरु सह राधया मम हृदये गोपीश ॥
× × × ×
सोहत कुण्डल कान में पीतवसन जगदीश!
वास करहु राधा-सहित मेरे हिय गोपीश ॥

(२)

नन्दतनय तव सन्निधौ प्रार्थयामि हृदयेन।
श्रवणे कुरु मम निर्मले वेणोर्मृदुनिनदेन ॥
× × × ×
बिनवों हिय सों नन्दसुत तुम सों यह परि पाय।
कान करहु मेरे विमल मुरली-तान सुनाय ॥

(३)

कृष्णोरसि मुक्तावली धवलतरा प्रतिभाति।
नीलगिरौ मन्दाकिनी विमला यथा प्रयाति ॥
× × × ×
सोहत है हरि के हिये निर्मल मोतीहार।
नीलसैल पर जिमि लसत विमल गङ्ग की धार ॥

(४)

पीतवसनमतिसुन्दरं हरेर्मदनकदनस्य।
भाति यथा सौदामिनी मध्ये नीलघनस्य ॥
× × × ×
मदन-मानहर-कृष्ण-पट पीत मनोज्ञ सुहाय।
जैसे नीले मेघ में सौदामिनि-समुदाय ॥

(५)

किं पिबन्ति मम पदरसं मुनयोमृतं विहाय।
ज्ञातुमिदं बालो हरिः स्वपदं मुखे निनाय ॥
× × × ×
कत मम चरनोदक पियत मुनिजन अमृत विहाय।
यह जानन को बाल हरि मुख मेलत निज पाय ॥

(६)

अरे कृष्ण दधिभाजने किमिह क्षिपसि करञ्च।
वारयामि पतितं जननि पिपीलिका-निकरञ्च ॥
× × × ×
मोहन डारत हाथ कत तू दधि-मटकी मांहि।
जननि परीं चिउँटी बहुत काढ़तु हों मैं ताहि ॥

(७)

कण्टकितं कठिनं वनं मृदुल-चरण युगलेन।
मैव याहि माधव विजित-विकच-विमल-कमलेन ॥
× × × ×
जीत्यो निर्मल कमल को तुव कोमल युग-पाय।
वन कठोर काँटे बहुत माधव तहँ जनि जाय ॥

(८)

मुरलि त्वं कृष्णाधरं पिब दयितेव सदैव।
वंशजाहमिति कुरु मदं छिद्रितापि न मुधैव ॥
× × × ×
री मुरली हरि को अधर पीती रह दिनरात।
छिद्रित ह्वै पै मद न करु—"हूँ वंशज विख्यात" ॥

(९)

कृष्ण कलेवरमेव तव कृष्णं ताः प्रवदन्ति।
अतिकृष्णं तव मानसं कृष्ण या न जानन्ति ॥

---

* "प्रवासी" में प्रकाशित एक बँगला लेख का भावार्थ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

× × × ×

"तुव तन हीं कारो" वही—कहतीं तिया अजान।
अति कारो तुव हीय कर कृष्ण न जिनको ज्ञान॥

अक्षयवट मिश्र।

देवास का परमार-राजवंश (ज्येष्ठ शाखा)।

देवास के राजा उस प्राचीन परमार-राजवंश की सन्तान हैं जिसमें विक्रमादित्य और भोज जैसे क्षात्र-कुलचूड़ामणि नरेश उत्पन्न हुए। गत दो सहस्र वर्षों में इस परमार-वंश में ऐसे ऐसे वीरपुङ्गवों ने जन्म लिया जिनके नाम आज भी बड़े अभिमान के साथ स्मरण किये जाते हैं। परमारकुल-तिलक विक्रमादित्य न केवल मालवा ही के राजा थे, किन्तु उनका राज्य समग्र उत्तर भारत में, सिन्धु-देश से लगा कर वङ्गदेश तक, फैला हुआ था। सीदीयन (शक) लोगों को भारत से मार भगाने के कारण विक्रमादित्य को "शकारि" भी कहते हैं। विक्रम-संवत् उनके अतुल सामर्थ्य का उज्ज्वल प्रमाण है। वे संस्कृत के अच्छे पण्डित और परम विद्यानुरागी थे।

उनके बाद सन् ईसवी की आठवीं शताब्दी में राजा भोज हुए। उनके सिंहासनारूढ़ होने के पूर्व, सिन्धु और सतलज के बीच का देश परमार-राजों के हाथों से निकल गया था। परन्तु इस कमी की पूर्ति उन्होंने अपने राज्य की सीमा विन्ध्याचल के दक्षिण तक बढ़ा कर की। राजा भोज भी बड़े विद्या-प्रेमी और न्यायशील राजा थे। उनकी राज-धानी धारानगरी (धार) थी।

महाराज भोज के बाद आपस की लड़ाइयों के कारण परमार-कुल (परमार का अपभ्रंश "पवार" है) की शनैः शनैः अवनति होती गई। लगभग चार सौ वर्षों के भीतर ही तमाम विजित देश, एक एक करके, राज्य से निकल गये। केवल मालवा ही रह गया। इसी बीच में, इस वंश में, एक बड़ा प्रतापी राजा हुआ। उसने मालवा पर कुछ दिन राज्य करके अपनी शेष आयु अपनी कुल-देवी भगवती कालिका की आराधना में व्यतीत की। इस धर्म्मनिष्ठ और शान्तिप्रिय राजा का नाम जगदेव था।

आपस की लड़ाइयाँ दिन पर दिन बढ़ती ही गईं। यहाँ तक कि सन् ईसवी की तेरहवीं शताब्दी में मालवा भी इस वंश के हाथ से निकल गया। चौदहवीं शताब्दी में परमार-कुल की भिन्न भिन्न शाखायें मालवा परित्याग करके भारत के अन्य भागों में अपना अपना भाग्य आज़माने के लिए चली गईं। विक्रमादित्य और भोज के वंश की ज्येष्ठ शाखा अर्वाचीन मेवाड़ में जाकर बिजोलिया में रहने लगी। उसके समर-कौशल से प्रसन्न हो कर चित्तोड़ के महाराना ने इस वंश के राजा को मुख्य सरदार और भूमिया बना लिया। इन पवारों के वंशज आज भी बिजोलिया रियासत के शासक और उदयपुराधिपति के १६ मुख्य सरदारों में से हैं।

सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में बिजोलिया के राजकुल में भी विरोध उत्पन्न हो गया। उस समय के राजा के दो रानियाँ थीं। उनसे चार पुत्र हुए। पहली से एक और दूसरी से तीन थे। पहली रानी का इकलौता पुत्र शम्भूसिंह सबसे ज्येष्ठ था। परन्तु राजा का उस पर कोप था और दूसरों पर प्रेम। इस कारण राज-कुटुम्ब और दरबार में नित नये षड्यन्त्र रचे जाने लगे। शम्भूसिंह का वहाँ रहना कठिन हो गया। विवश होकर, और अपने पिता और छोटे भाइयों से वैर करना अनुचित तथा निन्द्य समझ कर, शम्भूसिंह अपनी पैतृक सम्पत्ति को अन्तिम प्रणाम करके महाराष्ट्र देश में चले गये। वहाँ अहमदनगर के निकट सुखबाड़ी नाम का एक गाँव बसा कर वहीं रहने लगे। अब भी यह गाँव अहमदनगर से १४ मील की दूरी पर बसा हुआ है। पर उसका पूर्व-नाम बिगड़ कर "सूपा" हो गया है। इस समय (अर्थात् सन् १६१५ ईसवी के लगभग) अहमदनगर का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलामी राज्य बहुत गिरी दशा में था । बहुत से साहसी पुरुष अपने अपने राज्य की स्थापना की धुन में लगे थे । परमार राजा शम्भूसिंह ने भी अपने लिए एक राज्य की नींव डाली, जिसमें अहमदनगर और पूना नाम के आधुनिक ज़िलों की भूमि थी । इधर शिवा जी ने भी दक्षिण में हिन्दू-साम्राज्य की नींव डाली । सन् १६६० ईसवी तक शिवा जी की सेना ने शम्भूसिंह के राज्य पर तीन हमले किये । पहले दो हमलों में शम्भूसिंह की जीत रही, परन्तु तीसरे में उनकी भारी हार हुई । तो भी उन्होंने शिवा जी की शरण नहीं ली । इस पराजय के थोड़े ही दिनों बाद दलवी नाम के एक पड़ोसी मराठे सरदार ने विश्वासघात करके उनको मार डाला ।

शम्भुसिंह का इकलौता पुत्र कृष्णाजीराव नाबालिग़ था । इस लिए उसकी विधवा माता के ऊपर राज्य की रक्षा और पुत्र की शिक्षा का भार पड़ा । इस राजनीतिनिपुण स्त्री ने शिवा जी के वैभव को दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ते देख कर उनकी शरण लेना ही उचित समझा । इस लिए उसने अपने १६ वर्ष के होनहार इकलौते पुत्र कृष्णाजी को शिवाजी के दरबार में भेज दिया । शिवाजी उस पर बहुत प्रसन्न हुए और उसके पिता के सब गाँव जागीर में दे कर उसे अपना सरदार बना लिया । यह घटना सन् १६८० ईसवी में शिवाजी के देवलोक होने के थोड़े ही दिन पहले हुई थी । शिवाजी के बाद मुग़ल-बादशाह औरङ्गज़ेब और मरहठों में बहुत दिनों तक लड़ाइयाँ होती रहीं । उनमें कृष्णाजीराव पवार के जेठे पुत्र बुबाजी ने अपने दो कनिष्ठ भाई, रायाजी और केरूजी, की सहायता से बड़ी शूरता दिखाई और मुग़ल-सेना को अहमदनगर ज़िले में प्रवेश करने से रोक दिया । बुबाजी की वीरता पर प्रसन्न होकर मरहठों के राजा राजाराम छत्रपति ने उनको "सप्त-सहस्र-सेना पति" की सामरिक उपाधि से विभूषित किया । बुबाजी के दो पुत्र थे:—कालूजी और सम्भाजी । कालूजी के समय में उसकी प्रजा बहुत सुखी रही । कालूजी के ४ पुत्र थे । बड़ा पुत्र कृष्णाजी, कालूजी के बाद सूपा की गद्दी पर बैठा । शाहू महाराज ने, सन् १७३८ ईसवी में, पहले बाजीराव के साथ तुकोजी राव पँवार और उनके चचेरे भाई ऊदाजी राव को उत्तरी भारत की चढ़ाई पर भेजा । इस चढ़ाई में राणोजीराव सेन्धिया और मल्हारराव हुलकर भी सम्मिलित थे । मरहटों ने मालवा जीत लिया । इस युद्ध में तुकोजीराव पँवार और उनकी सेना ने बड़ी वीरता दिखाई । इस लिए छत्रपति शाहू महाराज और उनके प्रधान सचिव पेशवा ने तुकोजीराव का बड़ा सम्मान किया । १७३९ में विजित मालवा उन चारों मरहटे सरदारों में बाँट दिया गया, जिन्हों ने इस चढ़ाई में प्रचण्ड पराक्रम दिखाया था । देवास और धार, अन्य परगनों सहित, तुकोजीराव पँवार और उदाजीराव पँवार को मिले । गवालियर रानोजीराव सेन्धिया को मिला और इन्दौर मल्हारराव हुलकर को । इस चढ़ाई में तुकोजीराव का उनके छोटे भाई जीवाजीराव ने अच्छा साथ दिया था । इस लिए उन्हों ने देवास स्वयं लेकर धार अपने भाई को दिया । इस प्रकार प्रायः चार सौ वर्ष बाद विक्रमादित्य और भोज की सन्तानों का मालवा में पुनरागमन हुआ ।

तुकोजीराव को शाहू महाराज से "प्रतिनिधि" की पदवी मिली । इस तरफ़ वे सूबेदार के नाम से विख्यात हुए । उन्होंने राजस्थान पर आक्रमण करके बहुतेरे राजपूत राजाओं से कर लिया और उन्हें अपने अधीन किया । १७५१ में राजस्थान पर चढ़ाई करते समय एक बार वे अजमेर में ठहरे । उस समय अकस्मात् ज़ोर से आँधी आई । जिस डेरे में वे थे उसका एक खम्भा उखड़ कर उनके माथे पर गिरा । उसी की चोट से उनका देहान्त होगया । उन के कोई पुत्र न था ; इस लिए उनके बाद उनके भतीजे प्रथम कृष्णाजीराव गद्दी पर बैठे । कृष्णाजीराव ने भी अपने राज्य की अच्छी वृद्धि की । बारह वर्ष तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवास की ज्येष्ठ शाखा के अधीश श्रीमान् महाराज सर तुकोजीराव पवार, के० सी० एस० आई० ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे मथुरा में रहे और गवालियर के प्रसिद्ध महादजी सेन्धिया के देहली-सम्बन्धी दाँव-पेंच में वे शामिल रहे। सन् १७८९ ईसवी में दक्षिण को जाते समय बरहानपुर में उन की मृत्यु हुई।

उन के भी कोई पुत्र न था। इस लिए उन के ज्येष्ठ भ्राता, सूपा के राजा के पुत्र, द्वितीय तुकोजी उनकी गद्दी पर बैठे। उन के शासनकाल में माननीय ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ, सन् १८१८ ईसवी की सन्धि हुई, जिस के कारण तुकोजीराव के छोटे चचेरे भाई देवास-राज्य की कनिष्ठ शाखा के प्रथम शासक हुए। सन् १८२८ ई० में द्वितीय तुकोजीराव का देहान्त हुआ। उन के बाद उनके पुत्र रुक्माङ्गदराव को राज्याभिषेक हुआ। १८५७ के बलवे में वे ब्रिटिश गवर्नमेन्ट के पूरे सहायक रहे। उनका विवाह श्रीमान् बड़ौदा-नरेश महाराज प्रथम सयाजीराव की दो राजपुत्रियों के साथ हुआ था। उन्होंने सूपा के जेष्ठ पँवारकुल के राजपुत्र को गोद लिया। १८६० में उनका देहान्त हुआ। उनके पश्चात् उनके दत्तक पुत्र द्वितीय कृष्णाजीराव गद्दी पर बैठे। जबतक वे नाबालिग़ रहे उन की माता महारानी यमुना बाई राजकाज देखती रहीं। महाराज कृष्णाजीराव का विवाह गवालियर के महाराज जयाजीराव सेन्धिया की राजपुत्री से हुआ था।

१८९९ में कृष्णाजीराव का शरीरान्त हुआ। तदनन्तर उनके ज्येष्ठ भ्राता श्रीमान् आनन्दराव पँवार नाना साहब, महाराज विश्वासराव बहादुर के ज्येष्ठ राजपुत्र, ता० ४ अप्रेल १९०० ईसवी को राजगद्दी पर बैठे। उनका पूरा नाम श्रीमान् महाराज, सप्त-सहस्र-सेनापति, प्रतिनिधि, सर श्री तृतीय तुकोजीराव पँवार, बापू साहब, महाराज बहादुर, के० सी० एस० आई० है।

महाराजा तृतीय तुकोजीराव का जन्म १ जनवरी सन् १८८८ ईसवी को हुआ था। आप इन्दौर के राजकुमार-कालेज (डेली कालेज) में, १८९९ में, भरती हुए। वहाँ की शिक्षा १९०३ में समाप्त करके अजमेर के मेव-कालेज में आप शिक्षा ग्रहण करने लगे। १९०५ में आप मेव-कालेज की परीक्षा में बड़ी योग्यता के साथ उत्तीर्ण हुए। तत्पश्चात् आप कुछ काल तक राज्यप्रबन्ध की शिक्षा पाते रहे।

शिक्षा में कोई त्रुटि न रह जाय, इस अभिप्राय से आपने तीन मास से अधिक तक भारत, ब्रह्मा और लङ्का में देशाटन किया। सन् १९०८ ईसवी में भारत-सरकार की ओर से आपको राज्यशासन-सम्बन्धी पूर्ण अधिकार प्राप्त हुए।

अभी आपको राज्य करते केवल चार ही वर्ष हुए हैं, परन्तु इतने ही थोड़े दिनों में राज्य में बहुत कुछ सुधार हुआ है और प्रजा पहले से अधिक सुखी है। आपके सुशासन से भारत-सरकार भी बड़ी प्रसन्न है। गत देहली-दरबार में श्रीमान् सम्राट् पञ्चम जार्ज ने आपको के० सी० एस० आई० की उच्च उपाधि से विभूषित किया। आपकी नाबालगी में राज्य पर बहुत ऋण था। परन्तु आपके सुप्रबन्ध से थोड़ेही दिनों में सब ऋण पट गया। भूमि का लगान यथाविधि निश्चित हो जाने से किसानों को बड़ा सुख हुआ है। शिक्षा पर आपकी अधिक रुचि है। राज्य में नये नये विद्यालय खुलते जाते हैं। आपको मकान बनवाने का भी शौक़ है। "श्रीआनन्द-भवन" और "एडवर्ड-स्मारक महराब" आपही की आज्ञा से बनी है। लग भग सभी महकमों में आपने सुधार किया है। आप इन्दौर के "डेली-कालेज" नामक मध्यभारतीय राजकुमार-विद्यालय की प्रबन्ध-कारिणी सभा के ६। ७ वर्ष से सदस्य हैं। आप "क्षत्रिय-मरहटा-शिक्षण-परिषद्" के दो वर्ष तक प्रधान रह चुके हैं। आपका विवाह कोलापुर-नरेश श्रीमान् महाराज सर शाहू क्षत्रपति की पुत्री के साथ, सन् १९०८ ईसवी में, हुआ। ४ अप्रेल १९१० ईसवी को आपके उत्तराधिकारी युवराज विक्रमसिंह-राव नाना साहब का जन्म हुआ। लग भग सौ वर्ष के अनन्तर देवास-राज्य को औरस उत्तराधिकारी मिला। इस लिए बड़ी ख़ुशी मनाई गई।

आपके प्रधान सचिव भी बड़े स्वामिभक्त और प्रजा के हितेच्छु हैं। देवास-राज्य (जेष्ठ शाखा) का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षेत्रफल ४४६ वर्ग मील, मनुष्य-संख्या ७४२५८ और आमदनी ५½ लाख है।

देवास के नरेशों को १५ तोपों की सलामी है। ये प्रत्यक्ष सन्धि-राजा (Treaty Chiefs) और श्रीमान् वाइसराय की वापसी मुलाक़ात के अधिकारी हैं। इस राज्य से भारत-सरकार या किसी अन्य एतद्देशीय राजा को कर नहीं दिया जाता।

शङ्कररावं कोठारी।

जापान पर बौद्ध धर्म का प्रभाव।

यद्यपि वर्तमान समय में हम बौद्ध धर्म के चिह्नों को स्पष्ट रूप से नहीं देखते, तथापि उसका जो प्रभाव हमारी शिक्षा, दीक्षा और सामाजिक उन्नति पर पड़ा है वह अकथनीय है। हमारे इतिहास में बौद्ध धर्म के प्रभाव की कमी नहीं। शिल्पकलाओं में हमारा नाम करने वाला बौद्ध धर्म ही है। अशोक के समान धार्मिक सम्राट् बुद्ध महाराज के उपदेश का ही परिणाम है। भारत के गुहामन्दिर और मूर्तियाँ बौद्ध धर्म्म की ही करामात हैं। यूरप के परोपकारी भाव की प्रशंसा करने वालों को यह सुन कर आश्चर्य होगा कि वहाँ पहले पहल चौदहवीं शताब्दी में, फ्रान्स में, केवल आदमियों के लिए अस्पताल खुले थे; किन्तु हमारे यहाँ मनुष्यों के लिए तो चिकित्सालय बहुत पहले से थे ही, किन्तु जीवजन्तुओं और कीड़े मकोड़ों के लिए भी, बौद्ध धर्म के प्रभाव से, ईसा से तीन सौ वर्ष पहले शफ़ाख़ाने खुल चुके थे। ये जन्तुओं के अस्पताल गुजरात में चीनी यात्री फाहीन को पाँचवीं शताब्दी में और हिवेनसांग को सातवीं शताब्दी में भी खूब उन्नत दशा में मिले थे। सड़कों के दोनों तरफ़ पेड़ लगाना, कुयें खुदवाना, लम्बी लम्बी नहरें निकालना, रास्ते में धर्म्म-शालायें बनाना—ये सब बातें बौद्ध धर्म ही की शिक्षा का फल-स्वरूप थीं। उसी के प्रभाव से हमारे यहाँ प्रजा-तन्त्र-राज्य और प्रणालीबद्ध साम्राज्य भी बड़ी उन्नत दशा को पहुँचा था। जिस राजनीति के नक़्शे यूरुप और अमेरिका में अब बजने लगे हैं वह भी हमारे यहाँ तेईस सौ वर्ष पहले निर्माण हो चुकी थी। ये तो अवान्तर बातें हुईं। यहाँ पर हम केवल यही दिखाना चाहते हैं कि जापान के लिए बौद्ध धर्म ने क्या क्या किया और उसका वहाँ वालों पर कितना प्रभाव पड़ा। यह सब हम स्वयं अपने मुँह से नहीं कहेंगे। जुलाई और अगस्त की "जापान मैगेज़ीन" में नागाइन नाम के एक जापानी सज्जन का एक निबन्ध इस विषय पर अँगरेज़ी में लिखा है। उसी का भावार्थ यहाँ दिया जाता है।

इसमें सन्देह नहीं कि बौद्ध धर्म जापान में भारतवर्ष से चीन और कोरीया द्वारा आया। किन्तु कब और कैसे आया, इस विषय में कुछ मत-भेद है। जापानी इतिहासकारों का कथन है कि सन् ५३२ ईसवी में, कोरिया के अन्तर्गत हकुशै राज्य के राजा ने जापान के सम्राट् किम्मेई को बौद्ध भगवान् की एक मूर्त्ति और कुछ बौद्ध-धर्म्म-सम्बन्धी हस्तलिखित पुस्तकें भेंट में भेजीं। उस मूर्ति के साथ यह उपदेश भी जापान आया कि जो कोई बौद्ध धर्म का स्वागत करेगा वह चिरकाल तक सुख भोगेगा और उसकी कोई भी प्रार्थना निष्फल न जायगी। जापान के सम्राट् की बौद्ध धर्म्म पर श्रद्धा होगई। उस का इस उपदेश पर विश्वास भी जम गया। उसकी प्रबल इच्छा हुई कि वह बुद्ध भगवान् की शरण में जाय। किन्तु लकीर के फ़क़ीर—परिवर्तन के दुश्मन—जापानी मन्त्रियों ने मिकाडो को डराया कि अपना पुराना धर्म—शिन्तो, पितृपूजा—छोड़ने से देवता रुष्ट हो कर हमें शाप देंगे। अपना पुराना धर्म्म बदलना श्रेय नहीं। अतएव मिकाडो किम्मेई ने उस मूर्ति को सोगा -नो-इनामे नाम के एक जापानी भक्त पुरुष को देदी। उस जापानी ने अपने मकान को एक बौद्ध मन्दिर के रूप में परिणत कर दिया। इसके बीच जापान में एक व्याधि फैली। लोगों ने कहा कि यह नवीन बौद्ध मन्दिर का ही फल है। अतएव

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह मन्दिर तुड़वा दिया गया। किन्तु मन्दिर के टूटते ही एक और भयानक महामारी फैली। इसका कारण बौद्ध मन्दिर का तोड़ा जाना माना गया। कुछ लोगों का विचार है कि जापानी इससे भी पहले बौद्ध धर्म्म से परिचित थे। इस सिद्धान्त की पुष्टि में वे लोग कहते हैं कि जापान का चीन और कोरिया से बहुत प्राचीन काल से सम्बन्ध चला आता है। अतएव यह सम्भव और स्वाभाविक भी है कि बौद्धधर्म्म का प्रचार जापान में इससे भी पहले हो गया हो। परन्तु जापान में बौद्धधर्म्म के प्रचार के विषय में अब तक ५३२ ईसवी से पहले का कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं। जापान के इतिहास में उल्लिखित है कि शोतो कूतेशी नाम का राजकुमार, जो सम्राज्ञी सुइको का मुख्तार था, बड़ी उच्च कक्षा का बौद्ध महात्मा था। उसका समय सन् ५९३ से ६२१ ईसवी तक है। यह भी लिखा है कि उस समय बौद्ध धर्म्म का प्रभाव बहुत बढ़गया था और वह प्रायः जापान का जातीय धर्म होगया था। जो बौद्ध धर्म जापान में फैला उसको हम महायान * कहेंगे, क्योंकि उसमें आडम्बर और मूर्तिपूजा इत्यादि का समावेश था। किन्तु मुक्ति का साधन ज्ञान, चित्तशुद्धि और आत्मीय पूर्णत्व ही माना जाता था। मुक्ति से उनका अभिप्राय पाप से मुक्त होना न था, किन्तु वासनाओं को दमन करना था। उनका जीवनोद्देश निर्वाण की प्राप्ति था। निर्वाण से उनका आशय उस शून्य दशा से था जिस में कोई भी वासना नहीं रह जाती। लौकिक जीवन को वे वासना, राग-द्वेष और अज्ञान का फल बताते थे। इस बात की खोज वे न करते थे कि कोई सृष्टिकर्ता या ईश्वर है या नहीं। स्वावलम्बन उन का मुख्य सिद्धान्त था, जिसके बल से वासना को दमन करते हुए वे निर्वाण को प्राप्त होना चाहते थे।

मिकाडो शिरकावा (सन् १०७४—१०७६ ईसवी) बौद्ध धर्म का बड़ा कट्टर अनुयायी था। उसने कई बौद्ध मन्दिर बनवाये, जिनमें से ये बहुत विख्यात हैं—सेईशोजी, होशोजी, सोन्नशोजी, इनशोजी। कई बड़े बड़े ज़मींदार भी बड़े भक्तिभाव से मन्दिर बनवाने लगे। बौद्ध पुजारी धर्म की पताका फहराने लगे। बड़े बड़े लोहार बौद्ध धर्म की आड़ पर और उसके नाम पर मनाये जाने लगे। नाटकों के अभिनयों और वक्तृताओं द्वारा धर्म्म का प्रचार बढ़ने लगा।

जापानियों को बौद्ध धर्म्म की पुस्तकें चीनी भाषा में प्राप्त हुई थीं। अतएव चीनी भाषा सीखने के उसी प्रकार जापानी लिप्सु होगये जिस प्रकार आज कल हमारे बान्धव अपनी मातृ-भाषा को छोड़ कर विदेशी भाषाओं की ओर लपकते हैं। भेद इतनाही है कि जापानी धर्म्म और ज्ञान के लिए चीनी भाषा सीखते थे, और हम लोग पेट भरने के लिए विदेशी भाषा पढ़ते हैं। आज पृथ्वी पर चाय के सबसे बड़े पियक्कड़ जापानी हैं (हाँ, काशमीरी भी दिन में कई बार और चार पाँच प्रकार की उबलती हुई गरम चाय पीते हैं)। जापानियों में चाय का पीना शिष्टाचार और जातीय धर्म का एक मुख्य अङ्ग है। यह चाय पीने की प्रथा भी इसी समय से चीन से आये हुए बौद्ध धर्म के कारण फैली। जापानियों के शिष्टाचार में भी परिवर्तन होगया। जैसा परिवर्तन आज कल हम में पाश्चात्य शिक्षा के कारण दिखाई देता है वैसाही उन में भी होगया था।

टोकू गावा के समय में बौद्ध धर्म्म ने राजकीय रूप धारण कर लिया। तब से वह सच मुच ही एक बड़ी प्रभावशाली शक्ति के रूप में परिणत होगया।

नेगाइ महाशय का कथन है कि जापान पर बौद्ध धर्म्म का प्रभाव चीन और भारतवर्ष से भी बढ़ कर पड़ा। जापान में बौद्ध धर्म्म ने बड़े बड़े राजनीतिज्ञ और नेता उत्पन्न किये।

* महाराज कनिष्क के समय से यह आडम्बरमूर्ति पूजायुक्त महायान (बड़े पथवाला) धर्म्म, जिसमें सब के लिए जगह थी, प्रचलित हुआ। इससे पहले वाला शुद्ध बौद्ध धर्म हीनयान कहलाता था। इसमें मूर्ति-पूजा और आडम्बर इत्यादि कुछ सम्मिलित न था।

लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्ध धर्म का सबसे अधिक प्रभाव जापान की ललित कलाओं पर देखने में आता है। पत्थर और धात के काग पर तो मानों भारतीय-बौद्ध-कला-कौशल की मोहर ही लगी है। जापान में लकड़ी पर मोटा काम पहले भी होता था; किन्तु लकड़ी, पत्थर और ताँबे इत्यादि पर मूर्त्ति-निर्माण करने की प्रथा बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ ही आविष्कृत हुई। इतिहास में लिखा है कि सम्राट् वितात्सु का राजदूत कोरिया से अपने साथ ५८४ ईसवी में बुद्ध देव की एक पत्थर की मूर्ति लाया था। इसके बाद फिर कई बार मूर्तियों के कई नमूने जापान में आये। उनको देख कर जापान के शिल्पकार बौद्ध-धर्म्म-सम्बन्धिनी मूर्तियाँ बनाने लगे। तत्पश्चात् वे अपने पुराने जातीय धर्म शिन्तो से सम्बन्ध रखने वाली मूर्तियाँ और जानवरों के चित्र भी बनाने लगे। बौद्ध-मन्दिरों की सजावट और सौन्दर्य के लिए भी दीवारों पर चित्राङ्कण होने लगा। मन्दिरों में काम आने वाले पात्र भी शिल्प की दृष्टि से बड़े सुन्दर और चित्रमय बनाये जाने लगे। जिस जापानी शिल्पकला की आज सारा संसार प्रशंसा करता है, वह बौद्ध धर्म के प्रभाव से ही उन्नत हुई है। चिकन का काम भी बौद्ध धर्म के ही साथ जापान में आया। पहले पहल सम्राज्ञी सुइको के समय में चिकन के काम से एक रेशम के परदे पर बुद्धदेव का चित्र बिना गया था। तब से चिकन का काम जापान में चल पड़ा और अब वह जिस उत्कृष्ट दशा को पहुँच गया उसे सभी जानते हैं। चित्रविद्या पर भी इस धर्म्म का बड़ा असर हुआ। दर्शन-शास्त्र और साहित्य के अध्ययन का उत्साह जापानियों को चीन से मिला। सरकार की ओर से जापानी विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने के लिए चीन भेजे जाने लगे। कुछ काल के पश्चात् नवीन विचारों के सम्पादन और विद्या ग्रहण करने के लिए विद्यार्थियों का चीन जाना बंद हो गया। तब बौद्ध धर्म्म ही जापान का एक मात्र विद्या-विषयक अवलम्बन रह गया। इस धर्म ने जापान में बहुत कुछ विद्या-प्रचार किया। जब जापान घरेलू लड़ाई में लिप्त था तब सरकार ने शिक्षा प्रचार करना छोड़ दिया था। उस अवसर पर सरस्वती ने बौद्ध मठों ही में शरण पाई। ये मठ विद्या के केन्द्र बन गये। बौद्ध मन्दिरों के विद्वान् पुजारी इस निविड़ अन्धकार के समय मानो विद्या के प्रज्वलित द्वीप थे। अस्तु। नवीन शिक्षा-प्रणाली और नवीन युग के आरम्भ होने तक जापान की शिक्षा बौद्ध पुजारी और परिव्राजकों ही के हाथों में थी।

बौद्ध धर्म्म ने जापानियों को सुशील और उदार-बुद्धि बना दिया। पुराने जापानी धर्म, शिन्तो, के देवताओं ने भी बौद्ध मन्दिरों में स्थान पाया। इस प्रकार मत-भेद के कारण जो द्वेष और वैमनस्य बहुधा हुआ करते थे वे जड़ से उखड़ गये। जापानी चाहे किसी मत का अनुयायी हो, उससे उसकी जातीयता और स्वदेशानुराग में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

जापानियों में प्राकृतिक सौन्दर्य से जो असीम अनुराग पाया जाता है वह भी बौद्ध धर्म का ही फल है। सौन्दर्य-प्रेम जापानियों की रग रग में भरा हुआ है। उनकी रहन-सहन सौन्दर्यमय है। आचरण सुन्दर, शिल्प सुन्दर और साहित्य सुन्दर। सभी सौन्दर्यमय। इस सौन्दर्य-प्रेम का सञ्चार क्रमशः इस प्रकार हुआः—विख्यात बौद्ध मन्दिर बड़े रमणीय और सुन्दर स्थानों में बने। इन मन्दिरों को जानेवाले यात्रियों को अति मनोहर स्थानों से होते हुए जाना होता है। मन्दिरों को परिवेष्टित किये हुए सौन्दर्यमय जगत् कब उपासना के लिए जाने वाले यात्रियों पर अपना लाभदायक प्रभाव—सुन्दरता—प्रेम का जादू—डाले बिना रह सकता है? और तुर्रा यह कि जापान में पहाड़ों पर मन्दिर उस समय बनने लगे थे जब यूरप में लोग पहाड़ों से डरते थे। वे समझते थे कि पहाड़ और खाड़ियों में भूत-प्रेत, दैत्य, दानव इत्यादि निवास करते हैं। इधर जापानियों का ग्रामीण जीवन से प्रेम बढ़ा और उधर यूरप के पढ़े लिखे 'सभ्य' लोग ग्रामीण जीवन से दूर भागने लगे। ग्रामीण जीवन मूढ़ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अड्डा समझा जाने लगा। जापानियों का काव्य-साहित्य ग्रामीण-जीवन की महिमा और सौन्दर्य की शोभा के गुण-गान से आप्लावित हो चला। जङ्गली पशु-पक्षियों से प्रेम और छोटे छोटे कीड़ों पर भी लम्बी लम्बी कवितायें रची जाने लगीं। इस समय तो ग़रीब से भी ग़रीब जापानी की यही इच्छा रहती है कि, चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो, पर घर के पास एक बाग़ीचा अवश्य होना चाहिए। बाग़ीचे की ख़ूबी यह है कि उस पर प्रकृति के स्वाभाविक सौन्दर्य की मोहर में मनुष्य के हाथों की बू न हो।

खान-पान, रहन-सहन और रीति-रस्म पर भी बौद्ध धर्म का प्रभाव पड़ा। जापानी मांस-भक्षी थे और आज भी मांस-भक्षी हैं। बौद्ध धर्म मांस-भक्षण का निषेध करता है। जापानियों पर इसका इतना अवश्य असर हुआ कि वे लोग किसी आत्मीय की मृत्यु पर मांस नहीं खाते। कुछ लोगों ने तो बिलकुल छोड़ भी दिया है। जीवजन्तु-रक्षिणी सभायें भी स्थापित हैं। जापानी बड़े कर्म्मशील और दुनियादार होते हैं। जिस बात को वे आर्थिक और शारीरिक दृष्टि से उपयोगी समझते हैं उसे वे अपना लेते हैं। पाश्चात्य जातियों से संसर्ग होने से, अपने शारीरिक बल को बढ़ाने के लिए ही, वे मांसाहारी हो गये हैं।

मनुष्य के मृत शरीर को जला देने की प्रथा सब से पहले हिन्दुओं ने ही चलाई थी। जहाँ जहाँ भारतीय बौद्ध धर्म्म गया वहाँ वहाँ यह प्रथा भी पहुँची। जापानियों ने अब इस प्रथा को भली भाँति स्वीकार कर लिया है और वे मुरदों को जलाने लगे हैं।

ज्येष्ठ पुत्र के सयाने होने पर बाप घर का भार पुत्र के सर पर रख कर आप अपना अधिक समय ईश्वर-भजन में लगाता है। यह एक प्रकार का वानप्रस्थ धर्म है। यह रिवाज साधारण लोगों से राजघराने में भी पहुँचा है। उम्र ढलने पर सभी सम्राट् तथा अमीर-उमरा राजकाज और रियासत का काम लड़के को सौंप कर वानप्रस्थ-वृत्ति स्वीकार कर लेते हैं। बुद्ध भगवान् ने कहा भी है :—"मनुष्य को अपना सारा जीवन दुनियादारी में ही नहीं बिताना चाहिए"—अर्थात् गृहस्थ के पश्चात् वानप्रस्थ-आश्रम में प्रवेश करना उचित है।

हाँ, वासना-दमन के उपदेश और वैराग्य-वृत्ति के आदर्श ने जापानी समाज को कुछ हानि अवश्य पहुँचाई। अच्छे अच्छे विद्वान् जापानियों के दिमाग़ में यह ख़याल समा गया कि बुद्ध भगवान् चाहते थे कि मनुष्य सांसारिक बन्धनों को तोड़ कर माँ-बाप, स्त्री-पुत्र इत्यादि की माया-ममता छोड़, विरक्त हो जाय और निर्वाण-साधन के लिए योग और यात्रा इत्यादि धार्मिक ढकोसलों में लग जाय। अतएव कुछ समय तक सत्पुरुषों का यह मानो मुख्य धर्म ही हो गया था कि दण्ड-कमण्डलु ले कर तीर्थ-यात्रा करते फिरें। ज़िससे अनेक लाभ हुए उससे यदि एक हानि भी हो गई तो चिन्ता नहीं।

मुकुन्दीलाल।

गृह-स्मरण।

अनुजवर, नहीं है चित्त मेरा ठिकाने,
स्थिर हृदय न होता, आज, हा क्यों, न जाने।
रह रह सुधि आती गेह की भ्रान्ति-युक्त ;
निमिष भर न मेरा बीतता शान्ति-युक्त ॥१॥
अहह ! उठ रहे हैं भाव ये भीतिकारी ;
विविध विषम चिन्ता दे रही दुःख भारी।
पल पल अति पीड़ा पा रहा मैं घनिष्ट,
कुशल कर हरे ! तू हो न कोई अनिष्ट ॥२॥
अशकुन बहु होते, कांपते प्राण मेरे,
विकट कटक जी को भीति के आज घेरे।
अनुज, कुशल तो है गेह में सर्व भांती ?
धड़क यह रही है व्यर्थ ही हाय छाती ॥३॥
स्वगृह-गमन को हैं प्राण मेरे अधीर,
उड़ कर घर जाता, मैं हुआ क्यों न कीर ?
परवश पर मेरा हो गया है शरीर ;
कब उड़ सकता है पञ्जराबद्ध कीर ? ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवन-गमन की कीं युक्तियां जो अनेक,
सफल न उन में से हो सकी हाय एक।
मन कुछ न समाता क्या करूँ मैं उपाय,
विषम विषमयी है दासता हाय ! हाय ! ॥५॥
स्वगृह-कुशलता की शीघ्र ही वृत्त देना,
अनुनय यह मेरा हे सखे ! मान लेना।
पल पल मुझको है बीतता कल्प जैसा,
स्वगृह-जनित होता प्रेम है मित्र ऐसा ! ॥६॥
पाने को निज गेह की कुशलता-वार्त्ता सुशान्तिप्रदा
कैसे अस्थिर-चित्त हाय ! रहते, देखो, प्रवासी सदा।
ऐसा ही अनुराग-युक्त घर का होता दृढ़ाकर्षण;
हे भाई ! घर शान्ति का सदन है, स्वर्गीय सौख्यासन*॥७॥

लोचनप्रसाद।

स्वामी दयानन्द सरस्वती का वेद-भाष्य और अध्यापक मैक्समूलर।

लाहोर के देव-धर्म्म के प्रवर्तक और आर्य्य-समाज में परस्पर ३६ का सम्बन्ध है। इनकी आपस में कभी नहीं बनती। एक न एक छेड़ छाड़ चली ही जाती है। देव-समाज से एक मासिक पुस्तक अँगरेज़ी में निकलती है। उसका नाम है:—"विज्ञान-मूलक धर्म्म"। उसके जुलाई १९१२ के अङ्क में सम्पादक ने कुछ पत्र-व्यवहार प्रकाशित किया है। ये पत्र देवसमाज के प्रतिष्ठाता अग्निहोत्रीजी और परलोकवासी अध्यापक मैक्समूलर के हैं। पत्र १२ वर्ष के पुराने हैं। उन्हें इतने दिन बाद प्रकाशित करने का अभिप्राय क्या है, सो बताने की ज़रूरत नहीं। अभिप्राय कुछ भी हो, यदि मैक्स-मूलर के पत्रों में भूल नहीं, तो उनसे उनके लेखक की राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती और सायन तथा महीधर के वेदभाष्यों के विषय में, सर्व-साधारण को अच्छी तरह मालूम हो सकती है। इसी से इस पत्र-व्यवहार का मतलब हिन्दी में नीचे दिया जाता है।

देव-धर्म-मिशन का दफ़्तर,
लाहोर, १४ जनवरी १८९१

अध्यापक मैक्स मूलर की सेवा में,
७, नोरहम गार्डन्स,
आक्सफ़र्ड, इँगलैंड।

प्रिय महाशय,

फ़ीरोज़पुर, पञ्जाब, से "आर्य्य-गज़ट" नाम का एक उर्दू-पत्र आर्य्य-समाज की तरफ़ से निकलता है। आप जानते होंगे कि आर्य्य-समाज उस धर्म्म-संस्था का नाम है जिसके प्रवर्त्तक पण्डित दयानन्द थे और जो उन्हीं के विचारों और शिक्षाओं का प्रचार करती है। हाल ही में "आर्य्य-गज़ट" में एक लेख निकला है, जिसका लेखक कहता है कि स्वार्थी लोगों ने, समय समय पर, हिन्दूधर्म्म-पुस्तकों में मनमाना मिश्रण किया है। वह यह दोष आप पर भी आरोपण करता है। वह कहता है कि आप ने भी वेदों में कितने ही स्वरचित मन्त्र मिला दिये हैं। वह वेद के किसी ऐसे नये संस्करण का नाम नहीं बतलाता है जिसमें आपके रचे हुए मन्त्रों का सन्निवेश हुआ हो; परन्तु उसने आप के रचे हुए एक वेद-मन्त्र को उदधृत किया है। वह ज्यों का त्यों नीचे दिया जाता है:—

मत्स्य—सूक्तम्।

लक्ष-नामा मत्स्यो देवता, गायत्री-छन्दः, मोक्षमूलर ऋषिः।
लक्ष नामानमद्भुतमहामत्स्या पुरू-प्रियं सखायोऽभिप्रगायन ॥१॥
सुमक्षितःसमुद्र आसु रक्षितो नदीषु च सनः सनुष्ट आगमत ॥२॥
मत्स्यःपूर्वेभि ऋषिभिरीड्यो नृतदेवता सलक्ष्मीमेह वक्षति ॥३॥
इदं समेत पश्यत रोहिन्मांसमुपेशसां परे रजतं न शोभते ॥४॥
पक्षादिः राजवीतया स्वादिष्टया सुषिक्तो स तस्यो धारयः ॥५॥
आदिचारं, सुसंदृशं इह सधस्थ उश्मसि नृभ्यो नारिभ्यो अथवे ॥६॥

---

* अपने पराधीन प्रवासी मित्र के पत्र के आधार पर लिखित लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप इस देश और अन्य देशों में भी बहुत प्रसिद्ध हैं। आप संस्कृत के बड़े भारी विद्वान् समझे जाते हैं। मालूम पड़ता है कि उक्त लेख के लेखक ने आप के विषय में जो कुछ लिखा है वह जान बूझ कर सत्य के ऊपर पर्दा डालने और आप को बदनाम करने के लिए लिखा है। वह चाहता है कि लोग आप को स्वार्थी और प्रवञ्चक समझें और आप के द्वारा की गई वेदों की टीका पर पण्डित दयानन्द के उस वेदभाष्य के मुक़ाबले में, जिसमें प्रत्येक वेद-मन्त्र खूब ही तोड़ा-मोड़ा गया है और जिसमें मन्त्रों के मनमाने अर्थ किये गये हैं, लोग कुछ भी विश्वास न करें। *

उस लेख को एक दूसरे पत्र ने भी उद्धृत किया है। इससे मालूम पड़ता है कि लोग उसे पढ़ कर बहुत बहक जायँगे। क्या आप कृपा करके इस विषय में कुछ लिखेंगे? आप का जो उत्तर आवेगा वह सत्य के पक्ष के समर्थनार्थ हमारे मिशन के पत्र में उद्धृत कर दिया जायगा।

आप का

एस० एन० अग्निहोत्री,
अधिष्ठाता, देव-समाज।

और

प्रवर्तक-देव-धर्म्म-मिशन।

पुनश्च

जब यह पत्र लिखा जा चुका था तब मालूम हुआ कि इसी विषय का एक लेख लाहोर की "आर्य्य-पत्रिका" में भी निकला है। मैं उक्त पत्रिका की उस प्रति को अन्य काग़ज़ों के साथ भेजता हूँ। जिन दो पाराग्राफ़ों में आपका ज़िक्र है उन पर मैंने निशान लगा दिया है।

* * * *

इस पत्र का जो उत्तर आया वह भी नीचे उद्धृत किया जाता है:—

आक्सफ़ोड,
७ फरवरी, १८९१।

प्रिय महाशय,

मैं आपका बड़ा ही कृतज्ञ हूँ जो आपने आर्य्य-गज़ट के कुछ अंश और "आर्य्य-पत्रिका" की एक कापी भेजने की कृपा की। आप के भेजे हुए काग़ज़ बड़े ही मनोरञ्जक हैं। परन्तु शायद ही उन पर किसी ने गम्भीरता-पूर्वक विचार किया हो। आप को मालूम होगा कि हाल ही में स्वीडन के प्रधान नगर स्टाकहाल्म में पूर्वीय भाषाओं के विद्वानों का एक सम्मेलन हुआ था। एक दिन वहाँ के बादशाह ने हम लोगों को भोज दिया। उसमें यह निश्चित हुआ कि हम में से हर आदमी एक एक प्रकार के भोज्य पदार्थ पर अपनी अपनी पूर्वी भाषा में कविता रच कर वहाँ पढ़े। मेरे ऊपर "सालमन, सास रायल" (Salmon, Sauce Royale) नाम के भोज्य पदार्थ पर वैदिक संस्कृत में कविता रचने और उसका गुण गाने का भार रक्खा गया। "सालमन" को स्वीडिश भाषा में "लक्ष" भी कहते हैं। अतएव मुझे इसी नाम का प्रयोग संस्कृत में करना पड़ा।

मुझे डर था कि शायद मेरी रचना वैदिक व्याकरण के अनुसार न हुई हो और मैंने स्वर-सम्बन्धी भूलें भी की हों। परन्तु मुझे इस बात की ज़रा भी आशा न थी कि मुझ पर वैदिक मन्त्रों के गढ़ने का दोषारोपण किया जायगा। मुझे सायन और महीधर के वेद-भाष्यों पर भी अन्ध-विश्वास नहीं। सायन-कृत वेद-भाष्य का एक नया संस्करण मैंने अभी प्रकाशित किया है। मैं सायन की विद्वत्ता का अवश्य क़ायल हूँ; परन्तु मैं उनकी सम्मति और

* "Now to us it seems a clear misrepresentation and fabrication of facts, made with a view to mislead the people into the belief that Professor Max Muller, who is so famous here, as well as in other countries, as an authority on Sanskrit literature, is a dishonest and interested man and his authority about the Vedas should no longer be believed against that of Pundit Dayanand (who has simply twisted and tortured every text of the Vedas while giving his false meanings and interpretations.)"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निष्कर्षों से सहमत नहीं, दयानन्द सरस्वती से सहमत होना तो दूर की बात है।

भवदीय

मैक्समूलर।

पुनश्च

मैंने देव-धर्म्म-मिशन की पुस्तकों को बड़ी रुचि से पढ़ा।

* * * *

इस के अनन्तर अध्यापक मैक्समूलर का एक पत्र और भी आया। वह भी नीचे उद्धृत किया जाता है:—

७–नारहम गारडेन्स,
आक्सफर्ड, २४ फरवरी, १८९१

श्रीमान् महाशय जी!

आप ने जो काग़ज़-पत्र भेजे उन के लिए मैं आप को हृदय से धन्यवाद देता हूँ। दयानन्द सरस्वती के विषय का लेख पढ़ कर मेरे वे सन्देह पुष्ट हो गये जो मेरे चित्त में उनके सम्बन्ध में थे। मैं अभी तक समझता था कि धार्म्मिक विषयों में वे बड़े ही कट्टर, या उससे भी कुछ अधिक, थे। अतएव वे अपने ऋग्वेद-भाष्य के उत्तरदाता नहीं। परन्तु मुझे यह जानकर बड़ाही दुःख हुआ कि वे अपने धार्म्मिक जोश की आड़ में कोई चाल भी चलते थे। * तथापि मैं यह माने बिना नहीं रह सकता कि उनमें कुछ अच्छी बातें भी थीं, और अन्य सुधारकों की तरह वे भी अपने अनुयायियों और खुशामदियों द्वारा गुमराह कर दिये गये थे।

बड़े ही दुःख की बात है कि उनके किये गये ऋग्वेद और यजुर्वेद के भाष्यों पर इतना अधिक धन व्यय किया गया। ये दोनों भाष्य उनकी बहकी हुई बुद्धि की निपुणता के नमूने और सौगात हैं। मुझे इस बात पर आश्चर्य्य नहीं जो केशवचन्द्र सेन, दयानन्द सरस्वती से सहमत नहीं हो सके।

आपका,
मैक्समूलर।

पुनश्च

मुझे इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं कि आप के देव-धर्म्म-मिशन के सिद्धान्तों से मेरी पूर्ण सहानुभूति है।

---

* "I am sorry to hear that there was method in his madness."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

महाकवि फ़िरदौसी।

फ़िरदौसी फ़ारसी का महाकवि था। उसका असली नाम अबुल क़ासिम मंसूर था। ९४१ ईसवी के लगभग उसका जन्म हुआ था। उसकी जन्म-भूमि फ़ारस के तूस प्रान्त में शादाब नाम का गाँव है। उसके पिता का नाम मौलाना अहमद था। उसके पूर्वज तूस के पुराने निवासी थे। कुछ ज़मींदारी भी इन लोगों के पास थी।

फ़िरदौसी फ़ारसी और अरबी दोनों भाषाओं का पण्डित था। फारसी-साहित्य का वह बहुत बड़ा ज्ञाता था। ईसा की सातवीं शताब्दी तक फ़ारस का टूटा फूटा इतिहास केवल कहानियों और गीतों में ही पाया जाता था। नौशेरवाँ ने उसे लेखबद्ध कराया। ९७७ ईसवी के लगभग दक़ीक़ी नाम के एक शायर ने उस इतिहास का संशोधन और परिवर्त्तन आरम्भ किया। परन्तु इसके थोड़ेही समय के उपरान्त एक नौकर ने उसे मार डाला। उस समय फ़िरदौसी की उम्र ३३ वर्ष की थी। फ़िरदौसी ने इस काम को करना चाहा और अपने एक मित्र के द्वारा दक़ीक़ी का लेख और इतिहास-सामग्री शाही दरबार से प्राप्त की। राज्य उस समय महमूद ग़ज़नवी का था। उसे भी साहित्य से प्रेम था। उसने सात बड़े बड़े शायरों को इस काम के लिए अपने यहाँ रक्खा। इनमें फ़िरदौसी भी था। एक दफ़े महमूद पूर्वोक्त शायरों के साथ बैठा था। उस समय उसने फ़िरदौसी की काव्यनिपुणता की परीक्षा करनी चाही और उसे आज्ञा दी कि कुछ कहो। फ़िरदौसी ने तत्काल ही

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुलतान महमूद के प्यारे सेवक अयाज़ की प्रशंसा में यह पद्य कहा :—

مست ست بتا چشم تو و تیر بدست
بس کس که زتیرچشم مست تو بخست
گر پوشد عارضت زره عذرش هست
کز تیر بترسد همه کس خاصه زمست

अक्षरान्तर—

मस्त्स्त बुता चश्मे तो व तीर बदस्त।
बस कस कि ज़ितीरे चश्मे मस्त तो बख़स्त॥
गर पोशद आरज़त ज़िरह उज़रश हस्त।
कज़ तीर बतरसद हमा कस ख़ासः ज़िमस्त॥

हे प्रिय, तेरी आँख मस्त है और तीर तेरे हाथ में है। बहुत आदमी तेरी मस्त आँख के तीर से गिर गये हैं। यदि तू अपने कपोलों पर ज़िरह पहन ले तो उसे भी झिझक मालूम हो; क्योंकि तेरे तीर से सब लोग डरते हैं, ख़ास कर मस्त तीर से।

यह पद्य सुलतान को बहुत पसन्द आया। अतएव उसने कहा कि तुमने हमारी सभा को फ़िरदौस अर्थात् स्वर्ग बना दिया। उसी दिन से उसने मंसूर का नाम फ़िरदौसी रक्खा।

मंसूर के आश्रित अन्य शायर उससे ईर्ष्या रखते थे। एक बार उनमें से तीन शायर एक बाग़ में बैठे हुए मद्यपान कर रहे थे। फ़िरदौसी भी वहाँ पहुँचा। उसे वहाँ से हटाने की इच्छा से उन्होंने कहा कि हम अपने साथ सब को नहीं बैठने देते। जो अपने गुणों से हमारे समाज में बैठने की योग्यता दिखावे वही हमारी पानगोष्ठी में शामिल हो सकता है। हम तीनों एक पद्य का एक एक चरण कहते हैं। यदि आप उसका चौथा चरण कह दें तो आप ख़ुशी से हमारे साथ बैठ सकते हैं। फ़िरदौसी ने इस आह्वान को सहर्ष स्वीकार किया। तब उन शायरों में से एक एक ने एक एक चरण इस प्रकार कहा :—

(१) عنصري - چوں عارض نو ماه نه باشد روشن
(२) غرغي - مانند رخت گل نه بود در گلشن
(३) عسجدي - مژگانت گذرهمي کند در جوشن
(४) فردوسي - مانند سنان گیو در جنگ پشن

फ़ारसी में रोशन, गुलशन और जोशन की जोड़ का और कोई शब्द न था। इसीसे यह बन्दिश की गई थी। मगर फ़िरदौसी ने वैसा एक और शब्द ढूँढ़ लिया। वह झट बोल उठा :—

अक्षरान्तर—

(१) उनसरी—चूं आरिज़े तो माह न बाशद रोशन
(२) फ़रुख़ी—मानिंद रुख़त गुल न बुवद दर गुलशन
(३) उसजदी—मिज़गानत गुज़र हमी कुनद दर जोशन
(४) फ़िरदौसी—मानिंद सिनाने गेव दर जंगे पशन

भावार्थ—

(१) तेरे कपोलों की सी दमक चाँद में भी नहीं है
(२) तेरे मुँह के सदृश बाग़ में फूल नहीं हैं
(३) तेरी पलकें जोशन को भेद जाती हैं
(४) जैसे गेव नाम के योद्धे का भाला पुशन

फ़िरदौसी की आशुकविता सुन कर उन लोगों को उसे अपनी गोष्ठी में शामिल करना पड़ा।

महमूद ने फ़िरदौसी को सब शायरों से योग्यतर देख कर उसे ही फ़ारस का इतिहास लिखने के लिए नियत किया। उसने अपने मन्त्री हसन मैमंदी को आज्ञा दी कि फ़ी हज़ार शेरों के लिए फ़िरदौसी को एक हज़ार अशरफ़ियाँ दीजायँ। फ़िरदौसी ने शाहनामा बनाया और उसमें महमूद की उसने बड़ी प्रशंसा की।

तूस में पानी की कमी थी। इस कारण फ़िरदौसी वहाँ की एक नदी में बंद बाँध कर इस कमी को दूर करना चाहता था। इसके लिए बहुत रुपया दरकार था। शाहनामे के पुरस्कार से वह अपनी इच्छा पूर्ण करना चाहता था। इससे वह अपने निर्व्वाह मात्र के लिए कुछ ले लिया करता था। बाक़ी रुपया उसका महमूद के ख़ज़ाने में ही जमा रहता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हसन मैमंदी फ़िरदौसी से नाराज़ रहता था। वह फ़िरदौसी के हर काम में बाधा डालता था। उसके कारण फ़िरदौसी को जीवन-पर्य्यन्त संकट झेलना पड़ा।

फ़िरदौसी ने शाहनामे में से इसफंदयार और रुस्तम की कथा बहुत अच्छी लिखी। वह शाहनामा लिखही रहा था कि इस कथा-सम्बन्धिनी कविता को किसी ने फ़ख़रुद्दौला नाम के एक अमीर के पास पहुँचाई। उसे देख कर वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने एक प्रशंसा-पत्र के साथ हज़ार अशरफ़ियाँ फ़िरदौसी को इनाम में भेजीं। हसन मैमंदी ने सुलतान को इसकी ख़बर दी और फ़िरदौसी के खिलाफ़ उसे उभाड़ा। महमूद फ़िरदौसी से नाराज़ हो गया। फ़िरदौसी राज-सेवा से अलग किये जाने से तो बच गया; पर बहुत दिनों तक उसे अनेक कष्ट भोगने पड़े। दुर्भाग्य से उसी समय फ़िरदौसी का एकलौता लड़का भी मर गया।

तीन वर्ष में बड़े परिश्रम से फ़िरदौसी ने शाहनामे को समाप्त किया। अयाज़ के हाथ उसने उसे महमूद के पास भेजा। महमूद ने हसन मैमंदी के बहकाने से मोहरों की जगह साठ हज़ार रुपये अयाज़ के साथ फ़िरदौसी को भेजे। जब अयाज़ फ़िरदौसी के मकान पर पहुँचा तब वह हम्माम में नहा रहा था। सोने की जगह चाँदी देख कर फ़िरदौसी क्रोध से जल उठा। उसने कहा कि रुपये के लोभ से मैंने शाहनामा नहीं लिखा। यह कह कर उसने बीस हज़ार रुपया अयाज़ को विदाई में दे डाले। बीस हज़ार हम्माम वाले को स्नान कराने का पुरस्कार दे दिया और बाक़ी बीस हज़ार एक प्याला शरबत पी कर उसकी क़ीमत दे डाली।

अयाज़ ने लौट कर महमूद से सारा हाल कह सुनाया। महमूद बहुत नाराज़ हुआ। दूसरे दिन फ़िरदौसी को हाथी के पैर से कुचला डालने की उसने प्रतिज्ञा की। इसकी ख़बर फ़िरदौसी को लग गई। इससे दूसरे दिन प्रातःकाल ही जाकर उसने महमूद से क्षमा माँगी। महमूद ने क्षमा कर दिया। उसका क्रोध जाता रहा। पर फ़िरदौसी का क्रोध नहीं गया। घर पहुँच कर उसने एक हज़ार सतरों में जो महमूद की प्रशंसा लिखी थी उसे फाड़ कर जला दिया। यह कर के उसने महमूद की निन्दा लिखी। उसे उसने बेतरह विषाक्त बनाया। उसे एक लिफ़ाफ़े में बंद करके उसने अयाज़ को दिया और उससे प्रार्थना की कि बीस दिन बाद इसे महमूद को देना। तदनन्तर वह उस मसजिद में गया जहाँ महमूद नमाज़ पढ़ने आता था। वहाँ महमूद के नमाज़ पढ़ने की जगह दीवार पर उसने एक शेर लिखा। उसका मतलब था कि सुलतान महमूद का दरबार तटहीन समुद्र के सदृश है। उसमें डुबकी लगाने से मुझे कुछ नहीं मिला तो यह मेरा दुर्भाग्य है, उसका दोष नहीं। यह लिख कर फ़िरदौसी ग़ज़नी से निकल खड़ा हुआ। बग़दाद पहुँच कर वहाँ के ख़लीफ़ा को प्रसन्न करने के लिए उसने यूसुफ़ ज़ुलेख़ा की कहानी लिखी।

बीस दिन पूरे होने पर अयाज़ ने फ़िरदौसी का पत्र सुलतान महमूद को दिया। अपनी निन्दा पढ़ कर महमूद का ख़ून उबल उठा। फ़िरदौसी के पकड़ने के लिए चारों तरफ़ सिपाही दौड़ाये गये। जब बग़दाद में उसका पता मिला तब महमूद ने ख़लीफ़ा को लिखा कि फ़िरदौसी को ग़ज़नी भेज दो। इस पर फ़िरदौसी कोहिस्तान चला गया। वहाँ के हाकिम नसीर लेक ने उसका बड़ा सत्कार किया। फ़िरदौसी महमूद की निन्दा से पूर्ण और भी कविता लिखना चाहता था, पर नसीर लेक ने वैसा करने से उसे रोका। नसीर ने ख़ुदही मदमूद को एक पत्र लिखा। उसमें फ़िरदौसी को क्षमा प्रदान करने की उसने प्रार्थना की। नसीर लेक के पत्र का महमूद पर बड़ा असर हुआ। सारे बखेड़े की जड़ हसन मैमंदी को समझ कर महमूद ने उसे मरवा डाला और फ़िरदौसी को साठ हज़ार अशरफ़ियाँ देना स्वीकार किया।

इस बीच में स्वास्थ्य ख़राब होजाने के कारण फ़िरदौसी तूस लौट गया। वहाँ उसने एक लड़के को साथ लेकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

اگر شاہ را شاہ بودے پسر
بسر بر نہادے مرا تاج زر

अक्षरान्तर—

अगर शाह रा शाह बूदे पिदर ।
बसर बर निहादे मरा ताजे ज़र ॥

अर्थात्—अगर सुलतान बादशाह से पैदा होता तो मेरे सर पर वह सोने का ताज रखता। यह पद्य फ़िरदौसी ने महमूद की निन्दा में कहा था। इसके सुनने से फ़िरदौसी को मालूम होगया कि मेरे दुख से सब दुखी हैं। घर जाते ही वह बीमार होगया और बेचारा अन्त को मरही गया।

फ़िरदौसी ने अग्नि-उपासकों की बहुत प्रशंसा की थी। इस कारण उसे काफ़िर समझ कर तूस के शेख़ ने उसके शव को समाधिस्थ करते समय नमाज़ पढ़ना स्वीकार न किया। परन्तु उसी रात को स्वप्न में उसने फ़िरदौसी को स्वर्ग में देखा। तब उसने नमाज़ सहर्ष पढ़ी।

जो निन्दा फ़िरदौसी ने महमूद की की थी वह शाहनामे की भूमिका में जोड़ी गई है। वह उसका एक अंश हो गई है।

जिस दिन फ़िरदौसी मरा उसी दिन महमूद की भेजी हुई साठ हज़ार अशरफ़ियाँ तूस पहुँचीं। उन्हें फ़िरदौसी के कुटुम्ब की एक स्त्री ने लेकर वह बाँध बनवाया जिसके बँधाने की फ़िरदौसी को इतनी फ़िक्र थी।

फ़िरदौसी फ़ारसी का महाकवि होगया। उस का शाहनामा महाकाव्य है। उसका बड़ा आदर है। वह फ़ारसी का महाभारत है। उसमें फ़ारस के बादशाहों का चरित है। उसके कारण फ़िरदौसी अमर हो गया है। उसकी कविता बड़ी ही भावपूर्ण और ललित है। खेद है, ऐसे महाकवि को जीते जी कितने दुःखही दुःख सहने पड़े। विद्वानों और महाकवियों की प्रायः यही दशा होती है।

भगवानदास गुप्त।

आत्मा।

सृष्टि के आदि से ही मनुष्यों को कार्य-कारण का ज्ञान प्राप्त करने की उत्कण्ठा हुई जान पड़ती है। यह उत्कण्ठा आज कल के लोगों की इच्छाओं से विचित्र प्रकार की थी। उसकी प्रेरणा से कितने ही मनुष्य अपना सारा आयुष्य कार्य-कारण की खोज में लगा देते थे।

आज कल का पाश्चात्य विज्ञान स्थूल पदार्थों की खोज में ही लगा हुआ है। इस लिए उसके सभी साधन स्थूल हैं। एक नियम यह है कि जो पदार्थ काटने, तौलने या स्थूल साधनों द्वारा सिद्ध न हो सके उसका अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता। परन्तु इन नियमों पर चल कर प्राकृतिक पदार्थों की ही सिद्धि हो सकती है।

संसार के पदार्थ दो बड़े भागों में विभक्त हैं :—(१) जड़ और (२) चेतन। पाश्चात्य विज्ञान ने अभी तक अपना सब सामर्थ्य प्राकृतिक अथवा पार्थिव पदार्थों की खोज में ही लगाया है। चेतन पदार्थ इन नियमों से अज्ञेय है। इसलिए पाश्चात्य शास्त्र-वेत्ता आत्मा-परमात्मा को न अभी तक सिद्ध कर सके हैं और न उनको कोई पदार्थ ही मानते हैं।

थोड़े ही दिन हुए कि पाश्चात्य डाक्टर और पादरी लोग मेस्मेरिज़्म की सत्यता में सन्दिहान थे। जितने प्रयोग किये जाते थे उनको वे करने वाले की चालाकी बतलाते थे। पर, आज, वही लोग शस्त्र-प्रयोग करने में उसी मेस्मेरिज़्म का उपयोग करते हैं। कारण यह है कि पाश्चात्य पदार्थ-विज्ञान अभी बाल्यावस्था में है। प्रतिदिन नवीन शोध होते जाते हैं। अभी तक आक्सिजेन और हायड्रोजेन ही पानी के तत्त्व ज्ञात हुए थे। अब ओज़ोन भी एक नया तत्त्व ज्ञात हुआ है। इसी प्रकार, सम्भव है कि जिन साधनों द्वारा आत्मा-परमात्मा की सिद्धि होना सम्भव है, भविष्यत् में, वे साधन भी पाश्चात्य विज्ञान-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेत्ताओं को ज्ञात हो जायँ और जो पदार्थ आज कल "सब ज्ञानों का सङ्गठन" कहा जाता है वह भविष्यत् में एक स्वतन्त्र पदार्थ सिद्ध हो जाय।

सत्य सर्वदा एक है। जब तक उस सत्य की खोज पूरी नहीं होती तब तक प्राचीन काल के अनेक संशोधकों से विरोध होता ही रहेगा। भारतवर्ष में मुख्य कर आत्म-विद्या के शोधक अनेक हो गये हैं। उन्होंने आज कल के शास्त्रियों के साधनों से विलक्षण साधनों की सहायता से चेतन पदार्थों की खोज की थी; उनके उस परिश्रम का फल, आज तक अन्य धर्म्मावलम्बियों की अनन्त आपत्तियों के होते हुए भी, दृढ़ स्तम्भ-रूप से विद्यमान है और संसार को अपनी सत्यता की सन्दिग्धता दूर करने का आह्वान दे रहा है।

जो भ्रमवादी हैं वे इन्द्रियों की क्रियाओं पर सन्दिग्ध दृष्टि से देखते हैं। इस मत के अनुयायी इस देश में तथा पाश्चात्य देशों में भी हुए हैं। भारतवर्ष में—"सर्वं ब्रह्ममयं जगत्" को माननेवाला समुदाय जगत् को रज्जु-सर्पवत् मानता है। वह चक्षु आदि इन्द्रियों का दोष बतला कर सांसारिक पदार्थों का अभाव सिद्ध करता है। सत्य तो यह है कि बनाने वाले ने जैसा काम देने को इन्द्रियाँ बनाई हैं वैसाही काम जब मूर्ख और विद्वान् दोनों की इन्द्रियाँ देती हैं तब फिर उनके कर्तव्य कार्य की सत्यता पर आशङ्का को स्थान ही कहाँ रहा! भले ही तार्किक वाक्-चातुर्य से प्रतिपक्षी को निरुत्तर कर दें; परन्तु सत्य तो सत्य ही रहेगा। सामान्य रीति से आबाल-वृद्ध जो घटपटादि का अनुभव इन्द्रियों द्वारा करते हैं वे कदापि असत्य नहीं हो सकते। सृष्टि-रचना के तीन साधन प्रकृति, जीव और परमात्मा तो सिद्ध ही हैं।

पाश्चात्य शास्त्र जीव को "जीवनाधार पदार्थ" (Protoplasm) का गुण मानता है। गुण गुणी से पृथक् नहीं होता। यह विज्ञान-शास्त्र का सिद्धान्त है। जब तक गुणी विद्यमान है तब तक उसका गुण वर्तमान रहेगा। यदि जीव "जीवनाधार पदार्थ" का गुण होता तो उस पदार्थ के विद्यमान होते हुए जीव उससे पृथक् न हो सकता। इस अवस्था में मृत्यु का कारण बतलाना कठिन ही नहीं, वरन असम्भव होगा।

यदि जीव को रासायनिक क्रिया का परिणाम मानें तो फिर वही प्रश्न उपस्थित होता है कि वियोग (मृत्यु) किस नियम से होगा। क्योंकि जिस कारण से जीव उत्पन्न हुआ उससे उसका वियोग नहीं हो सकता।

भारतवर्ष के ऋषि-मुनियों की दी हुई जीव की परिभाषा यह है कि जहाँ इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान जान पड़ते हों वहाँ जीव का अस्तित्व होगा। वैशेषिक-शास्त्रानुसार प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष (आँखों की पलकों को खोलना, मूँदना) मन, गति, इन्द्रियों के आन्तरिक विकार, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न—ये आत्मा के लिङ्ग या चिह्न हैं। जितने जीवधारी पदार्थ हैं उन सब में ये चिह्न पूर्णरूप से नहीं दिखाई देते। स्थावरों में इनमें से बहुत ही थोड़े चिह्न जान पड़ते हैं। जङ्गमों में पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग आदि में उनसे कुछ अधिक जान पड़ते हैं। पाश्चात्य पदार्थ-विज्ञान पर आधार रखने वाले कह सकते हैं कि जैसा जीव मनुष्यों में है वैसा पशुओं में नहीं। तथा वृक्षों में तो है ही नहीं। यदि परमात्मा की न्याय-व्यवस्था पर विचार किया जाय तो निश्चय होजाता है कि जीव तो सब में एक सा ही है, परन्तु कर्मों की दशा के अनुसार उनकी इन्द्रियाँ, अधिक या न्यून, स्पष्टता से दिखाई देती हैं। परमात्मा के व्यवस्थानुसार जिस जीव ने वाणी से अधिक पाप किया हो उसको वाणी का दुःख होता है। जिसने हाथ-पैरों से अधिक पाप किया हो उसको हाथ-पैरों के अभाव या उनकी असम्पूर्णता का दुःख होता है। जिसने चक्षु से पाप किया हो उसको आँखों के अभाव का या उनकी असम्पूर्णता का दुःख सहन करना पड़ता है। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों का हाल है। अर्थात् जितना जिस इन्द्रिय से पाप किया हो उतना उसी इन्द्रिय का दुःख सहन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

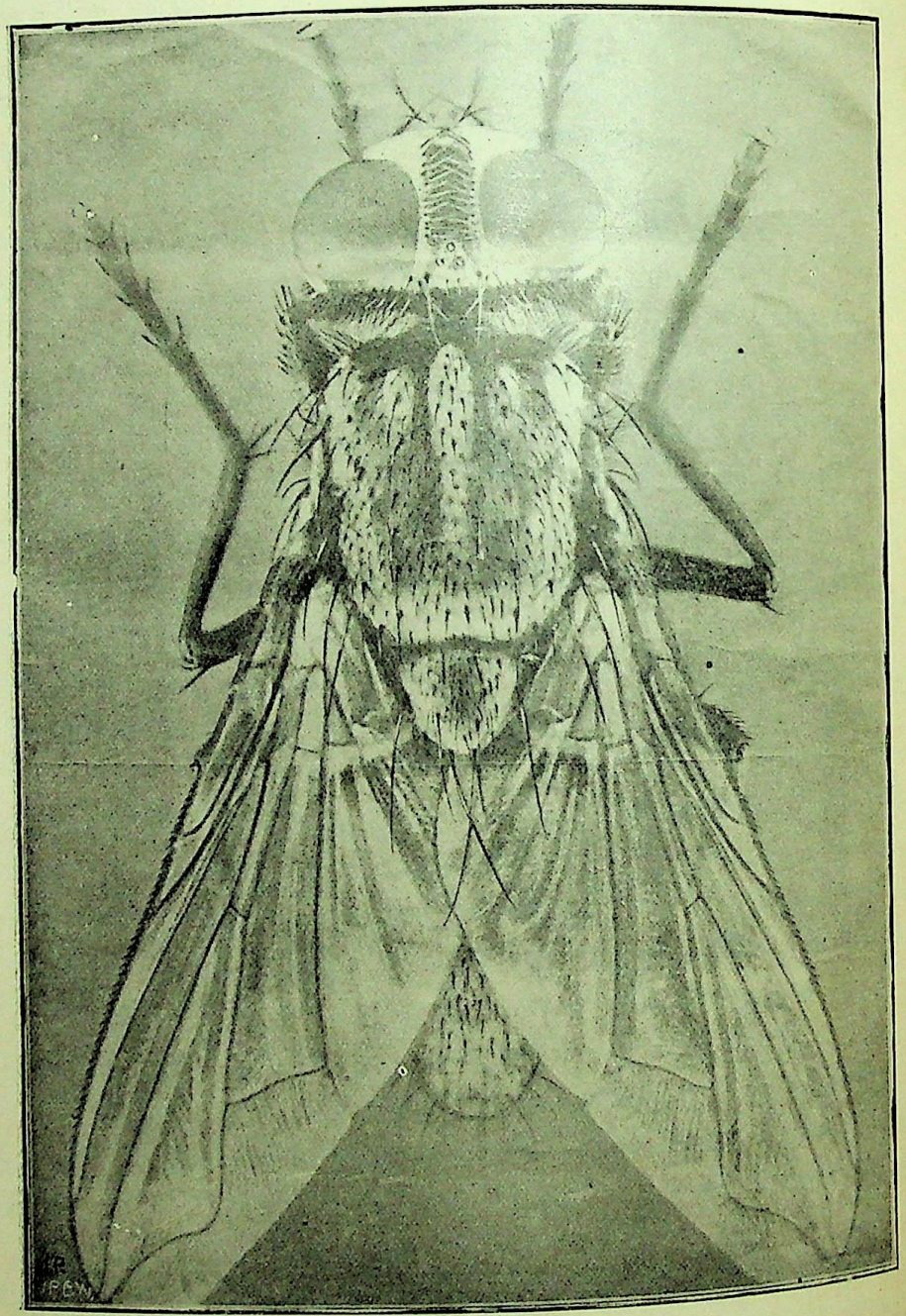

मनुष्य-संहारिणी मक्खी ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना पड़ता है। इसी नियम के अनुसार वृक्षों को एक ही स्थान पर खड़े रहने का दुःख सहन करना पड़ता है। पशुओं को वाणी न होने से भूखे प्यासे बँधे रहना और मूक होकर जन्म व्यतीत करना पड़ता है। इन्द्रियों के न्यूनाधिक होने से ऐसा कदापि नहीं कहा जा सकता कि जीव है ही नहीं।

पञ्चमसिंह।
(अहमदाबाद)

विविध विषय।

१—कापी-राइट ऐक्ट।

पुस्तक, नक़शा, चित्र, फ़ोटो आदि के स्वत्व की रक्षा जिससे होती है उसे कापी-राइट ऐक्ट कहते हैं। इस देश का कापी-राइट ऐक्ट बहुत पुराना है। वह ईस्ट इंडिया कम्पनी के वक्त का है। उसमें शीघ्रही परिवर्त्तन होनेवाला है। इस परिवर्त्तन का कारण विलायती कापी-राइट ऐक्ट में किया गया परिवर्त्तन क्या प्रायः सम्पूर्ण संशोधन है। विलायत में यह ऐक्ट अभी हालही में पास हुआ है। इस ऐक्ट के अनुसार किसी पुस्तक या चित्र आदि से सम्बन्ध रखने वाला एकाधिकार लेखक या चित्रकार के जीवन-काल पर्य्यन्त तो रहेगा ही; पचास वर्ष तक उसके बाद भी रहेगा; और नहीं। यदि कोई लेखक आज एक पुस्तक लिख कर, क़ानून के अनुसार, उसके स्वत्व की रक्षा की रजिस्ट्री करा ले और दस वर्ष बाद मर जाय तो आज से साठ वर्ष तक उस पुस्तक के किसी अंश को, उस रूप में, और कोई न प्रकाशित कर सकेगा। साठ वर्ष के बाद उसका यह हक़ जाता रहेगा। इस ऐक्ट के भारत में भी जारी हो जाने पर एक बात और भी महत्त्व की होगी। किसी अन्य भाषा के पत्रों और पुस्तकों में प्रकाशित चित्र दूसरी भाषा के पत्रों और पुस्तकों में प्रायः नक़ल कर लिये जाते हैं। अब ऐसा करना क़ानून के ख़िलाफ़ होगा। आर० आर० बौकर (Bouker) नाम के एक साहब ने "Copyright, its History and its Law" नाम की एक पुस्तक प्रकाशित की है। उसमें क़ानून के सिवा इस विषय की सविस्तर विवेचना, आलोचना और इतिहास भी है। यह पुस्तक ग्रन्थ-कर्ताओं के देखने लायक़ है। दाम १६ रुपया है।

२—मक्खियों से मनुष्यों को हानि।

विज्ञानवेत्ताओं ने नाना प्रकार की यान्त्रिक परीक्षाओं से इस बात को निर्विवाद सिद्ध कर दिया है कि मक्खी, मच्छड़, पिस्सू आदि कीटक मनुष्य-जाति के घोर शत्रु हैं। साधारण तौर पर मनुष्यों को कष्ट पहुँचाने के सिवा ये कीड़े सान्निपातिक ज्वर, हैज़ा, प्लेग, क्षय रोग आदि को भी बढ़ाते हैं। इस संख्या में मक्खी का एक चित्र प्रकाशित किया जाता है। यह चित्र मक्खी के स्वाभाविक आकार से कई गुना बड़ा है। चित्र देखने से मालूम होगा कि मक्खी के पैरों में एक छोटी गद्दी सी होती है। वह जहाँ बैठती है, रोगों के कीटाणु उसके पैरों के बालों में लग जाते हैं। उन्हें वह पैर घिस घिस कर पोंछा करती है। पर सब कीटाणु नहीं गिर जाते। कुछ गद्दी पर चिपके रह जाते हैं। यही मक्खी जब किसी भोज्य वस्तु पर बैठती है तब वे कीटाणु उस वस्तु पर लग जाते हैं और उसके खाने वाले के शरीर में वही रोग उत्पन्न करते हैं जिसके कि वे बीज हैं। मक्खियाँ और मच्छड़ आदि जब मनुष्य को काटते हैं तब भी मनुष्य के रुधिर में रोगों के बीज चले जाते हैं। इस प्रकार भी रोगों की उत्पत्ति में ये कीटक सहायता देते हैं। अतएव इनसे यथासम्भव बचना चाहिए। मक्खी का बड़ा चित्र देखने से वह कैसा भयङ्कर मालूम होता है। उसके सिर पर एक नहीं तीन आँखें हैं। इसी से शायद वह त्रिलोचन शङ्कर की संहारकारिणी शक्ति रखती है। इन तीन के सिवा, मक्खी के सिर पर, पीछे की तरफ़, और भी न मालूम कितनी आँखें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती हैं। वे सब एक दूसरी से मिली हुई होती हैं। यही कारण है जो उसके पास आप, चाहे जिस तरफ़, हाथ ले जायँ : इ देख लेती है और तुरन्त उड़ जाती है।

३—ओलों से पहुँची हुइ हानि भर देने वाली बीमा-कम्पनियाँ।

योरप में ओले बहुत पड़ते हैं। कोई साल ऐसा नहीं जाता जिसमें हज़ारों मील की खेती ओलों से नष्ट न जाती हो। इससे करोड़ों रुपये की हानि होती है। अनुमान किया गया है कि कोई छः करोड़ रुपये वार्षिक की हानि जर्मनी को और पाँच करोड़ रुपये वार्षिक की इटली को सहनी पड़ती है। पुराने ज़माने में, योरप में, ओले रोकने के बहुत से विकट उपाय किये जाते थे। घनघोर घटा उठते ही लोग अपने अपने भाले और तलवार आकाश की ओर उठाते थे, जिससे ओले न गिरने पावें। टोने टोटके भी किये जाते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में योरपनिवासियों का विश्वास था कि यदि बाँसों के सिरों को लोहे से मढ़ दें और उन्हीं मढ़े हुए सिरों को आकाश की ओर करके खेतों में गाड़ दें तो सिरे का लोहा हवा की बिजली को अपनी ओर खींच लेगा और ओले ज़मीन पर न गिरेंगे। १८९६ ईसवी में एक और उपाय लोगों को सझा। वह यह था कि यदि घटा उठते ही आकाश की ओर तोपों की एक बाढ़ दागी जाय तो ओले भूमि पर न गिरेंगे। १९०७ ईसवी में इस काम के लिए पाँच सौ तोपें फ्रांस में, दो हज़ार आस्ट्रिया और हंगरी में, और दस हज़ार इटली में थीं। इन तोपों से प्रायः अङ्गूर के खेतों की रक्षा की जाती थी। अब विदित हुआ है कि इस चाँदमारी से कोई विशेष फ़ायदा तो नहीं होता, किन्तु आय से व्यय कहीं बढ़ जाता है। अठारहवीं शताब्दी में स्काटलेण्ड में एक ऐसी कम्पनी थी जो ओलों की हानि से खेतों का बीमा करती थी। धीरे धीरे इन कम्पनियों की वृद्धि होती गई। अब योरपवाले इस प्रकार की कम्पनियाँ अधिकता से खड़ी कर रहे हैं। वे खेतों का बीमा करती हैं। सो अब अन्न, पानी और मृत्यु की बीमा-कम्पनियों के सिवा ओलों की भी बीमा-कम्पनियाँ ज़ोर पकड़ रही हैं।

४—संयुक्त-राज्य, अमेरिका, के समाचार-पत्र।

समाचार-पत्रों का मान और प्रचार जितना पाश्चात्य देशों में है उतना और कहीं नहीं। केवल संयुक्त-राज्य, अमेरिका, ही में ढाई हज़ार दैनिक, सोलह हज़ार साप्ताहिक और सत्ताईस सौ मासिक पत्र प्रकाशित होते हैं। इनकी ग्राहक-संख्या भी हज़ारों नहीं, लाखों है। दैनिक-पत्रों में दो सौ ऐसे हैं जिनमें प्रत्येक की ग्राहक-संख्या पचास हज़ार से कम नहीं। पाँच मासिक-पत्र ऐसे हैं जिनमें प्रत्येक की ग्राहक-संख्या दस लाख से भी अधिक है। शायद ही कोई पत्र ऐसा होगा जिसके हज़ार दो हज़ार ग्राहक न हों। यदि यह अनुमान कर लिया जाय कि छोटे बड़े, हर प्रकार के, प्रत्येक पत्र की कम से कम दो ही हज़ार प्रतियों की खपत होती है तो भी, इस हिसाब से, संयुक्त राज्य, अमेरिका, में प्रत्येक परिवार के हिस्से में एक दैनिक, एक मासिक और एक साप्ताहिक पत्र पड़ता है।

पत्रों के कलेवर और विषयों की बात भी सुनिए। न्यूयार्क से एक पत्र निकलता है "न्यूयार्क टाइम्ज़"। इसमें १५४ कालम के २२ बृहदाकार पृष्ठ होते हैं। विज्ञापनों के चौरासी कालम छोड़ कर शेष सत्तर कालमों में हर प्रकार के मनुष्यों की रुचि के अनुसार राजनीति, युद्ध, अर्थ, धर्म, शिल्प, कला, नाटक, सङ्गीत, खेलतमाशे, समाज, पापाचार, मृत्यु आदि विषयों के समावेश के लिए अलग अलग स्थान निर्दिष्ट रहता है।

इन पत्रों की आमदनी भी थोड़ी नहीं। ग्राहकों से जो मूल्य मिलता है वह तो मिलता ही है। यथार्थ में इन्हें विज्ञापन देनेवालों से ही विशेष आमदनी होती है। कोई व्यापारी ऐसा नहीं जिसका व्यापार पत्रों में विज्ञापन दिये बिना चलता हो, और कोई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र ऐसा नहीं जिसके ख़र्च का अधिक अंश विज्ञापनों की आमदनी से ही न निकल आता हो।

५—स्त्री-हीन राज्य।

रूम के एक सूबे का नाम मक़दूनिया (Macedonia) है। वह पहले ग्रीस के अधीन था। सिकन्दर वहीं का बादशाह था। मक़दूनिया के दक्षिण में एक छोटा सा प्रायद्वीप है। उसमें एथोस (Athos) नाम का एक पहाड़ी प्रान्त है। वहाँ ग्रीस के ईसाई धर्म्म के अनुयायी पादड़ियों के अनेक मठ हैं। उन मठों में कोई दस हज़ार पादड़ी रहते हैं। वे सब विरक्त हैं; घर-द्वार छोड़े हुए हैं; दार-परिग्रह के विकट वैरी हैं। यहाँ तक कि वे अपने प्रान्त की सीमा के भीतर किसी स्त्री को पैर तक नहीं रखने देते। उन्होंने अपनी निज की पुलिस रक्खी है। उसके जवान इस बात की ख़बरदारी रखते हैं कि वहाँ कोई स्त्री घुस न आवे। स्त्री क्या बाहरी पुरुष तक को वहाँ जाने की आज्ञा नहीं। कुस्तुंतुनिया में ग्रीस का जो बड़ा पादरी रहता है उसका अनुमति-पत्र दिखाये विना कोई पुरुष भी इस पहाड़ी प्रान्त के भीतर प्रवेश नहीं कर सकता। सैकड़ों वर्ष से किसी भी स्त्री के पद-स्पर्श से यह प्रान्त पुनीत या दूषित नहीं हुआ। यह प्रान्त एक प्रकार का प्रजा-सत्ताक राज्य है। यहाँ के पादड़ी ही यहाँ के राजा हैं। इनके ऊपर न रूम ही का शासन है न ग्रीस ही का। ये लोग अपना शासन आप ही करते हैं। कारजेस (Karges) नाम का गाँव इनकी राजधानी है। कहते हैं, इस राज्य की स्थापना हुए कोई एक हज़ार वर्ष हुए। यहाँ के मठों में अत्यन्त प्राचीन पुस्तकों का बहुत बड़ा भण्डार है। वे सब हाथ की लिखी हुई हैं।

६—गूँगों और बहरों के लिए टेलीफ़ोन।

अभी तक गूँगे और बहरे लोग टेलीफ़ोन से कुछ लाभ न उठा सकते थे। परन्तु विलियम शाप के विलायत के एक गूँगे और बहरे साहब ने एक ऐसी युक्ति ढूँढ़ निकाली है जिससे अब गूँगे और बहरे आपस में अथवा किसी अन्य आदमी से टेलीफ़ोन द्वारा बातचीत कर सकेंगे। टेलीफ़ोन द्वारा बात-चीत करने में शब्द से काम लिया जाता है; परन्तु गूँगे और बहरे न सुन ही सकते हैं और न बोलही। इस लिए इस आविष्कार में शब्द के स्थान में बिजली के प्रकाश का व्यवहार किया गया है। इसमें तीन यन्त्र मुख्य हैं—एक समाचार भेजने का, दूसरा उसे प्रकट करने का और तीसरा उसके लेने का। समाचार भेजने के यन्त्र का काम टाइपरायटर मैशीन करती है। इसी मैशीन के पास ही मेज़ पर समाचार-सूचक यन्त्र रहता है। उसका रूप चतुष्कोण तख़्ती की तरह है, जो छः इंच लम्बी और छः ही इंच चौड़ी होती है। इसमें बिजली के ३६ लैम्प लगे होते हैं, जिन पर अक्षर और अङ्क अङ्कित रहते हैं। समाचार लेने का यन्त्र समाचार प्रकट करने के यन्त्र के सदृश ही होता है। उसमें भी बिजली के ३६ लैम्प होते हैं और उन पर अक्षर और अङ्क अङ्कित रहते हैं। अन्तर केवल इतना ही होता है कि इसकी तख़्ती छोटी होती है और इसके लैम्पों का प्रकाश बहुत अधिक होता है।

अब समाचार भेजने की रीति सुनिए। टाइपरायटर में एक बटन लगा रहता है। समाचार भेजने वाला मनुष्य उस बटन को दबाता है। उसके दबते ही समाचार पाने वाले के कमरे में बिजली का एक लैम्प जल उठता है और उसके प्रकाश से समाचार पाने वाले का ध्यान यन्त्र की ओर आकर्षित होजाता है। वह भी अपने बटन को दबाता है जिससे समाचार भेजने वाले के कमरे में भी एक लैम्प जल उठता है और वह समझ जाता है कि समाचार पाने वाला व्यक्ति समाचार लेने के लिए तैयार है। तब समाचार भेजने वाला टाइपरायटर के अक्षरों को दबा दबा कर समाचार भेजना आरम्भ करता है। यहाँ जो अक्षर दबाया जाता है लेने वाले के कमरे में उसी अक्षर का लैम्प जल उठता है। यह लैम्प उसी समय तक जलता रहता है जब तक दूसरा अक्षर नहीं दबाया जाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा अक्षर दबाते ही वह बुझ जाता है और वह लैम्प जल उठता है जिसका अक्षर दबाया जाता है। पहले इस प्रकार लैम्पों के प्रकाश से क्षण क्षण में प्रकट होकर गुप्त होजाने वाले अक्षरों को मिला कर समाचार पढ़ना बहुत ही कठिन होता है; परन्तु अभ्यास होजाने पर यह कठिनता दूर हो जाती है।

७—चीर-फाड़-सम्बन्धी एक नया डाक्टरी आविष्कार।

मनुष्य के किसी अवयव में चीर फाड़ करने के पहले रोगी को क्लोरोफार्म नामक औषधि सुँघानी पड़ती है। इस औषधि के प्रभाव से रोगी बेहोश हो जाता है और शरीर पर सर्जन की चाक़ू-क़ैंची की क्रिया निर्विघ्न होने देता है। जब तक वह बेहोश रहता है तब तक उसे चीर-फाड़ से कुछ भी वेदना नहीं होती। परन्तु होश में आने पर रोग और शस्त्र-क्रिया के परिमाण के अनुसार उसे थोड़ी बहुत वेदना अवश्य होती है। जब तक घाव अच्छा नहीं हो जाता तब तक कुछ न कुछ पीड़ा होती ही रहती है। इस पीड़ा से बचने का उपाय लन्दन के एक डाक्टर ने निकाला है। आपका नाम है:—डाक्टर रास। आपका कहना है कि जिस जगह चीर-फाड़ करनी हो उस जगह क्विनीन और यूरिया हाइड्रो-क्लोराइड नामक औषधियों को पिचकारी में भर कर शरीर के भीतर प्रविष्ट कर देने से वह जगह निर्जीव सी हो जाती है और क्लोरोफार्म का असर दूर होने पर, घाव बिलकुल अच्छा होने तक भी, रोगी को कष्ट नहीं होता। यदि यह बात सच है तो इस आविष्कार से बहुत लाभ पहुँचने की आशा है।

८—बे तार के तार-यन्त्रों का प्रचार और उनमें सुधार।

बे तार के तार भेजने का प्रबन्ध गवर्नमेंट ने अब इस देश में भी कर दिया है। यह बात पाठक जानते ही होंगे। इस तार का विस्तार करने के इरादे से सुनते हैं, बंगलौर में एक ऊँची जगह बनाई जा रही है, जहाँ बिजली की बहुत बड़ी शक्ति जमा की जायगी और बे-तार के तार भेजने के काम आवेगी। इसके लिए एक अत्युच्च स्तम्भ खड़ा करना पड़ेगा। नहीं मालूम यह कितना ऊँचा होगा। इँगलैंड, फ़्रान्स, जरमनी, आस्ट्रिया आदि में तो ये स्तम्भ सौ सौ दो दो सौ फ़ीट ऊँचे हैं। उन्हीं की सहायता से बे-तार के तार दूर दूर भेजे जाते हैं। परन्तु इस विषय में अमेरिका सब से आगे रहना चाहता है। वहाँ वाले वाशिंगटन के पास दो बुर्ज ऐसे बनाने वाले हैं जो साढ़े चार चार सौ फ़ीट ऊँचे होंगे और एक छः सौ फ़ीट ऊँचा होगा। इन पर बे-तार के यन्त्र रख कर अमेरिका के सामुद्री-सेना-विभाग के अफ़सर आटलांटिक महासागर में तीन हज़ार मील दूर तक के अपने जहाज़ों से बात चीत कर सकेंगे। ऐसेही बुर्ज़ सन फ़्रान्सिस्को नगर में भी बना कर वे प्रशान्त-सागर के जहाज़ों से भी बे-तार का सम्बन्ध जोड़ने का प्रबन्ध कर रहे हैं। सो अब कुछ दिनों में हज़ारों कोस दूर के जहाज़ों से भी वहाँ वाले बात चीत करने का सिलसिला जारी करके सारे संसार को चकित करने वाले हैं। और कहाँ तक कहें, वहाँ के वैज्ञानिकों ने बे-तार के तार द्वारा मनुष्य आदि के चित्र तक भेजने की कला ढूँढ़ निकाली है। उसका भी वे शीघ्र ही प्रचार करने की फ़िक्र में हैं।

९—जनरल नोगी की आत्महत्या।

जनरल नोगी ने मृत जापान-नरेश का अनुगमन करने के लिए आत्महत्या कर ली। उनकी स्त्री ने भी उनका अनुकरण किया। जनरल ने तलवार से अपनी गर्दन काट दी और उनकी स्त्री ने पेट में ख़ंजर घुसेड़ कर जान देदी। यह घटना गत १३ सितंबर को ठीक उस समय हुई जिस समय जापान-नरेश का शव दफ़न करने के लिए राजकीय महलों से उठाया गया। जापान-नरेश के चित्र को सामने रख कर पहले उन्होंने वे प्याले निकाले जिन्हें मिकाडो ने उन्हें उनकी वीरता और देश-सेवा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

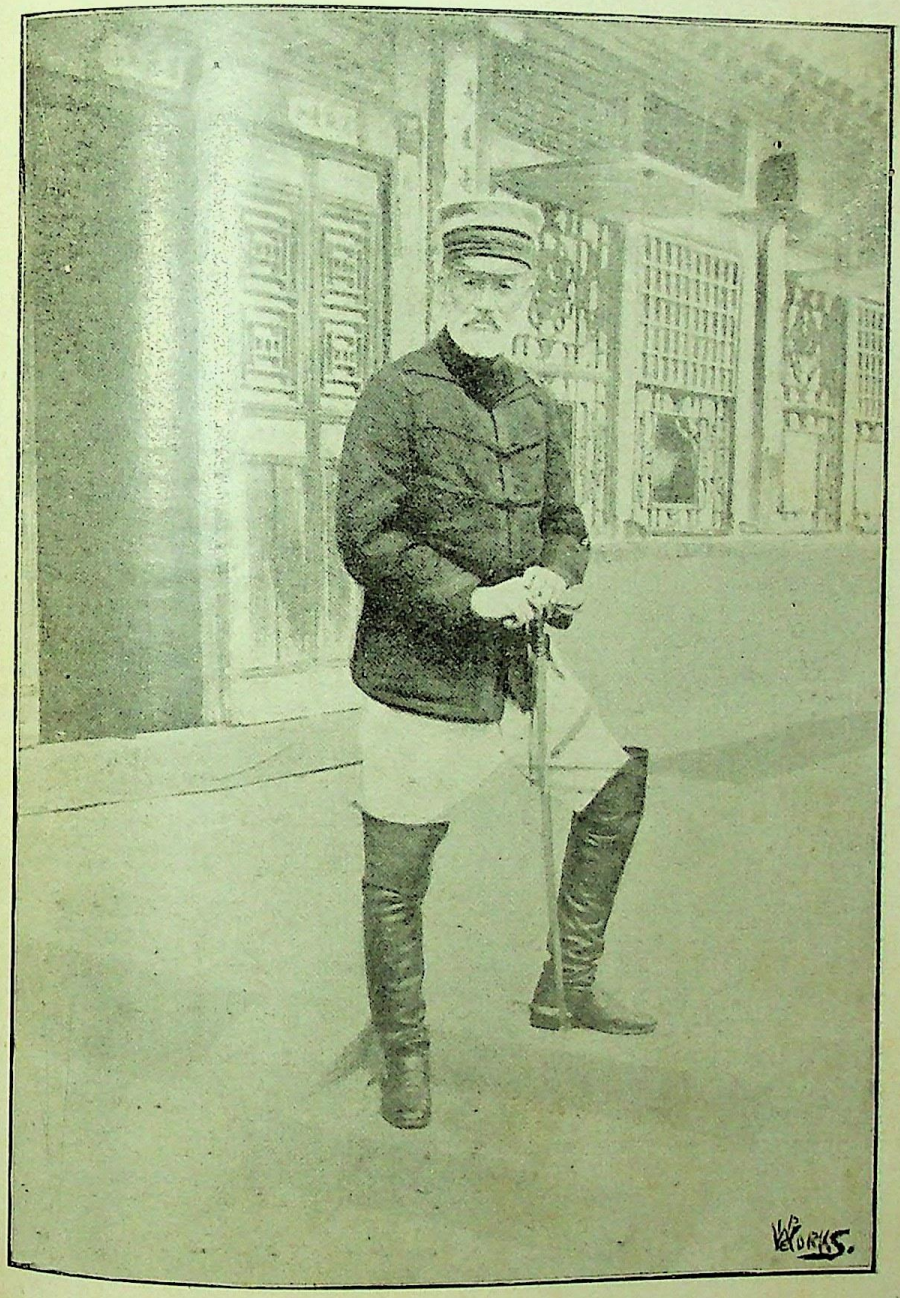

पोर्ट-आर्थर के विजेता परलोकवासी जनरल बेरन नोगी।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपलक्ष्य में भेट किया था। फिर उन्हीं में उन्होंने संसार से अपनी अन्तिम बिदाई सम्बन्धी पत्र पान किया। यह कर के उन्होंने अपने जीवन की समाप्ति करदी। जिस दिन मिकाडो की मृत्यु हुई थी उस दिन भी एक राजभक्त ने अपनी जान दी थी। पर वह भक्त एक साधारण जन था। जनरल नोगी असाधारण भक्त थे। जापान में राजा के लिए इस प्रकार का जीवनदान बड़ाही सम्मान-जनक समझा जाता है। ये जनरल नोगी वही थे जिन्होंने अद्भुत वीरता और सहिष्णुता का परिचय देकर जापान के लिए पोर्ट आर्थर विजय किया था। ये वही महापराक्रमी सेनानायक थे जिन्होंने, पोर्टआर्थर के युद्धाग्नि-कुण्ड में, अपने दो पुत्रों के आहुत हो जाने पर भी, धेरा नहीं उठाया; और, अन्त में, समस्त संसार को अपने युद्ध-कौशल से चकित करके पोर्ट आर्थर को रूस के पञ्जे से छीन ही लिया। ६२ वर्ष की उम्र में इन्होंने अपने हाथ से अपनी शरीर-समाप्ति की। लगातार ४० वर्ष तक इन्होंने जापान की सेवा की।

१०—एक बड़े भारी आविष्कार-कर्ता की मृत्यु।

व्योम-यान के सर्वप्रसिद्ध आविष्कार-कर्ता, अमेरिका-निवासी, विल्बर राइट का देहान्त होगया। बहुत दिनों से संसार के बड़े बड़े यन्त्रकार व्योम-यान के बनाने की चेष्टा कर रहे थे। इसी चेष्टा में लाखों रुपये ख़र्च हो गये और कितने ही यन्त्रकारों के प्राण भी नष्ट हुए। किसी को कुछ भी सफलता नहीं हुई। आज से केवल नौ वर्ष पूर्व विल्बर राइट और उनके भाई आरबाइल राइट ने संसार के सब से पहले व्योम-यान की रचना की। किसी ने स्वप्न में भी यह ख़याल न किया था कि ये दोनों भाई, यन्त्र-विद्या के सम्बन्ध में जिनका कोई नाम तक न जानता था, और जिन्होंने किसी बड़े भारी यन्त्रकार के चरणों के पास बैठ कर यन्त्र-कला की शिक्षा भी न पाई थी, व्योम-यान ऐसी अद्भुत वस्तु का आविष्कार कर डालेंगे।

ये दोनों भाई संयुक्त-राज्य, अमेरिका, के ओहियो प्रान्त के डेटन नगर में बाइसिकल बनाने का काम किया करते थे। इन्होंने यन्त्र-कला की शिक्षा भी बहुत ही कम पाई थी। इनका ध्यान व्योम-यान-रचना की ओर आकर्षित हुआ। १९०३ में इन्हें इस काम में सफलता प्राप्त हुई। परन्तु पाँच वर्ष तक इन्होंने अपने इस यन्त्र को संसार के सामने पेश नहीं किया। सब से पहले, १९०८ में, संसार ने इनकी इस रचना को देखा। इनके बनाये हुए यन्त्र में जितने पुरज़े थे उन सब को, यहाँ तक कि कील-काँटों तक को, दोनों भाइयों ने स्वयं अपने हाथों से बनाया था। कोई पुर्ज़ा नया भी न था, सब पुराने ही थे और यन्त्रकारों के नित्य के कामों में आते थे।

विल्बर राइट व्योम-यान द्वारा आकाश-यात्रा तो ख़ूब किया करते थे, परन्तु उड़ने के पूर्व उसके कोने कोने को ठोंक पीट कर कई बार देख लिया करते थे। व्योम-यान की दौड़ की बाज़ी लगाने और उस पर चढ़ने के उन सब ढंगों को, जिनमें प्राण नष्ट होने का भय होता था, वे बहुत अनुचित समझते थे। यद्यपि वे व्योम-यान की सवारी में बहुत होशियारी रखना मुख्य काम समझते थे और लोग उनकी इस लिए हँसी भी उड़ाते थे, परन्तु उनके स्वभाव में भय का तनिक भी सञ्चार न था। यदि वे स्वभाव से डरपोक होते तो व्योम-यान का आविष्कार ही न कर सकते। वे धार्म्मिक भी बहुत थे। रविवार के दिन वे न स्वयं व्योम-यान पर चढ़ते और न अपने नौकरों ही को चढ़ने देते। वे बड़े ही नम्र और सुशील थे। बड़े बड़े सम्राट् और राज-पुरुष, राज-नीतिज्ञ और विज्ञान-वेत्ता, और विद्वान् और यन्त्र-कार उनका बड़ा आदर करते थे। परन्तु वे सदा सब से, बिना ऊँच-नीच के विचार के, नम्र भाव से मिलते थे। उनके हृदय में कभी इस प्रकार का गर्व न हुआ कि उन्होंने एक ऐसी चीज़ का आविष्कार किया है जो भविष्यत् में संसार का रूप ही पलट देगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११—महाकवि भास के ग्रन्थ।

हिन्दू-कालेज-मैगेज़ीन से मालूम हुआ कि ट्रावनकोर की राजधानी त्रिवेन्द्रम से एक संस्कृत-ग्रन्थ-माला निकलती है। एस० गणपति शास्त्री उसके सम्पादक हैं। आज तक अनेक दुर्लभ ग्रन्थ-रत्न उसमें प्रकाशित हो चुके हैं। यह सब महाराजा ट्रावनकोर के विद्यानुराग और कृपा का फल है। ट्रावनकोर एक ऐसा राज्य है जो मुसल्मानों के आक्रमण से बचा रहा है। इससे वहाँ ऐसे हज़ारों दुष्प्राप्य ग्रन्थ विद्यमान हैं जो भारत में, नेपाल के सिवा, शायद और कहीं नहीं पाये जा सकते। जिस महाकवि भास का नाम कालिदास आदि प्राचीन पण्डितों ने लिखा है उसके तेरह ग्रन्थ गणपति शास्त्री ने ढूँढ निकाले हैं। उनमें से तीन ग्रन्थ उन्होंने अपनी संस्कृत-ग्रन्थमाला में प्रकाशित भी कर दिये हैं। इनमें से एक का नाम स्वप्न-वासव-दत्तम् है। इस ग्रन्थ की भूमिका में शास्त्रीजी ने सिद्ध किया है कि भास महाकवि ईसा के ४०० वर्ष पहले से भी अधिक पुराने हैं। इस खोज से पुरातत्त्व-वेत्ताओं की अनेक कल्पनायें निर्मूल सिद्ध हो जाने का ढंग दिखा रही हैं। ईसा की चौथी-पाँचवीं शताब्दी में बेचारे कालिदास के होने का यह भी कारण बताया जाता है कि ईसा के पहले तो कालिदास के ग्रन्थों की जैसी संस्कृत का प्रचार ही न था। परन्तु उनके भी पूर्ववर्ती भास के एक नहीं, तेरह तेरह, ग्रन्थ उस तरह की संस्कृत में निकल पड़े हैं। उन सब के प्रकाशित हो जाने पर अनेक नई नई बातें मालूम होंगी और कितनीहीं पुरानी कल्पनायें मिट्टी में मिल जायँगी।

१२—महाराज रत्नसिंहजी का पत्र।

इस विषय में हमारे पास कई पत्र आये हैं, जिनमें यह प्रमाणित किया गया है कि लार्ड आकलेंड को लिखा गया हिन्दी का पत्र बीकानेर-नरेश महाराज रत्नसिंहजी का ही था। उनमें से श्रीनागरी-भण्डारकार्य्यालय-सभा, बीकानेर, के नाम पर लिखा हुआ, राव-बहादुर राजा हरिसिंह का भेजा हुआ, ४ आक्टोबर का, पत्र नीचे प्रकाशित किया जाता है:—

श्रीमान्!

अगस्त सन् १९१२ ई० की सरस्वती पत्रिका (संख्या ८) में-"बड़े लाट लार्ड आकलेंड को हिन्दी में पत्र" यह हेडिंग देकर जो श्रीयुत रामकुमार गोयेनका महोदय ने लेख छपा है उसमें श्रीमान् महाराज रत्नसिंहजी महोदय के पत्र (जो हिं लार्ड आकलेंड की सेवा में उक्त महाराज साहब की ओर से भेजा गया था) का उल्लेख कर उस के विषय में सन्देह प्रक किया गया है, यद्यपि आगे चल कर इतिहास के प्रमाण यह लिख दिया है कि "उस समय बीकानेर के सिंहासन श्रीमान् महाराज रत्नसिंहजी सुशोभित थे। इससे सिद्ध है कि यह पत्र उन्हीं का है" इत्यादि।

इस विषय में लेखक को तथा पाठकों को किसी प्रकार सन्देह न रहे, अतः सूचित किया जाता है कि वह पत्र तत्क लीन बीकानेर-नरेश श्रीमान् महाराज रत्नसिंहजी महोदय ही था कि जिसकी अक्षरशः कापी यहां राज्य में मौजूद है।

किम्बहुना विज्ञेषु
कृपाकांक्षी
राव-बहादुर राजा हरिसिंह
मेम्बर कौंसिल स्टेट
बीकानेर।

१३—आत्मा।

गत जूलाई की संख्या में डाक्टर रामनारायण मिश्र एल० एम० एस० का एक लेख आत्मा पर प्रकाशित हुआ है। उसमें डाक्टर साहब ने आत्मा को कोई चीज़ ही नहीं समझा। कितने ही पाश्चात्य विज्ञानवेत्ताओं के सिद्धान्तों के आधार पर डाक्टर साहब आत्मा को देश-काल (Environments) के अनुसार प्राप्त किये गये ज्ञानों या संस्कारों की एक गठरी मात्र समझते हैं। इसी बात को उन्होंने युक्तियों के द्वारा सिद्ध करने की चेष्टा अपने लेख में की है। इस पर कितने ही आत्मज्ञानी महाशय उन पर बिगड़ उठे हैं। आज तक डाक्टर साहब के लेख के खण्डन में हमारे पास कोई दर्जन लेख आ चुके हैं। परन्तु बड़े दुःख के साथ लिखना

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, Kangri Gurukul, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ता है कि उन में से एक भी लेख में डाक्टर साहब की दलीलों का यथोचित खण्डन नहीं किया गया। सब में प्रायः वही गीता, पातञ्जल, न्यायदर्शन आदि की दुहाई दी गई है। पर इन सब प्रमाणों से क्या डाक्टर साहब परिचित नहीं? उनके लेख का पहला ही वाक्य है:—"पुराने शास्त्रवेत्ताओं ने आत्मा की परिभाषा कई प्रकार से की है"। इस से सिद्ध है कि भारत के शास्त्रवेत्ताओं के सिद्धान्तों को वे पूर्णतया नहीं तो अंशतः अवश्य ही जानते हैं। फिर उनके पिष्ट-पेषण की क्या आवश्यकता? आवश्यकता है उनकी Environment वाली दलील के खण्डन की। सो किसी ने भी अपने लेख में उसका युक्तिपूर्ण खण्डन नहीं किया। डाक्टर साहब विज्ञानवेत्ता हैं; यूरोप और अमेरिका घूमे हुए हैं; जिस शरीर में हम आत्मा का अधिष्ठान मानते हैं उसकी रग रग का ज्ञान प्राप्त किये हुए हैं। वे गौतम, पतञ्जलि और शङ्कराचार्य के प्रमाणों से कायल होनेवाले नहीं। यदि यह बात सम्भव होती तो इन नोटों का लेखक उनसे प्रार्थना करता कि वे उसके लिखे हुए 'आत्मा' नामक लम्बे लेख को पढ़ने की कृपा करें। यह लेख जनवरी १९०१ की सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है। इसमें—

(१) ज्ञानाधिकरणमात्मा।

(२) पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि।

(३) एष हि द्रष्टा, श्रोता, घ्राता, रसयिता, मन्ता, बोद्धा, कर्त्ता, विज्ञानात्मा पुरुषः।

(४) इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखादि ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्।

(५) पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धात् जातस्य हर्षभयशोक-सम्प्रतिपत्तेः।

(६) प्रेत्याहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात्।

(७) प्रकृतिविकृतिभिन्नः शुद्धबोधस्वभावः
सदसदिति विशेषं भासयन्निर्विशेषः।
विलसति परमात्मा जागृदादिष्ववस्था-
स्वहमहमिति साक्षात् साक्षिरूपेण बुद्धेः॥

इत्यादि प्राचीन शास्त्रकारों के दिये हुए प्रमाणों द्वारा आत्मा का अस्तित्व, लक्षण, चिह्न और कार्य आदि सभी लेख में दिखाया गया है। डाक्टर साहब आत्मसम्बन्धी प्राचीन शास्त्रों के चाहे ज्ञाता हों चाहे न हों, उनके लेख से यह झलक रहा है कि वे हमारे तत्त्ववेत्ता प्राचीन पण्डितों की बात मानने के नहीं। यदि कोई उन्हें वैज्ञानिक रीति से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध करके, अथवा दलीलों से ही उनकी Environment वाली दलील को उड़ा दे, तो चाहे वे भलेही आत्मा की असलियत मान लें।

एक मात्र भारत ही ऐसा देश है जिसने आत्मा की खोज में सबसे अधिक सफलता प्राप्त की है। यदि उसी के आत्मदर्शी आचार्यों का कथन प्रामाण्य नहीं तो हो चुका। हमारी क्षुद्र बुद्धि तो यह कहती है कि आत्मा के अस्तित्व का पता विज्ञान द्वारा शायदही कभी लग सके। आत्म और परमात्म-तत्त्व के दर्शनों के और ही साधन हैं। वे बिरलेही को प्राप्त होते हैं। जिन एक आध महात्माओं की चरण-रज को अपने मस्तक पर लगाने का सौभाग्य इन पंक्तियों के लेखक को प्राप्त हुआ है उनसे उसने यही सुना है और यत्किञ्चित् × × × × × । परन्तु इस विषय में और अधिक लिखने की चेष्टा करना अनधिकार चर्चा होगी। अतएव, अलम्। आत्माही क्यों, परमात्मा भी कोई चीज़ न सही।

पुस्तक-परीक्षा।

१—**गम्भीरा**। मालदह (बङ्गाल) में एक जातीय शिक्षा-समिति है। श्रीहरिदास पालित उसके ऐतिहासिक अनुसन्धानकारी हैं। यह बँगला-पुस्तक आपही की खोज का फल है। इसमें गम्भीरा-पूजा का इतिवृत्त है। बँगला, संस्कृत, और अँगरेज़ी के अनेक ग्रन्थों का मन्थन करके पालित महाशय ने इसकी रचना की है। गम्भीरा-पूजा एक प्रकार की शिवार्चना है। बङ्गाल के कुछ ज़िलों में वह 'गाजना' के नाम से भी प्रसिद्ध है। परन्तु मालदह आदि में वह गम्भीरा अथवा 'आद्येर गम्भीरा' नाम से ही अभिहित है। इस पुस्तक में इस पूजा के धारावाहिक इतिहास के सिवा यह भी दिखाया गया है कि प्राचीन साहित्य में यह पूजा किस रूप में वर्णन की गई है और किन किन ग्रन्थों में इसका उल्लेख है। विद्वान् लेखक ने वैदिक साहित्य तक में इस पूजा का उल्लेख ढूँढ़ निकाला है। पालित-महोदय के अध्यवसाय और बहु-व्यापक पुस्तकावलोकन की जितनी प्रशंसा की जाय कम है। जातीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास की सृष्टि के लिए ऐसी ही ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता है। बङ्गाली विद्वान् अब इस ओर भी झुके हैं। आशा है, अपने देश के इतिहास की सामग्री एकत्र कर के शीघ्रही वे एक अच्छा इतिहास निर्म्माण कर डालेंगे। यह पुस्तक कोई साढ़े तीन सौ पृष्ठों की है और प्रयाग के इंडियन प्रेस में छपी है। अच्छी जिल्द बँधी हुई है। मूल्य इसका दो रुपया है। प्राप्ति-स्थान :—चक्रवर्ती चैटर्जी ऐंड कम्पनी, १५ कालेज स्क्वायर, कलकत्ता।

❋

२—**श्रीमद्भगवद्गीता-पद्यावली, प्रथम भाग**। मध्य-प्रदेश के चांदा-नगर में हिन्दी-साहित्य-प्रकाशक मण्डली नाम की कोई जन-संस्था है। उसीने इस पुस्तक को प्रकाशित किया है। इसमें गीता के पहले नौ अध्यायों का हिन्दी-पद्य में अनुवाद है। ऊपर श्लोक है, नीचे उसका अनुवाद दोहे में दिया गया है। भाषान्तर प्रायः शुद्ध है; पर कविता अच्छी नहीं। दोहों से मूल का भाव भी झट समझ में नहीं आता। टाइटिल पेज पर लिखा है-"महात्मा गुसांई तुलसीदासकृत"। पर दोही चार दोहे पढ़ने पर मन यह कहने लगता है कि ये दोहे तुलसीदास के से नहीं। यदि ये दोहे तुलसीदासही की रचना हैं तो, न मालूम, वे क्यों अच्छे नहीं। सम्भव है, यह उनकी पहले की रचना हो। यदि ये तुलसीदास के बनाये नहीं तो जिसने इन्हें तुलसीदास के नाम पर चलाना चाहा है उसने दण्ड पाने का काम किया है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में जो संस्कृत-वाक्य हैं वे प्रायः भ्रष्ट हैं। उदाहरण :—

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्री-कृष्णार्जुनसंवादेऽक्षरब्रह्मयोगोनाम् (?) तथा च श्रीमद्गोस्वामी (?) तुलसीदासकृतभाषाछन्दोऽयम् (?) गीतायाः (?) अष्टोध्यायः (?)

पुस्तक की पृष्ठ-संख्या ८७ और मूल्य १० आने है?

❋

३—**वार्षिक विवरण**। फीरोज़ाबाद में भारती-भवन नामक एक पुस्तकालय कुछ उत्साही सज्जनों ने खोला है। उसीका यह पहला वार्षिक विवरण है। पुस्तकालय को खुले अभी वर्षही डेढ़ वर्ष हुआ। पर इतनेही समय में इसके सञ्चालकों ने ७२४॥) क़ीमत की १०२५ पुस्तकें हिन्दी की एकत्र कर ली हैं। सब मिला कर ३९ पत्र हिन्दी के इसमें आते हैं। इस भवन के सभासदों की संख्या ७५ तक पहुँच गई है और २८।) मासिक सहायता सर्व-साधारण से इसे मिलती है। साल भर में इसे ६६३॥।-)॥ की आय हुई और ४८९-)। ख़र्च हुआ। विद्या-प्रचार के लिए ऐसे पुस्तकालयों की बड़ी ज़रूरत है। इनकी सहायता के लिए धन और पुस्तकादि का दान देना देश-हितैषियों का कर्तव्य है।

४—**काश्ते-ज़ाफ़रान**। यह १३ पृष्ठ की एक छोटी सी पुस्तक है। इसकी भाषा उर्दू है, लिपि फ़ारसी। कुँदरकी, ज़िला मुरादाबाद, के ज़मींदार बाबू कुञ्जविहारीलाल ने इसमें केसर की खेती के विषय में, अपने निज के तजरिबे से, अनेक बातें लिखी हैं। लोगों का अबतक यही ख़याल था कि काश्मीर के सिवा और कहीं केसर नहीं पैदा हो सकती। परन्तु इस पुस्तक के लेखक ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि उचित प्रबन्ध और परिश्रम से अन्यत्र भी केसर पैदा हो सकती है।

❋

५—**गढ़वाल-समाचार**। दुगड्डा, गढ़वाल, से यह मासिक पत्र ९ वर्ष से निकलता है। इसके प्रत्येक अङ्क में २४ पृष्ठ रहते हैं। मूल्य केवल १) है। इसके सम्पादक पण्डित गिरिजादत्त नैथाणी हिन्दी के अच्छे लेखक हैं। पत्र के नामानुसार इसमें वे गढ़वाल से सम्बन्ध रखनेवाले लेख और नोटही अधिक देते हैं। पर अन्यान्य विषयों पर भी इसमें लेख रहते हैं। गढ़वालप्रान्त की आवश्यकताओं और न्यूनताओं को यह पत्र, समय समय पर, प्रकाशित करके अपने इति-कर्तव्य की यथेष्ट पूर्त्ति करता है।

❋

६—**श्रीआद्यास्तुति**। काशीनिवासी पण्डित नानक-प्रसाद मिश्र ने इसकी रचना की है। आपका वर्त्तमान पता है :—नागपोखरी, नकसाल, नेपाल। पुस्तक में ५५ पृष्ठ हैं और मोटे टाइप में छपी है। मूल्य मालूम नहीं। सप्तशती में देवी की जैसी उत्पत्ति लिखी है वैसीही इसमें लिख कर मिश्रजी ने श्रद्धाभक्तिपूर्व्वक दोहा, चौपाई, हरिगीतिका और घनाक्षरी आदि में आद्या शक्ति की स्तुति की है। कविता सरस है। नमूना :—

माफ करि मेरी तकसीर मतवारी
मातु देरी ना लगाय मेरी मनसा पुराय दे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकल सुरन के समूह ते समेटि तेज
धरो जो स्वरूप सोई झलक दिखाय दे।
छोह करि जैसे निज दासन सों
बोलति है बानी सो मधुर मेरे श्रवण सुनाय दे।
नानक मों ओर देखि दृगन को ओर हँसि
हाथन सों मेरे निज पैयाँ पकराय दे॥

७—**एकतादर्शन**। कटनी-मुरवारा के बाबू हरिदास खण्डेलवाल ने इस एकतादर्शन नामक सातवें दर्शन-शास्त्र की उद्भावना की है। इसके पूर्व भाग में पन्द्रह अध्याय हैं और उत्तर भाग में नौ। आत्मविचार, ईश्वरनिरूपण, जगन्निरूपण, सृष्टिप्रकरण, ईश्वर और जीव की एकता, जड़ और चेतन की एकता, अद्वैतसिद्धि, तत्त्वज्ञान और मोक्ष आदि विषयों का लेखक महोदय ने साधु भाषा में सब के समझने योग्य निरूपण किया है। ईश्वरवाद और उपासना-विषयक मतभेद मिटाने और सबकी एकता दिखाने के लिए आपने यह परिश्रम किया है। आपका यह प्रयत्न प्रशंसनीय है। पुस्तक उत्तम है। भाषा भी अच्छी है। पृष्ठ-संख्या ८६। मूल्य ६ आना। खेद की बात है, इस पुस्तक के कर्ता का, अभी हाल में, शरीरान्त हो गया।

⁂

८—**माप-विद्या-प्रदर्शिनी**। माप-सम्बन्धीय सचित्र पुस्तक है। बन्दोबस्त के कर्म्मचारी, पटवारी और पटवारियों के स्कूलों के विद्यार्थी इससे विशेष लाभ उठा सकते हैं। इसमें चतुर पैमायश, आलात पैमायश, हदबन्दी, किश्तबन्दी, नक़शा बनाना, खसरा मुरत्तिब करना, रक़बा निकालना आदि पैमायश से सम्बन्ध रखनेवाली अनेक उपयोगी बातें हैं। जगह जगह चित्र देकर विषय स्पष्टतापूर्व्वक समझाया गया है। पुस्तकान्त में पुस्तक-लेखक श्रीयुत माधवसिंह मेहता, मेवाड़वाड़ा (मेवाड़) का चित्र और चरित्र भी है। अपना और अपने पिता, पितामह, भाई, भतीजे, स्त्री, पुत्र आदि के चित्रान्त के लिए १३ पृष्ठ ख़र्च करने की मेहता जी ने न मालूम क्यों ज़रूरत समझी। लेखक ही से यह पुस्तक १२ आने में मिल सकती है।

⁂

९—**डाक्टर आर्थर रिचर्डसन का जीवन-चरित**। लेखक, श्रीयुत हरिशङ्कर उपाध्याय, मिश्रपोखरा, काशी। पृष्ठ-संख्या २४—दाम ३ आने। काशी के सेंट्रल—हिन्दू—कालेज के प्रधान अध्यापक, परलोकवासी, डाक्टर रिचर्डसन् का यह संक्षिप्त चरित है। डाक्टर साहब के दो चित्रों से विभूषित है। पढ़ने लायक़ है।

⁂

१०—**घेरण्ड-संहिता**। योग-विद्या-विषयक यह एक छोटा सा प्राचीन ग्रन्थ है। स्वामी रामचरणपुरीजी ने इसका अनुवाद हिन्दी में किया है। उसी को, मूल-संस्कृत-सहित, पण्डित धर्म्मदत्त त्रिपाठी (दूध-विनायक, काशी) ने प्रकाशित किया है। उन्हीं से यह मिलता है। दाम १) है। पृष्ठ-संख्या १४२ है। जिल्द बँधी हुई है। धोती, नेती, बस्ति आदि शोधन, तथा आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि इन सात साधनों का वर्णन, संक्षेप में, इस ग्रन्थ में है। अनुवाद अच्छा हुआ है। पादटीकाओं में, जगह जगह पर, और भी अनेक उपयोगी बातें लिखी गई हैं।

⁂

११—**सच्चा सुधार**—पाण्डेय-रामलोचन-शर्म्मा-कृत। इस निबन्ध में भारत की वर्तमान दशा, उसके कारण और सुधार पर विचार किया गया है। लेखक का मत है कि भारत-वासियों की वर्त्तमान सामाजिक और नैतिक अवस्था बड़ी ख़राब है, जिसका कारण यह है कि आजकल वैदिक काल के आचार-विचार के अनुसार काम नहीं किया जाता। यदि ब्रह्मचर्य्य और वर्णाश्रम के नियमों को पालन करते हुए लोग धार्मिक और नैतिक शिक्षा पाने लगें तो भारत का शीघ्र ही सुधार हो जाय। लेखक ने इस निबन्ध में इस बात पर बिलकुल ही विचार नहीं किया है कि विज्ञान ने संसार के पूर्व्व रँग-रूप को बिलकुल ही पलट डाला है। अतएव भारतवासियों को वर्तमान भयङ्कर जीवन-संग्राम में जीवित रहने और अन्य उन्नत और सभ्य जातियों के बराबर चलने के लिए कौन कौन नई बातों को सीखना चाहिए। पुस्तक में १२४ पृष्ठ हैं; मूल्य पाँच आना है; छपाई और काग़ज़ अच्छा है। भागलपुर के बिहार-ऐंजल प्रेस एण्ड स्टोर्स से मिलता है।

⁂

१२—**कल्यानी**। एक उपन्यास है। "पवित्र प्रेम क्या है। सुचाल और मर्य्यादाबद्ध पुरुष की परमेश्वर कैसे सहायता करता है और ऐश्वर्य-मदान्ध पुरुष को कैसा नीचा दिखाता है"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही दिखाने के लिए लेखक ने इसमें प्रयत्न किया है। पुस्तक में छोटी साँची के १५६ पृष्ठ हैं। दाम लिखा नहीं। लेखक, बाबू शङ्करलाल अग्रवाल, स्टेशन मास्टर, कबरई, ज़िला हमीरपुर को लिखने से मिलती है।

❋

१३—सोहऽम्। इस छोटी सी सोलह सत्रह पृष्ठ की पुस्तिका में 'सोऽहम्' की साधना का संक्षिप्त वर्णन है। योगाश्रम, हसनअब्दाल, पञ्जाब को लिखने से मुफ़्त मिलती है।

१४—सभापति की वक्तृता। प्रयाग में गत वर्ष जो वैद्यक-सम्मेलन हुआ था उसी के सभापति कविराज श्रीगणनाथ सेन, एम० ए०, एल० एम० एस० की यह वक्तृता है। यह कोई सत्तर अस्सी पृष्ठ की एक छोटी सी पुस्तक है। इसमें आयुर्वेद-सम्बन्धिनी अनेक महत्त्वपूर्ण बातों का संग्रह है। इसे पढ़ने से भारत की प्राचीन वैद्य-विद्या पर श्रद्धा उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकती। आयुर्वेद-महामण्डल, प्रयाग, से ८ आने में यह पुस्तक मिलती है।

❋

१५—नरमेधयज्ञ-मीमांसा-समालोचना। पण्डित भीमसेन शर्म्मा की बनाई एक पुस्तक है। उसका नाम है—नरमेधयज्ञ-मीमांसा। उसमें यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई है कि वेदों में नरमेध का विधान नहीं। उसी पुस्तक का, लेखक की समझ के अनुसार, यह युक्तिसङ्गत खण्डन है। डभोई के पञ्जाबी पण्डित हंसराजशर्म्मा ने इसे लिख कर प्रकाशित किया है। दाम ३ पाई है।

चित्रपरिचय।

(१)

शाहेजहाँ का महल।

इस संख्या में जो रङ्गीन चित्र प्रकाशित किया गया है उसका नाम है 'शाहेजहाँ का महल'। बादशाह शाहेजहाँ अपने महलों में किस रँग ढँग से रहा करता था, यही भाव इस चित्र में दिखाया गया है। यह चित्र इस देश की पुरानी चित्रकारी का अच्छा नमूना है। जिस असली चित्र से इसका प्रतिबिम्ब लिया गया है, प्रयाग की प्रदर्शिनी में, उसकी बड़ी प्रशंसा हुई थी।

(२)

सीताकुण्ड।

विहार-प्रान्त में मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले के अन्तर्गत सीतामढ़ी नाम की एक बस्ती है। वह बी० एन० डब्ल्यू० रेलवे का एक प्रसिद्ध स्टेशन है। उसी सीतामढ़ी में एक बड़ा कुण्ड है। कुण्ड क्या एक ख़ासा सरोवर है। कुण्ड के चारों ओर पक्की सीढ़ियाँ हैं; सुन्दर घाट बने हुए हैं। उस कुण्ड के समीप साधु-सन्तों की दो एक पर्णशालायें भी हैं; एक देव-मन्दिर भी है। सुनते हैं, यह वही पवित्र कुण्ड है जहाँ से, हल चलाते समय, राजर्षि जनक को श्रीसीताजी मिली थीं। इसीलिए यह कुण्ड सीताकुण्ड के नाम से विख्यात है। हिन्दुओं का यह पवित्र तीर्थ है। सतीशिरोमणि सीताजी के जन्मस्थान के दर्शन करने के लिए कितने ही हिन्दू प्रति वर्ष वहाँ जाते हैं। सीताकुण्ड के दर्शन-स्पर्शन करके अपने जन्म को सफल मानते हैं। उसी सीताकुण्ड का सुन्दर चित्र सरस्वती की इस संख्या में प्रकाशित किया जाता है। इस चित्र का असली प्रतिबिम्ब प्रयाग के प्रसिद्ध फ़ोटोग्राफ़र श्रीविश्वकर्माजी से हमें प्राप्त हुआ है। एतदर्थ आपको अनेक धन्यवाद।

(३)

आदम और हौवा।

एडम ऐंड इव, अर्थात् आदम और हौवा, जो पश्चिमी देशों की धर्म्म-पुस्तकों में मानव-जाति के जनक-जननी माने जाते हैं, स्वर्ग में स्वर्गीय सुखोपभोग करते थे। ईश्वर की आज्ञा थी कि तुम अमुक वृक्ष के फल मत खाना। इस आज्ञा का उन्होंने उल्लङ्घन किया। इस कारण वे स्वर्ग से मर्त्य लोक में ढकेल दिये गये। यही दृश्य इस संख्या के आदम और हौवा नामक चित्र में दिखाया गया है। ऊपर स्वर्ग का सुन्दर दृश्य है; नीचे अन्धकारपूर्ण पृथ्वी का। आदम और हौवा स्वर्च्युत होकर खड़े पश्चात्ताप कर रहे हैं। उनके उस समय के दुःख, खेद, नैराश्य आदि के भाव चित्र में बड़ी ही योग्यता से दिखाये गये हैं। लखनऊ-निवासी हकीम मुहम्मद-हुसैन साहिब ने इस चित्र की रचना की है। आपने कलकत्ते के आर्ट-स्कूल में चित्र-विद्या की शिक्षा पाई है। आप बड़े अच्छे चित्रकार हैं। विलायत तक के कई चित्रकारों ने आपकी प्रशंसा की है। नादिरशाह ने देहली में जो "बिज़न" बोला था उस पर आपने एक बहुत ही भाव भरा चित्र बनाया है। इस चित्र की प्रशंसा अरबिन्द बाबू अपने "कर्म्मयोगिन्" में जी खोल कर कर चुके हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Printed and Published by Apurva Krishna Bose at the Indian Press, Allahabad.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

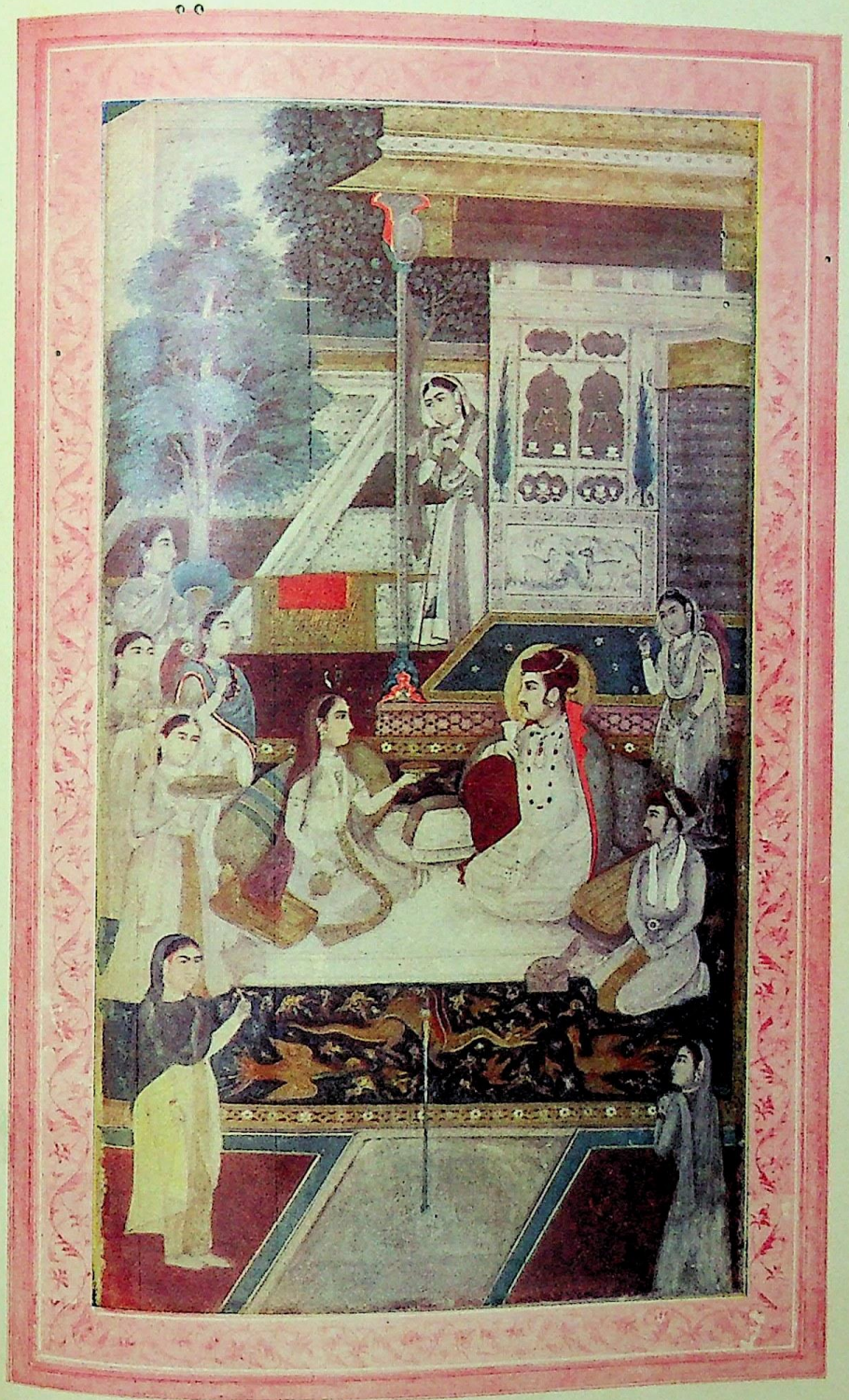

शाहजहाँ का महल।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदम और हौवा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इंडियन प्रेस इलाहाबाद।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

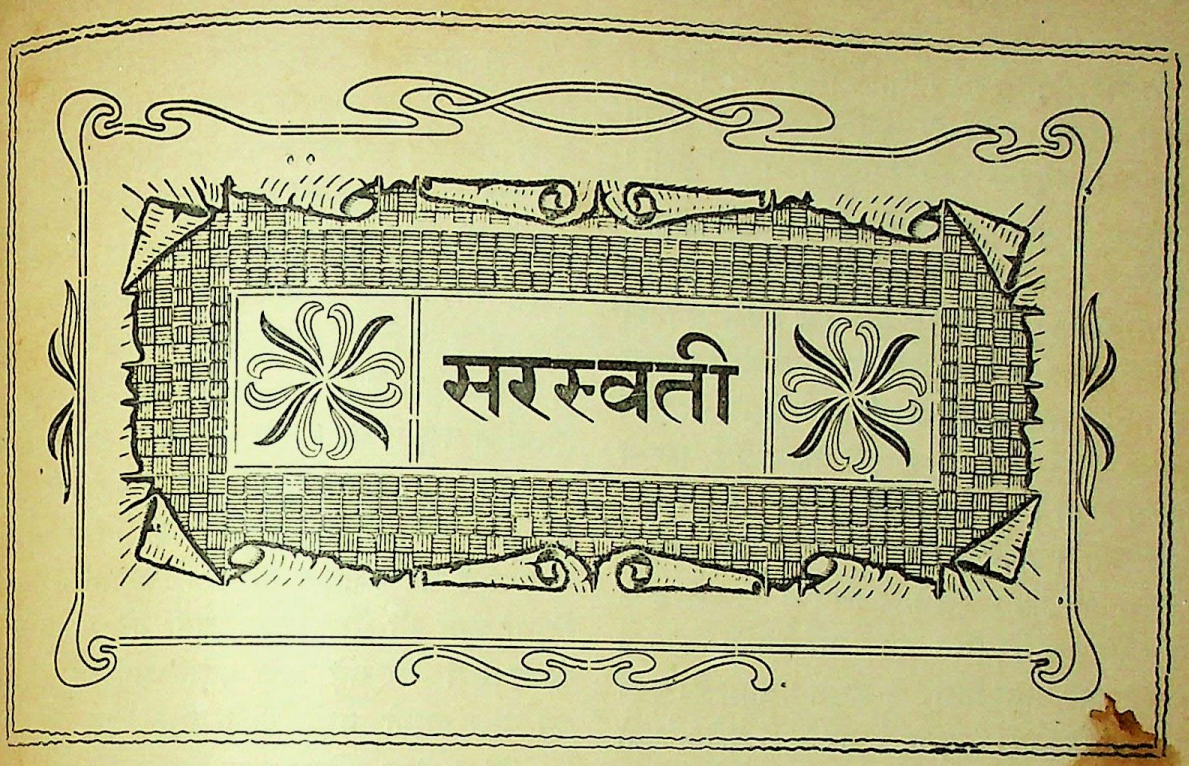

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग १३] १ नवंबर, १९१२—कार्त्तिक कृष्ण ७, १९६९। [संख्या ११

पुरुषों के बराबर अधिकार माँगने वाली स्त्रियाँ।

[लेखक, श्रीयुत सुन्दर-राज, लन्दन]

एलिज़ाबेथ और विक्टोरिया, रज़िया बेगम और अहल्या बाई, क्लिओपेटरा और चीन की मृत विधवा महारानी टसी-हखी आदि ऐसी स्त्रियों के नामों की इतिहास में कमी नहीं जिन्होंने लाखों और करोड़ों स्त्रियों और पुरुषों पर शासन किया और अब भी कर रही हैं। परन्तु गत शताब्दी के पहले अन्त तक स्त्रियों का पुरुषों के बराबर समझा जाना तो दूर रहा, उनको इस प्रकार समझने का ख़याल भी थोड़े ही से लोगों को हुआ था। तथापि पुरुषों के बराबर स्वत्व पाने की अभिलाषा स्त्रियों में बहुत दिनों से देख पड़ती है। अठारहवीं शताब्दी का अन्त भी न हुआ था कि फ़्रान्स और इँगलेंड की कुछ महिलाओं ने इस अधिकार की प्राप्ति के लिए चीख़ मचाई थी; पर उनकी संख्या इतनी थोड़ी थी और उनका आन्दोलन इतना निर्जीव था कि उनकी चीख़ बहुत कम लोगों ने सुनी।

सबसे पहली सभा—जिसका यह उद्देश था कि स्त्रियों को भी नागरिक के पूरे अधिकार प्राप्त हों, वे पार्लियामेन्ट में प्रवेश कर सकें, वोट दे सकें और किसी भी पद को पा सकें—१८५७ में, इँगलेंड के शेफ़ील्ड नगर में स्थापित हुई थी। दिन पर दिन इस आन्दोलन की उन्नति ही होती गई। कितने ही नगरों में इसी उद्देश से सभायें स्थापित हो गईं। उनकी ओर से पत्र निकाले गये। राजपुरुषों के ऊपर दबाव डाला गया। परन्तु १९०६ तक, इस काम में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ भी सफलता न हुई। पार्लियामेंट में स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार प्रदान करने के जितने प्रस्ताव पेश किये गये उनमें से एक भी पास न हुआ।

१९०६ के बाद इस आन्दोलन ने पलटा खाया। इसी वर्ष लिबरल दल को राज्याधिकार प्राप्त हुआ। स्त्रियों ने समझा कि शायद अब कुछ उनके मन की हो। परन्तु जब प्रार्थना और अनुरोध करने पर भी कुछ न हुआ तब उन्होंने अपनी कार्य्य-सिद्धि के लिए उचित-अनुचित सभी तरह की कारर्वाई करना निश्चित किया। पार्लियामेंट के चुनाव में वे बाधायें डालने लगीं। अपने आन्दोलन की ओर अधिकारियों का चित्त आकर्षित करने के लिए वे तरह तरह के उत्पात भी मचाने लगीं। अब वे पार्लियामेंट-भवन में एकत्र हो कर नाना प्रकार के ऊधम मचाती हैं। कहीं खिड़कियों के शीशे तोड़ती हैं और कहीं ढेले फेंकती हैं। इस उत्पात का उन्हें दण्ड भी मिलता है। बहुत सी स्त्रियाँ पकड़ी जा चुकी हैं। बहुधा उन पर जुर्माना किया गया; परन्तु उनमें से किसी ने भी कभी जुर्माना नहीं अदा किया। इस कारण उन्हें कारागार में जाना पड़ा। एक दो नहीं—सैकड़ों स्त्रियाँ इस प्रकार कारागार-वास-दण्ड भोग चुकी हैं। The National Women's Social and Political Union नाम की स्त्रियों की एक सभा है। अकेली इस सभा की ५०० स्त्री-सदस्य, १९१० की जनवरी से लेकर सितम्बर मास तक, इसी आन्दोलन के कारण, जेल की हवा खा चुकी थीं। अब तो इन लोगों को एक नई चाल सूझी है। जेल में भेजे जाने पर वे वहाँ भोजन करने ही से इनकार कर देती हैं। जब तीन चार दिन बीत जाते हैं और भूख से उनकी हालत शोचनीय हो जाती है तब लाचार होकर वे कारागार-मुक्त कर दी जाती हैं। सरकारी आज्ञा से डाक्टरों ने ज़बरदस्ती उनके उदर में भोजन पहुँचाने का भी विधान किया था; परन्तु इस ज़बरदस्ती से सर्व-साधारण में बड़ी नाराज़गी फैल गई और जिनकी सहानुभूति ऐसी स्त्रियों से कुछ भी न थी उनकी भी हो गई।

इस विषय में स्त्रियों की उद्दण्डता बढ़ती ही जाती है। वे बड़े बड़े राज-पुरुषों तक पर आक्रमण करने लगी हैं। समाचार-पत्रों के पाठक भूले न होंगे, गत १४ वीं जून १९१२ को एक वोट-भिखारिनी ने हज़ारों आदमियों के सामने ब्रिटिश साम्राज्य के महा-मन्त्री, मिस्टर आस्कुइथ, के कन्धे पकड़ कर ज़ोर से हिला दिये थे। मिस्टर लायड जार्ज इँगलेंड के अर्थ-सचिव हैं। हाल ही में उन्हें भी कई बार स्त्रियों ने तङ्ग किया। एक बार तो वे गाड़ी में बैठ कर भाग गये; परन्तु दूसरी बार वे मार खाने से न बचे। मिस्टर चर्चिल इँगलेंड के नौ-सचिव हैं। आयरलेंड के डबलिन नगर में वक्तृता देते समय स्त्रियाँ आप की भी बाधक बनी थीं। पार्लियामेंट के सदस्यों और बड़े बड़े पदाधिकारियों को स्त्रियों की मार खानी पड़ी है। निस्सन्देह उन्हें अपने उपद्रवों के लिए उचित दण्ड मिलता है; परन्तु वे इस की कुछ भी परवा नहीं करतीं।

पुरुषों के बराबर स्वत्व चाहने वाली स्त्रियों की इँगलेंड में कितनी ही सभायें हैं। उनमें से The National Union of Women's Suffrage Society और The National Women's Social and Political Union नाम की दो सभायें मुख्य हैं। पहली सभा १८६७ में स्थापित हुई थी। उसकी दो सौ शाखायें देश भर में फैली हुई हैं। दूसरी सभा १९०६ में बनी थी। इस सभा की आमदनी बहुत बड़ी है। १९१० में इसकी आमदनी दस लाख रुपये थी। इस सभा की ओर से "Votes for Women" नाम का एक साप्ताहिक पत्र भी निकलता है। स्त्रियों के इस काम से सहानुभूति प्रकट करने और उन्हें सहायता देने के लिए पुरुषों की भी कितनी ही सभायें बन गई हैं। परन्तु, साथही, ऐसी सभाओं की भी कमी नहीं जो स्त्रियों के इस उद्देश का विरोध करती हैं। १९०८ से The National League for Opposing Women's Suffrage नाम की एक सभा स्थापित है। उसके सदस्यों में स्त्री और पुरुष—दोनों ही हैं। लार्ड क्रोमर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जनरल की पदवी धारिणी मिसेज़ क्रमंड ।

मिसेज़ पेथिक लारेन्स ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिसेज़ इमेलाइन पैंकहर्स्ट ।

कुमारी क्रिस्टाबेल पैंकहर्स्ट, एम० एल० बी० ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

NOT TO BE LENT

और लार्ड कर्ज़न तक उसके सदस्य हैं। इस सभा की ओर से "Anti-Suffrage Review" नाम का एक पत्र भी निकलता है। यह सभा नहीं चाहती कि स्त्रियों को पुरुषों के बराबर स्वत्व दिये जायँ। इसकी शाखा-सभायें भी जहाँ तहाँ स्थापित होती जाती हैं।

अब हम कुछ उन स्त्रियों का हाल सुनाते हैं जो इस आन्दोलन की जान हैं। उनमें, जो इस स्वत्व-प्राप्ति के संग्राम में अगुआ हैं, मिसेज़ इमेलाइन पैंकहर्स्ट मुख्य हैं। उनकी शिक्षा पेरिस में हुई थी। १८७९ में उनका ब्याह हुआ और १८८९ में वे विधवा हो गईं। उनका पति सार्वजनिक कामों में बहुत शरीक होता था। अतएव वे भी सार्व-जनिक कामों में योग देना सीख गईं। १९०३ में उन्होंने Women's Social and Political Union नाम की पूर्वो-लिखित सभा की नींव डाली। इस सभा का काम वे बड़े उत्साह से करती हैं। १९०८ में उन्हें डेढ़ महीना कारावास-दण्ड इस लिए भोगना पड़ा कि उन्हों ने १३ स्त्रियों सहित पार्लियामेंट के हाउस आव् कामन्स (House of Commons) पर आक्रमण किया था। उसी वष के अन्त में उन्हें फिर तीन महीने का जेल हुआ। इस बार उन पर लोगों को भड़काने का दोष लगाया गया। १९१० में वे चार सौ स्त्रियों को लेकर महा-मन्त्री मिस्टर आसक्विथ से मिलने गईं। रास्तेही में वे पकड़ ली गईं। परन्तु दूसरे ही दिन छोड़ भी दी गईं। हाल ही में वे एक उपद्रव के लिए फिर पकड़ कर जेल में डाल दी गई थीं; परन्तु उन्होंने वहाँ भोजन करने से इनकार कर दिया। अन्त में, चार पाँच रोज़ के बाद, उनकी दशा बहुत ही शोच-नीय हो गई। तब वे छोड़ दी गईं। वे वक्तृता देने में बड़ी कुशल हैं। उन्होंने भ्रमण भी ख़ूब किया है। वे १९०९ में अमेरिका गई थीं। संयुक्त-राज और केनाडा में उनका बड़ा आदर हुआ था और लोगों ने उनकी वक्तृताओं को बड़ी ही श्रद्धा से सुना था।

इस आन्दोलन की दूसरी प्रधान स्त्री का नाम मिसेज़ ड्रमंड है। स्वत्व चाहने वाली स्त्रियों ने उन्हें जनरल की पदवी प्रदान की है। उनका जन्म मेनचेस्टर में हुआ था। उन्हों ने सिविल सर्विस (Civil Service) की सब से उच्च परीक्षा पास की; परन्तु नवीन नियमों के अनुसार सवा पाँच फुट ऊँची न होने के कारण उन्हें कोई पद न मिला। उन्हों ने इस अन्याय का बहुत विरोध किया, परन्तु फल कुछ भी न निकला। तब वे इस आन्दोलन में शामिल हो गईं। १९०८ में, मिसेज़ पैंकहर्स्ट के साथ, हाउस आव् कामन्स (House of Commons) पर आक्रमण करने के अपराध में उन्हें भी तीन महीने तक जेल में रहना पड़ा। इस समय वे अधिकतर लन्दन ही में रहती हैं। वे इस आन्दोलन का एक मुख्य स्तम्भ हैं।

मिसेज़ पैंकहर्स्ट की बड़ी लड़की, कुमारी क्रिस्टाबेल पैंकहर्स्ट, एल० एल० बी० भी इस आन्दोलन की सञ्चालिकाओं में से हैं। उनका जन्म १८८० में हुआ था। उन्होंने मेनचेस्टर और स्वीट-ज़रलेंड में शिक्षा पाई है। उन्होंने क़ानून पढ़ना चाहा। इस लिए, १९०४ में उन्होंने क़ानून की शिक्षा देने वाली लिङ्कन-इन (Lincoln Inn) नाम की संस्था के अधिकारियों से प्रवेश प्राप्त करने के लिए प्रार्थना की। पर उन लोगों ने उन्हें उस संस्था में पढ़ाने से इनकार किया। इस पर उन्होंने अधि-कारियों के इस फ़ैसले का घोर विरोध किया, जिस का फल यह हुआ कि वे क़ानून के कालेज में दाख़िल करली गईं। १९०५ में, उन्हें पारस्परिक राष्ट्रीय क़ानून की दक्षता के लिए पुरस्कार मिला। उसी वर्ष, आक्टोबर में, उन्होंने इँगलेंड के विदेश-सचिव, सर एडवर्ड ग्रे, की स्त्रियों की स्वत्व-सम्बन्धिनी नीति का खुल्लम खुल्ला तिरस्कार किया। इसलिए उन्हें कुछ दिन कारावास करना पड़ा। इसी वर्ष उन्होंने क़ानून की एल० एल० बी० परीक्षा पास की। उत्तीर्ण छात्रों में उन का स्थान दूसरा रहा। तत्पश्चात् वे इस आन्दोलन के काम करने लगीं। १९०७ में उन्हें पन्द्रह दिन तक कारावास करना पड़ा। १९०८ में वे अपनी माता और मिसेज़ ड्रमण्ड के साथ पकड़ी गईं। मुक़द्दमे में उनकी जिरह पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े बड़े क़ानूनदां लोगों तक को दाँतों तले उँगली दबानी पड़ी। इस बार उन्हें दस सप्ताह का कारा-वास-दण्ड हुआ। इसी वर्ष के मार्च में खिड़कियों के शीशे तोड़ने और दूसरी स्त्रियों को शीशे तोड़ने के लिए उत्तेजित करने के अभियोग में उन पर वारंट निकाला गया। पर वे पुलिस की आँखों में धूल झोंक कर भाग गईं और अब तक ला पता हैं।

मिसेज़ पेथिक लारेन्स भी इस आन्दोलन के सम्बन्ध में बड़ा काम कर रही हैं। १९०६ में दो महीने के लिए, और १९०९ में फिर दो महीने के लिए वे कारागार-वास कर चुकी हैं। नवम्बर १९११ में वे फिर पकड़ी गई थीं; परन्तु इस बार एक सप्ताह के कारागार-वास के बाद उन्हें रिहाई मिल गई। उनका पति "Votes for Women" नाम की पत्रिका का सम्पादक है। वे उस पत्र की संयुक्त-सम्पादिका हैं।

ये तो इँगलेण्ड की बातें हैं। अन्यान्य देशों में भी यह आन्दोलन किसी न किसी रूप में विद्यमान है। न्यूज़ीलेण्ड में १८९३ से स्त्रियों को वोट देने का अधिकार प्राप्त है। आस्ट्रेलिया में स्त्रियों को पार्लियामेंट आदि सब सभाओं में वैसेही स्वत्व प्राप्त हैं जैसे पुरुषों को। संयुक्त-राज्य, अमेरिका, में भी इस आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा है। वहाँ के कई राज्यों में स्त्रियों को बहुत से स्वत्व पुरुषों के बराबर प्राप्त हैं। और, जिन में नहीं हैं, अथवा कम हैं, वहाँ भी ज़ोरो-शोर से आन्दोलन किया जा रहा है। फिन-लेंड में स्त्रियों और पुरुषों के राजनैतिक स्वत्व बरा-बर हैं। १९०६ में, वहाँ की महा-सभा में १९ स्त्रियाँ सदस्य थीं। नारवे में भी स्त्रियों को कुछ स्वत्व प्राप्त हो गये हैं। फ़ान्स, रूस और स्वीडन आदि अन्य देशों में स्त्रियों की दशा अभी वैसी ही है, परन्तु वहाँ भी इस आन्दोलन का जन्म हो गया है। और भारत में—? पुरुष तो पहले अपने अधिकार प्राप्त कर लें!

कालिदास के विषय में जैन पण्डितों की एक निर्मूल कल्पना।

दक्षिण-हैदराबाद की रियासत में मालखेड़ नामक एक क़सबा है। कोई एक हज़ार वर्ष पहले यह स्थान बड़ी उन्नत अवस्था में था। राष्ट्रकूटवंशी राजाओं की वह राजधानी थी। इसका पुराना नाम है—मान्य-खेट। यहाँ के राजाओं के अनेक शिलालेख और ताम्र-पत्र मिले हैं। वे इंडियन ऐंटिक्वरी आदि पत्रों में प्रकाशित हो चुके हैं। डाक्टर भाण्डारकर ने इन्हीं लेखों के आधार पर दक्षिण का एक इतिहास ही लिख डाला है। उसमें एक अध्याय आपने मालखेड़ के राष्ट्रकूट (राठौड़) राजाओं पर भी लिखा है।

मालखेड़ में अमोघवर्ष (प्रथम) नाम का एक राजा था। शिलालेखों और ताम्रपत्रों के आधार पर उसका शासन-काल ८१५ से ८७७ ईसवी तक निश्चित हुआ है। उसने कोई ६२ वर्ष राज्य किया। वह राजा बड़ा पण्डित था। प्रश्नोत्तर-रत्नमाला नामक पुस्तक उसीकी रचना है। पुरानी कनारी भाषा में कविराजमार्ग नामक अलङ्कार-शास्त्र-सम्बन्धिनी एक और पुस्तक भी उसके नाम से प्रसिद्ध है। जैन-साधु वीरसेन के शिष्य जिनसेनाचार्य्य इस राजा के गुरु थे। जैनियों के आदि-पुराण नामक ग्रन्थ के कर्ता जिनसेन ही हैं। इस पुराण के पूर्ण होने के पहले ही वे परलोकवासी हो गये। अतएव उनके शिष्य गुणभद्र ने उसकी पूर्ति की।

आचार्य्य जिनसेन का लिखा हुआ पार्श्वाभ्युदय नाम का भी एक काव्य है। वह ईसा की नवीं सदी का है। उसमें कालिदास-कृत मेघदूत के प्रत्येक श्लोक के एक एक चरण का—कहीं कहीं दो दो का भी—आवेष्टन करके पार्श्वनाथ का चरित वर्णन किया गया है। अर्थात् मेघदूत के श्लोक-पाद समस्या के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तौर पर पार्श्वनाथ के चरित-वर्णन में घटा दिये गये हैं। यथाः—

श्रीमन्मूर्त्या मरकतमयस्तम्भलक्ष्मीं वहन्त्या
योगैकाग्र्यस्तिमिततरया तस्थिवांसं निदध्यौ।
पार्श्वं दैत्यो नभसि विहरन्बद्धवैरेण दग्धः
कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारप्रमत्तः॥

इसी तरह, सारे मेघदूत के आधार पर, यह पार्श्वाभ्युदय नामक काव्य चार सर्गों में समाप्त किया गया है। अन्त में इसके कर्ता जिनसेन ने लिखा है :—

श्रीवीरसेनमुनिपादपयोजभृङ्गः
श्रीमानभूद्विनयसेनमुनिर्गरीयान्।
तच्चोदितेन जिनसेनमुनीश्वरेण
काव्यं व्यधायि परिवेष्टितमेघदूतम्॥

अर्थात् वीरसेन मुनि के शिष्य विनयसेन की प्रेरणा से जिनसेन ने इसकी रचना की। जिनसेन भी वीरसेन के शिष्य थे। इस कारण जिनसेन और विनयसेन गुरु-भाई हुए।

अच्छा, विनयसेन ने क्यों ऐसी प्रेरणा की? अनुमान से मालूम होता है कि विनयसेन को मेघदूत बहुत पसन्द आया। परन्तु विरक्त होने के कारण उन्हें उसका विषय, जो शृङ्गार-रस से परिप्लुत है, अच्छा न लगा। उन्होंने शायद सोचा कि ऐसा अच्छा काव्य यदि किसी जैन तीर्थङ्कर पर घटा दिया जाय तो घटानेवाले के कविता-चातुर्य्य का भी प्रकाशन हो जाय और यह काव्य जैन-साधुओं के पढ़ने योग्य भी हो जाय। यह बात विनयसेन ने जिनसेन से कही होगी। इस सलाह को जिनसेन ने पसन्द करके ही, जान पड़ता है, पार्श्वाभ्युदय की रचना की है।

पण्डिताचार्य्य योगिराट् नामक एक जैन-पण्डित ने पार्श्वाभ्युदय की टीका लिखी है। मैसोर में एक स्थान श्रवण-बेलगुल नाम का है। वहाँ के जैन-मठ के वे गुरु थे। इन्होंने अपनी टीका में इरुगदण्डनाथ के बनाये हुए रत्नमाला नामक कोश का कई जगह हवाला दिया है। ये योगिराट् विजयनगर-नरेश हरिहर के समय में थे। अर्थात् ये शक-संवत् १३२१ (१३९९ ईसवी) में विद्यमान थे। इससे मालूम हुआ कि पार्श्वाभ्युदय के निर्म्माण के कोई पाँच सौ वर्ष बाद योगिराट् ने यह टीका बनाई।

इस टीका के अन्त में टीकाकार ने इस काव्य के निर्म्माण का कारण लिखा है। उसमें १८ श्लोक हैं। उनमें से पहले १६ श्लोक ज्यों के त्यों नीचे नक़ल किये जाते हैं :—

श्रीजिनेन्द्रमताब्धीन्दुर्मूलसङ्घाम्बरां शुभान्।
वीरसेनाभिधानो वाऽवर्त्तिष्टाचार्यपुङ्गवः॥ १॥
तच्छिष्यो जिनसेनार्यो बभूव मुनिनायकः।
यत्कृतिर्भुवनेऽद्यापि चन्द्रिका प्रसरायते॥ २॥
बङ्कापुरे जिनेन्द्राङ्घ्रिसरोजेदिन्दिरोपमः।
अमोघवर्षनामाऽभून्महाराजो महोदयः॥ ३॥
स स्वस्य जिनसेनर्षिं विधाय परमं गुरुम्।
सद्धर्म्मं द्योतयंस्तस्थौ पितृवत्पालयन्प्रजाः॥ ४॥
कालिदासाह्वयः कश्चित्कविः कृत्वा महौजसा।
मेघदूताभिधं काव्यं श्रावयन्गणशो नृपान्॥ ५॥
अमोघवर्षराजस्य सभामेत्य मदोद्धुरः।
विदुषोऽवगणय्यैष प्रभुमश्रावयत्कृतिम्॥ ६॥
तदा विनयसेनस्य सतीर्थ्यस्योपरोधतः।
तद्विद्वाहंकृतिच्युत्यै सन्मार्गोद्दीपनाय परम्॥ ७॥
जिनसेनमुनीशानस्त्रैविद्याधीश्वराग्रणीः।
विंशत्यग्रशतग्रन्थप्रबन्धश्रुतिमात्रतः॥ ८॥
एकसन्धित्ववत्सर्वं गृहीत्वा पद्यमर्थतः।
भूभृद्विद्वत्सभामध्ये प्रोचे परिहसन्निति॥ ९॥
पुरातनकृतिस्तेयात्काव्यं रम्यमभूदिदम्।
तच्छ्रुत्वा सोऽब्रवीद्रुष्टः पठतात्कृतिरस्ति चेत्॥ १०॥
पुरान्तरे सुदूरेऽस्ति वासराष्टकमात्रतः।
आनाय्य वाचयिष्यामीत्यवोचद्यमिकुञ्जरः॥ ११॥
इत्येतदवलोक्याथ सभापतिपुरोगमाः।
तथैवास्त्विति माध्यस्थ्यात्समयं चक्रिरे मिथः॥ १२॥
श्रीमत्पार्श्वार्हदीशस्य कथामाश्रित्य सोऽतनोत्।
श्रीपार्श्वाभ्युदयं काव्यं तत्पादार्धादिवेष्टितम्॥ १३।
सङ्केतदिवसे काव्यं वाचयित्वा स संसदि।
तदुदन्तमुदीर्याथ कालिदासममानयत्॥ १४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमद्बेल्गुलविन्ध्यादिप्रोल्लसद्दोर्बलीशिनः।
श्रीपादाम्बुजमूलस्थः पण्डिताचार्य्ययोगिराट् ॥ १५ ॥
तन्मुनीन्द्रमतिप्रौढ़िप्रकटीकरणोत्सुकः।
तद्व्याख्यां प्रार्थितश्चक्रे निजसुन्दरसूनुना ॥ १६ ॥

संक्षेप में इन पद्यों का मतलब यह है कि कालिदास नाम के किसी कवि ने मेघदूत नाम का एक काव्य बनाया। उसे वह बहुत से राजाओं को सुनाता फिरा। वह मदोन्मत्त कवि राजा अमोघवर्ष की सभा में भी आया और विद्वानों की अवमानना कर के उसने राजा को अपना मेघदूत सुनाया। यह बात विनयसेन को अच्छी न लगी। अतएव, कालिदास के अहङ्कार को पूर्ण करने और सन्मार्ग की उद्दीपना के लिए, विनयसेन के अनुरोध से, जिनसेनाचार्य्य ने उस सभा में कालिदास का परिहास करते हुए कहा कि पुराने काव्य की चोरी करने से तुम्हारा यह काव्य रमणीय हुआ है। यह सुन कर कालिदास क्रुद्ध हुए और बोले कि यदि ऐसा है तो वह पुरानी कविता सुनाओ। इस पर जिनसेन ने कहा कि वह काव्य यहाँ से बहुत दूर एक नगर में रक्खा हुआ है। उसे मैं मँगाता हूँ। आठ रोज़ में वह आजावेगा। तब मैं सुना दूँगा। यह बात कालिदास और दरबार के अन्य सभासदों ने मंज़ूर कर ली। इतने में जिनसेन ने मेघदूत के एक एक दो दो चरणों से वेष्टित करके "पार्श्वाभ्युदय" नाम का काव्य बना डाला। आठवें रोज़ जब वे उसे सभा में सुना चुके तब कालिदास से यथार्थ बात उन्होंने कह दी और उनका बहुत कुछ सम्मान किया।

यह काव्यावतार नामक परिशिष्ट टीकाकार ने अपनी तरफ़ से इस काव्य के अन्त में लगा दिया है। श्रीयुत पन्नालाल वाकलीवाल ने इसे पार्श्वाभ्युदय के अन्त में ज्यों का त्यों रख कर इस काव्य को बम्बई से प्रकाशित कराया है। परन्तु पुस्तक के आरम्भ में, वाकलीवालजी की प्रार्थना पर, पूना के दक्षिण-कालेज के भूतपूर्व संस्कृताध्यापक, पण्डित काशिनाथ बापूजी पाठक, बी० ए० का लिखा हुआ एक छोटा सा उपोद्घात है। उसमें पाठक महाशय ने साफ़ साफ़ लिख दिया है कि टीकाकार का यह क़िस्सा सही नहीं है, क्योंकि कालिदास जिनसेन के बहुत पहले हुए हैं। पाठक महाशय की इस सम्मति को पार्श्वाभ्युदय के प्रकाशक ने, बिना किसी काट छाँट या टीका-टिप्पणी के, प्रकाशित कर दिया है। उनकी यह उदारता प्रशंसनीय है। जब पार्श्वाभ्युदय की कापी हमारे पास समालोचना के लिए आई तब हमने टीकाकार की पूर्वोक्त आख्यायिका को बिलकुल ही महत्त्व-हीन समझ कर, अपनी की हुई समालोचना के अन्त में, जो नवम्बर १९०९ की सरस्वती में प्रकाशित हुई है, केवल इतना ही लिखा:—

"पुस्तक के अन्त में टीकाकार ने इस काव्य के बनाये जाने का जो कारण लिखा है वह सर्व्वथा काल्पनिक है"।

परन्तु हम देखते हैं कि इस आख्यायिका के आधार पर जैन पण्डित ऐतिहासिक तत्त्व पर हाथ टाल लगा कर कालिदास को जिनसेन का समकालीन बनाने और उनको अभिमानी—विद्वानों का अपमान करने वाला—सिद्ध करने की चेष्टा कर रहे हैं। यह चेष्टा श्रीजैनसिद्धान्तभास्कर नामक त्रैमासिक पत्र के सम्पादक ने की है। आरा में कोई जैन-सिद्धान्त-भवन है। उसी की उद्देश-सिद्धि के लिए यह पत्र अभी हाल में निकला है। जैनियों के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाले लेख आदि प्रकाशित करने के लिए यह पत्र निकाला गया है। इस पत्र के सम्पादक महाशय ने पूर्वोक्त आख्यायिका को नक़ल कर के लिखा है "विनयसेन के अनुरोध से कालिदास के अभिमान-दमनार्थ जिनसेन ने मेघदूत के श्लोकों से परिवेष्टित करते हुए पार्श्वाभ्युदय रचा"।

पार्श्वाभ्युदय की प्रस्तावना में काशिनाथ बापूजी पाठक की सम्मति को देख कर भी जैन-भास्कर के सम्पादक का ऐसा लिखना बड़े साहस का काम है। जो पत्र ऐतिहासिक खोज का फल प्रकाशित करने के लिए निकाला गया है उस में ऐतिहासिक तत्त्वों का उद्घाटन बहुत सोच समझ कर करना चाहिए। भास्कर के सम्पादक ख़ुद ही लिखते हैं कि पार्श्वाभ्युदय की—"पूर्ति लगभग शक-संवत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७३६ में हुई है"। अर्थात् यह काव्य लग भग ८१४ ईसवी का है। परन्तु—जैसा पाठक महाशय ने पार्श्वाभ्युदय की प्रस्तावना में लिखा है—इस समय के पहले के कवियों के लेखों में कालिदास का नाम आया है। शिला-लेखों और ताम्रपत्रों से यह निश्चित है कि थानेश्वर का राजा हर्ष-वर्द्धन सन् ईसवी के सातवें शतक में वर्तमान था। ६३४ ईसवी में सत्याश्रय पुलकेशी ने हर्ष का पराभव किया था। बाण-भट्ट इसी हर्षवर्धन के आश्रय में थे। उन्होंने हर्षचरित में कालिदास की प्रशंसा की है। यथा:—

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसार्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥

अतएव सिद्ध हुआ कि कालिदास बाण भट्ट से पुराने हैं। इसके सिवा बीजापुर ज़िले में आयहोली नाम के गाँव में प्राप्त हुए शिला-लेख से भी यही बात सिद्ध होती है। इस शिलालेख में रवि-कीर्ति नामक जैनकवि ने कालिदास और भारवि का नाम लिया है और यह लिखा है कि मैं इन दोनों के सदृश ही कीर्तिशाली हूँ:—

येनायोजि न वेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
स विजयतां रविकीर्त्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः॥

इस शिला-लेख का समय शक-संवत् ५५६, अर्थात् ६३४ ईसवी, है। यह समय भी इसी शिला-लेख में खुदा हुआ है। देखिए:—

पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतेषु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्॥

अतएव सिद्ध है कि कालिदास ६३४ ईसवी से पहले के हैं। फिर, बतलाइए, ८१४ ईसवी में पार्श्वाभ्युदय को समाप्त करनेवाले जिनसेन के समकालीन वे कैसे हो सकते हैं।

जिनसेन के कोई पाँच सौ वर्ष बाद पार्श्वाभ्युदय के टीकाकार हुए हैं। उन्होंने पूर्वोक्त आख्यायिका या तो कहीं किसी से सुन कर विक्रम और कालिदास, भोज और वीरबल की कहानियों की तरह लिख दिया है। वह समय ऐतिहासिक खोज का न था। बड़े बड़े कवियों और पण्डितों के सम्बन्ध की कहानियाँ धीरे धीरे कुछ का कुछ रूप प्राप्त कर लेती थीं। लोग उनके सत्यासत्य का निर्णय किये बिना ही उन्हें एक दूसरे से कहा करते थे। पण्डिताचार्य्य योगिराट् की कही हुई पूर्वोक्त कहानी भी ऐसी ही जान पड़ती है। कालिदास के पद्यों को पार्श्वाभ्युदय में गुम्फित देखकर किसी ने यह क़िस्सा गढ़ लिया होगा। वही परम्परा से टीकाकार महाशय के कान तक भी पहुँचा होगा। यदि टीकाकार का कथन सच होता तो जिनसेनाचार्य्य स्वयं ही उसका उल्लेख कर सकते थे। परन्तु उन्होंने पार्श्वाभ्युदय के अन्त में केवल इतना ही लिखा है:—

इति विरचितमेतत्काव्यमावेष्ट्यमेघं
बहुगुणमपदोषं कालिदासस्य काव्यम्।
मलिनितपरकाव्यं तिष्ठतादाशशाङ्कं
भुवनमवतु देवस्सर्वदाऽमोघवर्षः॥७०॥

इस के "मलिनितपरकाव्यं" पद से यही ध्वनि निकलती है कि इसकी रचना से मेघदूत मलिनित होगया। अर्थात् इसके सामने उसकी शोभा या सुन्दरता क्षीण होगई। और कुछ नहीं। परन्तु जिनसेन की राय में उसके "मलिनित" होजाने पर भी, दूसरी विलायतों तक में उसका प्रकाश पहुँच गया और पार्श्वाभ्युदय की विमलता की ज्योति जैन-भाण्डारों के भीतर ही चमकती रही।

सोचने की बात है कि टीकाकार के अनुसार जो जिनसेन "यमिकुञ्जर" "मुनीशान" और "त्रैविद्याधीश्वराग्रणी" थे वे कालिदास से झूठ कैसे बोल सकते थे कि तुम्हारा काव्य पुराना है। तुमने चोरी की है। पुराने काव्य की कापी एक गाँव में रक्खी है; मैं आठ रोज़ में मँगा कर दिखा दूँगा!

हिन्दी-पत्रों और पुस्तकों में पुरातत्त्वसम्बन्धी जो बातें प्रकाशित होती हैं उन पर इंडियन एन्टिक्वरी और एशियाटिक सोसाइटी के जरनलों में लिखने वाले विद्वानों की नज़र नहीं पड़ती। यदि किसी की पड़ती भी है और उसे कोई बात उन में भ्रम-पूर्ण मालूम होती है तो भी वह बहुधा उसे उपेक्षा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि से देख कर चुप रह जाता है। इससे भ्रम का विस्तार और भी बढ़ता है। यही समझ कर, इस भ्रममूलक आख्यायिका के विरुद्ध इस नोट के लिखने की आवश्यकता हुई। जैन पण्डित अपने आचार्यों की, अपने सिद्धान्तों की, अपने ग्रन्थों की ख़ुशी से प्रशंसा करें। यह बात वे जैनेतरों की निन्दा न कर के भी कर सकते हैं। जिनसेनाचार्य्य से कालिदास का दर्प-दलन न कराकर भी वे आचार्य्य महाराज की मनमानी स्तुति कर सकते हैं। प्राचीन जैन पण्डित जैनेतर विद्वानों के लिए "भट्टा निशाटा इव" इत्यादि वाक्य जो लिख गये हैं वही बहुत हैं। अधिक निन्दा करने की क्या आवश्यकता?

हाँ एक बात कहना हम भूल ही गये। जैन-सिद्धान्त-भास्कर के सम्पादक कालिदास और जिनसेनाचार्य्य को सचमुच ही समकालीन समझते हैं। इस विषय के "पूरे प्रमाण" भी उनके पास मौजूद हैं। उन्हों ने अपने भास्कर के प्रथम भाग की प्रथम किरण में लिखा है:—

"यदि हो सकेगा तो भास्कर के अगले अङ्क में कविवर कालिदास और भगवज्जिनसेनाचार्य्य की समकालीनता पूरे प्रमाण के साथ हम प्रकाशित करेंगे"।

बड़ी अच्छी बात है। कीजिए। 'यदि' क्यों? प्रमाण प्रकाशित करने में रुकावट ही कौन सी हो सकती है? यदि आप कालिदास को जिनसेन का समकालीन सिद्ध कर देंगे तो कालिदास का समय निश्चित करने का यश भी अवश्य ही आपको मिल जायगा।

तपोबल।

(खण्डकाव्य)

पूर्वार्ध।

आज भारत का तपोबल स्वप्न की सी बात है।
किन्तु, उसकी पूर्व-महिमा विश्व में विख्यात है॥
तीन लोक, प्रचण्ड तप के तेज को थे मानते।
सिर उठा तो थे न दुर्जन, जानते-पहचानते॥१॥

आत्मविद्या-पारदर्शी तपोनिष्ठ हज़ारहा।
सिद्ध योगी अति अलौकिक शक्तिशाली थे यहाँ॥
दर्शनों के ही प्रणेता वे तपस्वी थे नहीं।
इन्द्रियों को जीत कर ही वे यशस्वी थे नहीं॥२॥
इन्द्र का आसन डुलाना भी उन्हीं का काम था।
दृष्टि से नव-सृष्टि-रचना भी उन्हीं का काम था॥
आज ऐसेही ऋषीश्वर के तपोबल की कथा।
आपके आगे कहूँगा, शुभ समझ कर सर्वथा॥३॥
है मुझे आशा कि सुन सन्तोष होगा आपको।
शक्ति पाने के लिए कुछ जोश होगा आपको॥
जोश आने से कभी होगा प्रथम उद्योग भी।
फिर सफलता का मिलेगा स्वयं-प्राप्त सुयोग भी॥४॥

हुए भूप त्रिशङ्कु-नामक एक दिनकर-वंश में।
जो न कुछ कम थे पुरन्दर से किसी भी अंश में॥
शील में शशि, तेज में तो सूर्य के समकक्ष थे।
बुद्धि-वैभव में बृहस्पति-विष्णु ही प्रत्यक्ष थे॥५॥
धर्म के थे रूप उनके कर्म अनुकरणीय थे।
उच्च श्रेणी के विचार प्रशस्त आदरणीय थे॥
स्वावलम्ब, स्वदेश का अभिमान उनमें था भरा।
सब जगह उनके सुशासन से धरा थी उर्वरा॥६॥
नीच, नास्तिक या कृतघ्न न राज्य में था एक भी।
ईति-भीति, अकाल, मारी, भी कहीं न हुई कभी॥
यज्ञ से सन्तुष्ट सुरगण भी सभी अनुकूल थे।
हृष्ट परिजन और पुरजन भी नहीं प्रतिकूल थे॥७॥

नाम सुन पड़ता न था अन्याय, अत्याचार का।
था नहीं लवलेश भी कुविचार या व्यभिचार का॥
वेदपाठी विप्र थे, क्षत्रिय धनुर्धर वीर थे।
वैश्य थे व्यापार-रत, सब शूद्र सेवा-धीर थे॥८॥
ऐसे करते भूमि का भोग विभव-अनुरूप।
लगे सोचने एक दिन अपने मन में भूप॥९॥
"ईश-कृपा से आज हैं सब सुख मुझको प्राप्त।
सुयश चन्द्रिका के सदृश है त्रिभुवन में व्याप्त॥१०॥
आज्ञा-कारी पुत्र है, दारा है अनुकूल।
धर्म सुरक्षित हो रहा, जो उन्नति का मूल॥११॥
शत्रु, एक तो हैं नहीं, हुए निहत हत-दर्प।
जो हैं, हैं वे हस्तगत, भग्नदन्त ज्यों सर्प॥१२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे चिरस्मरणीय अब जिसमें मेरा नाम।
ऐसा करना चाहिए कोई अद्भुत काम ॥ १३ ॥
मन्त्र-शास्त्र में विज्ञ गुरु हैं वशिष्ठ सर्वज्ञ।
उनके आश्रित हो करूँ कोई ऐसा यज्ञ ॥ १४ ॥
जिसमें इसी शरीर से जाऊँ मैं स्वर्लोक।
जहां जा सकें धर्मरत पुण्यश्लोक अशोक" ॥ १५ ॥
यों विचार कर भूप ने तुरत मँगाया यान।
गुरु के आश्रम को किया उसी समय प्रस्थान ॥ १६ ॥
चले उत्साह-भरे नर-नाथ। सशस्त्र लिये कुछ सैनिक साथ ॥
बढ़े वर वाजि बजाते टाप। रहे फहराते केश-कलाप ॥ १७ ॥
सुशोभित बङ्किम ग्रीवा मोड़। चले उड़ते ज्यों भू को छोड़।
पुरी की सीमा पर सुपवित्र। मिले ग्रामों के दृश्य विचित्र ॥ १८ ॥
सभी थे खेत अन्न-सम्पन्न। न था कोई भी वहां विपन्न ॥
सुखी सरला सुन्दरी अनेक। कुटिल कर्कशा न जिनमें एक ॥ १९ ॥
स्वदेशी मोटे पहने चीर। लिये घट जाती भरने नीर ॥
खड़ी कोई बालक ले गोद। रही कर उसे प्यार सामोद ॥ २० ॥
कहीं कामिनियां हो एकत्र। घरों से जाती थीं अन्यत्र ॥
मुदित कुछ कहीं रहीं थी झूल। कहीं कुछ चुनती थीं फल-फूल २१
किसानों के बालक स्वच्छन्द। दिखाई देते थे सानन्द ॥
चराने में पशुओं के प्रीत। बजाते बंशी गाते गीत ॥ २२ ॥
दुधारी गायें लापरवाह। घने वृक्षों की पाकर छाँह ॥
रही पागुर करतीं सानन्द। विचरते बछड़े भी स्वच्छन्द ॥ २३ ॥
भिड़े आपस में हो कुछ क्रुद्ध। बली बैलों में होता युद्ध ॥
बड़े खेतों में श्रमी किसान। सिचाई करते गाते गान ॥ २४ ॥
लता-कुञ्जों में मुखिया लोग। धनी, मानी, न्यायी, नीरोग ॥
पेड़ में करते थे विश्राम। सभी के हित के सोचें काम ॥ २५ ॥
सभी थे हृष्ट, पुष्ट, सन्तुष्ट। न उनकी चित्त-वृत्ति थी दुष्ट ॥
प्रजा को ऐसे देख निहाल। हुए हर्षित अतिही भूपाल ॥ २६ ॥

यथासमय गुरुदेव का शान्ति-कुटीर समीप।
देख, शीघ्र रथ से उतर पड़े त्रिशङ्कु महीप ॥ २७ ॥
आज्ञा पाकर उस जगह ठहरे सैनिक लोग।
भूपति भी आगे बढ़े मन में समझ सुयोग ॥ २८ ॥
सन्ध्या समझ सुहावनी, सूर्य हुए थे अस्त।
शुभ्र चन्द्र की ज्योति से तम हो रहा निरस्त ॥ २९ ॥
मुनिगण आँखें मूँद कर करते जप या ध्यान।
सावधान कोई करें सरस साम का गान ॥ ३० ॥

आश्रम भर में भर रहा अग्निहोत्र का धूम।
मची वहां सर्वत्र ही नित्य-कृत्य की धूम ॥ ३१ ॥
मृगशावक भी स्थिर हुए मुनि के शिष्य समान।
वे भी जैसे कर रहे इष्ट-देव का ध्यान ॥ ३२ ॥
सुरभी-सिंह, मयूर-अहि आदिक भूले द्वेष ॥
भक्ति-भाव से वन्दना देख रहे अनिमेष ॥ ३३ ॥
पृथ्वीपति पुलकित चकित कर जोड़े कुछ काल ॥
खड़े देखते रह गये आश्रम का यह हाल ॥ ३४ ॥
मुनियों का जब होचुका पूरा सन्ध्या-कृत्य।
तब आये नृप के निकट मुनिवर के दो भृत्य ॥ ३५ ॥
"भो आयुष्मन् स्वस्ति"—कह कर प्रणाम स्वीकार।
नृप को मुनिवर के निकट वे लेचले कुमार ॥ ३६ ॥

देखा नृप ने दूर से अग्नि-वेदिका-तीर।
बैठे हैं ब्रह्मर्षिवर ज्यों पावक स-शरीर ॥ ३७ ॥
बिखरी जटायें चमकीली पीली पीली मानों।
सूर्य-बिम्ब ऊपर किरण-जाल छाया है।
भाल भस्म-भूषित विशाल शान्त लोचनों में
पूर्ण प्रतिभा का प्रतिबिम्ब रङ्ग लाया है ॥
वल्कल-वसन ऐसे सोहता शरीर पर
जैसे जीव-ज्योति-आवरण हुई माया है।
अक्षमाला कर में, कमण्डलु निकट रक्खा,
पास ही हरिणशिशु ने भी स्थान पाया है ॥ ३८ ॥
देख, होती कल्पना—तपस्वियों का सारा तप
सिद्धि-सहचर शोभमान है निरभिमान।
अथवा पुरन्दरादि देवों का प्रताप-पुञ्ज
गौरव-समष्टि मर्त्यलोक में है भासमान ॥
या है ब्रह्म-ज्योति का प्रशस्त प्रतिबिम्ब किंवा
ब्रह्मतेज सोहता है नित्य उपचीयमान।
या यों कहो पूर्ण-ज्ञान-सम्मिलित मूर्तिमान
स्वयं ब्रह्मानन्द ऋषिरूप से है राजमान ॥ ३९ ॥

तब प्रणाम साष्टाङ्ग भूमिपति ने किया।
मुनि ने भी आशीर्वाद उनको दिया ॥
फिर नृप से हित-हेतु वचन ऐसे कहे—
"आओ रविकुलकमल ! कहो, अच्छे रहे ? ॥ ४० ॥
प्रजा अनाकुल अभय सुखी अनुकूल है ?
शासन में तो नहीं कहीं कुछ भूल है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म-ध्यान, कर्तव्य-ज्ञान तो ठीक है ?
सैनिकदल भी चिरानुगत निर्भीक है ? ॥ ४१ ॥
मन्त्री और अमात्य वृद्ध विश्वस्त हैं ?
राज-काज तो कहो न अस्त-व्यस्त हैं ?
धन-रत्नों से भरा तुम्हारा कोष है ?
स्त्री-पुत्रों से प्राप्त तुम्हें सन्तोष है ? ॥ ४२ ॥
सर्व-धर्म-साधन शरीर तो स्वस्थ है ?
चित्त तो न नरवर ! चिन्तित अस्वस्थ है ?
किस इच्छा से आज यहाँ आना हुआ" ?
बोले नृप—"क्या आपका न जाना हुआ ? ॥ ४३ ॥

तन मन धन से नाथ ! प्रजारञ्जन करूँ ।
दुष्टों को दें दण्ड भीति-भञ्जन करूँ ॥
सब इन चरणों के प्रताप से ठीक है ।
गुरुवर का आशीर्वाद न अलीक है ॥ ४४ ॥
इच्छा है बस यही अमर कर नाम को ।
इसी देह से प्राप्त करूँ सुर-धाम को ॥
ऐसा कोई यज्ञ आप बतलाइए ।
मुझ को अब सशरीर स्वर्ग पहुँचाइए" ॥ ४५ ॥
सुन त्रिशङ्कु के वचन मुनीश्वर ने कहा
"यह तो है आकाश-कुसुम दुर्लभ महा ॥
दिव्य देह के बिना न यह गति मिल सके ।
ज्ञान बिना ज्यों कभी न शुभमति मिल सके ॥ ४६ ॥
बस इतना ही यज्ञ सुफल दिखला सके ।
मरने पर यजमान स्वर्ग को जासके" ॥
नृप सुन मुनि के वचन सोच में पड़ गये ।
प्रबल प्रकृति के वश, प्रवृत्ति पर अड़ गये ॥ ४७ ॥

होनी होती कठिन, न टाले टल सके ।
बड़े बड़ों को अनायास वह छल सके ॥
गुरु की बात न मान, भूप ने फिर कहा—
"तो फिर मुनिवर, ब्रह्मतेज ही क्या रहा ? ॥ ४८ ॥
करामात क्या ? रहा यही उपसर्ग जो ।
बड़ी बात क्या ? मिला मरे पर स्वर्ग जो ॥
किसी तरह यह काम हमारा कीजिए" ।
बदले में धन, धाम, धरा सब लीजिए ॥ ४९ ॥
हँस कर मुनि ने कहा—"न बदला चाहिए ।
जीते हैं हम लोग तुम्हारे ही दिये ॥
ब्रह्मतेज का अमित असीम प्रताप है ।
नियम मिटाना किन्तु बड़ा ही पाप है ॥ ५० ॥
स्वर्गारोहण ही न मुख्य पुरुषार्थ है ।
कर्मयोग ही बस यथार्थ परमार्थ है ॥
धर्म करो निष्काम, दुराग्रह छोड़ दो" ।
प्रबल वृत्ति को तुम निवृत्ति से जोड़ दो ॥ ५१ ॥
मुनि का यह उपदेश न भाया भूप को ।
भाग्य-भोग ने भ्रान्त बनाया भूप को ॥
कहना ही कुछ चहा उन्होंने फिर अहो !
तब बोले मुनि हो विरक्त, "बस चुप रहो" ॥ ५२ ॥

राजा को व्यवहार न यह अच्छा लगा ।
हुई हृदय की वृत्ति और भी निम्न-गा ॥
गुरु-मर्यादा का विचार भी बह गया ।
घात और प्रतिघात क्षोभ का रह गया ॥ ५३ ॥
साधारण ही कर प्रणाम कुछ दूर से ।
चले वहाँ से नृप चिन्ता में चूर से ॥
इतने ही में वह निरस्त होते कहीं ।
तो भी होती कुशल, शाप पाते नहीं ॥ ५४ ॥
पर, मनुष्य तो चित्त-वृत्ति का दास है ।
अहो ! अहित-हित-हेतु यही उल्लास है ॥
जान बूझ कर मूढ़ इसीसे नर बने ।
पीछे पाता घोर कष्ट संकट घने ॥ ५५ ॥
सोचा नृप ने पुनः भूल कर्तव्य को ।
बिदा किया गुरुभक्ति-भाव अति भव्य को ॥
"गुरु-पुत्रों के पास जा करूँ प्रार्थना ।
वे चाहें तो काम सहज में दें बना ॥ ५६ ॥

इसमें शायद रोष न गुरुवर भी करें ।
स्वयं सम्मिलित हो सहायता ही करें" ॥
यों कर निश्चय उसी ओर भूपति फिरे ।
ज्यों पतङ्ग प्रिय-कारण पावक पर गिरे ॥ ५७ ॥
गुरु के सुत थे जहाँ वहाँ एकान्त था ।
सब प्रकार निर्विघ्न स्थान वह शान्त था ॥
शोभा ही थी और अहा उस प्रान्त की ।
ऋषिकुमार करते चर्चा वेदान्त की ॥ ५८ ॥
गद्गद पुलकित हुए सत्य के स्वाद में ।
बालक भी थे निरत ब्रह्म के वाद में ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें मिली जब अतिथि-आगमन-सूचना।
तब सब ने की आकर अति अभ्यर्थना ॥ ५९ ॥
गुरु-पुत्रों को भूप ने पहले किया प्रणाम।
फिर सादर सविनय कहा उनसे अपना काम ॥ ६० ॥

"सब आप हैं गुरु-पुत्र मेरे माननीय महान।
अब कीजिए निश्चिन्त मुझको प्रार्थना यह मान ॥
हूँ मैं शरण आया, किया चाहूँ सुखद सत्कर्म।
स्वीकार करना आपका है भक्तवत्सल-धर्म ॥ ६१ ॥

सुत ब्रह्मनिष्ठ वशिष्ठ के हैं शिष्ट इष्टद आप।
निज प्रबल पुण्य-प्रताप से सम मेटिए सन्ताप ॥
हे आर्य! अद्भुत यज्ञ में कर आपको आचार्य।
मैं कर सकूँगा पूर्ण अपना मनोवाञ्छित कार्य" ॥ ६२ ॥

सुन भूप की यह बात, बोले शक्ति* यों साश्चर्य :—
"क्यों आप हमसे प्रार्थना करते प्रथम नृपवर्य ?
गुरुदेव वृद्ध वशिष्ठजी से कीजिए प्रस्ताव।
क्या आपसे उनका छिपा है योग-शक्ति-प्रभाव ? ॥६३॥

हों लाख, हम हैं पुत्र ही, उनकी अपेक्षा हीन।
हैं सर्वथा हम तुम उन्हींके शिष्य भक्त अधीन" ॥
कुछ अप्रतिभ हो तब कहा नृप ने प्रथम वृत्तान्त।
तब शक्ति करते भर्त्सना बोले—"हुए हो भ्रान्त ॥६४॥

जो काम कर न सके पिता उसको करेगा पुत्र।
सीखा कहाँ है आपने अन्याय का यह सूत्र ?
प्रिय पूज्यपाद पिता करें जो बात अस्वीकार।
वह है असम्भव, कर सकें हम भी न अङ्गीकार ॥६५॥

मङ्गल इसी में है करो गुरु-वाक्य पर विश्वास।
बस अन्यथा है सर्वथा सम्प्राप्त सत्यानाश" ॥
बोले नृपति फिर गिड़गिड़ा कर—"कीजिए न निराश।
मुझको किये हैं यह विवश अनिवार्य आशापाश ॥६६॥

यदि आप पहुँचा दें मुझे सुरलोक को स-शरीर।
तो आपका गुरु से अधिक सम्मान हो हे धीर!
जो बाप से बेटा बढ़े तो कुछ न है अन्याय।
हाँ, क्योंकि उससे बाप ही का नाम बढ़ता जाय" ॥६७॥

यह उक्ति सुन कर क्रूट-युक्ति-प्रयुक्त, शक्ति सशक्त।
अत्यन्त उत्तेजित हुए, वे थे पिता के भक्त ॥
है वृद्ध लोगों के लिए भी कठिन क्रोध-निरोध!
फिर युवा कैसे रोक सकते हैं समुत्थित क्रोध ? ॥६८॥

आँखें हुईं अरुण कम्पित अङ्ग सारे।
बोले मुनीश-सुत वाक्य बिना विचारे :—
"हो दूर दुष्ट, शठ, जा, हट जा यहां से।
आई कुबुद्धि तुझको इतनी कहां से ? ॥ ६९ ॥

कर्तव्य भूल हमसे हठ ठानता है।
दे यों प्रलोभन, विवेक बखानता है ॥
तेरा अधःपतन ज्ञात मुझे हुआ है।
'सम्राट् हूँ'—यह घमण्ड तुझे हुआ है ॥ ७० ॥

है एक रत्न अनमोल सुधर्म मेरा।
ऐश्वर्य और धन है सब तुच्छ तेरा ॥
क्या लोभ में पड़ स्वधर्म बिगाड़ दूँगा ?
तेरे कहे अति जघन्य अधर्म्म लूँगा! ॥७१॥

चाण्डाल है अधम तू गुरुद्रोहकारी।
चाण्डाल ही इस घड़ी बन रे अनारी" ॥
दे शाप शक्ति निज आश्रम को सिधारे।
भूपाल के हत हुए अभिलाष सारे ॥ ७२ ॥

हो कल्पवृक्ष पर वज्रप्रहार जैसे।
या सूर्य को ग्रहण-रूप विकार जैसे ॥
त्यों शाप से नृप हुए अति ही मलीन।
श्री से विहीन विकृताकृति हर्ष-हीन ॥ ७३ ॥

स्वर्णाभूषण लोह के सब हुए, चण्डाल का वेश भी।
हा हा! देव-समान कान्ति मिट के, फैले खुले केश भी।
होनी ने मति यों बिगाड़, उनको पापी बनाया अहो!
लोगो! ब्राह्मणकोप से सँभलना, देखो, बचे ही रहो ॥७४॥

गुरु-विमुख न होना हाँ कभी भूल भाई!
कुगति यह उसीने भूप की है बनाई ॥
सब सुख मिटते हैं, दुःख की हो चढ़ाई।
इस विष-पुड़िया की है न कोई दवाई ॥ ७५ ॥

रूपनारायण पाण्डेय।

* शक्ति, वशिष्ठजी के बड़े बेटे का नाम था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथ्वी की प्राचीनता।

पाश्चात्य विद्वान् बहुत दिनों से इस बात का पता लगाने की चेष्टा कर रहे हैं कि यह पृथ्वी कितने दिनों से इस तरह वर्त्तमान है। किन्तु अब तक वे लोग कोई सर्वमान्य सिद्धान्त स्थिर नहीं कर सके हैं। एक विद्वान् बहुत छान बीन करके एक सिद्धान्त स्थिर करता है, तो दूसरा फौरन उसका खण्डन कर देता है। यह विवाद बहुत दिनों से चल रहा है। इस विवाद का परिणाम आशाजनक प्रतीत होता है। जहाँ पहले लोग केवल चार पाँच हज़ार वर्ष से ही सृष्टि का आरम्भ मानते थे वहाँ अब सात अरब पचास करोड़ वर्ष पहले से सृष्टि मानी जाने लगी है। यदि इस विषय की इसी तरह आलोचना होती रही तो आशा है कि कुछ दिनों में कोई सर्वसम्मत सिद्धान्त स्थिर हो जायगा। सम्भवतः अन्तिम सिद्धान्त वही ठीक होगा जो हमारे पूज्यपाद महर्षियों ने बहुत दिन पहले स्थिर किया था। इस लेख में हम संक्षिप्त रूप से यह दिखाना चाहते हैं कि पाश्चात्य विद्वानों ने कैसी कैसी युक्तियों द्वारा इस विषय में अपने सिद्धान्त स्थिर किये हैं और हमारे पूर्वज महर्षियों का इस विषय में क्या मत है।

डेस विग्नोलिस (Des Vignoles) नामक विद्वान् ने अपनी क्रानोलाजी-आव्-दी-सेक्रेड-हिस्ट्री (Chronology of the Sacred History) नामक पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि मैंने पृथिवी की प्राचीनता के सम्बन्ध में दो सौ से अधिक प्रकार की गणनाओं का फल एकत्र किया है। उनमें जो सबसे कम है उसमें केवल ३४८३ वर्ष पहले से सृष्टि मानी गई है और जो सबसे ज़ियादह है उसमें ६९८४ वर्ष पहले से। इस विषय में अनेक मत-भेद हैं। उन सब पर विचार करने से मालूम होता है कि ईसवी सन् से ४००४ वर्ष पहले सृष्टि का आरम्भ हुआ है। आर्क बिशप उशर (Archbishop Ussher) की राय में यही समय ठीक है।

किन्तु पदार्थ-विज्ञान-विशारद इस राय को नहीं मानते। उन्होंने पृथ्वी को ध्यान से देखा है, उसके आकार पर विचार किया है, उसकी गरमी की जाँच की है और उसकी गति का अन्दाज़ा लगाया है। फिर, पृथ्वी को सूर्य्य से ९० लाख मील की दूरी पर देख कर उसके घनत्व और उसकी गरमी के परिमाण के अनुसार गणना करके उन्होंने यह अनुमान किया है कि इस पृथ्वी की उम्र बीस लाख वर्ष से चालीस लाख वर्ष तक होगी। इसी सिद्धान्त के विषय में प्रसिद्ध गणित-शास्त्रवेत्ता हक्सले (Huxley) ने कहा था—"गणित-विद्या एक विलक्षण चक्की के समान है। उसके द्वारा तुम हर पदार्थ को जितना महीन चाहो पीस सकते हो। और, जैसे बहुत अच्छी चक्की से भी मटर के दाने से गेहूँ का आटा नहीं निकल सकता, उसी तरह यदि किसी प्रश्न का आधार ठीक न हो तो गणित के सैकड़ों नियमों का पालन करने पर भी उसका उत्तर ठीक न मिलेगा"।

भूगर्भ-विद्या के जानने वालों ने इस विषय की अपने ढंग पर आलोचना करके स्थिर किया है कि पृथ्वी को अपना वर्तमान रूप धारण करने में कोई दस कड़ोर वर्ष लगे होंगे। उन्होंने देखा कि पृथ्वी धीरे धीरे समुद्र की ओर बढ़ती जा रही है। बर्फ़ से पहाड़ों के किनारे की चटानें टुकड़े टुकड़े हो जाती हैं; आर्कषण शक्ति उन टुकड़ों को नीचे ले आती है, वहाँ वे नदी की धारा में गिरते हैं और वहीं पिस कर कीचड़ बन जाते हैं। फिर नदी की धारा में मिल कर वे समुद्र में पहुँच जाते हैं। यह क्रम बहुत प्राचीन समय से जारी है। इसके कारण हिमालय की चोटी के पत्थर इस समय भारत-महासागर के गर्भ में जा पड़े हैं। समूची पृथ्वी को एक मान कर विचार किया जाय तो मालूम होगा कि यह कार्य्य बहुत धीरे धीरे होता है। ईसा के जन्म के समय से अब तक केवल आठ इञ्च मिट्टी पृथ्वी तल से धुल कर समुद्र में पहुँची है। पृथ्वी के पटल की मुटाई इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय हज़ारों फ़ीट है और यह उक्त रीति से ही बनी है। पृथ्वीतल की बनावट के क्रम के अनुसार इसकी मुटाई का हिसाब लगाने से मालूम होता है कि दस करोड़ वर्षों में इसका यह रूप हुआ है। अध्यापक जोली [Professor Joly] ने भी एक दूसरे तरीक़े से जाँच करके इस कथन को सत्य प्रमाणित किया है। इसलिए विलायत की रायल सोसायटी (Royal Society) ने उन्हें स्वर्ण-पदक देकर सम्मानित किया है। अध्यापक जोली ने समुद्र के भिन्न भिन्न स्थानों के जल की परीक्षा करके उसके खारीपन का औसत हिसाब लगाया। फिर नदियों के जल की परीक्षा करके यह निश्चय किया कि हर-साल कितना नमक पृथ्वी-तल से समुद्र में जाता है। इन दोनों हिसाबों को मिला कर उन्होंने सिद्धान्त निकाला कि कोई दस करोड़ वर्ष में समुद्र का पानी इतना खारी हुआ है। पहले समुद्र में मीठा जल था।

रेडियम (Radium) नामक पदार्थ के तत्त्व-दर्शी वैज्ञानिकों की राय में यह पृथ्वी और भी बहुत पुरानी जँचती है। वे कहते हैं कि पृथ्वी पर सर्वत्र युरेनियम (Uranium) नाम की एक धातु पाई जाती है। उसीसे रेडियम की उत्पत्ति होती है। युरेनियम के परमाणुओं की परीक्षा करने से मालूम होता है कि वे असीमशक्ति-विशिष्ट हैं। कोई सत्ता-इस मन युरेनियम में इतनी शक्ति होती है कि उसके द्वारा समूचे इँगलेंड में एक वर्ष तक रोशनी हो सकती है। एक प्याले युरेनियम की शक्ति ड्रेडनाट (Dreadnaught) नामक जहाज़ को ख़ूब तेज़ी के साथ पृथ्वी के चारों ओर चला सकती है। हम लोग इन बातों को सिर्फ़ जान सकते हैं। उस शक्ति को अपने वश में नहीं कर सकते। किसी निश्चित समय पर इस शक्ति के सहस्रों परमाणु आप ही आप ऐसी तेज़ी से भड़कते हैं कि वे एक सेकंड में हज़ारों मील चले जा सकते हैं। बन्दूक़ की गोली एक सेकंड में एक मील जाती है। किन्तु युरेनियम का एक परमाणु उतनी देर में पृथ्वी के चारों ओर जा सकता है। चटानों में इस धातु की स्थिति पर विचार करने से अनायास ही पृथ्वी की आयु का ज्ञान हो सकता है। यदि हम लोग युरेनियम की उम्र का पता लगा सकें तो वही अवश्यमेव इस पृथ्वी की उम्र मानी जायगी। युरेनियम से जिन पदार्थों की उत्पत्ति होती है उनका इतिहास बहुत विस्तृत है। युरेनियम से सर्वप्रथम रेडियम की उत्पत्ति होती है। उसे रेडियम में परिणत होने में सात अरब पचास करोड़ वर्ष लगते हैं। ऐसे तो यह संख्या अनुमान से परे प्रतीत होती है; परन्तु, वास्तव में, रेडियम की शक्ति से सम्बन्ध रखने वाले नियम के अनुसार गणना करने का यह प्रकृत फल है। उस नियम का तात्पर्य यह है कि यदि दो रेडियम-विशिष्ट पदार्थ भिन्न भिन्न परिमाण से किसी दूसरे पदार्थ में परिणत होते हों, तो उनके अंश-परिमाण से उनकी आयु का अन्दाज़ा होता है। हम लोग जहाँ जहाँ रेडियम देखते हैं वहाँ वहाँ एक नियमित परिमाण में युरेनियम भी पाते हैं। जहाँ एक चावल भर रेडियम मिलता है वहाँ अवश्य ही तीस लाख चावल भर युरेनियम पाया जाता है। रेडियम "इमेनेशन" नामक पदार्थ में परिणत होता है। उसी तरह युरेनियम रेडियम में परिणत होता है। नियमानुसार हिसाब करने से मालूम होता है कि युरेनियम के एक परमाणु को रेडियम में परिणत होने में कम से कम सात अरब पचास करोड़ वर्ष लगते हैं। पृथ्वी की उम्र भी कम से कम इतनी ज़रूर होगी।

ऊपर जो भिन्न भिन्न श्रेणी के पाश्चात्य विद्वानों के मत उद्धृत किये गये हैं उन पर विचार करने से ज्ञात होता है कि इस विषय में जितनाही अधिक अनुसन्धान किया जाता है पृथ्वी की प्राचीनता उतनीही बढ़ती जाती है। अभी तक इसकी उम्र का ठीक पता नहीं लगा। परन्तु हमारे महर्षियों ने, जिनका बुद्धिबल उन्नति की चरम सीमा तक पहुँचा हुआ था, पृथ्वी की आयु के विषय में जो निश्चय किया है वह बहुत ठीक जान पड़ता है। महात्मा मनु कहते हैं:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैवे रात्र्यहनी वर्ष

अर्थात् देवताओं के एक रात-दिन में मनुष्यों का वर्ष होता है। तात्पर्य यह कि देवताओं का एक वर्ष मनुष्यों के ३६० वर्ष के बराबर है।

युगों के विषय में मनुजी कहते हैं:—

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथा विधः॥
(मनु०, अ० १, श्लो० ६९)

चार हज़ार देव-वर्षों का कृतयुग होता है और चार चार सौ वर्ष के उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश होते हैं। मतलब यह कि सत्ययुग की पूरी संख्या ४८०० देववर्ष या १७२८००० मनुष्य-वर्ष है। इसी तरह उन्होंने त्रेता की संख्या ३६०० देववर्ष अथवा १२९६००० मनुष्य-वर्ष, द्वापर की संख्या २४०० देववर्ष अथवा ८६४००० मनुष्य-वर्ष और कलियुग की संख्या १२०० देववर्ष या ४३२००० मनुष्य-वर्ष बताई है। इस प्रकार एक चतुर्युगी ४३,२०,००० मनुष्य-वर्ष की हुई।

आगे चल कर मनुजी कहते हैं,

यदेतत्परिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम्।
एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते॥
दैविकानां युगानां तु सहस्रं परिसंख्यया।
ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं × × ×
(मनु०, अ० १, श्लो० ७१-७२)

बारह हज़ार चतुर्युगों का एक दैविक युग होता है और हज़ार दैविक युगों का ब्रह्मा का एक दिन। इस हिसाब से दैविक युग ५१,८४,००,००,००० मनुष्य वर्षों का और ब्राह्म दिन ५,१८,४०,००,००,००,००० मनुष्य-वर्षों का हुआ है। इस समय ब्रह्मा का द्वितीय प्रहरार्द्ध जा रहा है। अतएव पृथ्वी की वर्तमान आयु का परिमाण १,९४,४०,००,००,००,००० वर्ष के क़रीब सिद्ध होता है।

इस संख्या से पाश्चात्य वैज्ञानिकों की संख्या अभी बहुत कम है। परन्तु उनके विचार-स्रोत की गति पर ध्यान देने से मालूम होता है कि इस विषय में इसी तरह अनुसन्धान होता रहा तो कुछ ही दिनों में वैज्ञानिक मण्डली द्वारा हमारे पूर्वजों का सिद्धान्त सत्य प्रमाणित होजायगा।

युद्ध-सम्बन्धी अन्तर्जातीय नियम।

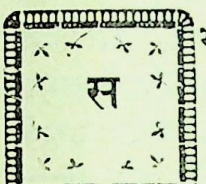

सभ्य राष्ट्रों ने मिल कर कुछ ऐसे नियम बनाये हैं जिनका पालन उन्हें युद्ध के समय करना पड़ता है। ट्रिपली के सम्बन्ध में टर्की और इटली का युद्ध शान्त हुआ ही था कि टर्की और बाल्कन प्रदेश के मानटिनिगरो, सरविया, बलगेरिया और ग्रीस में युद्ध छिड़ गया। अतएव ऐसे अवसर पर उन नियमों का प्रकाशित किया जाना असामयिक न होगा। वे नियम, संक्षेप में, नीचे दिये जाते हैं:—

जब कोई राष्ट्र किसी अन्य राष्ट्र को किसी तरह की हानि पहुँचाता है या उसका अपमान करता है तब उससे कहा जाता है कि हानि का बदला दो और अपमान के लिए माफ़ी माँगो। यदि सहज ही में यह काम हो जाता है तो युद्ध की तैयारी नहीं होती। हानि और अपमान करने वाले के शासन के लिए युद्ध अन्तिम साधन है। अन्य उपायों से जब तक काम चल सकता है तब तक युद्ध नहीं ठाना जाता। राज़ी-नामा कर लेना, किसी अन्य राष्ट्र का बीच में पड़ कर मेल करा देना, अथवा पञ्चायत द्वारा झगड़े का निपटारा हो जाना आदि बातों की ही, युद्ध के पहले, शरण लेनी पड़ती है। यदि इनसे कार्य्य सिद्ध न हुआ तो वह राष्ट्र जिसका अपमान आदि होता है बाहु-बल का प्रयोग करता है। इस समय तक भी यथार्थ में युद्ध नहीं छिड़ता; शत्रु केवल तङ्ग किया जाता है। जहाज़ों द्वारा उसके बन्दरगाह और समुद्र-तट घेर लिये जाते हैं तथा उसके जहाज़ों और माल-असबाब पर अधिकार कर लिया जाता है। जब कोई समुद्र-तट या बन्दरगाह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घिरा होता है तब किसी अन्य राष्ट्र का भी कोई जहाज़ घेरे के बीच से नहीं निकल सकता। घेरे के बीच से बाहर निकलते अथवा भीतर जाते हुए पकड़ जाने पर वह ज़ब्त कर लिया जा सकता है। यदि युद्ध न हुआ, मेल हो गया, तो जितने जहाज़ अथवा जो माल हाथ लगता है, वह सब जिनका होता है उनको लौटा दिया जाता है। शत्रु के समुद्र में फिरने वाले उसके अथवा उसकी प्रजा के जहाज़ भी पकड़ लिये जाते हैं। इस काम को Reprisal (अर्थात् बदला) कहते हैं। यह "बदला" दो प्रकार से लिया जाता है। राष्ट्र अपने शत्रु और उसकी प्रजा के जहाज़ों और आदमियों को पकड़ने के लिए अपने कर्म्म-चारियों को आज्ञा, और ग़ैर-सरकारी लोगों को भी ऐसा ही करने के लिए अधिकार, देता है। परन्तु इस प्रकार के बदले की प्रथा अच्छी नहीं समझी जाती। युद्ध के पूर्व तो उसका अवलम्बन बहुत ही कम किया जाता है।

इतना होने के बाद या तो मेल हो जाता है या युद्ध छिड़ जाता है। यदि युद्ध हुआ तो ऐसी अवस्था में शत्रु को युद्ध की सूचना देने की कोई आवश्यकता नहीं। १८९४ ईसवी में चीन-जापान में युद्ध हुआ था। छेड़ छाड़ २५ जूलाई से आरम्भ थी। इसी तारीख़ को चीन का एक जहाज़ डुबो दिया गया था और दूसरा जापान ने छीन लिया था। परन्तु युद्ध-घोषणा, जिसकी फिर कोई आवश्यकता न थी, जापान ने पहली अगस्त और चीन ने दूसरी अगस्त को की थी। ऐसी ही बात गत रूस-जापान-युद्ध में भी हुई थी। ६ फ़रवरी १९०४ को रूस और जापान का राजनैतिक सम्बन्ध टूट चुका था। तदनन्तर रूसियों की तरफ़ से कुछ छेड़छाड़ भी हुई। परन्तु जापान ने युद्ध की घोषणा ११ फ़रवरी १९०४ को की।

जो सैनिक अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर लड़ने के लिए तैयार रहते हैं वही युद्ध में शरीक योद्धा समझे जाते हैं। युद्ध के नियमों के अनुसार शत्रु-दल के योद्धा मारे जाने और शरीर-दण्ड पाने के पात्र समझे जाते हैं। शरण आने पर वे युद्ध के क़ैदी समझे जाते हैं और वैसाही व्यवहार भी उनके साथ किया जाता है। १८७४ में ब्रसल्स की सभा में तै पाया था कि वही लोग योद्धा समझे जायँ जो किसी ज़िम्मेदार अफ़सर के नेतृत्व में हों, युद्ध के नियमों को जानते हों और किसी विशेष चिह्न से पहचाने जा सकते हों।

कुछ विशेष अवस्थाओं को छोड़ कर अन्य सब अवस्थाओं में शरण चाहने वाले शत्रु-दल के योद्धाओं को शरण अवश्य दी जाती है। परन्तु शरण मिल जाने ही से शत्रु-दल के योद्धा दण्ड से नहीं बच सकते। यदि शत्रु ने स्वयं ही युद्ध के नियम तोड़े हैं अथवा अपने विपक्षियों को शरण न देने की सम्मति प्रकट की है तो उसके योद्धाओं को भी दण्ड मिलता है। शत्रु यदि कोई ऐसा कठोर या नृशंस काम करता है जिसका बदला देना आवश्यक समझा जाता है तो इस कारण भी शरण में आये हुए उसके योद्धा दण्ड के पात्र समझे जा सकते हैं। गत चीन-जापान युद्ध में जापान ने शरण चाहने वाले शत्रु-दल के प्रत्येक सैनिक को शरण दी थी। परन्तु एक दुर्घटना अवश्य हुई थी। वह यह थी कि पोर्टआर्थर पर जापानियों का अधिकार हो जाने के बाद चार दिन तक नर-हत्या हुई थी। तथापि जापानियों के कथनानुसार उनके योद्धाओं ने यह नृशंसता नहीं की थी; किन्तु उनकी सेना के कुलियों ने शराब के नशे में की थी।

रोगी और घायल सैनिकों की—चाहे वे किसी दल के हों—उचित शुश्रूषा की जाती है। जब तक वे अस्पतालों अथवा अस्पताली जहाज़ों में रहते हैं तब तक वे किसी दल के नहीं समझे जाते। जितने डाक्टर घायलों की सेवा के लिए नियत रहते हैं वे भी किसी पक्ष के नहीं समझे जाते। दोनों पक्ष उनकी रक्षा के लिए एक से बाध्य हैं। अस्पतालों पर भी आक्रमण नहीं किया जाता। गत रूस-जापान-युद्ध में जापानियों का व्यवहार अपने रूसी क़ैदियों के प्रति साधारणतः, और उनमें से जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोगी अथवा घायल थे उनके प्रति मुख्यतः, बहुत ही अच्छा था। योरप और अमेरिकावालों तक ने जी खोल कर जापान के इस सद्-व्यवहार की प्रशंसा की। जापानियों के इस सद्-व्यवहार की एक घटना का यहाँ उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। कीनलीनचेङ्ग के युद्ध में एक रूसी सैनिक की आँखें घायल हो गईं। वह अपने एक साथी की सहायता से सेना के बाहर निकल आया। इतने ही में अचानक दो जापानी सैनिक, घायलों की सेवा-शुश्रूषा करने वाले सेवक-समुदाय की झण्डी लिये हुए, उस स्थल पर पहुँचे। एक जापानी ने पिस्तौल द्वारा सङ्केत करके घायल रूसी के साथी से चले जाने को कहा। जब वह चला गया तब दोनों ने मिल कर घायल रूसी सैनिक की आँखें धोईं, उन पर पट्टी चढ़ाई और तत्पश्चात् उसे उसके साथियों के पास पहुँचा दिया। जापानी सैनिक अपने रूसी कैदियों के आराम का बहुत ही ख़याल रखते थे। बहुधा वे लोग रूसी कैदियों को अपनी सिगरेट और शराब दे कर प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते थे।

युद्ध के कैदी, युद्ध जारी रहते हुए, धन लेकर भी छोड़ दिये जा सकते हैं। दोनों पक्षवाले अपने अपने कैदियों को बदल भी लेते हैं। वर्त्तमान युद्ध में शरीक न होने की शर्त पर कैदी छोड़ दिये जाते हैं। यदि कोई कैदी भागे तो वह भागने की अवस्था में मार डाला तक जा सकता है; परन्तु फिर पकड़े जाने पर उसे केवल इतना ही दण्ड दिया जा सकता है कि उस पर विशेष चौकसी रक्खी जाय। यदि वह अन्य कैदियों के भगाने के षड्यन्त्र में सम्मिलित हो तो फिर वह प्राण-दण्ड का ही पात्र समझा जाता है। कैदियों को यथा-सम्भव अच्छा भोजन, वस्त्र और स्थान दिया जाता है; किसी किसी अवस्था में उनके जेब-ख़र्च का भी प्रबन्ध किया जाता है।

युद्ध में पकड़े तो सभी जा सकते हैं, परन्तु समाचार-पत्रों के संवाद-दाताओं के लिए यह नियम ढीला कर दिया जाता है। वे लोग केवल उस समय तक रोके जा सकते हैं जब तक उनके न रोकने से किसी प्रकार की हानि पहुँचने की सम्भावना हो। गत रूस-जापान-युद्ध में एक ऐसी ही घटना हो गई थी। अमेरिका के किसी समाचार-पत्र के संवाद-दाता के जहाज़ को रूसियों ने पकड़ लिया। कुछ काल तक उक्त संवाद-दाता को रूसियों की हिरासत में रहना पड़ा। अन्त में वह छोड़ दिया गया।

युद्ध में किसी को धोखे से मारना मना है; परन्तु एक दल के सैनिकों का दूसरे दल वालों पर छिप कर छापा मारना मना नहीं। शत्रु के खाने-पीने की चीज़ों में विष मिला देना, विष से बुझे शस्त्रों का प्रयोग करना और तोपों में नाल, शीशे और विविध धातुओं के टुकड़े तथा इसी प्रकार की अन्य चीज़ें भरना आदि बातें भी नियम-विरुद्ध समझी जाती हैं। ज्वालाग्राही पदार्थों से भरे हुए गोले बड़े ही भयङ्कर होते हैं। जहाँ एक भी ऐसा गोला गिरता है वहाँ सफ़ाया ही हो जाता है। गोले जितने छोटे होंगे उतने ही अधिक एक बार में चलाये जा सकेंगे। और जितने ही अधिक गोले होंगे, जहाँ तहाँ गिर कर, उतना ही अधिक भयङ्कर संहार वे करेंगे। इसी लिए आध सेर से कम वज़न के ज्वाला-ग्राही-पदार्थ-युक्त छोटे गोले युद्ध में नहीं चलाये जाते। १८७४ में, ब्रसेल्स में, एक सैनिक सभा हुई थी। उस में तै पाया था कि योद्धाओं को यह अधिकार नहीं है कि वे जिस तरह चाहें अपने शत्रुओं को मार डालें। इसलिए, भविष्यत् में, युद्ध के समय अब ऐसे गोले न व्यवहार में लाये जायँ जिनका काम फूट कर हवा को विषैला बनाना ही हो। सभा की इस बात को सब राष्ट्रों ने स्वीकार कर लिया।

समुद्र में बारूद की सुरङ्गें लगा कर शत्रु के जहाज़ नष्ट कर दिये जाते हैं। समुद्र में तट से तीन मील तक इस प्रकार की सुरङ्गें लगाने का हर राष्ट्र को अधिकार है। परन्तु ये सुरङ्गें होती बड़ी भयङ्कर हैं। यदि किसी प्रकार ढीली पड़ जायँ तो बहती बहती कहीं की कहीं पहुँच जायँ और केवल सैनिक जहाज़ों को ही नहीं, किन्तु उनसे टकरा जाने वाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापारी जहाज़ों तक को नष्ट कर दें। इन सुरङ्गों की निरङ्कुशता पर सैनिक समुदाय भयभीत हो रहा है। हेग के महा-न्यायालय में इस विषय पर शीघ्र ही विचार होने वाला है।

जो सैनिक शान्तिसूचक झण्डियाँ लेकर या शत्रु के सैनिकों की वर्दी पहन कर शत्रुओं को धोखा देते हैं वे यथार्थ में रण-नीति के विरुद्ध कार्य्य करते हैं। नियम है कि जिस सैनिक के हाथ में शान्ति की झण्डी हो उस पर न तो वार किया जाय, न उसे किसी और प्रकार से कष्ट पहुँचाया जाय, और न वह क़ैद ही किया जाय। गत रूस-जापान-युद्ध में रूसियों ने एक बार इस नियम का उल्लङ्घन किया था। नान-शन में युद्ध हो रहा था। रूसियों ने शान्ति के सुफ़ेद झण्डे ऊपर उठाये। जापानियों ने समझा कि वे शरण चाहते हैं। युद्ध बन्द कर दिया गया। जापानी उन्हें क़ैद करने के लिए आगे बढ़े। पास पहुँचते ही रूसियों ने उन पर बन्दूक़ की बाढ़ें छोड़ीं। सैकड़ों जापानी मुफ़्त में मारे गये। परन्तु अन्त में मैदान जापानियों ही के हाथ रहा।

अरक्षित और चहारदिवारी से न घिरे हुए नगर पर गोले-बारी नहीं की जाती। यदि ऐसे नगर का किसी सैनिक अड्डे से विशेष सम्बन्ध हो, अथवा उसमें रसद रुकी पड़ी हो, तो फिर उस पर भी गोला-बारी की जा सकती है। जिस स्थान पर गोला-बारी की जाने को होती है वहाँ के निवासियों को सूचना द्वारा वहाँ से चले जाने की आज्ञा दे दी जाती है। परन्तु इस प्रकार की सूचना देना अथवा न देना आक्रमण-कारी पक्ष की इच्छा ही पर छोड़ दिया गया है। अपने अधीन रहने वाली असभ्य जातियों को लड़ाई में सहायता लेना अनुचित नहीं, परन्तु उन जातियों की सेना का आधुनिक ढँग पर शिक्षित होना आवश्यक है।

शत्रु-पक्ष की टोह जासूस ले सकते हैं, परन्तु पकड़ जाने पर उन्हें फाँसी मिलती है। पहले तो ग़ुब्बारे द्वारा उड़ने वाले लोगों तक को, युद्ध के समय पकड़ लिये जाने पर, जासूसों ही की तरह दण्ड मिलता था; परन्तु अब वह बात नहीं रही।

शत्रु-पक्ष के जहाज़ों पर, चाहे वे सामरिक हों चाहे व्यापारिक, उन्हीं स्थानों पर आक्रमण किया जा सकता है जो शत्रु अथवा आक्रमण-कारी पक्ष के अधीन हो। किसी तटस्थ राष्ट्र के अधीन समुद्र में, अथवा बन्दर पर खड़े हुए, शत्रु-पक्ष के जहाज़ पर आक्रमण करने का अधिकार किसी को नहीं। जो जहाज़ वैज्ञानिक खोज के लिए निकले हों, जिनमें बदले हुए युद्ध के क़ैदी जा रहे हों, अथवा जिनमें रोगी और घायल तथा उनकी चिकित्सा का सामान हो—चाहे वे किसी पक्ष के हों—पकड़े नहीं जाते। शत्रु की प्रजा के उन जहाज़ों को छोड़ कर जो युद्ध के आरम्भ होने के पूर्व्व से ही दूसरे पक्ष के समुद्र अथवा बन्दर में पड़े हों, अन्य सब जहाज़ युद्ध-काल में पकड़े और ज़ब्त कर लिये जाते हैं। समुद्र-तट के निकट रहने पर तो नहीं, परन्तु समुद्र-तट से दूर गहरे समुद्र में पहुँच जाने पर मछलियों का शिकार खेलने वाली शत्रु-पक्ष की नावें भी पकड़ ली जाती हैं। युद्ध आरम्भ होने पर यदि कोई जहाज़ शत्रु-पक्ष के बन्दर पर माल लाद रहा हो, अथवा शत्रु-पक्ष के किसी बन्दर से चल कर उसी के अथवा किसी तटस्थ राष्ट्र के बन्दर की ओर जा रहा हो, तो वह एक नियमित समय तक नहीं पकड़ा जाता। बहुधा शत्रु-पक्ष के उन जहाज़ों को, जिनमें दूसरे पक्ष के किसी बन्दर का कुछ माल हो, उक्त बन्दर में आने और एक नियत काल के भीतर वहाँ से सकुशल लौट जाने की आज्ञा मिल जाती है।

युद्ध आरम्भ हो जाने पर अन्य राष्ट्रों के जहाज़ों तक की बहुधा तलाशी ली जाती है। यह तलाशी इसलिए ली जाती है जिसमें जहाज़ की यथार्थ राष्ट्रीयता का पता लग जाय और यह मालूम हो जाय कि उसमें किस प्रकार का माल है और वह कहाँ जाता है। इस प्रकार की तलाशियाँ केवल युद्ध-काल में ही ली जाती हैं, शान्ति के समय में नहीं। तटस्थ राष्ट्रों के सैनिक जहाज़ कभी नहीं देखे जाते,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाँ—उनके व्यापारी जहाज़ों की तलाशी बहुधा ली जाती है। तलाशी लेने के लिए जहाज़ पहले रोके जाते हैं। फिर उनका माल देखा जाता है कि वह ऐसा तो नहीं जिसका ले जाना युद्ध-काल में वर्जित है। सामुद्रिक डाकुओं के जहाज़, अथवा ऐसे जहाज़ जिन पर डाकुओं के होने का सन्देह हो, किसी भी समय पकड़े जा सकते हैं। व्यापारी जहाज़ राष्ट्रीय सेवा के लिए सैनिक जहाज़ का रूप धारण कर लिया करते हैं। परन्तु जो व्यापारी जहाज़ घर से तो व्यापारी बन कर निकलता है और रास्ते में सैनिक बन जाता है—उसकी हैसियत सामुद्रिक डाकुओं के जहाज़ ही की तरह समझी जाती है।

युद्ध आरम्भ होते ही एक प्रश्न बड़े ही महत्त्व का उत्पन्न हो जाता है। वह यह कि कौन राष्ट्र तटस्थता की नीति का अवलम्बन करेगा और कौन दो पक्षों में से किसी एक की सहायता करेगा। तटस्थ राष्ट्र का कर्तव्य है कि वह दोनों पक्षों में से किसी को भी किसी प्रकार की सहायता न दे। लड़ने वाले पक्षों का कर्तव्य है कि वे तटस्थ राष्ट्रों के अधिकारों की कभी अवहेलना न करें। तटस्थ राष्ट्र किसी पक्ष को शस्त्रों से सहायता नहीं दे सकता, चाहे उसने युद्ध के पूर्व इस प्रकार की सहायता देने का किसी पक्ष को वचन ही क्यों न दिया हो। वह किसी पक्ष को ऋण भी नहीं दे सकता। वह किसी पक्ष की सेना को भी अपनी भूमि पर से नहीं निकलने दे सकता। वह जहाज़ या किसी प्रकार के शस्त्र नहीं बेंच सकता। नियम है कि वह अपनी भूमि और अपने समुद्र पर दोनों पक्ष वालों को लड़ने न दे। यदि किसी पक्ष की सेना उसकी भूमि पर से निकलना चाहे तो उसे तितर बितर कर दे, उसके शस्त्र छीन ले और उसकी सीमा में क़ैद किये गये किसी पक्ष के सैनिक क़ैदियों को छुड़वा दे। लड़ने वाले दलों का भी कर्तव्य है कि तटस्थ राष्ट्र के राज्य में किसी प्रकार का उत्पात न करें, न वहाँ सिपाही भरती करें और न वहाँ से किसी प्रकार की रसद ही लें। उनके जहाज़ों को, यदि उनमें कोई सन्देहजनक माल न हो, वे न छेड़ें। यदि किसी प्रकार से उनके हाथों से तटस्थ राज्य को कोई क्षति पहुँचे तो उसकी पूर्ति करने और उसके लिए क्षमा माँगने को वे तैयार रहें।

उन्हीं जहाज़ों की तलाशी ली जाती है और वही जहाज़ पकड़े जाते हैं जिन पर "वर्जित" सामान हो। वर्जित सामान से युद्ध-सम्बन्धी वस्तुओं ही का मतलब है। घोड़े, गन्धक, शोरा, जहाज़ के बनाने का सामान—जैसे शहतीरें, इञ्जिन, मस्तूल, बादवान, इञ्जिन की कलें, रस्सियाँ, ताँबा, राल और सन आदि चीज़ें वर्जित समझी जाती हैं। जहाज़ पर रुपया, पहनने के कपड़े और कच्ची धातुओं का होना भी वर्जित मान लिया गया है। कोयला भी वर्जित वस्तु है, परन्तु उसका वर्जित होना इस बात के फ़ैसले पर अवलम्बित है कि उसका व्यवहार किस काम में होगा। यदि उसका व्यवहार किसी औद्योगिक काम के लिए नहीं, किन्तु किसी युद्ध-कार्य में होने वाला हो, तो उसकी गणना भी रण-नीति के अनुसार, वर्जित वस्तुओं में होगी। गत रूस-जापान-युद्ध में रूस और जापान दोनों ने कोयले की गणना वर्जित वस्तुओं में ही की थी। उसी युद्ध में रूस ने कच्ची कपास को भी "वर्जित" बतलाया था। जब राष्ट्रों में इस विषय पर बड़ी हलचल मची तब रूस ने अपनी दूसरी घोषणा में यह कहा कि कच्ची कपास ज्वाला-ग्राही पदार्थों के बनाने में काम आती है। इसलिए वह "वर्जित" समझी जाती है। परन्तु सूत आदि शुद्ध कपास की चीज़ें, जिनसे कपड़ा बुना जाता है, "वर्जित" नहीं।

शत्रु के राज्य में फैले हुए तार तोड़े और उसके खम्भे नष्ट भ्रष्ट किये जा सकते हैं, परन्तु जिस तार द्वारा शत्रु का और किसी तटस्थ राज्य से सम्बन्ध हो उसका वही भाग तोड़ा जा सकता है जो शत्रु की भूमि पर हो। दो तटस्थ राष्ट्रों के बीच में लगे हुए सामुद्रिक तार पर लड़ने वाले दल हस्तक्षेप नहीं कर सकते, परन्तु बहुधा ऐसा होता है कि लड़ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

नर्त्तकाचार्य्य पण्डित गिरिधारीलाल की नृत्य-लीला।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला वह राष्ट्र जो ऐसे तार के विशेष निकट हो उस पर इतना अधिकार प्राप्त कर लेता है कि जब चाहे तब वह उससे भेजी जाने वाली ख़बरों की जाँच पड़ताल कर सके। शत्रु के काग़ज़-पत्रों की गणना वांछित वस्तुओं में है। जहाँ ऐसे काग़ज़-पत्र मिलते हैं, तुरन्त ज़ब्त कर लिये जाते हैं।

तमिस्रा।

है शुक्ल पक्ष रजनी, तिथि पञ्चमी दो
बीते अभी प्रहर दो सुख से निशा के।
देके प्रकाश अपना कुछ काल चन्द्र
है हो गया गगन से अब अस्त देखो॥ १॥
तारे सभी निज प्रकाश बढ़ा बढ़ा के।
स्पर्धा शशाङ्क-छवि की करते विमूढ।
होती न किन्तु उनकी वह आस पूरी,
होते बिना बल सदैव सभी निराश॥ २॥
देखा जभी तिमिर ने रवि-चन्द्र-शून्य,
आकाश में तब किया उसने निवास।
सर्व प्रकार अवलम्बनहीन होके
निस्तब्ध है पति-विहीन विभावरी भी॥ ३॥
खद्योत हैं फिर रहे वन में असंख्य;
मानों उतार गहने निशि फेंकती है।
या मूर्खता निरख के उडु-मण्डली की
है अन्धकार करता क्षण अट्टहास॥ ४॥
हैं शान्त मानव, विहङ्गम आदि सारे;
हैं शान्तिहीन रजनीचर हिंस्र जीव,
घू घू निनाद करके सहसा उलूक
हैं रात्रि की शठ भयङ्करता बढ़ाते॥ ५॥
अत्यन्त वेगयुत मारुत के झकोरे
दोलायमान करते विटपावली को।
होता प्रतीत उनके रव से यही है—
मानों दुखी रुदन है करती तमिस्रा॥ ६॥

"मधुर"

नर्त्तकाचार्य्यजी के विषय में विज्ञप्ति।

सरस्वती की गत सितम्बर मास की संख्या में "नर्त्तकाचार्य्य की अमेरिका में चाह" नामक नोट मैंने पढ़ा। पण्डित गिरिधारीलाल तिवारी के कृत्यों का समाचार सुन कर अमेरिका वालों का आश्चर्य्य-चकित होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं। जहाँ के मनुष्य प्रत्यक्ष प्रमाण पर ही विश्वास करनेवाले हैं वहाँ वाले भला सुनी हुई बात पर कैसे सहसा विश्वास कर सकते हैं—फिर, इस देश की बात पर जो दुर्भाग्य-वश अन्य देशों से कोसों पीछे पड़ा हुआ है।

एक समय था जब कला-कौशल में भारतवर्ष सबसे बढ़ा चढ़ा था। परन्तु दिनों के फेर से—काल की कुटिल गति की करामात से—अब वे बातें स्वप्न सी हो गई हैं। तथापि अब भी कहीं कहीं नर्त्तकाचार्य्य जैसे महात्मा दिखाई दे जाते हैं। हमारे यहाँ के मामूली बाज़ीगर ऐसी करामातें करते हैं जिनको देख कर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। हमने कई दफ़े इन लोगों को कपड़े पर चलते और उछलते देखा है। बीस पच्चीस सेर वज़नी पत्थर का गोला पैरों से उछाल कर गर्दन पर गिरा देना तो इनके लिए कोई बात ही नहीं।

हमारे यहाँ शान्ति की बड़ी महिमा है। इसीसे जिनमें आश्चर्यकारक शक्तियाँ हैं वे उन्हें दिखाते नहीं फिरते। वे चुपचाप परमार्थ-साधन में लगे रहते हैं। यदि कहीं ऐसे लोगों की प्रवृत्ति ऐहलौकिक होती तो ये दिगन्त तक अपनी यशो-रूपी पताका उड़ाये बिना न रहते। परन्तु इन लोगों के दर्शन तक दुर्लभ हैं।

बात यह है कि यहाँ गुणग्राही लोग कम हैं। आश्चर्य्यजनक-शक्ति-सम्पन्न लोग प्रायः शान्त, एकान्तसेवी और भोले भाले होते हैं। ये लोग पुराने ढँग से रहते हैं। विशेष पढ़े लिखे भी नहीं होते। उन्हें अपने गौरव-लाघव का भी विशेष ख़याल नहीं रहता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन लोगों की पहुँच शिक्षित समाज तक बहुत कम होती है। और इन्हें अशिक्षित समझ कर शिक्षित समाज इनकी परवा भी नहीं करता। इसीसे इन लोगों की करामातों का हाल प्रकाशित नहीं होता।

पण्डित गिरिधारीलालजी भी पुराने ढर्रे के आदमी हैं। उनकी कीर्ति सुन कर जब मैं उनका वृत्तान्त जानने के लिए उनके पास गया तब वे बहुत चकराये। मुश्किल से मेरे यहाँ आने और मुझसे अपना हाल बताने के लिए वे राज़ी हुए। सम्भव है, पहले उन्होंने मुझे कोई जासूस समझा हो।

यदि तिवारीजी अमेरिका का निमन्त्रण स्वीकार करके वहाँ जाने की कृपा करें तो भारतवासी अपना गौरव समझेंगे, इसमें सन्देह नहीं। मेरा उनसे पत्र-व्यवहार नहीं; नहीं तो मैं उन्हें अवश्य ही पत्र लिख कर अमेरिका जाने की प्रार्थना करता। मुझे तो सन्देह है कि पण्डितजी ने अपना चरित-सम्बन्धी लेख ही न देखा होगा। मैंने उन्हें सरस्वती की वह संख्या, उनका पता आने पर, भेजने का वचन दिया था। परन्तु, शोक है कि पण्डितजी ने जाने के बाद कोई पत्र ही नहीं भेजा। अब यह भी आशा नहीं कि पण्डितजी को किसी के बिना बताये इस निमन्त्रण का भी समाचार ज्ञात हो सकेगा। इसलिए मैं फ़र्रुख़ाबाद और लखनऊ की शिक्षित मण्डली से सविनय निवेदन करता हूँ कि वे पण्डितजी का पता लगा कर उन्हें उनका चरित-सम्बन्धी लेख तथा निमन्त्रण-पत्र दोनों दिखावें और उनसे अमेरिका जाने के सम्बन्ध में पूँछ करके उनका उत्तर सरस्वती-सम्पादक के पास भेजने की कृपा करें। तब तक मैं अमेरिकावाले बन्धुओं के देखने के लिए तिवारीजी का एक और चित्र प्रकाशित करता हूँ। उसमें पण्डितजी बीचवाली थाली पर एक पैर पूरा जमाये और एक की एड़ी उठाये खड़े होकर नृत्य करने को तैयार हैं। इसके अतिरिक्त और भी कई फोटो निकाले गये थे, परन्तु उनमें से यही कुछ अच्छा था। यह भी मुझे पसन्द नहीं। इसीसे मैंने इसे पहले नहीं प्रकाशित किया था।

यह चित्र पण्डित नाथूराम, जबलपुर, से प्राप्त हुआ है। अतएव मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

गणेशराम मिश्र।

कृत्रिम प्राणसञ्चार की चेष्टा।

अध्यापक शैफ़र वैज्ञानिक संसार में एक बड़े ही प्रसिद्ध पुरुष हैं। इँगलेंड में ब्रिटिश एसोसियेशन नाम की जो बड़ी भारी वैज्ञानिक सभा है उसके वे सभापति हैं। पहले वे लन्दन के यूनीवर्सिटी-कालेज में अध्यापक थे; और, अब, १८९९ से, वे एडिनबर्ग-विश्वविद्यालय में शरीर-धर्म्म-विद्या के अध्यापक हैं। संसार के कितने ही बड़े बड़े विश्वविद्यालयों ने अपनी उपाधियों से उनके नाम को विभूषित किया है। इन्हीं अध्यापक शैफ़र ने स्काटलेंड के डंडी नगर में, गत ४ सितम्बर को, बड़े बड़े वैज्ञानिकों और विद्वानों की एक सभा में जीवन की व्युत्पत्ति के विषय पर एक गवेषणा-पूर्ण वक्तृता दी। उसमें उन्होंने कहा कि वह समय अधिक दूर नहीं जब मनुष्य रसायन-शास्त्र की सहायता से अपनी इच्छा के अनुसार जीवधारियों की सृष्टि करने लगेगा। उनकी इस वक्तृता ने संसार भर में धूम मचा दी है। लोग उनकी वक्तृता पर अपना अपना मत प्रकट कर रहे हैं। धार्मिक संस्थाओं के सञ्चालकों ने तो उनकी बे-तरह ख़बर ली है। परन्तु वैज्ञानिक विद्वान् उनके इस भाषण को सुन कर और भी गहरे सोच में पड़ गये हैं। अध्यापक शैफ़र के कथन की सत्यता अथवा असत्यता सिद्ध होने के लिए समय दरकार है। पर, यदि भविष्यत् में, किसी भी समय, उनका कथन पूर्णतया न सही, किसी अंश में ही, सत्य सिद्ध हो गया तो इसमें सन्देह नहीं कि संसार की काया पलट ही हो जायगी। मनुष्य मनुष्य को न बना पावे; पशुओं को अथवा पशुओं में भी अति-क्षुद्र पशुओं को ही यदि वह बना सके, और इस पर भी वह अपने रचे हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवों को अधिक नहीं, दो चार वर्ष नहीं—किन्तु केवल दो चार दिन अथवा दो चार घंटे ही यदि जीवित रख सके—तो भी संसार में जो घोर परिवर्तन हो जायगा उसका अनुमान करना अधिक कठिन नहीं।

शैफ़र साहब का कथन सत्य निकलेगा या असत्य, इसका अभी कुछ ठिकाना नहीं है; परन्तु यदि उनका कथन असत्य ही निकले तो भी संसार को उनकी हँसी उड़ाने का कोई हक़ नहीं। शैफ़र ही पहले वैज्ञानिक नहीं जिनके हृदय में इस विषय पर विचार उठे हों; मनुष्य के मस्तिष्क में यह विषय बहुत दिनों से चक्कर मार रहा है। उस अति-प्राचीन काल से लेकर जिसकी तारीख़ और सन् बतलाने में इतिहास असमर्थ है—आज तक बड़े बड़े विचार-शील विज्ञान-शास्त्र-वेत्ता इस फेर में पड़े रहे हैं। उन्हें सफलता नहीं हुई, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यदि वे इस फेर में न पड़ते तो प्रकृति की गाँठें उतनी न सुलझी होतीं जितनी सुलझी वे आज देख पड़ती हैं और प्राकृतिक शक्तियाँ मनुष्य के सङ्केत मात्र पर उसकी वह सेवा करती हुई न देख पड़तीं जो आज कर रही हैं। अस्तु। अध्यापक शैफ़र की संसार भर में हलचल मचा देने वाली वक्तृता "सरस्वती" के पाठकों के मनोरञ्जन का कारण अवश्य होगी। अतः उसका सार हम नीचे देते हैं :—

किस चीज़ को हम सजीव कह सकते हैं और किस चीज़ को निर्जीव, इस बात को अभी तक विज्ञान उन्हें पदार्थ से विलग नहीं समझ सकता। वैज्ञानिक खोजों से सिद्ध है कि सजीव और निर्जीव, दोनों ही चीज़ें, एक ही प्रकार के नियमों के अधीन हैं।*

सजीव वस्तुओं के विषय में जितना ही अधिक हम विचार करते हैं उतना ही अधिक हमें यह विश्वास होता जाता है कि उनकी सृष्टि में किसी अज्ञात शक्ति की सहायता की आवश्यकता नहीं। सजीव चीज़ों की सजीवता का प्रमाण उनके हिलने डुलने से मिलता है। जब हम किसी आदमी, कुत्ते अथवा पक्षी को हिलते डुलते देखते हैं तब हम समझते हैं कि वह सजीव है। जब हम एक बूँद पानी में सूक्ष्मदर्शी यन्त्र द्वारा हज़ारों छोटे छोटे कण इधर उधर तेज़ी से दौड़ते हुए देखते हैं तब हम समझते हैं कि वे कण जीवधारी हैं। ठीक इसी तरह की चलने फिरने वाली कलल-कणिकायें (Cells) हमारे शरीर में भी हैं। वे चलती फिरती हैं; और बनती तथा नष्ट होती रहती हैं। इसलिए हम समझते हैं कि वे सजीव हैं।

परन्तु ऐसी चीज़ें भी हिलती डुलती देखी जाती हैं जिन्हें कोई भी बुद्धिमान् सजीव न कहेगा। तेल की बूँदें स्तब्ध पानी पर छोड़ दीजिए। वे हिलती हुई पानी पर फैल जायँगी। परन्तु इससे यह नतीजा नहीं निकाला जा सकता कि तेल में जीव है। तेल की यह गति रासायनिक क्रिया के कारण है। उसका गतिमान् होना उसे सजीव नहीं बनाता। गतिमान् होना सजीवता का मुख्य चिह्न भी नहीं।

पाचन-शक्ति भी जीवन का चिह्न मानी जाती है। परन्तु ऐसी वस्तुओं में भी पाचन-शक्ति विद्यमान है जिन्हें कोई भी सजीव नहीं कह सकता। इन सब बातों पर विचार करते हुए हम अन्त में इस नतीजे

---

* हमारे देश के सब से बड़े रसायन-शास्त्र-वेत्ता, अध्यापक जगदीश चन्द्र वसु, पहले ही सिद्ध कर चुके हैं कि संसार की सभी चीज़ें सजीव हैं, निर्जीव कोई नहीं। पाठक देखें कि अध्यापक शैफ़र भी इसी नतीजे के निकट पहुँचते जाते हैं।

विद्वान् तै नहीं कर पाये; परन्तु विज्ञान की उन्नति हमें यह बतला रही है कि निर्जीव और सजीव चीज़ों में उतना अन्तर नहीं है जितना अभी तक समझा जाता था। बहुत से लोग उस चीज़ को सजीव कहते हैं जिसमें वे समझते हैं कि—"आत्मा" है; और उसे निर्जीव समझते हैं जिसमें उनके विचारानुसार "आत्मा" नहीं है। इसी कारण बहुधा लोग "आत्मा" और "जीव" को एक ही समझते हैं। मेरी वक्तृता में "जीव" का मतलब वह नहीं जो लोग "आत्मा" से लेते हैं। सजीव चीज़ें पदार्थ-संगठित होती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर पहुँचते हैं कि जितने परिवर्तन होते हैं—चाहे सजीव वस्तुओं में हों चाहे निर्जीव में—वे सब आप से आप रासायनिक क्रियाओं से ही हो जाते हैं।

सजीव वस्तुओं के विषय में यह भी कहा जाता है कि वे बढ़ती हैं और अपनी ही दूसरी सजीव वस्तु को उत्पन्न भी करती हैं। परन्तु ये दोनों गुण निर्जीव वस्तुओं में भी पाये जाते हैं। कई चीज़ें ऐसी हैं जिनमें वे सब रासायनिक पदार्थ नहीं, जो जीवन के लिए आवश्यक हैं। परन्तु वे बढ़ती हैं और यदि उन्हें उचित "भोजन" मिले तो उनसे उन्हीं की तरह की दूसरी चीज़ें भी उत्पन्न हो सकती हैं। कितने ही सामुद्रिक जानवरों के अण्डे रासायनिक और वैद्युतिक क्रियाओं द्वारा बढ़ाये जा सकते हैं और यथासमय वे सजीव शरीर में भी परिवर्तन किये जा सकते हैं।

जीवधारियों की शरीर की सजीव कलल-कणिकाओं पर ही उनका जीवन अवलम्बित है। अध्यापक मीशर और कोसेल ने सिद्ध कर दिया है कि वे कणिकायें जिन रासायनिक पदार्थों से संयुक्त हैं उनका जानना कठिन नहीं। हम सब लोग चाहे उच्च कोटि के जीवधारी हों, चाहे पशु या वनस्पति हों, इन्हीं जीवन-कणिकाओं से बने हुए हैं। कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन और फ़ास्फर आदि ही जीवन की जन्म-दात्री रसायनें हैं। इन्हीं के साथ एक यथेष्ट मात्रा में जल और कुछ नमक की और आवश्यकता है। इन सब चीज़ों का मिश्रण एक ऐसी चीज़ को उत्पन्न करता है जिसे हम जीवन की रासायनिक नीव कह सकते हैं। जब रसायन-वेत्ताओं को अनुभवों द्वारा यह ज्ञात हो जायगा कि किस चीज़ को किस मात्रा में मिलानी चाहिए तब वह समय दूर न रह जायगा जब ऐसी चीज़ें बनने लगें जिन्हें हम सजीव कहते हैं।

विज्ञान हमें यह मानने की आज्ञा नहीं देता कि जीवन की रचना किसी अज्ञात शक्ति द्वारा हुई। हमें यह मानना पड़ता है कि निर्जीव वस्तुओं में शनैः शनैः ऐसे परिवर्तन होते गये जिनसे उनकी अवस्था बदलती गई और अन्त में वे सजीव हो गईं। यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि प्राचीन काल ही में ये परिवर्तन हुए थे, अब नहीं होते। अब भी इस प्रकार के परिवर्तन अवश्य हो रहे होंगे, परन्तु दुःख से कहना पड़ता है कि हम उन्हें नहीं जानते। यदि भूत काल में निर्जीव चीज़ें परिवर्तित होती होती सजीव हो सकती थीं तो कोई बात आज ऐसी नहीं देख पड़ती जिससे कहा जा सके कि इस प्रकार का परिवर्तन वर्तमान-काल में नहीं हो रहा है और भविष्यत् में न होगा। पहले इस प्रकार का परिवर्तन कहाँ हुआ और आज कल वह कहाँ हो रहा है—ये प्रश्न कठिन अवश्य हैं, परन्तु ऐसे नहीं कि हल न हो सकें। एक बार निर्जीव वस्तु का रूप बदल कर सजीव हो जाने की देर है, फिर उसके लिए अपनी ही तरह की वस्तुओं को उत्पन्न करके अपनी संख्या बढ़ाना अनिवार्य्य हो जायगा।

कहा जा चुका है कि जीवधारियों के शरीर की कलल-कणिकायें ही उनका जीवन-धन हैं। ये कणिकायें सदा ही बनती और बिगड़ती रहती हैं। साधारण कणिकाओं के नाश से तो जीवधारी को कोई हानि नहीं पहुँचती। पर हृदय, अथवा किसी और मुख्य स्नायु-सम्बन्धिनी कणिकाओं के नाश से ही मृत्यु होती है एक बात और भी देखने में आई है। वह यह कि देखने में तो शरीर निर्जीव हो जाता है, परन्तु उसकी बहुत सी जीवन-कणिकायें मृत्यु के बाद भी घंटों तक और कभी कभी कई दिन तक जीवित अवस्था में पाई गई हैं। कई मनुष्यों के हृदयों की कलल-कणिकायें उनकी मृत्यु के अठारह घन्टे बाद तक जीवित देखी गई हैं। एक रसायनशास्त्री ने तो हाल ही में एक और नई बात खोज निकाली है। उसने एक मेंढ़क को मारा और उसके रक्त के सुफ़ेद कणों को यत्न-पूर्वक रख छोड़ा। फल यह हुआ कि एक वर्ष के बाद भी उन कणों में सजीव कणिकायें मौजूद थीं। कैरल नाम के विद्वान् ने तो इससे भी बढ़ कर एक बात का पता लगाया है। उसने एक पशु की मृत्यु के बाद उसका एक अव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यव काट लिया और उसे दूसरे जीवित पशु के उसी अवयव के स्थान पर लगा दिया। फल यह हुआ कि वह अवयव जीवित पशु के शरीर में ठीक ठीक काम देने लगा। यह भी सिद्ध हो चुका है कि कोई अवयव शरीर से काट कर यदि यत्न-पूर्वक रक्खा जाय तो उसमें घंटों तक जान रहती है।

ये कलल-कणिकायें रासायनिक क्रियाओं द्वारा बन सकती हैं। रसायन-शास्त्र के विद्वानों ने एक चीज़ बड़े महत्त्व की ढूँढ़ निकाली है। जीवन के लिए वह भी बड़ी आवश्यक है। वह कलल-कणिकाओं में एक प्रकार की तेज़ी उत्पन्न करती है। उसका नाम हारमोन्स (Harmones) है। वह बन ही चुका है। अब वह समय दूर नहीं जब रासायनिक संसार कलल-कणिकाओं की भी रचना करने लगेगा।

यह अध्यापक महोदय की वक्तृता का सार है और यही उनकी जीवन-कणिकाओं की कथा है। इसे सुनने के अनन्तर, वहीं भरी सभा में, कितने ही विद्वानों ने आपकी बे तरह हँसी उड़ाई और आपके कृत्रिम-प्राण-सञ्चार की कल्पना को शेख़-चिल्ली की कहानी बताया। तब से आज तक अनेक पत्रों और पत्रिकाओं में इस विषय की चर्चा बराबर हो रही है। चर्चा करने वालों में अधिक संख्या उन्हीं लोगों की है जो कृत्रिम-प्राण-सञ्चार की आशा को मनोमोदक मात्र समझते हैं। जो लोग विद्या के बल से जीवधारियों की कृत्रिम सृष्टि करने का प्रयत्न कर रहे हैं वे यदि आत्मा को द्रव्यत्वहीन और काल्पनिक समझें तो कोई आश्चर्य्य नहीं।

चाँद बीबी।

देश उत्तरी जीत पाल नृप-नीति निराली।
महा मुग़ल ने नींव राज की गहरी डाली॥
फिर इच्छा बढ़ चली और भी जय की जय से।
बढ़ता है ज्यों लोभ अधिक धन के सञ्चय से॥१॥

तृष्णा ने कर दिया अन्ध अकबर के मन को।
ठाना उसने उचित लूटना विधवा-धन को॥
राज-लोभ से चढ़ी कुटिलता से उतराती।
मुग़ल-फ़ौज की नदी बही तट, ग्राम बहाती॥२॥
दक्षिण में उस समय महा अन्याय मचा था।
दक्षिण-पति ने समररूप नरमेध रचा था॥
लुटता था धन-धान्य गाँव ऊजड़ होते थे।
अथाइयों में बैठ श्वान-जम्बुक रोते थे॥३॥
बोकर खेत किसान लड़ाई पर जाते थे।
पर न लौट कर साख काटने को आते थे॥
दुष्टों ने इस काल पुराना वैर निकाला।
भाई का घर किसी बालि ने मिल कर घाला॥४॥
एक मुकुट ने मूँड़ हज़ारों ही कटवाये।
कई कुलों के चिह्न वृथा जग से मिटवाये॥
दो को लड़ते देख तीसरे की बन आई।
फिर वह भी मर मिटा लूट चौथे ने पाई॥५॥

जो लड़ते थे सो न राज के थे अधिकारी।
धर्म-मूल पर नहीं हुई थी हत्या सारी॥
ब्रह्मा ने युवराज रचा था जिस को सच्चा।
लिये काठ का खंग खेलता था वह बच्चा॥६॥
बहुत समय तक रुकी न जब लोहू की धारा।
मंत्री, सेना, प्रजा,—तीन ने किया किनारा॥
राज उन्हों ने दिया उसी का था जो स्वामी।
प्रतिनिधि मानी गई चांद सुलताना नामी॥७॥

बीजापुर के राज-पुत्र की विधवा रानी।
सुलताना थी बाल-भूप की बुआ सयानी॥
निज भाई का पुत्र पुत्र-सम पाल रही थी।
राज-नीति से राज-बखेड़े टाल रही थी॥८॥
उसका यह अधिकार जिन्हों ने उचित न जाना।
वे वैरी से मिले समझ निज लाभ बिराना॥
लख पर-घर की फूट सेंत में पाय सहाई।
अहमदपुर पर मुग़ल-फ़ौज की हुई चढ़ाई॥९॥
अबला हो डर नहीं चांद बीबी ने माना।
बाल-भूप के लिए प्राण भी देना ठाना॥
सरदारों से कहा द्वेष आपस का त्यागो।
सोचो निज कर्त्तव्य देश-रक्षा-हित जागो॥१०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन सुरङ्गें बड़ी वैरियों ने खुदवाईं।
सुलताना ने तल-सुरङ्ग से दो मिटवाईं॥
उड़ी तीसरी दुर्ग-भीत का भाग उड़ाती।
धड़की निज घर-फूट देख वीरों की छाती॥ ११॥
तब कर में तलवार लिये बिजली सी नङ्गी।
पहने पूरा झिलम साज सब साजे जङ्गी॥
घूंघट घाले घटा-रूप सुलताना धाई।
गोलों की बरसात भीत में से मचवाई॥ १२॥

सब लोहा चुक गया, तोप की बाढ़ न चूकी।
तांबा फूँका गया, गई फिर चांदी फूँकी॥
फिर तोपों ने बड़े चाव से फूँका सोना।
फिर रत्नों ने किया अन्त में रण अनहोना॥१३॥
वैरी ठहर न सके प्रबल आगी के आगे।
पल में घेरा उठा छोड़ कर जी सब भागे॥
जाग रात-भर आप भीत उसने जुड़वाई।
नारी-पौरुष देख लाज पुरुषों को आई॥ १४॥
जब दक्षिण की ओर सहायक सेना आई।
पहले से भी अधिक मुग़ल-सेना घबराई॥
फिर मुराद ने लखा रसद दिन दिन घटती है।
जय की आशा छोड़ फौज पीछे हटती है॥ १५॥
सब प्रकार से समझ हीन अपने को बल में।
करली उसने सन्धि चाँद बीबी से पल में॥
अकबर को यह हार बुढ़ापे में यों खटकी।
दक्षिण को वह चला बाट भूला, मरघट की॥ १६॥

डाल दिया बुरहानपूर में उसने डेरा।
फिर से अहमदनगर-दुर्ग सेना ने घेरा॥
इस अवसर पर भी न चाल निज चूके द्रोही।
मुग़लों की भी बाट न हत्यारों ने जोही॥ १७॥
धन के बदले महा घोर अघ करने वाले।
बच्चे के भी प्राण सहज में हरने वाले॥
कई दुष्ट जा घुसे महल में सुलताना के।
धोखे में ले लिये प्राण पल में अबला के॥ १८॥
जिस आशा से पाप किया था सरदारों ने।
पूरी की वह मुग़ल-फ़ौज की तलवारों ने॥
देश-द्रोह, नृप-घात, लूट—सब का फल पाया।
पाप-लदे सब कटे और परलोक नसाया॥ १९॥

भला बुरा कुछ नहीं जगत का जिसने जाना।
जिस के कारण मरी अमर होकर सुलताना।
किसी समय जो राज-कोश का स्वामी होता।
बन्दी बन सब छोड़ गया वह बालक रोता॥ २०॥
अकबर की यह जीत हुई ऐसी फलदाई।
चौथेपन की शान्ति न उसने पल भर पाई॥
मरने तक वह रहा दुखी सुत की करनी से।
वैसा ही उठ गया अचानक इस धरनी से॥ २१॥

कामताप्रसाद गुरु।

भूगर्भ-विद्या।

[ले० साहित्याचार्य्य पण्डित रामावतार शर्म्मा, एम० ए०.]

(१)

भूगर्भ-विद्या।

जैसे आयुर्वेद, गान्धववेद आदि बहुत प्राचीन हैं, भूगर्भ-वेद वैसा प्राचीन नहीं है। यह नरशास्त्र आदि के सदृश एक नई विद्या है। सौराण्ड, अर्थात् ब्रह्माण्ड, से पृथक् होने पर पृथ्वी में किन कारणों से कैसे कैसे तह पड़ते गये जिससे आज पृथ्वी वर्त्तमान रूप में पहुँची है, इसका यथाशक्ति निर्णय करना ही भूगर्भ-वेद का काम है। प्रायः सौ वर्ष से इस विद्या का ठीक आविर्भाव समझना चाहिए। इङ्गलैण्ड देश में पहले पहल कुछ लोग इसके निर्म्माण में तत्पर हुए। अब पाश्चात्यों में यह विद्या एक स्वतन्त्र शास्त्र हो चली है। जब तक किसी शास्त्र की एक आध बातें पृथक् पृथक् मालूम रहती हैं, पर उनका परस्पर सम्बन्ध न ज्ञात होने के कारण कोई अनुगम नहीं दिये जा सकते, तब तक ऐसी बिखरी हुई बातों को शास्त्र का नाम नहीं दिया जा सकता। गोबर इत्यादि कई पदार्थों पर बिजली आसानी से गिरती है, चुम्बक सूई को खींचता है, इत्यादि बातें प्राचीन वैदिकों को तथा चीन आदि देशवालों को भले ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

चांद बीबी ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालूम थीं। पर इतने से उनमें विद्युद्विद्या का प्रचार था, यह नहीं कहा जा सकता। इसी तरह, भूगोल के भीतर पृथ्वी देवी का नरकासुर से समागम हुआ; तब पृथ्वी से मङ्गल ग्रह उत्पन्न हुआ; इसी लिए मङ्गल का 'भौम' नाम हुआ—यह सब मझले पुराण वालों ने कहा है। यदि पौराणिक अतिशयोक्ति को छोड़ दें तो इस उक्ति का मूल यही मालूम पड़ता है कि पृथ्वी पहले भयानक अग्नि (नरक) से सम्बन्ध रखती थी और इसके तपे हुए बृहद्गोलक से 'मङ्गल' का आविर्भाव हुआ। इसी तरह समुद्र के भीतर बड़े बड़े अग्निपर्वतों की स्थिति का कुछ आभास पाकर पौराणिकों ने बड़वानल अग्नि की कल्पना कर ली थी। इन बातों से जान पड़ता है कि भूगर्भ की स्थिति की एक आध बातें हज़ारों वर्ष पहले से लोगों को विदित थीं। इसमें सन्देह नहीं है। पर पृथक् पृथक् ऐसी एक आध बातों के ज्ञान को विद्या या शास्त्र नहीं कह सकते। मछली, कछुआ, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध आदि क्रम से पृथ्वी में जीवों की उत्पत्ति कहने वालों को ऐसी झलक अवश्य थी कि पहले जलचर, फिर उभयचर, फिर स्थलचर, तब भयानक जंगली मनुष्य, तब छोटे छोटे विकृत मनुष्य, फिर लड़ाके अर्ध सभ्य लोग, फिर पूरे सभ्य वीर, फिर कर्म-कौशल रखने वाले योगी, और फिर जाति के क्षीण होने के समय संन्यासी-वैरागी उत्पन्न होते हैं। इस बात को विकास और विकासोपरोध से सम्बन्ध अवश्य है; पर फिर भी ऐसी बातों के ज्ञान को विकासविद्या नहीं कह सकते। भूगर्भ का और भूतल के जन्तुओं का क्रम-विकास ठीक ठीक समझने का, और उसे शास्त्र में परिणत करने का, सौभाग्य आधुनिक ही कवियों को प्राप्त हुआ है। इसलिए इस शास्त्र के आविष्कारक (ऋषि) आधुनिक ही हैं। पहले के लोग यह समझते थे कि अपने हाथों अथवा इच्छा या ज्ञान आदि से, किसी साकार या निराकार व्यक्ति या शक्ति ने, जिसने तारा-आकाश आदि को बनाया है, पृथ्वी के तहों को भी बनाया है और उसी ने अपनी इच्छा से इस पर जन्तुओं को भी बनाया है। इसके लिए प्रमाण सिवा क़िस्सा-कहानियों के और कुछ नहीं है। असली बातों का पता या तो प्रत्यक्ष ज्ञान से होता है या अनुमान से। जैसे पहाड़ पर उठा हुआ धुवाँ देखने से मनुष्य कहता है कि पहाड़ पर आग है। या और जगह धुआँ और आग का नियत सम्बन्ध देख कर यदि वह पहाड़ पर धुआँ देखे तौभी मनुष्य अनुमान करता है कि वहाँ आग है। परन्तु अनुमान के खुले शत्रु चार्वाक लोग और उनके अनुगामी अन्य छिपे हुए शत्रु प्रायः कहते हैं कि प्रत्यक्ष-अनुमान से सब कुछ नहीं मालूम हो सकता। क्योंकि अतीत, अनागत सब वस्तुओं को किसी मनुष्य ने नहीं देखा। यहाँ पर 'मनुष्य' शब्द से पुराने और नये सिद्ध, ऋषि, महर्षि आदिकों का ग्रहण नहीं है। क्योंकि अनुमान के शत्रु लोग प्रायः ऐसे लोगों को अमानुष समझते हैं। इन लोगों का यह सिद्धान्त है कि जब दुनिया भर की अतीत, अनागत और वर्त्तमान सारी आग और धुआँ को किसी ने नहीं देखा, तब यह कैसे कहा जाय कि धुआँ है तो आग भी अवश्य है। सम्भव है कि कोई प्राचीन विश्वामित्र या नवीन मुद्रानन्द तप कर रहा हो और उसके माथे से धुआँ निकल रहा हो। ऐसे अनुमान के विरोधी या तो केवल प्रत्यक्ष ही पर रह जाते हैं या 'बाबावाक्यं प्रमाणम्' बकते रहते हैं। ये यह नहीं समझते हैं कि अनुमानवादी, प्रत्यक्ष-अनुमान से सभी कुछ देखा जाय, यह कभी नहीं कहता। सब लड़कों के माँ-बाप को मैंने देखा है, यह कौन कह सकता है। तथापि अनुमान यही है कि जन्तुओं के माँ-बाप उन्हीं के सदृश जन्तु होते हैं; सिल, लोढ़ा आदमी का माँ-बाप नहीं हो सकता। कहने वाले भलेही कहें कि अगस्त्यजी घड़े से उत्पन्न हुए थे; अग्नि, वायु, प्रजापति, आदि ऋषि शून्य में से चले आये थे; शुकदेव जी आग निकालने की लकड़ियों से पैदा हुए थे। पर ऐसी बातें चाहे किसी की हों, इस देश की हों या अन्य देश की हों, पुरानी हों या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई हैं, कोई विचारवान् इन्हें मान नहीं सकता। यदि कोई पूछे कि जिन जंगलों में हम नहीं गये हैं वहाँ के फल क्या होते हैं, तो यही कहना चाहिए कि और जन्तु वहाँ के फल खा जाते हैं या वे सड़ गल जाते हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि उन जंगलों के फल पिशाच खा जाते हैं, जैसा लड़के आपस में बहुधा कहा करते हैं कि शहर की मिठाइयाँ रात को जिन लोग ख़रीद ले जाते हैं। इसी से प्रत्यक्षानुमानप्रिय वैज्ञानिक लोगों ने, विशेष निर्माणवाद को वादहवाई बातें समझ कर, देखी जाती हुई कार्य्य-कारण की बातों से भूगर्भ और जन्तुओं की स्थिति के निश्चय करने की चेष्टा का प्रारम्भ हाल में किया है। भाफ़ निकलने से जल होता है, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। आग पर पानी का बर्तन यदि रक्खा जाय और खौलते हुए पानी के बर्तन के कुछ ऊपर कटोरा आदि रक्खा जाय तो उस पर जल के कण आ जाते हैं। ऐसे ही दिन भर की गरमी से उड़े हुए पानी के कण रात को खिड़की के शीशे पर लग जाते हैं, जिन्हें देख कर कवियों ने चन्द्रकान्त-मणि की कल्पना कर ली थी। ऐसे ही, गरमी में उड़ा हुआ भाफ़ ऊपर ठंढी वायु में जाकर पानी या बनौरी के आकार में नीचे गिरता है। ऐसी बातों से वैज्ञानिकों ने यह अनुमान किया है कि सौराण्ड से निकलने के बाद चिरकाल तक भाफ़ निकलते निकलते जब भूतल ख़ूब ठंढा हो गया और चारों ओर की हवा भी ठंढी हो चली तब भाफ़ पानी के रूप में परिणत हुआ। पृथ्वी प्रायः जलमयी हो चली। गरमी उसके भीतर ही भीतर रह गई। अब प्रत्यक्ष निर्णीत बातों से यह देखना चाहिए कि पृथ्वी के ऊपर आज जो पदार्थ हैं उनकी स्थिति, गति आदि का ठिकाना बिना विशेष निर्माण के किस प्रकार हुआ। क्योंकि विशेष निर्माण यदि कोई बात होती तो आज भी जहाँ तहाँ अद्भुत वस्तु और बे माँ-बाप के ऋषि आदि उत्पन्न हो जाया करते। प्रत्यक्ष निर्णीत बातों से यह देखने में आया है कि जल के प्रवाह से कहीं कहीं तो पृथ्वी घिसती जाती है और कहीं उस पर पाँक जमती जाती है। इससे एक अनुमान यह हुआ कि जल के व्यापार के कारण पृथ्वी के तल पर बहुत से अदल बदल हुए हैं। दूसरी बात यह देखने में आई है कि कहीं कहीं अग्निगर्भ-पर्वतों के भीतर से दहकती हुई चीज़ें निकलती हैं, जो पृथ्वी के तल पर ढेर की ढेर पड़ी रहती हैं। तो अग्नि और जल ये दोनों पृथ्वी के अदल बदल के मुख्य कारण हुए। पृथ्वी की सरदी, गरमी आदि बदलने के कुछ और भी कारण ऐसे हैं जिन्हें पृथ्वी की गति से सम्बन्ध है। वैज्ञानिकों ने यह अनुमान किया है कि पृथ्वी की अक्षयष्टि सूर्य्य से एक ही सम्बन्ध नहीं रखती; कभी कभी बदल भी जाती है। इस बदलने के कारण पृथ्वी के कुछ भागों में अकस्मात् सरदी या गरमी के बढ़ जाने की सम्भावना रहती है। ऐसे ही कारणों से ध्रुव-प्रदेश के चारों ओर किसी समय इतनी बर्फ़ पड़ी कि वहाँ के मनुष्य, रोमशहस्ती आदि अनेक जीव बर्फ़ में जम गये। आज तक भी ध्रुव के चारों ओर कुछ दूर तक यह बर्फ़ वर्त्तमान है।

ऊपर कहे हुए कारणों में पहले पहल वैज्ञानिकों ने दो मुख्य कारणों का अवलम्बन किया। आज से प्रायः सौ वर्ष पहले इन वैज्ञानिकों ने अपने दो दल कर डाले। कुछ तो सुतनु नामक विद्वान् का पक्ष लेकर अग्नि के उद्भेद के कारण ही पृथ्वी में सब परिवर्त्तन हुए, ऐसा मानने लगे। ये वैवस्वत दल वाले कहे जाते हैं। दूसरे दल वाले बरनर साहब के अनुसारी थे। ये जल को ही सारे परिवर्त्तन का कारण समझते थे। ये वारुण दल वाले कहे जाते हैं। अन्ध-हस्ति-न्याय से दोनों दल वाले सत्य के दो अंशों को लेकर चिरकाल तक नाहक़ आग्रह में पड़े थे। परन्तु अब भूगर्भ-विद्या वालों ने ख़ूब समझ लिया है कि न केवल जल से और न केवल अग्नि ही से, किन्तु दोनों ही के कारण भूतल में अदल बदल होते रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संक्षेप से इस प्रकार यहाँ भूगर्भ-विद्या के आविर्भाव का वृत्तान्त दिया गया। इस विद्या के अनेक अङ्ग हैं। पृथ्वी-ग्रह का सूर्य्य आदि से क्या सम्बन्ध है और पृथ्वी को सौराण्ड से अलग हुए कितने दिन हुए, ऐसी ऐसी बातों का निश्चय करना इस विद्या का पहला उद्देश है। वायुमण्डल, जल-मण्डल और पाषाणमण्डल पृथ्वी के तीन अङ्ग हैं। इन अङ्गों में क्या क्या द्रव्य हैं और उनकी संघटना कैसी है, इन बातों का निश्चय करना इस विद्या का दूसरा उद्देश है। अग्नि और जल के कारण कैसे कैसे परिवर्त्तन पृथ्वी-तल में होते हैं, इसका निश्चय करना इसका तीसरा उद्देश है। भूगर्भ के गठन का निश्चय करना चौथा उद्देश है। किस क्रम से वर्त्तमान पृथ्वी-तल बना, इस बात का निश्चय करना इस विद्या का पाँचवाँ उद्देश है। उद्भिद् और जीवों का विकाश किस क्रम से पृथ्वी के अतीत और वर्त्तमान तल पर हुआ, इसका निश्चय करना विकाश-विद्या का उद्देश है। विकाश-विद्या वस्तुतः एक स्वतन्त्र ही शास्त्र है, तथापि भूगर्भ-विद्या से उसका ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है कि यहाँ दोनों पर एक ही साथ विचार करना उचित समझा गया है।

१—पृथ्वी की सृष्टि।

पाणिनि के अनुसार सृष्टि का अर्थ है अलग होना। उपनिषदों में भी आत्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से ओषधियाँ, ओषधियों से जीव हुए—यही बोली रक्खी गई है। पर श्लोक बनाने वाले भृगु आदि धर्मशास्त्रियों ने और मझले पौराणिकों ने मनुस्मृति, भागवत आदि की कविता में सब वस्तुओं में स्त्री-पुरुष-भाव का आरोप करके एक ऐसा रूपक खड़ा किया है जिससे कुम्हार और बढ़ई आदि जैसे कृत्रिम वस्तुओं को बनाते हैं वैसे ही पृथ्वी, आकाश, उद्भिद्, जीव आदि को भी किसी कारीगर ने बनाया है, ऐसा ख़याल बहुतेरों को पैदा हो जाता है। दर्शन और विज्ञान से कम परिचय रखने के कारण मतवाद वाले सभी जगह ऐसे ही रूपकों का झण्डा खड़ा करते हैं। अब यदि कविता के रूपकों और अतिशयोक्तियों को छोड़ें और दर्शन और विज्ञान की रीति से असली बात का यथाशक्ति निश्चय करना चाहें तो सौराण्ड से पृथ्वी कब निकली, इसका अनुमान इन बातों से हो सकता है:—(१) ताप किस हिसाब से तप्त पदार्थ से बाहर होता है। (२) प्रतिवर्ष कितनी मोटी पाँक कितने जल के प्रवाह से जमती है। (३) पानी में नमक आदि ख़ास ख़ास द्रव्यों का कितना अंश कितने दिनों में इकट्ठा होता है। (४) पृथ्वी की गति और मेरुओं का चिपटा होना। (५) सूर्य्य के ताप का समय। ऐसी ही ऐसी बातों से सौराण्ड से पृथ्वी की सृष्टि, अर्थात् उसके पृथक् होने के समय, का किसी तरह कुछ अन्दाज़ा हो सकता है। इन गणनाओं में बहुत सन्देह और मत-भेद होने की सम्भावना है। पर करें क्या? ऐसी गणना तो प्रत्यक्ष पर अवलम्बित है और प्रत्यक्षमय लौकिक बातों में कोई गड़बड़ हो तो आश्चर्य्य ही क्या है। आश्चर्य्य तो इस बात पर होता है कि दिव्य पुस्तकों में भी दिव्य दृष्टि वाले वक्ता भी, सर्वज्ञ होने पर भी, परस्पर विरुद्ध बातें कहते हैं। पच्छिमी लोग सृष्टि को हुए चार ही पाँच हज़ार वर्ष मानते हैं। पूर्वी लोग सृष्टि हुए अनेक करोड़ वर्ष मानते हैं। पैर से चलते चलते पिछलें भी, या रेल से चलते चलते गाड़ी टकराने से मर भी जायँ तो सिर से चलने या प्राणायाम से चलने की चेष्टा कैसे करें। प्रत्यक्ष-अनुमान से धोखा खाते खाते भी, बादहवाई बाबा-वाक्यों पर विश्वास करके, दो दिन की या दो करोड़ वर्ष की सृष्टि कैसे मानें। बादहवाई बातों को छोड़ कर गणित आदि के सीधे रास्ते से चलते चलते जहाँ तक पहुँचें वहीं ठीक है। निश्चय-भूमि में जायँ तो भी अच्छी बात है; सन्देह-भूमि में जायँ तो भी अच्छी बात है।

जो चार पाँच गणनायें भूसृष्टि के निश्चय-सम्बन्ध में, अवलम्बरूप, ऊपर सूचित की गई हैं उनके अनुसार कलवीण आदि महर्षियों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुमान किया है कि प्रायः दस करोड़ वर्ष पहले पृथ्वी सौराण्ड से अलग हुई थी। इन वैज्ञानिकों ने यह दिखलाया है कि यदि पृथ्वी दस करोड़ वर्ष से इधर की होती तो उसके भीतर जैसी गरमी आज है उससे बहुत अधिक होती। इतने समय से बहुत अधिक पुरानी भी यदि पृथ्वी होती तो भी गणित के अनुसार ताप नीचे बढ़ता हुआ न पाया जाता, जैसा कि आज कल पाया जाता है। समुद्र के ज्वारभाटा के आकर्षण के कारण पृथ्वी की परिवर्त्तनगति पहले से क्रमशः धीमी होती जाती है। यदि पृथ्वी एक अर्बुद वर्ष (अर्थात् १० करोड़) से बहुत पुरानी होती तो प्रबल वेगवती परिवर्त्तन-गति के कारण ध्रुव-प्रदेश इस समय जितने चिपटे हैं उससे कहीं ज़ियादह चिपटे होते। सूर्य्य की गरमी पृथ्वी पर कितने दिनों से आ रही है, इसकी गणना करने के लिए भी कितने ही लोगों ने चेष्टा की है। पर इस विषय का गणित ठीक नहीं हो सकता। रदीय नामक द्रव्य हाल में एक ऐसा ज्ञात हुआ है जिससे सम्भव है कि पृथ्वी के भीतर की गरमी बहुत दिनों से एक ही प्रकार की रही हो। इस द्रव्य के ज्ञात होने से कलवीण आदि वैज्ञानिकों की गणना में बहुत कुछ सन्देह हो गया है। इसलिए भूगर्भ-वेदियों का अनुमान है कि पृथ्वी की आयु एक अर्बुद वर्ष से कहीं अधिक हुई। नदियों के प्रवाह से एक जगह की ज़मीन किस हिसाब से घिसती है और दूसरी जगह किस हिसाब से पाँक जमती है, इसके गणित से भी भूमि की अवस्था का कुछ अन्दाज़ा लग सकता है। अमेरिका की मिश्रशिप्रा नदी प्रति वर्ष सामान्यतः एक फुट के षट्सहस्रांश ($\frac{१}{६०००}$) के हिसाब से अपने तल को घिस कर मिट्टी समुद्र में ले जाती है। अर्थात् ६००० वर्ष में १ फुट ज़मीन वह खा जाती है। अब यद्यपि यह सम्भव है कि प्राचीन समयों में अग्नि-गर्भ पर्वतों या नदियों का वेग आज से कहीं बढ़ चढ़ कर रहा होगा, तथापि मिश्रशिप्रा के व्यापार को देखने से यह जान पड़ता है कि कई करोड़ वर्षों में एक समूचा महाद्वीप एक जगह से कट कर दूसरी जगह बन सकता है। इसी प्रकार योग्यतम जन्तुओं की रक्षा और विकास के क्रम से एक जाति के जन्तुओं से दूसरी जाति के जन्तु बनने के लिए कितने अधिक समय की अपेक्षा है, इसका ख़याल करने से भी पृथ्वी की अवस्था अनेक कोटि वर्ष की होने का अनुमान होता है। तथापि इन बातों से पृथ्वी की अवस्था का कुछ पता नहीं लगा। बात अभी सन्देह ही में रह गई। इससे कुढ़ कर कितने ही दिव्यदृष्टि वाले समझेंगे कि इस अनिश्चय से तो दिव्यदृष्टि ही के द्वारा सब बातों का निश्चय अच्छा। पर यह बात वैसे ही है जैसे 'मुद्गर-दूत' के नायक श्रीमान् मूर्ख-देवजी ने लोगों को उपदेश दिया था कि लड़के बहुत जल्दी जल्दी बीमार हो जाते हैं और मर जाते हैं। इस लिए पत्थर या लोहे के लड़के रक्खे जायँ तो बहुत सुभीता हो। वैज्ञानिकों का यह नियम है कि जिस काम के लिए जो वस्तु मिल सके वह चाहे कितनी ही अपूर्ण क्यों न हो उसी से काम लेना चाहिए, जब तक कोई ठिकाने की चीज़ उससे अच्छी न मिले। ये लोग गप्पों से कभी काम नहीं लेते। रेल का टिकट लेने में कितनी ही धकधकम-धुकधकी हो, खड़ाऊँ पर उड़ने का, या पिनिक की समाधि में ध्यान से चाहे जहाँ चले जाने का, यत्न ये लोग नहीं करते। यहाँ केवल राह दिखला दी गई है कि ऐसी ऐसी बातों के मूल पर पृथ्वी की अवस्था का अनुमान हो सकता है। इसी रीति से लोग अन्वेषण कर रहे हैं और अन्वेषण करना ही चाहिए। बिना मूल के जैसा जी में आवे वैसा निश्चय कर देना और लोगों को वैसाही उँटवा पकड़ पकड़ा देना विज्ञान का काम नहीं है। राह दिखलाने वाले का यही काम है कि छोटे बड़े शहरों की टूटी फूटी राह, जैसी वस्तुतः, वर्त्तमान हो, दिखला दे। शुद्ध सोने के शहरों में पहुँचने के लिए शुद्ध हीरे कुटी हुई सड़कें बतलाना उन लोगों का काम है जिनके यहाँ चिन्तामणि, कल्प-वृक्ष आदि अधिकता से हुआ करते हैं।

(असमाप्त)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धातुओं का इतिहास।

[लेखक बाबू जगन्मोहन वर्म्मा]

(२)

गम्=गति

किसी भारी वस्तु के ऊपर से गिरने में 'गम्'-'धम्' आदि शब्द होते हैं। इसी के अनुकरण पर संस्कृत में 'गम्' धातु बना है। इसी गम् धातु से गमन आदि शब्द निकले हैं। गति करने ही से गाय को 'गो' कहते हैं। गोला भी लुढ़काने से लुढ़कता है। इसी लिए गोले को भी संस्कृत-भाषा में 'गो' कहते हैं। समस्त गति का आधार पृथिवी को भी प्राचीनों ने 'गो' कहा है। 'गो' शब्द की व्युत्पत्ति करते समय यास्काचार्य्यजी निरुक्त में कहते हैं:—'यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति'। गति ही की प्रधानता से वेदों में सूर्य्य, रश्मि, बाण, इन्द्रियादि को 'गो' कहा गया है। गाय 'गौ गौ' शब्द करती है।। इसी से 'कै' और 'गै' दो धातुओं की सृष्टि हुई; और वे दोनों शब्द के अर्थ में लिये गये, जिनसे 'गान', 'गन्धर्व' आदि कितने शब्द निकले। 'गम्' का 'गाङ्' होकर गति के अर्थ में रहा। गम् से 'धम्ब गतौ' गत्यर्थक धातु निकला। इस प्रकार 'गम्'-'धम्' शब्द के अनुकरण पर संस्कृत-भाषा के कितने ही धातुओं की सृष्टि हुई।

गच्छ्=गति

कोई वस्तु यदि ऊँचे स्थान से नीचे को गिरे और नीचे की भूमि गीली या पङ्किल हो तो उसके गिरने से 'गच्च, गच्छ,' आदि शब्द होते हैं। इस शब्द का अनुकरण रूप 'गच्छ' धातु गति अर्थ में लिया गया। यह धातु वैदिक काल में नकारान्त धातु था। इसी से 'गच्छ' शब्द बना है, जिसका अर्थ वृक्ष है। इसी से प्रान्तिक भाषा का शब्द 'गाछ' बना है, जिसका प्रयोग बिहार और बङ्गाल में अब तक वृक्ष के अर्थ में होता है। जगत् शब्द भी गच्छ के अन्त-वर्ण के स्थान पर 'त' आदेश करने तथा आदि में 'ज' का आगम करने से बना है। इसी धातु के 'ग' के स्थान में 'ज' और 'च्छ' के स्थान में 'क्ष' आदेश करने से 'जक्ष' धातु गत्यर्थक बना, जो पीछे से भक्षण के अर्थ में इस कारण प्रयोग होने लगा कि खाने में भी मुख के अवयवों में गति होती है। पाणिनि आदि प्राचीन संस्कृत के वैय्याकरणों ने जब देखा कि संस्कृत में विद्वान् लेखक 'गम्' धातु के वर्तमानकालिक रूप 'गमेति' आदि का प्रयोग न करके 'गच्छति' आदि का प्रयोग करते हैं तब 'गम-यमांछ' सूत्र से 'गम्' के स्थान में 'गच्छ' कर डाला। पर पाली भाषा में गम और गच्छ दोनों पृथक् पृथक् धातु माने गये हैं और दोनों के सब रूपों का प्रयोग त्रिपिटक आदि ग्रन्थों में मिलता है।

दम्-धम्=आघात

किसी वस्तु से पृथिवी पर आघात पहुँचाने से धम्-धम्, दम्-दम् आदि शब्द होते हैं। इस शब्द के अनुकरण पर संस्कृत-भाषा के 'दम्' धातु की कल्पना की गई। पहले 'दम्' धातु का प्रयोग आघात पहुँचाने के अर्थ में होना प्रारम्भ हुआ। पीछे से जब यह देखा गया कि जिस प्राणी पर आघात पहुँचाया जाता है वह शिथिल होकर वशीभूत हो जाता है तब इसका प्रयोग वशीभूत करने के अर्थ में होने लगा। यह भी देखा गया कि विशेष आघात पहुँचने से पदार्थों के अङ्ग भङ्ग हो जाते हैं और वे टूट फूट जाते हैं; तब यह अर्थ भी इसके साथ जोड़ दिया गया। इसका उदाहरण 'दन्त' शब्द है। दाँतों को दन्त इसी लिए कहने लगे कि दाँतों से ही अन्न या खाई हुई वस्तु कुचल कर खाने योग्य होती है। इसी 'दम्' धातु का तदाकार शब्द 'दम' है, जिसका प्रयोग दण्ड के अर्थ में होता है। दाँतों से पदार्थों को काट भी लेते हैं। इस प्रकार बार बार देखने से लोगों ने इसी 'दम्' के 'म्' के स्थान में 'श' आदेश कर 'दश्' धातु काटने के अर्थ में लिया। इसी 'दश्' धातु से बने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए 'दंश', 'दंष्ट्र', आदि कितने ही शब्द अब तक संस्कृत-भाषा में मिलते हैं। जब 'दश्' या 'दंश्' धातु काटने के अर्थ में प्रयोग होने लगा तब बहुत पीछे 'श्' का लोप हो गया और 'द' के स्वर को दीर्घत्व होकर 'दा' धातु काटने के अर्थ में प्रयोग होने लगा। फिर 'अ' का 'ओ' होकर 'दो' धातु खण्डन करने के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा, जिससे 'द्वि' शब्द बना। पदार्थों को काटने से उनके दो टुकड़े हो जाते हैं। इसी से 'द्वि' शब्द दो के अर्थ में प्रयोग होने लगा। पहले लोगों के पास इतनी समाग्रियाँ न थीं कि कोई पदार्थ वे समूचा का समूचा किसी अपने इष्ट मित्र आदि को दे सकें। उनके घर न था; वे खेती न करते थे और न अन्न ही संग्रह करते थे। केवल फल आदि खाते थे। और यदि कोई इष्टमित्र आ जाय तो उसे उसी में से काट कर प्रेमपूर्वक देते थे। इसी आशय को लेकर 'दा' या 'दो' खण्ड-नार्थक धातुओं से 'दा' धातु का दान के अर्थ में ग्रहण होने लगा।

इस प्रकार 'दम्' से अनेक शब्दों और धातुओं की सृष्टि हुई। पहले 'दम' शब्द का प्रयोग आघात पहुँचाने के अर्थ में होता था। उसी का अनुकरण 'धम्' धातु भी धौंकने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। पूर्व काल में 'दम्' और 'धम्' धातुओं के अर्थों में उतना अन्तर न था जितना अब है। स्वयं वेदों में 'धम्' धातु का प्रयोग आघात पहुँचाने के अर्थ में कई स्थलों में मिलता है। "स बहुभ्यां धमति सं पतत्रं" आदि कितने ही उदाहरण हैं। अग्नि पर मुख द्वारा वायु का आघात पहुँचाया जाता है। इसी लिए 'धम्' धातु फूँकने के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। गीता में 'शङ्खं दध्मौ' पद है। वहाँ 'धम्' या 'ध्मा' धातु साधारण फूँकने या मुख की वायु से आघात पहुँचाने के अर्थ में लिया गया है। पीछे यह भी देखा गया कि अग्नि या अन्य पदार्थ, जिस पर मुँह की वायु आदि से आघात पहुँचाया जाता है, काँपने लगते हैं। इस अर्थ को लेकर 'धम्' या 'ध्मा' से 'धू', 'धु' आदि धातु 'कम्पन' अर्थ में लिये गये। आग से धुआँ जब निकलता है तब काँपता हुआ निकलता है। इसी से उसे 'धूम' कहते हैं। अथवा फूँकने या वायु के आघात पहुँचाने से आग सुलगती है; तब धुआँ होता है; इसलिए उसे धूम कहने लगे हैं। आघात यदि किसी प्राणी पर पहुँचे तो उसे चोट भी लगती है। इस भाव को लेकर 'धुर्व' धातु हिंसा के अर्थ में लिया गया। हिन्दी-भाषा की 'धुरना' या 'थुरना' क्रिया इसी से निकली है। अग्नि को फूँकने से गरमी और प्रकाश उत्पन्न होता है। इस भाव को लेकर 'धूप' धातु का ग्रहण दीप्ति और ताप के अर्थ में किया गया। इसी धातु से हमारी हिन्दी-भाषा की क्रिया 'धूपना' निकली है, जिसका अर्थ दुःख उठाना है। लोग कहते भी हैं—'बहुत दौड़े धूपे तब उसका पता लगा'। घाम के अर्थ में 'धूप' इसी धातु से बना है, जिसका प्रयोग यद्यपि संस्कृत-ग्रन्थों में नहीं मिलता, पर लोक में अब तक होता है। जब किसी पर आघात पहुँचाया जाता है तब वह उस आघात को रोकता है, या उस वस्तु को, जिससे आघात पहुँचाया जाय, पकड़ने की चेष्टा करता है, अथवा पकड़ ही लेता है। इस भाव को लेकर, इसी अनुकरण से, 'धा' 'धर' (धृ) आदि धातु धारण करने के अर्थ में प्रयुक्त होने लगे। फिर इनसे सहस्रों शब्द निकले। इस प्रकार साधारण आघात के—दम्, धम् अनुकरण पर हमारी संस्कृत-भाषा के अनेक धातुओं की सृष्टि हुई।

वच=शब्द

गीली भूमि पर या कीचड़ में ऊपर से किसी वस्तु के गिरने से 'पच', 'फच' या 'वच' शब्द होता है और गिरने के आघात से कीचड़ इधर उधर फैल जाता है। इन अनुकरण शब्दों को लेकर प्राचीनों ने अनेक धातुओं की सृष्टि की। पहले 'वच' धातु की कल्पना केवल शब्द करने के अर्थ में की गई। उसी से हमारी प्राचीन भाषा के शब्द 'वचन', 'वाक्', 'वक्त्र' आदि लिये गये। फिर यह विचार कर कि गति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से ही यह शब्द हुआ है 'वज' 'विज', 'व्रज' आदि अनुकरणों का प्रयोग गति के अर्थ में होना प्रारम्भ हुआ। इन धातुओं से हमारे वज्र, विग्र, व्रज आदि कितने ही शब्द बने हैं। फिर उन लोगों का ध्यान कीचड़ के फैलाव की ओर गया और 'वच' के ही अनुकरणरूप 'पच' धातु को विस्तार के अर्थ में लिया, जिससे 'पङ्क' 'पक्ष' आदि शब्द बने हैं। विस्तार किये जाने या फैलने ही से 'पक्ष' अर्थात् पंख या डैने को पक्ष कहते हैं। पक्ष फैला कर ही पक्षी उड़ते हैं। पक्षियों के दो पक्ष होते हैं, एक एक ओर दूसरा दूसरी ओर। इसी अर्थ को लेकर 'पक्ष' पीछे से 'ओर' के अर्थ में लिया गया। तदाकार होने से कन्धों को भी 'पक्ष' कहने लगे, और महीने के दो भाग होने से लोगों ने 'पखवारे' को भी 'पक्ष' कहना प्रारम्भ किया। बाण में पक्षियों के पर लगते हैं। इस लिए बाण को भी पक्षी कहते हैं। इसी धातु से 'पञ्च' शब्द बना है, जिसका अर्थ पहले विस्तार था, पीछे वह पाँच की संख्या में रूढ़ माना गया। हाथों की उँगलियों को फैलाने से पाँचों उँगलियाँ पृथक् पृथक् दिखाई पड़ती हैं। इसी भाव को लेकर 'पञ्च' शब्द पाँच की संख्या का बोधक माना गया। पूर्व-काल में भोजन पात्रों में नहीं पकाते थे; किन्तु आग पर फैला फैला कर भून लेते थे। इस भाव को लिये हुए 'पच्' धातु का प्रयोग पकाने के अर्थ में होने लगा। पकने पर वस्तुओं का पानी सूख जाता है और वे खाने योग्य हो जाती हैं। इस अर्थ को लेकर पूर्वजों ने 'पच' धातु में यह अर्थ और भी जोड़ लिया और डाल के पके हुए फल को भी वे 'पक्व' कहने लगे। अथवा यह विचार कर पेड़ों के फलों के लिए इस धातु का प्रयोग हुआ कि वे पक जाने पर गिर पड़ते हैं। पीछे से कच्चे फलों को भूनने के लिए भी 'पच्' धातु का प्रयोग आरम्भ हुआ। भूनने से चीज़ें जल भी जाती हैं। अतः जलने या जलाने के अर्थ में भी 'पच' धातु का प्रयोग होने लगा और 'इष्टिकां पचति' आदि प्रयोग होने लगे। अन्न खाने पर जीर्ण हो जाता है; और, वस्तुओं की अवस्था भी पकने पर बदल जाती है। इस आशय को लेकर खाना हज़म होने के अर्थ में भी 'पच्' धातु के प्रयोग का प्रारम्भ हुआ और पचाने की शक्ति को 'पाचन' शक्ति कहने लगे। पकने पर पदार्थ शुद्ध हो जाता है। इस भाव को लेकर 'पाचक' शब्द से 'पावक' शब्द, 'च' के स्थान में 'व' आदेश करके बना। 'पच्' से 'पाव' (पू) धातु पवित्र करने के अर्थ में लिया गया; और, वायु सुखाता है, इससे उसको 'पवन' कहने लगे। 'पच्' धातु का तदाकार ही 'पज्' धातु गति के अर्थ में लिया गया। (पू) धातु पवित्र करने के अर्थ में लिया गया। पीछे से यह देख कर कि पङ्क अर्थात् कीचड़, जो किसी वस्तु के गिरने से इधर उधर फैलता है, कुछ देर में सूख जाता है, 'पच्' धातु का अर्थ काठिन्य हो गया। पज्र शब्द, जो वज्र से बिलकुल मिलता जुलता है, कठिन के अर्थ में वेदों में मिलता है। इसी धातु के आदिम विस्तार के अर्थ को लेकर संस्कृत-भाषा का 'पञ्जर' शब्द बना है, जिसका अर्थ पसली है। इसी शब्द से हमारा 'पाँजर' शब्द बना है। पीछे से पञ्जर ठटरी के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। इसी शब्द के अनुकरण पर संस्कृत का 'पिस्' धातु 'च' के स्थान में 'स' करने से विस्तार और गति के अर्थ में लिया गया। फिर यह देख कर कि भारी वस्तु गिरने पर नीचे की नरम वस्तु चूर चूर हो जाती है 'पिष्' धातु 'चूर्ण' करने के अर्थ में लिया गया और 'पिष्ट' आदि शब्द उससे निकले। इसी अर्थ को लिये हुए 'पिश्' धातु, पीछे से, काटने आदि के अर्थ में लिया गया। उन लोगों ने यह भी देखा कि जो वस्तु गीली मिट्टी अथवा कीचड़ में गिरती है वह वहाँ घुस जाती है। इस भाव को लेकर उन्होंने 'पिश्' के 'प' के स्थान में 'व' करके 'विश्' धातु प्रवेश आदि अर्थों में लिया। इसी विश से 'विष्' धातु, गति अर्थ में, वस्तु की गति के भाव को लेकर, निकाला गया। इसी 'विष्' के 'श' को 'ध'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके 'विध्' धातु बेधने के अर्थ में लिया गया। 'विश्' धातु की 'इ' को 'अ' से बदल कर 'वस्' धातु का प्रयोग बसने, ठहरने आदि अर्थों में होने लगा, जिससे वसु, वस्तु आदि कितने ही शब्द निकले। पीछे यह भी देखा गया कि जो जहाँ बहुत दिनों तक रहता है उसे उससे प्रेम हो जाता है। इस भाव को लेकर 'वस्' धातु का प्रयोग प्रीति के अर्थ में होना प्रारम्भ हुआ। लोग जिससे प्रीति रखते हैं उसी को अपने यहाँ या पास बैठाते, या धारण, ग्रहण आदि करते हैं। इस भाव से 'वस्' धातु धारण आदि अर्थों में प्रयुक्त होने लगा। यह सब होने पर भी 'वस्' धातु अपने विस्तार के अर्थ को लिये रहा। इसी लिए 'वस्त्र' 'वसा' 'विवस्वान्' आदि शब्द अपने विस्तार अर्थ को ग्रहण किये हुए हैं। वस्त्र फैलता है; वसा या चिकनाई किंवा चर्बी, गरमी पाकर फैलती है, सूर्य्य प्रकाश को फैलाता है। इसी से पूर्वजों ने 'वस्' धातु को, सूर्य्य के प्रकाश फैलने के भाव को लेकर, प्रकाश के अर्थ में लगाया। फिर इसी से वासर आदि कितने ही शब्द उन्होंने बनाये। इसी 'वस्' धातु से 'उष्' धातु ज्वलन अर्थ में लिया गया और उससे उषा, उष्ण आदि कितने ही शब्द बनाये गये। प्रकाश में ही कोई काम करने की इच्छा होती है। अतएव 'वश' धातु का प्रयोग 'इच्छा' आदि अर्थों में भी हुआ और इसीसे 'व' को 'इ' करके 'इष्' धातु इच्छार्थक निकला। इस प्रकार 'पच्' 'वच्' आदि के अनुकरण पर कितने ही धातुओं की कल्पना हुई।

भाषा-शिक्षा।

(२)

अन्यान्य भाषाशिक्षा-प्रणाली

अन्यान्य भाषाओं के सीखने के लिए भी मातृभाषा की शिक्षा-प्रणाली का ही अनुसरण करना होगा। उस भाषा को मातृभाषा की तरह ही समझ कर, सारे विषयों में, उसी शिक्षा-प्रणाली का ग्रहण करना होगा जो शिक्षा-प्रणाली अपनी मातृभाषा सीखने में व्यवहृत होती है। सब कोई लिखना पढ़ना सीखने से पहले अपनी मातृभाषा में ही बात कह कर अपना भाव प्रकट करते हैं। अन्यान्य भाषाओं के सीखते समय भी उसी प्रकार उसी भाषा में अपने मनोभिप्राय के प्रकाश करने की चेष्टा पहले करनी होगी।

जो भाषा सीखनी हो उसकी शब्द-शिक्षा को गौण-भाव से रख कर पहले उसी भाषा में बातचीत करना सीखना होगा। उस भाषा की वर्णमाला सीखने से पहले उसके वाक्यों को सुन सुनकर उनका उच्चारण सीखना होगा। और केवल बार बार उच्चारण के द्वारा शब्दों का अभ्यास हो जाने पर, उन्हीं शब्दों से उस भाषा में भाव प्रकाश करने की जो विशेष प्रणाली है, जिस ढंग से उस भाषा के बोलने वाले लोग वाक्य-रचना और पदयोजना करते हैं, ठीक उसी प्रणाली का अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त करके, उसकी सहायता से, अपने आप ही अपने प्रयोजन के लिए वाक्य-रचना की चेष्टा करनी होगी।

केवल किसी एक विषय की वाक्यरचना में ही उस प्रणाली का प्रयोग करके सन्तुष्ट न रह कर जगत् के प्रत्येक विषय में उसका व्यवहार करना होगा। पहले छोटे छोटे, असम्बद्ध और स्थूल भाव को प्रकाश करने में अभ्यास करते करते क्रमशः जटिल, सुसम्बद्ध और सूक्ष्मभाव प्रकाश करना सीखना होगा। इसी उपाय से धीरे धीरे भाषा के वाक्यों की रचना करके प्रबन्ध और साहित्य में अधिकार-प्राप्ति की चेष्टा करनी होगी।

इस प्रकार भाषा में प्रवेश हो जाने पर भाषा के नियम, इतिहास, और साहित्य के विषयों का परिचय प्राप्त करना उचित होगा।

भाषा साहित्य नहीं है

क्या मातृभाषा, क्या और भाषा—किसी की भाषा के सीखने वाले को यह बात सदा अच्छी तरह समझ रखनी चाहिए कि भाषा और साहित्य दोनों स्वतन्त्र पदार्थ हैं। भाषा और चीज़ है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य और। भाषा का सीखना और साहित्य का सीखना एक बात नहीं है। मन का भाव प्रकट करना ही भाषा का काम है। बस, जहाँ मन का भाव प्रकट कर पाया तहाँ भाषा का काम सिद्ध हो गया। यही भाव-प्रकाश जिस उपाय से बहुत अच्छी रीति से सम्पन्न हो सके वही उपाय सर्वोत्कृष्ट भाषा है। इसलिए भाषा सीखने वाले को उसी उपाय का ज्ञान प्राप्त करना होगा। जब मनुष्य सर्वोत्कृष्ट प्रणाली से अपना भाव-प्रकाश करने लगता है तभी समझना चाहिए कि उसने बड़ी उत्तम भाषा का प्रयोग किया। भाषा के ही उत्कर्ष-साधन से भाव का उत्कर्ष सिद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि निकृष्ट भाव-समूह भी, भद्दे भाव भी, उत्कृष्ट भाषा में प्रकाशित हो सकते हैं।

भावों का समुदाय ही साहित्य का उपादान है। उच्च अङ्ग के उत्कृष्ट भावों की शिक्षा प्राप्त कर लेने पर ही उच्च साहित्य की शिक्षा होती है। यही साहित्य भाषा के भीतर प्रविष्ट होकर विशद-रूप से प्रकाशित हो सकता है। और, उत्कृष्ट भाव होने से ही भाषा उत्कृष्ट नहीं हो सकती। बड़े सुन्दर भाव भी निकृष्ट भाषा में प्रकाशित किये जा सकते हैं।

तात्पर्य यह निकला कि भाव के क्रम-विकाश से साहित्य की पुष्टि होती है और भाव-प्रकाश के उपायों के क्रम-विकाश से भाषा का उत्कर्ष होता है। इस प्रकार भाषा और साहित्य की गति के दो अलग अलग मार्ग हैं। भाषा का दूसरा मार्ग है और साहित्य का दूसरा।

(२)

भाषाशिक्षा और साहित्यशिक्षा के स्वातन्त्र्य की रक्षा करनी होगी

भाषा सीखने के लिए वाक्य-रचना करते समय चिन्ताशक्ति के विकाशोपयोगी जो भाव-प्रकाश करने की शिक्षा मनुष्य प्राप्त करता है, उसी के द्वारा, उसी के साथ साथ साहित्य में भी प्रविष्ट हो जाता है। इस रीति से एक साथ ही भाषा और साहित्य की शिक्षा के बाद, जिस अवस्था में भाषा की व्युत्पत्ति पैदा होने की आशा की जाय, उसी अवस्था में, मुख्यरूप से, साहित्यशिक्षा के लिए स्वतन्त्र व्यवस्था करनी होगी। उस समय भाषा के नियम और इतिवृत्त की शिक्षा के लिए अलग प्रबन्ध करना होगा; और साथ ही साथ कोश के द्वारा शब्द-सम्पत्ति बढ़ाने की चेष्टा भी करनी ठीक होगी। इससे भाषा और साहित्य का स्वातन्त्र्य पहले से ही अनुभूत हो जाता है।

(३)

लिखने पढ़ने और हिज्जे सीखने से पहले भाषा का व्यवहार करना होगा

भाषा प्रधानतः वाचनिक एवं मौखिक है। ध्वनि ही भाषा का प्राण है। कान ही जताने वाले हैं। इसलिए भाषाशिक्षा में ध्वनि-प्रकाशक मौखिक बात-चीत का सहारा ही प्रधानतया ग्रहण करना होगा। लिखने पर भाषा बिलकुल नई हो जाती है। इससे भाषा की सार्थकता जाती रहती है। इसलिए शिक्षार्थी को भाषा लिखना आरम्भ करने पर मालूम होगा कि उसको बिलकुल एक नये विषय की शिक्षा आरम्भ करनी पड़ी है। यह माना कि दूसरे उपाय की अपेक्षा लिखने के द्वारा भाषा सीखने में यथेष्ट सहायता मिलती है, और यह भी ठीक है कि भाषा सीखने के साथ ही साथ लिखना सीखने की भी आवश्यकता है, परन्तु केवल भाषा सीखने के लिए लिखना सीखने की शुरू में कोई ज़रूरत नहीं। इस कारण लिखना सीखने से पहले ही ज़बानी भाषा की शिक्षा प्राप्त करनी होगी। इसीसे भाषा-शिक्षा के उद्देश की रक्षा होगी और यही प्रणाली जीवन्तरूप से कार्य करेगी।

भाषा-वैचित्र्य।

भाषा-पद्धति की विचित्रिता अर्थात् वाक्यों और पद-समूहों के मध्य में सम्बन्ध स्थापन का विभिन्न उपाय

मानव-समाज भिन्न भिन्न स्थान में जगत् के पदार्थों के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रणाली से मनोभाव प्रकट करते हैं। इसी कारण विभिन्न भाषा-पद्धति और वाक्य-रचना-प्रणाली की उत्पत्ति हुई है। यह माना कि सब जगह पदार्थ के साथ पदार्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का तुलनासाधन और संयोग-विधान करके पदार्थ का गुणनिर्णय और परिचय प्रदान किया जाता है और इसी लिए उद्देश के अनुकूल शब्दयोजना द्वारा शब्द के साथ शब्द का सम्बन्ध स्थिर करके वाक्य-रचना की जाती है; किन्तु सब जगह कोई एक ही उपाय से और एक ही नियम से पदार्थों के धर्म-प्रकाश के उपयोगी पदों का सम्बन्ध स्थापित नहीं करते। यदि किसी पदार्थ के विषय में कोई बात कहनी हो तो उस पदार्थ का और जो कहना हो उसका—इन दोनों का—संयोग-साधन भिन्न भिन्न समाज में भिन्न भिन्न प्रणाली से सम्पन्न होता है। भाषा के उपादान और लक्षण-स्वरूप वाक्यों के उक्त दोनों अंश (अर्थात् विषयवाचक और वक्तव्यवाचक) सब समाजों में एक ही रीति से संयुक्त नहीं होते।

तीन प्रकार की वाक्यरचना-प्रणाली

इस वाक्यरचना-प्रणाली के वैचित्र्य में तीन प्रकार की श्रेणियाँ पाई जाती हैं। इस कारण भाषा-पद्धति तीन प्रकार की है। वाक्य के अन्तर्गत विषय-वाचक और वक्तव्यवाचक शब्दों का सम्बन्ध तीन प्रकार की प्रणाली से सिद्ध हो सकता है।

(१)

उच्चारण-क्रम द्वारा पदों का सम्बन्ध स्थिर करना

१—एक प्रकार की पद्धति है, जिससे वक्तव्य-ज्ञापन करने के लिए जिस जिस शब्द-व्यवहार का प्रयोजन हो उसकी आकृति में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं करना पड़ता; शब्दों में किसी प्रकार का वैचित्र्य नहीं घटाना होता। शब्द केवल किसी निर्दिष्ट क्रम के अनुसार उच्चारित होकर वाक्यों की सृष्टि करते हैं। पर तो भी भिन्न भिन्न अर्थ जताने के उद्देश से शब्द, भिन्न भिन्न स्थान में, प्रयुक्त किये जाते हैं। इस प्रकार वाक्य में कभी एक विशेष अर्थ के प्रकट करने के लिए व्यवहार किया गया कोई एक शब्द क्रमभङ्ग होकर स्थानान्तर में चला जाय तो वह बिलकुल एक नये भाव-प्रकाश का और नई वाक्यसृष्टि का कारण हो जाता है। इसलिए भाषा-पद्धति के सन्निवेश-स्थान द्वारा ही शब्द का अर्थ प्रकाशित होता है। शब्दों के उच्चारण करने का क्रम ही वाक्य में उनका परस्पर सम्बन्ध निर्णय कर देता है।

(२)

रूप-परिवर्त्तन के द्वारा शब्दों का सम्बन्ध स्थिर करना

२—कुछ भाषापद्धतियाँ ऐसी हैं जिनसे विषय-वाचक और वक्तव्य-वाचक शब्दों में भिन्न प्रकार का सम्बन्ध स्थिर करके भिन्न प्रकार का अर्थ प्रकाशित करने के लिए शब्दों का रूप-परिवर्तन करना पड़ता है। जो लोग इस प्रणाली का अवलम्ब लेकर वाक्यों का व्यवहार करते हैं उनको किसी निर्दिष्ट शब्द को किसी निर्दिष्ट स्थान में सन्निविष्ट नहीं करना पड़ता। क्योंकि प्रत्येक पद के अङ्ग में, उसके साथ अन्य शब्दों का सम्बन्ध-प्रकाशक चिह्न लगा रहता है। इस कारण वाक्य में शब्द चाहे जिस स्थान में प्रयुक्त क्यों न हों और चाहे जिस क्रम से उच्चारित क्यों न हो, तो भी उनके अर्थ में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं आती। आकृति का परिवर्तन करने वाली जो चिह्नस्वरूप सारी विभक्तियाँ शब्दों के अङ्गों में लगी रहती हैं वे सब विभक्तियाँ, वे सब चिह्न, शब्दों के बीच में परस्पर सम्बन्ध स्थिर करके भाव-प्रकाश में बड़ी सहायता देते हैं।

(३)

संयोजन द्वारा शब्दों का सम्बन्ध स्थिर करना

३—एक प्रकार की और भाषा होती है जिससे भाव-प्रकाश करने पर, सब स्वतन्त्र प्रणाली से ही वाक्यरचना करनी पड़ती है। इसमें शब्दों का रूप-परिवर्तन नहीं करना पड़ता और अपरिवर्तित शब्दों के सन्निवेशस्थान द्वारा भी उनका भाव प्रकाशित नहीं होता। शब्दों में सम्बन्ध स्थापन करके अर्थ-प्रकाश करने के लिए कुछेक संयोजनाओं का आश्रय ग्रहण करना होता है। इन्हीं संयोजनाओं के द्वारा पद शृङ्खलीकृत होकर वाक्यों की सृष्टि करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत-भाषा का विशेषत्व

संस्कृत-भाषा विभक्ति-मूलक है

पहले वाक्यरचना-प्रणाली के तीन भेदों का वर्णन किया जा चुका है। संस्कृत-भाषा उन तीनों श्रेणियों में से दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत है। इसमें विभक्तियों के योग द्वारा शब्दों का रूप बदल कर पदसमूहों में सम्बन्ध स्थापन करना होता है। एक ही शब्द के भिन्न भिन्न रूपों की सहायता से भिन्न भिन्न वाक्यों की सृष्टि होती है। बिना रूप बदले किसी शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता और बिना विभक्ति लगाये और किसी उपाय से पदयोजना नहीं की जा सकती।

(१)

विषयवाचक शब्द

पहले विषयवाचक शब्दों को लेकर देखना चाहिए। ये दो श्रेणियों के अन्तर्गत हैं—कुछ विशेष्य हैं और कुछ सर्वनाम।

शब्दों का लिङ्ग

प्रत्येक शब्द का अपना कोई लिङ्ग होता है। संस्कृत-भाषा में प्रकृति-गत लिङ्ग के साथ शब्द के लिङ्ग का कोई सम्बन्ध नहीं। इस भाषा में व्याकरण के नियमों से एक नवीन रीति से लिङ्ग-भेद की सृष्टि हुई है। इसी कारण प्रत्येक विशेष्य और सर्वनाम शब्द में एक एक प्रकार का लिङ्ग विद्यमान है।

त्रिविध लिङ्ग

लिङ्ग तीन प्रकार का होता है। प्रत्येक लिङ्ग की रूप-प्रणाली भिन्न भिन्न प्रकार की होती है। इसलिए शब्दों के लिङ्गानुसार रूपभेद और विभक्ति-योग होता है।

विशेष्य शब्द

प्रत्येक विशेष्य शब्द दो भागों में विभक्त है। स्वरान्त और व्यञ्जनान्त। इन दोनों भागों की रूप-प्रणाली भिन्न भिन्न होती है। इसलिए केवल लिङ्ग-भेद से ही शब्दों के रूपों में परिवर्तन नहीं होता, किन्तु शब्दों के स्वरान्त या व्यञ्जनान्त होने के कारण भी रूपों में अन्तर हो जाता है।

(क)—तीन प्रकार के लिङ्ग और दो प्रकार के अन्त्य वर्ण, इस प्रकार सब मिलाकर विशेष्य शब्द की छः श्रेणियाँ हैं

तात्पर्य यह निकला कि लिङ्ग और अन्त्य वर्ण ही विशेष्य शब्द की रूप-परिवर्तन-प्रणाली निर्दिष्ट करके प्रत्येक शब्द का स्वातन्त्र्य-विधान करते हैं। लिङ्ग और अन्त्य वर्ण के बिना देखे शब्द का विशेष अस्तित्व और स्वातन्त्र्य निर्धारित नहीं किया जा सकता। इस कारण समस्त विशेष्य शब्द लिङ्ग और अन्त्य वर्ण के भेद से छः प्रकार की श्रेणियों के अन्तर्गत हैं। जैसे:—

पुँल्लिङ्ग	स्वरान्त
	व्यञ्जनान्त
स्त्रीलिङ्ग	स्वरान्त
	व्यञ्जनान्त
नपुंसक लिङ्ग	स्वरान्त
	व्यञ्जनान्त

इनकी प्रत्येक श्रेणी में रूप-परिवर्तन की प्रणाली भिन्न भिन्न प्रकार की होती है।

(ख)—प्रत्येक श्रेणी के विशेष्य शब्द के रचनानुसार तीन प्रकार के रूप होते हैं

इन छः प्रकार के विषय-वाचक विशेष्य शब्दों में भी प्रत्येक की संख्या के अनुसार और तीन प्रकार के रूप होते हैं। एक पदार्थ के सम्बन्ध में वक्तव्य-ज्ञापन करने के लिए वाक्यरचना करने पर शब्द के साथ जिस विभक्ति का योग करते हैं, दो पदार्थों के सम्बन्ध में कुछ कहना हो तो उस पदार्थवाचक शब्द के साथ उसी प्रकार की विभक्ति नहीं लगाई जायगी। इसी प्रकार उस शब्द की बहुत संख्याओं के विषय में वाक्यरचना करनी हो तो उसमें और ही प्रकार की विभक्ति लगानी होती है। मतलब यह है कि विषयवाचक शब्द संख्या-नुसार भिन्न भिन्न तीन प्रकार के चिह्न धारण करता है। संस्कृत-भाषा के वैयाकरणों ने इस संख्या-भेद की रूप-प्रणाली का नाम 'वचन' रख छोड़ा है। इसके सिवा, किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तु या व्यक्ति को सम्बोधन करके पुकारने पर संख्यानुसार शब्द की आकृति में तीन प्रकार के परिवर्तन करने पड़ते हैं।

(असमाप्त)

अनुवादक—पण्डित रामजीलाल शर्म्मा।

महाकवि क्षेमेन्द्र और अवदान-कल्पलता।

प्रतिष्ठा पाने के लिए बड़े भाग्य की आवश्यकता है। योग्यता होने पर भी बहुत लोगों को प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त होती। क्षेमेन्द्र निस्सन्देह महाकवि थे। उनकी रचनाशक्ति अत्यन्त प्रखर थी। उनके शब्दों में माधुर्य, अर्थों में गाम्भीर्य और उपमाओं में वैलक्षण्य भरा हुआ है। जब हम उनके बनाये ग्रन्थों पर ध्यान देते हैं तब उनको "महा-कवि" या "कवि-शिरोमणि" कहने में ज़रा भी सङ्कोच नहीं होता। अनुमानतः इस महा-कवि ने, सब मिला कर, पचास हज़ार श्लोक बनाये होंगे। अवदान-कल्पलता के १०८ पल्लव हैं। प्रत्येक पल्लव में कोई २०० श्लोक हैं। इस हिसाब से केवल इसी एक ग्रन्थ में बीस हज़ार श्लोक हो जाते हैं। और भी अनेक ग्रन्थ क्षेमेन्द्र के बनाये हुए हैं, जिन-की श्लोक-संख्या तीस हज़ार से कम न होगी।

अष्टादश पुराण वेदव्यास के बनाये माने जाते हैं। उनमें चार लाख श्लोक * हैं। आदिकवि महर्षि वाल्मीकि-रचित आदि-काव्य रामायण में चौबीस हज़ार श्लोक हैं। कवि-कुल-गुरु कालिदास के बनाये ग्रन्थों में सब मिला कर लग भग पचासही हज़ार श्लोक होंगे।

कवियों में कालिदास की प्रधानता सर्व-सम्मत है। मेरे विचार में कालिदास के बाद क्षेमेन्द्र ही का स्थान होना उचित है। दूसरे विद्वान् यदि इस बात को स्वीकार न करें तो भी क्षेमेन्द्र को महाकवि कहने में, आशा है, वे सङ्कोच न करेंगे।

जान पड़ता है कि क्षेमेन्द्र में रचनाशक्ति स्वाभाविक थी। पद-योजना में उनको कुछ भी परिश्रम न पड़ता था। उनकी लेखनी गङ्गा-प्रवाह के समान विच्छेद-रहित और प्रतिघात-शून्य चलती थी। उनके ग्रन्थों में जितने शब्द और पद हैं वे सभी प्रायः सरल, सुगम, सुबोध, सरस और मनोहर हैं। इनकी रचना में लम्बे लम्बे समास नहीं हैं। बलात्कार से घसीटे हुए अव्यवहृत, अप्रसिद्ध और क्लिष्ट शब्द भी नहीं हैं। इनकी रचना निस्सन्देह बहुगुण-सम्पन्न है।

क्षेमेन्द्र १०२८ ईसवी में वर्त्तमान थे। कल्हण-कृत राजतरङ्गिणी में काश्मीर के एक राजा का नाम अनन्त लिखा है। वह राजा इसी सन् में अपने राज्या-सन पर बैठा था। क्षेमेन्द्र उसी के आश्रित कवि थे। अनन्तदेव के बाद उसका पुत्र कलशदेव, १०६३ ईसवी में, कश्मीर का राजा हुआ। उसके राज्यकाल में भी क्षेमेन्द्र वर्त्तमान थे। कश्मीर के राजा जया-पीड़ के मन्त्री का नाम नरेन्द्र था। नरेन्द्र के पुत्र भोगीन्द्र, भोगीन्द्र के सिन्धु, सिन्धु के प्रकाशेन्द्र और प्रकाशेन्द्र के पुत्र क्षेमेन्द्र थे। क्षेमेन्द्र के पुत्र सोमेन्द्र ने अवदान-कल्पलता के एक सौ आठवें, अर्थात् अन्तिम, पल्लव में अपने वंश का परिचय देने के लिए निम्न-लिखित श्लोक लिखे हैं, जिनसे कवि के विषय में बहुत सी बातों का पता लग जाता है:—

नरेन्द्रनाम्नः सुमतेः श्रीजयापीडमन्त्रिणः।
वंशे बभूव भोगीन्द्रो भोगीन्द्र इव भोगवान् ॥१॥
तस्य सत्वनिधेः श्रीमान् गुणरत्नगणाश्रयः।
सूनुर्वाणीसुधासूतिः सिन्धुः सिन्धुरिवाभवत् ॥२॥
तस्य पुत्रः प्रकाशेन्द्रः प्रकाशेन्द्रनिभो भुवि।
बभूव दानपुण्येन बोधिसत्वगुणोचितः ॥३॥

---

*३२ अक्षरों का एक श्लोक माना जाता है। इसी हिसाब से ग्रन्थों के श्लोकों की गिनती की जाती है। लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षेमेन्द्रस्तनयस्तस्य कवीन्द्रः कीर्तिचन्द्रिका।
चन्द्रस्येवोदिता यस्य मानसोल्लासिनी सताम् ॥४॥

क्षेमेन्द्र ने स्वयं ही कई जगह लिखा है कि वे अनन्तदेव के समय में थे। समयमातृका नामक अपने एक काव्य के अन्त में वे लिखते हैं :—

तस्यानन्तमहीपतेर्विरजसः प्राज्याधिराज्योदये
क्षेमेन्द्रेण सुभाषितं कृतमिदं सत्पक्षरक्षाक्षमम्।

किसी किसी का ख़याल है कि क्षेमेन्द्र बौद्ध थे। यह भ्रम जान पड़ता है। दशावतार-चरित नामक काव्य के अन्त में क्षेमेन्द्र ने ख़ुद ही लिखा है।

स्तुतिसङ्कीर्त्तनाद्विष्णोर्विपुलं यन्मयार्जितम्।
तेनास्तु सर्वलोकानां कल्याणकुशलोदयः ॥

इसी के आगे क्षेमेन्द्र ने लिखा है :—

एकाधिकेऽब्दे विहितश्चत्वारिंशे सकार्त्तिके।
राज्ये कलशभूभर्त्तुः काश्मीरेष्वच्युतस्तवः ॥

इससे यह भी सिद्ध हुआ कि कश्मीर के लौकिक संवत् ४१, अर्थात् १८६६ ईसवी, में कलशदेव नरेश के समय में उन्होंने दशावतार-चरित बनाया। उस समय वे वृद्ध हो गये थे और एकान्तवास करते थे। तभी उन्होंने दशावतार-चरित के वाक्-पुष्पों से विष्णु की पूजा की थी। दशावतार-चरित के विषय में आप लिखते हैं :—

इत्येष विष्णोरवतारसूर्तेः कथामृतास्वादविशेषभक्त्या।
श्रीव्यासदासान्यतमाभिधेन क्षेमेन्द्रनाम्ना विहितः स्तवाख्यः ॥

बौद्ध की "विशेष भक्ति" विष्णु में नहीं हो सकती। सम्भव है, क्षेमेन्द्र किसी समय बौद्ध हो गये हों। पर जिस समय उन्होंने दशावतार-चरित लिखा है उस समय तो बहुत करके वे विष्णु-भक्त ही थे। पूर्वोद्धृत श्लोक से यह भी सूचित हुआ कि क्षेमेन्द्र का दूसरा नाम व्यासदास था।

क्षेमेन्द्र ने स्वयं भी दशावतार-चरित में अपना वंश-वर्णन लिखा है। देखिए :—

काश्मीरेषु बभूव सिन्धुरधिकः सिन्धोश्च निम्नाशयः
प्राप्तस्तस्य गुणप्रकर्षयशसा पुत्रः प्रकाशेन्द्रताम्।
विप्रेन्द्रप्रतिपादितान्नधनभूगोसंघकृष्णाजिनैः
ख्यातातिशयस्य तस्य तनयः क्षेमेन्द्रनामाभवत् ॥

क्षेमेन्द्र के बनाये हुए ग्रन्थों में सबसे बड़ा ग्रन्थ अवदान-कल्पलता है। इसके १०७ पल्लव तो क्षेमेन्द्र के बनाये हुए हैं; आठवाँ (अन्तिम) पल्लव क्षेमेन्द्र के पुत्र सोमेन्द्र का बनाया है। सोमेन्द्र ने लिखा है :—

अस्मत्पित्राऽवदानानां कृते सप्तोत्तरे शते।
सोमेन्द्रेण मयाप्येक कृतं मङ्गलपूरणम् ॥

सोमेन्द्र ने, अपनी भूमिका में, ग्रन्थ-निर्माण का समय इस प्रकार लिखा है:—

संवत्सरे सप्तविंशे वैशाखस्य सितोदये।
कृतेयं कल्पलतिका जिनजन्ममहोत्सवे ॥ १ ॥
कीर्तिस्तारा भृकुटिरुदिता पापशत्रुप्रमाथे।
दिक्षुत्साहः किमपि सुगतो लोकनाथस्य यस्य ॥
तस्मिन् क्षोणीपतिपरिवृढे शासति क्ष्मामनन्ते।
सन्तोषाय प्रशमसुखिनां निर्मितोयं प्रबन्धः ॥ २ ॥

* इस से सिद्ध होता है कि जब राजा अनन्त सत्ताईस वर्ष राज्य कर चुके तब वैशाख के शुक्ल पक्ष में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ।

अवदान-कल्पलता की रचना के विषय में ऐसी कथा प्रसिद्ध है कि तथागत ने "नक्र" नामक ब्राह्मण को दूत बना कर क्षेमेन्द्र के पास भेजा और यह सँदेसा कहला भेजा कि आप कृपा करके तथागत-कथा लिखिए। इस बात को स्वीकार करके क्षेमेन्द्र ने केवल तीन पल्लव बनाकर छोड़ दिया। इस रचना में कवि ने और लोगों से भी कुछ कुछ सहायता ली। फिर, कुछ दिनों बाद, स्वप्न में जिन ने और पल्लवों के बनाने की आज्ञा दी। इसी आज्ञा के अनुसार कवि ने उक्त ग्रन्थ के और पल्लव भी बनाये। अन्त में सब मिल कर १०७ पल्लव हो गये। ये बातें निम्न लिखित श्लोकों से भलीभाँति प्रकट होती हैं।

---

* काश्मीर में पुरानी चाल यह थी कि जब कोई राजा सिंहासन पर बैठे तभी से अपना संवत् चलावे। उसके बाद फिर जब दूसरा राजा हो तब वह फिर नया संवत् प्रारम्भ करे। इस कारण वहाँ का संवत् ५० या ६० वर्ष से अधिक दिनों तक नहीं चलता था।

लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्य रामयशाः सर्व-प्रबन्धप्रेरको द्विजः ।
प्रयातः सज्जनानन्दः पुण्यः प्रथमदूततास् ॥ १ ॥
तं कदाचित् सुखासीनं सुहृद् गुणवतां वरः ।
सौगतः ख्यातसुकृतो नक्कनामा समभ्यधात् ॥ २ ॥
एकमार्गानुसारिण्यः परं गाम्भीर्यकर्कशाः ।
विस्तीर्णवर्णनाः सन्ति जिनजातकमालिकाः ॥ ३ ॥
अवदानक्रमेणैव त्वन्तु संक्षेपविस्तरैः ।
रम्यैस्तथागतकथाः कोमलाः कर्त्तुमर्हसि ॥ ४ ॥
इत्युक्तस्तेन विनयात् तां कथां कर्त्तुमुद्यतः ।
अवदानत्रयं कृत्वा विरराम तिदैर्घ्यतः ॥ ५ ॥
ततः स्वप्ने भगवता जिनेन प्रेरितः स्वयम् ।
सोऽग्रहीत् पुनरुद्योगं अवदानार्थसंग्रहे ॥ ६ ॥

जान पड़ता है, पूर्वोक्त कथा के द्योतक इन श्लोकों के कारण ही कुछ लोग क्षेमेन्द्र को बौद्ध समझते हैं। पर इनमें क्षेमेन्द्र के बौद्ध होने की कोई बात नहीं है।

अवदान-कल्पलता के श्लोकों के भाव, अर्थ, पद, शब्द तथा उपमायें कहीं कहीं कालिदास, बाण आदि महाकवियों के भावादि से मिल जाती हैं। यह बात जान बूझ कर की गई है अथवा संयोग से हुई है—इस विषय में हम निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कह सकते। सम्भव है, यह बात दैव-संयोग ही से हुई हो। कारण यह कि ऐसे महाकवि दूसरे कवियों की वस्तु लेकर अपनी वस्तु बनाने का साहस कभी नहीं कर सकते। बहुधा अनेक महाकवियों की उक्तियाँ एकसी हो जाया करती हैं। यश को धवल, मुख को चन्द्रमा के समान, कामिनी को लता के समान, इत्यादि बातें सभी कवि अनादि काल से लिखते आये हैं। अस्तु। हम दो चार उदाहरण ऐसे देना उचित समझते हैं जहाँ इस कवि की उक्ति अन्य कवियों की उक्ति से मिल गई है:—

रघुवंश के—

उमावृषाङ्कौ शरजन्मना यथा यथा जयन्तेन शचीपुरन्दरौ ।
तथा नृपः सा च सुतेन मागधी ननन्दतुस्तत्सदृशेन तत्समौ ॥

सर्ग २, श्लो० २५

इस श्लोक का अवदान-कल्पलता के पल्लव २ के निम्नलिखित श्लोक—

पौलोमीव जयन्तेन जननी पूज्यजन्मना ।
बभौ तेन कुमारेण कुमारेणेव पार्वती ॥

से मिलान हो जाता है। इसी प्रकार रघुवंश के—

अथ नयनसमुत्थं ज्योतिरत्रेरिव द्यौः
सुरसरिदिव तेजो वह्निनिष्ठ्यूतमैशम् ।
नरपतिकुलभूत्यै गर्भमाधत्त राज्ञी
गुरुभिरविनिविष्टं लोकपालानुभावैः ॥

२ सर्ग, ७५ श्लो०

की एकता अवदान-कल्पलता के पल्लव ३, श्लोक १५

काले कल्याणनिलयं भर्तुः सा गर्भमादधे ।
भूत्यै भुवनपद्मस्य दिवाकरमिवादितिः ॥

से हो जाती है। इसी प्रकार रघुवंश, सर्ग ३ श्लो० १ और अवदान-कल्पलता, पल्लव ३ श्लोक ८५ भी आपस में मिलते हैं। बाणभट्ट-रचित कादम्बरी-कथा-मुख के वाक्य—"कलिकालभयपुञ्जीभूत कृतयुगानुकारिणी" (राजधानी) की अवदान-कल्पलता, पल्लव ३ श्लोक ६—

सदा सदाश्रयार्हेण कलिकालापहारिणा ।
कृतः कृतयुगेनेव येन धर्मपरो जनः ॥

से समानता हो जाती है। कादम्बरी के पूर्वोक्त-प्रकरण-लिखित—"दिग्गज इवानवरतप्रवृत्त दानार्द्रीकृतकरः" वाक्य की अवदान-कल्पलता के पल्लव ३ श्लो० ३४:—

तस्य भद्रगिरिर्नाम बभूव गजपुङ्गवः ।
प्रभोरिवानुकारेण दानार्द्रकरपुष्करः ॥

से एकता हो जाती है। इसी प्रकार और दूसरे कवियों की उक्तियों से भी क्षेमेन्द्र की उक्तियाँ कभी कभी मिल जाती हैं।

क्षेमेन्द्र की रचना कैसी मनोहारिणी होती है, इस बात को बताने के लिए हम यहाँ पर दो चार श्लोक देते हैं:—

नीतिः प्रभुगुणेनेव त्यागेन श्रीरिवोज्ज्वला ।
रराज राजचन्द्रेण सा शीलेनेव चारुता ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात्—जिस प्रकार स्वामी के गुण से नीति, दान से प्रकाशित लक्ष्मी, और शील से सुन्दरता शोभा पाती है उसी प्रकार उस राजा से उस रानी की शोभा हुई।

ततः कालेन सम्पूर्णं द्यौरिवामृतदीधितिम्।
असूत दारकं देवी जगत्तिमिरदारकम्॥

अर्थात्-जिस प्रकार पन्द्रह दिनों में पूरे जगत् का अन्धकार नाश करने वाले, तथा अमृत की वर्षा करने वाले चन्द्रमा को आकाश उत्पन्न करता है उसी प्रकार दस महीनों में पूरे प्रजा के दुःख दूर करनेवाले, अपनी बालक्रीड़ा से माता-पिता को अमृत के समान तृप्त करने वाले पुत्र को रानी ने उत्पन्न किया।

इमामुहूर्त्तनर्त्तक्यः कालमेघतडिल्लताः।
संसारसर्परसनाः विलासचपलाः श्रियः॥

ये सम्पत्तियाँ थोड़े समय की नर्त्तकियाँ हैं, (अर्थात् बहुत थोड़े दिनों तक रहने वाली हैं) संसाररूपी बादल की सौदामिनियाँ हैं, संसाररूपी साँप की जीभें हैं, और देखते ही देखते नष्ट हो जाने वाली हैं।

सर्वोपजीव्या करुणा न लक्ष्मीः धर्मः प्रकाशः सततं न दीपाः।
यशांसि रम्याणि न यौवनानि स्थिराणि पुण्यानि न जीवितानि॥

करुणा ही सब से अधिक रक्षा करने योग्य है, धन नहीं। धर्म ही प्रकाश करता है, दीप नहीं। यश ही सुन्दर लगता है यौवन नहीं। और पवित्र कर्म ही सदा रहने वाले हैं, प्राण नहीं।

बस इतने ही उदाहरणों से क्षेमेन्द्र की रचना-शक्ति, नीतिज्ञता, धार्मिकता और बहुज्ञता भली भाँति प्रकट हो जाती है। इन पद्यों से शब्द-विन्यास, यमक, अनुप्रास, भावगाम्भीर्य आदि गुणों का भी परिचय मिलता है।

क्षेमेन्द्र ने इस पुस्तक में पुराणों कीसी कथायें विशेषतः लिखी हैं। जैसे "सिर फाड़ कर मणि निकाल ली," "अपने शरीर का मांस राक्षस को खिला दिया," "मणि से सुवर्ण टपक पड़ा" इत्यादि। इस ग्रन्थ में जितनी कथायें हैं सभी "अहिंसा परमो धर्मः"—सिद्धान्त के अनुकूल हैं। उन सब कथाओं के लिखने के ढंग भी ठीक पुराणों ही के समान हैं।

क्षेमेन्द्र ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। नीति, उपदेश, कला, साहित्य आदि बहुत विषयों पर क्षेमेन्द्र के रचे ग्रन्थ मिलते हैं। इस से इस कवि की बहुज्ञता प्रकट होती है।

अब हम क्षेमेन्द्र के बनाये ग्रन्थों की सूची देते हैं। इन ग्रन्थों की समालोचना भी, यदि हो सका, तो करने का हमारा विचार है:—

१—अवदान-कल्पलता	८—औचित्य-विचार-चर्चा
२—बृहत्कथामञ्जरी	९—सुवृत्त-तिलक
३—भारतमञ्जरी	१०—सेव्य-सेवकोपदेश
४—रामायणमञ्जरी	११—चारु-चर्या
५—दशावतार-चरित	१२—कवि-कण्ठा-भरण
६—समयमातृका	१३—चतुर्वर्ग-संग्रह
७—कलाविलास	१४—दर्प-दलन

सम्भव है, इनके अतिरिक्त और ग्रन्थ भी क्षेमेन्द्र ने बनाये हों; किन्तु अब तक वे प्रकाशित नहीं हुए।

अक्षयवट मिश्र

बटेश्वर का मेला।

कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को प्रति वर्ष भारतवर्ष के भिन्न भिन्न स्थानों में गङ्गा, यमुना आदि पवित्र नदियों के तट पर मेले होते हैं। इसी समय युक्त-प्रान्त के ज़िला आगरा की तहसील बाह—राज्य भदावर—में बटेश्वर का मेला होता है। बटेश्वर एक ऊँचे स्थान पर, यमुना के तट पर, क़िले के पास (जो लाल पत्थर का अब भी टूटी फूटी हालत में बे-मरम्मत पड़ा है) तहसील बाह से पाँच मील, रेलवे स्टेशन जसवन्त-नगर से २६ मील, और शिकोहाबाद स्टेशन से बारह मील पर, बसा हुआ है। दोनों स्टेशन ई० आई० आर० पर हैं। शिकोहाबाद से आठ मील सड़क पक्की है;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाक़ी यमुना तक कच्ची और रेतीली है। यमुना पर मेले के दिनों में नावों या पीपों का पुल बाँध दिया जाता है। घाट के पास ही मेला होता है। दूसरा रास्ता जसवन्तनगर से बराबर कच्ची सड़क का है। व्यापारी विशेष कर शिकोहाबाद से ही आते जाते हैं। क्योंकि वहाँ पर सवारियाँ—किराये पर गाड़ियाँ, इक्के, शिकरम, बहली आदि बहुत मिलती हैं। इस मेले में युक्त-प्रान्त के अतिरिक्त पञ्जाब आदि के भी व्यापारी एकत्र होते हैं। हाथी, घोड़े, ऊँट, बैल, ख़च्चर, भैंसे, बकरी आदि जानवर; लकड़ी, लोहे, पत्थर, चमड़े इत्यादि के सामान; हर प्रकार के ऊनी, रेशमी, सूती कपड़े; सोने-चाँदी के ज़ेवर; गिलट, फूल और पीतल के सामान; पुस्तकें; खाद्य पदार्थ—सभी कुछ बिकने के लिए आता है। प्राचीन समय में यह मेला लक्खी मेले के नाम से विख्यात था। इसमें सब प्रकार की चीज़ें लाख के क़रीब एकत्र होती थीं। इसी लिए इसे लक्खी कहते थे।

यहाँ अब भी बहुत बड़ा हजूम होता है। नाटक, थियेटर, सभाओं और जलसों की धूम रहती है। यमुनाजी के तट पर संन्यासी, वैरागी, ब्रह्मचारी आदि भजन गाते और धूनी रमाये दिखाई देते हैं। दीप-मालिका के बाद से ही मेले का प्रबन्ध सरकार की तरफ़ से आरम्भ हो जाता है। मनुष्यों और पशुओं के इलाज के लिए शफ़ाख़ाने और चोर-उचक्कों और दङ्गा-फ़साद करने वालों के दमनार्थ पुलीस का विशेष प्रबन्ध रहता है। वैसे तो बटेश्वर में ब्राँच पोस्ट आफ़िस है; परन्तु मेले पर डाक का और भी अच्छा प्रबन्ध होजाता है और व्यापारियों की सुगमता के लिए नवीन पोस्ट आफ़िस खोल दिया जाता है। घाटों पर जहाँ जहाँ जल गहरा होता है वहाँ वहाँ बाँसों का घेरा लगा दिया जाता है। नहाने के घाटों पर भी, गहरे स्थानों पर, बाँस की बल्लियाँ गाड़ दी जाती हैं। नहान के दिन रात ही से घाटों और मन्दिरों के आस पास, सड़कों पर, पैदल और सवारों का कड़ा पहरा रहता है, जिससे मनुष्यों को किसी तरह का कष्ट न हो। इस मेले में विशेष कर पुरुष ही अधिक जमा होते हैं।

बटेश्वर का प्राचीन हाल ठीक ठीक ज्ञात नहीं होता। परन्तु शिवजी के मन्दिर के पास अब भी एक प्राचीन वट-वृक्ष है। इससे अनुमान होता है कि वट-वृक्ष के समीप होने ही से शिवजी बटेश्वर (बट-ईश्वर) कहलाये और वह बस्ती भी बटेश्वर के नाम से विख्यात हुई। वट-वृक्ष में पीपल और नीम के वृक्ष एक दूसरे से ऐसे लिपटे हुए हैं मानो एक-रूप होकर दर्शन करनेवालों को भी एकता का उपदेश कर रहे हैं। इस वृक्ष में बहुत से घंटे लटके हुए हैं। यहाँ पर श्रावण में भी दूर दूर से पण्डित और पुजारी आकर पूजा-पाठ और हवन आदि बड़े उत्साह से करते हुए प्राचीन ऋषियों के आश्रमों का स्मरण कराते हैं।

यह ठीक ज्ञात नहीं कि यह मेला कब से आरम्भ हुआ। जनश्रुति है कि जब मुसलमान-बादशाहों की राजधानी दिल्ली में थी तब महाराजा भदावर वहाँ बादशाह से मिलने गये। दरबार में बादशाह ने पूछा कि यमुना बटेश्वर के क़िले के इस पार है या उस पार। महाराज ने कह दिया कि उस पार। यह सुन कर सब दरबारियों ने कहा कि महाराज भूलते हैं, यमुना इसी पार है। परन्तु जो कह चुके थे महाराज ने उसी को फिर पुष्ट किया। बादशाह ने दो तरह की बातें सुन कर कहा कि महाराज, बरसात बाद हमीं वहाँ जाकर निर्णय कर लेंगे। महाराज ने अपनी बात रखने के लिए दिल्ली से आतेही एक महराबदार खाई ऐसी बनवाई कि यमुना अपना असली बहाव छोड़ कर, जो पूर्व से उत्तर को था, पश्चिम की ओर क़िले का चक्कर देती हुई अपनी असली धार से मिल गई। वह सदा के लिए क़िले के इस पार के बजाय उस पार बहने लगी। जब बादशाह आये तब महाराज ने उन्हें यमुना के पुराने बहाव की रेती में ही ठहराया। उस घटना की यादगार में उसी स्थान पर मेला लगाया, जो अबतक प्रति वर्ष होता है। यह भी सुना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहाने के समय का दृश्य।
श्रीबटेश्वरनाथ का मन्दिर और विश्रान्त (आगरा—यू० पी०)

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है कि महाराज बदनसिंह ने, संवत् १६७०, मैं क़िले के सामने श्रीशिवजी का मन्दिर बनवाया और उन्हीं ने, पुराने बहाव की रेती में, जिसे बदन-बाह (बदनसिंह का रोका हुआ बहाव) कहते हैं, बटेश्वर का मेला आरम्भ किया। यह भी अनुमान है कि इसी कारण बटेश्वर के पास की तहसील का भी नाम बाह पड़ा। अब भी जब यमुना में बाढ़ आती है तब वह बाह से होती हुई घूम कर बड़ी धार में मिल जाती है और बटेश्वर को चारों तरफ़ से घेर कर उसे टापू बना देती है।

सुना जाता है कि प्राचीन समय में बटेश्वर में १०१ मन्दिर थे। परन्तु अब २८ मन्दिर तो विश्रान्त पर हैं, और कुछ बस्ती में भी हैं। विश्रान्त पर श्री-बटेश्वरनाथ और जैन-मन्दिर के अतिरिक्त सब जीर्ण और बेमरम्मत पड़े हैं। विश्रान्त ही देखने योग्य है। सबसे मशहूर मन्दिर श्रीबटेश्वर-नाथ जी का है। इसमें केवल शिव-लिङ्ग है। एक पीतल के नाग की बड़ी प्रतिमा भी है। इसी मन्दिर के सामने, यमुनाजी की तरफ़, वट का पूर्वोक्त प्राचीन वृक्ष है, जिस से बहुत से घंटे लटके हैं और पीपल और नीम के वृक्ष लिपट कर एकरूप हो रहे हैं। मन्दिर की दूसरी दिशा में एक पक्का कुआँ है जिसके चारों कोनों पर साधुओं की मूर्तियाँ, मनुष्य के डील के बराबर, आसन मारे बैठी हुई दिखाई देती हैं। जैनियों का मन्दिर संवत् १८३८ में बना था। इसमें मनुष्य के डील के बराबर श्रीनेमि-नाथ की मूर्ति संगमूसा की बनी हुई है।

जी० पी० मिश्र।

भारतवर्ष का चलन-बाज़ार सिक्का।

सभ्यता के साथ साथ सिक्के के चलन में भी उन्नति हुई। प्राचीन समय में तो सिक्के का व्यवहार वैसे ही बहुत कम था, परन्तु वर्तमान काल में भी ऐसी असभ्य जातियों की कमी नहीं जो अभी तक सिक्के की उपयोगिता को नहीं समझतीं और उसका व्यवहार नहीं करतीं। जहाँ पहले सिक्के का चलन न था, और जहाँ आज भी नहीं है, वहाँ वाले व्यापार में सिक्के के स्थान में किसी एक या एक से अधिक वस्तुओं का प्रयोग करते थे? और आज भी वैसा ही करते हैं। उत्तरी अमेरिका के अलास्का प्रदेश के प्राचीन-निवासी सिक्के के स्थान में पहले चमड़ा लेते देते थे। उस समय जिस देश के लोग अलास्कावालों से अधिक सभ्य थे वे चमड़े के बदले, व्यापार में, पशुओं का ही व्यवहार करते थे। प्राचीन रोम-निवासी, और उसी समय की इटली की अन्य जातियाँ, बैल और भेड़ों को सिक्के की तरह काम में लाती थीं। एक बैल दस भेड़ों के बराबर समझा जाता था। उस समय उत्तरी योरप के सभी देशों में यही प्रथा थी। आज भी अफरीक़ा की ज़ुलू, काफ़िर और अन्य कितनी ही जातियाँ पशुओं को ही सिक्के की जगह व्यवहार में लाती हैं। नारवे और उत्तरी अमेरिका में मकई, चाय, नारियल आदि खाद्य पदार्थ सिक्के का काम देते थे। अबीसीनिया और मेक्सिको में नमक, भारत में कौड़ी, फीजी द्वीप में ह्वेल मछली की हड्डियाँ, और कितने ही अन्य द्वीपों में चिड़ियों के रङ्गदार पर और चमकीले पत्थर आदि पदार्थ सिक्के के सदृश व्यवहृत होते थे। आज भी आस्ट्रे-लिया और अमेरिका की बहुत सी जातियाँ धातु के बने सिक्कों का व्यवहार बिलकुल नहीं जानतीं। जिस जाति के यहाँ जो चीज़ अधिक होती है वह उसे ही देकर दूसरी जातियों की चीज़ें बदले में ले लेती है। एक यात्री ने लिखा है—"आस्ट्रेलिया के प्राचीन निवासी अपना शरीर गेरू से रँगना बहुत पसन्द करते हैं। वे लोग हरे पत्थर की शिलायें देकर गेरू मोल लेते हैं। जहाँ गेरू नहीं होता वहाँ वाले मनों हरा पत्थर अपने सर पर लाद कर गेरू ख़रीदने के लिए उन स्थानों में पहुँचते हैं जहाँ उन्हें उसके मिलने की आशा होती है"।

ज्यों ज्यों मनुष्य-जाति की उन्नति होती गई त्यों त्यों किसी एक ऐसी वस्तु की आवश्यकता हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसके व्यवहार से व्यापार में सुभीता हो और जिसके द्वारा किसी वस्तु के लेने अथवा देने में किसी को कुछ उज्र न हो। आवश्यकता बढ़ती ही गई। यही आवश्यकता धातु के सिक्के की जन्म-दात्री है। धातु के सिक्के की उत्पत्ति ने संसार की काया-पलट कर दी। व्यापार बढ़ गया। संसार भर के सभ्य देश और जातियाँ आपस में व्यापार करने लगीं। सिक्के के चलन से वैसे तो बहुत से लाभ हुए, परन्तु उनमें से दो मुख्य हैं:—(१) ऐसी चीज़ की सृष्टि हो गई जिसके द्वारा संसार की सभी चीज़ें ख़रीदी और बेंची जाने लगीं (२) संसार की अगणित वस्तुओं का अलग मूल्य ठहराना बड़ा ही कठिन था, परन्तु सिक्के के चलन से यह कठिनाई दूर हो गई। उसके द्वारा संसार की सभी चीज़ों के मूल्य नियत करने में बड़ा सुभीता हो गया।

धातु के सिक्कों का चलन बहुत प्राचीन काल से है। उनकी उत्पत्ति का समय निर्धारित करना कठिन ही नहीं, किन्तु असम्भव है। इस बात का अवश्य बहुत कुछ पता लगता है कि इस समय तक संसार में किस किस धातु के सिक्के व्यवहार में लाये गये। प्राचीन ग्रीस में कितने ही छोटे छोटे राज्यों में लोहे के सिक्कों का चलन था। किसी समय स्काटलैन्ड और मध्य-अफरीक़ा में भी लोहे की कीलों से सिक्कों का काम लिया जाता था। ताँबे के सिक्कों का चलन संसार में बहुत रहा और आज कल भी निम्न श्रेणी के सिक्के इसी धातु के बनते हैं। चीन, जापान, भारत और रोम में इस धातु के सिक्कों का बहुत चलन था। राँगे के सिक्के ब्रह्म-देश में और टीन के इँगलेंड में व्यवहृत होते थे। प्राचीन समय में रोम, ग्रीस और भारत में, और १८ वीं शताब्दी तक योरप के सभी राज्यों में, चाँदी के सिक्के अन्य सब सिक्कों में प्रधान समझे जाते थे। आज कल भी दो एक को छोड़ कर लगभग सभी पूर्वी देशों में चाँदी ही के सिक्कों का प्राधान्य है। गत शताब्दी का आरम्भ होते ही चाँदी अपने आसन से नीचे गिरने लगी। व्यापार और व्यवसाय की वृद्धि ने उसका स्थान सोने को दिया। गत पचास वर्षों में संसार भर में सिक्कों के चलन में बड़ा भारी हेर फेर हो गया। योरप भर में सोने के सिक्के चल गये। आस्ट्रेलिया, संयुक्त-राज्य (अमेरिका), जापान आदि अन्य उन्नत देशों ने भी योरप का अनुसरण किया। टर्की को छोड़ कर अन्य सभी सभ्य देशों ने कुछ न कुछ अपने सिक्कों में सुधार कर लिया।

इस समय संसार ने सोने के सिक्के की श्रेष्ठता स्वीकार कर ली है। खाद्य पदार्थ, चमड़ा, पशु आदि वस्तुओं के बाद धातु का व्यवहार होना और, फिर, लोहे, ताँबे, टीन, राँगे और चाँदी आदि धातुओं में भी शनैः शनैः परिवर्तन होते होते स्वर्ण को प्रधानता मिल जाना यह सिद्ध करता है कि उन्नति के पथ की ओर अग्रसर होने वाली जातियों में क्रमशः धातु के सिक्के का चलन हो जाता है। फिर जैसे जैसे वे उन्नति करती जाती हैं वैसे ही वैसे उनके मुख्य सिक्के उस धातु के बनने लगते हैं जिसे वे और उनके पड़ोसी देश अन्य धातुओं से श्रेष्ठ समझते हैं। धातुयें स्थायी होती हैं। वे कहीं भी दी और ली जा सकती हैं। वे छोटे छोटे अंशों में विभक्त भी हो सकती हैं। प्राचीन समय में सिक्के के स्थान में व्यवहृत होने वाली चीज़ों की तरह उस के बने हुए सिक्के आकार में बड़े और बहुत स्थान घेरने वाले नहीं होते।

धातुओं में भी मूल्यवान् और कठिनता से प्राप्त होने वाली टिकाऊ धातुयें ही सिक्के के लिए अधिक उपयोगिनी समझी जाती हैं। लोहा सस्ता होता है और उसमें मोरचा भी जल्द लग जाता है। राँगा और टीन बहुत नरम होते हैं। अन्य धातुओं में भी कुछ न कुछ त्रुटि है। कोई जल्द ख़राब हो जाती है और कोई बहुत ही सस्ती होती है। चाँदी और सोना ही ऐसे हैं जो मूल्यवान् हैं और जल्द नहीं बिगड़ते। वे घिसते भी देर में हैं। उनका मूल्य भी अधिक है और वह बहुत जल्द घटता बढ़ता नहीं। उनके उठाने, ले जाने और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेजने में, ज़ियादह दिक़्क़त नहीं उठानी पड़ती। यदि उनके बने सिक्के टूट फूट भी जायँ तो भी दाम सीधे हो जाते हैं। इन्हीं कारणों से अन्य सब धातुयें चाँदी और सोने से पिछड़ गईं। वर्तमान काल ने तो चाँदी के भाग्य पर भी पानी फेर दिया। संसार ने उसे भी सस्ता और स्थान घेरने वाली समझ लिया है। अब उसके पाँव उखड़ चले हैं। सोने की श्रेष्ठता बहुत पहले ही से स्वीकार की जा चुकी है; अब तो नीच और उच्च, छोटे और बड़े, सभी जातियाँ और सभी देश, पारस्परिक व्यापार ही के लिए नहीं, किन्तु घर के व्यवहार तक के लिए, उसी के बने हुए सिक्कों की महिमा गाते हैं।

भारत में सोने के सिक्के का चलन बहुत प्राचीन काल से है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में बहुत जगह स्वर्ण-मुद्राओं का वर्णन है। वेदों तक में उनका उल्लेख है। इससे सिद्ध है कि हज़ारों वर्ष से उसका प्रचार इस देश में है। सन् ईसवी के लगभग तीन शताब्दी पूर्व्व, भारत का एक प्रान्त—पञ्जाब—फ़ारिस के बादशाह के अधीन था। फ़ारिस का साम्राज्य उस समय बहुत विस्तीर्ण और उन्नतावस्था में था। जितने देश उस समय उक्त साम्राज्य के अधीन थे वे सब अपना राजस्व चाँदी और चाँदी के सिक्कों में चुकाते थे। परन्तु पञ्जाब से स्वर्ण और स्वर्ण-मुद्रायें राजस्व की भाँति फ़ारिस जाती थीं। मुसलमान-बादशाहों के समय में भी भारत में अशर्फ़ियों का बहुत चलन था। बादशाही समय की अशर्फ़ियाँ आज भी बहुत मिलती और बिकती हैं। ईस्ट इन्डिया कम्पनी के समय में भी यहाँ बहुत दिनों तक सोने का सिक्का चलता रहा। दक्षिण में मद्रास-प्रान्त के अन्तर्गत, पैगोडा नाम के सोने के सिक्के का चलन था। यह सिक्का लगभग पाँच रुपये के मूल्य का था। यही पैगोडा लङ्का, मारिशश, केप आव्-गुड होप, सेन्ट हेलिना और आस्ट्रेलिया तक व्यापारियों द्वारा पहुँचता था और इन स्थानों में व्यवहृत होता था। १८०६ में ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने ब्रिटिश भारत भर के लिए चाँदी का रुपया बनाया; परन्तु दक्षिण का पैगोडा पहले की ही तरह चलता रहा। १८१८ में, उक्त कम्पनी की आज्ञा से, पैगोडा ढाला जाना बन्द हो गया। उसका स्थान सोलह रुपये की मुहर को मिला। १८५२ में, आस्ट्रेलिया और केलीफ़ोर्निया में बहुत सी सोने की खानें निकल पड़ीं। तत्कालीन गवर्नर-जनरल, लार्ड डलहौसी ने इस भय से कि कहीं इन खानों के कारण सोने का भाव न गिर जाय, भारत में सोने के सिक्के का बनना एक दम बन्द कर दिया।

सोने के सिक्के का चलन बन्द हो जाने से भारत को बहुत घाटे में रहना पड़ा। देश का मुख्य सिक्का चाँदी का रह गया। चाँदी का सिक्का देश के लिए तभी उपयुक्त होता जब उसका व्यापार परिमित और लेन-देन थोड़ा होता। गत साठ-सत्तर वर्ष में भारत का व्यापार बहुत बढ़गया है। सोने के मुक़ाबले में चाँदी ऐसी भारी और सस्ती धातु के सिक्कों को प्रधानता देने में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बड़ी भारी भूल की। इसी भूल के कारण कई बार भारत के वाणिज्य को बहुत भारी क्षति पहुँचते पहुँचते बची। १८५२ तक, लगभग एक अरब बीस करोड़ रुपये की सोने की मुहरें और पैगोडा भारतवर्ष भर में फैले हुए थे। परन्तु सोने के सिक्कों के बन्द होने की आज्ञा होते ही इस सब सोने में से कुछ तो विदेश चला गया और कुछ ज़ेवर के रूप में परिवर्त्तित हो गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में चाँदी का भाव बहुत गिर गया। भारतीय चाँदी के रुपये का असली मूल्य भी कम हो गया। इधर भारत से जो रुपया सरकारी ख़र्च के लिए विलायत जाता है वह वहाँ प्रचलित सोने के सिक्के के हिसाब से देना पड़ता है। इससे भी भारत को बहुत हानि पहुँचने लगी। इस कारण से तथा भारतीय व्यापार के गिरने के भय से भारत-सरकार बड़ी चिन्तित हुई। अन्त में, बहुत सोच-विचार के बाद, इँगलैंड के सावरेन नामक सोने के सिक्के का प्रचार यहाँ कर दिया गया और उसका मूल्य १५ रुपये निश्चित कर दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। यह सिक्का इँगलैंड ही में ढलता है और वहीं से यहाँ आता है। अतएव भारत में इस समय दो सिक्के हैं—एक तो सोने का सावरन, दूसरा चाँदी का रुपया। परन्तु किसी भी देश में एक ही साथ दो प्रकार के सिक्के मुख्यता नहीं प्राप्त कर सकते। प्रचलित सिक्कों की धातु की क़ीमत बाज़ार दर के बराबर ही होनी चाहिए। यदि बाज़ार भाव से उन की क़ीमत अधिक या कम होती है तो वह सिक्का जिसकी धातु का मूल्य बाज़ार भाव के अधिक निकट होगा—उस सिक्के को नीचे गिरा देगा जिसकी धातु के मूल्य में बाज़ार भाव से विशेष अन्तर होगा। रुपये की चाँदी की असली क़ीमत रुपये से कम है। और सावरेन के सोने की क़ीमत सोने के बाज़ार भाव के लगभग बराबर ही है। इस कारण सावरेन का प्रचार हमारे देश में बढ़ता जा रहा है।

१८९३ में, भारतीय मुहर का स्थान अँगरेज़ी सावरेन को मिलने के साथ ही, भारतवासियों का एक स्वत्व भी छिन गया। सभी उन्नत देशों में सर्व-साधारण को अपनी धातु के सिक्के ढलवाने का स्वत्व प्राप्त है। लोग सोना या चाँदी टकसाल में ले जाते हैं। उसके बदले में उन्हें सिक्के मिल जाते हैं। ब्रिटिशद्वीपों में एक ग्रैन्स सोने के बदले तीन पौंड, सत्तरह शिलिङ्ग, नौ पेन्स मिलते हैं। हमारे देश में जो टकसालें हैं वे सोने का सिक्का तो ढालती नहीं, केवल चाँदी का ढालती हैं। १८९३ तक, सर्व्व-साधारण को उनमें अपनी धातु के सिक्के ढलवाने का हक़ था; परन्तु चाँदी का भाव गिर जाने के कारण हमारा यह हक़ छीन लिया गया। इस स्वत्व के छिन जाने से लोगों को बहुत हानि हुई। दुर्भिक्ष के समय लोग अपने गहनों के रुपये ढलवा कर जीवन-निर्वाह कर सकते थे। १८९३ तक भारतवर्ष भर में चाँदी के जितने गहने थे उनका मूल्य लग-भग उतना ही था जितना उनका वज़न। परन्तु सर्व्व-साधारण के लिए टकसाल बन्द होते ही उनका मूल्य पहले से लगभग आधा ही रह गया। संसार की दृष्टि में हमारे रुपये की क़ीमत भी गिर गई है। १८९३ से पहले रुपया दो शिलिंग के बराबर समझा जाता था; परन्तु उसी वर्ष उसका मूल्य एक शिलिंग चार पेन्स रह गया। इसका फल यह हुआ कि भारतवर्ष भर के रुपयों के मूल्य में बारह करोड़ रुपये की कमी हो गई। इसमें तो सन्देह ही नहीं कि चाँदी का भाव गिर जाने से भारत को यह क्षति उठानी ही पड़ती। ऐसे समय में चाँदी की टकसाल को सर्व-साधारण के लिए खुले रखने में तो भारत की और भी अधिक हानि होती। रुपये का मूल्य एकदम ही छः पेन्स तक गिर जाता और भारत को कोई पन्द्रह करोड़ रुपये की क्षति और पहुँचती। परन्तु सावरेन के चलन से लोगों को आशा हुई थी कि भविष्यत् में वह भारत का स्थायी सिक्का हो जायगा; वह यहीं ढलने लगेगा और सर्व्व-साधारण को सावरेन ढलवाने का उसी प्रकार स्वत्व प्राप्त हो जायगा जैसे उन्हें पहले रुपये ढलवाने का था। परन्तु यह आशा सफल नहीं हुई।

सोने का सिक्का ढालने के लिए टकसाल न होने से भारत को बड़े घाटे में रहना पड़ता है। कुछ दिन हुए, सिक्कों के चलन के एक बड़े भारी जानकार ने रुपये की क़ीमत लगभग दस पेन्स, अर्थात् दस आना, कूती थी। रुपये की क़ीमत चाहे दस आने हो चाहे बारह आने; इसमें सन्देह नहीं कि सरकार को रुपये ढालने से अच्छा लाभ होता है। इस प्रकार होने वाले लाभ की रक़म लन्दन भेज दी जाती है और भारत के विदेशी व्यापार के लेन-देन में काम आती है। यह रक़म वहाँ "Reserve Fund" के नाम से पुकारी जाती है। इस समय इस फन्ड में लगभग तीस करोड़ रुपये हैं। विलायती महाजन लोग इस रुपये को उधार भी लिया करते हैं। यदि यह रुपया भारत में होता तो छः, सात रुपये सैकड़े से कम सूद न मिलता। परन्तु विलायत में वह ढाई रुपये सैकड़े के सूद पर ही उठा दिया जाता है। भारत के लिए सूद की यह कमी बड़ी ही हानि-कारक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Foundation Chennai and eGangotri

इँगलैंड में तो सोने की बड़ी भारी टकसाल है ही। आस्ट्रेलिया की आबादी बहुत ही थोड़ी है और उसका व्यापार भी बहुत कम है। कनाडा की दशा भी बहुत कुछ आस्ट्रेलिया ही की ऐसी है। परन्तु इन दोनों देशों में भी सोने की एक एक टकसाल है। भारत की जन-संख्या तीस करोड़ से अधिक है। उसका व्यापारी नाता सारे संसार से है। प्रति वर्ष वह कोई तीन चार करोड़ रुपये का सोना स्वयं उत्पन्न भी करता है। परन्तु इन सब बातों के होते हुए भी वह सोने की टकसाल से वञ्चित है। इतना ही क्यों, और और हानियों के सिवा, सोने की टकसाल न होने के कारण, उसे विलायत से सावरेन मँगाने और अपना सोना विदेश भेजने का ख़र्च भी व्यर्थ ही उठाना पड़ता है। यही कारण है जो भारत के हित-चिन्तक भारत में सोने के सिक्के को मुख्यता देने और यहीं उसके ढाले जाने के पक्षपाती हैं।

श्रीकण्ठ पाठक।

संस्कृत और हिन्दी-कविता का बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव।

लं चेत्संचरसे वृषेण लघुता का नाम दिग्दन्तिनां,
व्यालैः कङ्कणकुण्डलानि कुरुषे हानिर्न हेम्नः पुनः।
मूर्धा चेद्वहसे जडांशुमयशः किंनाम लोकत्रयी—
दीपस्याम्बुजबान्धवस्य जगतामीशोसि किं ब्रूमहे॥

उद्धट।

धक और कनक पात तुम जो चबावत हौ तो
षटरस-व्यंजन न केहू भांति लटिगो।
भूषन बसन कीन्हो व्याल गजखाल को तो
साल सुबरन को न पैन्हिबो उलटिगो।
"दास" के दयाल हौ सुरीतिही उचित तुम्है
लीनी जो कुरीति तौ तिहारो ठाठ ठटिगो।
है के जगदीश कीन्हो वाहन वृषभ को तो
कहा शिव साहब! गयन्दनि को घटि गो?

भिखारीदास।

× × ×

यद्वक्त्रं मुहुरीक्षसे न धनिनां ब्रूषे न चाटून्मृषा,
नैषां गर्वगिरः शृणोषि न च तान्प्रत्याशया धावसि।
काले बालतृणानि खादसि परं निद्रासि निद्रागमे,
तन्मे ब्रूहि कुरङ्ग! कुत्र भवता किन्नाम तप्तं तपः॥

उद्धट।

काहू धनवन्त को न कबहूँ निहारयो मुख
काहू के न आगे दौरिबे को नेम लियो तैं,
काहू को न ऋन करै काहू के दिये ही बिन
हरो नित असन बसन छोड़ि दियो तैं।
"दास" निज सेवक सखा सो अति दूर रहि
लूटै सुख भूरिकों हरख पूरि हियो तैं,
सोवत सुरुचि जागि जोवतो सुरुचि धन्य
बान्धव कुरङ्ग कहु कहा तप कियो तैं?।

भिखारीदास।

× × × ×

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः
क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः॥
गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवद् दृष्ट्वा तु मित्रापदं,
युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी॥

भर्तृहरि।

"दास" परस्पर प्रेम लखो
गुन छीर के नीर मिले सरसातु है,
नीर बेंचावत आपने मोल
जहाँ जहँ जाइके आप बिकातु है।
पावक जारन छीर लगै
तब नीर जरावत आपनो गातु है,
नीर की पीर निवारिबे कारन
छीर घरीहीं घरी उफिनातु है॥

भिखारीदास।

× × × ×

अपसारय घनसारं कुरु हारं दूर एव किंकमलैः।
अलमलमालिमृणालैरिति वदति दिवानिशं बाला॥

दामोदर गुप्त।

झार डार घनसार इत कहा कमल को काम।
अरी दूरि करु हार यों बकति रहति नित बाम॥

भिखारीदास।

× × × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असम्मुखालोकनमाभिमुख्यं निषेध एवानुमतिप्रकारः।
प्रत्युत्तरं मुद्रणमेव वाचो नवाङ्कनानां नव एव पन्थाः॥

उद्भट।

रूखी ह्वै जैबो पियूख बगारिबो
बङ्क विलोकिबो आदरिबो है
सैंहें दिआयबो गारी सुनायबो
प्रेम प्रसंसनि उच्चरिबो है।
लातन मारिबो झारिबो बाँह
निसङ्क ह्वै अङ्कनि को भरिबो है।
"दास" न बेली को केलि समै में
नहीं नहीं कीबो हँ हाँ करिबो है॥

भिखारीदास।

× × × ×

मा याहीत्यपमङ्गलं व्रज सखे स्नेहेन हीनं वच-
स्तिष्ठेति प्रभुता यथारुचि कुरुष्वैषाप्युदासीनता।
नो जीवामि विना त्वयेति वचनं सम्भाव्यते वा न वा;
तन्मां शिक्षय नाथ! यत्समुचितं वक्तुं त्वयि प्रस्थिते॥

उद्भट।

रोकहिं जो तो अमङ्गल होय
औ प्रेम नसै जौ कहैं पिय! जाइए;
जो कहैं जाहु न तो प्रभुता
जो कछू न कहैं तो सनेह नसाइए।
जो "हरिचन्द" कहैं तुमरे बिन
जी हैं न तो यह क्यों पतिआइए।
ता सों पयान समै तुमरे हम
का कहैं आप हमैं समझाइए॥

हरिश्चन्द्र।

× × × ×

इन्दीवरेण नयनं मुखमम्बुजेन
कुन्देन दन्तमधरं नवपल्लवेन।
अङ्गानि चम्पकदलैः स विधाय वेधाः
कान्ते कथं घटितवानुपलेन चेतः॥

उद्भट।

क्यों इन कोमल गोल कपोलन
देखि गुलाब को फूल लजायो;
त्यौं हरिचन्द जू पङ्कज के दल
सो सुकुमार सबै अँग भायो।
अमृत से जुग ओठ लसे
नवपल्लव सो कर क्यों है सुहायो;
पाहन सो मन हो तो सबै
अँग कोमल क्यों करतार बनायो॥

हरिश्चन्द्र।

× × × ×

किमसुभिर्गर्लपितैर्जड मन्यसे मयि निमज्जतु भीमसुतामनः।
मम किल श्रुतिमाह तदर्थिकां नलसुखेन्दुपरां विबुधः स्मरः॥

श्रीहर्ष।

कत मारत मुहि आनि नित रे मनमथ मतिहीन!
मन तो मैं पियवदन तजि मरयो न ह्वै है लीन।

गुलामनबी-रसलीन

पद्मसिंह शर्मा।

अतीत भारत की सभ्यता।

(भारत-भारती से उद्धृत)

शैशव दशा में देश प्रायः जिस समय सब व्याप्त थे,
निःशेष विषयों में तभी हम प्रौढ़ता को प्राप्त थे।
संसार को पहले हमींने ज्ञान-भिक्षा दान की
आचार की, व्यवहार की, व्यापार की, विज्ञान की॥१॥
'हाँ' और 'ना' भी अन्य जन करना न जब थे जानते,
थे ईश के आदेश तब हम वेद-मन्त्र बखानते।
जब थे दिगम्बर जटिल वे सब जङ्गलों में घूमते,
प्रासाद-केतन-पट हमारे चन्द्र को थे चूमते॥२॥
जब मांस-भक्षण पर वनों में अन्य जन थे जी रहे,
कृषिकार्य करके आर्य सारे सोमरस थे पी रहे।
यह सात्त्विकी भोजन न जो मिलता शुभाविष्कार का
तो पार क्या रहता जगत में उस विकृत व्यापार का॥३॥
थे ज्यों समुन्नति के सुखद उत्तुङ्ग शृङ्गों पर चढ़े,
त्योंही विशुद्ध विनीतता में हम सभी से थे बढ़े।
भव-सिन्धु तरने के लिए आत्मावलम्बी धीर ज्यों,
परमार्थ-साधन-हेतु थे आतुर, परन्तु गभीर त्यों॥४॥
था गर्व अपनी शक्ति का, पर दम्भ से हम दूर थे,
थे धर्मभीरु परन्तु हम सब काल सच्चे शूर थे।
सब भोग सुख के भोगते थे बान्धवों के साथ में,
पर पारलौकिक सिद्धि को रखते सदा थे हाथ में॥५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि सदा परमार्थ ही में स्वार्थ थे हम मानते,
पर कर्म्म से फल-कामना करना न हम थे जानते।
विख्यात जीवन-व्रत हमारा लोकहित एकान्त था;
आत्मा अमर है, देह नश्वर, यह अटल सिद्धान्त था॥६॥
हम दूसरों के दुःख को थे दुःख अपना मानते,
हम मानते कैसे नहीं, जब थे सदा यह जानते—
जिसने बनाया है हमें वे भी उसीसे हैं बने;
हैं कर्म्म भिन्न, परन्तु सब हैं तुल्य तत्त्वों से सने॥७॥
बिकते ग़ुलाम न थे यहाँ, हम में न ऐसी रीति थी।
सेवक-जनों पर भी हमारी नित्य रहती प्रीति थी।
वह नीति ऐसी थी कि चाहे हम कभी भूखे रहें;
पर बात क्या जीते हमारे जो कभी वे दुख सहें॥८॥
अपने लिए भी आज हम क्यों जी न सकते हों यहाँ,
पर दूसरों ही के लिए जीते सभी थे हम यहाँ।
यद्यपि जगत में हम स्वयं विख्यात जीवन-मुक्त थे,
करते तदपि जीवन-मृतों को दिव्य-जीवन-युक्त थे॥९॥
थी दूसरों की आपदा-हरणार्थ अपनी सम्पदा;
कहते नहीं थे किन्तु हम करके दिखाते थे सदा।
नीचे गिरे को प्रेम से ऊँचा चढ़ाते थे हमीं;
पीछे रहे को घूम कर आगे बढ़ाते थे हमीं॥१०॥
संयम-नियम-पूर्वक प्रथम बल और विद्या प्राप्त की;
होकर गृही फिर लोक की कर्तव्य-रीति समाप्त की।
हम अन्त में भव-बन्धनों को थे सदा को तोड़ते;
आदर्श, भावी-सृष्टि-हित थे मुक्ति-पथ में छोड़ते॥११॥
हमको विदित थे तत्त्व सारे नाश और विकाश के,
कोई रहस्य छिपे न थे, पृथ्वी तथा आकाश के।
वे जो हज़ारों वर्ष पहले जिस तरह हमने कहे;
विज्ञान-वेत्ता अब वही सिद्धान्त निश्चित कर रहे॥१२॥
"है हानिकारक नीति निश्चय निकट-कुल में ब्याह की;
लाभकारक रीति शव को गाड़ने से दाह की"।
यूरोप के विद्वान भी अब इस तरह कहने लगे;
देखो कि उलटे स्रोत सीधे किस तरह बहने लगे॥१३॥
निज कार्य प्रभु की प्रेरणा ही थे नहीं हम जानते;
प्रत्युत उन्हें प्रभु का किया ही थे सदा हम मानते।
जय था हमें तो बस उसीका और हम किससे डरे?
हाँ जब मरे हम तब उसीके प्रेम से विह्वल मरे॥१४॥

था कौन ईश्वर के सिवा जिसको हमारा सिर झुके?
हाँ कौन ऐसा स्थान था जिसमें हमारी गति रुके?
सारी धरा तो थी धराही, सिन्धु भी बँधवा दिया;
आकाश में भी आत्म-बल से सहजही विचरण किया॥१५॥
हम बाह्य उन्नति पर कभी मरते न थे संसार में,
बस मग्न थे अन्तर्जगत के अमृत-पारावार में।
जड़ से हमें क्या-जब कि हम थे नित्य चेतन से मिले,
है दीप क्या उसके निकट जो पद्म दिनकर से खिले॥१६॥
रौंदी हुई है सब हमारी भूमि इस संसार की,
फैला दिया व्यापार करके धूम धर्म-प्रचार की।
कप्तान कोलम्बस कहाँ था उस समय कोई कहे
जबके सु-चिह्न अमेरिका में हैं हमारे मिल रहे॥१७॥
हम देखते फिरता हुआ जोड़ा न जो दिन रात का,
करते कहो वर्णन भला फिर किस तरह उस बात का।
हम वर-बधू की भाँवरों से साम्य उसका कर चुके;
अब खोजने जाकर जिसे कितने विदेशी मर चुके॥१८॥
आरम्भ जब जो कुछ किया हमने उसे पूरा किया;
था जो असम्भव भी उसे सम्भव हुआ दिखला दिया।
कहना हमारा बस यही था विघ्न और विराम से—
करके हटेंगे हम कि अब मरके हटेंगे काम से॥१९॥
यह ठीक है पश्चिम बहुतही कर रहा उत्कर्ष है,
पर पूर्व-गुरु उसका यही पुरु-वृद्ध भारतवर्ष है।
जाकर विवेकानन्द सम बहु साधुजन इस देश से—
करते उसे कृतकृत्य हैं अब भी अतुल उपदेश से॥२०॥
वे जातियाँ जो आज उन्नति-मार्ग में हैं बढ़ रहीं,
संसार की स्वाधीनता की सीढ़ियों पर चढ़ रहीं।
यह तो कहें यह शक्ति उनको प्राप्त कब कैसे हुई?
यह भी कहें वह दार्शनिक चर्चा वहाँ कैसे हुई?॥२१॥
यूनान ही कहदे कि वह ज्ञानी, गुणी कब था हुआ?
कहना न होगा, हिन्दुओं का शिष्य वह जब था हुआ।
हमसे अलौकिक ज्ञान का आलोक यदि पाता नहीं—
तो वह अरब यूरोप का शिक्षक कहा जाता नहीं॥२२॥
संसार भर में आज जिसका छारहा आतङ्क है,
नीचा दिखा कर रूस को भी जो हुआ निःशङ्क है।
जयशील जो वर्द्धक हुआ है एशिया के हर्ष का
है शिष्य वह जापान भी इस वृद्ध भारतवर्ष का॥२३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूरोप भी जो बन रहा है आज कल धार्मिकमना
यह तो कहे उसके ख़ुदा का पुत्र कब धार्मिक बना ?
था हिन्दुओं का शिष्य ईसा यह पता भी है चला;
ईसाइयों का धर्म बहुधा बौद्ध साँचे में ढला ॥२४॥

संसार में जो कुछ जहाँ फैला प्रकाश-विकास है
इस जाति की ही दीप्ति का उसमें प्रधानाभास है।
करते न उन्नति-पथ परिष्कृत आर्य्य जो पहले कहीं
सन्देह है तो विश्व में विज्ञान बढ़ता या नहीं ॥२५॥

अनमोल आविष्कार यद्यपि हैं अनेकों कर चुके;
शिक्षा तथा निज सभ्यता की वृद्धि का दम भर चुके।
हैं पीटते सिर अन्य देशी आज भी जिस शान्ति को—
थे हम कभी फैला चुके उसकी अलौक कान्ति को॥२६॥

है आज पश्चिम में प्रभा जो, पूर्व से ही है गई;
खोते अँधेरा यदि न हम होती न खोज नई नई।
इस बात की साक्षी प्रकृति भी है हमारी सब कहीं,
होता प्रभाकर पूर्व से ही उदित पश्चिम से नहीं ॥२७॥

अन्तिम प्रभा का है हमारा विक्रमी संवत् यहाँ,
है किन्तु औरों का उदय इतना पुराना भी कहाँ ?
ईसा, मुहम्मद आदि का जग में न था तब भी पता—
कब की हमारी सभ्यता है, कौन सकता है बता ॥२८॥

सर्वत्र अनुपम एकता का इस प्रकार प्रभाव था;
थी एक भाषा, एक मन था, एक सब का भाव था।
सम्पूर्ण भारतवर्ष मानों एक नगरी थी बड़ी—
पुर और ग्राम-समूह-संस्था थी मुहल्लों की लड़ी ॥२९॥

हैं वायु-मण्डल में हमारे गीत अब भी गूँजते;
निर्झर, नदी, सागर, नगर, गिरि, वन सभी हैं कूजते।
देखो, हमारा विश्व में कोई नहीं उपमान था—
नरदेव थे हम और भारत देवलोक समान था ॥३०॥

अतीत भारत के आदर्श पुरुष।

आदर्श जन संसार में इतने कहाँ पर हैं हुए ?
सत्कार्य-भूषण आर्यगण जितने यहाँ पर हैं हुए।
हैं रह गये यद्यपि हमारे गीत आज रहे सहे,
पर दूसरों के वचन सब साक्षी हमारे हो रहे ॥३१॥

गौतम, वशिष्ठ-समान मुनिवर ज्ञान-दायक थे यहाँ,
मनु, याज्ञवल्क्य समान सत्तम विधि-विधायक थे यहाँ।
वाल्मीकि-वेदव्यास से गुण-गान-गायक थे यहाँ,
पृथु, पुरु, भरत, रघु से अलौकिक लोकनायक थे यहाँ ३२

लक्ष्मी नहीं, सर्वस्व जावे; सत्य छोड़ेंगे नहीं;
अन्धे बनें, पर सत्य से सम्बन्ध तोड़ेंगे नहीं।
निज सुत-मरण स्वीकार है; पर सत्य की रक्षा रहे;
है कौन जो उन पूर्वजों के शील की सीमा कहे ? ३३

सर्वस्व करके दान जो चालीस दिन भूखे रहे,
अपने अतिथि-सत्कार में फिर भी न जो रूखे रहे।
पर-तृप्ति कर निज तृप्ति मानी रन्तिदेव नरेश ने;
ऐसे अतिथि-सन्तोष-कर पैदा किये किस देश ने॥३४॥

आमिष दिया अपना जिन्होंने श्येन भक्षण के लिए,
जो बिक गये चाण्डाल के घर सत्यरक्षण के लिए।
देदीं जिन्हों ने अस्थियाँ परमार्थ-हित ज्ञानी जहाँ,
शिव, हरिश्चन्द्र, दधीच से होते रहे दानी कहाँ ॥३५॥

सत्पुत्र पुरु से थे जिन्हों ने तात हित सब कुछ सहा;
भाई भरत से थे जिन्हों ने राज्य भी त्यागा अहा।
जो धीरता के वीरता के प्रौढ़तम पालक हुए;
प्रह्लाद, ध्रुव, कुश, लव तथा अभिमन्यु-सम बालक हुए ३६

वह भीष्म का इन्द्रिय-दमन उनकी धरा सी धीरता;
वह शील उनका और उनकी वीरता गम्भीरता।
उनकी सरलता और उनकी वह विशाल विवेकता;
है एक जन के अनुकरण में सब गुणों की एकता ॥३७॥

वर वीरता में भी रसिकता वास करती थी यहाँ,
पर साथ ही वह आत्म-संयम था यहाँ का सा कहाँ ?
आकर करे जो अङ्ग-अर्पण उर्वशी सी कामिनी,
फिर कौन ऐसा है कहे जो—"मत कहो यों भामिनी" ३८

यदि भूल कर अनुचित किसी ने काम कर डाला कभी;
तो वह स्वयं नृप के निकट दण्डार्थ जाता था तभी।
अब भी लिखित मुनि का चरित वह लिखित है इतिहास में;
अनुपम सुजनता सिद्ध है जिसके अमल आभास में ३९

मैथिलीशरण गुप्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध विषय।

१—बाबू मैथिलीशरण गुप्त का एक नया काव्य।

सरस्वती के सिद्ध-कवि बाबू मैथिलीशरण गुप्त ने एक नवीन काव्य की रचना की है। उसे समाप्ति को पहुँचे अभी कुछ ही दिन हुए हैं। उसका नाम है भारत-भारती। अपूर्व काव्य है। "हाली" साहब के मुसद्दस के ढँग का है। उससे बढ़ कर नहीं, तो उससे कम भी किसी बात में नहीं। पद्य-संख्या ७०० के लग भग है। उसमें भारत के उत्थान और पतन आदि का वर्णन है। शीघ्र ही छप कर प्रकाशित होगा। तब तक उसके विशेष विशेष स्थल सरस्वती की हर संख्या में निकलेंगे। आरम्भ इसी संख्या से किया जाता है। गुप्तजी की इस कविता का उत्तरोत्तर हृदय-विदारक अंश पढ़ने के लिए पाठक अपना हृदय अभी से कड़ा कर रक्खें। ऐसी अच्छी कविता लिखने के लिए, हम नहीं जानते, किन शब्दों से हम गुप्तजी का अभिनन्दन करें:—

येनेदमीदृशमकारि महामनोज्ञं
शिक्षान्वितं गुणगणाभरणैर्भृतञ्च।
काव्यं, कृती कविवरः स चिरायुरस्तु
श्रीमैथिलीशरणगुप्त उदारवृत्तः॥

२—रामचरितमानस में हनुमन्नाटक की छाया।

श्रीयुत बाबू आदित्यनारायणसिंह ने धौरानी डोला, मुकामा, से एक विस्तृत लेख भेजा है। उसमें लेखक महाशय ने हनुमन्नाटक के अनेक पद्य उद्धृत करके उनसे गोस्वामी-तुलसीदास-कृत रामायण के उन उन अंशों से सम्बन्ध रखने वाली उक्तियों की तुलना की है और यह दिखाया है कि गोस्वामीजी ने रामायण की रचना में हनुमन्नाटक से बहुत सहायता ली है; यहाँ तक कि कहीं कहीं पर उन्होंने इस नाटक के पद्यों का प्रायः ज्यों का त्यों अनुवाद कर दिया है। लेखक महाशय का कहना बहुत ठीक है। गोस्वामीजी ने हनुमन्नाटक ही से क्या जिस ग्रन्थ में उन्हें अपने मतलब की बातें मिली हैं उन सभी से सहायता लेने—कहीं उनकी उक्तियों का प्रतिबिम्ब, कहीं उनकी छाया और कहीं उनका अनुवाद करने—में सङ्कोच नहीं किया। इस बात को उन्होंने रामायण के आरम्भ में स्वीकार भी किया है। आदित्यनारायणजी का लेख मनोरञ्जक है। परन्तु बहुत बड़ा है। अतएव, खेद है, वह प्रकाशित नहीं किया जा सका।

३—पटने के खँडहर।

पुराना पाटलीपुत्र अर्थात् नया पटना बहुत प्राचीन नगर है। चन्द्रगुप्त, अशोक और समुद्रगुप्त आदि प्रसिद्ध राजाओं ने वहीं से भारत का शासन किया था। पटना उनकी राजधानी थी। ग्रीक राजाओं के राजदूत वहीं रहते थे और वहीं से भारत की ऊर्ज्जितावस्था और विद्याविभव का वर्णन लिख लिख कर अपने देश को भेजते थे। इस पटना के आस पास कोसों तक पुरानी इमारतों के भग्नावशेष पड़े हुए हैं। यथार्थ में वे भग्नावशेष भी नहीं; ईंट और मिट्टी के धुस्स मात्र हैं। अनुमान है कि उनके नीचे बहुमूल्य ऐतिहासिक पदार्थ दबे पड़े हुए हैं। यदि वे निकाले जायँ तो अनेक नई नई ऐतिहासिक बातों का पता लगे। यही सोच कर बम्बई के धनकुवेर श्रीयुत रतनजी ताता ने पुराने पाटलीपुत्र के ध्वंसावशेष खुदाने के लिए बीस हज़ार रुपया दिया है। सुनते हैं, अब खुदाई का काम शीघ्र ही आरम्भ होगा। बहुत सम्भव है खोदने पर चाणक्य और चन्द्रगुप्त आदि के समय के चिह्न मिलें और भारत के ऐतिहासिक तत्त्वों के आविष्कार में विशेष सहायता दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—माल-असबाब ढोनेवाले व्योम-यान।

व्योम-यानों से सबसे अधिक लाभ संसार के भिन्न भिन्न देशों का सैनिक विभाग उठा रहा है, और भविष्यत् में भी उठायेगा। शत्रु-सेना की संख्या जानने और उस पर गोले बरसाने का काम तो आज कल व्योमयानों से थोड़ा बहुत लिया ही जाता है, भविष्यत् में और भी अधिक लिया जायगा। परन्तु अब थोड़े ही दिनों में उनके द्वारा सेनाओं में कोसों दूर से रसद पहुँचाने का काम भी लिया जाने वाला है। सेना के साथ अब रसद लिये लिये फिरने की आवश्यकता न रह जायगी। दो दो चार चार सौ मील के घेरों में रसद के एक ही 'डिपो' से काम चल जाया करेगा। एक छोटा व्योमयान साढ़े पाँच मन बोझा लाद सकेगा। यदि एक हज़ार आदमियों की एक सेना शत्रुओं का सामना करने के लिए रसद के डिपो से सौ मील दूरी पर पड़ी होगी और उनके पास खाने पीने का कुछ भी सामान न होगा तो पाँच व्योमयान चालीस मील फी घन्टा सफ़र करके एक सेर फ़ी आदमी के हिसाब से एक हज़ार से अधिक आदमियों के लिए खाने की चीज़ें उक्त सेना में केवल ढाई घन्टे में आसानी से पहुँचा देंगे। ऐसा होने से एक लाभ और भी होगा। सेना के आगे निकल जाने और रसद के पीछे पीछे आने से शत्रुओं के द्वारा रसद के लूटे जाने का बड़ा भय रहता है। यह भय अब व्योम-यानों की बदौलत दूर हो जायगा।

५—अफ़रीक़ा के सहारा को समुद्र बनाने का प्रस्ताव।

अफ़रीक़ा-महाद्वीप में सहारा नाम का एक बड़ा भारी रेतीला मैदान है। वह लगभग दो हज़ार मील लम्बा और एक हज़ार मील चौड़ा है। उसका क्षेत्र-फल कोई छत्तीस लाख वर्ग मील है। उसके उत्तर-पूर्व वाले कोने को छोड़ कर, जिस पर टर्की और इटली का कुछ अधिकार है, शेष सारा मैदान फ़्रान्स के अधीन है। वह प्रायः जन-शून्य पड़ा है। उसमें इधर उधर कुछ जङ्गली जातियाँ तो रहती हैं; परन्तु सभ्य जातियों का उसमें गुज़र ही नहीं। लाखों वर्ग-मील भूमि अभी तक ऐसी है जिसमें सभ्य जाति के किसी मनुष्य का चरण तक नहीं पड़ा। भयङ्कर उष्णता, खाद्य-पदार्थों और पानी की दुर्लभता और रेतीले तूफ़ानों की अधिकता ही उसे अभी तक अगम्य बनाये है।

इस बड़े भारी मरु-स्थल से फ़्रांस को कोई लाभ नहीं। बहुत दिनों से फ़्रांस के बड़े बड़े विज्ञान-वेत्ता इस चिन्ता में थे कि किस प्रकार सहारा उपयोगी बनाया जाय। हाल ही में वहाँ के एक विज्ञान-वेत्ता ने सहारा से लाभ उठाने का एक प्रस्ताव अपने देश वालों के सामने उपस्थित किया है। उसका कथन है कि अफ़रीक़ा के उत्तरी समुद्र-तट से पचास मील लम्बी नहर निकाल कर सहारा से मिला दी जाय। सहारा का अधिकांश समुद्र की सतह से नीचा है। वह इस नहर के पानी से भर जायगा और उसका जो भाग समुद्र की सतह से ऊँचा है वह कितने ही छोटे-बड़े द्वीपों के रूप में परिवर्तित हो जायगा। पानी की कमी के कारण ही सहारा में कोई वनस्पति नहीं उत्पन्न होते। परन्तु इन द्वीपों में, जो इस प्रकार बनेंगे, पानी का टोटा न रहेगा। अतएव उनमें घास-पात और बड़े बड़े पौधे अच्छी तरह पैदा होंगे। उन द्वीपों में पैदा हुई तरकारी आदि मार्सेलीज़ तक जहाज़ पर और तत्पश्चात् रेल पर लद लद कर लगभग ४० घंटे में पेरिस के बाज़ार में भी विक्रयार्थ पहुँच सकेगी। योरप की घनी बस्ती को छोड़ कर लोग इन द्वीपों में बस जायँगे। सहारा में इतना पानी भर जाने से अफ़रीक़ा का जल-वायु भी अच्छा हो जायगा। "सहारा-समुद्र" में जहाज़ चलने लगेंगे और व्यापार की वृद्धि होगी। ऐसा हो जाने पर फ़्रांस को निस्सन्देह बड़ा लाभ होगा। बहुत से विद्वान् इस प्रस्ताव से सहमत हुए हैं।

परन्तु कुछ लोगों को भय है कि अफ़रीक़ा के जल-वायु में परिवर्तन होते ही योरप का जल-वायु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिगड़ जायगा। यदि अफ़रीक़ा की भयङ्कर उष्णता शीत में परिवर्तित हो गई तो उत्तरी योरप के इँगलैंड, डेनमार्क, बेलजियम आदि देशों में ग्रीनलैंड की तरह विकट जाड़ा पड़ने लगेगा। वे बर्फ़ से ढके रहा करेंगे और वहाँ के निवासी या तो भाग कर अन्य देशों में जा बसेंगे, या ग्रीनलैंड के इस्कीमो जाति की तरह वे भी अपना जीवन बितावेंगे। इस प्रस्ताव के विरोधियों का यह भी कथन है कि सम्भव है कि भूमध्य-समुद्र से इतना जल निकल कर सहारा में पहुँच जाने से भूमण्डल की स्थिति पर कोई बुरा असर पड़े। परन्तु गणितज्ञों ने हिसाब लगा कर बताया है कि भूमध्यसागर से बह कर सहारा में पानी भर जाने से पृथ्वी की स्थिति पर कुछ भी असर न पड़ेगा, क्योंकि उधर अटलान्टिक-महासमुद्र भूमध्य-समुद्र की कमी को पूर्ण कर देगा। पृथ्वी की गति पर भी कोई प्रभाव न पड़ेगा, क्योंकि संसार भर के समुद्रों के पानी के सामने प्रस्तावित सहारा-समुद्र का पानी घड़े में एक बूँद के ही बराबर होगा। उत्तरी योरप के देशों के जल-वायु में भी कोई अन्तर न पड़ेगा, क्योंकि उनके जल-वायु की वर्त्तमान अवस्था उन सामुद्रिक उष्ण लहरों पर अवलम्बित है जो उनके तटों पर टकराती हैं। चाहे सहारा समुद्र बन जाय, चाहे रेतीला मैदान ही रहे, जब तक ये उष्ण लहरें उन देशों के तटों पर टकराती रहेंगी तब तक उनका जल-वायु वैसा ही बना रहेगा जैसा अभी है।

६—अमेरिका में चौदह सौ वर्ष की पुरानी इमारतें।

अमेरिका की प्राचीन जातियाँ बिलकुल ही असभ्य न थीं। दक्षिण और मध्य-अमेरिका में बहुधा उनकी सभ्यता के चिह्न मिला करते हैं। हाल ही में, मध्य अमेरिका के गुआटीमाला नाम के राज्य में अमेरिका की प्राचीन जातियों की सभ्यता के कुछ चिह्न और प्राप्त हुए हैं। क्यूरीगुआ नाम के एक प्राचीन नगर के उजड़े हुए स्थल के पास ही १०५ फुट लम्बा और ३२ फुट ऊँचा एक टीला था। अमेरिका के पुरातत्त्व-वेत्ताओं की एक समिति ने उसे खुदाना आरम्भ किया। बड़ी बड़ी दो इमारतें निकलीं। बनावट के ढंग से एक तो मन्दिर मालूम होती है और दूसरी रहने का साधारण घर। इन इमारतों के एक कमरे में पत्थर के भालों की दो बहुत ही सुन्दर नोकें और एक दर्जन से अधिक पत्थर के पात्रों के टुकड़े प्राप्त हुए हैं। एक कमरे में पत्थर के तीन और एक में दो सिर मिले हैं। इन सिरों की पूजा होती रही होगी। शिलाओं पर उत्कीर्ण लेख भी मिले हैं। वे अमेरिका की एक प्राचीन भाषा में हैं। वे अभी तक अच्छी तरह पढ़े नहीं गये। अमेरिका के किसी प्राचीन संवत् की उनमें कई तिथियाँ हैं। वे अच्छी तरह पढ़ ली गई हैं। उनसे पता लगता है कि ये इमारतें चौदह सौ वर्ष की पुरानी हैं।

७—आदम के समय के मनुष्यों की ठठरियाँ।

संयुक्त-राज्य, अमेरिका, की राजधानी वाशिङ्गटन नगर के पास एक गाँव में बाबा आदम के समय के मनुष्यों के ग्यारह ढाँचे मिले हैं। वे भूमि में सात आठ गज़ नीचे गड़े थे। पथरीली होने के कारण भूमि में ज़रा भी नमी न थी। इससे ये ठठरियाँ सड़ने गलने से बच गईं। ठठरियों के सिरों की बनावट कुछ विचित्र सी है। साधारण मनुष्य का माथा सीधा होता है, परन्तु उनका माथा आँखों से ही पीछे की ओर बहुत ढला हुआ है। उनके ऊपरी जबड़े में कुछ दाँत अवश्य हैं, पर नीचे वाले में एक भी दाँत नहीं। जो दाँत हैं भी वे कठोर और कच्ची चीज़ों के खाने से बहुत घिस गये हैं। हड्डियाँ बहुत बड़ी बड़ी हैं। जंघा की हड्डी ही बीस इञ्च है, जिस से पता चलता है कि उनके शरीर की लम्बाई अस्सी इञ्च से कम न रही होगी। उनके ढले हुए माथे इस बात के सूचक हैं कि उनमें बहुत ही कम बुद्धि थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८—जल-हस्ती का आविष्कार।

अफ़रीक़ा के काँगो प्रदेश में एक विलक्षण जल-जन्तु का पता लगा है। पेरिस के अजायबघर के अध्यक्ष ली पेरिट साहब अफ़रीक़ा की सैर को गये थे। वहाँ, काँगो प्रान्त की लियोपोल्ड नामक झील के किनारे वे घूम रहे थे कि उन्हें पाँच बड़े ही अजीब जानवर देख पड़े। साहब को देखते ही वे झील में कूद गये। ये बिलकुल हाथी की शकल के थे; पर डील-डौल में हाथी से कुछ छोटे थे। कान भी उनके कुछ छोटे थे; परन्तु गरदन उनकी हाथी की गरदन से लम्बी थी। उनकी लम्बाई कोई छः फुट रही होगी। वहाँ के निवासियों से पूछने पर मालूम हुआ कि वे लोग इस जन्तु से बहुत अच्छी तरह परिचित हैं। उसका नाम वे जल-हस्ती बतलाते हैं और यथार्थ में वह है भी हाथी ही की जाति का जानवर। कुछ, विद्वानों की राय है कि इस प्रकार के जन्तु पहले बहुत थे। पर अब वे नष्टप्राय हैं। कुछ समय हुआ, एक जानवर की ठठरी एक भूगर्भ-शास्त्र के विद्वान् को मिली थी। उसके आधार पर उसने उसकी सजीवावस्था का जो अनुमान किया था वह अनुमान इस जलहस्ती के शरीर के संगठन से मिलता जुलता है। अतएव, सम्भव है, वह अस्थिपञ्जर इसी जाति के किसी जन्तु का होगा।

९—जल के भीतर ही भीतर चलने की तरकीब।

योरप और अमेरिका में नित नये आविष्कार हो रहे हैं। किस के विषय में लिखें और किस के विषय में न लिखें। कुछ समय हुआ, सरस्वती में एक ऐसी खड़ाऊँ बनाई जाने की सूचना प्रकाशित हुई थी जिसे पहन कर मनुष्य पानी की सतह पर आराम से चल सकता है। अब मालूम हुआ है कि फ़्रांस के एक इंजिनियर ने एक ऐसी कल ईजाद की है जिसे लेकर वह पानी के भीतर ही भीतर ज़मीन पर आराम से चल सकता है। यह कल इतनी छोटी है कि एक फ़ुट लम्बे, छः इञ्च चौड़े और छः ही इञ्च मोटे बकस में आ जाती है। इसमें एक नली रहती है। वह पानी के ऊपर रहती है। उसी के द्वारा मनुष्य साँस लेता है। सीन नामक नदी में इस आविष्कारक ने अपनी कल लगा कर दस पन्द्रह मिनट तक जल के भीतर ही भीतर गमन किया। किनारे पर खड़े हुए लोग इस आश्चर्यमय घटना को देख कर स्तम्भित हो गये। पानी से एम० फरनेज़—यही इन आविष्कारक महाशय का नाम है—के निकलने पर दर्शकों ने हर्षसूचक घनघोर करतालध्वनि की।

१०—एक विचित्र बँदरिया।

अमेरिका के पेन्सिलवेनिया-विश्वविद्यालय के अध्यापक शार्नर बन्दरों की बोली समझने के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। उनके पास कई प्रकार के कितने ही बन्दर हैं। वे उन्हें मनुष्यों की तरह रहने की शिक्षा देते हैं। गोरिला जाति की एक बँदरिया को तो उन्होंने बहुत कुछ सिखा पढ़ा भी लिया है। वह एक अलग कमरे में रहती है। उसकी शिक्षा का पूरा प्रबन्ध है। वह कपड़े पहनती है। पहले तो वह कपड़े पहनाने पर बहुत ही अप्रसन्न हुई; परन्तु अब उसकी यह दशा है कि रात को सोने के समय के सिवा किसी समय भी वह कपड़े उतारती ही नहीं। वह स्वयं ही कपड़े पहन लेती है और स्वयं ही उतार भी देती है। वह मनुष्यों की तरह कुरसी पर बैठ कर काँटे छुरी से भोजन करती है। बिदा होते समय वह हाथ मिलाती है। रङ्गों को वह बहुत अच्छी तरह से पहचानती है। कई रङ्ग के छोटे छोटे सन्दूक़चे उसके सामने रख दिये जाते हैं। जिस रङ्ग का सन्दूक़चा उससे माँगा जाता है उसे ही वह तुरन्त उठा देती है। वह लड़कों के साथ खेलती भी है। वह छिप जाती है और लड़के उसे ढूँढ़ते हैं; लड़के छिप जाते हैं और वह उन्हें ढूँढ़ती फिरती है। लड़के दौड़ते हैं और वह उन्हें छूने के लिए लपकती है; वह दौड़ती है और लड़के उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छूने का प्रयत्न करते हैं। वह कभी कभी ऊँचे खम्भों पर चढ़ जाती है; परन्तु लड़कों को उन पर न चढ़ सकते देख उसे बड़ा आश्चर्य्य होता है। कभी कभी वह किसी छोटे लड़के को खम्भे के पास ले जाती है और उसे उस पर चढ़ाना चाहती है। परन्तु जब वह किसी प्रकार नहीं चढ़ पाता तब वह अपने नेत्रों से और भी अधिक आश्चर्य्य का भाव प्रकट करती है।

११—रेडियम धातु का मूल्य।

आस्ट्रिया, स्वीडन, वेल्स और संयुक्त-राज्य, अमेरिका—इन्हीं चार देशों की खानों से रेडियम अभी तक प्राप्त हुआ है। आस्ट्रिया में वह सबसे अधिक मिला है। संसार में इस समय तक जितना रेडियम प्राप्त हुआ है वह वज़न में पाँच छः तोले से अधिक नहीं। एक अँगरेज़ी कम्पनी ने, जो धातुओं का व्यापार करती है, इस पाँच छः तोले रेडियम का दाम सत्तरह करोड़ रुपया कूता है। रेडियम फोड़ों की चिकित्सा में उपयोगी सिद्ध हुआ है। इस लिए डाक्टरों को उसकी बहुधा आवश्यकता पड़ा करती है। योरप और अमेरिका में कितने ही ऐसे बैङ्क स्थापित हो गये हैं जो रेडियम को किराये पर दिया करते हैं। डाक्टर लोग इन्हीं बैङ्कों में से, डेढ़ दो सौ रुपये प्रतिदिन के किराये के हिसाब से, काँच की एक छोटी सी नली में रेडियम का एक कण किराये पर लेते हैं। यह कण इतना छोटा होता है कि सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र की सहायता बिना दिखाई भी नहीं पड़ता। इससे यह बात अच्छी तरह सिद्ध होती है कि रेडियम कितना बहु-मूल्य पदार्थ है।

१२—एक चित्र पर मेरा वक्तव्य।

सितम्बर की सरस्वती में एक चित्र छपा था। उसके नीचे लिखा हुआ था "अलमोड़े की एक सुन्दरी मन्दिर में पूजा करने जा रही है" यह चित्र कुँवर योगेन्द्रपालसिंह साहब के "संयुक्त-प्रान्तों की पत्थर की कारीगरी" शीर्षक लेख के साथ 'शायद मन्दिर की कारीगरी दिखाने के लिए, प्रकाशित हुआ है। पर मन्दिर का अंश इस चित्र में बहुत ही कम व्यक्त हुआ है।

मेरा वक्तव्य इस चित्र के विषय में इतना ही है कि इस प्रकार का "फ़ैशन" अलमोड़े क्या सारे कूर्म्माञ्चल विभाग में प्रचलित नहीं है। कोई स्त्री इस प्रकार सिर नंगा किये, साड़ी पहने घर के बाहर नहीं जाती। यदि किसी विरला स्त्री ने इस प्रकार का फ़ैशन ग्रहण कर भी लिया तो वह आदर्श कदापि नहीं कही जा सकती। मैं स्वयं कूर्म्माञ्चली हूँ। इससे कूर्म्माञ्चल-प्रदेश की स्थिति को भली भाँति जानता हूँ। एक दो गृह-नारियों ने अपने पति के आदेश से इस प्रकार का फ़ैशन धारण किया है सही, पर वे भी इस हद को नहीं पहुँची हैं कि सारा सिर नंगा हो। न वे इस बात को जानती हैं कि "देवार्चन" किसको कहते हैं।

प्रत्येक स्वदेशानुरागी इस बात का पक्षपाती होगा कि स्त्रियों में उच्च भाव उत्पन्न हों और अज्ञान का पर्दा दूर हो जाय। इस दृष्टि से यह चित्र बड़े महत्त्व का है। पर इसका वर्तमान समय से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि यह भेष कूर्म्माञ्चल में प्रचलित नहीं।

बदरीदत्त पाँडे।

पुस्तक-परीक्षा।

१—**शास्त्रार्थ का विवरण।** गत जुलाई में, अजमेर में, आर्य्यसमाज के अनुयायी स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती और जैन धर्म के अनुयायी श्रीयुत गोपालदासजी बरैया में, परस्पर, हिन्दी में, मौखिक शास्त्रार्थ हुआ था। सिकन्दराबाद-गुरुकुल के अध्यापक पण्डित यज्ञदत्त शास्त्री और न्यायाचार्य पण्डित माणिकचन्द जैन से भी कुछ देर तक संस्कृत में शास्त्रार्थ हुआ था। वही इस पुस्तक में लेखबद्ध प्रकाशित हुआ है। परन्तु इस १२१ पृष्ठों की पुस्तक के केवल ४५ ही पृष्ठों पर शास्त्रार्थ का प्रकाश पड़ा है। अवशिष्ट ७६ पृष्ठ अन्याय, प्रपलाप, प्रलाप, कुत्सा और वितण्डावाद से पूर्ण विज्ञापनों,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखों और उत्तर-प्रत्युत्तरों से घिरे हुए हैं। यदि इस विवरण में लिखी हुई बातें सच हैं तो पक्षपातरहित पाठक के हृदय में इसके पाठ से यह धारणा हुए बिना नहीं रह सकती कि सभ्यताविरहित व्यवहार और वितण्डा में आर्य्यसमाज जितना आगे बढ़ा हुआ है, न्यायानुमोदित शास्त्रार्थ या विचार में वह उतनाही पीछे है। इस से यह न समझना चाहिए कि आर्य्यसमाजियों का पक्ष निर्बल और जैनियों का सबल था। आर्य्यसमाजियों का पक्ष था—सृष्टि का कर्त्ता ईश्वर है। जैनियों का था—सृष्टि का कर्त्ता ईश्वर नहीं। सभ्य और शिक्षित मनुष्य-समुदाय का अधिकांश पहलेही पक्ष का समर्थक है, दूसरे का नहीं। इससे सूचित होता है कि पहलेही पक्ष को सत्यता का अधिक आधार है। परन्तु सत्य को खोज निकालना और उसका स्वीकार करना एक बात है, और किसी को हरा देने के अभिप्राय से शास्त्रार्थ करना दूसरी बात। न्यायशास्त्र का अच्छा पण्डित असत्पक्ष को भी लेकर, सत्पक्ष का आश्रय लेने वाले, पर न्याय-शास्त्र में कम योग्यता रखनेवाले, पण्डित को सहज ही में परास्त कर सकता है। यही कारण है जो इस शास्त्रार्थ में जैनियों के पक्ष का समर्थन अधिक पाण्डित्यपूर्ण और अधिक सबल युक्तियों से किया हुआ मालूम पड़ता है। यह पुस्तक जैनियों ही की छपाई हुई है और श्रीयुत चन्द्रसेन जैन वैद्य, मन्त्री, श्रीजैन-तत्त्वप्रकाशिनी सभा, इटावा से ढाई आने में मिलती है।

❋

२—प्रकाश-पुस्तकालय की पुस्तकें। कैसरगंज, अजमेर के प्रकाश-पुस्तकालय से तीन पुस्तकें, इंडियन प्रेस की मारफ़त, समालोचना के लिए आई हैं। उनके नाम हैं:—(१) विलायती रमणी (२) जापानी राज्यव्यवस्था (३) भारत-महो। पहली और दूसरी पुस्तक ठाकुर गदाधरसिंह की रचना है। तीसरी में ठाकुर साहब ही की दी हुई 'भारतमही' नामक समस्या की पूर्त्तियाँ, हैं जो हरदोई ज़िले के ही पाँच सात कवियों के क़लम से निकली हैं। पूर्त्तियाँ भारतभूमि की प्रशंसा में हैं। अतएव अवश्य ही एक दफ़े पढ़जाने के लायक़ हैं। हाँ ६। ७ और ८ पृष्ठ पर शिखरिणी छन्द में जो पूर्त्तियाँ छपी हैं वे न छपतीं तो ही अच्छा था, क्योंकि उनमें एक नहीं अनेक छन्दो-भङ्ग दोष हैं। इस २८ पृष्ठ की छोटी सी पुस्तक का मूल्य एक आना है। विलायती रमणी स्त्रीशिक्षा-सम्बधिनी अच्छी पुस्तक है। इसमें विलायती स्त्रियों की सांसारिक शिक्षा, समर-शिक्षा, धात्री-शिक्षा, साहित्य, राजनीति, खेल-कूद, स्वास्थ्य-सौन्दर्य और परिधान-प्रपञ्च आदि अनेक बातों का संक्षिप्त वर्णन है। इसके आरम्भ में यदि एक विषय-सूची भी देदी गई होती तो अच्छा होता। आकार छोटा, छपाई काग़ज़ अच्छा, पृष्ठ-संख्या १५६, दाम ६ आना है। जापानी राज्यव्यवस्था नामक पुस्तक का नाम ही उसके विषय की सूचना दे रहा है। परन्तु इसमें जापान की प्रतिनिधि-सत्ताक राज्यव्यवस्था के संक्षिप्त वर्णन के सिवा अपनी सेना को दी हुई मिकाडो की पाँच आज्ञाओं का भी उल्लेख है। पुस्तक पठनीय है। इस में छोटे आकार के ६२ पृष्ठ हैं। छपाई लखनऊ की है। मूल्य ४ आना है। तीनों पुस्तकें पूर्वोक्त प्रकाश-पुस्तकालय से मिल सकती हैं।

❋

३—स्त्री-शिक्षा-विषयक पुस्तक-चतुष्टय। १९०७ की फ़रवरी में इन प्रान्तों के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर ने विज्ञापन द्वारा कन्या-पाठशालाओं के लिए कुछ पुस्तकें माँगी थीं। कई लोगों ने पुस्तकें भेजीं थीं। उन में से इंडियन प्रेस और नवलकिशोर प्रेस की रीडर्स मंजूर हो गईं। वही आज कल पढ़ाई जाती हैं। डाइरेक्टर साहब की आज्ञा पाकर इलाहाबाद के क़ायम मुक़ाम डिपटी इन्सपेक्टर, मदारिस, लाला महानन्दजी ने भी पुस्तकें लिखी थीं। वे अब क्रम क्रम से छप कर प्रकाशित हो रही हैं। उनके नाम और मूल्य आदि नीचे देखिए:—

(१) महानन्द-सुताप्रबोध—प्रिप्रेटरी कक्षा ब के लिए ≡)
(२) महानन्द-विद्याङ्कुर—लोअर प्राइमरी कक्षा १ के लिए ।)
(३) महानन्द-बालाबोधनी—लोअर-प्रायमरी कक्षा २ के लिए ।)
(४) महानन्द-गौरी-बोधनी-अपर प्राइमरी कक्षा ४ के लिए ।)

ये चारों पुस्तकें लाला साहब ने समालोचना के लिए भेजी हैं। ये "Direct Method of Teaching" के उद्देश को ध्यान में रख कर बनाई गई हैं। विषय-निर्वाचन और शिक्षण-प्रणाली से जहाँ तक सम्बन्ध है, इन पुस्तकों के अनेक अंश अच्छे हैं। भाषा भी सरल है। पर दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इनकी भाषा बहुत अशुद्ध है; जगह जगह पर अशुद्ध शब्दों की भरमार है। दो पुस्तकों का नाम तक अशुद्ध है। 'बालबोधनी' की जगह बालाबोधिनी और 'गौरीबोधनी' की जगह गौरीबोधिनी चाहिए। जो कवितायें इन में दी गई हैं वे भी अच्छी नहीं। और और दोषों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिवा उनमें छन्दोभङ्ग तक की बहुलता है। विद्याङ्कुर में गायत्री-मन्त्र की बड़ी ही दुर्दशा हुई है। सन्ध्या और हवन करना, ओङ्कार का ध्यान धरना, प्राणायाम का साधन सीखना भी इनमें है। यदि ये पुस्तकें लड़कियों के सभी स्कूलों में जारी हो जायँ तो आर्य-समाज का उद्देश सिद्ध होने में बहुत दिन न लगें।

❋

४—भारतीय-ज्योतिष-यन्त्रालय-वेध-पथ-प्रदर्शक लेखक जयपुर के राज-ज्योतिषी पण्डित गोकुलचन्द्र भावन। अठारहवीं शताब्दी के मध्य-काल में जयपुर-नगर के निर्म्माता, और ज्योतिष-शास्त्र के धुरन्धर पण्डित, इतिहास-प्रसिद्ध आमेर-नरेश महाराजा सवाई जयसिंह ने जयपुर, काशी, देहली, मथुरा और उज्जयिनी में ज्योतिष-सम्बन्धिनी एक एक वेध-शाला बनवाई थी। जयपुर की वेधशाला की तो बीच बीच में मरम्मत भी होती रही; परन्तु अन्य वेध-शालायें जीर्णशीर्णावस्था में ही पड़ी थीं। हाल ही में जय-पुर के वर्तमान नरेश ने जयपुर, देहली और काशी की वेध-शालाओं की मरम्मत करा दी है। यह पुस्तक इन्हीं वेध-शालाओं की पथ-प्रदर्शक है। जयपुर की वेधशाला में उन्नीस, देहली की वेधशाला में चार और काशी की वेधशाला में आठ यन्त्र हैं। इस पुस्तक में इन्हीं यन्त्रों का विवरण है। अन्त में ज्योतिष के पारिभाषिक शब्दों का स्पष्टीकरण और पण्डित-वैद्यनाथ-रचित तारा-विलास नामक, २४ श्लोक का, तारावर्णन-विषयक एक संस्कृत-निबन्ध भी है। ऐसी पुस्तक की हिन्दी में बड़ी आवश्यकता थी। इसे लिख कर लेखक महाशय ने बड़ा अच्छा काम किया। इसमें यन्त्रों के कुछ चित्र और नक़शे भी हैं। पृष्ठ-संख्या १०४ है। मूल्य आठ आना है। होली दीवा, जयपुर के पते पर लेखक महाशय को लिखने से यह पुस्तक मिल सकती है।

❋

५—अभिनवनिघण्टु—इस नाम का एक निघण्टु पहले छप चुका है। उसी का यह दूसरा भाग है। इसका दूसरा नाम है:—यूनानी द्रव्य-गुण-संग्रह। पण्डित नारायण-दत्त चौबे, मानिक चौक, मथुरा ने इसे तैयार किया है और वही २॥) में बेचते हैं। पुस्तक जिल्द बँधी हुई २६६ पृष्ठ की है। काग़ज़ और छपाई ख़ासी है। ६३१ पदार्थों के नाम इसमें हैं। नाम यथासम्भव संस्कृत, फ़ारसी, अरबी और अँगरेज़ी में भी दिये गये हैं; हिन्दी में तो हैं ही। प्रत्येक वस्तु का स्वाद, स्वरूप, पहचान, स्वाभाविक गुण, सेवन की मात्रा और प्रयोग भी लिखा है। उसके अभाव में कौन चीज़ देनी चाहिए, यह भी है। पुस्तकारम्भ में कुछ वस्तुओं के चित्र भी हैं। निघण्टु अच्छा है; वैद्यों के संग्रह-योग्य है।

❋

६—नूतन चिकित्सा-चक्रवर्त्ती। नाम बड़े रोब का है। मुजर्रबात अकबरी नामक यूनानी-चिकित्सा-पुस्तक का अनुवाद है। अनुवादक कौन है, मालूम नहीं। पर अभिनव-निघण्टु के रचयिता पूर्वोक्त पण्डित नारायणदत्त चौबे ने इसे भी छपा-कर प्रकाशित किया है। इसमें १४२ पृष्ठ हैं और दाम इसका १) है। इसमें एक एक रोग पर अनेकानेक नुसख़े हैं। अनुवाद कहाँ तक ठीक है और नुसख़े कहाँ तक गुणकारी हैं, यह बात बिना परीक्षा के नहीं मालूम हो सकती। यह पुस्तक यूनानी दवाइयों की जाँच करने और उनसे लाभ उठाने की इच्छा रखनेवाले वैद्यों के अवश्य काम की है। पुस्तक की जो कापी चौबे जी ने हमें भेजी है उसमें ग्यारहवाँ फ़ार्म नहीं है।

❋

७—कलियुग-नाटक। लेखक बाबू आनन्दप्रसाद खत्री, ब्रह्मनाल, बनारस। शेक्सपियर के "किंग लियर" नामक नाटक के आधार पर यह पुस्तक लिखी गई है। इस नाटक की शैली प्राचीन नाटकों की सी नहीं, किन्तु पारसी ढंग की है। नाटक अभिनय के योग्य है। काग़ज़ और छपाई साधारण है। ६८ पृष्ठ की इस पुस्तक का मूल्य छः आना है। बाबू जगमोहनदास साह, साहु गोपालदास स्ट्रीट, बनारस सिटी, से मिलती है।

❋

८—शान्ता। पृष्ठ-संख्या १५६। मूल्य आठ आने। लेखक पण्डित ओङ्कारनाथ वाजपेयी। मिलने का पता:—ओङ्कार-प्रेस, इलाहाबाद। यह एक कहानी है। इसमें—"एक आदर्श सच्चरित्रा कन्या का जीवन-वृत्तान्त लिखा गया है"। कहानी अच्छी है; स्त्रियों के पढ़ने लायक़ है। पर चरित्र-चित्रण में कहीं कहीं अस्वाभाविकता, और भाषा में कहीं कहीं शब्दाशुद्धि और विराम-चिह्नों का अभाव खटकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९—सरस-कथामाला। श्रीयुत गनेशीलाल लक्ष्मीनारायण ने लक्ष्मीनारायण-यन्त्रालय, मुरादाबाद से इस नाम की एक मालिका निकालना आरम्भ किया है। इसका पहला फूल है:—द्रौपदी-स्वयम्बर। इसका विषय इसके नाम ही से व्यक्त है। यह एक मराठी पुस्तक का अनुवाद है। पर मूल पुस्तक के लेखक का नाम नहीं। अनुवादक इसके श्रीयुत कृष्णानन्द लीलाधर जोशी हैं। दूसरे फूल का नाम है:—राजा कर्ण की कथा। इसके भी अनुवादक पूर्वोक्त जोशी जी हैं। यह पण्डित विश्राम लक्ष्मण केरेगाँव की मराठी-पुस्तक का अनुवाद है। दोनों पुस्तकों की भाषा सीधी सादी है। कथायें उपदेशपूर्ण और मनोरञ्जक हैं। छोटे छोटे बच्चों और स्त्रियों के लिए विशेष उपयोगिनी हैं। इस तरह की पुस्तकों का जितनाही प्रचार हो उतनाही अच्छा। थोड़े में भारत की प्रसिद्ध प्राचीन घटनाओं और पुरुषों से बच्चों का परिचय करा-देना परमावश्यक बात है।

❋

१०—वैष्णवाचार-प्रदीप। दारागञ्ज, प्रयाग के श्रीरामकृष्णानन्द गिरि बाघम्बरी ने इस ३३ पृष्ठ की पुस्तक की रचना की है। इसमें लेखक महोदय ने अपने मत का मण्डन और श्रीवैष्णव तथा वैष्णव वैरागी आदि को कल्पित मतावलम्बी कह कर उनके आचारादि का खण्डन किया है। मूल्य पुस्तक पर लिखा नहीं।

❋

११—हल्दी घाटी की लड़ाई। लेखक और प्रकाशक, बाबू हरिदास माणिक, मिश्र-पोखरा, बनारस। पृष्ठ-संख्या २०-मूल्य मालूम नहीं। हल्दी घाटी के प्रसिद्ध युद्ध का यह पद्यात्मक वर्णन है। आरम्भ में वीरवर राना प्रताप-सिंह का चित्र है। माणिक महाशय जो माणिक-ग्रन्थमाला निकालते हैं उसका यह दूसरा नम्बर है। कविता में सरसता की कुछ कमी है।

❋

१५—योगमार्गोपदेशिका। पण्डित शिवदत्त शर्म्मा ने इसका सङ्कलन हिन्दी में किया है और श्रीयुत गङ्गाराम उबाना, मन्त्री, आर्य्य-समाज, नसीराबाद (राजपूताना) से दो आने में मिलती है। इसमें योग की मोटी मोटी बातें थोड़े में अच्छे ढँग से लिखी गई हैं।

चित्रपरिचय।

(१)

कैकेयी और मन्थरा।

गत दशहरे पर भारतवर्ष के कई प्रान्तों में रामलीला की खूब धूम मची। समस्त हिन्दू अपने साम्प्रदायिक भेद-भावों को भूल कर रामचन्द्रजी की पवित्र लीलाओं का अनुकरण करने में एक-मन और एक-प्राण हो गये थे। सैकड़ों नहीं, हज़ारों, लाखों वर्ष बीत जाने पर भी, आज हिन्दू-जाति अपने प्राचीन रामराज्य का मानस-सुख अनुभव करके फूली नहीं समाती। यदि रामायण को एक पुष्पित, फलित और हरा भरा वृक्ष माना जाय तो कैकेयी और मन्थरा की संवाद-घटना को उसकी जड़ मानना बहुत ही ठीक होगा। यदि मन्थरा के बहकाने से कैकेयी राम को वनवास की आज्ञा न दिलाती, तो यह स्पष्ट सिद्ध है कि रामायण में ऐसा चमत्कार कदापि न दिखाई देता। इसी कारण कैकेयी और मन्थरा रामायण-रूपी उच्च प्रासाद की मूलाधार मानी गई हैं। सरस्वती की इस संख्या का रङ्गीन चित्र 'कैकेयी और मन्थरा' ही है। पाठक इस चित्र को देखें और इस घटना से सम्बन्ध रखने वाली रामायणी कथा का स्मरण करें तो चतुर चित्रकार के चातुर्य का चमत्कार दिखाई देगा।

(२)

वामनभिक्षा।

इस चित्र को बने कोई ३०० वर्ष हुए। इसका प्रतिबिम्ब इसी संख्या में अन्यत्र दिया जाता है। चित्र का विषय सर्वश्रुत है। वामनजी का पुराने ढँग का छाता देखने लायक़ है। चित्रकार ने सम्मुख खड़े हुए शुक्राचार्य्य का चित्र अङ्कित करने में आचार्य्य का ज़रा भी मुलाहज़ा नहीं किया।

(३)

प्रमीला से मेघनाद की अन्तिम बिदा।

लक्ष्मणजी के साथ अन्तिम युद्ध में प्रवृत्त होने के लिए मेघनाद जाने को तैयार है। अतएव वह अपनी प्रियतमा पत्नी प्रमीला से बिदा हो रहा है। यही इस चित्र का विषय है। इसमें इंडियन प्रेस के चित्रकार बाबू उपेन्द्रकुमार मित्र ने पति-पत्नी दोनों के आन्तरिक भाव बड़ी ही सुन्दरता से अङ्कित किये हैं। यह चित्र मित्र महाशय की ललितकला-कुशलता का अच्छा नमूना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Printed and Published by Apurva Krishna Bose at the Indian Press, Allahabad.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

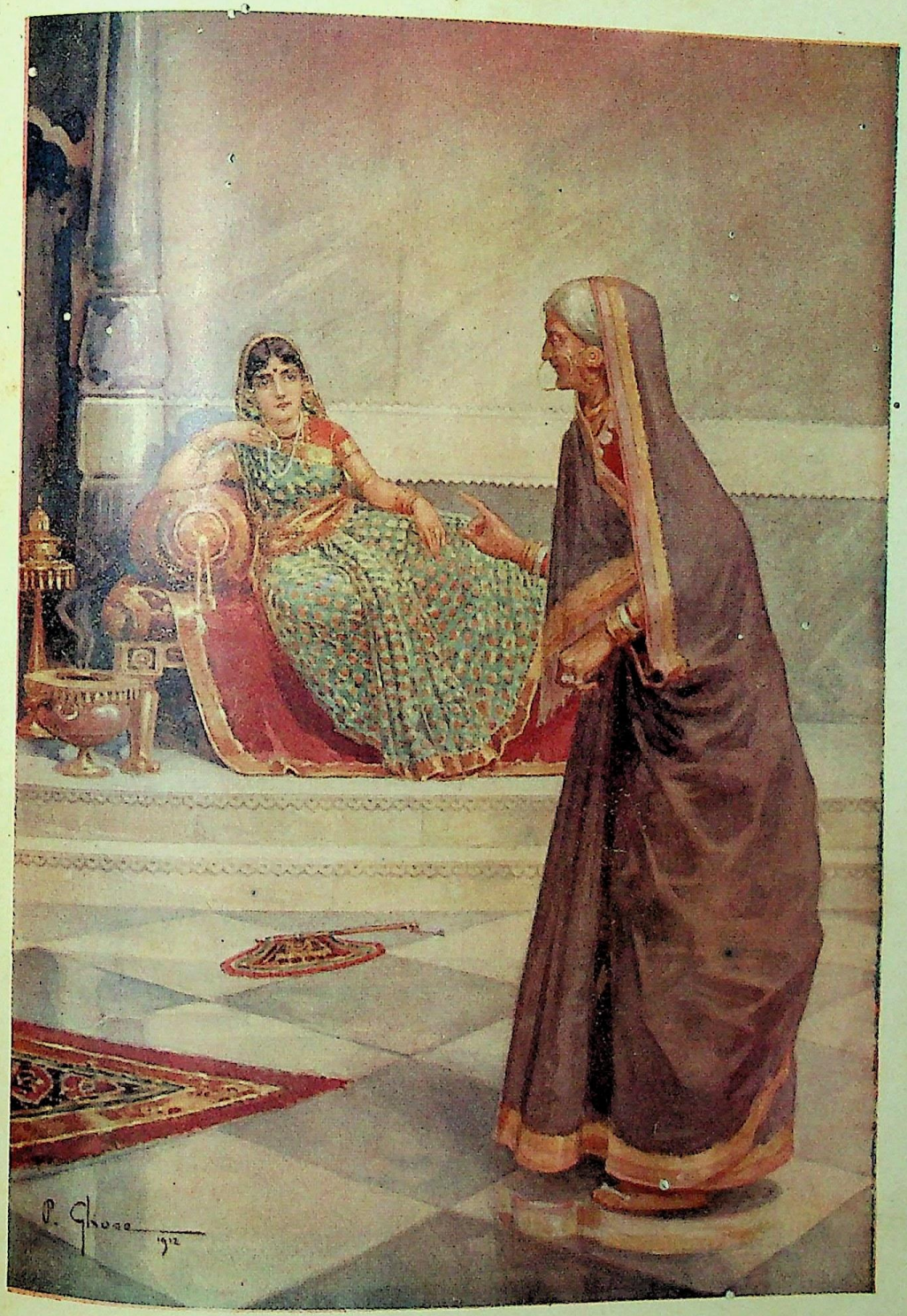

कैकेयी और मन्थरा ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामन-भिक्षा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमीला से मेघनाद की अन्तिम बिदा।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर० 13(12)

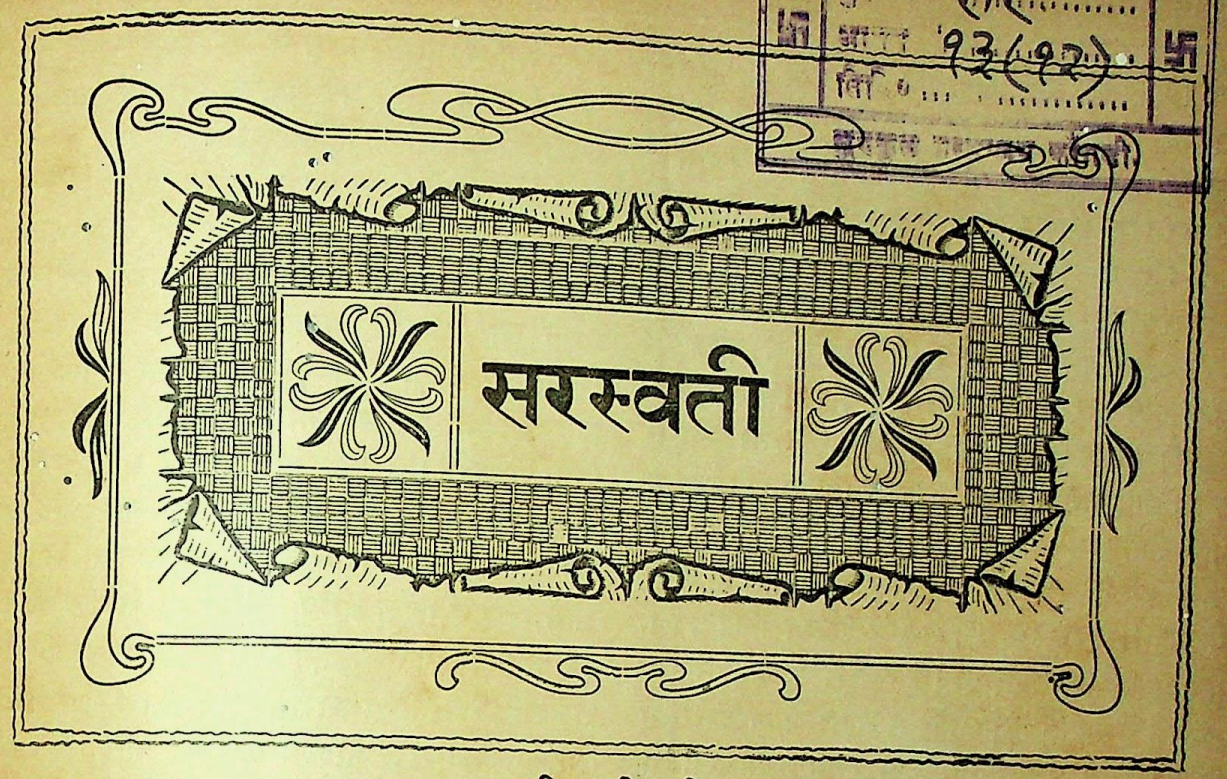

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग १३] १ दिसंबर, १९१२—मार्गशीर्ष कृष्ण ७, १९६९। [संख्या १२

बीकानेर में महोत्सव।

बीकानेर राजपूताने का एक प्रसिद्ध देशी राज्य है। उसका क्षेत्र-फल लगभग चौबीस हज़ार वर्ग-मील है। अवध प्रान्त उससे थोड़ा ही बड़ा है। १९०१ में, उसकी जन-संख्या लगभग छः लाख थी। १८९९ में वहाँ घोर दुर्भिक्ष था। इस लिए, १९०१ में, वहाँ की जन-संख्या बहुत घट गई थी। परन्तु अब पहले से वह अधिक है। राज्य की आमदनी प्रति वर्ष २१ लाख रुपये से ज़ियादह है। बीकानेर राज्य के निवासी ऊनी वस्त्र और पत्थर, हाथीदाँत, पीतल तथा अन्य धातुओं पर नक़्क़ाशी के लिए प्रसिद्ध हैं। बीकानेर, चूरू, राजगढ़, रत्न-गढ़ और रेनी—ये राज्य के मुख्य क़सबे हैं। बीकानेर राजधानी है। उसकी आबादी लगभग साठ हज़ार है। उसके चारों ओर पत्थर की एक दीवार है, जो पाँच से लेकर दस गज़ ऊँची, दो गज़ चौड़ी और साढ़े तीन मील घेरे में है। नगर से थोड़ी ही दूरी पर प्राचीन दुर्ग है।

पन्द्रहवीं शताब्दी में, जोध-पुर नगर के निर्म्माता जोधा जी के पुत्र बीकाजी ने अपने नाम पर इस राज्य की नींव डाली। १५०४ में बीका जी का देहान्त हुआ। उनके उत्तराधिकारियों ने इस राज्य को और भी विस्तीर्ण बनाया। मुग़लों के शासन-काल में इस राज्य ने बड़ी उन्नति की। जिन राजपूत राजाओं ने मुग़ल-साम्राज्य फैलाने के लिए, अकबर की अध्यक्षता में, बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ लड़ीं उनमें बीकानेर के तत्कालीन नरेश भी थे। अकबर बीकानेर के राजाओं का बहुत सम्मान करता था और उन्हें अपने साम्राज्य के मुख्य स्तम्भों में समझता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। अकबर और जहाँगीर के समय में, मुग़ल-राज-वंश और बीकानेर-राज-वंश परस्पर प्रीति-सूचक सूत्रों से और भी दृढ़ता से बँध गये। मुग़लों के पतन के साथ ही बीकानेर का राज्य भी पहले की सी उन्नतावस्था में न रह सका। उसे घरेलू झगड़ों में फँसना पड़ा, और, अन्त में, १८१८ तक, उसे अपनी सारी शक्ति इन्हीं झगड़ों में ख़र्च कर देनी पड़ी। १८१८ में, राजपूताना के लगभग सभी राज्यों ने ईस्ट इंडिया कम्पनी की संरक्षकता स्वीकार की। बीकानेर ने भी यही किया। तब से बीकानेर के नरेश, समय समय पर, अँगरेज़ों की सहायता करते रहे। अफ़ग़ान और सिक्ख-युद्ध में बीकानेर के महाराज रत्नसिंह जी ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को, कई प्रकार से, मदद दी। १८५७ में सिपाही-विद्रोह हुआ। उस समय बीकानेर में महाराज सरदारसिंह राज्य करते थे। उन्होंने, उस समय, अँगरेज़ों की बड़ी सहायता की। जब देश में शान्ति हुई और देश का शासन महारानी विक्टोरिया ने अपने हाथ में लिया, तब गवर्नमेंट की ओर से महाराज सरदार-सिंह को, उनकी सहायता के उपलक्ष्य में, कुछ इलाक़ा मिला। १८७२ में, महाराज सरदारसिंह का देहान्त हुआ। उनके कोई पुत्र न था। उनकी विधवा रानी ने, भारत-सरकार की अनुमति से, महाराज डूंगरसिंह को गोद लिया। महाराज डूंगरसिंह का भी, १८८७ में, शरीरान्त हो गया। उनके भी कोई पुत्र न था। परन्तु, उन्हों ने, अपने जीवनकाल में ही, अपने कनिष्ठ भ्राता वर्तमान महाराज गङ्गा-सिंह जी को गोद ले लिया था।

महाराज गङ्गासिंहजी का जन्म, १८८० में, हुआ था। अजमेर के मेयो कालेज में आपको शिक्षा मिली। १८ वर्ष के होने पर, १८९८ में, आपको राज्याधिकार प्राप्त हुए। आप बड़े वीर हैं। समय समय पर, युद्ध-सम्बन्धी मामलों में, आपने भारत-सरकार की अच्छी सहायता की है। १९०१ में, चीन पर चढ़ाई के समय, अपनी ऊँट-सवार सेना सहित आप स्वयं रण-क्षेत्र में पधारे थे। १९०४ में, आपकी ऊँट-सेना ने शुमालीलैंड में भी बहुत काम किया। आप शासक और प्रबन्धकर्त्ता भी बड़े अच्छे हैं। पहले की अपेक्षा बीकानेर राज्य अधिक उन्नत है। राज्य में पहले रेल न थी; ऊँटों द्वारा ही सारा काम चलता था। अब आपकी बदौलत बीकानेर की मरु-भूमि भी रेलों से सुसज्जित हो गई है और होती जारही है। आपही की कृपा से राज्य में शिक्षा का प्रचार भी ख़ूब हो रहा है। आपके गुणगणों की प्रशंसा भारत-सरकार ने भी उचित रीति से की है। उसने आपको प्रथम श्रेणी के क़ैसर-हिन्द का पदक, और जी० सी० आई० ई० तथा के० सी० एस० आई० की उच्चता-सूचक उपाधियाँ प्रदान की हैं। इस समय, उपाधियों सहित आपका पूरा नाम है—कर्नल, हिज़ हाइनेस, महाराजाधिराज, राजराजेश्वर, नरेन्द्र-शिरोमणि महाराज सर श्रीगङ्गा-सिंहजी बहादुर, जी० सी० एस० आई, जी० सी० आई० ई, ए० डी० सी, एल० एल० डी०।

महाराज को राज्य करते पच्चीस वर्ष हो चुके। इसी उपलक्ष में, गत २० से २८ सितम्बर तक, बीकानेर-राज्य में बड़ी ख़ुशी मनाई गई और महोत्सव किये गये। उपवन-भोज हुए। सैनिक खेल खेले गये। बड़े बड़े जुलूस निकले और ख़ूब रोशनी हुई। सैनिकों की क़वायदें हुईं और उन्हें झंडे प्रदान किये गये। डूंगर-मेमोरियल कालेज खोला गया। बायस्कोप के तमाशे हुए। पाठशालाओं में पारितोषिकों का वितरण हुआ। व्यायाम-शालाओं और पोलो के मैदानों में ख़ूब चहल-पहल रही। २४ सितम्बर को तीसरे पहर और सन्ध्या-समय महाराज को बहुत से अभिनन्दन-पत्र दिये गये और नाच-रङ्ग की धूम रही। उसी दिन प्रातःकाल के दरबार में महाराज ने अपनी प्रजा को अनेक वर-दान दिये। उन्हें प्राप्त करके बीकानेर-निवासी बड़े ही प्रसन्न हुए। वे वरदान थे भी बड़े महत्त्व के। उन्हें भी संक्षेप में सुनिए:—

प्रजा-प्रतिनिधि-सभा की सृष्टि की जायगी, जिस-से राज्य के ख़र्च के चिट्ठे और क़ानून बनाने तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराजाधिराज सर श्रीगङ्गासिंहजी बहादुर, जी० सी० आई० ई०, जी० सी० एस० आई०, एलएल० डी० ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीकानेर का राज-प्रासाद—पूर्वी दृश्य ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

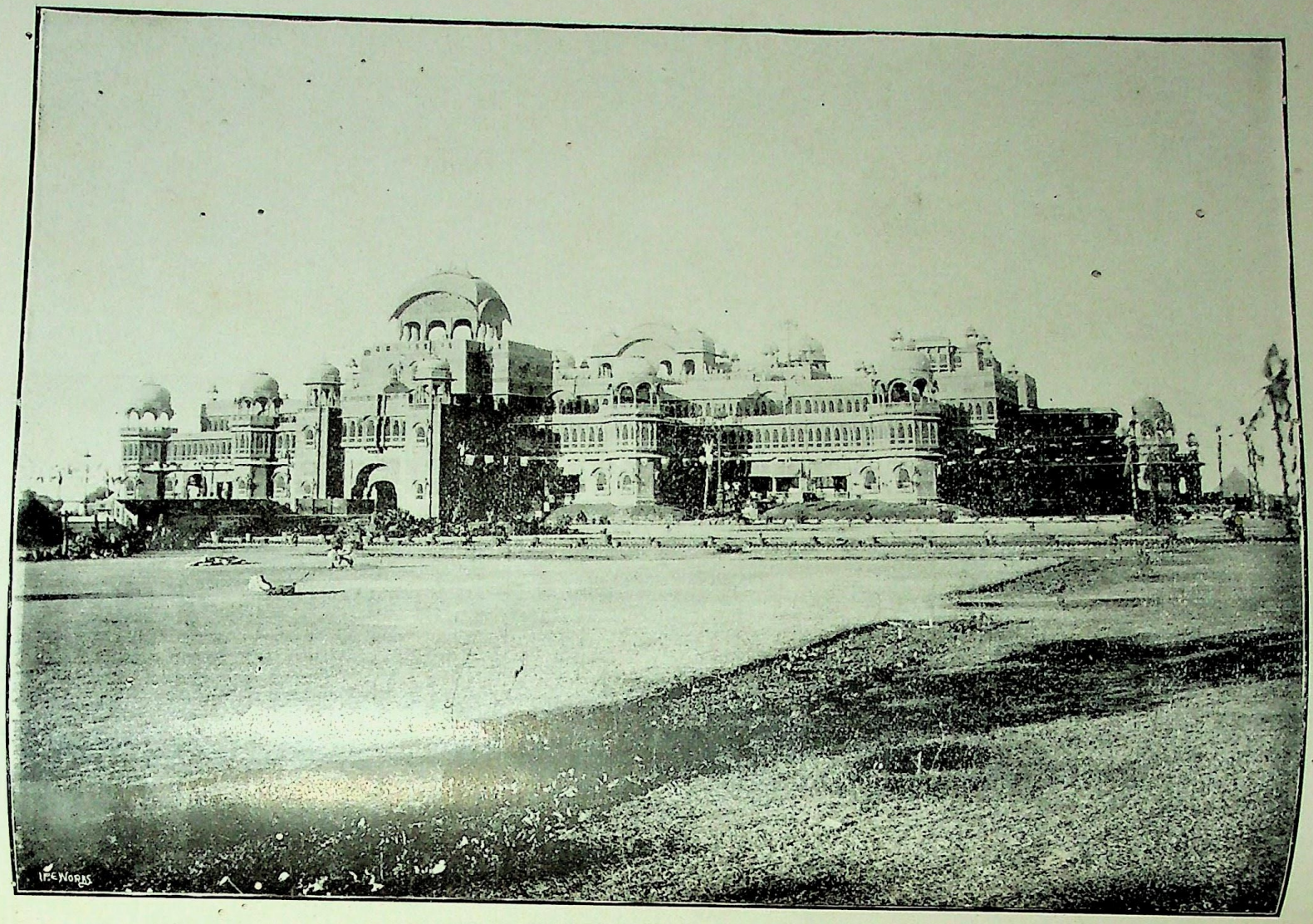

बीकानेर का राज-प्रासाद—पूर्ण दृश्य ।

संकिशन प्रेस, प्रयाग ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

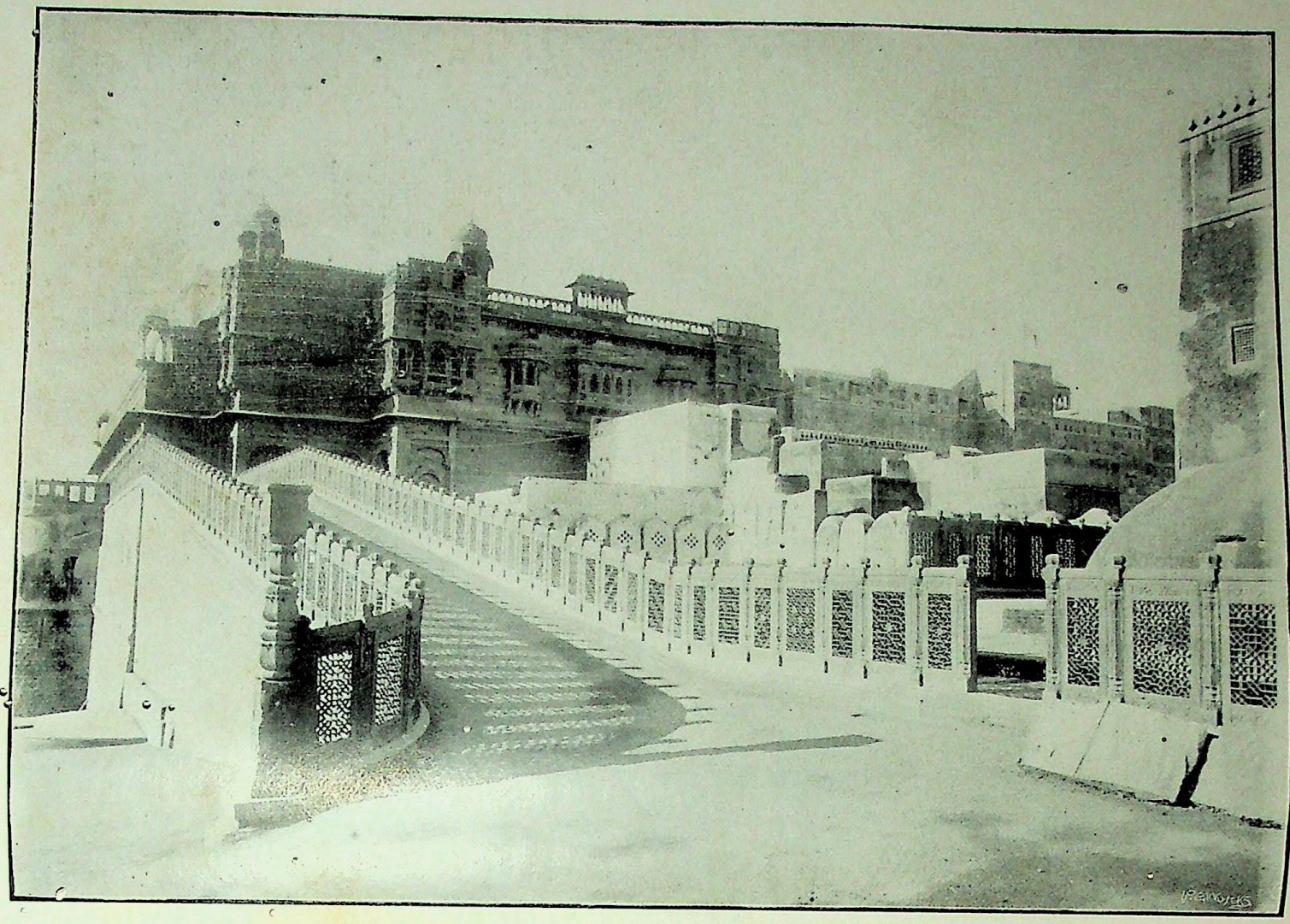

बीकानेर के क़िले का एक अंश।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

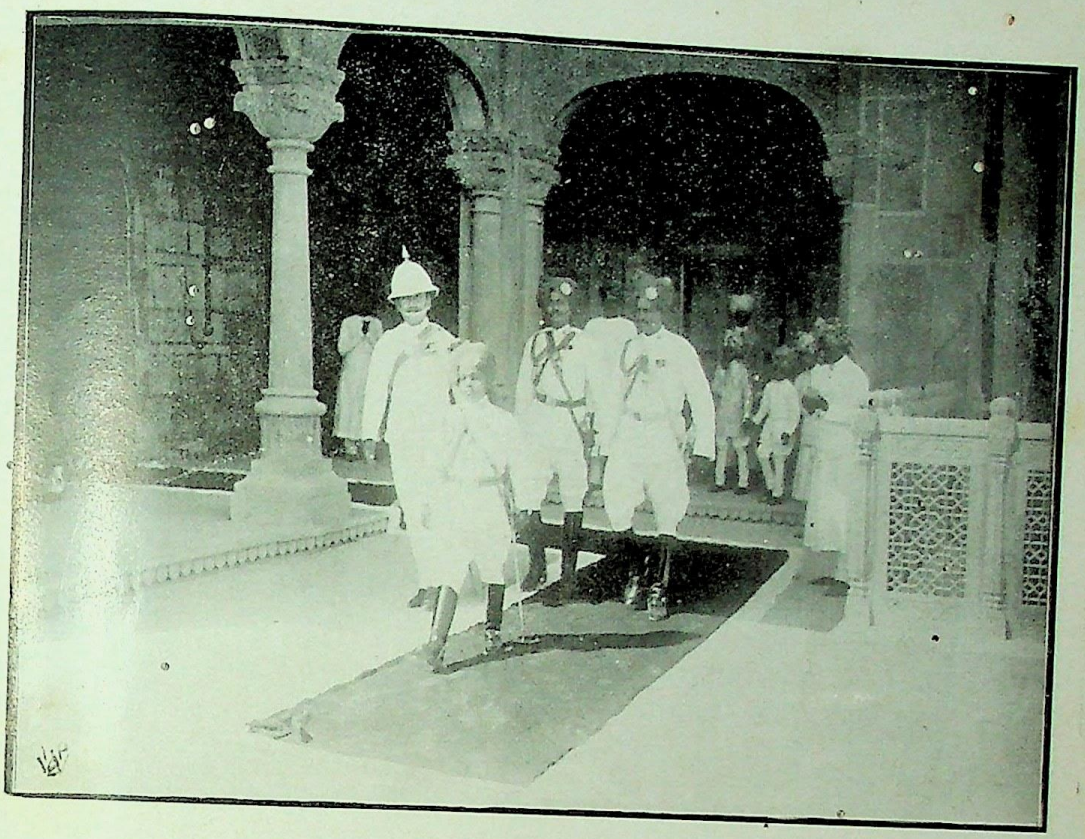

महाराज-कुमार और उनके अभिभावक, कर्नल वेक, दरबार से लौट रहे हैं।

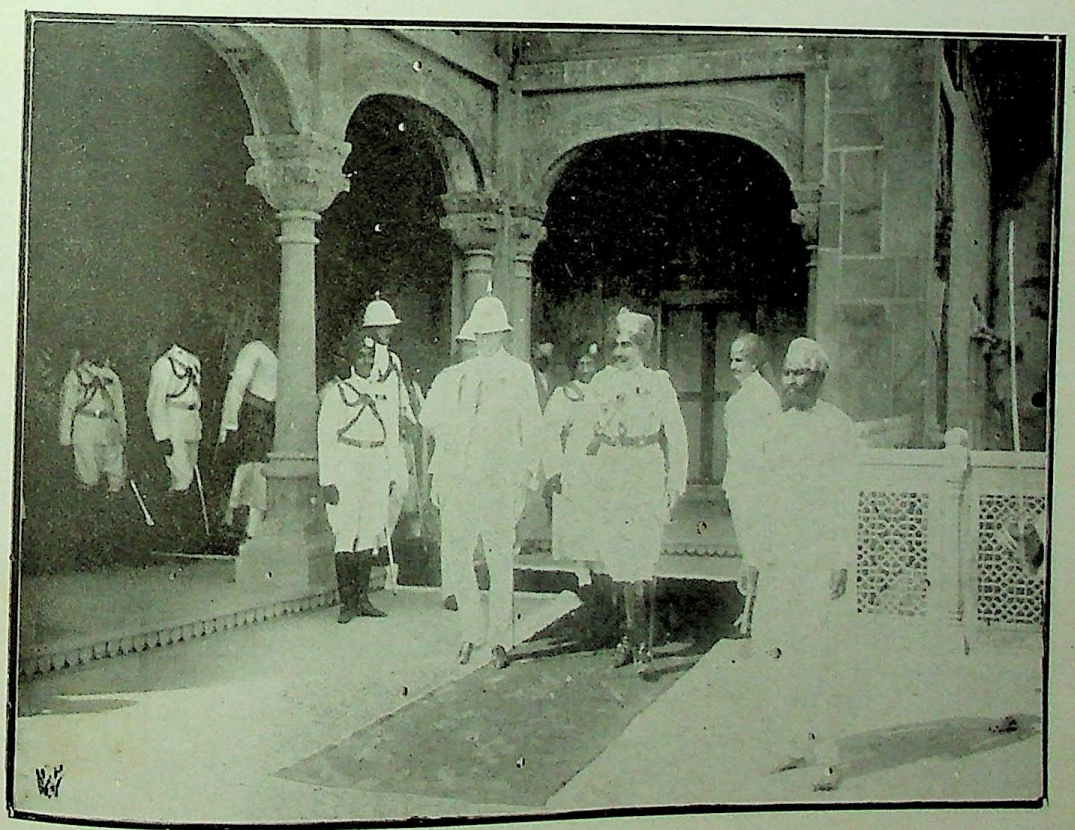

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

बीकानेर-नरेश रेज़िडेंट साहब के साथ दरबार-स्थान से जा रहे हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

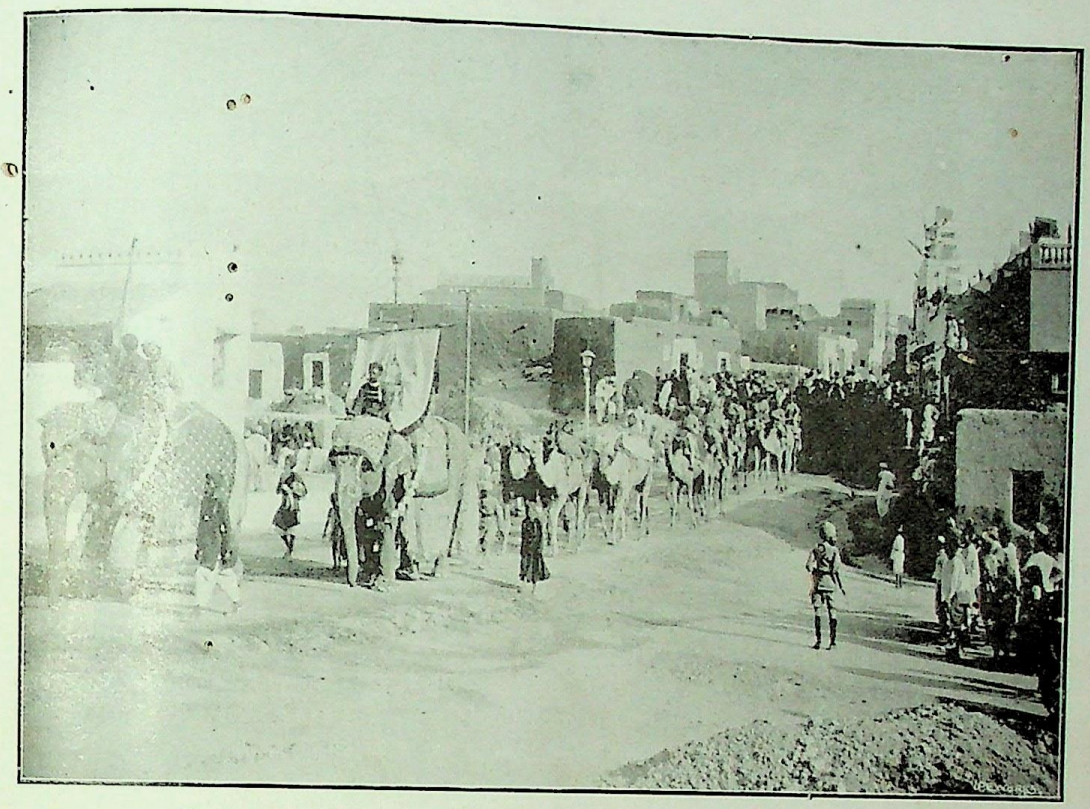

महोत्सव-सम्बन्धी जुलूस—राजकीय गजराज झंडों सहित आगे बढ़ रहे हैं।

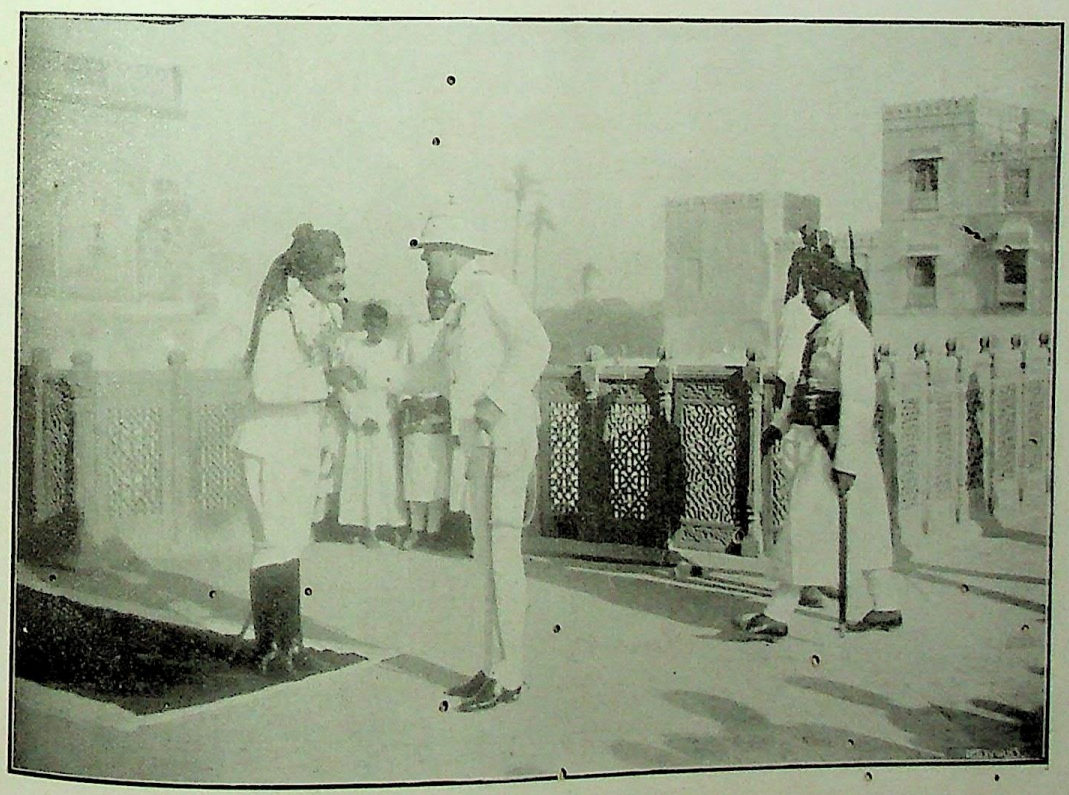

दरबार के समय बीकानेर-नरेश रेज़िडेंट साहब का स्वागत कर रहे हैं।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

महोत्सव-सम्बन्धी जुलूस—बीकानेर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

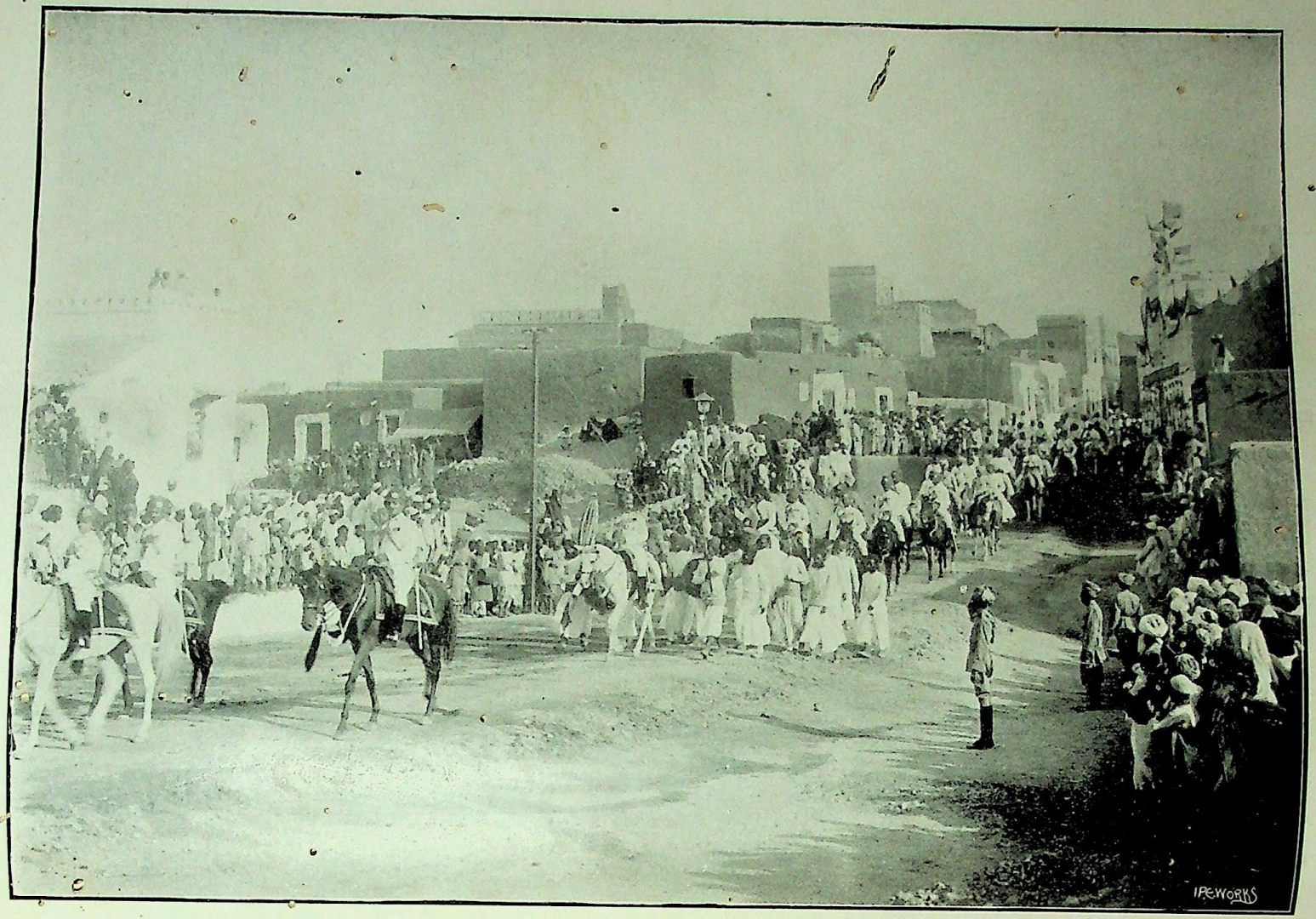

महोत्सव-सम्बन्धी जुलूस—बीकानेर ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने हित के प्रस्ताव पेश करने में प्रजा अपने प्रतिनिधियों द्वारा राय दे सके। म्युनिसिपैलटियों के अधिकार बढ़ाये जायँगे। दीवानी के छोटे छोटे मुक़द्दमों का फ़ैसला करने के लिए गाँवों में पंचायतें स्थापित की जायँगी। कुछ समय के उपरान्त सरकारी दफ़्तरों में हिन्दी-भाषा और नागरीलिपि का प्रचार होगा। धान पर लगाये गये कर से एक लाख रुपये से अधिक की वार्षिक आमदनी थी। यह कर अब न लगेगा। जवाहिरात और निज के व्यवहार के सोने-चाँदी के ज़ेवरों पर भी कर न देना पड़ेगा। पीतल और पत्थर पर जो कर था वह घटा दिया गया। शिक्षा-सम्बन्धी भी कई सुधार होंगे। शिक्षा-विभाग के लिए एक अध्यक्ष नियत किया जायगा। दरबार हाई स्कूल, कालेज बना दिया गया। सरदार-स्कूल में छात्र-वृत्तियाँ बढ़ाई जायँगी और उसमें, पचीस हज़ार की लागत का एक बोर्डिंग-हाउस बनेगा। औद्योगिक शिक्षा के लिए राज्य के छात्रों को छात्र-वृत्तियाँ दी जाया करेंगी। ऐसी अध्यापिकायें नियत होंगी जो परदे में रहने वाली स्त्रियों को उनके ही घर पर पढ़ा आया करेंगी। राजधानी में एक ज़नाना अस्पताल खोला जायगा। राज्य के दो एक क़सबों में भी अस्पताल खोले जायँगे।

इन सब बातों से बीकानेर वालों को बहुत लाभ पहुँचेगा। महाराज ने अपने दफ़्तरों की भाषा हिन्दी करदी। इससे बीकानेर वालों का तो हित होगा ही—क्योंकि हिन्दी उनकी मातृ-भाषा है और उसके राज-भाषा न होने से उन्हें अब तक कई तरह की तकलीफ़ें उठानी पड़ती थीं; परन्तु, साथ ही, महाराज के इस काम से, हिन्दी-सेवियों के हृदय में, हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने के लिए, एक नवीन बल का सञ्चार अवश्य होगा। हिन्दी के पक्षपाती महाराज के इस कार्य्य से बहुत सन्तुष्ट हुए हैं। आशा है, महाराज हिन्दी-साहित्य की उन्नति के लिए भी कोई प्रबन्ध करेंगे।

२५ नवम्बर से २ दिसम्बर १२ तक भारत के वाइस राय, लार्ड हारडिंग की स्थिति बीकानेर में होगी। उस समय एक और भी महोत्सव होगा। यह महोत्सव सितम्बर के महोत्सव से भी बढ़ कर होगा। इस महोत्सव के लिए बड़ी बड़ी तैयारियाँ हुई हैं। वह सरस्वती की इस संख्या के निकलने के पहले ही हो चुकेगा। ईश्वर करे वह भी सफलतापूर्वक समाप्ति को पहुँचे।

राव-बहादुर रङ्गनाथ नृसिंह मुधोलकर, बी० ए०, एल० एल० बी०।

इस वर्ष, अमरावती के सुप्रसिद्ध देशभक्त राव-बहादुर रङ्गनाथ नृसिंह मुधोलकर इंडियन नेशनल कांग्रेस के सभापति निर्वाचित हुए हैं। १८५७ में आपका जन्म हुआ था। आपके पूर्वजों का पेशवाओं के दरबार में बड़ा मान था। १८७३ में, आपने इन्ट्रन्स परीक्षा पास की। तदुपरान्त आप बम्बई के एलफिन्सटन कालेज में पढ़ने लगे। दयाराम गीदूमल, न्यायमूर्ति चन्दावरकर, श्रीयुत वी० जी० भाण्डारकर आदि कितने ही सुप्रसिद्ध भारतीय विद्वान्, कालेज में, आपके सहपाठी थे। आपकी कुशाग्र-बुद्धि पर आपके अध्यापक बड़े ही प्रसन्न रहते थे। १८७३ में आपने बी० ए० पास किया। उसी वर्ष आप अपने ही कालेज में इतिहास, अर्थ-शास्त्र और न्याय के अध्यापक हो गये। पढ़ाने से जो समय बचता उसमें आप क़ानूनी परीक्षा देने के लिए तैयार होने लगे। १८८० में आपने वकालत की परीक्षा भी पास कर ली। आप एल० एल० बी० हो गये। कुछ दिनों तक तो आप बरार के अकोला नगर में वकालत करते रहे; फिर अमरावती चले आये। वहाँ आपकी वकालत ख़ूब चली।

आरम्भ से ही मिस्टर मुधोलकर की रुचि सार्वजनिक कार्य्यों की ओर बहुत थी। बरार में क़दम रखते ही वे उस प्रान्त के सार्वजनिक कार्य्यों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और भी अधिक योग देने लगे। १८८६ में अपने मित्र मिस्टर एम० वी० जोशी की सहायता से उन्होंने बरार-सार्वजनिक सभा की नींव डाली। सभा अच्छी चली और उससे बरारवालों को बहुत लाभ पहुँचा।

मिस्टर मुधोलकर राजनीति को अर्थ-शास्त्र से अलग नहीं समझते। उनका मत है कि बिना देश की आर्थिक उन्नति के राजनैतिक उन्नति नहीं हो सकती। इसलिए वे औद्योगिक आन्दोलनों में भी शरीक होने लगे। उन्होंने स्वयं व्यापार में हाथ डाला। वर्षों उन्हें हानि उठानी पड़ी। इस पर लोगों ने उनकी हँसी भी उड़ाई, परन्तु उन्होंने इसकी कुछ भी परवा न की। अन्त में उन्हें अपने व्यवसाय में लाभ होने लगा। इस समय वे अमरावती और अकोला की दो तीन बड़ी बड़ी व्यावसायिक कम्पनियों के पूरे कर्ता धर्त्ता बन बैठे हैं।

मिस्टर मुधोलकर व्यापार कर के ही चुप न रहे; उन्होंने औद्योगिक शिक्षा के प्रचार के लिए भी बहुत ज़ोर मारा। बड़ी बड़ी कोशिशों के बाद उन्होंने बरार में महारानी विक्टोरिया के स्मारकस्वरूप शिल्प-कला का एक अच्छा विद्यालय स्थापित करा कर ही छोड़ा। उन्होंने इस बात के लिए भी बहुत प्रयत्न किया कि भारत भर के लिए भी एक ऐसा ही महा-विद्यालय स्थापित हो जाय। १९१० के अन्त में उन्होंने वायसराय की व्यवस्थापक सभा में यह प्रस्ताव बड़े ज़ोर के साथ पेश किया कि कानपूर में शिल्प-कला का एक महा-विद्यालय स्थापित किया जाय, जिसमें उच्च कक्षा की औद्योगिक शिक्षा का प्रबन्ध हो। दुःख की बात है कि उस समय उनका वह प्रस्ताव पास न हो सका। पर, अब, गवर्नमेंट कानपूर में ऐसा कालेज खोलना चाहती है। उन्हीं के उद्योग से, १९०६ में, भारतीय औद्योगिक कान्फ्रेन्स (Indian Industrial Conference) का जन्म हुआ। वे ही उसके मन्त्री हुए। आज, गत पाँच छः वर्षों से, यह कान्फ्रेन्स बराबर हो रही है। मिस्टर मुधोलकर ही उसके प्राण हैं।

१८८८ से वे कांग्रेस के कामों में शरीक होने लगे। दूसरे ही वर्ष वे भारतीय व्यवस्थापक सभाओं के सुधार की ओर इँगलेंड के राजनीति-विशारदों का ध्यान आकर्षित करने के लिए, बाबू सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी के साथ, विलायत गये। वे अपने इस काम में बहुत कुछ कृत-कार्य्य भी हुए।

१८९७ में उन्होंने कांग्रेस का जलसा अमरावती में कराया। उस वर्ष भारत का राजनैतिक आकाश मेघाच्छन्न हो रहा था। पूने में दो अँगरेज़ मार डाले गये थे। मिस्टर तिलक पर राज-द्रोह का मुक़द्दमा चल रहा था। बेचारे कांग्रेसवाले राज-द्रोही समझे जाते थे। उस समय प्रश्न यह था कि कांग्रेस हुआ करे या इसकी अन्त्येष्टि-क्रिया ही कर दी जाय। पर मिस्टर मुधोलकर के साहस और दूरदर्शिता के कारण उसका किसी तरह तत्कालीन सङ्कटों से उद्धार होगया।

मिस्टर मुधोलकर का गवर्नमेंट भी बहुत मान करती है। उनके प्रान्त की बातों में गवर्नमेण्ट उनसे सदा सलाह लेती है। १९१० में, वे वायसराय की व्यवस्थापक सभा के सदस्य निर्वाचित हुए। उक्त सभा में भी उनका काम अच्छा ही रहा। यदि कहीं वे प्रेस-ऐक्ट-सम्बन्धी मसविदे के पक्ष में अपनी सम्मति प्रकट न करते—यद्यपि उस सम्मति में भी उन्होंने अपने देश के समाचारपत्रों का पक्ष बिलकुल ही नहीं छोड़ा था—तो, आज, उनके देशवासी उनके व्यवस्थापक-सभा-सम्बन्धी कामों से और भी प्रसन्न होते।

मुधोलकर जी बड़े स्वदेश-प्रेमी हैं। अपने दरिद्र देश-भाइयों की सहायता करने के लिए वे सदा उत्सुक रहते हैं। १८८६ में बरार में घोर दुर्भिक्ष पड़ा। उन्होंने तुरन्त ही एक दुर्भिक्ष-कोष स्थापित कर दिया और घूम घूम कर दुर्भिक्ष-पीड़ित लोगों की सहायता करने लगे। जो इतने वृद्ध अथवा निर्बल थे कि काम न कर सकते थे, उनके लिए भोजन का, और अन्यों के लिए सस्ते भाव पर अन्न मिलने का, उन्होंने प्रबन्ध कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

माननीय रावबहादुर आर० एन० मुधोलकर ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८९९ में फिर बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा। इस बार, फिर भी, उन्होंने पूर्ववत् तन, मन और धन से दुर्भिक्ष-पीड़ित देश-वासियों की सहायता की। गवर्नमेंट ने उनके इन कामों से प्रसन्न होकर उन्हें राव-बहादुर की उपाधि प्रदान की।

मिस्टर मुधोलकर समाज-सुधार के भी पक्षपाती हैं। परन्तु वे वही सुधार करना चाहते हैं जो शास्त्र-सम्मत हैं। वे बाल-विधवा-विवाह को अच्छा समझते हैं, परन्तु वर्ण-व्यवस्था पर हाथ साफ़ करने वालों में नहीं हैं। वे लेखक भी अच्छे हैं। कुछ दिनों तक 'विदर्भ' नाम के पत्र का वे सम्पादन करते रहे थे। जबसे वह बन्द होगया तबसे बम्बई के इन्दु-प्रकाश ही में वे बहुधा लिखते रहे हैं।

मिस्टर मुधोलकर देश के उन थोड़े से आदमियों में से हैं जिन्होंने देश-हित का कुछ काम किया है। वर्षों पहले, जब स्वदेशी आन्दोलन का नाम तक न था, वे इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि देश का उद्धार केवल बड़ी बड़ी बातों से ही नहीं हो सकता। उसके लिए काम करने की भी ज़रूरत है। देश में ऐसे आदमी तो बहुत हैं जो यह जानते हैं कि देश का कल्याण अमुक बातों से हो सकता है, परन्तु उनमें अपने विचारों के अनुसार काम करने वाले बहुत ही थोड़े हैं। मिस्टर मुधोलकर उन्हीं आदमियों में से हैं जो जिस बात को अच्छा समझते हैं उसे करते भी हैं। स्वदेशोन्नति के कामों में इस प्रकार योग देने वाले मिस्टर मुधोलकर अपने अकर्मण्य देशभाइयों के लिए उदाहरण-स्वरूप हैं।

अतीत भारत के वीरों की वीरता और शासकों की महत्ता।

(भारत-भारती से उद्धृत)

ये कर्म्मवीर कि मृत्यु का हम ध्यान भी धरते न थे;
ये युद्ध-वीर कि काल से भी हम कभी डरते न थे।
थे दान-वीर कि देह का भी लोभ हम करते न थे;
थे धर्म-वीर कि प्राण के भी मोह पर मरते न थे॥ १॥
वे सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी वीर कैसे थे बली;
थे जो अकेलेही मचाते शत्रु-दल में खलबली।
होते न वे यदि चक्रवर्ती भूप दिग्विजयी यहाँ,
होते भला फिर अश्वमेध कि राजसूय कहो कहाँ॥ २॥
थे भीम-तुल्य महाबली, अर्जुन-समान महारथी,
श्रीकृष्ण लीलामय हुए थे आप जिन के सारथी।
उपदेश गीता का हमारा युद्ध का ही गीत है,
जीवन-समर में भी जगत को दे रहा जो जीत है॥ ३॥
हम थे धनुर्वेदज्ञ जैसे और वैसा कौन था?
जो शब्द-बेधी बाण छोड़े, शूर ऐसा कौन था?
हाँ, मत्स्य जैसे लक्ष्य-वेधक धीर धन्वी थे यहाँ;
रिपु को गिरा कर अस्त्र पीछे लौट आते थे यहाँ॥ ४॥
थी चञ्चला कीसी चमक या शीघ्रता सन्धान की;
कृतहस्तता ऐसी कि गति थी हाथ मेंही बाण की।
मुहँ खोल कुत्ता भूँकने में बन्द फिर जब तक करे।
भर जाय मुख तूणीर सा, पर बात क्या जो वह मरे॥५॥
जिसके समक्ष न एक भी विजयी सिकन्दर की चली!
वह चन्द्रगुप्त महीप था कैसा अपूर्व महाबली;
जिससे कि सिल्यूकस समर में हार तो था लेगया;
कान्धार आदिक देश देकर निज सुता था देगया॥ ६॥
जो एक सौ-सौ से लड़ें ऐसे यहाँ पर वीर थे;
सम्मुख समर में शैल-सम रहते सदा हम धीर थे!
शङ्का न थी; जब जब समर का साज भारत ने सजा—
जावा, सुमात्रा, चीन, लङ्का सब कहीं डङ्का बजा॥ ७॥
मोहे विदेशी वीर भी जिस वीरता के गान से।
जिस पर बने हैं ग्रन्थ रासो और राज-स्थान से।
थी उष्णता वह उस हमारे शेष शोणित की अहा;
था जो महाभारत-समर में नष्ट होते बच रहा॥ ८॥
क्षत्रिय मुसल्मानी समय में भी रहे रक्षक यहाँ;
पड़ती कठिनता थी जहाँ जाते वही तो थे वहाँ।
नृप-मान-कृत काबुल-विजय की बात सब को ज्ञात है;
दृढ़ता शिवाजी के निकट जयसिंह की विख्यात है॥ ९॥
क्षत्राणियाँ भी वैरियों से हैं यहाँ निर्भय लड़ीं;
इतिहास में उनकी कथायें हैं अनेक भरी पड़ीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देकर विदा युद्धार्थ पति को प्रेमवल्ली सी खिलीं;
यदि फिर न भेंट हुई यहां तो स्वर्ग में झट जा मिलीं ॥१०॥
वह सामरिक सिद्धान्त भी औदार्यपूर्ण पवित्र था;
थी युद्ध में ही शत्रुता अन्यत्र वैरी मित्र था।
जय-लोभ में भी छल-कपट आने न पाता पास था;
प्रातेपक्षियों को भी हमारे सत्य का विश्वास था ॥ ११ ॥
पाते न थे जय युद्ध में ही हम सुयश के साथ में;
इन्द्रिय तथा मन भी निरन्तर था हमारे हाथ में।
हम धर्म्म-धनु से भक्ति-शर भी छोड़ने में सिद्ध थे;
अतएव अक्षर-लक्ष्य भी करते निरन्तर विद्ध थे ॥ १२ ॥
यद्यपि रहे हम वीर ऐसे विश्व को जय कर सकें;
ऐसे नहीं थे जो समर में शत्रु से भी डर सकें।
पर राज्य को तो थे सदा हम तुच्छ तृण सम मानते;
लाचार होकर ही कभी लड़ना सदृश रण ठानते ॥ १३ ॥
अन्याय-अत्याचार करना तो किसी पर दूर है;
जिसका किया, हमने किया उपकार ही भरपूर है।
पर-पीड़ितों का त्राण करके दुःख हम खोते नहीं;
तो आज हिन्दुस्तान में ये पारसी होते नहीं ॥१४॥
जाकर कहां हमने जलाई आग युद्ध अशान्ति की?
घे घूमते सर्वत्र पर हमने कहां पर क्रान्ति की?
करते वही थे हम कि जिससे शान्ति सुख पावें सभी;
स्वार्थान्ध होकर पर-हित-व्रत छोड़ सकते थे कभी? ॥ १५ ॥
भूले हुओं को पथ दिखाना—यह हमारा कार्य था;
राजत्व क्या है—नत हमको मानता आचार्य था।
आतङ्क से पाया हुआ भी मान कोई मान है?
खिँच जाय जिस पर मन स्वयं सच्चा वही बलवान है ॥ १६ ॥
हम भूप होकर भी कभी होते न भोगासक्त थे;
रहकर विरक्त विदेह जैसे आत्मयोगासक्त थे।
कर्त्तव्य के अनुरोध से जब कार्य करते थे सभी;
राजत्व में भी फिर भला हम भूल सकते थे कभी? ॥ १७ ॥
हां मेदिनी-पति भी यहां के भक्त और विरक्त थे;
होते प्रजा के अर्थही वे राज्य-कार्या-सक्त थे।
सुत-तुल्यहीं वे सौम्य उसको मानते थे सर्वदा;
होता 'प्रजा' का अर्थही सन्तान संस्कृत में सदा ॥ १८ ॥
देते प्रजा-हित ही बढ़ाकर प्राप्त-कर वे सर्वथा;
ले भूमि से जल रवि उसे देता सहस्र-गुना यथा।
बनकर मृत-स्थानीय भी हरते प्रजा का सेव थे;
करते तदर्थ न पुत्र के भी त्याग में सङ्कोच थे ॥ १९ ॥
हैं मद्यपी कायर न मेरे राज्य में तस्कर कहीं।
व्यभिचारिणी तो फिर कहाँ जब एक व्यभिचारी नहीं।
यों सत्यवादी नृप बिना सङ्कोच कहते थे यहाँ;
कोई बता दे विश्व में शासक हुए ऐसे कहाँ ॥ २० ॥

मैथिलीशरण गुप्त।

तुर्कों का उत्थान और पतन।

लगभग छः सौ वर्ष बीते कि तुर्क नाम की एक छोटी सी जाति उद्दण्ड मङ्गोल लोगों के भय से अपने घर, मध्य एशिया, से भाग कर आरमीनिया प्रदेश में पहुँची। वहाँ के सेलजूक-वंशीय बादशाहों ने उसे अपनी शरण में लिया। चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में, मङ्गोल लोगों ने सेलजूक-साम्राज्य पर चढ़ाई कर दी। उसकी समाधि पर एक छोड़ दस छोटे छोटे राज्य स्थापित हुए। भगोड़ी तुर्क-जाति के तत्कालीन अधिपति का नाम था उसमान। वह भी इस विप्लव से लाभ उठाने में पीछे न रहा। उसने भी कुछ भूमि दबा ली और राजा बन बैठा। अपने साहस और बुद्धि-वैभव से उसने अन्य राजाओं को भी शीघ्र ही अपने अधीन कर लिया। तुर्कों का वही पहला स्वतन्त्र राजा हुआ। तुर्कों में उसी के नाम पर पहले पहल सिक्के चले और मसजिदों में खुतबा पढ़ा गया। उसी के नाम पर तुर्क लोगों का नाम उसमानी और उनके भावी साम्राज्य का नाम उसमानी साम्राज्य पड़ा। योरप की भाषाओं में, इसी उसमानी शब्द का अपभ्रंश आटोमन हो गया।

१३५९ में, मुराद (प्रथम) तुर्कों का राजा हुआ। इसने अपना हाथ योरप की ओर बढ़ाया। योरप के दक्षिण-पूर्व में बालकन नाम का एक प्रायद्वीप है। उस समय उस पर कान्सटेन्टीनोपिल के ईसाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्राट् का शासन था। मुराद ने बालकन के एक बड़े भाग को बलपूर्वक अपने अधीन कर लिया। योरप की ईसाई शक्तियाँ मुसलमानों के इस दबदबे से बहुत घबराईं। कई ईसाई राजाओं ने मिल कर मुराद पर आक्रमण कर दिया। १३८९ में घोर युद्ध हुआ और मुराद मारा गया। परन्तु विजयी मुसलमान ही रहे। इस विजय से सर्विया-देश उनके हाथ लगा।

धीरे धीरे तुर्कों ने ईसाई राजाओं से बलगेरिया भी छीन लिया। पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य-काल में वे हंगरी राज्य की सीमा तक पहुँच गये। योरप में वे पहुँच तो दूर तक गये थे, ईसाई जातियों में उनकी धाक भी खूब बैठ गई थी, लोग उनके मुक़ाबले में आने से भी भय खाने लगे थे, परन्तु अभी तक वे बायज़न्टाइन-साम्राज्य की राजधानी, कान्सटेन्टीनोपिल नगरी को, जो उनके विजित देशों के एक कोने ही में पड़ती थी, न जीत सके थे। तुर्कों की यह परम अभिलाषा थी कि वे ईसाइयों के इस पुनीत नगर पर अपनी सत्ता जमावें। इस लिए उन्हों ने उसे कई बार घेरा भी, परन्तु वे सफलमनोरथ न हुए। १४५१ में, मुहम्मद द्वितीय, तुर्कों का राजा हुआ। वह वीर और साहसी था। साथ ही उसका हृदय उच्चाकांक्षाओं से भी पूर्ण था। उसने, अन्त में, वह काम कर दिखाया जिसके लिए तब तक तुर्क लालायित थे। १४५३ में, उसने कान्सटेन्टीनोपिल घेर लिया। घमासान युद्ध हुआ। अन्त में तुर्कों की तोपों के सामने दुर्ग की दीवारें खड़ी न रह सकीं। ईसाइयों का सारा परिश्रम और आत्मोत्सर्ग निष्फल हुआ। उनका सम्राट् भी युद्ध करते करते धराशायी हुआ। ईसाई संसार के परम पवित्र स्थान सेंट सोफ़िया नाम के गिरजाघर पर ईसाई धर्म्म का सूचक 'क्रास' न रह सका। उस पर इसलामी चन्द्रमा चमकने लगा। विजयी मुहम्मद ने सगर्व्व नगर में प्रवेश करके उस नई मसजिद में नमाज़ पढ़ी। कान्सटेन्टीनोपिल तुर्कों की राजधानी बना। तुर्की राजा सुलतान हुए और उनका राज्य हुआ तुर्की साम्राज्य। आज इसी साम्राज्य को हम तुर्की या उसमानी साम्राज्य के नाम से पुकारते हैं।

इस विजय के कारण मुहम्मद योरप के इतिहास में विजयी मुहम्मद के नाम से प्रसिद्ध है। इसके बाद वह चुपचाप न बैठा रहा। उसने योरप में अपना राज्य और भी बढ़ाया। क्राइमिया और बोसनिया जीता। ग्रीकों के द्वीप-समूह के कितने ही द्वीपों को उसने अपने अधिकार में कर लिया। उस का विचार इटली और स्पेन पर मुसलमानों का आधिपत्य स्थापित करने का था; परन्तु, १४८१ में, उसकी मृत्यु हो गई।

१५१२ में, सलीम प्रथम सुलतान हुआ। वह भी बड़ा प्रतापी बादशाह था। उसने तुर्की साम्राज्य को और भी प्रशस्त किया। वह फ़ारिस की बहुत सी भूमि दबा बैठा। सीरिया और मिश्र को भी उसने जीता। उसका पुत्र सुलेमान भी पिता के सदृश ही हुआ। उसने योरप के कुछ द्वीपों, तथा अफ़रीक़ा के अलजियर्स और ट्रिपोली को ले लिया। हंगरी के राजा तक उसे कर देने लगे। इस सुलतान के समय में तुर्क लोग उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच गये। उनकी सेना प्रथम श्रेणी की समझी जाती थी। उनका जहाज़ी बेड़ा भी इतना बड़ा था कि समुद्री युद्ध में उस समय कोई भी उनकी बराबरी न कर सकता था। उनकी पहुँच भी दूर दूर तक थी। हंगरी और आस्ट्रिया तो उनका घर-द्वार था। जर्मनी के मैदानों तक वे धावे मारते थे।

सुलेमान के बाद उसका पुत्र सलीम द्वितीय सुलतान हुआ। वह अपने योग्य पिता का अयोग्य पुत्र निकला। इसी के समय से तुर्की साम्राज्य के पतन का आरम्भ हुआ। इसके बाद जो सुलतान हुए उनमें से अधिकांश अयोग्य ही नहीं, किन्तु दुराचारी, दुर्व्यसनी, डरपोक और निर्बल थे। साम्राज्य में सुशासन न रहा। अत्याचार, लूट-मार और दुराचार की वृद्धि होती रही। जो जिसके मन में आता था सो करता था। सेना को वश में रखना मुश्किल था। कितने ही सुलतान तुर्की सेना के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथों मारे गये। बग़ावतें शुरू हो गईं। सुलतानों का नाकों दम आ गया। ईसाइयों पर अत्याचार होने लगे। टर्की की इस दुरवस्था के कारण उसके पड़ोसी राज्य, आस्ट्रिया और रूस, दिन पर दिन बलवान् होते जाते थे। अन्त में, टर्की को निर्बल समझ कर, १७३९ में रूस और आस्ट्रिया ने ईसाइयों की रक्षा के बहाने उससे युद्ध ठान दिया। यद्यपि टर्की का पतन हो रहा था, तथापि, अभी तक, वह इतना निर्बल न हो गया था कि उसे जो चाहता हरा देता। आस्ट्रिया को हारना पड़ा। उसने और उसके मित्र रूस ने टर्की को कुछ ले दे कर अपना पीछा छुटाया। इस घटना से टर्की को सबक़ सीखना था। पर वह आँखें मूँदे अपनी पुरानी मस्त चाल से ही चलता रहा और कई बार ठोकर खाने पर भी न चेता। इसका फल जो होना था वही हुआ।

सेन्ट सोफ़िया नाम के गिरजाघर को तुर्कों ने मसजिद बना डाला, यह ऊपर कहा जा चुका है। उसका तुर्की नाम है आयासोफ़िया। तथापि, सैकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी ईसाई-संसार ने उससे ममता नहीं छोड़ी। क्रास के स्थान पर चन्द्र-चिह्न देख कर, कान्सटेन्टी-नोपिल के ईसाई यात्री के हृदय में अब तक शूल उठता है। पश्चिमी योरप की ईसाई जातियों का विश्वास है कि एक दिन ऐसा अवश्य आवेगा जब सेन्ट सोफ़िया में इसलामी अज़ाँ के बदले पादड़ियों के घंटों का नाद सुनाई पड़ेगा। ये जातियाँ चुप भी नहीं बैठीं। समय समय पर इन्होंने सेन्ट सोफ़िया पर अधिकार प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न भी किया। अठारहवीं शताब्दी के तृतीय और चतुर्थ चरण में रूस का शासनसूत्र रानी कैथराइन के हाथ में था। वह बड़ी ही चालाक और कट्टर ख़याल की रानी थी। वह तुर्कों को योरप से मार भगाना और कान्सटेन्टीनोपिल में ईसाई राज्य स्थापित करना चाहती थी। १७६८ से १७९६ ईसवी तक उसने टर्की को बहुत तंग किया। वह टर्की से लड़ी भी। यदि आस्ट्रिया बीच बीच में उसकी गति का बाधक न बनता तो वह योरप से तुर्कों को निकाले बिना न छोड़ती। तो भी उसने तुर्कों के राज्य का बहुत सा भाग छीन लिया और सन्धि करते समय उनसे एक ऐसी शर्त करा ली जिसके कारण टर्की को पीछे बहुत सी विपत्तियाँ झेलनी पड़ीं। उस शर्त के अनुसार रूस को तुर्कों की राजधानी में एक गिरजाघर बनाने का स्वत्व प्राप्त हुआ। सन्धि-पत्र में एक शर्त यह भी थी कि उस गिरजाघर से सम्बन्ध रखने वाले ईसाइयों के विषय में यदि कभी रूस को कुछ कहना पड़े तो तुर्कों को उस पर अवश्य विचार करना चाहिए। इस शर्त से रूस ने अपना अच्छा मतलब गाँठा। वह टर्की की ईसाई प्रजा का संरक्षक बन बैठा।

इधर टर्की की दशा ख़राब ही होती गई। राज्य में उत्पात बढ़ता गया। वहाबी नाम का एक मुसलमानी पन्थ भी इसी समय में निकल पड़ा। उसकी धार्म्मिक कट्टरता ने टर्की की ईसाई प्रजा के हृदय में अशान्ति की अग्नि और भी भड़का दी। उधर बालकन की ईसाई जातियाँ कुछ तो उकसाई जाने से और कुछ अन्य अपनी पड़ोसी जातियों को स्वतन्त्रता का सुख अनुभव करते देख टर्की की ग़ुलामी का तौक़ उतार फेंकने के लिए बेचैन होने लगीं।

इस बीच में नपोलियन ने मिश्र में फ़्रान्स का झंडा गाड़ दिया। परन्तु वह वहाँ अधिक दिनों तक न रह सका। इँगलेंड नेपोलियन का परम शत्रु था। उसी की कृपा से बेचारा टर्की अपनी इस छीनी गई सम्पत्ति को फिर पा गया। ग्रीक लोग भी उधर स्वतन्त्र होने की फ़िक्र में थे। वे भी टर्की से लड़े भिड़े, परन्तु अन्त में मुक़ाबले में न ठहर सके। इधर रूस की सहायता से सर्विया वाले उठ खड़े हुए। वे वर्षों टर्की से लड़ते भिड़ते रहे। अन्त में, १८१७ में, उन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्त करली। अब ग्रीक लोग चुप न बैठ सके। वे फिर बिगड़े। पर बेतरह हारे। योरप के राज्यों ने बीच बचाव कर देना चाहा; परन्तु टर्की ने उनकी एक न सुनी। इस पर, १८२७ में, इँगलैंड, रूस और फ़्रांस ने अपनी संयुक्त नाविक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेना लेकर टर्की पर चढ़ाई कर दी। फल यह हुआ कि टर्की हारा। ग्रीस स्वतन्त्र हो गया। रूस ने भी कुछ भूमि अपने राज्य में मिला ली। टर्की को इन झगड़ों से छुट्टी मिली तो मिश्र का मुहम्मद पाशा सीरिया छीनने की नीयत से उस पर आक्रमण कर बैठा। बड़ी मुश्किलों में, इँगलेंड की कृपा से, उसे मुहम्मद के चंगुल से छुटकारा मिला।

१८५३ में रूस फिर टर्की से भिड़ पड़ा। इस युद्ध का कारण यह था कि अब रूस अपने को टर्की की सारी ईसाई प्रजा का संरक्षक कहने लगा था। टर्की को यह बात अच्छी न लगी। उसने इसका विरोध किया। बस, फिर क्या था, युद्ध छिड़ गया। इस बार, इँगलेंड और फ्रान्स ने टर्की की सहायता की। अन्त में, रूस को नीचा देखना पड़ा। उसे कुछ दबना भी पड़ा। युद्ध के बाद टर्की ने घोषणा की कि अबसे धर्म्म, भाषा, और जाति के लिहाज़ से किसी के साथ कुछ रियायत न की जायगी। योरप के राष्ट्रों ने भी वचन दिया कि उनमें से कोई भी, अब, टर्की के घरेलू झगड़ों में हस्तक्षेप न करेगा। यह युद्ध, इतिहास में, क्राइमियन युद्ध के नाम से विख्यात है।

टर्की ने करने को तो घोषणा कर दी, परन्तु उत्पात होते ही रहे और ईसाई यह शिकायत करते ही रहे कि हमें कष्ट मिल रहा है। पर उन्हें सचमुच ही कष्ट मिलता था या नहीं, यह भगवान ही जाने। अन्त में, १८७७ में, सर्विया और मान्टीनिग्रो ने टर्की के विरुद्ध शस्त्र उठाया। रूस ने उनका साथ दिया। पर किसी ने टर्की का पक्ष न लिया। अन्त में टर्की को हार कर सन्धि करनी पड़ी। सर्विया, रूमानिया और मान्टीनेग्रो पूर्णतया स्वतन्त्र हो गये। बलगेरिया नाम का एक बड़ा भारी ईसाई-राज्य अलग बन गया। वह टर्की के अधीन रक्खा गया। बोसनिया और हर्ज़ीगोवीना नाम के दो तुर्की प्रान्त आस्ट्रिया की देख-रेख में रहे; पर नाम मात्र के लिए। राज-सत्ता उन पर टर्की ही की मानी गई। ग्रीस ने अपनी सीमा बढ़ा ली। टर्की ने मैसीडोनिया प्रान्त में सुधार करने का वचन दिया। टर्की साम्राज्य का योरपियन शरीर बिलकुल ही कट-छँट गया। इस कतरनी का, जिसने इतनी काट छाँट की, नाम है "बर्लिन की सन्धि"।

टर्की के भाग्य में इतनी ही दुर्गति न बदी थी। उसे अपने शरीर को और भी कटवाना पड़ा। १९०८ में, टर्की में एक नवीन भाव का सञ्चार हुआ। युवा तुर्कों ने स्वेच्छाचारी सुलतान अब्दुल हमीद को सिंहासन से उतार कर कैद कर लिया। उन्होंने एक पार्लामेंट बनाया। प्रजा की व्यवस्था के अनुसार काम करने की शपथ खानेवाले शाही ख़ानदान के एक आदमी को सुलतान का पद दिया। परन्तु उस क्रान्ति के समय टर्की को निर्बल देख कर आस्ट्रिया ने बोसनिया और हर्ज़ीगोवीना को हड़प कर लिया। उधर बलगेरिया भी स्वतन्त्र बन बैठा। अभी उस दिन इटली ने भी टर्की से ट्रिपोली छीन लिया। अब मिश्र में उसकी अंगुल भर भी ज़मीन न रह गई। यूरप में मैसीडोनिया और अलबानिया आदि दो एक सूबे जो टर्की के अधीन रह गये थे वे भी अब गये ही समझिए। ईसाइयों की नज़रों में वे बेतरह खटक रहे थे। उन्हीं की प्राप्ति के लिए इस समय बालकन-प्रायद्वीप में युद्धाग्नि प्रज्वलित है। ग्रीस, सर्विया, बलगेरिया और मांटिनिगरो मिल गये हैं। सबने एक साथ टर्की पर चढ़ाई की है। भीतर ही भीतर योरप की और शक्तियाँ भी, अपना अपना आन्तरिक मतलब साधने के लिए, उन्हें पुचाड़ा दे रही हैं। ये लोग मनही मन तुर्कों से कहते हैं—"निकल जाव यूरप से। यूरप ईसाइयों के लिए है, मुसल्मानों के लिए नहीं। ईसाइयों पर एशियावालों को सत्ता चलाने का मजाज़ नहीं"। सारी बातों की बात यह है, और कुछ नहीं।

इस युद्ध का जो कारण बताया जाता है वह यह है। टर्की के अधीन मैसीडोनिया नाम का जो प्रान्त योरप में है उसके अधिकांश निवासी ईसाई हैं। बर्लिन की सन्धि के अनुसार यह तै होगया था कि मैसीडोनिया को स्वराज्य दे दिया जाय। आन्तरिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मामलों में वह जो चाहे सो करे; केवल बाहरी बातों के विषय में वह टर्की के अधीन रहे। पूर्वोक्त चारों राज्य कहते हैं कि टर्की ने मैसीनिया को स्वराज्य नहीं दिया। उसके ईसाई-धर्म्मानुयायी क्रर मुसलमान-तुर्कों के अत्याचार से पीड़ित हैं। उन्हें अत्याचार से बचाने और मैसीडोनिया में, बर्लिन की सन्धि के अनुसार, स्वराज्य स्थापन करने ही के लिए हम लड़ते हैं। सो मुसल्मान-तुर्क अत्याचारी और यूरप के ईसाई शान्ति के अवतार! इसी से इन चारों शान्ति-सागरों ने, सुनते हैं, युद्ध छिड़ने के पहलेही योरप के अन्तर्गत तुर्कों के राज्य को आपस में, काग़ज़ पर, बाँट लिया था। और अब तो यह सचमुच ही बँटा हुआ सा है। क्योंकि तुर्क बराबर हारते ही चले जाते हैं। बलगेरिया की फ़ौज कान्स्टैन्टनोपिल के पास पहुँच गई है। सो अब तुर्कों का पैर यूरप से उठ गया समझिए। योरप की महाशक्तियों का पारस्परिक संघर्षण बचाने के लिए कान्स्टैन्टिनोपल और डारडनल्स मुहाने पर तुर्कों का कब्ज़ा रह जाय तो चाहे भले ही रह जाय। पर वह औरों के लाभ के लिए, तुर्कों के नहीं।

एक समय था कि तुर्कों के नाम से योरप के बड़े बड़े साम्राज्य भयभीत रहते थे। मिश्र की उर्वरा भूमि और एशिया मायनर के धनवान् देशों से लेकर ट्रिपली, अरब और अलजियर्स की मरु-भूमि तक के अधिपति उनके चरणों पर सौगातें रखने में अपना परम सौभाग्य समझते थे। आज उन्हीं तुर्कों का, जिनका संसार में इतना ऊँचा स्थान था और जिनका शताब्दियों तक बोल बाला रहा, बड़ा ही बुरा हाल है। वे ठोकर पर ठोकर खाते हैं। लोग उन्हें पीछे से धक्के पर धक्के लगाते हैं। उनके अस्तित्व तक को मिटा देने का प्रयत्न हो रहा है।

सैकड़ों वर्षों से टर्की का सम्बन्ध योरप की महा-शक्तियों से है। इन शक्तियों की काया-पलट हो गई। पर टर्की चुपचाप इस परिवर्तन को देखता रहा। अपने पड़ोसियों को उन्नत होते देख कर भी उसने सबक़ न सीखा। यदि वह अब भी न सीखेगा तो एशिया में भी उसकी ख़ैर नहीं। जिसकी भुजा में बल है वही सुख से संसार में रह सकता है। उसी से सब कोई डरता है। उसी के हक़ नहीं मारे जाते। उसी का सब कहीं आदर होता है। निर्बल का कहीं गुज़ारा नहीं।

सफल जन्म।

[एक अँगरेज़ी कविता का भावार्थ]

कितना सफल जन्म है उसका कितनी शुभकर शिक्षा है,
जिसने परवश हो औरों से मांगी कभी न भिक्षा है।
शुद्ध विचारों ही को जिसने अपना कवच बनाया है;
सत्य बात ही कह कर जिसने निज कौशल दिखलाया है॥१॥
कभी इन्द्रियों के वश में जो नहीं भूल कर होता है;
और, मृत्यु के भय से अपना समय न योंही खोता है।
कभी जगत की इस चिन्ता में रहता है वह चूर नहीं—
लोगों से यश मिले, प्रशंसा हो, जावें हम जहाँ कहीं॥२॥
भाग्य और दुष्कर्मों से जो बढ़े न उनसे द्वेष किया;
नहीं और की विभव-बड़ाई ने उसको कुछ क्लेश दिया।
राजनीति की कूट चाल से सब दिन रहा किनारे है;
सदाचार के नियम सदाही मन में अपने धारे है॥३॥
जग में अनुचित चर्चा उसकी कभी नहीं उड़ने पाती;
शुद्ध आत्म-चिन्तन में उसको शान्ति सर्वदा मिल जाती।
नहीं चाटुकारों का उसके धन से पालन होता है;
उसे हानि पहुँचानेवाला स्वयं एक दिन रोता है॥४॥
सदा नेम से नित वह विनती ईश्वर से है करे यही—
कृपा चाहिए तेरी प्रभुवर, सब कुछ मेरे लिए वही।
धर्म्म-पुस्तकों के पढ़ने में अपना समय बिताता है;
अथवा आये गये मित्र की सेवा में सुख पाता है॥५॥
सांसारिक उन्नति-बन्धन से बँधता कभी न ऐसा नर;
कभी नहीं ऐसे प्राणी को दुख के आ जाने का डर।
धनी न हो पर परम-जितेंद्रिय है ऐसा मनुष्य निश्चय;
महा भिखारी होने पर भी उसका ही होता है जय॥६॥

रामरत्न दूबे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसीदास की शृङ्गार तथा हास्य-रस की कविता।

सत्कवि साहित्य के सभी विषयों पर पूर्णाधिकार रखते हैं। जो नवों रसों का सच्चा चित्र अपने वचन-प्रबन्ध से खींच कर सहृदय पाठकों को दिखला सकता है वह सौभाग्य-शाली कवि है। ऐसे कवि अपने प्रबन्ध-चातुर्य से सहृदय पाठकों पर मोहिनी डाल देते हैं, जिससे वे कुछ समय के लिए संसार-जनित सुख-दुःखों से अलग होकर एक विलक्षण अनिर्वचनीय सुख प्राप्त करते हैं। सत्कवियों के बहाये हुए रस की अविच्छिन्न धारा में सहृदय पाठक बारबार ग़ोता लगाने लगते हैं। कवि का प्रयास तभी सफल होता है जब उसकी कविता का पाठ करने वाला उसी रस का रूप हो जाय। अच्छे कवियों की कवितायें निस्सन्देह ऐन्द्रजालिक प्रभाव—जादू का असर—रखती हैं। पाठकों को बे-सुध कर देना, शृङ्गार में सराबोर कर देना, वीर बना कर हाथ से हथियार उठवा देना, या उन्हें रुला कर उनकी दोनों आँखों से आँसुओं की अविरल धारा बहा देना सत्कवियों के लिए कोई बड़ी बात नहीं।

सुनने में आता है कि भूषण कवि ने अपनी वीर-रस की कविता सुना कर छत्रपति शिवाजी को कई बार लड़ने को तैयार कराया था। उन्होंने अपनी कविताओं के प्रभाव से पूर्वोक्त वीर-शिरोमणि से दिल्ली के लिए भी यात्रा कराई थी।

सभी कवि सब रसों की कविता करने में निपुण नहीं होते। कवि-कुल-गुरु कालिदास ने अभिज्ञान-शाकुन्तल, विक्रमोर्वशी, मेघदूत आदि ग्रन्थों में शृङ्गार-रस का, नारायण भट्ट ने वेणी-संहार में वीर-रस का, भवभूति ने उत्तर-राम-चरित में करुण-रस का जैसा प्रबल प्रवाह बहाया है वैसा संस्कृत के अन्यान्य कवियों ने अपने ग्रन्थों में नहीं किया। तात्पर्य यह कि सब कवि सभी रसों के वर्णन में यथेष्ट कृतकाय नहीं होते। यदि कालिदास वीर-रस की, नारायण भट्ट शृङ्गार-रस की और भवभूति शृङ्गार या वीर-रस की कविता करते तो निस्सन्देह वैसे सफल-मनोरथ न होते जैसे वे अपने अपने रसों के वर्णन में कृत-कार्य हुए हैं। कालिदास जब वीर-रस का वर्णन करने बैठते थे तब भी उन्हें शृङ्गार-रस की बातें सूझती थीं। * ऐसी ही बातें और कवियों के विषय में भी समझ लीजिए। क्या गीत-गोविन्द की रचना करने वाले जयदेव वीर-रस की कविता उतनी अच्छी बना सकते? क्या भूषण कभी शृङ्गार या करुण-रस की कविता बनाकर उतनी प्रसिद्धि पा सकते? क्या मतिराम ने कभी वीर-रस की अच्छी कविता की होगी?

किन्तु हमारे पूज्यपाद भक्त-शिरोमणि श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी ऐसे नहीं थे। भक्ति-सुलभ, भक्त-जन-प्राणाधार, करुणासागर रामचन्द्रजी महाराज की, अनन्य सेवक गोस्वामी तुलसीदासजी जी पर, पूर्ण दया थी। इसी से तुलसीदासजी ने जिस रस की कविता करने की इच्छा की उसी रस की कविता भली भाँति की। उसमें आप पूर्णरूप से

---

* स सैन्यपरिभोगेण गजदानसुगन्धिना। कावेरीं सरितां पत्युः शङ्कनीयामिवाकरोत् ॥४५॥ स निर्विश्य यथाकामं तटेष्वालीनचन्दनौ। स्तनाविव दिशस्तस्याः शैलौ भल्लयदर्दुरौ।।५१।। असह्य विक्रमः सह्यं दूरान्मुक्तमुदन्वता। नितम्बमिव मेदिन्याः सस्याशुकमलङ्घयत् ॥५३॥ (विजययात्रा-रघुवंश, चतुर्थ सर्ग) इस वीर-रस-प्रधान विजययात्रा में अन्यसम्भोगचिह्निता कामिनी की भाँति कावेरी नदी ४५, उस दिशा के दो स्तनों के समान दो पर्वत ५१, वस्त्रविहीन पृथ्वी के नितम्ब के समान सह्य-पर्वत का लंघन ५२, इत्यादि उपमायें बे-मौक़े जान पड़ती हैं। भावावबोधकलुषा दयितेव रात्रौ निद्रा चिरेण नयनाभिमुखी बभूव।६४। प्रियतम का भाव न जानने वाली स्त्री के समान निद्रा देर से आई [र०वं०स०६] ततः प्रियो पात्तरसेऽधरोष्ठे निवेश्य दध्मौ जलजं कुमारः। प्रियतमा से पान किये गये ओठ पर रख कर कुमार ने शङ्ख बजाया। (र० वं० स०७) यहाँ भी वीर में शृङ्गार आगया। लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफल-मनोरथ भी हुए। यद्यपि गोस्वामीजी भक्ति-सम्बन्धिनी ही कविता विशेष बनाते थे, तथापि उचित अवसर पर शृङ्गार, हास्य, वीर तथा अन्यान्य रसों की कविता भी अच्छी कर लेते थे। वे शान्त या भक्ति-रस ही की कविता लिखना विशेष पसन्द करते थे। पर उचित समय पर दूसरे रसों की कविता भी करते थे और उसमें सफल-मनोरथ भी हो जाते थे।

गोस्वामीजी के बनाये ग्रन्थों का एक बार भी जिन्होंने ध्यानपूर्वक पाठ किया है वे भली भाँति यह बात जानते हैं। सब ग्रन्थों की बात जाने दीजिए, आप केवल रामचरित-मानस को एक बार जी लगाकर पाठ कर जाइए। फिर देखिएगा कवि ने कैसी चतुरता अपनी रचना में दिखलाई है। यदि आप शृङ्गार-रस का प्रत्यक्ष रूप देखना चाहें तो बालकाण्ड उठा कर पुष्प-वाटिका का वर्णन पढ़िए। जहाँ रामचन्द्रजी की दृष्टि जानकीजी पर पड़ी है वहाँ तो कवि ने मानो शृङ्गार का महा-समुद्र उमड़ा कर पाठकों का हृदय आनन्द के अथाह प्रवाह में डुबो दिया है। अहा! कैसा विशद वर्णन है। हम वहाँ के केवल दो ही चार पद्य लिख कर पाठकों से सम्पूर्ण प्रसङ्ग पाठ करने के लिए विशेष आग्रह करते हैं।

पहले गोस्वामीजी ने पुष्प-वाटिका का वर्णन किया है, जिसमें जनक की उस पुष्प-वाटिका के वृक्ष, लता, पक्षी, तड़ाग आदि की बातें उन्होंने बड़ी ही रसिकता के साथ लिखी हैं। उसी जगह राम, लक्ष्मण दोनों भाई गुरु विश्वामित्रजी की पूजा के लिए फूल लेने गये। इधर माता की आज्ञा पाकर जनक-नन्दिनी अपनी सहेलियों के साथ गौरी-पूजा करने के लिए उसी वाटिका में पहुँची। एक सहेली इस झुण्ड से अलग होकर पुष्पवाटिका की शोभा देखने के लिए इधर उधर घूमने लगी। उसने दोनों भाइयों को देखा। वह उनकी अलौकिक शोभा देख मोहित हो गई। फिर उसने आकर सीताजी से इस प्रकार दोनों भाइयों की प्रशंसा की जिससे सीताजी के चित्त में भी उन दोनों कुमारों के अवलोकन की तीव्र अभिलाषा उत्पन्न होगई। उस समय उस सखी की दशा विलक्षण थी। :—

तासु दशा देखी सखिन पुलकगात जल नैन" *

अन्त में सीताजी अपनी सहेलियों के साथ उसी ओर चलीं जिस ओर उस सखी ने राजकुमारों के आने का पता बताया था। जब दोनों का परस्पर साक्षात्कार हुआ तब दोनों के हृदय में जो सात्विक भाव उत्पन्न हुआ उसके वर्णन में कवि ने असीम चातुर्य दिखलाया है। देखिए:—

अस कहि फिर चितये तिहिँ ओरा।
सिय-मुख-ससि भये नयन चकोरा॥
भये विलोचन चारु अचंचल।
मनहुँ सकुचि निमि तजे दृगंचल॥
देखि सीय-सोभा सुख पावा।
हृदय सराहत बचनु न आवा॥
जनु विरंचि सब निज निपुनाई।
विरचि विस्व कहं प्रगटि दिखाई॥
सुंदरता कहं सुंदर करई।
छबि-गृह दीप-सिखा जनु बरई॥
सब उपमा कवि रहे जुठारी।
केहि पटतरिय विदेह कुमारी॥

× + + × × ×

इधर जानकी जी के चित्त की दशा देखिए:—

देखि रूप लोचन ललचाने।
हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥
थके नयन रघुपति-छबि देखे।
पलकन हूँ परि हरी निमेखे॥

* स्वेदः स्तम्भोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमाशुप्रलय इत्यष्टौ सात्विकाः स्मृताः॥

पसीना निकलना, जकड़ जाना, रोंगटे खड़े हो जाना, आवाज़ बिगड़ना, काँपना, रंग फीका पड़ना, आँसू गिरना, तन्मय होना—ये आठ सात्विक भाव हैं। जब किसी रस का पूर्ण आवेश होता है तभी ये सात्विकभाव प्रकट होते हैं। वह सखी राम-लक्ष्मण को देख कर ऐसी मोहित हो गई थी कि उसके रोंगटे खड़े होगये थे और आँखों में आँसू आ गये थे। —लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक सनेह देह भइ भोरी।
सरद-ससिहिँ जनु चितव चकोरी॥
लोचन-मगु रामहिँ उर आनी।
दीन्हे पलक-कपाट सयानी॥
+ + × ×

ऐसी दशा होनी ही चाहिए। रामचन्द्र का रूप ही ऐसा था:—

मोर पंख सिर सोहत नीके।
गुच्छा बिच बिच कुसुम कली के॥
भाल तिलक स्रम-बिंदु सुहाये।
स्रवन सुभग भूषन छबि छाये॥
बिकट भृकुटि कच घूंघर वारे।
नव सरोज लोचन रतनारे॥
चारु चिबुक नासिका कपोला।
हास-बिलास लेत जनु मोला॥
मुख-छबि कहि न जाइ मोहि पाहीं।
जो बिलोकि बहु काम लजाहीं॥
उर मनि-माल कम्बु-कल ग्रीवा।
काम-कलभ-कर भुज बल-सींवा॥
सुमन समेत बाम कर दोना।
साँवर कुँअँर सखी सुठि लोना॥

ऐसे रूप को देख कर कौन न मोहित होगा? उस मूर्ति-माधुर्य को अवलोकन कर किसका हृदय आनन्दित न होगा? उस अलौकिक छवि को निहार कर किसका मन सुखी न होगा?

सकुचि सीय तब नयन उघारे।
सन्मुख दोउ रघुसिंह निहारे॥
नख-सिख देखि राम की सोभा।
सुमिरि पिता-प्रण मन अति छोभा॥

जब दोनों ने अपने अपने गुरु-जनों के भय से अलग अलग होकर अपना अपना रास्ता लिया तब सीता—

देखन मिस मृग बिहँसि तरु, फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुवीर-छबि, बाढ़ी प्रीति न थोरि।
जानि कठिन सिव-चाप बिसूरति।
चली राखि उर स्यामल मूरति॥

और, राम—

प्रभु जब जात जानकी जानी।
सुख सनेह सोभा गुण खानी।
परम-प्रेममय मृदु मसि कीन्हीं।
चारु चित्र भीतर लिखि लीन्हीं॥

किन्तु जानकी जी राम से अलग होकर माता के पास नहीं गईं। वे लौट कर गौरी के मन्दिर में पहुँचीं। वहाँ उन्होंने हार्दिक भक्ति से वन्दना कर दशरथ-नन्दन ही को अपना वर होने के लिए गौरी से वरदान माँगा।

मोर मनोरथ जानहु नीके।
बसहु सदा उर-पुर सबही के॥

इधर रघुकुलकमलदिवाकर श्रीरामचन्द्र —

हृदय सराहत सीय लुनाई।
गुरु समीप गवने दोउ भाई॥

श्रीजानकीजी की मोहिनी मूर्ति उनके हृदय में ऐसी गड़ गई थी कि उन्हें कोई दूसरी बात ही नहीं सूझती थी। जब सायङ्काल चन्द्रमा को उन्होंने देखा तब वे जानकी के मुख से और चन्द्रमा से समता करने लगे। अन्त में उन्होंने यही निश्चय किया कि:—

वैदेही मुख पटतर दीन्हें।
होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हें॥

मैं समझता हूँ इस विषय का इससे अच्छा वर्णन अन्यत्र बहुत कम मिल सकता है।

और भी कई स्थलों में गोस्वामी जी ने शृङ्गाररस का वर्णन किया है; पर ऐसा विस्तार के साथ नहीं। इस लिए उन्हें यहाँ लिखने की कोई आवश्यकता नहीं *।

---

* है—कम से कम एक स्थल की कुछ चौपाइयां और लिखने की। वन-गमन-समय ग्रामवासिनी स्त्रियां जानकी से पूछती हैं:—
कोटि मनोज लजावन हारे। सुमुखि कहहु को अहहिँ तुम्हारे॥
इस पर तुलसीदास कहते हैं:—
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुचि सीय मन महँ मुसुकानी॥
तिनहिँ बिलोकि बिलोकेहु धरनी। दुहुँ सँकोच सकुचत बरबरनी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हास्य-रस के वर्णन में भी गोस्वामीजी ने अच्छी चतुरता दिखाई है।

देवताओं की प्रार्थना स्वीकार करके शिवजी पार्वतीजी से विवाह करने के लिए उद्यत हो गये। देवताओं के पास निमन्त्रण भेजा गया। विष्णु आदि सभी देवता अपनी अपनी सेना लेकर शिवजी के पास पहुँच गये। बारात की तैयारी होने लगी। उस समय का शिवजी का विचित्र वेष देखिए:—

सिवहिँ सम्भु-गन करहिँ सिँगारा।
जटा-मुकुट अहि-मौर सँवारा॥
कुंडल कंकन पहिरे व्याला।
तन विभूति पट केहरि-छाला॥
ससि ललाट सुंदर सिर गंगा।
नयन तीनि उपवीत भुजंगा॥
गरल कंठ उर नर-सिर-माला।
असिव वेष शिव-धाम कृपाला॥
कर त्रिसूल अरु डमरु विराजा।
चले बसह चढ़ि बाजहिँ बाजा॥

ऐसा रूप देख देवताओं की स्त्रियाँ हँस कर कहने लगीं—

बर लायक दुलहिनि जग नाहीं!

विष्णु ने भी हँस कर देवताओं से कहा:—

बिलग बिलग होइ चलहु सब
निज निज सहित समाज।
× × × ×
बर अनुहार बरात न भाई।
हँसी करैहहु परपुर जाई॥

यह सुन कर सब देवता अपनी अपनी सेना लेकर अलग हो गये। विष्णु का व्यङ्ग्य वचन सुन कर शिवजी भी मुसकराने लगे। उन्होंने अपने उन गणों को बुला लिया जिनकी विचित्र मूर्त्तियाँ देख कर सब को हँसी आ जाती थी। गोस्वामी जी ने भी उनकी अद्भुत छटा देख व्यङ्ग्य का एक छींटा छोड़ा है:—

जस दूलह तस बनी बराता।
कौतुक विविध होहिँ मग जाता॥

जब इस तैयारी के साथ हिमाचल के नगर में बरात पहुँची तब नगर-निवासी बाल, वृद्ध, युवा, सभी देखने के लिए दौड़ पड़े। उस समय:—

धरि धीरज तहँ रहे सयाने।
बालक सब लै जीव पराने॥
गये भवन पूछहिँ पितु माता।
कहहिँ वचन भय-कम्पित-गाता॥
कहिय कहा कहि जाय न बाता।
जम कर धार किधौं बरि याता॥
बर बौराह बरद असवारा।
व्याल कपाल विभूषन छारा॥

तब—

समुझि महेस समाज सब जननि जनक मुसुकाहिँ।
बाल बुझाये विविध विध निडर होहु डर नाहिँ॥

फिर सब स्त्रियाँ शिवजी को परछने चलीं। उस समय—

विकट वेष रुद्रहिँ जब देखा।
अबलन उर भय भयउ विसेखा॥
भागि भवन पैठीं अति त्रासा।
गये महेस जहाँ जनवासा॥

अन्त में यथारीति विवाह के सब कार्य हुए। इस वर्णन को पढ़ कर सभी को हँसी आ जाती है। तुलसीदासजी ने भी इसी उद्देश से यहाँ हास्य-भरी मनोहारिणी कविता की है।

इसके अतिरिक्त जहाँ शूर्पणखा से राम-लक्ष्मण की बातें हुई हैं वहाँ भी कुछ हँसी आही जाती है। सुन्दर-काण्ड के लङ्कादहन में भी कुछ हँसी की

बड़े असमञ्जस में पड़ कर जानकीजी ने उत्तर दिया। असमञ्जस इस लिए कि उस समय और कोई स्त्री पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर देने के लिए थी ही नहीं:—

सहज सुभाव सुभग तन गोरे। नाम लषन लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदन-निधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितै भौंह करि बाँकी।
खंजन-मंजु तिरीछे नैननि। निज पिय कहेहु तिनहिँ सिय सैननि॥

गोस्वामीजी ने यह कविता नहीं की, अमृत बरसाया है।

सम्पादक, सरस्वती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता है। परशुराम और लक्ष्मण के परस्पर संवाद में भी हास्यरस का मेल है। जब परसुराम क्रुद्ध हो कर अपने बल और वीरता की बारंबार प्रशंसा करने लगे तब लक्ष्मण मुसका कर बोले:—

बहु धनुही तोरेउँ लरिकाईं।
कबहुँ न असि रिस कीन्ह गोसाईं॥
× × × ×
पुनि पुनि मोहिं देखाव कुठारा।
चहत उड़ावन फूँकि पहारा॥
इहाँ कुम्हड़-बतिया कोउ नाहीं।
जो तर्जनी देखत मरि जाहीं॥
× × × ×
अपने मुख तुम आपनि करनी।
बार अनेक भाँति बहु बरनी॥
नहिं संतोष तो पुनि कछु कहहू।
जनि रिस रोंकि दुसह दुख सहहू॥
× × × ×
"टूट चाप नहिं जुरहि रिसाने।
बैठिय होइहिं पाय पिराने॥
+ + × +
"बिहँसे लखन कहा मुनि पाहीं।
मूँदिय आँखि कतहुँ कोउ नाहीं॥
× × × ×

तुलसीदासजी ने रामायण नहीं लिखी, भक्तों के लिए भवसागर उतरने का पुल बनाया है और सहृदय कविताप्रेमियों के लिए अमृत का सागर बहाया है।

अक्षयवट मिश्र।

एकान्त-वास।

गङ्गा-तीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य
ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां गतस्य।
किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशङ्काः
कण्डूयन्ते जरठहरिणाः स्वाङ्गमङ्गे मदीये॥

भर्तृहरि।

संसार में जिन कामों के लिए हमने जन्म लिया था उनको हमने कई अंशों में पूरा कर दिया। बाल्यावस्था से लेकर पचीस वर्ष की प्रौढ़ अवस्था तक अखण्ड ब्रह्मचर्य्य धारण कर हमने विद्या भी खूब पढ़ी। तदुपरान्त हमने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। विद्या तथा बाहुबल से हमने द्रव्योपार्जन भी खूब किया। हम सदा सम्पत्तिशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार ही चले—अर्थात् हमने अपने द्रव्य का सर्वदा सदुपयोग ही किया।

हमने हृष्ट-पुष्ट सन्तान भी उत्पन्न की। सन्तानोत्पत्ति से ही हम सन्तुष्ट नहीं हुए। हमने अपनी सन्तति के पठन-पाठन इत्यादि की ओर भी खूब ध्यान दिया। साधारण नैतिक शिक्षा के अतिरिक्त हमने अपनी सन्तति को ऐसी वैज्ञानिक, व्यावसायिक तथा व्यावहारिक शिक्षा दी जिसके प्रभाव से वह केवल स्वतन्त्र आजीविका ही उपार्जित करने में समर्थ न हो सके, किन्तु जीवन के उच्च से उच्च प्रश्नों के हल करने में भी उसकी गति हो। हम को इस बात का भी पूरा निश्चय हो गया कि हमारी सन्तति, संसार-समर से हमारे तटस्थ हो जाने पर, कभी कर्तव्य-विमुख न होगी। देशकाल-स्थिति के अनुसार हमने बड़े बड़े दान भी दिये; बड़े बड़े विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, अनाथालयों तथा चिकित्सालयों की हमने यथा-शक्ति सहायता की। देश-सेवा से भी हम कभी विमुख न हुए। दीन, अनाथ तथा आश्रितों की दशा सुधारने की हमने निरन्तर चेष्टा की। राज-धर्म को भी हमने खूब निबाहा। सारांश यह है कि मानव-धर्म की हर एक शाखा, प्रशाखा और उपशाखा को हमने सूक्ष्म दृष्टि से देखा और यथासम्भव उस पर चलने का प्रयत्न किया।

यह सब कर लेने के बाद एक समय आता है जब प्रकृति कहती है—"ठहरो और कुछ विश्राम करो"। ऐसे समय में वानप्रस्थ बनने की स्मृतिकारों ने जो व्यवस्था दी है वह वैज्ञानिक दृष्टि से भी बड़े महत्त्व की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरन्तर सांसारिक झगड़ों में फँसे रहने, गृहस्थाश्रम के सुख-दुख सहने और वृद्धावस्था के निकट आने से शक्ति का ह्रास हो जाता है। कोई कठिन काम न हो सकता। यहाँ तक कि काम करने को जी ही नहीं चाहता। इस रोग की एक मात्र औषध एकान्त-वास है। जैसे दिन के सब काम कर लेने पर रात के समय विश्राम करने से दूसरे दिन काम करने की नवीन शक्ति शरीर में आजाती है, ऐसे ही संसार का ऋण चुकाने के बाद एकान्त-वास करने से एक नई शक्ति शरीर में आजाती है।

पदार्थ-विज्ञान के ज्ञाता चाहे इसको धर्म्माचार्य्यों की कोरी कल्पना ही क्यों न समझें, परन्तु यह बात अवश्य निर्विवाद है कि एकान्तवास एक प्रकार की शक्तिवर्द्धक औषध है।

वैसे तो हमको नित्य ही एकान्त-वास की आवश्यकता होती है—जैसे सन्ध्योपासन, जप और पुस्तकावलोकन, बिना इसके ठीक ठीक हो ही नहीं सकते। मनन करने या गूढ़ विचारों में निमग्न होने के लिए तो कहना ही क्या है। कल्पना कीजिए कि कोई गृहस्थ किसी गूढ़ विषय के विचारों को लिखने के लिए अपनी बैठक में बैठा। किवाड़ बन्द नहीं किये। ऊपर से लड़का आया और बोला—"पिता मिठाई के लिए पैसा दो"। इधर से नौकर आया—"बाबूजी तेल के लिए पैसे चाहिए"। इन बातों से उस गृहस्थ का मन ज़रूर उचट जायगा, और, सम्भव है, वह अपनी कितनी ही कल्पनाओं को भूल जाय। अतएव पुस्तक-लेखन, मनन और चिन्तन के लिए ऐसा स्थान होना चाहिए जहाँ मक्खी की भी गति न हो; क्योंकि न्यूटन की बरसों की मिहनत को उसके कुत्ते ने एक क्षण में नष्ट कर दिया। प्राचीन महर्षि आज कल के कोलाहलपूर्ण गन्दे शहरों में कभी एक क्षण भर भी न ठहर सकते थे। कारणवश वे शहरों में आते थे और काम करके शीघ्र ही अपनी पर्णशाला को लौट जाते थे। एकान्त में सीधी सादी चाल से रह कर आत्मचिन्तन और अध्ययन आदि में निमग्न रहनाही उनको प्रिय था। यह इसी एकान्त-वास की महिमा है जो वेद, पुराण, उपनिषद् आदि अनमोल ग्रन्थ आज कल हमें सुलभ हो रहे हैं। जितने बड़े बड़े ग्रन्थ, आविष्कार और आध्यात्मिक तत्त्व हैं सब एकान्त-वास के ही फल हैं। सांसारिक वासनाओं का पूर्ण अनुभव प्राप्त करने के अनन्तर उनसे विरक्त होकर एकान्त-वास करना ही श्रेयस्कर है। अन्यथा मार्गच्युत होने का भय रहता है।

रामचन्द्रजी सांसारिक व्यवहारों से विरक्त हो कर वन को न गये थे। वे केवल पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए गये थे। वे यह जानते थे कि स्त्री को सङ्ग लेकर जङ्गल में जाना भयप्रद है। तथापि सीता के प्रणयानुरोध को वे न टाल सके। परिणाम यह हुआ कि सीता जी हरी गईं।

महात्मा ध्रुव बहुत छोटी अवस्था में तपस्या करने को वन चले तो गये, परन्तु वहाँ उन्हें ऐसे ऐसे कष्ट सहने पड़े कि यदि वे बड़े ही दृढ़प्रतिज्ञ न होते तो उनका मनोभीष्ट कभी सफल न होता।

कई अपरिपक्व बुद्धि वाले अब भी एकान्त वास करने चले जाते हैं; परन्तु ऐसा करने से उनकी और भी अधोगति होती है। ऐसों की स्थिति एकान्त-वास से नहीं सुधरती।

तात्पर्य्य यह कि धन, दारा, सुत आदि का मोह छोड़ कर एकान्त-वास करना ही महत्त्व का काम है। वह सुखपूर्वक त्याग से ही हो सकता है; दुःखपूर्वक त्याग से नहीं। सुखपूर्वक त्याग से तात्पर्य्य यहाँ उस त्याग से है जो सब प्रकार की सुख-सामग्री होने पर अङ्गीकार किया जाता है। इसके विपरीत, दुःखपूर्वक त्याग वह है जो स्त्री-वियोग, धन-नाश या धातुक्षय होने से उत्पन्न होता है।

यदि धन-वैभव, पुत्र, कलत्र आदि का मोह मन से दूर न हुआ तो चाहे घर में रोये चाहे अरण्य में—बात एक ही है।

गङ्गा के किनारे हृषीकेश और हरद्वार आदि स्थानों में, अथवा काश्मीर और हिमालय आदि के रमणीक वनों में वन्य जीवों की तरह निवास करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकान्त-वास नहीं कहाता। ऐसे कितनेहीं लोग वहाँ रहते हैं; परन्तु जन-समाज को उनसे कुछ भी लाभ नहीं पहुँचता। ऐसे स्थानों में पर्णशाला बनाकर रहना और बड़े बड़े ग्रन्थों की रचना करना, जीवन के बड़े बड़े सिद्धान्तों को हल करना, और संसार में भटकते हुए जीवों के लाभ के लिए अपने अनुभवरूपी चिह्न छोड़ जाना ही एकान्त-वास का मुख्य उद्देश होना चाहिए।

ज़रा महर्षियों की लोकहितैषणा पर तो ध्यान दीजिए। वे रहते तो अरण्य में थे, पर भलाई सोचते थे सांसारिक जनों की। कृष्ण-द्वैपायन ने यमुना के छोटे से द्वीप में अपनी कुटी में रह कर वेदान्तसूत्र और महाभारत ऐसे पुनीत ग्रन्थ लिखे थे। बुद्धदेव ने शान्ति-गुफा में बैठे हुए निर्वाणप्राप्ति का चिन्तन किया था। शेक्सपियर ने नदी के समीप अपनी ग्राम-कुटी में बैठ कर काव्य-रचना की थी। कितनेही वैज्ञानिकों ने अपनी निर्जन प्रयोगशाला में बैठे बैठे अद्भुत अद्भुत आविष्कार किये हैं। इन बातों का स्मरण होते ही चित्त आनन्द में निमग्न हो जाता है।

अपने पाठालय में बैठ कर पुस्तक-लेखन, पुस्तकावलोकन अथवा किसी आध्यात्मिक विषय के चिन्तन में निमग्न होना भी एक प्रकार का एकान्त-वास ही है। ऐसे स्थानों से बहुत कुछ विद्या का विकाश हुआ है। यदि महत्त्व की दृष्टि से देखा जाय तो वर्तमान समय का साहित्य प्राचीन साहित्य की बराबरी नहीं कर सकता। कारण यह है कि शहरों की म्युनिसिपैलटियों से कोसों दूर, पर्णशालाओं में, उसकी रचना हुई थी।

एकान्त-वास के काल और उद्देश के विषय में हम इस सिद्धान्त से सहमत नहीं कि गृहस्थ जब अपने शरीर की त्वचा को शिथिल, केशों को सफ़ेद और पुत्र के पुत्र उत्पन्न हुआ देखे तब विषयों से विरक्त हो कर वानप्रस्थ-आश्रम का आश्रय ले। ऐसे समय में मनुष्य का शरीर अस्थिपञ्जरमात्र रह जाता है। इस कारण वह वन्य जीवन के क्लेशों को नहीं सह सकता। अ एव वह बहुत दिन तक वहाँ जीवित नहीं रह सकता। फिर, यह सम्भव नहीं है कि जो इतना वृद्ध है कि अपने शरीर की रक्षा स्वयं नहीं कर सकता वह वानप्रस्थ-आश्रम के कठोर नियमों का अच्छी तरह पालन कर सके। ऐसा मनुष्य मृत्यु की अवधि पूर्ण करने के लिए एकान्त स्थान में भले ही बैठ जाय, पर वह एकान्त-वास नहीं; उसे तो दुःखान्तवास कहना चाहिए। मृत्यु की राह देखने के निमित्त वन को जाना उचित भी तो नहीं प्रतीत होता। इससे तो भर्तृहरि की वह कल्पना जो सिरे में दिये गये श्लोक में व्यक्त की गई है हज़ार दरजे अच्छी है, क्योंकि वह धार्मिक और वैज्ञानिक दोनों प्रकार के मनुष्यों को रुचिकर हो सकती है।

सारांश यह कि एकान्त-वास कोई अनिवार्य्य बात नहीं। हाँ उसे आवश्यक कह सकते हैं। जीवनरूपी मरुभूमि के श्रान्त पथिक के लिए वह शस्य-श्यामल प्रदेश के सदृश अवश्य है। यह कदापि न्याय-सङ्गत नहीं कि तुम बिलखती हुई स्त्री और असहाय बच्चों को छोड़ कर सिर्फ़ वानप्रस्थ बनने के इरादे से वन को चले जाव। परन्तु यदि तुम किसी रोग से पीड़ित हो, या बहुत सा सांसारिक परिश्रम करने से थक गये हो, या और किसी मानसिक व्याधि से व्याकुल हो तो किसी स्वास्थ्यवर्द्धक एकान्त स्थान में निवास करना तुम्हारे लिए आवश्यक ही नहीं, किन्तु लाभदायक भी है।

इसके सिवा यदि कोई किसी उत्तम ग्रन्थ के सम्पादन की अभिलाषा रखता है, या कोई नवीन आविष्कार करना चाहता हो, या किसी गूढ़ विषय के विचार में निमग्न होना चाहता हो तो उसे अवश्य ही एकान्त-वास करना चाहिए।

बदरीदत्त पाँडे।

खिला हुआ फूल।

अहो कुसुम कमनीय कहो क्यों फूले नहीं समाते हो ?
कुछ विचित्र ही रङ्ग दिखाते मन्द मन्द मुसकाते हो ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम भी तो कुछ सुनें किस लिए इतना है उल्लास तुम्हें ?
बात बात में खिल खिल कर तुम किस की हँसी उड़ाते हो॥२॥
कैसी हवा लगी यह तुमको, क्षणिक विभव में भूलो मत।
अभी सबेरा है, कुछ सोचो, अवसर व्यर्थ गँवाते हो॥ ३ ॥
रूप, रङ्ग, रस, जिसके बल पर पैर न भू पर तुम रखते।
है दम भर का दृश्य जगत् में-क्यों इतना इतराते हो ? ॥ ४ ॥
भौंरा रसिक पास आ आकर करता है प्रार्थना अगर ;
तो क्यों नहीं प्रेम से मिल कर अपना उसे बनाते हो ? ॥५॥
भौंरा काला है, कुरूप है; हम हैं सुन्दर—मत समझो।
उस वसन्त का है यह साथी जिसके तुम कहलाते हो॥ ६ ॥
कर उपभोग और सब तुमको इधर उधर रख देते हैं।
पर यह सिर धुनता है जब तुम दले-मले कुम्हलाते हो॥ ७ ॥
"कोमल हूँ, कमनीय-कलेवर, देवों के मन भाया हूँ।
रसिकों का सिङ्गार सहज हूँ"—यह जो मन में लाते हो ॥८॥
"रसिक और रसिकाएँ मुझको आदर से अपनावेंगी।
बना गले का हार रहूँगा"—यही सोच इतराते हो॥ ९ ॥
तो इस पर भी तुम्हें फूलना या इतराना उचित नहीं।
धन्यवाद दो झुक कर उसको जिसका रूप दिखाते हो ॥१०॥

रूपनारायण पाण्डेय।

चुक़न्दर की चीनी।

पूर्वी देश वाले-विशेष करके भारत, मिश्र और चीन के निवासी—चीनी बनाने की रीति और उसका उचित व्यवहार सन् ईसवी के पहले ही से अच्छी तरह जानते हैं। अरब और फ़ारिस से योरप वालों ने शकर का स्वाद जाना। पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य में स्पेन और पोर्चुगल वालों ने अपने अधीन देशों में गन्ने की खेती आरम्भ की। योरप की चीनी का बाज़ार कुछ काल तक इन्हीं दोनों देशों के हाथ में रहा। चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी में इटली के वेनिस नगर वाले भी शकर के बड़े भारी व्यापारी समझे जाते थे। पूर्वी देशों में तो मिश्री बहुत पहले ही से बनती थी; परन्तु पन्द्रहवीं शताब्दी में मिश्री बनाने की कला का आविष्कार करने के लिए एक वीनिस-निवासी को राष्ट्र की ओर से ढाई लाख रुपया पारितोषिक मिला था। ब्रिटिश द्वीप वाले कब से शकर का व्यवहार करने लगे, इसका ठीक ठीक पता नहीं लगता। परन्तु शकर के विषय में जो पहला लेख मिलता है उससे पता चलता है कि १३१९ में, पहले पहल लन्दन में, लग भग एक हज़ार मन शकर वीनिस से आई और उसके बदले में ऊन दी गई। जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि मध्यकाल ही में नहीं, किन्तु अभी तक, उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य-काल तक, योरप में इतनी कम शकर होती थी और वह भी इतनी मँहगी मिलती थी कि बड़े आदमी ही उसे खा सकते थे और दवाओं में ही उसका प्रयोग होता था। सर्वसाधारण को तो वह बहुत कम नसीब होती थी। एक प्राचीन लेख से पता चलता है कि चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में, स्काटलेंड में, दो रुपये की एक सेर शकर मिलती थी। परन्तु अब वह बात नहीं रही। गत पचास वर्षों में ही संसार भर में शकर का ख़र्च अठगुना बढ़ गया है। जहाँ उसे पहले धनवान ही खाते थे, अथवा वह दवाइयों में ही पड़ती थी, वहाँ आज अमीर और ग़रीब, नीच और उच्च, वृद्ध और बालक, सभी के नित्य व्यवहार की वह चीज़ बन रही है। संसार की असभ्य जातियों में चाहे उसका प्रवेश न हो, अथवा बहुत कम हो, परन्तु इस समय जितनी सभ्य जातियाँ हैं उनमें शकर का व्यवहार प्रति दिन बढ़ता ही जा रहा है। केवल ब्रिटिश द्वीपों का ही उदाहरण लीजिए। १७०० में इन द्वीपों में दस हज़ार टन से अधिक शकर का ख़र्च न था। १८०० में वही डेढ़ लाख टन हो गया। और १८८५ में ग्यारह लाख टन तक पहुँच गया।

ख़र्च के साथ साथ शकर की पैदावार भी बढ़ती गई। पूर्व काल में गन्ने के रस से ही शकर बनती थी। आज भी योरप और अमेरिका के कुछ देशों को छोड़ कर अन्यत्र गन्ने के रस से ही शकर तैयार की जाती है। पर अब योरप में चुक़न्दर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उसके सदृश अन्य कन्दमूलों से शकर बनने लगी है। १७४७ में जर्मनी के मारग्राफ़ नामक एक रसायन-शास्त्र के वेत्ता ने इस बात को खोज निकाला कि जर्मनी में उत्पन्न होने वाले सफ़ेद चुक़न्दर से शकर बनाई जा सकती है। परन्तु उसकी बात पर उस समय किसी ने विशेष ध्यान न दिया। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में, योरप भर में, नपोलियन का दौर दौरा था। उसने इँगलेंड को छकाने के लिए योरप में बाहर से शकर आना बन्द कर दिया। जब लोग शकर के लिए तरसने लगे तब उनका ध्यान मारग्राफ़ की खोज की ओर गया। चुक़न्दर से शकर बनाने का पहला कारख़ाना जर्मनी के एक छोटे से नगर में, १८१२ ईसवी में, स्थापित हुआ। तत्काल ही फ़्रान्स में भी इसी प्रकार के कई कारख़ाने खुल गये।

पहले बीस मन चुक़न्दर से एक मन शकर निकलती थी; परन्तु अब केवल छः मन चुक़न्दर से ही एक मन शकर निकलती है। इस वृद्धि के बड़े भारी कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि आरम्भ-काल में चुक़न्दर के बोने और लगाने में किसी विशेष युक्ति से काम न लिया जाता था। पर अब चुक़न्दर की खेती वैज्ञानिक ढँग से की जाती है। इसका यह फल हुआ है कि चुक़न्दर में शकर का अंश बढ़ गया है। पहले चुक़न्दर में ज़ियादह से ज़ियादह उसका बीसवाँ हिस्सा शकर होती थी। परन्तु आज कल ऐसे चुक़न्दर पैदा किये जाते हैं जिनमें शकर का अंश एक चौथाई तक होता है। दूसरा कारण उसकी वृद्धि का यह है कि चुक़न्दर से शकर बनाने की रीति में पहले से कहीं अधिक विज्ञान की सहायता ली जाती है। तीसरा कारण यह है कि जिन देशों में चुक़न्दर से शकर तैयार की जाती है वहाँ गत शताब्दी के अन्त तक, शकर के व्यापार में, रक्षण-नीति का ही केवल अवलम्बन न होता था, किन्तु अन्य देशों में उसका प्रचार बढ़ाने के लिए शकर के व्यापारियों के साथ कितनी ही रियायतें भी की जाती थीं। इससे इँगलेंड की हानि थी। इँगलेंड में चुक़न्दर होता ही नहीं। उसके अधीन अन्य देशों में चुक़न्दर की तो नहीं, किन्तु गन्ने के रस की शकर बनती है। योरप के बाज़ारों में पहले इस शकर की बहुत खपत थी, और इँगलेन्ड को अच्छा लाभ था। परन्तु चुक़न्दर की शकर के चलने और रक्षण-नीति का अवलम्बन होने से इँगलेंड को इस व्यापार में बहुत क्षति उठानी पड़ी। अन्त में—१९०३ में—इँगलेण्ड के उद्योग से, ब्रुसल्स में एक कानफ़रन्स हुई। उसी के फ़ैसले के अनुसार जिन राष्ट्रों में चुक़न्दर की शकर बनती है उन्होंने रक्षण-नीति का बन्धन ढीला और व्यापारियों के साथ रियायत करना बन्द कर दिया।

गन्ने की शकर और चुक़न्दर की शकर के व्यापार में कई वर्ष तक बड़ी लाग डाँट रही। परन्तु अन्त में गन्ने की शकर को पिछड़ ही जाना पड़ा। १८४० में गन्ने की शकर दस लाख टन हुई थी और चुक़न्दर की शकर केवल पचास ही हज़ार टन। परन्तु उसके पश्चात् ही चुक़न्दर की शकर जिस शीघ्रता से बढ़ी उस पर विचार करके आश्चर्य होता है। इस में सन्देह नहीं कि गन्ने की शकर भी अधिक ही बनती रही; परन्तु आरम्भ में चुक़न्दर की शकर से बीस गुना आगे रहते हुए भी वह कुछ वर्ष बाद उसकी बराबरी भी न कर सकी। १८८२ में चुक़न्दर की शकर की पैदावार गन्ने की शकर की पैदावार से आगे बढ़ गई। उस वर्ष गन्ने की शकर २१०७००० टन और चुक़न्दर की शकर २१४७००० टन तैयार हुई। वर्तमान शताब्दी के आरम्भ में तो चुक़न्दर की शकर गन्ने की शकर से दुगुनी से भी अधिक बढ़ गई। अर्थात् १९००–१९०१ में गन्ने की शकर की पैदावार २८५०००० टन थी और चुक़न्दर की शकर की पैदावार ५९५०००० टन। तब से आज तक चुक़न्दर की शकर की पैदावार दिनदूनी रात चौगुनी बढ़ती ही गई है।

जर्मनी, आस्ट्रोहंगरी, रूस और फ़्रान्स ही चुक़न्दर की शकर बनाने के केन्द्र हैं। इटली, संयुक्त-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य, (अमेरिका,) बेलजियम, डेनमार्क, हालेण्ड और अन्य कुछ देशों में भी चुक़न्दर होता है और उस से भी शकर बनती है। परन्तु इतनी नहीं जितनी पूर्वोक्त देशों में। चुक़न्दर की फ़सल जितनी अच्छी और जितनी अधिक जर्मनी में होती है उतनी संसार भर में और कहीं नहीं होती। जर्मनी में हर साल लगभग बीस लाख टन चुक़न्दर की शकर बनती है। उसमें से लगभग आधी अन्य देशों को भेजी जाती है। वहाँ इस शकर के बनाने के चार सौ से अधिक कारख़ाने हैं, जो प्रति वर्ष लगभग पन्द्रह करोड़ रुपया विदेशों से खींच लेते हैं। वहाँ चुक़न्दर की खेती नूतन वैज्ञानिक ढँग से की जाती है। चुक़न्दर के खेतों में स्त्रियाँ ही अधिक काम करती हैं। १९०५ में, इन खेतों में, ५५ लाख मज़दूर काम करते थे, जिनमें से पचीस लाख स्त्रियाँ थीं। जर्मनी दिन पर दिन अपने इस व्यवसाय में उन्नति करता जा रहा है। ऊपर ब्रुशल्स की जिस कानफ़रन्स का उल्लेख हुआ है उसके बनाये गये नियम हाल ही में जर्मनी आदि के कोलाहल मचाने से मन्सूख़ होगये हैं। अतएव अब गन्ने की शकर की ख़ैर नहीं।

भारत में गन्ने ही से शकर बनती है और बहुत बनती है। केवल एक वर्ष, १९०९—१० में ही, साढ़े सैंतीस लाख टन गन्ने की शकर बनी थी। इतना गन्ना किसी एक देश में तो क्या एशिया के अतिरिक्त किसी समूचे महाद्वीप तक में नहीं होता। परन्तु साथ ही भारत में शकर का जितना अधिक ख़र्च है उतना संसार के किसी भी देश में नहीं। जितनी शकर यहाँ तैयार होती है उसे तो हम चाट ही डालते हैं, परन्तु उतनी ही और शकर मारीशस, जावा, जर्मनी आदि स्थानों से मँगा कर हम ख़र्च करते हैं और करोड़ों रुपया प्रति वर्ष विदेश भेज देते हैं।

कुछ समय से चुक़न्दर की शकर की आमदनी कम होगई थी। परन्तु रक्षण-नीति और रियायती बाज़ार अब फिर गरम होगा और जर्मनी आदि में बनी हुई चुक़न्दर की चीनी अब फिर भारत में पट जायगी। यह चीनी अपने देश की चीनी से सस्ती पड़ती है। अतएव हमारे देश के शकर के व्यापार की ख़ैर नहीं! यदि ईख की पैदावार वैज्ञानिक रीति से न बढ़ाई जायगी और शकर बनाने के दो दो चार चार कारख़ाने बड़े बड़े शहरों में न खुलेंगे तो शकर के व्यापार का सत्यानाश हुए बिना न रहेगा।

निशा-काल। *

डाक्टर! डाक्टर!! मैंने आँखें मल कर जो देखा तो हमारे ज़मींदार दक्षिणाचरण बाबू सामने खड़े हैं। मैं झट पट उठा और एक टूटी कुरसी लाकर उन्हें बैठने को दी। घड़ी देखी तो रात के ढाई बजे थे। दक्षिणाचरण मुँह बिगाड़ और आँखे फाड़ कर बोले—"आज फिर वही उपद्रव हुआ। आपकी दवा ने कुछ भी फ़ायदा न किया"।

कुछ कुछ डरते हुए मैंने कहा—"मालूम होता है कि आपने मदिरा की मात्रा फिर बढ़ा दी"।

दक्षिणा बाबू बिगड़ कर बोले—"आपकी यह भारी भूल है। मदिरा नहीं, बिना आदि से अन्त तक बात सुने आप असली कारण न जान सकेंगे"।

मिट्टी के तेल का चिराग़ टिमटिमा रहा था। मैंने उसकी लौ बढ़ा दी; और चादर ओढ़ कर बैठ गया। दक्षिणा बाबू कहने लगेः—

यद्यपि मेरी पहली स्त्री के समान दूसरी स्त्री मिलना बहुत कठिन था, परन्तु उस समय मेरी उमर बहुत न थी। मेरे चित्त में रसिकता अधिक थी। मैंने बहुत से काव्य भी देखे थे। इसी कारण अपनी स्त्री का गृहिणी की तरह रहना मुझे अच्छा

* श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर की "निशीथे" नामक आख्यायिका का स्वतन्त्र अनुवाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न लगता था। कालिदास का यह श्लोक मेरे मन में उदय हुआ करता थाः—

गृहिणी सचिवः सखी मिथः
प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।

परन्तु उस पर ललित-कलाओं का उपदेश कुछ असर न करता था। सख्य-भाव से जब कभी मैं उस से प्रेम की बातें करता, तो वह उन बातों को हँसी में उड़ा दिया करती। उसकी हँसी से बड़े बड़े काव्यों और प्रेम की बातों का नाश हो जाता। उसमें हँसने की विचित्र शक्ति थी।

चार बरस हुए मुझे ज्वर आने लगा था। उससे मैं म्रियमाण हो गया था। बचने की कोई आशा न थी। एक दिन तो डाक्टर ने जवाब भी दे दिया था।

इसी समय मेरे एक आत्मीय कहीं से एक ब्रह्मचारी ले आये। उसने दूध और घी के साथ एक दवा पीस कर मुझे खिला दी। दवा के गुण से या भाग्य के प्रताप से, जो कहिए, उस समय मैं बच गया।

मेरी बीमारी में मेरी स्त्री ने एक मुहूर्त्त भी विश्राम न किया। द्वार पर बैठ कर, मनुष्य की मामूली शक्ति से उसने यमराज से युद्ध किया। तन, मन, धन और प्रेम से उसने मेरी सेवा की। उसे न खाने की सुध थी और न पीने की; न घर से मतलब था और न दुनिया से। यमराज तो मुझे छोड़ कर चल दिये; मगर चलते समय मेरी स्त्री पर चोट करते गये। उस समय मेरी स्त्री गर्भवती थी। प्रसव के बाद ही वह तरह तरह की बीमारियों में फँस गई। मैंने उसकी सेवा शुरू की; परन्तु उसको यह अच्छा न लगा। वह कहने लगी—"हाय! यह तुम क्या करते हो? लोग क्या कहेंगे? इस तरह मेरे कमरे में आना जाना ठीक नहीं"।

उसे पंखा झलते देख कर जब मैं अपने हाथ से पंखा झलने लगता तब वह बहुत अप्रसन्न होती। यदि किसी दिन उसकी सेवा करने के कारण मेरे भोजन में देर हो जाती तो वह भोजन करने के लिए मुझसे चार बार अनुरोध करती।

हमारा बराहनगर वाला घर तो आपने देखा ही है। घर के सामने ही बाग़ है और बाग़ के सामने ही गङ्गा जी बहती हैं। हमारे शयन-घर के नीचे, दक्षिण की ओर, जो ज़मीन पड़ी थी उसी को घेर कर, मेरी स्त्री ने अपने हाथ से अपने मन के अनुसार फूल-बाग़ लगाया था। उसमें बेला, जूही, गुलाब आदि के पेड़ थे। एक मौलसिरी के पेड़ के नीचे सङ्गमरमर का चबूतरा बना हुआ था। छुट्टी पाने पर वह अपने हाथों से उसे धो कर साफ़ करती। शाम को, गरमी के दिनों में, कोई काम न होने पर, हम दोनों उसी चबूतरे पर जाकर बैठा करते। वहाँ से गङ्गा तो दिखाई पड़ती, परन्तु गङ्गा से बाग़ की कोई चीज़ न दिखाई पड़ती।

बहुत दिन तक चारपाई पर पड़े रहने के कारण वह उकता गई और एक रोज़ मुझसे बोली—"घर में पड़े रहने से मेरा जी घबराता है। आओ आज बाग़ में चल कर बैठें"।

मैं बड़ी कोशिश से उसे पकड़ कर धीरे धीरे बाग़ में लेगया। मैंने उसे उसी चबूतरे पर लिटा दिया। पहले तो जी चाहा कि उसका सिर अपनी गोद में रखलूँ; परन्तु इस डर से कि शायद वह कुछ अप्रसन्न हो जाय मैंने ऐसा न किया और एक तकिया लाकर उसके सिर के नीचे रख दिया।

एक एक दो दो करके मौलसिरी के फूल गिरने लगे। चाँद की रोशनी डालियों और पत्तों के भीतर से होती हुई उसके सूखे मुँह पर पड़ी। चारों ओर सन्नाटा था। मैं भी उसके पास बैठ गया और उसके मुँह की तरफ़ देखने लगा। देखते देखते मेरी आँखों में पानी भर आया। मैंने और पास जाकर उसका दुबला पतला हाथ पकड़ लिया।

कुछ देर योंही चुप चाप बैठे रहने पर मेरा चित्त आपे से बाहर होगया। मैं बोल उठा—"प्रिये! तुम्हारा प्रेम मैं किसी समय न भूलूँगा।"

यह सुन कर मेरी स्त्री हँस पड़ी। उस हँसी में लज्जा थी, सुख था और कुछ अविश्वास और परिहास भी था। तर्क-वितर्क के डर से उसने मुँह से तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ न कहा, परन्तु हँसी द्वारा यह कह दिया :—"यह सम्भव ही नहीं कि तुम किसी समय मुझे न भूलोगे और न मैं ऐसी आशा ही करती हूँ"।

इसी मीठी और तीक्ष्ण हँसी के डर से मैंने कभी उससे भले प्रकार प्रेम की बातें न कीं। जो बातें मन में पैदा होतीं वे सब उसके सामने जाते ही न मालूम कहाँ चली जातीं। किताबों में जिन बातों के पढ़ने से आँखों में आँसू बहने लगते हैं उन बातों के सुनने से उसे क्यों हँसी आती थी, यह मैं न समझ सका।

बहुत दवादारू होने पर भी मेरी स्त्री के अच्छे होने के कोई लक्षण न दिखाई पड़े। डाक्टर ने कहा कि एक बार जल-वायु-परिवर्तन हो जाय तो अच्छा है। मैं स्त्री को लेकर इलाहाबाद चला गया।

इतना कह कर दक्षिणा बाबू एकाएक चुप हो गये। मेरी ओर वे सन्देह की निगाह से देखने लगे। फिर सिर थाम कर कुछ देर तक सोचते रहे। मैं भी चुप चाप बैठा रहा। घर में सन्नाटा छाया था। चिराग़ टिमटिमा रहा था। थोड़ी देर में दक्षिणा बाबू फ़िर बोल उठे। वे कहने लगे :—

इलाहाबाद में हरनाथ बाबू मेरी स्त्री का इलाज करने लगे। कुछ दिन बाद हम लोग समझ गये कि यह रोग जाने वाला नहीं। यह जान कर कि चिर-रोगी रह कर जीवन काटना होगा, एक दिन मेरी स्त्री ने मुझसे कहा :—"तुम एक विवाह और करलो"। उसने यह बात इस प्रकार कही मानो वह एक साधारण सी बात थी। उसका भाव पूर्व्व-वत् सरल था। अब मेरे हँसने की बारी थी। परन्तु मैं हँस न सका। उपन्यास के नायक की तरह गम्भीर हो कर मैंने कहा—"जब तक इस देह में जीवन है—" बात काट कर उसने कहा—"नहीं नहीं, ऐसा मत कहो। तुम्हारी बात सुन कर मुझे दुख होता है"।

मैंने हार न मानी। फिर बोल उठा—"इस जीवन में और किसी से प्रेम न कर सकूँगा"। यह सुन कर मेरी स्त्री ज़ोर से हँस पड़ी। अब मुझे चुप होना पड़ा।

उसकी सेवा करते हुए मैंने मनही मन में ब्रह्मचर्य्य धारण कर लिया था। इसको कभी भङ्ग करूँगा या नहीं, इस बात का विचार भी मेरे मन में न था। परन्तु जीवन भर इस चिर-रोगिनी को ले कर दिन काटने होंगे, यह बात भी मेरे लिए दुखदायी होगई थी। हाय! यौवन काल में जब मैं अपने भविष्य पर नज़र डालता था तब तो सुख और प्रेम के सिवा और कुछ दिखाई ही न देता। परन्तु अब दुख के सिवा और कुछ न था।

रोगावस्था में ही वह मेरे मन की सब बातें जान गई थी। उस समय मुझे यह न मालूम था, पर अब इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि वह मुझे एक अपढ़ बालक के समान समझती थी। इसी लिए जब मैं उपन्यास का नायक बन कर गम्भीरतापूर्वक उससे बातें करता तब वह हँस पड़ती थी। यह याद करके कि अपने मन की जिस बात को मैं स्वयं न जान सकता था उसे वह अन्तर्यामी की तरह झट जान लेती थी, मैं आज भी लज्जा से मर सा जाता हूँ।

डाक्टर हरनाथ हमारी ही जाति के थे। उनके घर पर मेरा न्योता प्रायः हुआ करता था। कुछ दिनों के मेल जोल के बाद डाक्टर ने अपनी कन्या से मेरा परिचय करा दिया। लड़की का विवाह नहीं हुआ था। उस समय उसकी उम्र पन्द्रह वर्ष की होगी। डाक्टर कहते थे कि मन के अनुसार पात्र न मिलने से अभी तक उसका विवाह नहीं हुआ। परन्तु अन्य लोगों से मैंने सुना कि उनके कुल में कुछ दोष था। लड़की जैसी सुन्दर थी वैसी ही पढ़ी लिखी भी थी। इसी लिए कभी कभी उससे अनेक प्रकार की बातें होते रहने के कारण मुझे घर लौटने में देर होजाती थी। स्त्री को दवा देने का समय निकल जाता था। वह जानती थी कि मैं हरनाथ बाबू के घर जाता हूँ। परन्तु देर लगने का कारण उसने एक दिन भी न पूछा।

जलहीन पृथ्वी पर अब फिर मुझे जल का भ्रम होने लगा। हृदय में प्यास थी। सामने साफ़ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठण्डा पानी लहरा रहा था। मैं अपने मन को न रोक सका।

अब रोगी का घर मुझे अत्यन्त दुखदायी होचला। सेवा करने और दवा देने के नियम भी भङ्ग होने लगे। डाक्टर भी कभी कभी कह दिया करते कि जिसका रोग जाने की कोई आशा नहीं उसका मरना ही भला। जीवित रहने से न उसे कुछ सुख और न दूसरों ही को।

एक दिन अपने कमरे से मैंने सुना कि मेरी स्त्री डाक्टर से कह रही है—"डाक्टर बाबू, बहुत सी बेकार दवायें देकर क्यों रुपया नष्ट कराते हो। जब मैं अच्छी होही नहीं सकती तब ऐसी दवा दो जिससे ये प्राण जल्द चले जायँ। डाक्टर बाबू ने कहा—"छि! कोई ऐसी बात कहता है?" ये बातें सुन कर मेरे हृदय में बड़ी चोट लगी। डाक्टर के चले जाने पर मैं अपनी स्त्री की चारपाई के पास जाकर बैठ गया और धीरे धीरे उसके सिर पर हाथ फेरने लगा।

उसने कहा—"यहाँ बड़ी गरमी है। तुम बाहर जाओ; तुम्हारे घूमने का समय आगया। थोड़ा सा घूम आओ, नहीं तो रात को भूख न लगेगी"।

"घूमने जाने" का मतलब था—डाक्टर बाबू के घर जाना। मैंने ही उससे कहा था कि भूख लगने के लिए थोड़ा घूमना अच्छा होता है।

अब मैं पूर्णरूप से कह सकता हूँ कि वह मेरी चालबाज़ियाँ रोज़ समझ लेती थी। पर उस समय मैं जानता था कि वह कुछ नहीं समझती।

इतना कह कर दक्षिणा बाबू फिर चुप हो गये। हाथ पर सिर रख कर कुछ देर तक चुप बैठे रहे। इसके बाद उन्होंने थोड़ा पानी माँगा। पानी पीकर वे फिर कहने लगे:—

एक दिन डाक्टर बाबू की कन्या मनोरमा ने मेरी स्त्री को देखने की इच्छा प्रकट की। नहीं मालूम मुझे यह बात क्यों न अच्छी लगी। परन्तु मैं उसे रोक भी न सका। एक दिन शाम को वह मेरे घर आई।

उस दिन मेरी स्त्री को और दिन से कुछ ज़ियादा कष्ट था। जिस दिन उसकी तकलीफ़ बढ़ जाती वह बिलकुल चुप हो जाती। मुख के नीले होने और कभी कभी हाथ की मुट्ठी बँधजाने से उसके कष्ट का पता लगता था।

घर में कोई न था। चारपाई के पास मैं चुपचाप बैठा था। उस दिन उसमें इतनी शक्ति न थी कि मुझसे घूमने जाने के लिए कहती। कदाचित् उसकी यह इच्छा रही हो कि ऐसी तक़लीफ के समय मैं उसी के पास रहूँ। जो कुछ हो, मैं ठीक नहीं कह सकता कि क्या बात थी।

उसकी आँखों पर प्रकाश न पड़े, इस लिए दीपक दरवाज़े के पास रक्खा हुआ था। घर में अँधेरा और सन्नाटा था। कभी कभी जब मेरी स्त्री का कष्ट बढ़ जाता तब वह लम्बी साँसें लेने लगती।

उसी समय मनोरमा दरवाज़े पर आकर खड़ी हो गई। सामने से दीपक का प्रकाश उसके चेहरे पर पड़ा। आँखों में रोशनी की चकाचौंध लगने से वह दरवाज़े पर चुपचाप खड़ी रही। मेरी स्त्री उसे देख कर चौंक पड़ी और मेरा हाथ पकड़ कर बोली—"यह कौन"? ऐसी दुर्बल अवस्था में एका-एक बेजान पहचान के आदमी को देख कर वह डर गई और मुझसे दो तीन बार पूछा "—यह कौन, यह कौन—यह कौन"? उस समय न जाने मेरी बुद्धि कैसी भ्रष्ट हो गई थी कि मैं झट बोल उठा—"मैं नहीं जानता"। इतना कहते ही मुझे मालूम हुआ कि किसी ने मेरे हृदय पर चोट मारी। मैंने उसी समय कहा—"ओह, यह तो हमारे डाक्टर बाबू की लड़की है"।

मेरी स्त्री ने मेरी ओर देखा, परन्तु मैं उसकी ओर न देख सका। उसने डाक्टर बाबू की लड़की को भीतर बुला लिया और मुझसे चिराग़ लाने को कहा।

मनोरमा भीतर आकर बैठ गई और मेरी स्त्री उससे धीरे धीरे बातें करने लगी। इतने ही में डाक्टर बाबू भी आगये। वे अपने साथ दवा की दो शीशियाँ लाये थे। उन्होंने शीशियाँ निकाल कर मेरी स्त्री से कहा—"यह नीली शीशी वाली दवा मालिश करने के लिए है और यह दूसरी खाने के लिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु, देखो, कहीं दोनों को मिला न देना। नीली शीशी वाली दवा विषम विष है"। मुझे भी एक बार ख़बरदार करके उन्होंने शीशियाँ मेज़ पर रखदीं। चलते समय डाक्टर ने अपनी कन्या को बुलाया। मनोरमा ने कहा—"पिता जी, मैं यहीं क्यों न रह-जाऊँ। घर में कोई स्त्री नहीं है। इनकी सेवा कौन करेगा"।

मेरी स्त्री जल्दी से बोल उठी—"नहीं, नहीं, आप कष्ट न उठावें। घर में बुढ़िया है। वह मुझे बहुत चाहती है"। डाक्टर ने हँस कर कहा—"ये लक्ष्मी हैं। हमेशा दूसरों की सेवा करती हैं। दूसरों से सेवा नहीं कराना चाहतीं"। मनोरमा को लेकर डाक्टर बाबू चलने लगे तो मेरी स्त्री ने कहा—"डाक्टर बाबू, ये बड़ी देर से अँधेरे में बैठे हैं। इनको ज़रा बाहर घुमा लाइए"।

यह सुन कर डाक्टर ने मुझसे कहा—"चलिए, आपको नदी किनारे घुमा लावें"।

मैं, कुछ आना-कानी करके, चलने को तैयार हो गया। चलते समय डाक्टर ने दवा के बारे में मेरी स्त्री को फिर सचेत कर दिया।

उस दिन मैंने डाक्टर ही के घर पर भोजन किया। घर लौटते लौटते रात हो गई। घर में आकर देखा तो मेरी स्त्री छटपटा रही है। मैंने घबरा कर पूछा—"क्या ज़ियादह तकलीफ़ है"? वह उत्तर न देसकी; एकटक मेरे मुँह की ओर देखने लगी। उसका कण्ठ बन्द हो गया था।

मैं तत्काल डाक्टर को बुला लाया।

डाक्टर बाबू पहले तो कुछ न समझे। वे बोले—"क्या तकलीफ़ बढ़ गई? मालूम होता है कि दवा की मालिश एक बार भी नहीं हुई"।

यह कह कर उन्होंने शीशी को जो देखा तो ख़ाली—

घबरा कर उन्होंने मेरी स्त्री से पूछा—"ऐं, तुमने क्या यह दवा खाली"! गरदन हिला कर मेरी स्त्री ने कहा—"हाँ"।

डाक्टर फ़ौरन गाड़ी पर पम्प लेने के लिए घर गये। मेरी आँखों के आगे अँधेरा छागया। मैं बेहोश सा होकर अपनी स्त्री के बिछौने पर गिर पड़ा।

जिस प्रकार माता अपने पीड़ित बच्चे को दिलासा देती है उसी तरह उसने मेरी गर्दन में अपनी दोनों बाँहें डाल कर मेरा सिर छाती से लगा लिया, और अपने मन की बात मुझे बताने की कोशिश करने लगी। अपने उस प्रेममय आलिङ्गन द्वारा उसने केवल इतना ही कहा—"शोक न करना। जो कुछ हुआ सो अच्छा ही हुआ। तुम सुख से रहोगे—यही जान कर मैं सुख से मरती हूँ"।

हाय! जिस समय डाक्टर लौट कर आये उस समय जीवन के साथ साथ मेरी प्यारी स्त्री के सारे कष्टों का भी अन्त हो चुका था।

यहाँ पर दक्षिणाचरण फिर रुके। उन्होंने पानी पीने को माँगा। पानी पीकर वे फिर बोले—"ओह! यहाँ बड़ी गरमी है"—यह कह कर वे बाहर चले गये। थोड़ी देर तक बाहर दालान में टहलते रहने के बाद वे फिर भीतर आगये और बैठ कर कहने लगे:—

"मनोरमा से विवाह करके और उसे अपने साथ लेकर मैं देश को लौटा। मनोरमा ने अपने पिता की सलाह से मुझ से विवाह किया। किन्तु जब मैं उससे प्रेम की बातें करता और उसके हृदय पर अधिकार जमाने की कोशिश करता तब वह हँसने के बदले गम्भीर हो जाती। मैं नहीं जान सका कि उसके मन में कब और कौनसा खटका समा गया था। उसी समय मेरी आदत मदिरा पीने की पड़ गई।

एक दिन, सन्ध्या-समय, मनोरमा को लेकर मैं अपने बराहनगर वाले बाग़ में घूमने गया। अँधेरा होता जाता था। चारों तरफ़ सन्नाटा था। पक्षियों के परों का शब्द तक सुनाई न पड़ता था। रविशों के दोनों ओर लगे हुए छोटे छोटे पेड़ और झाड़ियाँ हवा से हिल रही थीं।

कुछ देर घूमने के बाद जब मनोरमा थक गई तब उसी सङ्गमरमर वाले चबूतरे पर अपनी दोनों बाँहों पर सिर रख कर लेट गई। मैं भी पास बैठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। पेड़ के साये के कारण उस जगह और भी अँधेरा था। जहाँ तक निगाह जाती थी आकाश तारों से ढका दिखाई पड़ता था। उस दिन शाम को मैंने थोड़ी मदिरा भी पी थी। इस लिए चित्त बहुत प्रसन्न था।

इतने ही में ऐसा जान पड़ा कि मानों झाड़ियों और पेड़ों की चोटियों पर आग लग गई। तत्पश्चात् कृष्ण-पक्ष का पीला चाँद धीरे धीरे वृक्षों के ऊपर आकाश में चढ़ने लगा। सुफ़ेद पत्थर पर सुफ़ेद साड़ी पहने लेटी हुई मेरी स्त्री पर चाँद की रोशनी पड़ी। अब मैं न रह सका। पास सरक कर मैंने मनोरमा के दोनों हाथ पकड़ लिये और कहा—"मनोरमा, तुम मेरा विश्वास नहीं करती, परन्तु मैं तुमसे सच कहता हूँ कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। मैं तुम्हें किसी समय न भूलूँगा।"

इतना कहते ही मैं चौंक पड़ा। मुझे याद आया कि ठीक ऐसी ही बात, एक दिन, मैंने और किसी से भी कही थी। मैं यह सोच ही रहा था कि मौल-सिरी के पेड़ और झाड़ियों के ऊपर, पीले रंग के चाँद के नीचे, गङ्गा के पूर्वी किनारे से लेकर पश्चिमी किनारे तक—अट्टहास का शब्द हवा में गूँज उठा। यह मर्म-भेदी हँसी थी या आकाश-भेदी हाहाकार—यह मैं ठीक ठीक न जान सका। मेरा सिर घूमने लगा और मैं बेहोश हो कर चबूतरे के नीचे गिर पड़ा।

होश आने पर देखा तो मैं अपने घर में बिछौने पर पड़ा हुआ था।

मनोरमा ने कहा—"यह तुमको एक दम से क्या हो गया था"? मैं ने काँप कर कहा—"क्या तुमने नहीं सुना कि समस्त आकाश में अट्टहास का शब्द व्याप गया था"? मेरी स्त्री ने हँस कर कहा—"वह अट्टहास न था। बहुत से पक्षी एक क़तार में उड़े चले जाते थे। वह उन्हीं के परों का शब्द था। तुम बड़ी जल्दी डर जाते हो"।

मैं अच्छी तरह समझ गया कि वास्तव में वह पक्षियों के उड़ने ही का शब्द था, क्योंकि उसी समय उत्तर दिशा से हंसों की एक क़तार नदी के किनारे चरने जारही थी।

परन्तु, शाम होते ही मेरा यह विश्वास फिर जाता रहा। उस समय ऐसा मालूम होता था कि चारों ओर गुप्त रीति से हँसी का शब्द हो रहा है। ज़रा से खटके ही में वह प्रकट होकर समस्त आकाश में भर जायगा। इसी डर से, शाम के बाद, मनोरमा से बातें तक करने का मुझे साहस न होता था। कुछ दिनों मेरी यही दशा रही। तत्पश्चात् मैंने अपने बराहनगर वाले घर को छोड़ दिया। मनोरमा को साथ लेकर, नाव द्वारा, भ्रमण करने निकला। अग-हन का महीना था। नदी की हवा से मेरा सब डर दूर हो गया था। कई दिन बड़े सुख से बीते। मनो-रमा भी चारों तरफ़ की सुन्दरता से प्रसन्न होकर धीरे धीरे अपने हृदय का द्वार मेरे लिए खोलने लगी।

गङ्गा आदि नदियों को छोड़ते हुए अन्त में हम पद्मा नदी में पहुँचे। पद्मा के उत्तर की ओर बालू का एक बड़ा लम्बा चौड़ा मैदान था। उसमें रेत के सिवा मनुष्य और हरियाली का नाम भी न था। दक्षिण की ओर आम आदि के कुछ बाग़ थे।

इस जगह घूमने फिरने का सुभीता देख कर मैंने नाव बाँध दी। एक दिन हम दोनों घूमते घूमते बहुत दूर निकल गये। अस्तमय सूर्य की सुनहली किरणों से मिलती हुई चन्द्रमा की साफ़ रोशनी धीरे धीरे फैलने लगी। थोड़ी ही देर में रेत के लम्बे चौड़े मैदान और आकाश में रोशनी अच्छी तरह फैल गई। उस समय ऐसा मालूम होता था कि इस जनशून्य चन्द्रमा के प्रकाश-राज्य में केवल हमीं दो मनुष्य घूम रहे हैं। मनोरमा एक लाल शाल ओढ़े थी। जब चारों ओर सन्नाटा छा गया, और चाँदनी और मैदान के सिवा और कुछ न देख पड़ने लगा था उस समय, मनोरमा ने शाल के अन्दर से अपना हाथ निकाल कर मेरा हाथ पकड़ लिया। बिलकुल पास आकर वह इस प्रकार खड़ी हो गई मानों अपना तन, मन, यौवन और जीवन मेरे ऊपर न्यौछावर करने को तैयार है। मैं ख़ुशी से फूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठा और मन ही मन सोचने लगा कि क्या घर पर इससे ज़ियादह प्रेम उदय हो सकता है। उस समय ऐसा मालूम होता था मानों न हमारा कहीं घर है और न हमको कहीं लौट कर जाना है। केवल इसी प्रकार, हाथ में हाथ दिये ही, चलना है। चलते चलते एक जगह हमने देखा कि रेत में पानी भरा हुआ है। उस पानी पर चन्द्रमा के प्रकाश की एक बड़ी रेखा सी पड़ी हुई थी। इस जगह हम दोनों खड़े हो गये। मनोरमा ने, न जाने क्या सोच कर, मेरे मुँह की ओर देखा। उसके सिर पर से शाल खिसक पड़ा। मैंने उसका मुँह, जिस पर चाँद का प्रकाश पूर्णतया पड़ रहा था, चूम लिया।

उसी समय, उस रेत के मैदान में, जहाँ मनुष्य का नाम भी न था, किसी ने तीन बार कहा—"यह कौन, यह कौन, यह कौन"। मैं चौंक पड़ा। मेरी स्त्री काँप उठी। परन्तु आँख उठाते ही मालूम हुआ कि वह शब्द किसी मनुष्य का न था। वह जल के एक पक्षी की हांक थी जो इस निर्जन स्थान में एका-एक आदमियों को देख कर घबरा गया था।

इस प्रकार डर जाने से हमें आगे बढ़ने का साहस न हुआ। हम नाव की ओर लौट पड़े। जब लौटे तब थक जाने के कारण मनोरमा तो जल्द सो गई, परन्तु मैं जागता रहा।

थोड़ी ही देर में मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई मसहरी के पास खड़ा है और अपनी सूखी और बिना मांस की उँगली मनोरमा की ओर करके चुपके चुपके मेरे कान के पास कहता है—"यह कौन—यह कौन—यह कौन ?"

झट पट उठ कर मैंने दीपक जलाया। उसी क्षण मसहरी हिली। नाव को हिलाता और मेरे शरीर के ख़ून को बर्फ़ बनाता हुआ वह हँसी का हास हवा में गूँज उठा। पद्मा को पार करके, गाँव और नगर को पार करके, वह शब्द अत्यन्त क्षीण होता हुआ दूर तक चला गया। अन्त में वह इतना क्षीण होगया कि न तो ऐसा क्षीण शब्द मैंने कभी सुना ही था और न कभी उसकी कल्पना ही की थी। शब्द दूर भागता जाता था, परन्तु वह मेरे मस्तक की सीमा को न लाँघ सकता था। अन्त में जब मुझ से न रहा गया तब मैं दीपक बुझा कर चारपाई पर लेट रहा।

जैसे ही मैं लेटा वैसे ही फिर वही मूर्ति मसहरी के पास खड़ी होकर उसी प्रकार मनोरमा की ओर अँगुली करके कहने लगी—"यह कौन—यह कौन—यह कौन ?"

अब तो मुझे चारों ओर से यही शब्द सुनाई देने लगा:—"यह कौन—यह कौन—यह कौन ?"

रात के सन्नाटे में, नाव के भीतर, अलमारी पर रक्खी हुई निर्जीव घड़ी भी सजीव हो उठी और अपने घंटे के काँटे मनोरमा की ओर करके कहने लगी— "यह कौन—यह कौन—यह कौन ?"

कहते कहते दक्षिणाचरण बाबू का रङ्ग पीला पड़ गया। उनका कण्ठ बन्द होगया। मैंने उनसे जल पीने को कहा। उसी समय दीपक बुझ गया। देखा तो सवेरा हो चुका था। पक्षी बोलने लगे थे। मेरे द्वार के सामने से, एक भैंसा-गाड़ी, चूँ चूँ शब्द करती हुई, जा रही थी। दक्षिणाचरण बाबू के मुख का भाव एक दम बदल गया। काल्पनिक डर के कारण जो कथा उन्होंने रात को मुझ से कही थी उसके लिए वे अत्यन्त लज्जित और क्रुद्ध हुए और बिना कुछ कहे सुने एक दम वे उठ कर जल्दी से चले गये।

उसी दिन आधी रात को फिर मेरे दरवाज़े पर आवाज़ आई—"डाकृर—डाकृर"।

विश्वम्भरनाथ शर्म्मा।

ग्रन्थ।

हे ग्रन्थ सदा तुम धन्य धन्य !
है तुम सा जग में कौन अन्य ?
उपकार करें जो यों अनेक,
चाहें नहिं प्रत्युपकार एक ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभव जग का होता विलीन,
रहते हम सब विद्या-विहीन।
रहता असभ्य सब जन-समाज,
होते सुग्रन्थ यदि तुम न आज ॥ २ ॥
नीतिज्ञ कर्मचारी अनेक।
वेदान्त-शास्त्र-धारी अनेक,
विज्ञानवान जितने विशेष
हैं तव प्रसाद ये सब अशेष ॥ ३ ॥
पढ़ कर तुम को कर्तव्य-ज्ञान
होता है सुखदायक महान।
मिलती शिक्षा तुम से अमोल,
तुम देते सब का नेत्र खोल ॥ ४ ॥
हैं लाखों जग में शुभ पदार्थ
यद्यपि मनुष्य के मोदनार्थ।
पर है न एक भी वस्तु अन्य
जो देती तुम सा सुख अनन्य ॥ ५ ॥
क्या पाप-पुण्य कर्तव्य-कर्म,
क्या धर्म-सार, क्या नीति-मर्म्म।
बातें सब ये तुम से विचित्र
होती हैं ज्ञात सदैव मित्र ॥ ६ ॥
आपत्ति में बान्धव-बन्धु सारे
दें छोड़ चाहे, मन स्वार्थ धारे।
सद्भाव सन्मित्र सदा हमारे
होते नहीं भिन्न कभी तुम्हारे ॥ ७ ॥
सेवा किसी की जग में न भाती
है दुःखदायी वह सर्व भांति।
आनन्द होता पर क्या न भारी
हे ग्रन्थ सेवा कर के तुम्हारी ॥ ८ ॥
हे ग्रन्थ! वे नर सदा जग बीच धन्य
जो प्रेम नित्य रखते तुम से अनन्य।
आपत्ति से तुम उन्हें सहसा छुड़ाते;
दे ज्ञान-चक्षु उनको अघ से बचाते ॥ ९ ॥
पूर्वापरस्थिति सदैव तुम्हीं बताते;
सन्मार्ग मोद-कर नित्य तुम्हीं दिखाते।
वेही यथार्थ सुख-शान्ति समूह पाते
जो प्रेम-पूर्वक तुम्हें पढ़ते पढ़ाते ॥ १० ॥

गोपालशरणसिंह।

टाल्सटाय और शेक्सपिअर।

कवि के भाव—कवि की आत्मा—को सर्वसाधारण के सम्मुख उपस्थित करना ही समालोचकों का कर्त्तव्य है। नवीन या प्राचीन लेखक के जिस कथन पर समाज मुग्ध हो जाती है, आपे को भूल जाती है, तन्मय हो जाती है, उसी का सही सही अर्थ बतला कर लेखक की कल्पना तथा भावना का साक्षात्कार करा देना समालोचक का काम है। यदि कवि के कथन में, किसी कारण-वश, कुछ त्रुटियाँ रह गई हों, और वे ऐसी सूक्ष्म हों कि जनसाधारण की दृष्टि उन तक न पहुँच सकती हो, तो उन्हें दिखला कर भावी लेखकों को सचेत करना समालोचक का ही कर्त्तव्य है। समालोचना का काम साहित्य-संसार में प्रकाश फैलाना है। कवि के हृदयङ्गत, गूढ़ से गूढ़, रहस्य बतलाना कोई आसान काम नहीं; बड़ी विद्वत्ता, बड़ी योग्यता, और बड़ी भारी मर्मज्ञता का? मनुष्य ही समालोचक बन सकता है। यों तो हर विषय पर ही मनुष्य कुछ न कुछ अपना मत प्रकाशित कर सकता है, पर उससे विशेष लाभ नहीं। मत उसी विद्वान् का माननीय हो सकता है जो अपनी योग्यता, सूक्ष्म-दर्शिता तथा अध्यवसाय की बदौलत उस विषय-समुद्र का पूर्णतया मन्थन करके उसमें से रत्नों और पाषाण-खण्डों को अलग अलग करके दिखादे; जो नीर को क्षीर से जुदा करदे; और जो निर्भयता के साथ साथ स्वतन्त्र विचार और उद्धार के स्वत्व को काम में लावे। ऐसे ही महापुरुष को समालोचक कहते हैं।

संसार एक ओर है और हमारा समालोचक दूसरी ओर। उसे किसी की कुछ परवा नहीं। अपने मत को प्रकट करने में सङ्कोच करना वह नहीं जानता। यदि संसार भर उसकी हँसी उड़ावे और लाञ्छना करे तो भी वह अपने आपे को नहीं भूलता। अपनी लेखनी और अपनी जिह्वा—इन दोनों पर उसे पूरा अधिकार प्राप्त है। किसी से दबना, या जिसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाना उसका गाना, उसने नहीं सीखा। ऐसे ही समालोचक से साहित्य की शोभा है, देश की शोभा है, देशवासियों की शोभा है और संसार की शोभा है।

"समालोचक" शब्द की इस व्याख्या के भीतर बहुत से धर्म-सञ्चालक, बहुत से राजनीति-विशारद, बहुत से नैयायिक और बहुत से साहित्य-सेवी आजाते हैं। सृष्टि के ये अनमोल रत्न जिन बातों का प्रचार करना चाहते हैं उन्हीं को जन-साधारण के सम्मुख अपनी वाणी या लेखनी द्वारा प्रकट करते हैं। और, यदि, उनके कथन या लेख में कुछ भी सत्यता या यथार्थता होती है, तो कुछ न कुछ लोग अवश्य ही उनका मत स्वीकार कर लेते तथा उनके पक्ष में हो जाते हैं। यही प्राकृतिक नियम है। इसी के अनुसार जब कोई व्यक्ति किसी और की कृति की समालोचना करता हुआ कुछ दोष दिखलाता है तब समाज का कुछ भाग तो उन दोषों को मान लेता है और कुछ उनके मानने में आनाकानी करता हुआ उनको ढाँकने और उनको उलटा गुण साबित करने का प्रयत्न करता है। विद्वन्मण्डली में समालोचित व्यक्ति की जितनी कीर्ति है, उससे यदि समालोचक की कीर्ति कम हुई, अथवा, समालोचक के प्रति जन-साधारण की उतनी श्रद्धा और भक्ति न हुई जितनी समालोचित व्यक्ति के प्रति है तब तो मनमाना फ़ैसला हो ही जाता है। पर, यदि, समालोचक और समालोचित, दोनों ही समान विद्वत्ता, योग्यता, तथा कीर्ति के भाजन हुए, तो जन-साधारण का हृदय बड़े असमञ्जस में पड़ जाता है, समाज में मानसिक विप्लव होने लगता है और इस झगड़े में बहुत से जन किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर दोनों की सुनते हैं; पर किसी के भी पक्ष या विपक्ष में, अपनी सम्मति नहीं दे सकते।

यदि समालोचित व्यक्ति प्राचीन काल का कोई संसार-सम्मानित, अत्यन्त लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान् हुआ तो यह मानसिक विप्लव और भी उग्र रूप धारण कर लेता है। उस समय विप्लव को शान्त करने के लिए मनुष्य की बुद्धि दो जनरलों को नियुक्त करती है। एक तो अन्ध-भक्ति और दूसरी विचार की परतन्त्रता। परन्तु सच्चे समालोचक के मानसिक-बल-रूपी अस्त्र के सम्मुख इन दोनों के ही पैर उखड़ जाते हैं। हाँ, इनके पराजय में जो समय लगता है वह अल्प अवश्य ही नहीं होता।

आज, हम संसार के साहित्य-क्षेत्र के दो सर्व श्रेष्ठ सामन्तों के मत-वैपरीत्य का परिचय सरस्वती के पाठकों से कराते हुए, एक निर्भीक तथा आदर्श समालोचक की कृति का उल्लेख करते हैं। इन दो में से एक शेक्सपिअर हैं, जिनके विषय में केवल इतनाही कह देना बस होगा कि सत्रहवीं सदी से अब तक सारे संसार के कितने ही उत्तम से उत्तम विद्वान् और समालोचक इनको नाटक-लेखकों के मुकुट-मणि तथा मनुष्य का चरित्र दरसाने में अद्वितीय मानते रहे हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि इनके जन्म से न केवल इँगलैण्ड की भूमि किन्तु समस्त संसार भूषित समझा जाता है। दूसरे व्यक्ति समालोचक हैं। उनका नाम है कौंट लिओ टाल्सटाय। आपके सदृश निर्भीक समालोचक संसार में बहुत ही कम हुए हैं। आपकी आत्मा, बहुत से अन्य यूरोपियन समालोचकों की तरह, द्वेष से कलङ्कित न थी। अपनी प्रकाण्ड विद्वत्ता की सहायता से किसी विषय में जो मत आप स्थिर करते उसे साफ़ साफ़ कह डालने में कभी भी आप सङ्कोच न करते। आपका मत यूरप के सभ्य-जगत् में बड़ी आदर की दृष्टि से देखा जाता है। रूस-जापान-युद्ध के समय आपने जो राय प्रकाशित की थी उसकी निर्भीकता, विचारपूर्णता तथा दूरदर्शिता ने सारे यूरप-वासियों को चकित कर दिया था। ये महाशय आधुनिक समय के उन महर्षियों में से थे जिनकी बदौलत यह समय—यह बीसवीं सदी—पवित्र हुई है। समस्त संसार शेक्सपिअर को अद्वितीय नाटक-कार समझता है, परन्तु उससे आप का मत-विरोध है। उत्तम नाटक-रचना तो दूर रही, शेक्सपिअर 'नाटक' शब्द का ठीक ठीक अर्थ भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझता था—यह भी मानने को आप तैयार नहीं। आप कहते हैं:—

"शेक्सपिअर के विषय में मेरी सम्मति सारे यूरप से भिन्न है। मैंने अपनी सम्मति को शेक्सपिअर के अनुकूल बनाने की बहुत चेष्टा की, पर कुछ फल न हुआ। मेरे इस मत-वैपरीत्य का कोई मामूली कारण नहीं। मैंने अनेक वर्षों तक अपने को शेक्सपिअर के अनुकूल करने के लिए जो प्रयत्न किया, मेरा यह विपरीत मत उसी का फल है। शेक्सपिअर की पुस्तकें पढ़ते ही मुझे कितना आश्चर्य हुआ था सो मुझे अच्छी तरह याद है। मुझे आशा थी कि उसकी पुस्तकें पढ़ कर मुझे हर्ष होगा। परन्तु किंग लिअर, रोमिओ-जूलिअट, हैमलेट और मैकबेथ आदि उसके बहु-प्रशंसित नाटकों के पढ़ने पर भी, न केवल मुझे कुछ भी हर्ष न हुआ, किन्तु एक बड़ी भारी ग्लानि उनकी ओर से मेरे चित्त में उत्पन्न हो गई। मैं समझ न सका कि साहित्य-संसार की सर्वोत्तम कही गई कृति को मामूली और निकम्मी ठहराने में मेरी ही अक्ल ने धोखा खाया है या उसकी प्रशंसा करनेवाले समस्त सभ्य संसार ही ने। कैसा ही काव्य क्यों न हो, मैं उसमें कुछ न कुछ सुन्दरता या गुण अवश्य देख सकता हूँ। फिर समस्त सभ्य-संसार द्वारा प्रशंसित शेक्सपिअर की कविताओं से मुझे इतनी घृणा क्यों? इस बात से मैं बहुत चकराया। पहले तो मुझे अपने ऊपर विश्वास ही न हुआ। इसलिए मैंने आत्म-परीक्षा के लिए शीगल के अनुवाद पढ़े। फिर रूसी तथा जरमन भाषाओं के अनुवादों के सिवा अँगरेज़ी में भी ये नाटक पढ़े। इस आत्म-परीक्षा में मेरे पचास वर्ष खर्च हो गये। पर परिणाम वही हुआ। घृणा, उकताहट और हैरानी। इस लेख के लिखने के पहले, अपनी परीक्षा एक बार और करने के लिए, मैंने, इस ७५ वर्ष की आयु में, शेक्सपिअर के तमाम नाटकों को फिर पढ़ा। इस बार मुझे हैरानी तो न हुई, पर, हाँ, यह दृढ़ विश्वास हो गया कि शेक्सपिअर के विलक्षण बुद्धिमान् होने की यह सारी कीर्ति—जिस के लोभ में पड़ कर हमारे आधुनिक लेखक उसका अनुकरण करते हैं, और जिसकी बदौलत बहुत से समालोचक और नाटककार उसके नाटकों में ऐसे ऐसे गुण खोज निकालने की चेष्टा में संलग्न रहते हैं जो वास्तव में उस में नहीं थे या उनके नाटकों में नहीं हैं, और इस प्रकार अपनी विद्वत्ता की खेंचातानी करते रहते हैं—मिथ्या है और अत्यन्त हानिकारिणी भी है।

"मैं जानता हूँ कि अधिकतर लोग शेक्सपिअर की महत्ता पर बड़ी श्रद्धा और भक्ति रखते हैं। इससे मेरे इन विचारों को पढ़ कर वे इनको सरासर अनुचित समझेंगे और इन पर कुछ भी ध्यान न देंगे। तो भी मैं यथाशक्ति और यथामति यह दिखलाने की चेष्टा करूँगा कि शेक्सपिअर की गिनती उत्तम लेखकों में तो क्या, मामूली पुस्तक-रचयिताओं में भी नहीं की जासकती।"

इसके अनन्तर महात्मा टाल्सटाय ने शेक्सपिअर के सर्वोत्तम 'किंग लिअर' नाटक के विषय में अपना कथन सप्रमाण सत्य सिद्ध करने की चेष्टा की है। किंग लिअर की समालोचना पढ़ने पर सचमुच ही इनकी मर्मज्ञता पर आश्चर्य होता है और सर्वोत्तम 'किंग लिअर' से घृणा और शेक्सपिअर पर अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। अच्छा होता यदि टाल्सटाय इसी भाँति उसके दो चार नाटकों की और समालोचना कर देते।

किस पात्र के मुख से कौन से और किस ढँग के शब्द कहलाने चाहिएँ, यह भी शेक्सपिअर को न मालूम था। उसके विदूषक ऐसे ऐसे मज़ाक करते हैं जिनका किसी बात से सम्बन्ध ही नहीं। उनके मज़ाक भी ऐसे क्षुद्र हैं कि उन्हें पढ़ कर बहुत प्रयत्न करने पर भी हँसी नहीं आती। उनका मतलब ही समझ में नहीं आता। लिअर से ऐसी ऐसी बातें कहलाई गई हैं जिनका किसी पूरे पागल के मुख से भी निकलना सम्भव नहीं। घटना-वैचित्र्य भी कुछ नहीं है। हाँ, असम्भव और व्यर्थ बातें बहुत सी भरदी गई हैं। लिअर की हायतोबा सुन कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी भी भले आदमी को शरम आये बिना नहीं रह सकती। विदूषक के मज़ाकों को पढ़ कर भी लज्जा आती है। अन्त में टाल्सटाय कहते हैं—"यही है वह नाटक जिसकी इतनी तारीफ़ है। मैंने जो सम्मति दी है वह निष्पक्ष-भाव से दी है। उसे पढ़ कर, सम्भव है, बहुत से लोग इस नाटक को रद्दी समझने लगें। पर मैं विश्वासपूर्वक कहता हूँ कि यदि वे इस नाटक को विचारपूर्वक पढ़ेंगे तो इसे वे और भी गया बीता पायेंगे"। टाल्सटाय के इस कथन की सत्यता की परीक्षा हमारे अँगरेज़ी पढ़े पाठकों को अवश्य करनी चाहिए। हाँ, एक बात हम अपनी ओर से भी कह देना चाहते हैं। वह यह कि आपकी समालोचना पढ़ने के बाद किंग लिअर से सचमुच सिर में दर्द होने लगता है। वह ज़रा भी मनोरञ्जक नहीं मालूम होता और उसका ख़तम करना कठिन हो जाता है।

शेक्सपिअर की एक आध बात से प्रसन्न होकर उसके प्रशंसकों ने उसे कीर्ति के शिखर पर चढ़ा दिया। बस, सब लोग बिना सोचे समझे मानने लगे कि शेक्सपिअर बड़ा भारी मर्मज्ञ और मानव-चरित्र के दरसाने में अद्वितीय था। लोग उसकी पुस्तकों में से ऐसे ऐसे गुण निकालने लगे कि जो उनमें हैं ही नहीं। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि सर्वसाधारण के साथ साथ बड़े बड़े विद्वान् भी शेक्सपिअर पर मुग्ध होने लगे और अन्त में उसके अन्ध-भक्त बन बैठे। किसी का तटस्थ होकर सम्मति देना तो दूर रहा, स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करना भी असम्भव होगया। बस, इसी दिल्लगी में एक तुच्छ नाटककार बड़ा आदमी बन गया। भक्ति, श्रद्धा और कीर्ति हाथ जोड़ कर उसके द्वार पर जा पहुँची! सच है, लोग चाहे जिसको बढ़ा दें और चाहे जिसको घटा दें। टाल्सटाय तुम धन्य हो! इस विषय में निर्भय हो कर सम्मति देने का आदर्श तुम्हीं ने उपस्थित किया है, और, इस विषय में, अपने विचारों और उद्गारों की स्वतन्त्रता के स्वत्व का पूर्ण उपयोग करना सबसे पहले तुम्हीं को आया है। यह बात ही दूसरी है कि किसी का मत तुमसे मिले या न मिले। जिन लोगों को बचपन से ही यह पाठ पढ़ाया जाता है कि शेक्सपिअर सबसे बड़ा नाटककार है; वह एक विलक्षण विद्वान् तथा सर्वोत्तम कवि था; मानव-चरित्र दरसाने में वह अद्वितीय था; दुनिया भर में कोई नाटक उसके नाटकों की बराबरी नहीं कर सकता, इत्यादि—उनमें से थोड़े ही लोग आपके विचारों से सहमत हो सकते हैं।

आगे चल कर टाल्सटाय ने यह दिखलाया है कि शेक्सपिअर को नाटक लिखने का शऊर ही न था। उसको उन मामूली बातों का भी ज्ञान न था जो साधारण नाटक-रचयिताओं तक को मालूम रहती हैं। किस समय किसके मुख से कौनसी बात कहलानी चाहिए, यह भी वह न जानता था। अपने नाटकों में उसने ऐसी ऐसी बातें भरदी हैं जिनकी असम्भवता मूर्ख मनुष्य भी समझ सकता है। अतएव उनसे शिक्षा मिलना भी असम्भव मालूम होता है। उसके तमाम पात्र बनावटी बातें करने में ही सारी अक्ल ख़र्च कर देते हैं। देश और काल तक का ज्ञान उन्हें नहीं। शेक्सपिअर के दुःखान्त नाटक क्या हैं, ख़ासे मुर्दशुमारी के रजिस्टर हैं। हर एक के अन्त में लगभग आधे दर्जन के लाशें खींच कर रखदी जाती हैं, जिससे दर्शक के हृदय में दुःख और दया की जगह हास्य का ही अधिक सञ्चार हो जाता है। इस मुर्दे-घसीटी को देख कर हँसी आजाती है और दुःखान्त नाटक का उद्देश लुप्त हो जाता है।

शेक्सपिअर के पात्र बड़ी उपयुक्त बातें करते हैं, प्रायः यही तान उसके प्रशंसक सबसे अधिक अलापते हैं। टाल्सटाय कहते हैं:—"मैंने अनेक प्रयत्न किये कि मुझे कहीं कोई ऐसा पात्र मिले जो उपयुक्त बातें करता हो। पर मेरी खोज का परिणाम उलटा ही हुआ और यह बात मेरी समझ में अच्छी तरह बैठ गई कि चरित्र-अङ्कन में शेक्सपिअर बिलकुल ही अनुत्तीर्ण रहा। जिस ढँग और जिस भाषा में किसी पात्र को बातचीत करनी चाहिए, उस ढँग और उस भाषा का शेक्सपिअर के नाटकों में बिल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुल ही अभाव है। सभी पात्र अपनी नहीं, किन्तु शेक्सपिअर की अनुपयुक्त और बनावटी भाषा में बातचीत करते हैं। उस भाषा में बोलना न केवल उनके लिए असम्भव ही था, वरन् उसमें कोई भी आदमी संसार में न कभी बोला और न बोलता है।" अपने इस कथन की पुष्टि में टाल्सटाय ने 'लिअर' के कुछ वाक्य उद्धृत करके लिखा है :—

"कोई भी जीवित मनुष्य, लिअर की भाँति, यह नहीं कह सकता कि अगर रीगन (लिअर की लड़की) ने मुझे अपने साथ न रक्खा तो मैं अपनी कब्र में गड़ी हुई पत्नी को तलाक़ दे दूँगा; मारे चिल्लाहट के आसमान टूट पड़ेगा; हवायें फट जायगीं। आँधी चाहती है कि ज़मीन को उड़ा कर समुद्र में रख दूँ; समुद्र का लहराता हुआ पानी किनारे पर चले आने की इच्छा कर रहा है। अपना दुःख सह लेना हर एक के लिए बहुत आसान है। जब दुःख से दोस्ती हो जाती है तब आत्मा कूद कर बहुत सी तक़लीफ़ों को पार कर जाती है"।

ऐसी ऐसी बातें बादशाह लिअर से कहलाने पर भी, यदि शेक्सपिअर मानवचरित्र के दरसाने में अद्वितीय समझा जाय तो इसका कारण केवल उसका सौभाग्य ही कहा जा सकता है।

शेक्सपिअर के पात्र—चाहें वे मर रहे हों, चाहें मरने की तैयारी कर रहे हों, चाहें लड़ रहे हों, चाहें प्रेम कर रहे हों—आवश्यकता से कहीं अधिक बातें करते हैं। और, बातें भी कैसी? बिलकुल असङ्गत, असम्भव तथा निष्प्रयोजन, जिनसे कुछ मतलब ही नहीं निकलता। शब्दों की खेंचातानी अवश्य समझ में आती है। यदि एक पात्र के शब्द दूसरे के मुख से और दूसरे के शब्द पहले के मुख से कहलवाये जायँ तो भी उन वाक्यों के सुनने पर भी यह मालूम न होगा कि कौन बोल रहा है। शेक्सपिअर के सभी राजा बड़े अक्खड़पन से बिना मतलब की बातें, अस्वाभाविक भाषा में, करते हैं। उसने अपने बुरे चरित्रवाले पात्रों से ऐसी ऐसी बातें कहलाई हैं जो वे कभी भी न कहते। हाँ, शेक्सपिअर ने अपनी भाषा में अपने भाव उनके मुख से अवश्य प्रकाशित करा दिये हैं। उपयुक्त भाषा का व्यवहार, शेक्सपिअर के पात्रों ने कहीं भूल कर भी नहीं किया। उसने अपने बहुत से पात्र दूसरों की पुस्तकों से चुरा कर रख दिये हैं। पर, उनसे नाटकोचित बातचीत न करा कर उनकी और भी मिट्टी पलीद कर दी है। किंग लिअर में उसने एक पुराने नाटक 'किंग-लेर' के बादशाह लिअर और दूसरे लोगों का चरित्र बिगाड़ते हुए, उस प्राचीन नाटक की सुन्दर कथा को ही नष्ट भ्रष्ट कर डाला है। इटली की एक पुस्तक से कथा चुरा कर उसने 'ओथेलो' बना डाला है। प्राचीन नाटकों, कथाओं, कहानियों, तथा प्लुटार्क-रचित 'चरित्र-माला' आदि जिस किसी पुस्तक से शेक्सपिअर ने सहायता ली उसी पर हाथ साफ़ किया है और चरित्रों को बिगाड़ कर कथा का सत्यानाश कर डाला है। उसके विदूषकों में से फौल्सटाफ अवश्य कुछ अच्छा कहा जा सकता, यदि शेक्सपिअर उसे ख़ूब पिअक्कड़, खाऊ, दुश्चरित्र, बदमाश, धोखेबाज़ तथा कायर दरसाने की कृपा न करता।

हैमलेट का चरित्र बिगाड़ देने में तो शेक्सपिअर ने बड़ी ही कठोरता की है। उससे चाहे जो कुछ कहलाया है। उसे बिलकुल अपना ही फ़ोनोग्राफ़ बना डाला है। हैमलेट ने ऐसी ऐसी बातें कही हैं तथा ऐसे ऐसे काम किये हैं जिनके कहने या करने की इच्छा उसे तो कभी न होती। शेक्सपिअर की ही उससे उन बातों के कहलाने तथा उन कामों के कराने की इच्छा प्रबल मालूम पड़ती है।

लोग तो यह समझते हैं कि शेक्सपिअर कोई भी दूषित या अनुचित बात नहीं लिख सकता। इसी लिए विद्वान् उसकी बेवक़ूफ़ियों में से भी असाधारण ख़ूबियाँ खोज निकालने के प्रयत्न में अपनी सारी शक्तियाँ ख़र्च कर देते हैं। जहाँ उसने बिलकुल ही मूर्खता की है वहीं वे उसकी 'अद्वितीयता' की झलक देखते हैं! उदाहरण हैमलेट ही का लीजिए। उसकी तारीफ़ तो सब कोई करते हैं, पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बात की परीक्षा कोई नहीं करता कि हैमलेट का ठीक ठीक चरित्र-चित्रण वह कर सका है या नहीं। हैमलेट का गड़बड़ चरित्र विद्वान् समालोचकों को इतना पसंद आया है कि उसकी प्रशंसा में उन्होंने कितने ही ग्रन्थ लिख डाले हैं और शेक्सपियर को कीर्त्ति के कुतुबमीनार पर चढ़ा दिया है। नाटक पढ़ने पर यद्यपि हैमलेट बिलकुल ही चरित्र-हीन दीखता है, तथापि इन समालोचक-पुङ्गवों को उसमें खूबियों ही की भरमार देख पड़ी है! जो कुछ भी नहीं है वही इनके लिए सब कुछ है!! धन्य मर्मज्ञता, धन्य सूक्ष्मदर्शिता!!!

लिअर, फालस्टाफ, ओथेलो, हैमलेट आदि किसी के चरित्र से भी यह बात ज़ाहिर नहीं होती कि शेक्सपिअर मानव-चरित्र दरसाने में सिद्धहस्त था। यदि ५०० से अधिक पात्रों में दो चार गौण पात्र कुछ अच्छे हैं तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि शेक्सपिअर के नाटकों में मानव-चरित्र का चित्र आश्चर्यजनक रूप से ठीक ठीक खींचा गया है। शेक्सपिअर के पात्रों की कितनी ही उक्तियों की तारीफ़ में उसके प्रशंसक आपे से बाहर हो जाते हैं। पर इसमें सन्देह नहीं कि जिन उक्तियों की तारीफ़ की जाती है उनमें से बहुत कम ऐसी हैं जो कुछ अच्छी कही जा सकें। उनमें सब की सब, क्या अच्छी और क्या बुरी, बहुत ही बे मौक़े कहलाई गई हैं। उन्होंने नाटकों को गुण-रहित कर डाला है। यदि किसी मैजिक लालटेन से लैम्प निकाल लिया जाय तो उसकी जो दशा हो, ठीक वही दशा इन उक्तियों को ठूँस देने से शेक्सपिअर ने अपने नाटकों की कर दी है। बे फ़ायदे की कोरी बकबाद करने में शेक्सपिअर के पात्र बड़े पटु हैं। इस बात के उदाहरण शेक्सपिअर के सभी नाटकों में मौजूद हैं। लोग शेक्सपिअर की चाहें जितनी प्रशंसा करें, पर एक बात में तो सन्देह है नहीं; वह यह कि वह यथार्थ में 'नाटक' लिखना जानता ही न था। बहुत से लोग उसका होमर से मुक़ाबला करते हैं, पर नक़लची शेक्सपिअर, प्रकृत कवि होमर की ज़रा भी बराबरी नहीं कर सकता। यदि साहित्य-विषयक चोरी के अपराध में सज़ा देने का नियम होता तो हमें पूरा विश्वास है कि यह असाधारण प्रतिभा वाला अद्वितीय नाटककार भी दो चार बार बड़े घर की हवा ज़रूर खाता।

शेक्सपिअर में अँगरेज़ी देश-भक्ति के उस अंश की भी कमी न थी जिसके अनुसार अँगरेज़ जाति ही दुनिया में सर्वोपरि दिखलाई जाती है। जोन ऑफ़ आर्क को जादूगरनी बतलाना, यूनानियों को डरपोक कह डालना और हज़ारों फ़रासीसियों को सदा मुट्ठी भर अँगरेज़ों से परास्त करा देना-- ये बातें और क्या साबित करती हैं?

शेक्सपिअर की पुस्तकों से शिक्षा भी कुछ नहीं मिलती। मनुष्य का चरित्र बिगाड़ने और उसकी नीयत ख़राब कर देने के लिए शेक्सपिअर के नाटक अच्छे साधन हैं। तो भी लोग सैकड़ों वर्ष से उनकी प्रशंसा ही कर रहे हैं। टालसटाय कहते हैं "अपने जीवन में कितनी ही बार मुझे शेक्सपियर के प्रशंसकों से उसके विषय में वार्तालाप करने का अवसर मिला है। प्रसिद्ध महाकवि टरजेनेफ फैट से भी इस विषय में मुझसे बात चीत हुई। पर मेरी शङ्का का कुछ भी समाधान न हुआ! जब मैंने शेक्सपिअर के दोष दिखलाये तब किसी ने उनका निराकरण न करके केवल मेरी समझ की कमी पर शोक प्रकाशित किया और शेक्सपिअर के असाधारण महत्त्व और दिगन्तव्यापिनी कीर्ति पर विश्वास रखने का परामर्श दिया। उन लोगों ने मुझे यह न बतलाया कि शेक्सपिअर की खूबियाँ किस बात में समझी जाती हैं। उसकी तमाम पुस्तकों की अंधाधुन्ध तारीफ़ करके उनमें से एकाध लाइन सुना देना ही उन्हों ने काफ़ी समझा! मैं इन महानुभावों से कहता कि आप चाहे जहाँ से शेक्सपिअर की कोई पुस्तक खोल लीजिए, आप उसमें कहीं भी इकट्ठी दस पंक्तियाँ ऐसी न पावेंगे जिनका पूरा पूरा मतलब समझ में आता हो, अथवा जिस पात्र से वे कहलाई गई हों उसके उपयुक्त हों। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर वे या तो अपनी इच्छा से, या योंहीं, कोई पृष्ठ खोलते । जब मैं उन्हें यह समझाने की चेष्टा करता कि क्यों ये दस पक्तियाँ मामूली से भी गई बीती हैं और नाटकोचित नहीं, तभी वे बिना मेरी बात पर ध्यान दिये उन्हीं पक्तियों पर, जिन्हें मैं समझ में न आनेवाली और भद्दी बतलाता, मुग्ध हो जाते और साधारण बुद्धि के विपरीत बातों की भी तारीफ़ के पुल बाँध देते । मुझे उनसे अपनी शङ्काओं के वैसे ही उत्तर मिलते जैसे किसी धर्मान्ध मनुष्य से उन विषयों पर मिलते हैं जिनको वह समझ में आने के कारण नहीं, बल्कि अन्धविश्वास के कारण, मानता चला आता है । हाय, शेक्सपियर के प्रशंसकों की यह दशा ! उसके विषय में जो निबन्ध आदि लिखे गये हैं उनमें भी यही हठधर्मोपन प्रत्यक्ष दीखता है" ।

अब समझ में आया कि शेक्सपियर की इतनी नामवरी क्यों है । बात कुछ भी नहीं; वही है जो नित्य देखने में आती है । कितनी ही बहुत बुरी पुस्तकों की सर्व-साधारण में बड़ी प्रशंसा होती है और कितनी ही उत्तम पुस्तकों की कोई बात भी नहीं पूछता । ज़रा सी बात पर लोग प्रशंसा का पुल बाँध देते हैं । अख़बार वाले उस प्रशंसा की वृद्धि करते हैं और उनके द्वारा वह प्रशंसा घर घर में फैलती है । फिर क्या है ? लेखों और निबन्धों की जगह पुस्तकों का नम्बर आजाता है और प्रशंसा-पूर्ण ग्रन्थों की लिखाई शुरू हो जाती है । बस, यही बात शेक्सपिअर के साथ हुई है । किसी ने असली बात जानने की परवा न की । अन्ध-परम्परा ने मनुष्य की तार्किक शक्ति को निकाल बाहर किया । इसी से शेक्सपिअर नाटक-रचयिताओं का सरताज बन बैठा ! अब भी उसकी रचनाओं की यथार्थ समालोचना करने का कष्ट कोई नहीं उठाता । जो उठाता भी है उसकी समझ की अवहेलना की जाती है ।

अठारहवीं सदी तक शेक्सपिअर का इतना ज़ियादा नाम न था जितना आजकल है । पहले ही पहल उसकी तारीफ़ जरमनी से शुरू हुई । वहाँ उसकी प्रशंसा का सूत्रपात गर्टी ऐसे विद्वान् ने किया । गर्टी के मुख से प्रशंसा सुन कर सब उसके ही सुर में सुर मिलाने लगे और शेक्सपिअर की हर एक बात की प्रशंसा में अपनी सारी बुद्धि ख़र्च करने लगे । टाल्सटाय कहते हैं कि शेक्सपिअर के नाटकों से ख़ूबियाँ निकालने में कमाल करने वाले ये समालोचक लोग उस अन्धे मनुष्य के तुल्य हैं जो पत्थरों के ढेर में से, केवल अपनी स्पर्श-शक्ति की ही बदौलत, हीरे निकालना चाहता हो, और अन्त में यह परिणाम निकाले कि ये सभी रत्न हैं; इनमें से जो चिकने चिकने हैं वे तो अनमोल ही हैं । इन विवेचना-शून्य समालोचकों ने शेक्सपिअर की प्रशंसा में ग्रन्थ के ग्रन्थ लिख कर न केवल उसकी सर्वसाधारण से ही ख़ूब पूजा कराई वरन 'शेक्सपिअरोलोजी' नाम की एक जुदी विद्या ही निर्म्माण कर डाली । इस विद्या या विज्ञान के ११००० से ऊपर ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं; और नित्य लिखे ही जा रहे हैं !

शेक्सपिअर के नाटक धार्मिक-शिक्षा से (जो टाल्सटाय के कथनानुसार हर एक नाटक का प्रधान उद्देश होना चाहिए) बिलकुल ही रहित हैं । उनकी लोकप्रियता का एक कारण यह भी है कि आजकल लोगों को धार्मिक-शिक्षा से ग्लानि और धार्मिक-तत्त्वों से प्रबल अश्रद्धा हो चली है । शेक्सपिअर की इतनी प्रशंसा होती देख कर संसार के आधुनिक नाटक-रचयिताओं ने भी उसी की शैली का अनुकरण करने, और उसी के ढँग के नाटक रचने में कसर नहीं की । उसके इन अनुगामियों के नाटक भी धार्मिक-शिक्षा से रहित हैं । (टाल्सटाय स्वयं अपने नाटकों को भी इस दोष से रहित नहीं बतलाते) उनके अनुसार ऐसे नाटक मनोरञ्जन के सिवा और किसी मर्ज़ की दवा नहीं ।

जरमनी की देखादेखी अन्य देशों के समालोचकों ने भी शेक्सपिअर की प्रशंसा करने और तद्विषयक लेख तथा पुस्तकें लिखने में जो स्पर्धा दिखलाई है उसके विषय में जो कुछ कहा जाय थोड़ा है । "वह अद्वितीय है । तमाम पुराने और नये लेखकों में उसकी बराबरी का कवि तो दूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा, उसके पास तक पहुँचने वाला भी कोई कवि नहीं"—"उसकी तरह सच्चरित्रता की शिक्षा देने वाला संसार में न कभी हुआ, न है और न होगा"। "उसकी बराबर मेधावी अब तक कोई भी नहीं हुआ।" "सुखान्त, दुःखान्त आदि नाटकों के लिखने में वह अद्वितीय है। वह चाहे जब हमें रुलादे और चाहे जब हँसादे। उसकी कल्पना तथा विचार-शक्ति ग़ज़ब की है"। "वह न केवल एक बड़ा भारी कवि था वरन् संसार में जितने कवि हुए हैं उन सबसे वह कहीं बढ़ चढ़ कर था। उसकी काव्य-विषयक कल्पना अप्रतिम थी"। इन विद्वान् समालोचकों से शेक्सपिअर की ऐसी ऐसी प्रशंसा सुन कर भी क्या साधारण लोग चुपके रह सकते थे? बस, इसी तरह शेक्सपिअर का यश फैला और अब वह देवता की भाँति पूजा जाता है। यदि उसकी कोई बात खटकती भी हो तो भी लोग अपनी ही कम समझी को दोष देने लगते हैं। शेक्सपिअर में किसी प्रकार का दोष भला वे कैसे निकाल सकते हैं? उसके प्रशंसक ऐसे ऐसे विद्वान् लोग हैं जैसे दुनिया में और किसी के नहीं। फिर उसमें दोष होना कैसे सम्भव हो सकता है?

डाक्टर जौन्सन, हैज़लिट, हैलम, शैली, स्विनबर्न, विक्टर ह्यूगो, जौर्ज ब्रान्डीज़, जरविनस, गर्टी, टरजेनेफ फैट, शिलर ऐसे विद्वान् समालोचकों के ख़िलाफ़ अपनी स्वतंत्र राय प्रकाशित करने की हिम्मत के लिए टाल्सटाय की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। प्रसिद्ध विद्वान् वोल्टेयर भी पहले शेक्सपिअर का परम भक्त था, परन्तु, अन्त में, उसने शेक्सपिअर के दोषों को दोष ही माना। अब लोग दीर्घ निद्रा से जाग कर शेक्सपिअर का यथार्थ स्वरूप पहचानते जा रहे हैं। वर्तमान काल के सब से प्रसिद्ध साम्यवादी बर्नार्ड शा तथा अमेरिका के प्रसिद्ध लेखक तथा समाज-संशोधक अरनेस्ट क्रोसबी ने भी अपना मत शेक्सपिअर के प्रतिकूल प्रकाशित किया है। अमेरिका और योरुप के बहुत से लोग, अब, इस विषय में, खोज कर के शेक्सपिअर के यथार्थ स्वरूप को देखने तथा दिखलाने का प्रयत्न कर रहे हैं। सुबह का भूला यदि शाम तक घर आजाय तो वह भूला नहीं कहलाता। परन्तु ये तो योरुप और अमेरिका की बातें हैं, हमारे भारतवर्ष की नहीं। यहाँ तो "मूल्य इतना है; पुस्तक साधारणतः अच्छी है; विषय नाम से ही प्रकट है"—बस, इतना ही लिख कर समालोचना की इति-श्री करदी जाती है। यदि कोई मनुष्य किसी विषय पर अपनी स्वतन्त्र सम्मति लिखने की चेष्टा भी करे तो उसकी कृति को ढिठाई तथा लड़कपन ठहरानेवाले, प्राचीन पुस्तकों तथा प्रथाओं के अनन्य उपासक, उसके ऊपर बुरी तरह से टूट पड़ते हैं और स्वतन्त्र विचार और उद्गार (Liberty of Thought and Speech) के स्वत्व का गला घोंटने पर उतारू हो जाते हैं। भगवान् इन लोगों को शीघ्र ही सद्बुद्धि दे!

बदरीनाथ भट्ट।

भूगर्भ-विद्या।

(२)

(ले० साहित्याचार्य्य पं० रामावतार शर्म्मा, एम० ए०)

२- पृथ्वी की रचना।

पृथ्वी का सबसे बाहरी भाग वायु-मण्डल है। वायु-मण्डल के भीतर जल-मण्डल है। जल-मण्डल से लिपटा हुआ पाषाण-मण्डल है।

(क) वायुमण्डल पृथ्वी का तरल आवरण है। यह पृथ्वी के चारों ओर सब जगह है और पृथ्वी के परिवर्त्तन में बहुत बड़ी सहायता देता है। इसकी बनावट, इसके तत्त्व, इसकी सरदी गरमी का घटना बढ़ना इत्यादि कारणों से पृथ्वी पर परिवर्त्तन होते रहते हैं। वायुमण्डल की जैसा अवस्था आज है वैसी पहले न थी। पहले उसकी अवस्था कुछ विलक्षण ही रही होगी, इसमें सन्देह नहीं। जब समूची पृथ्वी ताप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के मारे तरल अवस्था में थी तब उसके चारों ओर किसी वायुमण्डल का सम्भव ही नहीं था। तरल पृथ्वी के बहुतेरे अंश जलमण्डल और पाषाणमण्डल में जम गये। बाक़ी का अंश वायुमण्डल रूप से रह गया। पृथ्वी की बाहिरी पपड़ी पर आधे से अधिक आम्लेय तत्त्व (Oxygen) पाया जाता है। पृथ्वी के भीतर सभी जगह कोयले के तह पाये जाते हैं। समुद्र में कितने ही प्रकार के नमक पाये जाते हैं। ये सब पदार्थ पहले वायुमय थे। वायु में से जम कर अपने अपने स्थान पर पहुँचे हैं। प्राचीन समयों में पृथ्वी की एक अङ्गारभारिणी अवस्था भी थी। उस अवस्था में सारी पृथ्वी वृक्षों से भरी हुई थी। उन्हीं के ज़मीन में गड़ जाने से, काल पाकर, वे प्रायः सारे के सारे पत्थर-कोयले के रूप में परिणत हो गये हैं। उस समय, सम्भव है, वायुमण्डल आज से अधिक गरम और जलीय बाष्प से परिपूर्ण रहा हो। उस समय वायु-मण्डल में द्व्याम्लेय अङ्गार भी बहुत सा रहा होगा। इस समय वायुमण्डल में, आयाम के अनुसार, चार अंश क्षार और एक अंश आम्लेय का आघात-मिश्रण-रूप है। वायु के दस हज़ार अंशों में प्रायः साढ़े तीन अंश द्व्याम्लेय अङ्गार भी वर्त्तमान है। इसके साथ और भी कितने ही तरल और घन पदार्थों के सूक्ष्म अंश मिले हुए हैं। वायु में अनेक बाष्प भी मिले हुए हैं जिन में जलीय बाष्प मुख्य है, जो वायु में सदा रहता है, पर सरदी गरमी के हिसाब से उसका परिमाण घटता बढ़ता रहता है। घन होने से यही जलीय बाष्प ओस, कुहिरा, मेघ, वर्षा, बनौरी, पाला, बर्फ़ आदि के रूप में देख पड़ता है। वायु-मण्डल से जल के पृथ्वी पर, और पृथ्वी से समुद्र में पहुँचने से और, फिर, समुद्र से पृथ्वी पर और पृथ्वी से वायुमण्डल में पहुँचने से ही यह हमारा पृथ्वी-ग्रह जन्तुओं के निवास-योग्य हो रहा है। और इसी व्यापार के कारण आज पृथ्वी की उँचाई निचाई का निर्म्माण होता जा रहा है।

(ख) जलमण्डल—जलमण्डल पृथ्वी-तल के तीन चौथाई अंश को ढके हुए है। इस मण्डल के मुख्य अङ्ग महासागर और उपसागर हैं, जो परस्पर मिले होने पर भी सुभीते के लिए अनेक नामों से निर्दिष्ट किये जाते हैं। समुद्र का जल और जलों से अधिक भारी और नमकीन होता है। जहाँ नदियों का और बर्फ़ आदि का पानी अधिक मिला रहता है वहाँ समुद्र का पानी और जगह से कम भारी होता है। जहाँ गरमी अधिक होने के कारण भाफ़ बहुत निकलता रहता है वहाँ का पानी बहुत भारी होता है। मीठे पानी की अपेक्षा समुद्र के पानी का भारी होना उचित ही है, क्योंकि उसमें मिले हुए नमक का परिमाण बहुत अधिक है। समुद्र के पानी के १०० अंश में प्रायः ३५ अंश नमक का रहता है। यह नमक स्वाद्य, मंगेश, खटिका, पुटाश आदि से सम्बन्ध रखता है। और द्रव्यों के भी अत्यन्त सूक्ष्म अंश समुद्र के जल में पाये जाते हैं। प्रायः डेढ़ करोड़ पानी के अंश में एक अंश सोना भी पाया गया है। बहुत से नमक चिरकाल से समुद्र में जमे हुए हैं, पर नये नये द्रव्य प्रतिक्षण मिट्टी से समुद्र में जा रहे हैं। झरनों से, सोतों से और नदियों से जितना पानी अन्ततः समुद्र में जा रहा है सभी में कुछ न कुछ खनिज के अंश मिले रहते हैं। इस लिए पृथ्वी की बाहरी पपड़ी में जितने तत्त्व हैं सभी की समुद्र में स्थिति हो सकती है। समुद्र का पानी उड़ जाने से और सूखे पत्थरों में नमक जम जाने से सेंधा नमक और काले नमक की उत्पत्ति है। कितने ही सफ़ेद पत्थर भी इसी प्रकार समुद्र से जम कर हुए हैं। संक्षेप यह है कि तह वाले सभी पत्थर समुद्र में पाँक के जमते जमते उत्पन्न हुए हैं। केवल बेतह के पत्थर अग्नि-गर्भ पर्वतों के उद्भेद से पृथ्वी के ऊपर निकलते हैं।

(ग) पाषाण-मण्डल—तरल और द्रव आवरणों से ढके हुए पृथ्वी के घन अंश को पाषाण-मण्डल कहते हैं। पाषाण-मण्डल के दो अंश हैं। बाहरी पपड़ी और भीतरी पिठर। बाहरी पपड़ी ठंडी है। उस की रचना का वर्णन ही भूगर्भविद्या का मुख्य विषय है। भीतरी पिठर का निर्म्माण बाहरी पपड़ी से कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलक्षण है। बाहरी पपड़ी प्रायः पौने चार योजन मोटी है। उसके अनेक तह हैं। उसके नीचे प्रायः बेतह का अत्यन्त कठिन पिठर है। कहीं कहीं बाहरी पपड़ी अधिक मोटी भी है। पर अनुमान किया जाता है कि बाहरी पपड़ी सिवा छः योजन से मोटी कहीं नहीं है। पृथ्वी के दक्षिण और पूर्व के हिस्से में भारत-महार्णव और शान्तमहार्णव का पानी चिरकाल से अपनी वर्त्तमान स्थिति में है। इससे यह अनुमान होता है कि पृथ्वी के गुरुतम अंश कुमेरु और केन्द्र के बीच में हैं। इतना भारी अंश उत्तरार्द्ध में नहीं। गाम्भीर्य्यमान-रेखा का झुकाव समुद्र की ओर है। इससे मालूम होता है कि पहाड़ों के नीचे पृथ्वी उतनी भारी नहीं है जितनी मैदानों के नीचे है और मैदानों के नीचे भी उतनी भारी नहीं है जितनी समुद्र के नीचे है। पृथ्वी के अन्तःपिठर में कौन कौन से तत्त्व हैं, इस का ज्ञान हम लोगों को कुछ भी नहीं है। अन्तःपिठर में बड़ी गरमी है; इसके कई प्रमाण अवश्य हैं। बाहरी पपड़ी के भीतर से अग्नि-गर्भ-पर्वतों के मुख के द्वारा कहीं कहीं बराबर और कहीं कहीं समय समय पर, गरम भाफ़ और पिघला हुआ पत्थर निकलता है। बहुत से अग्निगर्भ-पर्वत आज भी जीते जागते हैं। मरे हुए अग्नि-गर्भ-पर्वत तो पृथ्वी पर प्रायः सभी स्थानों में चिरकाल से वर्तमान हैं। सीताकुण्ड और राजगृह के कुण्डों के सदृश गरम झरने हज़ारों स्थानों में देखे जाते हैं। कितने ही झरनों में तो पानी बराबर खौलता रहता है। खानों, सुरङ्गों और गहरे सूराखों से पता लगता है कि पृथ्वी के भीतर भीतर गर्मी बढ़ती जाती है। पचास साठ फुट में तापमान के हिसाब से प्रायः एक अंश गरमी अधिक होजाती है।

पृथ्वी के अन्तःपिठर की क्या अवस्था है, इसके विषय में अनेक कल्पनायें हुई हैं। पर अभी तक इस विषय में भूगर्भ-विद्या वालों का ऐकमत्य नहीं है। एक कल्पना तो यह है कि पृथ्वी का पिठर पिघले हुए द्रव्यों का समूह है। दूसरी कल्पना यह है कि केन्द्र तक पृथ्वी कड़ी है। केवल कहीं कहीं पिघले हुए द्रव्यों या भाफ़ से भरे हुए अवकाश हैं। तीसरी कल्पना यह है कि अन्तःपिठर उज्ज्वल बाष्पों का बना हुआ है। उसमें विशेष कर बाष्प-मय लोहा है। पर चारों ओर के महाभार से यह बाष्प इतना दबा हुआ है जिससे समस्त भूगोल भीतर से बाहर तक बेहद कड़ा समझा जा सकता है। इस बाष्पीय पिठर के ऊपर एक पिघली हुआ तह है, जिसके ऊपर फिर भी ठंढी और घनी पपड़ी है। अन्तःपिठर की बनावट चाहे जैसी हो भूकम्प की परीक्षा से मालूम पड़ता है कि प्रायः छः योजन की मोटी बाहरी पपड़ी के नीचे लग भग एक ही आकार का प्रायः एक रस अन्तःपिठर है। वह बहुत कड़ा है और उसमें कम्प समान वेग से पहुँचता है।

पृथ्वी के भीतर इतनी गरमी क्यों है, इस विषय में भी अनेक कल्पनायें हैं। कितने ही लोग तो यह समझते हैं कि पहले जिस ताप-सागर से अलग होकर यह भूग्रह निकला है उसी का अवशिष्ट अंश इसके अन्तःपिठर के रूप में वर्तमान है। दूसरी कल्पना यह है कि केन्द्राकर्षण के कारण पृथ्वी के तह की वस्तु क्रम से दबती जाती है। इसी दबाव के वेग के कारण भीतर बहुत अधिक गरमी पाई जाती है। रदीय-तत्त्व के व्यापार से भी भीतर गरमी अधिक है। प्रायः सभी आग्नेय पाषाणों में रदीय देखा गया है।

बाहरी पपड़ी मुख्य करके खनिजों की बनी हुई है। प्रायः तीस तत्त्वों के अंश बाहरी पपड़ी में अधिक पाये जाते हैं, और तत्त्वों के अंश बहुत कम हैं। पपड़ी में पाये गये भिन्न भिन्न तत्त्वों में से मुख्य तत्त्व आग्नेय और श्लेषक (Silicon) हैं। फ़ी सैकड़ा सैंतालीस हिस्सा आग्नेय और अट्ठाईस हिस्सा श्लेषक पाया जाता है। धातुओं में फ़ी सदी नौ हिस्से से अधिक अल्युमिनियम, साढ़े चार हिस्से से अधिक लोहा, साढ़े तीन हिस्से से अधिक खटिका, ढाई हिस्से से अधिक मंगेश, प्रायः उतनाही स्वाद्य और ढाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिस्से से कुछ कम पुटाश पाया जाता है। ऐसा देख पड़ता है कि भूगर्भ की बाहरी पपड़ी का तीन चौथाई भाग धातु-भिन्न तत्त्वों से बना है और एक चौथाई धातुओं से। शुद्ध तत्त्वों के अतिरिक्त अनेक तत्त्वों के आग्नेय कङ्कर पृथ्वी में मिलते हैं। उनके अतिरिक्त और भी कितनेही कङ्कर सूक्ष्म अंशों में मिलते हैं। किसी एक खनिज का या कभी कभी अनेक खनिजों का मिल कर भी बना हुआ द्रव्य प्रायः पाषाण के नाम से प्रसिद्ध है। भूगर्भ-विद्या में बेतह के आवा को, तह वाले पत्थरों को, चिकनी मिट्टी को और बालू को भी पाषाण शब्द से उल्लेख किया जाता है। भूगर्भ-विद्या में सुभीते के लिए पाषाणों के अनेक वर्ग किये गये हैं। एक वर्ग तो आग्नेय पाषाणों का है, जो उद्भेद के कारण बाहर से भीतर आये हैं। इन्हें निस्तर-पाषाण कहते हैं, क्योंकि इनमें तह नहीं होता। इन पाषाणों में श्लेषक बहुत अधिक रहता है। खान का काच भी इन्हीं पाषाणों का एक भेद है। ये पाषाण काले से काले और भास्वर से भास्वर पाये जाते हैं। आवा के अतिरिक्त और सारे आग्नेय पाषाण नक़ली भी बनाये जा चुके हैं। आवा बहुत गहरी ज़मीन में बहुत दिन में जमते जमते बना है। इतना दबाब और इतना समय यन्त्रशालाओं में काम में नहीं लाया जा सकता। पृथ्वी के ऊपर इस समय आग्नेय पाषाण बहुत अधिक नहीं है। पर थोड़ा बहुत सभी जगह मिलता है। पृथ्वी के भीतर वह बहुत मिलता है। तह वाले प्रस्तर दूसरे वर्ग के पाषाण हैं। समुद्र के भीतर और ज़मीन के बाहर भूमि प्रायः ऐसे ही पत्थर की बनी हुई है। कितने तो पुराने पत्थरों के घिसे हुए अंशों के जमने से उत्पन्न हुए हैं, जिसका एक उदाहरण बालू है। पानी में से छन कर जमते हुए तत्त्वों से भी कितने ही प्रस्तर बने हैं। सेंधा नमक इसका एक नमूना है। उद्भेदों के ज़मीन में गड़ जाने से जो पत्थर-कोयले आदि के तह बने हैं वे तीसरे प्रकार के प्रस्तर हैं। ये तीनों प्रकार के पत्थर जलीय कहे जाते हैं। इन्हीं तह वाले पत्थरों में अनेक उद्भिद, जीव-जन्तु आदि के चिह्न जमे हुए वर्तमान हैं। इनमें एक तह के ऊपर दूसरे तह भी भिन्न भिन्न प्रकार के होते गये हैं। इससे पृथ्वी-तल के परिवर्तन के इतिहास का पता लगता है। आग्नेय या निस्तर और जलीय या प्रस्तर नामक पाषाणों के अतिरिक्त एक तीसरे वर्ग का भी पाषाण है जिसे परिणत पाषाण कहते हैं। इन पाषाणों में मिश्री के ऐसे रवे होते हैं। कितने ही स्लेट इसी प्रकार के पत्थर हैं। जान पड़ता है कि खनिज पदार्थ बहुत गरमी से पिघल कर पानी में जमते जमते इन पाषाणों के आकार में परिणत हो गये हैं।

(असभाप्त)

अमर-कण्टक।

(ले० पण्डित प्यारेलाल मिश्र, बारिस्टर-एट-लॉ)

अमर-कण्टक के नाम से कौन हिन्दू अपरिचित होगा? श्रीनर्म्मदाजी का जन्म इसी पर्वत से हुआ है। इसकी उँचाई क़रीब साढ़े तीन हज़ार फ़ुट है। कुछ वर्ष पूर्व यह स्थान अगम्य था। सघन वन और जङ्गली जानवरों के भय से वहाँ तक विरला ही कोई पहुँच सकता था। अब रास्ता बहुत साफ़ है। पर जङ्गली जानवरों का डर अभी तक है। अमरकण्टक पहाड़ रीवाँ रियासत में है। पर चारों ओर मध्य-प्रदेश के मण्डला और विलासपुर ज़िलों से घिरा है। अमरकण्टक जाने को गौरिला स्टेशन पर उतरना पड़ता है। गौरिला विलासपुर ज़िले की पंडरा ज़मींदारी का एक क़स्बा है। यहाँ बाज़ार, सराय, डाक-बङ्गला, स्कूल, तार-घर, डाकख़ाना और कई बड़ी बड़ी दूकानें हैं। लकड़ी, घी, हर्रा, लाख, इत्यादि का यहाँ भारी व्यापार है। बङ्गाल नागपुर रेलवे की कटनी-विलासपुर शाखा का यह एक स्टेशन है। गौरिला भी गरमी के दिनों में बहुत ठण्डा रहता है। कटनी की तरफ़ से आने वाली रेलगाड़ी गौरिला क़रीब दो बजे रात को, और विलासपुर से आने वाली नौ बजे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रात को पहुँचती है। रेल ऊँचे-नीचे पहाड़ों और सघन जङ्गलों से जाती है। यदि रेल दिन को आती जाती तो इस भाग की छटा भी दिखाई देती। रेल का वेग कम है। कटनी की ओर से रेल सात बजे और बिलासपुर की ओर से ९ बजे रात को पहुँचती है। पर हर एक दर्जे के यात्रियों को रेल में खूब जगह रहती है। क्योंकि यह रास्ता अधिक नहीं चलता। कटनी और बिलासपुर के बीच गरमी के दिनों में भी रात को जाड़ा लगता है। जङ्गली भाग से निकलने के कारण स्टेशनों पर खाने पीने का कोई अच्छा सुभीता नहीं। कटनी से आते समय केवल उमरिया स्टेशन पर खाने को मिलता है। स्टेशन से गौरिला बिलकुल निकट है। तीसरे दर्जे के मुसाफ़िरों को स्टेशन पर भी ठहरने को स्थान है। सराय सामने से दीखती है। रात को पहुँच कर सराय या स्टेशन पर ठहर जाना चाहिए।

सवारी इत्यादि।

गौरिला से अमरकण्टक १६ मील है। कुछ रास्ता कच्चा है। मार्ग में कई छोटे बड़े नाले पड़ते हैं। पुल या रपटे किसी पर नहीं बँधे। सड़क लोकल बोर्ड के अधीन है। इस लिए तारीफ़ करने की ज़रूरत नहीं। गौरिला से पकरिया तक छः मील रास्ता कुछ अच्छा है। ऊँची घाटियाँ या पहाड़ नहीं लाँघने पड़ते। पकरिया एक छोटा सा १०, ११ घर का गाँव है। बस्ती केवल बैगों की है। लोकल बोर्ड का एक टाइमकीपर यहाँ रहता है। एक अहीर का भी घर है, जो बहुत सी गाय-भैंसें पाले है। अतएव खोवा, दूध और घी मिल जाता है। पकरिया में एक कुआ और एक तालाब है। बाज़ से नाला बहता है। कुआ गरमी में सूख जाता है। तालाब भी गहरा न होने से बहुत सूख जाता है। मनुष्य और जानवरों का इसी के पानी से गुज़ारा होता है। उसी में लोग नहाते और मुँह धोते हैं। पानी बू करने लगता है। नाले में धूल उड़ा करती है। पर यह दशा, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, केवल गरमी में होती है। इस कारण गरमी की ऋतु में जाने वाले यात्रियों को गौरिला से जल का प्रबन्ध कर लेना चाहिए—विशेष कर जब स्त्री और बच्चों का साथ हो। खाने पीने की चीज़ें भी कुछ नहीं मिलतीं। भोजन का प्रबन्ध गौरिला से अमरकण्टक तक कर लेजाना चाहिए। पकरिया से चल कर आमा-नाला छः मील है। बस चढ़ाई पकरिया से ही शुरू होती है। रास्ता बहुत तङ्ग और भयानक है। सड़क पहाड़ों के किनारे किनारे जाती है। एक ओर ऊँचे पहाड़ और दूसरी ओर कई सौ फुट नीचे जङ्गल हैं। कई स्थानों पर एक ही गाड़ी निकल सकती है। कई जगहें ऐसी सङ्कीर्ण हैं कि तनक सी भूल या ग़फ़लत से प्राणों से प्रणाम ही करने की सम्भावना है। निदान ऐसे स्थानों पर पत्थर की छोटी दीवार या लकड़ी की कठसुई बना देने की ज़रूरत है। ऐसे स्थानों से रात को चलना मूर्खता है। शेर भी इन्हीं स्थानों पर हमला करते हैं। पकरिया से आमा-नाले तक मार्ग बहुत टेढ़ा है। पानी कहीं नहीं मिलता। पानी केवल आमा-नाले पर ही मिलता है। यह नाला न बहुत गहरा, न चौड़ा है। पर पानी की पतली धारा सदैव बहती है। गौरिला से आने वाले यात्री यहीं विश्राम लेते और भोजन बनाते हैं। इस नाले पर दो साधुओं की झोपड़ियाँ हैं। हम जिस समय गये उस समय केवल एक ही साधु थे। ये बहुत मिलनसार और शीलवान् हैं। अकेले ईश्वर के भरोसे पड़े रहते हैं। आप यात्रियों को ठहरने के लिए आश्रय दे देते हैं। यात्री भी उनका यथाशक्ति सत्कार करते हैं। बस उनमें यही गुण है। बाक़ी विद्या के नाम से शून्य हैं। वात से पीड़ित रहते हैं। गौरिला के पोस्टमास्टर ने इन्हें देने को हमारे साथ वात की दवा रख दी थी। इसके लिए साधु जी ने हमें धन्यवाद दिये। आमा-नाले पर आम के बहुत पेड़ हैं। इसी से उसका नाम आमा-नाला पड़ा है। आमा-नाले पर कोई दूकान नहीं है। वहाँ से दो कोस पर एक जङ्गली गाँव है, जहाँ कुछ अहीर और बैगे रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस गाँव के लोग साधू जी को नित्य कुछ दूध दे जाते हैं। यदि बात ने ज़ोर न किया तो साधु जी भी कभी कभी टहल जाते हैं।

आमा-नाला स्थान बहुत भयानक है। जल-स्थान होने से शेर पानी पीने आते हैं। चारों ओर ऊँचे ऊँचे पहाड़ और विकट जङ्गल है। साधुजी वर्षा ऋतु में वहाँ नहीं रहते। रास्ता क़रीब क़रीब बिलकुल बन्द हो जाता है। आमा-नाले से अमरकण्टक चार मील पड़ता है। ये चार मील बहुत अखरते हैं। चार क्या चालीस मील से दीखते हैं। आमा-नाले से आगे तीन मील तक सीधा पहाड़ चढ़ना पड़ता है। रास्ता घूम कर जाता है। सड़क है, पर बहुत सङ्कीर्ण। गाड़ी नहीं जा सकती। केवल हाथी, पालकी, डोली, या घोड़े की सवारी काम आसकती है। बालक और बूढ़े, बिना डोली या घोड़े की सवारी के, नहीं चढ़ सकते। बीमार या कमज़ोर आदमी कभी चढ़ने का प्रयत्न न करें। ज्यों ज्यों ऊपर चढ़ते हैं त्यों त्यों दम घुटता और गला सूखता है। पसीने का ठिकाना नहीं रहता। इस लिए चढ़ते समय हलके पतले कपड़े पहिनना चाहिए। बड़ी दुर्दशा होती है। एक डग बढ़ानी कठिन हो जाती है। कई जगह विश्राम लेना पड़ता है। ज्यों ज्यों आगे बढ़ते हैं ऐसा मालूम पड़ता है कि नर्म्मदाजी दूर चली जा रही हैं। मानो वे यात्रियों की भक्ति और श्रद्धा की परीक्षा लेती हैं। पर हम कह सकते हैं कि बहुत से यात्री इस दुगम सीधी घाटी पर चढ़ते समय यही कहते होंगे कि अब की बार सकुशल पहुँच पावें तो फिर कभी इस स्थान का मुँह न देखेंगे, न किसी मित्र को देखने की सलाह ही देंगे। हमारे साथियों की यही दशा थी। वे क़समें खाते थे कि अब इस ज़िन्दगी में यहाँ कभी न आवंगे। अस्तु, राम राम कहते ऊपर पहुँचे। जान में जान आई। ईश्वर को धन्यवाद दिया। मानों मेरैथन रेस (Marathon race) जीत ली। कुछ देर तक आराम किया। यहाँ से नर्म्मदाजी एक मील थीं। पर चढ़ाई न होने के कारण कोई तकलीफ़ नहीं हुई। निदान सन्ध्या के सात बजे अमरकण्टक पहुँचे। अँधेरा हो गया था। थकावट के मारे अधमरे हो चुके थे। पहुँचते ही मैदान में डेरा डाल दिया। कुछ खा पीकर बेचैत सो गये। खूब नींद आई। सबेरा हुआ। कपिलधारा को रवाना हुए।

कपिलधारा।

अमरकण्टक से कपिलधारा पश्चिम की ओर पाँच मील है। एक दक्षिणी पण्डे को साथ लिया। कपिलधारा का रास्ता ऊँचा नीचा कष्टदायक नहीं। हाँ, मार्ग नर्म्मदाजी के किनारे किनारे जाता है। बाईं ओर मण्डला ज़िला लगा हुआ है। दाहिनी ओर रीवाँ राज्य है। रीवाँधिपति की कृपा से छोटे छोटे नालों पर पुल बँधे हैं। ये पुल मेले के समय बनवाये जाते हैं। वर्षा में ये सब बह जाते होंगे। मार्ग की शोभा अकथनीय है। दोनों ओर हरे हरे उच्च-वृक्ष विभूषित पर्वत खड़े हैं। मार्ग सँकरा है। गाड़ी नहीं जा सकती, न घोड़ा। नर्म्मदाजी जैसे जैसे बढ़ती जाती हैं वैसे ही वैसे चौड़ी भी होती जाती हैं। कपिलधारा के निकट इनका पाट १५ या २० फुट चौड़ा है। कपिलधारा का नाम कपिल-मुनि से पड़ा। कहते हैं, इस स्थान पर कपिल मुनि रहा करते थे। दाहिनी ओर कपिल मुनि के नाम की अभी तक फूस की झोपड़ी बनी है। पर यह झोपड़ी बिलकुल नई है। इससे ठीक नहीं कहा जा सकता कि कपिल मुनि यहीं रहा करते थे। इसी झोपड़ी के निकट एक कच्चा मन्दिर है। वह भी नवीन है। इसमें गणेशजी की मूर्ति है। कपिलाश्रम के सामने दो और झोपड़ियाँ हैं। ये भी बिलकुल नई हैं। जिस समय हम वहाँ पहुँचे हमें कोई साधु संत नहीं मिला। झोपड़ियों के कपाट बन्द थे। भीतर चिमटा और राख और कुछ कपड़े रक्खे थे। एक झोपड़ी का द्वार खुला था। इसी में हमने विश्राम किया। एक सायादार बैठक भी है। इसके सामने छोटा सा बाग़ीचा है। बाग़ीचे में जङ्गली गुलाब के पेड़ हैं। सबेरे के दस बजे से सन्ध्या के पाँच बजे तक हम यहीं रहे। पर इस बीच कोई साधु सन्त न आया। साथी पण्डे से ज्ञात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ कि साधु लोग निकटवर्ती गाँव को बहुधा चले जाते हैं। यह गांव मण्डला ज़िले की सीमा पर है। इस गाँव से साधुओं की जीविका चलती है। अमरकण्टक में कलियुगी साधु हैं, जिन्हें दूसरों के भरोसे रहना पड़ता है। कन्द-मूल-फलादि पर निर्वाह करने वाले महात्मा वहाँ नहीं हैं। किसी समय में रहे हों, तो हम नहीं कह सकते। उसी समय एक दक्षिणी ब्रह्मचारी जी विचरते हुए अमरकण्टक पहुँचे। वे भी इसी उत्कण्ठा से आये थे कि किसी महात्मा के दर्शन होंगे। वे दूर दूर तक जङ्गल में घुसे। बहुत खोज की। पर कोई नहीं मिला। आस पास कुछ गुफायें मिलीं। पर वे भी शून्य पाईं। इन गुफाओं में हमारे साथी के कथनानुसार पूर्व समय में तपस्वी लोग रहा करते थे। मारकण्डेय ऋषि का एक स्थान अभी बना है। पर मारकण्डेय ऐसे चूने की पक्की कोठरी में रहे हों, इसका ज़रा सन्देह ही है। इस भाँति दक्षिणी ब्रह्मचारी जी जङ्गल-पहाड़ भटकते हुए निराश होकर लौट गये। हम स्वयं भीतर जङ्गलों में नहीं गये। पर कई लोगों के पूछने से मालूम हुआ कि आस पास कोई साधु-महात्मा नहीं हैं। हमें भी बहुत निराश होना पड़ा। अमरकण्टक में

नारि मुई घर सम्पति नासी।
मूड़ मुड़ाय भये संन्यासी॥

बहुत पाये जाते हैं। कम से कम ३०। ४० साधु-सन्त पड़े रहते हैं। इन में से प्रायः सभी निरक्षर हैं। यात्रियों द्वारा इनका भरण-पोषण होता है। अस्तु। कपिलधारा की बात हम पहले समाप्त कर लें। पीछे से और हाल सुनावेंगे। कपिलधारा यथार्थ में एक निरा सुनसान स्थान है। किसी समय यह स्थान बिलकुल अगम्य रहा होगा। सांसारिक विडम्बनाओं का यहाँ प्रवेश नहीं हो सकता। एकाएक वैराग्य की ओर मन दौड़ता है। नर्म्मदाजी की धार अनुमान ८० फुट नीचे खोह में गिरती है। सिवा इस शब्द के वहाँ किसी भाँति का हल्ला गुल्ला नहीं होता। नीचे उतर कर हम और हमारे साथी स्नान करने गये। गरमी के दिन थे। पहले दिन की थकावट कुछ शेष थी। पर जल अच्छा ठण्डा था। खूब नहाया। भय लगता था कि कहीं ऊपर से पत्थर न टपक पड़ें। निकट ही और छोटे छोटे कुण्ड भरे थे। किसी किसी ने इन कुण्डों में नहाया। बहुत आनन्द आया। शरीर हलका हुआ। ऊपर आकर भोजनादि बनाये और खा पी कर कुछ देर आराम किया। पर इतने ठण्डे स्थान में भी सूर्य का प्रचण्ड आतप कम न था। नङ्गे पैर निकलने से तलुए जले जाते थे। कपिलधारा से एक मील के अन्तर पर दूध-धारा या दुई-धारा है। यह भी इसी प्रकार का रमणीय स्थान है। रास्ता ख़राब है। हम अनुमान सात बजे सन्ध्या को अमर-कण्टक लौटे। भोजनादि से निवृत्त होकर रात भर आराम किया। अमरकण्टक में सन्ध्या को ठंड पड़ने लगती है। अतएव रात अच्छी-तरह बीती।

गुलबकावली।

प्रातःकाल उठ कर सीधे गुलबकावली का बाग़ीचा देखने को निकले। यह बाग़ अमरकण्टक से अनुमान एक मील है। गुलबकावली देखने की हमें बहुत उत्कण्ठा थी। पुस्तकों में इसकी बाबत कई प्रकार की कहानियाँ पढ़ी थीं। गुलबकावली का पत्ता कुछ कुछ बाँस के पत्ते से मिलता है। कई ऊँचे ऊँचे पेड़ लगे थे। यह पेड़ दलदल में ठहर सकता है। जिस स्थान पर ये पेड़ लगे थे वहाँ पानी बहता था। खूब सीड़ थी। आस पास सघन जङ्गल है। आम के पेड़ लगे हैं। कुछ देर ठहर कर हम वापस आये। साथ ही एक पेड़ उखाड़ लाये, जो आज तक हमारे पास हरा भरा बना है। पेड़ों में कोई फूल न देखे। कहते हैं, असल गुण फूल ही में है। उसको निचोड़ कर लगाने से नेत्रहीन सनेत्र होजाता है। पर कई लोगों का कहना है कि जो बकावली हमने देखी वह सच्ची नहीं। सच्ची गुलबकावली कहीं और, दूर, है। उसका पाना असम्भव है। हम सच्ची गुलबकावली देखने को नहीं गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुलबकावली देखने के बाद हम सोनभद्रा देखने चले । सोनभद्रा इसी पहाड़ से निकलती है । पहाड़ से निकल कर सोनभद्रा एक बहुत नीचे मैदान में गिरती है । नीचे देखने से बहुत डर लगता है । पहाड़, जहाँ से सोनभद्रा गिरती है, क़रीब ५०० फुट ऊँचा है। नीचे मैदान में बैगों के फूस के मकान हैं । बैगा लोग नित्य इस सीधे पहाड़ को चढ़ कर अमरकण्टक सौदा लेने आया जाया करते हैं । मार्ग बहुत सीधा और सकरा है । पर निडर बैगे कुछ परवा नहीं करते। खटाखट बोझा लादे उतरते चढ़ते चले जाते हैं । सोनभद्रा अमरकण्टक से क़रीब आध मील है। सोनभद्रा जाते समय मारकण्डेय ऋषि का स्थान मिलता है । आश्रम पर कोई बीजक नहीं है । न कोई विशेष चिह्न है । इससे कोई नहीं कह सकता कि यह वही आश्रम है ।

शिवरात्रि का मेला ।

यह मेला कई साल से लगता है । श्रीमान् रीवाँ-नरेश इसका विशेष प्रबन्ध करते हैं । मेला पन्द्रह दिन तक रहता है । अर्थात् माघ सुदी १३ से फाल्गुन बदी १३ तक । मेले में दूर दूर से दूकानदार आते हैं । मवेशी भी आते हैं । सौदागरों से किसी प्रकार का कर नहीं लिया जाता । बल्कि सौदागरों को महाराज की ओर से मुफ़्त रसद दी जाती है । उनके ठहरने को झोपड़ियाँ बनाई जाती हैं । अच्छे सौदागरों को इनाम मिलता है । दूकानों की रक्षा के लिए चौकी-पहरा रहता है । सफ़ाई का पूरा पूरा प्रबन्ध किया जाता है । मेले के समय गौरिला में तांगे, इक्के इत्यादि सवारियों का इन्तज़ाम भी रहता है । सौदागरों को उत्साह देने के लिए महाराज ख़ुद बहुत सा सामान ख़रीदते हैं । तात्पर्य यह कि महाराज मेले की उन्नति में किसी प्रकार कसर नहीं करते । यात्रियों और दूकानदारों के आराम के लिए एक बड़ा तालाब तैयार किया जा रहा है । धर्मशाला और कुछ नये मकान भी बनाने का विचार है । सन्ध्या-पूजनार्थ एक पक्का स्थान बना दिया गया है । मेले के समय सड़कों की विशेष मरम्मत की जाती है । अर्थात् अमरकण्टक मेले ही के समय देखना चाहिए । उस समय रास्ते में पानी मिल सकता है । सवारी का बहुत आराम रहता है । अलबत्ता शीत अधिक पड़ता होगा । उससे बचने के लिए गरम कपड़ों का प्रबन्ध कर लेना चाहिए । महाराज का उद्योग और उत्साह प्रशंसनीय है । वे चाहते हैं कि अमरकण्टक तीर्थ से सब लोग लाभ उठावें । पर हमारे विचार में अमरकण्टक की तरक़्क़ी होनी कठिन है । वह सघन जङ्गलों और सीधे पर्वतों से घिरा है। सड़कों की दशा अच्छी नहीं । जङ्गली जानवर बहुतायत से मिलते हैं । बहुत ही कम यात्री वहाँ जाते हैं । जब तक रेल न होगी तब तक अमरकण्टक बिरले ही पहुँचेंगे । पर रेल लेजाना व्यर्थ होगा, क्यों कि सिवा यात्रियों के किराये के रेल को अन्य कोई लाभ न होगा ।

मन्दिर, मकान इत्यादि ।

अमरकण्टक में छोटे, बड़े, नये-पुराने २७, २८ मन्दिर हैं । पर शोक है कि किसी मन्दिर में बीजक नहीं । मन्दिरों की बनावट क़रीब क़रीब एकसी है । उनमें केवल पत्थरों की जुड़ाई है । चूना, लकड़ी, ईंट इत्यादि से बिलकुल काम नहीं लिया गया । चार छः मन्दिर टूटी फूटी दशा में हैं । कर्ण का मन्दिर, जो सब से ऊँचा और पुख़्ता है, क्रमशः ख़राब हालत को पहुँच रहा है । इसके सामने का चबूतरा कुछ फिसल पड़ा है । यदि यही दशा रही तो यह विशाल देवस्थान केवल पत्थर का ढेर बन जायगा । जिस स्थान से नर्मदाजी निकली हैं वहाँ एक लम्बा चौड़ा कुण्ड है । यह कुण्ड पक्का बना है । दो ओर पत्थर के बड़े घाट हैं । बीच जल में छोटे बड़े पाँच छः मन्दिर हैं । इनमें एक अमरकण्टक महादेव का मन्दिर है । कहते हैं, इसके नीचे एक और मन्दिर है । इस मन्दिर पर एक बीजक लगा है, जिसे महाराजा हुल्कर ने बनवाया था । यह संवत् १९२५ में बनाया गया था । बीजक का बहुत सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का पानी में है। इससे बहुत कुछ पढ़ने में न आ सका। कुण्ड के निकट नर्मदाजी का सुन्दर मन्दिर है। इसमें नर्मदाजी की मूर्ति है। पण्डे लोग यहाँ अधिक नहीं हैं। पर निठल्ले साधु और भिक्षुक ज़रूर हैं। इनको दक्षिणा अवश्य मिलनी चाहिए, नहीं तो अमरकण्टक जाना न जाने के बराबर है। यही दशा साधुओं की है। हम ऊपर लिख चुके हैं कि दो चार को छोड़ कर अमरकण्टक में रहने वाले सभी साधु मूर्ख, पाखण्डी और लालची हैं। नर्मदाजी द्वारा इनके पेट भरते हैं। यह दोष हमारे धर्म का है, न कि साधुओं का। कुण्ड १०, १२ फुट गहरा है। पानी पीने योग्य नहीं। जब जल मैला हो जाता है तब कुण्ड नाली द्वारा ख़ाली कर दिया जाता है। यह नाली सदैव नहीं बहती। नाली २०, २५ गज़ लम्बी है। इसके निकट एक और छोटासा कुण्ड है। पर इसमें जल अधिक नहीं रहता। इस छोटे कुण्ड के आस पास बहुत गन्दापन है। छोटे कुण्ड से कुछ दूर चल कर नर्मदा की पतली धारा, झरने की भाँति, चलती है। यह धारा आगे आगे चौड़ी होती जाती है। छोटे कुण्ड के निकट एक धर्मशाला है। यह अहल्याबाई की धर्मशाला कहलाती है। इसमें कुछ साधु पड़े रहते हैं। धर्मशाला की इमारत नवीन दीखती है। भरोसा नहीं आता कि अहल्याबाई ने बनवाई हो। कदाचित् इसके पूर्व दूसरी धर्मशाला रही हो। अमरकण्टक में १०. १५ घर हैं और ३, ४ दूकानें भी हैं। दूकानों में खाने पीने को सब सामान मिलता है। घी, दूध, दही, बहुत सस्ते और निखालस मिलते हैं। उमदा दूध एक आने सेर मिलता है। अमरकण्टक के आस पास बैगे रहते हैं। ये लोग जङ्गली हैं। पर बहुत सीधे और सत्य-वक्ता। बनजारों के टाँड़े भी इन जङ्गली स्थानों में दिखाई देते हैं। हमने बहुत दिन बाद टाँड़े देखे। बनजारे लोग आस पास से गेहूँ, चना इत्यादि बहुत सस्ते लेजाकर खूब लाभ उठाते हैं।

अमरकण्टक के जङ्गलों में नाना भाँति की जड़ी, बूटी और पौधे पाये जाते हैं। कई फूल ऐसे देखे जो हमने कभी नहीं देखे थे। जानने वालों के लिए ये बहुमूल्य रत्न हैं।

बस, अमरकण्टक के विषय में हम इतना ही जानते हैं। कदाचित् इस वर्णन में कोई भूल भी हुई हो। पौराणिक कथा जानने के लिए "तीर्थरत्न" पुस्तक देखनी चाहिए, जो अमरकण्टक में पण्डे के पास एक रुपया को मिलती है। यह पुस्तक छन्दो-बद्ध है। कविता इसकी दोषमय और फूहड़ ज्ञात होती है। अच्छा होता कि वह सीधी सरल हिन्दी में लिखी जाती, ताकि सबकी समझ में आ सकती।

प्यारेलाल मिश्र।

दासता।

दासता में सुख किसी को हो नहीं सकता कभी,
किन्तु उसके शीस पर हैं दुःख आपड़ते सभी।
बेंच दी निज देह को जिसने धनाशा में अहो,
रात दिन परतन्त्रता का दुःख उसको क्यों न हो॥ १॥
सुख उठाने के लिए दुख को उठाता भृत्य है,
मान बढ़ने के लिए अपमान सहता नित्य है।
हाथ सब जोड़ें मुझे इस हेतु वह कर जोड़ता,
गिड़गिड़ाने से कभी मुख को नहीं वह मोड़ता॥२॥
नाथ के तीखे वचन उर में लगें जब तीर से,
दास तब निज नेत्र को भरने न देता नीर से।
मुसकरा कर भाव अपना वह छिपाता है अहो,
कौन ऐसा कष्ट भोगे पेट पापी जो न हो॥ ३॥
दासता में धर्म का अभिमान रहता है नहीं;
हाथ से जिसके मिलें पैसे सभी कुछ है वही।
हाय जिसकी छाँह भी छूकर नहाना चाहिए,
भृत्य उसकी चरण-रज को चूमता धन के लिए॥ ४॥
मान, लज्जा, कोप—ये रहते न उसके पास हैं;
हैं पड़े जिसके गले में दासता के पाश हैं।
बस इसी से शव-बराबर भृत्य को कहते सभी,
भस्म में क्या भस्मकारक शौर्य होता है कभी॥ ५॥
नीच से भी नीच मालिक हो उसे फिर भी बड़ा
दास कहता है, सदा कर जोड़ कर रहता खड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोष सब प्रभु के छिपाता है बना कर बात को ;
देख कर रुचि-नाथ की कह डालता दिन रात को ॥६॥
भृत्य ने चलना अकड़ कर स्वप्न में जाना नहीं ;
गर्व में आकर कभी निज नेत्र को ताना नहीं।
बात सुन कर अनसुनी सी वह सदा करता रहा ;
है युवा तोभी बुढापा-दुःखही उसने सहा ॥ ७ ॥
स्वामिनी से भी कभी सेवक नहीं बेडर रहे ;
बात उस की भी कड़ी से भी कड़ी नित उठ सहे।
क्योंकि प्रायः आजकल के आढ्य जाया-भक्त हैं ;
नाम में अनुरक्त हो कर काम में आसक्त हैं ॥ ८ ॥
देह ही के साथ दुख उत्पन्न होता है सही ,
यह अटल सिद्धान्त है सन्देह इसमें कुछ नहीं।
छोड़ता, आता—न रहता वह परन्तु सदा कभी ;
किन्तु किङ्कर को कभी लेने न देता सांस भी ॥ ९ ॥
नींद भर सोते नहीं हैं, पेट भर खाते नहीं ;
बेधड़क अर्थी कभी भी बोल पाते हैं नहीं।
डोल सकते हैं नहीं आज्ञा बिना निज नाथ के ;
दास भी हैं चटपटे मानों पराये हाथ के ॥ १० ॥

रामचरित उपाध्याय।

मराठी साहित्य की वर्तमान दशा।*

साहित्य राष्ट्र की उन्नति का कारण भी है और कार्य भी। राष्ट्र का ज्यों ज्यों उत्कर्ष होता है त्यों त्यों साहित्य का उत्कर्ष होता है ; और साहित्य का स्वरूप ज्यों ज्यों उज्ज्वल और उन्नत होता जाता है त्यों त्यों वह राष्ट्र की उन्नति और उज्ज्वलता का कारण होता जाता है। साहित्य के द्वारा हमारी विचार-शक्ति उद्दीप्त होती है, हमारे मनोविकार जागृत होते हैं, हमारा अन्तःकरण उल्लसित होता है। हम अपने पूर्वजों के सङ्गृहीत ज्ञान का उपयोग करके अपने तथा अपनी भावी पीढ़ी के ज्ञान की वृद्धि कर सकते हैं। इस वृद्धि की आवश्यकता ज्यों ज्यों हमें अधिक ज्ञात होने लगी है त्यों त्यों साहित्य के उत्कर्ष के लिए काम करने वाले सेवक भी तैयार होने लगे हैं।

सभी भाषाओं के साहित्य के विषय में बहुधा कुछ लोग असन्तोष प्रकट किया ही करते हैं। परन्तु मैं जानता हूँ कि वे लोग यह कह कर कि प्राचीन काल में जैसा साहित्य बन गया वैसा अब नहीं बनता, अपने समकालीन लोगों को उत्तेजना देते रहते हैं। मुझे इस बात में कुछ भी सन्देह नहीं कि हमारा साहित्य दिन पर दिन उन्नति कर रहा है। महाराष्ट्र-साहित्य क्षेत्र में तन, मन, वचन से काम करनेवाले कृषीवल दिन पर दिन बढ़ ही रहे हैं। उन्नति का मुख्य कारण सङ्कल्प है। इसे ऋषियों ने वाणी और मन से भी श्रेष्ठ बतलाया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हममें इस सङ्कल्प का उदय हो गया है और उसके फल भी देख पड़ने लगे हैं। अनेक सुशिक्षितों के मन में इस बात का निश्चय हो गया है कि अपने साहित्य-क्षेत्र का सुधार करके उसमें उत्तम बीज बोना चाहिए, उस बीज पर जल सिञ्चन करके उसके वृक्ष तैयार करने चाहिए और उनके फल अपने बान्धवों को खिलाने चाहिए।

उन्नति कई प्रकार की होती है। उनमें से मुख्य दो हैं। एक बाह्योन्नति, दूसरी अन्तरुन्नति। इन दोनों के स्पष्ट उदाहरण क्रमशः पर्वत और वृक्ष हैं। एक का लक्ष्य राशीभवन और दूसरे का विकसन है। राशीभवन में पर्त पर पर्त जमते जाते हैं, परन्तु पहले के पर्त नष्ट नहीं होते ; वे नीचे वैसे ही बने रहते हैं। विकसन में क्षण क्षण पर नवीनता आती है ; पुराना नष्ट होता रहता है और नये का विकसन होता रहता है। विकसन भीतर की क्रियाओं का फल है। विकसन में बाह्य-द्रव्यों का शोषण करके पोषणोपयोगी रस का ग्रहण कर लिया जाता है और निरुपयोगी द्रव्य फेंक दिया जाता है। यह क्रिया प्रत्येक सेन्द्रिय और सजीव पदार्थ में बराबर होती

* सातवें महाराष्ट्रीय साहित्यसम्मेलन के सभापति श्रीयुक्त हरि-नारायण आपटे के व्याख्यान का सारांश।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही है। केवल प्राचीन द्रव्य का ही ग्रहण करने से निर्वाह नहीं हो सकता। प्राचीन और नवीन का मिश्रण होना चाहिए। प्राचीन को नवीन रूप दिये बिना काम नहीं चल सकता। बुनियाद पुरानी ही बनी रहने दो; उस पर इमारत नवीन चाहिए। पुराने खँडहरों पर नवीन नगर बसना चाहिए। नवीन परिस्थिति के लिए जिन सुभीतों की आवश्यकता है उन्हें ढूँढ निकालना चाहिए। साहित्य की भी यही दशा है। साहित्य में भी वर्तमान परिस्थिति के अनुकूल सुधार होना चाहिए।

राशीभवन और विकसन, ये जो उन्नति के दो मार्ग हैं। उनमें विकसन का मार्ग विशेष श्रेयस्कर है। कोई बालक यदि बहुत से कपड़े पहना कर मोटा बना दिया जाय तो क्या सचमुच वह पुष्ट हो सकता है? वास्तव में भीतर ही से उसमें पुष्टि आनी चाहिए। परन्तु पुष्टि आने के लिए आरोग्य चाहिए; और आरोग्य के लिए कपड़े भी चाहिए। अतएव कपड़ों के कारण दृष्टिगोचर होनेवाली मुटाई भी निन्द्य अथवा त्याज्य नहीं; उसका भी उपयोग हो सकता है।

अब यह देखना चाहिए कि हमारे साहित्य की उन्नति किस प्रकार हो रही है। पर्वत की तरह हो रही है या वृक्ष की तरह। मेरा मत तो यह है कि वह वृक्ष की तरह हो रही है। लेखकों के मन में ज्ञानप्रसार की इच्छा उद्दीप्त हुई है और ग्रन्थ-निर्माण-कार्य हो रहा है। कुछ लेखक तो निरपेक्ष बुद्धि से ही ग्रन्थ-रचना का प्रयत्न कर रहे हैं। उन्हें किसी प्रकार की भी बाहरी सहायता नहीं—सरकार का आश्रय नहीं; विश्वविद्यालय का सहारा नहीं। ऐसी दशा में भी ग्रन्थों का निर्माण होना कोई साधारण बात नहीं। बँगला-साहित्य की वृद्धि धनवान् बङ्गालियों की सहायता से हुई है। उन लोगों में विद्या का अधिक प्रचार है। इस कारण सर्वसाधारण की ओर से भी साहित्य को बहुत आश्रय मिला है। परन्तु हमें इनमें से किसी प्रकार का भी पूरा पूरा सहारा नहीं।

साहित्य के मुख्य हेतु तीन हैं:—१ शिक्षा देना, २ मनोविकार अथवा विचार जागृत करना, और ३ मनोरञ्जन करना। इन तीनों हेतुओं की सफलता के लिए पुस्तकें तैयार हो रही हैं या नहीं? मेरी राय में तो उक्त तीनों प्रकार के साहित्य की, आजकल, यथासम्भव, वृद्धि हो रही है। लोगों की पुस्तकावलोकन-सम्बन्धिनी रुचि ज्यों ज्यों बढ़ती जाती है त्यों त्यों ग्रन्थसमृद्धि होती जाती है। जिन ग्रन्थों की माँग ही नहीं है, अथवा बहुत थोड़ी है, वे साहित्य की दृष्टि से चाहे जितने आवश्यक हों, तथापि उनके तैयार होने में धनवानों की सहायता दरकार है। उसके बिना गाँठ का ख़र्च करके उन्हें कोई तैयार नहीं कर सकता। परन्तु शिक्षा-प्रचार की प्रबल इच्छा रखनेवाले कोई कोई सज्जन ऐसे ग्रन्थ भी, समय समय पर, तैयार कर देते हैं। लोगों में पुस्तावलोकन की रुचि बढ़ रही है। अपने पेट पालने का व्यवसाय करके बचे हुए समय में लोग जो ज्ञान प्राप्त करते हैं वह मुख्यतः धर्मसम्बन्धी ग्रन्थ पढ़कर प्राप्त किया जाता है। इतिहास या चरित्र-सम्बन्धी ग्रन्थ पढ़ कर भी वह ज्ञान-सम्पादन किया जाता है। और, जब जी ऊब जाता है तब, मनोरञ्जक ग्रन्थ पढ़ कर मनोरञ्जन किया जाता है। इसी से अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा मनोरञ्जक ग्रन्थ अधिक तैयार होते हैं। कुल ग्रन्थ-सङ्ख्या का एक तृतीयांश प्रायः मनोरञ्जक ग्रन्थ होते हैं। बहुत लोग इसे साहित्य की अवनति का लक्षण समझते हैं। परन्तु यह हाल हमारे ही साहित्य का नहीं है; किन्तु संसार के सभी देशों में यही हाल है। यह कोई आश्चर्य की बात भी नहीं। मनुष्य स्वभाव से ही मनोरञ्जन-प्रेमी होता है। दिन भर श्रम करके अथवा अपना व्यवसाय करके बचा हुआ समय आनन्द-पूर्वक बिताने के जितने साधन हैं उनमें पुस्तकावलोकन—मनोरञ्जक पुस्तकों का अवलोकन—प्रधान साधन है। तथापि मनोरञ्जन के साथ साथ सदाचरण का उपदेश प्राप्त करना भी आवश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे साहित्य में सन् १८८४ से लेकर सन् १९०८ तक, कोई चौथाई शतक में, जो ३४१६ पुस्तकें निकलीं उनमें सिर्फ़ काव्य, नाटक और उपन्यास की १२०० पुस्तकें निकलीं। बाक़ी पुस्तकें देश में विविध विषयों का ज्ञान फैलाने ही के लिए तैयार हुईं। यह नहीं कहा जा सकता कि सिर्फ़ माँग के ही कारण इन पुस्तकों की सृष्टि हुई है। अन्य पुस्तकों की दृष्टि से विविध-ज्ञान-विषयक पुस्तकों की संख्या कम होना स्वाभाविक बात है। तथापि उन विषयों की पुस्तकों की भी माँग बढ़ रही है। हमारे साहित्य में धर्मविषयक ग्रन्थों की वृद्धि इस समय बड़े वेग से हो रही है। क्योंकि उनकी माँग है। इतिहास और विज्ञान की पुस्तकें भी, समय समय पर, निकलती हैं। ऐसे ग्रन्थ पाठशालाओं में जारी नहीं होते और उनके ग्राहक भी बहुत नहीं। फिर भी जो वे निकलते हैं, यह सचमुच ही साहित्य-वृद्धि का चिह्न है। ग्रन्थकारों की ज्ञान-प्रसार-विषयक उत्सुकता ही ऐसे ग्रन्थों के जन्म का कारण है। विश्व-विद्यालय से शिक्षा पाकर निकले हुए नवयुवकों को अब अपनी भाषा में पुस्तकें लिखने की इच्छा होने लगी है। यह भी हमारे साहित्य के लिए सौभाग्य की बात है।

आक्षेप करने वालों की सारी झोंक काव्य, नाटक और उपन्यासों पर रहती है। वे कहते हैं कि प्राचीन समय में जैसी उपयोगी पुस्तकें बन गईं वैसी अब नहीं बनतीं। अब लोग नाटक, उपन्यास और काव्य इत्यादि की मनोरञ्जक पुस्तकें ही अधिक लिखते हैं; पर वे भी किसी काम की नहीं होतीं। परन्तु मेरी राय है कि साहित्य की इस शाखा में भी बहुत सी अच्छी अच्छी पुस्तकें निकल चुकी हैं और बराबर निकल रही हैं। हमारी काव्य-रचना अब बहुत ही उन्नतावस्था को पहुँच रही है। यद्यपि महाकाव्यों का निर्माण होना अभी प्रारम्भ नहीं हुआ, तथापि जो छोटे छोटे काव्य निकल रहे हैं उनसे हमारे कवियों की प्रतिभा अच्छी तरह प्रकट होती है। कुछ लोग समझते हैं कि भगवद्भक्ति-विषयक काव्य ही सच्चा काव्य है; परन्तु यह व्याख्या अत्यन्त सङ्कुचित है। वास्तव में कवि के लिए कोई विषय भी अगम्य या त्याज्य नहीं। कुम्हलाये हुए फूलों से लेकर ताल-तमालादि वृक्षों तक, पिपीलिकादि कीटों से लेकर सिंह-व्याघ्र के समान प्राणियों तक, अणु-रेणु से लेकर हिमालय तक, जलधि के अत्यन्त गहरे प्रदेश से लेकर सर्वव्यापी नभोमण्डल तक—सारांश यह कि अन्तर्बाह्य चक्षुओं के लिए जितने विषय हैं वे सभी कवि की कल्पना के विषय हो सकते हैं और उनसे वह संसार को उपदेश दे सकता है।

यही दशा नाटकों की भी है। पहले लोग समझते थे कि नाटक सिर्फ़ देवी-देवताओं की कथा के आधार पर ही रचे जाते हैं। यह समझ बदलते बदलते राजाओं तक आई। अब तो सामान्य लोगों और सामान्य विषयों पर भी नाटक लिखे जाने लगे हैं। नाटकों और नाटक करने वालों के सम्बन्ध में बहुत कुछ सुधार हुआ है। गत चार पाँच वर्षों में इस विषय की चर्चा से पूर्ण पुस्तकें भी बहुत सी निकली हैं। कला की दृष्टि से अब विद्वान् और रसिकों का नाट्य-रचना की ओर विशेष ध्यान आकर्षित हो रहा है। यह नहीं कि काव्य, नाटक और आख्यायिकाओं में कहीं कहीं अनिष्ट बातें न आ गई हों; परन्तु इतने ही से उन्हें निरुपयोगी न कहना चाहिए।

सभी कुछ अच्छा होना प्रायः असम्भव है। जर्मन कवि गेटे कहता है:—"In this world there are so few voices and so many echoes" अर्थात् जगत् में ध्वनि बहुत थोड़ी है, प्रतिध्वनि ही अधिक है। प्राचीन काल का धर्मसम्बन्धी साहित्य छोड़ दीजिए। उसके विषय में हमें कुछ नहीं कहना। परन्तु अन्य साहित्य में ध्वनि कितनी और प्रतिध्वनि कितनी है, इसका विचार कीजिए। कालिदास, भवभूति, जगन्नाथ राय इत्यादि ध्वनि करने वालों की गणना कितनी है और उनकी प्रतिध्वनि करने वालों की कितनी। यही दशा अन्य विषयों के साहित्य की भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। मराठी भाषा के प्राचीन कवियों पर भी जब हम दृष्टि डालते हैं तब वहाँ भी हमें प्रतिध्वनि ही अधिक देख पड़ती है। जो हाल आज कल है वही आगे भी रहेगा। सारांश यह कि प्रतिध्वनि-दोष वर्तमान साहित्य पर ही नहीं लग सकता। परम्परा से ही वह वैसा चला आया है।

मराठी भाषा के प्राचीन कवियों या साधुओं की प्रवृत्ति वेदान्त की ही ओर अधिक थी। उनके बाद जो कवि हुए उन्हों ने संस्कृत-काव्य, नाटक आदि के भाषान्तर किये। अन्योक्तियों और सुभाषितों के भी अनुवाद किये। इसके बाद अँगरेज़ी कवियों की छोटी छोटी कविताओं का अनुवाद होने लगा। अब तक महा-काव्य अथवा खण्ड-काव्य रचने की ओर कवियों की प्रवृत्ति नहीं देखी जाती। तथापि ऐसे लघु काव्य, जिनमें कवियों की स्वानुभूति का प्रतिबिम्ब उतरा है, बहुत होने लगे हैं। और वे सरस भी होते हैं।

गद्य-लेखन का प्रारम्भ अँगरेज़ी-पुस्तकों के भाषान्तरों से हुआ। आज तक यह काम हो रहा है। इसके सिवा विविध विषयों पर रचे हुए अनेक स्वतन्त्र ग्रन्थों की भी वृद्धि हो रही है।

हमारे अर्वाचीन साहित्य पर बहुत बड़ा आक्षेप यह किया जाता है कि वह अँगरेज़ी भाषा की छाया से ग्रस्त है। अँगरेज़ी विचारों की उसमें खूब भरती हो रही है। यह आक्षेप किसी अंश में सच भी है। परन्तु मैं इसे उतना महत्त्व नहीं देता। हमारी भाषा पर अँगरेज़ी भाषा का जो प्रभाव पड़ा है उसे मैं तो इष्टही समझता हूँ।

दो राष्ट्रों के पास पास होने ही से एक दूसरे के शब्दों और विचारों में बहुत कुछ मिश्रण हो जाता है। अँगरेज़ तो यहाँ पर लगभग एक शतक से सत्ता चला रहे हैं। उन्होंने अपने प्रवेश के साथ ही अनेक कलाकौशलों और विद्याओं का देश में प्रवेश भी कर दिया है। अतएव उनकी भाषा के शब्द, मुहाविरे और उनके विचार यदि हमारी भाषा में आगये तो आश्चर्य्य ही क्या है? हमारा बहुत सा समय तो उन्हीं की भाषा पढ़ने में जाता है। तिस पर भी हम ने अपनी भाषा का गौरव स्थिर रक्खा है। यही नहीं, किन्तु अँगरेज़ी के शब्द-भाण्डार और विचार-भाण्डार को लूट कर हम अपने बना रहे हैं। जिस भाषा को राजाश्रय नहीं, विश्वविद्यालय का आश्रय नहीं, यहाँ तक कि लोकाश्रय भी पूरा पूरा नहीं उसको दिन दिन श्रेष्ठ बनाने की जो हम तन, मन से कोशिश कर रहे हैं—यह क्या कम आश्चर्य की बात है। अँगरेज़ी शब्द, मुहाविरे और विचार जो हमारी भाषा में आ रहे हैं उन पर आक्षेप करना व्यर्थ है। सच तो यह है कि हमारा कोश बढ़ना चाहिए। जहाँ सोना मिले वहीं से लाना चाहिए। ऐसे समय में क्या कोई यह विचार करता है कि यह किसके घर का सोना है, अथवा इस सोने से हमारे घर का सोना बिगड़ जायगा?

सच्चा लेखक यही कहता है कि हमें अपना साहित्य बढ़ा कर अपने देश-भाइयों को ज्ञान-दान करना है, उनमें जागृति लाना है, उनका मनोरञ्जन करके उनका श्रम दूर करना है। अतएव जिस मार्ग से हमारा यह उद्देश सिद्ध हो उसी मार्ग का हमें अवलम्बन करना चाहिए। नवीन विद्या हरण करके अपनी भाषा में लानी चाहिए। हमारी भाषा में जो शब्द नहीं हैं उन्हें दूसरी भाषाओं से लेना चाहिए। उन पर अपना सिक्का मार कर उन्हें अपना बना लेना चाहिए। विचारों और मुहाविरों के लिए भी यही काम करना चाहिए। यह कौन कहता है कि पुराने शब्द छोड़ दो, पुराने भाव छोड़ दो, पुराने विचारों का नाम न लो। पुराने शब्द रक्खो, पर नवीनों को भी लाओ। तथा प्राचीन-भाषा-भाव रक्खो, पर नवीन को भी आने दो। वे आप ही आप आते हैं; उन्हें मत रोको। अर्थभेद में उनका बहुत उपयोग होता है। यदि एक ही अर्थ के भिन्न भिन्न शब्द हों तो अर्थभेद व्यक्त करने के लिए उनका उपयोग करो। क्या कभी कोई यह भी कहता है कि अब हमारा खज़ाना बहुत बढ़ गया? इसे यदि कोई कम करदे तो अच्छा हो! यही हाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दभाण्डार का भी है। वह जितना ही बढ़े उतना ही अच्छा। नये व्यवसायों की उत्पत्ति के कारण नये शब्द अवश्य ही उत्पन्न होंगे। छापेख़ाने में पधारते ही आपको कैसे कैसे शब्द सुनाई देते हैं:—टाइप, गेली, प्रूफ़, करेक्शन, मार्क, फ़ार्म, आदि। उन्हें आने से कौन रोक सकता है? भाषा में नवीन शब्द या नवीन मुहाविरे आजाने से उसके बिगड़ने की आशङ्का करना व्यर्थ है। भाषाकोविदों को चाहिए कि वे नवीन शब्दों और मुहाविरों का उपयोग करने के लिए लेखकों को उत्तेजित करें। मैं तो कहता हूँ कि अब मराठी भाषा के कोश की सुधरी हुई नवीन आवृत्ति निकालने वालों को उसमें ऐसे शब्दों का भी समावेश करना चाहिए जो भिन्न भिन्न व्यवसायों के कारण, रोगों के कारण, शास्त्रों के कारण हमारी भाषा में आगये हैं। इसी प्रकार नवीन व्याकरणकारों को नवीन मुहाविरों की व्यवस्था अपने व्याकरणों में करनी चाहिए।

इस तरह का वाद-विवाद केवल हमारे ही यहाँ नहीं होता। यूरप में भी कुछ लोग अपनी भाषा से विदेशी शब्द निकाल डालना और अपनी प्राचीन भाषा से तैयार किये हुए नवीन शब्द उसमें लाना चाहते हैं। परन्तु उनका यह यत्न सफल नहीं होता। अँगरेज़ी भाषा का एक छोटा सा नवीन इतिहास अभी प्रकाशित हुआ है। उसमें एक जगह यह दिखलाया गया है कि अपने प्राचीन शब्द और मुहाविरे स्थिर रख कर नवीन शब्द और मुहाविरे अपनी भाषा में लाने से बड़ा लाभ होता है:—

An independent nation, conscious of its strength, and not afraid of being overwhelmed by foreign influences, does well, therefore, to welcome the foreign names of foreign products. It does not thus corrupt, but really enriches its language; and even when, as in English, it possesses a multitude of synonyms, partly native and partly foreign, for more or less the same conceptions, this variety of terms is a great advantage; for the genius of the language, which works more by making use of existing terms than by creating them, is enabled to give to each different shades of meaning. Thus as Bradley points out, the subtle shades of difference of meaning, of emotional significance, between such pairs as *paternal* and *fatherly*, *fortune* and *luck*, *celestial* and *heavenly*, *royal* and *kingly*, could not easily be rendered in any other language.—*The English Language*, Logan P. Smith, page 59.

सौभाग्य से हमारे लिए संस्कृत-भाषा है ही। उससे हम चाहे जितने शब्द तैयार कर सकते हैं। इधर हमारी मातृभाषा के भी शब्द हैं ही। मुसल्मानों की भाषा से हम विशेष लाभ नहीं उठा सकते। पर अँगरेज़ी से हमें व्यवसाय-सम्बन्धी बहुत सा साहित्य और शब्द-समूह ले लेना चाहिए। हमें यदि अपनी सम्पत्ति बढ़ाना है तो ऐसा किये बिना काम नहीं चल सकता। अँगरेज़ी-साहित्य ने ही हमें अपने गद्य-साहित्य के बढ़ाने में प्रवृत्त किया है। हमारे प्राचीन भाण्डार में क्या क्या है, इसका पता लगाने की बुद्धि भी हमें इसी ने दी है। जैसे किसी निधि पर कोई नाग बैठता है अथवा अपनी कोठी के द्वार पर कोई कृपण बैठता है वैसा ही हाल हमारा था। पर अब वह दशा नहीं रही। अँगरेज़ी साहित्य ने हमारे नेत्र खोल दिये हैं। अपनी संस्कृत-निधि हमने देख ली है और उसके सुवर्ण-रत्न बाहर निकाल कर और उनसे आभूषण तैयार करके हम अपने गले में पहनने लगे हैं। हमारे मराठी कवि भगवद्गीता, महाभारत, रामायण, भागवत इत्यादि के आगे नहीं बढ़े। पर हम ऋग्वेद से लेकर राजतरङ्गिणी तक के रत्नों से, और अङ्गरेज़ी तथा प्रायः सभी यूरोपीय भाषाओं के साहित्य-सागर का अवगाहन करके उनके रत्नों से, देशी ढङ्ग से आभूषण तैयार करके अपने देश-भाइयों को अर्पण करने लगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। दोनों प्रकार के ये आभूषण हमारी महाराष्ट्र-वाक्सुन्दरी के अलङ्कार-भाण्डार में अवश्य चाहिए। उनमें से कौन सा त्याज्य है और कौनसा सङ्ग्रहणीय, इस बात का निश्चय सर्वपरीक्षक काल करेगा। इस समय हमारा काम सिर्फ़ भाण्डार बढ़ाना है। यह भाण्डार बढ़ाये बिना हमारी उन्नति नहीं हो सकती। हमें आज यह विचार करना है कि यह भाण्डार बढ़ाने के लिए जितने वीरों को तैयार करना चाहिए उतने कैसे तैयार किये जायँ? क्योंकि जो लोग यह काम कर रहे हैं उनकी सङ्ख्या इस समय बहुत ही थोड़ी है। वास्तव में जिन्हें आगे आना चाहिए उनका अभी इस ओर ध्यान ही नहीं है। उनका ध्यान इस ओर लाने और उन्हें आगे बढ़ाने के चार साधन हैं:—

१—विश्वविद्यालय में आवश्यक विषयों की शिक्षा में मराठी का प्रवेश होना चाहिए।

२—मैट्रिक्युलेशन की परीक्षा तक सारी शिक्षा अपनी ही भाषा द्वारा मिलनी चाहिए।

३—साहित्य-सभाओं को मराठी-कोश की नवीन आवृत्ति तैयार करानी चाहिए।

४—भारतवर्ष की सारी भाषाओं के प्रतिनिधियों को सहकारिता के साथ विविध शास्त्रों के पारिभाषिक शब्दों का कोश तैयार करना चाहिए।

विश्वविद्यालय और अन्य अधिकारियों के दरवाज़े बराबर खटखटाते रहने से ही पहले दो कार्य्य सिद्ध हो सकेंगे। राजा, महाराजा और धनवान् लोगों के दरवाज़े खटखटाने से तीसरा साधन प्राप्त होगा। मराठी, गुजराती, बङ्गाली, हिन्दी, तामील, तेलगू इत्यादि भाषाओं की साहित्य-सभायें यदि मन में लावें तो चौथा उद्देश सिद्ध होगा।

हमें अपनी मातृभाषा का अभिमान रखना चाहिए। अभिमान रखने वाले लोगों ही के द्वारा मराठी भाषा को इतनी अर्थसमर्थता आई है कि उसके द्वारा चाहे जो शिक्षा दी जा सकती है, चाहे जो विचार प्रकट किये जा सकते हैं। उसमें इतना सामर्थ्य आगया है कि वह साहित्य के सब उद्देश सिद्ध कर सकती है। उस सामर्थ्य का उपयोग कर के उसे और भी समर्थ करना हमारे ही हाथ में है। अतएव जो इस समय साहित्य-क्षेत्र में काम कर रहे हैं और जो उसकी सीमा पर खड़े हुए उनका सिर्फ़ तमाशा देख रहे हैं उनसे मैं एक बार अपने पूर्वज उपनिषत्कार ऋषियों के शब्दों में प्रार्थना करता हूँ:—

वाग्वै तत्सर्वं विज्ञापयति वाचमुपास्वेति। स यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते। यावद्वाचो गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते॥

"वाणी ही सारा ज्ञान प्राप्त कराती है। अतएव वाणी की उपासना करो। जो वाणी को ब्रह्म समझ कर उसकी उपासना करता है वह वाणी के साम्राज्य में स्वतन्त्र हो जाता है। वाणी को ब्रह्म समझ कर जो उपासना करता है वही उस पद को पहुँचता है"।

लक्ष्मीधर वाजपेयी।

संस्कृत-रामचरितमानस।

इटावा में पण्डित सेवाराम के पास हाथ की लिखी हुई संस्कृत की एक पोथी है। उसका नाम "रामचरितमानस" है। गोस्वामी तुलसीदास की रामायण और यह संस्कृत-रामचरितमानस एक ही वस्तु है। केवल हिन्दी और संस्कृत का भेद है। पण्डित सेवाराम और अन्य कुछ सज्जनों ने मिल कर, संवत् १९६८ में, इसका सुन्दरकाण्ड, और, संवत् १९६९ में, अरण्यकाण्ड छपवाया। उन्होंने संस्कृत मूल के साथ साथ तुलसीकृत रामायण के इन दो काण्डों को भी छपवा दिया। प्रकाशकों ने इन दोनों काण्डों का विज्ञापन भी निकाला। प्रकाशकों का विश्वास है कि यह वही संस्कृत-ग्रन्थ है जिसे शम्भु ने रचा था। इसी का अनुवाद, भाषा में, तुलसीदास ने किया। वे अपने विश्वास का कारण तुलसीदास के ये पद्य बताते हैं:—

संभु कीन्ह यह चरित सोहावा।
बहुरि कृपा करि उमहिँ सुनावा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोइ सिव काग भुसुंडिहि दीन्हा।
राम-भगत अधिकारी चीन्हा॥
तेहि सन जागबलिक मुनि पावा।
तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥
मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सु सूकरखेत।
समुझि परी नहिं बालपन तब अति रहेउँ अचेत॥
तदपि कही गुरु बारहिं बारा।
समुझि परी कछु मति अनुसारा॥
भाषा-बद्ध करब मैं सोई।
मोरे मन प्रबोध जेहि होई॥

यत्पूर्व्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्॥

इसमें सन्देह नहीं कि दोनों पुस्तकें ऐसी मिलती हैं कि उनमें से एक दूसरी का अनुवाद अवश्य है। पर प्रश्न यह है कि तुलसीदास ने अनुवाद किया, या यह संस्कृत-पोथी ही तुलसीकृत रामायण का अनुवाद है। मेरी राय में तो यह संस्कृत-पुस्तक ही तुलसीकृत रामायण का अनुवाद है। कारण ये हैं:—

(१) यदि तुलसीदास ने रामायण स्वयं न बनाई होती और केवल संस्कृत से अनुवाद किया होता तो वे इस वाक्य को, जो उस अवस्था में मिथ्या हो जाता है, क्यों लिखते:—

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा—
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति॥

(२) गोस्वामी तुलसीदास को क्षमा माँगने की कोई ऐसी आवश्यकता न होती जैसी की उन्हों ने बालकाण्ड के आरम्भ में दिखाई है। यथा :—

(क) निज बुधिबल भरोस मोहिं नाहीं।
(ख) छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई।
सुनिहँहि बालबचन मन लाई॥
(ग) निज कबित्त केहि लाग न नीका।
सरस होइ अथवा अति फीका॥
(घ) भाषा-भनित मोरि मति थोरी।
हँसिबे जोग हँसें नहिं खोरी॥
(ङ) कवि न होहुँ नहिं चतुर प्रवीना।
सकल कला सब विद्याहीना॥
(च) कवित विवेक एक नहिं मोरे।
सत्य कहहुँ लिखि कागद कोरे॥

यदि गोस्वामीजी किसी को संस्कृत-रामायण का अनुवाद करते तो वे शम्भु का 'प्रभुणा,' 'सुकविना,' 'श्रीशम्भुना' लिख कर, फिर, उन्हें, 'सकल-कला-सब-विद्या-हीना' कदापि न लिखते।

(३) लगभग ३०० वर्ष से गोस्वामीजी और उनकी रामायण की कीर्त्ति फैली हुई है, पर अब तक इस संस्कृत-रामायण का कहीं पता भी न था। कभी किसी ने यह भी नहीं कहा कि तुलसीदास रामायण के मूल लेखक नहीं, केवल अनुवादक हैं।

(४) इस संस्कृत-पुस्तक में रामायण के वे स्थल भी मौजूद हैं जिनको विद्वान् लोग प्रायः क्षेपक बतलाते हैं। यथा अरण्यकाण्ड में विराध का सीता को ले जाना। देखिए:—

"आगत्य शनकैः सोऽपि सीतामादाय दुद्रुवे"।

(तुरतहि सो सीतहि लै गयऊ)—

इसी तरह सुन्दर-काण्ड में है:—

"प्रागुत्तीर्य्य पुरीं दग्ध्वा वारिधिं तीर्णवानहम्।
तथापि नाथ सीताद्योरुत्तुं वारि नाशकम्"॥

वारिपारि पुरजारि कै उतरेउँ वारि गँभीर।
जनक-सुता-दृग-वारि को तरि न सकेहुँ रघुवीर॥

(५) तुलसीकृत रामायण की भाषा, जगह जगह पर, इस संस्कृत-पुस्तक से कहीं अधिक रस, ओज और मनोहरता से पूर्ण है। इस पुस्तक में कहीं कहीं ऐसे शब्दों का प्रयोग है, जो अनावश्यक हैं। उदाहरण :—

भाषा।

(अ) शठ सूने हरि आनेसि मोही।
अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥

संस्कृत

चोरयित्वा रहःस्थाम्मां श्रारामरहिताश्रमात्।
नीतवान् नहि ते लज्जा जातो रेऽधमाधम॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा।

(आ) मातु कुशल प्रभु अनुज समेता।
तव दुख दुखी सुकृपा-निकेता॥

संस्कृत।

मातः कुशिलिनौ वीरौ वर्त्तेते रामलक्ष्मणौ।
किन्तु दुःखेन तें नूनं दुःखितावेव सर्व्वदा॥

(इ) कहहु तात केहि भाँति जानकी।
करत रहत रक्षा सुप्राण की॥

ब्रूहि तात महाभाग कथं जनकनन्दिनी।
विधत्ते रक्षसां मध्ये प्राणत्राणं मम प्रिया॥

(६) कहीं कहीं, इस ग्रन्थ में, ऐसे ऐसे शब्द भी हैं, जो केवल पादपूर्ति के लिए ठूँस दिये गये हैं। भाषा की रामायण में वे शब्द नहीं पाये जाते। यथा:—

मेरे हृदय प्रीति अस होई।
कै तुम हरिदासन में कोई॥

अवश्यं हरिभक्तेषु त्वं कोपि इति निश्चितम्।
त्वयि प्रीतिर्मम हृदि प्रतीतिरिति जायते॥

(७) कहीं कहीं संस्कृत और भाषा में इतना अन्तर है कि देखने ही से मालूम हो जाता है कि भाषा अच्छी तरह समझी न जाने के कारण संस्कृत का अनुवाद कथाप्रसङ्ग के भाव से बिलकुल बे-मेल हो गया है। यथा सुन्दरकाण्ड में सीता से रावण कहता है:—

(आ) सीता तै मम कृत अपमाना।
कटिहँहु तव सिर कठिन कृपाना॥
नाहिँत सपदि मानु मम बानी।
सुमुखि होत नतु जीवन हानी॥

श्रद्धा वचनं सत्यं जानीहि जनकात्मजे।
तवानेन वियोगेन मरणं मम जायते।

इस पर सीताजी रावण से कहती हैं:—

(आ) स्याम-सरोज-दाम-सम सुन्दर।
प्रभु-भुज करि-कर-सम दसकन्धर॥
सो भुज कण्ठ कि तव असि घोरा।
सुनु सठ अस प्रमान पन मोरा॥

भुजमिन्दीवरनिभं रामचन्द्रस्य वा तव।
अस्मिंमम हृदिस्थाता मयायं निश्चयः कृतः॥

रावण का धमकाना कि मैं तेरा सिर तलवार से काट लूँगा, तूने मेरा अपमान किया है; और फिर तत्काल ही यह कहना कि मैं तेरे वियोग में मरता हूँ, बहुत बे-जोड़ बात मालूम होती है। संस्कृत में राम-भुजा की उपमा नहीं पाई जाती। 'हृदिस्थाता' पद भी अस्पष्ट है।

(इ) देखि मनहिँ मन कीन्ह प्रणामा।
बैठेहि बीति गई निसि जामा॥
कृशतन सीस जटा एकबेनी।
जपत रहत रघुपति-गुण-श्रेनी॥

दृष्ट्वा तां मनसा तत्र प्रणम्य कपिकुञ्जरः।
द्वौ यामौ यापयामास यामिन्यास्तरुसंस्थितः॥
कृशाङ्गयष्टिं शिरसि जटावेणीधरां वराम्।
रामचन्द्रगुणश्रेणीजपन्तीं दीनमानसाम्॥

अब देखिए—"बैठेहि बीति गई निस जामा" का सम्बन्ध सीता से हट कर हनूमान से हो जाता है। प्रकाशित ग्रन्थ में भाषा का पाठ "बैठे बीत जामिनी जामा" भी अशुद्ध है।

(८) सुन्दरकाण्ड में "कनक-कोट विचित्र" आदि छन्द का अन्त तुलसीदास ने इस प्रकार किया है:—

यहि लागि तुलसीदास इनकी कथा कछु यक है कही।
रघुवीर-सर-तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहैं सही॥

एषां महीध्रजनुषां खलु राक्षसानाम्
वृत्तं मनागपि न पार्वति वर्णनीयम्।
तत्रापि रामशरतीर्थ इमे शरीरं
सन्त्यज्य सद्गतिमिता इति किञ्चिदुक्तम्॥

इसके आगे संस्कृत में इतने श्लोक और हैं:—

१—क्वापि प्रभूतमदिराघटपानमत्ता
जल्पन्ति भूरिवचनानि हसन्ति भूयः।
नृत्यन्ति पर्वतसुते प्रपतन्ति भूमौ
क्रन्दन्ति भ्रान्तमनसो बहुशः कपाटाः॥

२—अद्य द्विजाः श्रुतिविदः खलु पञ्चषाश्च
व्यापादिता इति वदन्ति सभासु केचित्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केचिद् वदन्ति सुहृदोऽद्य सुराङ्गनाश्चा-
स्माभिर्हृताः समभिभूय सुरेशसेनाः ।
३—रक्षांसि दुष्टहृदयानि वदन्ति कापि
तुष्टिर्न मेषमहिषामिषमन्तरेण ।
अस्माकमस्ति सुतरां खलु तेन सूदा
हत्वा पशून् वितरत क्षुधिता वयं स्म ॥
४—गोविप्रहिंसनपराः किल पापरूपा-
ये राक्षसासन (?) सुखे कृतवैरभावाः ।
ते ऽपि देवसदने गमिताः क्षणेन
रामेण येन तमहं सततं स्मरामि ॥

इनका अनुवाद किसी रामायण की प्रामाणिक प्रति में नहीं मिला। पूर्वोक्त ग्रन्थ के भाषा-खण्ड में भी वह नहीं है। कोई कारण नहीं मालूम होता कि इन श्लोकों का अनुवाद क्यों नहीं किया गया।

(९) पण्डित सेवाराम की कृपा से मैंने इस 'अपूर्वरत्न' के हस्तलिखित रूप के दर्शन किये हैं। वह सर्गों में विभाजित है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में यह लिखा है—"इति श्रीमद्रामायणे रामचरित-मानसे महाकाव्ये सकलकलुषविध्वंसने उमामहेश्वर-संवादे—काण्डे—सर्गः"। प्रत्येक सर्ग के अन्त में कुछ शब्द मिटे से मालूम पड़ते हैं। ध्यान देकर देखने से विदित होता है कि उन मिटे हुए शब्दों का अन्तिम शब्द 'कृते' है। 'कृते' से पहले के चार अक्षर नहीं पढ़े जाते। इसका कारण समझ में नहीं आता कि प्रत्येक सर्ग के अन्त में ग्रन्थकर्ता का नाम क्यों मिट, अथवा मिटा दिया, गया है।

(१०) इस पुस्तक की संस्कृत शुद्ध है या अशुद्ध, इस बात पर संस्कृत के पण्डित लोग विचार करेंगे; तब ठीक हाल मालूम होगा। मैं कुछ नहीं कह सकता। परन्तु वह सरल बहुत है और आधुनिक मालूम पड़ती है। मैंने अपनी राय बहुत संक्षेप में लिखी है। प्रकाशक महाशयों की भी इच्छा है और मैं भी आशा करता हूँ कि विद्वान् लोग इस ग्रन्थ को पढ़ कर अपनी सम्मति प्रकट करने की कृपा करें।

खड्गजीत मिश्र।

भाषा-शिक्षा।

(लेखक, प्रोफ़ेसर विनयकुमार सरकार, एम० ए०, पी० आर० एस०,

(३)

संस्कृत-भाषा का महत्त्व।

सर्वनाम शब्द (क) तीन प्रकार के लिङ्ग।

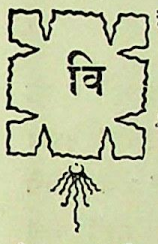

विशेष शब्दों की तरह विषयवाचक **सर्वनाम** शब्दों के भी तीन प्रकार के लिङ्ग होते हैं और लिङ्ग के अनुसार ही प्रत्येक का रूप-परिवर्तन हो जाता है। किन्तु ऐसे शब्दों के अन्त्य वर्ण की प्रधानता लेकर कोई परिवर्तन नहीं होता। इसलिए प्रत्येक सर्वनाम शब्द लिङ्ग के अनुसार केवल तीन प्रकार की विभक्तियाँ धारण करता है।

(ख) तीन प्रकार के वचन।

विशेष शब्दों की तरह सर्वनाम-शब्दों के भी वचन तीन प्रकार के होते हैं। विशेष्य शब्द के सम्बोधन में जिस प्रकार रूप-परिवर्तन होता है, साधारणतः सर्वनाम-शब्दों के द्वारा सम्बोधन-अर्थ प्रकाशित करने की आवश्यकता नहीं होती। इसलिए सर्वनाम-शब्दों में सम्बोधन के लिए रूप-परिवर्तन करके किसी प्रकार का वैचित्र्य-साधन नहीं होता। सर्वनाम-शब्दों के सम्बोधन में रूपपरिवर्तन होते ही नहीं। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक विषयवाचक सर्वनाम शब्द तीन प्रकार के लिङ्गों और तीन प्रकार के वचनों के प्रभाव से नौ प्रकार के अर्थवाचक चिह्न धारण करता है।

(२) वक्तव्यवाचक शब्द—दस गण।

दूसरे वक्तव्यवाचक शब्दों को लीजिए। ये क्रिया-जाति के होते हैं। इन्हें क्रिया-शब्द कहते हैं। संस्कृत-भाषा में जितने क्रियावाचक हैं वे सब मुख्य करके दस गणों या श्रेणियों में बँटे हुए हैं। इन गणों में प्रत्येक क्रिया-शब्द के रूप भिन्न भिन्न प्रणाली से भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) तीन पुरुष।

क्रिया-शब्दों में कोई लिङ्ग नहीं होता; इसलिए लिङ्ग के कारण होने वाला किसी प्रकार का परिवर्तन क्रिया-शब्दों में नहीं होता। किन्तु क्रियापद में पुरुषानुसार विभक्तियाँ लगती हैं। जिस विषय में कहना हो, उसका जो पुरुष हो, वक्तव्यवाचक शब्द की क्रिया का भी वही पुरुष होगा। इस कारण प्रत्येक क्रिया के तीन प्रकार के रूपपरिवर्तन होते हैं।

(ख) तीन प्रकार के वचन।

विषयवाचक शब्दों की तरह क्रिया-वाचक शब्द भी संख्यानुसार, बदल जाते हैं। जिस विषय में वाक्यरचना करनी होती है उसका जो वचन होता है क्रिया-शब्द का भी वही वचन होता है। इस प्रकार प्रत्येक क्रिया-शब्द तीन प्रकार के पुरुषों और तीन प्रकार के वचनों के प्रभाव से नौ प्रकार के अर्थ देने वाले नौ तरह के चिह्न धारण करता है।

(ग) दस प्रकार की काल-वाचक और वक्ता की मनोभाव-ज्ञापक विभक्तियाँ।

संस्कृत-भाषा में काल प्रकाश करने का एक विचित्र ही मार्ग है। विषय के साथ वक्तव्य का सम्बन्ध जिस भाव में प्रकाशित करने की वक्ता इच्छा करता है वह भाव और क्रिया का काल विभिन्न चिह्न द्वारा एक जगह ही व्यक्त होता है। वे चिह्न दस भागों में विभक्त हैं। इस लिए सब मिला कर प्रत्येक क्रिया-शब्द ९० प्रकार के रूप धारण करके ९० ही प्रकार का अर्थ प्रकट करता है।

(घ) चार प्रकार की अन्तर्निहित विभक्तियाँ-णिजन्त, सनन्त, यङन्त और नाम।

इसके सिवा प्रत्येक क्रिया-शब्द का असली रूप भी बदल जाता है। इच्छा, प्रेरणा और अर्थ प्रकाश करने के लिए वक्तव्यवाचक शब्द मूल से ही बदल कर नवीन शब्दों की सृष्टि कर देते हैं। इस प्रकार नवीन शब्द चार तरह के हैं। ये नवीन शब्द भी पुराने शब्दों की तरह भिन्न भिन्न वचन, पुरुष, काल आदि के अनुसार ९० प्रकार के रूप धारण करते हैं। इस लिए प्रत्येक क्रिया-शब्द भिन्न भिन्न अर्थ प्रकाश करने के लिए ३६० प्रकार के रूपों को धारण करता है।

इन सब रूप-परिवर्तनों के साथ वाक्य की रीति बदल जाने पर क्रिया में और भी परिवर्तन हो जाता है। उन परिवर्तनों को सब ओर से देख समझ लेने पर फिर उनको भी गिनना चाहिए।

(३) विषय-वाचक शब्दों के विशेषक-समूह।

तीसरी बात विषय-वाचक शब्दों का विशेषक* समूह जानना है। किस वाक्य में कितने शब्द विषय-वाचक शब्द में कितने विशेष विशेष अर्थ देते हैं—यह बात जानने के लिए उनको तद्विषयवाचक शब्दों के विशेषक समझना चाहिए। विषयवाचक शब्द का जो लिङ्ग, वचन आदि होता है वही इनका भी होता है।

(क) विशेष्य शब्द—सरल, समासयुक्त (कर्मधारय, द्वन्द्व) षष्ठी विभक्ति।

ये विशेषक शब्द चार भागों में बँटे हुए हैं। विशेष्य, विशेषण, सर्वनाम और क्रिया। विशेष्य शब्द तीन प्रकार के विषयवाचक विशेष्य और सर्वनाम शब्द के विशेषक हो सकते हैं। १— सरल और अयुक्तभाव से, २— अन्य शब्द के साथ युक्त और समासबद्ध भाव से और ३— सम्बन्ध पद का रूप

* इन वक्तव्यज्ञापक क्रियावाचक शब्दों के साथ विषय-वाचक विशेष और सर्वनाम शब्दों का सम्बन्ध निर्णय करने के लिए, उनका एक प्रकार का चिह्न ग्रहण करके रूपभेद मानना होगा। क्रिया के साथ विषय का सम्बन्ध बतलाने वाले चिह्न को वैयाकरण लोग कारक कहते हैं और विषय के साथ वक्तव्य का जितने प्रकार का सम्बन्ध स्थापित हो सके, उसको विचार करके उन्होंने पाँच भागों में विभक्त किया है। इसके सिवा विषय के साथ विषय का सम्बन्ध स्थापन करने के लिए 'सम्बन्ध' नाम से ही कुछ चिह्न नियत कर दिये हैं। वचन के भेद से कारक और सम्बन्ध-चिह्न अठारह प्रकार के हैं। ये अठारह प्रकार के चिह्न ही विषयवाचक और वक्तव्यवाचक शब्दों के विशेषक रूप में व्यवहृत होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त हो कर। पहले और दूसरे प्रकार में इन शब्दों का रूपपरिवर्तन विषयवाचक शब्दों के रूपपरिवर्तन के समान होता है। तृतीय प्रकार में सम्बन्ध-प्रकाशार्थ एक भिन्न प्रकार की विभक्ति लगानी पड़ती है।

(ख) सर्वनाम शब्द—सरल और षष्ठ्यन्त।

सर्वनाम शब्द विषयवाचक विशेष्य और सर्वनाम शब्द का विशेषक दो प्रकार से हो सकता है। १—सरल और अयुक्त भाव से, २—षष्ठी विभक्ति के संयोग से।

(ग) विशेषण शब्द—सरल और समासयुक्त (तत्पुरुष, बहुव्रीहि)

विशेषण शब्द दो प्रकार से सिद्ध होते हैं। कुछ शब्द ऐसे हैं जो पहले से ही गुण, सङ्ख्या आदि के वाचक हैं। ये किसी विषय-वाचक शब्द के विशेषक भाव को छोड़ कर और किसी प्रकार स्वाधीन भाव से व्यवहृत नहीं होते। ये सरल और अयुक्त रहते हैं। और कुछ विशेषण अन्य शब्दों के साथ समासयुक्त होकर विषयवाचक शब्दों के विशेषक होते हैं।

(घ) कृदन्त क्रिया-शब्द।

क्रिया-शब्द विभिन्न वाच्यानुसार विभिन्न विभक्ति को प्राप्त होकर विषयवाचक शब्दों के विशेषक हो जाते हैं। निष्पत्ति, औचित्य आदि अर्थों में ये सब विभक्तियुक्त हो जाते हैं।

(४) वक्तव्यवाचक शब्द का विशेषक-समूह।

चौथी बात वक्तव्यवाचक क्रियाशब्द के विशेषक-समूह का जानना है। क्रिया-शब्द का वचन, पुरुष, काल आदि के अनुसार जिस प्रकार परिवर्तन होता है, क्रिया के विशेषकों का उस प्रकार परिवर्तन नहीं होता। इनका परिवर्तन सर्वथा स्वतन्त्र रीति से होता है।

(क) विशेष्य शब्द—अव्ययीभाव समास, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, सप्तमी विभक्ति।

विशेषक पाँच श्रेणियों में विभक्त हैं:—विशेष्य, सर्वनाम, क्रिया, अव्यय और विशेषण। विशेष्य शब्द दो प्रकार से वक्तव्यवाचक क्रिया-शब्द के विशेषक हो सकते हैं। १—अन्य शब्दों के साथ युक्त हो कर समासबद्ध रूप से और २—भिन्न भिन्न अर्थ में भिन्न भिन्न विभक्तियुक्त हो कर विभिन्न सम्बन्ध-कारक रूप से। कर्म्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण आदि भिन्न भिन्न कारकों में तथा भिन्न भिन्न शब्दों के योग में विशेष्य शब्द द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, सप्तमी विभक्ति को प्राप्त होकर वक्तव्य के विशेषक हो जाते हैं।

(ख) सर्वनाम—पाँच विभक्तियाँ।

सर्वनाम शब्द भिन्न भिन्न अर्थ प्रकाशित करने के लिए भिन्न भिन्न विभक्तियों को प्राप्त हो कर क्रिया के विशेषक होते हैं। तात्पर्य यह निकला कि प्रत्येक सर्वनाम शब्द द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी और सप्तमी विभक्ति के चिह्नों को धारण करके भिन्न भिन्न रूप धारण कर लेता है।

तीन वचनों और पाँच विभक्तियों में प्रत्येक विशेष्य और सर्वनाम शब्द, वक्तव्य-वाचक शब्दों के विभिन्न विशेषक होने के लिए, भिन्न भिन्न प्रकार के पन्द्रह रूप धारण करता है।

(ग) असमापिका क्रिया और अव्यय।

असमाप्त क्रिया को एक भाव से वक्तव्य-वाचक शब्द का विशेषक मात्र कहा जाता है। इनके अङ्ग में क्रिया के असमाप्तिसूचक चिह्न लगे रहते हैं; और किसी तरह से आकृति-परिवर्तन नहीं होता। अव्यय शब्दों का भी कोई रूप-परिवर्तन नहीं होता।

(घ) विशेषण शब्द।

विशेषण शब्दों के साथ द्वितीया विभक्ति के एक वचन का चिह्न रहने पर वे वक्तव्य-वाचक क्रिया-शब्द के विशेषण हो सकते हैं।

शब्दों की सन्धि और ध्वनिघटित मिलन।

पहले जिन सब विभक्तियों और शब्द के रूप-परिवर्तनों का उल्लेख किया गया है, उनके समावेश से संस्कृत भाषा के विभिन्न भाव-प्रकाशक वाक्यों की रचना होती है। इनके अतिरिक्त शब्दों के रूप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवर्तन के और भी कितनेही कारण हैं। उन सब कारणों से वाक्यों के भाव-प्रकाश के सम्बन्ध में कोई परिवर्तन नहीं होता, केवल उच्चारण और ध्वनि का ही परिवर्तन होता है। ये परिवर्तन जिस नियम से किये जाते हैं उसको सन्धि कहते हैं। शब्द के साथ शब्द की ध्वनि का योग होने पर ध्वनिसन्धि हो जाती है और दो या दो से भी अधिक शब्द मिला कर एक अखण्ड शब्द बन जाता है। पहले शब्द के अन्त्यवर्ण और दूसरे शब्द के आदिवर्ण की जो विचित्र सन्धि होती है उसके दो प्रकार हैं। स्वर-सन्धि और व्यञ्जन-सन्धि। ध्वनि की परस्पर आकर्षणी शक्ति ही सन्धि का कारण है। इसी लिए वाक्य में जिस जिस स्थल पर दो ध्वनियों की समीपता हो, दो ध्वनियाँ पास पास हों, उसी उसी जगह सन्धि होती है। इसी प्रकार जहाँ जहाँ विभिन्न अर्थ-प्रकाशनार्थ दो या इससे भी अधिक शब्दों का समास करने की आवश्यकता होती है वहाँ वहाँ ध्वनि के सामीप्य होते ही सन्धि हो जाती है। इन सन्धियों के द्वारा चाहे शब्द या वाक्य में किसी प्रकार का भी परिवर्तन न हो, पर तो भी सन्धि हो जाने पर भाषा में वैचित्र्य आजाता है और वाक्य की आकृति में यथेष्ट परिवर्तन हो जाता है। इस कारण अन्यान्य परिवर्तनों की आलोचनाओं के साथ इनकी आलोचना भी प्रासङ्गिक ही है। इन सन्धियों से भी संस्कृत-भाषा में बहुत कुछ विशेषता आजाती है।

अँगरेज़ी भाषा का विशेषत्व।

(क) शब्द का स्थान।

पहले जिन तीन प्रकार की भाषाओं का उल्लेख किया गया है, अँगरेज़ी भाषा उन सबसे अलग है। अँगरेज़ी भाषा के वाक्यों में पदों का सम्बन्ध प्रधानतः उनके उच्चारणक्रम और सन्निवेशस्थान के ही द्वारा निर्धारित होता है। शब्दों में कोई परिवर्तन नहीं होता। एकही शब्द भिन्न भिन्न स्थान में सन्निविष्ट होकर भिन्न भिन्न भाव को प्रकट करता है। इसका परिणाम यह होता है कि अँगरेज़ी भाषा में, संस्कृत भाषा की अपेक्षा, व्याकरण-सम्बन्धी भूलों की सम्भावना कम होती है। किन्तु दोष इसमें यही है कि यदि वाक्य बड़ा हो जाय तो वह जटिल और दुर्बोध्य हो जाता है और अर्थ-प्रकाश करने में विघ्न पैदा कर देता है। कारण यह है कि उसमें पदों के साथ पदों का सम्बन्ध निर्णय करने में बड़ी कठिनता होती है और वक्ता विषय के गुरुत्वानुसार स्वतन्त्रता से शब्दों को समाविष्ट नहीं कर सकता। किसी शब्द का स्थानपरिवर्तन होते ही वाक्य कुछ का कुछ अर्थ-प्रकाश करने लगता है।

(ख) संयोजन।

दूसरी बात यह है कि अँगरेज़ी भाषा में वक्तव्य-वाचक और विषयवाचक शब्दों का सम्बन्ध कुछ ख़ास संयोजनी रीति के द्वारा निर्धारित होता है।

(ग) विभक्ति।

तीसरी बात यह है कि अँगरेज़ी भाषा में किसी किसी जगह विभक्ति का चिह्न धारण करके शब्दों का रूप-परिवर्तन हो जाता है, परन्तु इन विभक्तियों की सङ्ख्या बहुत ही कम है और वे भाषा के प्रधान अवलम्बन भी नहीं हैं। संस्कृत-भाषा का प्रत्येक शब्द भिन्न भिन्न अर्थ प्रकाशित करने के लिए जितने विचित्र रूप धारण करता है, अँगरेज़ी भाषा में उतनी विभक्तियों का प्रयोग नहीं है।

विषयवाचक शब्द—विशेष्य और सर्वनाम।

१—विषयवाचक शब्द। संस्कृत भाषा की तरह अँगरेज़ी भाषा में भी शब्द दो श्रेणियों में विभक्त हैं:—विशेष्य और सर्वनाम। परन्तु संस्कृत-भाषा की तरह अँगरेज़ी भाषा के शब्दों में व्याकरण-घटित लिङ्ग-भेद की प्रथा नहीं है।

(क) प्रकृतिगत लिङ्ग।

अँगरेज़ी भाषा में प्रकृतिगत लिङ्गपद्धति ही मानी जाती है। इसलिए अँगरेज़ी भाषा में प्रत्येक शब्द का एक एक लिङ्ग नहीं है। उसमें केवल प्राकृतिक लिङ्ग के अनुसार ही शब्द का लिङ्ग होता है। इस कारण लिङ्ग-निर्णय ही शब्द का परिचय निर्धारण करने का प्रधान उपाय नहीं है। अँगरेज़ी-भाषा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिङ्ग की प्रधानता नहीं है। और, जिन कुछ शब्दों का लिङ्ग-परिवर्तन होने से रूप-परिवर्तन होता है उनकी सङ्ख्या बहुत कम है और वह थोड़ा सा परिवर्तन भी विभक्तियोग के द्वारा सिद्ध हो जाता है।

(ख) दो वचन—विभक्ति का प्राधान्य।

अँगरेज़ी में प्रत्येक शब्द का लिङ्ग नहीं है, किन्तु अधिकांश शब्दों का वचन होता है और तदनुसार विभक्ति के योगद्वारा रूपपरिवर्तन हो जाता है। अँगरेज़ी में वचन दो ही हैं। इस कारण विषय-वाचक विशेष्य और सर्वनाम शब्द सङ्ख्यानुसार दो ही प्रकार के चिह्न धारण करते हैं। इसके अतिरिक्त सम्बोधन करके किसी वस्तु या व्यक्ति को बुलाने की दशा में भी सङ्ख्यानुसार शब्द की आकृति में दो प्रकार के ही रूपपरिवर्तन करने होते हैं।

वक्तव्यवाचक शब्द (क) पुरुष और वचन-विभक्ति का अल्प प्राधान्य।

२—वक्तव्यवाचक शब्द-समूह संस्कृत-भाषा के शब्दों की तरह क्रिया-जाति के होते हैं। संस्कृत की तरह अँगरेज़ी भाषा में भी क्रिया के तीन ही पुरुष होते हैं; परन्तु पुरुषों के कारण शब्द में विशेष रूपपरिवर्तन नहीं होता। विषयवाचक शब्द की तरह वक्तव्य-वाचक शब्द का भी सङ्ख्यानुसार परिवर्तन हो जाता है, किन्तु यह परिवर्तन बहुत सामान्य होता है। इसके द्वारा वाक्य में और भाषा में कोई विचित्रता नहीं पैदा होती। इसलिए वचन और पुरुष के द्वारा जिस प्रकार संस्कृत-भाषा में भिन्न भिन्न शब्द का भिन्न भिन्न अर्थ होता है, अँगरेज़ी भाषा में उस प्रकार नहीं होता। एक ही रूपविशिष्ट वक्तव्यवाचक शब्द द्वारा भिन्न प्रकार का अर्थ प्रकाशित हो सकता है; एक ही क्रियावाचक शब्द विषयवाचक विभिन्न विशेष्य या सर्वनाम शब्द के साथ सम्बद्ध हो सकता है।

(ख) काल और वक्ता की इच्छा प्रकाश के लिए विभक्ति का व्यवहार।

विषय के साथ वक्तव्य का सम्बन्ध एवं उसका काल वक्ता जिस भाव से प्रकाशित करने की इच्छा करता है, उसको प्रकट करने के लिए संस्कृत की तरह अँगरेज़ी में भी कुछ प्रणालियों का अवलम्बन किया जाता है, किन्तु उनके द्वारा शब्द का रूपपरिवर्तन विशेष रूप से नहीं होता। थोड़ी सी विभक्तियों के योग से अथवा हिज्जों में कुछ परिवर्तन करने से ही यह कार्य हो जाता है।

विषयवाचक शब्द का विशेषक।

३—विषयवाचक शब्दों का विशेषक-समूह जो सब वस्तु-वाचक या व्यक्ति-वाचक शब्द के विशेषकरूप में शब्द व्यवहृत होते हैं उनके लिङ्ग या वचन आदि के साथ इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। ये प्रधानतः दो श्रेणियों में विभक्त हैं।

(क) विशेषण—तुलना-प्रकाश।

पहले गुण, रूप, परिमाण, सङ्ख्या आदि वाचक विशेषण शब्दों को लीजिए। ये किसी विषयवाचक शब्द के बिना सहारे स्वाधीन भाव से व्यवहृत नहीं होते। इनका कोई वचन नहीं होता।

विभक्ति की अल्प सहायता।

तुलना समझाने के लिए किसी किसी शब्द के साथ विभक्ति का योग होता है।

(ख) विशेष्य, विधेय—विभक्ति का अल्प साहाय्य।

दूसरे, विशेष्य या सर्वनाम शब्दों को लीजिए। विशेष्य या सर्वनाम शब्द भी विषयवाचक विशेष्य और सर्वनाम शब्द के विशेषक हो सकते हैं। कहीं कहीं विशेष्य और सर्वनाम शब्द इनके विधेय विशेषण होते हैं। इसके सिवा इनके साथ सम्बन्ध-सूत्र आबद्ध है, इसी अर्थ के समझाने के लिए सम्बन्ध पद को विभक्ति प्राप्त होती है। किन्तु यह सम्बन्ध विभक्ति को छोड़ कर केवल संयोजनी व्यवहार द्वारा ही सिद्ध हो सकता है।

वक्तव्यवाचक शब्द के विशेषक।

४—वक्तव्यवाचक शब्द का विशेषक-समूह। ये शब्द साधारणतः संयोजनी सहायता से अन्य शब्द के साथ युक्त हो कर वाक्य की सृष्टि करते हैं। विभक्ति-योग के द्वारा केवल दो एक सम्बन्ध प्रकाशित होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत और अँगरेज़ी भाषा की विशेषता की आलोचना करने पर जाना गया कि ये दो भाषायें दो प्रकार की भिन्न भिन्न प्रणाली से गठित हैं। शब्द की आकृति का परिवर्तन ही संस्कृत-भाषा का प्रधान लक्षण है।

संस्कृत और अँगरेज़ी—दोनों भाषाओं का स्वातन्त्र्य।

अँगरेज़ी में ऐसा परिवर्तन बहुत कम होता है। इस लिए संस्कृत-भाषा में वाक्यरचना करके मनोभाव प्रकाशित करने पर शब्द के रूपपरिवर्तन के प्रति विशेष दृष्टि रखनी होती है। अँगरेज़ी में वाक्यरचना करने पर रूपपरिवर्तन पर विशेष ध्यान नहीं देना होता।

(असमाप्त)

अनुवादक—पण्डित रामजीलाल शर्म्मा।

धर्माग्नि।

धर्म की बड़ी महिमा है। प्राचीन काल से लेकर आज तक अनेक धार्मिक विद्वानों ने धर्म की अनेक प्रकार से व्याख्या की है। बहुत से विद्वानों ने तो धर्म की उपमा अग्नि के साथ दी है। आज हम इसी एक उपमा के साथ तुलना करके धर्म के विषय में कुछ लिखते हैं।

पहले यह देखना चाहिए कि अग्नि के साथ धर्म कहाँ तक समता रखता है। इस बात के स्पष्ट करने के लिए पहले अग्नि के गुणों का परिचय प्राप्त करना होगा। अब, देखिए, अग्नि में क्या क्या गुण हैं? अग्नि में पहला गुण "उत्ताप" है। संसार में जितना उत्ताप है वह सब अग्नि का ही है। जलते हुए अँगारे में देखिए, कितना उत्ताप होता है।

अग्नि का दूसरा गुण "प्रकाश" है। संसार में जितना प्रकाश दिखाई देता है सब अग्निजन्य ही है। अग्नि की विद्यमानता में अन्धकार का लेशमात्र भी नहीं रह सकता। अग्नि के बिना प्रकाश की सम्भावना ही नहीं हो सकती। इस लिए प्रकाश अग्नि का दूसरा गुण माना गया है।

अग्नि का तीसरा गुण "द्रवीकरण" है। सोना, चाँदी, लोहा, ताँबा आदि कठिन कठिन धातुओं को पानी करना अग्नि का ही काम है। अग्नि के बिना कठिन धातुओं को पिघला कर पानी करना सर्वथा असम्भव है। इस लिए द्रवीकरण अग्नि का तीसरा गुण है।

अग्नि का चौथा गुण "परिवर्तन" करना है। अग्नि वस्तुओं के रूप को ऐसा बदल देता है कि कुछ का कुछ दिखाई देने लगता है। लकड़ी को फूँक कर राख कर देना, पानी को जला कर भाप बना देना और पत्थर को जला कर उसका चूना बना देना अग्नि का ही काम है। चावल को देखिए, कितना कड़ा होता है। पर पानी के साथ आग पर पकाने से उसका कैसा कोमल भात बन जाता है। इन्हीं उदाहरणों को देख कर परिवर्तन करना भी अग्नि का एक गुण माना गया है।

अच्छा तो अब यह देखना चाहिए कि अग्नि के इन गुणों का साम्य धर्म में कहाँ तक मिलता है। यदि विचार कर देखा जाय तो अग्नि के उपर्युक्त सभी गुण धर्म में पूर्ण रीति से विद्यमान दिखाई देंगे।

पहले उत्ताप को ही लीजिए। तेज, उत्साह, साहस, चैतन्य और जोश—ये ऐसे शब्द हैं जो अर्थ में उत्ताप की समता रखते हैं। जिस प्रकार अग्नि में उत्ताप रहता है उसी प्रकार धर्म में उत्साह, साहस, चेतनता, गरमी और जोश आदि गुण रहते हैं। जिस मनुष्य में धर्म का निवास होता है, अथवा यों कहिए कि जो मनुष्य धर्मात्मा होता है उसी में जोश रहता है, उसी में साहस रहता है और उसी में उत्साह रहता है। जिस प्रकार शरीर में अग्नि ही जीवन का आधार है उसी प्रकार धर्म में भी अग्नि रहता है। उसी आग से धर्म का परिचय मिलता है। जिस प्रकार मनुष्य-शरीर प्राण के निकल जाने पर—गरमी के निकल जाने पर—ठंढा हो जाता है, मुर्दा हो जाता है, उसी प्रकार जिस मनुष्य में उत्साह की गरमी नहीं, साहस की गरमी नहीं, तेज की गरमी नहीं और जोश नहीं वह धर्महीन है—मुर्दा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे प्रकाश-गुण को देखिए। अग्नि के प्रकाश के तुल्य धर्माग्नि का प्रकाश भी बड़ा विलक्षण है। धर्म के प्रकाश से अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाता है और ज्ञान की ज्योति दीप्त हो जाती है। धर्मात्मा मनुष्य भी अपने धर्म-प्रकाश से अपने को ही प्रकाशित नहीं करता, किन्तु उसके प्रकाश से उसका समाज, नहीं नहीं सारा संसार, प्रकाश पाता है। यदि ऐसा न होता तो पारम्पर्यक्रमागत ज्ञान का जो चमत्कार आज दिखाई दे रहा है वह कदापि न दिखाई देता। जिस मनुष्य के हृदय में धर्म की आग का प्रकाश हो जाता है उसके हृदय से कामान्धकार, क्रोधान्धकार, लोभान्धकार और मोहान्धकार आदि अनेक प्रकार का अज्ञानजन्य अन्धकार नष्ट हो जाता है। धर्माग्नि से प्रकाशित हृदय में ज्ञान की पवित्र ज्योति जगमगाने लगती है। जिस मनुष्य में ज्ञान का प्रकाश न हो उसमें धर्म का अभाव मानना होगा। जिस मनुष्य में ज्ञान का प्रकाश दिखाई देगा उसी को धर्मात्मा समझना होगा।

तीसरी बात द्रवीकरण है। अग्नि के समान धर्म में भी द्रवीकरण गुण विद्यमान है। जिस प्रकार अग्नि में तपाने से सोने का पानी हो जाता है उसी प्रकार धर्म की आग में पड़ कर मनुष्य का वज्र के समान कठोर हृदय भी पिघल जाता है। धर्म की आग वह आग है जिसके प्रभाव से निर्दय हृदय में भी दया का सागर उमड़ने लगता है, जल्लादों के भी सूखे नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगती है और पत्थर के समान कड़ा कलेजा भी मोम की तरह पिघल जाता है। धर्म की आग से मनुष्य के हृदय की कठोरता कोमलता में बदल जाती है। धर्मात्मा मनुष्य का हृदय दया, प्रेम और वात्सल्य आदि गुणों से भरपूर रहता है। जिस मनुष्य के हृदय में दया नहीं, प्रेम नहीं, उसका हृदय शून्य है।

चौथी बात परिवर्तन-गुण की है। धर्माग्नि भी मनुष्य के स्वभाव में अनेक प्रकार के भारी परिवर्तन कर देता है। धर्म की आग में पड़ कर मनुष्य कुछ का कुछ हो जाता है। दुराचारी को सदाचारी बनाना, व्यभिचारी को ब्रह्मचारी बनाना, हिंसक को दयालु बनाना और मनुष्य को देवपदवी तक पहुँचाना धर्म की आग का ही काम है। इस बात की सत्यता में हमारा इतिहास साक्षी है। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण विद्यमान हैं जिनसे यह स्पष्ट विदित होता है कि धर्म की आग में पड़ कर लोग कुछ के कुछ हो जाते हैं। धर्म की आग में पड़ कर मनुष्य का मन बदल जाता है, बुद्धि बदल जाती है, ज्ञान बदल जाता है और स्वभाव बदल जाता है। यहाँ तक कि उसके सभी काम बदल जाते हैं। जो मनुष्य पहले चोरी करना ही अपना मुख्य अनुष्ठान समझा करता था वह धर्म की आग में पड़ कर इतना बदल जाता है कि फिर वह चोरी का नाम तक नहीं लेता। "परद्रव्येषु लोष्टवत्" ही उसका महामन्त्र हो जाता है। धर्म की आग से लोगों में इतना भारी परिवर्तन हो जाता है कि जो मनुष्य पहले महाव्यभिचारी था वह अब धर्म के प्रभाव से "मातृवत् परदारेषु" का उपासक बन जाता है। धर्म में परिवर्तन करने की शक्ति ही ऐसी है कि जिससे क्रोधी मनुष्य क्षमासागर और कामी जितेन्द्रिय हो जाते हैं। मनुष्य का दुःखमय जीवन धर्म की आग में पड़ कर आनन्दमय हो जाता है।

अहा! जिस धर्माग्नि के उत्ताप के ही कारण मनुष्य में जीवन-शक्ति का सञ्चार होता है, जिस धर्माग्नि के ही प्रकाश के कारण मनुष्य के हृदय में ज्ञान का प्रकाश होता है, जिस धर्माग्नि के द्रवीकरण-गुण से ही मनुष्य के हृदय में दया और प्रेम आदि भावों का आविर्भाव होता है और जिस धर्माग्नि के परिवर्तन-गुण के ही प्रभाव से मनुष्य का कण्टकमय जीवन परमानन्दमय हो जाता है उस धर्माग्नि के वर्णन करने का सामर्थ्य हम में कहाँ! उस धर्माग्नि के गुण-लेखन करने की शक्ति हमारी लेखनी में कहाँ! धर्माग्नि के विस्तृत गुणों के प्रकाशित करने में जब सरस्वती ही असमर्थ है तब और किसका सामर्थ्य है जो वर्णन कर सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हीं मनुष्यों का जीवन धर्ममय है जिनके हृदय में उत्साह है, साहस है, तेज है और चेतनता है। उन्हीं का जीवन सार्थक है जिनके जीवन में ज्ञान का प्रकाश है और जो अपने हृदयस्थ ज्ञान-प्रकाश से संसार को प्रकाशित कर रहे हैं। उन्हीं महात्माओं का धार्मिक जीवन प्रशंसनीय है जिनके हृदय दीन-दुखियों को देख कर दया से द्रवीभूत हो जाते हैं। उन्हीं महापुरुषों की धर्मिष्ठता प्रतिष्ठित समझनी चाहिए जिनका साधारण जीवन धर्म की तीक्ष्ण आग में गिर कर पवित्र, निर्मल और परोपकारी जीवन बन जाता है।

जिस धर्म का इतना माहात्म्य हो, जिस धर्म में इतना गौरव हो, जिस धर्म में बड़े बड़े घमण्डी तेजोधारियों के तेज को अपने तेज के सामने फीका कर देने की शक्ति विद्यमान हो, जिस धर्म से युक्त मनुष्य के चरण-रज को बड़े बड़े चक्रवर्ती महाराजा भी अपने मुकुट पर धारण करके अपने को कृतकृत्य समझते हों, जिस धर्म के बल के सामने समस्त संसार का शारीरिक बल निर्बल पड़ जाता हो ऐसे उत्तम धर्म की हमें कदापि उपेक्षा न करनी चाहिए।

रामजीलाल शर्म्मा।

विविध विषय।

१—भारत में रोमन-लिपि के प्रचार का प्रयत्न।

हम लोगों में यदि कोई दो चार लिपियों या भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लेता है तो उसका यह ज्ञान बहुत बड़ी बात समझी जाती है। परन्तु, सरस्वती के पाठकों के परिचित डाक्टर ग्रियर्सन ने अन्य कितनी ही विदेशी भाषाओं के ज्ञान के सिवा, हिन्दुस्तान में प्रचलित प्रायः सारी भाषाओं और बोलियों का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर डाला है। इस देश में प्रचलित अनेक लिपियों से भी उनका परिचय है। यदि न होता तो वे उनके विषय में बड़े बड़े ग्रन्थ और लेख कैसे लिखते? डाक्टर साहब ने गवर्नमेंट के लिए इस देश की भाषाओं का जो इतिहास, अनेक जिल्दों में, लिखा है उससे मालूम होता है कि आप उनकी उत्पत्ति, विकास और सङ्क्रमण आदि का अच्छा ज्ञान रखते हैं। अभी, हाल में, कश्मीरी भाषा पर, आपने एक बड़ी सी पुस्तक लिख कर प्रकाशित की है। परन्तु आश्चर्य्य की बात है कि वे योरपवालों को देवनागरी लिपि सीखने की राय न देकर रोमन-लिपि में ही पूर्वी भाषायें लिखने की सिफ़ारिश कर रहे हैं। १४ मई १९१२ को लन्दन में रायल एशियाटिक सोसायटी के भवन में एक सभा हुई। हिन्दुस्तान में नौकरी करके पेन्शन पाये हुए आर० ग्रांट ब्राउन साहब ने उसमें एक लेख पढ़ा। उसमें आपने कहा कि पूर्वी भाषायें लिखने के लिए रोमन-लिपि ही सबसे अधिक उपयुक्त है। इस पर बहस हुई। पादरी नोवेल्स, डाक्टर पालेन, कुमारी रिडिंग आदि ने अपनी अपनी राय दी। इन्टरनेशनल फोनटिक असोशिएन की ईजाद की हुई नई रोमन-लिपि की ही स्तुति गाई गई। उस समय यह बात यहीं तक रही। गत अक्टोबर के अन्त में ईस्ट इंडियन असोसिएशन नामक सभा की एक बैठक हुई। उसमें पूर्वोक्त लोगों तथा और भी कई विलायती पण्डितों ने उसी सुधारी हुई रोमन-लिपि का राग अलापा और उसकी योग्यता-अयोग्यता का निश्चय करने के लिए एक कमीशन नियत किये जाने की आवश्यकता बताई। ग्रांट साहब का जो लेख रायल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल में निकला है उससे तो यही मालूम देता है कि वे रोमन-लिपि में पूर्वी भाषायें लिखने का प्रस्ताव इस लिए करते हैं कि योरपवाले अधिकतर इसी लिपि से परिचित हैं और उन लोगों के लिए देवनागरी या अन्य कोई लिपि शीघ्र सीख लेने की सम्भावना नहीं। पर सुधारी हुई रोमन-लिपि वे शीघ्र ही सीख सकते हैं। परन्तु ईस्ट इंडिया असोसिएशन की पूर्वोक्त बैठक की जो रिपोर्ट तार द्वारा इस देश में आई है उससे तो यह भासित हो रहा है कि रोमन-लिपि के द्वारा हिन्दुओं की देवनागरी और मुसलमानों की फ़ारसी-लिपि को अपदस्थ करने का भी विलायती विद्वान् इरादा कर रहे हैं। रोमन-लिपि की सर्वोपयोगिता के आलाप तो बहुत दिन से सुनाई दे रहे हैं। अतएव उन आलापों का पुनरुत्थान कोई आश्चर्य्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की बात नहीं। आश्चर्य्य की बात तो यह है कि डाक्टर ग्रियर्सन भी उसी लिपि के प्रचार के पक्ष में हैं। नहीं मालूम इन विलायती पण्डितों का आन्तरिक अभिप्राय क्या है। जिस रोमन-लिपि की अनुपयोगिता और सदोषता सैकड़ों दफ़े अखण्डनीय युक्तियों और प्रमाणों से सिद्ध कर दी गई उसी को डाक्टर ग्रियर्सन जैसे विद्वान् देवनागरी की अपेक्षा क्यों अधिक योग्य समझते हैं यह भगवान् ही जाने। ये वही डाक्टर साहब हैं जिनकी राय में व्रज ही की बोली में अच्छी हिन्दी-कविता हो सकती है, बोल-चाल की भाषा में नहीं। आपके सामने बोल-चाल की भाषा में लिखी गई उत्तमोत्तम कविता की बड़ी बड़ी पुस्तकें तक रख दी गईं; पर आप फिर भी अपनी पहली राय पर अटल हैं। बात यह है कि जो अपनी राय बदलनाही नहीं चाहता उसे क़ायल करने का प्रयत्न करनाही बेकार है। यदि अँगरेज़ अफ़सर या यूरप, अमेरिका के और लोग इस देश की भाषायें रोमन में लिखें तो हमारी विशेष हानि नहीं। भारत से अलभ्य लाभ उठाने पर भी यदि उनके लिए एक महीने के परिश्रम से देवनागरी लिपि सीखना हिमालय की सब से ऊँची चोटी पर चढ़ना है तो वे न सीखें। पर जो लोग प्रसन्नता-पूर्वक रोमन-लिपि को स्वीकार नहीं करना चाहते उनके माथे इस लिपि को मढ़ना किसी तरह मुनासिब नहीं। पादड़ी नोवेल्स ने कहीं एक नोक आगे बढ़ा कर, कहीं एक पीछे कम करके, तथा दो चार नये वर्णों की सृष्टि करके जो रोमन-लिपि ईजाद की है उससे हमारा काम कदापि नहीं चल सकता और न फोनाटिक असोसिएशन की उस लिपि से चल सकता है जिसकी दुहाई ब्राउन साहब ने दी है। उनकी सदोषता सिद्ध करना व्यर्थ है, क्योंकि ब्राउन और ग्रियर्सन साहब पर शायद ही हमारी बातों का कुछ असर हो।

हमारी प्रार्थना है कि हमारे अमुक-नाथ डाक्टर, अमुक-दत्त शास्त्री, अमुक शर्म्मा पण्डित, अमुक-भूषण आचार्य्य, अमुक-गांवकर एम० ए० क्या करते हैं। ये लोग क्या सिर्फ़ एम०, आर० ए० स० का पुछल्ला लगाने ही के लिए एशियाटिक सोसायटी के मेम्बर बनते हैं। ऐसी ऐसी आक्षेपयोग्य बातें इस सोसायटी के विलायती मेम्बरों द्वारा होती हैं, पर ये लोग चूँ तक नहीं करते। यों तो ये लोग बाल की खाल निकालेंगे। किसी शिला-लेख में 'क' की जगह 'ख' होना चाहिए—इस पर बरसों क़लम घिसेंगे, बड़े बड़े दार्शनिक पोथों का अनुवाद अँगरेज़ी में कर डालेंगे, पर देवनागरी लिपि की उपयोगिता और रोमन-लिपि के दोष दिखाने के लिए ये दस बीस सतर भी न लिखेंगे! अपनी लिपि और अपनी भाषा पर ऐसी तो इनकी प्रीति है। फिर क्यों न हमारे साहित्य की दुर्दशा हो :—

(अहो कष्टं सापि प्रतिदिनमधोधः प्रविशति।)

२—भारतवासियों के दाँतों के विषय में दन्तवैद्यों की सम्मति।

थोड़े दिन हुए लन्दन में दन्तवैद्यों की एक सभा हुई थी। उसके सभापति ने अपनी वक्तृता में कहा कि इँगलेंड वालों की अपेक्षा भारतवासियों के दाँत अधिक अच्छे होते हैं। इसका कारण यह है कि भारत-वासियों की ख़ूराक बहुत सादी है। यह बात सर जार्ज ब्रर्डउड नामक एक महाशय को भ्रमात्मक मालूम हुई। उन्होंने इसका प्रतिवाद किया। उनका कथन है कि भारतवासियों के दाँत अच्छे होने का यह कारण नहीं। वे मिठाई बहुत खाते हैं; खटाई भी बहुत खाते हैं। ये चीज़ें दाँतों को ख़राब करती हैं। उनके दाँत अच्छे होने का कारण यह है कि वे ख़ास ख़ास पेड़ों की दातून करते हैं और पान-सुपारी खाते हैं। इससे उनके पेट की बादी भी दूर होजाती है और दाँत भी साफ़ रहते हैं और मज़बत होजाते हैं। यह सच है। अँगरेज़ मांस बहुत खाते हैं और दाँत नहीं साफ़ करते। इससे उनके दाँत ख़राब होजाते हैं। हम लोग इसका विपरीत आचरण करते हैं। इसी से हमारे दाँत अच्छे रहते हैं।

गिरिधर शर्मा।

३—पृथ्वी की उर्वरा-शक्ति बढ़ाने के लिए बिजली का उपयोग।

बिजली से ज़मीन की उत्पादक शक्ति बढ़ाने का काम अब योरप में बड़े ज़ोरशोर से होरहा है। खेत में जगह जगह पर तार गाड़ दिये जाते हैं और उनका सम्बन्ध बिजली की "बैटरी" (विद्युत्कोश) से कर दिया जाता है। बिजली के संयोग से ज़मीन उर्वरा होजाती है। पौधे बेतरह सबल होजाते हैं और बहुत जल्द बढ़ते हैं। गेहूँ, आलू और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शलग़म वग़ैरह के खेतों में बिजली पहुँचाने से ड्यौढ़ी, दूनी पैदावार होती है। इसमें ख़र्च भी बहुत नहीं पड़ता। अर्थात् जितना फ़ायदा होता है उसकी अपेक्षा ख़र्च बहुत कम पड़ता है। कम से कम ४५ फ़ी सदी पैदावार अधिक होती है। इस तरकीब के निकालने वाले अध्यापक ल्यम्सट्रोम नाम के एक विज्ञानवेत्ता हैं। उत्तरी ध्रुव के पास की ज़मीन बहुत उर्वरा है। इसका कारण यह है कि वहां अरोरा नाम का एक प्रकाश उस पर पड़ा करता है। जिस साल यह प्रकाश अधिक होजाता है उस साल ज़मीन की उर्वरा शक्ति और भी अधिक होजाती है। वहां की हवा में भी बिजली अधिक रहती है। इसी से पौधे जल्द बढ़ते हैं और ख़ूब फलते हैं। ध्रुव के पास की ज़मीन की उर्वरा-शक्ति को देख और उसके कारण का पता लगा कर ही पूर्वोक्त अध्यापक महाशय ने खेतों में बिजली पहुँचाने की युक्ति निकाली है।

४—पार्ल्यामेंट के मेम्बरों का वेतन।

संसार भर के मुख्य मुख्य राज्यों की पार्ल्यामेंट-सभाओं के मेम्बरों का वेतन इस प्रकार है:—

इँगलेंड—कुछ नहीं।

अमेरिका—संयुक्त-राज्य के व्यवस्थापकों को २१००० रुपये वार्षिक मिलते हैं। ३७५ रुपये वार्षिक फ़ुटकर ख़र्च के लिए और, अधिवेशन होने पर, दस आने प्रति मील सफ़र ख़र्च के लिए दिये जाते हैं। संयुक्त-राज्य जिन छोटी छोटी रियासतों में बटा हुआ है उनमें से हर एक की क़ानून बनाने वाली सभा के मेम्बरों को, अधिवेशन के दिनों में, सफ़र-ख़र्च के सिवा, बारह से लेकर साढ़े बाईस रुपये तक प्रति दिन मिलते हैं।

कनाडा—साल भर में जितने दिन व्यवस्थापक सभा के अधिवेशन होते हैं उतने ही दिनों का वेतन, ७५०० रुपये वार्षिक के हिसाब से, मिलता है। अधिवेशन में जिस दिन मेम्बर उपस्थित न हो उस दिन के ४५ रुपये काट लिये जाते हैं।

फ्रांस—यहां के व्यवस्थापकों का वेतन नौ हज़ार वार्षिक है। मेम्बर लोग रेल-गाड़ियों पर मुफ़्त सफ़र कर सकते हैं।

जर्मनी—पार्ल्यामेंट के मेम्बरों को अधिवेशन भर के साढ़े बाइस सौ रुपये मिलते हैं। जिस दिन वे अधिवेशन में उपस्थित नहीं होते उस दिन के १५ रुपये काट जाते हैं। वे रेलवे-यात्रा मुफ़्त कर सकते हैं। प्रान्तिक व्यवस्थापक सभाओं के मेम्बरों को, अधिवेशन के दिनों में, सफ़र-ख़र्च के सिवा, प्रति दिन साढ़े चार से सवा ग्यारह रुपये तक मिलते हैं।

स्वटज़रलैंड—पार्ल्यामेंट के अधिवेशन के समय, मेम्बरों को सफ़र-ख़र्च के सिवा, प्रतिदिन बारह रुपये वेतन मिलता है।

आस्ट्रेलिया—व्यवस्थापकों का वेतन ६००० रुपये वार्षिक है। प्रान्तिक व्यवस्थापकों को ४५०० रुपये मिलते हैं। इन लोगों को मुफ़्ती रेलवे-यात्रा के सिवा और भी कई अधिकार प्राप्त हैं।

५—तोपें ले जाने वाले टारपीडो।

जहाज़-नाशक यन्त्रों में टारपीडो मुख्य समझा जाता है। उसकी लम्बाई छः सात गज़ और व्यास आध गज़ से अधिक नहीं होता। उसके एक सिरे में गन-काटन (Gun-Cotton) अथवा डायना-माइट नाम का ज्वाला-ग्राही पदार्थ भरा रहता है। दूसरा सिरा पिस्तोल की नोक की तरह बना होता है। जहाज़ का धक्का लगते ही दूसरा सिरा भीतर धँस जाता है। उसके संघर्षण से ज्वाला-ग्राही पदार्थ भभक उठता है और जहाज़ का नाश कर देता है। बहुत दिनों से लोग इस चिन्ता में थे कि जहाज़ों की रक्षा टारपीडो से किस तरह की जाय। कितने ही उपाय सोचे गये। जहाज़ के अगल बग़ल और पेंदे में फ़ौलादी जाल लगाये गये। वे हुए तो लाभकारी; परन्तु इतने भारी निकले कि जहाज़ों की गति ही के बाधक बन बैठे। अन्त में फ़्रांन्सवालों ने युद्ध-पोतों के पेंदे में "कैसन" नामक धातु की दो इञ्च मोटी चद्दर जड़ना शुरू किया। इस तरकीब से जहाज़ों की रक्षा टारपीडो से बहुत कुछ होने लगी।

यह दशा देख संयुक्त-राज्य, अमेरिका, के सैनिक, कमान्डर डेविस, ने टारपीडो में आठ इञ्च मुँह वाली एक तोप लगाने की युक्ति ढूँढ़ निकाली। इस टारपीडो की तोप के गोले की गति हज़ार फ़ुट प्रति सेकेन्ड के हिसाब से होगी। "कैसन" धातु की चार पांच इञ्च मोटी चद्दर को काट कर वह सहज ही नष्ट-भ्रष्ट कर देगा। जहाज़ों के अतिशय भारी हो जाने के भय से इससे अधिक मोटी चद्दर का प्रयोग किया ही नहीं जा सकता। देखें अब जहाज़ वाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यौवनगर्व ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

यह पुस्तक वितरित न की जाए
NOT TO BE ISSUED

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFERENCE BOOK

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar